॥ भविष्य महापुराणम् ॥

(द्वितीय खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

(द्वितीय खण्ड)

मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व

(हिन्दी–अनुवाद सहित)

अनुवादक :

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९२८ : सन् २००६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक
प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद – ३

प्रकाशन वर्ष शक १९२८ : सन् २००६

संस्करण द्वितीय

प्रति २२००

मूल्य तीन सौ पचास रुपये मात्र

मुद्रक एवं फोटो कम्पोजिंग **मनोज आफसेट**
२५५, चक, जीरोरोड, इलाहाबाद

आवरण–सज्जा कृष्णकुमार मित्तल

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत पुराण साहित्य के संवर्धन हेतु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के आकांक्षानुरूप अब तक ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण तथा स्कन्द पुराणान्तर्गत केदारखण्ड का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। जिसका समादर सुधीजनों द्वारा व्यापक स्तर पर हुआ है। फलस्वरूप सम्मेलन को अनेक पुराणों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा।

सुधी पाठकों की पिपासा को शान्त करने तथा अपनी गौरवशाली पुराण-प्रकाशन-योजना को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु सम्मेलन ने २६,३०६ श्लोक वाले भविष्यमहापुराण के प्रकाशन का गुरुतर कार्य अपने हाथ में लिया, जिसका प्रथम खण्ड "ब्राह्मपर्व" आपके सम्मुख पूर्व में प्रस्तुत हो चुका है और द्वितीय खण्ड मध्यमपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व प्रस्तुत किया जा रहा है। सम्पूर्ण भविष्यमहापुराण का अनुवाद राजर्षि टण्डन जी ने श्री बाबूराम उपाध्याय से स्वयं कराया था। परन्तु दुर्योग से उन दोनों के जीवनकाल में इसका प्रकाशन न हो सका। आज इसे प्रकाशित हो जाने से उन दोनों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास है।

'भविष्यमहापुराण' को प्रकाशन की दृष्टि से कुल तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जबकि यह पुराण चार पर्वों में निबद्ध है। (१) ब्राह्मपर्व (२) मध्यमपर्व (३) प्रतिसर्गपर्व (४) उत्तरपर्व।

भविष्यपुराण के मध्यमपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व में ८९५६ श्लोक हैं। मध्यमपर्व तीन भागों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ८९८, १४७१ और ५७१ श्लोक हैं। इस पर्व में सृष्टिवर्णन, यज्ञादिविधान तथा जलाशयादि वाटिकोपवनप्रतिष्ठाविधान के साथ ग्रहोपद्रवोत्पातशान्ति का विस्तृत विधान वर्णित है। प्रतिसर्गपर्व चार खण्डों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ४०६, १११८, २३९० तथा २१०२ श्लोक हैं। इस पर्व में सर्वांशतः कलियुगीयेतिहाससमुच्चय के अन्तर्गत सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग के राजाओं एवं विशिष्ट महापुरुषों के जीवन-वृत्त वर्णित हैं।

इस पुराण की पाण्डुलिपि एवं प्रथमखण्ड की विस्तृत भूमिका उपलब्ध कराने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के सुष्ठु सम्पादन हेतु पण्डित रुद्रप्रसाद मिश्र, श्री शेषमणि पाण्डेय तथा डॉ० शेषनारायण शुक्ल के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आकर्षक आवरण एवं मुद्रण तथा अल्प-समय में ग्रन्थ-उपलब्ध कराने हेतु इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स प्रा० लि० एवं मनोज आफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्णकुमार मित्तल एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति आभारी हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमहापुराण के इस 'मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व' का द्वितीय संस्करण सुधीजनों द्वारा समादृत होगा तथा जनकल्याणकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

मकरसंक्रान्ति
संवत् २०६२

विभूति मिश्र

विषय-अनुक्रमणिका

मध्यमपर्व - प्रथम भाग

मध्यमपर्व - द्वितीय भाग

मध्यमपर्व - तृतीय भाग

प्रतिसर्गपर्व - प्रथम खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - द्वितीय खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - तृतीय खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - चतुर्थ खण्ड

भविष्यपुराणम् - मध्यमपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रथमोऽध्यायः

पातालवर्णनम्

ॐ नमः कमलदलनयनाभिरामाय श्रीरामचन्द्राय ।

स्वच्छं चन्द्रावदातं कविकरमकरक्षोभसञ्जातफेनं ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।
ॐकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टपूतं सम्भोगाभोगगम्यं जनकलुषहरं पौष्करं वः पुनातु ॥१
जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्ता जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ।
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो जयति सकलमौलिर्भानुमांश्चित्रभानुः ॥२
नमस्कृत्याप्रमेयाय देवाय[1] ब्रह्मरूपिणे । पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयोगिना ॥३
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छू रोमहर्षणिम् । वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद ॥४
मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः । प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम् ॥५

सूत उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं ब्रह्मरूपधरं हरिम् । वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥६
यच्छ्रुत्वा पापकर्माणि[2] स गच्छेत्परमां गतिम् । पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः ॥७

अध्याय १

पातालवर्णन

पुष्कर का वह जल तुम्हें पवित्रात्मा, बनाये, जो स्वच्छ, चन्द्र की भाँति विशुद्ध, कवि (ब्रह्मा) के हाथ रूपी मकर के क्षुब्ध होने पर जिसमें फेन उत्पन्न हुआ है, ब्रह्मोत्पत्ति के प्रवचन एवं व्रत-नियम के एकमात्र पालन करने वाले मुख्य ब्राह्मणगण द्वारा सुसेवित, ओंकार से विभूषित तथा तीनों लोकों के गुरु ब्रह्मा की आँखों द्वारा (देखने से) पवित्र, अमीर गरीबों सभी के लिए प्राप्य एवं मनुष्यों के पापनाशक हैं। दीपक की भाँति भुवनों को प्रकाशित करने वाले एवं लोकों के रचयिता भास्कर की जय हो, शुक्ल वर्ण, तथा हाथ में धनुष लिए हुए मुरारि भगवान् की जय हो, भाल में चन्द्र को रखने वाले रुद्रदेव की जय हो, एवं समस्त संसार के शिरोमणि और किरण वाले चित्रभानु (सूर्य) की जय हो। १-२। अप्रमेय एवं ब्रह्मरूप उस देव को नमस्कार करके मैं उस पुराण के विषय को, जिसे ब्रह्मयोगी व्यास ने बताया है, बता रहा हूँ। ३। (महर्षियों ने) रोमहर्षण (सूत) से पूँछा कि हे पुराणार्थ विशारद (पुराण के अर्थों की विशदव्याख्या करने वाले)! हमें उस परम पवित्र पुराण की संहिता को सुनाने की कृपा कीजिए। ४। प्रधान पौराणिक सूत जी ने मुनियों की बातें सुनकर अपने गुरु व्यास को मानसिक प्रणाम करके उन लोगों से कहा। ५

सूत बोले—जगत् को उत्पन्न करने वाले एवं ब्रह्मरूप धारण करने वाले विष्णु को नमस्कार करके मैं दिव्य तथा पापनाशिनी उन पुराण की कथाओं को सुना रहा हूँ, जिसे सुनकर समस्त पाप-कर्मों की

---

१. भक्ताय । २. अतिहायेति शेषः ।

भविष्यपुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः । मध्यपर्व ह्यथो वक्ष्ये प्रतिष्ठादिविनिर्णयम् ॥८
धर्मप्रशंसनं चात्र ब्राह्मणादिप्रशंसनम् । आपद्धर्मस्य कथनं विद्यामाहात्म्यवर्धनम् ॥९
प्रतिमाकरणं चैव स्थापनाचित्रलक्षणम् । कालव्यवस्थासर्गादिप्रतिसर्गादिलक्षणम् ॥१०
पुराणलक्षणं चैव भूगोलस्य च निर्णयम् । निरूपणं तिथीनां च श्राद्धसङ्कल्पमन्तरम् ॥११
मुमूर्षोरपि यत्कर्म दानमाहात्म्यमेव च । भूतं भव्यं भविष्यं च युगधर्मानुशासनम् ॥१२
उच्चावचावधानं च प्रायश्चित्तादिकं च यत् । षष्ट्यधिकाष्टसाहस्रनवश्लोकशतोद्भवम् ॥१३
पञ्चतन्त्रसमायुक्तं प्रतितन्त्रे च विंशतिः । पञ्चोत्तरं तथाध्यायाः पुराणेऽस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥१४
त्रयाणामाश्रमाणां च गृहस्थो योनिरुच्यते । अन्येऽपि सूपजीवन्ति तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥१५
एकाश्रमं गृहस्थस्य त्रयाणां सूतिदर्शनम्[1] । तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मशासनम् ॥१६
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ । सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरन्न तु ॥१७
तडागस्य च सान्निध्ये तडागं परिवर्जयेत् । प्रपास्थाने प्रपा वर्ज्या मठस्थाने मठं त्यजेत् ॥१८
धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते । धर्मादेवापवर्गोऽयं तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥१९
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः । सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥२०

शान्ति, और उत्तम गति की प्राप्ति होती है । ब्राह्मणगण ! उस पुण्य, पवित्र, एवं आयुप्रदायक भविष्य-पुराण की समस्त बातों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जिसे गदाधर भगवान् ने स्वयं बताया है, इस पर्व का नाम मध्यम पर्व होगा इसमें प्रतिष्ठा आदि के निर्णय, धर्म की प्रशंसा, ब्राह्मणों की प्रशंसा आपत्ति काल के धर्म-स्वरूप, विद्या के माहात्म्य, प्रतिमाओं के निर्माण, उनकी स्थापना एवं चित्र (आश्चर्य) जनक लक्षण, काल की व्यवस्थाएँ सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्गादि के लक्षण, पुराणों के लक्षण, पृथ्वी के गोलाकार होने का निर्णय, तिथियों के निर्णय, श्राद्धों के संकल्प आदि बताये गये हैं । उसी भाँति मरणासन्न प्राणियों के कर्म, दान-माहात्म्य एवं युगधर्म के भूत, वर्तमान, तथा भविष्य अनुशासन की व्याख्या की गई है । तथा प्रायश्चित्तों के विषय में ऊँची-नीची (छोटी-बड़ी) व्यस्थाएँ भी । इस पर्व में आठ सहस्र नव सौ साठ श्लोक हैं, और पाँच तंत्र । द्विजोत्तम ! प्रत्येक तंत्र में पचीस अध्याय किये गये हैं ।८-१४। तीनों आश्रमों का उत्पत्ति स्थान एकमात्र गृहस्थ आश्रम बताया गया है, क्योंकि वह अन्य को भी जीवन प्रदान करता है, इसलिए गृहाश्रम सर्वप्रधान है ।१५। एक मात्र गृहस्थाश्रम ही तीनों आश्रमों का दृष्ट प्रसव स्थान है, अतः धार्मिक शासन से आबद्ध एकमात्र गृहस्थ धर्म की जानकारी प्राप्त करना परमावश्यक है ।१६। धर्म रहित अर्थ और काम के भी परित्याग करने चाहिए, तथा समस्त लोगों के विरुद्ध धर्म के भी ।१७। तालाब के समीप तालाब, प्रपा (पियाऊ) के समीप पियाऊ और मठ के समीप मठ (मन्दिर) न बनाने चाहिए । धर्म द्वारा अर्थ, काम की उत्पत्ति होती ही है, मोक्ष की भी प्राप्ति होती है, इसलिए धर्माचरण करना परमावश्यक होता है ।१८-१९। धर्म, अर्थ, एवं काम को त्रिवर्ग कहा जाता है । एवं सत्त्व, रज, तथा तम इन त्रिगुणों की उपलब्धि भी धर्म द्वारा ही बतायी गयी है, अतः धर्म का सेवन करना, अत्युत्तम बताया

---

१. सूतिदर्शवत् ।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।२१
यस्मिन्धर्मः समायुक्तो ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ । इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ।।२२
तस्मादर्थं च कामं च युक्त्वा धर्मं समाश्रयेत् । धर्मात्सञ्जायते कामो धर्मादर्थोऽभिजायते ।।२३
एवं धर्मस्य मध्येऽयं चतुर्वर्गः प्रदर्शितः । एवं च धर्मकामार्थं मोक्षस्यापि च मानवः ।।
माहात्म्यं वानुतिष्ठेच्च स चानन्त्याय कल्पते ।।२४
तस्मादर्थं च कामं च मुक्त्वा धर्मं समाचरेत् । धर्मात्सञ्जायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ।।२५
धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । अनादिनिधना शक्तिर्नैषा ब्राह्मी द्विजोत्तम ।।२६
कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः । तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाचरेत् ।।२७
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् । ज्ञानपूर्वा निवृत्तिः स्यात्प्रवृत्तिर्वर्ततेऽन्यथा ।।२८
निवृत्तिं सेवमानस्तु याति तत्परमं पदम् । तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत्पुनः ।।२९
शमो दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च । आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ।।३०
सत्यं संतोष आस्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः । देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ।।३१
अहिंसा सत्यवादित्वमपैशुन्यं सुकल्पता । शौचाचारश्चानुकम्पा सर्ववर्णेऽब्रवीन्मुनिः ।।३२
श्रद्धापूर्वाः स्मृता धर्माः श्रद्धामध्ये तु संस्थिताः। श्रद्धानिष्ठाः प्रतिष्ठाश्च धर्माः श्रद्धैव कीर्तिताः ।।३३

गया है ।२०। सात्त्विक गुण प्रधान प्राणी ऊर्ध्व (स्वर्ग) में प्रधान रजोगुणी मध्य (मर्त्य) लोक में, तथा निंदित कर्मों के करने वाले प्रधान तमोगुणी प्राणी अधोलोक (पाताल) में निवारा करते हैं ।२१। जिस प्राणी के अर्थ एवं काम धार्मिक होते हैं, वे इस लोक में सुखानुभव प्राप्त कर अंत में अनन्त भगवान् में लीन हो जाते हैं ।२२। इसलिए धार्मिक अर्थ एवं काम की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि धर्म द्वारा ही काम तथा अर्थ की उत्पत्ति बतायी गयी है ।२३। इस भाँति धर्म के मध्य में चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष) का सन्निहित होना बताया गया है । मनुष्य इस प्रकार धर्म, अर्थ, एवं काम के आचरण करता हुआ यदि मोक्ष के महत्त्व का अनुशीलन ही करता है, तो उसे अनन्त भगवान् की प्राप्ति होती है ।२४। इसलिए अर्थ तथा काम के परित्याग करके भी धर्माचरण अवश्य करे, क्योंकि ब्रह्मवादियों ने बताया है कि धर्म द्वारा सभी कुछ की प्राप्ति होती है ।२५। द्विजोत्तम ! स्थावर-जंगम स्वरूप समस्त जगत् धर्माश्रित होकर ही स्थित है न कि ब्रह्म की अनादि शक्ति इसे धारण करती है ।२६। ज्ञान समेत कर्म द्वारा धर्म की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं । अतः ज्ञानपूर्वक कर्मों को प्रारम्भ करना चाहिए ।२७। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो प्रकार के वैदिक कर्म बताये गये है उसमें ज्ञान-पूर्वक कर्मों के आचरण द्वारा प्राणियों की निवृत्ति और उससे हीन कर्मों द्वारा प्रवृत्ति होती है, ऐसा बताया गया है ।२८। निवृत्ति करने वाले कर्मो के आचरण द्वारा उसे उत्तम पद की प्राप्ति होती है, इसलिए सदैव निवृत्यर्थ कर्म का ही आचरण करना चाहिए, अन्यथा संसार (जन्म-मरण) का त्याग होना असम्भव है।२९। शमन, दमन, दया, दान, निर्लोभ, त्याग, आर्जव, निद्रा, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिक होना, श्रद्धा, इन्द्रिय संयम, देवताओं की अर्चा, विशेषकर ब्राह्मणों की, अहिंसा, सत्यवादी होना, चुगुली न करना, सुन्दर कल्पनायें करना, पवित्रता, आचारकर्म, एवं कृपा करना सभी वर्णों के लिए मुनि ने बताया है।३०-३२। धर्म में श्रद्धा नियुक्त हैं, श्रद्धा के मध्य में धर्म स्थित हैं, एवं श्रद्धानिष्ठ तथा उसी में प्रतिष्ठित धर्म ही श्रद्धा के रूप में बताया

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां श्रुतं स्थानं क्रियावताम् । स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां सङ्ग्रामेष्वपलायिनाम् ।।३४
वैश्यानाममृतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम् । गान्धर्वशूद्रजीवानां[1] परिचारेण वर्तताम् ।।३५
अष्टाशीति सहस्राणां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं स्थानं तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।।३६
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं श्रुतं तद्वै वनौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ।।३७
यतीनां यतचित्तानां तदेव वनवासिनाम् । हिरण्यगर्भं यत्स्थानं तस्मान्नावर्तते पुनः ।।३८
योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाकरम् । आनन्दमैश्वरं नाम सा काष्ठा परमा गतिः ।।३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

सूत उवाच

इदानीं विस्तरं चैव विभागं रूपमैश्वरम् । वक्ष्ये कल्पानुसारेण मन्वन्तरशतानुगम् ।।१
आसीत्तमोमयं सर्वमप्रज्ञातमलक्षणम् । तत्र चैको महानासीद्रुद्रः परमकारणम् ।।२
आत्मना स्वयमात्मानं सञ्चिन्त्य भगवान्विभुः । मनः संसृजते पूर्वमहङ्कारं च पृष्ठतः ।।३

गया है । क्रियाशील ब्राह्मणों के लिए प्रजापति के स्थान, युद्धस्थल से पलायन न करने वाले क्षत्रियों के लिए इन्द्र के स्थान, अपने धर्म के आचरण करने वाले वैश्यों के लिए अमृत स्थान, और सेवा कर्म करने वाले शूद्रों के लिए गन्धर्व के स्थान की प्राप्ति बतायी गयी है ।३३-३५। ऊर्ध्वरेता बालखिल्यरूप मुनियों के जो अठ्ठासी सहस्र की संख्या में वर्तमान रहते हैं, जो स्थान बताये गये हैं, वही स्थान गुरुगृहनिवासियों के भी हैं । सप्तर्षियों के स्थान तपस्वियों के लिए भी नियत हैं और गृहस्थों के लिए प्राजापत्य स्थान स्वयं ब्रह्मा ने बताया है । योगियों का हिरण्यगर्भ नामक स्थान, जहाँ पहुँचकर पुनः लौटा नहीं जाता है, योगाभ्यास करने वालों के लिए भी कहा गया है । योगियों के लिए व्योम नामक परमोत्तम स्थान बताया गया है, जिसे ईश्वरानंद भी कहते हैं, तथा वही अन्तिम सीमा भी हैं ।३६-३९

श्री भविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में प्रथम अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

सृष्टि का वर्णन

सूत बोले—ईश्वर के रूप के विभाग एवं विस्तार बता रहा हूँ, जिसमें कल्प के अनुसार सैकड़ों मन्वन्तर जन्म ग्रहण करते हैं।१। एक तमोमय स्वरूप था, जो समस्त लोक को आच्छन्न किये था, जिसका कोई लक्षण बताया नहीं जा सकता। किन्तु इसके मूल कारण 'रुद्र' परम एवं महान् कारण बताये जाते हैं ।२। विभु (व्यापक) भगवान् स्वयं अपना चिन्तन करके सर्वप्रथम मन की सृष्टि करते हैं, पश्चात्

---

१. शुभ्रजीवानाम् ।

अहङ्कारात्प्रजानाति महाभूतानि पञ्च च । अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराश्चैव षोडश ।।४
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च । प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ।।५
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणाः प्रोक्तास्तु ते त्रयः । तस्माद्भागवतो ब्रह्मा तस्माद्विष्णुरजायत ।।६
ब्रह्मविष्णुमोहनार्थं ततः शम्भुस्तु तेजसा । अशरीरो वासुदेवो ह्यनुत्पत्तिरयोनिजः ।।७
व्यामोहयित्वा तत्सर्वं तेजसाऽमोहयज्जगत् । तस्मात्परतरं नास्ति तस्मात्परतरं न हि ।।८
ब्रह्मा विष्णुश्च द्वावेतावुद्भूतौ भगवत्सुतौ । कल्पे कल्पे तु तत्सर्वं सृजतेऽसौ जनं जगत् ।।९
उपसंहरते चैव नानाभूतानि सर्वशः । द्वासप्ततियुगान्येव मन्वन्तर इति स्मृतः ।।१०
चतुर्दश तु तान्येवं कल्प इत्यभिधीयते । दिनैकं ब्रह्मणः प्रोक्तं निशि कल्पस्तथोच्यते ।।११
एवं मासश्च वर्षश्च तथा चाष्टशतं द्विजाः । एवं बुद्धीन्द्रियस्थास्य विष्णोश्च निमिषः स्मृतः ।।१२
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं निमेषश्च ध्रुवस्य वै । निमेषजीवनं सर्वं सर्वलोकचराचरम् ।।१३
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च प्रकीर्तितः । जनस्तपश्च सत्यं च ब्रह्मलोकश्च सप्तमः ।।१४
पातालं वितलं तद्धि अतलं तलमेव च । पञ्चमं विद्धि सुतलं सप्तमं च रसातलम् ।।१५
एतेषु सप्त विख्याता अधः पातालवासिनः । तेषामादौ च मध्ये च अन्ते रुद्रः प्रकीर्तितः ।।१६
ग्रसते जायते लोकान्क्रीडार्थं तु महेश्वरः । ब्रह्मलोकपरीप्सूनां गतिरूर्ध्वं प्रकीर्तिता ।।१७
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च विदिशस्तथा । समुद्राणां गिरीणां च अधस्तिर्यक्प्रसङ्ख्यया ।।१८

अहंकार की ।३। पुनः अहंकार द्वारा पाँच महाभूत, आठों प्रकृतियाँ, तथा सोलहों विकार उत्पन्न होते हैं ।४। तथा शब्द, रूप, रस, गंध, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान भी ।५। सत्व, रज, एवं तम यही तीनों गुण बताये गये हैं । इसलिए उस (ब्रह्म) द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और ब्रह्मा द्वारा विष्णु की ।६। ब्रह्मा और विष्णु के संमोहनार्थ (उसके) तेज द्वारा शंभु की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार शरीर-हीन (परब्रह्म) वासुदेव, जिसकी अयोनिज आविर्भूति बतायी गयी है, इन्हें मोहाच्छन्न करके इसी प्रकार समस्त जगत् को मोह मुग्ध करते हैं । उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है और न कभी होने की आशा है ।७-८। भगवान् के यही ब्रह्मा और विष्णु नामक दो पुत्र सर्वप्रथम उत्पन्न हुए हैं । यही प्रत्येक कल्पों में समस्त जगत् की रचना करते हैं, तथा समय पर सभी का उपसंहार भी । बहत्तर युगों का समय एक मन्वन्तर के लिए बताया गया है ।९-१०। उसी प्रकार चौदह युगों का एक कल्प होता है । यही एक कल्प ब्रह्मा का दिन तथा उसी भाँति की रात्रि बतायी गयी है ।११। हे द्विजगण ! इसी भाँति आठ सौ मास तथा वर्ष का समय, बुद्धि, इन्द्रिय एवं विष्णु के एकनिमिष का समय कहा गया है ।१२। ब्रह्मा आदि से आरम्भ और साम्बपर्यन्त के समय ध्रुव का एक निमिष होता है, इस भाँति समस्त लोक के चर-अचर सभी का निमेष मात्र जीवन कहा गया है ।१३। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, और सातवाँ ब्रह्मलोक स्थित है ।१४। पाताल, वितल, अतल, तल, सुतल, तथा सातवाँ रसातल, ये सात अधोलोक कहे जाते हैं, इनके निवासी पाताललोक वासी के नाम से ख्यात है । उपरोक्त सभी लोकों के आदि, मध्य, एवं अंत में रुद्र की स्थिति, बतायी गयी है ।१५-१६। महेश्वर ! अपनी क्रीडार्थ ये लोकों के संहार करते हैं, उनमें ब्रह्म लोक के इच्छुकों को स्वर्गादि लोक की प्राप्ति होती है ।१७। पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा, समुद्र, पर्वत, जिनकी ऊपर तिर्छी जैसी स्थिति है, तथा समुद्रों के विस्तार और प्रमाण में

समुद्राणां च विस्तारं प्रमाणं च ततः शृणु । स्थावराणां च शैलानां देवानां च दिवौकसाम् ।।१९
चतुष्पदानां द्विपदां तथा धर्मैकभाषिणाम् । सहस्रगुणमाख्यातं स्थावराणां प्रकीर्तितम् ।।२०
सहस्रगुणशीलाश्च इत्याह भगवान्मुनिः । ऋषिस्तु प्रथमं कुर्वन्प्रकृतिं नाम नामतः ।।२१
तस्या ब्रह्मा प्रकृत्यास्तु उत्पन्नः सह विष्णुना । तस्माद् बुद्धया प्रकुरुते सृष्टिं नैमित्तिकीं द्विजाः ।।२२
तस्मात्स्वयम्भुवो ब्रह्मा ब्राह्मणान्समकल्पयत् । पादहीनान्क्षत्रियांश्च तस्माद्धीनांस्तु वैश्यकान् ।।२३
चतुर्थपादहीनांश्च आचारेषु बहिष्कृतान् । पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवाप्यकल्पयत् ।।२४
लोकालोकस्य संस्था च द्वीपानामुदधेस्तथा । सरितः सागराणां च तीर्थान्यायतनानि च ।।२५
मेघस्तनितनिर्घोषरोहितेन्द्रधनूंषि च । उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्यायतनानि च ।।२६
उत्पन्नं तस्य देहेषु भूयः कालेन पीडयेत् ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

पातालवर्णनम्

सूत उवाच

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तरः । कल्पाभिकरणे तत्र संस्थिता द्विजपुङ्गवाः ।।१
जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयात्मकः । सनन्दनादयस्तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुताः ।।२

बता रहा हूँ, सुनो ! स्थावर, शैलगण, स्वर्गस्थित देवता, चतुष्पद, द्विपद और धर्म के एकान्त भाषी के स्थावरों के सहस्र गुण बताये गये हैं ।१८-२०। भगवान् मुनि ने भी इन्हें सहस्रगुणशील बताया है । ऋषियों ने सर्वप्रथम क्रियाशील को उसके नामानुसार प्रकृति कहा है ।२१। उसी प्रकृति द्वारा विष्णु के समेत ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं द्विज ! इसीलिए वे अपनी बुद्धि के अनुसार नैमित्तिकी सृष्टि करते हैं ।२२। उसी द्वारा स्वयंभू ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सृष्टि की और पादहीन क्षत्रिय, वैश्यों, एवं आचार कर्मों के अयोग्य चतुर्थ पादहीन शूद्रों के सर्जन भी । पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशाएँ, लोकालोक की स्थिति, द्वीप, सागर, सरितायें, लम्बे चौड़े तीर्थ, मेघ, विद्युत, उनके निर्घोष, रक्तवर्ण के इन्द्र धनुष, उल्का, निर्घात, केतु एवं प्रकाश-गृह इत्यादि उन्हीं के शरीर से होकर पुनः काल में उसी में विलीन होते हैं।२३-२७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

पातालवर्णन

सूत बोले—ध्रुवलोक के ऊपर कोटि योजन के विस्तार में महर्लोक स्थित है, जिसमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कल्प पर्यंत स्थित रहते हैं ।१। महर्लोक से दो करोड़ की दूरी पर जनलोक स्थित है, जिसमें ब्रह्मा के पुत्र

जनलोकात्तपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः । विराजन्ते तु देवा वै स्थिता दाहविवर्जिताः ॥३
प्राजापत्यात्तु भूर्लोकः कोटिषट्केन संयुतः । सनत्कुमारकस्तत्र ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः ॥४
तत्र लोके गुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः । आस्ते यद्योगिभिः पीत्वा योगं मृत्योः परं गतम् ॥५
गायन्ति यतयो गाथा ह्यास्तिका ब्रह्मवादिनः । योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनम् ॥६
द्वारं तु योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम् । तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शङ्करः ॥७
सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम् । न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम् ॥८
तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे । शेते तस्य हरिः श्रीमान्मायासहचरः परः ॥९
स विष्णुर्लोककथितः पुनरावृत्तिर्वर्जितः । प्रयान्ति च महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥१०
ऊर्ध्वं ब्रह्मासनात्पूर्वं परं ज्योतिर्मयं शुभम् । वह्निना उपरि क्षिप्तं तत्रास्ते भगवान्भवः ॥११
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः । योगिभिः शतसाहस्रैर्वृतैकत्वैश्च संवृतः ।१२
तत्र ते यान्ति नियता द्विजा वै ब्रह्मवादिनः । महादेवपरेशानास्तापसा ब्रह्मवादिनः ॥१३
निर्ममा निरहङ्काराः कामक्रोधविवर्जिताः । द्रक्ष्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोकःस वै स्मृतः ॥१४
एते सप्त महर्लोकाः पृथिव्यां परिकीर्तिताः । महीतलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः ॥१५

सनंदन आदि निवास करते हैं ।२। जनलोक से तीन करोड़ की दूरी पर तप लोक स्थित है, उसमें देवगण तापहीन होकर (सुखपूर्वक) निवास करते हैं ।३। प्राजापत्य लोक से छः करोड़ की दूरी पर भूर्लोक स्थित है, जिसे ब्रह्मलोक कहा जाता है, वह सनत्कुमार का निवास स्थान है ।४। उसी लोक में गुरु, ब्रह्मा, जो विश्वात्मा एवं विश्तोमुख बताये गये हैं, योगरूपी अमृत को पानकर स्थित हैं, जिसका पान करके योगी लोग मृत्यु से उत्तम गति प्राप्ति करते हैं ।५। यती, आस्तिक, ब्रह्मवादी, योगी, तापस, सिद्ध एवं जापक, ये सभी इसी गाथा का गान करते हैं कि परम पद की प्राप्ति करने वाले योगियों के ब्रह्मा ही एक द्वार-रूप हैं, वहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है वही विष्णु है, तथा शंकर भी ।६-७। उनका आवास स्थान करोड़ों सूर्य के समान दुर्धर्ष है, प्रचण्ड तेज से आच्छन्न उस पुरी का वर्णन करने में सभी असमर्थ हैं ।८। उसी ब्रह्मपुरी में नारायण का भी वह भवन स्थित है, जिसमें माया (लक्ष्मी) समेत श्रीमान् भगवान् शेषशायी होकर स्थित हैं ।९। वह विष्णु-लोक कहा जाता है, जहाँ पहुँचने पर जीव, कभी जन्म ग्रहण नहीं करता है, किन्तु वहाँ वही लोग पहुंचते हैं, जो जनार्दन भगवान् के शरण में प्राप्त होते हैं ।१०। उस ब्रह्मलोक के ऊपरी भाग में सर्वप्रथम, अत्यन्त ज्योतिर्मय पुरी स्थित है, जो उस ऊपरी भाग में प्रक्षिप्त अग्नि की भाँति स्थित है, वहाँ देवी को साथ लिए भगवान् शिव सुशोभित हो रहे हैं। उन्हीं महादेव के ध्यान में मग्न सैंकड़ों मनीषी योगिजन रहा करते हैं, जो एक मात्र उन्हीं की तृप्ति के लिए संकल्पपूर्वक कटिबद्ध हैं ।११-१२। वहाँ उन्हीं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की नियम यात्रा होती है, जो सर्वश्रेष्ठ ईशान रूप महादेव की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे हैं।१३। निर्मम निरहंकार, एवं काम, क्रोधहीन होकर जहाँ सभी ब्रह्म मग्न दिखाई देते हैं, उसे 'रुद्र लोक' कहा गया है।१४। ये सात प्रकार करके महर्लोक पृथिवी में बताये गये हैं और द्विजगण ! महीतल आदि पाताल लोक नीचे स्थित है ।१५। सुवर्ण की भाँति

महातलं हैमतलं सर्ववर्णोपशोभितम् । प्रासादैर्विविधैः शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम् ।।१६
अनन्तेन समायुक्तं मुचकुन्देन धीमता । नृपेण बलिना चैव पातालं स्वर्गवासिना ।।१७
शैलं रसातलं विप्राः शाङ्करं हि रसातलम् । पीतं सुतलमित्युक्तं वितलं विद्रुमप्रभम् ।।१८
सितं हि वितलं प्रोक्तं तलं चैव सितेतरम् । सुवर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम् ।।१९
रसातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम् । वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः ।।२०
शङ्कुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकम् । तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलं चैव सुशोभनम् ।।२१
तेषामधस्तान्नरका रौरवाद्याश्च कोटयः । पापिनस्तेषु पात्यन्ते न तेऽवनमितुं क्षमाः ।।२२
पातालानामधश्चान्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः । कालाग्निरुद्रयोगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः ।।२३
योऽनन्तः पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः । तदाधारमिदं सर्वं सकलाग्निमुपाश्रितम् ।।२४
तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनानलः । विषज्वालासमोऽनन्तो जगत्संहरति स्वयम् ।।२५
तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालात्मा परमेश्वरः । स एव गर्भमाश्रित्य प्रकाशयति नित्यशः ।।२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पातालवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

सौन्दर्यपूर्ण तल वाला महातल, बताया गया है, जो समस्त वर्ण के प्राणियों से सुशोभित, तथा शुभ्र वर्ण के अनेक प्रकार के प्रासादों समेत सौन्दर्य पूर्ण देवालयों से युक्त हैं ।१६। अनंत के समेत बुद्धिमान् मुचुकुन्द, स्वर्गवास के इच्छुक राजा बलि पाताल लोक में प्रतिष्ठित हैं ।१७। विप्रवृन्द ! शंकर जी के निवास स्थान रूप उस पर्वत को रसातल, पीले वर्ण का सुतल, विद्रुम की भाँति प्रभा से पूर्ण एवं स्वच्छ वर्ण का वितल, और कृष्ण वर्ण का तल लोक बताया गया है । श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! सुवर्ण की प्रभा पूर्ण वासुकी उस शुभ रसातल में निवास करते हैं, तथा वह समस्त भाँति की शोभा से सुशोभित हैं, कालनेमि आदि तथा

एवं भाँति-भाँति के अन्य नाग लोग बढ़ाते हैं । उन लोकों के नीचे रौरव आदि करोड़ों नरक कुण्डों की रचना हुई है, उसमें उसी भाँति के पापी जो कभी विनम्र हो ही नहीं सकते, लाकर डाले जाते हैं । इन पाताल आदि लोकों के नीचे शेष भगवान् वैष्णवी शरीर धारण कर स्थित हैं, जिसे काल, अग्नि, रुद्र, योगात्मा, नरसिंह, माधव, और अनन्त कहा जाता है, वहीं नागरूपी जनार्दन भगवान्, उस समस्त लोको के आधार रूप हैं, और सभी प्रकार के अग्नि वहाँ रहते हैं । उसी लोक में महायोगी की भाँति कालाग्निरूप अनंत देव, अपनी विषज्वाला समेत रहकर स्वयं जगत् का संहार करते हैं । उसी तामसी, एवं शांभवी (शंभुकी) मूर्ति को, कालात्मा और परमेश्वर कहते हैं । वह इस ब्रह्माण्डोदर के गर्भ में प्रविष्ट होकर इसे नित्य प्रकाशित करता रहता है ।२१-२६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पाताल वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रवर्णनम्

सूत उवाच

एतद्ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्विधमिदं महत्। अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्य विनिर्णयम् ॥१
तद्द्वीपप्रधानो जम्बू प्लक्षः शाल्मल एव च । कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः ॥२
एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः । द्वीपाद्द्वीपो महानुक्तः सागरादपि सागरः ॥३
क्षीरोदेक्षुरसोदोऽथ क्षारोदश्च घृतोदकः । दध्योदः क्षीरसलिलो जलोदश्चेति सागराः ॥४
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा समुद्रवलया स्मृता । द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समानतः ॥५
जम्बूद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः शुभः । तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः ॥६
चतुराशीतिसाहस्रयोजनैरस्य चोच्छ्रयः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विष्कृतः ॥७
मूले षोडशसाहस्रं विस्तारस्तस्य सर्वतः । भूप्रमुख्यश्च शैलोऽसौ कलिकात्वेन संस्थितः ॥८
हिमवान्हिमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे । नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वतः ॥९
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयं दीर्घास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥१०
भारतं दक्षिणं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः ॥११

अध्याय ४

ज्योतिश्चक्र का वर्णन

सूत बोले—मैंने इस महान् ब्रह्माण्ड के चार प्रकार का वर्णन सुना दिया, इसके उपरान्त भूर्लोक का वर्णन सुना रहा हूँ, (सुनो) ! भूलोक में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्कर नामक प्रधान द्वीप बताये गये हैं, उसी भाँति सात समुद्रों का भी वर्णन है । ये सातों महाद्वीप क्रमशः सातों समुद्रों द्वारा घिरे हुए हैं। एकद्वीप से दूसरा द्वीप महान् है, उस भाँति एक सागर से दूसरा सागर भी।१-३। क्षीरसागर, इक्षुसागर, रससागर, क्षार(खारा) सागर, घृतसागर, दधिसागर, और क्षीरसागर यही सातों सागरों के नाम बताये गये हैं । पचास करोड़ योजन पृथिवी विस्तीर्ण है, जिसे चारो ओर से 'कंकड़' आभूषण की भाँति समुद्र ने घेर लिया है और सातों समुद्रों से युक्त है । समस्त द्वीपों के मध्य में शुभ जम्बू द्वीप स्थित है, उसके मध्य में सुवर्णमय प्रभापूर्ण महामेरु पर्वत सुशोभित हैं ।४-६। इसकी ऊपर की ऊँचाई चौरासी सहस्र योजन की है, पृथिवी के भीतर सोलह योजन और ऊपर की चौड़ाई बत्तीस योजन की बतायी गयी है । इसका मूल भाग पृथिवी पर सोलह सहस्र योजन में विस्तृत है । पृथिवी में सर्वप्रधान यहीपर्वत बताया गया है, हिमालय, हेमकूट और निषध पर्वत इसके दक्षिण भाग में स्थित हैं, उसी भाँति नील, श्वेत एवं शृंगी पर्वत उसके उत्तर प्रदेशों में स्थित है ।७-९। मध्य भाग में स्थित रहने वाले दोनों पर्वतों के प्रभाव एक लक्ष और अन्य पर्वतों के नब्बे बताये गये हैं और दो सहस्र योजनों की समान लम्बाई चौड़ाई बतायी गयी है ।१०। द्विजगण ! उसके दक्षिण प्रदेश में भारतवर्ष,

चम्पकं चोत्तरं वर्षं तथैवाश्वहिरण्मयम् । उत्तराः कुरवश्चैव यथैते भारतास्तथा ॥१२
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः । इलावृतश्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ॥१३
मेरोश्चतुर्दिशस्तत्र नवसाहस्रविष्कृतम् । इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वताः ॥१४
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः । पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥१५
विपुलः पश्चिमे भागे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः । कदम्बेष्वेषु नद्यश्च पिप्पलो वट एव च ॥१६
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतोर्महर्षयः । महागजप्रमाणानि जम्बून्यस्य फलानि च ॥१७
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वशः । रसेन चैव प्रख्याता तस्य जम्बूनदी इति ॥१८
सरित्तु वर्तते सापि पीयते तत्र वासिभिः । न खेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ॥
उत्पन्नाः स्वच्छमनसो नरास्तत्र भवन्ति वै ॥१९
तीरसूत्रं समं प्राप्य वायुना च विशोषितम् । जम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥२०
भद्राश्वः पार्श्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे । वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम्॥२१
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्। तदूर्ध्वं वासवस्थानं तदूर्ध्वं शङ्करस्य च ॥२२
तदूर्ध्वं वैष्णवो लोको दुर्गालोकस्तदूर्ध्वतः । ज्योतिर्मयं परं स्थानं निराकारं हिरण्मयम् ॥२३

पश्चात् किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष और उसी भाँति अन्य वर्ष भी स्थित हैं ।११। उसके (मेरु) के उत्तर प्रदेश में चंपक वर्ष, अश्व हिरण्यमय, उत्तर कुरु आदि प्रदेश भारत के समान ही स्थित हैं ।१२। द्विजसत्तम ! इन प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई नव सहस्र योजन की बतायी गयी है । इसके मध्य में इलावृत प्रदेश है । उसके मध्य में मेरु के चारो ओर नवसहस्र योजन के विस्तार में रत्ना वृत प्रदेश बताया गया है, और उस प्रदेश में परम पवित्र चार पर्वत की स्थिति भी । मेरु का विस्तार दशसहस्र योजन का कहा गया है । पूर्व में मंदराचल, दक्षिण में गन्धमादन ।१३-१५। पश्चिम में विपुल, एवं उत्तर में सुपाश्र्व नामक पर्वत स्थित है । इनमें अनेक नदियाँ और पीपल का वृक्ष बताया गया है महर्षि गण ! जम्बू द्वीप में स्थित उस जम्बू नामक वृक्ष के फल जो इस प्रद्वीप के नाम करण में मूल कारण हैं, विशाल गजराजों के समान लंबे चौड़े होते हैं ।१६-१७। और पर्वत के पृष्ठभाग (ऊपर) पर वे छिन्न-भिन्न होकर गिरते रहते हैं । इस प्रद्वीप में अत्यन्त मधुर रसवाली जम्बू नामक नदीं भी प्रवाहित होती है ।१८। उस द्वीप के निवासी गण उस नदी के जल का पान करते हैं, जिससे वे शोक रहित, सभी भाँति के दुर्गन्ध से हीन, होकर कभी बुढ्ढे नहीं होते हैं, न उनकी इन्द्रियाँ कभी क्षीण होती हैं तथा वे सभी मनुष्य स्वच्छ मनवाले होते हैं ।१९। उस सरिता के तट में वायु द्वारा सुखाये जाने पर जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है, जिसके आभूषण बनाकर सिद्ध तथा उनकी स्त्रियाँ आभूषित होती हैं ।२०। मुनिश्रेष्ठ ! मेरु के पार्श्व में भद्रा, पूर्व पश्चिम में केतुमाल, नामक दो वर्ष हैं जिनके मध्य में इलावृत नामक प्रदेश है ।२१। विप्रेन्द्र ! उस मेरु के ऊपरी भाग में ब्रह्मा का सुन्दर स्थान निर्मित है, उसके ऊपर वासव का स्थान उनके ऊपर शंकर के, उनके ऊपर विष्णुलोक, उसके ऊपर दुर्गा के लोक और उसके ऊपर ज्योतिर्मय, निराकार एवं हिरण्यमयस्थान भक्तों के लिए बनाया गया है, एवं उसके ऊपर भगवान सूर्यदेव, जो ज्योतिर्मण्डल रूपी चक्र पर स्थित होकर

भक्तस्थानं तदूर्ध्वं च देवो हि भगवान्रविः । ज्योतिश्चक्रस्थितः शुद्धो निश्चलः परमेश्वरः ।।
राशिचक्रे च भ्रमति मेरोरुपरि सत्तमाः ।।२४
बिम्बषट्केद्रिनाभौ च रथचक्रं दिवानिशम् । वातरज्जुनिबन्धेन ध्रुवाधारे प्रतिष्ठितम् ।।२५
दिक्पालाद्या ग्रहास्तत्र दक्षिणादुत्तरायणम् । प्रतिमासं गतः पन्था ह्रासवृद्धिदिनक्षयः ।।२६
रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः । द्वादशे भगवत्सूर्ये प्रत्यहं भक्तसेवके ।।२७
कृत्वा त्रिषु त्वहोरात्रं तारामयगतं विभुम् । यामे यामे चोदयश्च देशेदेशे च शर्वरी ।।२८
दिवा चरति यः सूर्यो रात्रौ चरति चन्द्रमाः । नक्षत्राणि दिवा रात्रौ सूर्यचक्रे प्रतिष्ठितम् ।।२९
देशान्नं चावगमनं यत्र तस्मादिवाभवत् । यत्र चन्द्रक्षयो भवति यत्र सूर्यः प्रवर्तते ।।३०
रात्रिन्दिवं विजानीयाज्ज्योतिश्चक्रे प्रतिष्ठितम् । उदयास्तमनं नास्ति नक्षत्राणां विशेषतः ।।३१
यन्नक्षत्रे च यो देशः स तेषामुदयः स्मृतः । तत्रास्तो जीवशुक्राणां सूर्यादीनां च सर्वशः ।।३२
तदा काले नियोक्तव्यो भार्गवास्तादिकी क्रिया । सूर्यः सोमो बुधश्चन्द्रो भार्गवश्चैव शीघ्रकः ।।३३
दक्षिणायनमास्थाय यदा चरति रश्मिमान् । तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति ।।३४
विस्तीर्णमण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वे चरते शशी । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ।।३५
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः । चन्द्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं चन्द्रादूर्ध्वं शनैश्चरः ।।३६

शुद्ध, निश्चल एवं परमेश्वर हैं, चक्राकार राशि मण्डलों पर स्थित होकर मेरु के ऊपर चारों ओर भ्रमण किया करते हैं ।२२-२४। छह बिम्ब रूपी उस पर्वत की नाभि प्रदेश पर स्थित होकर वह रथचक्र, जो ध्रुव के आधार पर निर्भर हैं, वायु रूपी रस्सी से आबद्ध होकर रातदिन चलता रहता है ।२५। उसी पर स्थित दिक्पालादि एवं सभी ग्रहों के प्रत्येक मास में दक्षिणायन और उत्तरायण में क्रमशः आने जाने की यात्रा के दिन घटते बढ़ते रहते हैं ।२६। जिस मास में सूर्य का संक्रमण काल नहीं आता है, वह चन्द्रमास 'मलमास' के नाम से ख्यात होता है । भक्त श्रेष्ठ भगवान् भास्कर के बारहों मासों में तीनों समय (प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल) में (प्रदेशों की दूरी एवं समीपता के अनुसार) व्यापक एवं तारामय दिन-रात हुआ करता है जिस प्रहर में कहीं सूर्योदय हुआ उससे दूर के प्रदेशों में उस समय रात्रि का होना आरम्भ होता है । दिन में सूर्य तथा रात्रि में चन्द्र तथा सूर्य के चक्र में प्रतिष्ठित होकर नक्षत्र गणों के दिन रात भ्रमण हुआ करता है ।२७-२९। प्रदेशों में चन्द्र का क्षय और सूर्योदय का होना निश्चित है क्योंकि उन्हीं द्वारा देशों में अन्न और यात्राएँ सम्भव होती हैं ।३०। इस भाँति उन्हें ज्योतिश्चक्र के ऊपर रातदिन प्रतिष्ठित रहना पडता है, विशेषकर नक्षत्रों के उदय अस्त नहीं होते ।३१। जिस नक्षत्र में जो प्रदेश निश्चित है, उसी प्रदेश में उनका उदय बताया गया है और उसी प्रदेश से बृहस्पति, शुक्र, एवं सूर्य आदि ग्रहों के अस्त भी ।३२। शुक्र का उदय एवं अस्त होना समय-समय पर निश्चित है, सूर्य, सोम, बुध, तथा शुक्र, ये शीघ्रगामी (अतिचारी) भी कभी-कभी होते हैं।३३। जिस समय सूर्य दक्षिणायन में भ्रमण करते हैं उस समय समस्त ग्रहों के नीचे भाग में सूर्य समेत चला करते हैं।३४। अपने विस्तीर्ण मण्डल समेत चन्द्रमा उनके ऊपर विचरण करता है। उसी भाँति सोम के ऊपरी भाग में सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल, उसके ऊपर बुध, बुध के ऊपर शुक्र, शुक्र के ऊपर चंद्र, चन्द्र के ऊपर शनि, और शनि के ऊपर सप्तर्षियों का मण्डल

तस्माच्छनैश्चराद्र्ध्वं ततः सप्तर्षिमण्डलम् । ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः ॥३७
कालचक्रमये चक्रे सूर्यो भवति सर्वदा । राश्यर्द्धेषु गतिर्यत्र तिथीनां च तिथौ स्मृता ॥३८
स्तम्भते चरते शीघ्रं ह्रासे चापि दिनक्षयः। पादास्तं चापि शुक्रस्य महास्तं तत्र दृश्यते ॥३९
पादास्ते पक्षमात्रं स्यान्महास्ते याममात्रकम् । चक्रे पक्षार्धमासः स्यादतिचारोऽष्टवासरान् ॥४०
न गण्यते देशभेदे नक्षत्रेण च गण्यते । बालवृद्धस्तु शुक्रस्य देशस्थे वा गणस्य च ॥४१
बाल्यवार्द्धर्ये क्षत्रियस्य न गण्येते सदा बुधैः । पादादूर्ध्वं महास्तस्य वैश्यस्य द्विजसत्तमाः ॥४२
शेषार्धं भार्गवास्तस्य शूद्राणामथ गर्हितम्। अभिचारे च चक्रे च न शूद्रस्य विधीयते ॥४३
वर्जयेद्वासरान्सप्त इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे ज्योतिश्चक्रे चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कर्मानुसारव्यक्तिनिर्धारणवर्णनम्

सूत उवाच

त्रयाणामेव वर्णानां जन्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । संसृष्टा ब्राह्मणाः पूर्वं तपस्तप्त्वा द्विजोत्तमाः ॥१

घूमता फिरता है एवं सातों ऋषियों के ऊपर ध्रुव की स्थिति की गयी है ।३५-३७। इस प्रकार काल-चक्र के ऊपर सूर्य सदैव स्थित रहते हैं, उसी रथ पर स्थित रहने के नाते सूर्य एवं तिथियों को राशियों के अर्ध भाग में भी अपनी उपस्थिति करनी पड़ती है तिथियों द्वारा सूर्य कहीं स्तम्भित कहीं शीघ्रचारी होते है और उसके ह्रास होने पर दिनक्षय होना निश्चित बताया गया है शुक्र का भी (कमलरूपी चक्रपरस्थित होने के नाते) पादास्त होना कहा गया है एवं कहीं उनका महास्त भी देखा जाता है । पक्षमात्र का नाम पादास्त, याम (प्रहर) मात्र को महास्त, एवं पक्षार्ध (आठ दिनों) का अतिचार नाम बताया गया है ।३८-४०। तथा शुक्र गण के बाल अथवा वृद्ध होने की गणना देश-भेद के द्वारा न होकर एक मात्र नक्षत्र द्वारा की जाती है ।४१। द्विजसत्तम ! क्षत्रिय के बाल अथवा वृद्ध होने की गणना बुध लोग कभी नहीं करते हैं । किन्तु महास्त वैश्य के पाद से ऊपर की गणना होती है उनका शेषार्ध भार्गव (शुक्र) के अस्त का समय है, वही शूद्रों के लिए निंदित है । अभिचार और चक्र में शूद्र के लिए विधान नहीं बताया गया है। अतः अथर्वण वेद की श्रुति इसी बात की पुष्टि करती है कि सातों दिनों के त्याग अवश्य करने चाहिए।४२-४४

श्री भविष्य महापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में ज्योतिश्चक्र वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त।४।

अध्याय ५

कर्मानुसार व्यक्तिनिर्धारण का वर्णन

सूत बोले—उत्तमद्विजगण ! तीनों वर्णों के स्वामी ब्राह्मण हैं, यह उनका जन्म सिद्ध अधिकार है, क्योंकि ब्रह्मा ने तपश्चर्या करके सर्वप्रथम ब्राह्मणों का सर्जन किया है ।१। उसी भाँति सभी हव्य को

हव्यानामिह कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये । अश्नन्ति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः ।।२
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः । जन्मना चोत्तमोऽयं च सर्वार्चा ब्राह्मणोऽर्हति ।।३
स्वकीयं ब्राह्मणो भुङ्क्ते विदधाति द्विजोत्तमाः । त्रयाणामिह वर्णानां भावभावाय वै द्विजः ।।४
भवेद्विप्रो न सन्देहस्तुष्टो भावाय वै भवेत् । अभावाय भवेत्क्रुद्धस्तस्मात्पूज्यः सदा हि सः ।।५
गर्भाधानादयश्चेह संस्कारा यस्य सत्तमाः । चत्वारिंशत्तथा चाष्टौ निर्वृत्ताः शास्त्रतो द्विजाः ।।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वेन संयुतः ।।६
संस्कारपूतः प्रथमो वेदपूतो द्वितीयकः । विद्यापूतस्तृतीयः स्यात्तीर्थपूतस्त्वनन्तरम् ।।७
क्षेत्रपूतं च विज्ञाय विपूतं पूजयेद्द्विजाः । स्वर्गापवर्गफलदमन्यथा श्रमतामियात् ।।८
पूतानां परमः पूतो गुरूणां परमो गुरुः । सर्वसत्त्वान्वितो विप्रो निर्मितो ब्रह्मणा पुरा ।।९
पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्वर्गं भुञ्जन्ति चाक्षयम्। मनुष्याश्चापि देवत्वं स्वं स्वं राज्यं गतेन सः ।।१०
यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य विष्णुः प्रसीदति। तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ।।११
यस्माद्विष्णुमुखाद्विप्रः समुद्भूतः पुरा द्विजाः । वेदास्तत्रैव सञ्जाताः सृष्टिसंहारहेतवः ।।१२
तस्माद्विप्रमुखे वेदाश्चार्पिताः पुरुषेण हि । पूजार्थं ब्रह्मलोकानां सर्वज्ञानार्थतो ध्रुवम् ।।१३
पितृयज्ञविवाहेषु वह्निकार्येषु शान्तिषु । प्रशस्ता ब्राह्मणा नित्यं सर्वस्वस्त्ययनेषु च ।।१४

आदि की सुरक्षा करना एक मात्र ब्राह्मणों का ही कर्तव्य है क्योंकि देवगण ब्राह्मण के मुख द्वारा ही हव्यों के भक्षण करते हैं। और पितर लोग कव्यों के। इसलिए उनसे बढ़कर कोई नहीं है। ब्राह्मण जन्म से ही सर्वप्रधान है, अतः सभी भाँति की अर्चा के योग्य हैं।२-३। द्विजोत्तम ! ब्राह्मण सर्वत्र अपनी ही वस्तु का भक्षण करता है और उसी का पालन पोषण भी। तीनों जातियों की वृद्धि एवं नाश के लिए ब्राह्मण की रचना हुई है। भली भाँति सन्तुष्ट होने पर ब्राह्मण उनकी वृद्धि करता है इसमें संदेह नहीं, तथा क्रुद्ध होने पर उनके सर्वनाश का मूल कारण भी होता है, इसलिए ब्राह्मण सदैव उनके लिए पूज्य है।४-५। द्विजः जिस ब्राह्मण के गर्भाधानादि संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं तथा वह शास्त्र के अड़तालीस प्रकार के नियमों से निवृत्त हो गया है, अतः ब्राह्मणत्व प्रधान होने के नाते उसे ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।६। प्रथम संस्कार द्वारा पवित्र, दूसरे वेदाध्ययन द्वारा पूत, तीसरी विद्याद्वारा पूत, पश्चात् तीर्थ-यात्रादि से पूत एवं क्षेत्रपूत (पवित्र क्षेत्र से उत्पन्न), ऐसे विशिष्ट पूत ब्राह्मणों की पूजा अवश्य करनी चाहिए। इससे पूजने वाले को स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अन्यथा (इनकी पूजा न करने से) श्रम व्यर्थ हो जाता है।७-८। सभी पवित्रों में परम पवित्र, गुरुओं के परम गुरु एवं सभी प्रकार के सत्त्व समेत ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ही उत्पन्न किया है।९। देवगण ब्राह्मणों की अर्चा के द्वारा ही स्वर्ग का अक्षय उपभोग प्राप्त किये हैं और मनुष्य भी अपने-अपने राज्य की प्राप्ति द्वारा देवत्व की प्राप्ति करते रहते हैं।१०। जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसके ऊपर विष्णु निश्चित प्रसन्न होते हैं, इसलिए ब्राह्मण की पूजा करते समय विष्णु उसी समय प्रसन्न हो जाते हैं।११। क्योंकि जिस विष्णु के मुख द्वारा सर्वप्रथम ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, उसी द्वारा सर्जन एवं नाश के हेतु समस्त वेदों की भी उपलब्धि बतायी गयी है।१२। इसीलिए पुरुषोत्तम भगवान् ने निश्चित सभी लोगों के ज्ञानार्थ एवं ब्रह्मलोक के पूजन के लिए समस्त वेदों को ब्राह्मण के मुख में समर्पित कर दिया।१३। पितृ कर्म, यज्ञ, विवाह, हवन, शांति तथा सभी भाँति

देवा भुञ्जन्ति हव्यानि बलिं प्रेतादयोऽसुराः । पितरो हव्यकव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम् ॥१५
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च ये दद्याद्यज्ञकर्मसु । दानं होमं बलिं चैव विना विप्रेण निष्फलम् ॥१६
विना विप्रं च यो धर्मः प्रयासफलमात्रकः । भुञ्जते चासुरास्तत्र प्रेता भूताश्च राक्षसाः ॥१७
तस्माद्ब्राह्मणमाहूय तस्य पूजां च कारयेत् । काले देशे च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् ॥१८
श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवादनम् । दीर्घायुस्तस्य वाक्येन चिरञ्जीवी भवेन्नरः ॥१९
अनभिवादिनां विप्रे द्वेषादश्रद्धयापि च । आयुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूमिनाशश्च दुर्गतिः ॥२०
आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिवृद्धिर्विद्याधनस्य च । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥२१

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥२२

षड्विंशतिदोषमाहुर्नरा नरकभीरवः । विमुच्यैव वसेत्तीर्थे ग्रामे वा पत्तने वने ॥२३
ते स्वर्गे पितृलोके च ब्रह्मलोकेष्ववस्थिताः ॥२४
अन्यथा न वसेद्ग्रामस्तस्मात्स्तेयो न पालयेत् । अधर्मो विषमश्चैव पशुश्च पिशुनस्तथा ॥२५
पापिष्ठो नष्टकष्टौ च रुष्टो दुष्टश्च पुष्टकः । हृष्टः कुण्ठश्च[1] अन्धश्च काणश्चैव तथापरः ॥२६

के कल्याणार्थ कार्यों में ब्राह्मण ही प्रशस्त बताये गये हैं । यही निश्चित है कि ब्राह्मणों के मुख द्वारा ही देवगण हव्य प्रेतादि असुर गण बलि, एवं पितर लोग हव्यों के भक्षण करते हैं ।१४-१५। देवताओं एवं पितरों के उद्देश्य से यज्ञों में दान, हवन, तथा बलि जो कुछ बिना ब्राह्मण के किया जाता है, वह सब निष्फल होता है ।१६। बिना ब्राह्मण के जो भी धर्म-कार्य किया जाता है, उसके केवल परिश्रम मात्र करना ही फल बताया गया है, क्योंकि उस प्रदत्त वस्तु का ग्रहण एवं भोजन असुर, प्रेत, भूत, एवं राक्षस ही करते हैं ।१७। इसलिए (सभी छोटे-बड़े कार्यों में) ब्राह्मण को बुलाकर उसकी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि देश, काल, एवं पात्र को दी गयी वस्तु कोटिलक्ष फलदायी होती है ।१८। ब्राह्मण को देखते ही श्रद्धालु होकर अभिवादन करना चाहिए, क्योंकि आशीर्वाद के रूप में उसके 'दीर्घायु' हो कहने पर वह मनुष्य चिरजीवन प्राप्त करता है ।१९। जो मनुष्य द्वेष के कारण श्रद्धाहीन होने के नाते ब्राह्मणों का अभिवादन नहीं करते हैं, उन मनुष्यों की आयु क्षीण हो जाती है, और भूमिनाश एवं दुर्गति भी होती है ।२०। श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करने से आयु, यश, विद्या एवं धन की अत्यन्त वृद्धि होती है, इसमें संदेह नहीं ।२१। जिनके घरों में ब्राह्मण चरण के प्रक्षालन करने से उत्पन्न कीचड़, वेद-शास्त्रों के गर्जन (ऊँचे स्वर से पाठ), एवं स्वाहा, स्वधा तथा स्वस्ति के उच्चारण नहीं होते हैं, वे श्मशानों के समान बताये गये हैं ।२२। नरक के भीरु मनुष्यों के लिए छब्बीस दोषों से मुक्त रहने के लिए बताया गया है, उनके त्याग पूर्वक तीर्थ, ग्राम, छोटे छोटे गाँव (पुरवा) अथवा वन में कहीं भी निवास करने वाले ही मनुष्य स्वर्ग, पितृलोक और ब्रह्मलोकों में अवस्थित हैं । अन्यथा कहीं भी निवास करना उचित नहीं है जिससे कि चोरों का पालन भी न हो । अधर्म, विषम, पशु, पिशुन, (चुगुली), पाप कर्म, नष्ट, कष्ट एवं रुष्ट होना, दुष्ट, पुष्टक (पालन करना), हृष्ट, कुबड़ापन, अन्धा, काना, उग्रस्वभाव, खण्ड, वक्ता, दिये गये का

---

१. कुब्जः ।

चण्डः खण्डश्च वक्ता च दत्तस्यापहरस्तथा । नीचः खलश्च वाचालः कदर्यश्चपलस्तथा ।।२७
मलीमसश्च ते दोषाः षड्विंशतिरमी मताः । एतेषां चापि विप्रेन्द्राः पञ्चाशीतिर्निगद्यते ।।२८
शृणुध्वं द्विजशार्दूलाः शास्त्रेऽस्मिन्ब्रुवतः क्रमात् । अधमोऽत्र त्रिधा विद्याद्विषमः स्याद्द्विधोचितः ।।२९
पशुश्चतुर्विधश्चैव कृपणोऽपि हि वै द्विधा । द्विधाथापि च पापिष्ठो नष्टः सप्तविधः स्मृतः ।।३०
कष्टः स्यात्पञ्चधा ज्ञेयो रुष्टोऽपि स्याद्द्विधा द्विजाः । दुष्टः स्यात्षड्विधो ज्ञेयः पुष्टश्चैव भवेद् द्विधा ।।३१
हृष्टश्चाष्टविधः प्रोक्तः कुण्ठश्चैव त्रिधोदितः । अन्धः काणश्च तौ द्वौ द्वौ स्याद्वै च सगुणोऽगुणः ।।३२
द्वौ चण्डौ चपलश्चैकाऽवण्डचण्डौ द्विगुर्भवेत् । दण्डपण्डौ तथा ज्ञेयौ खलनीचौ चतुर्द्वयम् ।।३३
वाचालश्च कदर्यश्च क्रमात्त्रिभिरुदाहृतः । कदर्यश्चपलश्चैव तथा ज्ञेयो मलीमसः ।।३४
द्वावेकौ चतुरश्चैव स्तेयी चैकविधो भवेत् । पृथग्लक्षणमेतेषां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ।।३५
सम्यग्यस्य परिज्ञानं नरो देवत्वमाप्नुयात् । उपानच्छत्रधारी च गुरुदेवाग्रतश्चरन् ।।३६
उच्चासनं गुरोरग्रे तीर्थयात्रां करोति यः । यानमारुह्य विप्रेन्द्राः सोप्येकत्राधमो मतः ।।३७
निमज्ज्य तीर्थे विधिवद्ग्राम्यधर्मेण वर्तयन् । द्वितीयश्चाधमः प्रोक्तो निन्दितः परिकीर्तितः ।।३८
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा हृदि हालाहलं विषम् । वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्द्वावेतौ विषमौ स्मृतौ ।।३९
मोक्षचिन्तामतिक्रम्य योऽन्यचिन्तापरिश्रमः । हरिसेवाविहीनो यः स पशुर्योनितः पशुः ।।४०
प्रयागे विद्यमानेऽपि योऽन्यत्र स्नानमाचरेत् । दृष्टं देवं परित्यज्य अदृष्टं भजते तु यः ।।४१

अपहरण, नीच, खल, वाचाल (अधिक बोलने वाला), कायर, चपल और अज्ञान, यही छब्बीस दोष बताये गये है, (नरक भीरुओं को इन्हीं से बचना चाहिए) । विप्रेन्द्र ! इनके पचासी भेद भी बताये गये हैं, द्विजशार्दूल ! शास्त्र में उनके वर्णन किये हैं, मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! तीन प्रकार के अधम, दो भाँति के विषम, चार प्रकार के पशु एवं कृपण (कायर) के दो भेद, पापिष्ठ के दो भेद, नष्ट के सात भेद ।२३-३०। कष्ट के पाँच भेद तथा रुष्ट के दो भेद होते हैं, उसी प्रकार दुष्टों के छह भेद, पुष्ट के दो भेद, हृष्ट के आठ भेद, कुण्ठ के तीन भेद एवं अन्धे और काने के सगुण, और निर्गुण के भेद से दो-दो भेद होते हैं । चण्ड के दो, चपल के एक, चण्ड के तीन, दण्ड, खण्ड के भी दो तथा खल और नीच के आठ आठ भेद बताये गये हैं । वाचाल तथा कायर के तीन-तीन भेद एवं कायर, चपल, मलीमस (अज्ञानी) के क्रमशः दो, चार, स्तेयी (चोरी) के लक्षण कहे गये हैं—द्विजसत्तम ! इनके लक्षणों को जिनके ज्ञान होने से मनुष्य देव हो जाता है पृथक्-पृथक् मैं बता रहा हूँ, सुनो ! विप्रेन्द्र ! जूते और छत्र धारण कर गुरु एवं देवताओं के सामने चलने वाला, गुरु के सम्मुख ऊँचे, आसन पर बैठने वाला, तथा सवारी पर बैठ कर तीर्थयात्रा करने वाला प्रथम प्रकार का अधम बताया गया हैं ।३१-३७। विधान पूर्वक तीर्थ में स्नान करके पुनः ग्राम्य धर्म (पशु की भाँति सभी कर्म) करने वाला वह निंदित पुरुष दूसरे प्रकार का अधम बताया गया है ।३८। हृदय में हालाहल विष रख कर मधुर एवं आकर्षक वाणी बोलने वाले, तथा जो कहते हैं कुछ करते हैं कुछ इस प्रकार दो भाँति का विषम कहा गया है ।३९। मोक्ष की चिन्ता न कर जो अन्य बातों के लिए ही चिन्ता एवं उपाय आदि करते हैं तथा हरि सेवा से वञ्चित हैं वे पशु योनि वाले से भी प्रथम पशु हैं ।४०। प्रयाग के विद्यमान होते हुए भी जो अन्यत्र स्नान तथा प्रत्यक्ष देव के त्यागपूर्वक न दिखायी पड़ने

आयुषस्तु क्षयार्थाय शास्त्रेयमृषिसम्मतः। योगाभ्यासं ततो हित्वा तृतीयश्चाधमः पशुः ॥४२
बहूनि पुस्तकानीह शास्त्राणि विविधानि च। तस्य सारं न जानाति स एव जम्बुकः पशुः ॥४३
बलेनच्छलछद्मेन[1] उपायेन प्रबंधनम्। सोऽपि स्यात्पिशुनः ख्यातः प्रणयाद्वा द्वितीयकः ॥४४
मधुरान्नं प्रतिष्ठाप्य दैवे पित्र्ये च कर्मणि। म्लानं चापि च तिक्तान्नं यः प्रयच्छति दुर्मतिः ॥४५
कृपणः स तु विज्ञेयो न स्वर्गी न मोक्षभाक्। कुदाता च मुदा हीनः सक्रोधस्तु यजेत यः ॥४६
स एव कृपणः ख्यातः सर्वधर्मबहिष्कृतः। अदोषेण शुभत्यागी शुभकार्योपविक्रयी ॥४७
पितृमातृगुरुत्यागी शौचाचारविवर्जितः। पित्रोरग्रे समश्नाति स पापिष्ठतमः स्मृतः ॥४८
जीवत्पितृपरित्यक्तं सुतं सेवन्न वा क्वचित्। द्वितीयस्तु स पापिष्ठो होमलोपी तृतीयकः ॥४९
साध्वाचारं च प्रच्छाद्य सेवनं चापि दर्शयेत्। स नष्ट इति विज्ञेयः क्रयक्रीतं च मैथुनम् ॥५०
जीवेद्देवलवृत्तिर्यः भार्याविपणजीवकः। कन्याशुल्केन जीवेद्वा स्त्रीधनेन च वा क्वचित् ॥५१
षडेव नष्टाः शास्त्रे च न स्वर्गमोक्षभागिनः। सदा क्रुद्धं मनो यस्य हीनं दृष्ट्वा प्रकोपवान् ॥५२
भ्रुकुटीकुटिलः क्रुद्धो रुष्टः पञ्चविधोदितः। अकार्ये भ्रमते नित्यं धर्मार्थे न व्यवस्थितः ॥५३

वाले देव की आराधना करता है, वह दूसरे प्रकार का प्रथम पशु है। ऋषियों द्वारा निश्चित एवं शास्त्रीय योगाभ्यास के त्याग करने वाले तीसरे प्रकार के अधम पशु हैं।४१-४२। सभी भाँति की पुस्तकें एवं सभी शास्त्रों को अपने यहाँ रखकर उसके मर्म को जानने वाला जम्बूक पशु बताया गया है।४३। जो बलपूर्वक अथवा छल-कपट के उपायों द्वारा किसी को बंधन में डाल देता है, उसे पिशुन (चुगल) कहते हैं, और प्रणय द्वारा वही कार्य करने वाला भी दूसरे प्रकार का चुगुल कहा गया है।४४। देवकार्य अथवा पितृ-कार्यों में जो मधुर भक्ष्य पदार्थों को अलग रख कर रूखी-सूखी और कड़वी वस्तु भोजनार्थ प्रदान करता है, ऐसे दुष्ट को स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं होती है, उसे कृपण बताया गया है। म्लान मुख होकर जो कुत्सित वस्तुओं का दान करने, एवं क्रुद्ध होकर हवन पूजन करने वाले को कृपण कहा गया है, वह सभी धर्मों से बहिष्कृत है। दोषहीन होने पर भी किसी शुभ वस्तु के त्याग, कल्याण मूर्ति के विक्रय, पिता, माता, एवं गुरु के त्याग करने वाले पवित्र आचरणहीन, तथा माता-पिता के समक्ष खाने वाले को पापिष्ठ (महान्पापी) बताया गया है।४५-४८। जीवित माता-पिता के त्याग, पुत्र का पालन न करने वाले दूसरे प्रकार के पापी, एवं हवन न करने वाला तीसरे प्रकार का पापिष्ठ (पापी) है।४९। अपने पवित्र आचार को छिपा कर सेवा करने वाले को नष्ट जानना चाहिए। क्रीत (खरीद कर) मैथुन करने, देवताओं की पूजा द्वारा जीविका निर्वाह करने, बाजार में स्त्री को बैठाकर जीवन निर्वाह करने, कन्याओं के विक्रय, और स्त्री के धन से जीवन निर्वाह करने वाले ये छह भाँति के नष्ट शास्त्र में बताये गये हैं। जो कभी भी स्वर्ग एवं मोक्ष के भागी नहीं हो सकते हैं। जिसका मन सदैव क्रुद्ध रहता है, किसी हीन (तुच्छ) को देखते ही कोप करना, भौहें टेढी रखने एवं क्रुद्ध रहने वाले ये पाँच प्रकार के रुष्ट कहे गये हैं। अकारण नित्य भ्रमण, धर्म के लिए कोई व्यवस्था न रखने, निद्रालु (अधिक सोने वाला), व्यसनी, शराबी, स्त्रीसेवी, सदैव

---

१. अदन्तत्वमार्षम्।

निद्रालुर्व्यसनासक्तो मद्यपः स्त्रीनिषेवकः । दुष्टैः सह सदालापः स दुष्टः सप्तधा स्मृतः ॥५४
एकाकी मिष्टमश्नाति वञ्चकः साधुनिंदकः । यथा सूकरः पुष्टः स्यात्तथा पुष्टः प्रकीर्तितः ॥५५
निगमागमतन्त्राणि नाध्यापयति यो द्विजः । न शृणोति च पापात्मा स दुष्ट इति चोच्यते ॥५६
श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते । एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥५७
विवादः सोदरैः सार्द्धं पित्रोरप्रियकृद्वदेत् । द्विजाधमः स विज्ञेयः स चण्डः शास्त्रनिन्दितः ॥५८
पिशुनो राजगामी च शूद्रसेवक एव च । शूद्राङ्गनागमो विप्रः स चण्डश्च द्विजाधमः ॥५९
पक्वान्नं शूद्रगेहे च यो भुङ्क्ते सकृदेव वा । पञ्चरात्रं शूद्रगेहे निवासी चण्ड उच्यते ॥६०
अष्टकुष्ठान्वितः कुष्ठी त्रिकुष्ठी शास्त्रनिन्दितः । एतैः सह सदालापः स भवेत्तत्समोऽधमः ॥६१
कीटवद्भ्रमणं यस्य कुव्यापारी कुपण्डितः । अज्ञानाच्च वदेद्धर्ममग्रवृत्तिः प्रधावति ॥६२
अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यदेशे वसेच्चिरम् । स द्विधा शूकरपशुर्निन्दितः सिद्धसम्मतः ॥६३
कपोलेन हि संयुक्तो भ्रुकुटीकुटिलाननः । नृपवद्दण्डयेद्यस्तु स दण्डः समुदाहृतः ॥६४
ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा नृपदेवस्वमेव च । धनेन तेन इतरं देवं वा ब्राह्मणानपि ॥६५
सन्तर्पयति योऽश्नाति यः प्रयच्छति वा क्वचित् । स खरश्च पशुश्रेष्ठः सर्ववेदेषु निन्दितः ॥६६
अक्षराभ्यासनिरतः पठत्येव न बुध्यते । पदशास्त्रपरित्यक्तः स पशुः स्यान्न संशयः ॥६७

दुष्टों के साथ बातचीत करने वाले ये सभी सात प्रकार के दुष्ट बताये गये हैं ।५०-५४। औरों को वञ्चित कर अकेले ही मधुर भक्ष्यों के खाने, एवं साधुओं की निंदा करने वाले को सूकर की भाँति पुष्ट बताया गया है जो द्विज, निगम-आगम एवं तंत्रों का न अध्ययन करता है और न श्रवण ही करता है, उस पापात्मा को दुष्ट जानना चाहिए । श्रुति और स्मृति यही दोनों ब्राह्मणों के नेत्र हैं—इसमें एक से हीन होने पर काना और दोनो से हीन रहने पर अंधा कहा गया है ।५५-५७। भाइयों से झगड़े, माँ बाप को कठोर वाणी कहने वाले द्विजाधम को चंड बताया है, जो शास्त्र में निंदित है ।५८। चुगुल, राजा के यहाँ जाने वाले, शूद्रों की सेवा करने वाले, शूद्रस्त्रियों के साथ मैथुन करने वाले को चंड ब्राह्मण कहा गया है ।५९। शूद्रों के घर में एक बार भी भोजन करने, और पाँच रात निवास करने वाले को भी चंड कहा गया है ।६०। आठ प्रकार के कुष्ठों के रोगी, तथा तीन प्रकार के कुष्ठों के रोगियों से सदैव बातचीत करने वाले उसी के समान अधम होते हैं ।६१। कीटों की भाँति इधर-उधर भ्रमण करने वाला, निंदित वस्तुओं का व्यापारी, मूर्ख पंडित, अज्ञानता पूर्ण धर्म की व्याख्या करने वाला, जीविका के लिए सर्वप्रथम दौड़ने वाला, अपने यहाँ के लोगों के त्याग कर जो अन्य देश में चिरकाल तक रह जाता है, वह निंदित शूकर पशु सिद्धों के समान विख्यात है ।६२-६३। जो कपोल, मुख एवं भौहें टेढ़ी कर राजा की भाँति दंड प्रदान करता है, उसे दंड कहा जाता है ।६४। जो ब्राह्मण धन, तथा राजा अथवा किसी देवता की सम्पत्ति का अपहरण कर पुनः उसे किसी अन्य देव या ब्राह्मण को समर्पित, अथवा स्वयं उसके उपभोग कर या कहीं भी प्रदान करते है, उन्हें पशु श्रेष्ठ खर (गधा) बताया गया है, जो सभी वेदों में निंदित है ।६५-६६। जो केवल अक्षराभ्यास में ही समय व्यतीत करता है, और पढ़ता है, उसको समझता नहीं, वह यह शास्त्र का त्याग करने वाला पशु है, इसमें संदेह नहीं ।६७। जो गुरु और देवताओं के सम्मुख कहते हैं कुछ, करते हैं कुछ,

वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्गुरुदेवाग्रतो यतः । स नीच इति विज्ञेयो ह्यनाचारस्तथापरः ॥६८
षड्गुणालङ्कृतेः साधोर्दोषान्मृगयते खलः । वने पुष्पफलाकीर्णे शलभः कण्टकानिव ॥६९
दैवेन च विहीनो यः कुसम्भाषां वेदत्तु यः । स वाचाल इति ख्यातो यो ह्यपत्रपतायुतः ॥७०
चाण्डालैः सह आलापः पक्षिणां पोषणे रतः । मार्जारैश्चापि सम्भुक्ते यत्कृत्यं मर्कटोदितम् ॥७१
तृणच्छेदी लोष्टमर्दी वृथा मांसाशनश्च यः । चपलः स तु विज्ञेयः परभार्यारतस्तथा ॥७२
स्नेहोद्वर्तनहीनो यो गन्धचन्दनवर्जितः । नित्यक्रिया अकुर्वाणो नित्यं स च मलीमसः ॥७३
अन्यायेन गृहं विन्देदन्यायेन गृहान्धनम्[१] । शास्त्रादन्यद्गृह्णं मन्त्रं स स्तेयी ब्रह्मघातकः ॥७४
देवपुस्तकरत्नानि[२] मणिमुक्ताश्वमेव च । गोभूमिस्वर्णहरणः स स्तेयीति निगद्यते ॥७५
देवोऽपि भावयेत्पश्चान्मानुजोऽपि न संशयः । अन्योऽन्यभावना कार्या स स्तेयी यो न भावयेत् ॥७६
गुरोः प्रसादाज्जयति पित्रोश्चापि प्रसादतः । करोति च यथार्हं च स च स्वर्गे महीयते ॥७७
न पोषयति दुष्टात्मा स स्तेयी चापरः स्मृतः ॥७८
उपकारिजनं प्राप्य न करोति परिष्क्रियाम् । स तप्तनरके शेते शोणिते च पतत्यधः ॥७९
सर्वेषां च सवर्णानां धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । पृथिवीपालको राजा धर्मचक्षुरुदाहृतः ॥८०

उन आचार हीनों को नीच जानना चाहिए ।६८। पुष्पों एवं फलों से सुशोभित वन के काँटों को खोजकर जिस प्रकार पतङ्ग निंदा करता है, उसी भाँति छहो गुणों से सुशोभित साधु-सज्जनों में दोषों के अन्वेषण दुष्ट लोग करते हैं ।६९। भाग्यहीन तथा निंदित भाषाभाषी, ऐसे निर्लज्ज को वाचाल कहा गया है ।७०। चांडालों के साथ भाषण, पक्षियों के पालन में अनुरक्त, विल्लियों के साथ भोजन करने वाले, वानरों के समान कार्य करने वाले, (अकारण) हाथ से तृण को तोड़ने वाले, मिटटी को चूर्ण करने वाले, मांसभोजी, एवं दूसरे की स्त्री से प्रेम (भोग) करने वाले, इन सबों की चपल संज्ञा है ।७१-७२। तेल, उबटन से सदैव वञ्चित रहकर गंध, एवं चन्दन का भी कभी स्पर्श तक न प्राप्त करने वाले एवं नित्यक्रिया न करने वाले को मलीमस (अस्पृश्य) कहते हैं ।७३। अन्याय से घर, स्त्री, एवं धन की प्राप्ति कर शास्त्र के अतिरिक्त मंत्र को गृह्य स्वीकार करने वाले को ब्रह्मघाती स्तेयी कहा गया है। देवताओं की (प्रतिमा), पुस्तक रत्न, मणि, मोती, अश्व, गो भूमि, तथा सुवर्ण के अपहरण करने वाले स्तेयी (चोर) कहते हैं ।७४-७५। मनुष्यों को देवों का विशिष्ट सम्मान प्रदर्शन करना चाहिए, पश्चात् मनुष्यों का भी। इस प्रकार अन्योन्य में सम्मान की भावना आवश्यक है, जो ऐसा न करे, वह स्तेयी है ।७६। गुरु, माता एवं माता पिता की कृपावश सर्वत्र विजय होती है, इस भाँति यथायोग्य (कर्म) करने वाले को स्वर्ग में सम्मान प्राप्त होता है ।७७। जो इन महानुभावों का पोषण न करे उसे भी स्तेयी जानना चाहिए ।७८। किसी उपकारी प्राणी के समागम में उसका स्वागत सत्कार न करने पर उसे तप्तनरक एवं शोणित (रक्त) वाले नरक में दुःखानुभव करना पड़ता है ।७९। समस्त जातियों के ब्राह्मण धर्मतः स्वामी तथा पृथिवी का पालन करने वाला राजा धर्मतः नेत्र बताया गया है ।८०। प्रजा पति के मुख से उत्पन्न,

---

१. दारानित्यर्थः । २. हरेदिति शेषः ।

प्रजापतेर्मुखोद्भूतो होरातन्त्रे यथोदितम् । तद्विदो गणनाभिज्ञा अन्यविप्राः प्रचक्षते ॥८१
गंगाहीनो हतो देशो विप्रहीना यथा क्रिया । होराज्ञप्तिविहीनो यो देशोऽसौ विप्लवप्लवः ॥८२
अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः । तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥८३
स्थापयेद्धर्मतो विप्रं भावयेत्कर्मवृद्धये । श्मश्रुयुक्तो द्विजः पूज्यः सूर्यो विप्रस्तु श्मश्रुलः ॥८४
प्रत्यक्प्रदर्शनात्पुण्यं त्रिदिनं कल्मषापहम् । दर्शने व्रात्यविप्रस्य सूर्यं दृष्ट्वा विशुध्यति ॥८५
न व्रात्यत्वं सूर्यविप्रे पूजयेद्यज्ञसिद्धये । ज्योतिर्वेदरयाधिकारः सूर्यविप्रस्य वै द्विजाः ॥८६
जातिभेदाश्च चत्वारो भोजकः कथकस्तथा । शिवविप्रः सूर्यविप्रश्चतुर्थः परिपठ्यते ॥८७
कथको मध्यमस्तेषां सूर्यविप्रस्तथोत्तमः । शिवलिङ्गार्चनरतः[1] शिवविप्रस्तु निन्दितः ॥८८
सूर्यविप्रस्य[2] विप्रस्य वैद्यस्य च नृपस्य च । प्रवासयेदक्षतेन सपुत्रपशुबान्धवः ॥
अवध्यः सर्वलोकेषु राजा राज्येन पालयेत् ॥८९
वसुभिर्वस्त्रगन्धाद्यैर्माल्यैश्च विविधैरपि । देशचक्रविदः पूज्या होराचक्रविदः पराः ॥९०

तथा होरा-तंत्र में कही गयी समस्त बातों के वेत्ता को जो अन्य ब्राह्मण है, गणक (ज्योतिषी) कहा गया है ।८१। गंगाहीन देश उसी प्रकार नष्ट है, जिस प्रकार ब्राह्मण के बिना सम्पन्न की हुई कोई क्रिया और होरा का विशिष्ट विद्वान जिस प्रदेश में नहीं है, वह विप्लवों से सदैव आच्छन्न रहता है ।८२। जिस प्रकार बिना दीपक की रात्रि, एवं सूर्य हीन आकाश सुशोभित नहीं होता, उसी भाँति संवत्सर (वर्ष) हीन राजा भी मार्ग में अन्ध के समान इधर उधर भटकता रहता है ।८३। धर्मतः ब्राह्मणों की स्थिति करके अपने कर्म के वृद्धयर्थ उन्हें सम्मान प्रदर्शित करे, श्मश्रु (दाढ़ी) युक्त द्विज की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि दाढ़ी युक्त ही ब्राह्मण सूर्य का स्वरूप बताया गया है ।८४। दिन के अवसान समय में उनके दर्शन मात्र से पुण्य होता है, यदि वैसा ही दर्शन तीन दिन तक होता रहे तो उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । व्रात्य (जाति च्युत अथवा समयपर यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो) ऐसे ब्राह्मण के दर्शन हो जाने में सूर्य के देखने ही पर वह विशुद्ध होता है ।८५। सूर्य-विप्र (दाढ़ी वाला ब्राह्मण) कभी पतित नही होता है, यज्ञ की सफलता के लिए उसकी पूजा अवश्य करनी चाहिए । द्विजवृन्द ! सूर्य-विप्र ही ज्योतिष् शास्त्र, के अधिकारी कहे गये हैं ।८६। भोजक, कथक, शिव विप्र, और सूर्यविप्र, यही चार प्रकार के उनमें जाति भेद भी बताये गये हैं ।८७। इनमें कथक मध्यम, सूर्य विप्र सर्वश्रेष्ठ एवं शिवलिंग की अर्चा में अनुरक्त होने के नाते शिव-विप्र निंदित कहा गया है ।८८। सूर्य-विप्र, ब्राह्मण, वैद्य, एवं राजा की विदेश यात्रा में अक्षत द्वारा मांगलिक पूजा होनी चाहिए । तथा वहाँ के राजा का सहयोग इस प्रकार प्राप्त होना चाहिए जिससे उन्हें किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न करना पड़े । उनके पुत्र, पशु और बन्धु गण सभी समस्त लोकों में अवध्य है, तथा राजा अपने राज्य द्वारा उनका पालन पोषण करता रहे ।८९। धन, वस्त्र, गंध, माल्य आदि अनेक भाँति के उपकरणों द्वारा देश चक्र वेत्ता (समस्त देशों के भली भाँति ज्ञाता), की पूजा करनी चाहिए, होरा चक्र के विद्वान् की पूजा तो परमावश्यक है, एवं सूर्य-चक्र वेत्ता की भी अवहेलना किसी

---

१. जीविकार्यै इति शेषः । २. शेषषष्ठी ।

सूर्यचक्रविदः पूज्या नावमन्येत्कथञ्चन । सिद्धवृद्धिं च धनर्द्धिं च य इच्छेदायुषा समम् ॥
गणविप्रसमः पूज्यो दैवज्ञः समुदाहृतः ॥९१
जाते बाले निरूप्ये च लग्नग्रहनिरूपणम् । संस्थानं सूर्यविप्रो यः सूर्यविप्रस्य सत्तमाः ॥
द्विमात्रिका समभ्यस्य सर्ववेदफलं लभेत् ॥९२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

गुरुवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्णामपि वर्णानां नान्यो बन्धुः प्रचक्षते । ऋते पितुर्द्विजश्रेष्ठा इतीयं नैगमी स्मृतिः ॥१
त्रयोऽपि गुरवः श्रेष्ठास्ताभ्यां माता परो गुरुः । ये सोदरा ज्येष्ठश्रेष्ठा उत्तरोत्तरतो गुरुः ॥२
द्वादश्यां तु अमावस्यामथ वा रविसङ्क्रमे । वासांसि दक्षिणा देया मणिमुक्ता यथारुचि ॥३
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । प्राप्ते चापरपक्षे तु भोजयेच्चापि शक्तितः ॥४
पश्चात्प्रवन्दयेत्पादौ मन्त्रेणानेन सत्तमाः । विधिवद्वन्दनादेव सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥५
स्वर्गापवर्गप्रदमेकमाद्यं ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि ।

प्रकार न करनी चाहिए । अपने जीवन के साथ ही जो सिद्धि, ऋद्धि, एवं धन वृद्धि के इच्छुक हैं, उन्हें गणविप्र के समान ही दैवज्ञ (ज्योतिषी) की अर्चा अवश्य करनी चाहिए ।९०-९१। श्रेष्ठगण ! सूर्य-विप्र के गृहपुत्र उत्पन्न होने पर किसी सूर्य-विप्र को उचित है कि उसके लग्न, ग्रह, एवं लक्षणों की व्याख्या करे, द्विमात्रिक के अभ्यास (अध्ययन) करने से समस्त वेदाध्ययन के फलों की प्राप्ति होती है ।९२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

गुरु का वर्णन

सूत बोले—द्विजश्रेष्ठ ! पिता के अतिरिक्त चारो वर्णों का अन्य कोई बंधु नहीं बताया गया है, यह निगमों का सम्मत है । तीनों भाँति के गुरुगण श्रेष्ठ बताये गये है, किन्तु उन दोनों में माता सर्वप्रधान गुरु हैं, सहोदरों (भाइयों) में अपने से ज्येष्ठ सभी क्रमशः गुरु एवं श्रेष्ठ कहे गये हैं ।१-२। द्वादशी, अमावस्या, एवं सूर्य की संक्रान्ति के समय वस्त्रों के साथ मनोनुकूल मणि मुक्ता की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए ।३। (दोनों) अयन, विषुव, चन्द्र, सूर्य ग्रहण, और श्राद्ध काल में शक्त्यनुसार उन्हें भोजन कराना चाहिए ।४। श्रेष्ठवृन्द ! उसके पश्चात् मंत्रोच्चारण पूर्वक उनका पादाभिवंदन करे, क्योंकि विधान पूर्वक उनकी वंदना करने से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं ।५। मैं उस पिता को नमस्कार करता हूँ, जो स्वर्ग, मोक्ष का प्रदायक, सर्वश्रेष्ठ, सभी के आदि में स्थित एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, जिसके ही द्वारा

यतो जगत्पश्यति चारुरूपं तं तर्पयामः सलिलैस्तिलैर्युतैः ।।६
पितरो जनयन्तीह पितरः पालयन्ति च । पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्यं नमोनमः ।।७
यस्माद्विजयतो लोकस्तस्माद्धर्मः प्रवर्तते । नमस्तुभ्यं पितः साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ।।८
या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः । नमामि जननीं देवीं परां प्रकृतिरूपिणीम् ।।९
कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे । त्वत्प्रसादाज्जगद्दृष्टं मातर्नित्यं नमोऽस्तु ते ।।१०
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः । वसन्ति यत्र तां नौमि मातरं भूतिहेतवे ।।११
गुरुदेवप्रसादेन लब्धा विद्या यशस्करी । शिवरूप नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे ।।१२
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् । आधारः सर्वभूतानामग्रजन्मन्नमोऽस्तु ते ।।१३
ब्राह्मणो जगतां तीर्थं पावनं परमं यतः । भूदेव हर मे पापं विष्णुरूपिन्नमोऽस्तु ते ।।१४
पितामहं च प्रणमेत्सर्वादौ मातरं गुरुम् । मातामहं च तदनु आचार्यमथ ऋत्विजम् ।।१५
मातृमन्त्रैश्च प्रथमं प्रणमेद्भक्तिभावतः । यथाग्रजस्तथा ज्येष्ठः पितृव्योऽपि द्विजोत्तमाः ।।१६
दृष्टादृष्टे च स गुरुर्गुरुर्माता तथा गुरुः । दृष्टादृष्टस्तृतीयः स्यात्सूर्योऽग्निश्चन्द्र एव च ।।१७
मन्त्रदाता गुरुः ख्यातस्सप्तमः परिकीर्तितः । कभोजनगुरुः श्रेष्ठः स्वर्गापवर्गहेतुकः ।।१८
दृष्टदेवं च यो हित्वा अदृष्टं च निषेवते । पापात्मा परमः सैकस्तिर्यग्योनिं च गच्छति ।।१९

समस्त शिव का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है, सौन्दर्यपूर्ण इसी के लिए तिल-जलयुक्त का मैं तर्पण कर रहा हूँ ।६। पिता ही उत्पन्न करता है, और पालन-पोषण भी, इसलिए ब्रह्मस्वरूप उस पिता को नित्य नमस्कार है, ।७। उन्हीं द्वारा लोक में विजय प्राप्त होती है और धर्म का प्रवर्तक वहीं है, अतः हे साक्षात् ब्रह्म रूप पिता ! तुम्हें नमस्कार है ।८। जो अपने कुक्षिस्थल में रखकर सभी भाँति रक्षा करती है, प्रकृति-रूप एवं सर्वप्रथम उस जननी देवी को नमस्कार है ।९। हे माता ! अपनी कुक्षि में रखकर अत्यन्त दुःखों के अनुभव करती हुई आपने मुझे सुरक्षित रखा है, और आप की ही प्रसन्नता से मैं संसार का दर्शन कर रहा हूँ, इसलिए तुम्हें नित्य नमस्कार है । इस भूतल के समस्त तीर्थ, तथा समस्त समुद्र जिनके अंगों में निवास करते हैं, अपने ऐश्वर्यार्थ मैं उस माता को नमस्कार करता हूँ ।१०-११। गुरुदेव के प्रसाद से मैंने उस प्रसिद्ध विद्या की प्राप्ति कीहै, अतः संसारसागर के पार होने के लिए हे कल्याण रूप ! आपको नमस्कार है ।१२। वेद, वेदांग, एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा समस्त प्राणियों के आधार रूप उस अग्रजन्मा (ब्राह्मण) को नमस्कार है ।१३। भूदेव ! मेरे पापोंका अपहरण कीजिए, क्योंकि ब्राह्मण ही संसार में परम पवित्र तीर्थ रूप है, हे विष्णुरूप वाले ! तुम्हें नमस्कार है ।१४। सर्वप्रथम पितामह, गुरुरूपमाता, मातामह, आचार्य, और ऋत्विजों को क्रमशः अभिवादन करना चाहिए ।१५। द्विजोत्तम ! भक्तिपूर्वक माता के मंत्रों द्वारा प्रथम माता की वंदना करके पश्चात् ज्येष्ठ माता के समान पितृव्य (चाचा) की भी वंदना करे, क्योंकि वे भी उसी भाँति ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हैं । गुरु के प्रत्यक्ष दर्शन होने पर गुरु का रूप है ही, किन्तु उनके परोक्ष रहने पर माता गुरु रूप है । उसी दृष्ट एवं अदृष्ट की भाँति सूर्य, अग्नि, तथा चन्द्रमा भी तीसरे गुरू हैं ।१६-१७। मंत्र देने वाला ब्राह्मण सातवाँ प्रख्यात गुरु बताया गया है, तपस्वी गुरु द्वारा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः वह सर्वश्रेष्ठ है ।१८। प्रत्यक्ष देवता के त्याग कर अदृष्ट देव की उपासना करने

यथा पिता ज्येष्ठपिता कनीयांश्च तथा द्विजाः । ज्येष्ठो भ्राता पितृतुल्यो मान्यः सत्कारभाग्यतः ।।२०
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माता स्यात्पृथिवीमूर्तिर्भ्रातरो मूर्तिरात्मनः ।।२१
पिता मेरुर्वशिष्ठः स्याद्धर्ममूर्तिः सनातनः । स चापि दृष्टदेवः स्यात्तदाज्ञां परिपालयेत् ।।२२
पितामहं च पित्रग्रे हव्यकव्यैश्च तर्पयेत् । स याति ब्रह्मणः स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः ।।२३
तस्य पादोदकस्नानाद्गङ्गा नार्हति केवलम् । तथावलोकनात्तस्य ज्योतिर्लिङ्गशतैश्च किम् ।।२४
द्वात्रिंशत्कुण्डकशिलास्पर्शने यादृशं फलम् । तादृशं कोटिगुणितं पितामहप्रदक्षिणे ।।२५
शतमातृवरिष्ठाश्च पितामह्याश्च पोषणे । गुणास्तद्दर्शने विप्राः संसारे न पुनर्विशेत् ।।२६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे गुरुगुणवर्णनं नाम षष्ठोध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

गुरुवर्णनम्

सूत उवाच

समाख्यामीह विप्रेन्द्रा इतिहासपुरातनम् । श्रवणेऽपि च धर्मात्मञ्छ्रूयतां यन्मया पुरा ।।१

वाला महान् पापी होता है, एवं उसे पक्षी के यहाँ जन्म लेना पड़ता है ।१९। द्विज ! पिता की भाँति पिता के बड़े भ्राता (ताऊ) एवं छोटे भ्राता तथा अपना ज्येष्ठ भ्राता ये सभी पिता के समान ही सत्कार के योग्य होते हैं ।२०। आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति, पिता प्रजापति का स्वरूप, माता पृथिवी का स्वरूप, और मातृगण आत्मीय स्वरूप हैं ।२१। पिता, मेरु, वशिष्ठ, धर्मस्वरूप, सनातन, एवं प्रत्यक्ष देव भी हैं, अतः उनकी आज्ञा सदैव शिरोधार्य तथा पालन करना चाहिए ।२२। पिता के समक्ष जो हव्य-कव्य द्वारा पितामह को तृप्त करता है, उसे ब्रह्म के उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ से कभी लौटना नहीं पड़ता ।२३। उनके पाद-प्रक्षालन वाले जल से स्नान करने पर उसकी मर्यादा गंगा से कहीं अधिक होती है, यही नहीं प्रत्युत उसके दर्शन मात्र से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल सैकड़ों ज्योतिलिङ्ग की आराधना द्वारा प्राप्त नहीं हो सकते हैं ।२४। बत्तीस कुण्डों वाली शिला के स्पर्श से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल करोड़ों गुने होकर पितामह की प्रदक्षिणा करने पर प्राप्त बताये गये हैं ।२५। पितामही सैकड़ों माताओं से श्रेष्ठ है, उसके दर्शन में वह पुण्य प्राप्त होता है, जिसके द्वारा पुनर्जन्म नहीं होता है।२६

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में गुरुवर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

गुरु-वर्णन

सूत बोले—विप्रेन्द्र ! धर्मात्मन् ! मैंने प्राचीन इतिहास एवं पुराण-श्रवण के विधान को पहले समय में जिस भाँति सुना है, वैसा ही वर्णन कर रहा हूँ ।१। पूँछने पर महातेजा एवं प्रभु भगवान् विरिञ्च

पृष्टोऽवोचन्महातेजा विरिञ्चो भगवान्प्रभुः। हंत ते कथयाम्येष पुराणश्रवणे विधिम् ॥२
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्याशतं च यत् ॥३
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा॥४
प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः । महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां पठतां नृणाम् ॥५
शुक्लवस्त्रधरश्चैव चैलाजिनकुशोत्तरः। प्रदक्षिणत्रयं कुर्याद्या तस्मिन्देवता गुरौ ॥६
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं स्वासनं भजते ततः । दिक्पतिभ्यो नमस्कृत्य ॐ काराधिष्ठितानपि ॥७
पुस्तकं धर्मशास्त्रस्य धर्माधिष्ठानशाश्वतम् । आगमानां शिवो देवतन्त्रादीनां च शारदा ॥८
जामलानां गणपतिर्डामराणां शतक्रतुः । नारायणो भारतस्य तथा रामायणस्य च ॥९
वासुदेवो भवेद्देवः सप्तानां शृणु सत्तम । आदित्यो वासुदेवश्च माधवो रामकेशवौ ॥१०
वनमाली महादेवः सप्तानां सप्तपर्वसु । विष्णुधर्मादिकानां च शिवो ज्ञेयः सनातनः ॥
अथ चादिपुराणस्य विरिञ्चिः परिकीर्तितः ॥११
शुद्धौदनं यवक्षीरं पायसं कृशरं तथा । कृशरान्नं च वा दद्यात्क्रमाद्बलिगणं विदुः ॥१२
शालिभक्तं सगोधूमं तिलाक्षतविनिश्रितम् । गव्यं च सफलं चैव देयश्चैभ्यस्त्वयं बलिः ॥१३
पृथक्पृथक्चैव कांस्ये विन्यसेद्दिक्षु मध्यतः । पठेच्चापि विधानेन स यागः षण्मयः परः ॥१४
शीतोदकं मधु क्षीरं सितेक्ष्वोश्च रसो गुडः । सगर्भश्च परो ज्ञेयः षण्मयश्चापरो बलिः॥१५
शालितण्डुलप्रस्थं तु तदर्धं वा तदर्धकम् । क्षीरेणापि च संभक्तं यवक्षीरमिदं स्मृतम् ॥१६

देव ने जो कुछ कहाथा, मैं उसी पुराण-श्रवण के विधान को बता रहा हूँ ! द्विजोत्तम ! भक्तिपूर्वक इतिहास-पुराणों के श्रवण करने से समस्त पाप यहाँ तक कि सैकड़ों ब्रह्म हत्याएँ भी नष्ट हो जाती हैं ।२-३। सायंकाल, प्रातःकाल तथा रात्रि के समय पवित्रतापूर्ण जो उसका श्रवण करता है, उसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर प्रसन्न होते हैं ।४। प्रातःकाल में भगवान्, सायंकाल में ब्रह्मा और रात्रि में सुनने अथवा पढ़ने वाले के ऊपर महादेव प्रसन्न होते हैं ।५। शुक्लवस्त्रधारणकर मृगचर्म तथा कुशों के आसन पर स्थित उस देव-गुरु की तीन प्रदक्षिणा करने के उपरान्त उस आसन पर जो अत्यन्त ही ऊँचा-नीचा न हो, स्थित होकर ओंकारपूर्वक दिक्पालों को नमस्कार करे, क्योंकि धर्मशास्त्र की पुस्तक, धर्म का सनातन अधिष्ठान रूप है। वेदों के प्रधान देव शिव, तंत्रों की शारदा देवी, जामलों के गणपति, डामरों के शतक्रतु (इन्द्र), महाभारत के नारायण, रामायण के वासुदेव, आदित्य, वासुदेव, माधव, राम, केशव, वनमाली और महादेव यही सातों पर्वों के अधीश्वर हैं, तथा उसी भाँति विष्णु धर्मादिकों के सनातन (अनश्वर) शिव एवं आदि पुराण के अधिपति विरिंचि भगवान् हैं ।६-११। शुद्धतापूर्ण बनाया गया भात, यव, क्षीर, खीर और कृशरान्न (खिचड़ी) क्रमशः इन्हीं की बलि प्रदान करनी चाहिए, तथा साठी चावल के भात, गेहूँ समेत तिल एवं अक्षत और फल सहित गाय के घी, दूध भी उन्हें प्रदान करे ।१२-१३। दिशाओं के मध्य में स्थित कांस्यपात्र में रखकर पृथक्-पृथक् बलि के निमित्त समर्पित कर विधानपूर्वक उसके पठन होने चाहिए, इसे षण्मय याग बताया गया है ।१४। शीतल जल, शहद, क्षीर, उसके सफेद रस (चीनी) गुड, इसी को षण्मय बलि कहते हैं ।१५। साठी चावल एक सेर, आधा सेर अथवा पाव भर के खीर बनाकर

क्षीरं भागाष्टकं प्राह्यं सप्तभागेन संस्थितम् । हैमन्तिकं सिताख्यं च ताण्डुलं प्रपचेच्चरुम् ॥१७
अशीतिपलमानेन सिद्धमासादयेत्ततः । भागार्धेन ददेत्पश्चान्माक्षिकं वा सितामपि ॥१८
गुडमिश्रेण यो दद्यात्सम्पर्को जायते क्वचित् । सम्पृक्तं माक्षिकेणापि दद्यादिक्षुरसं बुधः ॥
गृहीत्वा याचकः शुद्धः शृणुत द्विजसत्तमाः ॥१९
शृणुते वाधीयानो यो दद्याद्धस्ते च पुस्तकम् । समुत्थाय च गृह्णीयात्प्रणम्य विनिवेदयेत् ॥२०
पूर्वस्थः श्रावको विप्रो विख्यातस्तस्यदक्षिणे । पश्चिमाशामुखेनैव तर्जन्याङ्गुष्ठया सह ॥२१
प्रस्तरेणापि हस्तेन विन्यासः पण्डितैः सदा । इतोऽन्यथा न कर्तव्यः कृत्वा न्यासमथाप्नुयात् ॥२२
असकृद्विन्यसेद्विप्राः पावमानीं जले जपेत् । वेदान्तागमवेदान्तविधिरेष स्मृतो बुधैः ॥२३
यमदिक्संमुखे श्रोता वाचकश्चोत्तरामुखः । पुराणभारताख्यान एव वै कथितो विधिः ॥२४
वैपरीत्येन विधिना विज्ञेयो द्विजसत्तमाः । रामायणे धर्मशास्त्रे हरिवंशे च सत्तमाः ॥२५
इतोऽन्यथा यातुधानाः प्रलुम्पन्ति फलं यतः । तस्माद्विधिविधानेन शृणुयादथवा पठेत् ॥२६
श्रुत्वा प्रति पुण्यविद्यां योऽश्नीयान्मांसमेव तु । स याति गार्दभीं योनिं यदि मैथुनिनः क्वचित् ॥२७
यदि देवालये तीर्थे वाचयेच्छृणुयादथ । यस्य देवगृहे तस्य तस्य तीर्थस्य वर्णनम् ॥२८
माहात्म्यश्रवणादेव गोदानस्य फलं लभेत् । महागुरोश्च माहात्म्यं पित्रोरग्रे न च स्मरेत् ॥

बलि प्रदान करे, इसे यवक्षीर नामक बलि बताया गया है ।१६। आठवाँ भाग पृथक् रख कर दूध के शेष सात भाग में चीनी डालकर बनाये गये उस चावल के चरु को हैमन्तिक (बलि) बताया गया है । अस्सी पल (एक सेर) की खीर में आधाभाग शहद अथवा चीनी डालें, उसके प्रभाव में गुड़मिश्रित ही बनाये, विद्वानों को चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो, ऊख के रस के लिए ही प्रयत्न करें । द्विजसत्तम ! इस प्रकार याचक शुद्ध होकर (पुराण के) श्रवण करे, पुराण की पुस्तक कोई हाथ में प्रदान करना चाहे, तो उठकर उसे सादर ग्रहण कर प्रणामपूर्वक देव के सम्मुख उसका निवेदन करना चाहिए ।१७-२०। श्रवण करने वाले ब्राह्मण को पूर्वाभिमुख और उसकी दाहिनी ओर पश्चिमाभिमुख बैठकर वाचक सदैव अपनी तर्जनी और अंगूठे के द्वारा अथवा मणि एवं बहुमूल्य पत्थरों से विभूषित हाथ के द्वारा (पुराणों के भावों को) श्रोताओं को हृदयङ्गम कराये, इसके विपरीत न होने चाहिए ।२१-२२। जल में स्थित होकर पवमानी के न्यास करना आवश्यक बताया गया है, विद्वानों ने इसे ही वेदान्त विधान कहा है ।२३। श्रोता को दक्षिणाभिमुख तथा वाचक को उत्तराभिमुख होकर पुराण एवं महाभारत के श्रवण-परायण करने के विधान बताये गये हैं ।२४। द्विजसत्तम ! इसके विपरीत रामायण, धर्मशास्त्र और हरिवंश के श्रवण-परायण के विधान कहे गये हैं ।२५। इसके प्रतिकूल अनियिमित श्रवणादि करने से उसके फलों को यातुधान (राक्षस) नष्ट कर देते हैं, इसलिए विधानपूर्वक ही श्रवण-पारायण करने चाहिए ।२६। इन पुण्यविद्याओं के श्रवण करने पर भी जो मांस भोजन करता है, उसे एवं मैथुन करने वाले को गधे की शरीर धारण करनी पड़ती है ।२७। जहाँ तक सम्भव हो सके तो किसी देवालय अथवा तीर्थ में श्रवण करना चाहिए, क्योंकि किसी भी देवालय या तीर्थ में उसके वर्णनपूर्वक केवल माहात्म्य का ही श्रवण करने से गोदान के फल प्राप्त होते हैं । माता-पिता के सम्मुख महागुरु के महत्त्व की चर्चा न करनी चाहिए, प्रत्येक

पितुर्माहात्म्यं यत्पुत्रैर्वाच्यं संसदि पर्वणि ॥२९
वासुदेवाग्रतश्चापि रुद्रमाहात्म्यवर्णनम् । रुद्राग्रे वासुदेवस्य कीर्तनं पुण्यवर्धनम् ॥३०
दुर्गाग्रे शिवसूर्यस्य वैष्णवाख्यानमेव च । यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत् ॥३१
गुरोरनुज्ञया पित्रोः प्रकुर्यादभिवादनम् । अनुज्ञया तथा पित्रोर्हरेः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥३२
न विष्णुर्न च ब्रह्मा न च रुद्रः शचीपतिः । सर्ववेदेन तत्तुल्यं सर्वधर्मपरायणम् ॥३३
सर्वज्ञानमयं चैव सर्वज्ञेन च तत्समम् । तस्माद्द्विजन्मन्पित्रोर्हि सेवनाद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥३४
गुरुभ्यो वन्दनं व्यर्थं पितरं यो न तर्पयेत् । जीवन्न तर्पयेन्मुख्यं गङ्गायां मरणेऽपि च ॥
उभयोस्तर्पणं नास्ति जीवन्नपि न जीवति ॥३५
व्यर्थं भागवतं विप्रा नारसिंहविहीनकम् ॥३६
आदिपर्वणि हीने तु भारताख्यं न धारयेत् । विनाश्वमेधिकं विप्रा विना यज्ञाननं विना ॥३७
दानकर्मविहीनं च मोक्षधर्मं न धारयेत् । भारतं च दिवारोहधारणादौ वरं व्रजेत् ॥३८
वायुपुराणमश्रुत्वा शास्त्रं च यौगिकं विना । वायुहीनं देहिकुलं वृथा तस्य न धारकम् ॥३९
तथा वायुपुराणं यद्विहीनं श्रव्यमन्यकम् । यथा सुन्दरकाण्डेन आरण्यं च न धारयेत् ॥४०
लङ्कां विना चादिकाण्डं तल्लिखित्वा न धारयेत् । पाराशरं विना व्यासं याज्ञवल्क्यं विना मखम् ॥४१
दक्षं विना न शङ्खं च शङ्खहीनं बृहस्पतिम् । वह्नीयं श्रवणाद्येन न च युक्तिमथापयेत् ॥४२

पर्व के दिनों में एकचित्त मनुष्यों के समक्ष पुत्र ही अपने पिता के महत्त्व की व्याख्या करे।२८-२९। भगवान् वासुदेव के सम्मुख रुद्र माहात्म्य तथा रुद्र के समक्ष वासुदेव के माहात्म्य का वर्णन करना पुण्यवर्धक होता है।३०। दुर्गाजी के सम्मुख शिव, सूर्य एवं विष्णु के माहात्म्य का वर्णन जो करता है, उस मूढ़ को गधा होना अनिवार्य होता है।३१। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर माता-पिता, का अभिवादन तथा माता-पिता की आज्ञा प्राप्त होने पर हरि की प्रदक्षिणा अवश्य करनी चाहिए।३२। विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र एवं इन्द्र भी उनकी समता प्राप्त नहीं कर सकते, सर्वधर्मों के पारायण होने के नाते केवल वेद ही उनकी समता के योग्य है, क्योंकि वह समस्त ज्ञानमय है और वे सर्वज्ञ हैं, इसीलिए उन दोनों की समता अनुचित नहीं कही गयी है, अतः द्विजन्मन्! माता-पिता की सेवा करने से ब्रह्मा की प्राप्ति होती है। जो अपने माता-पिता के तर्पण नहीं करता है, उसकी गुरु-वन्दना व्यर्थ हो जाती है, उनके जीवित रहने पर तर्पण करना अनुचित है और गंगा में प्राणान्त होने पर भी तर्पण करना अनावश्यक है, क्योंकि जीवित के तर्पण करने पर उसके जीवित रहने पर भी वह जीवित नहीं कहा जा सकता है।३३-३५। पुराणों का श्रवण करना पुण्य बताया गया है, किन्तु भागवत-विहीन के श्रवण में नहीं। विप्रगण! नरसिंह चरित्रहीन भागवत-श्रवण भी पुण्यदायक नहीं होता है।३६। विप्रवृन्द! आदिपर्व, अश्वमेध के पर्व, यज्ञप्रमुखपर्व हीन महाभारत का श्रवण भी व्यर्थ-सा कहा गया है।३७। दान कर्म-विहीन मोक्ष धर्माचरण न करना चाहिए। स्वर्ग-प्रस्थान के समय एवं नियमों के विवेचनपूर्वक पालन करने के लिए महाभारत का श्रवण आवश्यक होता है।३८। प्राण-वायुहीन प्राणी का रहना सर्वथा असम्भव है, उसी भाँति योगशास्त्र बिना तथा वायु पुराण के श्रवण बिना (अन्य के श्रवण) व्यर्थ है।३९। जिस प्रकार सुन्दरकाण्ड के पश्चात् आरण्यकाण्ड के पारायण आदि नहीं होते उसी भाँति वायुपुराणहीन अन्य (पुराणों) के श्रवण भी।४०। आदिकाण्ड के बिना केवल लङ्काकाण्ड को लिखकर न धारण करना चाहिए, उसी भाँति पाराशर के बिना व्यास, याज्ञवल्यक्य के बिना मख (यज्ञ),

द्यावापृथिव्यौ पातालं तस्यान्तः समुदाहृतम् । पौराणिककथायुक्तपुस्तको देवपूजितः ॥६८
न शस्यः पूजनीयश्च गृहे स्थाप्येत मानवः । यो यस्मै शूद्रो विप्राय वृत्तिं दद्याच्च मानवः ॥६९
स याति ब्रह्मसदनं मणिवर्त्मादिकुट्टिमम् । न शस्यः पूजनीयश्च गृहे स्थाप्येत मानवः ॥७०
पत्राणामग्रभागे तु वेधं कुर्यात्सुवर्तुलम् । श्रवणाग्र मात्रेण तत्र पद्मं च वतुर्लम् ॥७१
संहितागमतन्त्रेषु प्रतिवेधे च सङ्कुलम् । प्रकुर्याच्चित्ततापेन ततः शक्रपुरं व्रजेत् ॥७२
मध्यं तस्य हरेदायुः पार्श्ववेधः शिवं हरेत् । युग्मवेधे जयं दद्यादेकवेधे बलिर्भवेत् ॥७३
परमं प्रकृतेर्गुह्यं स्थानं देवैर्विनिर्मितम् । पूरयेत्ताम्रलिङ्गेन अथ रैत्यमयेन वा ॥७४
अशक्तो बिल्वकाष्ठस्य तथा श्रीपर्णिकस्य च । न काष्ठस्य नवं शस्यं न लौहं योजयेत्क्वचित् ॥७५
प्रागारम्भश्लोकशतं धर्मशास्त्रस्य वै लिखेत् । संहितायां पुराणायां युग्मकल्पं तदर्धकम् ॥७६
ब्रह्मचर्येण विलिखेन्न मोहाद्ब्रह्मणः क्वचित् । तथापि चाखिलव्यासलेखनात्सन्ततिक्षयः ॥७७
अनाम्नात्वे हेमयुतां बलाकं चित्तमेव च । न लिखेत्खिलभागं च हरिवंशस्य सत्तमाः ॥७८
गारुडस्य च स्कान्दस्य न लिखेन्मध्यतन्त्रकम् । लेखनं हरिवंशस्य व्रतस्थो नियमैर्युतः ॥७९
गृहस्थो न लिखेद्ग्रन्थं लिखेच्च मथुरां विना । लेखने पारिजातस्य मत्स्यमांसाशिनं लिखेत् ॥८०

दूसरे चरण से आबद्ध होने को काम-रूप तथा आकाश, पृथिवी एवं पाताल रूप उसका मध्य भाग बताया गया है। इस पौराणिक कथाओं समेत वह पुस्तक देवों द्वारा सम्मानित होती है।६७-६८। मनुष्यों को चाहिए कि उस प्रशस्त एवं पूजनीय पुस्तक को घर में स्थापित न करें। जो शूद्र किसी ब्राह्मण के लिए जीविका प्रदान करता है, उसे मणिविभूषित मार्ग एवं कुट्टिम (भूमि के ऊपरी भाग) वाले ब्रह्ममन्दिर की प्राप्ति होती है। प्रत्येक पत्रों के अग्रभाग में सौन्दर्यपूर्ण गोलाकार वेध तथा गोलाकार के पद्म की रचना करनी चाहिए।६९-७१। संहिता, आगम (शास्त्र) एवं तन्त्रों के प्रत्येक वेधों में संतप्तचित्त द्वारा संकुल की रचना करने से इन्द्रपुर की प्राप्ति होती है।७२। (उसके) मध्य में वेधनिर्माण द्वारा आयु-क्षय, पार्श्व भाग में वेध करने से शिव (कल्याण) के अपहरण, युग्मवेधों द्वारा जय की प्राप्ति और एक वेध द्वारा बलि प्राप्ति बताया गया है।७३। प्रकृति के दैव द्वारा निर्मित उस परम गुह्य स्थान की पूर्ति ताँबे अथवा पीतल द्वारा होनी चाहिए।७४। समर्थता के कारण वेल के काष्ठ या सेमर के काष्ठ द्वारा उसकी पूर्ति करनी चाहिए, किन्तु किसी वृक्ष के नये फल अथवा लोह द्वारा उसकी पूर्ति कभी न करे।७५। धर्मशास्त्र के लिखते समय आरम्भ करने पर सौ श्लोकों के उपरान्त ही विराम करना चाहिए। इसी प्रकार प्राचीन संहिताओं के एक कल्प के पश्चात् ही विराम करें। ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक उसका लेखन-विधान बताया गया है,कभी भी मोह के आवेश में आकर उसके स्खलन न होने पाये। तथापि (नियमपूर्वक रहने पर भी) संतान-क्षय हो जाता ही है।७६-७७। सत्तम ! उसके लेखक के नाम न लिखने पर भी वही दोष बताया गया है, चंचलचित्त होकर कभी न लिखना चाहिए तथा हरिवंश का लेख कभी अधूरा न करें।७८। गरुड़ पुराण एवं स्कन्दपुराण के मध्य में स्थित तन्त्र भाग को न लिखना चाहिए। व्रत एवं नियम पालनपूर्वक ही हरिवंश का लिखना बताया गया है, गृहस्थ को ग्रन्थ-लेखन न करना चाहिए, किन्तु यदि लिखना ही चाहे, तो मथुरा का त्याग करके लिखे। पारिजात के लिखने में मत्स्य-मांस भोगी का ही उल्लेख करना

वाल्मीकिसंहितायाश्च लेखने च तथा क्वचित् । स्तोत्रमात्रं लिखेद्विप्रा अव्रती न लिखेत्क्वचित् ॥८१
अब्राह्मणेन लिखितं निष्फलं परिकीर्तितम् ॥८२
पतितैरपि पाखण्डैर्न स्त्री विलिखति क्वचित् ! दुर्विचारो दुष्टभार्यो दुर्मतिश्चापि लेखकः ॥
न लिखेद्धर्मशास्त्रं च पुराणं स्तोत्रसंहितम् ॥८३
तच्च प्राप्नुवन्कर्तव्यं सुवर्णरजतस्य च । कज्जलैर्नीलनं कुर्यान्मन्त्री निर्यासमन्त्रितैः ॥८४
जीवन्त्याश्च रसैर्युक्तैर्मणिकर्दमलोलुपैः । वङ्गुन्यान्मुख्यायुतैर्वापि पीतयोगैरथापि वा ॥८५
कृष्णे वायुप्रदं विद्यात्पीते वायुक्षयो भवेत् । रक्ते पुष्टिमवाप्नोति कृष्णे च सम्पदागमः ॥८६
इतिहासपुराणानां विलिखेद्यन्मुखाच्छृणु । वायव्यादिमुखेनैव काष्ठवेदं च संलिखेत् ॥८७
पूर्वामुखे चार्थहानिरुत्तरे च मुखे श्रियः । मरणं दक्षिणास्ये तु पश्चिमास्ये धनक्षयः ॥८८
पितृमेधे भुवः कम्पे न लिखेज्जन्मवासरे । अशौचे मृतके सूतावमायां रविसङ्क्रमे ॥८९
अत्र लेखाद्दरिद्रः स्यात्तथा पुत्रविनाशनम् । बलधर्मं क्षयं चैव तस्माद्यत्नेन वर्जयेत् ॥९०
पितृश्राद्धदिने लेखः कुलक्षयकरो भवेत् । एकरात्रं भुवः कम्पे तस्मिंल्लेखे धनक्षयः ॥९१
अशौचेऽपि दरिद्रः स्याज्जन्माहे चायुषः क्षयः । लिपिच्छन्दःपदज्ञश्च युवा धीमाञ्जितासनः ॥९२
द्रुतलेखी च तेजस्वी यो लेखयति लेखकः । असंवलितभावेन ऊर्ध्वोर्ध्वे स्यात्समाक्षरम् ॥९३

चाहिए। यदि कभी बाल्मीकि-संहिता को लिपिबद्ध करने की इच्छा हो, तो केवल स्तोत्रमात्र ही लिखना चाहिए, तथा विप्रवृन्द ! व्रतहीन होकर कभी न लिखना चाहिए।७९-८१। इसी भाँति किसी अब्राह्मण का लिखा निष्फल बताया गया है।८२। पतित, पाखण्डी एवं स्त्री के लिए लिखने का विधान नहीं है, एवं दूषित विचार वाले, दुष्टा स्त्री के पति और अविवेकी को कभी लेखक न बनना चाहिए, यदि लिपिबद्ध करना ही चाहता है, तो धर्मशास्त्र, पुराण, स्तोत्र एवं संहिता के अतिरिक्त अन्य किसी का उल्लेख कर सकता है।८३। सुवर्ण या चाँदी के पात्र में, गोंद, काजल, मणिकर्दम (जालामिश्रित) जीवन्ती (गुरचि) के रस समेत, इन्हीं द्वारा मसी (स्याही) बनाये उसमें राङ्गा (धातु) भी डाले। हरिताल एवं हरदी मिश्रित करने का भी विधान बताया गया है, पर कालारंग वायुयुद्ध, पीत से वायुप्रद, रक्तवर्ण से पुष्टि तथा कृष्णवर्ण की स्याही से धनागम होता है।८४-८६। इतिहास पुराणों को किस दिशा के सम्मुख बैठकर लिखना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! प्रथम दिशाओं के ज्ञानपर्वूक वायव्यादि प्रशस्त दिशाओं की ओर मुख करके लिखना आरम्भ करना चाहिए। पूर्वाभिमुख होकर लिखने से अर्थ हानि, उत्तरमुख से लक्ष्मी, दक्षिणाभिमुख से मरण एवं पश्चिमाभिमुख होकर लिखने से धन नाश होता है।८७-८८। पितृ-श्राद्ध, पृथिवी के हिलने (भूचाल) एवं जन्म के दिवस में न लिखना चाहिए। दोनों प्रकार के अशौच, अमावस्या तथा संक्रान्ति के दिन लिखने से दरिद्रता, पुत्रनाश, बल-तथा धर्म का क्षय प्राप्त होता है। इसलिए इसके त्याग के लिए विशेष सावधान रहना चाहिए।८९-९०। पितृ-श्राद्ध के दिन लिखने से कुल का नाश होता है, एक रात्रि के भूचाल के दिन लिखने से धन क्षय, अशौच में दरिद्रता, जन्मवासर में आयु क्षीण होती है। लिपि, छंद एवं शब्द के ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा तेजस्वी उस युवा लेखक को चाहिए कि इन्द्रियसंयमपूर्वक आसन पर बैठकर असंवलित भाव रखकर द्रुतगति से लिखना आरम्भ करे, (पंक्ति में)

लिपियुक्तः समायुक्तः एवागमलेखकः । नान्दीनागरकैर्वर्णैः शुद्धनागरकैरपि ॥९४
कामरूपाक्षरैर्वापि यावच्च संहितागणः । अचेतनेन लिखितं यावत्कालं प्रवर्तते ॥९५
यावदक्षरसंस्थानं तावत्स्वर्गे महीयते । अनुक्तो वाचयेद्यस्तु धर्मशास्त्रस्य वेतनम् ॥९६
लिखित्वा यस्तु पापात्मा यावदक्षरसंख्यया । तावत्कालं तु नरके पच्यते नात्र संशयः ॥९७
कुटुम्बभरणार्थं तु गृह्णीयाद्वापि वेतनम् । न जीवति स दुष्टात्मा धनवस्त्रफलान्वितः ॥९८
पतितैरन्त्यजैर्म्लेच्छै रोगी कुष्ठी क्षयी तथा । रोगी शिलीपदश्चैव मूकोऽपि धर्मसंहतः ॥९९
एतैर्विलिखितं यच्च धारयेन्न गृहाश्रमी । अनायुष्यकरं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१००
हीनांगा प्रतिमा चैव पुस्तकं मानहीनकम् । न कलौ धारयेद्देह अनायुष्यकरं भवेत् ॥१०१
द्वात्रिंशदङ्गुलैर्युक्तं कर्तव्यं पुस्तकोत्तमम् । स वै नारायणः ख्यातो धारणाच्च कुतोऽप्यलम् ॥१०२
चतुर्विंशाङ्गुलं यच्च तद्वै स्वधनमुच्यते । शङ्करः स तु विज्ञेयो धर्मकामफलप्रदः ॥१०३
अष्टाङ्गुलं भवेद्यच्च तत्कनिष्ठमिहोच्यते । तस्माद्ब्रह्ममयं ज्ञेयं त्रिवर्गफलदायकम् ॥१०४
ताडिता जलपत्रे च अथ वा चागुरत्वचि । एत्याः पत्रकृते मानं भूर्जे मानं न विद्यते ॥१०५
द्वादशाङ्गुलकं यच्च भूर्जतैडादिनिर्मितम् । अङ्गुलानां प्रमाणं यत्तेनापि ज्ञानपुस्तकम् ॥१०६

ऊपर-ऊपर के अक्षरों को समान रक्खे, इस प्रकार समाधिस्थ पुरुष की भाँति तन्मय होकर लिपिबद्ध करने वाले को ही आगम लेखक बताया गया है। नांदी नागरक (जिस नागरी लिपि के प्रयोग करने पर देव तथा पितृगण प्रसन्न होते हैं) अथवा शुद्ध नागरी लिपि में सुन्दर अक्षरों द्वारा उसे आबद्ध करना चाहिए। अचेतन द्वारा लिखने पर वह जितने समय तक वर्तमान रहता है, और उसमें जितने अक्षरों के समावेश किये गये हों, उतने दिनों तक वह (लेखक) स्वर्ग में सम्मानित होता है। बिना पूँछे ही अथवा वेतन लेकर धर्मशास्त्र की व्यवस्था देने एवं लिखने वाले उस पापी को उन अक्षरों कीसंख्या के समान दिन तक नरक का अनुभव करना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं।९१-९७। परिवार के पालन-पोषण के लिए भी जो वेतन ग्रहण करता है, धन, वस्त्र एवं फल युक्त रहने पर भी वह दुष्टात्मा (अधिक दिन) जीवित नहीं रहता है।९८। पतित, शूद्र, चाण्डाल, म्लेच्छ, रोगी, कुष्ठी, क्षयी का रोगी, पीलपाँव वाला और गूंगे द्वारा लिखे गये का उपयोग गृहस्थ को न करना चाहिए, उसके उपयोग करने पर आयु क्षीण होती है, अतः उसका त्याग ही श्रेयस्कर बताया गया है।९९-१००। हीन अंग वाली प्रतिमा (मूर्ति) और असम्मानित पुस्तक के उपयोग कलियुग में करने से आयु क्षीण होती है।१०१। पुस्तक का आकार बत्तीस अंगुल के प्रमाण का होना चाहिए, ऐसी उत्तम पुस्तक का ख्याति प्राप्त नाम नारायण होता है, उसके धारण करने में कौन असमर्थ हो सकता है? (अर्थात् कोई नहीं) चौबीस अंगुल प्रमाण के अक्षर वाली पुस्तक का शंकर नाम होता है, उससे धर्म एवं कामनाएँ सफल होती है।१०२-१०३। आठ अंगुल के आकार वाली पुस्तकों को 'कनिष्ठ' कहा गया है, इसलिए उसे ब्रह्ममय एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की सफलता का प्रदायक जानना चाहिए।१०४। जलपत्र अथवा अगुरु की त्वचा (छाल) इन्हीं पत्रों पर लिखने के लिए पुस्तक के आकार-प्रमाण की आवश्यकता बतायी गयी है, और भोजपत्र को पुस्तकाकार बनाने में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।१०५। बारह अंगुल प्रमाण के आकार की बनायी गयी वह भोजपत्र, अथवा तैड

हस्तसंस्थापिते तस्य तेनायुष्यकरं भवेत् । धर्मशास्त्रस्य साहस्रे धर्मशास्त्रस्य वेतनम् ॥१०७
स्वर्गमार्गस्य गमने भारते च तदर्धकम् । हरिवंशे स्वर्णमाने कृते मूल्यसहस्रके ॥१०८
युगे युगे पादहीनं धर्मं कुर्याद्यथारुचि । प्रणम्य शिरसा सर्वान्व्यासादीन्संहिताश्रुतान् ॥१०९
जैमिनिं च ततो व्यासं शङ्करं च तथा हरिम् ।नमस्कारमथैषां तु आदिमध्यावसानके ॥११०
ततः प्रवाचयेद्विप्रो धर्मशास्त्रार्थकोविदः । अलक्षितजनास्तद्वद्यद्रूपं स्पष्टमुच्चरन् ॥१११
असंयुक्ताक्षरपदं स्पष्टभागसमन्वितम् । सप्तस्वरसमायुक्तं सप्तनादविभूषितम् ॥११२
सामगाथाः समाश्रित्य रागयुक्तान्तरं पठेत् । मणिवारोधनं यत्स्याद्गौरान्धा सन्तिकस्तथा ॥११३
श्रीरागश्चैव हिल्लोलरागो वाजाविकस्तथा । एवं प्रक्रमनाणेन शृणुयाद्धर्मसंहिताः ॥११४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चापि विशेषतः । अश्वमेधमवाप्नोति सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
पापैः प्रमुच्यते सर्वैर्महापुण्यं च विन्दति ॥११५
शूद्राणां पुरतो वैश्यो वैश्यानां क्षत्रियः परः । क्षत्रियान्ते तथा विप्राः शृणुयुश्चाग्रतः सदा ॥११६
न शूद्रः कथयेद्धर्मांस्तपअध्यापने तथा । नैह्रिकत्वं परत्वं च न शुभं न परां गतिम् ॥११७

आदि की पुस्तक भी अंगुल प्रमाण के नाते ज्ञान पुस्तक ही कही जाती हैं।१०६। उसे हाथ में लेकर पढ़ने से आयुवृद्धि होती है। धर्मशास्त्र की एक सहस्र प्रतियाँ लिखने पर उसका वेतन ग्रहण करना चाहिए।१०७। महाभारत के स्वर्गारोहण वाले पर्व के लिखने में उसका अर्धभाग वेतन के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसी भाँति हरिवंश को लिपिबद्ध करने में एक सहस्र सुवर्ण प्रत्येक युगों में व्यास आदि प्रमुख ऋषियों को, जों संहिता के निष्णात विद्वान् हैं, शिर से प्रणाम करके पादहीन धर्म का पालन यथेच्छ करना चाहिए।१०८-१०९। पश्चात् जैमिनि, व्यास, शंकर और हरि इन लोगों को नमस्कार करे, ग्रन्थ के आदि, मध्य एवं समाप्ति में नमस्कार करने का विधान बताया गया है।११०। पुराण के पारायण में भी धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ को उचित है कि नमस्कारपूर्वक ही उसका आरम्भ करें, तथा धीर-गम्भीर स्वभाव से उसका इस प्रकार उच्चारण करें जिससे सभी को वह स्पष्ट सुनाई पड़े।१११। उसके अक्षर एवं पदों के स्पष्ट उच्चारण करते हुए सप्तस्वर एवं सातों ध्वनियों के भी विशेष ध्यान रखने चाहिए। सामवेद की गाथाओं की भाँति इसमें भी अनेक भाँति के रागों के प्रयोग किये जाते हैं—[1]मणिवारोधन, गौरान्ध, संतिक, श्रीराग, हिल्लोल राग तथा वाजाविक इन्हीं रागों के क्रमशः प्रयोगपूर्ण संहिता के श्रवण करना चाहिए।११२-११४। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं विशेषकर शूद्र अश्वमेध के फल की प्राप्तिपूर्वक अपनी समस्त कामनाएँ सफल करते हैं तथा समस्त पापों की मुक्तिपूर्वक महान पुण्यों की प्राप्ति भी करते हैं।११५। उसे सुनने के लिए शूद्रों के सामने वैश्य, वैश्यों के सामने क्षत्रिय, क्षत्रियों के अग्रभाग में ब्राह्मणों को स्थित होकर सदैव प्रत्येक में इसी प्रकार की पंक्तियों से आबद्ध होकर सुनना चाहिए।११६। शूद्रों को तप अध्यापन आदि कोई भी धार्मिक प्रवचन न करना चाहिए, उसी भाँति लोक-परलोक, धर्म एवं उत्तम गति की प्राप्ति के

---

१. केवल सतयुग में धर्म अपने चारों चरणों से पूरित रहता है और त्रेता आदि युगों में क्रमशः एक-एक चरण की कमी होती जाती है।

शूद्रेणाधिगतं नास्ति विशेषाच्छब्दलक्षणम् । यद्द्विजस्य कृतो दासो ब्रह्मणाऽव्यक्तयोनिना ॥११८
श्वश्रृगालखरीक्षीरमपेयं हि यथा भवेत् । एवं शूद्रमुखाद्धर्मा न ग्राह्याः शब्दसंस्कृताः ॥११९
अमेध्यं शुध्यते तोयैः शूद्रः श्रोता हि शुद्ध्यति । एवं शूद्रोऽप्यशुचिः स्याद्यदि व्याकरणार्थवित् ॥१२०
यः शूद्र उद्दिशेद्धर्मं तथा चागमवैदिकम् । स वै वध्यो नरेन्द्रेण जिह्वां चक्रेण छेदयेत् ॥१२१
बुध्यमानः सदा ह्यर्थं ग्रन्थार्थं कृत्स्नमेव च । य एवं कथयेत्सम्यक्स विप्रो व्यास उच्यते ॥१२२
वसेत्स पत्तने ग्रामे पुण्ये देशे स कीर्तितः । ते धन्यास्ते कृतात्मानस्ते कृतार्था न संशयः ॥
वसन्ति पत्तने तस्मिन्व्याख्याता यत्र संवसेत् ॥१२३
यथार्कहीनं दिवसञ्चन्द्रहीना यथा निशा । न रराज सभा तद्वद्व्यासेन रहिता द्विजाः ॥१२४
यद्गृहे नैव शिशवो न रराज गृहं क्वचित् । यथैकतो ग्रहाः सर्वे एकतस्तु दिवाकरः ॥
तथैव सोदरगेहे दृष्ट्वा पुष्करदर्शनम् ॥१२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

अङ्कमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

श्रृणुध्वं विप्रसन्घाताः पुराणं देवसंमतम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापात्पुरुषो ब्रह्महत्यया ॥१

लिए चेष्टा भी न करनी चाहिये। ११७। शूद्रों को विशेषकर शब्दशास्त्र (व्याकरण) का अध्ययन वर्जित किया गया है, क्योंकि ब्रह्मयोनि ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणों का दास बनाया है। ११८। जिस प्रकार कुतिया श्रृगाली एवं गधी के दूध को पान करने के अयोग्य बताया गया है, उसी भाँति शूद्रों के मुख से निकले धार्मिक संस्कृत शब्द, श्रवण-मनन के अयोग्य हैं। ११९। अपवित्र वस्तु जल से पवित्र की जाती है, उसी प्रकार शूद्र (पुराणादिक) सुनने से शुद्ध होता है। व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने वाला शूद्र नितान्त अपवित्र होता है। राजाओं को शास्त्रीय अथवा वैदिक धर्मों के उपदेष्टा शूद्रों का वध तथा चक्र अस्त्र द्वारा उनकी जिह्वा कटवा लेनी चाहिए। १२०-१२१। सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थ उसके मर्मस्थलों के विशेषज्ञ एवं सुन्दर ढंग से उसकी व्याख्या करने वाले ब्राह्मण को व्यास कहा गया है। १२२। जिस ग्राम, या नगर में ऐसे ब्राह्मण का निवास होता है, वह पुण्य प्रदेश बताया गया है, इस प्रकार व्याख्याता जिस नगर आदि में निवास करता है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं। १२३। द्विजगण! सूर्यहीन वासर और चन्द्रहीन रात्रि की भाँति, व्यास की अनुपस्थिति में सभा सुशोभित नहीं होती है। जिस घर में बच्चे न हों, उस घर की शोभा कभी नहीं हो सकती है। जिस प्रकार एक ओर समस्त ग्रह सुशोभित हैं और एक ओर सूर्य, उसी भाँति घर में भ्राताओं के बीच में बालकों को देखकर एक महान् आह्लाद उत्पन्न होता है। १२४-१२५

श्री भविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में सातवाँ अध्याय समाप्त। ७।

अध्याय ८

अंक माहात्म्य का वर्णन

सूतजी बोले—विप्रवृन्द! देव सम्मत उस पुराण को, जिसके सुनने से पुरुष पाप एवं ब्रह्म हत्या से

तृतीयं शैवमाख्यातं ततो भागवतं परम् । पञ्चमं च तथा मात्स्यं भविष्यं षष्ठमुच्यते ।।२
असामर्थ्ये च मात्स्योक्तं वैष्णवं च भविष्यकम् । भारते चापि [1]पर्वं च शान्तिभैष्मीयकं तथा ।।३
पराशरमतं गृह्यं गोभिलोक्तानि यानि च । कात्यायनोक्तमपरमभ्यसेन्निगमादितः ।।४
अन्तरेणागते मर्त्ये शास्त्रं नाध्यापयेत्क्वचित् । एकरात्रं गते मर्त्ये त्रिरात्रमजमेषयोः ।।५
मण्डूके पञ्चरात्रं तु सर्पे रात्रिचतुष्टयम् । सम्वत्सरं तु तुरगे गजे द्वादशवत्सरान् ।।६
मासमेकं खरे काके स्थानत्यागान्न कुत्रचित् । केरवे वा रवे चैव अहोरात्रं प्रचक्षते ।।७
त्रिरात्रमपि मार्जारे नकुले मूषके खरे । हंसे दिनमनध्यायं क्षुद्रजन्तौ न दूषणम् ।।८
अध्यापयेद्गुरोः पुत्रं मानिनं धार्मिकं शुचिम् । भक्तं शान्तं वैष्णवं च जितक्रोधं जितेन्द्रियम् ।।९
अध्यात्माध्यापयेदेभ्यः शठं पापहरं द्विषम् । अन्यायेनैव यच्छतमभयं दाम्भिकं द्विषम् ।।१०
निरर्थकं मन्थरं च विशुश्रूषुमयाजकम् । षण्डं चैवानृजुं क्रुद्धं कृपणं व्यसनार्थिनम् ।।११
निन्दकं चाविधिज्ञं च दूरतः परिवर्जयेत् । अप्रच्छन्ननतं ब्रूयात्पुत्रपौत्रादिकादृते ।।१२
विद्यया सह मर्तव्यं न दद्यान्च पृथग्जने । अतो विद्या वदत्येवं पाठयन्तं द्विजोत्तमम् ।।१३
मा दद्याद्भक्तिहीनाय दुर्जनाय दुरात्मने । अप्रमादाय विप्राय शुचये ब्रह्मचारिणे ।।१४

मुक्त हो जाता है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीसरे शिव पुराण, चौथे भागवत, पाँचवें मत्स्य, छठवे भविष्य पुराण का श्रवण करना चाहिए, यदि किसी प्रकार इन्हें श्रवण करने में असमर्थता हो तो, मत्स्य पुराण, भविष्यपुराण तथा महाभारत के शांति और भीष्मपर्व का ही श्रवण करे।१-३। पराशर के विचार-विमर्श (स्मृतियों) गृह्यसूत्र, गोभिल द्वारा रचित समस्तग्रन्थ तथा कात्यायन सूत्र तक का अध्ययन मनन, निगम (निरुक्त) के प्रारम्भ से लेकर करना चाहिए।४। शिष्य और गुरु के अध्ययन एवं अध्यापन के समय उनके बीच से किसी मनुष्य के आ जाने पर एकरात्र, भेड़-बकरी के आने पर तीन दिन, मेढक के आने पर पाँच रात, साँप के आने पर चार रात, घोड़े के आने पर एक वर्ष, हाथी के आने पर बारह दिन, गधे तथा कौवे के आने पर एक मास तक अनध्याय रखना चाहिए। स्थान त्याग करने पर अनध्याय कभी न करें, निन्दित शक एवं (उत्पात के) शक सुनने पर दिन-रात, बिल्ली, नेवला, चूहा एवं गधे के आने पर तीन रात का भी अनध्याय होता है, उसी भाँति हंस के आने के एक दिन का अनध्याय बताया गया है, तथा और छोटे-छोटे जीवों के आने पर कोई दोष नहीं होता है।५-८। उस गुरु पुत्र को पढ़ाना चाहिए, जो ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शांत, वैष्णव, क्रोधरहित, एवं इन्द्रियसंयमी हो।९। किसी भी अध्यात्म पुरुष को शठ, पापी, द्वेषी, अन्याय से देने वाला, निर्भीक, दम्भी, शत्रु, व्यर्थ की बातें करने वाला, मंथर गति वाला, गुरु सेवा न करने वाला, यज्ञ-पूजनहीन, षण्ड नपुंसक, कुटिल, क्रोधी, कृपण (कायर), व्यसनी, निंदक, विधि न जानने वाला, इस भाँति के पुरुषों को न पढ़ाना चाहिए, प्रत्युत, दूर से देखते ही इनका त्याग करे, केवल अपने पुत्र-पौत्र के अतिरक्ति और सभी लोगों से नम्रता प्रकट करते हुए बात-चीत करनी चाहिए।१०-१२। विद्या को साथ लिए मर जाये किन्तु उपरोक्त ऐसे किसी पुरुष को कभी न प्रदान करे, इसीलिए पढ़ाने वाले ब्राह्मणों से विद्या कहती है कि—भक्तिहीन, दुर्जन एवं दुष्ट को मुझे न प्रदान करो।

---

१. अदन्तत्वमार्षम् ।

सार्थकाय विधिज्ञाय साधवे देहि सत्तम । दद्याद्यदि निषिद्धाय विद्याधनमनुत्तमम् ॥१५
तयोरेकतरो गच्छेदचिरेण यमक्षयम् । अन्यायेन ग्रहं विद्यामन्यं पाठयते सुखात् ॥१६
स याति नरकं घोरं विद्यावर्ज्यः स उच्यते । आध्यात्मिकं वैदिकं चालौकिकं वाथ यो वदेत् ॥१७
मानमादौ प्रणम्याथ ततोऽधीयीत सुव्रतः । कर्मकाण्डं ज्योतिषस्य तद्विना न समभ्यसेत् ॥१८
चूतभागसमभ्यासाद्दरिद्रश्चाभिजायते । वादभागसमभ्यासाद्धननाशाय जायते ॥१९
निधिभागसमभ्यासाज्जायते नारके कुले । यान्यनुक्तानि शास्त्राणि माननीयानि यानि च ॥२०
म्लेच्छोक्तानि महिम्नानि नाभ्यसेद् दूरतस्त्यजेत् । लोकानां ज्ञानवृद्ध्यर्थं यः कुर्याद्धर्मसङ्ग्रहम् ॥२१
प्रवर्तयित्वा स गुरुर्भवेज्ज्ञानप्रदः पिता । ज्ञानदाता च लोकानां तेषु धर्मः प्रवर्तते ॥२२
निगमानां ज्योतिषाणां वेदानां नाटकस्य च । व्याख्यानसङ्ग्रहं कृत्वा कलौ नाशमवाप्नुयात् ॥२३
वेदानां धर्मशास्त्राणां पुराणानां तथैव च । मीमांसाज्योतिषां चैव नाटकानां विरञ्चिनी ॥२४
भागावसाने कथितः पुराणाध्याय एव च । पुष्पकश्च परिच्छेद खण्डश्च प्रतिखण्डकः ॥२५
व्यवहारश्चार्थशास्त्रमश्वशास्त्रस्य चैव हि । यस्य भागावसाने तु प्रयोक्तव्यः स एव हि ॥२६
तत्सङ्ग्रहेऽपि कविना नियोक्तव्यः स एव हि । यस्य नाम्नोपदेशे तु प्रवर्तयति सङ्ग्रहः ॥२७
तत्तदक्षरसंख्यानां ब्रह्मलोकान्न तच्च्युतिः । न सङ्ग्रहस्तन्त्रमन्त्रे वेदमन्त्रे च वर्जयेत् ॥२८

सत्तम! यदि मुझे देना है तो किसी प्रमादहीन, पवित्र, ब्रह्मचारी, साथी, विधानवेत्ता एवं सज्जन ब्राह्मण को प्रदान करो।१३-१५। यदि इस उत्तम विद्यारूपी धन को किसी निषिद्ध व्यक्ति को प्रदान किया तो दोनों में से एक कोई चिरकाल तक यमयातनाओं का अवश्य अनुभव करेगा। सुखपूर्वक किसी के पढ़ाते समय यदि कोई दूसरा अन्याय से उसको ग्रहण करता है, तो उसे घोर नरक की प्राप्ति होती है, इसलिए कि उसे विद्यादान का निषेध किया गया है। वेदान्त, वैदिक या अन्य किसी अलौकिक (शास्त्र) के पठन-पाठन में प्रथम उसको सम्मानपूर्वक प्रणाम करके ही प्रारम्भ करना चाहिए, इसी प्रकार कर्मकाण्ड और ज्योतिष् का मनन आदि बिना प्रणामादि के कभी न प्रारम्भ करें।१६-१८। चूतभाग के अभ्यास करने से दरिद्रता, वादभाग के अभ्यास से धन नाश एवं निधिभाग के अभ्यास करने से नरक की प्राप्ति होती है। जितने सम्मानित शास्त्रों को नहीं कहा गया है, उन्हें एवं माहात्म्यों को जो म्लेच्छों द्वारा कहे गये हों, दूर से ही उनका त्याग करे। लोगों के ज्ञान वृद्धि के लिए जो धर्म का संग्रह करता है, वह उसके प्रवर्तक होने के कारण गुरु कहा जाता है और ज्ञान प्रदान करने के कारण पिता। वही लोगों को ज्ञान प्रदान करता है, इसलिए उसी में सभी धर्मों का समावेश होता है।१९-२२। कलियुग में निगम, ज्योतिष्, वेद एवं नाटकों के व्याख्यान संग्रह करने वाले का नाश होता है, उसी प्रकार वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा, ज्योतिष्, नाटक विरंचिनी का भी। प्रत्येक भाग के अंत में एवं पुराणों के अध्याय की समाप्ति में गुच्छे का चिह्न, परिच्छेद, खण्ड, अथवा प्रतिखंड का निर्माण करना चाहिए।२३-२५। अर्थशास्त्र का प्रयोग व्यवहार में लाना चाहिए, उसी प्रकार अश्वशास्त्र भागों का भी।२६। जिसके नाम के उपदेश करना हो, उसके संग्रह के लिए किसी कवि को नियुक्त करना चाहिए, क्योंकि उस संग्रह का प्रवर्तक वही है।२७। उसके अक्षरों की संख्या के समान दिनों तक वह ब्रह्मलोक से च्युत नहीं होता है। तंत्र, मंत्र एवं वेद-मंत्रों

मोहात्कृत्वा होमधेनुं दत्त्वा शुद्धिर्भविष्यति । कृत्वा चाख्यायिकाग्रन्थस्वरूपान्स दिवं व्रजेत् ॥२९
धर्मशास्त्रस्य गम्यस्य व्यवहारस्य चैव हि । कलौ यः सङ्ग्रहं कुर्यात्प्रसुप्ते चैव केशवे ॥३०
यावत्प्रवर्तते लोकस्तावत्स्वर्गे महीयते । सिंहे पौषे च चैत्रे च न कुर्यात्संग्रहं क्वचित् ॥३१
प्रातःकाले न कुर्वीत तथा मध्यन्दिने द्विजाः । पक्षान्ते भूमिदाहे च भुवः कम्पे दिनक्षये ॥३२
मलमासे विशेषेण सन्ध्ययोश्च विवर्जने । अमेध्याक्तं च पत्रं च लिप्यक्षरविभूषितम् ॥३३
पूतं स्यात्तत्क्षणाद्विप्राश्चतुः पञ्चाक्षरेण वा । नारसिंहस्य विन्यासे पूतो भवति तत्क्षणात् ॥३४
मायाविभवविन्यस्ते महापापकलेवरे । मुहूर्तार्धेन पूतत्वं प्रभोर्यान्ति परां गतिम् ॥३५
स्त्रियो वा निन्दितो वापि म्लेच्छो याति परां गतिम् । यो मूढो मन्यते दोषं तस्य शौचं समाचरेत् ॥
स गर्दभीं खरीं योनिं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥३६
एकमेवात्मकं ब्रह्म तत्प्रकृत्यात्मकं द्वयम् । नवात्मको भैरवश्च दशमश्च जनार्दनः ॥३७
रुद्र एकादशश्चैव अर्कार्कश्चापि द्वादशः । त्रयोविंशे च भूतात्मा षड्विंशे मनुरीरितः ॥३८
तिथ्यात्मकं पञ्चदशे षोडशाख्या कलापरा । वातात्मकः सप्तदशो मन्त्रः समनुवर्तते ॥३९
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः पुराणात्मक एव च । ऊनविंशश्चन्द्रमाः स्याद्विंशो नारायणो वपुः ॥४०
ज्योतिर्मयश्चैकविंशो द्वाविंशे केशवार्चनम् । नक्षत्राणि त्रयोविंशे चतुर्विंशे च तानकम् ॥४१

का संग्रह करना निषिद्ध है, यदि अज्ञानवश उसका संग्रह कर ही दिया तो, सुवर्ण की धेनु के दान से उसकी शुद्धि बतायी गयी है। आख्यायिका ग्रंथों के स्वरूप निर्माण करने से उसे स्वर्ग प्राप्ति होती है।२८-२९। जो इस कलि में व्यवहारार्थ धर्मशास्त्र के सरल एवं व्यावहारिक भाग का संग्रह, विष्णु शयन (चातुर्मास काल) में करता है, तो जितने लोग उससे लाभ उठाते हैं, उतने दिनों तक वह स्वर्ग में सम्मानित होता है। किन्तु सिंह के सूर्य में, पौषमास एवं चैत्रमास में कभी भी संग्रह न करे।३०-३१। द्विजगण ! प्रातःकाल, मध्याह्न, पक्ष के अंतिम समय, भूमि दाह, भूचाल, दिन क्षय, अधिकमास) और विशेषकर दोनों संध्याओं में संग्रह (लिपिबद्ध) न करना चाहिए। विप्रगण ! लिपि अक्षर विभूषित पत्र के अपवित्र होने की आशंका उत्पन्न होने पर नरसिंह (पुराण) के चार या पाँच अक्षरों का सन्निवेश उसमें करने से वह उसी समय पवित्र हो जाता है।३२-३४। माया के ऐश्वर्य से परिपूर्ण इस (असार संसार) में यह शरीर बड़े-बड़े पापों द्वारा दूषित हो जाती है, इसलिए उसके उद्धार के लिए बताया गया है कि यदि वह क्षणमात्र भी भगवद्गुणगान या स्मरण किया तो उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। चाहे वह स्त्री, निन्दित, अथवा म्लेच्छ ही क्यों न हो। जो मूर्ख उसमें दोष मानते हैं, उन्हें शुद्ध होने की आवश्यकता है, अन्यथा गधी एवं राक्षसी योनि में उन्हें प्रवेश करना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं।३५-३६। ब्रह्म एक ही है, वही अपनी प्रकृति (माया) के साथ रहने से दो रूपों में हो जाता है। उसका नवाँ रूप भैरव और दशवाँ जनार्दन है, ग्यारहवाँ रुद्र, बारहवाँ सूर्य, तेइसवाँ भूतात्मा (समस्त जीवों में) छब्बीसवाँ मनु बताये गये हैं। पन्द्रह तिथियाँ, सोलह कलाएँ भी उसी के रूप हैं। उसके सत्रहवें वायुरूप को मन्त्र स्पष्ट बता रहा है।३७-३९। अठ्ठारह अक्षर के मंत्र और अट्ठारह पुराण भी भगवान् के स्वरूप हैं, उन्नीसवाँ चन्द्रमा, बीसवाँ नारायण की शरीर, इक्कीसवाँ ज्योतिर्मयस्वरूप, बाईसवाँ केशव, तेईसवाँ नक्षत्रगण, चौबीसवाँ संगीत के स्वर,

पञ्चविंशे च तीर्थानि षड्विंशे च त्रियम्बकः । अष्टाविंशे धनेशश्च ऊनविंशे सरस्वती ॥४२
त्रिंशद्योगे शिवः प्रोक्तः पातालमेकत्रिंशके । अहोरात्रश्च द्वात्रिंशे चतुस्त्रिंशे च जाह्नवी ॥४३
पञ्चत्रिंशे तदन्तः स्याच्छते पूर्णे दिवाकरः । सहस्रे च शिवो ज्ञेयश्चायुते मेरुरुच्यते ॥४४
लक्षे ब्रह्मा तथा कोटघां देवो नारायणः परः । पुम्प्रकृत्यात्मकं चान्यच्छारदालिपिमातृका ॥४५
शुद्धब्रह्ममयं नित्यं ज्ञानरूपं परं महत् । यस्मिन्व्यसनादेव शुचौ चाप्यशुचिस्थले ॥
क्षणे ब्रह्ममयं याति इत्याह भगवान्मनुः ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागेऽङ्कमाहात्म्यकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अथ नवमोऽध्यायः

पूर्तनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

अन्तर्वेदिं प्रवक्ष्यामि ब्राह्मणोक्तं युगान्तरे । बहिर्वेदं तथैवोक्तं शस्तं स्याद्द्वापरे कलौ ॥१
ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अंतर्वेदीति कथ्यते । देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिरुदाहृता ॥२
प्रपापूर्तादिकं चैव ब्राह्मणानां च तोषणम् । गुरुभ्यः परिचर्या च बहिर्वेदी द्विधा मता ॥३
अकामेन कृतं कर्म कर्म च व्यसनादिकम् । अन्तर्वेदी तदेवोक्तं बहिर्वेदी विपर्ययः ॥४

पच्चीसवाँ तीर्थवृन्द, छब्बीसवाँ त्र्यम्बक (महेश), अट्ठाईसवाँ धनेश (कुबेर), उन्नीसवाँ सरस्वती, तीसवाँ शिव, एकतीसवाँ पाताल, बत्तीसवाँ दिन-रात, चौंतीसवाँ गंगा, पैंतीसवाँ उसका अंतिम भाग, सौवाँ दिवाकर, एक सहस्र में शिव, दशसहस्र में मेरु, लक्ष में ब्रह्मा, कोटि (करोड़) में श्रेष्ठ नारायण देव हैं और वही पुरुष प्रकृतिमय ब्रह्मा दूसरे लिपि-माता शारदा के रूप में स्थित है ।४०-४५। वही शुद्ध (निर्गुण) ब्रह्मा, नित्य, ज्ञानरूप एवं परम महान् है, पवित्र, अपवित्र किसी भी स्थान में या अवस्था में रहकर उसके प्रेम भाजन होने पर क्षणमात्र में वह ब्रह्ममय हो जाता है, ऐसा भगवान् मनु ने बताया है।४६

श्री भविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में अंक माहात्म्य वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अध्याय ९

पूर्तनिर्णय का वर्णन

सूतजी बोले—मैं तुम्हें अन्तर्वेदी, जिसे ब्रह्मा के युगारम्भ में बताया था, सुना रहा हूँ, और उसी प्रकार बहिर्वेदी को भी, जो द्वापर तथा कलियुग के लिए प्रशस्त है ।१। जो कर्म, ज्ञान द्वारा सिद्ध होते हैं, उसे अन्तर्वेदी, एवं देवताओं की मूर्तियों के स्थापन-पूजन को बहिर्वेदी बताया गया है ।२। पौंसला स्थापन, जलाशय दान एवं ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना तथा गुरुओं की सेवा करना, इस प्रकार बहिर्वेदी के दो रूप हैं ।३। निष्काम कर्म और व्यसनादिक कर्म अन्तर्वेदी के रूप हैं तथा उससे भिन्न कर्म बहिर्वेदी के ।४। धर्म

धर्मस्य कारणं राजा धर्ममेतद्भवेन्नृपः । तस्मान्नृपं समाश्रित्य बहिर्वेदी ततो भवेत् ॥५
सप्ताशीतिर्बहिर्वेदी सारमेषां तृतीयकम् । देवतास्थापनं चैव प्रसादकरणं तथा ॥६
तडागकरणं चैव तृतीयं न चतुर्थकम् । पञ्चमं पितृपूजा च गुरुपूजापुरःसरा ॥७
अधिवासः प्रतिष्ठा च देवतानामविक्रिया । प्रतिमाकरणं चैव वृक्षाणामथ रोपणम् ॥८
त्रिविधा सा विनिर्दिष्टा उत्तमा चाथ मध्यमा । कनिष्ठा शेषकल्पश्च सर्वकार्येष्वयं विधिः ॥९
त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः । पूजाहोमादिभिर्दानैर्मानतश्च त्रिभागतः ॥१०
त्र्यहसाध्यविधानेन अष्टाविंशतिदेवताः । त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः ॥११
प्रत्यहं पूजयेत्तत्र जापकास्तत्र षोडश । उत्तमोऽसौ विधिः कृत्स्नो ह्यश्वमेधफलप्रदः ॥१२
चत्वारो याजकास्तत्र त्रयोविंशतिदेवताः । ग्रहदिक्पालवारुण्यं पृथिवी च शिवस्तथा ॥१३
एकाहेनैव पूजा च मध्यमः कथितो विधिः । गणेशग्रहदिक्पालान्वरुणं च शिवं तथा ॥१४
सम्पूज्य पूज्यते यत्र कनिष्ठोऽसौ विधिः स्मृतः । एकवृक्षैश्चैकरूपैः प्रतिमाक्षुद्रदेवताः ॥१५
नलिनीदीर्घिकागर्तवापीमलप्रपादिकम् । एषां संस्कारकार्येषु प्रतिमानां परिष्क्रिया ॥१६
अग्निकार्यं ततः कृत्वा न कुर्याद्विधिविस्तरम् । गणेशग्रहदिक्पालान्पूजयेदुपचारतः ॥१७

का कारण और धर्म का प्रत्यक्ष स्वरूप राजा होता है, इसलिए राजा के आश्रित रह कर बहिर्वेदी का कर्म सुसम्पन्न करना चाहिए।५। बहिर्वेदी कर्म के सत्तासी स्वरूप बताये गये हैं, किन्तु तीसरा स्वरूप, उसका साररूप है, देवतास्थापन, प्रासाद (कोठे) समेत देवालय बनाना, सरोवर बनाना यही तीन के लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए, चौथे के लिए उतना नहीं और पाँचवाँ, गुरु पूजापूर्वक पितृपूजा का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।६-७। देवता का अधिवास एवं निर्विकार उनकी प्रतिष्ठा, प्रतिमा (मूर्ति) बनवाना, बगीचे लगाने के रूप में इस प्रकार इसके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन रूप बताये गये हैं। समस्त कार्यों में यही विधान आवश्यक है।८-९। सर्वत्र (देवताओं की) प्रतिष्ठादि विधि पूजा, होम और दान के भेद से तीन प्रकार की होती है, और मान द्वारा भी उसके तीन भेद हैं।१०। जिस विधान में तीन दिन में (प्रतिष्ठादि कर्म) साध्य बताया गया है, उसमें अट्ठाईस देवताओं का आवाहन-पूजन होता है। उसमें भी वह प्रतिष्ठादि विधि तीन प्रकार की कही गयी है।११। उस विधान में प्रतिदिन सोलह जप करने वाले ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, यही विधान उत्तम बताया गया है, क्योंकि इसके सुसम्पन्न करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है।१२। जिसमें चार याजक (यज्ञ कराने वाले) हों, उसमें तेईस देवताओं का स्थापन-पूजन पूर्वक ग्रह, दिक्पाल, वरुण, पृथिवी, तथा शिव की भी स्थापना आदि अपेक्षित होती है, यह विधान एक दिन में समाप्त किया जाता है, इसलिए इसे मध्यम विधान बताया गया है। जिसमें गणेश, ग्रह, दिक्पाल, वरुण और शिव की पूजा आदि करने के उपरान्त प्रतिष्ठा आदि विधान सुसम्पन्न किया जाता है, उसे कनिष्ठ विधान कहा गया है। एक वृक्ष की शाखा आदि अनेक रूपों की भाँति प्रतिमा भी वहाँ सर्वप्रथम एक क्षुद्र देवता के ही रूप में रहती है।१३-१५। कुमुदिनी वाले सरोवर, गृहवावली, छोटे-छोटे जलाशय, बावली एवं गृह की नालियों के संस्कार करते समय प्रतिमाओं को परिष्कृत करने के पश्चात् अग्नि द्वारा उन्हें शुद्ध करे। उसमें विधान के विस्तार रूप को अपनाना अनावश्यक बताया गया है। उसमें गणेश, ग्रह एवं दिक्पाल की उपचार समेत पूजा करनी चाहिए।१६-१७। बावली आदि तथा

वाप्यादेः पुष्करिण्याश्च क्षिपेद्गङ्गाजलं ततः । उलूखलद्वयेनापि जीर्णानां तु कदाचन ॥१८
सेतुप्रासादवापीनां प्रतिष्ठां नैव कारयेत् । प्रासादः सेतवश्चैव तडागाद्यास्तथैव च ॥१९
त्रिभिर्वर्णैः प्रतिष्ठार्हा जीर्णानां तु समुद्गताः । मुनयो मानमिच्छन्ति अमानं न हि दृश्यते ॥२०
तस्मान्मानं प्रवक्ष्यामि यन्मानं यादृशं फलम् । षष्टिहस्तप्रमाणेन तदुक्तं वारणोदितम् ॥२१
एकषष्टिहस्तमितं प्रासादं चोत्तमं विदुः । मध्यं तदर्धं विज्ञेयं कनिष्ठं तत्परं स्मृतम् ॥२२
अथ वा देवमानेन कर्तव्यं भूतिमिच्छता । यस्तडागं नवं कृत्वा जीर्णं वा नवतां नयेत् ॥२३
सर्वं कुलं समुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते । वापीकूपतडागाश्च उद्यानप्रवहास्तथा ॥२४
पुनः पुनश्च संस्कार्यो लभते मौक्तिकं फलम् । गुणानां च प्रमाणेन प्रतिमानं विभागतः ॥२५
द्विशतेन शतेनापि प्रासादस्यैष निश्चयः । सहस्रहस्तविस्तारं दैर्घ्येणाष्टाधिकं भवेत् ॥२६
तडागं तु विजानीयात्प्रथमं मानमीरितम् । मध्यं चतुःशतेनापि प्रस्तावे दशहीनकम् ॥२७
कनिष्ठं त्रिशतं चैव प्रस्थेस्याद्विंशहीनकम् । तदर्धेन कलौ ज्ञेयं तदर्धेन तदर्धकम् ॥२८
तडागमानं विज्ञेयं त्रिवर्गफलदायकम् । अथ पुष्करिणीपक्षे द्वे शते मानमुत्तमम् ॥२९
तडागे द्विगुणा नेमी मानार्धे गर्तमीरितम् । तत्क्षेत्रं वारुणं स्थानं त्र्युदितं तद्बहिः स्मृतम् ॥३०

(कमल वाला तालाब) के जलों में दो ओखली द्वारा गंगा जल को डाले। जीर्ण-शीर्ण सेतु, प्रासाद और बावलियों की प्रतिष्ठा कभी भी न करनी चाहिए। प्रासाद, सेतु और सरोवर आदि की प्रतिष्ठा आदि कर्म तीनों वर्णों के लिए बताये गये है मुनियों ने सभी कार्यों में मान की भी अपेक्षा की है, इसलिए बिना मान के उनको कोई नहीं दिखायी देते हैं।१८-२०। इसलिए जिस प्रकार के मान के जो फल प्राप्त होते हैं (मैं बता रहा हूँ सुनो) गजशाला के निर्माण में साठ हाथ का प्रमाण बताया गया है, एकसठ हाथ के प्रमाण वाले प्रासाद (महल) को विद्वानों ने उत्तम बताया है।उसके अर्ध प्रमाण वाले को मध्यम तथा उसके अतिरिक्त को कनिष्ठ कहते हैं।२१-२२। अथवा देवों के मान के अनुसार उनके निर्माण करने चाहिए, यह ऐश्वर्य इच्छुकों के लिए आवश्यक है। उस मान के अनुसार जो किसी नवीन सरोवर, अथवा किसी जीर्ण-शीर्ण को नवीन रूप प्रदान करते हैं, वे अपने समस्त कुलों के उद्धारपूर्वक स्वर्ग में सम्मानित होते हैं। वावली, कुएँ एवं सरोवर के, जिससे बगीचे की सिंचाई होती है, बार-बार संस्कार करने से मुक्ति रूप फल प्राप्त होता है। गुणों के प्रमाण तथा प्रत्येक मान के विभाजन द्वारा महल के निर्माण में दो सौ तथा सौ हाथ भी निश्चित किया हुआ है। एक सहस्र हाथ के विस्तार और उससे आठ हाथ अधिक लम्बाई वाला तालाब बताया गया है। यह उसका प्रथम मान है।२३-२६। चार सौ हाथ का सरोवर मध्यम बताया गया है, उसको प्रारम्भ में दश हाथ कम भी किया जा सकता है।२७। उसी प्रकार तीन सौ हाथ वाला कनिष्ठ कहा जाता है, उसमें आवश्यकतानुसार बीस हाथ कम हो सकता है। कलियुग में उसके आधे प्रमाण अथवा उसके आधे के आधे प्रमाण में सरोवर निर्माण कराने से त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की प्राप्ति बतायी गयी है। पुष्करिणी के पक्ष में दो सौ हाथ का मान कहा गया है, तालाब के किनारे की भूमि दुगुनी होनी चाहिए और उसके मान के आधे भाग के समान उसमें गड्ढा खोदना बताया गया है। वहीं वरुण का निवास रहता है, इसी भाँति के सरोवर निर्माण को बहिर्वेदी में तीसरा प्रशस्त कर्म कहा गया है चौथा

चतुर्थं चैव गान्धर्वं पैशाचं पञ्चमं विदुः । यक्षस्थानमिता भागे एवं सर्वक्रमाणि हि ।।३१
अशीतिहस्तमानेन नलिन्या मणिरुच्यते । पञ्चहीनं च प्रस्तावे एवं मानविदो विदुः ।।३२
षष्टिहस्तेन नलिनी प्रस्तावे तुर्यहीनकम् । चतुःषष्टिहस्तमिता दीर्घिका च प्रकीर्तिता ।।३३
तुर्यहीनं च प्रस्तावे गर्ते मानं न विद्यते ।।३४

अग्नौ रोगो बन्धुनाशश्च याम्यां मृत्युश्चोग्रः प्राप्यते राक्षसे च ।
भीतिश्चोग्रा प्राप्यते वायवीये तस्मादेता वर्जनीयाः प्रयत्नात् ।।३५
विप्रादीनां देवतानां समाजे मेरुस्थाने यत्र तत्रैव कुर्यात् ।
नद्यास्तीरे वर्जयेद्वा स्मशाने तडागाद्वै आश्रमादीञ्जनानाम् ।।३६
यदा प्रतिष्ठां न करोति मूढः प्रासादवाप्यादिषु पापचेताः ।
भयं समाप्नोति च पापमुग्रं पदेऽहिना वै वधभागितां व्रजेत् ।।३७
यदा तु दीर्घासरसीतडागप्रासादकूपादिषु निर्मितानि ।
कुर्वन्ति चान्यानि यदा मखानि भवन्ति नैवास्य फलप्रदानि ।।३८
यदप्रतिष्ठेषु निपानकेषु प्रासादकूपेषु वनादिकेषु ।
प्रतिष्ठिते यत्फलमाप्नुवन्ति फलं तदाल्पाल्पकमाहुरस्य ।।३९
तस्मात्प्रतिष्ठां विधिना जलादेः कुर्याद्यथेष्टं प्रयतो मनुष्यः ।
पुण्यार्जनेनैव धनेन काले स्ववित्तसाध्येन शुभाशयेन ।।४०

नहीं, क्योंकि चौथा गान्धर्व (गान आदि) पाँचवाँ पिशाचों के कर्म, शेष यक्ष स्थान कहा गया है ।२८-३१। अस्सी हाथ के मान वाली नलिनी को मणि कहा गया है । उसके निर्माण के समय मानवेत्ताओं ने आवश्यकतानुसार पाँच हाथ कम करने को बताया है ।३२। साठ हाथ की नलिनी (कुमुदिनी वाला सरोवर) के प्रारम्भ में चार कम हो सकता है और उसी भाँति चौंसठ हाथ की गृहवावली बनाना चाहिए ।३३। उसके प्रारम्भ में चार कम किया जा सकता है, उसके गड्ढे का कोई मान नहीं बताया गया है ।३४। (अग्निकोण) में जलाशय के निर्माण कराने से रोग, दक्षिण में बन्धुनाश, नैऋत्य में भीषण मृत्यु तथा वायव्य में उग्र भय प्राप्त होता है, इसलिए इनके त्याग आवश्यक हैं ।३५। ब्राह्मणों एवं देवताओं के समाजों में तथा मरुस्थल में जहाँ चाहे वहाँ बना सकता है । नदी के तीर, श्मशान और मनुष्यों के आश्रमों के सन्निकट तालाब का निर्माण न करना चाहिए ।३६। जो मूर्ख पापी मनुष्य प्रासाद एवं बावली आदि की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं, उन्हें भय, भीषण पाप की प्राप्ति होती है और ऐसे मनुष्य का पैर में सर्प कटवा कर प्राणान्त कर देना चाहिए ।३७। गृहवावली, सरोवर, तालाब, महल, कूप आदि के नवनिर्माण करने के उपरान्त उसकी प्रतिष्ठा के साथ किसी अन्य यज्ञ का प्रारम्भ भी जो करते हैं, उन्हें उसका फल नहीं मिलता है ।३८। किसी जलाशय, महल, कूप, वन आदि की जिसकी प्रतिष्ठा न हुई हो, प्रतिष्ठा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उनके साथ अन्य यज्ञ के आयोजन करने वाले को उसके न्यून से न्यून फल प्राप्त होते हैं, जो न प्राप्त होने के समान हैं ।३९। इसलिए मनुष्य को जल आदि की प्रतिष्ठा करने के लिए यथेष्ट प्रयत्नशील रहना चाहिए। अपनी पुण्य की कमाई से यथाशक्ति समयानुसार उसमें व्यय करना चाहिए

प्रसादे मृण्मयं पुण्यं मयैतत्कथितं द्विजाः । तस्माच्चतुर्गुणं प्रोक्तं तृणकाष्ठमये तथा ।।४१
तृणमये शतमयं तदर्धं नववल्कले । तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं कृते दारुमये भवेत् ।।४२
ततो दशगुणं प्रोक्तमिष्टिकारचिते शुभे । तस्माच्छतगुणं शैले सहस्रं ताम्ररौप्यके ।।४३
ततश्च शतसाहस्रं सौवर्णे द्विजसत्तमाः । अनन्तफलमाप्नोति रत्नादिरचिते तथा ।।४४
यदतीतं भविष्यच्च कुलानामयुतं नरः । विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् ।।४५
कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् । अर्धं च वैष्णवं लोकं मोक्षं च लभते क्रमात् ।।४६
हस्तानां षोडशैर्यावत्प्रस्थे स्यात्करहीनकम् । तृणदंशमये मानं मध्यं चार्ककरं भवेत् ।।४७
कनिष्ठतारहस्तं स्यादुत्तमं पञ्चविंशतिः । सर्वोत्तमं च द्वात्रिंशच्चतुष्कोणे महाफलम् ।।४८
पुरद्वारं च कर्तव्यं चतुरस्रं समं भवेत् । अष्टकोणं न कर्तव्यं त्रिपुरं च कलौ युगे ।।४९
सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्राः[१] परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।५०
कर्तुर्दशगुणं प्रोक्तमापानपरिपालकः । पतितान्युद्धरेद्यस्तु स सर्वं फलमश्नुते ।।५१
पतितं पतमानं च तथार्द्धस्फुटितं तथा । समुद्धृत्य हरेर्वेश्म द्विगुणं फलमाप्नुयात् ।।५२

।४०। द्विजगण ! मिट्टी के प्रासाद (महल) बनाने से पुण्य की प्राप्ति होती है, यह मैंने तुम्हें बता दिया और उसी भाँति तृण अथवा लकड़ी के बनाने में उससे चौगुने पुण्य की प्राप्ति होती है । केवल तृण के बनाने से सौ गुनी, नवीन वल्क (छाल) में उसकी आधी पुण्य-प्राप्ति होती है, और लकड़ी के बनाने में उससे दश गुनी ।४१-४२। सुन्दर ईंटों द्वारा बनाने से उससे दशगुनी, पत्थर से सौ गुनी, ताँबे या चाँदी से सहस्र गुनी और द्विजसत्तम ! सुवर्ण द्वारा उससे सौ सहस्र एवं रत्नादिकों द्वारा निर्मित होने पर अनन्त पुण्य प्राप्ति होती है ।४३-४४। भगवान् के लिए मन्दिर बनवाने पर मनुष्य अपने कुल के पूर्व और पर पीढ़ी के दश सहस्र परिवारों को शीघ्र विष्णुलोक में पहुँचाता है ।४५। कनिष्ठ, मध्यम एवं श्रेष्ठ भाँति के मन्दिर भगवान् के लिए बनवाने पर उसे क्रमशः आधे पुण्य, विष्णुलोक एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४६। तृण और बाँस के प्रासाद बनाने में सोलह हाथ का मान बताया गया है, जो प्रारम्भ में एक हाथ कम कर दिया जा सकता है, इसे मध्यम मान कहते हैं ।४७। तार एवं हस्त के प्रमाण वाला कनिष्ठ और पच्चीस हाथ के प्रमाण वाला श्रेष्ठ बताया गया है। इसी प्रकार बत्तीस हाथ वाला सर्वोत्तम एवं चौकोर महल बनवाने से महान् फल प्राप्त होता है ।४८। पुर का दरवाजा भी चौकोर ही बनवाना चाहिए, इस कलियुग में आठ कोने वाला तीन तल का मकान न बनाना चाहिए। द्विजेन्द्रवृन्द ! देवमन्दिर के परमाणु जितनी संख्या में रहते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह पुरुष स्वर्गलोक की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ।४९-५०। आपान के पालन करने वाले को उसके रचयिता से दशगुने अधिक पुण्य प्राप्ति होती है, और जो पतितों जीर्ण-शीर्ण देवालयों के उद्धार करता है, उसे सभी फलों की प्राप्ति होती है ।५१। एकदम नष्ट-भ्रष्ट, जीर्ण-शीर्ण एवं अर्द्धांश भग्न विष्णु मन्दिरों के उद्धार करने से दुगुनी पुण्य प्राप्ति होती है ।५२। एकदम नष्ट-भ्रष्ट देवमन्दिर के निर्माण तथा

---

१. हे द्विजेन्द्राः सुरवेश्मनि यावन्तः परमाणवः स्युस्तावद्वर्षसहस्राणि कर्त्ता स्वर्गे पूजितो भवतीत्यर्थः।

पतितस्य तु यः कर्ता पतमानस्य रक्षिता । विष्णोरधितलस्यैव मानवः स्वर्गभाग्भवेत् ॥५३
यः कुर्याद्विष्णुप्रासादं ज्योतिर्लिङ्गस्य वा क्वचित् । सूर्यस्यापि विरिञ्चेश्च दुर्गायाः श्रीधरस्य च ॥५४
स्वयं स्वकुलमुद्धृत्य कल्पकोटिं वसेद्दिवि । स्वर्गाद् भ्रष्टो भवेद्राजा धनी पूज्यतमोऽपि वा ॥५५
देवीलिङ्गेषु योनौ वा कृत्वा देवकुलं नरः । स्मरत्वं प्राप्नुयाल्लोके पूजितो दिवि सर्वदा ॥५६
प्रावृट्काले स्थितं तोयमग्निष्टोमफलं लभेत् । शरत्कालस्थितं तोयं यज्ञतोयाद्विशिष्यते ॥५७
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वापिनः । स्वर्गं गच्छेत्स नरकं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥५८
एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां द्विजसत्तमाः । कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराणि च ॥५९
पूर्वं पितृकुले सप्त तद्वन्मातृकुले द्विजाः । चतुर्दशमिदं ज्ञेयं शतलेख्यं ततः शृणु ॥६०
पितुरूर्ध्वं कुलं विंशं मातुरूर्ध्वं कुलं तथा । तद्वत्परं विजानीयाद्भार्यायाः पञ्च एव च ॥६१
पञ्च वै मातृतश्चास्य पितुर्मातामहे कुले । पञ्च पञ्च विजानीयान्मातुर्मातामहस्य च ॥६२
गुरोः पितृकुले पञ्च तस्य मातृकुले तथा । आचार्यस्य कुले द्वन्द्वं दशराजकुलस्य च ॥६३
राज्ञो मातामहकुले पञ्च चैव प्रकीर्तिताः । एकोत्तरं शतकुलं परिसङ्ख्यातमेव च ॥६४
आत्मना सह विप्रेन्द्रा उद्धारः सम्मतः स्मृतः । कुर्याद्देवार्चनं तीर्थे स्वविमुक्ते दशार्णवे ॥६५
समुद्धरेत्कुलशतं शृणु विंशं कुलं द्विज । पञ्च पञ्च च पित्रोश्च पितुर्मातामहस्य च ॥६६
मातुर्मातामहस्यैव जातिं द्वन्द्वमुदाहृतम् । गुरोः सन्तानके द्वन्द्वं तद्वद्यादवसात्वतौ ॥६७

जीर्ण-शीर्ण वाले की रक्षा करने वाला मनुष्य विष्णुलोक के नीचे स्थित स्वर्गलोक में सुशोभित होता है ।५३। जो मनुष्य विष्णु के निमित्त महल, उसी प्रकार कहीं ज्योतिर्लिङ्ग, सूर्य, विरंचि, दुर्गा एवं श्रीधर के लिए भी मन्दिर निर्माण करता है, वह अपने कुल के उद्धारपूर्वक कोटि (करोड़) कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। पुनः कभी स्वर्ग से हटने पर धनी एवं पूज्यतम राजा होता है।५४-५५। देवी के चिह्न स्थानों अथवा योनि में देव-समूह के स्थापित करने से वह लोक में स्मरणीय एवं स्वर्ग में सदैव पूजित होता है।५६। वर्षाकाल में वावली में जल रखने से अग्निष्टोम यज्ञ के फल, शरद् काल में उसमें जल रखे तो वह जल यज्ञीय जल से अधिक महत्वपूर्ण होता है।५७। गर्मी के दिनों में उसमें सुन्दर पान करने योग्य जल रखने से उसे स्वर्ग की प्राप्ति इस भाँति हो जाती है, जिससे उसे कभी भी नरक नहीं जाना पड़ता।५८। द्विजसत्तम ! इस पृथिवी में उस जल को केवल एक दिन के रखने से उसके सात पूर्व के और सात पर पीढ़ी के परिवार पवित्र हो जाते हैं।५९। द्विजवृन्द ! इन चौदह कुलों में पूर्व के सात पितृकुल और पर के सात मातृकुल बताये गये हैं, अब सौ कुल की व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो ! पिता के पूर्व के बीस कुल एवं माता के पूर्व बीस कुल, उसी प्रकार स्त्री के कुल के घर वाले पाँच कुल, पाँच मातृकुल, पाँच पितृकुल, मातामह के पाँच कुल, माता के मातामह कुल के पाँच, गुरु के पितृकुल के पाँच, उनके मातृकुल के पाँच, आचार्य कुल के दो, राजकुल के दश एवं राजा के मातामह कुल के पाँच परिसंख्यात बताये गये हैं, इस प्रकार एक सौ एक परिवार का यह विशाल कुटुम्ब हुआ। विप्रेन्द्र ! अपने साथ-साथ इनका उद्धार परमावश्यक होता है। मुक्त होने के लिए दशार्णव में तीर्थ के देव की अर्चा करके उस सौ कुलों के उद्धार करना चाहिए। द्विज ! मैं अब बीस कुल का विवेचन कर रहा हूँ, सुनो ! मातृकुल के पाँच, पितृकुल के पाँच, पिता के मातामह कुल के दो, माता के मातमह कुल के दो, गुरु कुल के दश, और परपक्ष के एक, इस प्रकार यह इक्कीस कुल का

परपक्षस्य चैकं स्यादेकदिशं कुलं क्रमात् । पानीयमेतत्सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।६८
पानीयेन विना वृत्तिर्लोके नास्तीति कर्हिचित् । वारस्वस्थं पुण्यखण्डं तोये पतति यावति ।।६९
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे चान्ते ब्रह्मत्वमाप्नुयात् । तस्मात्तोयोपरि गृहं प्रसादोपरि वर्जयेत् ।।७०
सूर्यरश्मियुतं यद्वै तत्तोयं तु विनिन्दितम् । चन्द्ररश्मिविहीनं यन्नामृतत्वाय कल्पते ।।७१
तस्माद्दशगुणं कुण्डे तस्माद्दशगुणं ह्रदे । देवानां स्थापनं कुर्यादविमुक्तफलं शुभम् ।।७२
सुस्थितं दुःस्थितं वापि शिवलिङ्गं न चालयेत् । चालनाद्रौरवं याति न स्वर्गं न च स्वर्गभाक् ।।७३
उच्छन्ननगरग्रामे स्थानत्यागे च विप्लवे । पुनः संसारधर्मेण स्थापयेदविचारयन् ।।७४
बाहुदन्तादिप्रतिमा विष्णोश्चान्यस्य सत्तमाः । न चालयेत्स्थापिते च विप्रवृक्षं न चालयेत् ।।७५
केशवं हरिवृक्षं च मधूकं किंशुकं तथा । नाकाले स्थापयेज्जातु चालनाद्ब्रह्महा भवेत् ।।७६
देवालयस्य पुरतः कुर्यात्पुष्करिणीं द्विजाः । ब्राह्मणानां समाजे च राजद्वारे चतुष्पथे ।।७७
देवार्थे ब्राह्मणार्थे च सुखं कुर्याच्च सर्वतः । पश्चिमे पुष्टिकामं तु उत्तरे सर्वकामदम् ।।७८
याम्ये स्वार्थं न कुर्वीत कोणे तु नरकं भवेत् । मुखं प्रकल्पयेन्मध्ये केचिदुत्तरलङ्घनम् ।।७९

एक परिवार हो गया, क्रमशः इनके उद्धार आवश्यक हैं, अतः सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह चराचरात्मक समस्त तीनों लोक सदैव रक्षा करने के योग्य है, बिना पानीय के किसी की कहीं भी स्थिति नहीं हो सकती है, वार स्वस्थ, और पुण्यखंड जब तक जल में गिरता रहता है, उतने दिनों तक उसकी स्थिति स्वर्ग में रहती है और पश्चात् ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए जल के ऊपर और प्रासाद के ऊपर गृह बनाने का निषेध किया गया है।६०-७०। सूर्य की किरणों से संयुक्त जल प्रशस्त नहीं कहा गया है, और उसी भाँति चन्द्र की किरणों से हीन जल मुक्तिप्रदायक नहीं होता है।७१। उससे दश गुना पुण्य कुण्ड की रचना में, और उससे दशगुना पुण्य ह्रद (सरोवर) के बनाने में प्राप्त होता है। देवताओं का स्थापन करना एक मुक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी शुभ फलों को प्रदान करता है।७२। शिवलिंग, अच्छी-बुरी किसी भी परिस्थिति में हो, उसका संचालन (एक स्थान से दूसरे स्थान से ले जाना) कभी न करे, क्योंकि उसके संचालन करने से रौरव नरक के अतिरिक्त न उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, और न वह कभी स्वर्ग का भाजन ही बन सकता है।७३। किसी विप्लव के कारण नगर अथवा गाँव के नष्ट हो जाने पर स्थान त्याग के समय उन्हें भी जैसा कि संसार के धर्म हैं, कहीं विना विचारे ही स्थापित कर देना चाहिए।७४। सत्तम ! विष्णु तथा अन्य की प्रतिमा के बाहु एवं दाँत आदि कोई अंग अथवा समस्त मूर्ति के संचालन उनकी प्रतिष्ठा होने के उपरान्त न करना चाहिए, उसी भाँति ब्राह्मण वृक्ष का भी।७५। केशव, हरि वृक्ष, मधूक (महुवा) एवं किंशुक (पलाश) इन्हें कुसमय में कभी आरोपित न करे, और कर देने पर वहाँ से पुनः अन्यत्र न लगाये, क्योंकि वैसा करने पर उसे ब्रह्म हत्या का दोष लगता है।७६। द्विजगण ! देवालय के सामने ब्राह्मणों की सामूहिक बस्ती राजद्वार और चौराहे पर पुष्करिणी नामक जलाशय बनाना चाहिए।७७। देव और ब्राह्मणों के लिए सभी भाँति से सुख प्रदान करना चाहिए। सरोवर आदि जलाशयों के मुख पश्चिम की ओर करने से पुष्टि, उत्तर में समस्त कामनाओं की सफलता होती है।७८। दक्षिण दिशा में अपना किसी प्रकार का स्वार्थ न करना चाहिए, और अग्नि तथा नैऋत्य कोण में करने से नरक की प्राप्ति होती है, इसलिए मध्यभाग में उसके मुख करने को बताया गया

कुर्याद्दक्षिणपूर्वे तु अर्कहस्तप्रमाणतः । तडागे दु फलाहस्तं हस्तिकं ह्रासयेत्क्रमात् ।।८०
तृप्ये इस्तं नलिन्यादावतो हीनं न कारयेत् । गर्त्ततृणं कलाहस्तं तडागेऽत्र प्रचक्ष्यते ।।
हीने हीनतरं कुर्याद्धस्तमानेन ह्रासयेत् ।।८१

यूपस्तथा खादिर एव कार्यः श्वैपर्णिको धात्रिसमुद्भवश्च ।
मानस्तथा षोडशहस्तसम्मितो रत्नात्स्वण्डीयुगकाम्ययोजितैः।।८२
आनाहभग्ने च भवेच्च तस्य विंशाङ्गुलो द्विगुणो मध्यगश्च ।
मध्येऽङ्गुलैश्च हीनः कार्यः शुभदः सर्वदा स्यात्।।८३
एवंविधश्चैव तडागयूपो मध्ये तथा षोडशहस्तसंमितः ।
कूपे च यूपोऽप्यथ हस्तमात्रस्ततश्चतुर्हस्तमितः प्रकीर्तितः।।८४
आरामयोगेऽप्यथ मण्डपे च कार्यश्चतुर्हस्तमितोऽथ यूपः ।
सम्पूर्णमाने कथितं प्रमाणं हीने तु हीनं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।।
हस्तद्वयं प्रापितव्यं तडागे हस्तः सार्धः पुष्करिण्यां प्ररोदः ।।८५

प्रादेशं वै हस्तमानं कूपयूपस्य रोपतः । न कुर्याज्जलमग्नं च यूपं सर्वत्र सत्तमाः ।।८६
तडागे चापि आरामे स्थापयेच्च जलोपरि । हस्तमर्धं तदर्धं स्यान्मानेनानेन दापयेत् ।।
वाप्यां गर्ते पुष्करिण्यां प्रकुर्याज्जलसम्मितम् ।।८७

है, और कुछ लोगों की सम्मति उत्तर की ओर के लिए ही है ।७९। दक्षिण-पूर्व की ओर बारह हाथ के प्रमाण से बनाना चाहिए, तालाब में क्रमशः कम कर देना चाहिए ।८०। नलिनी आदि (जलाशय) में कुछ भी कम करने की आवश्यकता नहीं होती है । सरोवर के मध्य में स्तम्भ का सोलह हाथ का मान बताया गया है ।८१। यदि छोटा (जलाशय) है, तो क्रमानुसार हाथ के मान से उसे कम कर उसी भाँति का छोटा स्तम्भ भी लगाना चाहिए । खैर, सेमर आदि और आँवले के ही स्तम्भ सोलह हाथ के मान से सौन्दर्यपूर्ण बनाकर यथाशक्ति रत्न से विभूषित करके खड़ा करना बताया गया है ।८२। कदाचित् उस स्तम्भ की लम्बाई भाग हो जाये तो, चालीस अंगुल के उसके मध्य भाग के मध्य में कुछ अंगुल कम (पतला) कर देने पर सदैव के लिए वह शुभदायक हो जाता है । इसी प्रकार का स्तम्भ जो सोलह हाथ का लम्बा हो, तालाब के मध्य में स्थापित करने के लिए आदेश दिया गया है । और कुएँ के लिए एक हाथ अथवा चार हाथ का स्तम्भ कहा गया है ।८३-८४। उसी भाँति बगीचे, और मण्डप में भी चार हाथ का स्तम्भ लगाना चाहिए । इस भाँति सम्पूर्ण मानों की विवेचनपूर्ण व्याख्या करते हुए यह बता दिया गया कि बड़े सरोवर आदि में बड़ा स्तम्भ और छोटे में छोटे स्तम्भ के लिए सदैव ध्यान रखना चाहिए । जैसे—तालाब के स्तम्भ के लिए दो हाथ और पुष्करिणी के स्तम्भ के लिए डेढ़ हाथ भूमि के मध्य रहने को बताया गया है । उसी प्रकार कुएँ के स्तम्भ के लिए आदेश के मान से एक हाथ कहा गया है, सत्तम ! इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि स्तम्भ कहीं भी जलमग्न न होने पाये ।८५-८६। तालाब और बगीचे के स्तम्भ, क्रमशः आधा हाथ और उसके आधे हाथ जल के ऊपर रहने चाहिए, उसी भाँति बावली, गड्ढे तथा पुष्करिणी के स्तम्भ जल सतह के बराबर रहने को बताये गये है ।८७। गलियों में जितने धूलिकण हैं, तथा जितने दिन

यावत्प्रतोलीगतरेणुसङ्गसंख्यागणो नो जरतानुपैति ।
तावत्सुरेशः सुरलोकवासी प्रासादकृज्जातु न जायते हि ।।८८
किं वा वाच्यः पुष्करिण्या प्रभावः कर्ता यः स्याद्वारुणो ब्रह्मलोकात् ।
यावत्कालो बाहुमात्रोद्धता स्याद्दृष्टिःप्रोक्ता न निवर्तेत्कदाचित् ।।८९
लक्षैकमारामभयोत्तमः स्यान्मध्यं तदर्धं च कनिष्ठमानम् ।
विनार्जुनैर्बदरैः शैलुकैश्च हीनं कुर्याच्छानलैः पातिलैश्च।।९०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्तनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

पूर्तनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

शोधयेत्प्रथमं भूमिं मितां कृत्वा ततो द्विजाः । दशहस्तेन दण्डेन पञ्चहस्तेन वा पुनः ।।१
वाहयेत्सदा वृषभैस्तडागार्थेऽपि भूमिकाम् । देवागारस्य या भूमिः श्वेतैश्च वृषभैरपि ।।२
या भूमिर्ग्रहयागार्थे तन्न वाहैरपि स्पृशेत् । आरामार्थे कृष्णवृषैः कूपार्थखननैरपि ।।३

वे वर्तमान रहेंगे (अर्थात् महाप्रलय तक), उतने समय तक वह पुरुष जो देवों के लिए महल निर्माण कराता है, सुरलोक में देवताओं का आधिपत्य प्राप्त कर वहाँ सुशोभित होता है ।८८। पुष्करिणी के प्रभाव का वर्णन कौन कर सकता है, क्योंकि जिसका निर्माण कर्त्ता स्वयं वरुण रूप होकर जब तक कि बाहुमात्रोद्धत दृष्टि का विधान है उतने दिनों तक ब्रह्मलोक का निवासी होता है । बगीचे में स्थापित होने वाले लोहे के स्तम्भ का एक लक्ष मान बताया गया है, उसके आधे मान के स्तम्भ को मध्यम, और उसके आधे मान को कनिष्ठ कहा गया है. इन दोनों से भिन्न (अर्थात् उत्तम मान वाला स्तम्भ) मुनियों की सम्मति से प्रशस्त है, काष्ठ के भी स्तम्भ बनाने में अर्जुन, बेर, शैलुक, शानल और पातिल का त्याग आवश्यक है ।८९-९०

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पूर्तनिर्णय नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

पूर्त का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजगण ! दश हाथ के दण्ड अथवा पाँच हाथ के दण्ड से प्रथम भूमि संशोधन करने के पश्चात् सरोवर आदि जिसका निर्माण कराना हो, कराये ।१। सरोवर के खोदते समय निकली हुई मिट्टियों को बैलों द्वारा अन्यत्र रखनी चाहिए, उसी भाँति देव मन्दिर के निर्माण के समय उसकी मिट्टी को श्वेत वर्ण के बैलों द्वारा निकालने को कहा गया है ।२। गृह-यज्ञ के मण्डपादि निर्माण के समय उसकी मिट्टी को किसी भी वाहन द्वारा न हटाना चाहिए, क्योंकि वाहनों को उसका स्पर्श करने के लिए निषेध किया गया है । बगीचे एवं कुएँ के खोदने में काले रंग के बैलों द्वारा उसे मिट्टी के कार्य को संपन्न करना

वाहयेत्त्रिदिनं विप्राः पञ्चव्रीहींश्च वापयेत् । देवपक्षे सप्तगुण आरामकरणे गुणः ।।४
मुद्गमाषौ धान्यतिलाः श्यामाकश्चेति पञ्चमः । मसूरश्च कलायश्च सप्तव्रीहिगणः स्मृतः ।।५
सर्षपश्च कलायश्च मुद्गो माषश्चतुर्थकः । व्रीहित्रयं माषमुद्गौ श्यामाको महिषो गणः ।।६
सुवर्णमृत्तिका ग्राह्या वर्णानामनुपूर्वशः । बिल्ववृक्षैरियं कुर्याद्यूपशूनध्वजे दिने ।।७
अरत्निमात्रं विज्ञेयं प्रशस्तं यष्टिहस्तकम् । ऊर्णासूत्रमयीं मूर्तिं कृत्वा कुर्याच्चतुष्टयम् ।।८
क्षीरदारुगर्तयुतं द्वादशाङ्गुलमेव च । ज्वालयेत्तिलतैलेन तथा केशरजेन वा ।।९
पूर्वदिक्प्रणवे सिद्धिः पश्चिमाशागतिः शुभा । मरणे दक्षिणायां च हानिः स्यादुत्तरे स्थिते ।।१०
कल्पे विपत्करं विद्यात्तथा चैव च दिग्गते । नारसिंहेन मनुना चाग्निं प्रज्वाल्य दापयेत् ।।११
मासे घटे तथा मासे कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् । सूत्रयेत्कीलयेत्पश्चान्महामाने द्विजोत्तमाः ।।१२
ततो वास्तुबलिं दद्यात्खनित्रं परिपूजयेत् । आब्रह्मन्निति मन्त्रेण खनयेन्मध्यदेशतः ।।१३
आज्येन मधुयुक्तेन गात्रमेकं प्रलेपयेत् । स्वर्णतोयैस्तथा रत्नतोयैः स्नात्वा प्रलेपयेत् ।।१४
ईशानाभिमुखेनैव कूपपक्षे विदुर्बुधाः । अकृत्वा वास्तुयागं च यस्तडागं समुत्सृजेत् ।।१५
तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्धं निकृन्तति । प्रासादे च तथारामे महाकूपे तथैव च ।।१६
गृहारम्भे च विप्रेन्द्रा दद्याद्वास्तुबलिं ततः । शालैश्च खादिरैश्चैव पलाशैः केशरस्य च ।।१७

चाहिए।३। विप्रवृन्द ! तीन दिन के भीतर मिट्टी के कार्य समाप्त कर उपरान्त पाँच प्रकार के अन्न, देवमन्दिर-निर्माण अथवा बगीचे का कार्य हो तो सात प्रकार के अन्नों का बीजारोपण करना बताया गया है—मूँग, उरद, पान, तिल, और श्यामा ककुनी, ये पाँच अथवा मसूर और मटर समेत सात प्रकार के अन्न कहे गये हैं।४-५। सरसों (राई), मटर, मूँग, उरद, इसमें उरद, मूँग और श्यामाक (काकुन) को महिष गण बताया गया है।६। सभी वर्ण के मनुष्यों को गृह-निर्माण करने के विषय में बेल के बने हुए स्तम्भ, शून (चक्राकार) और ध्वज (स्थापन) के दिन, सर्वप्रथम क्रमशः (शास्त्र में बताये गये रंग की) अच्छी मिट्टी की अरत्नि मात्र की एक मूर्ति बनाकर उसे ऊनी सूत्रमय करे।७-८। पुनः उसे तिल के तेल अथवा केशर-तेल के द्वारा प्रज्वलित करना चाहिए, पूरब दिशा की ओर प्रणव के होने से सिद्धि, पश्चिम में शुभ गति, दक्षिण में मरण और उत्तर की ओर स्थित होने पर हानि होती है, उसी प्रकार कल्प दिशाओं के मध्य में स्थित होने पर आपदायें घेरती हैं। द्विजोत्तम ! मास, घट एवं मास में भूमि ग्रहण करके पश्चात् महामान के अनुसार सूत्र से घेर कर कील लगाना चाहिए।९-१२। तदुपरान्त वास्तु बलि प्रदान कर खोदने वाले अस्त्र (कुदार, फरुहा आदि) की पूजा विधिवत् सुसम्पन्न करे—'आ ब्रह्मन्निति' मंत्र के उच्चारणपूर्वक मध्य स्थल में खनना चाहिए।१३। सुवर्ण के जल और रत्न के जल से स्नान कराकर उसमें घी मिश्रित शहद का लेपन करे, यह सभी कर्म ईशानकोण के सम्मुख होकर करना चाहिए, इस प्रकार कुएँ खोदने के विषय में विद्वानों ने अपनी सम्मितियाँ प्रकट की हैं। वास्तु बलि के बिना प्रदान किये यदि तालाब का निर्माण कराया जाये, तो उसका आधा पुण्य वैवस्वत राजा नष्ट कर देते हैं। विप्रेन्द्रवृन्द ! उसी भाँति प्रासाद (महल), बगीचा, महाकूप और गृहारम्भ आदि सभी में सर्व प्रथम वास्तु बलि प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक होता है। शाल (शाखू), खैर, पलाश, केशर, बेल एवं बकुल का ही स्तम्भ

बिल्वस्य बकुलस्यैव कलौ यूपः प्रशस्यते । शुना चक्रोदरकृतं तत्पार्श्वे तु ध्वजद्वयम् ।।१८
सर्पाकारस्तडागे च कूपे कुम्भाकृतिर्भवेत् । आरामे पद्मपुष्पाभश्छत्रकारस्तु मण्डले ।।१९
कुर्याच्छुनाकृतिं सेतौ विष्णुगेहे गदाकृतिम् । अश्वाकारं चाश्वमेधे नरमेधे नराकृतिम् ।।२०
गोयागे च वृषाकारं गृहयागे ध्वजाकृतिम् । श्मशानगोप्रचारार्थं चैत्यवृक्षालयोत्तमाः ।।२१
चक्राकारो लक्षहोमे कोटिहोमे हलाकृतिः । नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यते द्रुमरोपणे ।।२२
एवं शस्योदितां भूमिं शुद्धां पूर्वप्लवान्विताम् । परिगृह्य यजेद्देवं वनपालं शिखिध्वजम् ।।२३
सोमं च नागराजानं ततो बीजं सुशोधयेत् । आनयेद्धारयेत्ताश्चाद्रौद्रतापेन तापयेत् ।।२४
दिनद्वयान्तरे चैव मन्त्रैश्च परिमन्त्रयेत् । गर्भाधानं ततः कुर्याद्विष्णुमन्त्रं जपंस्त्रिधा ।।२५
एवमस्येति मन्त्रेण त्रिधा जप्त्वा विमार्जयेत् । देहि मेति च मन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य दशवारिणा ।।२६
इत्यगृहीतमनुना पञ्चधा परिमन्त्रितम् । त्र्यम्बकेनेति मन्त्रेण बीजमारोपयेत्ततः ।।२७
भार्यामृतुमतीं स्नात्वा पञ्चमेऽहनि सत्तमाः । उत्सङ्गे स्थापयित्वा च चुम्बयेन्मन्त्रयेत्ततः ।।२८
एवं वृक्षस्य संस्कारमध्येऽपि त्वनुगच्छति । तेन पुत्रत्वमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।।२९
तुलस्या बीजमादाय वैष्णवर्क्षे द्विजोऽहनि । खानयेदपि गोमूत्रबिन्दुतोयैः प्रसेचयेत् ।।३०

कलियुग के लिए प्रशस्त कहा गया है। पुनः उसके पार्श्व में कुत्ते के आकार की भाँति दो ध्वजाएँ, जिसका उदर चक्राकार होता है, स्थापित करनी चाहिए।१४-१८। सरोवर में उसका आकार सर्प की भाँति, कुएँ में घड़े के समान, उद्यान (बगीचे) के लिए कमल पुष्प की भाँति, मंडल के लिए छत्राकार, पुल के लिए कुत्ते के आकार, विष्णु मन्दिर में गदा की भाँति, अश्वमेध यज्ञ में अश्व की भाँति, नरमेध यज्ञ में मनुष्य की भाँति, गो-यज्ञ में बैल की भाँति, गृहयज्ञ में ध्वज की भाँति बनाना चाहिए, और श्मशान एवं गो प्रचारार्थ पीपल आदि वृक्षों की भाँति बनाना उत्तम बताया गया।१९-२१। लक्ष आहुति वाले हवन में चक्राकार, करोड़ आहुति वाले हवन में हलाकार एवं वृक्ष के आरोपण करने में उसके मूल भाग में नक्षत्रों की भाँति बनाना चाहिए।२२। इस प्रकार शस्य के प्रशस्त एवं शुद्ध भूमि में जिसमें पहले पानी भर दिया गया रहा हो, मयूर ध्वजा वाले वनपाल देव की अर्चा करने के उपरान्त नागराज सोम की पूजा करे, तथा पश्चात् बीज के संशोधन, आनयन और धारण आदि क्रियाओं को सुसम्पन्न करना चाहिए, उसे भीषण ताप से संतप्त कर दो दिन के भीतर ही मंत्रों से अभिमंत्रित करके पुनः विष्णुमंत्र का तीन बार जपपूर्वक गर्भाधान आरम्भ करे।२३-२५। पश्चात् 'अस्येति' मंत्र के तीन बार जपपूर्वक उसका मार्जन (शुद्धि) और 'देहि मेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए देश जल से उसका संप्रोक्षण करना चाहिए।२६। मनु की बात को न मानने वालों ने इस भाँति पाँच प्रकार से अभिमंत्रित करना बताया है, तदनन्तर 'त्र्यम्बकेन' इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक बीजारोपण करना चाहिए। सत्तमगण! रजोवती स्त्री को स्नान से शुद्ध होने पर पाँचवें दिन अपने गोद में लेकर उसका चुम्बन एवं पश्चात् उसे अभिमंत्रित करना चाहिए।२७-२८। इसी भाँति वृक्ष के संस्कार के मध्य समय में भी यही अनुकरण करना चाहिए, इससे उसे निश्चित पुत्र की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं।२९। विष्णु भगवान् के नक्षत्र के दिन ब्राह्मण को चाहिए कि तुलसी के बीज लेकर भूमि खोदकर उसमें रखे और गोमूत्र के बिन्दु-जल से उसका सेवन करता रहे, इस

एतां तु स्वर्गमाप्नोति सितकुम्भे निपातयेत् । एकरात्रं परिस्थाप्य तत आरोपयेद्भुवि ॥३१
अविधौ कूपवाप्यादौ खनने सूयते क्वचित् । कुर्वन्ति सहकारादिरोपणं ये नराधमाः ॥
लभन्ते न फलं तेषामिह चाभ्येत्यधोगतिम् ॥३२
नदीतीरे श्मशाने च स्वगृहस्य च दक्षिणे । तुलसीरोपणं कृत्वा याति कर्ता यमालयम् ॥३३
पत्रपुष्पफलानां च रजोरेणुसमागमाः । पोषयन्ति च पितरं प्रत्यहं प्रतिकर्मणि ॥३४
यस्तु वृक्षं प्रकुरुते छायापुष्पफलोपगम् । पथि देवालये चापि पापात्तारयते पितॄन् ॥
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रत्यभ्येति शुभं फलम् ॥३५
अतीतानागतांश्चातः पितॄन्स स्वर्गतो द्विजाः । तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षं प्ररोपयेत् ॥३६
अपुत्रस्य हि पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते । यत्नेनापि च विप्रेन्द्रा अश्वत्थारोपणं कुरु ॥३७
शतैः पुत्रसहस्राणामेक एव विशिष्यते । कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्वित्रिप्रसङ्ख्यया ॥३८
मुक्तिहेतुः सहस्राणां लक्षकोटीनि यानि च । धनी चाश्वत्थवृक्षे च अशोकः शोकनाशनः ॥३९
प्लक्षो भार्याप्रदश्चैव बिल्व आयुष्प्रदः स्मृतः । धनप्रदो जम्बुवृक्षो ब्रह्मदः प्लक्षवृक्षकः ॥४०
तिन्दुकात्कुलवृद्धिः स्याद्दाडिमी कामिनीप्रदः । बकुलो वञ्जुलश्चैव पापहा बलबुद्धिदः ॥४१
स्वर्गप्रदा धातकी स्याद्वटो मोक्षप्रदायकः । सहकारः कामप्रदो गुवाकः सिद्धिमादिशेत् ॥४२

प्रकार करने से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, पुनः उसे श्वेत कुम्भ की भाँति (गमले आदि) में एक रात रखकर पश्चात् भूमि में उसका आरोपण करना चाहिए।३०-३१। विधानहीन होकर कुएँ, बावली आदि के खोदने के समय जो नराधम सहकार (आम) आदि के आरोपण प्रसव आदि करते हैं, उन्हें उनके फल प्राप्त नहीं होते हैं, प्रत्युत उनकी अधोगति होती है।३२। नदी के तट, श्मशान अथवा अपने घर के दक्षिण की ओर तुलसी वृक्ष के आरोपण करने से नरक की प्राप्ति होती है।३३। आरोपित वृक्षों में पत्र, पुष्प और फलों के रजकण, प्रत्येक कर्मों में पितरों को पोषित करता है।३४। जो कोई (अत्यन्त सघन) छाया, पुष्प और फलों वाले वृक्ष का आरोपण किसी मार्ग, चौराहे या देवालय में करता है, उसके पितरगण, पाप से मुक्त हो जाते हैं, और उसे स्वर्ग लोक में ख्याति एवं शुभ फल की प्राप्ति होती है।३५। द्विजवृन्द ! वृक्ष का आरोपण करने वाला व्यक्ति अपने पूर्व और पर के पितरों को पाप-मुक्त कराकर स्वर्ग प्रदान कराता है, अतः वृक्ष का आरोपण परमावश्यक होता है।३६। विप्रेन्द्रवृन्द ! इस लोक में वृक्षगण, पुत्रहीन को पुत्र प्रदान की शक्ति देते हैं, इसलिए अश्वत्थ (पीपल) के आरोपण के लिए प्रयत्नशील रहो।३७। सैकड़ों एवं सहस्रों पुत्रों में एक ही कोई विशिष्ट व्यक्ति होता है, जो इसको अपनाता है, विप्रवृन्द ! कामनावश एक, दो या तीन वृक्ष के आरोपण अवश्य करने चाहिए।३८। उसी भाँति मुक्ति प्राप्ति के लिए सहस्रों, लाखों एवं करोड़ों (अर्थात् जहाँ तक हो सके) वृक्षों के आरोपण करे। पीपल के वृक्ष आरोपण करने से धन, अशोक से शोक नाश, पाकड़ से स्त्री प्राप्ति, बेल से आयु, जामुन से धन, और पाकड़ से ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है।३९-४०। तेंदू से कुल वृद्धि, अनार से कामिनी, वकुल एवं अशोक से पापमुक्ति और बल बुद्धि की प्राप्ति होती है।४१। आवले से स्वर्ग, बरगद से मोक्ष, आम से सभी कामनाएँ, सुपारी से सिद्धि, बलवल से सभी प्रकार के धान्य, और महुवे तथा अर्जुन के भी वही फल बताये गये हैं। कदम्ब से विपुल कीर्ति,

सर्वशस्यं बलवले मधूके चार्जुने तथा । कदम्बे विपुला कीर्तिस्तिन्तिडी धर्मदूषिकः ।।४३
जीवन्त्या रोगशान्तिः स्यात्केशरः शत्रुमर्दनः । धनप्रदश्चैव वटो वटः श्वेतवटस्तथा ।।४४
पनसे मन्दबुद्धिः स्यात्कलिवृक्षः श्रियं हरेत् । कलिवृक्षं च शाखोट उदरावर्तकं तथा ।।४५
तथा च [1]मर्कटीनीपरोपणात्संततिक्षयः । शिंशपां चार्जुनं चैव जयन्ती हय[2]मारकान् ।।
श्रीवृक्षं किंशुकं चैव रोपणात्स्वर्गमादिशेत् ।।४६
न पूर्वां रोपयेज्जातु समिधं कण्टकीद्रुमम् । कुशं पद्मं जलजानां रोपणाद्दुर्गतिं व्रजेत् ।।४७
मन्दारे कुलहानिः स्याच्छाल्मले शुक्रबुद्धिमान् । निम्बे पशुविनाशः स्याच्छत्राके कुलपांसलः ।।४८
उत्पन्ने कुलपातः स्यात्पशोरेव क्षयो भवेत् । शत्रुवृद्धिः काकनादे बलपूगे हतश्रियः ।।४९
विना क्रतौ विरुद्धश्च न सिंहं द्विजसत्तमाः । क्रतौ हि स्याद्विरुद्धश्च प्राप्नुयान्नरकाकृतिम् ।।५०
सहकारसहस्रात्तु वरिष्ठं धातकीद्वयम् । तस्माच्चैव सहस्राद्धि पाटलैका विशिष्यते ।।५१
पाटलानां शतात्पश्चादेकरक्तवटो भवेत् । वटानां द्विसहस्राच्च पञ्चकं नागकेशरम् ।।५२
तस्माद्वरिष्ठः श्रीवृक्षो जम्बूवृक्षः प्रशस्यते । तस्माद्धिमवतो ज्ञेयः श्रीपर्णीवृक्ष उत्तमः ।।५३
तिन्दुकस्य त्रयश्चैव जम्बूवृक्षस्य पञ्चकम् । कदम्बार्जुनवृक्षस्य नारिकेरस्य च त्रयम् ।।
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा कारयेत्कीदृशं बलम् ।।५४
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । स्वर्गभोगं समश्नाति विधिवद्द्रुमरोपणे ।।५५

इमली से दूषित धर्म, हर्रे से रोगशांति, केशर से शत्रु-नाश, बरगद तथा श्वेत बरगद से धन, कटहल से मंदबुद्धि, कलिवृक्ष से श्रीहानि नाभि की भाँति प्रकार वाले शाखोट को ही कलिवृक्ष बताया गया है। जवास से संतानानाश एवं शिंशपा, अर्जुन, जयंती, कनेर श्री वृक्ष तथा किंशुक के लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।४२-४६। काँटे वाले एव समिध शमी के वृक्ष पहले कभी नहीं लगाने चाहिए, कुश, कमल, एवं पानी में उत्पन्न रहने वाले आदि वृक्षों के लगाने से दुर्गति प्राप्ति होती है।४७। मदार से कुल नाश, सेमर से शुक्र की भाँति तीव्र बुद्धि, नीम से पशु विनाश, तथा छत्राक (केला आदि) से व्यभिचारी कुल हो जाता है।४८। हाते के भीतर इसके स्वयं उत्पन्न होने पर कुल नाश, एवं पशुक्षय होता है। काकनाद से शत्रुवृद्धि, और बलपूग से श्री नाश होता है।४९। द्विजसत्तम! यज्ञ में सिंह के बिना विरोध न करना चाहिए। और क्रतु में विरुद्ध होने पर उसे नारकीय आकृति की प्राप्ति होती है।५०। सहस्रों आम के पेड़ से घातकी के दो ही वृक्ष लगाना अत्यन्त उत्तम बताया गया है, उसी भाँति सहस्रों घातकी से पाटल का एक वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है।५१। सैकड़ों पाटल से एक रक्तवट, दो सहस्र वटों से नागकेशर के पाँच वृक्ष, उससे श्रीवृक्ष और जामुन के वृक्ष कहे गये हैं पुनः उससे भी पर्णी वृक्ष, तथा तीन तेंदू, पाँच जामुन, कदम्ब, अर्जुन एवं नारियल के तीन वृक्ष उत्तम बताये गये हैं, इन्हें अवश्य लगाने चाहिए, इस प्रकार के वृक्षों के लगाने से उस धर्मात्मा को किस भाँति बल की प्राप्ति होती है, (मैं बता रहा हूँ)। सहस्रकोटि कल्प, एवं सौ कोटि कल्प एवं सौ कोटिकल्प तक स्वर्ग के उपभोग उसे इन अनेक भाँति के वृक्षों के लगाने से प्राप्त होते हैं

---

१. केवाँछ इत्युदीच्यभाषयोच्यते। २. करवीरान्। इह सर्वत्र शेषषष्ठीविषये कर्मत्वमार्षम्।

जन्मत्रयादिकं पापं विनाश्य स्वर्गमादिशेत् । शतरोपी च ब्रह्मत्वं विष्णुत्वं च सहस्रके ॥५६
तुलसीरोपणाच्चैत्र आधिव्याधियुतो भवेत् । वैशाखे कीर्तिमाप्नोति ज्येष्ठे तु मरणं व्रजेत् ॥५७
आषाढे कीर्तिमाप्नोति श्रावणे परमां गतिम् । भाद्रे धनागमश्चैव आश्विने कार्तिके क्षयः ॥
तुलसी त्रिविधा लोके कृते श्वेता प्रशस्यते ॥५८
किञ्चिच्छेदं च यः कुर्यादश्वत्थस्य वटस्य च । श्रीवृक्षस्य च विप्रेन्द्राः स भवेद्ब्रह्मघातकः ॥५९
मूलच्छेदेन विप्रेन्द्राः कुलपातो भवेदनु । वृक्षच्छेदी भवेन्मूक आधिव्याधिशतं भजेत् ॥
सायं प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥६०
फलमामकुलत्थश्च माषो मुद्गास्तिला यवाः । नृत्यगीतपयःकेशफलपुष्पप्रदो भवेत् ॥६१
अविकाकसकृच्चूर्णं यवचूर्णानि यानि च । गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ॥६२
तमेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदम् । रोहिमत्स्यस्य पित्तानि धान्याकं तत्र स्थापयेत् ॥६३
तेनोदकादिसेकश्च कृतो वै वृद्धिमादिशेत् । तित्तिडीबीजमादाय इक्षुदण्डेन मर्दयेत् ॥६४
तेनाशोके प्रसेकः स्यात्सहकारस्य वृद्धिमान् । नालिकेरोदकं चैव माक्षिकैः सह सेचयेत् ॥६५
दोहदं सर्ववृक्षाणां पूगादीनां विशेषतः । दशशिराबीजयुतादभिषेकाच्च जीवति ॥६६
प्राक्प्रसूतिर्गवादीनां छागादिमहिषस्य च । जरासु तोयं वृक्षाग्रे स्थापयेदविचारयन् ॥६७
परस्य सहकारस्य फलं स्यान्नात्र संशयः । मेषस्य च वितालस्य यवागूं च समाहरेत् ॥६८

।५२-५५। उसके तीन जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और शीघ्र स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है, सौ वृक्षों को लगाने से ब्रह्मत्व एवं सहस्र से विष्णुत्व की प्राप्ति बतायी गयी है । चैत्र मास में तुलसी के वृक्ष लगाने से शारीरिक-मानसिक दोनों के कष्ट, वैशाख में कीर्ति, ज्येष्ठ में मरण, आषाढ़ में कीर्ति, सावन में परमगति, भादों में धनागम, आश्विन और कार्तिक में क्षय होता है । लोक में तीन प्रकार की तुलसी में श्वेत तुलसी प्रशस्त बतायी गयी है ।५६-५८। विप्रेन्द्रगण ! पीपल, बरगद तथा श्रीवृक्ष के लेशमात्र भी काटने से उसे ब्रह्मघाती कहा जाता है ।५९। विप्रेन्द्र ! इनके जड़ समेत काटने पर तो कुल नाश ही हो जाता है, क्योंकि वृक्ष काटने वाला गूंगा होता है, उसे सैकड़ों शारीरिक एवं मानसिक कष्ट सदैव घेरे रहते हैं । प्रातःकाल, सायंकाल, धूप के अंत में, शीतकाल (जाड़ों) में एक आध दिन के उपरान्त आम, मटर, उरद, मूँग, तिल और यवा, नृत्य, गीत, पय, केश, फल और पुष्प प्रदान करते हैं ।६०-६१। भेड़, कौवे के चूर्ण, यव के चूर्ण, गोमांस, जल, इन्हें सात रात-दिन ढाँक के रख देने पर इनमें से एक-एक समस्त वृक्षों के फल, पुष्प आदि की वृद्धि प्रदान करते हैं, और रोहू मछली के पित्त में धान्याक रखकर उसके जल से जिसका सेचन किया जाये, उसकी वृद्धि होती है । तित्तड़ी के बीज को ऊख के दंडे से अच्छी तरह घिसने से अशोक में प्रसेक और आम के लिए वृद्धि प्राप्त होती है । नारियल के जल में माक्षिक (मोम) जलाकर सींचने से सभी वृक्षों में विशेषकर सुपाड़ी में अंकुर उत्पन्न होता है । दशशिरा के बीज मिलाकर सीचने से तो उसमें प्राण संचार ही होने लगता है ।६२-६६। गौ आदि के प्रथम प्रसव को बकरी भैंसे आदि के जरा में मिश्रित जल को वृक्षों के अग्रभाग में रख दे, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ।६७। उससे आम में फलों की अत्यन्त वृद्धि होती है, भेंड़ और विताल के लप्सी बनाकर उसमें एक मास तक राई डालकर मर्दन करे, पश्चात् उसे तीन दिन

तत्र मासैः सर्षपैश्च पूरयेन्मर्दयेत्ततः । गुवाकवृक्षकं देव घर्षयेन्मर्दयेत्त्रिभिः ।।६९
मृतोऽपि जीवयेच्छीघ्रं म्रियमाणोऽपि जीवति । निम्बपत्रं योगपत्रं शतावरिपुनर्नवाम् ।।७०
क्षीरिकाताम्रकैः पत्रैर्धूमं दद्याद्दिनत्रयम् । सहकारस्य मूलेन कीटरोधो न जायते ।।७१
ततः प्राधान्यतो वक्ष्ये द्रुमाणां दोहदोऽन्यथा । मत्स्योदकेन सिक्तेन आम्राणां वृद्धिरिष्यते ।।७२
पक्वाम्रं रुधिरं चैव दाडिमानां प्रशस्यते । यवोदकं सगोमांसं केतकीनां प्रशस्यते ।।७३
क्षीरके बलवृद्धिः स्यात्तिंदुकः करमर्दकः । मांसपूतिरसामज्जा शोकताले गुवाकके ।।७४
सपूतिमांसं सघृतं नालिकेरस्य रोहितम् । मधुयष्ट्युदकैः सेकात्सामान्यं निहितं भवेत् ।।७५
कपित्थबिल्वयोः सेकं गुडतोयेन सेचयेत् । जातीनां मल्लिकानां च कुन्दानां रन्तिकस्य च ।।७६
गंधतोयसितकरं सर्पनिर्मोक धूपकम् । कूर्ममांसमन्नरसं विडंगस्य च पुष्पकम् ।।७७
रथ्यावृक्षे प्रतिष्ठाप्य फलवाञ्जायते ततः । वातसर्पस्य निर्मोकं तगराजगवस्य च ।।७८
दद्याद्धूपं धान्यमध्ये धान्यवृद्धिश्च जायते । मयूरपत्रमादायच्छागरोमाणि सप्त वै ।।७९
एरण्डतैलयोगेन दद्याद्धूपं निशागमे । हिंगुकुसुमसंयोगान्मूषिकाणां पलायनम् (?) परिन्यसेत् ।।८०
करिविष्ठामृच्छविष्ठां कृत्तिकायां समाहरेत् । निशातोये प्रसेकः स्यात्तत्क्षात्रमूलकं हरेत् ।।८१

अश्वत्थमूले दशहस्तमात्रं क्षेत्रं पवित्रं पुरुषोत्तमस्य ।
अश्वत्थच्छायासलिलस्य मध्ये विशेषतो वै त्रिपथैव गंगा ।।८२

तक गुवाक वृक्ष में घिसता रहे, तो यदि वह मृत हो गया हो तो जीवित हो जाता है, और मरणासन्न भी जीवित हो जाता है। नीम की पत्ती, योग की पत्ती, शतावर, पुनर्नवा (गदहपुन्ना) और क्षीरिका को रक्तपत्रों में मिलाकर उसकी तीन दिन धूप प्रदान करने से आम के जड़ में कीड़े नहीं लगते हैं।६८-७१। इसके उपरान्त मैं तुम्हें वृक्षों में अंकुर के शीघ्र निकलने की क्रिया बता रहा हूँ ! मछली के जल से सींचने पर आमों की शीघ्र और अत्यन्त वृद्धि होती है।७२। पके आम और रुधिर अनार की वृद्धि के लिए प्रशस्त बताया गया है, उसी भाँति केतकी के लिए जवा के जल मिश्रित गोमांस अत्यन्त प्रशस्त हैं।७३। उससे (दूध वाले) क्षीरक वृक्षों में बल की बृद्धि होती है, उसी प्रकार तिंदुक से हाथ में खुजलाहट, शोकताल सुपारी से मांस की दुर्गन्ध और रस मज्जा उत्पन्न होता है। रोहित (रोहू) मछली के जल से नारियल में, घी, गन्ध और मांस की वृद्धि होती है। शहद, जेठीमधु (पान की जड़) के जल से सामान्य वृद्धि होती है।७४-७५। कैथ और बेल की वृद्धि के लिए गुड़ के जल से सींचना चाहिए। जूही, चमेली, कुंद, एवं रन्तिक में गंध, जल और श्वेत घने की वृद्धि साँप की केचुल की धूप देने से होती है। कछुए के मांस अन्न रस तथा विडङ्ग के पुष्प को गावों के मध्यवाले एवं नगरों की गलियों के वृक्षों में छोड़ने से उनकी अत्यन्त वृद्धि होती है। वायुप्रकृतिक साँप की केंचुल और तगर की धूप शस्यों में देने से धान्य वृद्धि होती है। मयूर के पखने बकरी के सातलोम, इन्हें रेड़ी के तेल में मिलाकर आधी रात के समय इसकी धूप देने से चूहे पलायन कर जाते हैं, तथा हींग एवं कुसुम के संयोग से भी यही होता है।७६-८०। कृत्तिका नक्षत्र के दिन हाथी एवं रीक्ष के मल को जल में मिलाकर आधी रात के समय उससे सींचने से क्षात्र मूल नष्ट हो जाता है।८१। पीपल के वृक्ष में दशहाथतक पुरुषोत्तम का क्षेत्र कहा जाता है, पीपल की छाया यदि कहीं जल में हो तो वह विशेष कर त्रिपथगा

बाहुविंशान्तरे रोपेत्सहकारं स धर्मवित् । कलाहस्तान्तरं धात्रीं बकुलं वंजुलं तथा ।।८३
श्रेपर्णिकं च पुन्नागं श्रीवृक्षं द्विगुणं तरौ । हस्ते शैलमये चैव उत्तमं मानमीरितम् ।।८४
शैलेष्टकादिरचिते चतुर्हस्ते तु सम्मिते । वाप्यादीनां तु कूपानामेकवृक्षादिकस्य च ।।८५
श्रीविष्णोर्वृक्षपक्षे च वरुणेष्टं च कूपके । गणेशं पूजयेत्कुम्भं दिक्पालांश्च विशेषतः ।।८६
अग्निकार्यं विना कुर्यात्प्रकुर्याज्च्व सतां गतिम् । श्रुत्वा कृतिं विधानेन अन्येषां वा तथोद्भवम् ।।८७
अन्येषां चैव वृक्षे च तथा च तुलसीवने । कुम्भे वनस्पतिः स्थाप्यः पूजयेद्धोमयेत्ततः ।।८८
वृक्षान्वानेन संस्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् । शुच्यमानमिदं ज्ञेयमन्येषां वा तथोद्भवम् ।।८९
तुलस्याः सहकारस्य ब्रह्मवृक्षस्य चैव हि । अश्वत्थस्य वटस्यैव स्वर्णतामथ वेधयेत् ।।९०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्तनिर्णये दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

तन्त्रात्मकप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अथ तन्त्रविधिं वक्ष्ये पुराणेष्वपि गीयते । तन्त्रे चैव प्रतिष्ठां च कुर्यात्पुण्यतमेऽहनि ।।१

गंगा के समान होता है ।८२। धर्मवेत्ता को चाहिए कि बीस हाथ की दूरी पर आम के वृक्ष लगाये, आँवला, वकुल, बंजुल सोलह हाथ की दूरी पर लगाने चाहिए ।८३। सेमर के वृक्ष, नागकेसर और पीपल के वृक्ष को उसकी दुगुनी दूरी पर लगाना चाहिए, इस प्रकार शैलमय हाथ के उत्तम मान को बता दिया गया ।८४। बावली आदि कुएँ और वृक्षादिकों की प्रतिष्ठा में पत्थर या ईंटे से चार हाथ की वेदी बनाकर वृक्षों की प्रतिष्ठा में श्री विष्णु, कुएँ में वरुण की पूजा में सर्वप्रथम कलशस्थापन पूर्वक गणेश और विशेषकर दिक्पालों की पूजा आवश्यक होती है ।८५-८६। इसमें हवन न करने पर उत्तम गति प्राप्त होती है । उपरोक्त विधान में अथवा जिस किसी वृक्ष आदि की प्रतिष्ठा करनी हो, उसमें तुलसी वन में घड़े के ऊपर उस वृक्ष का स्थापन करके पूजन एवं हवन करना चाहिए ।८७-८८। पुनः उसी से संस्कृत (संस्कार किये हुए) वस्त्र से उसे चारो ओर से आवेष्टित (लपेट) कर इस पवित्रतापूर्ण कार्य के समेत उसकी प्रतिष्ठा का विधान सुसम्पन्न करना चाहिए ।८९,। तुलसी, आम, ब्रह्मवृक्ष, पीपल एवं बरगद इन्हीं की स्वर्णता के वेधन करना चाहिए ।९०

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—अब मैं उस तंत्र के विधान को बता रहा हूँ, जिसकी व्याख्या पुराणों में भी की गई है । उस तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा को किसी अत्यन्त पुण्य दिवस में सुसम्पन्न करना चाहिए ।१। छोटे-छोटे सौ वृक्ष,

शतवृक्षक्षुद्रवृक्षे दशद्वादशवृक्षके । दृष्टिमात्रान्तरे सेतौ कूपयागे समुत्सृजेत् ।।२
न कूपमुत्सृजेज्जातु वृक्षयागे कथञ्चन । तुलसीवनयागे तु न चान्यं यागमाचरेत् ।।३
तडागयागे सेत्वादीन्न चारामे कदाचन । न सेतुं देवयागे तु तडागं न समुत्सृजेत् ।।४
तन्त्रे श्राद्धं पृथङ्नास्ति कर्तृभेदे पृथग्भवेत् । शिवलिङ्गस्थापनायां न चान्यद्देवस्थापनम् ।।५
स्वदेशे वर्जयेत्तं तं स्वतन्त्रेण विधीयते । विपरीते कृते चापि आयुःक्षय इति स्मृतिः ।।६
तडागे पुष्करिण्यां वा आरामेऽपि द्विजोत्तमाः । मानहीने मानपूर्णे दशहस्ते न दूषणम् ।।७
द्विसहस्राधिकं यत्र तत्प्रतिष्ठां समाचरेत् । दश द्वादशवृक्षे च आरामे पूर्ववद्द्विजाः ।।८
प्रतिष्ठां बिल्ववृक्षे च अन्यथा कर्णवेधनम् । कुर्याद्दोहददानं च तत्र निर्मन्थनादिकम् ।।९
अनन्तरं प्रदातव्या लाजा मूर्ध्न्यक्षतादिकम् ।।१०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि पूर्वभागे तन्त्रप्रतिष्ठावर्णनम् नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः
प्रतिमालक्षणवर्णनम्
सूत उवाच

प्रतिमालक्षणं वक्ष्ये यथाशास्त्रमतं द्विजाः । प्रतिमां लक्षणैर्हीनां गृहीतां नैव पूजयेत् ।।१

या दश बारह वृक्ष और छोटे पुल की प्रतिष्ठा अलग न करके कुएँ की प्रतिष्ठा में ही सम्मिलित कर लेना चाहिए।२। कूप-यज्ञ को कभी भी वृक्ष याग में सम्मिलित न करना चाहिए, उसी भाँति तुलसी वन के यज्ञ में किसी अन्य यज्ञ का सम्मिश्रण न होना चाहिए।३। पुल आदि की प्रतिष्ठा सरोवर यज्ञ, अथवा बगीचे की प्रतिष्ठा में सम्मिलित न करना चाहिए, उसी भाँति देवयज्ञ में सेतुयज्ञ, और सरोवर यज्ञ न सम्मिलित करना चाहिए।४। तंत्र विधान में पृथक् श्राद्ध करना नहीं बताया गया है, पर, कर्ता के भेद से पृथक् करना अनुचित नहीं कहा गया है। शिवलिंग की स्थापना में किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा सम्मिलित न करनी चाहिए।५। प्रत्येक की प्रतिष्ठा को स्वतन्त्रता से सुसम्पन्न करने और किसी अन्य का सम्मिश्रण न करने का विधान बताया गया है, इसके प्रतिकूल करने से आयु क्षीण होती है, ऐसा स्मृतियों में कहा गया है।६। द्विजोत्तम ! सरोवर, पुष्करिणी एवं बगीचे की प्रतिष्ठा के विषय में बताया गया है कि वह पूरे मान के अनुसार हो अथवा मानहीन केवल दश हाथ प्रमाण का ही हो, तो उसमें दोष नहीं होता है।७। वृक्षों की दो सहस्र से अधिक संख्या जिस बगीचे में हो उसी की प्रतिष्ठा समुचित बतायी गयी है। दश-बारह आम के वृक्षों के लिए तो वही पूर्वोक्त विधान ही कराना चाहिए।८। बेल की प्रतिष्ठा, कर्णवेध, दोहद दान, और निर्मंथनादि के उपरान्त उनके सिर पर लाजा (लावा) और अक्षत चढ़ाने चाहिए।९-१०
श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के पूर्व भाग में तन्त्रप्रतिष्ठावर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।११।

अध्याय १२
प्रतिमा-लक्षण का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! मैं प्रतिमा के शास्त्र सम्मत लक्षण बता रहा हूँ, लक्षणहीन प्रतिमाओं

शैलजा दारुजा ताम्री मृद्भवा सर्वकामदा। एकहस्ता द्विहस्ता वा सार्धहस्ता तथापि वा ॥२
प्रासादमानमथवा अथवा सर्वलक्षणम्। अष्टाङ्गुलोत्सेधकं च न तु गेहेऽर्चयेत्कृती ॥३
देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टाङ्गुलेन तु। त्रिभागपिण्डिका कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ॥४
अङ्गुलं वै भवेद्वृद्धिरशीतिश्चतुरुत्तरा। विस्तारमानतः कार्यं वदनं द्वादशाङ्गुलम् ॥५
मुखत्रिभागे चिबुकं ललाटं नासिकां तथा। कर्णौ नासिकया ग्रीवातुल्यौ वा नियतौ तु यौ ॥६
नयने द्व्यङ्गुले स्यातां त्रिभागा तारका भवेत्। तृतीयतारकाभागे शुभदृष्टिं विचक्षणः ॥७
ललाटमस्तकग्रीवं कुर्यात्तत्सममेव तु। परिणाहस्तु शिरसो भवेद्द्वात्रिंशदङ्गुलः ॥८
तुल्यौ नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयान्तरम्। अथ विस्तारपङ्क्तिस्तु ततोऽर्धं तु कटिः सदा ॥९
बाहू च बाहुतुल्यौ च ऊरू जङ्घे च जाघनम्। गुल्फावस्थानस्तु पादः स्याद्धातितश्चतुरङ्गुलः ॥
षडङ्गुलस्तु विस्तारस्तुल्याङ्गुष्ठोऽङ्गुलत्रयम् ॥१०
प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषान्नखानखम्। चतुर्दशाङ्गुलः पादस्यायामः परिकीर्तितः ॥११
एवं लक्षणसंयुक्ता सा पूज्या प्रतिमा शुभा। अधरोष्ठस्तथैवोरुभ्रूललाटमनीषिकम् ॥१२
गण्डं च नियतं मूर्तौ कुर्यादंगसमुन्नतेः। विशालनयनस्ताम्रपदो वायतलोचनः ॥१३
सवितानलपत्रस्य चारुविद्याधरस्तथा। वत्सप्रोक्तोऽतिमुकुटः कटकाङ्गदहारवान् ॥१४

की पूजा कभी न करनी चाहिए।१। पत्थर, काष्ठ, ताँबे और मिट्टी की प्रतिमा एक हाथ दो हाथ अथवा डेढ़ हाथ की बनानी चाहिए, उससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं।२। प्रासाद (महल) की भाँति मानपूर्ण, मन्दिर में प्रतिमाओं का पूजन करना चाहिए और समस्त लक्षणों वाली प्रतिमा जिसकी शरीर आठ अंगुल प्रमाण की हो, का पूजन आदि अपने घर में किसी कुशल व्यक्ति को कभी न करना चाहिए।३। देवालय के दरवाजे क्षेत्रफल में आठ अंगुल और मिलाकर उसके तिहाई भाग पीड़ी (मूर्ति के खड़े रखने की वेदी) और दो भाग की लम्बाई के अनुसार प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए।४। प्रतिमा की लम्बाई-चौड़ाई एवं अंग (प्रत्यंग) का मान मिलकार कुल चौरासी अंगुल होना चाहिए। बारह अंगुल का लम्बा-चौड़ा मुख उसमें मुख, ठोढ़ी, भाल और नाक तीन-तीन अंगुल के होने चाहिए, नाक और गले के समान दोनों कान, दो अंगुल के नेत्र, और उसके तीसरे भाग के समान आँख की कनीनिका तारा होनी चाहिए, तीसरे भाग के समान तारका वाली आँखे विद्वानों ने शुभ बतायी है।५-७। भाल, मस्तक, और गले को उसी के अनुसार रखना चाहिए, यों ही शिर का बत्तीस अंगुल का मान बताया गया है।८। नाक के समान कान और कण्ठ तथा मुख के समान हृदय का मध्यभाग बनाना चाहिए। जितनी लम्बाई हो, उसकी आधी कटि सदैव होनी चाहिए, उसी भाँति बाहु के समान भुजाएँ, और ऊँचे जंघे के समान जंघे का निर्माण करना चाहिए, गुल्फ (एड़ी), पैर चार अंगुल के न होने चाहिए। उसका विस्तृत मान छः अंगुल का बताया गया है—तीन अंगुल के अंगूठे एवं उसी के समान तर्जनी अंगुली तथा शेष अंगुलियाँ क्रमानुसार छोटी-बड़ी बनानी चाहिए, इसप्रकार पैर का पूर्ण मान चौदह अंगुल का होता है।९-११। इस भाँति की लक्षण सम्पन्न एवं शुभ प्रतिमा की पूजा करना कहा गया है। उपरोक्त उसी प्रकार उरु भौहें, ललाट, जिह्वा एवं कपोल, इतने अंग मूर्ति के अवश्य उन्नत होने चाहिए, विशाल नेत्र, रक्तवर्ण के चरणतल अथवा दीर्घ नेत्र बनाने चाहिए।१२-१३। सूर्य एवं नल यम की प्रतिमा का इस भाँति वर्णन कर दिया गया, उसी

अभ्यंगपदबन्धादि सामान्येनोपशोभि च । सुप्रभामण्डला चारु विचित्रमणिकुण्डला ।।१५
कराभ्यां काञ्चनीं मालां प्रोद्वहंती शिरोरुहान् । एवं लक्षणसम्पन्नां कारयेद्विहितप्रदाम् ।।१६
सुस्निग्धां वरदां सौम्यां द्वितीयाश्रमिणामिमाम् । नवतालो भवेद्विष्णुर्वासुदेवस्त्रितालकः ।।१७
नृसिंहः पञ्चतालः स्याद्धयग्रीवस्तु पञ्चमः । नारायणश्चाष्टतालो महेशः पञ्चतालकः ।।१८
नवताला भवेद्दुर्गा लक्ष्मीश्चैव त्रितालिका । वाणीं त्रितालिकां विद्यात्सविता सप्ततालकः ।।१९
दक्षिणे वासुदेवस्य करे चक्रं प्रतिष्ठितम् । शङ्खो भवेच्च तदधो वामार्धे तस्य वै गदा ।।२०
तदधश्च भवेत्पद्मं श्रीवत्सेनोपशोभितम् । सव्येऽर्धे तारकास्यं च त्रिनेत्रमुभयात्मकम् ।।२१
पार्श्वे नलिनसिंहौ द्वौ सुभद्रां दक्षिणे न्यसेत् । रुक्मिणीं वामभागे च तदधस्ताद्दिवीन्द्रकम् ।।२२
कृताञ्जलिपुटस्थश्च नारदः कपिलस्तथा । धर्माधर्मावुभौ पार्श्वे कर्तव्यौ स्रग्विणां वरौ ।।२३
यदुग्रं वासुदेवस्य तथा नारायणस्य च । वैपरीत्यं विजानीयान्माधवानां तथैव च ।।२४
तीर्थे गिरौ तडागे च समीपे स्थापयेत्सुधीः । नगरग्राममध्ये वा ब्राह्मणानां च संसदि ।।२५
अविमुक्ते विशेषेण सिद्धक्षेत्रे दशार्णके । त्रीण्युत्तरसहस्राणि पञ्चपञ्चोत्तराणि षट् ।।२६
कुलानि पूर्वं विप्रेन्द्राः समुद्धरति नान्यथा । कलौ दारुमयः कार्यो ह्यशक्तौ मृण्मयोऽथ वा ।।२७

भाँति सौन्दर्यपूर्ण विद्याधर की मूर्ति का निर्माण होना चाहिए । उस मूर्ति को श्रीवत्स, मुकुट, कटकांगद और हार आदि आभूषणों से भूषित कर, उबटन, पदबन्ध आदि से उसे सुशोभित करे, उसके मण्डल की प्रभा सुन्दर होनी चाहिए, सौन्दर्यपूर्ण एवं चित्र-विचित्र मणि के कुण्डलों से अलंकृत करना परमाश्वयक होता है ।१४-१५। उसके हाथों में काञ्चनी माला और शिर में सौन्दर्यपूर्ण केश का निर्माण कर उसे इस भाँति के लक्षणों से सुसम्पन्न करे जिससे अपना अभीष्ट शीघ्र सिद्ध हो । उसका स्निग्ध वर्ण, वर प्रदायक स्वभाव चेष्टा और सौम्य दर्शन होना परमावश्यक होता है, ऐसी ही मूर्ति, गृहस्थों को अभीष्ट प्रदान करती है । विष्णु के नवताल, वासुदेव के तीन ताल, नृसिंह के पाँच, हयग्रीव के भी वही, नारायण के आठ, महेश्वर के पाँच, दुर्गा देवी के नव, लक्ष्मी के तीन, सरस्वती के तीन, और सूर्य के सात ताल होते हैं ।१६-१९। वासुदेव के दाहिने हाथ में चक्र, उसके नीचे वाले में शंख, बायें ऊपर वाले में गदा और नीचे वाले में कमल सुशोभित करना चाहिए । श्रीवत्स से विभूषित कर पहले उनकी दाहिनी आँख में पुतली सम्पन्न कर पश्चात् बायें लगाये ।२०-२१। उनके पार्श्व भाग में कमल और सिंह तथा दाहिनी ओर सुभद्रा बायें रुक्मिणी एवं उनके नीचे भाग में इन्द्र की स्थापना करनी चाहिए ।२२। पुनः उनके अञ्जलि पुट में नारद और कपिल तथा पार्श्व भाग में मालाधारी धर्म और अधर्म की स्थिति होनी चाहिए ।२३। वासुदेव, नारायण के जो अङ्ग भीषण हों, उन्हें अपने लिए प्रतिकूल ही जानना चाहिए, उसी भाँति माधव के भी । इनका स्थापन-तीर्थ, पर्वत प्रदेश, सरोवरतट, नगर-गाँव के मध्य अथवा ब्राह्मणों के सामूहिक बस्ती में करना चाहिए ।२४-२५। अविमुक्त, विशेषकर सिद्ध क्षेत्र दशार्ण में देश में हो तो अत्यन्त उत्तम होता है । इस प्रकार उनकी इस भव्य मूर्ति के स्थापन से उन्नीस सहस्र कुल के उद्धार होते

चन्दनागुरुभिः कुर्याद्बिल्वश्रीपर्णिकस्य च । पद्मकाष्ठमयश्चैव वासमस्य तथैव हि ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कुण्डनिर्माणविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कुण्डानामथ निर्णयम् । तस्योद्धारं च संस्कारं शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१
चतुरस्रं च वृत्तं च पादार्धं चार्धचन्द्रकम् । योन्याकारं चन्द्रकं च अष्टार्धमथ पञ्चमम् ॥२
सप्तार्धं च नवार्धं च कुण्डं दशकमीरितम् । भूमिं संशोध्य विधिवत्तुषकेशादिवर्जिताम् ॥३
भ्रामयेच्चोर्ध्वतस्तस्या भस्माङ्गाराणि यत्नतः । अङ्कुरार्पणकं कुर्यात्सप्ताहादेव बुद्धिमान् ॥४
स्थानं विमर्दितं कुर्यात्खनित्वा सेचयेज्जलैः । पुष्टिहस्तोच्छ्रायमितं प्रकुर्यात्परिसूत्रयेत् ।५
अर्काङ्गुलमितं सूत्रं चतुरस्रं प्रकल्पयेत् । अष्टादशाङ्गके क्षेत्रे न्यसेदेकं बहिस्ततः ॥६
मापयेत्तेन मानेन त्रिवृत्तं कुण्डमुज्ज्वलम् । पूर्ववद्विभजेत्क्षेत्रं भागैकं पुरतो न्यसेत् ॥७
वृत्तानि कालिकादीनि बहिस्त्रीणि विवर्जयेत् । पद्मकुण्डमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् ॥८

हैं, कलियुग में काष्ठ के अथवा अशक्त होने पर मिट्टी की ही मूर्ति बनाये तथा चंदन, अगुरु बेल, पीपल एवं मनोहर पद्म काष्ठ की भी प्रतिमा बनायी जाती है ।२६-२८
श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में प्रतिमालक्षण वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अध्याय १३

कुण्डनिर्माण—विधिवर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! इसके उपरान्त मैं कुण्डो के निर्णय, उद्धार और संस्कार बता रहा हूँ, सुनो ! चौकोर, गोलाकार, पादार्ध, अर्धचन्द्राकार, योनि के समान, चन्द्र की भाँति, अष्टार्ध, पञ्चमार्ध, सप्तार्ध, और नवार्ध, ये दश भाँति के कुण्ड बताये गये हैं। प्रथम भूमि संशोधन—तुष (भूसी) केश आदि रहित करके उसके ऊपर भस्मांगार को बलपूर्वक चारों ओर घुमाये, और उस बुद्धिमान् को सप्ताह के भीतर उस पर बीज आरोपित कर अंकुर उत्पन्न कर लेना चाहिए ।१-४। पुनः उस दृढ़ भूमि को खन कर जल से सेचन करे, इस प्रकार एक हाथ के ऊँचे कुंड बनाकर सूत्र से चारों ओर उसे आवेष्टित करना चाहिए ।५। चौकोर कुण्ड के निर्माण में बारह अंगुल का सूत्र होना चाहिए, अष्टादश अंग वाले कुण्ड के क्षेत्र में एक भाग बाहर रखकर उसी माप दण्ड के मान से उस त्रिवृत (तीन बार घिरा) एवं उज्ज्वल कुण्ड का मान पूरा करना चाहिए, उसके क्षेत्र का प्रथम पूर्व की भाँति विभाजन करके एक भाग उसके सामने रखे ।६-७। उसमें कालिकादिक तीन वृत्त, बाहरी भाग में त्याग करने को बताया गया है, इस भाँति के नयनाभिराम कुण्ड को 'पद्मकुण्ड' के नाम से कहा गया है ।८। प्रथम क्षेत्र को दश प्रकार से

दशधा भेदयेत्क्षेत्रे उर्ध्वाधोर्ध्वाङ्गुलद्वयम् । सम्परिपातयेत्सूत्रं पाटयेत्तत्प्रमाणतः ।।९
पञ्चधा भेदिते क्षेत्रे कामं वा विभजेत्सुधीः । न्यसेत्पुरस्ताद्देवाङ्गं कोणार्धार्धप्रमाणतः ।।१०
योनिस्थानं प्रतिष्ठाप्य अश्वत्थस्य दलाकृतिः । सूत्रद्वयं ततो दद्यात्कुण्डं परिमितं भवेत् ।।११
चतुरस्रं समुद्धृत्य सूत्रं सङ्कल्पयोगतः । दिशं प्रति यथान्यायं पातयेच्च द्विजोत्तमाः ।।१२
शृङ्गाटकं युग्मपुटं षडस्रं कुण्डत्रयं बुधाः । जलाशयारामकूपे नित्ये गृहमये यथा ।।१३
चतुस्रं भवेत्कुण्डं द्विजसंस्कारकर्मणि । देवप्रतिष्ठायागे च गृहवास्तौ चतुर्थकम् ।।१४
वसुन्धरायोगभेदे प्रपञ्चे वर्तुलादिशेत् । सोमेऽष्टौ पङ्कजं प्रोक्तं नरमेधाश्वमेधयोः ।।१५
अङ्कुरार्पणयागे च वैष्णवे यागकर्मणि । शिवदेव्योश्च जन्मादावष्टम्यां चार्धचन्द्रकम् ।।१६
मार्जारपौष्टिके वैरं रम्ये च शान्तिके तथा । शान्तिप्रतिष्ठायागे तु शाक्तानां काम्यकर्मणि ।।१७
पुरश्चरणकाम्येषु ज्वरादीनां विमोक्षणे । एवंविधेषु कार्येषु योनिकुण्डं प्रशस्यते ।।१८
देवतातीर्थयात्रादौ महायुद्धप्रवेशने । सौरे शान्ते पौष्टिके च षट्पुरं कुण्डमुत्तमम् ।।१९
मारणोच्चाटने चैव तथा रोगोपशांतये । वैष्णवानां कोटिहोमे नृपाणामतिशोचने ।।२०
अष्टास्रमब्जकुण्डं च सप्तास्रं निधिसाधने । राज्ञा साध्ये च पञ्चास्रं कन्याप्राप्तौ त्रिरस्रकम् ।।२१
यावन्निम्नं भवेदेव विस्तारस्तावदेव तु । कुण्डानुरूपतः कार्या मेखला सर्वतो बुधैः ।।२२

ऊपर-नीचे और पुनः ऊपर दो-दो अंगुल के अनुपात से सूत्र को रखना चाहिए ।९। पाँच प्रकार के भेद वाले क्षेत्र को विद्वान् यथेच्छ विभाजित कर सकता है, उसमें कोण के अर्ध भाग अथवा तदर्धभाग के प्रमाण से सामने रखना चाहिए ।१०। पीपल के पत्ते के समान योनि के प्रकार के कुण्ड-निर्माण को योनि कुण्ड बताया गया है । उसमें दो सूत्र लगाने से कुण्ड का परिमाप शुद्ध होता है ।११। द्विजोत्तमवृन्द ! अपनी संकल्पित कामनानुसार सूत्र को चारों ओर से उठाकर न्यायोचित दिशा में डाल देना चाहिए ।१२। शिखर समेत, दो पुटवाले एवं ६ कोण वाले, ये तीन प्रकार के कुण्डों के निर्माण जलाशय, बगीचे एवं कूप की प्रतिष्ठा कर्म में कराना चाहिए, जिस भाँति गृह निर्माण तथा ब्राह्मण के संस्कार कर्मों में चौकोर कुण्ड बनाये जाते हैं। देवों की प्रतिष्ठा-यज्ञ और गृह बनाने में चौथे, तथा वसुंधरा के यौगिक भेद वाले प्रपञ्च में गोलाकार, सोम में तथा नरमेध एवं अश्वमेध में आठ कमल वाले (कुंड) का होना बताया गया है ।१३-१५। अंकुरोत्पादन, वैष्णवयज्ञ, शिव-पार्वती के जन्म और अष्टमी में अर्धचन्द्राकार का कुण्ड बनाना चाहिए ।१६। मार्जार पौष्टिक कर्म बिल्ली के लोम आदि अंगों द्वारा उत्पादित घोर वैर कर्म) में, रमणीक शान्तिकर्म, शांति प्रतिष्ठा-यज्ञ, शाक्तकर्म, काम्य कर्म, किसी कामना वश किये गये पुरश्चरण कर्म, ज्वरों के दूर करने आदि, इस भाँति के कार्यों में योनिकुण्ड प्रशस्त बताया गया है ।१७-१८। देवतीर्थ-यात्रा, बड़े युद्ध स्थल, सौर कर्म, शांतकर्म तथा पौष्टिक कर्मों में षट्कोण वाला कुण्ड बनाना चाहिए ।१९। मारण, उच्चाटन कर्म, रोग की शान्ति, कोटि आहुति वाला विष्णु यज्ञ, राजाओं के शोकाकुल होने पर, अठकोण वाला तथा पद्मकुण्ड का निर्माण बताया गया है, निधि-प्राप्त करने में सातकोण वाले, राजा को सफल करने में पाँच कोण का और कन्या प्राप्ति के लिए त्रिकोण कुण्ड की रचना करनी चाहिए ।२०-२१। कुण्ड की गहराई और चौड़ाई के अनुसार उसकी मेखला भी विद्वानों को बनानी चाहिए ।२२। दशसहस्र आहुति वाले हवन-कुण्ड में मेखला का आयोजन अवश्य करना चाहिए ।

अयुतादिषु होमेषु मेखलां योजयेत्सुधीः । निम्नप्रमाणे चात्राणि मूले सार्धांगुलं त्यजेत् ॥२३
कोणवेदरसैर्मानं यथायोग्यमनुक्रमात् । मुष्टिहस्ते समुत्सेधो सार्धाङ्गुलपरिष्कृतः ॥२४
अरत्निमात्रे कुण्डे तु त्रिश्चैकाङ्गुलतः क्रमात् । एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनांगुलाः ॥२५
सप्तमेखलकं युक्तं लक्षहोमे न शस्यते । पञ्चमे खलकं वाथ लक्षकोट्यां च योजयेत् ॥२६
एकाङ्गुलादिमानेन नेमिं संवर्धयेत्सुधीः । चतुर्हस्तमिते कुण्डे तावदेव गुणाङ्गुलाः ॥२७
वसुहस्ते भानुपङ्क्तिर्युग्महीनेऽपि ताः क्रमात् । सर्वाः समा ग्रहमखे मेखलाश्च सहस्रके ॥२८
पार्श्वतो योजयेत्तत्र मेखलास्ता यथाक्रमम् । सार्धांगुलादिमानेन नेमिं संवर्धयेत्सुधीः ॥२९
एकमेखलयागेन योजयेच्छक्तिभावतः । होमाधिक्ये बहुफलमन्यूनं नाधिकं भवेत् ॥३०
कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः । ततो होमे शतगुणं स्थण्डिले स्वल्पकं फलम् ॥३१
षट्चतुर्धा गुणायामविस्तारोन्नतिशालिनी । एकाङ्गुलं तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ॥३२
एकैकाङ्गुलतो योनिं कुण्डशून्येषु वर्धयेत् । सममध्ये मेखलायाः सपर्या या सुलक्षणा ॥३३
स्थापयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां द्विजसत्तमाः । कुण्डानां कल्पयेन्नाभिं स्फुटम्बुजसन्निभाम् ॥३४
तत्तु कुण्डानुरूपं वा सुव्यक्तं सुमनोहरम् । योनिकुण्डे योनिमब्जं कुण्डे नाभिं च वर्जयेत् ॥३५

इससे निम्नकोटि के कुण्डों के विषय में भी उनके मूलभाग में डेढ़ अङ्गुल त्याज्य बताया गया है।२३। क्रमशः यथायोग्य कोण (तीन), चार, और मुठ्ठी उसकी ऊँचाई और डेढ़ मुठ्ठी उसके ऊपर की भूमि परिष्कृत होनी चाहिए।२४। उसी भाँति अरणिमात्र वाले कुण्ड में क्रमशः चार अंगुल, एक हाथ के प्रमाण वाले कुण्ड की ऊपर परिष्कृत भूमि चार, एक या दो अंगुलि की बनानी चाहिए।२५। लक्ष, आहुति वाले हवन-कुण्ड की सात मेखला न होनी चाहिए, प्रत्युत लक्ष तथा कोटि आहुति वाले कुण्ड की भी पाँच ही मेखला बनाये।२६। विद्वानों को चाहिए कि एक अंगुल के मान से उसकी नेमि को बढ़ायें, तथा चार हाथ के कुण्डों में उतने अंगुल का गुण भी। २७। आठ हाथ वाले कुण्ड में बारह पंक्ति (मेखला) और दो हाथ न्यून (छः हाथ) वाले कुण्ड के भी उसी भाँति एवं सहस्र आहुति वाले ग्रह यज्ञ में समान मेखला बतायी गयी है।२८। कुण्डों के पार्श्वभाग में क्रमशः मेखलाओं को आयोजित कर डेढ़ अंगुल के मान से उसकी नेमि को भी विद्वान् को बढ़ाना चाहिए।२९। अपनी शक्ति के अनुसार अधिक संख्या की आहुति में भी एक मेखला के कुण्ड का निर्माण करने में उसे बहुत फलों की प्राप्ति होती है न्यून नहीं। कुण्ड के रूप को प्रकृति की सुन्दर शरीर जाननी चाहिए, इसलिए उसके निर्माण में अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है, पश्चात् हवन में सौ गुने एवं स्थंडिलों (वेदी) के निर्माण में स्वल्प फल की प्राप्ति होती है।३०-३१। दश अंगुल की लम्बी-चौड़ी एवं ऊँची योनि के कुण्ड निर्माण के समय योनि का अग्र भाग एक अंगुल नीचा होना चाहिए।३२। शून्य कुण्डों की योनि को क्रमशः एक-एक अंगुल के मान से बढ़ाना चाहिए वह केवल मेखला के मध्यभाग में ही होना चाहिए, जो पूज्य एवं सौन्दर्यपूर्ण लक्षणों से सुशोभित होती है।३३। द्विजवृन्द! कुण्ड के कोण के भागों में योनि स्थापन बताया गया है, कुण्ड का नाभि स्थल भी विकसित कमल की भाँति होना चाहिए।३४। वह कमल कुण्ड के समान सौन्दर्यपूर्ण, पूर्ण अंग एवं अत्यन्त मनोरम होना चाहिए, योनिकुण्ड में योनि कमल और नाभि में न बनाना चाहिए।३५। दोनों के प्रमाणानुसार क्रमशः

यावद्द्वयप्रमाणेन अर्धाङ्गुलक्रमाद्बहिः । नाभिं प्रवर्धयेदेकं कुण्डानां रूपतो यथा ।।३६
तत्र तत्र भवेत्कुण्डं बिम्बशून्यं न होमयेत् । शिवशक्तिसमायोगात्काम उत्पद्यते यतः ।।३७
अवटोऽपि उमादेवी बिम्बः ख्यातः सदाशिवः । न कुर्यादेकया हीनं मरणं च समुद्दिशेत् ।।३८
त्रयोदशाङ्गुलं हित्वा वह्निहस्तमथापि वा । महातीर्थे सिद्धक्षेत्रे यत्र शम्भुगृहे कुले ।।३९
तस्य दक्षिणदिग्भागे अग्रतो मण्डलं लिखेत् । तत्र पूजा प्रकर्तव्या पूर्वमानेन चाग्रतेत् ।।४०
अर्कहस्तान्तरे कुर्याच्छतोर्ध्वांते शतेन वा ।।४१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे कुण्डनिर्माणविधिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

यज्ञमानविधानवर्णनम्

सूत उवाच

यस्य यज्ञस्य यन्मानं तत्तु तेनैव योजयेत् । अमानेन हतो यज्ञस्तस्मान्मानं न हापयेत् ।।१
शतार्धं प्रथमं मानं शतसाहस्रमेव च । अयुतं च तथा लक्षं कोटिहोमस्ततः परम् ।।२
अतः परं तु विभवे राजा वान्यो द्विजोत्तमाः । न स सिद्धिमवाप्नोति अयागफलभाग्भवेत् ।।३

आधा अंगुल बाह्यभाग, एवं कुण्डों के स्वरूपानुरूप एक अंगुल नाभि में वृद्धि करनी चाहिए।३६। सभी स्थान कुण्ड बनाकर ही हवन कार्य सुसम्पन्न करने चाहिए, विम्बशून्य में कभी नहीं, क्योंकि शिव और शक्ति के समान संयोग से ही काम की उत्पत्ति होती है।३७। कुण्डों का खात (गड्ढा) उमादेवी का स्वरूप और उसका बिम्ब सदाशिव का स्वरूप बताया गया है, इसलिए किसी एक के निर्माण न करने पर मरण फल कहा गया है।३८। महातीर्थ, या किसी सिद्ध क्षेत्र में जहाँ शिवालय स्थित हो, उसकी दक्षिण दिशा की ओर तेरह अंगुल या वह्नि हाथ छोड़कर सामने मण्डल निर्माण करके उसकी पूर्वोक्त रीति के अनुसार पूजा करनी चाहिए।३९-४०। उसका निर्माण बारह हाथ के भीतर, सौ अंगुल के अन्त अथवा मध्य में भी किया जा सकता है।४१

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में कुण्ड निर्माण-विधि नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।१३।

अध्याय १४

यज्ञ-मान-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—जिस प्रकार के यज्ञ विधान में जो मान बताया गया है, उस यज्ञ में उसी मान के अनुसार कुण्ड आदि की रचना आवश्यक है, क्योंकि मानहीन यज्ञ नष्ट बताया गया है, इसलिए उसके मान में विशेष ध्यान रखना चाहिए।१। शतार्ध, शत, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, कोटि संख्या की आहुति वाले हवन होते हैं।२। द्विजोत्तमवृन्द ! ऐश्वर्यादि होने के कारण यदि कोई राजा इसके अतिरिक्त किसी दूसरे दूसरे की रचना करता है, उसे सफलता तो मिलती नहीं प्रत्युत, वह यज्ञ फल का भागी भी नहीं

विपाकं कर्मणां सर्वं नरः प्राप्नोति सर्वदा । शुभाशुभं ततो नित्यं प्राप्नोति मनुजः किल ॥४
युक्ताश्चापि ग्रहास्तत्र नित्यं शान्तिकपौष्टिके । तस्मात्प्रयत्नतो भक्त्या नित्यं पूजा यथाविधि ॥५
अद्भुते च तथा शान्तिं कुर्याद्भक्तिसमन्वितः । तस्माद्ग्रहाभिजनितं शुभाशुभफलं खलु ॥६
अद्भुतेषु च सर्वेषु अयुतं कारयेन्नरः । होमं यथाभिरुचितं पौष्टिके काम्यकर्मणि ॥७
लक्षहोमं कोटिहोमं राजा कुर्याद्यथाविधि । अन्यः शतादिकं कुर्यादयुतं विभवे सति ॥८
ग्रहाणां लक्षहोमस्तु कोटिहोमस्तथा कलौ । निधिहोमं चाभिचारं तत्र कुर्याद्गृहाश्रमी ॥९
यत्र यत्र जपः कार्यो होमो वा यत्र कुत्रचित् । मानं नैव च कर्तव्यं मानादौ चाष्टकं न्यसेत् ॥१०
युग्मसाध्यं न कर्तव्यं युग्मतो भयमादिशेत् । लक्षे सप्ततालसंख्या कोटिहोमे च विंशतिः ॥११
एकत्रिंशद्दिनैर्वापि न कुर्याद्व्यत्ययं क्वचित् । आरम्भस्त्रिसहस्रः स्याद्द्वितीयेऽष्टसहस्रकः ॥१२
तृतीये तु सहस्रं स्याद्ग्रहसाध्यः स्मृतो विधिः । पञ्चाहे च समारम्भे सहस्रं जुहुयाद्बुधः ॥१३
द्वितीयेऽह्नि द्विसाहस्रं तृतीये तु सहस्रकम् । गुणसाहस्रकं तुर्ये पञ्चाहे शेषमीरितम् ॥१४
नवाहे कल्पयेल्लक्षमेकैकाङ्गं दिने दिने । पञ्चमे च तथा षष्ठे कुले भागद्वयाधिकम् ॥१५

होता है।३। मनुष्य सर्वत्र सदैव कर्मों के परिणाम प्राप्त कर उनके अनुभव करता रहता है, इसीलिए नित्य प्रत्येक क्षणों में शुभ एवं अशुभ फल उसे प्राप्त होते रहते हैं। शांति एवं पौष्टिक कर्म करने से इसके अनिष्ट ग्रह भी अनुकूल होकर शुभ फल प्रदान करते हैं, इसलिए विधानपूर्वक भक्तिसमेत उनके नित्यपूजन के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।४-५। अनिष्ट ग्रहों के लिए भक्तिपूर्वक उनकी शांति करनी आवश्यक होती है, क्योंकि ग्रहों द्वारा ही शुभ-अशुभ फल का भागी मनुष्य होता है, यह निश्चित है।६। अधिक ग्रहों के अरिष्ट होने पर मनुष्य को दश सहस्र संख्या की आहुति करनी चाहिए और पौष्टिक तथा काम्य कर्मों में मन इच्छित हवन का विधान कहा गया है।७। राजा को इन सभी कर्मों में विधानपूर्वक लक्ष अथवा कोटि संख्या की आहुति के हवन करना चाहिए और अन्य लोगों को ऐश्वर्यादि रहने पर भी सौ अथवा दश सहस्र की संख्या की आहुति वाला हवन कहा गया है।८। गृहस्थों के लिए कलियुग ग्रहों के निमित्त लक्ष, अथवा कोटि संख्या की आहुति के हवन करने चाहिए, तथा निधि कर्म एवं अभिचार कर्म उनके लिए निषिद्ध किया गया है।९। जहाँ-जहाँ जप करना हो, अथवा जहाँ कहीं हवन करना हो, तो उसमें मान की आवश्यकता नहीं होती है, मान आदि में आठ का त्याग करना बताया गया है।१०। दो मिलकर इसे सिद्ध न करना चाहिए, क्योंकि युग्म द्वारा सिद्ध करने पर अन्य की उत्पत्ति होती है। लक्ष आहुति वाले हवन में सात ताल, कोटि आहुति वाले हवन में बीस ताल की संख्या बतायी गयी है।११। इकतीस दिन तक उसमें व्यत्यय (उलट फेर) न करना चाहिए, आरम्भ में तीन सहस्र, दूसरे दिन आठ सहस्र, तीसरे दिन एक सहस्र की आहुति देना गृहयज्ञों में विधान बताया गया है। पाँच दिन में समाप्त होने वाले यज्ञ में प्रथम दिन एक सहस्र, दूसरे दिन दो सहस्र, तीसरे दिन पुनः एक सहस्र की आहुति देनी चाहिए और चौथे दिन नव सौ एवं पाँचवें दिन शेष की समाप्ति करना चाहिए।१२-१४। एक लक्ष की आहुति में नव दिन का अनुष्ठान होना चाहिए। उसमें क्रमशः प्रत्येक दिन एक-एक अंग की पूर्ति करने के उपरान्त पाँचवें और छठें दिन दो भाग अधिक की आहुति प्रदान करना बताया गया है।१५। कोटि संख्या की आहुति वाले

कोटिहोमे च तिथ्यङ्गे शतभागेन कल्पयेत् । न न्यूनं नाधिकं कार्यमेतन्मानमुदाहृतम् ।।१६
नित्यमेकं दिने दद्यात्पृथङ्नित्यं न चाचरेत् । स समाजे जपेन्नित्यं पञ्चतारेण स्विष्टकृत् ।।१७
अयुते लक्षहोमे च कोटिहोमे च सर्वदा । प्रथमे दिवसे कुर्याद्देवतानां च स्थापनम् ।।१८
महोत्सवे द्वितीये तु बलिदानं तथैव च । त्र्यहसाध्ये त्रिरात्रे च पूर्णं कृत्वा विसर्जयेत् ।।१९
पञ्चाहे तु तृतीयेऽह्नि बलिदानं प्रशस्यते । सप्ताहे चाष्टदिवसे नवाहे पञ्चमेऽहनि ।।२०
पञ्चाहे द्वादशाहे तु द्वात्रिंशत्षोडशेऽहनि । इतोऽन्यथा न कुर्वीत नात्र यज्ञफलं लभेत् ।।२१

इति श्रीभविष्यमहापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे यज्ञमानविधानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कुण्डसंस्कारवर्णनम्

सूत उवाच

कुण्डानामथ संस्कारं वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा । असंस्कृते चार्थहानिस्तस्मात्संस्कृत्य होमयेत् ।।१
अष्टादश स्युः संस्काराः कुण्डानां तत्र दर्शिताः । तारेणावेक्षयेत्स्थानं कुशतोयैः प्रसेचयेत् ।।२
त्रिसूत्रीकरणं पश्चाद्वृत्तसूत्रं निपातयेत् । वारेण कीलकं दद्यान्नारसिंहेन कुड्मलम् ।।३

हवन में तिथ्यंग (पन्द्रह) दिन के अनुष्ठान के संकल्प करके सौ भागों में उसे विभाजित करे, इससे न्यून अथवा अधिक करने का विधान नहीं है, इसीलिए इन मानों को बताया गया है।१६। यज्ञ कर्ता को प्रत्येक दिन नित्य एक एक के प्रदान में प्रयत्नशील रहना चाहिए, और समाज में उसे उच्चस्वर से नित्य जप भी करना चाहिए।१७। दशसहस्र की हवन, लक्ष आहुति अथवा कोटि संख्या की आहुति वाले हवन के अनुष्ठान में प्रथम दिन देवताओं के स्थापन एवं दूसरे महोत्सव के दिन बलि प्रदान करना बताया गया है, तीन दिन की समाप्ति वाले (हवन) में तीसरी रात में पूर्णाहुति प्रदान कर विसर्जन कर देना चाहिए।१८-१९। पाँच दिन के अनुष्ठान वाले (हवन) में तीसरे दिन बलि प्रदान करना प्रशस्त बताया गया है। उसी भाँति सात, आठ, एवं नव दिन के अनुष्ठान में पाँचवें दिन बलि प्रदान करना चाहिए।२०। इस प्रकार पाँच, बारह, बत्तीस एवं सोलह के दिन में भी किया जा सकता है, इससे अतिरिक्त दिनों में नहीं, क्योंकि उसमें यज्ञ के फल प्राप्त नहीं होते हैं।२१।

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।१४।

अध्याय १५

कुण्डों का संस्कार-वर्णन

सूत जी ने कहा—कुण्डों के शास्त्रीय संस्कार तुम्हें इसलिए बता रहा हूँ कि संस्कारहीन कुण्डों में हवन करने से अर्थ हानि होती है, इसलिए संस्कार किये कुण्डों में हवन करना चाहिए।१। इसके विषय में यह बताया गया है कि कुण्डों के अट्ठारह प्रकार के संस्कार होते हैं, सर्वप्रथम तार द्वारा अच्छी तरह भूमि के निरीक्षणपूर्वक उसका कुश के जल से सेचन करे। त्रिसूत्री करने के पश्चात् वृत्त सूत्र रखकर नारसिंह रूपी

जिह्वां प्रकल्पयेत्पश्चात्तस्मादग्निं समाहरेत् । न च म्लेच्छगृहादग्निं न शूद्रनिलयात्क्वचित् ॥४
नदीपर्वतशालाभ्यः स्त्रीहस्तात्परिवर्जयेत् । संस्कृत्य परिगृह्णीयात्त्रिधा कृत्वा समुद्धरेत् ॥५
तमग्निं प्रतिगृह्णीयादात्मनोऽभिमुखं यथा । वह्निबीजेन नतिमाञ्छिवबीजेन प्रोक्षयेत् ॥६
वागीश्वरीमृतुस्नातां वागीश्वरसमागताम् । ध्यात्वा समीरणं दद्यात्काममुत्पद्यते ततः ॥७
कामबीजेन चैशान्यां योनावग्निं विनिक्षिपेत् । पश्चाद्देवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनीयकम् ॥८
चित्पिङ्गल दहदह पचयुग्ममुदीर्य च । सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं वह्निपूजने ॥९
वह्निर्बर्हिषि संयुक्ताः सादियान्ताः सबिन्दवः । वह्निमन्त्राः समुद्दिष्टा द्विजानां मन्त्र ईरितः ॥१०
जिह्वास्तास्त्रिविधाः प्रोक्ता यज्ञदत्तेन सत्तमाः । हिरण्यामाज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ॥११
त्रिमध्वक्तैर्यत्र होमं कर्णिकायां च होमयेत् । कनकास्यात्तु कृष्णास्याद्धिरण्या शुभ्रता तथा ॥१२
बहुरूपातिरूपा च सात्त्विका योगकर्मसु । विश्वमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ॥१३
लोहितास्यात्करालास्यात्कालीभासस्य इत्यपि । एताः सप्त नियुञ्जीत विज्ञेयाः क्रूरकर्मसु ॥१४
समिद्भेदेषु या जिह्वास्तास्तु तेनैव योजयेत् । हिरण्यमाज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ॥१५
त्रिमध्वक्तैर्यथा होमं कर्णिकायां च होमयेत् ।शुद्धक्षीरेण रक्तायां नैत्यिकेषु प्रभा स्मृता ॥१६

वार से कुड्मल रूपी कील प्रदान करना चाहिए ।३। पश्चात् उसमें जिह्वा बनानी चाहिए, जिससे कि अग्नि लाया जा सके । क्योंकि म्लेच्छ, शूद्र, नदी एवं पर्वत के घरों और स्त्री के हाथ से अग्नि न लेना चाहिए प्रत्युत संस्कारपूर्वक ग्रहणकर तीन भागों में विभाजित करके उसका आहरण करना बताया गया है ।४-५। उस अग्नि को अपने सम्मुख ग्रहण कर अनन्तर वह्निबीज (रं) और शिव बीज द्वारा उसका प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर ऋतुकाल के स्नान से शुद्ध होकर वागीश्वरी का जिनका आगमन वागीश्वर के साथ हुआ है, ध्यान करते हुए उसे वायु द्वारा प्रज्वलित करना चाहिए, इसलिए कि ऐसा करने से ही इष्टसिद्धि हो सकती है ।६-७। ईशानकोण में स्थित योनि में काल बीज द्वारा उस अग्नि का स्थापन करके उसके उपरान्त देवी और देव के मुखशुद्ध्यर्थ आचमन जल प्रदान करना चाहिए ।८। हे चित-पिङ्गल ! दह, दह, पंचयुग्म इत्यादि मंत्रों द्वारा अग्नि-पूजन करके कुशाओं के आदि अन्त भाग में घी लगाकर मन्त्रोचारणपूर्वक अग्नि में डाल देना चाहिए ।९-१०। सत्तमवृन्द ! यज्ञदत्त ने अग्नि के तीन प्रकार की जिह्वा का वर्णन किया है । इससे घी के हवन में हिरण्य वाली जिह्वा में संयमपूर्वक आहुति डालनी चाहिए ।११। त्रिमधु (घी, शहद, शक्कर) से जहाँ हवन करना हो, वहाँ प्रथम उसकी कर्णिका में हवन करना चाहिए । कनका, कृष्णा, हिरण्या, शुभ्रा, बहुरूपा एवं अतिरूपा, इन सात्त्विक जिह्वाओं का योग कर्मों में उपयोग किया जाता है, उसी भाँति विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गिनी (चिनगारी) धूम्रवर्णा (धुएँवाली), मनोजवा (मन की भाँति वेग वाली), लोहिता (रक्तवर्णा), कराला और काली की भाँति आभा वाली (काली), इन सात प्रकार की जिह्वाओं के उपयोग क्रूर-कर्मों में किये जाते हैं ।१२-१४। समिधाओं (लकड़ियों) के भेद से जो जिह्वाएँ बतायी गयी हैं, उन्हें भी उन्हीं के साथ नियुक्त कर देना चाहिए जैसे—संयमपूर्वक घी के हवन करने में हिरण्या नामक जिह्वा का उपयोग करना बताया गया है, त्रिमधु (घी, शहद एवं शक्कर) के हवन में जिस भाँति प्रथम कर्णिका में हवन किया जाता है । शुद्ध क्षीर

बहुरूपा पुष्पहोमे कृष्णा चान्नेन पायसैः । इक्षुहोमे पद्मरागा सुवर्णा पद्महोमके ॥१७
लोहिता पद्महोमे च श्वेता वै बिल्वपत्रके । धूमिनी तिलहोमे च काष्ठहोमे करालिका ॥१८
लोहितास्या पितृहोमे ततो ज्ञेया मनोजवा । वैश्वानरं स्थितं होमे समिद्धोमेषु सत्तमाः ॥१९
समानमाज्यहोमे च निषण्णं शेषवस्तुषु । आस्यात्तु जुहुयाद्वह्नौ पिपर्त्ति सर्वकर्मसु ॥२०
कर्णहोमे तु वै व्याधिर्नेत्रे तद्द्वयमीरितम् । नासिकायां मनः पीडा मस्तकेऽध्वा न संशयः ॥२१
गुह्ये विपत्करं चैव तस्मात्तत्र न होमयेत् । साधारणमथो वक्ष्ये वह्नेर्जिह्वाश्च कीर्तिताः ॥२२
प्रवक्ष्यामि विधिं कृत्स्नं यद्विशेषं पुनः शृणु । घृताहुतौ हिरण्याख्या गगना पाणिहोमतः ॥२३
वक्रा ख्याता महाहोमे कृष्णाभा सा क्रतौ मता। सुप्रभा मोदकविधौ बहुरूपातिरूपिकाः ॥२४
पुष्पपत्रविधौ होमे वह्नेर्जिह्वा प्रकीर्तिताः । न वा संकल्पयेत्कुण्डे शूद्राकारविभेदतः ॥२५
इन्द्रकोष्टं मस्तकं स्यादीशाग्नेये च मस्तके । तत्काष्ठपार्श्वे द्वे नेत्रे द्वौ करौ च पदक्रमात् ॥२६
अविशिष्टं भवेत्पुच्छं मध्ये चोदरसम्भवम् । उदरे होमयेत्पुष्टिमन्नं पायसकं च यत् ॥२७
हुत्वा व्रीहिगणं तत्र कर्णे पुष्पाहुतिं हुनेत् । वामकर्णे वामनेत्रे हुनेदब्जादिकं बुधः ॥२८
श्रवणे चैव नेत्रे च दक्षिणे चेक्षुखण्डकम् । वामपादे वामकरे अभिचारेषु शस्यते ॥२९

के हवन में रक्ता, निरूप कर्मों में प्रभा, फूलों के हवन में बहुरूपा, अन्न के खीर से हवन करने में कृष्णा, ऊख के हवन में पद्मरागवाली, कमल के हवन में सुवर्णा, तथा लोहिता (रक्तवर्ण वाली), वेलपत्र के हवन में श्वेतवर्णवाली, तिल के हवन में धूमिनी (धूम वाली), काष्ठ के हवन में कराली, पितृ हवन में लोहिता और सत्तमगण ! समिधाओं के हवन में, जबकि अग्नि उससे अपने रूप में स्थित हो, मनोजवा मन की भाँति वेगवाली) जिह्वा के आवाहन-ध्यान करना चाहिए।१५-१९। घी के हवन में अग्नि समान रूप से स्थित रहते हैं और शेष वस्तुओं के हवन में सोये से। अग्नि के मुख में आहुति डालने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं।२०। उनके कान में हवन करने से व्याधियाँ, नेत्र में वही दोनों, नाक में मन की पीड़ा, मस्तक में आहुति डालने से यात्रा करना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं।२१। उनके ग्रहण स्थान में आहुति डालने से आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। इसलिए इन स्थानों में कभी भी हवन न करें, इसके उपरान्त मैं अग्नि की साधारण जिह्वाओं को तुम्हें बता रहा हूँ, जो अन्यत्र बतायी गयी हैं।२२। उसी प्रकार उसके समस्त विधान एवं विशेषता को भी। घी की आहुतियों के प्रदान में हिरण्यनामक, हाथ से हवन करने में गगना, महान यज्ञ में वक्रा, यज्ञ में कृष्णा, मोदक के हवन में सुप्रभा, पुष्प के हवन विधान में बहुरूपा और पत्तों के हवन में अतिरूपा, अग्नि की जिह्वा बतायी गयी है, शूद्राकार के भेद होने के नाते कुण्ड में उसका संकल्प न करना चाहिए।२३-२५। इन्द्र कोष्ठ, ईशान एवं अग्निकोण भी (अग्नि के) मस्तक कहे जाते हैं, उनके काष्ठ के पार्श्व भाग में दोनों नेत्र, दोनों हाथ एवं चरण क्रमशः बताये गये हैं।२६। शेष भाग उनकी पूँछ एवं मध्यभाग उदर कहा गया है, इसलिए उदर में ही पुष्टि के लिए अन्न अथवा खीर के हवन करना चाहिए।२७। उदर में अन्न के विधानपूर्वक हवन के उपरान्त उनके कान में पुष्प की आहुति, बायें कान, एवं बायें नेत्र में कमल पुष्प के हवन विद्वानों को करना चाहिए।२८। कान एवं दाहिनी आँख में ऊख के टुकड़े और बायें हाथ एवं पैर में अभिचार कर्मों में आहुति डालनी चाहिए।२९। मारण कर्म तथा पुण्य के

मारगे पुष्पदेशे तु न चान्यं होमयेत्क्वचित् । विपत्करं विजानीयाद्ध्वनिः सर्वविनाशकृत् ।।३०
चन्दनागरुकर्पूरपाटलायूथिकानिभः । पाकस्य सुतो गन्धः समन्तात्सुमहोदयः ।।३१
प्रदक्षिणस्त्यक्तकल्पा छत्राका शिथिला शिखा । शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ।।३२
छिन्नवृत्ताः शिखाः कुर्यान्मृत्युर्धनपरिक्षयः । निर्दाप्यं मरणं विद्यान्महाधूमाकुलेऽपि च ।।३३
एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तं समाचरेत् । अष्टाविंशाहुतीस्त्यक्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।।३४
मूलेनाज्येन जुहुयाज्जुहुयात्पञ्चविंशतिम् । महास्नानं प्रकर्तव्यं त्रिकालं हरिपूजनम् ।।३५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे कुण्डसंस्कारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

यज्ञान्तपूजा-विधिवर्णनम्

सूत उवाच

नित्यं नैमित्तिकं चैव यागादौ च समाप्तके । होमावसाने प्रजपेदुपचारांश्च षोडश ।।१
दद्यात्समीरणं पश्चात्पीठपूजां समाचरेत् । गृहीत्वा रक्तपुष्पं च ध्यायेद्वह्निं यथा विधि ।।२
इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरान्तम् ।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ।।३

प्रदेश में किसी अन्य के हवन न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से इस भाँति की आपत्ति आती है, जिसमें समस्त के विनाश संभव हो जाते हैं ।३०। चन्दन, अगुरु, पाटला एवं जूही के समान गंधकों, जो महान् अभ्युदय कारक होता है, अग्नि पुत्र बताया गया है ।३१। प्रदक्षिणा की भाँति, असाधारण, छत्ते की भाँति और शिथिल अग्नि की शिखाएँ यजमान के लिए शुभ-दायक होती हैं, विशेषकर राजाओं के लिए ।३२। छिन्न वृत्त वाली शिखा मृत्यु एवं धन नाश करती है, और महान धूमों से व्याप्त होने पर मरण ही समझना चाहिए ।३३। इस प्रकार के दोषों के समुपस्थित होने पर प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है—अट्ठाइस आहुति छोड़कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए मूल भाग से पच्चीस आहुति घी की डालकर महा स्नान एवं तीनों समय में विष्णु-पूजन करना आवश्यक बताया गया है ।३४-३५!
श्रीभविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में कुण्डसंस्कार वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १८

यज्ञान्त में पूजा-विधि का वर्णन

सूत जी ने कहा—नित्य अथवा नैमित्तिक यज्ञ की समाप्ति में, जबकि हवन कार्य समाप्त हो जाय, तो सोलह उपचारों से पूजा करने का विधान बताया गया है ।१। वायु द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके पीठासन की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् रक्तपुष्प लेकर विधानपूर्वक अग्नि का ध्यान करना बताया गया है ।२। अभीष्ट प्रदान करने वाले अग्नि के उस स्वरूप का, जो अपनी लम्बी एवं विशाल भुजाओं में शक्ति तथा स्वस्तिका आदि अस्त्र धारण किये, श्रेष्ठ, सुवर्ण की भाँति कमलासन पर स्थित, शिर में

पूर्वादिद्वारदेशेषु कामदेवं शतक्रतुम् । वराहं षण्मुखं चैव गन्धाद्यैः साधु पूजयेत् ।।४
आवाह्य स्थापयेत्पश्चादष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् । दत्त्वासनं स्वागतं च दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ।।५
अतः पूर्वादिपात्रेषु याचता च हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ।।६
महोदरं महाजिह्वमाकाशत्वेन पूजयेत् । तारकादीन्समाप्ते च गन्धैः पुष्पैः पृथग्विधैः ।।७
तत्रैव जिह्वास्त्रिविधा ध्यायेन्मन्त्रपुरःसरः । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण उपचारैरनन्तरम् ।।८
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः । परमज्योतीरूपस्त्वमासनं सफलीं कुरु ।।९
दद्यादासनमेतेन पुष्पगुच्छत्रयेण तु । पुटाञ्जलिं ततो बद्ध्वा पृच्छेत्कुशलपूर्वकम् ।।१०
वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन । स्वागतं तु सुरश्रेष्ठ शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ।।११
नमस्ते भगवन्देव आपोनारायणात्मक । सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्यताम् ।।१२
नारायण परं धाम ज्योतीरूप सनातन । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप नमोऽस्तु ते ।।१३
जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा । तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ।।१४
धनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन । स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ।।१५
हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन । शरणं ते प्रयच्छामि देहि मे परमं पदम् ।।१६

जटा-जूट से विभूषित एवं तीन नेत्र हों, ध्यान करना चाहिए।३। पूर्व आदि चारों दिशाओं के दरवाजों पर स्थित, कामदेव, शतक्रतु (इन्द्र), वाराह और षडानन की क्रमशः गंधादि द्वारा सविधि पूजा करनी चाहिए।४। देवताओं के आवाहन एवं स्थापन के उपरान्त आठों मुद्राओं को उन्हें दिखाना चाहिए। आसन पर उन्हें स्थित कर उनके स्वागत के लिए पाद्य आदि जल देना चाहिए।५। अनन्तर पूर्वादि पात्रों में अग्नि का, जिसका सुवर्ण की भाँति वर्ण, निर्मल, प्रदीप्त, चारों ओर मुख, महान् उदर एवं बहुत बड़ी जिह्वा है, आकाश की भाँति पूजन करना चाहिए; पश्चात् समाप्ति में तारकाओं की पृथक्-पृथक् विधानों द्वारा गन्ध एवं पुष्पों से पूजन करने के उपरान्त मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी तीन भाँति की जिह्वाओं का ध्यान करना चाहिए और मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी पूजा भी।६-८। तुम्हीं समस्त जीवों के आदि (जेठ) हो, और संसार-सागर को पार करने वाले भी। परमज्योति तुम्हारा रूप है, अतः इस आसन को ग्रहण कर सफलता प्रदान करो। इस भाँति कहते हुए पुष्प के तीन गुच्छों द्वारा उन्हें आसन प्रदान कर हाथ जोड़ कुशल पूँछने के उपरान्त कहे कि—हे वैश्वानर! तुम्हें नमस्कार है, हे हव्य वाहन तुम्हें नमस्कार है, एवं हे सुरश्रेष्ठ! यह आपका स्वागत, है इसे स्वीकार कर मुझे शांति प्रदान करें, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।९-११। हे भगवन्, देव! नारायण! समस्त लोगों के कल्याणार्थ इस जल को पाद्यार्थ (पैर धोने के लिए) ग्रहण कीजिए। नारायण रूप (आप ही) परमोत्तम स्थान रूप हैं, ज्योति रूप और सनातन भी। मेरे दिये हुए इस अर्घ्य को स्वीकार कीजिये, हे विश्वरूप! तुम्हें नमस्कार है।१२-१३। सूर्य रूप होकर जो सदैव संसार को प्रकाशित करता है, उस प्रकाशमय, अग्निदेव को नमस्कार है।१४। हे धनंजय! हे समस्त पापों के नाश करने वाले! तुम्हें नमस्कार हैं, मैं अपनी समस्त कामनाओं की सफलता के लिए स्नानार्थ तुम्हें जल प्रदान कर रहा हूँ (स्वीकार कीजिये)।१५। हे हुताशन, महाबाहो, देवाधिदेव, एवं सनातन! मैं आपकी शरण हूँ, मुझे परमपद प्रदान कीजिये।१६। (आप) प्रकाशकों के

ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत ! मया दत्तमलङ्कारमलङ्कुरु नमोऽस्तु ते ॥१७
देवीदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात् । सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८
त्वं विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर । गृहाण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद्भवेत् ॥१९
देवतानां पितॄणां च सुखमेकं सनातनम् । धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यतां मे धनञ्जय ॥२०
त्वमेकः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्यताम् ॥२१
नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे । सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२
हुताशन नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहन । लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥२३
इत्यनेन तु मन्त्रेण दद्याद्दिव्येऽप्यर्धातकम् । सर्वस्वं यज्ञसूत्रं च परमान्नं समाक्षिकम् ॥२४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे यज्ञान्तरपूजाविधिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अग्निवर्णनम्

सूत उवाच

यज्ञभेदं त्रिभेदं च वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा । यथावेदानुसारेण यथाग्रहणयोजनम् ॥१

प्रकाश रूप हैं, हे जन्म-मरणहीन एवं अच्युत ! मेरे दिये हुए अलंकारों को स्वीकार कीजिये । मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।१७। जिनके समागम होने से सभी देवी एवं देवता हर्ष निमग्न हो जाते हैं, उन्हें समस्त दोषों के शांत्यर्थ गन्ध प्रदान कर रहा हूँ, (इसे) स्वीकार कीजिए ।१८। तुम्हीं विष्णु एवं ब्रह्मा हो, तथा प्रकाशकों की गति भी । हे ईश्वर ! देवेश ! इस पुष्प को ग्रहण कीजिए, इसी से समस्त संसार अनुलिप्त हो जायगा ।१९। देव और पितरों के एक सनातन ही सुख की वस्तु हैं, देवाधिदेव, धनंजय । इस धूप को ग्रहण कीजिये ।२०। स्थावर एवं चरात्मक समस्त जीवों में तुम्हीं एक परमात्मा के रूप से स्थित हो, तुम्हारा आकार भी परमोत्तम है, इस प्रदीप को स्वीकार कीजिये ।२१। यज्ञादिदेव, प्रभु एवं अग्नि को नमस्कार है, समस्त लोकों की हितकामना पर दिये गये इस नैवेद्य को स्वीकार कीजिये ।२२। हुताशन, तुम्हें नमस्कार है, रुद्रवाहन को नमस्कार है, लोकनाथ को नमस्कार है, जातवेदस् (अग्नि) को नमस्कार है, इस मन्त्र द्वारा उस दिव्य देव (अग्नि) को सर्वस्व यज्ञसूत्र तथा शहद समेत परमोत्तम अन्न प्रदान करना चाहिए ।२३-२४

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में यज्ञान्तपूजाविधिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

यज्ञों के भेद का निरूपण

सूत जी बोले—शास्त्र के कथनानुसार एवं वेद की रीति से जिस प्रकार ग्रहण किया जाता है ऐसे यज्ञ के भेद, जिसमें तीन भेद हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। शतार्ध में बन्दि और काश्यप (अग्नि के) नामक का

शतार्धे वह्निरुद्दिष्टः शतार्धे काश्यपः स्मृतः । घृतप्रदीपके विष्णुस्तिलयागे वनस्पतिः ॥२
सहस्रे ब्राह्मणो नाम अयुते हरिरुच्यते । लक्षहोमे तु वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ॥३
वरुणः शान्तिके ज्ञेयो मारणे ह्यरुणः स्मृतः । नित्यहोमेऽनलो नाम प्रायश्चित्ते हुताशनः ॥४
लोहितश्चान्नयज्ञे यो ग्रहाणां प्रत्यनुक्रमात् ।देवप्रतिष्ठायागे तु लोहितः परिकीर्तितः ॥५
प्रजापतिर्वास्तुयागे मण्डपे चापि पद्मके । प्रपायां चैव नागाख्यो महादाने हविर्भुजः ॥६
गोदाने च भवेद्रुद्रः कन्यादाने तु गोऽजकः । तुलापुरुषदाने च धाताग्निः परिकीर्तितः ॥७
वृषोत्सर्गे भवेत्सूर्योऽवसानान्ते रविः स्मृतः । पावको वैश्वदेवे च दीक्षापक्षे जनार्दनः ॥८
त्रासने च भवेत्कालः क्रव्यादः शरदाहने । पर्णदाहे यमो नाम ह्यस्थिदाहे शिखण्डिकः ॥९
गर्भाधाने च मरुतः सीमन्ते पिङ्गलः स्मृतः । पुंसवे त्विन्द्र आख्यातः प्रशस्तो यागकर्मणि ॥१०
नामसंस्थापने चैवमुपन्यस्ते च पार्थिव। निष्क्रमे हाटकश्चैव प्राशने च शुचिस्तथा ॥११
[१]षडाननश्च चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः। वीतिहोत्रश्चोपनये समावर्ते धनञ्जयः ॥१२
उदरे जठराग्निश्च समुद्रे वडवानलः । शिखायां च विभुर्ज्ञेयः स्वरस्याग्निः सरीसृपः ॥१३
अश्वाग्निर्मन्थरो नाम रथाग्निर्जातवेदसः । गजाग्निर्मन्दरश्चैव सूर्याग्निर्विध्यसंज्ञकः ॥१४
तोयाग्निर्वरुणोनाम ब्राह्मणाग्निर्हविर्भुजः । पर्वताग्निः क्रतुभुजो दावाग्निः सूर्य उच्यते ॥१५
दीपाग्निः पावको नाम गृह्याग्निर्धरणीपतिः । घृताग्निश्च नलो वायुः सूतिकाग्निश्च राक्षसः ॥१६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागेऽग्निनामवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

उच्चारण करना चाहिए, उसी भाँति, घी के याग में विष्णु, तिल के हवन में वनस्पति, सहस्र आहुति में ब्राह्मण का नाम, दश सहस्र में हरि, लक्षआहुति में वह्नि, कोटि वह्नि में हुताशन, शांति कर्म के हवन में वरुण, मारण में अरुण, नित्य हवन में अनल, प्रायश्चित कर्म में हुताशन का नाम बताया गया है । अन्न यज्ञ में जो क्रमशः ग्रहों के निमित्त किया जाता है, तथा देवों की प्रतिष्ठा में लोहित नामोच्चारण करना चाहिए । वास्तु (गृह) यज्ञ में जिसमें कमल मण्डल सुसज्जित होता है, प्रजापति, प्रपा (पौंसला) के निर्माण आदि में नाग, महादान में हविर्भुक्, गोदान में रुद्र, कन्यादान में गोजक, तुलापुरुष के दान में धाता, वृषोत्सर्ग में सूर्य, अवसान में रवि, वैश्वदेव कर्म में पावक, दीक्षा में जनार्दन, भयभीत करने में काल, शरदाह में क्रव्याद, पर्णदाह में यम, अस्थिदाह में शिखण्डिक, गर्भाधान कर्म में मरुत, सीमंत कर्म में पिंगल, पुंसवन में इन्द्र प्रशस्त नाम बताया गया है ।२-१०। नामकरण के समय पार्थिव, निष्क्रमण में हाटक, अन्नप्राशन में शुचि, चूर्णकर्म एवं व्रतादेश में षडानन, उपनयन में वीतिहोत्र, समावर्तन में धनंजय, उदर में जठराग्नि, समुद्र में वडवानल, शिखा में विष्णु, स्वर के अग्नि को सरीसृप कहते हैं ।११-१३। उसी प्रकार अश्व की अग्नि को मन्थर, रथ की अग्नि को जातवेदस्, गज की अग्नि को मंथर, सूर्य की अग्नि को विंध्य कहा जाता है ।१४। तोय (जल) की अग्नि को वरुण, ब्राह्मण की अग्नि को हविभुक्, पर्वत की अग्नि को क्रतुभुक्, दावाग्नि को सूर्य बताया गया है ।१५। दीपक की अग्नि को पावक, गृह की अग्नि को धरणीपति, घी की अग्नि को नल वायु और सूतिका की अग्नि को राक्षस कहा जाता है ।१६

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में अग्नि वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

---

१. चूडाकर्मणि सभ्यः स्याद्व्रतादेशे च माधवः ।

अथाष्टादशोऽध्यायः

होमद्रव्यकथनम्

सूत उवाच

अथातो होमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते । प्रमाणे चाप्रमाणे च निष्फलं भवति ध्रुवम् ॥१
कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् । तत्समं पञ्चगव्यं च दधि दुग्धं तथा मधु ॥२
मुष्टिमानेन पृथुका लाजाः स्युर्मुष्टिसंमिताः । शर्करा मुष्टिमात्रा च शर्करातोलकं विदुः ॥३
त्रितोलकं गुडं विद्यादिक्षुपर्वविधिर्भवेत् । एकैकं पत्रपुष्पाणि शालूकस्य त्रिमुष्टिकम् ॥४
एकलग्ने न जुहुयान्न पृथग्जुहुयात्क्वचित् । सवृंतकं जपापुष्पं केशरं तत्सवृन्तकम् ॥५
एकैकशश्च पद्मानां जलजानां तथैव च । जीवन्त्या फलमानेन पिष्टकानां प्रसङ्ख्यया ॥६
वसन्तकं धात्रिमाने मोदकस्य प्रमाणतः । एकैकशः फलानां च मातुलिङ्गत्रिखण्डकम् ॥७
अष्टधा नालिकेरस्य पनसं दशधा भवेत् । पद्मबीजप्रमाणेन कूष्माण्डं चाष्टधा भवेत् ॥८
उर्वारुकं चाष्टधा च गुडूची चतुरङ्गुलम् । पूगमानं च मांसस्य सगुडं तत्र दृश्यते ॥९
अन्यत्र बदरीमानं तिन्दुकं च त्रिधा कृतम् । काष्ठं प्रादेशमात्रं स्याद्दूर्वायाश्च त्रिपत्रकम् ॥१०
भूर्जपत्रं च गृह्णीयाच्छमीं प्रादेशमात्रिकाम् । व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युः शुक्तिमानेन सर्षपाः ॥११

अध्याय १८

हवन-द्रव्यों का कथन

सूत जी बोले—अब मैं तुम्हें हवन की वस्तुओं के माप बता रहा हूँ, क्योंकि (न्यूनाधिक) प्रमाण अथवा अप्रमाण की व्यवस्था रखने पर वह (हवन) निष्फल हो जाता है।१। हवन में एक तोला चार माशा घी, एक शुक्ति (सतुही, सीप) दूध उसी के समान भागों के तुल्य पञ्चगव्य (गोदुग्ध, दधि, घी, मूत्र गाय का) दही, दूध और मधु आदि मिलाना चाहिए।२। एक मुट्ठी धान का लावा, एवं जिस भाँति मुट्ठी बाँधी जाती है, उतना ही शक्कर डालना चाहिए, इस शक्कर की माप वेत्ताओं ने बताया है ३। उसमें तीन तोला गुड़ डालने से उसे इक्षुपर्व विधान कहा गया है। एक-एक पत्र, पुष्प तथा तीन मुट्ठी कन्द भी डालना चाहिए। एकसाथ अथवा पृथक्-पृथक् भी जया पुष्प के गुच्छे और केशर के गुच्छे का हवन कभी न करना चाहिए।४-५। एक-एक कमल एवं कसेर तथा जीवन्ती के फल के चूर्ण को एकत्र कर बसंत ऋतु के आंवले के समान अथवा मोदक के प्रमाणानुसार उसकी गोली बनाकर हवन करना चाहिए। फलों के एक-एक खण्ड, विजौरे नीबू के तीन, नारियल के आठ, कटहल के दश एवं कमल बीज के समान कुम्हड़े के आठ टुकड़े करने चाहिए।६-८। ककड़ी के आठ, गुरुचि के चार-चार अंगुल सोपाड़ी के समान मांस के टुकड़े कर उसमें गुड़ भी मिलाना चाहिए।९। दूसरे कामों के लिए वेर के समान उसका प्रमाण बताया गया है। और तिंदुक के तीन टुकड़े करने चाहिए। प्रादेशमात्र हवन की लकड़ी, दूर्वा के तीन पत्ते भोजपत्र और शमी की लकड़ी प्रादेशमात्र के माप की होनी चाहिए, तथा एक मुट्ठी व्रीहि, एक सीप भर के राई, मिर्च, मृणाल की

मरिचाः स्युर्विमानेन मृणालं चाथ मूलकम् । सप्तखण्डं च वार्ताकं त्रिपुष्टं च त्रिधोदितम् ।।१२
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च । तिन्तिडीबीजमानेन समुद्दिष्टानि देशिकैः ।।१३
समिदाप्लवने त्र्यङ्गतिलानामपि मध्यतः । दशकं प्लावनेनैव सहस्राणां शतं विना ।।१४
एवं व्रीहिप्लावने च काष्ठवदिक्षुदण्डकम् । प्रोक्षणं मृदुपुष्पाणां लतादीनां तथैव च ।।१५
पायसान्ने तथान्ने च मोदके पिष्टकेऽपि च । शाल्यासक्तेन जुहुयाद्व्यत्यये व्यत्ययं फलम् ।।१६
बिल्वपत्रस्य प्लवनं दण्डं हित्वा च प्लावयेत् । वृन्तसम्प्लावनादेव फलं हरति राक्षसः ।।१७
बिल्वपत्रस्य पूर्वार्धप्राप्तमात्रेण योजयेत् । पत्रत्रयं तथा होमे छिन्नेभिन्नेऽतिदूषणम् ।१८
न द्वित्रिप्लवनं कुर्यात्कृत्वा याति रसातलम् । तस्माच्च पुत्रशिष्याद्यैर्ब्राह्मणैस्तत्त्वकोविदैः ।।१९
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पावयेच्च यथाक्रमात् । न न्यूनं नाधिकं कुर्याच्छांतिपक्ष उदङ्मुखः ।।२०
पायसान्यन्यदेवेषु यत्नेन परिवर्जयेत् । न चाग्नौ दापयेद्यत्नादेतेभ्यः प्रतिपादयेत् ।।२१
कनिष्ठाङ्गुलिमासाद्य प्रकुर्यात्पर्वभूषणम् । गुणदोरकमानेन तावद्धोमगतिर्बुधाः ।।२२
अङ्गुलैर्द्वित्रिचतुरैः पत्रहोमाकृतिक्रमात् ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे होमद्रव्यकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८

जड़, वैगन के सात टुकड़े तथा तीनों पौष्टिक पदार्थों को तीन भाग में विभाजित करके उसके साथ चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, कुंकुम के माप इमली के बीज के समान ग्रहण करना चाहिए ।१०-१३। समिदाप्लवन में तीनों अङ्ग एवं तिलों के मध्य से सौ सहस्र की आहुति न पड़ने वाले यज्ञ में, उसी भाँति व्रीहि के प्लावन में काष्ठ की भाँति ईख के दंडे का टुकड़े बनाकर कोमल पुष्पों एवं लतादिकों का प्रोक्षण करना चाहिए ।१४-१५। खीर, केवल अन्न, मोदक एवं शाठी चावल के चूर्ण का हवन करना चाहिए, इसके प्रतिकूल हवन करने से उसके अनिष्ट फल भी प्राप्त होते हैं ।१६। वेलपत्र के लेपन करने में दण्ड भाग को छोड़कर प्लावन करना चाहिए, वृंत (गुच्छों) के प्लावन करने में उसके फल का अपहरण राक्षस करते हैं ।१७। वे पत्र का पूर्वार्धभाग मात्र भी प्राप्त होने पर उसका ही ग्रहण करना चाहिए। हवन कार्य में तीन पत्ते बेल के होने चाहिए, पर उसके छिन्न-भिन्न होने से अत्यन्त दोष भी होते हैं ।१८। दो तीन प्लवन न करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से वह रसातल चला जाता है। इसलिए पुत्र अथवा शिष्य आदि उस तत्ववेत्ता ब्राह्मण को चाहिए कि पूर्वाभिमुख हो क्रमशः उसे पवित्र करने की चेष्टा करें। शांति कार्य में उत्तराभिमुख होकर न्यूनाधिक न करना चाहिए, क्योंकि वैसा क्रम नहीं बताया गया है ।१९-२०। अन्य देवों के उद्देश्य से किये जाने वाले हवन में खीर की आहुति एवं उन्हें भी न प्रदान करनी चाहिए ।२१। हे विद्वन्! कनिष्ठा अंगुली के द्वारा उत्सव को विभूषित करना चाहिये। गुणपरिमाण के मान से होम की स्थिति का विधान करना चाहिए, दो तीन चार अंगुलियों से पत्ते की हवनाकृति का क्रम बनाना चाहिये ।२२-२३

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में होमद्रव्य-कथन नामक अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

स्रुवदर्वीनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

श्रीपर्णी शिंशपा क्षीरी बिल्वः खदिर एव च । स्रुवे प्रशस्तास्तरवः सिद्धिदा यागकर्मणि ।१
प्रतिष्ठायां प्रशस्तास्तु धात्रीखदिरकेशराः । संस्कारे शशिभिन्नौ च धात्री धात्रा विनिर्मिता ।।२
सम्प्राशे यः स्रुवः प्रोक्तः संस्कारे यज्ञसाधने । प्रतिष्ठायां तु कथितास्तदन्ये शास्त्रवेदिभिः ।।३
स्रुवं स्रुचमथो वक्ष्ये यदधीनश्च जायते । यज्ञे न सर्दकं धार्यमक्षरेण च व्यत्ययः ।।४
तस्यादौ च स्रुवं वक्ष्ये यच्च मानं यदास्पदम् । काष्ठं गृहीत्वा बिल्वस्य रिक्तादितिथिवर्जिते ।।५
समुपोष्य च रचयेदामिषाणि न च स्मरेत् । वर्जयेद्ग्राम्यधर्मं च निर्माणे स्रुक्स्रुवस्य वै ।।६
काष्ठं गृहीत्वा विभजेद्भागांस्त्रिशतस्तथा पुनः । विंशत्यङ्गुलमानं तु कुण्डवेदिसमोदरम् ।।७
कटाहाकारनिम्नं च स्रुवं कुर्याद्विचक्षणः । धात्रीफलसमाकारं स्वधानिम्नं सुशोभनम् ।।८
वेदीं शूर्पाकृतिं कुर्यात्कुण्डानि परिकल्पयेत् । हंसवत्त्रिगुणा वापि हस्तेनाऽनुमुखं लिखेत् ।।९

अध्याय १९

स्रुवदर्वी निर्णय-वर्णन

सूत जी बोले—श्रीपर्णी, शिंशपा, क्षीर वाला वृक्ष, बेल एवं खैर की लकड़ी से बना हुआ स्रुवा यज्ञ के लिए प्रशस्त बताया गया है, यही वृक्ष यज्ञों में सफलता प्रदान करते हैं ।१। प्रतिष्ठा कर्म में आँवले और खैर, तथा केशर के स्रुवा प्रशस्त बताये गये हैं । चन्द्रभिन्न संस्कार के लिए आँवले का ही स्रुवा प्रशस्त कहा गया है, क्योंकि ब्रह्मा ने उसे उसी के लिए ही उत्पन्न किया है ।२। संप्राशन संस्कार के यज्ञ-कर्म में जिस वृक्ष का स्रुवा बताया गया है, उसी को प्रतिष्ठा कर्म में भी शासक वेत्ताओं ने कहा है ।३। मैं स्रुवा और स्रुक् की व्याख्या कर रहा हूँ, तथा ये जिसके अधीन रहते हैं, उसे भी बता रहा हूँ ! इनके यज्ञाङ्ग होने के नाते यज्ञ ही इन्हें धारण करता है, यज्ञपात्र होने के कारण दोनों समान हैं, इनमें केवल अक्षर का ही अंतर व्यत्यय (उलट-फेर) है ।४। अतः प्रथम स्रुवा के माप और आस्पद (स्थान) आदि बता रहा हूँ । रिक्ता आदि हीन तिथियों में बेल का काष्ठ लेकर स्रुवा का निर्माण करना चाहिए, उसके निर्माण में उपवास रहकर आमिष का स्मरण तक न करना चाहिए और ग्राम्य धर्म (स्त्री प्रसंग) तो नितान्त वर्जित किया गया है । स्रुवा के निर्माण में भी ये नियम आवश्यक हैं । उस (स्रुवा) के काष्ठों में पहले तीस भाग करके बीस अंगुल के प्रमाण का स्रुवा बनाना चाहिए, जिसके उदर भाग कुण्डवेदी के समान होते हैं ।५-७। बुद्धिमान् को कड़ाहे के समान नीचा (गहरा) आँवले के समान आकार वाले, स्वधा की भाँति नीचा और सौन्दर्यपूर्ण स्रुवा का निर्माण करना चाहिए ।८। सूप की भाँति वेदी की रचना करके उसमें कुण्डों के निर्माण करना चाहिए । उसके सम्मुख ही अपने हाथ से हंस की भाँति अथवा त्रिकोण कुण्ड की रचना के उपरांत चौबीस अंगुल के

स्रुवं चतुर्विंशतिभिर्भागैश्च रचयेद्ध्रुवम् । द्विंत्रिशं स्यात्कुण्डमाननदैवे तस्य कीर्तितम् ।।१०
चतुर्भिरङ्गैरानाहं कर्षाग्रं ततः स्रुवम् । अङ्गद्वयेन विलिखेत्पङ्के मृगमदाकृतिम् ।।११
दण्डमूलाश्रये दण्डी भवेत्कङ्कणभूषितः । सौवर्णस्य च ताम्रस्य कार्या दर्वी प्रमाणतः ।।१२
श्रैवर्णिकोद्भवं यच्च इन्दुवृक्षसमुद्भवम् । क्षीरवृक्षसमुद्भूतं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ।।१३
द्वयङ्गुलं मण्डलं तस्य दर्वी सा यज्ञसाधने । चत्वारिंशत्तोलिकाभिरिति ताम्रमयस्य च ।।१४
पञ्चाङ्गुलं मण्डलं च अष्टहस्तं च दण्डकम् । अन्नादिपायसविधौ दर्वी यज्ञस्य साधने ।।१५
दशतोलकमानेन सा च दर्वी उदाहृता । आज्यसंशोधनार्थं तु सा तु ताम्रमयस्य च ।।१६
षोडशाङ्गुलमानेन सर्वाभावे च पैप्पलीम् । आज्यस्थालीं घृतमयीं मृण्मयीं च समाश्रयेत् ।।१७
अथ ताम्रमयी कार्या न च तां तत्र योजयेत् ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे स्रुवदर्वीनिर्णयो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

पूर्णविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अथ पूर्णविधिं वक्ष्ये यथा चन्द्रार्थवेदिनाम् । यस्य सम्यगनुष्ठानात्सम्पूर्णं स्यादिति स्थितिः ।।१

प्रमाणानुसार स्रुवा बनाये और उसी भाँति बत्तीस अंगुल प्रमाण के कुण्ड बनाने को बताया गया है ।९-१०। चार अंगुल की लम्बी-चौड़ी कोठरी की भाँति उस भाग की रचना करनी चाहिए, जिसमें घी भरकर आहुति दी जाती है, और शेष भाग से स्रुवा का निर्माण किया जाता है । दो अंगुल के आकार का जो कस्तूरी की भाँति रहता है, उस पंक में निर्माण करना चाहिए ।११। दंडी को उस दण्ड के मूल भाग को कंगन से भूषित करना चाहिए तथा प्रमाणानुसार सुवर्ण अथवा ताँबे की करछी बनानी चाहिए ।१२। सेमर, देवदारु एवं गूलर की बारह अंगुल की करछी बनायी जाती है, जिसमें (कटोरी की भाँति) उसका मंडल भाग दो अंगुल का रहता है । वही करछी यज्ञ के लिए प्रशस्त होती है । ताँबे की करछी बनाने में चालीस तोले, ताँबे की करछी बनाने को बताया गया है, जिसमें पाँच अंगुल का उसका मण्डल भाग (कटोरी) और आठ हाथ का दंड रहता है, यज्ञ में अन्न आदि के खीर बनाने के लिए ऐसी ही करछी को प्रशस्त बताया गया है ।१३-१५। घी के संशोधनार्थ दश तोले ताँबे की करछी होनी चाहिए, अथवा सभी के अभाव में सोलह अंगुल प्रमाण की पीपल की ही करछी तथा घी के पात्र बनाना चाहिए, घी का पात्र मिट्टी का भी हो सकता है । पर जहाँ तक हो सके ताँबे की करछी और घी के पात्र यज्ञ में न रखे ।१६-१८

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में स्रुवदर्वी निर्णय नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

पूर्णविधि-वर्णन

सूत बोले—मैं चंद्रार्थ वेदियों के पूर्ण विधान को यथोचित रीति से बता रहा हूँ, जिसके विधान

होमपूर्तौ मोक्षकल्पः पूजान्तेऽर्घ्यं विधीयते । अथ तस्यामपूर्णायां हृतश्रीर्यज्ञभ्रंशता ॥२
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्रुवाधो विन्यसेच्चरुम् । पूर्णं दत्त्वा सवित्रेऽर्घ्यं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥३
गृहं प्रविश्य च ततः कुलपूजां समाचरेत् । सप्तते देहि मे पूर्णां पुनात्विति ऋचा क्रमात् ॥४
नियोजयेत्प्रतिष्ठायां नित्यनैमित्तिके शृणु । पुनात्विति ऋचा पूर्णा प्रथमा परिकीर्तिता ॥५
सप्तेति द्वितीया स्याद्देहिमेति तृतीयिका । पूर्णादर्वी चतुर्थी स्यात्कुलेवस्थाप्य देशिकः ॥६
उत्थाय दद्यात्पूर्णां तु नोपविश्य कदाचन । कनकायां च जिह्वायां रक्तायां ग्रहयागके ॥७
ग्रहहोमे शतान्ते च पूर्णा एका विधीयते । सहस्रान्ते युगं दद्यादयुतान्ते युगद्वयम् ॥८
सहस्रान्ते ददेदेकं पुष्पहोमे च सत्तमाः । पूर्णां त्वेकसहस्रं तु दद्याद्यज्ञफलेप्सया ॥९
मृदुपुष्पाकृतौ त्वेका केवले चेक्षुहोमके । शतं द्वे च शते चैव गर्भाधानान्नप्राशने ॥१०
सीमन्तोन्नयने चैव प्रायश्चित्ताकृतीषु च । वैश्वदेवे च नित्ये च पूर्णा त्वेका विधीयते ॥११
एवं स्रुचौ समौ कृत्वा उपर्युपरि विन्यसेत् । यथा न व्ययते कृत्वा न कल्पयति यावता ॥१२
ऋषिंछन्दादिकं श्रुत्वा प्रतिमन्त्रस्य सत्तमाः । अन्यथाल्पाल्पकफलं तस्मात्संन्यस्य होमयेत् ॥१३

पूर्वक अनुष्ठान करने से यज्ञ का सुसम्पन्न होना बताया जाता है, ऐसा शास्त्रकारों का कहना है ।१। हवन की सविधि समाप्ति के उपरांत मोक्ष की भाँति निवृत्ति प्राप्त होती है, इसीलिए पूजा के अंत में अर्घ्य विधान आवश्यक बताया गया है । उसके विधान में त्रुटि होने से यज्ञ अपूर्ण, उसकी श्री नष्ट एवं यज्ञ ध्वंस कहा जाता है ।२। अतः समस्त प्रयत्नों द्वारा स्रुवा के नीचे चरु को रखकर उसकी पूर्ति, सूर्य के लिए अर्घ्य और उसके अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।३। पश्चात् घर पहुँचकर अपनी कुल परम्परागत पूजा 'सप्तते देहि' इत्यादि ऋचाओं द्वारा क्रमशः सुसम्पन्न करना चाहिए ।४। नित्य एवं नैमित्तिक प्रतिष्ठाओं में जिन ऋचाओं के प्रयोग किये जाते हैं, उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! 'पुनात्वितिऋचापूर्णा' पहली, 'सप्ततेति' दूसरी, देहिमेति, तीसरी, तथा 'पूर्णा दर्वी' चौथी ऋचाओं द्वारा अपनी कुलरीति के अनुसार देवों के पूजन करना बताया गया है ।५-६। चौथी 'पूर्णा ऋचा का प्रदान नियमानुसार उठकर ही करना चाहिए, बैठकर कभी नहीं। यह प्रदान (अग्नि की) सुवर्ण जिह्वा में किया जाता है और ग्रहों के याग में उनकी रक्तजिह्वा में।७। ग्रहों के हवन में सौ आहुति के अंत में एक पूर्णा का विधान बताया गया है, उसी भाँति सहस्र आहुति के अंत में चार और दशसहस्र आहुति के अंत में आठ पूर्णा का प्रदान आवश्यक होता है।८। सत्तम ! पुष्प के हवन में सहस्र आहुति के अंत में एक और यज्ञ फलों की प्राप्ति के लिए एक सहस्र पूर्णा का विधान बताया गया है।९। कोमल पुष्पों की भाँति आकृति निर्माण में एक केवल ईख के हवन में सौ और गर्भाधान एवं अन्नप्राशन कर्म में दो सौ का विधान बताया गया है।१०। सीमन्तोन्नयन, प्रायश्चित्त कर्म, वैश्वदेव और नित्य कर्मों में एक पूर्णा कहा गया है।११। इसी प्रकार दोनों स्रुवों (यज्ञपात्रों) को ऊपर ही ऊपर रख देना चाहिए जिसे उनका संचालन अथवा जब तक उठाये न जाँये, स्थिर रहें।१२। सत्तम ! प्रत्येक मंत्रों के उच्चारण के पूर्व उनके ऋषि एवं छंदादिकों का उच्चारण आवश्यक होता है, ऐसा न करने से उस कर्मानुष्ठान द्वारा अल्प से अल्प फल की प्राप्ति होती है अतः उपरोक्त (यज्ञ पात्रों) के त्याग और ऋषि के उच्चारण पूर्वक ही हवन करना चाहिए ।१३। 'सप्ततेति ब्राह्मण (मंत्र) ऋचा के कोण्डिन्य ऋषि, जगती छन्द, और

सप्ततेति ब्राह्मणस्य ऋषिः कौण्डिन्य ईरितः । जगती च भवेच्छन्दो देवताग्निः प्रकीर्तितः ॥१४
देहि मेति च मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः स्मृतः । अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो देवतास्य प्रजापतिः ॥१५
पूर्णादर्वीति मन्त्रस्य शतक्रतुर्ऋषिः स्मृतः । छन्दोऽनुष्टुप्समाख्यातं वह्निश्चैवात्र देवता ॥१६
पुनात्विति च मन्त्रस्य ऋषिः स्यात्पवनः स्मृतः । छन्दोऽपि जगती ख्यातं देवताग्निश्च कीर्तितः ॥१७
तुर्यपूर्णा यज्ञमध्ये नकुले द्विजसत्तमाः । न चाशिषं यज्ञमध्ये अभिषेकं च तर्पणम् ॥१८
ऋत्विक्छन्दः स्पृशन्सम्यग्दक्षिणाङ्गमथापि वा । यजमानः सपत्नीको महोत्सवपुरः सरम् ॥१९
विश्वामित्रोऽयुतं तत्र होमं कुर्याद्विचक्षणः । लवली बदरी शस्तं पिचुमन्दकच्छत्रकम् ॥२०
नागरङ्गं धातकीं च पूर्णायां च विवर्जयेत् । जप्यहानिरसङ्ख्याते होमभ्रंशश्च जायते ॥२१
तस्मात्प्रागे सतिलान्गणित्वा स्थापयेत्पृथक् । युगपद्गणयेद्वाथ न चाङ्गेन कदाचन ॥२२
धातक्याश्च फलैः सङ्ख्या कर्तव्या फलमिच्छता । बदर्याश्च लवल्याश्च फलैः सर्वार्थसिद्धये ॥२३
नागरङ्गफलैरेव धातक्या बकुलैः फलैः । यज्ञहानिकरं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥२४
कर्पूरचन्दनैः कुर्याद्धोलिकां यज्ञसिद्धये । गङ्गामृत्तिकया युक्तः शुक्तिकामथ वा द्विजाः ॥२५
रक्तगुञ्जाफलैः संख्यां पुष्टिकामेषु योजयेत् । वातार्धे च शते चैव सहस्रे च तथैव हि ॥२६
होता स्यादयुतेनापि एकाहे वेदसंख्यया । ऋणसाध्ये भवेद्धोता त्रय एव द्विजोत्तमाः ॥२७
लक्षहोने तु होतारः षडेव परिकीर्तिताः । कोटिहोमे तु विप्राः स्युः प्रशस्ताः पङ्क्तिसङ्ख्यया ॥२८

अग्नि देवता बताये गये हैं ।१४। 'देहि मेति' मंत्र के प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, प्रजापति देवता है ।१५। 'पूर्णादर्वी, मन्त्र के शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता, इसी भाँति 'पुनात्विति' मन्त्र के पवन ऋषि, जगती छन्द, और अग्नि देवता बताये गये हैं ।१६-१७। द्विजोत्तम ! चौथी पूर्णा के प्रयोग वाले यज्ञ के अनुष्ठान करने पर जब तक समाप्ति न हो जाये, अपने कुल में आशीर्वाद, अभिषेक, एवं तर्पण न करना चाहिए ।१८। पत्नी समेत यजमान उस महोत्सव में होता के स्पर्श, छन्दों के उच्चारण पूर्वक अपने दक्षिणांगों के स्पर्श करने के उपरांत विश्व-बन्धु की भाँति दश सहस्र आहुति का हवन करे । उस पूर्णा के आरम्भ में लवली वृक्ष के फल, बेर नीम के छत्र (डालीं), नारंगी,एवं आँवले के फल निषिद्ध हैं । संख्याहीन जप की हानि निश्चित है एवं हवन भी नष्ट हो जाता है । इसलिए जपआदि के पूर्व ही तिल समेत गणना करके उन्हें पृथक् रख लेना चाहिए, अपना साथ ही-साथ (किसी वस्तु द्वारा) गणना भी करता जाये, केवल एकाङ्गी होकर उसे कभी न करे ।१९-२२। फल के इच्छुक को आँवले के फल द्वारा सदैव उसके संख्या की गणना करनी चाहिए । और समस्त कामनाओं की सफलता के लिए बेर तथा लवली के फल द्वारा पूजा होनी चाहिए ।२३। नारंगी, आँवला और मौलिश्री के फलों द्वारा संख्या गणना करने से यज्ञ की हानि होती है, अतः संख्या गणना करने में उनका त्याग श्रेयस्कर कहा गया है ।२४। कपूर, चन्दन, द्वारा यज्ञसिद्धि के लिए होली करनी चाहिए, अथवा द्विजवृन्द ! गंगा की मिट्टी समेत शुक्तिका बालू से भी होना चाहिए ।२५। पुष्टि की कामना वाले कार्यों मे रक्त गुञ्जा फल द्वारा संख्याओं की गणना होनी चाहिए । वातार्ध, सौ, और सहस्र तथा दशसहस्र की आहुति वाले यज्ञ को सुसम्पन्न कराने वाले 'होता' ही कहे जाते हैं, इस भाँति एक दिन में चार सहस्र की आहुति वाले एवं ऋणसाध्य यज्ञों में भी । द्विजोत्तम ! इस प्रकार तीन प्रकार के होता होते हैं ।२६-२७। लक्ष आहुति वाले हवन में छः होता होते हैं, और कोटि संख्या की आहुति वाले हवन में

नव पञ्च दशदशकं पञ्चविंशमथापि वा । कामक्रोधविहीनाः स्युर्ऋत्विजः शान्तचेतसः ॥२९
नवग्रहे मखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः । अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव परकीर्तितौ ॥३०
कार्यायुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे । तद्वत्सदशाधा चाष्टौ नवहोमे तु ऋत्विजः ॥३१
कर्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चत्वारोऽपि विमत्सराः । तमेव पूजयेद्ब्रह्मा द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि ॥३२
एकमप्यर्चयेद्ब्रह्मा सहस्रे त्वेकब्राह्मणम् । दक्षिणाभिः प्रयत्नेन निर्वहेदल्पवित्तवान् ॥३३
लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदा वित्तं भवेत्तदा । यतः सर्वमवाप्नोति कुर्यात्कामविधानतः ॥३४
पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः । यावत्कल्पशतान्यष्टावन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥३५
अकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि । शतकाममवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ॥३६
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । भार्यार्थी लभते भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् ॥३७
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् । यं यं कामयते कामं सर्वं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥३८
निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्माधिगच्छति । तस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ॥३९
आचार्य एव होता स्याद्ब्राह्मणानामसम्भवे । न योजयेदेकमेव चायुते होमकर्मणि ॥४०

पंक्ति-संख्या के समान वे ब्राह्मण प्रशस्त बताये गये हैं।२८। (यज्ञानुष्ठान में) चौदह, बीस, अथवा पच्चीस ब्राह्मण हवन के निमित्त, जो काम, क्रोध हीन एवं शांतिचित्त वाले हों वरण किये जाते हैं।२९। नवग्रह के यज्ञों में वेदविधानिष्णात चार ब्राह्मण अथवा शांतचित्त वाले को ही ऋत्विक् (हवन कराने वाले) होना चाहिए।३०। केवल दश सहस्र की आहुति वाले यज्ञ तक ही ऐसा कहा गया है न कि किसी विस्तृत संभार वाले यज्ञ में। हवन में अपनी शक्ति के अनुसार दश, आठ या नव अथवा शुद्धान्तः करण वाले वे ही चार वेदवेत्ता ऋषि को आसन पर बैठाना चाहिए। विधानानुसार ब्रह्मा उन्ही, अथवा दो तीन की पूजा सुसम्पन्न करे।३१-३२। यदि वह एक ही हो, फिर भी ब्रह्मा को उस एक ही की सविधि अर्चा करनी चाहिए, और थोड़ी पूँजी वाले मनुष्य को सहस्र संख्या की आहुति वाले हवन में केवल एक ही ब्राह्मण को प्रसन्न रखने की चेष्टा पूजा दक्षिणा द्वारा करनी चाहिए।३३। और प्रचुर धन के व्यय करने की सामर्थ्य वाले को ही लक्ष आहुति के हवन करना बताया गया है, अतः उसी द्वारा उस यज्ञ कर्ता की समस्त कामनाएँ सफल होती है, अतः उसे यथेच्छ विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए।३४। ऐसा करने से वह शिव लोक में वसु, आदित्य, एवं मरुद्गणों द्वारा आठ सौ कल्पों तक पूजित हो कर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है।३५। जो निष्काम होकर इस लक्ष आहुति वाले हवन की विधान पूर्वक समाप्ति करता है, उसकी सैकड़ों कामनाएँ पूर्ण होती है और उसे अनन्तर (अनन्त भगवान्) के स्थान की प्राप्ति होती है।३६। पुत्र की कामना वाले को पुत्र, धनेच्छुक को धन, स्त्री की चाह वाले को स्त्री, और कुमारी को उत्तम पति की प्राप्ति होती है।३७। नष्ट-भ्रष्ट राज्य वाले को राज्य, और श्री वाले को श्री की प्राप्ति, एवं जिस जिस की कामना होती है, वह निश्चित प्राप्त होती है। इसे निष्काम करने वाले को पर-ब्रह्म की प्राप्ति होती है, ब्रह्मा के कोटि आहुति की हवन को इससे सौगुने अधिक फलदायक बताया है।३८-३९। ब्राह्मणों के प्रभाव में आचार्य ही होता का भी कार्य कर सकता है, पर, दश सहस्र की आहुति वाले हवन कर्म में एक ब्राह्मण की नियुक्ति न करनी चाहिए।४०। पूजा आदि कार्य कुशासन (कुश की

दर्भासनेऽतो न कुशे तृणे पत्रे त्वचेऽपि च । पाषाणे मृत्तिकायां च न च वस्त्रासने क्वचित् ।।४१
तत्र दारुमयं कुर्यादागमं भजते द्विजः । दानं दद्याच्च होमान्ते पूर्णादौ च यथा भवेत् ।।४२
द्विजसंस्कारकार्येषु पूर्णादौ चापि दक्षिणा । मन्त्रोपासनकार्येषु सोमयागाश्वमेधके ।।४३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्णविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

अथैकविंशोऽध्यायः

मण्डलविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अथातो मण्डलं वक्ष्ये पुराणेषु यथोदितम् । यदधीना भवेत्सिद्धिस्तस्मात्कुर्यात्समाहितः ।।१
देवाः पद्मासनस्थाश्च भविष्यन्ति वसन्ति च । विनाब्जं नार्चयेद्देवमर्चिते यक्षिणी हरेत् ।।२
अतो मण्डलविच्छेदं यस्माद्दशगुणं भवेत् । रजःसाध्ये शतगुणं केवले द्विगुणं फलम् ।।३
त्रिशतं वन्दने साध्ये सहस्रं च रजोऽष्टकम् । रजोभिः षोडशैर्बिम्बं शतं शतमनन्तकम् ।।४
यन्त्रे मणौ शालग्रामे प्रतिमायां विशेषतः । महालये महायोनौ रक्तलिङ्गे च साधिकम् ।।५

चटाई) पर ही करना बताया गया है इससे एक कुश, तृण, पत्ते, पेड़ की छाल, पत्थर, भूमि, एवं वस्त्र के आसन पर कभी न होने चाहिए ।४१। उस (यज्ञ में) वेदपाठ के लिए काठ के आसन बनाये, पूर्णा के विधान में जिस प्रकार बताया गया है, वैसा ही हवन के अंत में दक्षिणादान करना चाहिए ।४२। ब्राह्मणों के संस्कार, पूर्णानुष्ठान, मंत्रों की उपासना का कार्य सोमयाग एवं अश्वमेध यज्ञ में उसी क्रम से दक्षिणा होनी चाहिए ।४३

श्रीभविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में पूर्णविधि वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

अध्याय २१

मण्डलविधि का वर्णन

सूत जी बोले—मैं मण्डल की व्याख्या पुराणों के अनुसार कर रहा हूँ, क्योंकि सफलता उसी के अधीन रहा करती है, इसलिए उसका आरम्भ सावधानी से करना चाहिए ।१। देवताओं को कमल के आसन पर ही स्थित करना चाहिए, क्योंकि वे उसी में निवास भी करते हैं, इसीलिए बिना कमल के देवों की अर्चा अनुपयुक्त बतायी गयी है, क्योंकि वैसा न करने से उस पूजा का अपहरण यक्षिणी कर लेती है ।२। अतः मण्डल की रचना और उसमें विभाजन होना आवश्यक होता है, (पुष्प) रज से उसकी रचना करने पर सौगुने और केवल से दुगुने फल की प्राप्ति होती है ।३। उसे वंदना द्वारा साध्य करने में तीन सौ रज आठ विम्ब की रचना में एक सहस्र और सोलह बिम्ब की रचना में सैकड़ों प्रत्युत अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।४। किसी, पन्ना, मणि, विशेषकर शालिग्राम की प्रतिमा, महालय, महायोनि, अथवा रक्तलिङ्ग पर उसके निर्माण करने से अधिकाधिक फल प्राप्त होते हैं ।५। पूजा के कामों में जो अपने

रजोयुक्तं लिखेद्यस्तु पूजाकार्ये विभूतये । करणादिफलं यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥६
चतुरस्रं नवं व्यूहं क्रौञ्चघ्राणं चतुर्विधम् । कामबीजं वज्रनाभं विघ्नराजं गजाह्वयम् ॥७
पारिजातं चन्द्रबिम्बं सूर्यकान्तं च शेखरम् । शतपत्रं सहस्रारं नवनाभं च मुष्टिकम् ॥८
पञ्चाब्जं चैव मैनाकं कामराजं च पुष्करम् । अष्टास्त्रं चैव श्रीबिम्बं षडस्त्रं त्र्यस्रमेव तु ॥९
चत्वारिंशत्तथा पञ्चस्वाधिकं परिसङ्ख्यया । चतुरस्रं नवव्यूढं वैष्णवे यागकर्मणि ॥१०
प्रशस्तं चापि गोमेधे क्रौञ्चं घ्राणं चतुर्विधम् । सुभद्रं चाश्वमेधे च नरमेधे नरासनम् ॥११
सर्वत्र सर्वतोभद्रं चतुरस्रं सुभद्रकम् । कामराजं तथा त्र्यस्रमष्टास्त्रं च षडस्रकम् ॥१२
शक्तानां कामपक्षे च पञ्चसिंहासनं महत् । ध्यानाचले मेरुपृष्ठं मणिमुक्ताचलेऽप्यपि ॥१३
सहस्रं शतपत्रं च अन्नदाने तिलाचले । हरिवल्लभं राजसूये सोमयागेषु शस्यते ॥१४
प्रतिष्ठायां सुभद्रं च सर्वतोभद्रमेव च । जलाशयप्रतिष्ठायां विघ्नराजं प्रशस्यते ॥१५
घटप्रस्थापने चैव गजाह्वं तुरगासनम् । शतपत्रं लक्षहोमे अयुते चतुरस्रकम् ॥१६
यस्य यज्ञस्य यद्बिम्बं तत्तु तेनैव योजयेत् । इतोऽन्यथा भवेद्दोषो विपरीतेष्वधोगतिः ॥१७
द्विहस्ता चतुरस्रा च वेदिका परिकीर्तिता । चतुरङ्गुलोच्छ्रायमिता षडङ्गुला ह्यथापि वा ॥१८
षडङ्गुला नवव्यूहे वर्धयेद्यज्ञकोविदः । एकाङ्गुलसमुत्सेधः कर्तव्यस्सुसमाहितैः ॥१९

ऐश्वर्य के निमित्त रज से युक्त निर्माण करते हैं, उसका निर्माण करने से ही एक फल उन्हें प्राप्त होता है, अतः उसका त्याग ही उस समय श्रेयस्कर होता है।६। चौकोर, नवव्यूह, क्रौंचघ्राण क्रौंचपक्षी की नासिका के समान, जो चार प्रकार का होता है, काम बीज, वज्रनाभ, विघ्नराज, गज पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकांत, शेखर, शतयम, सहस्रार, नवनाभ, मुष्टिक, पञ्चाब्ज, मैनाक, कामराज, पुष्कर, अष्टकोण, श्री विम्ब, षट्कोण, त्रिकोण, इस प्रकार पैतालिस प्रकार के मण्डल निर्माण के भेद बताये गये हैं। विष्णु याग में चौकोर तथा नवव्यूह और गोमेध यज्ञ में क्रौंचघ्राण नामक मण्डल, जो चार प्रकार का होता है, प्रशस्त बताया गया है। उसी प्रकार अश्वमेध में समुद्र, और नरमेध में नरासन तथा सब स्थानों में सर्वतोभद्र, जो चौकोर तथा सुभद्र के नाम से ख्यात है, एवं कामराज, त्रिकोण, षट्कोण और अष्टकोण के मण्डल बनाने चाहिए।७-१२। समृद्धशाली पुरुषों के लिए कामराज की जिसमें महान् पाँच सिंहासनों की रचना होती है, रचना करनी चाहिए। ध्यानाचल में मेरुपृष्ट नामक मण्डल की रचना होती है, और मणिमोतियो के अचल निर्माण में भी।१३। अन्न दान एवं तिलाचल के दान में सहस्रार और शतपत्र, राजसूय तथा सोमयाग में हरि वल्लभ नामक मण्डल बनाया जाता है।१४। (देवों के) प्रतिष्ठा कर्म में सुभद्र, सर्वतोभद्र, जलाशयों की प्रतिष्ठा में विघ्नराज नामक मण्डल प्रशस्त बताया गया है।१५। कलश स्थापन में गज एवं तुरगासन, लक्ष संख्या की आहुति में शतपत्र, दशसहस्र की आहुति में चौकोर मण्डल का निर्माण होना चाहिए।१६। इस प्रकार जिस यज्ञ के जो बिम्ब हैं, उसे उन्ही से विभूषित करना चाहिए, इससे अतिरिक्त निर्माण में दोष और विपरीत करने में अधोगति प्राप्त होती है।१७। दो हाथ की चौकोर वेदी का निर्माण बताया गया है, जो चार या छः अङ्गुल की ऊँची होती है।१८। नवव्यूह नामक मण्डल में छः अंगुल ऊँची वेदी, जिसका उत्सेध एक अंगुल का होता है, यज्ञ कोविद को सावधान

क्रौञ्चप्राणे तुर्यहस्तं मुष्टिहस्तं समुच्छ्रितम् । मध्यद्वये हीनकरं कनिष्ठं त्र्यङ्गुलाधिकम् ॥२०
कुर्याद्द्वित्रिकमाद्धीनमुच्छ्राये द्विजसत्तमाः । पारिजातं चन्द्रबिम्बं सूर्यकान्तं च शेखरम् ॥२१
ग्रहाणां पौष्टिके पक्षे बाह्यग्रामादिसाधने । नियोजयेत्तत्र तत्र वेदिका चक्रकत्रयम् ॥२२
प्रथमे मुष्टिहस्तः स्यात्सम्पूर्णं शेषमानकैः । नवलाभे च पञ्चाब्जं करत्रयमुदाहृतम् ॥२३
शेषा चैव वरिष्ठा च लवली भित्तिवेदिका । विज्ञेया द्विजशार्दूला यथाकाम्येषु योजयेत् ॥२४
अयथाव्यत्यये दोषस्तस्माद्यत्नेन साधयेत् । दशहस्ते चाष्टहस्ते अष्टहस्ते च षोडशम् ॥२५
मुष्टिबाहुश्च प्रादेशं वर्धयेत्षोडशांशके । हस्तोत्सेधं च कर्तव्यं हीने हीनं च ह्रासयेत् ॥२६
दर्पणाकारकं कुर्याद्यागके शान्तिकर्मणि । हीनं कुर्यात्प्रयत्नेन वप्राकारं परिस्तवे ॥२७
निशारणैर्गोमयैश्च वेदिकां च प्रलेपयेत् । स्वर्णरत्नमयैस्तोयैरभिषिच्य कुशोदकैः ॥२८
हीनवीर्यगवानां च पुरीषं धैनुकं तथा । कपिलायाश्च यत्नेन कुण्डमण्डललेपने ॥२९
वर्जयेत्सर्वयागेषु स्थण्डिलेषु प्रयत्नतः । विना सूत्रैः कीलके न मण्डले नैव सूत्रयेत् ॥३०
तस्मात्प्रयत्नतः कार्यं यत्सूत्रं यच्च कीलकम् । अर्कहस्तमितं सूत्रं मृदुलाक्षामयं तथा ॥३१

होकर बनानी चाहिए ।१९। क्रौंच प्राण नामक मण्डल में चार हाथ की वेदी, जो मुट्ठी बँधे एक हांथ की ऊँची, और कनिष्ठा अंगुली तक पूरे हाथ एवं तीन अंगुल अधिक मध्य भाग रहता है, बनानी चाहिए ।२०। द्विजसत्तम ! उसकी ऊँचाई दो-तीन अंगुल कम भी हो सकती है । उसी प्रकार पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकांत, और शेखर नामक मण्डलों की रचना ग्रहों के पुष्टि कार्य में अथवा गाँवों के बाह्यसाधन के कार्यों में की जाती है, वहाँ सभी नापों की तीन चक्र की वेदियाँ बनानी चाहिए ।२१-२२। पहली वेदी मुट्ठी बँधे हाथ, एवं सम्पूर्ण कार्यों में अवशिष्ट मान तथा किसी नवीन नाम में पंचाब्ज नामक मण्डल जो तीन हाथ का होता है, बनानी चाहिए ।२३। द्विजशार्दूल ! शेष उत्तम वेदियों के निर्माण, जिससे लवली नामक भीति (दीवाल) लगी रहती है, काम्य कर्मों के अनुष्ठान में करनी चाहिए व्यत्यय (उलटफेर) होने पर वह दूषित हो जाता है, इसलिए उसके लिए प्रयत्नपूर्वक सतर्क रहना आवश्यक होता है । दशहाथ, आठ हांथ अथवा सोलह हाथ की वेदी में निर्माण में, जिसमें मुट्ठी बँधे तथा प्रादेश तक हाथ के माप होते हैं, सोलह हांथ की वेदी में सोलहवें वेदियों में उतनी ही के उत्सेन्ध बनाये जाते हैं ।२४-२६। शांति कर्म के यज्ञानुष्ठान में दर्पणाकार और परिस्तव में वप्राकार की वेदी जो उसी क्रमानुसार हीन उत्सेध की होती है, बनायी जाती है ।२७। निशारण गोबरों से वेदी को लीपना बताया गया है, पश्चात् सुवर्ण, रज अथवा कुशों के जल से उसका सेवन करना चाहिए ।२८। वीर्यहीन, धेनु, अथवा कपिला गाय के गोबर से कुण्ड एवं मण्डपलेपन प्रशस्त कहा गया है ।२९। समस्त यागों की वेदियाँ सूत्र (उसके माप के लिए) और कील हीन होने पर त्याज्य होती है मण्डल में सूत्र की कोई आवश्यकता नहीं होती है ।३०। अतः प्रयत्नपूर्वक सूत्र रखना चाहिए जो बारह हाथ का लम्बा मृदु और लाक्षामय होता है, और कील भी वैसी होती है ।३१। विष्णु के भाग में पीत पुष्पों की माला, सुवर्ण की कील, अथवा

पीतकार्यस्रजं चैव कीलकं स्वर्णनिर्मितम् । रौप्यताम्रमयं कुर्याद्वैष्णवे यागकर्मणि ।।३२
गणनायके सुप्रशस्तं शैषेपामार्गमेव च । ग्रहपक्षे तथेशस्य कच्छपस्य द्विजोत्तमाः ।।३३
षोडशे चार्कहस्ते च तत्र नेनियुतं भवेत् ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे मण्डलनिर्माणविधिवर्णनं
नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ।२१

।।इति मध्यमपर्वणि प्रथमभागः समाप्तः ।।

द्वितीयभागे प्रथमोऽध्यायः

मण्डलदेवरचनावर्णनम्

सूत उवाच

अथोद्धारं प्रवक्ष्यामि चतुरस्रादिकस्य च । अर्काङ्गुलमितं क्षेत्रं चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ।।१
गुणाङ्गुलं प्रतिदिशं वर्धयेत्सुदिचक्षणः । चतुरस्रं समं कुर्यादिष्टेरष्टादशाङ्गुलम् ।।२
द्विहस्ते चैव सूत्राग्रे त्र्यङ्गुलानि समन्ततः । चतुरस्रीकृते पश्चाद्द्विहस्तमपि जायते ।।३
एवं षोडशहस्तान्तं वर्धयेत्क्रमतः स्वयम् । हस्ते विनिर्णयं विप्रा रचयेन्मण्डलं सुधीः ।।४
द्वादशाङ्गुलकल्पाभ्यां मधुहस्ते च मण्डले । द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद्द्विहस्तं तु चतुष्करे ।।५
पद्ममानं चतुर्द्धा तु वृत्तं कुर्यात्समन्ततः । प्रथमे कर्णिका कार्या केशराणि द्वितीयके ।।६

चाँदी या तांबें का भी बना लेना चाहिए ।३२। द्विजोत्तम वृन्द ! गणनायक, शेष, ग्रह, शिव, एवं कच्छप (कच्छप भगवान्) के यज्ञ में अपामार्ग (चिचिरा) की कील, वेदी सोलह अथवा बारह हाथ की लम्बी और नेमि समेत होती है ।३३-३४

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में मण्डल निर्माण विधि वर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

अध्याय १

मण्डल देवरचना-वर्णन

सूत जी बोले—में चौकोर आदि मण्डलों का उद्धार बता रहा हूँ सुनो ! । बारह अंगुल के क्षेत्र में चौकार मण्डल की रचना की जाती है। उसके चारो ओर तीन अंगुल की वृद्धि बुद्धिमान् को करनी चाहिए, इसीलिए चौकोर की भाँति ही अठ्ठारह अंगुल का मण्डल भी इष्टप्रद बताया गया है ।१-२। दो हांथ के सूत्र के अग्रभाग में (माप करते समय) चारो ओर तीन अंगुल की वृद्धि करनी चाहिए, इसी प्रकार चौकोर मण्डल की रचना में दो हाथ की वृद्धि संभव होती है। इसी भाँति क्रमशः वह सोलह हाथ तक बढ़ जाता है, विप्रवृन्द ! विद्वानों को चाहिए कि हस्तप्रमाण से निर्णय करके ही मण्डल की रचना करे ।३-४। बारह अंगुल के कल्पों द्वारा मधुहस्त वाले मण्डल की रचना होती है, उसी भाँति दो हाथ वाले एक हांथ और चतुष्कर (चौकोर) में दो हाथ की वृद्धि बतायी गयी है ।५। कमल की भाँति (मंडल की रचना में) चारों ओर से घिरा चार भाग का मण्डल बनाना बताया गया है। उसके पहले भाग में कर्णिका, दूसरे

तृतीये दलसन्धीश्च दलाग्राणि चतुर्थके । कर्णिकां पीतवर्णेन शुक्लेन पङ्कजं लिखेत् ।।७
केशरास्त्रिविधाः प्रोक्ता मूलमध्याग्रदेशतः । मूले शुक्लारुणा मध्ये पीताश्चाग्रे प्रतिष्ठिताः ।।८
पात्रसन्धिर्भवेच्छ्यामः कोणे रक्तेन रञ्जयेत् । देवास्त्राणि लिखेद्वाह्ये पुरमध्ये च कोणके ।।९
अष्टाङ्गुलप्रमाणं यद्यथावर्णं विनादितः । शम्भुर्गौरी तथा ब्रह्मा रामकृष्णेत्यनुक्रमात् ।।१०
सीमरेखाङ्गुलोच्छ्रायं तत्तदर्धेन योजयेत् । शिवविष्ण्वोर्महायागे शम्भुमारभ्य दापयेत् ।।११
प्रतिष्ठायां च रामान्तं कृष्णान्तं च जलाशये । दुर्गायागे च श्रीपक्षे ब्रह्मादीन्परिकल्पयेत् ।।१२
ग्रहयागे च पीतादीन्कुर्याच्च न तदन्यथा । नवव्यूहमथो वक्ष्ये पुराणमतसम्मतम् ।।१३
सर्वं च पूर्ववत्कार्यं पङ्कजं सुलिखेत्सुधीः । तावत्संख्याहरणयोर्वेष्टयेत्प्रक्रमादपि ।।१४
शुक्लारुणैस्तथा पीतैः पीतारुणसितैरपि । पीतारुणसितैरेवं स्वभावे प्रतिभागके ।।१५
कलायन्त्रं तदन्ते च गुह्यपत्राग्रकेण तु । षोडशैर्विंशमाने तु सलिङ्गं चाष्टपत्रके ।।१६
एवं मण्डलमन्त्राणां वर्जयेत्परमार्थतः । तद्वन्मूलेषु कोणेषु केशराणि प्रकल्पयेत् ।।१७
दशदण्डसमाकारं त्रिवर्णं प्रतिरञ्जितम् । अरं दद्याद्दशाग्रे तु सर्वाङ्गुलप्रमाणतः ।।१८

भाग में केशर, तीसरे भाग में दलों की संधियाँ, और चौथे भाग में दलों के अग्रभाग की रचना की जाती है । पीले रंग से कर्णिका शुक्र वर्ण से पंकज की रचना की जाती है ।६-७। मूल, मध्य, एवं अग्र भाग के भेद से केशर तीन प्रकार के बताये गये हैं । उसके मूल भाग श्वेत रक्त वर्ण से मध्य एवं अग्र भाग पीत वर्ण से समलंकृत करना चाहिए ।८। पत्तों की संधियों कें श्याम वर्ण तथा उसके कोने वाले भाग को रक्तवर्ण से विभूषित करना बताया गया है । उसके बाहरी भाग के मध्य एवं कोण के भाग में देवों के अस्त्र निर्माण को करना चाहिए ।९। शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम एवं कृष्ण के चित्र की रचना, जो जिस वर्ण का हो, उसी द्वारा आठ अंगुल के प्रमाण से करनी चाहिए ।१०। उसके यज्ञ की सीमा वाली रेखा को उसके आधे अंगुल प्रमाण की ऊँची बनानी चाहिए । शिव और विष्णु के महायज्ञ में शम्भु से आरम्भ करे ।११। (देवों की) प्रतिष्ठा में रामान्त और जलाशय में कृष्णान्त तक, दुर्गा यज्ञ एवं श्रीयज्ञ में भी ब्रह्मा आदि देवों की रचना आवश्यक होती है ।१२। ग्रहों के यज्ञ में पीत यदि सभी रंगों से उनकी रचना की जाती है । इसके उपरांत पुराण सम्मत नवव्यूह की रचना बता रहा हूँ, सुनो ! ।१३। विद्वान् को उसमें सब की रचना पूर्व की भाँति करके कमल का सौन्दर्य पूर्ण चित्र-चित्रण करना चाहिए । उसमें पूर्व की भाँति संख्या एवं उसी क्रम से आवेष्टित करना भी बताया गया है ।१४। कहीं शुक्ल और रक्त वर्ण, कहीं पीत वर्ण, तथा कहीं पीत, रक्त, एवं उज्ज्वल वर्ण से उसके प्रत्येक भाग को उसके स्वभावानुसार वर्णों से विभूषित करना बताया गया है ।१५। उसके अनन्त वाले भाग में कलायंत्र का निर्माण जो गुह्य पत्र के अग्रभाग में स्थित रहता है, करना चाहिए । उसी भाँति सोलह और बीस, प्रमाण वाले की रचना में, जो अष्टपत्रे से विभूषित रहता है । लिंङ्ग समेत निर्माण करना चाहिए ।१६। इस प्रकार मण्डल के विधान में मंत्रों का परमार्थतः प्रयोग करना निबद्ध किया गया है । उनके मूलभाग एवं कोणभाग में केशरों की रचना बतायी गयी है ।१७। दशदण्डों के आकार प्रकार के समान तीन रंगों से रञ्जित अर (आरागज की भाँति) की रचना की जाती है, और उसके अग्रभाग में भी समस्त अंगुलों के प्रमाण एवं उसी भाँति का अर बनाना

पीतेनारं च सर्वत्र तन्मध्ये शोणतुण्डकम् । नवव्यूहमिदं प्रोक्तं धर्मकामार्थदायकम् ॥१९
न शूद्रोमण्डलं कुर्यान्न कुर्याद्ब्राह्मणब्रुवः । कुर्याच्च सङ्गमे तीर्थे देवतायतनेषु च ॥२०
लिखित्वा नार्चयेद्यस्तुअग्निकार्यविहीनकः । अविद्धो जायते सोऽपि यतो जन्मनि जन्मनि ॥२१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मण्डलदेवरचनावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

क्रौञ्चमानवर्णनम्

सूत उवाच

क्रौञ्चमानं प्रवक्ष्यामि यथावेदार्थवादिनाम् । सम्मतं सर्वतन्त्रेषु गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१
आत्मनोऽरत्निमानेन द्विगुणं परिकल्पयेत् । मध्ये वृद्धया तु तत्सूत्रं भ्रामयेत्कीलकोपरि ॥२
चतुष्टयं न्यसेद्वृत्तं मध्यमाधमभावतः । कर्णिका प्रथमे वृत्ते द्वितीये त्वथ केशरम् ॥३
तृतीये पद्मपत्राणि चतुर्थे षोडशच्छदाः । शोभोपशोभे कुर्याच्च चतुरस्रे समे शुभे ॥४
तद्दक्षिणाग्रं सुलिखेत्पार्श्वयोः पक्षकद्वयम् । तत्र पद्मयुगं कुर्यान्मध्ये चाङ्गुलनन्तरम् ॥५
शुक्लं पीतं तथा रक्तं कृष्णं लोहितसन्निभम् । सङ्ख्यातं ताम्रपर्णं च श्यामलं चाष्टकं रजः ॥६

चाहिए ।१८। उस अर के समस्त भाग को पीत वर्ण, मध्य और मुख को रक्त वर्ण से सुशोभित करना कहा गया है । इसी को धर्म, अर्थ एवं काम फल प्रदान करने वाला नवव्यूह कहते हैं ।१९। किसी शूद्र अथवा ब्राह्मण ब्रुव (नाम मात्र का ब्राह्मण) को मण्डल न करना चाहिए । मण्डल का निर्माण प्रायः संगमतीर्थ या देवमंदिरों में ही करना बताया गया है ।२०। मण्डल की रचना करके जो अग्नि कार्य (हवन) हीन पुरुष उसकी अर्चा सुसम्पादित नहीं करता है, वह प्रत्येक जन्मों में अविद्ध हो कर ही जन्म ग्रहण करता है।२१

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मण्डलदेव रचना वर्णन नामक
पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

क्रौञ्च के मान का वर्णन

सूत जी बोले—मैं तुम्हें क्रौंच का मान बता रहा हूँ, जो वेदार्थवेताओं की सर्वसम्मति से स्वीकृत और सभी तंत्रों में प्रयत्न पूर्वक गोपनीय है ।१। अपने अरत्नि के मान से उसे दुगुने परिमाण की रचना करके उसके मध्य भाग में वृद्धयर्थ उस सूत्र को उसके कील के ऊपर घुमा देना चाहिए ।२। इसकी भी रचना मध्यम और अधमादि भेद से चार भागों में होती हैं पहले में कर्णिका, दूसरे में केशर, तीसरे में कमल के पत्ते, और चौथे में सोलह दलों की रचना करते हुए उसे चौकोर, शुभ, सम एवं सौन्दर्यपूर्ण बनाना चाहिए उसके दक्षिण अग्रभाग में एवं दोनों पार्श्व भागों में दो पक्षों के निर्माण करके उसके मध्य भाग में एक अंगुल के व्यवधान में चार कमलों की रचना की जाती है ।३-५। शुक्ल, पीत, रक्त, कृष्ण, लोहित, संख्यात, ताम्रपर्ण, एवं श्याम के भेद से आठ प्रकार का रज (चूर्ण) होता है, जिससे उसकी रचना होती

शुक्लं तण्डुलचूर्णोत्थं पीतं तु निशया[1] स्मृतम् । रक्तं तु निशया योगाच्छङ्खचूर्णादिभावितम् ।।७
कृष्णं पुलकादिदग्धं रक्तं पीतास्ययोगतः । कुङ्कुमाभं पाण्डुरं च रक्तश्वेतैर्विनिर्मितम् ।।८
ताम्रवर्णं कुसुम्भेन श्यामलं बिल्वपत्रजम् । यवगोधूमचूर्णादियोगेन तु रजः स्मृतम् ।।९
सर्वरेखासु विभजेच्छुक्लं मध्ये तु पीतकम् । कर्णिकायां केशरेषु शुभ्रमेव निपातयेत् ।।१०
पूर्वादिक्रमयोगेन शुक्लादीनि प्रयोजयेत् । पत्रसन्धौ तु विभजेद्रजः सेकान्तरक्रमात् ।।११
ततः षोडशपत्रेषु पूर्वादिक्रमतो भवेत् । शुक्लं पीतं तथा ताम्रं ततः सङ्ख्यातमेव च ।।१२
श्यामलं कुङ्कुमाभं च रक्तं शुक्लं च कृष्णकम् । पीतं ताम्रं च सङ्ख्यातं श्यामं कुंकुमरक्तकम् ।।१३
एवं दद्याद्द्विजः पूर्वे ईशानान्तं विभावयेत् । क्रौञ्चमूर्ध्नि भवेद्रक्तं चतुरङ्गुलमानतः ।।१४
तुण्डभागे भवेत्पीतं ग्रीवायां शुक्लमेव च । पुच्छे विंशतिपत्राणि आदौ पञ्च रजः क्रमात् ।।१५
षडङ्गुलेष्वण्डभागे पीतेन परिकल्पयेत् । ग्रीवायां शुक्लरजसा भावितायां विशेषतः ।।१६
तत्र पीतादिकं लेख्यं पूर्वोक्तं च यथा भवेत् । शुक्लादिकं प्रदद्यात्तु पात्रेष्वेकैकशः पृथक् ।।१७
चतुरङ्गुलके पादे जानोरूर्ध्वे तु पीतकम् । अधस्तात्तु भवेद्रक्तं तदेव चतुरङ्गुलम् ।।१८
द्व्यङ्गुलेन भवेच्छ्याममङ्गुलीष्वपि विन्यसेत् । एवं पक्षद्वयेनापि लिखेच्छुक्लं विभावयेत् ।।१९
पदे शुक्लं चाङ्गुलीषु रक्तं श्यामेन भावयेत् । पूर्वपश्चिमदिग्भागे शुक्लं स्याद्द्वारदेशतः ।।२०

है ।६। चावल के चूर्ण से शुक्ल वर्ण, हरदी से पीतवर्ण, हरदी मिश्रित शंख के चूर्ण से रक्त वर्ण, पुलकादिदग्ध श्यामवर्ण और उसी में पीतवर्ण (हरदी) मिला देने से रक्त वर्ण एवं रक्त तथा श्वेत मिश्रित से कुंकुम के समान पाण्डुर वर्ण, कुसुंभ से ताम्रवर्ण, बेल के पत्ते से श्यामल वर्ण बनाया जाता है । और जवा तथा, गेहूं के मिश्रित चूर्ण से रज बनता है ।७-९। समस्त रेखाओं को शुक्लवर्ण मध्य भाग में पीत वर्ण, एवं कर्णिका और केशरों को शुभ्रवर्ण से सुशोभित करना चाहिए ।१०। पूर्वादि दिशाओं के क्रम से शुक्ल आदि वर्णों (रंगों) का प्रयोग करना चाहिए तथा पत्रों के संधियों में एक-एक के व्यवधान में रज ही रखना बताया गया है ।११। उपरांत सोलह पत्तों में पूर्वादि के क्रम से शुक्ल, पीत, ताम्र, संख्यात, श्यामल, कुंकुम की भाँति, रक्त, शुक्ल, कृष्ण, पीत ताम्र, संख्यात, श्याम, कुंकुम की भाँति रक्त वर्ण होने चाहिए ।१२-१३। इस प्रकार ब्राह्मणों को चाहिए कि पूर्व से ईशान पर्यंत सौन्दर्य पूर्ण रचकर क्रौंच के मूर्धा (शिर) भाग में चार अंगुल के प्रमाण रक्त वर्ण से सुशोभित करके मुख भाग में पीत, ग्रीवा (गले) में शुक्ल वर्ण से सुसम्पन्न करे और उसके पूँछ में बीस पत्ते लगाये जिसमें आदि के पाँच क्रमशः रज (चूर्ण) द्वारा सौन्दर्य पूर्ण किये जाते हैं।१४-१५। उसके अंडभाग छः अंगुल प्रमाण में पीत वर्ण से तथा ग्रीवा शुक्ल रज (चूर्ण) से सुशोभित होते है।१६। उसमें पीत आदि वर्ण इस प्रकार रखने चाहिए जिससे वह पूर्वोक्त कथनानुसार दिखाई पड़े, पत्तों में पृथक्-पृथक् क्रमशः शुक्ल आदि वर्णों के भी प्रयोग होने चाहिए।१७। चार अंगुल के चरण तथा जानु (घुटने) के ऊर्ध्व भाग में पीत वर्ण और उसके नीचे चार अंगुल में रक्तवर्ण रखने चाहिए।१८। दो-दो अंगुल प्रमाण की श्यामल रंग की अंगुलियों तथा शुक्ल वर्ण से दोनों पक्षों की रचना बतायी गयी है ।१९। दोनों चरणों में शुक्ल वर्ण, अंगुलियों में रक्त तथा श्याम वर्ण रखकर दरवाजे के पूर्व तथा पश्चिम

---

१. हरिद्रया ।

दक्षिणोत्तरतश्चैव रक्तवर्णं विनिर्दिशेत् । महाक्रौञ्चमिदं ज्ञेयं मध्यक्रौञ्चमिदं शृणु ॥२१
कनिष्ठं सर्वयज्ञेषु विद्यानां सप्तमुत्तमम् । अथापरं प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रमतं क्रमात् ॥२२
रक्तपीतं रक्तपीतैः कुर्यात्पुच्छचतुष्टयम् । पूर्वादिक्रमयोगे तु पत्रान्ते धरणीतले ॥२३
सुलिखेन्मूलसंलग्नं बहिस्कोणचतुष्टयम् । कनिष्ठेऽष्टकुलं कुर्यात्पुच्छं कुर्याच्चतुर्विधम् ॥२४
त्रिवृत्तं वेष्टयेत्पश्चात्सितरक्तासितैः क्रमात् । दृष्टं जन्मशतोद्‌भूतं पापं नाशयते ध्रुवम् ॥२४
पीतं वा विलिखेद्विप्रा नश्यन्ति सकलापदः । अन्तश्चक्रं बहिश्चक्रं क्षेत्रे च प्रतिदर्शनम् ॥२६
तस्य कल्पशतोद्‌भूतं पापं नाशयते ध्रुवम् । मयूरं वृषभं चैव सिंहं क्रौञ्चं च वै कपिम् ॥२७
प्रमादाद्वा गृहे क्षेत्रे वृक्षाग्रे चापि भो द्विजाः । उत्थाय वदनं कुर्याद्‌ब्रह्महत्याशतं दहेत् ॥२८
पोषणात्कीर्तिमाप्नोति दर्शनात्पापविच्युतिः । दर्शनाद्वर्धते लक्ष्मीरायुर्वृद्धिश्च जायते ॥२९
मयूरो ब्रह्मणो मूर्तिर्वृषभश्च सदाशिवः । सिंहे च सम्भवेद्दुर्गा वैष्णवो विधिरुच्यते ॥३०
क्रौञ्चो नारायणो देवो व्याघ्रस्त्रिपुरसुन्दरी । कलिका कृष्णव्याघ्रश्चलक्ष्मीश्चित्रकपोतकः ।३१
स्नातः पश्यति प्रत्यह्नि ग्रहदोषो न जायते । तस्मात्प्रयत्नतो भूत्वा धारयेत्पोषयेद्‌गृहे ॥३२
अतः परं प्रवक्ष्यामि मण्डले मण्डलेष्वपि । रजोद्रव्यप्रमाणं च यथोक्तं यत्नवर्जनम् ॥३३
तण्डुलोत्थं यवोत्थं वा वर्ज्यं मकररोपणम् । यद्वाल्यश्रावणे जातं हैंगुलं गन्धकं तथा ॥३४

भाग में शुक्ल वर्ण रखना चाहिए ।२०। दक्षिण और उत्तर भाग में रक्तवर्ण से सुशोभित करने पर उसे महाक्रौंच के नाम से कहा जाता है । मध्य क्रौंच भी बता रहा हूँ सुनो ! जो समस्त यज्ञों कें कनिष्ठ विद्याओं में श्रेष्ठ सातवाँ और सभी तंत्रों में स्वीकृत एक या (दूसरे) के समान है (बता रहा हूँ) ।२१-२२। रक्त और पीत वर्ण से उसकी चार पूँछे लाल-पीली बनानी चाहिए । जो पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पृथिवी पर पत्रों के अंत में रहती है ।२३। मूलभाग से मिले हुए बाहर के चार कोने भी सौन्दर्य पूर्ण बनाने चाहिए । कनिष्ठ में आठ कुल (समूह) पंच में चार प्रकार की रचना होती है ।२४। पश्चात् क्रमशः श्वेत रक्त एवं कृष्ण इन तीनों रंगों से तीन वृत्तों को आवेष्टित करके उसकी सौन्दर्य पूर्ण रचना होती है, जिसके दर्शन मात्र से सैकड़ों जन्म के संचित पाप समूह निश्चित नष्ट हो जाते हैं ।२५। विप्रवृन्द ! उसकी पीत वर्ण से रचना करने से सम्पूर्ण आपत्तियाँ शान्त होती हैं । एवं भीतरी तथा बाहरी चक्र के निर्माण तथा क्षेत्र में उन प्रत्येक के दर्शन करने से सैकडों कल्पों के जन्मार्जित पाप निश्चित नष्ट होते हैं, द्विजगण ! मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौंच और कपि को प्रमादवश घर, क्षेत्र अथवा वृक्ष के अग्र भाग पर स्थित खकर उन्हें उठकर वंदना करने से सैकडों ब्रह्म हत्या के पाप भस्म हो जाते हैं ।२६-२८। उनके भाषण करने से कीर्ति, दर्शन से पाप-नाश, तथा लक्ष्मी और आयु की वृद्धि होती है ।२९। मयूर, ब्रह्मा की मूर्ति, वृषभ (बैल) सदाशिव की मूर्ति, सिंह में दुर्गा की मूर्ति प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है, यह वैष्णव विधान कहा जाता है ।३०। क्रौंच, नारायण व, बाघ, त्रिपुर सुन्दरी, काले वर्ण के वाघ, कालिका, लक्ष्मी चित्र विचित्र वर्ण के कपोत (कबूतर) के दर्शन, स्नान के उपरांत प्रतिदिन करने से ग्रहदोष नहीं उत्पन्न होते हैं, इसलिए अपने घर में इन्हें रख कर प्रयत्न पूर्वक पोषण करना चाहिए ।३१-३२। इसके उपरांत मंडल तथा मण्डलों में रज (चूर्ण) बनाने के लिए कितनी मात्रा में द्रव्य (जवा आदि) का रहना आवश्यक होता है मैं बता रहा हूँ सुनो ! चावल, जवा के रज चूर्ण, इसके लिए प्रशस्त हैं, पर वे मकर की संक्राति में

हरितालं सुभद्रं च सदा विघ्नं विवर्जयेत् । हैमन्तिकोद्भवं यच्च सितपाषाणमेव च ॥३५
काञ्चन्याश्च प्रभेदं यच्छस्तं शुक्लगुणं द्विजाः । शेफालिवृत्तं निशया अतसीकुसुमानि च ॥३६
किंशुकस्य च पुष्पाणि शस्तं पीतं गुणं भवेत् । नागजं गैरिकं चैव कुसुम्भकुसुमानि च ॥३७
कुशीतं गुडकं चैव मञ्जिष्ठां पञ्चरङ्गकम् । विजयापत्रकं चैव बिल्वपत्रं तथैव च ॥३८
पुनर्नवायाः पत्रं च केशरस्य बकस्य च । कृष्णपाषाणकं चैव कृष्णाभ्रं समयूथकम् ॥३९
नागपाषाणकं चैव पुन्नागं दग्धपञ्चकम् । शङ्खचूर्णं लोहविष्ठां नागविष्ठां च वर्जयेत् ॥४०
कर्पूरं कुङ्कुमं चैव रोचनारोचनां श्रयेत् । यवशालीयकैर्भिन्नं शुक्लं च कारयेत्सुधीः ॥४१
लाक्षां च यदि गृह्णीयात्तद्भजित्वा[1] प्रदापयेत् । आकाशं पृथिवीं चैव भौमं रामं तथा शनी ॥४२
धरणीं सदनस्थाने पञ्चधा विभजेद्बहिः । पद्ममुल्लिख्य प्रथमं कर्णिकां तदनन्तरम् ॥४३
तर्जन्यमध्यपूर्वोत्थं विभजेद्वा समाहितः । तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्वा तृणमारभ्य यद्भवेत् ॥४४
तृणमारभ्य सामान्ये शक्तो वा मध्यमान्वितः । राक्षसादिप्रतिष्ठायां ग्रहपक्षेग्निमादितः ॥४५
अङ्गुल्यग्रे च विभजेत्सर्वकामार्थसिद्धये । प्रतिष्ठायां ग्रहमखे काम्येषु परिवर्जयेत् ॥४६
सुभद्रं मण्डलं वक्ष्ये शुभदं शुभमादिशेत् । अतः सुभद्रमुद्दिष्टं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥४७
सार्धहस्तेन मानेन कुर्यान्मण्डलमुत्तमम् । चतुर्विंशाङ्गुलैः पूर्णं सर्वत्र हस्तमादिशेत् ॥४८

बोये न गये हों, बाल्य श्रावण में उत्पन्न हिंगुल (रक्त वर्ण के द्रव्य व पदार्थ) गंधक, हरताल, एवं सुभद्र विघ्नकारक होने के नाते सदैव इनके त्याग आवश्यक होते हैं। हेमन्तऋतु-कालीन उत्पन्न श्वेत पाषाण (पत्थर) काञ्चनमय पाषाण के भेद जो प्रशस्त एवं शुक्लवर्ण के हों तथा द्विजगण ! शरीफा, हल्दी, अतसी (अलसी) के पुष्प, पलाश पुष्प पीतगुण प्रशस्त बताये गये हैं पर्वतीय ऊँचाई सुवर्ण, कुसुम के पुष्प, कुशीत, गुडक, मजीठ, विजया, बेल, गदहपुन्ना, केशर, और वक के इन पाँचों के पत्ते, कालापत्थर, कालाभ्रक, समयूथक, नाग पाषाण, पुन्नाग, दग्धपंचक, शंख के चूर्ण, लोहे तथा शीशे के चूर्ण त्याज्य हैं।३३-४०। कपूर, कुंकुम, रोचना, जवा और चावल के चूर्ण से पृथक् किसी अन्य वस्तु से उसे शुक्ल वर्ण बनाना चाहिए, विद्वान् को यदि लाक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता हो, तो उसे भूनकर ग्रहण कर सकते हैं। आकाश, पृथिवी, भौम, राम, शनी, इन पाँच के निमित्त पृथिवी के बाहरी भाग में विभाग करना चाहिए। पहले कमल का निर्माण करके पश्चात् उसकी कर्णिका बनानी चाहिए।४१-४३। तर्जनी एवं मध्यमा के क्रम से सावधान होकर विभाजन करे, उसी भाँति तर्जनी और अंगूठे के द्वारा किसी तृण से उसके मध्यम भाग की प्रथम रचना करनी चाहिए, यह विधान राक्षसों आदि के प्रतिष्ठा में कहा गया है, और ग्रहों के हवन में प्रथम अग्नि से प्रारम्भ किया जाता है।४४-४५। ग्रह यज्ञों में समस्त कामनाओं के सिद्ध्यर्थ अंगुली के अग्रभाग से रचना की जाती है, काम्य कर्मों में नहीं।४६। शुभदायक सुभद्र नामक मण्डल विधान, बता रहा हूँ, जो स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करता है।४७। डेढ़ हाथ का उत्तम मण्डल बनाना चाहिए, सभी स्थान चौबीस अंगुल के ही हाथ (मान) के होते हैं।४८। सहस्रों के मध्य में भी कर्ता के ही

---

१. इडार्षः।

कर्तुर्मध्यसहस्तस्य मध्यमा मध्यपर्वणि । मध्यमा दीर्घमानेन मानाङ्गुलमिति स्मृतम् ।।४९
रेखाद्वयान्तरं यच्च मूलरेखां न चाश्रयेत् । वृद्धाङ्गुष्ठनखद्वन्द्वं मानाङ्गुलमथापि वा ।।५०
मध्ये निबध्य शंकुं च मुष्टिबाहुप्रमाणतः । त्रिवृत्तं कायरेन्मध्ये ज्येष्ठोत्तरकनीयसम् ।।५१
प्रकल्प्य कर्णिकादीनि मध्ये चाष्टदलं लिखेत् । बहिश्चार्कदलं कुर्याद्वर्णानां क्रमशेण तु ।।५२
पञ्चमं श्वेतवर्णेन बहिः कुर्यात्त्रिवेष्टनम् । सितपीतारुणं कुर्यात्पश्चाद्वेदाङ्गुलान्तरे ।।५३
वेष्टयेच्छुक्लवर्णेन मध्ये कल्पलतां लिखेत् । सुभद्रं मण्डलात्पूर्वं सर्वतोभद्रकं शृणु ।।५४
सर्वकार्येषु यज्ञेषु सर्वकल्याणमाप्नुयात् । मण्डलं सर्वतोभद्रं सर्वयज्ञेषु पुष्टिदम् ।।५५
साधकानां हितार्थाय ईश्वरेणैव भाषितम् । चतुर्विंशत्यङ्गुलेन हस्तः प्रथमतो भवेत् ।।५६
कोणे सूत्रद्वयं दद्यान्मध्ये सूत्रद्वयं पुनः । ततो मत्स्यान्विरचयेत्कर्णे सूत्राणि साधकः ।।५७
चतुः सूत्रं पातयेच्च पूर्वापरविभागतः । पुनर्दधायाच्चतुःसूत्रं कर्णसूत्रं पुनर्ददेत् ।।५८
शतद्वयपदं यावत्षट्पञ्चाशाधिकं तथा । पातयेच्च तथा सूत्रमेवं सप्तदशं भवेत् ।।५९
ऊर्ध्वपङ्क्त्यां पदयुगं चाद्ये पदचतुष्टम् । द्वारपार्श्वे भवेद्यावद्दन्तपङ्क्त्या पदत्रयम् ।।६०
रेखां सर्वत्र शुक्लेन रचयेद्यज्ञियोत्तमः । पङ्कजं शुक्लवर्णेन वैष्णवो यागकर्मणि ।।६१
शक्तियोगे भवेद्रक्तं शैवे पीतं विनिर्दिशेत् । प्रतिष्ठासु च सर्वासु शुक्लमेव प्रशस्यते ।।६२

अंगुल्यादिमान ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके मध्यमा अंगुली के मध्यपर्व (गाँठ) द्वारा उसके दीर्घमान को ही अंगुल मान बताया गया है ।४९। दोनों रेखाओं के मध्य भाग को मूल रेखा के आश्रित न रखना चाहिए । वृद्ध के अँगूठे के दोनों नख एवं अंगुल भी मान के रूप में ग्रहण किये जाते हैं ।५०। मुट्ठी बँधी हाथ के प्रमाण से मध्यभाग में एक शंकु (कील) स्थित कर तिवृत्त (तीन ऊँची नीची रेखा) बनाये, उस समय कनिष्ठा और उसकी बड़ी अंगुली भी वहीं स्थित रहनी चाहिए । कर्णिका आदि की रचना के उपरांत मध्य भाग में अष्टदल (कमल) की रचना करके बाहरी भाग में भी क्रमशः रंगों द्वारा अर्क दल का निर्माण करे ।५१-५२। पाँच की रचना श्वेत वर्ण द्वारा एवं बाहरी भाग में तीन प्रकार के वेष्टन श्वेत, पीत और रक्त वर्ण के द्वारा पश्चात् चार अंगुल व्यवधान में अधिष्ठित कर श्वेत वर्ण द्वारा कल्पलता की रचना करे । अब मैं (तुम्हें) सर्वतोभद्र मण्डल बता रहा हूँ, सुनो ।५३-५४। सर्वतोभद्र मण्डल समस्त कार्यों एवं यज्ञों में सम्पूर्ण कल्याण और पुष्टि प्रदान करता है ।५५। साधकों के हितार्थ इसे ईश्वर (शिव) ने स्वयं बताया है । इसमें सर्वप्रथम चौबीस अङ्गुल का हाथ ग्रहण करना चाहिए । साधक सर्वप्रथम कोने के भाग में दो सूत्र फिर मध्यभाग में दो सूत्र से अंकित कर कर्णभाग में मत्स्य और सूत्रों की रचना करनी चाहिए ।५६-५७। पूर्वापर विभाग करके चार सूत्र से दो बार अंकित कर पुनः कर्णसूत्र से अंकित करे ।५८। इस प्रकार उसमें दो सौ छप्पन कोष्ठ होते हैं । और सत्रह बार सूत्र से अंकित किया जाता है । ऊपरी भाग तथा आदि में चार स्थान और द्वार के पार्श्व भाग में बत्तीस कोष्ठ होते हैं जो तीन स्थानों में बनाये जाते हैं ।५९-६०। यज्ञ के कर्मों में वैष्णव को सर्वत्र श्वेत वर्ण की रेखा एवं कमल का निर्माण करना चाहिए ।६१। शक्ति की उपासना में रक्तवर्ण, शैवयाग में पीत वर्ण एवं सभी प्रतिष्ठा कर्मों में शुक्ल वर्ण प्रशस्त बताया गया है ।६२। चौथाई भाग में मतानुसार पीत वर्ण की कर्णिका का निर्माण,

पीतेन कर्णिका कार्या चतुर्भागेन मानतः । शुभं चकोरावस्थाने तापयित्वा विचक्षणः ।।६३
कर्णिकामूलमारम्य रेखाः षोडश कल्पयेत् । रेखामूले भवेच्छुक्लं मध्ये रक्तं निपातयेत् ।।६४
अग्रे पीतं भवेदेवं कृत्वा पङ्कजवेष्टनम् । शुभ्रवर्णेन तद्दद्यात्पीतवर्णेन सर्वतः ।।६५
मध्ये रक्तं भवेत्तच्च एवं षोडशकल्पयेत् । कोणेषु रक्तं दद्याच्च पद्मं क्षेत्रेषु निर्दिशेत् ।।६६
शुक्लेन पीठगात्राणि पीठकोणे पदत्रये । पीतवर्णेन रचयेद्द्विधा पङ्क्तिद्वये तथा ।।६७
शुक्लेन रचयेत्पादौ पुनः पीतादिवर्णकैः । चित्रं सुशोभनं कार्यं तत्र कल्पलतां न्यसेत् ।।६८
मानं कल्पलतायास्तु द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम् । द्वे द्वे शस्तं च भ्रमणं शङ्खावर्तक्रमात्त्रयम् ।।६९
ग्रन्थौग्रन्थौ पुष्पफले नानावर्णेन भावयेत् । नानापशुगणैर्युक्तं नानापक्षिगणैर्युतम् ।।७०
वैष्णवे गारुडं शस्तं शैवे कीशवृषं लिखेत् । शाक्ते व्याघ्रं तथैशे च शरभं हरिमालिखेत् ।।७१
शोभां पीतेन रचयेदुपशोभां च पीतकैः । कोणेषु कृष्णवर्णेन बहिः स्याद्वेष्टनत्रयम् ।।७२
शुक्लपीतारुणैः कार्यं मण्डलं स्यान्मनोरमम् । सर्वतोभद्रमपरं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।७३
सर्वज्ञानमयं शुद्धं धर्मकामार्थदायकम् । चतुरस्रं समं कृत्वा दिग्भ्यो द्वादशधा द्विजाः ।।७४
पातयेत्तत्र सूत्राणि कोष्ठानां दृश्यते शतम् । चतुश्चत्वारिंशदाद्यं पश्चात्षट्त्रिंशदम्बुजम् ।।७५

जो शुभ एवं चकोरावस्थान में तप्त की गई हो, बुद्धिमान् को करना चाहिए ।६३। कर्णिका के मूल भाग से आरम्भ कर उस प्रकार की सोलह रेखाओं के निर्माण करने चाहिए जो उसके मूल भाग में शुक्ल वर्ण, मध्यमभाग में रक्तवर्ण, एवं अग्रभाग में पीतवर्ण से सुसज्जित हो । इसी भाँति कमल के आवेष्टन करना बताया गया है । सोलह की ही रचना भी बतायी गयी है जिनके मूल भाग में श्वेत वर्ण, मध्य में रक्त वर्ण और समस्त भाग में पीत वर्ण सुशोभित रहता है । कोण भाग में रक्त वर्ण से सुशोभित करे क्षेत्रों में इसी भाँति के मान के निर्माण बताये गये हैं ।६४-६६। पीठासन के समस्त भाग शुक्ल वर्ण द्वारा और उसके कोण के तीन स्थानों में पीतवर्ण से दो भाँति की रचना दो व्यक्तियों में करनी चाहिए ।६७। शुक्ल वर्ण से दोनों चरण तथा पीले आदि वर्णों से सौन्दर्य पूर्ण चित्र की रचना करके वहाँ कल्पलताओं को सुशोभित करना चाहिए ।६८। कल्पलता का मान दो अङ्गुल का बताया गया है, जिसमें शंखावर्त (शंख की भाँति) तीन-तीन रेखा दो बार की गयी हो ।६९। उसके प्रत्येक ग्रन्थियों (गाठों) में भाँति-भाँति के पुष्प-फल सुसज्जित करके अनेक भाँति के पशुगण और पक्षियों से उसे सुशोभित करना चाहिए ।७०। विष्णु भाग में गरुड़ की प्रतिमा शिव यज्ञ में कीश वृष, शक्ति (दुर्गा) यज्ञ में वाघ, एवं ईश के यज्ञ में शरभ हरि की मूर्ति प्रशस्त बतायी गयी है ।७१। उसके बाहरी भाग को पीतवर्ण प्रान्त भाग भी पीतवर्ण और कोण भागों को काले रंग से सौन्दर्य पूर्ण करके उसके तीन वेष्ठन बनाने चाहिए । इस प्रकार उस मण्डल को शुक्ल, पीत तथा रक्त वर्ण द्वारा अत्यन्त मनोरम बनाना बताया गया है।इसे ही समस्त सिद्धि प्रदान करने वाला दूसरा सर्वतोभद्र कहा गया है। जो सम्पूर्ण ज्ञानमय, शुद्ध और धर्म, अर्थ, एवं कामनाओं को सफल करता है। द्विजवृन्द ! प्रत्येक दिशाओं में क्रमशः चौकोर कोष्ठ बनाने के लिए बारह बार सूत्रों को उठाना और रखना पड़ता है, जिससे सौ कोष्ठों का निर्माण हो जाता है । चौवालिस आदि में तथा छत्तीस कोष्ठ पीछे भाग में रहते हैं ।७२-७५। पीठासन पर कोष्ठों के निर्माण करते समय पंक्तियों से वीथिका (गली की

कोष्ठं प्रकल्पयेत्पीठं पङ्क्त्या चैवात्र वीथिकाम् । द्वारशोभे यथापूर्वमुपशोभं च दृश्यते ।।७६
अवशिष्टैः पदैः कुर्यात्सद्भिस्तन्त्राणि मन्त्रवित् । विदध्यात्पूर्ववच्छेषमेवं वा मण्डलं भवेत् ।।७७
पूर्वोक्तमण्डले विद्वन्धरणीसदनं बहिः । मध्ये कल्पलता कार्या बहिष्कोणेषु सत्तमाः ।।७८
गुलालीतूर्यवर्णेन महामत्त इति स्मृतः । शोभोपशोभे शोभाग्रां कुर्यात्तै मण्डलं भवेत् ।।७९
एतद्धि सर्वतोभद्रं राशियुक्तमतः परम् । शतपत्रं वज्रनाभं बिम्बनाभं सहस्रकम् ।।८०
गजाह्वं च गजाकारं मध्ये सु समलङ्कृतम् । चतुश्चन्द्रे चन्द्रबिम्बचन्द्रकान्तमुदाहृतम् ।।८१
बहिर्द्वादशभिः सूर्यैः सूर्याक्रान्तं प्रकीर्तितम् । शेखरी त्रिपुटं चैव शतपत्रं च प्रक्रमात् ।।८२
सहस्रमेव विप्रेन्द्राः पद्मान्ते यस्य स्वस्तिकम् । स्वस्तिकं तद्भवेद्विप्राः पुष्करं वज्रसम्मतम् ।।८३
चिन्तामणिं कुङ्कुमांशं खातं च हरिवल्लभम् । पञ्चसिंहासनस्थं च पञ्चसिंहासनं विदुः ।।८४
तद्वद्वृषासनं ज्ञेयं शिखिरूपं शिखिध्वजम् । नारसिंहं पद्मगर्भं कपोतास्यं तथा भवेत् ।।८५
गारुडं मेरुगर्भं च नीलकण्ठं कराक्रांतम् । शतक्रतुगजारूढं श्रीबिम्बनवसूत्रकम् ।।८६
अष्टास्रमष्टकाणाद्यं बहिः पद्मवनं कृतम् । कामद्वयेन पुटितं सहस्रं पद्मवेष्टितम् ।।८७
त्र्यस्रगर्भं पङ्कजं च त्र्यस्रं तत्परिकीर्तितम् । अष्टपत्राणि वै मेरुं सुमेरुं तद्विपर्यये ।।८८

भाँति) की भी रचना हो जाती है। सौन्दर्यपूर्ण दरवाजे की प्रान्त भूमि भी मनोरम दिखायी पड़ती है ।७६। मन्त्रवेत्ता को शेष स्थानों में तन्त्रों की रचना पूर्व की भाँति करनी चाहिए, इस प्रकार मण्डल की रचना बतायी गयी है ।७७। विद्वन्! पूर्वोक्त मण्डल के बाहरी भाग में पृथ्वी गृह, मध्य में कल्पलता, और उसका बाहरी कोण भाग चौथे वर्ण गुलाली से सुसज्जित किया जाता है, उसे महामत्त कहते हैं। उसके भीतर, बाहर एवं प्रान्त भागों को मनमोहक सौन्दर्य प्रदान करने से वह मण्डल बन जाता है, इसे ही राशि युक्त सर्वतोभद्र कहते हैं, इसके अतिरिक्त शतयम, वज्रनाभ, बिम्बनाभ एवं सहस्र नामक मण्डल भी बताये गये हैं ।७८-८०। गजनामक मण्डल की रचना हस्ती की भाँति ही होती है, उसके मध्य भाग पूर्ण समलंकृत रहते है, चन्द्रविम्ब नामक मण्डल में चार चन्द्र की रचना होती है, उसके मध्य भाग पूर्ण समलंकृत रहते है, चन्द्रबिम्ब नामक मण्डल में चार चन्द्र की रचना होती है, उसे चन्द्रकान्त भी कहते हैं ।८१। बाहरी भाग में बारह सूर्यों की रचना करने से सूर्याक्रान्त मण्डल होता है। इसी भाँति क्रमशः शिखर वाले, त्रिपुट, और शतपत्रनामक मण्डल बताये गये हैं ।८२। विप्रेन्द्रवृन्द! इसी प्रकार सहस्र नामक मण्डल, जिस कमल में प्रान्त भाग में स्वस्तिक का अंक सुशोभित हो वह स्वस्तिक और पुष्कर की भाँति वज्र नामक मण्डल भी बनाया जाता है ।८३। चिन्तामणि, जिसमें विशेष कुंकुमांश रहता है, खात (गढ्ढे वाला), हरि वल्लभ, पाँच सिंहासन वाला, पंच सिंहासन, उसी भाँति का वृषासन, मोर की भाँति शिखिध्वज, नारसिंह, पद्मगर्भ, तथा कपोतास्य (कबूतर की भाँति मुख वाला) आसन बताया गया है। मेरुगर्भ गरुड़, मनुष्य की आकृति की भाँति नीलकण्ठ, एवं इन्द्र की ऐरावत हाथी पर स्थित नवसूत्र धारण किये भी बिम्ब नामक मण्डल बनाया जाता है, जिसमें आदि भाग में अष्टकोण और बाहरी भाग में कमल समूह की रचना कर दो कामनाओं से संतुष्टि रहता है। सहस्रनाभ कमण्डल, कमलों से घिरा रहता है। त्रिकोण गर्भित कमल को ही त्रिकोण कहा गया है। उसी भाँति आठ पत्ते वाले को मेरु और

महामहामेरुपृष्ठं शतत्रयच्छदैर्वृतम् । छिद्रव्यक्तिं प्रवक्ष्यामि यथा मानेन भो द्विजाः ॥८९
वसु दिग् विंशकैश्चैव चत्वारिंशत् शतार्धकम् । दण्डिश्रवणसम्पन्नमाकाशं वसुसम्मितम् ॥९०
शतविंशाधिकं चैव दलानि तदनन्तरम् । शुक्लरक्तं चाष्टवार्णैर्बिम्बोष्ठं परिपूरयेत् ॥९१
शुक्लेन पङ्कजे तत्र पश्चात्कुर्यात्त्रिवेष्टनम् । शतपत्रमथो वक्ष्ये बिम्बराजेति कथ्यते ॥९२
स्थण्डिले कुशहस्ते च पूर्ववद्वेष्टयेत्क्रमात् । वसु पञ्चकला पञ्चविंशकं तन्नयत्नकात् ॥९३
चत्वारिंशत्ततः पश्चादष्टोत्तरशतं भवेत् । शुक्लं शोणं तथा पीतं श्यामशुक्लैरनन्तरम् ॥९४
विलोमे दलसन्धीनि शाक्ते शैवे तु षट्पुरम् । वेष्टयेत्पञ्चवर्णेन शुक्लादीनि समन्ततः ॥९५
रक्तपीतैः समास्तीर्य कोणाञ्छुक्लेन पूरयेत् । स्थण्डिले तारहस्तेन अष्टहस्तं प्रकल्पयेत् ॥९६
मण्डलं बिम्बराजस्य अष्टोत्तरदलैर्वृतम् । वसुपञ्चशक्तिविंशच्चत्वारिंशच्छतार्द्धकम् ॥९७
ऋतुपत्रं सुवृतं स्याद्वृत्तयुक्तं सबिल्वकम् । चत्वारिंशद्द्वयं चैव गगनेन समावृतम् ॥९८
शतं विंशाधिकशतं द्विशतं विंशमुत्तमम् । वेष्टनांसे च त्रिशतं प्रक्रमादथ वर्धयेत् ॥९९
लवल्याभमथो वक्ष्ये सार्द्धहस्तप्रमाणतः । नवविंशं कल्पयेत्तु चतुःसूत्राणि पातयेत् ॥१००
दक्षिणोत्तरतश्चैव तद्वदेव विजानीहि । पीतेन रेतपुटिता मध्ये शुक्लं विभाव्यते ॥१०१

उससे मेरु वाले को सुमेरु एवं तीन सौ दल वाले को महामेरु पृष्ट बताया गया है । विप्रेन्द ! मैं उसके द्विज के मान को भी बता रहा हूँ ।८४-८९। आठ, दश, बीस, चालीस, पचास, साठ, एवं एक सौ बीस, इतने दल शुक्ल वर्ण, रक्त वर्ण और आठ भाँति के वर्णों से सुसज्जित उसके बिम्बोष्ठ भाग की रचना की जाती है ।९०-९१। पश्चात् शुक्ल वर्ण उस कमल का तीन बार आवेष्टित किया (घेर दिया) जाता है। अनन्तर शतमय नामक मण्डल बता रहा हूँ, जिसे बिम्ब राज भी कहा जाता है ।९२। हाथ में कुश लेकर उसे पूर्व की भाँति क्रमशः आवेष्टित करना चाहिए । आठ, सोलह, पच्चीस, चालीस और एक सौ आठ, इतने उसमें दल होते हैं, शुक्लवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण एवं उसके अनन्तर श्याम और शुक्ल वर्णों से वह सुसज्जित किया जाता है ।९३-९४। उसके दल की सन्धियाँ विलोम रीति से बनायी जाती है, शाक्त और शैव मण्डल में छः कोष्ठ बनाकर पाँच वर्णों से उसे सौन्दर्य पूर्ण आवेष्टित करके उसके चारों ओर शुक्ल आदि वर्णों से सुशोभित करना चाहिए ।९५। रक्तवर्ण और पीत वर्ण को समान भाग से उस पर रखकर उसके कोण भाग को शुक्ल वर्ण से भूषित करना चाहिए, इस प्रकार स्थंडिल (भूमि) में विस्तृत आठ हाथ की उसकी रचना की जाती है ।९६। यह बिम्बराज नामक मण्डल आठ, सोलह, बीस, चालीस, और पचास, इतने दलों से मण्डित रहता है ।९७। तीन ऋतुपत्र, सौन्दर्यपूर्ण गोलाकार, वृत्त और विल्वक समेत एवं अस्सी मण्डलों से घिरा रहता है । सौ, एक सौ बीस, दो सौ बीस, एवं आवेष्टित करने के लिए तीन सौ दल, इस प्रकार क्रमशः इसकी वृद्धि की जाती है ।९८-९९। इसके अनन्तर लवल्याभ (लवली वृक्ष की भाँति आकार वाले) मण्डल की व्याख्या बता रहा हूँ, जिसका आकार प्रकार डेढ़ हाथ का बताया गया है उसमें उन्तीस कोष्ठ होते हैं, उसकी रचना के लिए चार स्थान सूत्रों से अंकित करना पड़ता है ।१००। दक्षिण उत्तर में उसके आकार प्रकार की पीतवर्ण द्वारा रचना करते हुए मध्य भाग में शुक्ल

ग्रहपक्षेऽत्रपीतेन मध्ये रक्तं प्रतिष्ठितम् । सर्वा रेखाश्च शुक्लेन पौष्टिके पीतमादिशेत् ॥१०२
सशान्तिके न योक्तव्यं कामे रक्तं विनिर्दिशेत् । मध्ये तु पङ्कजं रक्तं युग्मे सोमस्य पङ्कजम् ॥१०३
शुक्लवर्णेन तत्कुर्यात्पीतवर्णमुदस्य च । ऐशान्यां चोत्तरे भागे गुरो पीतं तु पङ्कजम् ॥१०४
पूर्वस्यां दिशि शुक्रस्य पङ्कजं शुभ्रवर्णकम् । वारुणे तु शनैः कृष्णं नैर्ऋत्यां धूम्रवर्णकम् ॥१०५
राहोः प्रकल्पयेत्तच्च केतोरपि नियोजयेत् । वायव्यां दिशि संयोज्य पङ्कजं विलिखेत्ततः ॥१०६
विलोमे दलसन्धीनि पूरयेत्सुविचक्षणः । बहिः पञ्चरजैः कार्यं युवदुर्गविभूषितम् ॥१०७
पूर्वपश्चिमदिग्भागे शुक्लं स्याद्द्वारदेशतः । दक्षिणोत्तरदिग्भागे रक्तमेव प्रशस्यते ॥१०८
त्रिस्थाने सममध्ये च द्वादशाङ्गुलप्रक्रमात् । द्विहस्तादावङ्गुलेन वर्द्धयेत्तद्विभागतः ॥१०९
पञ्चाब्जमण्डलं ज्ञेयं चतुःस्वस्तिकभूषितम् ॥११०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे क्रौञ्चमानवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

मूल्यकथनवर्णनम्

सूत उवाच

न कुर्याद्दक्षिणाहीनं मानहीनं न कारयेत् । अमानेन हतो यज्ञस्तस्मान्मानं प्रशस्यते ॥१

वर्ण से सुशोभित करना चाहिए ।१०१। ग्रहों के उद्देश्य से मण्डल बनाने में पीत वर्ण का प्रयोग किया जाता है, केवल मध्य भाग रक्त वर्ण से सुशोभित होता है । किन्तु समस्त रेखाएँ शुक्ल वर्ण से सुसज्जित की जाती हैं, और पौष्टिक-कर्मों में पीत वर्ण से वह सुशोभित होता है ।१०२। शांति-कर्म के अतिरिक्त काम्य-कर्मों में रक्त वर्ण से अलंकृत करना बताया गया है, मध्य में रक्तकमल और युग्म में चन्द्र कमल शुक्ल वर्ण से विभूषित करना चाहिए । उत्तर भाग के ईशान कोण में वृहस्पति के उद्देश्य से पीत कमल की रचना की जाती है ।१०३-१०४। उसी प्रकार पूर्व दिशा में शुक्र के लिए धवल वर्ण के कमल पश्चिम दिशा में धूएँ के समान कृष्ण वर्ण के शनि, एवं वायु कोण में राहु और केतु की प्रतिमा के लिए कृष्ण वर्ण के कमल की रचना करनी चाहिए ।१०५-१०६। उसके विलोम में दलसन्धियों को विद्वानों को मनमोहक बनाना चाहिए, उसी भाँति उसके बाहरी भाग में पाँच वर्णों (रंगों) द्वारा जवा के दुर्ग भी ।१०७। दरवाजे के पूर्व पश्चिम भाग में शुक्ल वर्ण एवं दक्षिण उत्तर भाग में सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिए रक्त वर्ण प्रशस्त बताया गया है ।१०८। तीन स्थानों में बारह अंगुल के क्रम से जिसका मध्य भाग समान रहता है, दो हाथ में एक अंगुल की वृद्धि विभागानुसार की जाती है, इस प्रकार चार स्वस्तिकाओं से विभूषित पाँच कमल मण्डल का निर्माण करना चाहिए ।१०९-११०

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में क्रौञ्चमान वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त।२।

अध्याय ३

मूल्यकथन का वर्णन

सूत बोले—दक्षिणाहीन और मानहीन यज्ञ कभी न करना चाहिए, क्योंकि मानहीन यज्ञ नष्ट

यस्य यज्ञस्य यन्मानं तत्तु तेनैव योजयेत् । अमानेन कृते सर्वे व्रजेयुर्नरकं पुनः ।।२
आचार्यहोतृब्रह्माणो विधिज्ञः सहकर्तृकः । यस्य यज्ञे पापकश्च जातिहीनः प्रवेशयेत् ।।३
अशीतिभिर्वराटैश्च पण इत्यभिधीयते । तैस्तु षोडशभिर्ज्ञेयं पुराणं सप्तभिस्तु तैः ।।४
राजतैश्चाष्टभिः स्वर्णं यज्ञादौ दक्षिणा स्मृता । महारामे द्विसौवर्णं कूपे स्वर्णार्धमेव च ।।५
तुल्यस्यामलकीयागे सुवर्णैकं प्रचक्षते । यकृल्लोके च सौवर्णं लक्षे स्वर्णचतुष्टयम् ।।६
नवने कोटिहोमे च देवतानां च स्थापने । प्रासादस्य समुत्सर्गे अष्टादश सुवर्णकाः ।।७
तडागे पुष्करिण्यां च अर्धार्धं परिकीर्तितम् । महादाने च दीक्षायां वृषोत्सर्गे च सत्तमाः ।।८
जीवतश्च वृषोत्सर्गे गयाश्राद्धे तथैव च । अवित्तसाध्यमानेन यज्ञं कुर्यात्कलौ युगे ।।९
दम्पत्योश्च वृषोत्सर्गे मानमेकमुदाहृतम् । बहुभिः क्रियमाणोऽपि याग एको महोत्तमैः ।।१०
राज्ञः करग्रहे चैव दीक्षायां दानकर्मणि । अशीतिरत्तिकं स्वर्णं श्रवणे भारतस्य च ।।११
ग्रहयागे प्रतिष्ठायां सुवर्णशतरत्तिकः । लक्षहोमे चायुते च कोट्यामेवं विधीयते ।।१२
देवानां ब्राह्मणानां च दानं यस्य प्रकल्पितम् । तस्यैव देयं तद्दानं साङ्गोपाङ्गं सदक्षिणम् ।।१३
नानास्य किञ्चिद्दातव्यं सङ्गभङ्गो भवेद्यतः । गृही तु कृत्वा यद्दानं तदा तस्य ऋणी भवेत् ।।१४

भ्रष्ट कहलाता है, इसीलिए मान की अधिक प्रशंसा की जाती है ।१। जिस यज्ञ के जो मान बताये गये हैं, उन्हें उन्हीं मानों द्वारा समलंकृत करना चाहिए, अन्यथा उसके सभी मनुष्यों को नरक की प्राप्ति होती है ।२। आचार्य, होता, ब्रह्मा, विधान-वेत्ता और यजमान, इतने व्यक्ति यज्ञ के अंग माने जाते हैं ! जिस यज्ञ में किसी हीनजाति का पापी मनुष्य प्रविष्ट हो जाता है, उसे अस्सी कौड़ी वाले एक पण का दण्ड बताया गया है । उसीं भाँति के सोलह पण पुराण वाचक और सातपण सुवर्ण या चाँदी यज्ञ में सभी को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, उपवन की प्रतिष्ठा में दो पण; कूप के निर्माण प्रतिष्ठा में आधा पण तुलसी और आमलकी याग में एकपण सुवर्ण, गर्भाधान में एकपण सुवर्ण, लक्ष मंत्र जप में चार पण सुवर्ण, नवें, कोटि संख्या के हवन, देवताओं की प्रतिष्ठा , और आसाद (मण्डल) के निर्माण-प्रवेश में अठारह पण सुवर्ण दक्षिणा बतायी गयी है ।३-७। सरोवर और पुष्करिणी की प्रतिष्ठा में आधे का आधा तथा सत्तम! महादान, दीक्षा, वृषोत्सर्ग में भी उतनी दक्षिणा होनी चाहिए ।८। जीवित व्यक्ति के लिए वृषोत्सर्ग एवं गयाश्राद्ध में अवित्तसाध्य यज्ञ करना कलियुग में कहा गया है ।९। दम्पति के वृषोत्सर्ग यज्ञ में एकमान बताया गया है, उसी प्रकार अनेक उत्तम व्यक्ति मिलकर एक यज्ञ का अनुष्ठान भी करें ।१०। राजा को कर रूप में देने के लिए दीक्षा दान कार्य एवं महाभारत के श्रवण में अस्सी रत्ती सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए । ग्रहों के यज्ञ तथा प्रतिष्ठा में सौरत्ती, लक्षसंख्या, दश-सहस्र संख्या एवं कोटि संख्या की आहुति में भी उतनी ही दक्षिणा का विधान बताया गया है ।११-१२। देवताओं और ब्राह्मणों में जिसके लिए जो दान बताया गया है सांगोपांङ्ग दक्षिणा समेत वह दान उसी को समर्पित करना चाहिए ।१३। अनेकों की उपस्थिति में कुछ न कुछ देना ही चाहिए, अन्यथा उस माप द्वारा (दम्पति वियोग) जोड़ी बिछुड़ जाती है । गृहस्थ जिस दान को करके नहीं देता है वह उसका ऋणी होता है।१४।

यज्ञेषु होमे यद्द्रव्यं काष्ठमाज्यादिकं च यत् । तन्नायकस्य पूजायां द्रव्यमाहुर्विनिर्मितम् ॥१५
अनादिदेवतार्चायां पूजास्नानादिकर्मणि । यस्यार्हणादिकं द्रव्यं तस्य देवस्य तद्भवेत् ॥१६
प्रत्यक्षं दक्षिणां दद्याद्यज्ञदानव्रतादिके । अदक्षिणं नैव कार्यं प्रकुर्याद्भूरिदक्षिणम् ॥१७
अतो दत्तं पुरा दत्तं दातव्यं चैव सम्प्रति । परस्वोदाग्बुद्धीनां सा सा हि दक्षिणा भवेत् ॥१८
दत्तानि विधिवत्पुंसां देवदानानि यानि हि । दासीदासगवादीनि मनसा यानि कर्हिचित् ॥१९
दातव्यान्यपि तान्येव कारयेत्परिवर्त्तनम् । एकस्यानेकदानं च ददेत्कश्चित्पृथक्पृथक् ॥२०
वरणं च कदा कुर्यात्तन्त्रे कुर्याच्च दक्षिणाम् । रत्नस्य दक्षिणा देया काञ्चनं समुदाहृतम् ॥२१
काञ्चनस्य भवेद्रौप्यं रौप्ये काञ्चनमुद्दिशेत् । भूमेर्भूमिर्दक्षिणा स्याद्वस्त्रस्य वस्त्रदक्षिणा ॥२२
पानीयस्य तु पानीयं व्रीहीणां व्रीहिर्दक्षिणा । गजस्य दक्षिणा छागो ह्यश्वस्य मेष ईरितः ॥२३
पशूनां च चतुष्पादा देवस्य देवदक्षिणा । यज्ञो मानस्य षड्भागो द्विगुणः परिकीर्तितः ॥२४
आचार्यस्यैव भागैकं यजमानः प्रदास्यति । पापकैस्तु च कलत्राणां भागैकं तदनन्तरम् ॥२५
पात्रणामृत्विगादीनां भागत्रयमुदाहृतम् । सर्वसत्त्वस्य भागैकं स्वल्पं चेच्छिष्टगौरवात् ॥२६
आचार्याद्यंशतः कश्चिच्क्षीणवित्तं समाहरेत् । अमूल्यं वर्गमूल्यं यद्भवेद्वै दक्षिणोत्तमा ॥२७

यज्ञों में हवन के लिए काष्ठ, एवं घी आदि जो वस्तु नियमित होती है, वे ही वस्तुएँ उसके अधिनायक देव के पूजा में भी बतायी गयी है ।१५। अनादि देवता के पूजा विधान में पूजा, स्नान आदि कर्मों के लिए जो उत्तम वस्तु कही गयी है वही वस्तु उस देव की प्रधान वस्तु है ।१६। यज्ञ, दान, व्रतादि कर्मों में प्रत्यक्ष दक्षिणा देने का विधान कहा गया है, बिना दक्षिणा के उसका प्रारम्भ कभी भी न करना चाहिए, अपितु अधिकाधिक दक्षिणा देने का प्रयत्न करना चाहिए ।१७। इसलिए जो पहले (मानसिक) दे दिया गया अथवा इस समय जो देने के लिए प्रस्तुत है, या दिया जायगा, उदार बुद्धिमान् ब्राह्मणों की वही वहाँ दक्षिणा के रूप में होती है ।१८। देवों के निमित्त विधान पूर्वक दान किये गये दासी, दास, गोआदि एवं उस वस्तु का मानसिक दान किया गया हो, वे सभी पुरुषों को प्रदान करने चाहिए । उसका परिवर्तन भी किया जा सकता है, जिस प्रकार किसी एक ही व्यक्ति को अनेक भांति के दान कोई प्रदान करता है ।१९-२०। वरण किस समय करना चाहिए ? दक्षिणा तन्त्र विधान द्वारा प्रदान करना चाहिए । रत्न की दक्षिणा में सुवर्ण का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि सुवर्ण द्वारा चाँदी प्राप्त की जा सकती है, और सुवर्ण चाँदी में ही प्रविष्ट होकर सुशोभित होता है । इसी प्रकार भूमि के कार्य में भूमि की दक्षिणा वस्त्र की दक्षिणा पान करने योग्य कार्यों में किसी पेय की दक्षिणा और अन्न में अन्न की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । उसी भाँति गज के कार्य में बकरी की दक्षिणा, अश्व के निमित्त भेंड की दक्षिणा, पशुओं के उद्देश्य से चौपायों की दक्षिणा, एवं देव-कार्यों में देव दक्षिणा देना बताया गया है । (किसी) मान के छठें भाग के दुगुने को यज्ञ कहा जाता है ।२१-२४। यजमान को चाहिए कि यज्ञ के संभार का एक भाग दक्षिणा रूप में आचार्य को प्रदान करे उसके अनन्तर अपने कलत्रों (स्त्री आदि परिवारों) के पाप के प्रायश्चित्त रूप में भी एक भाग ।२५। ऋत्विक् (यज्ञ कराने वाले) आदि को तीन भाग की दक्षिणा एवं इतर सभी लोगों के लिए एक अल्प भाग प्रदान करना चाहिए ।२६। आचार्य आदि के अंश में से एक अल्प मूल्य की वस्तु जो अमूल्य होती हुई वर्गों में श्रेष्ठ मूल्य रखती हो, ग्रहण करना चाहिए, वही सर्वश्रेष्ठ

मानाशक्तौ तु यज्ञानां यद्देयं यज्ञसिद्धये । देवता पुस्तकं रत्नं गावो धान्यं तिलास्तथा ॥२८
न मेरुफलपुष्पाणि देयान्येतानि सर्वतः । चतुश्चक्राङ्किततो यस्तु सान्द्रो वृत्तो जनार्दनः ॥२९
देवताप्रतिमाद्यं च शिरोनाभिस्तथैव च । श्वेतलिङ्गं रत्नलिङ्गमिन्द्रनीलादिकं च यत् ॥३०
दक्षिणावर्तशङ्खं च हरिवंशस्तथा खिलः । कपिलो नीलवृषभः सोमधान्यं तथैव च ॥३१
अमूल्यान्याहुरेतानि दत्त्वानन्तफलानि च । स्वर्गपादो भवेन्मूल्यं शालग्रामस्य दक्षिणा ॥३२
क्षुद्रलिङ्गे स्वर्णमूल्यं पादार्धं श्रीधरेऽपि च । अनन्तोऽनन्तमित्युक्तं पादार्धं बाणलिङ्गके ॥३३
यथा पुस्तकमात्रेण स्वर्णपादार्धमिष्यते । ज्योतिषार्धं सुवर्णस्य रजतार्धं वृषे तथा ॥३४
हरिवंशे श्लोकशते स्वर्णमेकं प्रकीर्तितम् । धर्मशास्त्रस्य साहस्रे रजतत्रयमीरितम् ॥३५
कपिलायां सुवर्णार्धं धेनुमात्रे पुराणकम् । प्रायश्चित्तविधौ[1] ज्ञेयं धेनुमात्रं पुराणकम् ॥३६
पुराणत्रितयं चान्ये वीर्यहीने द्वयं भवेत् । कृष्णे वृषे षट्पुराणं श्वेते नवपुराणकम् ॥३७
द्वात्रिंशच्च पुराणं स्याद्वृषे नीले तथैव च । न मेरोः प्रतिचक्रे च द्वादश स्वर्णरत्तिकाः ॥३८
मूल्यं श्रीफलमात्रेऽपि पुराणत्रितयं भवेत् । पङ्क्त्यापि तुर्यकं विद्यात्कलौ पणव्यवस्थया ॥३९
धात्रीफलस्य प्रत्येकं भवेद्रजतमाषकम् । एतान्याहुः प्रशस्तानि मूलयोगे परं विदुः ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मूल्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

दक्षिणा होती है ।२७। जिन यज्ञों में मानानुसार दक्षिणा प्रदान करने में असमर्थता प्रकट होती हो इसमें यज्ञ को सफल बनाने के हेतु देवता, पुस्तक, रत्न, गौ, धान्य, तिल, देव पुन्नाग वृक्ष के फल, पुष्प दक्षिणा के रूप में प्रदान करना चाहिए । चार चक्र से विभूषित एवं सन्दिग्ध रूप वाले जनार्दन देव का वरण जिसने किया (वही श्रेष्ठ है) ।२८-२९। देवता की प्रतिमा, शिर, नाभि, श्वेतलिंग, रत्नलिंग, इन्दनील दक्षिणावर्त शंख, सम्पूर्ण हरिवंश, कोयल, नीलवृक्ष, एवं सोभ धान्य, इन्हीं का नाम अमूल्य है, इन्हें प्रदान करने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है । शालग्राम देव के निमित्त एक सुवर्ण पाद की दक्षिणा होती है ।३०-३२। रुद्र लिंग के लिए स्वर्ण मूल्य, श्रीधर देव के लिए पादार्ध, अनन्त देव के लिए भी उतनी ही दक्षिणा बतायी गयी है । जिस प्रकार पुस्तक मात्र के लिए एक सुवर्ण पादार्ध भाग (दक्षिणा रूप में) प्रदान किया जाता है, उसी भाँति ज्योतिष्मान् (सूर्य आदि) देव के निमित्त सुवर्ण का आधा और वृष के निमित्त रजत (चाँदी) के आधे भाग बताये गये है ।३३-३४। हरिवंश के सौ श्लोक के पाठ करने की दक्षिणा एक सुवर्ण (पदक), धर्म शास्त्र के एक सहस्र के लिए तीन रजत (चाँदी) के टुकड़े दक्षिणा रूप में देने के लिए बताये गये हैं ।३५। कपिला (गौ) के निमित्त सुवर्ण के अर्धभाग (केवल) धेनुमात्र के लिए पुराण तथा प्रायश्चित्त के निमित्त भी धेनु मात्र के लिए पुराण ही बताया गया है । किन्हीं लोगों का सम्मत है कि तीन पुराणों को प्रदान करना चाहिए, वीर्य हीन वृष के निमित्त दो पुराण, कृष्ण वृष के लिए छः पुराण, श्वेत वृषभ के लिए नवपुराण, और नील वृषभ के निमित्त बत्तीस पुराणों को बताया गया है । रुद्राक्ष के प्रतिचक्र के लिए बारह रत्ती सुवर्ण केवल श्रीफल के निमित्त तीन पुराण बताये गये है, कलियुग में 'पण' व्यवस्था के लिए पंक्ति द्वारा भी चौथा ही बताया गया है ।३६-३९। उसी प्रकार प्रत्येक आँवले के लिए चाँदी के माशे प्रदान करने के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ।४०

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीयभाग में मूल्यकथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मूल्यदानवर्णनम्

सूत उवाच

पूर्णपात्रमथो वक्ष्ये यज्ञे साधारणेऽपि च । कामहोमे भवेन्मुष्टिर्मुष्टयोष्टौ तु कुञ्चिका ॥१
एकैककुञ्चिमानेन कुर्यात्पात्राणि वै सदा । पात्राणि च पृथक्कृत्वा स्थापयेद्द्वारदेशतः ॥२
सिद्धानां खड्गधाराणां प्रत्येकस्य दिनक्रमात् । तत्रैव दद्यान्नान्यत्र न कुर्याद्व्यत्ययं क्वचित्॥३
कुण्डानां कुड्मलानां च वेदनं यादृशं शृणु । चतुरस्रपदस्यापि रौप्यार्धं च कलौ युगे ॥४
द्वे रौप्ये सर्वतोभद्रे कौञ्चघ्राणे चतुर्थकम् । महासिंहासने पञ्च दशपात्रे तदर्धकम् ॥५
सहस्रारे मेरुपृष्ठे तुर्यारौप्यवृषाधिकम् । वृषे गले च वृषभं शेषे रौप्यसहस्रकम् ॥६
चतुरस्रस्य निर्माणे स्वर्णपादः कलौ युगे । महाकुण्डे तु द्विगुणं वृत्ते रौप्यं निवेदयेत् ॥७
पद्मकुण्डे तु वृषभमर्धचन्द्रे तु रौप्यकम् । योनिकुण्डे ददेद्धेनुमष्टार्धस्वर्णमाषकम् ॥८
षडस्रे तु तदर्धं स्याद्यागे माषद्वयं भवेत् । शैवे चोद्यापने चैव प्रत्यह्ना स्वर्णमाषकम् ॥९
दारणे हस्तमात्रं स्यात्स्वर्णकृष्णकलं भवेत् । इष्टिकाकरणे चैव प्रत्यह्ना स्यात्पणद्वयम् ॥१०
खण्डे दशवराटं स्याद्बृहन्माने तु काकिणी । तडागे पुष्करिण्यां च खनने प्रथममाङ्गके ॥११

अध्याय ४

मूल्यदान का वर्णन

सूत बोले—साधारण यज्ञ में भी दिये जाने वाले पूर्ण पात्र को मैं बता रहा हूँ, काम्य हवन में मुट्ठी रखी जाती है, उसी आठ मुट्ठी की एक कुञ्चिका होती है । दरवाजे से पृथक् कुछ दूर पर एक कुञ्चिका के पात्र रखकर उसे ही क्रमशः प्रत्येक दिन (जब तक यज्ञ का अनुष्ठान हो) खड्गधारी सिद्धों को देना चाहिए । उसका कभी भी व्यतिक्रम न होने पाये ।१-३। कुण्डों, एवं कुण्डलों के ज्ञान, जिस प्रकार किये जाते हैं, मैं बता रहा हूँ, कलियुग में चौकोर स्थान के लिए चाँदी (रूपये का आधा), सर्वतोभद्र के लिए दो रूपये क्रौंचघ्राण के लिए चौथाई (चवन्नी), महासिंहासन के लिए पाँच रूपये, दश पात्र के लिए उसका अर्धभाग, एवं सहस्रार और मेरुपृष्ठ के लिए चार रूपये तथा एक बैल, वृष के कण्ठ के लिए वृषभ और शेष के लिए सहस्र रुपये देने चाहिए ।४-६। कलियुग में चौकोर कुण्ड के निर्माण में एक सुवर्ण-पाद, महाकुण्ड के निर्माण में उससे दुगुने, और गोलाकार (कुण्ड) की रचना में एक रूपये प्रदान करना चाहिए ।७। पद्मकुण्ड के निमित्त बैल, अर्धचन्द्र नामक कुण्ड के निर्माण में एक रूपये, योनि कुण्ड में धेनु (गौ), और अष्ट कोण वाले कुण्ड में एक माशा सुवर्ण, षट्कोण कुण्ड में उसका अर्धभाग, यज्ञ के लिए दो माशे, एवं शैव कार्य, अथवा किसी के उद्यापन कार्य में प्रतिदिन एक माशा सुवर्ण प्रदान करना बताया गया है ।८-९। (यज्ञ सम्बन्धी) एक हाथ भूमि खोदने के लिए उसका पारिश्रमिक सुवर्ण की एक कृष्ण कला बतायी गयी है, उसी प्रकार उसमें ईंटों की जोड़ाई के लिए प्रति दिन के पारिश्रमिक दो पण सुवर्ण देने चाहिए । खण्ड बनाने में दश कमलगट्टे, उसके मान को बढ़ाने में कौड़ी देनी चाहिए, उसी भाँति सरोवर या पुष्करिणी प्रथम

सप्तहस्तमिते कुण्डे निम्ने आबद्धमात्रकम् । पुराणस्य च एकांशं वेतनं परिकीर्तितम् ॥१२
वर्धयेत्पणमात्रेण निम्ने पन्ने च प्रक्रमात् । बृहत्कूपस्य निर्माणे प्रत्यहं च पणद्वयम् ॥१३
शैले ज्ञेयं काञ्चनस्य रत्तिका गृहकर्मणि । कोष्ठे ज्ञेयं सार्धपणं रङ्गादिरचिते पणम् ॥१४
वृक्षाणां रोपणे दद्यात्प्रत्यह्ना सार्धमाषकम् । सेतुबन्धे च पङ्किले च पणद्वयं च काकिणी ॥१५
पणे पणे तु ताम्रस्य दद्यात्पणचतुष्टयम् । घटने कांस्यसीसानां पणत्रयमुदाहृतम् ॥१६
अथ वा दिनसङ्ख्यानं पणैकं च सकाकिणी । सुवर्णस्य पणैके तु पुराणं रत्नकुट्टिमे ॥१७
रजते तु तदर्धं स्यात्स्फटिकस्य च दारणे । दिनसंख्यापणद्वन्द्वं रत्नानामथ कुड्मलम् ॥१८
मणिवेधे मणौ ज्ञेयं काकिणी परिकीर्तिता । चतुर्वराटमधिकं स्फाटिके मणिवेधने ॥१९
कांस्यतालस्य निर्माणे धमने तु पणत्रयम् । लाक्षानिर्माणके कार्ये तदर्धमपि कीर्तितम् ॥२०
गवां च दोहने चैव वराटे तुर्यवेतनम् । वेतने वस्त्रनिर्माणे पन्ने हस्तपणत्रयम् ॥२१
अविवस्त्रस्य निर्माणे स्यन्दनं दशकाकिणी । पिधानवस्त्रनिर्माणे त्रिपणं परिकीर्तितम् ॥२२
दशकाकिणी ऊर्ध्वाधस्तद्व्यये पण्यवेतनम् । वंशाजीवस्य प्रत्यह्ना पणस्यार्धं सकाकिणि ॥२३
लोहकारस्य च तथा नापितस्य च वेतनम् । शिरसा तस्य वपने विज्ञेया दशकाकिणी ॥२४
सश्मश्रुनखमाने तु प्रदद्यात्काकिणीद्वयम् । नारीणामथ संस्कारे नखचित्रादरञ्जने ॥२५
सकाकिणि पणं तच्च सवित्रे च पयोधरे । पणानां तुर्यकं दद्यात्सीमन्तस्यालके तथा ॥२६

की खोदाई में और सात हाथ के कुण्ड के निर्माण करने में जिसका नीचे का भाग (ईंट आदि से) बाँध दिया जाता है, पुराण का एक भाग वेतन रूप में देना चाहिए ।१०-१२। उसमें क्रमशः जब तक नीचे स्थल पर न पहुँच जाँय, एक एक पण की वृद्धि करते रहना चाहिए । महान् कूएँ के निर्माण में प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना कहा गया है ।१३। पत्थर के घर बनवाने में एक रत्ती प्रतिदिन पारिश्रमिक देना चाहिए, उसी भाँति कोठे के लिए डेढ़ पण, और घर की रंगाई की प्राप्ति करने लिए एक पण देना चाहिए ।१४। वृक्षों के रोपने (लगाने) के लिए प्रतिदिन डेढ़माशा, दलदल में पुलबाँधने के लिए दो पण और कौड़ी देना बताया गया है ।१५। ताँबे के प्रत्येक पण के निर्माण में चार पण तथा कांसों और शीशे के गलाने में तीन पण देना चाहिए ।१६। दिन की गणना करने के लिए कौड़ी समेत एक पण, सुवर्ण के लिए भी एक पण, एवं रत्न के कुट्टिम (भूमि का ऊपरी स्तर) बनाने में एक पुराण, चाँदी के कार्यों में उसका अर्धभाग, स्फटिक मणि के तोड़ने में दो पण देने चाहिए । उसी प्रकार रत्नों के कुण्डल में भी । मणियों के वेधन में कौड़ी देनी चाहिए, स्फटिक मणि के छिद्र करने में चार कौड़ी अधिक ।१७-१९। कांसे का ताल, एवं चौंकनी बनाने में तीन पण, लाख के निर्माण कार्य में उसका आधा तथा गौ के दुहने में चार कौड़ी, एवं वस्त्र बुनने में एक हाथ के तीन पण देना कहा गया है ।२०-२१। भेंड के (ऊनी) वस्त्र तथा रथ बनाने में दशकौड़ी, एवं पहिनने के वस्त्र बनाने में तीन पण देना चाहिए ।२२। ऊपर नीचे एवं उसके व्यय करने में दश कौड़ी दैनिक वेतन, तथा वंशाजीव के लिए प्रतिदिन कौड़ी समेत पण का आधा भाग देना चाहिए ।२३। लोहार एवं नाई को शिर मुण्डनार्थ दश कौड़ी, केवल दाढ़ी बनाने और नाखून काटने के लिए दो कौड़ी, और स्त्रियों के नाखून में तथा इतर स्थान में चित्रादिरञ्जन एवं उसके पयोधर के चित्रविचित्र बनाने में कौड़ी समेत एक पण देने चाहिए । शिर के केशों के संवारने के लिए चार पण देने

पदचित्रे तु सार्द्धं स्याद्ग्रीवाणां गुह्यधारणे । धान्यानां रोपणे चैव दिनैके पणवेतनम् ।।२७
लवणे तु तथा देयः गुवाकानां च रोपणे । दण्डपत्रस्य संस्कारे मरिचानां तथैव च ।।२८
पणद्वयं वराटानामधिकं दशमेव तु । हले हले पणैकं स्यात्काकिण्यधिकमेव च ।।२९
पणत्रयं चक्रपणे महिषाणां पणाधिकम् । नराणां वाहने चैव पणैकं दशकाकिणी ।।३०
दासीनां गर्दभानां च अधिकं काकिणीद्वयात् । क्षालने चापि वस्त्रस्य तैलक्षारविवर्जिते ।।३१
वस्त्रे प्रतिपणं दद्याद्दीर्घे प्रस्थेऽपि वर्धयेत् । सद्यः प्रक्षालनेऽप्यर्धं दिनादावधिकं भवेत् ।।३२
श्वेतवस्त्रे भवेन्न्यूनं पदे सूक्ष्मे च वर्द्धयेत् । मृत्तिकानां समुद्धारे कुद्दाले चेक्षुपीडने ।।३३
वेतनं पुष्पसंस्कारे सहस्रे दशकाकिणी । काकिणी स्रङ्निबद्धे च द्विगुणं कण्ठमालिका ।।३४
अबद्धे द्वयङ्गुलं यावन्मुण्डमाला प्रकीर्तिता । हस्तत्रये कण्ठमाला आनाभि कमलावधि ।।३५
काकिणीकत्रयं चैव निर्माणे द्विजसत्तमाः । मालत्याश्च तुलस्याश्च जातियूथ्योश्च सत्तमाः ।।३६
तदर्धार्धं मारुतेन दमने बकुलस्य च । वेतनं दीपतैले च आज्यस्य परिवर्धयेत् ।।३७
यामे यामे रौप्यमाषं स्नेहे चैव तु काकिणी । सार्धाङ्गुलप्रमाणेन वस्त्रवर्ति विदुर्बुधाः ।।३८
षडङ्गुलेन दैर्घ्यं च न न्यूनं नाधिकं भवेत् । पञ्चविंशतिभिः संस्था तन्तुभिर्द्विजसत्तमाः ।।३९
पञ्चाङ्गुलेन मानेन कर्तव्यः सुसमाहितः । हस्तोच्छ्राये प्रदद्यात्तु मुष्टिहस्ते तु मध्यमम् ।।४०

चाहिए । पैर रंगने के लिए डेढ़ पण देना बताया गया है, बाल और गुह्य स्थान को सौन्दर्य पूर्ण बनाने में भी वही देना चाहिए । धान्यों के रोपण में एकदिन के एक पण वेतन होते हैं ।२४-२७। नमक, सुपारी के आरोपण, दण्डपत्र के संस्कार, एवं मरिच के आरोपण में दो पण कौड़ी अथवा अधिक से अधिक दश तथा प्रत्येक हरवाहे को एक दिन के वेतन कौड़ी समेत एक पण देने चाहिए ।२८-२९। चक्रपण के लिए तीन पण, महिषों के लिए चार पालकी आदि ढोने के लिए दश कौड़ी समेत एक पण देना कहा गया है ।३०। दासी, एवं गधे द्वारा काम करने वाले को उससे दो कौड़ी अधिक देना चाहिए । तेल व साबुन, खारी मिट्टी (रेह) को न छोड़ कर यों ही वस्त्र धोने में एक वस्त्र के लिए एक पण लम्बे चौड़े (जाजिम दरी) आदि वस्त्र के लिए एक प्रस्थ क्रमशः बढ़ा देना चाहिए । तुरन्त धुलवाने पर आधा अधिक देना कहा गया है ।३१-३२। श्वेत वस्त्र की धुलाई में कमी और सूक्ष्म वस्त्र (रेशमी) की धुलाई में वृद्धि बतायी गयी है । कुम्हार से मिट्टी खोदने, ऊख पेरने, सहस्र पुष्पों की सजावट में दश कौड़ी, माला बाँधने में एक कौड़ी, और पहनने की माला बनाने में उससे दुगुना देना चाहिए ।३३-३४। बिना बँधे ही दो अङ्गुल की कमी रहे तो उसे मुण्ड माला तीन हाथ की कण्ठ माला के जो नाभि कमल तक रहती है बनाने में तीन कौड़ी और द्विजश्रेष्ठ ! मालती, तुलसी, चमेली, एवं जूही की माला बनाने में भी उतना ही देना चाहिए ।३५-३६। वकुल पुष्प की माला के लिए जिसके पुष्प वायु द्वारा गिर रहे हों, उसका अर्धार्ध भाग दिया जाता है, तेल के दीपक जलाने में वेतन में घी की वृद्धि होनी चाहिए ।३७। एक-एक याम (प्रहर) जलाने के लिए चाँदी के एक माशा, उसके तेल के लिए एक कौड़ी देना चाहिए, जिसमें विद्वानों ने डेढ़ अंगुल की कपडे की बत्ती डालने को बताया है ।३८। द्विजसत्तम ! छ अंगुल की बत्ती जो न न्यून एवं न अधिक हो, पच्चीस सूत की बनायी जाती है ।३९। पाँच अंगुल के मान से सावधान होकर वह बनायी जाती है । एक हांथ की ऊँची, मुट्ठी बँधे हाथ

त्रिहस्ते चतुर्हस्ते वा उत्तमं मानमीरितम् । स्वर्णधारे हतो राजा रजते सर्वकामदः ।।४१
ताम्रे चायुःक्षयकरमायसे दुर्गतिप्रदः । शस्तस्य करमर्दस्य प्रशस्तोत्तर उच्यते ।।४२
दीपाधारं कांस्यमयं तथारीतिमयस्य च । अभावे मृण्मयस्यैव मृण्मये मानवर्जितम् ।।४३
दशाङ्गधूपके मूल्यं विंशके तु पणत्रयम् । द्वादशकांगुलेऽप्यर्धवर्ति धूपाय वर्तयेत् ।।४४
हस्ते पञ्चप्रमाणं च वस्त्रैः कुर्याच्च वर्तिकाम् । पञ्चविंशतिभिर्वा यः स महावर्तिरुच्यते ।।४५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मूल्यदानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलशनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कलशानां विनिर्णयम् । यस्यार्पिते च माङ्गल्ये यात्रासिद्धिश्च जायते ।।१
सप्ताङ्गं कलशे ज्ञेयं पञ्चाङ्गमथ वा पुनः । वारिमात्रेण सम्पूर्णे न सा सिद्धिः प्रजायते ।।२
अथ वाक्षतपुष्पेषु देवमावाह्य पूजयेत् । न चान्यत्र यजेद्देवान्विफलं परिकीर्तितम् ।।३
वटस्याश्वत्थवृक्षस्य धातकीबिल्वकस्य च । पञ्चपल्लवमुद्दिष्टं विन्यसेत्कलशोपरि ।।४
सौवर्णा राजता वापि ताम्राद्यामृण्मयास्तथा । कलशाः क्रमशः प्रोक्ता यथावित्तानुसारतः ।।५

की मध्यम, तीन हाथ और चार हाथ की उत्तम बतायी गयी है । सुवर्ण के पात्र में दीपक जलाने से राजा का विनाश, चाँदी में समस्त कामनाओं की सफलता, ताँबे में आयुक्षय, तथा लोहे के पात्र में जलाने से भाँति-भाँति की दुर्गति प्राप्त होती है करमर्द (करमन्या) वृक्ष, दीपक के लिए उत्तम माना गया है, कांसे तथा पीतल के पात्र दीपक के लिए श्रेष्ठ हैं तथा उनके अभाव में मिट्टी के ही पात्र रखने चाहिए ।४०-४३। दशांग धूप तथा बीस अंग वाले धूप के लिए तीन पण दिये जाते है । बारह अंगुल में भी धूप के लिए आधी बत्ती लगाई जाती है । पांच हाथ अथवा पच्चीस हांथ के वस्त्र की बत्ती को महाबत्ती बताया गया है ।४४-४५
श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मूल्यदान वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

कलशनिर्णय का वर्णन

सूत बोले—उसके उपरांत कलशों के निर्णय जिसकी मांगलिक पूजा करने से यात्रा सफल होती है, मैं बता रहा हूँ ।१। कलशों के सात अथवा पाँच अंग होते हैं, कलश में केवल जल मात्र से पूर्ति कर देने से सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती है ।२। कलश के अभाव में अक्षत, या पुष्पों पर देवों के आवाहन-पूजन कर लेने चाहिए, अन्यथा अन्यत्र देवों के पूजन करने से वही निष्फल हो जाता है, ऐसा बताया गया है ।३। बट (बरगद), पीपल, आँवला और बेल इन्हीं पाँच वृक्षों के पल्लव से कलश विभूषित करना चाहिए ।४। अपनी धन-शक्ति के अनुसार सुवर्ण, चाँदी, ताँबे आदि एवं मिट्टी के कलश स्थापित करना चाहिए ।५।

अभेद्याः सुषमाः प्लक्षाः सर्वे आद्या सुपूरिताः । निश्छिद्रा ऋजवश्चैव सेचनान्येककर्बकः ।।६
एकत्रिंशाङ्गुलं कुर्यात्कालाहे द्विगुणं शतम्। मुखं चाष्टाङ्गुलं तस्य द्व्यङ्गुले च दरार्थिते ।।७
तैजसैः कारयेन्मानं मृण्मये मानमुच्यते । कलशोदकनिर्माणे अमानं नैव योजयेत् ।।८
कलशस्थापनं वक्ष्ये यत्र सन्निहिताः सुराः । व्युत्क्रमेण प्रविन्यासे यातुधानो हरेत्किल ।।९
यज्ञे साधारणं वक्ष्ये यद्विधानं यथामतम् । स्वस्तिकोपरि विन्यासे सम्पूर्णस्यार्धमानके ।।१०
चतुरस्रोत्तरं भित्त्वा चोर्ध्वाधोमानतः समम् । तुर्यसूत्राणि मानिभान्पञ्च पूर्वायतनानि च ।।११
मार्जयेत्स्वस्तिकाकारं तुर्यमात्रं यथा भवेत् । स्वास्तिकं जायते तत्र कलशानां तथासनम् ।।१२
स्योना पृथिवीति मन्त्रेण कुर्याद् भूमिपरिग्रहम् । मध्यमानामिकाभ्यां च न्यस्येत्पातालसम्मुखम् ।।
ऋषिर्नारायणोऽस्य स्याद्गायत्री[1] देवता रविः ।।१३
विनियोगः स्थापने च तथा भूमिपरिग्रहः । धान्यमसीति मन्त्रेण धान्यसूक्तं परिस्तवेत् ।।१४
अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्गौतमः परिकीर्तितः । अनुष्टुप्च भवेच्छन्दो देवतास्य गुरुः स्मृतः ।।१५
आजिघ्रं कलशं मह्यां स्थापयेत्कलशं ततः । कनिष्ठांगुष्ठकं त्यक्त्वा कुम्भाग्रे उदरेऽपि च ।।१६
विन्यासश्चैव कर्तव्यस्त्र्यङ्गुले ब्रह्ममुद्रया । आजिघ्रस्य च मन्त्रस्य ऋषिर्भर्ग उदाहृतः ।।

अभेद्य (दृढ़) सौन्दर्य पूर्ण, छिद्र हीन, सीधे और एक मिट्टी के बने हुए कलश को पहले से ही उन्हें भरे रखना चाहिए इकतीस अंगुल के घट जो कालाह में उससे दुगुने और सौ अंगुल के होते है, आठ अंगुल के मुख और दो अंगुल के तैजस द्वारा उसका मान करना चाहिए । इसीलिए मिट्टी के घर के लिए मान कहा गया है और कलशोदक के निर्माण के लिए भी । मान शून्य होने पर वे पूजनीय नहीं होते हैं ।६-८। मैं घट स्थापन विधान बता रहा हूँ, जिसमें सम्पूर्ण देव-गण सन्निहित रहते हैं और जिससे क्रम की अपेक्षा न रखने पर उसके पूजा आदि का निश्चित अपहरण राक्षसगण कर लेते हैं ।९। उनके यज्ञीय साधारण विधान को भी, जो सर्व सम्मति से निश्चित है, बता रहा हूँ । सम्पूर्ण मान एवं अर्धमान वाले घट को स्वस्तिक के ऊपर स्थापित करना चाहिए ।१०। (किसी) चौकोर स्थान का भेदन कर जिसका ऊपरी एवं नीचे का भाग समान हो, चार सूत्र से अंकित कर पुनः पाँच सूत्रों से पूर्व पश्चिम में अंकित करना बताया गया है ।११। उस स्वस्तिकाकार का मार्जन करना चाहिए, जो केवल चौथाई मात्र रहता है, वही स्वास्तिक कलशों के आसन के रूप में रहता है ।१२। 'स्योना पृथिवी' ति मंत्र से भूमि के परिग्रह (माप आदि) किये जाते हैं, जिसमें मध्यमा और अनामिका अंगुली द्वारा पाताल संमुख उसका न्यास किया जाता है इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, सूर्य देवता हैं ।१३। यही विनियोग उस (घट) के स्थापन में उच्चारण किया जाता है । 'धान्यमसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक धान्य उसके नीचे रखा जाता है, इस मंत्र के गौतम ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वृहस्पति देवता विनियोग में कहे जाते हैं ।१४-१५। 'आजिघ्रं कलशमि' ति मंत्र से भूमि में कलश स्थापन करना चाहिए, जिसमें कनिष्ठा और अंगूठे को छोड़ कर शेष तीन अंगुलियों की व्रह्म मुद्रा द्वारा घट के अग्रभाग एवं उदर में विन्यास किया जाता है, इस मंत्र के भर्ग ऋषि,

---

१. छन्दः इति शेषः ।

पङ्क्तिश्छन्दश्च उद्दिष्टो देवता विष्णुरव्ययः ॥१७
कलशस्थापने चैव सोमयागे च योजयेत् । पञ्चनद्येतिमन्त्रेण क्षिपेद्गङ्गाजलं ततः ॥१८
देवता परमा त्रिष्टुब्देवता सोमभावितः । विनियोगः पल्लवे च विन्यसेत्परिकीर्तितः ॥१९
याः फलिनीति मन्त्रेण प्रदद्यात्सफलाक्षतम् । याः फलिनीति मन्त्रस्य ऋषिः कमलसंज्ञकः ॥
त्रिष्टुप्छन्दो गणपतिर्देवता परिकीर्तिता ॥२०
बदरं नागरं चैव धात्री च पिचुमर्दकम् । जीवन्ती पीवरं चैव फलान्येतानि वर्जयेत् ॥२१
हिरण्यगर्भेति ऋचा पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् । ऋषिर्हिरण्यगर्भोऽस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ॥
सविता देवता चास्य रत्नन्यासेति योजयेत् ॥२२
अमृतीकरणं कुर्याद्दैवशुल्बनमेव च । वरुणस्य त्वेति ऋषिर्वरुणान्तरे योजयेत् ॥२३
श्रीश्च ते इति मन्त्रेण दद्यात्पुष्पं सचन्दनम् । गन्धद्वारेति मन्त्रेण दद्याद्गन्धं विलोडितम् ॥२४
काण्डादिति च मन्त्रेण दधाद्दूर्वाक्षतं पुनः । व्रीहयश्चेति मन्त्रेण पञ्च व्रीहींश्च निक्षिपेत् ॥२५
तिलाश्च माषा मुद्गाश्च श्यामाकाः शालयः स्मृताः । पञ्च धान्यगणः प्रोक्तः सर्वारिष्टनिषूदनः ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे कलशनिर्णयं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

पंक्ति छन्द, शाश्वत विष्णु देवता, विनियोग में कहे जाते हैं । इसका प्रयोग कलश स्थापन एवं सोम याग में अत्यधिक किया जाता है, पश्चात् 'पञ्च नद्ये' ति मंत्र को उच्चारण कर गंगा जल घट में छोड़े ।१६-१८। इसके परम देवता, त्रिष्टुप् छन्द, और सोम देवता, विनियोग में कहे जाते हैं ।१९। 'याः फलिनी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक फल समेत अक्षत प्रदान करना कहा गया है । इस मंत्र के कमल ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, गणपति देवता कहे गये हैं ।२०। बेर, नारङ्गी, नीबू आँवला नीम, हर्रे, एवं पीपर, इन फलों के त्याग इन कार्यों में करने चाहिए ।२१। 'हिरण्य गर्भा' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घर में पञ्च रत्न का निक्षेप (छोड़ना) बताया गया है, इस मंत्र के हिरण्यगर्भ ऋषि , त्रिष्टुप् छन्द, सविता (सूर्य) देवता कहे गये है, जो रत्नों के न्यास विनियोग में कहे जाते हैं ।२२। इसी भाँति अमृतीकरण और दैवाचार भी करना चाहिए । 'वरुणस्यत्वे' ति मंत्र द्वारा वरुण का उस घट जल में प्रवेश कराया जाता है, इस मंत्र के वरुण ऋषि हैं ।२३। 'श्रीश्च ते' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक चन्दन समेत पुष्प प्रदान करना चाहिए, 'गन्धद्वारे' ति मंत्र से घिसा हुआ गन्ध, 'काण्डादि' ति मंत्र से दूर्वा और अक्षत मिश्रित अर्पित करना बताया गया है, एवं 'ब्रीह्यश्चे' ति मंत्र द्वारा पाँच धान्य तिल, उरद, मोथी, काकुनी और साठी धान कलश पर स्थापित करना चाहिए ।२४-२६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में कलशनिर्णय नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मासवर्णनम्

सूत उवाच

अथ मासाश्रयं कर्म कर्तुं मासनिरूपणम् । क्रियते तद्विधं संख्ये भवेन्मासश्चतुर्विधः ॥१
चान्द्रः सौरः सावनश्च नाक्षत्रश्च तथापरः । शुक्लप्रतिपदं प्राप्य यावद्दर्शं च ऐन्दवः ॥२
एकराशौ रविर्यावत्स मासः सौर उच्यते । त्रिंशता दिवसैर्मासः सावनः परिकीर्तितः ॥३
नाक्षत्रमासोऽश्विन्यादिरेवत्यन्तो हि विश्रुतः । उदयादुदयं यस्तु सावनो दिवसो रवेः ।४
तन्त्रेणैकतिथेर्भोगकालो दिवस ऐन्दवः । राशेस्त्रिंशद्भागकालः कालस्त्वेकस्य भास्वतः ॥५
अहोरात्रं तु तज्ज्ञेयं सौरेऽपि भागमानतः । अहोरात्रं साधनस्य मुख्यवृत्त्यैव लभ्यते ॥६
सौरे चान्द्रे तूपगणौ त्रिंशद्भागे त्वदर्शनात् । सावना दिवसा ग्राह्या ऋषीणां समये गृहे ॥७
अतिभागव्यवस्थायां प्रायश्चित्तक्रियासु च । मन्त्रोपासनकार्ये च अन्नस्य प्राशने शिशोः ॥८
करस्य ग्रहणे राज्ञो व्यवहारेषु मासु च । यज्ञेषु दिनसंख्यायां ग्राह्यो मासस्तु सावनः ॥९
सौरमासो विवाहादौ यदाद्यैः सुप्रगृह्यते । यज्ञेष्वपि व्रते वापि विहिते स्नानकर्मणि ॥१०
चान्द्रस्तु पार्वणे ग्राह्यो वार्षिकेष्वष्टकासु च । श्राद्धेषु तिथिकार्येषु तिथ्युक्तेषु व्रतेषु च ॥११

अध्याय ६

मासों का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरांत मैं मासों की व्याख्या कर रहा हूँ, जिनके आश्रित किये जाने वाले कर्म रहा करते हैं, वे चार प्रकार के होते हैं—चान्द्र, सौर, सावन, और नाक्षत्र, यही इनके भेद हैं, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या तक के दिन चान्द्र मास में गणना किये जाते हैं ।१-२। एक राशि पर सूर्य जितने दिन स्थित रहता है, उसे सौर मास, एवं तीस दिन के सावन मास, और अश्विनी नक्षत्र से आरम्भ होकर रेवती नक्षत्र के दिन तक नाक्षत्र मास कहा जाता है । सूर्योदय से (दूसरे दिन) सूर्योदय तक सावन मास का एक दिन, तंत्र द्वारा एक विधि के भोग करने का समय चान्द्र मास का एक दिन, एक राशि के तीस भाग का समय (अंश) सौर मास का एक दिन होता है जो दिन-रात के मान भाग से बताया जाता है । साधक लोगों की साधना के लिए अहोरात्र वाला ही दिन ग्रहण किया जाता है ।३-६। सौर मास एवं चान्द्रमास के तीसवें भाग के अदृश्य होने के कारण सावन मास के ही दिन ऋषियों के कर्मानुष्ठान एवं गृह प्रवेश आदि में गृहीत होते हैं ।७। अतिभाग की व्यवस्था, प्रायश्चित्त की क्रियाओं, मन्त्र साधन, उपासना कार्य, वच्चों के अन्न प्राशन राजा के लिए प्रजाओं से कर लेने के व्यवहार कार्य, मासिक कार्य, और यज्ञों की दिन गणना में सावन मास ग्रहण करना चाहिए ।८-९। विवाह आदि कार्यों में, यज्ञ में, व्रतानुष्ठान, तथा स्नान कर्मों के विधान में सौर-मास का ही ग्रहण होता है ।१०। पार्वण, वार्षिक, एवं अष्टका श्राद्धों, तिथि कार्यों और तिथि में बताये गये व्रतानुष्ठानों में चान्द्र-मास गृहीत होता है ।११।

नाक्षत्रः सोमपादीनामार्यभागविचारणे । करग्रहविधौ राज्ञां नायं सर्वजनाकृतिः ।।१२
तद्वच्चैत्रादिमासोक्तं तिथ्युक्तं कर्म दृश्यते । तत्तु चान्द्रेण कर्तव्यं सा हि चैत्रादिनोच्यते ।।१३
राजोक्तौ सावनः प्रोक्तः तिथिसम्भागकर्मणि । तत्र सौरो भवेद्वाच्यः सौरशब्दप्रवर्तनात् ।।१४
चित्रानक्षत्रयोगेन चैत्री सा पूर्णिमा स्मृता । तयोपलक्षितो मासश्चैत्र इत्यभिधीयते ।।१५
स च तिथ्यात्मको मासश्चान्द्रः श्रवणभास्करः । चान्द्रश्चैत्रश्चन्तिको मासो मुख्यश्चैत्रादिसंज्ञकः ।।१६
गौणोऽप्यसौ युगाद्यादेरनुरोधेन दर्शनात् । मुख्यः शुक्लादिदर्शांतो मासो लाक्षणिको मतः ।।१७
चैत्राद्याश्चान्द्रमासा ये द्वादशापि तु योगतः । पौर्णमासीयुताभिस्तु न चर्क्षत्वं न रेभिरे ।।१८
विशाखयादिषु या वा तथा भाद्रपदेन वा । यत्र न पूर्णिमायोगो मासः स स्याद्विनाशकः ।।१९
योऽसौ यद्यपि चैत्रादौ नैष्ठिकोऽपि प्रलभ्यते । यथा सौरोऽपि यातोऽसौ योगोऽयमतिदुर्घटः ।।२०
तथा च माससामान्ये योगेनायं भवेत्क्वचित् । यदि वर्षसहस्रान्ते तदक्षेणैव पूर्णिमा ।।२१
संयुक्ता लभ्यते यत्र भवेद्राज्यविनाशनम् । सूर्याचन्द्रमसौ नित्यं कुर्वाते तिथिभोजनम् ।।२२
दण्डद्वये भुक्तशेषे न भुञ्जीत कदाचनम् । अतिक्रम्यापरां भोक्तुं तिथिं यत्र उभावपि ।।२३

देवादिका के लिए आर्यभाग संबंधी विचार, और राजाओं के कर (मालगुजारी) आदि में ग्रहण करने में ही नाक्षत्र मास के उपयोग किये जाते हैं, अतः यह मास सम्पूर्ण जनता के उपयोग में नहीं आता है।१२। उसी प्रकार चैत्र आदि मासों की तिथियों में बनाये गये कर्मों की समाप्ति चान्द्र मास के अनुसार ही होती है, क्योंकि वे चैत्रमास में करने के लिए ही कही गयी हैं। राजा के लिए सावन मास ही कहा गया है, किन्तु तिथियों के विभाग-व्यवस्था में सौर शब्द के नामोच्चारण करने के कारण सौर-मास ही गृहीत होता है।१३-१४। चित्रा नक्षत्र के योग से चैत्री (चैत्र की) पूर्णिमा होती है, इसीलिए उसकी अपेक्षा के कारण उसे चैत्र-मास कहते हैं।१५। तिथियों की गणना वाले मास को चान्द्र-मास कहा जाता है, जिसमें सूर्य दृष्टि गोचर होते या सुने जाते हैं, और उस चान्द्र मास का अंतिम मास चैत्र मास कहा गया है, एवं यही चैत्रादि संज्ञा वाले मास मुख्य भी हैं।१६। (सत्ययुग आदि) युगों के अनुरोध से यह गौण (अप्रधान) भी हो जाता है। उसमें शुक्ल की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या काल पर्यंत वाला मास, जो सर्व सम्मति से लाक्षणिक बताया गया है, मुख्य माना जाता है।१७। चैत्र आदि बारहों चान्द्र मास, पूर्णिमा संयुक्त होने के नाते वे नक्षत्रों के धर्मों से अत्यन्त पृथक् रहते हैं।१८। विशाखा नक्षत्र (वैशाख मास) से आरम्भ होकर भाद्रपद मास तक के मासों में, जिसमें पूर्णिमा के योग न प्राप्त हों, वे मास विनाश करने वाले मास बताये गये हैं।१९। यद्यपि सौर-मास की भाँति चैत्र आदि मासों में भी नैष्ठिकता प्राप्त होती है, तथापि वह योग ही अत्यन्त दुर्लभ होता है।२०। किन्तु, साधारण मासों में यह योग कभी-कभी प्राप्त हो ही जाता है। सहस्रों वर्ष के अन्त में यदि कभी पूर्णिमा के योग प्राप्त हो जाँयें तो उस मास के समय में राष्ट्र का महान् विनाश उपस्थित हो जाता है। सूर्य एवं चन्द्रमा तिथियों के उपभोग नित्य करते रहते हैं, उनके उपभोग काल के दो दण्ड शेष रहने पर भोजन कभी न करना चाहिए। तथा वे दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) दूसरी तिथि के उपभोग करने के लिए अतिक्रमण न कर जाँये, उस समय भी। जिस मास में बीस ही तिथियाँ होती हैं, उसमें एक संचिता तिथि होती है। और तीस तो केवल चान्द्रमास में ही

यत्र विंशतिथिस्तस्मात्सञ्चितैका भवेदिति । त्रिशता चान्द्रमासौ दु चन्द्रेणैको हि वर्द्धते ।।२४
स चाधिको यतो मासस्ततः स्यादधिमासकः । समरात्रि दिवं कृत्वा वैवस्वतपुरीगतिम् ।।२५
राशे राश्यन्तरे सूर्यो यावद्गच्छति भानुमान् । गच्छन्वर्धयति पूर्वं तिथयस्तास्तु सञ्चिताः ।।२६
वर्धन्ते तिथयो यावत्तुलां याति दिवाकरः । तुलादिराशिषट्के तु न वर्द्धन्ते कदाचन ।।२७
स्वभावात्समगत्या तु यतः सङ्क्रमते रविः ! सञ्चयमाना त्वेकैका प्रतिमासं विवर्द्धते ।।
निशास्वपि तु सौरे ताः एकस्मिंस्तिस्र इत्यपि ।।२८
संपूर्णत्रिशत्तिथिभिर्मास्येकस्मिन्यदा भवेत् । स चान्द्रो मलिनो मासः कोणपाद्यैः समीहितः ।।२९
भुक्तोच्छिष्टा तु तन्मासादसंस्पृष्टदिवाकरः । यदा सङ्क्रमते लङ्घ्य तदा ज्ञेयो मलिम्लुचः ।।३०
सार्धवर्षद्वये पूर्णे पतत्येवं निशाकरः । परित्यक्ताश्च यावन्त्यो व्युत्क्रमिण्यश्च याः पुनः ।।
तिथयस्ते नियोक्तव्या नरो न स्यात्स पूरणः ।।३१
नैर्ऋत्यान्तं हितार्थाय जलकेतुर्निगच्छति । निर्ममं मलिनं मासं प्रेतानां च हिताय च ।।३२
अतः प्रेतक्रियाः सर्वाः कार्या मलिम्लुचेऽपि च । यत्कर्तव्यं न कर्तव्यं मलमासे द्विजोत्तमाः ।।३३
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि कथितं च प्रसङ्गतः । यच्छ्राद्धं प्रेतसम्बन्धि सपिण्डीकरणावधि ।।
मलमासेऽपि तत्कार्यं विशिनष्टि सपिण्डनम् ।।३४

होती हैं, उसमें चन्द्रमा के द्वारा एक ही वृद्धि होती रहती है ।२१-२४। वही अधिक जिस माम में होता है, उसे अधिक मास कहते हैं, उसमें वैवस्वत (यम) की पुरी की भाँति रात-दिन समान होते है । सूर्य के एक राशि से दूसरे राशि पर प्रस्थान करते समय उनके रस में प्रविष्ट होते समय पूर्व की तिथियाँ वृद्धि प्राप्त करती रहती है, वे ही संचिता के नाम से कही जाती हैं ।२५-२६। जब तक सूर्य तुला राशि पर पहुँचते हैं, उसी समय तक तिथियाँ भी वृद्धि प्राप्त करती हैं और छठी (कन्या राशि) के अनन्तर तुला पर पहुँचने के पश्चात् कभी नहीं बढ़ सकती है ।२७। स्वभावानुसार अपनी समान गति से सूर्य एक राशि से दूसरी राशि पर पहुँचते हैं, उसमें प्रति मास में एक-एक संचित की ज़ाने वाली तिथियाँ बढ़ती रहती हैं, रात्रि में भी उनकी वृद्धि होने के कारण एक सौर-मास होता है इस प्रकार तीन तिथियाँ वृद्धि प्राप्त करती हैं ।२८। जिस मास में सम्पूर्ण तीस तिथियाँ (मानानुसार) व्यतीत होती हैं, कोणपादिकों ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक उस चान्द्र मास को मलिन मास बताया है ।२९। (सूर्य द्वारा) उपभोग करके परित्यक्त तिथियों वाले उस मास को, जिसे सूर्य स्पर्श नहीं करते हैं (अर्थात् उसमें कोई संक्राति नहीं होती है), पार कर दूसरे मास में उनका संक्रमण (संक्रान्ति) होता है, उसे ही अधि (मल) मास कहा जाता है ।३०। ढाई वर्ष के उपरान्त निशाकर (चन्द्र) का इसी भाँति पतन हुआ करता है कितनी तिथियाँ परित्यक्ता रहती हैं और कितनी तिथियों के (व्युत्क्रम क्रम असंबद्ध) रहते हैं (किसी श्रम कर्म में) उस समय उन तिथियों के उपयोग नहीं होते हैं एवं करने वाला अधूरा ही कहलाता है ।३१। नैर्ऋत्य (राक्षस) गणों के हितार्थ जलकेतु का निष्क्रमण होता है, अतः यह निर्मम मलिन मास केवल प्रेतों के हित का साधक है अन्य का नहीं ।३२। इसीलिए समस्त प्रेत क्रियाएँ इस मलमास में भी होती रहती हैं, तथा द्विजोंत्तम वृन्द ! दैवादि शुभ कार्य इसमें नहीं होते हैं ।३३। प्रसङ्गवश मैं वही (मलमास में क्या करना चाहिए क्या नहीं) कह रहा हूँ, प्रेतसम्बन्धी सपिंडीकरणादि सभी श्राद्ध मलमास में किये जाते हैं विशेषकर सपिंडन

यदा तु द्वादशो मासो दैवान्मलिम्लुचो भवेत् । तत्रैव यत्नात्कर्तव्या क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥३५
मासान्तरे तु पतिते तस्मिन्नेव मलिम्लुचे । तदा त्रयोदशे मासि कर्तव्यं तत्सपिण्डनम् ॥३६
वर्ज्यं मासिकया श्राद्धमेकं तस्मिंस्त्रयोदशे । त्रिंशता घटिकैः श्राद्धं वर्धतेऽद्यापि सम्मितम् ॥३७
कुर्यात्पत्याब्दिकं कर्म प्रयत्नेन मलिम्लुचे । नैमित्तिकं च कुर्वीत नाधिकारस्तयोर्भवेत् ॥३८
तीर्थस्नानमलभ्यं तत्तदाद्यं देवदर्शनम् । उपवासादिकं कर्म सीमन्तोन्नयनं तथा ॥३९
आर्त्विजं पुंसवनं पुत्रादिमुखदर्शनम् । मलमासेऽपि कुर्वीत शुक्रे चास्तमुपागते ॥४०
मलमासेऽपि कुर्वीत नृपाणामभिषेचनम् । व्रतारम्भं प्रतिष्ठां च चूडाकर्म च मेखलाम् ॥४१
मन्त्रोपासां रहस्यं च महादानं सुमङ्गलम् । विवाहं च गृहारम्भं प्रवेशं नववेश्मनः ॥४२
उपग्रहं गवादीनामाश्रमान्तरसङ्क्रमम् । दीर्घमात्रासु नेज्यं वै तीर्थयात्रावसेचनम् ॥४३
वर्षवृद्धिवृषोत्सर्गकन्याद्विर्नयनादि च । यज्ञं च कामिकं विद्वान्मलमासे विवर्जयेत् ॥४४
एवमस्तं गते शुक्रे वृद्धबाल्ये च सन्त्यजेत् । पादास्तं च महास्तं च द्विविधं चास्तमस्य तु ॥४५
द्विसप्ततिर्दिनान्यस्य महास्तं पूर्वतो भवेत् । पृथिव्यामेव पादास्तं भवेद्द्वादशवत्सरान् ॥४६
ऊनपञ्चाशदधिकं दिवसानां शतद्वयम् । प्रतीच्यामुदितः काव्यो दृश्यो भवति सर्वदा ॥४७
एकर्क्षे गुरुणा युक्तो यावत्तिष्ठति भार्गवः । मलमासवत्कर्माणि प्राहुस्त्याज्यानि सर्वशः ॥४८

भी ।३४। दैवयोगात् यदि बारहवें (वार्षिक) मास मलमास हो जाये, तो प्रेत का वार्षिक श्राद्ध उसी मास में करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । यदि मास के भीतर ही मलमास उपस्थित हो जाये तो तेरहवें मास में सपिंडन विधान समाप्त करना चाहिए ।३५-३६। केवल मासिक श्राद्ध उसे तेरहवें मास में निषिद्ध है, (वृद्धि के लिए) तीस घटिका (घड़ी) के अनुसार आज भी श्राद्ध-वृद्धि सर्वसम्मत ही है ।३७। (पति का) वार्षिक एवं नैमित्तिक कर्म मलमास में प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, किन्तु दोनों के अधिकार कर्म नहीं किये जा सकते हैं ।३८। दुर्लभ तीर्थ स्नान, देवताओं के दर्शन, उपवास आदि कर्म, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, और मूल (गणना) संज्ञक नक्षत्रों की शान्ति समेत संतान मुखदर्शन मलमास एवं शुक्रास्त में भी किये जाते हैं ।३९-४०। राजाओं के अभिषेक (राजतिलक), व्रतों के आरम्भ, देवों की प्रतिष्ठा, चूडाकर्म (मुण्डन), मेखलाबन्धन, मंत्र की सिद्धि, एवं रहस्य समेत उसका ज्ञान, महादान, अत्यन्त माङ्गलिक कर्म, विवाह, गृहारम्भ, गृहप्रवेश गौओं का क्रय तथा स्थान परिवर्तन, विशाल संभार का यज्ञ, तीर्थ यात्रा एवं उसमें अभिषेक, वार्षिक, वृद्धि-श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, कन्याओं के द्विरागमन, और काम्य-यज्ञ के परित्याग मलमास में विद्वानों को करना चाहिए ।४१-४४। इसी भाँति शुक्र के अस्त तथा बाल्य वृद्ध होने के समय भी । पादास्त (चौथाई अंश से अस्त) और महास्त (सम्पूर्णतः) इस प्रकार शुक्र का अस्त दो भाँति का होता है ।४५। पूर्व दिशा में बहत्तर दिन तक शुक्र का महास्त होता है, और इस भूतल में बारह दिन का उनका पादास्त होता है ।४६। इस प्रकार शुक्र दो सौ उनचास दिन तक पश्चिम दिशा में सर्वदा दिखायी देते हैं ।४७। एवं नक्षत्र पर बृहस्पति समेत शुक्र जितने दिन स्थित रहते है, मलमास की भाँति उस समय भी उपरोक्त कर्मों के परित्याग आवश्यक होते हैं ।४८।

ऋक्षभेदे त्वेकराशौ सम्पर्के यदि वानयोः । गुरो राहोरपि तथा त्यजेद्विद्वान्न संशयः ॥४९
सिंहे राशौ स्थिते सूर्ये जीवे चास्तमुपागते । हेयानि यानि कर्माणि निषिद्धानि मलिम्लुचे ॥५०
मिथुनस्थे यदा भानौ मलमासः पतत्यसौ । द्विराषाढ इति ख्यातो गौणे शब्दविवर्तनात् ॥५१
फलं चात्र मृतस्यौर्ध्वदेहिकं कर्म कुर्वता । आषाढकीर्तनं कार्यमेवं वर्षान्तरेऽपि च ॥५२
आषाढद्वयसंयुक्तपूर्णमासीद्वयं तथा । युग्मकर्कटयो राश्योर्द्विराषाढस्तदा भवेत् ॥५३
भवेद्गौणो द्विराषाढो राशिस्तत्रैव संयुते । पूर्वत्रिके तु पतिते तदेव भगवान्हरिः ॥५४
कर्कटे शयनं कुर्यादागामिष्यं परत्रके । कांकिण्यर्के सुप्तहरौ शक्रपूजाश्विने भवेत् ॥५५
दुर्गोत्थानं तुलायां तु विष्णुर्निद्रां जहात्यसौ ॥५६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मासवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

तिथिविधानवर्णनम्

सूत उवाच

दैवं वा पैतृकं कर्म कालमाश्रित्य वर्तते । काले तान्येव कर्माणि फलं यच्छन्ति कुर्वताम् ॥१

नक्षत्र भेद होने पर भी एक राशि में स्थित इन दोनों में किसी के साथ राहु का सम्पर्क स्थापित हो जाये तो उस समय भी विद्वानों को उन कर्मों के परित्याग करने चाहिए ।४९। सिंह राशि में स्थित सूर्य एवं वृहस्पति के अस्त समय में भी मलमास में निषिद्ध किये गये कर्मों के परित्याग आवश्यक होते हैं ।५०। सूर्य के मिथुन राशि पर स्थित रहते समय मलमास के उपस्थित होने पर दो आषाढ़ मास होते हैं , इस प्रकार गौणों में शब्द विवर्तन किया गया है ।५१। इसमें मृत प्राणी के अन्त्येष्टि कर्म करते हुए आषाढ़ कीर्तन करना चाहिए । वर्षान्तर में भी यही बताया गया है ।५२। दो आषाढ़ मास की प्राप्ति में पूर्णिमा भी दो होती है, तथा मिथुन और कर्क राशि में भी दो आषाढ़ का योग आ जाता है ।५३। दोनों आषाढ़ मासों के योग को संघटित करने वाली राशि गौण मानी जाती हे, इस प्रकार पूर्व की तीनों राशियों को एक त्रिक में मलमास के उपस्थित हो जाने पर भगवान् विष्णु आने वाले त्रिक के कर्क राशि में शयन करते हैं । कर्क राशि स्थित सूर्य के समय भगवान् के शयन करने पर शक्रपूजा आश्विन मास में होती है और दुर्गा का उत्थान भी ।५४-५५। तुला राशि में सूर्य की उपस्थिति के काल में भगवान् विष्णु अपनी निद्रा का त्याग करते है ।५६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मास-वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

तिथि-विधान-वर्णन

सूत बोले—देव-कर्म और पितृ-कर्म काल (समय) के ही आश्रित रहते हैं, समय पाकर ही वे कर्म अपने करने वालों को फल प्रदान करते रहते हैं ।१। बाल्यावस्था के क्षण जिन कर्म-फलों को प्रदान करते

मुहुर्बाल्ये कर्मफलं त्रिकालेऽपि न विद्यते । व्ययो वा मुख्यभावेन फलदः कर्मशालिनाम् ।।२
कालस्तु गुणभावेन सर्वकालाश्रिता क्रिया । न कालेन विना किञ्चित्त्रिषु लोकेषु जायते ।।३
अतः कालं प्रवक्ष्यामि निमित्तं कर्मणामिह । काले ह्यमूर्तिर्भगवानेक एव तु यद्यपि ।।
तथाप्युपाधिभेदेन भिद्यते कालभेदिभिः ।।४
तिथिनक्षत्रवारादौ रात्रयोगादयोऽपि ये । तेऽपि कालाः पक्षमासराशिवर्षान्तरेऽपि च ।।
साधनानि भवन्त्येते स्वातन्त्र्येण न कस्यचित् ।।५
धर्मस्य चाप्यधर्मस्य मुख्यो व्यापार एव सः । तिथ्यादिकालभावेषु निषिद्धं निहितं हि तत् ।।६
पालयन्स्वर्गमाप्नोति हित्वा प्राप्नोत्यधोगतिम् । साधयन्त्यपि कर्माणि परस्परमवेक्ष्यते ।।७
कालभागो निःसहायो येऽपि स्युः कर्मसाधनाः । तिथौ पूर्वाह्णव्यापिन्यां कुर्वीत कर्म वैदिकम् ।।८
एकोद्दिष्टं तु मध्याह्नव्यापिन्यां हि समाचरेत् । पराह्णव्यापिनीं प्राप्य तिथिं कुर्यात्तु पार्वणम् ।।९
न तु पूर्वाह्णमध्याह्नपराह्णेषु यथोचितम् । अप्रधाने तु कुर्वीत कर्म दैवादिकं च यत् ।।१०
एको हि कालः प्रातस्तु वृद्धिश्राद्धादिसाधने । नापेक्षते साहाय्यं तत्तिथ्यादिविषुवादिषु ।।११
देवेभ्यो ब्रह्मणा दत्तः पूर्वाह्णस्तिथिभिः सह । पितृभ्यो ह्यपराह्णस्तु पार्वणं तु परं विना ।।१२
पूर्वाह्णमात्रसम्प्राप्तौ ततो देवान्प्रपूजयेत् । पूर्वाह्णस्पर्शमात्रेऽपि तिथिखण्डेन चार्पयेत् ।।१३

हैं, वे पुनः त्रिकाल में संभव नहीं होते हैं। इस प्रकार कर्मशील प्राणियों के लिए (सुख-दुःख) रूप फल मुख्य रूप से काल ही प्रदान करता रहता है।२। समस्त क्रियाएँ गुणभाव से काल के ही आश्रित रहती हैं, विना काल के कोई भी वस्तु तीनों लोकों में संभव नहीं होती है।३। इसलिए कर्मों के निमित्त कारण रूप काल की व्याख्या कर रहा हूँ, यद्यपि किसी समय अमूर्त (निराकार) भगवान् एक ही रहते हैं, पर, कालभेदी (कर्मों) एवं उपाधियों द्वारा वे साकार रूप में प्रकट होते हैं।४। तिथि, नक्षत्र, दिवस आदि एवं रात्रि योग आदि सभी काल के रूप कहे जाते हैं, इस प्रकार पक्ष, मास, राशि, एवं वर्षान्तर में भी काल किसी के स्वतन्त्र साधन नहीं होते है।५। धर्म और अधर्म मुख्य कालभाव से उसमें निषिद्ध और गृहीत होता है।६। उसके पालन से स्वर्ग की प्राप्ति और त्याग से अधोगति होती है, इस प्रकार कर्म को सिद्ध करते हुए एक दूसरे को देखा करते हैं।७। इस भाँति काल-भाग निःसहाय और कर्म साधक हैं, पूर्वाह्ण व्यापिनी तिथि में ही वैदिक कर्म करना चाहिए। मध्याह्न व्यापिनी तिथि में एकोद्दिष्ट श्राद्ध और पराह्ण व्यापिनी तिथि में पार्वण श्राद्ध करना बताया गया है।८-९। दैवादिक कर्म के लिए कोई प्रधान समय नियत नहीं है, इसलिए सभी समय में उसकी यथोचित पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि उसमें पूर्वाह्ण, मध्याह्न और पराह्ण का संकेत नहीं है।१०। एक ही काल प्रातः की सहायता (प्रातःकाल) से वृद्धि श्राद्धादिको की साधक होती है, और वही तिथ्यादि एवं विषुवादि में किसी प्रकार की सहायता न स्वीकार कर निरपेक्ष रहता है।११। ब्रह्मा ने देवों को तिथियों के साथ पूर्वाह्ण (समय) भी प्रदान कर दिया उसी भाँति पितरों के लिए एक पार्वण (श्राद्ध) के अतिरिक्त (सभी श्राद्ध के लिए) अपराह्ण काल।१२। इसलिए पूर्वाह्ण (काल) मात्र की प्राप्ति में देवताओं की अर्चा सुसम्पादन करनी चाहिए, तिथियों के खण्डित होने पर भी पूर्वाह्ण काल का केवल स्पर्शमात्र होने से उस समय उन्हें उनकी

खर्वा दर्पा तथा हिंस्रा तिथिश्च त्रिविधा भवेत् । खर्वादि लङ्घयेत्तुल्या दर्पा भवति वर्द्धिता ।।१४
हिंस्रा तु क्षयजा ज्ञेया कालभेदेन गृह्यते । खर्वा दर्पा परे ग्राह्या हिंस्रा ग्राह्या तु पूर्वतः ।।१५
शुक्लपक्षे परा ग्राह्या कृष्णे पूर्वा प्रशस्यते । स्नानदानव्रते चैव विषयोगो निदर्शितः ।।१६
तिथौ चोदेति सविता कालमात्रं च वा यदि । अन्यापि सैव विज्ञेया तिथिस्तस्मिन्नहर्निशम् ।।१७
यथावास्ते रविर्भाति घटिका दश वापि वा । सा तिथिस्तदहोरात्रं व्यपदेश्या न चेतरा ।।१८
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे खर्वा दर्पा तिथिश्च या । ययास्तं सविता याति पितृकार्ये च सा तिथिः ।।१९
दिनद्वयेऽपि कुतपे अस्तगां तिथिमाश्रयेत् । श्राद्धकालादिकं यत्र तत्र श्राद्धं विधीयते ।।
व्रते च वृद्धिगामिन्यां यत्रोदयो रवेर्भवेत् ।।२०
अमावस्यापार्वणे च सा तिथिः पितृपूजने । अमावस्यामृतस्यैव पार्वणं यत्र कुत्रचित् ।।२१
अस्तगामितिथिर्यत्र सा तिथिः पितृमन्दिरम् । एकोद्दिष्टं चरेत्तत्र नोदये च कदाचन ।।२२
शुक्लपक्षे च कृष्णे च यो योगः परपूर्वयोः । पूर्वेद्युर्वा परेद्युर्वा त्रिसन्ध्यव्यापिनी तिथिः ।।
सा पूज्या च स्वकृत्येषु पक्षयोरुभयोरपि ।।२३
पूज्या हि व्यस्तं सन्त्यज्य पूर्वं चैकादशीयुगम् । द्वितीया वह्निमुक्ता चतुर्थी पञ्चमीयुता ।।२४
एता उपोष्यास्तिथयः पुण्याः स्युर्धर्मवेदिभिः । एतद् व्यस्तास्तु पुण्यानि घ्नन्ति पूर्वकृतान्यपि ।।२५

वस्तुएँ समर्पित की जाती हैं ।१३। खर्वा, दर्पा, और हिंसा के भेद से तिथियाँ तीन भाँति की बतायी गयी है, क्षीण तिथि खर्वा, तिथियों की वृद्धि दर्पा, एवं लुप्त प्राय तिथियाँ हिंसा कही जाती हैं ।१४-१५। खर्वा तथा दर्पा नाम की तिथियों का पर उत्तर काल और हिंसा का पूर्व काल गृहीत होता है । स्नान, दान, व्रत एवं विष-योग के लिए शुक्ल पक्ष की परा और कृष्ण पक्ष की पूर्व (पूर्वकाल वाली) तिथियाँ प्रशस्त कही गयी हैं । जिस तिथि के क्षणमात्र समय में सूर्योदय होता है और उस क्षण के अनन्तर दूसरी तिथि का प्रवेश होता है, किन्तु, वह प्रविष्ट हुई तिथि अपने पूर्व तिथि के नाम से उस दिन रात तक व्यवहृत की जाती है ।१६-१८। जिस प्रकार सूर्य विद्यमान रहते है, उसी भाँति कोई भी तिथि दश घटिका (घड़ी, या दंड) तक विद्यमान रहे तो उस रात वही तिथि गृहीत होती है, दूसरी नहीं ।१९। शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की खर्वा एवं दर्पा नाम की कोई तिथि, जिसके समय में सूर्य अस्त हों, पितृकार्य में ग्रहण की जाती है ।२०। दोनों-दिनों में कुतप (श्राद्ध काल) के प्राप्त होने पर सूर्यास्त की ही तिथि ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि श्राद्धकाल आदि जिस तिथि में प्राप्त हो, उसी में श्राद्ध विधान बताया गया है, और व्रत के लिए वृद्धि तिथि, जिसमें सूर्योदय होता है, ग्रहण करना चाहिए ।२१। पार्वणश्राद्ध तथा पितरों के पूजन में अमावस्या तिथि गृहीत होती है, एवं अमावस्या तिथि में प्राणोत्सर्ग करने वाले ही प्राणी के लिए पार्वण श्राद्ध जहाँ कहीं किया जा सकता है ।२२, सूर्यास्त के समय वर्तमान रहने वाली ही तिथि पितरों के मंदिर के रूप में होती हैं, उसी में एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध करना चाहिए, उदया (तिथि) में कभी नहीं । शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में पूर्व-पर के दिनों में जब कभी वह योग प्राप्त हो, जिसमें तीनों संध्याओं में वही (एक) तिथि वर्तमान रहे, चाहे वह पहले दिन में हो या दूसरे दिन वहीं दोनों पक्षों में अपने कृत्यों (कार्यों) में पूजनीय मानी गयी है ।२३-२४। विपरीत तिथियों के त्याग पूर्वक एकादशी आदि एवं अग्नि

बाणेन विद्धा या षष्ठी मुनिविद्धा तथाष्टमी । दशम्येकादशीविद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी ।।२६
अमावास्या भूतविद्धा नोपोष्या मुनिनापि च । हन्ति पुत्रकलत्राणि धनानि समुपोषिता ।।२७
विद्धा ये नाभिनिन्द्याः स्युर्युक्तास्तेनाभिनन्दिताः । व्यस्तस्य सम्भवे युग्मं विद्धा भवति सर्वशः ।।२८
तामस्तां तु तिथिं प्राप्य युग्मान्यपूज्यतामियुः । युग्मानि च दिवायोगे ग्राह्याणि व्यस्तनिन्दनम् ।।२९
नक्तादिव्रतयोगे तु दिवासंवर्द्धमर्करान् । रात्रियोगश्चतुर्थ्योस्तु विशिष्य परिगृह्यते ।।३०
रात्रियोगं विनापि स्यादेकादश्यादिकं व्रतम् । नक्तं जागरणं चैव विनियोगेऽपि शस्यते ।।३१
एकादश्युपवासं तु द्वादशीयोगतश्चरेत् । दिवायोगे तु सम्पूर्णां त्यजेदुभयपूर्वतः ।।३२
रात्रियोगे तु सम्पूर्णा सोपास्यैकादशी सदा । सप्तमी शुक्लपक्षेऽपि पूज्या षष्ठ्या समन्विता ।।३३
निशि तु स्याद्यदा षष्ठी सप्तमी नवमी दिवा । उपोष्य केवलां षष्ठीं तोषयेद्भास्करं नरः ।।३४
एवं त्रयोदशीं कृष्णां विधिप्राप्तां विना द्विजाः । उपोष्य पार्वतीनाथं तोषयेद्यश्च केवलम् ।।३५
दिवा त्रयोदशीयुक्ता कृष्णोपोष्या चतुर्दशी । परेणापि चतुर्दश्या न तु कुर्यादमातिथौ ।।३६
त्रिसन्ध्यव्यापिनीं प्राप्य यदि कुर्यादुपोषणम् । पारणं तु सिनीवाल्यां चतुर्दश्यामुपोषयेत् ।।३७
चतुर्दशीमतिक्रम्य सिनीवाल्यां तु पारणात् । व्रतानि तस्य नश्यन्ति प्राक्कृतानि चतुर्दशीम् ।।३८

युक्त द्वितीया, चतुर्थी, और पंचमी इन्हीं पूजनीय तथा पुण्यस्वरूप तिथियों के उपवास धर्म-वेत्ताओं को करना चाहिए। इनके अनियमित व्यवहार से पूर्व संचित भी पुण्य नष्ट हो जाते है।२५-२६। बाण विद्धा (युता) षष्ठी, मुनि विद्धा अष्टमी, दशमी विद्धा एकादशी, त्रयोदशी विद्धा चतुर्दशी, भूतविद्धा अमावस्या, तिथियों के उपवास मुनियों को भी न करना चाहिए। अन्यथा पुत्र, स्त्री, एवं धन का महान् विनाश उपस्थित होता है।२७-२८। जो विद्ध तिथियाँ निन्दित नहीं हैं, उससे युक्त तिथियाँ प्रशस्त होती है, और विपरीत संभव होने पर युग्म ही तिथि विद्धा हो जाती हैं।२९। अस्त समय में उन तिथियों के वर्तमान रहने पर युग्म तिथियाँ अपूज्य हो जाती हैं, दिन के योग में ही उनका ग्रहण करना बताया गया है और विपरीत तिथियों की निन्दा भी की जाती है।३०। नक्तादि व्रत के योग में दिवस सम्बन्धी तिथियों का ग्रहण किया जाता है तथा रात्रि योग में विशेष कर चतुर्थी का ग्रहण होता है।३१। एकादशी आदि व्रत रात्रि योग के संभव न होने पर भी किया जाता है क्योंकि रात्रि का जागरण विनियोग के लिए भी प्रशस्त होता है।३२। द्वादशी के योग होने पर ही एकादशी का उपवास करना चाहिए, किन्तु दिन में ही यदि द्वादशी संभव हो तो पूर्व दिन की एकादशी त्याज्य बतायी गयी है।३३। उसी भाँति रात्रि में द्वादशी संभव होने पर सदैव सम्पूर्ण एकादशी का ही व्रत करना चाहिए। शुक्ल-पक्ष की सप्तमी षष्ठी युक्त होने पर ही पूजित होती है।३४। रात्रि में षष्ठी संभव हो और सप्तमी नवमी केवल दिन में, उस समय मनुष्य को केवल षष्ठी के उपवास द्वारा भास्कर को प्रसन्न करने की चेष्टा करनी चाहिए।३५। इसी भाँति द्विजगण! कृष्ण-पक्ष की विधि प्राप्त हीन त्रयोदशी के संभव होने पर केवल उसी के उपवास द्वारा भूतनाथ महादेव को प्रसन्न करना बताया गया है। दिन में त्रयोदशी के युक्त होने पर कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी का उपवास करना चाहिए, किन्तु, दूसरे दिन चतुर्दशी युक्त अमावस्या के उपवास का निषेध किया गया है।३६-३७। तीनों संध्याओं में व्याप्त रहने वाली चतुर्दशी की प्राप्ति होने पर उपवास करके पारण अमावस्या में करना

सप्तमी ललिता भाद्रे शक्रोत्थानं च वारुणी । पूज्याश्चैताः पराः कुर्यात्त्रिसन्ध्यव्यापिनीष्वपि ॥३९
त्रिसन्ध्याव्यापिनी पूर्वे परतो वर्द्धते यदि । सऋक्षा ऋक्षयोगे तु ऋक्षाभावे परा युता ॥४०
ऋक्षाभावे परा ग्राह्या त्रिसन्ध्यव्यापिनीष्वपि । श्रावणे चाद्यपादे तु प्रशस्ता शक्रपूजने ॥४१
अभावे चोत्तराषाढा धनिष्ठा च विशिष्यते । दण्डार्धं दण्डमेकं वा तदर्धं पलमेव वा ॥४२
उदये संयुता ग्राह्या सा तिथिश्चोत्तमा भवेत् । त्रिसन्ध्यव्यापिनीं हित्वा पूज्या शुक्लाष्टमी परा ॥४३
रविचक्रवता ग्राह्या रथे तिथ्यादेरपि च । त्रिसन्ध्यव्यापिनी या तु पलमेकं परे दिने ॥४४
अपरेऽपि च सर्वत्र हलानां वाहनं त्यजेत् । शुक्लैकादश्यमावास्यासङ्क्रान्त्यां श्राद्धवासरे ॥४५
नराश्वगोगजादीनां वाहनात्पातकी भवेत् ॥४६
कर्तुर्गोमहिषादीनां गर्दभोष्ट्रखरस्य च । न वाहयेद्दासदासीं वाहनेनास्ति दूषणम् ॥४७
बहुकालिकयज्ञे च यज्ञश्राद्धे तथैव च । ग्रामान्तरे न दोषः स्याद्दिव नद्यन्तरेऽपि च ॥४८
नित्यश्राद्धेऽप्यम्बुघटे यच्छ्राद्धं मासिकं भवेत् । तत्र गोमहिषादीनां वाहने नास्ति दूषणम् ॥४९
कुर्यादम्बुघटश्राद्धं न कालनियमं क्वचित् । न चान्ननियमं कुर्यादश्मपात्रं च वर्जयेत् ॥५०

चाहिए, चतुर्दशी में केवल उपवासहीन चतुर्दशी का अतिक्रमण कर सिनी वाली अमावस्या में (जिस अमावस्या में चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं) पारण करने से पूर्व चतुर्दशी में किये गये व्रत नष्ट हो जाते हैं ।३८। भाद्रपद शुक्ल की ललिता सप्तमी, शक्रोत्थान वारुणी तिथियाँ तीनो संध्याओं में वर्तमान रहने पर भी परा (दूसरे दिन) भी पूजनीय होती है ।३९। पूर्वदिन तीनों संध्याओं में व्याप्त रहने एवं नक्षत्र योग के प्राप्त होने पर दूसरे दिन यदि उसकी वृद्धि संभव हो तो पूर्व दिन की तिथि का ही ग्रहण होता है, और श्रवणनक्षत्र के प्रथमचरण में उसकी प्राप्ति होने से वही शुक्र (इन्द्र) पूजन में भी प्रशस्त बतायी गयी है ।४०-४१। उसके अभाव में उत्तराषाढ़ा में और विशेषकर धनिष्ठा का ग्रहण किया जाता है। सूर्योदय में एक दण्ड उसका अर्धभाग एक पल अथवा उसका अर्धभाग भी जिस तिथि का प्राप्त हो, वही उदया तिथि (कर्मों के लिए) उत्तम मानी गयी है । शुक्ल-पक्ष की त्रिसंध्य व्यापिनी तिथि का त्याग करके दूसरे दिन की अष्टमी भी ग्रहण करनी चाहिए ।४२-४३। रथयात्रा आदि में तिथ्यादिकों के विषय में सूर्य चक्र (सूर्योदय) प्राप्त तिथि का, जो तीनों संध्याओं में व्याप्त रहती हुई दूसरे दिन भी (कम से कम) एक पल अवश्य वर्तमान रहे, ग्रहण करना बताया गया है ।४४। दूसरे दिन भी सर्वत्र हल चलाना स्थगित रखना चाहिए । उसी प्रकार शुक्ल एकादशी, अमावस्या, संक्रान्ति के दिन, और श्राद्ध के दिनों में मनुष्य को वाहन पालकी आदि यान (सवारी) पर अश्व, बैलगाड़ी, और हाथी आदि की सवारी करने से पातक भागी होना पड़ता है ।४५-४६। बैल, भैंस आदि एवं गधे, उँट, तथा खच्चर की सवारी पर गृहस्वामी को (उन दिनों) चलना चाहिए और दास दासी को (उससे) चलने फिरने में कोई दोष नहीं होता है ।४७। अधिक समय के अनुष्ठान यज्ञ तथा यज्ञ श्राद्ध में दूसरे गाँवों में दिन के समय जाने में कोई दोष नहीं होता है, उसी भाँति नदी तट की भूमि तक जाने में भी ।४८। नित्य श्राद्ध, (श्राद्ध के निमित्त) घड़े में जल लेने के लिए, एवं मासिक श्राद्ध के अवसर पर बैल, भैंस की गाड़ी द्वारा आने-जाने में दोष नहीं होता है।४९। कुम्भ श्राद्ध करने में समय का नियम नहीं है, किन्तु पत्थर पात्र का त्याग आवश्यक है।५०।

तैजसैर्निर्मितं कुम्भमथवा वृक्षपत्रजन् । न योजयेन्मृण्मयं च शूद्राणां मृण्मये विधिः ।।५१
निवेदयेच्च मासान्ते मृण्मयं वृक्षमूलके । आस्फालयेत्परेणैव न वस्त्रं तु कथञ्चन ।।
पर्वश्राद्धे दैवलकं तथा रण्डाश्रमं त्यजेत् ।।५२
मातृपितृपरित्यागी तैलहव्यादिविक्रयी । चत्वारिंशदुत्सवानां साष्टानां च चरेद्यदि ।।५३
स्त्रिया विमुच्यते कश्चित्स तु रण्डाश्रमी मतः । अष्टचत्वारिंशदब्दं वयो यावन्न पूर्य्यते ।।५४
पुत्रभार्यावियुक्तस्य नास्ति यज्ञाधिकारिता ।।५५
यां तिथिं समनुप्राप्य समुदेति दिवाकरः । स्नानाध्ययनदानेषु सा तिथिः सकला स्मृता ।।५६
ययास्तं सविता याति कृष्णपक्षे तु सा तिथिः । पितॄणां सकला ज्ञेया स्नानदानादिकर्मसु ।।५७
सप्तमी शुक्लपक्षे या यावदिच्छेच्च खण्डिता । आद्यभागे रवेः षष्ठ्यां परादौ याष्टमीयुता ।।
यद्यखण्डा भवेत्सैव तदा ज्ञेया भवात्मिका ।।५८
माघमासेन साप्येवं पूर्वेण रवितोषिणी । मन्वन्तरा परेणैव स्नानपानादिकर्मसु ।।५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
तिथिविधानवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

कुम्भ श्राद्ध में सुवर्ण अथवा वे वृक्ष पात्र के घर होने चाहिए मिट्टी के नहीं, क्योंकि मिट्टी के घड़े शूद्रों के विधान में बताये गये है ।५१। मास के अन्त में केवल उस मिट्टी के घड़े को किसी वृक्ष के मूल भाग में रखकर किसी दूसरे पुरुष द्वारा हटवा दे, वस्त्रों को नहीं । पार्वण-श्राद्ध में दैवलक (मन्दिर के पुजारी) और वेश्याओं के आश्रम का त्याग करना चाहिए ।५२। माता-पिता का परित्याग करने वाला, तेल, हव्य आदि का विक्रेता, तथा अड़तालिस उत्सवों का कर्ता और स्त्री द्वारा परित्यक्त पुरुष वेश्याओं के यहां रहता हो और अड़तालीस वर्ष की आयु की समाप्ति तक उसका वहाँ रहना यद्यपि अभीष्ट भी हो, एवं स्त्री पुत्र के वियोगी इन उपरोक्त व्यक्तियों को यज्ञाधिकार नहीं प्राप्त है । जिस तिथि-काल में भगवान् भास्कर उदय होते हैं, स्नान, अध्ययन, तथा दान के लिए वही उदया तिथि ग्रहण की जाती है ! कृष्ण पक्ष की (श्राद्ध मूलक) जिन तिथियों में भास्कर अस्ताचल पहुँच जाते हों, पितरों के निमित्त स्नान-दान आदि कर्मों में उसी का ग्रहण करना बताया गया है ।५३-५७। शुक्ल-पक्ष की सप्तमी अधिक खण्डित क्यों न हो, षष्ठी युक्त उसके प्रथम भाग में तथा दूसरे दिन अष्टमी संयुक्त होने पर उसके पूर्व भाग में सूर्य की अर्चा आदि करनी चाहिए यदि वह (सप्तमी) खण्डित न हो तो उसे अत्यन्त प्रशस्त और भवात्मिका जाननी चाहिए । माघ में भी इसी प्रकार की सप्तमी सूर्य को सन्तुष्ट करने वाली बतायी गयी है, और मन्वन्तरों के स्नान पान आदि कर्मों के लिए दूसरे दिन वाली प्रशस्त कही गयी है ।५८-५९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में तिथिविधान वर्णन नामक
सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अथाष्टमोऽध्यायः

उत्तमतिथिनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता । प्रतिपादिता परे पूर्वे प्रतिपाद्य नवोद्यते ॥१
कार्तिकाश्वयुजोश्चैत्रे माघे चापि विशेषतः । स्नानं दानं दशगुणं शिवविष्णोश्च पूजनम् ॥२
अग्निमिष्ट्वा च कृत्वा च प्रतिपद्यामिति स्मृतम् । हविषा सर्वधान्यानि प्राप्नुयादीप्सितं धनम् ॥३
बृहस्पतौ द्वितीयायां शुक्लायां विधिपूजनम् । कृत्वा नक्तं समश्नीयाल्लभते भूतिमीप्सिताम् ॥४
मिथुने कर्कटे चैव गोविप्रदमनान्तरम् । द्वितीया यातु विप्रेन्द्रास्तामुपोष्य हरिं यजेत् ॥
यामुपोष्य न वैधव्यं प्रयाति स्त्री न संशयः ॥५
अमूल्यशयनं मासं दम्पती प्रतिपूजयेत् । वासोभिर्गन्धपुष्पैश्च नानाभक्ष्यैः पृथग्विधैः ॥६
वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च । गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥७
स्वातियुक्ततृतीयायां वैशाखे तु विशेषतः । माघे तु रोहिणीयुक्ता वृषे चाश्वयुजे तथा ॥८
तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तदक्षयमुदाहृतम् । विशेषतो हविष्यान्नं मोदकादिसमायुतम् ॥९
तोयदानं विशेषेण प्रशंसन्तिमनीषिणः । गुडकर्पूरसंयुक्तं ब्रह्मलोके महीयते ॥१०

अध्याय ८

उत्तम तिथियों के निर्णय का वर्णन

सूत बोले—ब्रह्मा ने जिस कारण तिथियों को उत्तम बताया है, और उनके पूर्व पर के निर्णय को भी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कार्तिक, आश्विन, चैत्र, विशेषकर माघ-मास में स्नान-दान शिव और विष्णु के पूजन करने से दशगुने (अधिक) पुण्य की प्राप्ति होती है ।१-२। प्रतिपदा में अग्नि होत्र, हव्य द्वारा हवन आदि जिसका करना इसमें प्रशस्त बताया गया है, सभी प्रकार के धान्य और मनोनीत धन की प्राप्ति होती है ।३। शुक्ल-पक्ष में बृहस्पति के दिन प्राप्त द्वितीया तिथि में ब्रह्म-पूजन और नक्त व्रत करने से मनोवांछित ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।४। विप्रेन्द्र ! मिथुन और कर्क राशि में सूर्य की स्थिति के समय और गो ब्राह्मण के दमन के उपरांत जो द्वितीया तिथि प्राप्त होती है, उसमें उपवास रहकर विष्णु का पूजन करना चाहिए । और उसी में उपवास रहने पर स्त्री कभी विधवा नहीं होती है, इसमें संदेह नहीं ।५। भगवान् विष्णु का यह शयन मास चौमासा (चर्तुमास) अत्यन्त अमूल्य है, दम्पती (स्त्री पुरुष को एक साथ) चाहिए कि वस्त्र, गन्ध, पुष्प और भाँति-भाँति के अनेक भक्ष्य पदार्थ द्वारा उसकी पूजा करें ।६। उसी वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन गंगाजल में स्नान करने से मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ।७। विशेषकर स्वाती नक्षत्र युक्त होने पर उस तृतीया का अत्यन्त महत्व है । उसी प्रकार माघ, वृष (ज्येष्ठ) और आश्विन मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त तृतीया का भी महत्त्व बताया गया है, उसमें जो कुछ दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं, विशेषकर खीर और मगद (लड्डू) समेत देना चाहिए ।८-९। मनीषियों ने उसमें तपोदान की अधिक प्रशंसा की है, उसमें गुड़ और कपूर समेत प्रदान करने से वह ब्रह्म लोक में सम्मानित

बुधश्रवणसंयुक्ता तृतीया यदि लभ्यते । तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षयं परिकीर्तितम् ॥११
चतुर्थीभरणीयोगे भवेच्चरदिनं यदा । तदाभ्यर्च्य यमं देवं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥१२
शिवा शान्ता सुखा चैव चतुर्थी त्रिविधास्मृता । सापि भाद्रपदे शुक्ला शिवलोके सुपूजिता ॥१३
कार्त्तिके तु भवेच्छाया तथा माघे तु कीर्त्यते । तस्यां स्नानं तपो दानमुपवासो जपस्तथा ॥
भवेत्सहस्रगुणितं श्राद्धं भवति चाक्षयम् ॥१४
गणेशे कारयेत्पूजां मोदकादिभिरादरात् । चतुर्थ्यां विघ्ननाशाय सर्वकामप्रसिद्धये ॥१५
श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे विशेषतः । पूजयेद्दधिदुग्धाद्यैः सिन्दूरैरपि भक्तितः ॥१६
तेषां कुले प्रयच्छन्ति अभयं प्राणरक्षणम् ॥१७
द्वादश्योभयलेखे च गोमयेन विशेषतः । पूजयेद्दधिदुग्धाद्यैः सिन्दूरैरपि भक्तितः ॥१८
सुप्ते जनार्दने कृष्णपञ्चम्यां भवनाङ्गणे । पूजयेन्मनसा देवीं दामां स्नुहीति संश्रयाम् ॥१९
पिचुमन्दस्य पत्राणि स्थापयेद्भवनोदरे । पूजयित्वा नरो देवीं न सर्पभयमाप्नुयात् ॥२०
ये यं भाद्रपदे षष्ठी षष्ठी च द्विजसत्तम । स्नानदानादिकं तस्यां सर्वमक्षयमुच्यते ॥२१
षष्ट्यां फलाशनो विप्रा विशेषान् माघकार्तिके । इह चामुत्र मुख्यां च लभते ख्यातिमुत्तमाम् ॥२२
शुक्ले पक्षे च सप्तम्यां यदा सङ्क्रमते रविः । महाजया तदा स्याद्वै सप्तमी भास्करप्रिया ॥२३

होता है।१०। बुधवार के दिन श्रवण नक्षत्र युक्त तृतीया तिथि के प्राप्त होने पर उसमें स्नान और उपवास आदि करने से वह अक्षय होता है।११। भरणी नक्षत्र युक्त चतुर्थी शनिवार के दिन प्राप्त होने से उसमें यमदेव की पूजा करने वाला समस्त पातकों से मुक्त होता है।१२। शिवा, शांता और सुखा नामक भेद से चतुर्थी तीन प्रकार की बतायी गयी है, वह भी भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी होने से शिवलोक में सविधि पूजी जाती है।१३। कार्तिक तथा माघ मास की छाया नामक चतुर्थी के दिन स्नान, तप, दान, उपवास, एवं जप करने से सहस्र गुने (अधिक) फल की प्राप्ति होती है। तथा उसमें किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करता है।१४। अपनी सभी कामनाओं की निर्विघ्न पूर्ति के लिए (माया) चतुर्थी के दिन मोदक (लड्डू) आदि द्वारा गणेश देव की आराधना सादर सम्पन्न करनी चाहिए।१५। श्रावण मास में विशेषकर शुक्लपक्ष की चतुर्थी के दिन नवसंख्या के नागों का गंधमिश्रित जल से और सुगन्धित पदार्थों के संमिश्रण पूर्वक स्नान कराने से वे (नागगण) उस (व्यक्ति) के कुल में अभय दान एवं प्राण रक्षा प्रदान करते हैं।१६-१७। द्वादशी के दिन दोनों देवों की विशेषकर गोमय (गोबर) की प्रतिमा बनाकर दधि, दूध, आदि पदार्थों और भक्तिपूर्वक सिन्दूर से पूजा करनी चाहिए।१८। जनार्दन भगवान् के शयन काल में कृष्णपक्ष की पञ्चमी के दिन अपने गृहांगण में सौन्दर्यपूर्ण देवी का मनोनुकूल पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए।१९। अपने भवन के आंगन प्रदेश में नीम की पत्ती के आसन पर देवी की पूजा करने से सर्पों का भय नहीं रहता है।२०। द्विजसत्तम ! भाद्रपद (भादों) मास की षष्ठी के दिन केवल फलाहार करने से लोक एवं परलोक की उत्तम ख्याति प्राप्ति होती है।२२। शुक्लपक्ष के सप्तमी के दिन सूर्य की संक्रान्ति प्राप्त होने से उसकी 'महाजया' संज्ञा होती है, तथा भास्कर के लिए वही

अपराजिता तु भाद्रस्य महापातकनाशिनी । ललिता केवला ज्ञेया पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ।।२४
शुक्ला वा यदि वा कृष्णा षष्ठी वा सप्तमी तु वा । रविवारेण संयुक्ता तिथिः पुण्यतमा स्मृता ।।२५
आश्विनस्य सिताष्टम्यामष्टादशभुजां यजेत् । कार्त्तिके शुक्लपक्षे वा महाविभवविस्तरैः ।।२६
आषाढ़े श्रावणे मासि शुक्लाष्टम्यां च चंडिकाम् । प्रातः स्नात्वार्चयेद्भक्त्या रात्रौ संस्नापयेद्द्विजाः ।।२७
चैत्रमासि सिताष्टम्यामशोककुसुमैर्द्विजाः । अर्चयेन्मृण्मयीं देवीमशोकार्थं च सर्वदा ।।२८
सत्यष्टम्यमुहूर्ते वा रोहिणीसहिताष्टमी । श्रावणे मासि सिंहार्के क्वचित्सापि च शस्यते ।।२९
एकादशीनां कोटीनां व्रतैश्च लभते फलम् । अतो दशगुणं प्रोक्तं कृत्वैतत्फलमाप्नुयात् ।।३०
अशक्तोऽन्यक्रियां कर्तुमुपवासं तु केवलम् । कृत्वा विमुच्यते पापात्सप्तकृत्यकृतां वरः ।।३१
न कालनियमस्तत्र न वारनियमः क्वचित् । नापि नक्षत्रदोषोऽस्ति वारदोषो न गण्यते ।।३२
त्रिकालं पूजयेद्देवं दिवा रात्रौ विशेषतः । अर्धरात्रे विशेषेण पुष्पैर्नानाविधैरपि ।।३३
दिवातिथेरलाभे तु न कुर्याद्विधिवद्व्रतम् । रात्रिस्पर्शे यदि परं रजन्यामपि चाष्टमी ।।३४
सप्तमी सार्धयामं च रोहिणी वा न संस्पृशेत् । व्रती सङ्कल्पयेत्तत्र न च रात्रौ कदाचन ।।३५

अत्यन्त प्रिय भी है ।२३। भाद्रपद मास की अपराजिता नामक तिथि महान् पातकों का नाश करती है, और ललिता नामक तिथि केवल पुत्र पौत्र की वृद्धि ।२४। कृष्णपक्ष अथवा शुक्लपक्ष की षष्ठी या सप्तमी तिथि के दिन रविवार प्राप्त हो, तो वह अत्यन्त पुण्यस्वरूप कहलाती है ।२५। आश्विन मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी में महान् ऐश्वर्य के विस्तृत संभार से भगवती अष्टभुजा देवी की उपासना करनी चाहिए, उसी प्रकार कार्तिक मास के शुक्ल सप्तमी में भी ।२६। द्विजगण ! आषाढ और श्रावण मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन भगवती चन्द्रिका देवी की स्नान पूजा प्रातः काल स्नान करके भक्ति पूर्वक करनी चाहिए ।२७। द्विजवृन्द ! चैत्रमास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन देवी की मिट्टी की मूर्ति की आराधना अशोक पुष्पों द्वारा सदैव चिन्ताहीन होने के लिए करनी चाहिए । श्रावण मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी का आठवाँ मूहूर्त, जब कि सूर्य सिंह राशि पर स्थित हो, तथा अष्टमी भी प्रायः प्रशस्त बतायी गयी है ।२८-२९। कोटि एकादशी व्रतविधानों द्वारा जितने फल प्राप्त होते है, उससे दश गुने अधिक पुण्य फल इसके सविधान समाप्ति द्वारा प्राप्त होते हैं ।३०। अन्य क्रियाओं के करने पर अशक्त होने पर भी केवल उपवास द्वारा ही उसे समस्त पापों से मुक्ति और सात कृत्यों के करने वालों में श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है ।३१। उस पूजन में समय का कोई नियम नहीं है, दिन का भी नियम कहीं बताया नहीं गया है, और नक्षत्र-दोष एवं वार-दोष भी उसमें अकिञ्चित् कर (नगण्य की भाँति) हैं ।३२। तीनों कालों में देव पूजा में विशेषकर दिन, रात और निशीथ (अर्धरात्र) का समय प्रशस्त बताया गया है, उसी में भाँति-भाँति के पुष्पों द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए ।३३। दिन में उस तिथि के अलाभ में विधान पूर्वक व्रत का पालन न करना चाहिए, सायंकाल से आरम्भ होकर रात्रि के पिछले भाग में भी अष्टमी वर्तमान रहे और उसके डेढ़ पहर में रोहिणी नक्षत्र का स्पर्श भी न हो, तो उसी सप्तमी के दिन में ही उस व्रती को संकल्प आदि करना चाहिए, उसकी रात में कभी नहीं ।३४-३५। उसकी कुछ मात्रा की

प्रागारम्भं प्रकुर्वीत अधिमात्राधिके व्रती । विश्वनाथादिदेवानां दर्शनं प्राग्विवर्जयेत् ।।३६
यत्र तत्रोपवासी स्याद्यामाष्टकव्रतं चरेत् । यामार्धं तत्परं यामे पारणं विचरेद्व्रती ।।३७
तत्परे चाऽन्नजन्यं वा न कुर्यात्पारणं गृही ।।३८
नक्षत्रयोगे ग्रहणे पूजयेत्परमेश्वरम् । जपहोमादिकं कुर्याद्गृही नोपवसेत्क्वचित् ।।३९
दिवाष्टम्यां मुहूर्ते वा प्राजापत्येन संयुतम् । तथापि च दिवाकृत्यं समाप्य च व्रतं चरेत् ।।४०
मुहूर्तांते च मासान्ते अष्टम्यामपि रोहिणी । उपवासे च यो दोषः पूजाहोमः प्रशस्यते ।।४१
नवम्यां च सदा पूज्याः प्रतिमासेऽयुतं द्विजाः । गृह्णीयान्नियमं चैव यथा कर्म फलप्रदम् ।।४२
कार्तिकस्य तु मासस्य दशमी शुक्लपक्षिका । तस्यां युक्ताशना विप्रा ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ।।४३
दशमी ज्येष्ठमासस्य सा देदशहरा स्मृता । आश्विनस्य महापुण्या कार्तिके विजया स्मृता ।।४४
एकादशी व्रतपरा सर्वपापप्रणाशिनी । सर्वपापविनिर्मुक्ता यथा कुर्वन्ति मानवाः ।।४५
दशम्यामेकभक्तस्तु संयतः स्याज्जितेन्द्रियः । एकादश्यामुपोष्याथ द्वादश्यां पारणं चरेत् ।।४६
द्वादशी द्वादशोर्हन्ति तस्मात्तथाचरेद्बुधः । पूर्वेद्युरेकादशी पूर्णा परेऽहनि च वर्धते ।।४७
न वर्धते द्वादशी तु तदा त्वेवं व्यवस्थितिः । वनवासी परां कुर्यात्पूर्वां कुर्याद्गृहाश्रमी ।।४८

अधिकता में व्रती को पहले ही आरम्भ कर देना चाहिए, किन्तु उसमें विश्वनाथ आदि देवों के दर्शन का निषेध किया गया है ।३६। उपवास तो जिस किसी समय किया जा सकता है पर, आठ प्रहर के समय में ही व्रतविधान करना बताया गया है, और उसके आधे प्रहर के व्यतीत होने पर उसके दूसरे प्रहर में उसे पारण करना कहा गया है ।३७। गृहस्थों को उसमें अन्नपारण करना निषेध किया गया है । नक्षत्र के योग के समय ग्रहण उपस्थित होने पर परमेश्वर की पूजा, तथा जप हवनादि कार्य करना चाहिए, किन्तु, गृहस्थों को उस समयउपवास करना नहीं कहा गया है ।३८-३९। दिवस के आठवें मुहूर्त में प्राजापत्य के संयुक्त होने पर भी दिन के कृत्य समाप्त करके ही व्रत-विधान करना चाहिए ।४०। मास के अन्त और मुहूर्त के अन्त में रोहिणी युक्त अष्टमी के प्राप्त होने पर उसमें उपवास से जो दोष उत्पन्न होता है, वह उस समय के पूजन, एवं हवन द्वारा शांत हो जाता है । द्विजवृन्द ! प्रत्येक मास की नवमी के दिन सदैव दश सहस्र संख्या के जप पूर्वक पूजा करनी चाहिए, उसमें नियम पालन परमावश्यक होता है, क्योंकि वे भी कर्मों की भाँति फल प्रदायक होते हैं ।४१-४२। विप्रगण ! कार्तिक मास के शुक्ल-पक्ष की दशमी में उससे युक्त होकर भोजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।४३। ज्येष्ठ मास की दशमी को दशहरा, आश्विन मास की दशमी महापुण्या, और कार्तिक मास में उसका विजया नाम बताया गया है ।४४। समस्त पापों के नाश करने वाली एकादशी होती है, उसके व्रत विधान द्वारा मनुष्य सभी पापों से किस प्रकार मुक्त होते हैं मैं बता रहा हूँ ! संयत रहकर इन्द्रिय संयम पूर्वक दशमी के दिन एक बार भोजन करके एकादशी के दिन व्रत पालन सुसम्पन्न करने के उपरांत द्वादशी में पारण करना चाहिए । क्योंकि द्वादशी बारह दोषों का नाश करती है, अतः बुद्धिमान् को वैसा करना आवश्यक होता है एकादशी पहले दिन पूर्ण रूप में रहती हुई भी दूसरे दिन (पला आदि के रूप में) कुछ बढ़ जाती है, उस समय यदि द्वादशी की वृद्धि न संभव दिखाई दे, तभी के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी है । और बनवासी (विरक्तों) को परा (दूसरे दिन वाली) तथा गृहस्थों को पहले दिन वाली एकादशी के व्रत-पालन करना बताया गया है ।४५-४८।

पूर्वैवैकादशी त्याज्या वर्धते चेत्तिथिद्वयम् । एकादशी द्वादशी तु तदोपोष्या परा तिथिः ॥४९
यदा तु पारणायोग्या द्वादशी नोपतिष्ठते । तदा पूर्वैव सङ्ग्राह्या त्याज्या वृद्धा परेऽहनि ॥५०
एकादशी कलायुक्ता सकला द्वादशी यदि । तत्र क्रतुसमं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥५१
एकादशी द्वादशी च परेऽहनि न लभ्यते । नोपोष्या सा महादोषा पुत्रपौत्रधनक्षयात् ॥५२
एकादशी दशाविद्धा द्वादश्यां लिप्तिका यदा । द्वादशी पारणायोग्या वर्धते चापरेऽहनि ॥
तदा दिनद्वये त्याज्या पारणं च नियोगतः ॥५३
षोडशीग्रहणं दृष्ट्वा द्वादशी लुप्तपारणा । चण्डातिथौ व्रतं चैव हन्ति पुण्यं पुरा कृतम् ॥५४
त्रयोदश्यां यद्विहितं पारणं न तु पुण्यदम् । गृहाश्रमी न कुर्याद्वा दशमीद्वादशीक्षयात् ॥५५
यदि रुद्रा दशमिश्रा परेऽह्निरविसङ्क्रमः । तथापि सम्परित्यज्य द्वादश्यां समुपावसेत् ॥५६
वज्रालोकनमात्रं तु दशमी संविशेद्यदि । एकादशी न भोक्तव्या परा ह्येकादशी तदा ॥५७
तदा चेद्दशमीविद्धा समुपोष्या न दूषणम् ॥५८
द्वादश्यामुपवासं तु यः करोति नरोत्तमः । स याति परमं स्थानं यत्र विष्णुरनामयः ॥५९
उपोष्य दशमीमिश्रां मोहादेकादशीं नरः । निरयं याति स प्रेत्य धर्मसन्ततिसंक्षयात् ॥६०

यदि दोनों (एकादशी और द्वादशी) तिथि की वृद्धि संभव है, तो पूर्व की एकादशी के त्यागपूर्वक दूसरे दिन द्वादशी में एकादशी का व्रतपालन करना चाहिए।४९। पारण करने के लिए द्वादशी संभव न हो सके, तो उस समय पूर्व दिन की एकादशी में ही व्रत-पालन करना चाहिए, दूसरे दिन की वृद्धियुक्त में नहीं।५०। जिस दिन एकादशी एक कला मात्र रहे और सम्पूर्ण समय द्वादशी उपस्थित हो, तो वह द्वादशी व्रत यज्ञ की भाँति फलदायक होती है , उसमें त्रयोदशी में पारण करना चाहिए।५१। एकादशी तथा द्वादशी इन दोनों तिथियों की कुछ भी वृद्धि दूसरे दिन संभव न हो, तो उसमें व्रत न रहे, क्योंकि वह महान् दोष पूर्ण एवं पुत्र पौत्र तथा धन के नाश करने वाली होती है।५२। एकादशी, दशमी विद्धा (युक्त) होकर भी द्वादशी में अन्तर्हित हो गयी हो, और पारण के योग्य होती हुई भी द्वादशी की वृद्धि दूसरे दिन संभव हो तो उन दोनों दिनों के त्याग करके नियोग द्वारा पारण कर लेना चाहिए।५३। सोलह कलापूर्ण ग्रहण दर्शन, पारण लुप्त होने वाली द्वादशी, और चण्डा तिथि में व्रत पालन के पूर्व किये हुए पुण्यों का नाश करते हैं।५४। त्रयोदशी में किया गया पारण, पुण्यदायक नहीं होता है, गृहस्थों को दशमी और द्वादशी के क्षय होने पर भी उसमें पारण न करना चाहिए।५५। दशमी विद्धा (युक्त) एकादशी के दिन यदि सूर्य की संक्रान्ति भी उसी दिन हो तो भी उसका त्याग करके द्वादशी में ही उपवास रहना चाहिए।५६। दशमी का उतना भी समय, जितने समय में विद्युत् दर्शन होता है, यदि एकादशी में सम्मिलित हो जाये, तो उस दिन की एकादशी के त्याग पूर्वक दूसरे दिन की (द्वादशी) की एकादशी में व्रत पालन करना चाहिए।५७। किन्तु, दशमी विद्धा एकादशी का भी यदि उसी दिन (अर्थात् दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व ही) समाप्ति होती हो, तो उस समय दशमी विद्धा ही एकादशी के व्रतपालन में कोई दोष नहीं बताया गया है।५८। द्वादशी में उपवास करने वाले व्यक्ति की उत्तम श्रेणी में गणना होती है, उन्हें विष्णु के शाश्वत (नित्य) स्थान की भी प्राप्ति होती है।५९। मोहवश मनुष्य यदि दशमी युक्त एकादशी में व्रत पालन करता है तो उसे मरणानन्तर नरक की प्राप्ति और उससे धर्म परम्परा नष्ट हो जाती

रविवारे शुक्रवारे सङ्क्रान्त्यां तु दिनक्षये । उपवासं प्रकुर्वीत पारणं तु विवर्जयेत् ।।६१
शुक्लां वा यदि वा कृष्णां पूर्वसङ्कल्पितामपि । एकादशीं सदा कुर्यान्न वै कृष्णोत्तरां क्वचित् ।।६२
नक्तेन वर्तयेत्कृष्णामिति शास्त्रविनिश्चयः । मासे चैकादशी यत्र लभ्यते शुक्लपक्षके ।।
तत्र कुर्यात्कृष्णपक्षे परा तिथिर्न गृह्यते ।।६३
श्रावणी द्वादशी शुक्ला चान्द्रभद्रे यदा हरौ । तत्रोपोष्य हृषीकेशं पूजयेद्विधिवन्नरः ।।६४
श्रावणे चाश्विने चैव लभ्यते द्वादशीदिने । श्रवणेन समायुक्ता महती सा प्रकीर्तिता ।।६५
पुष्येण द्वादशीयुक्ता फाल्गुने विजया स्मृता । कार्तिके चेत्परित्याज्या माघे तु नारकी भवेत् ।।६६
या भाद्रे विजया प्रोक्ता श्रवणेन समायुता । विशेषः कथ्यते तत्र यथावद्व्रतमाचरेत् ।।६७
एकादश्यामुत्तरतो द्वादशी च दिवान्विता । निशि पूर्णा द्वादशी च श्रवणेनापि संयुता ।।६८
सफला द्वादशी ज्ञेया उपोष्यैषा महाफला ।।६९
द्वादश्यां विष्णुविद्धायां वासुदेवं प्रपूजयेत् । कृष्णायां तु व्रतं कुर्याद्बहुदुःखं समाचरेत् ।।७०
द्वादशी कामविद्धा चेन्मन्यते नाप्युपोषणम् । हन्यात्पुराकृतं पुण्यं त्रयोदश्यामुपोषणम् ।।७१
प्रहरे प्रहरे स्नानं शर्वर्यां च विधीयते । पूजनं चाग्निकार्यं च षट्सु कार्यं व्रती चरेत् ।।७२
एकादशीं द्वादशीं च प्राप्नोति श्रवणे यदि । एकादश्यामुपोष्याथ द्वादश्यामप्युपावसेत् ।।७३

हैं।६०। रविवार, और शुक्रवार के दिन संक्रान्ति, और प्राप्त दिनक्षय में केवल उपवास करना बताया गया है, धारण नहीं।६१। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की एकादशी अनुष्ठान के लिए यदि पहले संकल्प भी करा दिया गया हो, तो भी कृष्ण पक्ष की ही एकादशी में व्रत पालन करना चाहिए, शुक्ल की कभी नहीं।६२। क्योंकि शास्त्र ने भी 'नक्तेन वर्तयेत्कृष्णामिति' (नक्त के समेत कृष्ण पक्ष की एकादशी का ही ग्रहण करना चाहिए) ऐसा निश्चय किया है। जिस किसी मास में शुक्ल की एकादशी की प्राप्ति में भी कृष्ण पक्ष वाली का ही ग्रहण करना चाहिए, उसमें परा (दूसरे दिन की) तिथि का ग्रहण नहीं किया जाता है।६३। श्रावण मास की शुक्ल द्वादशी के दिन भद्रा समेत चंद्र दर्शन हो तो हरिशयन काल के होते हुए भी उस दिन 'हृषीकेश' नामक भगवान् की सविधान पूजा मनुष्य को करनी चाहिए।६४। श्रावण अथवा आश्विन मास की द्वादशी के दिन यदि श्रवण नक्षत्र प्राप्त हो जाये, तो उसका अत्यधिक महत्त्व बताया गया है।६५। फाल्गुन मास की द्वादशी के दिन पुष्य नक्षत्र के योग होने से उसको विजया नामक कहा गया है। तथा कार्तिक में वह त्याज्य हैं एवं माघ में भी उसके पालन से नारकी होना बताया गया है।६६। भाद्रपद मास में श्रवण नक्षत्र संयुक्त होने पर जिसे विजया कहा गया है, उसी में व्रत विधान करना चाहिए उसकी महत्ता बता रहा हूँ।६७। एकादशी के दिन द्वादशी समस्त दिन रात रहे और उससे श्रवण नक्षत्र का भी संयोग हो, तो उसे फल दायक जानना चाहिए, उसमें उपवास करने से महान् फलों की प्राप्ति होती है।६८-६९। एकादशी संयुक्त द्वादशी में भगवान् वासुदेव की पूजा करनी चाहिए, व्रत नहीं, क्योंकि व्रत रहने से अत्यन्त दुःख के भागी होना पड़ता है, व्रत केवल कृष्ण पक्ष में ही करना बताया गया है।७०। कामविद्धा होने पर द्वादशी में उपवास न रहना चाहिए, और त्रयोदशी में भी उपवास रहने से पूर्वकाल की संचित पुण्य प्रथा नष्ट हो जाती है।७१। व्रत रहने वाले को रात के प्रत्येक प्रहर में स्नान पूजन और हवन इस प्रकार ये कार्य करना चाहिए।७२। श्रवण नक्षत्र के दिन एकादशी तथा द्वादशी के प्राप्त होने पर प्रायः एकादशी में ही व्रत उपवास करना चाहिए, किन्तु कहीं द्वादशी में भी करना बताया गया है।७३। द्वादशी के अभाव में

पारणं तु त्रयोदश्यां द्वादशी चेन्न लभ्यते । आमिषान्नं न भुञ्जीत हविष्यान्नेन पारणम् ।।७४
यदा तु पारणायोग्या लभ्यते द्वादशी तदा । तस्यां नातिक्रमो युक्तस्तदभावे त्रयोदशी ।।७५
एकादशी द्वादशी च श्रवणर्क्षेण संयुता । विष्णुशृङ्खलको नाम बुधवारे विशिष्यते ।।७६
दशम्यां संयतो भूत्वा प्रातरेकादशीदिने । कृत्वा तु सङ्गमे स्नानं प्रहरे प्रहरे द्विजाः ।।७७
अनेन विधिना कृत्वा विजयायां व्रतोत्तमम् । सर्वपापं क्षयं नीत्वा विष्णुलोके वसेन्नरः ।।७८
चतुर्युगानां दिव्यानां यावत्स्याद्विष्णुरूपधृक् । तावदेव हि सर्वत्र सार्वभौमो भवेन्नरः ।।७९
त्रेतायां दश जन्मानि मध्यदेशेषु भो द्विजाः । ततश्च भारते वर्षे वेदवेदान्तसारवित् ।।
पुत्रपौत्रधनैर्युक्तो लक्षदो नृपसन्निभः ।।८०
जायते दश जन्मानि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तमः । सपत्नीकश्च दीर्घायुर्धर्मकर्मसु पूजितः ।।८१
भाद्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां पृथिवीपतिम् । शत्रुमुत्थापयेत्प्राह्णे शुभलग्ने शुभक्षणे ।।८२
शल्यशाल्मलिकस्यापि सप्तपर्णीयकस्य च । एषामन्यतमं वृक्षं चम्पकस्यार्जुनस्य वा ।।८३
बृहत्कदम्बवृक्षस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः । द्वात्रिंशदङ्गुलैर्वापि मानद्वयमथापि वा ।।
त्रिव्यायामं च प्रथमं द्वाविंशहस्तमेव वा ।।८४
हस्तः षोडशवारस्य गृहस्थस्य विशिष्यते । हस्तत्रयेण विप्रस्य द्वादश क्षत्रियस्य तु ।।८५
अष्टहस्तं तु वैश्यस्य शूद्रस्य पञ्चहस्तकम् । अभ्रतः श्वेतच्छत्रं स्यात्पताका च पुरे पुरे ।।८६

त्रयोदशी में हविष्यान्न का पारण करना चाहिए, आमिषान्न का कभी नहीं ।७४। पारण के योग्य द्वादशी की प्राप्ति में उसका त्याग कभी न करना चाहिए, उसके अभाव काल में ही त्रयोदशी का ग्रहण करना कहा गया है ।७५। श्रवण नक्षत्र युक्त होने पर एकादशी अथवा द्वादशी बुधवार में प्राप्त हो, तो उसका विष्णु विश्रृङ्खला' नाम होता है, तथा उसकी महत्ता भी बढ़ जाती है ।७६। द्विजवृन्द ! उसमें व्रत पालन के लिए यह विधान दशमी में संयम पूर्वक रहकर एकादशी के दिन प्रत्येक प्रहर में नदी के संगम स्थान में स्नान करना बताया गया है ।७७। इस विधान द्वारा विजया (एकादशी) के उत्तम व्रत पालन द्वारा मनुष्य समस्त पापों के संक्षय पूर्वक विष्णु लोक की प्राप्ति करता है ।७८। पश्चात् चारों युगों के दिव्य वर्षपर्यन्त विष्णुरूप धारण कर वह मनुष्य सर्वत्र सार्वभौम होकर रहता है ।७९। द्विजगण ! त्रेतायुग में मध्य देशों में दश जन्म ग्रहण करने के उपरांत भारत वर्ष में वेद वेदान्त के तत्त्वनिष्णात होकर पुत्र-पौत्र एवं धन युक्त राजाओं की भाँति सम्मान पूर्वक लाखों का दानी होता है ।८०। त्रेता युग में दश जन्मों तक उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर पत्नी समेत दीर्घायु एवं धर्म कर्म में पूजनीय होता है ।८१। भाद्रपद की शुक्ल द्वादशी के दिन पूर्वाह्न के समय किसी शुभ लग्न में जिसमें शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो, पृथिवीपति शत्रु को उभाड़ देना चाहिए ।८२। शल्य, सेमर, सप्तपर्ण, चम्पा, अर्जुन एवं विशाल कदम्ब, इनमें किसी वृक्ष के बयालिस या बत्तीस अंगुल के दण्ड, अथवा तीन व्यायाम के तुल्य या बीस हाथ के दण्ड में शुभ बादलों की भाँति के छत्र लगाये, षोडशवार गृहस्थों के लिए विशेषकर हस्तमात्र, विप्र के लिए तीन हाथ, क्षत्रिय के लिए बारह, वैश्य के लिए आठ, और शूद्र के लिए पाँच हाथ के छत्र दंड होने चाहिए। प्रत्येक गाँवों में श्वेतच्छत्र के समेत पताका के आरोपण करके

अथ वक्ष्यामि चैत्रादिमासे तु पूर्णिमा यथा । चित्रानक्षत्रसंयुक्तो गुरुपूर्णो विधुर्यदि ॥
महाचैत्रीति सा ज्ञेया पूर्णिमाक्षयपुण्यदा ॥११६
विशाखादिषु भेदेषु पूर्णचन्द्रो गुरुश्चरेत् । महावैशाखिकाद्यास्तु पूर्णिमा द्वादश स्मृताः ॥११७
महाज्यैष्ठी विशेषोऽयं प्राजापत्ये यथा रविः । गुरुपूर्णचन्द्रो ज्येष्ठायां महाज्यैष्ठीति सा स्मृता ॥११८
विनापि गुरुणा चन्द्रः कृत्तिका पूर्णिमा तथा । तथा महाकार्त्तिकी सा तिथिः पुण्यतमा भवेत् ॥११९
रोहिण्यां तु स्थितश्चन्द्रः पौर्णमास्यां तु कार्तिके । महाकार्त्तिकी तथापि स्यात् स्वर्गलोकेऽपि दुर्लभा ॥१२०
चित्रा वा यदि वा पूर्णा यदा स्यात्पूर्णिमातिथिः । महाचैत्री तथापि स्यादश्वमेधफलप्रदा ॥१२१
रविणा कृत्तिकायोगाद्रविवारे च पूर्णिमा । महाचैत्री तथापि स्याद्दत्तस्याक्षयकारिका ॥१२२
एवं गुरौ गुरोर्योगे महाचैत्री प्रकीर्तिता । तत्र स्नानं च दानं च जपो नियम एव च ॥१२३
सर्वमक्षयतां याति फलं चैवाश्वमेधिकम् । पितरस्तर्पिता यान्ति वैष्णवं लोकमक्षयम् ॥१२४
भरण्यां कार्त्तिके मासि यदि स्यात्पूर्णिमा तिथिः । गङ्गाद्वारे तु महती वैशाखी पुण्यदा स्मृता ॥१२५
शालग्रामे महाचैत्री कृतपुण्या महातिथिः । गंगाद्वारे तु महती वैशाखी पुण्यदा स्मृता ॥१२६

शिव का स्नान, पूजन और विधान पूर्वक हवन की समाप्ति करनी चाहिए । इसके उपरान्त चैत्र आदि मासों की पूर्णिमा की व्याख्या बता रहा हूँ ! चित्रा नक्षत्र समेत पूर्ण बृहस्पति के साथ चन्द्रमा के योग उस दिन (पूर्णिमा में) प्राप्त हों, तो उस पूर्णिमा को महाचैत्री कहा गया है, और वह अक्षय पुण्य प्रदान करती है ।११५-११६। इसी भाँति (वैशाख) में विशाखा आदि नक्षत्र में भेदों समेत पूर्ण चन्द्र के साथ बृहस्पति का योग प्राप्त हो तो वह महावैशाखी पूर्णिमा कही जाती है । इसी प्रकार बारहों पूर्णिमाओं को जानना चाहिए ।११७। प्राजापत्य में सूर्य की भाँति महाज्यैष्ठी की भी यही विशेषता है कि, उस दिन गुरु युक्त पूर्ण चन्द्र उपस्थित हों, तो उसे महाज्यैष्ठी पूर्णिमा कही जाती है ।११८। (कार्तिक मास में) बृहस्पति के बिना ही पूर्ण चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र समेत उस दिन उपस्थित हो जाय, तो उस पुण्यतमा तिथि को महा-कार्तिकी कहा गया है ।११९। कार्तिक पूर्णिमा के दिन रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा स्थित हों तो भी उसे महाकार्तिकी कहा जाता है और उसकी प्राप्ति स्वर्गलोक में दुर्लभ बतायी जाती है ।१२०। चित्रा नक्षत्र समेत पूर्णिमा हो अथवा केवल पूर्णिमा हो, तथापि उसे महाचैत्री कहा जाता है और वह अश्वमेध फल प्रदान करती है ।१२१। रविवार के दिन सूर्य समेत कृत्तिका नक्षत्र के योग प्राप्त हो, तो उस पूर्णिमा को भी, जो अक्षय फल प्रदान करती है, महाचैत्री कहा जाता है ।१२२। इसी भाँति बृहस्पति के दिन भी बृहस्पति से संयुक्त होने पर उसे महाचैत्री कहा गया है उसमें स्नान, दान, जप, नियम सभी अश्वमेध का अक्षय फल प्रदान करते हैं, उसके पितर लोग तृप्त होते हैं, तथा उसे अक्षय वैष्णव लोक की प्राप्ति होती है ।१२३-१२४। कार्तिक मास में भरणी नक्षत्र के दिन प्राप्त पूर्णिमा और वैशाख की पूर्णिमा में गंगोत्री में महान् पुण्य प्रदान करती है ।१२५। शालग्राम (तीर्थ) में पुण्य स्वरूपा महाचैत्री पूर्णिमा और गंगोत्री में महावैशाखी पूर्णिमा (स्नान आदि करने से) पुण्य प्रदान करती है । पुरुषोत्तम क्षेत्र में महाज्येष्ठी,

पुरुषोत्तमे महाज्यैष्ठी महाषाढी तु शृंखले। महाश्रावणी केदारे महापुण्यतमा मता ॥१२७
महाभाद्री बदर्यां च कुजोऽपि स्यान्नरस्तथा। महाकार्त्तिकी पुष्करे च कान्यकुब्जे तथोत्तरे ॥१२८
महती मार्गशीर्षे स्यादयोध्यायां तथोत्तरे। महापौषी पुण्यतमा महामाघी प्रयागतः ॥१२९
महाफाल्गुनी नैमिषे च निर्दिष्टाः स्युर्महाफलाः ॥१३०
अत्र स्म विहितं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्। सर्वमक्षयतां याति वर्द्धते चाधिकं फलम् ॥१३१
आश्विने पौर्णमासी तु कौमुदीति प्रकीर्तिता। अस्यां चन्द्रोदये लक्ष्मीं पूजयेद्विधिवन्नरः ॥१३२
निर्वर्तयेन्न यः श्राद्धं प्रभाते पैतृकं द्विजः। इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥१३३
चन्द्राश्विने तु कृष्णायां पञ्चदश्यां यथाविधि। कृत्वा स्नानादिकं कर्म सोपवासो दिनं नयेत् ॥१३४
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाविधि। दीपवृक्षान्यथा वृक्षाँल्लक्ष्मीप्रीत्यै समुत्सृजेत् ॥१३५
नदीतीरे गिरौ गोष्ठे श्मशाने वृक्षमूलतः। चतुष्पथे निजागारे चत्वरे तान्निधापयेत् ॥१३६
द्विर्भोजनममावास्यां न कर्तव्यं कदाचन। शर्वर्यां च विशेषेण माघफाल्गुनयोर्नरैः ॥१३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
उत्तमतिथिनिर्णयो नामाष्टमोऽध्यायः ।८

शृङ्खला में महा आषाढी और केदार तीर्थ में महाश्रावणी पूर्णिमा महान् पुण्यस्वरूपा बतायी गयी है।१२६-१२७। महाभाद्री भादों मास की पूर्णिमा के दिन बदरिकाश्रम में स्नान करने से कुज (विकृत अंग वाले) भी सौन्दर्य पूर्ण मनुष्य हो जाते हैं, उसी भाँति महाकार्तिकी (पूर्णिमा) में पुष्कर, कान्यकुब्ज और उत्तर के प्रदेशों में अत्यन्त पुण्यस्वरूप की प्राप्ति कही गयी है, एवं मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा अयोध्या और उसके उत्तर प्रदेश तथा महापौषी (पौष की पूर्णिमा) एवं महामाघी भी प्रयाग के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है।१२८-१२९। उसी प्रकार महाफाल्गुनी नैमिषारण्य के लिए महान् फलदायक कही गयी है।१३०। इन दिनों में किये गये शुभ अशुभ सभी कर्म अक्षय फल प्रदान करते हैं, जिनकी निरन्तर वृद्धि हुआ करती है। आश्विन मास की पूर्णिमा का कौमुदी नाम बताया गया है, उसमे चन्द्रोदय के समय विधान पूर्वक लक्ष्मी की पूजा मनुष्य को करना कहा गया है।१३१-१३२। जो ब्राह्मण प्रत्येक मास के चन्द्रक्षय के दिन प्रातः काल में पितरों का श्राद्ध सुसम्पन्न नहीं करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है।१३३। आश्विन मास की कृष्णपक्ष की (पन्द्रहवी) अमावस्या के दिन उपवास और विधान पूर्वक स्नानादिक कर्म करते हुए उसे व्यतीत करना चाहिए।१३४। प्रदोष के समय विधान पूर्वक लक्ष्मी की पूजा सुसम्पन्न करके लक्ष्मी के प्रसन्नार्थ वृक्ष की भाँति दीप वृक्षों के प्रदान करने चाहिए।१३५। नदी तट, पर्वत, गोशाला, शमशान, वृक्ष के मूल भाग, चौराहा, निजी गृह अथवा चबूतरे पर उसे स्थापित करना चाहिए।१३६। अमावस्या के दिन और विशेषकर माघ फाल्गुन की रात्रि में मनुष्यों को दो बार भोजन करना चाहिए।१३७

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में उत्तमविधाननिर्णय
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अथ नवमोऽध्यायः

प्रवरविचारवर्णनम्

सूत उवाच

वक्ष्ये प्रवरसन्तानं यथाक्रममिति द्विजाः । यद्विना व्यत्ययो यस्मात्तस्माच्छास्त्रानुसारतः ॥१
प्रवरत्रयं काश्यपस्य काश्यपाशावनैर्ध्रुवम् । पश्वाश्वगौतमस्याद्य गौतमश्चोय एव च ॥२
च्यवनो जामदग्न्यश्च आप्लवायनमेव च । मोकुन्यांगिरसभास्याज्जामदग्न्याप्लवायनम् ॥३
शांडिल्यासितदैवलाः प्रवरत्रयमेव च । पराशरस्य च तथा स्वयं शाम्बवशिष्ठकम् ॥४
आत्रेयमाचार्यणस्याबालप्रवरमेव हि । वात्स्यवात्स्यायनौ चैव उरुकण्टक एव च ॥५
अर्धक्षीरमित्रावरुणं पञ्चमं परिकीर्तितम् । औतथ्यस्य त्रयं विद्याद्वाल्मीकोऽवरमेव हि ॥६
औतथ्यस्य च वाशिष्ठमैन्द्रे चक्रं च क्रौञ्चायनं तथा । औतथ्येति समाख्यातं माहिष्यं च्यवनं तथा ॥७
उरुकण्टत्रयं विद्यात्कौशिकस्य त्रयं तथा । यद्गालो देवराट् ख्यातः कुशिकाद्याश्च भो द्विजाः ॥८
विश्वामित्रो देवराट् च स्वयं चैव त्रयं मतम् । घृतकौशिकस्य कुशिका विश्वामित्राघमर्षणम् ॥९
चण्डकौशिकस्य च तथा देवराट् देवरातकम् । विश्वामित्रे तु विख्यातः सुमन्तोरेव एव हि ॥१०
तरुंकशाकटायनः स्वयमेव प्रवरत्रयम् । भ्रमद्वयं जैमिनेश्च स्वयं वाशिष्ठमेव च ॥११
शंखमांगिरसच्यवनं शंखभस्य त्रयं मतम् । वात्स्यस्य च्यवनो नाम आप्लवायनकस्तथा ॥१२
सावर्णस्य तु सावर्ण्यच्यवनजामदग्निभार्गवम् । आप्लवायनेति पाठीने एक एव तु सत्तमाः ॥१३
कृष्णाजिनस्य कृष्णाजिनं विश्वामित्रस्य जैमिनम् । कात्यायनस्य कात्यायनगार्ग्यायणत्रयं तथा ॥१४

अध्याय ९

प्रवर विचार का वर्णन

सूत बोले—द्विजवृन्द ! मैं शास्त्रों के अनुसार प्रवरों की चर्चा कर रहा हूँ, क्योंकि उसके ज्ञान के बिना अधिक व्यत्यय (उलटफेर) होने की संभावना रहती है।१। काश्यप गोत्र के तीन प्रवर काश्यपा शावन बताये गये है, गौतम के पश्वाश्व गौतम, च्यवन, जामदग्न्य, आप्लवायन, मोकुन्य, आंगिरस, भास्य, जामदग्न्य, आप्लवायन, शाण्डिल, असित, देवल तीन प्रवर, पराशर के पाराशर, शांब, वशिष्ठ, आत्रेय के आत्रेय आचार्यण, स्याबाल, वात्स्य, वात्स्यायन, उरुकंटक।२-५। अर्थक्षीर पाँचवा मित्रावरुण, औतथ्य, के औतथ्य, वाल्मीक, अवर औतथ्य के वशिष्ठ, ऐन्द्र, चक्र, क्रौञ्चायन, औतथ्य माहिष्य, च्यवन, उरुकटंक कौशिक के तीन द्विजवृन्द ! उसी प्रकार गाल, देवराट, कुशिकादि, विश्वामित्र, देवराट्, घृतकौशिक के कुशिका, विश्वामित्र, अघमर्षण।६-९। चण्ड कौशिक के देवराट्, देवरातक, यही विश्वामित्र और सुमन्तु के भी प्रवर हैं।१०। तरुंक, शाकटायन, जैमिनि के दो जैमिनि, वशिष्ठ, शंखभ के शंख, आंगिरस और च्वयन, तीन, वात्स्य के च्यवन, आप्लवायनक।११-१२। सावर्ण के सावर्ण्य, च्यवन, जामदग्नि, भार्गव, पाठीन के एक आप्लवायन।१३। कृष्णाजिन के कृष्णाजिन, विश्वामित्र के जैमिन, कात्यायन के कात्यायन,

वात्स्यायनेति विख्यातं कुशिकस्य च पञ्चमम् । अमुं च विश्वामित्रं च जामदग्न्याप्लवायनम् ॥१५
गार्ग्यस्य गार्ग्यसामुञ्च तथांगिरस एव च । बार्हस्पत्यभरद्वाज इति पञ्च प्रकीर्तितम् ॥१६
वशिष्ठस्य च वासिष्ठं च तथांगिरस एव च ! मित्रावरुणसंयुक्तं तावत्तस्य प्रकीर्तितम् ।१७
जाह्नकर्णभवकर्णौ प्रवरौ परिकीर्तितौ । उपमन्युरुपमन्योस्तथेन्द्रः सह एव च॥१८
तदुत्तमेति त्रितयं मित्रावरुणस्य च त्रयम् । आत्रेयगौतमाङ्गिरसप्रवरत्रयमेव हि॥१९
कमण्डलोत्पलमित्रासित्रावरुण एव च । कमण्डलुश्चेति त्रितयं प्रवरत्रयमेव च॥२०
च्यवनस्य तथा ज्ञेयमूर्वच्यवनाप्लवायनम् । अथ स कस्यांगिरसबार्हस्पत्य एव त्रयम् ॥२१
आगस्त्यस्य अगिस्तश्च माहश्च च्यवनेति च । विश्वामित्रे देवरात औतथ्येति तथैव च॥२२
ये नोक्ता येऽप्यविज्ञातास्ते प्रोक्ताः काश्यपाज्जगत् ॥२३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे प्रवरविचारवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

वास्तुयागवर्णनम्

सूत उवाच

वास्तुयागमथो वक्ष्ये बलिमण्डलपूर्वकम् । अङ्कुरार्पणकं कृत्वा मध्ये कुर्याच्च मण्डलम् ॥१
त्रिहस्ता पिंडिका कार्या चतुरस्रा उदक्प्लवा । प्रादेशमात्र उत्सेधो दर्पणान्तर्निभो भवेत् ॥२
मध्ये सम्मार्जयेद्विद्वान्पादान्नव यथाक्रमात् । कोणे चतुष्पदं ज्ञेयं दिक्षु त्रिपदकं क्रमात् ॥३

गार्ग्यायण, कुशिक के वात्स्यायन समेत पाँच, कुशिक, विश्वामित्र, जामदग्न्य आप्लवायन ।१४-१५। गार्ग्य के गार्ग्यसा, मुंच, आंगिरस, बार्हस्पत्य, और भारद्वाज, ये पाँच प्रवर बताये गये हैं ।१६। वशिष्ठ के वशिष्ठ, आंगिरस, मित्रावरुण, जाह्नकर्ण, भवकर्ण, उपमन्यु के उपमन्यु, इन्द्र, तदुत्तम मित्रारुण के आत्रेय, गौतम, आंगिरस, कमंडलु उत्पलमित्र, मित्रावरुण, और कमण्डलु तीन, च्यवन के उर्व, च्यवन और आप्लवायन, आंगिरस, बार्हस्पत्य, तीन आगस्त्य के अगस्ति, माह, च्यवन, विश्वामित्र के देवरात, औतथ्य, प्रवर हैं, जिनके नाम नहीं कहे गये है और उनके सम्बन्ध में कुछ कहा भी नहीं जा सकता, उन्हें संसार में काश्यप के नाम से कहा जाता है ।१७-२३
श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में प्रवर विचार वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

वास्तुयाग का वर्णन

सूत बोले—मैं बलि मण्डल पूर्वक वास्तु (गृह) याग की व्याख्या बता रहा हूँ । अंकुरारोपण करके मध्य भाग में उस प्रकार के मण्डल जिसमें तीन हाथ की चौकोर एवं जल से घिरी हुई पिंडिका (वेदी) जो प्रादेश मात्र उत्सेध और स्वयं दर्पण के मध्यभाग के समान बनायी जाती है, बनाने चाहिए ।१-२। विद्वान् को चाहिए कि उसके मध्य भाग में क्रमशः नव पादों के संमार्जन करके कोण भाग में चतुष्पाद और

पञ्चकं युग्मपादेन चतुर्दिक्षु ततः परम् । कोणे चतुष्पदं स्थाप्यं चतुष्कोणे विभावयेत् ।।४
चतुष्कोणं बहिः कुर्यात्कोणे चापि चतुष्टयम् । द्वात्रिंशच्च भवेद्बाह्ये चातश्चापि त्रयोदश ।।५
चत्वारिंशत्पञ्चयुता मिलित्वा वास्तुदेवताः । शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः ।।६
सूर्यः सत्यो वृषश्चैव आकाशं वायुरेव च । पूषा च वितथश्चैव गुहान्यश्च यमस्तथा ।।७
गन्धर्वो मृगराजस्तु मृगाः पितृगणास्तथा । दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः ।।८
असुरः पशुपाशौ च रोगो हि मोक्ष एव च । भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा ।।९
बहिर्द्वादश इत्येतानीशानादीन्यथाक्रमम् । ईशानादिचतुष्कोणं संस्थितान्पूजयेद्बुधः ।।१०
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च । अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः ।।११
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च सप्तमः पृथिवीधरः । अष्टमस्त्वापवत्सस्तु परिधौ ब्रह्मणः स्मृतः ।।१२
पूर्वादिषु तथा पूज्या गन्धपुष्पैः पृथग्विधैः । पञ्चचत्वारिंशदेतच्चरक्या च चतुर्थकम् ।।१३
मिलित्वा ऊनपञ्चाशदुत्तमा वास्तुदेवताः । नान्यत्र योजयेद्विप्राः प्रसादे च विशेषतः ।।१४
बहिः कोणे चरक्यादि चरकं च विदारिकाम् । पूतनां च ततः पश्चाद्वायव्ये पापराक्षसीम् ।।१५
स्वैःस्वैर्मन्त्रैश्च गन्धाद्यैः पूज्येत्कुसुमादिना । यथोक्तेन बलिं दद्यात्पायसान्नेन वा पुनः ।।१६
रेखाः सर्वत्र शुक्लेन पद्मं रक्तेन भावयेत् । रञ्जयेदेव वर्णेन बहिष्पञ्चरजेन तु ।।१७
देववर्णानथो वक्ष्ये यथावदनुवर्णिताः । रक्तौ गौरस्तथा शोणः सितरक्तः सितस्तथा ।।१८

दिशाओं में क्रमशः त्रिपाद (तीन पैर वाले) को स्थापित करे ।३। पश्चात् ! चारों ओर (दिशाओं में) दो पाद वाले पाँच की स्थिति करके चारों कोण के भागों में चतुष्पदों की प्रतिष्ठा करायें ।४। चार कोना बाहरी भाग में बनाकर कोने में भी चार की स्थिति करें । बत्तीस देवता बाहरी भाग में और अन्तः स्थल में तेरह देवता प्रतिष्ठित किये जाते हैं, इस प्रकार वास्तु देवता की पैंतालिस संख्या बतायी गयी है । शिखी, पर्जन्य, जयंत, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, वृष, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गुह, यम ।५-७। गन्धर्व, मृगराज, मृगगण, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर पशु, पाश, रोग, मोक्ष, भल्लाट, सोम, सर्प, आदिति, एवं दिति, देवों की, जो बारह बारह और ईशान आदि कोण में क्रमशः स्थित हैं, विद्वान् को पूजा करनी चाहिए ।८-१०। जलदेव, सावित्र, जप, रुद्र, अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप (इन्द्र), मित्र, राजयक्ष्मा, सातवाँ पृथिवीधर, और आठवाँ आपवत्स, ये देवगण ब्रह्मा की परिधि में स्थापित होते हैं ।११-१२। पूर्वादि दिशाओं में स्थित उन देवताओं की पूजा पृथक्-पृथक् विधान पूर्वक गन्ध-पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । इस प्रकार पैंतालिस संख्या के बताये हुए पहल वाले और चार चरकी के मिलकर कुल उन्चास वास्तु देवता बताये जा चुके हैं । विप्रेन्द ! इनकी पूजा आदि अन्य किसी कर्मानुष्ठान में न कर विशेषकर महल प्रवेश में अवश्य करना चाहिए ।१३-१४। बाहरी कोण में चरकी-चरक पश्चात् वायव्यकोण में विदारिका एवं बालघ्नी पूतना राक्षसी के उनके मंत्रों के उच्चारणपूर्वक गंधादि पुष्पों द्वारा पूजा और पायस अन्नों द्वारा बलि प्रदान करना बताया गया है ।१५-१६। सर्वत्र की रेखाओं को शुक्ल वर्ण, कमल को रक्तवर्ण, और बाहरी भागों को पाँच प्रकार के चूर्णा (रंगों) द्वारा विभूषित करना चाहिए ।१७। देवताओं (देवों की प्रतिमाओं के निमित्त) वर्णों (रंगों) को बता रहा हूँ, रक्त, गौर, शोण (रक्त), उज्ज्वल-रक्त, शुभ्र, पीत, शुक्ल, धर्म, पूषा रक्त,

पीतः शुक्लश्च धर्मश्च पूषा रक्तः प्रकीर्तितः। श्यामः शुक्लश्च कृष्णश्च पीतः शुक्लो यथाक्रमम् ॥१९
पीतो भृङ्गः पुनः शुक्लः कृष्णः शुक्लस्तथैव च। रक्तः शुक्लश्च शोणश्च कृष्णरक्तस्तथैव च ॥२०
धूम्रपीतो रक्तपीतः शुक्लः कृष्णश्च श्यामकः। रक्तवर्णेन द्वात्रिंशद्दश वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥२१
शुक्लशोणं पुनः श्वेतं सिन्दूराभं प्रकीर्तितम्। पाण्डुरं कुङ्कुमाभं च रक्तं ज्ञेयं च पीतकम् ॥२२
शुक्लपीतं च श्वेतं च गौरं चेत्यष्टवर्णकम्। पीतं रक्तं च श्यामं च गौरं चेति चतुष्टयम् ॥२३
धरणीमदनं वाद्ये शम्भुवर्णादिप्रक्रमात्। शुक्लेन रञ्जयेद्द्वारान्पुरद्वारं च मध्यमे ॥२४
मध्येऽन्ते ऊनपञ्चाशत्सर्वं च वास्तुकर्मणि। चत्वारिंशद्द्वारयुतं गृहदेवकुलेऽपि च ॥२५
महाकूपे तथा श्वेतो अन्यत्रापि[1] प्रशस्यते। सुलिप्ते च शुचौ देशे सार्धहस्तप्रमाणतः ॥२६
दश पूर्वायता रेखा दश चैवोत्तरायताः। एकादशीपदं कुर्याद्रेखाभिः पदकेन तु ॥२७
सर्ववास्तुविभागेन विज्ञेया नवका नव। पदस्थान्पूजयेद्देवांस्त्रिंशत्पञ्चाशदेव तु ॥२८
द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्याः पूज्यागारे त्रयोदश। मध्ये नव पदे ब्रह्मा तस्याप्यष्टौ समीपगाः ॥२९
चतुर्दिक्षु षट्पदं तु त्रिपदं तु चतुष्पदम्। पदैकं तु चतुष्कोणे एष वास्तुविनिर्णयः॥
चरक्यादि ततो हित्वा चत्वारिंशच्च पञ्चकम् ॥३०

श्याम, शुक्ल, कृष्ण, पीत, एवं शुक्ल, इसी क्रम द्वारा उनकी प्रतिमाओं को रञ्जन करना (रंगना) बताया गया है।१८-१९। पीत, भंग (भ्रमर के समान), शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल, रक्त, शुक्ल, शोण, कृष्ण, रक्त, धूँए के समान पीत, रक्तपीत, शुक्ल, कृष्ण, श्याम और रक्त वर्ण, इसी क्रम से उन्हें अनुरञ्जित करने के लिए इन बत्तीस वर्णों (रङ्गों) की व्याख्या की गयी है।२०-२१। शुक्ल, शोण (रक्त) पुनः श्वेत, सिन्दूर सदृश, कुंकुम के समान पाण्डुर, रक्त, पीत, शुक्ल-पीत, श्वेत, और गौर ये आठवर्ण, तथा पीत, रक्त, श्याम, गौर इन चार वर्णों (रङ्गों) द्वारा अनुरञ्जित करना चाहिए। शम्भु वर्णादि के क्रम से वाद्य (बाजाओं) के लिए धरणी मदन रङ्ग बताया गया है। शुक्लवर्ण से दरवाजों और गाँव के मध्यम दरवाजे को तथा मध्य और अन्तभाग भी उन्हीं द्वारा विभूषित करना कहा गया है। इस प्रकार वास्तुकर्म में सब मिलाकर उनचास वर्ण बताये गये हैं, जिसमें दरवाजे समेत तक चालीस वर्ण होने चाहिए तथा उसी भाँति गृहदेवों के लिए भी। महाकूप के लिए श्वेतवर्ण, जो अन्यत्र भी प्रशस्त हैं, बताया गया है। सुन्दर लिपे-पुते पवित्र स्थान में डेढ़ हाथ की वेदी में दश पूर्व-पश्चिम और दश उत्तर-दक्षिण रेखाओं के निर्माण के उपरान्त उन्हीं रेखाङ्कित स्थानों द्वारा ग्यारह स्थानों की कल्पना करनी चाहिए।२२-२७। सभी वास्तु कर्मों में उनके विभाग द्वारा कुल इक्यासी स्थानों के निर्माण किये जाते हैं, उन स्थानों पर स्थित उन्हीं देवों की अर्चा करना चाहिए। बाहरी भागों में बत्तीस, पूजा स्थानों में तेरह मध्य के नवस्थानों में ब्रह्मा और उनके पार्श्ववर्ती आठ, चारों दिशाओं में षट्पदवाले, तीन स्थानों में चतुष्पद वाले, और चारों कोने के भागों में एक स्थान की कल्पना करना वास्तु निर्णय में कहा गया है। इस प्रकार चरकी आदि के त्याग कर देने से पैंतालिस देवों की पूजा शेष रह जाती है।२८-३०। शास्त्रानुसार वर्णन किये गये दूसरे मण्डल की

---

१. 'प्रकृत्य तः पादमव्यपरे' इति प्रकृतिभावः।

अपरं मण्डलं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । नवरेखाप्रयोगेण नवकोष्ठान्प्रकल्पयेत् ।।३१
द्विचतुष्कोष्ठकैर्दिक्षु यजेतार्यमणं ततः । विवस्वन्तं ततो मित्रं महीधरमतः परम् ।।३२
कोणेषु कोष्ठद्वन्द्वेषु बाह्यादिपरिकीर्तितम् । सावित्रं सवितारं च शक्रमिन्द्रं जयं पुनः ।।३३
रुद्रं रुद्रजयं चैव वायुं जृम्भकमेव च । पिलिपिच्छं च मेधावी विदारीं पूतनां तथा ।।३४
क्रमादीशानपर्यन्तां जयन्तः शक्रभास्करौ । सत्योवृषान्तरिक्षौ च दिशि प्राच्यामवस्थिताः ।।३५
अग्निः पूषा च वितधो यमश्च गृहरक्षकः । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणमाश्रिताः ।।३६
निर्ऋतिर्दौवारिकश्च सुग्रीववरुणौ ततः । पुष्पदन्तस्वरौ शोषरोगौ प्रत्यग्दिशि स्थिताः ।।३७
घ्राणवायुश्च नागश्च सोमो भल्लाट एव च । मुद्गलाख्यो दित्यदिती कुबेरस्य दिशि स्थिताः ।।३८
मिलित्वा च त्रिपञ्चाशत्तेभ्यः पूर्वं बलिं हरेत् । पिण्याकैः परमान्नैर्वा पूर्वोक्तैर्वा यथाक्रमात् ।।३९
रक्तमर्यमणं ध्यायेच्चतुर्भिर्बहुभिर्वृतम् । श्वेताश्ववाहनं दिव्यं किरीटैःस्वैर्विभूषितम् ।।४०
आकृष्णेनेति मन्त्रस्य स्वर्णऋषिर्जगतीछन्दः सवित्रऐमप्रीतये विनियोगः ।।४१
विवस्वन्तं पीतवर्णं पीताम्बरधरं शुभम् । मेषस्थं च महाकायं देवगन्धर्वसेवितम् ।।४२
एतातविषंतीति मन्त्रस्य कर्दम ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कमला देवता विवस्वत्प्रीतये विनियोगः ।।४३
मित्रं ध्यायेच्छुक्लवर्णं श्वेतहंसोपरिस्थितम् । त्रिनेत्रं त्रिभुजं चैव श्वेताम्बरधरं शुभम् ।।४४
कयानश्चीति मन्त्रस्य जयन्त ऋषिर्गायत्री छन्दः शङ्करो देवता मित्रप्रीतये विनियोगः ।।४५

व्याख्या बता रहा हूँ, नवरेखाओं द्वारा नव कोष्ठों की रचना करके दिशाओं के आठ कोष्ठों में अर्यमा (सूर्य) की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् बाहरी भाग के कोने के दो दो कोष्ठों में स्थित विवस्वान् मित्र, और महीधर की भी।३१-३२। सावित्र, सविता, शक्र, इन्द्र, जय, रुद्र, रुद्रजय, वायु, जृम्भक, पिलिपिच्छ, विदारी और पूतना, ईशान पर्वत स्थित इन देवों की पूजा क्रमशः विद्वान् को करनी चाहिए। जयन्त, शक्र, भास्कर, सत्य एवं वृषान्तरिक्ष को पूरब, अग्नि, पूजा वितध, यम, गृहरक्षक, गन्धर्व, भृङ्गराज और मृगदक्षिण, निऋति, दौवारिक, सुग्रीव, वरुण, पुष्पदन्त, स्वर शोष, तथा रोग पश्चिम।३३-३७। घ्राण वायु, नाग, सोम, भल्लाट, मुद्गल, दिति एवं अदिति, उत्तर दिशा में स्थापित तथा पूजित होते हैं।३८। तिरपन देवों को और उसी संख्या में मिलाकर उन्हें पूर्व दिशा में स्थापित एवं पूजित होने के उपरान्त पिण्याक (तिल की ख़ली), अथवा पूर्वोक्त बताये गये उत्तमान्नों द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए।३९। चार अथवा बहुतों से आच्छन्न, दिव्य, श्वेत वर्ण के अश्ववाहन, अपने उत्तम किरीटों से विभूषित उस रक्त वर्ण के अर्यमा का ध्यान करना चाहिए।४०। 'आकृष्णेने' ति मन्त्र के स्वर्ण ऋषि, जगती छन्द, सविता और अर्यमा के प्रीत्यर्थ विनियोग है ऐसा करना चाहिए।४१। पीतवर्ण, पीताम्बरधारी, शुभ मेष (भेंड़) के वाहन पर स्थित, महाकाय, देवों तथा गन्धर्वों से सुसेवित उस विवस्वान् की पूजा 'एतातविषेती' ति मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए, इस मन्त्र के कर्दम ऋषि, पंक्ति छन्द, कमला देवता, विवस्वान् के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए।४२-४३। शुक्ल वर्ण, शुभ्र वर्ण के हंस पर स्थित, तीन नेत्र, तीन भुजा, श्वेताम्बरधारी एवं शुभ मूर्ति वाले उन मित्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए।४४। 'कयानश्ची' ति मन्त्र के जयन्त ऋषि, गायत्री छन्द, शंकर देवता, मित्र

प्रीतं महीधरं ध्यायेद्वृषभोपरि संस्थितम् । त्रिभुजं पद्महस्तं च व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥४६
त्र्यम्बकमिति मंत्रस्य गर्गऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो हरो देवता महीधरप्रीतये विनयोगः ॥४७
सावित्रीं श्वेतवर्णां च सर्वलक्षणसंयुताम् । द्विभुजां पीतवस्त्रां च श्वेतसिंहासने स्थिताम् ॥४८
रक्ताम्बरधरां रक्तां रक्तमालोपशोभिताम् ॥४९
तद्वर्ष इति मन्त्रस्य गौतमऋषिर्विराट् छन्दः सूर्यो देवता सवितृप्रीतये विनियोगः ॥५०
शक्रं ध्यायेत्पीतवर्णं शुक्लकैरावतस्थितम् । सर्वदेवैः स्तूयमानं द्विभुजं पीतवाससम् ॥५१
त्रातारमिति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो नरसिंहो देवता इन्द्रजयप्रीतये विनियोगः ॥५२
रुद्रं ध्यायेच्छ्वेतवर्णं वृषभारूढविग्रहम् । नागयज्ञोपवीतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥५३
नमस्ते रुद्रेति मन्त्रस्य गायत्री छन्दस्त्र्यम्बको देवता रुद्रप्रीतये विनियोगः ॥५४
रक्तं रुद्रं जयं ध्यायेद्रक्तपद्मोपरि स्थितम् । रक्तश्यामाम्बरधरं द्विभुजं रक्तवाससम् ॥५५
त्र्यम्बकमिति मन्त्रस्य गायत्रीच्छन्दो महेशो देवता रुद्रजयप्रीतये विनियोगः ॥५६
अपि श्वेतं ततो ध्यायेद्वराभयकरं परम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ॥५७
ईशान इति मन्त्रस्य मरीचिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो वायुर्देवता अपां प्रीतये विनियोगः ॥
आपवत्सं पीतवर्णं मेषारूढं चतुर्भुजम् ॥५८

के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।४५। प्रसन्नमुख, वृष पर स्थित, तीन भुजा, कर कमल विभूषित, सर्प के यज्ञोपवीत धारण किये उन महीधर देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।४६। 'त्र्यम्बकमि' ति मंत्र के गर्ग ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, हर देवता, महीधर के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।४७। श्वेतवर्ण, सर्वभाँति के लक्षणों से अलङ्कृत, दो भुजा पीताम्बर धारण किये, श्वेत वर्ण के सिंहासन पर सुशोभित उस सावित्री देवी की जो रक्ताम्बर धारण किये और रक्तवर्ण के मालाओं से विभूषित एवं रक्त वर्ण वाली देवी हैं, ध्यान करना चाहिए ।४८-४९। 'तद्वर्ष' इस मन्त्र के गौतम ऋषि, विराट् छन्द, सूर्य देवता, सविता के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए ।५०। पीतवर्ण, शुक्लवर्ण के ऐरावत गजराज पर स्थित, समस्त देवों से पूजित, दो भुजा, एवं पीत वस्त्र वाले उस शक्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।५१। 'त्रातारमि' ति इस मंत्र के भार्गव ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, नरसिंह देवता इन्द्र जय के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।५२। श्वेत वर्ण, वृष पर स्थित, सापों के यज्ञोपवीत धारण किये एवं समस्त लक्षणों से युक्त उस रुद्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।५३। 'नमस्ते रुद्रं' इति इस मन्त्र के गायत्री छन्द, त्र्यम्बक देवता रुद्र प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।५४। रक्त वर्ण, रक्त कमलासन पर विराजित, रक्त श्यामाम्बर धारण किये, हो भुजा और रक्त वस्त्र वाले उस रुद्र जय देव का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है ।५५। 'त्र्यम्बकमि' ति इस मन्त्र के गायत्री छन्द, महेशदेवता रुद्रजय के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।५६। सर्वलक्षणों से विभूषित, श्वेत कमलासन पर सुशोभित एवं अभय प्रदान करने वाले उस श्वेत देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए।५७। ईशान, इस मन्त्र के मरीचि ऋषि, पंक्तिछन्द, वायुदेवता, आप (वरुण) देव के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है। पीतवर्ण, मेष (भेंड़) के वाहन पर स्थित, चार भुजाएँ बायें

पद्मशङ्खधरं वामे वराभयकरं परम् ।।५९
वरुणस्योत्तम्भनमसीति मन्त्रस्य नरोत्तम ऋषिर्विराट् छन्दो वरुणो देवता आवयः प्रीतये विनियोगः।।६०
कोणसूत्रस्योभयतः श्वेतकोष्ठद्वये पुनः । शर्वं ध्यायेद्रक्तवर्णं वृषभोपरि संस्थितम् ।।६१
द्विभुजं च त्रिनेत्रं च जटाभारोपशोभितम् ।।६२
माला स्वाहेति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिर्गायत्री छन्दो महादेवो देवता शर्वप्रीतये विनियोगः ।।६३
गुहं ध्यायेत्पीतवर्णं पीतपद्मासनस्थितम् । नानाभरणशोभाढ्यं कुण्डलाद्यैरलङ्कृतम् ।।६४
स बोध इति मन्त्रस्य अगस्तिर्ऋषिर्गायत्री छन्दो हरो देवता गुहप्रीतये विनियोगः ।।६५
अर्यम्णं द्विभुजं रक्तं रक्तमाल्योपशोभितम् । रक्तपद्मासनस्थं च देवगन्धर्वसेवितम् ।।६६
वातो वारेति मन्त्रस्य काश्यप ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वायुर्देवता अर्यमप्रीतये विनियोगः ।।६७
ध्यायेच्च जम्भकं श्वेतं द्विभुजं कुटिलाननम् । करालवदनं घोरं वराहोपरि संस्थितम् ।।६८
कुविदोगवय इति मन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिर्जगती छन्दः सोमो देवता जम्भकप्रीतये विनियोगः।।६९
पिलपिच्छं रक्तवर्णं रक्तमाल्यैरलङ्कृतम् । रक्तपद्मासनस्थं च रक्ताभरणशोभितम् ।।७०
देवस्य हेति मन्त्रस्य पंक्तिश्छन्दः शची देवता पिलपिच्छप्रीतये विनियोगः ।।७१
पीतां च चरकीं ध्यायेद्रक्तमाल्यैरलङ्कृताम् । सुचारुवदनां भव्यां गुञ्जाहारोपशोभिताम् ।।७२

दोनों भुजाओं में कमल और शंख धारण किये, परमोत्तम वर एवं प्रणय प्रदान करने वाले उस वत्स देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।५८-५९। 'वरुणस्योत्तम्भनमसी' ति इस मन्त्र के नरोत्तम ऋषि, विराट् छन्द, वरुण देवता, आवयस्प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।६०। कोने के दोनों पार्श्व भाग के श्वेत कोष्ठों में रक्तवर्ण, वृषभ पर स्थित, दो भुजा, तीन नेत्र एवं जटा के भार से विभूषित उन शर्व देव का इस भाँति ध्यान करना कहा गया है ।६१-६२। 'माला स्वाहेति' इस मंत्र के भार्गव ऋषि, गायत्री छन्द, महादेव देवता, शर्व प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।६३। पीत वर्ण, पीत कमलों के आसन पर विराजमान, भाँति भाँति, के सौन्दर्य पूर्ण आभूषणों एवं कुण्डलों आदि से अलंकृत उस गुह्य देव का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है ।६४। 'स बोध' इस मन्त्र के अगस्त ऋषि, गायत्री छन्द हर देवता, गुह प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।६५। दो भुजा, रक्तवर्ण, रक्तवर्ण की मालाओं से सुशोभित, रक्त कमलों पर स्थित एवं देव गन्धर्वों से आच्छन्न उस अर्यमा देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।६६। 'वातोवार' इस मन्त्र के काश्यप ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वायु देवता, अर्यमा के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।६७। श्वेत वर्ण, दो भुजा, कुटिल मुख, भीषण काय, घोर स्वरूप, तथा वाराह पर स्थित उस जृम्भक देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।६८। 'कुविदोगवयः' इस मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, जगती छन्द, सोम देवता, जम्भक प्रीत्यर्थ यह विनियोग हैं ।६९। रक्त वर्ण, रक्त वर्ण की मालाओं से अलंकृत, रक्त कमलासन पर स्थित और रक्त वर्ण के आभूषणों से आभूषित उस पिलपिच्छदेव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।७०। 'देवस्य हेति' इस मन्त्र का पंक्तिछन्द, शची देवता, पिलपिच्छ प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।७१। पीत वर्ण रक्तमालाओं से सुशोभित, सौन्दर्यपूर्ण उत्तम वदन, भव्याकृत, एवं गुञ्जा के हार से विभूषित उस चरकी

तद्वर्ष इति मन्त्रस्य जटिल ऋषिर्बृहती छन्दो भवो देवता चरकी प्रीतये विनयोगः ॥७३
श्यामां विदारिकां ध्यायेत्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम् । नानागणयुतां देवीं पङ्कजद्वयधारिणीम् ॥७४
श्रीश्च ते इति मन्त्रस्य वरुणऋषिर्नृसिंहो देवता विदारिकाप्रीतये विनियोगः ॥७५
रक्तां च पूतनां ध्यायेत्पङ्कजस्थां सुशोभनाम् । सर्वाभरणसम्पन्नां सर्वालङ्कारशोभिताम् ॥७६
मयि गृह्णामीति मन्त्रस्य विवस्वानृषिर्नारायणो देवता पूतनाप्रीतये विनियोगः ॥७७
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु सार्धाद्यन्तपदेषु च । ईशानं जटिलं श्वेतं शूलहस्तं महाभुजम् ॥७८
त्रिनेत्रं वृषभारूढं नागहारोपशोभितम् ॥७९
आयुः शीर्षाणि इति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिर्बृहती छन्दो धरणीधरो देवता ईशानप्रीतये विनियोगः ॥८०
रक्तं ध्यायेच्च पर्जन्यं द्विभुजं पीतवाससम् । दक्षिणे परशुं ध्यायेदोङ्कारं च तथापरे ॥८१
कयानश्चेति मन्त्रस्य धर्मऋषिर्बृहती छन्दो भवो देवता पर्जन्य प्रीतये विनियोगः ॥८२
। जयन्तं श्वेतं श्वेतवृषभारूढं ध्यात्वा ।
मानस्तोकेति मन्त्रस्य शक्त्यृषिस्त्रिष्टुपछन्दः शङ्करो देवता जयन्तप्रीतये विनियोगः ॥८३
शुक्लं पीतं द्विभुजमैरावतस्थं वज्रधरं ध्यात्वा मूलबीजेन स्थापयेत् ॥८४
भास्करं रक्तं द्विभुजं रक्ताश्वस्थं ध्यात्वा मायाबीजेन पूजयेत् ॥८५
सत्यं च द्विभुजं श्वेतं त्रिनेत्रं पीतवाससं मन्दकुन्दबीजेन पूजयेत् । वृषं पीतं वृषभारूढमाकाशबीजेन पूजयेत् ॥८६

देवी को इस भाँति का ध्यान करना कहा गया है। 'तद्वर्ष' इस मन्त्र के जटिल ऋषि, बृहती छन्द, भवदेवता, चरकी प्रसन्नार्थ यह विनियोग है। श्यामाङ्गी, तीन नेत्र, चार भुजाएँ अनेक गणों से सेवित, तथा दो कमल पुष्प लिए इस विदारिका देवी को इस प्रकार ध्यान करना कहा गया है।७२-७४। 'श्रीश्चते' इस मन्त्र के वरुण ऋषि, नरसिंह देवता विदारिका प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।७५। रक्तवर्ण, कमलासन पर स्थित, परम सुन्दरी, समस्त आभरणों एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत उस पूतना का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है।७६। 'मयि गृह्णामि' इस मन्त्र के विवस्वान्, ऋषि, नारायण देवता, पूतना प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।७७। सभी पूर्वादि दिशाओं में अन्त के डेढ़ कोष्ठों के स्थानों में जटाधारी, श्वेत, हाथ में शूल लिए लम्बी भुजा, तीन नेत्र, वृष पर स्थित, और सर्पों के हार से विभूषित उन ईशान देव का ध्यान इस भाँति करना बताया गया है।७८-७९। आयुः शीर्षाण' इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, बृहती छन्द, धरणीधर देवता, ईशान प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।८०। रक्तवर्ण, दो भुजा, एवं पीताम्बर धारण किये, इस भाँति उस पर्जन्य देव, दक्षिण में परशु एवं ओंकार देव का ध्यान करना चाहिए।८१। 'कयानश्चे' ति इस मन्त्र के धर्म ऋषि, बृहती छन्द, भव देवता पर्जन्य प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।८२। श्वेत वर्ण, एवं श्वेत वृषभ पर स्थित उस जयंत देव का इस भाँति ध्यान करने 'मानस्तोके' ति इस मन्त्र के शक्ति ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शंकर देवता जयंत प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए।८३। शुक्लवर्ण, पीताम्बर धारण किये, दो भुजा, ऐरावत पर स्थित, उस वज्रधारीदेव का इस भाँति ध्यान करके मूल बीज से स्थापित करना कहा गया है।८४। रक्तवर्ण, दो भुजा, रक्तवर्णके अश्व पर स्थित, भास्कर देव के ध्यान पूर्वक माया बीज से उनकी पूजा करनी चाहिए।८५। दो भुजा, श्वेत वर्ण, तीन नेत्र, पीतवस्त्र वाले उस सत्य देव की मंद कुन्द बीज द्वारा अर्चा करनी चाहिए। पीत वर्ण, और वृषभ पर स्थित वृषदेव

ऋक्षं नीलं चतुर्भुजं महिषारूढम् ॥
आच्छीम इति मन्त्रस्य होता यक्षऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शंकरो देवता ऋक्षप्रीतये विनियोगः ॥८७
अग्निमारभ्य पूजयेत् । अग्निं रक्तंसप्तजिह्वं रक्तवाससं पिङ्गाक्षं ध्यात्वा ।
अग्निं दूतमिति मन्त्रस्य भरद्वाजऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शङ्करो देवता अग्निप्रीतये विनियोगः ॥८८
वितथं रक्तमजवाहनं द्विभुजं ध्यात्वा गायत्र्या पूजयेत् ॥८९
गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता वितथप्रीतये विनियोगः ॥९०
यमं कृष्णमहिषारूढं दण्डहस्तं ध्यायेत् ॥
अच्छिय इतिमन्त्रस्य त्रिष्टुप्छन्दो भवानीदेवता यमप्रीतये विनियोगः ॥९१
गृहे क्षेत्रं रक्तमूर्ध्वकेशं महाभुजं रक्तवाससं ध्यात्वा वह्निबीजेन पूजयेत् ॥९२
गन्धर्वं श्वेतं द्विभुजं पद्मासनस्थं ध्यात्वा यमबीजेन पूजयेत् ॥९३
भृङ्गराजं रक्तसिंहासनारूढं दिव्ययज्ञोपवीतिनं ध्यायेत् ॥९४
होता यस्केति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिर्गायत्री छन्दो यशो देवता भृङ्गराजप्रीतये विनियोगः ॥९५
मृगं पीतं मृगारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ॥
कदाचनेति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिर्बृहती छन्दो वामदेवो देवता मृगप्रीतये विनियोगः ॥९६
नैर्ऋतार्द्धपदेषु च । निर्ऋतिं पीतं श्वेतं पद्मासनस्थं ध्यात्वा ॥

की पूजा आकाश बीज द्वारा करना बताया गया है ।८६। नील वर्ण, चार भुजाएँ और महिष पर स्थित उस ऋक्ष देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । 'आच्छीम' ति इस मन्त्र के होता यक्ष ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, शंकर देवता, ऋक्ष के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहें ।८७। पूजन विधान अग्नि देव से आरम्भ करना बताया गया है, सर्व प्रथम रक्तवर्ण, सात जिह्वाएँ, रक्तवस्त्र, तथा पिंगल नेत्र वाले उस अग्नि देव का इस भाँति ध्यानपूर्वक "अग्निं इतमिति" मंत्र के भरद्वाज ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शंकर देवता, अग्नि के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए ।८८। रक्तवर्ण अज (बकरा) वाहन, एवं दो भुजा वाले उस वितथ देव का ध्यान करके गायत्री द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।८९। गायत्री मंत्र के विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द, सविता देवता, वितथ के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है।९०। काले रंग के भैंस पर स्थित और दण्ड हाथ में लिए उस यमराज देव का इस भाँति से ध्यान करना बताया गया है । 'अच्छिय इति' इस मंत्र का त्रिष्टुप् छन्द, भवानी देवता यम के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।९१। रक्तवर्ण, ऊर्ध्वकेश, लम्बी भुजा एवं रक्त वस्त्र वाले उस क्षेत्र देव का ध्यान करके बह्निबीज द्वारा उनकी पूजा करना बतया गया है ।९२। श्वेत वर्ण, दो भुजा,एवं कमलासन पर स्थित उस गन्धर्व देव का ध्यान करके यम बीज द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।९३। रक्तवर्ण के सिंहासन पर स्थित और दिव्य यज्ञोपवीत धारण किये उस भृङ्गराज देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए ।९४। होतायस्केति' इस मन्त्रके भार्गव ऋषि गायत्री छन्द, यशोदेवता भृङ्गराज के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।९५। पीत वर्ण, मृग पर सुशोभित पीत वस्त्र धारण किये, उस मृग देव का ध्यान करके कदाचनेति' इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, बृहती छन्द, वामदेव देवता, मृगदेव के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए।९६। नैऋत के अर्ध स्थान भाग के स्थानों में पीत वर्ण; श्वेत वस्त्र,

कदाचनेतिमन्त्रस्य पङ्क्तिश्छन्दः सविता देवता निर्ऋतिप्रीतये विनियोगः ॥९७
नैर्ऋताद्धपदेषु च दौवारिकं श्वेतशरमारूढं त्रिनेत्रं सर्वाभरणभूषितं ध्यात्वा ॥
होतस्वेति मन्त्रस्य नरसिंहऋषिर्बृहती छन्दो गणेशो देवता दौवारिकप्रीतये विनियोगः ॥९८
श्यामं सुग्रीवं कृष्णमेषारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ।
स्वादित्येति मन्त्रस्य त्रिष्टुप्छन्दो वामनो देवता सुग्रीवप्रीतये विनियोगः ॥९९
सुमित्रिया न इति मन्त्रस्य कन्दर्पऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सूर्यो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः ॥१००
पुष्पदन्तं पीतं मेषारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ।
या ओषधीरिति मन्त्रस्य मन्मथऋषिर्जगती छन्दो वायुर्देवता पुष्पदन्तप्रीतये विनियोगः ॥१०१
असुरं कृष्णं कृष्णमाल्यैरलङ्कृतं कृत्वा ।
आकृष्णेति मन्त्रस्य हिरण्यवर्ण ऋषिर्जगती छन्दः सविता देवता असुरप्रीतये विनियोगः ॥१०२
असुरं कृष्णं नागहारान्वितं पद्मासनस्थं ध्यात्वा ।
आब्रह्मन्निति मन्त्रस्य नलिनऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो भवानी देवता सोमप्रीतये विनियोगः ॥१०३
रोगं कृष्णं नीलेन्दीवरधरं श्वेतवृषभारूढं ध्यात्वा ।
नमस्ते रुद्र इति मन्त्रस्य नारद ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्रीर्देवता रोगप्रीतये विनियोगः ॥१०४
वायुकोणादारभ्य पूजयेत् । वायुं धूम्रवर्णं ध्वजहस्तं मृगारूढं ध्यात्वा ॥

एवं पद्मासन पर स्थित, उस निऋति देव के ध्यान पूर्वक 'कदाचनेति' इस मन्त्र के पंक्ति छन्द, सविता देवता, निऋति के प्रीत्यर्थ इस विनियोग को कहना चाहिए ।९७। पुनः उन्ही स्थानों में श्वेत वर्ण के शरासन पर स्थित, तीन नेत्र, और सर्व भाँति के आभूषणों से सुसज्जित, उस दौवारिक देव का ध्यान करके 'होतस्वेति' इस मन्त्र के नरसिंह ऋषि, बृहती छन्द, गणेश देवता दौवारिक के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना बताया गया है । श्यामल वर्ण, कृष्ण वर्ण के मेष (भेंड़) पर स्थित, एवं पीताम्बर धारी उस सुग्रीवदेव का ध्यान करके 'स्वादित्येति' इस मंत्र के त्रिष्टुप् छन्द, वामन देवता, सुग्रीव देव के प्रसन्नार्थ इस विनियोग को कहना चाहिए ।९८-९९। 'सुमित्रियाने' ति इस मंत्र के कन्दर्प ऋषि, पंक्ति छन्द, सूर्य देवता, वरुण देव के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।१००। पीतवर्ण, मेष पर स्थित, एवं पीतवस्त्र धारण किये पुष्प दन्त देव का ध्यान करके 'या ओषधीरिति' इस मंत्र के मन्मथ ऋषि, जगती छन्द, वायु देवता, पुष्पदन्त के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।१०१। कृष्ण वर्ण के असुरों को कृष्ण वर्ण की मालाओं से अलंकृत करके 'आकृष्णेति' इस मंत्र के हिरण्य वर्ण ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता असुर के प्रसन्नार्थ इस विनियोग के उच्चारण करना चाहिए ।१०२। कृष्ण वर्ण सापों के हार से भूषित, एवं पद्मासन पर स्थित उस असुर के ध्यान करके 'आ ब्रह्मन्नि' ति इस मन्त्र के नलिन ऋषि, त्रिष्टुपछन्द, भवानी देवता, सोम के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ऐसा कहे ।१०३। कृष्ण वर्ण नीलकमल धारण किये तथा श्वेत वृषभ के आसन पर आसीन उस रोग के इस भाँति ध्यान करके 'नमस्ते रुद्र इति' इस मंत्र के नारद ऋषि, पंक्ति छन्द, श्री देवता रोग के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए।१०४। पूजा विधान वायुकोण से आरम्भ करना बताया गया है, धूएँ के समान वर्ण, हाथ में

देवा इति मन्त्रस्य बृहती छन्दो यमो देवता नागप्रीतये विनियोगः ॥१०५
श्वेतं सोमं श्वेतवर्णासनस्थं ध्यात्वा भद्रबीजेन पूजयेत् ॥१०६
रक्तं भल्लाटं पीतवाससं ध्यात्वा वह्निबीजेन पूजयेत् ।
पीतवाससमजवाहनं हारकेयूरान्वितं वायुबीजेन मन्दराद्यैः पूजयेत् ॥१०७
रक्तां दितिं नागहारान्वितां रक्तपद्मासनस्थां ध्यात्वा । मानार्य इति मन्त्रस्येति पूजयेत् ॥१०८
मानो त्वा इति मन्त्रस्य भार्गवऋषिः पंक्तिश्छन्दः पृथिवी देवता दितिप्रीतये विनियोगः ॥१०९
अदितिं पीतवर्णां सिंहारूढां पीताम्बरधरां ध्यात्वा ।
हिरण्यवर्ण इति मन्त्रस्य जनार्दनऋषिर्बृहतीछन्दः सोमो देवता अदितिप्रीतये विनियोगः ॥११०
एवं यथा विधायाथ होमं कुर्याद्यथाविधि । होमान्ते दक्षिणां दद्यात्काञ्चनं हेमसंयुतम् ॥१११
तडागयागपक्षे तु सुवर्णं चार्धमेव वा ॥११२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
वास्तुयागवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०

ध्वजा लिए, मृग वाहन पर स्थित उस वायु देव का इस प्रकार ध्यान करके 'देवा इति' इस मंत्र के बृहती छन्द, यम देवता, नाग के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।१०५। श्वेत वर्ण एवं श्वेत वर्ण के आसन पर विराजमान उस सोमदेव का इस भाँति से ध्यान करके भद्रबीज से पूजा करनी चाहिए ।१०६। रक्त वर्ण, एवं पीताम्बरधारी उस भल्लाट का ध्यान करके वन्हिबीज से अर्चा करनी चाहिए । पीतवस्त्र धारी, अज (बकरा) वाहन पर स्थित एवं हार केयूर आभूषणों से अलंकृत उस देव की पूजा वायु बीज द्वारा मन्दराओं से करना बताया गया है ।१०७। रक्त वर्ण, नाग हार से भूषित, एवं रक्तकमल के आसन पर आसीन उस दिति देवी का इस भाँति ध्यान करके 'मानार्य इति' इस मंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।१०८। 'मानो त्वा इति' इस मन्त्र के भार्गव ऋषि, पंक्ति छन्द, पृथिवी देवता, दिति देवी के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना बताया गया है ।१०९। पीतवर्ण, सिंह वाहन पर सुशोभित तथा पीताम्बर धारिणी उस अदिति, देवी का इस भाँति ध्यान करके 'हिरण्य वर्णा इति' इस मन्त्र के जर्नादन ऋषि , बृहती छन्द, सोम देवता अदिति के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।११०। इस प्रकार (सभी देवताओं के आवाहन पूजन के उपरांत) विधान पूर्वक हवन समाप्ति करके ब्राह्मणों को हेम संयुत काञ्चन की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, और सरोवर भाग में उसी भाँति सुवर्ण, अथवा उस के अर्धभाग के प्रदान भी करने चाहिए ।१११-११२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में वास्तुभागवर्णन
नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अथैकादशोऽध्यायः

पूजाक्रमवर्णनम्

सूत उवाच

अथ पूजाक्रमं वक्ष्ये पुराणस्मृतिचोदितम् । उत्तरे पश्चिमे वाथ पूर्वे चापि समाचरेत् ।।१
नदीतीरे नेमिप्रान्ते दशद्वादशसंख्यया । मण्डलं रचयेद्विप्राश्चरुकद्वयसंयुतम् ।।२
त्रिभागं विभजेत्क्षेत्रं मध्यभागद्वयेन तु । त्रिहस्तवेदिकां कुर्यात्तालोत्सेधामुदक्प्लवाम् ।।३
उत्तराशे दक्षिणे चारत्निहस्तान्तरेऽपि च । त्रिमेखलां हस्तमात्रां गुणवेदसमन्विताम् ।।४
मूले सार्धं च शुक्लां च मेखलां तु तथैव च । चतुरङ्गुलिकां वेदिं मध्योन्नतां प्रकल्पयेत् ।।५
षट्सप्ताङ्गुलिकां योनिं पश्चिमे मेखलोपरि । विन्यसेन्नाभिसंयुक्तमेवं कुण्डं प्रकल्पयेत् ।।६
श्राद्धं वृद्ध्यात्मकं कुर्यात्सङ्कल्पं मानसं चरेत् । श्राद्धार्थं नैव सङ्कल्पेत्तथा वै देवदर्शने ।।७
गयाश्राद्धार्थकं चाष्टतीर्थश्राद्धार्थमेव च । ऐशान्यां कलशे देवं पूजयेद्गणनायकम् ।।८
मध्ये कुण्डे महांश्चैव विष्णुदेवं दिगीश्वरान् । ब्रह्माणं चाग्निकुण्डे तु स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।।९

अध्याय ११

पूजाक्रम का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरांत मैं पुराण एवं स्मृति के अनुसार पूजा के क्रम बता रहा हूँ, सुनो ! उसका क्रमिक आरम्भ उत्तर, पश्चिम, अथवा सूर्य की ओर से होना चाहिए ।१। विप्रवृन्द ! नदी के तट पर अथवा कूप के समीप में दश-बारह संख्या के मण्डल का जिसमें चरु (हवि) बनाने के लिए दो स्थानों की कल्पना की गयी हो, निर्माण करना चाहिए ।२। सर्वप्रथम उस क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित करके उसके मध्यम के दो भागों में तीन हाथ प्रमाण करके उसके मध्य के दो भागों में तीन हाथ प्रमाण की वेदी की रचना करनी चाहिए । जिसकी उचाई ताल विस्तृत (अंगूठे और मध्यमा के बीच भाग) के समान हो और (जल के निकालने के लिए) उत्तर की ओर ढालू हो ।३। उसी भाँति अरत्नि मात्र एक हांथ की दक्षिण उत्तर दिशा वाली भूमि भी होना चाहिए और गुण, वेद युक्त हस्त मात्र की तीन मेखला के निर्माण भी ।४। मूल भाग के सार्ध (डेढ़) भागमें शुक्ल वर्ण की उसी भाँति की मेखला होनी चाहिए और चार अङ्गुल की वेदी की जिसका मध्यभाग उन्नत हो, रचना होनी चाहिए ।५। पश्चिम भाग की मेखला के ऊपर छः सात अंगुल की योनि के निर्माण पूर्वक इस भाँति के नाभि संयुक्त कुण्ड की कल्पना की जाती है ।६। (वहाँ) वृद्धि-श्राद्ध और मानसिक संकल्प करना परमावश्यक बताया गया है, क्योंकि श्राद्धार्थ और देवता के दर्शन में संकल्प करने का विधान नहीं है ।७। गया श्राद्ध और अष्ट तीर्थ श्राद्ध के निमित्त ईशान कोण में स्थित कलश में गणनायक देव का आवाहन पूजन करना चाहिए ।८। कुण्ड के मध्य भाग में दिक्पालों एवं विष्णु देव और ब्रह्मा की अग्नि कुण्ड में उनके नाम मंत्रों द्वारा पूजा करना बताया गया है ।९।

ध्वजहस्तं महाबाहुं मरुद्भिश्चोपसेवितम् । द्विभुजं धूम्रवर्णं च वायुं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ।।३८
राजान इति मन्त्रेण पूजयेत्सिततण्डुलैः । ऋषिर्नारायणश्छन्दो गायत्री देवता द्विजाः ।।३९
देवता च भवेद्वायुः प्रीतये तस्य योजयेत् । पूषारक्तश्च द्विभुजो रक्तपद्मासनस्थितः ।।४०
राजान इति च ऋचा पूजयेद्गन्धचन्दनैः । गोभिलोऽस्यऋषिः पंक्तिश्छन्दोऽथ जगती स्मृतम् ।।
देवता च भवेद्वायुः प्रीतये विनियोजयेत् ।।४१
वितथं श्यामवर्णं च चतुर्भिर्बाहुभिर्वृतम् । मृगाक्षपाशखट्वाङ्गशूलं च दधतं करैः ।।
मेषारूढं विशालाक्षं राजानो मह्यमीरयन् ।।४२
गृहक्षतं तथा शुक्लं चतुर्भिर्गर्दभैर्वृतम् । शूलं दण्डं च खट्वांगं दधतं वृषवाहनम् ।।४३
पीतवस्त्रधरं देवं जटामुकुटसंयुतम् । आशुः शिशान इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।४४
पुष्पदन्त ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दश्च परिकीर्तितम् । ईश्वरस्य देवतायाः प्रीतये विनियोजयेत् ।।४५
यमं ध्यायेत्कृष्णवर्णं महिषस्थं द्विबाहुकम् । दण्डपाशधरं चैव केयूराद्यैर्विभूषितम् ।।४६
ईशानेति च मन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना । वामदेव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कालोऽस्य देवता ।।४७
षडाननं च गन्धर्वं पीतं ध्यायेच्चतुर्भुजम् । पीताम्बरधरं चैव नानाभरणभूषितम् ।।४८
यद्देव इतिमन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना । हारीतोऽस्य ऋषिःप्रोक्तो जगतीछन्द ईरितम् ।।
हिरण्यगर्भो देवताऽस्य प्रीतये विनियोजयेत् ।।४९

प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।३६-३७। हाथ में ध्वजा लिए, महावाहु, मरुद्गणों से सुसेवित, दो भुजा तथा धूएँ के समान वर्ण उस वायु देव का इस भाँति के ध्यान पूर्वक पूजन करना चाहिए ।३८। 'राजान इति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए श्वेत चावल द्वारा पूजा करना बताया गया है । द्विजगण इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, वायुदेवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, दो भुजा और रक्त कमल पर सुखासीन उस पूषा रक्त देव की 'राजन इति' इस ऋचा द्वारा गन्ध चन्दन समेत पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के गोभिल ऋषि, पंक्ति तथा जगती छन्द वायु देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।३९-४१। श्यामल वर्ण, चार भुजाएँ, मृग अक्षपाश, खट्वांग और शूल अस्त्रों को हाथों में लिए मेष (भेंड़) वाहन पर स्थित, एवं विशालाक्ष उस देव की पूजा 'राजानो मह्यमीरयन्निति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिए ।४२। शुक्ल वर्ण, चारों ओर गधों से घिरे, शूल, दण्ड और खट्वांग अस्त्रों को धारण किये, वृषभ पर स्थित ।४३। पीताम्बरधारी, जटामुकुट विभूषित उस गृहक्षत देव की 'आशुः शिशान इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्ध चन्दन द्वारा पूजा करनी चाहिए ।४४। इस मन्त्र के पुष्पदन्त ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, ईश्वर देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।४५। कृष्णवर्ण, महिष पर स्थित, दो भुजा, दण्ड-पाश धारण किये, एवं केयूर (बाहुभूषण) आदि आभूषणों से सुशोभित उस यम देव का इस भाँति ध्यान करके 'ईशानेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं कालदेवता, हैं।४६-४७। पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, पीताम्बरधारी, अनेक आभूषणों से विभूषित उस देव की पूजा 'यद्देव इति' इस मन्त्र द्वारा कुसमों से करनी चाहिए । इस मन्त्र के हारीत ऋषि, जगती छन्द, हिरण्यगर्भ देवता हैं, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।४८-४९। जटाजूटविभूषित, स्वच्छ पीताम्बर

भृङ्गराजं जटारूढं स्वच्छं पीताम्बरं शुभम् । चक्षुः पीतेति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥५०
ऋषिश्चागस्तिराख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम् । विश्वेदेवा देवता च भृङ्गराजस्य प्रीतये ॥५१
पीतं मृगं मृगारूढं जटामुकुटमंडितम् । परो देवा इति मन्त्रेण पूजयेद्बलिपायसैः ॥५२
कपिलश्च ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् । वरुणो देवता चास्य प्रीतये विनियोजयेत् ॥५३
ध्यायेत्पितृगणं शुक्लं चतुर्भिर्बाहुभिर्वृतम् । पितृभ्य इति मन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना ॥५४
शुनः शेष ऋषिश्चास्य त्रिष्टुप्छन्दश्च देवता । विश्वेदेवाः समाख्याताः पितृमेधेन पूजयेत् ॥५५
दौवारिकं चाष्टभुजं कृष्णवर्णं विचिन्तयेत् । रक्तवस्त्रं पिङ्गलाक्षं कृष्णव्याघ्रोपरि स्थितम् ॥५६
यो नः पिबतेति मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः ॥५७
वैश्वानर ऋषिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम् । देवता च भवेच्छक्तिर्विनियोगश्च पूजने ॥५८
शङ्खाभं चैव सुग्रीवं द्विभुजं चक्रधारिणम् । हंसारूढं महाकायं बलिविज्ञानकारणम् ॥५९
शङ्खपद्मधरं चैव महिषस्थं विचिन्तयेत् । स इषु हस्तेति मन्त्रेण पूजयेद्रक्तभूषणैः ॥६०
ऋषिः शङ्खस्तथाच्छन्दः पङ्क्तिः सोमोऽथ देवता । श्वेतं जलाधिपं ध्यायेद्गन्धर्वाद्यैश्च वेष्टितम् ॥६१
ऋष्यासनगतं ध्यायेच्छ्वेतगन्धेन चर्चयेत् । बृहस्पते परिदीया इति मन्त्रेण भक्तितः ॥६२
त्र्यंबकोऽस्य ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो देवो जलाधिपः । ध्यायेच्च असुरं रक्तं करालं नरवाहनम् ॥६३

धारी, एवं शुभ उस भृङ्गराज देव की 'चक्षुः पीतेति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए गन्ध चन्दनों द्वारा पूजा करनी चाहिए।५०। इस मन्त्र के आगस्ति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वेदेवा देवता, भृङ्गराज के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।५१। पीत वर्ण, मृग परिस्थित तथा जटा मुकुटधारी उस मृगदेव की, 'परोदेवा इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक बलि और पायस (खीर) द्वारा पूजा करनी चाहिए।५२। इस मन्त्र के कपिल ऋषि, गायत्री छन्द, एवं वरुण देवता, हैं उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है।५३। शुक्ल वर्ण, और चार भुजाओं को धारण किये उन पितृगणों के ध्यान करके 'पितृभ्य इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए।५४। इस मन्त्र के पुनः शेष ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वे देवा देवता हैं, पितृ मेध द्वारा उनकी पूजा होनी चाहिए। आठ भुजाएँ, कृष्ण वर्ण, रक्त वस्त्र, पिङ्गल नेत्र एवं काले वाघ पर स्थित उस दौवारिक देव का ध्यान करके 'योनः पितेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति तन्मय होकर उनकी पूजा करनी चाहिए।५५-५७। इस मन्त्र के वैश्वानर ऋषि, गायत्री छन्द शक्ति देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ पूजन में यह विनियोग कहना चाहिए।५८। शंख की भाँति आभा, सुन्दर गला दो भुजा, चक्रधारी, हंस पर स्थित, महाकाय, बलि-विज्ञान के कारण, शंख पद्म धारण किये तथा महिष पर स्थित, उस (शंख) देव का इस भाँति ध्यान करके 'स इषु हस्तेति' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए रक्त वर्ण के भूषणों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।५९-६०। इस मन्त्र के शंख ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं सोम देवता हैं। श्वेत वर्ण, और गन्धर्वों से सुसेवित, एवं ऋषि के आसनों पर सुशोभित उस जलाधिप (वरुण) देव की, भक्ति पूर्वक 'बृहस्पते परिदीया इति' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए श्वेत गन्ध से उनकी अर्चा करनी चाहिए।६१-६२। इस मन्त्र के त्र्यम्बक ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और वरुण देवता हैं, रक्तवर्ण, भीषण काय, नरवाहन,

दशभिर्बाहुभिर्युक्तं कृष्णवस्त्रानुलेपनम् । शन्नो देवीति मन्त्रेण कृष्णपुष्पैः प्रपूजयेत् ।।६४
ऋषिर्वैश्वानरश्छन्दो विराडित्यभिधीयते । वैश्वानरोत्तरो देवः प्रीतये तस्य योजयेत् ।।६५
शेषं षडाननं ध्यायेत्कृष्णं च मधुपिङ्गलम् । मेषस्थं कुण्डलोपेतं नागयज्ञोपवीतिनम् ।।
उद्वर्ष इति मन्त्रेण पूजयेद् भूतिमिच्छता ।।६६
पापं रक्तं त्रिनेत्रं च रक्तं पान्ते विचिन्तयेत् । रक्तश्मश्रुधरं चैव वरहस्तं विचिन्तयेत् ।।६७
सिद्धो वीरेति मन्त्रेण कृष्णपुष्पैरथार्चयेत् । यमं च कृकराक्षं च आकुञ्चन्मूर्धजे द्विजाः ।।६८
कपिलोऽस्य ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुप् चैव प्रकीर्तितम् । देवता च यशः स्यात् प्रीतये विनियोजयेत् ।।६९
यमं च कृकराक्षं च क्षमाकुञ्चितमूर्धजम् । खरस्थं द्विभुजं ध्यायेदिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।७०
वासुकिः स्यादृषिश्चास्य पङ्क्तिश्छन्दश्च देवता । हिरण्यगर्भ इत्युक्तः प्रीतयेऽस्य नियोजयेत् ।।७१
अर्धपीतं च द्विभुजं रक्ताक्षं धूम्रमेव वा । देवताभिश्च सम्पन्नं वातो वारेतिरेव च ।।७२
ऋषिर्वायुश्च गायत्री छन्दो वायुश्च देवता ।।७३
मुग्धरक्तं शङ्खचक्रगदापद्मधरं तथा । पीतवस्त्रं पल्यगस्थं हारकेयूरमण्डितम् ।।७४
अवसृष्टा परापत इति मन्त्रेण पूजयेत् । अग्निश्चास्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दः सोमश्च देवता ।।७५
पीतं भल्लाटकं ध्यायेत्पद्मस्थं रक्तभूषणम् । द्विभुजं पद्महस्तं च देवमेवं विचिन्तयेत् ।।
यन्मातुरिति मन्त्रेण पूजयेत्सिततण्डुलैः ।।७६

दशभुजाओं से युक्त, काले वस्त्र से आच्छन्न, उस अक्षर के इस इस भाँति ध्यान करके 'शन्नो देवीति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक कृष्णवर्ण के पुष्पों द्वारा उनकी पूजा बतायी गयी है ।६३-६४। इस मन्त्र के वैश्वानर ऋषि, विराड् छन्द, वैश्वानर देवता उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । षट्मुख, कृष्ण और मधु पिंगल वर्ण, मेष (भेंड़) पर स्थित कुण्डल मण्डित सर्पो के यज्ञोपवीत धारण किये, उसे शेष देव के इस भाँति ध्यान करके ऐश्यवर्येच्छुक को 'ऊद्वर्ष इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए ।६५-६६। रक्त वर्ण, तीन नेत्र, रक्तवर्ण के नेत्र आँत, दाढ़ी मूछें एवं वरदहस्त उस पाप की 'सिद्धो वीरेति' इस मन्त्र के उच्चारण करके कृष्ण वर्ण के पुष्पों से पूजा करनी चाहिए । द्विजगण ! उसी भाँति कृकर (वायु) के समान नेत्र, घुंघुराले बाल वाले यम की भी । इस मन्त्र के कपिल ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, यशोदेवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । 'यमं च कृकराक्षं च क्षमा कुञ्चितमूर्धजमिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उनका ध्यान करना बताया गया है । इस मन्त्र के वासुकि ऋषि, पंक्ति छन्द, हिरण्य गर्भ देवता हैं उनके प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।६७-७१। अर्ध पीत, दो भुजा, रक्तवर्ण की आँखे, धूएँ के समान वर्ण देवों से सुसेवित वायु और वारेति (देव) के वायु ऋषि, गायत्री छन्द, वायु देवता है ।७२-७३। मनमोहक रक्तवर्ण, शंख, चक्र गदा और पद्म धारण किये, पीत वस्त्र, पलंग पर स्थित एवं सब केयूराभूषणों से सुसज्जित देव की 'अवसृष्टा परापत इति- इस मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के अग्नि ऋषि, छन्द, सोम देवता हैं ।७४-७५। पीत वर्ण, कमलासन पर आसीन, रक्तवर्ण के भूषणों से सुशोभित, एवं दो भुजा और कर कमल विभूषित उस भल्लाटक देव का इस भाँति ध्यान करने के उपरान्त 'यन्मातुरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक श्वेत तण्डुल (चावल) द्वारा

जम्भकोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री समुदाहृता । देवता च भवेत्कुम्भः प्रीतये विनियोगतः ॥७७
सोमं ध्यायेच्छ्यामरूपं पद्मासनगतं परम् । नानाभरणसम्पन्नं किरीटवरधारिणम् ॥
मर्माणितेतिमन्त्रेण गन्धाद्यैरपि पूजयेत् ॥७८
ऋषिः स्वार्थो वेदश्छन्दो जगतीत्यभिधीयते । देवता च भवेत्सोमः प्रीयते विनियोजयेत् ॥७९
दर्पं ध्यायेत्कृष्णवर्णं कृष्णाम्बरधरं तथा । नागयज्ञोपवीतिं च शिखिस्तम्भं द्विजोत्तमाः ॥८०
पञ्चदीशेति मन्त्रेण गन्धाद्यैःपरिपूजयेत् ॥८१
मन्त्रस्यास्य ऋषिश्चास्य पञ्चायतनमीरितम् । पङ्क्तिश्छन्दस्तथा प्रोक्तं देवः पञ्चाननः स्मृतः ॥८२
श्यामवर्णां दितिं ध्यायेद्द्विभुजां पीतविग्रहाम् । सर्वलक्षणसम्पन्नां सर्वालङ्कारशोभिताम् ॥८३
सुपर्णोऽसीति मन्त्रेण पूजयेत्पीतचन्दनैः ॥८४
ऋषिर्नारायणश्छन्दो जगती परिकीर्त्यते । भवेद्देवो भार्गवश्च इष्टार्थे परिपूजयेत् ॥८५
रक्ताभामदितिं ध्यायेत्सर्वालङ्कारभूषिताम् । शुक्रांभारितिमन्त्रेण गन्धाद्यैरभिपूजयेत् ॥८६
वामदेव ऋषिश्चास्य गन्धाद्यैरभिपूजयेत् । देवः शुक्रः समाख्यातः स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥८७
ईशानादिकोणगतान्पूजयेत्सुसमाहितः । आपं ध्यायेच्छुक्लवर्णं कुण्डलाद्यैर्विभूषितम् ॥८८
इदं विष्णुरिति मन्त्रेण त्रिगन्धेन समर्चयेत् ॥८९
ऋषिः स्यात्कर्दमश्छन्दो विराडित्यभिधीयते ॥९०

उनकी पूजा करनी चाहिए ।७६। इस मन्त्र के जम्भक ऋषि, गायत्री छन्द, कुम्भ देवता हैं, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।७७। श्यामल वर्ण, पद्मासन स्थित, अनेक आभूषणों से सुसज्जित तथा उत्तम किरीट धारण किये उस सोम देव का इस भाँति ध्यान करके 'मर्माणि तेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।७८। इस मन्त्र के वेद ऋषि, जगती छन्द, सोम देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । द्विजोत्तम ! कृष्ण वर्ण, कृष्णाम्बरधारी, सर्पों के यज्ञोपवीत, एवं मयूर वाहन पर स्थित उस दर्प देव के ध्यान करके 'पञ्चदीशेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि द्वारा पूजन करना चाहिए ।७९-८१। इस मन्त्र के पञ्चायतन ऋषि, पंक्ति छन्द, पञ्चानन देवता हैं ।८२। श्यामवर्ण, दो भुजा, पीत काय, सर्वलक्षण सम्पन्न एवं समस्त अलंकारों से विभूषित, उस दिति देवी के ध्यान पूर्वक 'सुपर्णोऽसीति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए पीत चन्दन द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।८३-८४। इस मन्त्र के नारायण ऋषि, जगती छन्द, भार्गव देवता, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है ।८५। रक्तवर्ण, समस्त अलंकारों से अलंकृत, उस अदिति देवी का इस भाँति ध्यान करके 'शुक्राम्भारिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादिकों से उनकी पूजा करनी चाहिए ।८६। इस मन्त्र के वामदेव ऋषि हैं, जिनकी गन्धादि पदार्थों द्वारा पूजा करनी चाहिए । शुक्र देवता भी उनकी स्तुति में नियुक्त करने के लिए बताये गये हैं ।८७। पश्चात् ईशानादि कोण में स्थित देवताओं की पूजा होनी चाहिए । सर्व प्रथम शुक्लवर्ण, एवं कुण्डलादि आभूषणों से सुशोभित उस जल देव का इस भाँति ध्यान करके 'इदं विष्णुरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक तीन गन्धों से उनकी पूजा करनी चाहिए ।८८-८९। इस मन्त्र के कर्दम ऋषि, विराड

देवः सोमःसमाख्यातः प्रीतये विनियोजयेत् । सरितं द्विभुजं रक्तं रक्तश्वेताम्बरान्वितम् ।।९१
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं वरदं तं विचिन्तयेत् । पयसा शुक्ल इति मन्त्रेण पूजयेत्कमलादिना ।।९२
नारायण ऋषिश्चास्य पङ्क्तिश्छन्दः प्रकीर्त्यते । नारायणः स्वयं देवः प्रीतये विनियोजयेत् ।।९३
जयं ध्यायेत्पीतवर्णं द्विभुजं वरहस्तकम् । देवं किरीटसम्पन्नं सर्वालङ्कारभूषितम् ।।९४
दृष्ट्वा परिश्रुत इति मन्त्रेणानेन पूजयेत् । ऋषिर्नारायणश्छन्दः पङ्क्तिः सोमोऽथ देवतः ।।९५
रुद्रं ध्यायेद्रक्तवर्णं शीतांशुकृतशेखरम् । द्विभुजं शूलहस्तं च डमरुं च नराभवेत् ।।९६
दिवो मूर्धन्निति मन्त्रेण ऋषयः समुदाहृताः । ऋषिः स्यात्काश्यपश्छन्दो विराडित्यभिधीयते ।।९७
स्वयं देवो विनियोगः स्तुतौ च विनियोजयेत् । द्विभुजं रक्तपद्मस्य पङ्कजद्वयधारिणम् ।।९८
अस्य किरीट इति मन्त्रेण रक्तस्रक्चन्दनादिभिः । पूजयेत्परया भक्त्या ऋषिर्नील उदाहृतः ।।
त्रिष्टुप्छन्दो देवता स्याद् ह्लदोपि परिकीर्तितः ।।९९
सवितारं तथाध्यायेत्पद्मस्थं द्विभुजं प्रभुम् । नानाभरणशोभाढ्यं सप्ताश्वरथमण्डितम् ।।१००
यद्देवा इति मन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् । ऋषिरौतथ्य आख्यातः प्रीतये विनियोजयेत् ।।१०१
ध्यायेद्रक्तं विवस्वन्तं द्विभुजं पद्मविग्रहम् । अविद्या इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।१०२
ऋषिर्गन्धः समाख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दश्च ईरितम् । देवता च भवेत्सोमः स्तुतौ च विनियोजयेत् ।।१०३

छन्द, सोम देवता हैं ।९०। उनकी प्रसन्नता के लिए यह विनियोग है : दो भुजा, रक्तवर्ण, रक्तवर्ण एवं श्वेतवर्ण के वस्त्रों से आवृत, हरिचन्दन से अनुलिप्त अंग, एवं वरदायक उस अन्तः सलिला देवी का ध्यान करके 'पयसाशुक्ल इति' इस मंत्र द्वारा कमलों आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए ।९१-९२। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, स्वयं नारायण देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।९३। पीत वर्ण, दो भुजा, वरदहस्त, किरीट से सुशोभित, समस्त अलंकार से अलंकृत जय देव का इस भाँति ध्यान करके 'दृष्ट्वा परिश्रुत इति' इस मंत्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं सोम देवता हैं।९४-९५। रक्तवर्ण, चन्द्रमा से सुशोभित शिर, दो भुजा, हाथ में शूल और डमरू लिए उस रुद्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'दिवो मूर्धन्निति' इस मंत्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के काश्यप ऋषि, विराड् छन्द, रुद्र देवता हैं, इस प्रकार के विनियोग को उनकी स्तुति में कहना चाहिए। दो भुजा, एवं दो रक्त कमल को धारण करने वाले।९६-९८। उस देव की पूजा 'अस्य किरीट इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति से ओत प्रोत होकर रक्त वर्ण की माला एवं चन्दनादि से करनी चाहिए। इस मंत्र के नील ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, ह्लद देवता हैं। कमल पर स्थित, दो भुजा, प्रभु, अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, सात घोड़े जुते रथ से मंडित, उस सविता (सूर्य) देव का इस भाँति ध्यान करके 'यद्देवा इति' इस मंत्र द्वारा गंधादिकों से उनकी पूजा करनी चाहिए इस मंत्र के औतथ्य ऋषि, उनके प्रसन्नार्थ विनियोग में कहे जाते हैं।९९-१०१। रक्तवर्ण, दो भुजा, कमल की शरीर उस विवस्वान् देव का इस भाँति ध्यान करके 'अविद्या इति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए गन्ध चन्दनों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।१०२। इस मंत्र के गन्ध ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सोम देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए।१०३। पीतवर्ण, वृषभ पर स्थित,

विबुधाधिपं ततो ध्यायेत्पीतं वृषभवाहनम् । चतुर्भुजं यष्टिहस्तमक्षमालैकहस्तकम् ।।
त्रिनेत्रं रक्तवस्त्रं च मुकुटाद्यैरलङ्कृतम् ।।१०४
ऋषिर्हारीत इत्युक्तो जगतीच्छन्द ईरितम् । देवता च भवेच्छक्तिः प्रीतये विनियोजयेत् ।।१०५
मित्रं ध्यायेच्छुक्लवर्णं वराभयकरं परम् । मेषस्थं च त्रिनेत्रं च किरीटवरमण्डितम् ।।१०६
धनाकरस्त्विति मन्त्रेण पूजयेद्दधिपायसैः ।।१०७
ऋषिरौतथ्य इत्युक्तो जगती छन्द ईरितम् । देवता च भवेद्यक्ष्मा प्रीतये विनियोजयेत् ।।१०८
पीतास्यं राजयक्ष्माणं करालं च विचिन्तयेत् । यशोरूपमिति मन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् ।।१०९
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिर्गायत्री छन्द ईरितम् । यक्ष्मा च देवता चैव स्तुतौ च विनियोजयेत् ।।११०
शुक्लाम्बरधरं ध्यायेद्द्विभुजं शिखिवाहनम् । यमं विनेति मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः ।।१११
ऋषिः स्यान्नारदः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम् । विवस्वान्देवता चैव क्रतौ च विनियोजयेत् ।।११२
एवं ध्यात्वा विवस्वन्तं महाकायं महोदरम् । अभिन्नरूपमन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् ।।११३
काश्यपोऽस्य ऋषिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवः शचीपतिः ।।११४
बहिरीशानकोणेषु देवादीन्परिपूजयेत् । कूष्माण्डैर्वरणापुष्पैः शौरकैर्वा समर्चयेत् ।।११५
पीतां करालिकां ध्यायेच्चरकीं वरवर्णिनीम् । स्वब्जस्थां द्विभुजां चैव गुञ्जाहारोपशोभिताम् ।।११६

चारभुजाएँ, हाथों में छड़ी और अक्षमाला लिए, तीन नेत्र, रक्तवर्ण के वस्त्र, एवं मुकुटादि आभूषणों से अलंकृत उस विक्रमाधिपति देव का इस भाँति ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए । उनके मन्त्र के हारीत ऋषि, जगती छन्द, शक्ति देवता हैं, इस विनियोग को उनके प्रसन्नार्थ उच्चारण करना चाहिए ।१०४-१०५। शुक्लवर्ण, वरदान और अभयदान प्रदायक, उत्तम, मेष (भेंड़) पर स्थित, तीन नेत्र उत्तम किरीट से सुसज्जित, उस मित्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'धनाकरस्त्विति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक दही, और खीर द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिएं ।१०६-१०७। इस मन्त्र के औतथ्य ऋषि, जगती छन्द, एवं यक्ष्मा देवता हैं उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।१०८। पीत मुख तथा भीषण स्वरूप उस राज यक्ष्मा देव का इस भाँति ध्यान करके 'यशोरूपमितिः' इस मन्त्र के द्वारा गन्धों आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि, गायत्री छन्द, यक्ष्मा देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है ।१०९-११०। शुक्लाम्बर धारण किये, दो भुजा, एवं मयूर वाहन वाले उस देव का इस भाँति ध्यान करके भक्ति किये, दो भुजा, एवं मयूर वाहन वाले उस देव का इस भाँति ध्यान करके भक्ति पूर्वक 'यमं विनेति' इस मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।१११। इस मन्त्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, विवस्वान् देवता हैं, यज्ञ में तदर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए।११२। इस भाँति महाकाय एवं महान् उदर वाले उस विवस्वान् का ध्यान करके 'अभिन्नरूपेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि से उनकी पूजा करनी चाहिए।११३। इस मन्त्र के काश्यप ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शची पति देवता हैं ।११४। बाहरी भाग के ईशान कोण में स्थित देवों की पूजा कूष्माण्ड (कुम्हड़े), वरणा पुष्प अथव शौरकों द्वारा करनी चाहिए।११५। पीतवर्ण, करालवदन, कमलासन पर स्थित, दो भुजा, गुञ्जे के हार से सुसज्जित, उस उत्तम नायिका चरकी देवी का इस भाँति ध्यान करके

पीतिन्यरूपमन्त्रेण पूजयेद् भूतिमिच्छुकः । बलदेवऋषिश्चास्य छन्दो गौरी च देवता ।।११७
ध्यायेद्विदारिकां रक्तां नवयौवनसंयुताम् । पवित्रेण पुनीहीति मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।।११८
ऋषिगर्गः समाख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दोऽस्य देवता । रुद्रोऽपि च समाख्यातः स्तुतौ च विनियोजयेत् ।।११९
पापादिराक्षसीं ध्यायेत्सौरभेयोपरिस्थिताम् । कया न इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ।।१२०
ऋषिः सुवर्ण आख्यातः पङ्क्तिश्छन्दः प्रकीर्तितम् । देवता च महादेव इष्टार्थे विनियोजयेत् ।।१२१
कुण्डवेद्या अन्तरे च स्थापयेद्विधिवद्बुधः । पर्वताग्रमृदं चैव गजदन्तमृदं तथा ।।१२२
वल्मीके सङ्गमे चैव राजद्वारचतुष्पथात् । कुशमूलमृदं चैव यज्ञियस्य वनस्पतेः ।।१२३
इन्द्रवल्ली तथाक्रान्त अमृती त्रपुषस्य च । मालती चम्पकं चैव तथा उर्वारुकस्य च ।।१२४
पारिभद्रस्य पत्रैश्च परितः परिवेष्टनम् । पञ्चतुङ्गस्य परितो मुखे कुर्यात्फणान्वितम् ।।१२५
श्रीफलं बीजपूरं च नालिकेरं च दाडिमम् । धात्री जम्बुफलं चैव अन्यथा दोषमादिशेत् ।।१२६
पञ्चरक्तं सुवर्णं च निक्षिपेद्वरुणं यजेत् । पञ्चोपचारैर्विधिवद्गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।।१२७
उद्वर्तन इति मन्त्रेण वरुणं च पुनर्यजेत् ।।१२८
अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्विष्णुश्छन्द उदाहृतम् । गायत्री देवता पाशी प्रीतये विनियोजयेत् ।।१२९
पञ्चगन्धान्विनिक्षिप्य हस्तं दत्त्वा पठेत्ततः ।।१३०
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च महाह्रदाः । आयान्तु सर्वपापघ्नाः सर्वलोकसुखावहाः ।।१३१

'पीतिन्य रूपेति' इस मन्त्र के उच्चारण करके अपने ऐश्वर्य के लिए उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के बलदेव ऋषि, गौरी छन्द एवं देवता हैं ।११६-११७। रक्त वर्ण एवं नव यौवन पूर्ण, उस विदारिका देवी का इस भाँति ध्यान करते हुए 'पवित्रेण पुनीहीति' इस मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के गर्ग ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, रुद्र देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।११८-११९। वृषभ पर स्थित पापादि राक्षसियों का पूजन 'कयानेति' इस मन्त्र द्वारा गंध चन्दनों से सुसम्पन्न करना चाहिए ।१२०। इस मन्त्र के सुवर्ण ऋषि, पंक्ति छन्द, महादेव देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।१२१। विद्वान् को कुण्ड की वेदी के अंतराल (मध्य) भाग में पर्वत के अग्रभाग एवं गजराज के दन्ताग्र भाग की मिट्टी, वल्मीकि संगम में राजद्वार, चौराहे, कुश के मूलभाग तथा यज्ञीय वृक्ष की मिट्टियों को डालना चाहिए ।१२२-१२३। इन्द्रवल्ली मालती, चम्पा, ककड़ी एवं नीम के पत्रों द्वारा उसे चारों ओर से आवेष्टित करके उस उत्तम पाँचों मुख पर श्रीफल, बीजपूर, नारियल, अनार, आँवला अथवा जामुन के फलों द्वारा पाँच फण बनाने चाहिए । अन्यथा दोषभागी होना पड़ता है ।१२४-१२६। रक्तवर्ण की पाँच वस्तुएँ और सुवर्ण उस (कलश) में प्रक्षेप करके वरुण की पूजा पंचोपचार गन्धपुष्पादि द्वारा करनी चाहिए, पश्चात् 'उद्वर्तन इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक वरुण देव की पुनः पूजा करनी आवश्यक होती है ।१२७-१२८। इस मन्त्र के विष्णु ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग कहना चाहिए ।१२९। उसमें पाँचों गन्धों का प्रक्षेप (डाल) करके हाथ से स्पर्श करते हुए इस भाँति पढ़ना चाहिए—समस्त समुद्र, नदियाँ, सरोवर, एवं महान तालाबगण, ये सभी समस्त पापों के हननार्थ तथा सभी लोगों को सुखप्रदान करने के लिए यहाँ उपस्थित होने की कृपा करें, गंगादिक सभी

गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदाः नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥१३२
अधोराज्यष्टककृता वास्तोष्पतय इत्यपि । शतं वा चाष्टसंयुक्तं सहस्रं वा विशेषतः ॥१३३
शतार्धं वा हुनेद्विप्रस्तिलैर्वा तण्डुलैः सह । पालाशैर्वा पिप्पलैर्वौदुम्बरैर्वा समाचरेत् ॥१३४
पयोदध्यादिभिर्वापि मध्वाज्यैर्वा विशिष्यते । अन्येषां च व्रतेनैव एकैकामथ वाहुतिम् ॥१३५
अष्टाविंशतिभिश्चान्यैरष्टाष्टौ पञ्चपञ्च वा ॥१३६
चरक्यादींश्चासनैश्च पिष्टकैर्वटकेन वा । रक्तपुष्पेण पत्रेण त्रिमध्वक्तेन यत्नतः ॥१३७
वास्तोष्पते दृढं जप्त्वा यजेद्वास्तुपतिं यदा । पञ्चोपचारैर्विधिवत्साङ्गोपाङ्गैरनन्तरम् ॥१३८
बलिमासादयेत्पश्चाद्दद्यादेकैकशः क्रमात् । ब्राह्मणैश्चैव दद्याच्च सदा आज्यं समाक्षिकम् ॥१३९
शाल्यन्नं शिखिने दद्यात्तथा नीलोत्पलानि च । ओदनं सोत्पलं दद्यात्पर्जन्याय विचक्षणः ॥१४०
जयाय पिष्टकं कार्यमिन्द्राय घृतमोदकः । सूर्याय पिष्टकान्नं च सत्याय यवपूलिकाम् ॥१४१
भ्रमाय मत्स्यमांसान्नं शष्कुलीमथ पिष्टकम् । वायव्ये च तथा सक्तून्पूष्णे चापूपमेव हि ॥१४२
वितथाय कलायान्नं गृहक्षाय समाक्षिकम् । पूष्णेथ कृशरान्नं च शाल्यन्नं च निवेदयेत् ॥१४३
गन्धर्वाय कस्तूरिकान्नं कृशरं भृङ्गराजके । मृगाय यावकान्नं च पितृभ्यो मुद्गपायसम् ॥१४४
दौवारिकाय कृशरानन डुंहे च पूपकम् । पायसं पुष्पदन्ताय वरुणाय च पिष्टकम् ॥१४५
असुराय मोदकांश्चैव दद्यादापिक्षये सुराम् । घृतोदनं च सोमाय कणान्नं यक्ष्मणे ददेत् ॥१४६

नदियाँ, समस्त तीर्थ एवं जल दान करने वाले नदगण यजमान के दुरित शमनार्थ यहाँ आने की कृपा करें तथा शिव के निमित्त आठ यज्ञों द्वारा किये गये वास्तोष्पतिगण भी । एक सौ आठ, विशेषकर सहस्र, अथवा पचास आहुतियाँ तण्डुल मिश्रित तिल की पलाश, पीपल, अथवा गूलर की लकड़ियों द्वारा प्रज्वलित अग्नि में डालनी चाहिए ।१३०-१३४। उस हवन की सामग्री में दूध-दही अथवा विशेष कर शहद और घी डालना चाहिए, अन्यलोगों को व्रत की भाँति एक-एक आहुति, अट्ठाईस, आठ-आठ, अथवा पाँच पाँच आहुति बतायी गयी है ।१३५-१३६। चरकी आदि देवियों के निमित्त आसन, पूर्ण वट (बरगद) के रक्त पुष्प, अथवा पत्तों द्वारा शहद, घी एवं शक्कर मिलाकर हवन करना चाहिए ।१३७। वास्तोष्पति के नाम का दृढ़ता पूर्वक जप करके पंचोपचार विधान द्वारा सांगोपाङ्ग समेत उनकी पूजा करनी चाहिए, पश्चात् क्रमशः एक-एक देवताओं के लिए बलि प्रदान भी उसी भाँति । ब्राह्मण को शहद समेत घी प्रदान करना बताया गया है ।१३८-१३९। नील कमल समेत साठी चावल की खीर अग्नि को, कमल समेत भात पर्जन्य को, जप के लिए पीठी, इन्द्र के लिए घी के मोदक (लड्डू) सूर्य के लिए पीठी मिश्रित अन्न, सत्य के लिए जवा की पूलिका, भ्रम के लिए मत्स्य मांस मिश्रित अन्न दही अथवा पीठी, वायु कोण स्थायी (देवों) के लिए सत्तू, पूषा (सूर्य) के लिए मालपूआ, (बलिरूप में) प्रदान करना चाहिए ।१४०-१४२। वितथ के लिए अन्न, गृहेश के लिए शहद समेत अन्न और पूषा के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) साठी चावल की खीर, गन्धर्व के लिए कस्तूरी मिश्रित अन्न, भृंगराज के लिए कृशर, मृग के लिए लप्सी, पितरों के लिए मूंग के लड्डू, दौवारिक के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) वृषभ के लिए पूआ, पुष्पदन्त के लिए खीर, वरुण के लिए पीठी, असुर के लिए मोदक (लड्डू) अपिक्षय के लिए सुरा

रोगाय घृतलड्डूकं तपायसगुडौदनम् । अक्षाय विविधान्नं च भल्लाटाय तथैव च ।।१४७
सोमाय मधुशाल्यन्नं नागाय गुडपिष्टकम् । आदित्यै चापि गोधूमं घृतपक्वं निवेदयेत् ।।१४८
दित्यै दद्यात्तथा क्षीरं सितशर्करया सह । क्षीरान्नं चैव पूष्णे च आपवत्साय वै दधि ।।१४९
सावित्र्यै लड्डुकान्नं च सवित्रे च गुडौदनम् । जयाय घृतमन्नं च मिष्टान्नं च विवस्वते ।।१५०
विरूपाय च तद्दद्याद्धरिद्रान्नं तथैव च । घृतौदनं च चित्राय रुद्राय घृतपायसम् ।।१५१
मांसौदनं यक्ष्मणे च कृशरं वरुणाय च । अर्यम्णे शर्करापूपं बहिर्दद्याच्चतुष्टयम् ।।१५२
चित्रौदनं समांसं च मत्स्यान्नं गुडपिष्टकम् । प्रतिदेवोपरि क्षीरं[१] घृतक्षीरसमन्वितम् ।।
तीर्थतोयसमायुक्तं सुगन्धेन समन्वितम् ।।१५३
पताका देववर्णेन दद्याद्ब्रह्मादिषु क्रमात् । मन्त्रं जपेत्स्वसामर्थ्यात्स्वसामर्थ्यात्स्तुतिं पठेत् ।।१५४
पुरुषस्तवस्य सूर्य ऋषिर्जगती छन्दः । सविता देवता सोमपाके स्तुतौ विनियोगः ।।१५५

शङ्कर उवाच

विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञियो[१] यज्ञपालकः । नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो हुताशनः ।।१५६
यज्ञेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । आदिदेवो जगत्कर्ता मण्डलेशो महीधरः ।।१५७
पद्मनाभो हृषीकेशो दाता दामोदरो हरिः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्रीतिवर्द्धनः ।।१५८
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो ध्रुवः शुचिः । संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञस्त्रिपञ्चाशद्गुणात्मकः ।।१५९

(शराब), सोम के लिए मिश्रित भात, यक्ष्मा के लिए अन्नों के कण, रोग के लिए घी के लड्डू, और खीर समेत मीठा भात, अक्ष और भल्लाट के लिए भाँति-भाँति के अन्न बलि प्रदान करना चाहिए।१४३-१४७। सोम के लिए शहद, साठी चावल के भात, नाग के लिए गुड़-पीठी अदिति के लिए गेहूँ के आटे के हलुआ, दिति के लिए चीनी मिश्रित दूध, पूषा के लिए दूध-भात, आपवत्स के लिए दही देना चाहिए।१४८-१४९। सावित्री के लिए लड्डू, सविता के लिए मीठा भात, जय के लिए घी-भात, विवस्वान् के लिए (मिठाई) विरूप के लिए हरदी मिश्रित भात, चित्र के लिए घी भात, रुद्र के लिए घी मिश्रित खीर, यक्ष्मा के लिए मांस भात, वरुण के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) अर्यमा के लिए शक्कर पूआ आदि चार वस्तुओं को बाह्य भूमि में प्रदान करना चाहिए।१५०-१५२। अनेक भाँति के भात, मांस, मत्स्य, गुड़, पीठी और घी दूध के समेत जल तथा सुगन्ध युक्त तीर्थ जल, प्रत्येक देवों के लिए समर्पित करना चाहिए।१५३। ब्रह्मादि देवों को क्रमशः पताका दान पूर्वक यथाशक्ति उनके मंत्र के जप और स्तुति पाठ भी करना बताया गया है। पुरुषस्तव मन्त्र के सूर्य ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता हैं, सोम पाक की स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए।१५४-१५५

शंकर बोले—विष्णु, जिष्णु, विभु, यज्ञीय, यज्ञात्मक, नारायण, नर, हंस विष्वक्सेन, हुताशन, यज्ञेश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, आदि देव, जगत्कर्ता, मण्डलेश, महीधर, पद्मनाभ, हृषीकेश, दाता, दामोदर, हरि, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मा के प्रीति वर्द्धक, भक्तप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यवाक्य,

---

१. 'नीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमराभिधानात्क्षीरशब्दोत्र जलपर्यायः, तेन 'घृतक्षीरसमन्वितम्' इत्युक्तेर्न्न विरोधः ।

विदारी विनयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः। यज्ञस्त्वं हि वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्वमग्नयः ॥१६०
त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरुषोत्तमः। नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥
अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ॥१६१
ब्रह्मस्तवमिमं प्रोक्तं महादेवेन भाषितम्। प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥१६२
ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं हृत्पद्ममध्ये स्वयमाव्यवस्थितम्।
उपासकानां प्रभुमेकमीश्वरं ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥१६३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे पूजाक्रमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्घ्यदानविधिवर्णनम्

सूत उवाच

ततो भेर्यादिघोषेण यजमान उदङ्मुखः। कनकतोयेन गन्धेन मुद्गलाग्रेण लेपयेत् ॥१
ऐशान्यां मध्यभागे वा यजेद्वा सुसमाहितः। वर्तुलाकारयेद्यस्मान्मन इच्छति सञ्जपन् ॥२
ऋषिः कण्ठोऽथ गायत्री छन्द इत्यभिधीयते। देवता पृथिवी चैव स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥३
विवरे पूजयेत्कर्म ब्रह्माणं च धराधरम्। पृथिवीं गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥४

ध्रुव, शुचि, संन्यासी, शास्त्र तत्त्वज्ञ, तिरपनगुणात्मक, बिदारी, विनय, शांत, तपस्वी, एवं वैद्युत्प्रभनामक तुम्ही हो, तथा यज्ञ, वषट्कार, ओंकार, अग्नि, स्वधा, स्वाहा, और पुरुषोत्तम भी तुम्हीं हो, देवों के आदि देव, विष्णु, शाश्वत, अनंत एवं अप्रमेय को नमस्कार है, तथा हे गरुडध्वज ! तुम्हें नमस्कार है ।१५६-१६१। महादेव द्वारा प्रकाशित इस ब्रह्मस्तव का पाठ करने के लिए जो प्रयत्नशील रहते है, उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है । जो अपने हृदय कमल के मध्य में स्वयं भली भाँति स्थित नित्य अनन्त उपासकों के एक ईश्वर एवं प्रभु उस अच्युत का ध्यान करते हैं, उन्हें परमोत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त होती है ।१६२-१६३
श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में पूजाक्रमवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।११।

अध्याय १२

अर्घ्यदानविधि का वर्णन

सूत बोले—उसके अनन्तर यजमानको नगाड़े आदि वाद्यों की ध्वनि कोलाहल में उत्तर मुख होकर मुद्गल के अग्रभाग से कनकतोय मिश्रित गन्ध का लेप करना चाहिए ।१। ईशान कोण के मध्य भाग में गोलाकार (प्रतिमा) की स्थापना पूर्वक सावधान होकर उसका मंत्र जप करना चाहिए ।२। उस मंत्र के कण्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, पृथिवी देवता हैं, उसकी स्तुति कार्य में इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है।३। विवर स्थित कर्म, ब्रह्मा, धराधर (शेष), और पृथिवी के पूजन गन्ध-पुष्प एवं अनेक प्रकार के

अग्रतोऽष्टदलं लेख्यं स्थापयेत्कलशं ततः । मुखे विधाय कनकं राजतेन विनिर्मितम् ।।५
शुक्तिशङ्खसमं वापि विश्वामित्रसमुद्भवम् । पूजयेत्तीर्थतोयेन गन्धपुष्पाक्षतादिना ।।६
विष्णुक्रान्तादचाकुष्ठचन्दनेन विलोडितम् । क्षीरं च मातुलिङ्गं च सावित्रं च सदूर्वया ।।७
दध्यक्षतं मधुयुतमेवमर्घ्यं च साधयेत् । सितचन्दनवस्त्राद्यैः शाल्यैश्च त्रिविधैरपि ।।८
अव्रणं कलशं कृत्वा पञ्चवर्णसमन्वितम् । आवाहयेत्तोयनिधिं मन्त्रेणानेन भक्तितः ।।९
आयाहि भगवन्देव तोयमूर्ते जलेश्वर । हृद्वर्णार्घ्यं मया दत्तं परितोषाय ते नमः ।।१०
गृहेभ्यश्चैव सोमाय त्वष्ट्रे चैव च शूलिने । इमं मे वरुणेत्यादि प्रत्येकं स्याद्गतित्रयम् ।।११
ततोऽर्घ्यदानं विधिवत्क्षीरेण हविषा मधु[१] । यजमानः सपत्नीकः कुम्भं कुक्षौ निधाय च ।।१२
हिरण्यगर्भेति मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिः स्मृतः । छन्दश्च जगती ख्यातं देवता च जलाधिपः ।।१३
वरुणस्योत्तम्भनेति मन्त्रस्य जलकुम्भं निवेदयेत् । अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्नारदः परिकीर्तितः ।।
विराट्छन्दश्च ईशानो देवता समुदाहृता ।।१४
मोचयेन्मीनयुग्मं च मेषयुग्मं तथैव च । सम्भवे पक्षियुग्मं च आडीं वा चक्रवाककम् ।।१५
मोचयेन्नागयुग्मं च आयुवृद्धेश्च हेतवे । दिक्षु जीवन्तिकां दद्याद्राक्षसेभ्यो बलिं हरेत् ।।१६
निर्मितं माषभक्तेन रक्तपुष्पैरलङ्कृतम् । क्षात्रको लक्ष्मणश्चैव मणिभद्रो गणेश्वरः ।।
सबिन्दुकेन हन्तेन दिक्षु मध्ये यथा क्रमात् ।।१७

नैवेद्यों द्वारा करना चाहिए ।४। सामने अष्टदल कमल का निर्माण करके उसके ऊपर चाँदी के कलश में सुवर्ण, शुक्ति, शंख अथवा विश्वामित्र के समुद्र से उत्पन्न (वस्तु) डालकर स्थापित करके तीर्थ जल, गन्ध एवं पुष्पाक्षतादि से उसकी पूजा सुसम्पन्न करके अपराजिता, वच, आकुष्ट चन्दन, क्षीर, मातुलिङ्ग, सावित्र, दूर्वा के समेत दही, अक्षत, एवं शहद इन्हें एकत्र कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए, पश्चात् श्वेत चन्दन वस्त्र, एवं विविध भाँति के अन्न से उसकी पूजा करने के उपरांत व्रणहीन एवं पञ्चवर्ण युक्त उस घट में भक्ति पूर्वक तोयनिधि सागर का आवाहन निम्नलिखित वाक्यों द्वारा करना चाहिए । हे भगवान्, देव, तोयमूर्ति, एवं जलेश्वर, आप के प्रसन्नार्थ मैंने मोहक द्रव्यों के अर्घ्य प्रदान किया है, आप को नमस्कार है, इस भाँति गृहेश्वर, सोम, त्वष्टा, एवं शूली के लिए नमस्कार करके 'इमं मे वरुणेत्यादि' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करके पश्चात् पत्नी समेत यजमान विधान पूर्वक क्षीर, घी और शहद कलश में डालकर उसे अपनी कुक्षि में रखकर अर्घ्य प्रदान करे ।५-१२। 'हिरण्यगर्भेति' इस मंत्र के भारद्वाज ऋषि जगती छन्द, एवं वरुण देवता हैं, इस विनियोग के प्रयोग पूर्वक 'वरुणस्योत्तम्भनमिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए कलश में जल प्रक्षेप करना चाहिए । इस मंत्र के नारद ऋषि, विराट् छन्द, और ईशान देवता हैं ।१३-१४। पुनः दो मछलियाँ, दो भेंड, अथवा सम्भव हो तो दो पक्षियों, शरारि पक्ष या चकोर नाग के त्याग अपनी आयुवृद्धि के लिए करना चाहिए । और दिशाओं में राक्षसों के निमित्त जीवन्तिका (शमी, गुरुचि आदि) प्रदान करना बताया गया है ।१५-१६। पश्चात् उरद का रक्त पुष्पों से अलंकृत करके उसे बलिरूप में क्षात्रक, लक्ष्मण, मणिभद्र एवं गणेश्वर आदि देवों के लिए जो दिशाओं

---

१. 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' इति घः । २. मधुना ।

ये भवा भाविनो भूता ये च तेषु मयासिनः। आहरं तु बलिं तुष्ट्या प्रयच्छन्तु शुभं मम ।।१८
इत्युक्त्वा च बलिं दद्यान्नमस्कुर्यादनन्तरम्। दद्यात्पयस्विनीं गां च आचार्याय विशेषतः ।।१९
अन्येषां हि हिरण्यं च गां च दद्याद्द्विजन्मने। व्याहृतिद्वितयं चैव ततो वारुणपञ्चकम् ।।२०
प्राजापत्यं स्विष्टकृच्च जुहुयात्तदनन्तरम्। घृतैः स्विष्टकृतं नास्ति तथा रसविसारकैः ।।२१
पद्मोत्पलैर्मातुलिङ्गैः पनसैर्मातुलुङ्गकैः। मधूकैर्विश्वपुष्पैश्च तथाम्रातककाशकैः ।।२२
अभिषेकं ततः कुर्यात्सुवास्त्विवति च वै जपन्। दद्यात्पूर्णां च विधिवत्सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।।२३
पञ्चदोषं पुरस्कृत्य ब्राह्मणानुमतेन च। गृहं प्रविश्य च ततो ब्राह्मणानथ भोजयेत् ।।२४
दीनान्धकृपणे चैव दद्याद्वित्तानुसारतः। ज्ञातिभिः सह भुञ्जीत दधिक्षीरामिषं विना ।।२५
न क्षीरं च कषायं च भर्जितं शाकमेव च। न काण्डं च न पुष्पं च करीरं च कदाचन ।।२६
शाल्यन्नं मूलकं चैव पनसाम्रफलानि च। मस्तं मधुघृतगुडं मातुलिङ्गं ससैन्धवम् ।।२७
बदरं धातकिफलं कुन्दपुष्पं तथा तिलम्। एतत्प्रशस्तं जानीयान्मरीचानि विशेषतः ।।२८
त्रिरात्रमथ सप्ताहं परित्यज्य खले ततः। पञ्चाङ्गकं ततः कुर्यात्स्थापयेन्नेति युग्मकम् ।।२९
प्रथमा चार्कहस्तेन द्वितीया दशहस्तिका। वितस्ते तु भवेच्छतं द्विगुणं तदनन्तरम् ।।३०
शतार्धं ततः पश्चात्षष्टि हस्तमनन्तरम् ।।३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागेऽर्घ्यदानविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः।१२

के मध्य भाग में विन्दुक के रूप में स्थित हैं, क्रमशः प्रदान करना चाहिए। वर्तमान, भावि और अतीत काल के भूतों (जीवों) के लिए मैं बलि प्रदान कर रहा हूँ, इसे स्वीकार करके मुझे कल्याण प्रदान करें।१७-१८। इस भाँति कहकर बलि प्रदान के उपरांत पंचवारुणी, प्राजापत्य, एवं स्विवटकृत् हवन के विधान सुसम्पन्न करना चाहिए। घी, रस विसारक, नील कमल, नीम, कटहल, महुवा, विश्वपुष्प, आम्रातक एवं काश की आहुति स्विवटकृत् हवन में नहीं दी जाती है।१९-२२। पुनः अभिषेक के उपरांत 'सुवास्त्विवति' के जप पूर्वक पूर्णाहुति और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना बताया गया है।२३। ब्राह्मणों की आज्ञा से पञ्च दोषों के समेत घर में प्रवेश करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।२४। दीन, अंधे, एवं असहायों को अपने वित्तानुसार दान करके बन्धुगणों के साथ भोजन करना चाहिए। दही, क्षीर, मांस, कषाय, भूना पदार्थ, शाक, कोण्ड, पुष्प, एवं करीर के भोजन कभी न करना चाहिए।२५-२६। साठी चावल, मूली, कटहल, आम के फल, मस्त, शहद, घी, गुड़ सेंधानमक समेत नीम, वेर, आवँला, कुन्द पुष्प और तिल तथा मिर्च इन वस्तुओं को प्रशस्त बताया गया है। तीन रात अथवा एक सप्ताह तक उसे खल (खरल) में डाल कर पञ्चाङ्ग की रचना करे, युग्म की नहीं।२७-२९। पहली बारह हांथ, दूसरी दश हांथ, एवं सौ हाथ की विस्तृत अथवा उससे दुगुने, पचास, या साठ की भी बनाई जा सकती है।३०-३१

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में अर्घ्यविधान दान नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अग्निहोत्रविधानवर्णनम्

सूत उवाच

स्वगृह्याग्निविधिं वक्ष्ये योगभेदेषु सत्तमाः । न परोक्तं विधानेन भयदं कीर्तिध्वंसनम् ।।१
पुत्रा एव च कन्याश्च जनिष्यन्तश्चापरे सुताः । गृह्या इति समाख्याता यजमानस्य दायदाः ।।२
तेषां संस्कारयागेषु शान्तिकर्मक्रियासु च । आचार्यविहितः कल्पस्तस्माच्चक्ष इति स्मृतः ।।३
त्रिकुशं परिगृह्णाति ततश्च कुरुते दृढम् । ऋषिर्दक्षश्च जगती छन्दो विष्णुश्च देवता ।।४
कश्यपस्तृप्यतामिति भूरसीति च शोधनम् । ऋषिः सुवर्ण गायत्री जगती छन्द इष्यते ।।
देवता च भवेत्सूर्यः पृथिवीशोधने न्यसेत् ।।५
ऐशान्यादिक्रमेणैव प्रादक्षिण्येन यत्नतः । यत्पवित्रेति मन्त्रेण तर्जन्यङ्गुष्ठयोरपि ।।६
कुशगर्भत्रयेणापि भ्रामयेद्वलयाकृति । परिसमूहनमित्युक्तं स्नपनं शृणु सत्तम ।।७
ईशानादेश्च संस्कारं कुर्यात्परिसमूहनम् । प्रतिष्ठायां चरेत्यादिनैर्ऋत्यादिग्रहं मखे ।।८
परिसमूहनमैन्द्रस्य पर्वतोऽस्य ऋषिः स्मृतः । पङ्क्तिश्छन्दः समुद्दिष्टमिन्द्राणी चास्य देवता ।।९
गोमयं च त्रिगन्धं च पञ्चमूर्तिकयापि च । कनिष्ठं गुह्यकं त्यक्त्वा देवतार्थे न लेपयेत् ।।१०

अध्याय १३

अग्निहोत्र विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सत्तमवृन्द ! योग के भेद वर्णन में अग्निहोत्र-विधान की चर्चा की गयी है, मैं उसे बता रहा हूँ । दूसरे के द्वारा कहे गये विधान के अनुसार उसे सुसम्पन्न करने से भय प्राप्ति एवं कीर्ति नष्ट हो जाती है ।१। पुनः कन्याएँ और उत्पन्न होने वाले अपने पुत्र गण 'गृह्य' (घर की वस्तु) कहते है, वही यजमान के दायाद भी हैं ।२। उनके संस्कार यज्ञों में और शान्ति कर्म के अनुष्ठानों में आचार्य द्वारा निर्धारित कल्पों को 'चक्ष' बताया गया है । त्रिकुशा के द्वारा उसे दृढ़ करना कहा गया है ! उस मन्त्र के दक्ष ऋषि, जगती छन्द, एवं विष्णु देवता हैं, 'कश्यपस्तृप्यतामिति' और 'भूरसीति' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए पृथिवी का संशोधन करना चाहिए । इस मन्त्र के सुवर्ण ऋषि, गायत्री और जगती छन्द, सूर्य देवता हैं, पृथिवी के संशोधन समय इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।३-५। ईशान कोण आदि के क्रम से प्रदक्षिणा पूर्वक तर्जनी और अंगुष्ठ से तीन कुशाओं को ग्रहण कर गोलाकार उसका भ्रमण कराना 'परिसमूहन' कहलाता है, तथा सत्तम ! अभिषेक बता रहा हूँ, सुनो ! प्रतिष्ठा एवं यज्ञ में ईशान कोण आदि के संस्कार, परिसमूह एवं नैर्ऋत्यादि ग्रहों की अर्चा आवश्यक होती है ।६-८। 'परिसमूहनमैन्द्रस्येति' इस मंत्र के पर्वत ऋषि, पंक्ति छन्द, इन्द्राणी देवता बतायी गयी हैं ।९। गोबर, तीनों गंध, पञ्च मूर्तिका द्वारा लघु गुह्य स्थानों का लेपन किसी देवता के उद्देश्य से न करना चाहिए ।१०।

मानस्तोकेनेति ऋचा विश्वेदेवश्च पूज्यताम् । ऋषिः स्यात्काश्यपश्छन्दो विश्वेदेवः प्रकीर्तितः ॥११
योजयेल्लेपयेद्विद्वान्घटमाबद्ध्य सत्तमाः । मध्यमातर्जनीभ्यां च कुशमारभ्य दक्षिणम् ॥१२
चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं हस्तमानं तथाननम् । यज्वभिरिति मन्त्रेण सूर्यः प्रीणाति सत्तमाः ॥१३
दक्षे सार्धाङ्गुलं त्यक्त्वा पश्चिमेन परित्यजेत् । उत्तराग्रां लिखेद्रेखामन्यथाऽमङ्गलं भवेत् ॥१४
आप्यायस्वेति मन्त्रस्य धन्वन्तरिऋषिः स्मृतः । त्रिष्टुप्छन्दः समाख्यातं सविता चात्र देवता ॥१५
तल्लग्नं दक्षिणे चैकं पूर्वार्द्धद्वादशाङ्गुलम् । अन्याङ्गुलान्तरे चैकं ततः सप्ताङ्गुलं भवेत् ॥१६
कुशमूलेन स्वर्णेन प्रतिष्ठायां च राजते । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च सञ्ज्योतीति च सञ्जपन् ॥१७
संस्तरेन्मित्रा वरुणौ ऋषिरौतथ्यसंज्ञकः । पंक्तिश्छन्दः शिवो देवो रेखामथं च योजयेत् ॥१८
तेनैवोद्धर्वकरौ कुर्याद्दक्षवामे सकृत्सकृत् । भास्वराय क्षिपेदग्नौ तत ऊर्ध्वं रणं स्मृतम् ॥१९
सदसम्पदृषिः कर्णो विराडिति उदाहृतः । छन्द इन्द्रो देवता च पृथिव्या देवता भवेत् ॥२०
कुशपुष्पोदकेनापि देवतीर्थेन सत्तमाः । पञ्चगव्येन मतिमान्पञ्चरत्नोदकेन च ॥
पञ्चपल्लवतोयेन महायोगे विशेषतः ॥२१
अथोनस्य च मन्त्रस्य वशिष्ठःपरिकीर्तितः । छन्दोऽथ देवी गायत्री देवता गणनायकः ॥२२
कीशादग्निं समादाय मे गृह्णामीति सम्पठन् । मे गृह्णामीति मन्त्रस्य ऋषिर्गौतम ईरितः ॥
छन्दोऽनुष्टुप्समाख्यातं वामदेवोऽथ देवता ॥२३

'मानोस्तोकेनेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक विश्वदेव देवों की पूजा करनी चाहिए । इस मंत्र के काश्यप ऋषि, विश्वदेव छन्द एवं देवता बताये गये हैं ।११। श्रेष्ठगण ! घर को आबद्ध कर मध्यमा तर्जनी अंगुली से कुश ग्रहण कर के दक्षिण की ओर से लेपनयोजन करना चाहिए । चौकोर क्षेत्र में सूर्य की उस प्रतिमा का, जिसमें एक हांथ के विस्तार में केवल उनके मुख की कल्पना की जाती है। 'यज्वभिरिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजा करनी चाहिए ।१२-१३। दक्षिण दिशा में डेढ़ अंगुल वेदी की भूमि के त्याग करके पश्चिम की ओर से उसका परित्याग करने पर उत्तराग्र भाग वाली रेखाओं के निर्माण करना चाहिए, अन्यथा अमंगल होने की आशंका उत्पन्न होती है ।१४। 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के धन्वतरि ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, तथा सविता देवता है ।१५। उसी से सम्मिलित दक्षिण भाग में पूर्वार्द्ध के बारह अंगुल और दूसरा सात अंगुल का भी होता है ।१६। कुशमूल के स्वर्ण भाग द्वारा रेखा निर्माण के उपरांत अँगूठा और अनामिका से 'संज्योतीति' इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक रेखा मिट्टी का परित्याग करना बताया गया है । इस मंत्र के मित्रावरुण और औतथ्य ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं शिव देवता हैं, रेखा निर्माण के समय इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।१७-१८। उसी से दक्ष के बायेंभाग में एक एक बार हाथों को ऊपर उठा उठा कर भास्कर अग्नि में उसका प्रक्षेप करना आवश्यक होता है । उसके ऊर्ध्व भाग को 'रण' बताया गया है ।१९। 'सदसम्पत् इति' इस मंत्र के कर्ण विराट् ऋषि, इन्द्र छन्द और पृथिवी के भी देवता हैं ।२०। सत्तमवृन्द ! कुश पुष्पोदक से देवतीर्थ द्वारा तथा उस बुद्धिमान् को पञ्चगव्य, पञ्चरत्नोदक, एवं पञ्चपल्लव के जल से विशेषकर महायोग में स्नान करना बाताया गया है ।२१। 'अथोनस्येति' इस मन्त्र के वशिष्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, एवं गणनायक देवता हैं ।२२। पुनः 'कीशादग्निं समादाय मे गृह्णामि' इस मंत्र का पाठ करना चाहिए । इस मंत्र के गौतम ऋषि, अनुष्टुप्

क्रव्यादग्निं परित्यज्य क्रव्यादमग्निमीरयन् । मन्त्रेणानेन मतिमान्दक्षिणस्यां विनिक्षिपेत् ।।२४
अस्य मन्त्रस्य हारीत ऋषिः स्याच्छन्द इष्यते । देवता वामदेवोऽपि दाहेऽपि विनियोजयेत् ।।२५
आवाहनं ततः कुर्यात्संसरक्षेति सञ्जपन् । संसरक्षेति मन्त्रस्य ऋषिर्नील उदाहृतः ।।
विराट् छन्दोऽथ विज्ञेयो देवता च शतक्रतुः ।।२६
वैश्वानरइति ऋचा अग्निस्थापनमीरितम् । मन्त्रमाचाति प्रीणाति ऋषिः स्यात् काश्यपः स्मृतः ।।
अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो देवता हव्यवाहनः ।।२७
बध्नासीति च मन्त्रेण अग्निं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । ऋषिः स्वयम्भूराख्यातो विराट्छन्द उदाहृतम् ।।
देवता परमात्मा च नमस्कारेण योजयेत् ।।२८
ततोऽग्निदक्षिणे भागे प्रागग्रकुशकुब्जके । द्विहस्ते भवतश्चैव हस्तपानासने अथ ।।२९
ब्रह्मन्निहोपवेश्यतामिति ब्रह्माणं दिनिवेशयेत् । ब्रह्मयज्ञानृचा दोग्ध्री धेनुरिति त्वृचा ।।३०
द्वाभ्यामिति च मन्त्राभ्यामिति ब्रह्मप्रवेशनम् । शक्रोऽस्य त्रायतामेति शृणु ऋग्भ्यामृषीद्विजाः ।।३१
प्रजापतिर्ऋषिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवोऽथ शङ्करः । नारदश्च ऋषिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवः शचीपतिः ।।३२
अग्नेरुत्तरभागे च हस्तमानान्तरेऽपि च । प्रणीतास्थापनं कुर्याद्दिन एहीति सञ्जपन् ।।३३
मन्त्रस्य च ऋषिश्छन्दो वामदेवः प्रकीर्तितः । जगती च भवेच्छन्दो देवता च शतक्रतुः ।।३४
श्रीपर्णीसहकारोत्थं वरुणस्य विशेषतः । षडङ्गुलेन विस्तारं विंशत्यङ्गुलकेन च ।।३५
दैर्घ्येण च चतुःख्यातकाङ्गुलं च प्रमाणतः । द्वयङ्गुले चरकाकायामासासन्देवकर्मणि ।।३६
अभिचारे भवेत्कांस्यं ताम्रं स्याच्छान्तिकर्मणि । प्रतिष्ठायां मृण्मयं च अष्टाङ्गुलमथापि वा ।।३७

छन्द, और वामदेव देवता बताये गये हैं ।२३। शव दाहक अग्नि के अतिरिक्त अग्नि को ग्रहण कर 'क्रव्यादमग्निमीरयन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे दक्षिण की ओर डाल देना चाहिए ।२४। इस मंत्र के हारीत ऋषि, छन्द एवं वामदेव देवता हैं, दाह के समय इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है ।२५। पश्चात् ! 'संसरक्षेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए आवाहन करना चाहिए । इस मंत्र के नील ऋषि, विराट् छन्द, एवं शतक्रतु देवता है ।२६। 'वैश्वानर इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक अग्नि स्थापन करना बताया गया है । 'इस मंत्र के काश्यप ऋषि' अनुष्टुप् छन्द, और हव्य वाहन देवता हैं ।२७। 'बध्नासीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिए । इस मन्त्र के स्वयंभू ऋषि, विराट् छन्द, एवं परमात्मा देवता हैं, नमस्कारार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना कहा गया है ।२८। इसके उपरांत अग्नि के दक्षिण भाग में कुशा के प्रागग्रभाग को एक कुब्जासन बनाकर रखने के अनन्तर हे ब्रह्मन् ! इसे सुशोभित कीजिये इस प्रकार ब्रह्मा से प्रार्थी होना चाहिए । 'ब्रह्म यज्ञानृचा दोग्ध्री धेनुरिति त्वृचेति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण करते हुए ब्रह्मा का वहाँ प्रवेश कराना बताया गया है । शुक्र इसकी रक्षा करें और ऋचाओं द्वारा ऋषियों की रक्षा हो ।२९-३१। इस मंत्र के प्रजापति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, शंकर देव, एवं नारद ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और इन्द्र देवता हैं ।३२। 'दिन एहीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अग्नि के उत्तर भाग में एक हाथ प्रमाण की भूमि के मध्य प्रणीता पात्र का स्थापन करना कहा गया है ।३३। इस मंत्र के वामदेव ऋषि, जगती छन्द, एवं शतक्रतु (इन्द्र) देवता हैं ।३४। श्रीपर्णी, आम, एवं विशेषकर वरुण के छः अंगुल अथवा बीस अंगुल का विस्तृत, और चार अंगुल का चौड़ा प्रणीता पात्र तथा देवकर्म में दो अंगुल की चरकी बनायी जाती है ।३५-३६। अभिचार कर्म के

द्वादशाङ्गुलप्रस्तारं तैजसं मानवर्जितम् । इमं मे वरुणेनर्चा प्रणीतामथ पूरयेत् ॥३८
सागरा अथ प्रीयन्तामित्थमाध्यानमाचरेत् । सकृदच्छिन्नदर्भेण दिग्विदिक्षु परिस्तरेत् ॥३९
नैर्ऋते दिक्षु सीतः स्याद्वैश्वदेवे तथैव च । कया नश्चित्र इत्यृचा नागः प्रीणाति सत्तमाः ॥४०
अस्य मंत्रस्य च ऋषिर्भरद्वाज उदाहृतः । छन्दोऽनुष्टुब्देवता च ईशानः परिकीर्तितः ॥४१
प्रयोजनादिकं द्रव्यं तत आसादयेत्क्रमात् । दक्षिणादि उत्तरान्तं ध्रुवास इत्यृचापि च ॥४२
ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दोऽनुष्टुप्चैवाथ देवता । शतक्रतुश्च प्रीणाति योजयेदथ सादरात् ॥४३
काष्ठं च पश्चिमे कुर्यात्प्रयच्छन्पश्चिमेन तु । पुरतोऽन्नं पञ्चव्रीहीस्तिलाश्च सहसर्षपान् ॥४४
दक्षिणे चैव आपूपं भृङ्गराजं तथैव च । फलपत्रे वामभागे पिष्टकं दधि दुग्धकम् ॥४५
पनसं नारिकेलं च मोदकं लड्डुकं तथा । प्रणीतां च दिग्विदिक्षु स्थापयेदविचारयन् ॥४६
प्रणीतां न स्पृशेज्जातु होमकाले कथञ्चन । स्नानकुम्भं च भो विप्रा यावद्यागः प्रवर्तते ॥४७
उच्चीरकं मातुलिङ्गं दूर्वां धात्रीफलानि च । तुलसीमालतीजाती जलजानि विशेषतः ॥४८
ऐशान्यां स्थापयेत्सर्वं यच्च वै कङ्कतीमयम् । नैर्ऋत्येति विशेषोऽयं यच्च वैकङ्कती शमी ॥४९
यथा योगेन तत्सर्वं ग्राह्यं तत्पत्रमेव च । क्षीरपाके तु क्षीरान्ते चरुस्थालीमथानयेत् ॥५०
पवित्रच्छेदनकुशैश्छिन्द्यात्प्रादेशिकं पुनः । छित्त्वा पवित्रं प्रोक्षण्यां स्थापयेद्बलभिदाम्रकम् ॥५१

काँसे, शांति कर्म में ताँबें, प्रतिष्ठा में मिट्टी के आठ अंगुल का अथवा बारह अंगुल के सुवर्ण का प्रणीता पात्र बनाना चाहिए। 'इमं में वरुणेनार्चा' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रणीतापात्र को जल से पूर्ण करना चाहिए।३७-३८। 'सागरा अथ प्रीयन्तामिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए ध्यान करना बताया गया है। जो एक बार भी न कटा हो, ऐसे कुशों का परिस्तरण अग्नि के चारों दिशाओं में करना चाहिए।३९। श्रेष्ठगण ! नैऋत्य (पश्चिम) दिशाओं एवं वैश्वदेव के लिए भी सीत कहा गया है। 'कयानश्चित्र इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक नाग को प्रसन्न किया जाता है।४०। इस मंत्र के भारद्वाज ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, एवं ईशान देवता बताये गयें हैं।४१। इसके अनन्तर प्रयोजन की वस्तुओं का आसादन क्रमशः करना चाहिए उस समय 'दक्षिणादि उत्तरान्तं ध्रुवास इति' इस ऋचा का पाठ भी करता रहे।४२। इस मंत्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, और शतक्रतु देवता हैं, उस समय सादर इस विनियोग का प्रयोग करना आवश्यक होता है।४३। पश्चिम की ओर काष्ठ, सामने अन्न, पाँच प्रकार के धान्य, और राई समेत तिल, दक्षिण की ओर पूआ, भृंगराज, फल एवं पत्ते, बाँये भाग में पीठी, दही, दूध नारियल एवं मोदक तथा प्रणीता को रखने में विचार की आवश्यकता नहीं होती है। विप्रवृन्द ! हवन काल में याग के वर्तमान समय तक प्रणीता और स्नान के कलश का स्पर्श किसी प्रकार न होना चाहिए।४४-४७। उच्चीरक, मातुलिंग, दूर्वा, आँवला, तुलसी, मालती, चमेली एवं विशेषकर कमल पुष्प कंकेती इन्हें ईशान कोण में रखना चाहिए। नैऋत्य कोण में विशेषकर कंकेती, शमी तथा यथावसर पत्ते आदि जो कुछ प्राप्त हो जाये, उन सब का ग्रहण करना चाहिए। क्षीरपाक विधान में क्षीर के समीप चरु बनाने के लिए स्थाली (बटलोई) पात्र रखना बताया गया है।४८-५०। पवित्री को काटने वाले कुशों के द्वारा किसी बलवान् द्वारा आमले की भाँति प्रादेशिक मात्र खराड बना कर पुनः उस पवित्री को प्रोक्षणी पात्र में रख देना चाहिए।५१। 'विष्णो रराडेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसके अग्रभाग से उसे काट

विष्णो रराटमन्त्रेण छेदयेदग्रभागतः । पायसेन काठिनेन प्रमथ्नीयात्कदाचन ॥५२
न रसेन न कार्ष्णेन न दृढेन कदाचन । ताम्रेण भस्मना चाथ शुक्तिशङ्खेन वाग्यतः ॥५३
छेदयेत्पिञ्जुलीं चापि पवित्रमथ देशिकः । विष्णो रराटमन्त्रस्य हारीतश्च ऋषिः स्मृतः ॥५४
पङ्क्तिश्छन्दो भवेद्देवः संस्कारे विनियोजयेत् । प्रणीताभाजनं गृह्य प्रोक्षणीं पूरयेत्त्रिभिः ॥५५
कायतीर्थेन तत्कुर्याद्देवतीर्थेन चेत्यपि । वामहस्ततले पश्चात्स्थापयेत्प्रोक्षणीयकम् ॥५६
मध्यमामध्यमाङ्गुष्ठ अपामार्गेण मन्त्रिभिः । उत्तानं तत्पवित्रं च पवित्रं तेति सञ्जपन् ॥५७
ऋषिः स्याद्गौतमश्छन्दो धर्मराजोऽथ देवता । अथ स्थापितद्रव्याणि प्रोक्षयेत्स्थापयेत्क्रमात् ॥५८
सकृद्द्रव्ये त्रिभिः काष्ठैस्त्रिवारं मन्त्रपुष्पकैः । स्थिरस्थाने तु सम्प्राप्तप्रणीतायाश्च दक्षिणे ॥५९
प्रादेशान्तरतश्चैव आज्यस्थालीमथार्पयेत् । अग्रतो मण्डलं कृत्वा वह्निं विप्रे तु स्थापयेत् ॥६०
घृतं निःसारयेत्तत्तु निरूप्याशु क्रमेण तु । ईशानेति च मन्त्रेण अधिश्रपणमीरितम् ॥६१
ऋषिर्नारायणश्छन्दः पङ्क्तिरीशोऽथ देवता । पर्यग्निकरणं कुर्यादादराद्द्वयमप्यथ ॥६२
अवेक्ष्य ईशमारभ्य दक्षिणावर्तकेन तु । कुलायनीति मन्त्रेण ऋषिच्छन्दादिकं स्मरन् ॥६३
परिवेष्याज्यस्थालीं च त्रिः सकृद्वा समाहितः । पितरस्तृप्यन्तामिति संस्कारे मातरः स्मृताः ॥६४
ऋषिः स्याज्जमदग्निश्च गायत्री छन्द ईरितम् । देवता च पिनाकी स्यादग्निष्टोमे च योजयेत् ॥६५

देना बताया गया है । (क्षीर पात्र के लिए) उस कठिन (जमे हुए) दूध को मथ देना चाहिए, रस, काली वस्तु, दृढ़ ताँबा, भस्म, सीप अथवा शंख द्वारा उसका मंथन दूध को फाडना कभी न करना चाहिए । 'विष्णोररराडेति' इस मंत्र के हारीत ऋषि, पंक्ति छंद, देवता हैं, संस्कार कर्मों में इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । पिञ्जुली (कुशसमूह) और पवित्र छेदन के पश्चात् प्रणीता पात्र के लिए हुए प्रोक्षणी पात्र को तीन कुशाओं द्वारा आच्छादित कर देना चाहिए ।५२-५५। कायतीर्थ, अथवा देवतीर्थ द्वारा उस आच्छादन के अनन्तर बायें हाथ की हथेली पर प्रोक्षणी पात्र रखकर 'मध्यमा मध्यांगुष्ठेति' और 'उत्तानं तत्पवित्रंचेति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक हवनीय सामग्रियों का क्रमशः आसेचन करके उन्हें पूर्व की भाँति स्थापित कर देना चाहिए। इस मंत्र के गौतम ऋषि, तथा छन्द, एवं धर्मराज देवता हैं ।५६-५८। विधान सामग्रियों पर एक बार, तीन कोष्ठों एवं मंत्र पुष्पों द्वारा तीन बार प्रोक्षण होना चाहिए, अपने स्थान पर प्रणीत पात्र के स्थिर होने के उपरांत उसके दक्षिण भाग में प्रादेश के भीतर ही आज्य स्थाली (घी गरम करने के पात्र) रखना चाहिए । पुनः ब्राह्मणों के सम्मुख मण्डलाकार बना कर अग्निस्थापन करना चाहिए ।५९-६०। 'ईशानेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस घी को अधिग्रहण करना (गरम करने के लिए अग्नि पर रखना) चाहिए । तथा उसमें से उस मट्ठा आदि इतर पदार्थ को बतलाते हुए शीघ्र निकाल देना चाहिए ।६१। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं ईश देवता हैं । पर्यानिकरण दौर निरीक्षण दोनों एक साथ ही करके उसके सिद्ध हो जाने पर उसे किसी अन्य पात्र में रख देना चाहिए । 'कुलायनीति' इस मंत्र का उच्चारण अन्य पात्र में रखते समय करना आवश्यक होता है । पुनः उसे एक बार या तीन बार 'पितरस्तृप्यतामिति' (पितरगण तृप्त हों) इस प्रकार कहते हुए उन्हें अर्पित करना चाहिए, इसी भाँति संस्कार कर्मों में माताओं के लिए कहा गया है ।६२-६४। इस मंत्र के जमदग्नि ऋषि, गायत्री छन्द, पिनाकी देवता हैं, 'अग्निष्टोम' नामक यज्ञ में इस विनियोग का प्रयोग करना

घृतस्य च तथा त्वं नो ब्रह्मा वै तृप्यतामिति । षडङ्गुलं स्रुवं पश्चाद्गृहीत्वाग्नौ प्रतप्य च ॥६६
त्रिरात्रं तु महायोगे सकृदन्यत्र सत्तमाः । सम्मार्जयेत्कुशेनापि मूलादग्रं तु सेचयेत् ॥६७
अग्रान्मूलं पुनः कुर्यात्सम्पूज्य च पुनः पुनः । त्रिभिस्त्रिभिः प्रणीतोदे प्रोक्षयेत्तदनन्तरम् ॥६८
स्रुवं पुनः प्रतप्याथ प्रोक्षण्युत्तरतो न्यसेत् । आज्यपात्रं पुरस्कृत्य पवित्रं च समाहरेत् ॥६९
अङ्गुष्ठे द्वे अनामे तु गृह्णीयात्तत्पवित्रकम् । अष्टाङ्गुलं मध्यकृत्वो घृतं त्रिः पवनं चरेत् ॥७०
पाताले त्रिस्तथाकाशे अवेक्ष्याज्यं ततस्त्रिभिः । प्रोक्षण्यां च तथा कुर्यादधः सम्प्रोक्ष्य देशिकः ॥७१
ततः पायसमादाय उत्थाय च समन्त्रकम् । तूष्णीं दद्यात्तथा चाग्नौ सन्निवेशेन तत्त्वतः ॥७२
सपवित्रं दक्षकरे गृहीत्वा प्रोक्षणीयकम् । अष्टाङ्गुले मूलभागे तज्जलेन ईशादितः ॥७३
अग्निं पर्युक्षयेत्पश्चाद्दक्षिणावर्तकेन च । पवित्रं च प्रणीतायां निधाय प्रोक्षणीयकम् ॥७४
संयावार्थं च भो विप्रा अग्निवत्तत्र देशिकः । ध्यायेदग्निं रक्तवर्णं स्रुवहस्तं त्रिबाहुकम् ॥७५
कमण्डलुं परे हस्ते ततो दक्षकरेण तु । स्रुवं गृहीत्वा जुहुयात्तूष्णीमेव समाहितः ॥७६
अन्ते च देवतोद्देशं प्राजापत्यं समीरयन् । प्रणवान्तेन जुहुयात्सर्वत्र द्विजसत्तमाः ॥७७
वायुकोणं समारभ्य वह्निकोणान्तकेन तु । अच्छिन्नेन घृतेनैव इन्द्राय तदनन्तरम् ॥७८
अग्नीषोमात्मकं चैव जुहुयाद्राक्षसादितः । ऐशानकोणपर्यन्तं ततो नैमित्तिकं चरेत् ॥७९

चाहिए ।६५। तथा ब्रह्मा के सम्मुख उस घी को रखकर 'ब्रह्मावैतृप्यताम्' 'ब्रह्मा तृप्त हों' इस प्रकार उन्हें अर्पित कर उनसे प्रार्थना करना कहा गया है । पश्चात् उसे छः अंगुल के स्रुवे को अग्नि में तपाकर उसके मूलभाग का कुश द्वारा सम्मार्जन करना चाहिए । द्विजसत्तम ! महायोग में तीन रात और अन्यत्र एक ही बार उसके करने का विधान बताया गया है ।६६-६७। पुनः उसके अग्रभाग के मूल की बार बार पूजा करने के उपरान्त प्रणीता के जल से तीन-तीन बार उसका प्रोक्षण करना चाहिए ।६८। पुनः उसे तपाकर प्रोक्षणी के उत्तर में रख कर उस खीर के पात्र के सामने रख इस विधान से दोनों हाथ के अंगूठे और अनामिका अंगुली से उस पवित्री द्वारा, जिसका मध्य भाग आठ अंगुल का हो, तीन बार उत्प्लवन (ऊपर उछालकर) पवित्र करना चाहिए ।६९-७०। उस घी का भली भाँति निरीक्षण एवं तीनबार पाताल (नीचे) और तीन बार आकाश (ऊपर की ओर) उछालने के उपरान्त अधो भाग के प्रोक्षण करने पर प्रोक्षणी में भी वैसा ही करना बताया गया है ।७१। उसके उपरान्त खीर का ग्रहण मन्त्र समेत कर मौन हो अग्नि में उसकी आहुति खड़े होकर डाल देनी चाहिए ।७२। पवित्री समेत दाहिने हाथ में प्रोक्षणी जल का ग्रहण कर पवित्र के आठ अंगुल वाले मूल भाग द्वारा उसके जल से ईशान कोण से आरम्भ कर अग्नि का पर्युक्षण (मंडल) करके पश्चात् दक्षिणावर्त से उस पवित्री तथा प्रौक्षणी जल को प्रणीता पात्र में डाल देना चाहिए ।७३-७४। विप्रवृन्द ! संयाव (लप्सी) बनाने के लिए रक्तवर्ण, हाथ में स्रुवा लिए, तीन भुजाएँ एवं दूसरे हाथ में कमण्डलु लिए अग्नि के इस प्रकार का ध्यान करके पश्चात् दाहिने हाथ से स्रुवा ग्रहण कर मौन होकर आहुति डालनी चाहिए ।७५-७६। द्विजसत्तम ! अन्त में देवता के उद्देश्य से प्राजापत्य से आरम्भ कर प्रणवान्त तक हवन करना बताया गया है । वायुकोण से आरम्भ कर वन्दिकोण के प्रान्त भाग तक घृत की अटूट धारा प्रदान करने के उपरान्त इन्द्र के लिए आहुति प्रदान करनी

पश्चात्स्विष्टं ततो दद्याद्दद्याच्च मतिभिस्तथा । वारुणं पञ्चकं चैव कृत्वा पूर्णां ततो लभेत् ।।८०
उद्वाह इति मन्त्रस्य अथर्वण ऋषिः स्मृतः । छन्दो देवी च गायत्री देवतं चापि वारुणम् ।।८१
प्रकृते योजयेन्मन्त्री स्तुतौ चापि नियोजयेत् । त्वन्नोग्न इति मन्त्रस्य ऋषिर्वाशिष्ठसंज्ञकः ।।
छन्दश्च बृहती स्यातस्तदेवाग्निः प्रकीर्तितः ।।८२
इडो गतमिति मन्त्रस्य ऋषिः को गुह्यसंज्ञकः । छन्दश्च जगती स्यातं देवो विष्णुः प्रकीर्तितः ।।८३
उद्वर्तन इति मन्त्रस्य ऋषिः को नु प्रकीर्तितः । छन्दो देवी च गायत्री वरुणश्चाधिदेवता ।।८४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागेऽग्निहोत्रविधानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

मखविधानवर्णनम्

सूत उवाच

मखे सर्वत्र ब्रह्माणमृत्विजं वरयेदथ । कुशकण्डीं स्वगृह्येन कृत्वाग्निं चार्चयेत्ततः ।।१
आघाराज्यभागौ तु महाव्याहृतयस्त्रयः । सर्वं प्रायश्चित्तसंज्ञकं प्राजापत्यं च स्विष्टकृत् ।।२
एतन्नित्यं हि सर्वत्र होमे कर्मणि निर्दिशेत् । प्राजापत्ये च इन्द्राय एतावाघारसंज्ञकौ ।।३
अग्नये चैव सोमाय आज्यभागौ प्रकीर्तितौ । भूर्भुवःस्वस्त्रयश्चैव महाव्याहृतयः स्मृताः ।।४

चाहिए ! अग्नीषोमात्मक हवन के उपरांत नैऋत्य कोण से आरम्भ कर ईशानकोण नैमित्तिक तर्क पूर्णाहुति विद्वानों को प्रदान करनी चाहिए ।७७-८०। 'उद्वाह इति' इस मंत्र के अथर्वण ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं ।८१। इस यज्ञ एवं स्तुति को करते समय इस विनियोग के प्रयोग करना बताया गया है । 'त्वन्नोऽग्नयइति' इस मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, बृहती छन्द, अग्नि देवता बताये गये है ।८२। 'रूद्रो गतमिति' इस मंत्र के गुह्य संज्ञक ब्रह्मा ऋषि, जगती छन्द, विष्णु देवता हैं ।८३। 'उद्वर्तन इति' इस मंत्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं ।८४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में अग्निहोत्रविधान वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

यज्ञ विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सभी भाँति के यज्ञों में ब्रह्मा, और ऋत्विक् (हवन कराने वाले) ब्राह्मणों का वरण एवं अपने गृह्य के अनुसार कुशकण्डिका के उपरांत अग्नि की पूजा करनी चाहिए ।१। आधाराज्य भाग, तीनों महाव्याहृतियाँ, प्रायश्चित संज्ञक, प्राजापत्य, एवं स्विष्टकृत आहुतियाँ सभी हवन कर्मों में दी जाती है । प्राजापत्य और इन्द्र के लिए दी जाने वाली आहुति आधार संज्ञक, अग्नि तथा सोम के लिए दी जाने वाली आहुति आज्य भाग संज्ञक, और भुर्भुव तथा स्वर के लिए दी जाने वाली आहुति तीनों महाव्याहृति के नाम से ख्यात हैं।२-४। 'अयाश्चाग्ने इति' और 'ये ते शतमनुत्तममिति' इन पाँचों मंत्रों द्वारा प्रदान की

अयाश्चाग्ने इति तथा ये ते शतमनुत्तमम् । सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञा एते वै पञ्चमन्त्रकाः ॥५
प्राजापत्याहुतिश्चैका स्विष्टकृच्चापरा स्मृता । चतुर्दशैताः कृतयो होतव्या नित्यसंज्ञकाः ॥६
कृत्वा सकृद्देवतोद्देशं होमं पश्चात्समाचरेत् । सोमपा ये च गोयागे नरमेधाश्वमेधयोः ॥७
अन्यत्र विपरीतेन स्वाहान्तेन हुनेद्बुधः । नैमित्तिकं विना नित्यं निष्फलं याति नान्यथा ॥८
नित्यं वर्ज्यं शतार्धेन वैश्वदेवे तथैव च । त्र्यहसाध्यादियागेषु यन्निदेशं शृणु द्विजाः ॥९
एकाहे वाघाराज्यौ कृत्वा नैमित्तिकीः कृतीः । समा स्विष्टकृतं विद्यादाकृत्याद्यास्ततः परम् ॥१०
विशेषतस्त्र्यहादौ तु अघाराज्यपूर्वकम् । पश्चान्नैमित्तिकं कुर्यात्समाप्तिदिवसेऽप्यथ ॥११
आघाराराज्यपूर्वेण ततो नैमित्तिकं चरेत् । स्विष्टकृद्व्याहृतिश्चैव वारुणाद्यास्तथा हि षट् ॥१२
द्विजातिः पतितो यत्र द्वित्रिकं च चतुश्चतुः । एकस्मिन्दिवसे कुर्यात्सोमयागे च शैशवे ॥१३
द्विजातीनां विवाहे तु नैत्यिकं प्रथमं भवेत् । एकस्मिन्दिवसे कुर्यादग्निकार्यं पृथक्पृथक् ॥१४
दद्यादेकं च नित्यं च पृथङ् नित्यं न चाचरेत् । द्विजातिः पतितो यत्र द्वित्रिकं च चतुश्चतुः ॥१५
एकस्मिन्दिवसे कुर्यात्तत्रापि नैत्यिकं त्यजेत् । होमे ब्रह्मा स्तुते विष्णुः स्रुवे चैव महेश्वरः ॥१६
अजस्त्वनियमे चेन्द्रोऽधिश्रयणं विवस्वतः । पर्यग्निकरणे चैव उद्वाहे मातरः स्मृताः ॥१७

जाने वाली आहुतियाँ प्रायश्चित्त संज्ञक कही जाती हैं ।५। प्राजापत्य की एक आहुति तथा दूसरी स्विष्टकृत् की होती है, इस प्रकार इन चौदह आहुतियों का नित्य हवन करना चाहिए, इनकी 'नित्य' संज्ञा बतायी भी गयी है ।६। देवता के उद्देश्य से एक बार आहुति डालकर पश्चात् हवन प्रारम्भ करना बताया भी गया है, गोमेध, नरमेध एवं अश्वमेध यज्ञों में सोमपान करने वालों के उद्देश्य से आहुति प्रदान की जाती है, अन्यत्र इससे विपरीत अर्थात् अन्त में स्वाहा कर विद्वानों को आहुति प्रदान करनी चाहिए, पर ये सभी बातें नैमित्तिक के कार्यों में व्यवहृत होती हैं नित्य में नहीं अन्यथा उसके निष्फल हो जाने की आशंका रहती है ।७-८। नित्यकर्म एवं वैश्व देव में पचास संख्या की आहुति का निषेध किया गया है, द्विजवृन्द ! तीन दिन में सिद्ध होने वाले यज्ञ के निर्देशों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पहले दिन आधार, आज्य भाग, नैमित्तिक कर्म, एवं स्विष्टकृत् हवन करने के उपरांत शेष समस्त कृत्यों की समाप्ति करनी चाहिए ।९-१०। विशेषकर तीन दिन वाले यज्ञ-सिद्धि के विषय में आधार और आज्य भाग की समाप्ति पूर्वक पश्चात् समाप्ति दिन में भी नैमित्तिक कार्य करना बताया गया है ।११। पहले आधार, तथा आज्य भाग की समाप्ति के उपरांत नैमित्तिक कार्य की समाप्ति होनी चाहिए । इस भाँति स्विष्टकृत्, व्याहृति, एवं वारुणी मिलकर इन छहों की कृत्यसमाप्ति एक ही साथ आरम्भ में की जाती है ।१२। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), जिसमें पतित हो जाते है, उन दो तीन अथवा चार-चार कृत्यों की समाप्ति सोमयाग या शैशव (बचपन) के एक ही दिन में की जानी चाहिए ।१३। द्विजातियों के विवाह कार्य में पहले नित्य कार्य सम्पन्न किया जाता है, और उसी एक दिन में अग्निकार्य (हवन) भी पृथक्-पृथक् किया है।१४। उसी एक नित्य कार्य के सुसम्पन्न करने की आवश्यकता रहती है, पृथक् नित्य की नहीं। द्विजाति के पतित होने वाले उन दो, तीन या चार-चार कृत्यों की समाप्ति के दिन भी नैमित्तिक कार्यों का त्याग करना बताया गया है। हवन कार्य में ब्रह्मा, स्तुति कार्य में विष्णु, स्रुवा मे महेश्वर, अनियमित कार्य में अजन्मा, अधिकभक्षण में इन्द्र, पर्याग्नि करण में विवस्वान् और विवाह कार्यों में मातृकाओं का स्थापन-पूजन आवश्यक बताया

चन्द्रादित्यौ चोत्पवने वीक्षणे च दिशस्तथा। प्रोक्षण्यां स्थापने दुर्गा इमे लक्ष्मी प्रतिष्ठिता ॥१८
होमं कुर्याद्द्विजश्रेष्ठः विधिं कुर्यात्समाहितः। एतेषु देवताः प्रोक्ता द्विजातीनां हिताय च ॥१९
यजेत्सुपशुबद्धेषु संस्कारे चैव पर्वणि। देवताः सर्वा ज्ञातव्या एता यज्ञे समाहितैः ॥२०
अधिदैवेन जानीयात्करवल्यां पञ्चफलं यतः। ततस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवतामथ विन्यसेत् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे चतुर्दशोऽध्यायः।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देवध्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अथ वक्ष्यामि सर्वेषां देवानां ध्यानमुत्तमम्। अस्य यज्ञे परिज्ञानाज्जिह्वा सम्यक्फलप्रदा ॥१
हिरण्यवर्णां प्रथमां वह्निजिह्वां महाद्युतिम्। कनकाढ्यकरां देवीं हिरण्याख्येष्टसिद्धये ॥२
कनकां[1] द्विभुजां शुक्लां हस्ताभ्यां दर्भसंयुताम्। कमण्डलुं च बिभ्राणां नुमः साधकसिद्धिदाम् ॥३
उद्यदिन्दुनिभां रक्तां चतुर्भिर्भुजपल्लवैः। शङ्खचक्राभयवरान्दधतीं प्रणमाम्यहम् ॥४

गया है।१५-१७। उसी भाँति उत्पवन कार्य में चन्द्र सूर्य, निरीक्षण में दिशाओं, प्रोक्षणी के स्थापन में दुर्गा तथा लक्ष्मी को प्रतिष्ठित करना कहा गया है।१८। द्विजश्रेष्ठ! विधान पूर्वक हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए, उनमें इन सभी देवताओं के स्थापन पूजन द्विजातियों के लिए हितकर बताया गया है।१९। पशु बन्धन, संस्कार, एवं पर्व के यज्ञ के दिनों में सावधान होकर इन्हीं देवताओं का पूजन करना चाहिए। इन देवों के अधिनायक होने के नाते करवेली में पाँच फलों की प्राप्ति होती है, अतः इन कर्मों में देवों के आवाहनादि करने के लिए सभी भाँति के प्रयत्न करना चाहिए।२०-२१
श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।१४।

अध्याय १५

देवता के ध्यान का वर्णन

सूत बोले—मै देवताओं का उत्तम ध्यान बता रहा हूँ, जिसके भली भाँति पालन द्वारा, ज्ञान द्वारा यज्ञ में जिह्वा सम्यक् फलों को प्रदान करती है।१। हिरण्य (सुवर्ण) के समान वर्ण, एवं अत्यन्त प्रकाशपूर्ण वह अग्नि की पहली जिह्वा है, हिरण्य रूपी इष्ट सिद्धि के लिए कनकाढ्य करने वाली जिसके शुक्लवर्ण, एवं कुशपूर्ण दो हाथ हैं, कमण्डलु धारण किये, साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाली उस देवी को हम लोग नमस्कार करते हैं।२-३। उदयकालीन चन्द्र की भाँति (सौन्दर्यपूर्ण), रक्तवर्ण, चार भुजा रूपी ब्राह्मणों से युक्त तथा उनमें क्रमशः शंख, चक्र, अभय, एवं वर स्थित कर प्रदान करने वाली उस देवी को मैं प्रणाम

---

१. सुवर्णाभामित्यर्थः।

भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां स्वर्णकुम्भं तु वामतः । दक्षिणेन वरारक्तां धारयन्तीं नमाम्यहम् ।।५
सुप्रभामण्डलाभा च कराभ्यां तत्कृताञ्जलिः । पद्मासनस्था कौशेयवसना मे प्रसीदतु ।।६
जपाकुसुमसङ्काशा बहुरूपा सखे मम । शुभदा स्याद्भुजैः शुभ्रा सहस्रं दधती परान् ।।७
नीलोत्पलनिभे देवि वह्निवर्णपराभवे । जपापुष्पधरे नित्यं सतीरूपे प्रसीद मे ।।८
मूलेन वीक्षयेत्स्थानं मन्त्रेण खननं मतम् । त्रिसूत्रीकरणं कुर्याच्चतुः सूत्रं निपातयेत् ।।९
इति श्री भविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

देवध्यानविधानवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिष्ठायाः पूर्वदिने कुर्याद्देवाधिवासनम् । धान्यप्रतिष्ठां तस्यैव यूपं चापि यथाविधि ।।१
रात्रौ मूलाग्रे च घटे स्थापयेद्गणनायकम् । सम्पूज्य च विधानेन दिगीशांश्च तथा ग्रहान् ।।२
ब्रह्माणं च तडागेषु वरुणं शान्तियागके । सोमं च मण्डले सूर्यं पादे विष्णुं तथैव च ।।३
शैवे शैवं तथा प्रोक्तं प्रपायामथ वारुणम् । आरामे चैव ब्रह्माणं पाद्याद्यैरपि चार्चयेत् ।।४

करता हूँ ।४। भिन्न काले अज्जन की भाँति उस रक्तमयी देवी को, जो बायें हाथ में सुवर्ण घट लिये और दाहिने हाथ से वर प्रदान कर रही है। नमस्कार कर रहा हूँ ।५। अत्यन्त प्रभा पूर्ण मण्डल की आभा समेत, दोनों हाथों से अञ्जली बाँधे (हाथ जोड़े) कमलासन पर सुशोभित और रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित वह देवी मुझ पर प्रसन्न रहे ।६। मित्र ! जया (गोड़हर) के पुष्प की भाँति, एवं अनेक रूप धारण करने वाली वह शुभ्र वर्णा देवी, जो अपनी भुजाओं द्वारा सहस्रों शत्रुओं को ग्रहण करती हैं, मेरे लिये शुभ (कल्याण) प्रदान करे।७। हे नील कमल के समान सौन्दर्य पूर्ण, अग्नि वर्ण का अनादर करने वाली नित्य जपा पुष्प धारिणी, एवं सती रूपवाली देवि ! मुझ पर प्रसन्न हो।८। इस प्रकार आराधना के उपरांत मूल से स्थान निरीक्षण, मंत्र द्वारा खनन, एवं त्रिसूत्रीकरण तथा चार सूत्रों का भी उपयोग करना चाहिए।९ श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में देवध्यान वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।१५।

अध्याय १६

देवध्यान का वर्णन

सूत जी बोले—प्रतिष्ठा करने के पूर्व दिन में उस देव का अधिवासन, धान्य प्रतिष्ठा, एवं उसका विधान पूर्वक यूप (यज्ञीय स्तम्भ), की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।१। रात के समय घर के मूलाग्र भाग में गणनायक देव को स्थापित करके उनकी तथा दिक्पाल एवं ग्रहों की विधान पूर्वक पूजा करनी चाहिए।२। तालाबों के यज्ञ में ब्रह्मा, शान्ति यज्ञ में वरुण, मंडल में सोम, पाद में सूर्य, एवं विष्णु, शैव के कृत्यों में शैव, प्रमा (पियाऊ) में वरुण, उपवन में ब्रह्मा की पाद्य-अर्घ्य प्रदान पूर्वक पूजा करनी

द्रुपदादीति मन्त्रेण स्नापयेत्प्रथमं बुधः । गायत्र्या च ततः पश्चाद्गन्धद्वारेति तैलकम् ॥५
सुनाभेति च मन्त्रेण द्वाभ्यामेव विशिष्यते । श्रीश्च ते इति कुसुमं फलिनीति च वै फलम् ॥६
काण्डादिति च मन्त्रेण दद्याद्दूर्वाशतं ततः । सिन्दोरिवेति सिन्दूरं विश्वामिति च मार्जनम् ॥७
समिच्छेत्यञ्जनं दद्याद्दुःस्थं सुरासुरा जपन् । चन्दनं यज्वभिर्जप्त्वा मानस्तोकेति चन्दनम् ॥८
यूपे चैव विशेषोयमुत्तराग्रं प्रविन्यसेत् । अद्यैव तेन मन्त्रेण स्थापयेदथ वारिणा ॥९
गायत्र्या प्रथमं चैव आपो हिष्ठेति वै जपन् । शन्नो देवीति द्रुपदां स्नापयेत्तदनन्तरम् ॥१०
अभिमन्त्र्याथ ब्रह्मेति त्रिरात्रं मन्त्रमीरयन् । योगं योगदृढं जप्त्वा पवित्रं विन्यसेत्ततः ॥११
त्वं गन्धर्वेति मन्त्रेण तथा सुभाभ इत्यपि । द्वाभ्यां तैलगन्धयुतं श्रीसूक्तेनादि पुष्पकम् ॥१२
धूरसीति च तथा धूपमास्रज्योतिर्भिर्दीपकम् । अनुमीमहताति दद्याद्दूर्वाक्षतं ततः ॥१३
विश्वामीति च निम्न्यन्तकाण्डादिति तथाक्षतम् । सिन्दोरिवेति सिन्दूरं समिधेति तथाञ्जनम् ॥१४
पादोऽस्येत्यथ भुक्तं स्याद्याः फलिनीति पुनः फलम् । रूपं नेति दहेद्रूपं न सोचिति च पूजनम् ॥१५
युवा सुवासेति वस्त्रं नागगन्धेति चन्दनम् । ततो यमगृहाद्बाह्ये मण्डपान्तरमाश्रितः ॥१६
सुनातीति वचो दद्यात्ततश्चावाहयेत्प्रभुम् । तत्राधिवासनं कुर्याद्रक्षयेच्च सुरक्षिभिः ॥१७
आचार्यो यजमानश्च ऋत्विग्भोजनमाचरेत् । अक्षारलवणान्यासी दधि विश्वं तिलांस्त्यजेत् ॥१८

चाहिए ।३-४। विद्वानों को पहले 'द्रुपदादीति' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए स्नान 'गायत्री' एवं 'गन्धद्वारेति' तथा 'सुनाभेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक तेल, एवं 'श्रीश्च ते इति' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पुष्प 'फलिनीति' इस मंत्र से फल, 'काण्डादिति' इस मंत्र से सौ दूर्वा, 'सिन्दोरिवेति' इस मंत्र से सिंदूर 'विश्वामिति' इस मंत्र से मार्जन, 'दुः स्थं सुरासुरेति' इससे अञ्जन, तथा 'मानस्तोकेति' इस मंत्र से चन्दन प्रदान करना चाहिए ।५-८। तथा यूप (यज्ञीय स्तम्भ) को उत्तराग्र भाग में करके उसी दिन उसी मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे स्थापित करना चाहिए ।९। गायत्री मंत्र, 'आपोहिष्ठेति' एवं शन्नो देवीति' इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करने के उपरांत 'अथ ब्रह्मेति' इस मंत्र का तीन रात तक जप करके 'योग योग दृढं' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पवित्री का उसमें प्रक्षेप करना बताया गया है ।१०-११। 'त्वं गन्धर्वेति' और 'सुभाम इति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तेल एवं गन्ध प्रदान करके श्री सूक्त द्वारा पुष्प, 'धूरसीति' इस मंत्र के उच्चारण से धूप' 'आस्रज्योतिर्भिरिति' इस मंत्र से दीपक, 'अनुमीमहताति, इससे दूर्वा और अक्षत, 'विश्वामिति, तथा 'निम्न्यन्तकाण्डादिति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अक्षत, 'सिन्दोरिवेति' इस मंत्र से सिन्दूर और 'समिधेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए अञ्जन एवं 'पादो ऽस्येति' इससे भोजन करना और याः फलिनीति' इससे पुनः फल अर्पित करने के उपरांत 'रुपं नेति दहेद्रूप न सोचिति चेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए ।१२-१५। 'युवा सुवासेति' से वस्त्र, 'नागगन्धेति' से चन्दन चर्चित करने के उपरांत यम गृह से बाहर मण्डप के भीतर 'सुनातीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रभु का आवाहन, एवं अधिवासन करके कुशल रक्षकों द्वारा सुरक्षित रखना चाहिए ।१६-१७। पुनः एक साथ आचार्य, यजमान और ऋत्विक् गण के क्षार नमक, दही, विश्व और तिल के त्याग पूर्वक भोजन कराना चाहिए ।१८। इसके उपरांत मैं (देवों का) असाधारण अधिवासन

आधारणं चाधिवासं वक्ष्ये तत्रानुसारतः । सुनातेति वचो दद्यात्तैलं चैव शिवे त्रिभिः ।।१९
पञ्चभिर्ब्राह्मणैः सार्धं गन्धर्वा इति विस्मरन् । दद्याद्गन्धं तैलयुतं गन्धद्वारेत्यृचा पुनः ।।२०
याः फलिनीति च फलं पूगतान्नामवर्जनम् । कौशिकीरुत्तमोसीति दद्यात्खड्गं सुतीक्ष्णकम् ।।२१
रूपेन वेति मन्त्रेण मुद्गरं च निवेदयेत् । श्रीश्च ते इति कुसुमं विश्वानीति च सम्पठन् ।।२२
निर्मन्थनं ततः कार्यमिति साधारणो विधिः । ततोऽधिवासकल्पे तु प्रदेशे तु समाचरेत् ।।२३
विनाधिवासनं विप्राः प्रतिष्ठानं समाचरेत् । न तत्फलमवाप्नोति विवाहे शरणं दिशेत् ।।२४
ततः प्रयत्नतः कार्यं पूर्वाह्णे रात्रियोगतः । नित्ये नैमित्तिके काम्ये कारयेत्कुण्डमण्डपम् ।।२५
स्थण्डिले हस्तमात्रेण वालुकानिर्मितेऽपि च । त्रयोदशाङ्गुले हस्ते द्विहस्ते चापि वर्द्धते ।।२६
एकैकाङ्गुलको विप्राः पीठे नास्ति विचारणा । नवपञ्चक कुण्डे च लक्षादावपि शङ्कया ।।२७
ततो दशाङ्गुले पक्षे दशाङ्गं शृणुत द्विजाः । काष्ठं पत्रं च पुष्पं च मोदकं पिष्टकं तथा ।।२८
अन्नं च परमान्नं च ह्यवेक्ष्यं तिलमेव च । एतद्वै गृहपक्षे च विष्णुपक्षे तिलादितः ।।२९
शैवे यवादितः कार्या शाक्ते पुष्पादितो भवेत् । सूर्ये पक्षे पिष्टकादि गोपाले कृशरादितः ।।३०
कृष्णे च करवीरादि श्रीफलानि च त्रैपुरे । सारस्वते च श्रीवृक्षे मोक्षकामे निगद्यते ।।३१
इति श्री भविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नामक षोडशोऽध्यायः ।१६

शास्त्रानुसार बता रहा हूँ, (सुनो) ! 'सुनातेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक तीन ब्राह्मणों द्वारा (शिव के लिए) तेल, पाँच ब्राह्मणों द्वारा 'गन्धर्वेति' मंत्र के उच्चारण करके तैल युत गन्ध और 'गन्धद्वारेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक पुनः गन्ध प्रदान करना चाहिए ।१९-२०। 'याः फलिनीति' मंत्र से पूंगीफल (सुपाड़ी) 'कौशिकीरुत्तमोऽसीति' मंत्र द्वारा तीक्ष्ण खड्ग, 'रूपेन वेति' इस मंत्र द्वारा मुद्गर, 'श्रीश्चते इति' और 'विश्वातीति' इस से पुष्प, प्रदान करने के उपरांत निर्मंथन करना चाहिए' यह साधारण विधान कहा गया है । पश्चात् उस प्रदेश में अधिवासन का कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए ।२१-२३। क्योंकि विप्रवृन्द ! बिना अधिवासन कार्य को सुसम्न्न किये प्रतिष्ठापन विधान निष्फल हो जाता है ।२४। इसलिए रात्रि के पूर्वाह्ण समय में उसे प्रयत्न पूर्वक सुसम्पन्न करना आवश्यक होता है । नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्य इनमें किसी अनुष्ठान के आरम्भ में सर्वप्रथम कुण्डमण्डप बनाना चाहिए ।२५। एक हाथ की वेदी चाहे वह बालू की ही बनायी जाये, पर, सौन्दर्य पूर्ण बनानी चाहिए । तेरह अंगुल, हाथ एवं दो हाथ की वेदी के निर्माण में विप्रवृन्द ! एक एक अंगुल की भी वृद्धि की जा सकती है, इसलिए पीठासन के विषय में विशेष विचारने की आवश्यकता नहीं बतायी गयी है । चौदह भाँति के कुण्डों के निर्माण में भी जिसमें लक्ष संख्या की आहुतियाँ डाली जाती हैं, वही बात है । द्विजवृन्द ! दश अंगुल के पक्ष में उन दश अंगों को बता रहा हूँ, सुनो ! काष्ठ, पत्र, पुष्प, मोदक, पीठा (चूर्ण), अन्न, परमान्न, और तिल ये गृहपक्ष की ओर से निश्चित है, विष्णु के भाग में तिल शिव के जवा, शाक्त कर्म में पुष्प, सूर्य के भाग में पीठा, गोपाल के लिए कृशरान्न (खिचड़ी), कृष्ण के लिए करवी (कनेर) के पुष्प, त्रिपुर सम्बन्धी कार्य में श्रीफल (बेल), तथा सारस्वत, श्री वृक्ष, एवं मोक्ष के कामों में भी उसी श्रीफल से ही आरम्भ किया जाता है ।२६-३१

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में देवध्यान वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त । १६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

देवध्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अष्टौ होतारो द्वारपालास्तथाष्टौ अष्टौ कार्या ब्राह्मणा याजकाश्च।
सर्वे शुद्धा लक्षिता लक्षणाद्यैरेकः कार्यो जापकोऽस्मिन्महात्मा ॥१
दिव्यैर्गन्धैर्गन्धमाल्यैः सुवर्णैस्तैलं कार्यं ब्राह्मणाः पञ्चविंशाः।
आवाप्यैस्तु द्विगुणैर्वै बलीयो दिव्यैर्वस्त्रैरर्हणादक्षिणाभिः ॥२

नार्हयित्वा यथोक्तेन कश्चित्पात्रं निवेशयेत्। अनर्हितेषु विप्रेषु न सम्यक्फलमाप्नुयात् ॥३
प्रतिष्ठादिषु सर्वेषु सम्यग्विप्रानथार्हयेत्। कुशद्विजं तु सर्वत्र अर्घ्यं विष्टरमात्रकम् ॥४
प्रदद्यादर्हणं सम्यक्पश्चात्पात्रं निवेदयेत्। विनार्हणं कृते तस्मिन्नरके परिपच्यते ॥५
प्रत्येकं ब्राह्मणा यज्ञे वेदमन्त्रेषु पारगाः। आचार्यो यदि कार्येषु वरयेद्दश गोव्रजान् ॥६
विशिष्टानामभावेऽपि कुर्यात्कुशमयान्द्विजान्। कुशप्रतिकृतौ चापि स्वगोत्रं स्वं द्विजं विना ॥७
न कुर्याच्चरणोद्देशं तथा प्रहरसंहतिम्। गोत्रादिकीर्तनान्तेषु स्वनामोद्देशमीरयन् ॥८
तुलापुरुषदाने च तथा च हाटकाचले। कन्यादाने तथोत्सर्गे कीर्तयेत्प्रवरादिकम् ॥९

अध्याय १७

देवध्यान का वर्णन

सूत जी बोले—आठ होता, आठ द्वारपाल, एवं आठ यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण, जो शुद्ध तथा लक्षण सम्पन्न हों, होने चाहिए और उन्हीं विद्वानों में से किसी एक महात्मा को जापक नियुक्त करना चाहिए ।१। दिव्य गन्ध, गन्ध माल्य और सुवर्णो द्वारा इन पच्चीस ब्राह्मणों का तैल कार्य तथा दिव्य वस्त्र एवं दक्षिणाओं से पूजा और उनकी प्राप्ति भी दुगुनी होनी चाहिए ।२। उक्त विधान द्वारा पूजा किये बिना किसी भी (यज्ञीय) पात्र का यज्ञ में प्रवेश न करना चाहिए, क्योंकि अपूजनीय ब्राह्मणों द्वारा पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती है ।३। सभी प्रतिष्ठा आदि कार्यो मे ब्राह्मणों की भली भाँति पूजा होनी चाहिए, क्योंकि कुश और ब्राह्मण सर्वत्र पूजनीय बताये गये हैं, अतः सर्वप्रथम उन्हें आसन प्रदान करके पश्चात् पात्रों की कल्पना और वर्गीकरण करना चाहिए, अन्यथा उन्हें नरक में परिपक्व होना पड़ता है ।४-५। यज्ञ के प्रत्येक ब्राह्मण को वेदमंत्रो का निष्णात विद्वान् होना बताया गया है, इसलिए कार्यों में दश गोव्रज द्वारा आचार्य का वरण करना कहा गया है ।६। इस प्रकार के विशिष्ट विद्वानों के अभाव में कुशमय ब्राह्मण की कल्पना करनी चाहिए ब्राह्मण की कुश प्रतिमा बनाने में अपने गोत्र और अपने ब्राह्मण का त्याग करना चाहिए ।७। शाखा का अनुसन्धान और भाग समूह की कल्पना न करके केवल गोत्र आदि के कथन के उपरांत अपने नाम का उच्चारण करना चाहिए ।८। तुला-पुरुष दान, हाटकाचल (मेरुपर्वत) के निर्माण, कन्यादन, एवं उत्सर्ग विधान में अपने प्रवर का भी उच्चारण करना बताया गया है ।९।

न पात्रं प्रतिकृत्यर्थं न चालं सोदरं तथा । मृतभार्य्यो ह्ययभार्यश्च अपुत्रो मृतपुत्रकः ॥१०
शूद्रसंस्कारकश्चैव कृपणो गणयाजकः । प्रायश्चित्तगृहीतश्च राजयाजकपैशुनौ ॥११
शूद्रगेहनिवासी च शूद्रप्रेरक एव च । स्वल्पकण्ठो वामनश्च वृषलीपतिरेव च ॥१२
बन्धुद्वेषी गुरुद्वेषी भार्याद्वेषी तथैव च । हीनाङ्गश्चैव वृद्धाङ्गो भग्नदन्तश्च दाम्भिकः ॥१३
प्रतिग्राही च कुनखः पारदारिक एव च । श्वित्री कुष्ठी कुलोद्भूतो निद्रालुर्व्यसनार्थकः ॥१४
अदीक्षितः कदर्यश्च चण्डरोगी गलद्व्रणः । महाव्रणी च उदरी यज्ञगार्ं न कारयेत् ॥१५
वरणान्ते तु पात्राणां पूजामन्त्राञ्छृणु द्विज । प्रतिमन्त्रेण गन्धाद्यैरर्चयेन्मन्त्रवित्तमः ॥१६
ब्रह्ममूर्तिस्त्वमाचार्यः संसारात्पाहि मां विभो । त्वत्प्रसादाद्गुरो यज्ञं प्राप्तोस्मि यन्मयेप्सितम् ॥१७
चिरं मे शाश्वती कीर्तिर्यावल्लोकाश्चराचराः । प्रसीद त्वं महेशान प्रतिष्ठाकर्मसिद्धये ॥१८
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः । ज्ञानामृतप्रदाचार्यो यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥१९
ब्रह्मणैव समुद्भूत प्रकाशितदिगन्तर । शुद्धजाम्बूनदप्रख्य यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२०
प्रतप्तकनकाभास भासितद्युतिभूतल । मन्त्रप्रख्यानसंस्थान यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२१
प्रफुल्लकनकाभास भास्वरासुरभूषित । प्रकीर्णमन्त्रसम्भारविधिज्ञ प्रणतोऽस्मि ते ॥२२

प्रतिमा के लिए पात्रों की कल्पना नहीं की जाती है, उसी भाँति चाल के लिए सोदर की, जिसकी स्त्री का देहावसान हो गया हो, स्त्री हीन, पुत्र विहीन, मृत पुत्र वाले, प्रायश्चित के द्वारा गृहीत होने वाले, राजाओं के यज्ञ कराने एवं चुगुली वाले, शूद्र के घर निवास करने वाले, शूद्र द्वारा प्रेरित किये जाने वाले, अस्पष्ट वाणी वाले, वामन, वृषली पति (शूद्रा स्त्री के पति कहलाने वाले), बान्धव, गुरु और स्त्री से द्वेष करने वाले, हीनांग, वृद्धांग, भग्नदाँत वाले पाखण्डी, प्रतिग्रह (दान) लेने वाले, कुनखी, परस्त्री गामी, श्वेत कुष्ठ के रोगी, कुल परम्परा प्राप्त कुष्ठ के रोगी, निद्रालु, व्यसनी, दीक्षाहीन, कायर, चण्डरोगी, मलित व्रण एवं महाव्रण वाले तथा उदररोग वालों को यज्ञ के पात्र निर्वाचित न करना चाहिए।१०-१५। द्विज ! पात्रों के वरण करने के उपरांत उनके पूजन के मंत्रों को मैं बता रहा हूँ, सुनो! मन्त्रवेत्ता का गन्ध आदि सामग्रियों द्वारा उनके प्रत्येक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पात्रों का पूजन करना चाहिए।१६। आप ब्रह्ममूर्ति एवं मेरे आचार्य हैं, हे विभो ! इस संसार से मेरी रक्षा कीजिए, हे गुरो ! आप की प्रसन्नता से ही मैंने अपने अभीष्ट यज्ञ की प्राप्ति की है।१७। चर-अचर लोक की जितने दिनों तक स्थिति रहेगी, उतने चिरकाल तक मेरी कीर्ति अविनाशिनी होकर रहे, हे महेशान ! इस प्रतिष्ठानुष्ठान की सफलता प्रदान करने के लिए आप प्रसन्न हो जायें।१८। आप समस्त प्राणियों के आदि एवं संसार सागर के तारने वाले हैं, और ज्ञान रूपी अमृत प्रदान करने के लिए आचार्य हैं, हे यजुर्वेद ! आप को नमस्कार है।१९। ब्रह्म के ही द्वारा उत्पन्न, दिगदिगन्त में व्याप्त एवं शुद्ध जाम्बूनद (सुवर्ण) की भाँति ख्याति प्राप्त उस यजुर्वेद रूप आपको नमस्कार है।२०। संतप्त सुवर्ण के समान प्रकाश आभास की किरणों द्वारा प्रकाशित भूतल, एवं मंत्रों के आख्यान और संस्थान रूप उस यजुर्वेद रूप आपको नमस्कार है।२१। प्रकाशित सुवर्ण की भाँति प्रभा, भास्वर रूप असुरों से विभूषित तथा मन्त्र के विस्तृत संभार विधान के ज्ञाता आपको

षडङ्गवेदवेदज्ञ ऋत्विङ्मोक्षप्रदो भव । प्रविश्य मण्डलं विप्राः स्वस्थाने स्थापयेत्क्रमात् ॥२३
वेद्याः पश्चिमभागे तु आचार्यं स्थापयेद्बुधः । कुण्डस्याग्रे तु ब्रह्माणं मण्डलस्यैव पश्चिमे ॥२४
होतारं स्थापयेत्तत्र विधिज्ञमथ चोत्तरे । द्वौ द्वौ कृत्वा ज्ञापकौ च खड्गधारकमेव च ॥२५
द्वारि द्वारि प्रयत्नेन द्वारपालाननुक्रमात् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण प्रत्येकमथ स्थापयेत् ॥२६
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्वाससो युगलेन तु । यज्ञे सविततं योऽसौ पूज्यते पुरुषः सदा ॥२७
नारायणस्वरूपेण यज्ञं मे सफलं कुरु । यज्ञेषु साक्षी सर्वेषु यजुर्वेदार्थतत्त्ववित् ॥२८
ऋग्वेदार्थस्य तत्त्वज्ञ इन्द्ररूप नमोऽस्तु ते । मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु येन मन्त्राः सुविस्तृताः ॥२९
यजुर्वेदार्थतत्त्वज्ञ ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते । मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु एष एव विधिः स्मृतः ॥३०
माङ्गल्यं कर्मणां नित्यं सर्वज्ञं ज्ञानरूपिणम् । सिद्धये मम यज्ञस्य नमामि शिवरूपिणम् ॥३१
पालय त्वं दिशः सर्वा विदिशश्च तथा इमम् । दिक्पालरूपिणं विप्रं यज्ञसिद्धौ नमाम्यहम् ॥
न सङ्कल्पं[1] चरेद्यागं व्रतं देवार्चनं तथा ॥३२
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः । सङ्कल्पेन विना विप्रा यत्किञ्चित्कुरुते नरः ॥३३
फलं चाल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यागं सङ्कल्पयेत्सुधीः ॥३४
कामात्परो नैव भवेन्निष्कामोऽपि न शोभनः । तस्मात्काममयं धर्मं विना मोक्षं न चाचरेत् ॥३५

नमस्कार है ।२२। षडङ्ग समेत वेद के मर्मज्ञ, एवं ऋत्विक् के मोक्ष प्रदायक हों, विप्रवृन्द ! इस भाँति कहते हुए मण्डल में प्रवेश करके क्रमशः उन्हें अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करना चाहिए ।२३। विद्वान् को चाहिए कि वेदी के पश्चिम भाग में आचार्य, कुण्ड के अग्रभाग में ब्रह्मा, मण्डल के पश्चिम भाग में होता, और उत्तर की ओर विधान ज्ञाता को आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहिए । प्रत्येक दरवाजे पर हाथ में खड्ग लिये द्वारपालों की भाँति दो दो ज्ञापक की नियुक्ति मंत्र पूर्वक करनी चाहिए, और गन्ध पुष्प आदि एवं दो-दो वस्त्रों द्वारा उनकी पूजा अवश्य होनी चाहिए । इस विस्तृत संभार के यज्ञ में जिस पुरुष की सदैव पूजा होती है, वही नारायण स्वरूप होकर इस मेरे यज्ञानुष्ठान को सफलता प्रदान करे, समस्त यज्ञों के साक्षी, यजुर्वेद के अर्थ वेत्ता, एवं ऋग्वेद के तत्त्वज्ञ उस इन्द्ररूप को नमस्कार है, समस्त श्रेष्ठ यज्ञों में जिसके द्वारा मंत्रों की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या की गयी है, उस यजुर्वेद के अर्थतत्त्वज्ञाता एवं ब्रह्म रूप को नमस्कार है । सभी श्रेष्ठ यज्ञों का यही विधान बताया गया है ।२४-३०। कर्मों के मांगलिक रूप, नित्य, सर्वज्ञ, ज्ञान रूपी, एवं उस शिव (कल्याण) रूप को मैं अपनी यज्ञ सफलता के लिए नमस्कार करता हूँ ।३१। आप इन दिशाओं, एवं विदिशाओं की रक्षा करें, तथा यज्ञ सिद्धि के लिए उस दिक्पाल रूपी ब्राह्मण की वन्दना करता हूँ । बिना संकल्प के याग, व्रत, एवं देवार्चन कभी न करना चाहिए, क्योंकि संकल्प मूलक ही कामनाओं की उत्पत्ति होती है, और उसी भाँति संकल्प से यज्ञों की । इसलिए विप्रवृन्द ! संकल्प हीन पुरुष जो कुछ कर्म करता है, उसका अत्यन्त फल जो प्राप्त होता है, उस का अर्धभाग क्षीण हो जाता है, अतः विद्वानों को समस्त प्रयत्नों द्वारा संकल्प पूर्वक ही याग का आरम्भ करना चाहिए ।३२-३४। कामनाओं में त्रिदान होने एवं उनका त्याग भी करना उचित नहीं है, इसलिए काम मय धर्म के बिना मोक्ष-उपाय करना श्रेयस्कर नहीं होता है । संकल्प किये बिना मनुष्य जिस नित्य, एवं

---

१. विनेति शेषः ।

सङ्कल्पेन विना यस्तु धर्मं चरति मानवः । न तस्य फलमाप्नोति नित्यनैमित्तिकस्य च ।।३६
न कुर्यात्स्थापने चैव कुर्याद्वै मण्डलान्तरे । गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णं गुणान्वितम् ।।३७
जलाशयारामकूपसङ्कल्पे पूर्वदिङ्मुखः । साधारणे चोत्तरास्यो ग्रहयज्ञे तु सम्मुखः ।।३८
महाव्रते प्रतिष्ठायां पात्रं ताम्रं हिरण्मयम् । राजताश्ममयं साङ्गं यज्ञेषु प्रशस्यते ।।३९
यज्ञीयपात्रपुटकं हस्तस्थाने प्रकीर्तितम् । ऐशान्यां निक्षिपेत्तोयं प्रतिष्ठायां च पूर्वतः ।।४०
आकाशे निक्षिपेद्यागे व्रते ईशेऽपि नित्यके । पितृमेधे च गोयागे नरमेधे च दक्षिणे ।।४१
शुक्तिकांस्यादिहस्तैश्च ताम्ररौप्यादिभिस्तथा । सङ्कल्पो नैव कर्तव्यो मृण्मये च कदाचन ।।४२
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य यज्ञेयज्ञेश्वरं स्मरेत् । गङ्गा चादित्यचन्द्रौ च द्यौर्भूमी रात्रिवासरौ ।।४३
सूर्यःसोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च । एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ।।४४
इत्युच्चार्य न्यसेद्धर्मं ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं सृजेत् । अमृतं कृत्यपात्रे च ॐ तत्सदिति निर्दिशेत् ।।४५
धर्मः शुभ्रवपुः सिताम्बरधरः कार्योर्ध्वदेशे वृषो हस्ताभ्यामभयं वरं च सततं रूपं परं यो दधत् ।।
सर्वप्राणिसुखावहः कृतधियां मोक्षैकहेतुः सदा । सोयं पातु जगन्ति चैव सततं भूयात्सतां भूतये ।।४६
यज्ञसम्बन्धिविप्रांश्च एकाहेनैव योजयेत् । हविर्द्रव्याणि यानि स्युरष्टयागांतरेऽपि च ।।४७
पुनः पुनर्नियोज्यानि ब्राह्मणा हविरग्नयः ।।४८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

नैमित्तिक धर्मों का पालन करता है, उसे उसके फल से वञ्चित रहना पड़ता है ।३५-३६। जलपूर्ण गूलर के पात्र को मण्डल मध्य में स्थापित न करना चाहिए ।३७। जलाशय, उपवन, एवं कूपों की प्रतिष्ठा में पूर्वाभिमुख होकर संकल्प किया जाता है, उसी भाँति साधारण कार्य में उत्तराभिमुख और गृह यज्ञों में सम्मुख होना बताया गया है ।३८। महाव्रत तथा प्रतिष्ठा के कार्यों में ताँबे, सुवर्ण, चाँदी, एवं पत्थर के सांङ्गोपाङ्ग समेत पात्र प्रशस्त बताये गये हैं ।३९। हाथ के स्थान में यज्ञीय पात्रों के पुटक ग्रहण किये जाते हैं, उनके जल का त्याग ईशान कोण में किया जाता है, प्रतिष्ठा में पूर्व की ओर ।४०। नित्य व्रत एवं शिव याग में आकाश की ओर, पितृमेध, गोमेध और नरमेध नामक यज्ञों में दक्षिण की ओर वह त्याज्य बताया गया है ।४१। सीप, कांसा आदि तथा ताँबाँ और चाँदी के हाथों द्वारा संकल्प न करना चाहिए एवं मिट्टी के हाथों द्वारा तो कभी नहीं ।४२। सर्व प्रथम प्रणव के उच्चारण पूर्वक यज्ञेश्वर (भगवान्) और गंगा, सूर्य चन्द्र, आकाश, भूमि एवं दिन रात का स्मरण करना चाहिए ।४३। सूर्य, चन्द्र, यम काल तथा पञ्च महाभूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु, एवं आकाश) ये नव प्रत्येक (प्राणी) के शुभाशुभ कर्म के साक्षी होते हैं ।४४। इस भाँति कह कर धर्म को ध्यान पूर्वक पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिए । कृत्य पात्रों में अमृत हैं, 'ओं तत्सदिति' इस प्रकार निर्देश करके प्रार्थना आरम्भ करे शुभ्र वर्ण की शरीर, श्वेत वस्त्र धारण करने वाला वह धर्म जिसके ऊर्ध्व भाग में वृषभ हव्यों में अभय एवं वर निरन्तर धारण किया रहता है, तथा जो समस्त प्राणियों के लिए सुखप्रदायक और परिनिष्ठित बुद्धि वालों के मोक्ष के कारण रूप हैं, सदैव मेरे रक्षक रहे, तथा सज्जनों को निरन्तर ऐश्वर्य प्रदान करते रहें ।४५-४६। यज्ञ सम्बन्धी ब्राह्मणों एवं हवि की वस्तुओं को एक ही दिन के लिए नियुक्त करना चाहिए, वही क्रम अष्ट भाग में भी बताया गया है, क्योंकि ब्राह्मण, हवि, एवं अग्नि बार-बार नियुक्त किये जाते हैं ।४७-४८।

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के द्वितीयभाग में सत्रहवाँ देवध्यान वर्णन नामक अध्याय समाप्त ।१७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

योगस्थापनदेवप्रतिष्ठापनवर्णनम्

सूत उवाच

माघादिमासेष्वपि षट्सु कार्या योगप्रतिष्ठा ऋषिभिः प्रणीता।
देवादिसंस्थापनमाहुरत्र यावन्न सुप्तो मधुसूदनश्च ॥१
वारे भृगोर्देवगुरोर्बुधस्य सोमस्य सर्वाः शुभदा भवन्ति।
लग्ने शुभस्थे शुभवीक्षिते वा कार्या प्रतिष्ठा च जलाशयानाम् ॥२
शुद्धा द्वितीया च तथा तृतीया त्रयोदशी चापि तथैव विप्राः।
तथापि सप्तम्यपि पौर्णमासी दशम्यसौ चाप्यथ पञ्चमी च ॥३
प्राणप्रतिष्ठा[1] च जलाशयादेरेताः प्रशस्तास्तिथयो भवन्ति।
अप्राप्य चैतानि शुभानि यानि कार्या प्रतिष्ठा विषुवद्वये च ॥४
षडशीतिलोकाप्ययनद्वयेन युगादिके पुण्यदिने शुभे च।
कार्या तडागादिजलाशयस्य प्राच्यां प्रतिष्ठा अथ चोत्तरे वा ॥५
सुचारु ईषत्प्रवणे च देशे सुवर्तुलः षोडशहस्तमण्डपः।
द्वारैश्चतुर्भिः प्रथितैरुपेतश्चतुर्मुखश्चापि भवेत्सुरेताः ॥६

अध्याय १८

योगस्थापन एवं देव प्रतिष्ठापन का वर्णन

सूत जी बोले—माघ मास से आरम्भ कर जब तक मधुसूदन भगवान् विष्णु का शयन दिन न प्राप्त हो, उस छ मास के भीतर ऋषियों द्वारा कल्पित योग प्रतिष्ठा, एवं देवों आदि के स्थापन करना चाहिए।१। शुक्र, बृहस्पति, बुध, एवं सोमवार के दिन सभी शुभदायक होते हैं, उन दिनों शुभ अथवा शुभ ग्रहों द्वारा दृष्टलग्न में जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।२। विप्रवृन्द ! शुद्ध द्वितीया, तृतीया, त्रयोदशी, सप्तमी, पूर्णिमा, दशमी और पंचमी, तिथियाँ जलाशय की प्राण प्रतिष्ठा में प्रशस्त बतायी गयी हैं। इन शुभप्रदायक तिथियों के अभाव में दोनों विष्णुवों का प्रतिष्ठा कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए।३-४। छियासी लोकों के भी उसी दोनों अयनों मे जो युग का आदि काल होता है, पुण्य शुभ दिनों में पूरब अथवा उत्तर की ओर सरोवर आदि जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।५। सौन्दर्य पूर्ण एवं कुछ अवनत (ढालू) भूमि के प्रदेश में गोलाकार सोलह हाथ का मण्डप बनाना चाहिए, जिसमें चार दरवाजे सुन्दर ढंग से बनाये गये हों, और शक्तिशाली ब्रह्मा जिसमें सुशोभित किये गये हों पूरब आदि के चारों दरवाजों को

---

१. सप्तम्यर्थे प्रथमा।

पूर्वादिद्वारेषु चतुष्टयेषु प्लक्षादिभिस्तोरणकैः सुरेशः ।
प्लक्षस्तथोदुम्बरपिप्पलौ च न्यग्रोधकं चापि यथाक्रमेण ।।७
ऊर्ध्वे च हस्तानमितानि यानि विचित्रमाल्याम्बरभूषितानि ।
भूमौ यथार्प्रीति च हस्तकानि भवन्ति चैतान्यपि तोरणानि ।।८
सर्वत्र यागेऽपि हि मण्डपस्य कार्या ध्वजा दिक्षु विदिक्षु शुभ्राः ।
दिक्पालवर्णाभपताकयुक्ता मध्ये च वै नीलपताकयुक्ताः ।।९
ध्वजाश्च यस्मिन्दशहस्तसम्मितास्तस्मिन्पताका अपि पञ्चहस्ताः ।
अरत्निमात्रा यदि मूलभागे पञ्चाङ्गुलाग्रे विनिबद्धगूढाः ।।१०
द्वारे च तस्मिंश्च निरूपिता वा रम्भा सुपुष्पा सुखशाड्वलाश्च ।
वचाभिवृक्षोत्तरपञ्चहस्ताः सपञ्चशाखा अपि तोरणानि ।।११
मुञ्जोद्भवैर्बर्हिसमुद्भवैर्वा सुरञ्जितश्चैस्त्रितपद्मपल्लवैः ।
पुष्टद्वये सूत्रितं वेष्टयेच्च तथेक्षुकाण्डैरथ यागमण्डपम् ।।१२
वेदिस्तथा मण्डपमध्यभागे कार्या च कोणेस्थितुषादिहीना ।
हस्तोच्छ्रिता रेखवती सुरेखपरिष्कृता हस्तचतुष्टयेन ।।१३
वेद्यां परित्यज्य दशाङ्गुलानि ऐशान्यतस्त्रीणि तथा पराणि ।
कुण्डाय दद्याच्चतुरस्रमेकमवस्थितं त्र्यङ्गुलमेखलोज्ज्वलम् ।।१४

प्लक्षपाकड़ आदि के तोरणों से सुसम्पन्न करना चाहिए, पाकड़ि, गूलर, पीपल, और बरगद के तोरण से क्रमशः उन दरवाजों को विभूषित करना चाहिए ।६-७। उसके ऊपर के एक हाथ के परिमाण भाग में चित्र विचित्र मालाओं और वस्त्रों को कुछ लटकाकर उनसे सौन्दर्य वृद्धि करना बताया गया है, भूमि में जिस प्रकार प्रीति सम्पन्न हाथों का वर्णन किया गया है । यह भी तो रण के नाम से ही ख्याति प्राप्त है ।८। सभी भागों में मण्डप की चारों दिशाओं तथा विदिशाओं में श्वेत वर्ण की ध्वजा होनी चाहिए, जो दिक्पालों के लिए उनके वर्णों के अनुसार रंग पूर्ण, एवं अर्ध्य भाग में नील रंग की पताका से सुशोभित की जाती है ।९। दशहाथ के ध्वज दण्डों में पाँच हाथ के पताके लगाये जाते हैं, जिसमें मूल भाग के पाँच अंगुल के ऊपर अरणिमात्र एक हाथ के परिमाण में अत्यन्त दृढ़ता के साथ आबद्ध रहता है ।१०। उन दरवाजों के सामने केला के वृक्ष, सौन्दर्य पूर्ण पुष्पों से सुशोभित एवं सुख प्रदान करने वाली हरियाली भूमि होनी चाहिए । उन वृक्षों के समीप पाँच हाथ तक लगाये गये वृक्ष तोरण के नाम से ही ख्यात हैं ।११। मूँज, कुशाओं, एवं तीन प्रकार के कमल पंखुड़ियों और ऊख दंडों द्वारा उस याग मण्डप को आवेष्टित करना चाहिए जिसको अत्यन्त पुष्टि के लिये दो स्थानो सूत्रों से आबद्ध किया गया हो । उस मण्डप के मध्य भाग में एक हाथ की ऊँची, रेखा सम्पन्न, सौन्दर्य पूर्ण रेखाओं से परिष्कृत एवं चार हाथ के परिमाण में वेदी का निर्माण करना चाहिए और चारों कोने में किसी प्रकार की हड्डी या भूसी न हो ।१२-१३। वेदी में दश अंगुल छोड़कर ईशान आदि चारों ओर तीन-तीन अंगुल के त्याग पूर्वक एक चौकोर कुंड की रचना करनी चाहिए, जिसमें तीन अंगुल की श्वेत वर्ण की मेखला सुसम्पन्न रहती है ।१४। महल, सरोवर, एवं विशाल

प्रासादे च तडागे च महारामे तथैव च । मण्डलं सर्वतोभद्रं प्रयत्नेनैव कारयेत् ।।१५
कुण्डं चापि प्रकुर्वीत यथाभ्यन्तरमेखलम् । बहिर्योनिगतं श्वेतं निश्चित्रं समसूत्रकम् ।।१६
कुण्डानि कुर्यान्नवकुण्डपक्षे वेद्यास्तथोच्चैरविदिक्षु चैव ।
सर्वाणि सर्वत्र च मेखलानि षट्सप्तपञ्चाश्रसमेखलानि ।।१७
अष्टाब्जजान्यब्जत्रिकोणकानि तथार्द्धचन्द्रं चतुरस्रकं च ।
कुण्डस्य पूर्वोत्तरदिग्विभागे स्थाप्यो घटश्चन्दनचारुलिप्तः ।।१८
माल्याम्बराच्छादितपूर्णपाथाः सवृत्तपत्रश्च सुवर्णगर्भः ।।१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे योगस्थापनदेवप्रतिष्ठापनवर्णन-नामकं अष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवग्रहपूजनविधानवर्णनम्

सूत उवाच

गतो यागगृहादन्यन्मण्डलान्तरमाश्रितः । यजमानस्तथा नित्यं कर्म कृत्वा यथाविधि ।।१
पञ्च देवान्नमस्कृत्य तथा यज्ञेश्वरं हरिम् । सङ्कल्पं च ततः कृत्वा ब्राह्मणानामनुज्ञया ।।२
एतस्मिन्पुण्यदेशे तु फलं गोत्रश्च वै यमः । वेदव्यासादिप्रणीतं यथाशास्त्रनिदर्शनम् ।।३

उपवन में मण्डल तथा सर्वतोभद्र का निर्माण प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ।१५। इस प्रकार के कुण्ड का निर्माण करना बताया गया है, जिसके भीतर मेखला, और ऊपरी भाग में बनायी गयी योनि के भीतर श्वेतवर्ण, चित्र हीन, एवं सूत्रों द्वारा समान भाग किया गया हो ।१६। इस भाँति कुण्डों के निर्माण करना चाहिए, विशेषकर यह नवकुण्डों के पक्ष में बताया गया है । उन कुण्डों की ऐसी वेदियाँ, जिसके चारों ओर का भाग ऊँचा, और मेखला पूर्ण हो, चाहे वह षट्कोण अथवा पाँच कोण भी क्यों न हो, बनानी चाहिए ।१७। आठमाला की भाँति (अष्टकोण) त्रिकोण, अर्द्धचन्द्राकार, एवं चौकोर कुण्ड निर्माण में भी यही व्यवस्था है, कुण्ड के ईशान के कोण में घट-स्थापन करना चाहिए, जो चन्दन की सौन्दर्य पूर्ण रेखाओं से अलंकृत, मालाओं वस्त्रों से आच्छादित जलपूर्ण हो, और जिसका आधार गोलाकार एवं जिसके गर्भ में सुवर्ण हो ।१८-१९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के द्वितीय भाग में योगस्थापन एवं देवप्रतिष्ठा वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

देवग्रह पूजन विधान का वर्णन

सूत बोले—यज्ञभवन से अन्यत्र दूसरे मण्डल में जाकर यजमान को विधान पूर्वक अपने नित्य कर्मों की समाप्ति करनी चाहिए ।१। पाँचों देवों एवं यज्ञाधिपति विष्णु के नमस्कार करने के उपरांत ब्राह्मणों के आदेश प्राप्त कर इस भांति संकल्प करना चाहिए—इस पुण्य प्रदेश में फल एवं गोत्र वर्द्धक यम हैं, वेदव्यास आदि महर्षियों द्वारा रचित शास्त्रों के आदेशानुसार अर्थात् उस पुण्यारण्य का विहरण करते

यथायथा स्वतन्त्रोक्तं पुण्यारण्याभिधायकम् । जलाशयप्रतिष्ठायां करिष्ये विधिवद्द्विजाः ॥४
यथायथा च कल्पोक्तं यथाकुण्डं विधानतः । साधिवासं यथैवैकः पुण्यारण्यविधायकः ॥५
जलाशयप्रतिष्ठां च करिष्ये विधिवद्द्विजाः । सङ्कल्पमेवं कृत्वा तु वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥६
मातृयागं पुरस्कृत्य वृद्धिश्राद्धं समापयेत् ॥७

भेर्यादिघोषेण सुमङ्गलेन पद्यं लिखेदत्र षषोडशाक्षरम् ।
इन्द्रादिदिक्पालवरायुधानि समुल्लिखेदेव दिशि स्थितानि ॥८

ब्रह्मेशान्वरयेत्सर्वानाचार्यं तु विशेषतः । स्वर्णकुण्डलयुग्मेन तथा ताम्रादिभाजनैः ॥९
नानारत्नैश्च वस्त्रैश्च आचार्यं वरेद्बुधः । हेमालङ्कारयुग्मैश्च वासोभिर्विविधैरपि ॥१०
यथानाम यथाशक्ति यथाभिवृणुयाद्बुधः । रचिता यजमानेन ध्रुवं स्वस्त्यस्तु ते इति ॥११
ततः सर्वौषधीभिश्च यजमानः सपत्निकः । आपोहिष्ठेतिमन्त्रेण स्नापयामासुरप्रजाः ॥१२
यवगोधूमनीवारतिलश्यामाककशालयः । प्रियङ्गुव्रीहयश्चाष्टौ सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥१३
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । सर्वौषध्युदकस्नातः स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥१४
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः पुरोहितपुरःसरः । नानामङ्गलघोषेण भेरीपटहनिस्वनैः ॥१५
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः । पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१६

हुए उनकी जिस प्रकार स्वतन्त्र उक्तियां हैं, द्विजवृन्द ! इस जलाशय की प्रतिष्ठा कर्म में मैं विधान पूर्वक उन्हें सम्पन्न करूँगा। कल्पों में बताये गये विधानानुसार कुण्ड का निर्माण एवं अधिवास समेत उस पुण्यारण्य को द्विजवृन्द ! इस जलाशय की प्रतिष्ठा में विधान पूर्वक सुसम्पन्न करूँगा, इस भाँति संकल्प करके वृद्धि श्राद्धकोमातृयाग के अनन्तर सुसम्पन्न करना चाहिए।२-७। भेरी (नगाड़े) आदि मांगलिक वाद्यों के निनादित होते समय सोलह अक्षर के पद्य लिखकर दिशाओं में स्थित इन्द्र आदि दिक्पालों के उत्तम अस्त्रों की रचना करनी चाहिए।८। ब्रह्मतेज पूर्ण ब्राह्मणों के वरण करने के उपरांत विशेषकर आचार्य का वरण सुवर्ण के कुण्डल, ताँबें आदि के पात्र, अनेक रत्न एवं वस्त्रों से विद्वानों को करना चाहिए। सुवर्ण के दो आभूषण एवं भाँति-भाँति के वस्त्रों से यथाशक्ति मापदण्ड के अनुसार ब्राह्मणों का वरण करना बताया गया है, यजमान द्वारा पूजित ब्राह्मण वृन्द को वरण के अनन्तर 'ते स्वस्त्यस्तु' (तुम्हारा कल्याण हो) इस प्रकार यजमान को शुभाशीष प्रदान करना चाहिए।९-११। उसके पश्चात् पत्नी समेत यजमान (बच्चों को साथ लेकर) समस्त औषधियों के जल से 'आपोहिष्ठेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक स्नान स्वयं करे और (पत्नी को) कराये।१२। जवा, गेहूँ, नीवार (तिनी का चावल), तिल, सावां, साठी धान, पिप्पली (पीपर), और धान्य, इन आठों को सर्वौषधि बताया गया है।१३। उपरांत श्वेत वस्त्र धारण कर, श्वेतपुष्पों की माला और वैसे ही चन्दन का लेपन करके समस्त औषधियों के जल स्नान पूर्वक वेदतत्वज्ञ ब्राह्मण पण्डितों की आज्ञा शिरोधार्य कर पुरोहित का अनुगमन करते हुए भाँति-भाँति के मांगलिक नगाड़े एवं परह (डुग्गी) वाद्यों की ध्वनि कोलाहल में पत्नी एवं पुत्र-पौत्र के साथ पश्चिम दरवाजे से उस याग-मण्डप में प्रवेश करे।१४-१६।

चरके पूजयेद्विघ्नं गङ्गां च यमुनां तथा । पार्श्वयोश्चार्धतो लक्ष्मीं प्रतिहरमनुक्रमात् ॥१७
वेदिं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्याद्यथाविधि । उपविश्य ततस्तस्मिन्ब्राह्मणानुमते स्थितः ॥१८
स्वस्ति वाच्यं ततः कृत्वा पञ्च देवान्प्रपूजयेत् । भूतोत्सादं ततः कृत्वा विकिरान्विकिरेद्भुवि ॥१९
अपक्रामन्तु ये भूता ये चास्मिन्विघ्नकारकाः । यस्मान्नो नाग्नि वर्तन्ते यज्ञमात्रं प्रवर्ततताम् ॥२०
पूजयेदासनं पश्चात्स्वकीयं पुष्पचन्दनैः । नमोनन्तासनायेति तथा पद्मासनाय च ॥२१
विमलासनाय च नमो नमः सारासनाय च । योगासनाय च नमः पृथिव्यै नम इत्यपि ॥२२
ततो भूमितले वामहस्तं दत्त्वा पठेन्नरः । पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥२३
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु । सूर्यायार्घ्यं ततो दत्त्वा गुरुं नत्वा कृताञ्जलिः ॥२४
देवं हृत्पद्मके नीत्वा प्राणायामत्रयं चरेत् । ततोऽर्चयेद्विघ्नराजमैशान्यां च घटोपरि ॥२५
गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि । गणानां त्वेति मन्त्रेण ब्रह्माणं तदनन्तरम् ॥२६
आब्रह्मन्निति ऋचा तद्विष्णोरिति संस्मरन् । वासुदेवं ततः पश्चाद्बलिभिर्गन्धचन्दनैः ॥२७
ततो देवशरीरं तु नवमासाद्य त्रिंशतम् । वेद्याश्च परितः सर्वान्स्वे स्वे स्थाने यथाक्रमम् ॥२८
ततो राजाधिराजेन भूतशुद्धिं समाचरेत् । ततो बुद्बुदमध्ये तु श्वेतपद्मासनस्थितम् ॥२९
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् । किरीटकुण्डलयुतं सितं पङ्कजधारिणम् ॥३०

चरक में विघ्न, गंगा, और यमुना, पार्श्व, के अर्ध भाग में लक्ष्मी की पूजा द्वारपाल के क्रम से करके वेदी की प्रदक्षिणा तथा विधान पूर्वक नमस्कार के उपरांत आसन-आसीन होकर ब्राह्मणों की सम्मति से स्वस्ति-वाचन एवं पाँचों देवों की पूजा करके पश्चात् भूत-शुद्धि और विकरों के लिए उसे दान करना चाहिए। 'इस यज्ञ में विघ्न करने के उद्देश्य से प्राप्त भूतगण यहाँ से दूर निकल जायें जिससे यज्ञानुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हो, इन भूतों का पलायन कराने के लिए पुष्पचन्दन द्वारा आसन का पूजन इस भाँति आरम्भ करना बताया गया है—अनंतासन, पद्मासन, विमलासन, सरासन, एवं योगासन को बार-बार नमस्कार है और पृथ्वी के लिए सभी प्रकार नमस्कार है।१७-२२। तदनन्तर भूतल पर बाँया हांथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करे—हे पृथिवी ! इस समस्त लोकमय ब्रह्माण्ड को आपने धारण किया है और आप को भगवान् विष्णु ने धारण किया, अतः आप मुझे नित्य धारण कर इस आसन को भी पवित्र कीजिये, पश्चात् सूर्य के लिए अर्घ्य-प्रदान कर और गुरु को करबद्ध नमस्कार करने के उपरांत (आराध्य) देव को अपने हृदय कमल में ध्यान द्वारा सुशोभित करके तीन प्राणायाम सुसम्पन्न करना चाहिए। तदनन्तर ईशान कोण में कलश के ऊपर स्थापित विघ्नराज (गणेश) देव की अर्चा गन्ध, पुष्प, वस्त्र, विविध भाँति के नैवेद्य (मोदक) द्वारा 'गणानां त्वेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए।२३-२६। 'आब्रहन्निति' और 'तद्विष्णोरिति' इन ऋचाओं द्वारा वासुदेव भगवान् की अर्चा बलि, गन्ध, चन्दन, आदि वस्तुओं से सुसम्पन्न करने के उपरांत देवों के नवीन शरीर की जिसकी संख्या तीस बतायी गयी है, और वेदी के चारों ओर अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं, क्रमशः पूजा सुसम्पन्न करना चाहिए।२७-२८। उसके अनन्तर 'राजाधिराजेति' मंत्र द्वारा भूत शुद्धि के उपरांत जल के बुल्ले के मध्य भाग में श्वेत कमलासन पर सुशोभित शुद्ध स्फटिक मणि के समान शंख, कुन्द, एवं चन्द्र की प्रभा पूर्ण किरीट-कुण्डल से अलंकृत श्वेत

शुक्लमाल्याम्बरं शुक्लं शुक्लगन्धानुलेपनम् । अहितुण्डासनस्थं च पाशहस्तं महाबलम् ॥३१
स्तूयमानं सुरगणैः सिद्धगन्धर्वसेवितम् । सुचारुवदनं देवं पद्ममालोपशोभितम् ॥३२
राजीवलोचनं नित्यं नागलोकोपशोभितम् । मकरग्राहकूर्माद्यैर्नानाजलचरैर्वृतम् ॥३३
जलाशयगतं देवं चिन्तयेज्जलशायिनम् । ततो न्यासं प्रकुर्वीत पञ्चाङ्गत्वावशोभितम् ॥३४
अर्घ्यपात्रं ततः कृत्वा त्रिभागजलपूरितम् । अष्टधा मूलमन्त्रं च जप्त्वा तेनोदकेन च ॥३५
आसनं यागवस्तूनि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा । अरुणाय विद्महे तमोघ्नाय च धीमहि ॥३६
तन्नो अरुणः प्रचोदयादिति स्नानं समाचरेत् । ततो गणेशमैशान्यामाग्नेय्यां गुरुपादुकाम् ॥३७
धर्माधर्मादिकान्सर्वान्सत्त्वादीनथ चार्चयेत् । सूर्यसोमजलादीनां मण्डलानि यथाक्रमम् ॥३८
मध्ये शक्तिं च क्षीरोदमनन्तं पृथिवीं तथा । कूर्मं चाधारशक्तिं च सुमेरुं मन्दरं तथा ॥३९
पञ्चतत्त्वं समभ्यर्च्य साङ्गोपाङ्गमनन्तरम् । ततः श्वेतं च कुसुमं साक्षतं योगमायया ॥४०
गृहीत्वा पूर्वदद्देशे स्थापयेत्कलशोपरि । आवाहनं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥४१
एह्येहि भगवन्वरुण एष यज्ञः प्रवर्तते । यज्ञभागं गृहाणेदं त्वामेवावाहयाम्यहम् ॥४२
एवमावाह्य लोकेशमष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् । गायत्र्या स्नापयित्वा तु दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ॥४३
पुष्पाञ्जलिं ततो दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः । पूर्वादिपत्रमूलेषु धर्मादीन्पूजयेद्बुधः ॥४४

कमल धारण किये, शुक्ल वर्ण की माला एवं वस्त्र से सुसज्जित, शुक्लवर्ण, शुक्ल गन्ध का अनुलेपन किये, साँप के मुखासन पर विराजमान और हाथ में पाश (फांस) लिये, महाबली, सुरगणों द्वारा स्तुति सम्पन्न सिद्ध गन्धर्व से सुसेवित, सौन्दर्यपूर्ण बदन, कमल की माला से विभूषित उस देव का, जो कमल के समान नेत्र, नित्य नाग लोक में सम्मानित मकर, ग्राह, कछुवे आदि जलचरों से पूर्ण, और जलाशय में स्थित हैं, इस भाँति ध्यान करके उसका पञ्चांग न्यास करना बताया गया गया है ।२९-३४। पश्चात् अर्घ्यपात्र को जिसमें तीन भाग जल से पूर्ण किया गया है, आठ बार मूल मन्त्र का जप करके उसी जल से आसन एवं याग की वस्तुओं को सेचन द्वारा पवित्र करना चाहिए । अनन्तर 'अरुणाय विद्महे' इत्यादि, मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उन्हें स्नान कराकर ईशान कोण में स्थित गणेश, अग्निकोण में स्थित गुरु पादुका एवं सभी धर्माधर्म आचरण वाले प्राणियों की पूजा सविधान सुसम्पन्न करना कहा गया है । उसी भाँति सूर्य, चन्द्र, एवं जलेश के मण्डलों का भी क्रमशः पूजन करना चाहिए।३५-३८। मध्यभाग में स्थित शक्ति, क्षीर- सागर, अनंत, पृथिवी, आधारशक्ति, कच्छप, सुमेरु, मन्दर और पञ्चतत्व के साङ्गोपाङ्ग की पूजा के अनन्तर श्वेत पुष्प एवं अक्षत के द्वारा पूर्व प्रदेश में स्थापित कलश के ऊपर प्रतिष्ठित योगमाया युक्त (वरुण देव) का इस मंत्र द्वारा आवाहन मंत्रवेत्ता को करना चाहिए । भगवन् वरुण ! आइये, आइये ! यह यज्ञ आरम्भ हो रहा है, इसे सुशोभित कर अपने यज्ञ भाग को ग्रहण कर कृतार्थ कीजिये, इसीलिए मैं आपका आवाहन कर रहा हूँ ।३९-४२। इस भाँति आवाहन करने के पश्चात् उन लोकेश को आठ मुद्राओं के प्रदर्शन पूर्वक गायत्री मंत्र द्वारा स्नान एवं पाद्यादि के लिए जल प्रदान करना कहा गया है ।४३। पुनः पुष्पांजलि प्रदान करने के अनन्तर पूर्वादि पत्रों के मूल भाग में स्थित धर्म आदि देवों की आराधना उस देशिक विद्वान् को करनी चाहिए ।४४। वहाँ उन प्राणियों एवं उनकी सौन्दर्य पूर्ण पत्नियों की पूजा के पश्चात्

सत्वाद्याः पूजयेत्तत्र तेषामेव वराङ्गनाः । ज्ञानं धर्मं च सोमं च रजः सत्त्वं तमस्तथा ।।४५
पूर्वादिपत्रमध्ये तु ग्रहानष्टौ प्रपूजयेत् । पत्राग्रे लोकपालानामग्न्यादीनायुधांस्तथा ।।४६
कर्णिकादक्षिणे पूर्वं वामे चापि शचीपतिम् । पूर्वपत्रे तु ब्रह्माणं पूजयेत्सितपङ्कजैः ।।४७
नैर्ऋत्ये वरुणस्याथ मध्येऽनन्तं प्रपूजयेत् । पीठमन्त्रेषु पूर्वादिब्रह्माणं च शिवं तथा ।।४८
विष्णुं चापि गणेशं च पृथिवीं गन्धचन्दनैः । जपेन्मन्त्रं साष्टशतं सहस्रं विजयेद्बुधः ।।४९
जानुभ्यामवनीं गत्वा विजयाख्यस्तवं पठेत् । ईशानादिपीठकोणेषु कमलामम्बिकां तथा ।।५०
नैर्ऋत्यां विश्वकर्माणं वायव्ये तु सरस्वतीम् । पूर्वादिद्वारदेशे तु मरुतं चावहादिकम् ।।५१
आवहं प्रवहं चैव तथैवोद्वहसंवहौ । विन्यसेत्पश्चिमे द्वारि निवहं च परीवहम् ।।५२
विन्यसेदुत्तरद्वारि मरुतं च पराभवम् । आग्नेयादिषु कोणेषु बहिष्पीठं ततो जयेत् ।।५३
पिशाचान्राक्षसान्भूतान्वेतालांश्च तथा क्रमात् । क्षोभकः कामरूपश्च सौभद्रो मरुतस्तथा ।।५४
गोमुखो नन्दभद्रश्च द्विजिह्वो मलिनस्तथा । हस्तिकर्णो विशालाख्यः सप्तरक्षोगणः स्मृतः ।।५५
भूमिदो वरदश्चैव जयन्तः क्षोभकस्तथा । विवस्वन्तः सुदन्तश्च एते भूतगणाः स्मृताः ।।५६
अङ्गदो नीलकर्णोऽसौ वसन्तो यावकस्तथा । घोररूपा महाकाया वेतालाश्च प्रकीर्तिताः ।।५७
गन्धपुष्पाक्षतैर्भक्त्या सर्वे देवा ग्रहादयः । ध्यानवर्णानुरूपेण पूजनीयाः प्रयत्नतः ।।५८
ध्यायेदादित्यमारक्तं रक्तपद्मासनस्थितम् । रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।।५९
यवविद्रुमसङ्काशं सिन्दूरारुणसप्रभम् । आकृष्णेनेति मन्त्रेण स्थापयेत्कलशोपरि ।।६०

ज्ञान, धर्म, सोम, रज, सत्व, तम एवं पूर्वादि पत्रों के मध्य भाग में स्थित आठों ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। तथा पत्तों के अग्रभाग में लोकपालों के आग्नेयादि अस्त्रों की पूजा करने पर कर्णिका के दक्षिण भाग में सर्व प्रथम बाँये ओर स्थित शचीपति (इन्द्र) और पूर्व पत्ते पर स्थित ब्रह्मा की पूजा श्वेत कमल-पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए।४५-४७। नैऋत्यकोण में वरुण मध्य भाग में अनन्त, पीठ मन्त्रों में स्थित पूर्वादि क्रम से ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, एवं पृथिवी की पूजा गन्ध-चन्दनों द्वारा सम्पन्न करके एक सहस्र आठ सौ संख्या का जप उस विद्वान् को करना आवश्यक होता है।४८-४९। पृथिवी में दोनों घुटने टेक कर विजय नामक स्तोत्र का पाठ करके पीठासन के ईशान आदि कोण में सुशोभित कमला, अम्बिका, नैऋत्य कोण में विश्वकर्मा, वायव्य कोण में सरस्वती पूर्व आदि दरवाजों पर स्थित मरुत, अवहादिक—आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, पश्चिम दरवाजे पर निवह, परीवह, एवं उत्तर के दरवाजे पर स्थित, मरुत, तथा पराभव का स्थापन-पूजन के उपरांत आग्नेयादि कोण में पीठासन के बाहरी भाग में स्थित पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल की क्रमशः पूजा करनी चाहिए। क्षोभक, कामरूप, सौभद्र, मरुत, गोमुख, नन्दभद्र, द्विजिह्व, मलिन, हस्तिकर्ण, विशाल ये सात राक्षस गण बताये गये है।५०-५५। भूमिद, वरद, जयन्त, क्षोभक, विवस्वंत, और सुदन्त इन्हें भूत गण कहा गया है।५६। अंगद, नील कर्ण, वसंत, पावक, घोररूप, एवं महाकाय वाले इन्हें वेताल बताया गया है।५७। समस्त देवों और ग्रहों के स्वरूपानुरूप ध्यानपूर्वक गन्ध, पुष्प, एवं अक्षतों आदि वस्तुओं से प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए।५८। रक्त वर्ण, रक्त कमल के आसन पर सुशोभित, रक्ताम्बर धारण किये, रक्त, रक्तवर्ण की माला एवं लेप से भूषित, नवीन प्रवाल के समान एवं सिंदूर की भाँति अरुण (लाल) वर्ण की प्रभापूर्ण उस आदित्य देव का ध्यान करके 'आकृष्णेनेति' मंत्र के उच्चारण करते हुए उन्हें कलश के ऊपर प्रतिष्ठित

इहागच्छेति चावाह्य पाद्यार्घ्यैश्च पृथग्विधैः । गन्धपुष्पादिभिर्भक्त्या पूजयेत्तं यथाविधि ।।६१
बलिं च लोहितं दद्यात्पायसं दधिखण्डकम् । घृतलिप्तं च शाल्यन्नं पताकां रक्तवर्णिकाम् ।।६२
श्वेताम्बरधरं श्वेतं शुक्लगन्धानुलेपनम् । द्विभुजं वरदं देवं गदाहस्तं महाबलम् ।।६३
नानाभरणसम्पन्नं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । शुक्लपद्मासनस्थं चाश्वं दद्याच्छ्वेतभूषितम् ।।६४
इमं देवा इति मन्त्रेण स्थापयेत्पूर्वदिग्दले । सितवस्त्रैश्च पुष्पैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।६५
पायसैः श्वेतबलिभिर्दधिभक्तं निवेदयेत् । धूपैः श्वेतपताकाभिर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ।।६६
रक्तमाल्याम्बरं देवं रक्ताभरणभूषितम् । सुचारुनयनं रक्तं रक्तपद्मासनस्थितम् ।।६७
किरीटकुण्डलधरं मेषकण्ठं चतुर्भुजम् । वरदं यज्ञनाशं च शूलशक्तिगदाधरम् ।।६८
सर्वकामप्रदं देवं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । चिन्तयेत्परया भक्त्या मङ्गलं धरणीसुतम् ।।६९
अग्निमीळेति मन्त्रेण स्थापयेदग्निदिग्दले । पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च रक्तमाल्यानुलेपनैः ।।७०
धूपै रक्तपताकाभिर्गुडभक्तनिवेदनैः । अतसीपुष्पसङ्काशं कर्णिकारसमप्रभम् ।।७१
रौहिणेयं महाकायं नीलनीरजलोचनम् । प्रशान्तवदनं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।।७२
खड्गचर्मधरं तद्वद्गदापरशुधारिणम् । पद्मासनगतं देवं पीतपद्मासनस्थितम् ।।७३
नानाभरणसम्पूर्णं मृगेन्द्रवरवाहनम् । उद्बुध्यस्वेति मन्त्रेण याम्यां तु स्थापयेद्बुधम् ।।७४

करने के उपरांत 'इहागच्छेति' (यहाँ आइये) ऐसा कहकर आवाहन और पाद्य-अर्घ्य के लिए जल तथा भाँति-भाँति के गन्ध-पुष्पों द्वारा भक्ति विधान पूर्वक पूजा करनी चाहिए।५९-६१। तदुपरांत रक्तवर्ण की बलि, खीर, दही, खांड, घी मिश्रित साठी (चावल) के भात और रक्तवर्ण की पताका प्रदान करनी चाहिए।६२। श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित शुक्ल गंध के लेप लगाये, दो भुजा वरदायक, देव गदा हाथ में लिये, महाबली, अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, सिद्ध गन्धर्व द्वारा सुसेवित, श्वेत कमल पर स्थित, एवं श्वेत वर्ण के आभूषणों से विभूषित अश्व प्रदान करना चाहिए, 'इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूर्व दिशा के दल में स्थापित करके श्वेत वस्त्र, पुष्प, श्वेत वर्ण की माला एवं लेप, खीर, दही मिश्रित श्वेत वर्ण की बलि, धूप, श्वेत पताका और भाँति-भाँति के पकवान समर्पित करना चाहिए।६३-६६। रक्तवर्ण की माला, वस्त्र, रक्तवर्ण और आभूषण, से विभूषित, सौन्दर्यपूर्ण नेत्र, रक्त कमल पर स्थित, किरीट-कुण्डल धारण किये, मेष (भेड़) के समान कंठ, चार भुजाएँ, वरदायक, यज्ञनाशक, शूल, शक्ति, एवं गदा अस्त्र लिये, समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले, सिद्ध, गन्धर्व सेवित, उस धरणी सुत मंगल देव का इस भाँति भक्ति पूर्वक ध्यान करना चाहिए।६७-६९। 'अग्नि मीळेति' इस मंत्र के उच्चारण करके आग्नेय दिशा के दल में उस देव की स्थापना करके रक्त पुष्प, रक्तवर्ण की माला, एवं अनुलेपन धूप, रक्तपताका और गुड प्रदान पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए, अलसी पुष्प के समान वर्ण, पुष्प की पंखुडियों की भाँति प्रभा महाकाय, नील कमल के समान नेत्र, अत्यन्त शांत मुख, पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, उनमें क्रमशः खड्ग, चर्म, गदा और फरसे को धारण किये, कमलासन लिये, पीत कमलासन पर सुशोभित, विविध प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित उत्तम मृगेन्द्र (सिंह) वाहन वाले रोहिणी पुत्र उस बुध देव को दक्षिणदिशा में 'उद्बुध्यस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापित करके

पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः पीतगन्धानुलेपनैः । वस्त्रैः पीतपताकाभिर्बलिभिः कृशरान्वितैः ।।७५
पीतवर्णं गुरुं ध्यायेत्पीतपद्मासनस्थितम् । पीताभरणसम्पन्नं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।।७६
वरदं दण्डहस्तं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् । पूज्यमानं सुगन्धर्वैः सेन्द्रैर्देवगणैरपि ।।७७
बृहस्पतय इति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां दिशि संस्थितम् । पीतचन्दनगन्धैश्च पीतवस्त्रादिभूषणैः ।।७८
धूपैः पीतपताकाभिःपीतोदकनिवेदनैः । पूजयेत्परया भक्त्या पुरन्दरपुरोहितम् ।।७९
ध्यायेच्छुक्रं भृगुसुतं श्वेतपद्मासनस्थितम् । चतुर्भुजं महाकायं वरदं दण्डधारिणम् ।।८०
महाबाहुं विशालाक्षं साक्षसूत्रकमण्डलुम् । स्तूयमानं मुनिश्रेष्ठैः सेवितं दैत्यपुङ्गवैः ।।८१
सिंहासनगतं देवं नीलेन्दीवरलोचनम् । विलसत्पुण्डरीकस्य मालाभिरुपशोभितम् ।।८२
नानादैत्येन्द्रपुत्रांश्च पाठयन्तं मुहुर्मुहुः । नानाशस्त्रास्त्रचतुरं नानाशास्त्रविशारदम् ।।८३
एवं ध्यात्वा भृगुश्रेष्ठं जपन्नन्नात्परिस्रुतम् । मनसा भक्तियुक्तेन स्थापयेत्पश्चिमे दले ।।८४
सितचन्दनवस्त्रैश्च धूपमाल्यानुलेपनैः । धूपैः श्वेतपताकाभिः सक्तुभिः क्षीरसंयुतैः ।।८५
पूजयेत्परया भक्त्या पुण्डरीकाक्षतैरपि । ध्यायेत्सौरिं चतुर्बाहुं शूलहस्तं वरप्रदम् ।।८६
इन्द्रनीलनिभं श्यामं दिव्यबाणधनुर्धरम् । इन्दीवरासनस्थं च सरोजवरसप्रभम् ।।८७
नीलाम्बरधरं नीलपद्ममालोपशोभितम् । घोररूपं महाकायं छायाहृदयनन्दनम् ।।८८

गन्ध, पुष्प, पीत गंध के अनुलेपन, वस्त्र, पीत वर्ण की पताका बलि कृशरान्न समेत उसकी पूजा करनी चाहिए ।७०-७५। पीत कमल के आसन पर आसीन, पीतवर्ण के आभरणों से भूषित, पीताम्बर धारण किये, चार भुजाएँ, वरदायक, हाथों में दण्ड, अक्षसूत्र (रुद्राक्ष) की माला एवं कमण्डलु लिए, सौन्दर्य पूर्ण गन्धर्व, एवं इन्द्रादि देव गणों से पुजित पीत वर्ण वाले उस गुरु (बृहस्पति) का इस भाँति ध्यान करके 'बृहस्पतये इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक नैऋत्य दिशा में उन्हें प्रतिष्ठित और पीतचन्दन, गन्ध, पीतवस्त्र, एवं आभूषणों, धूप, पीत वर्ण की पताका, और पीतोदक निवेदन पूर्वक उत्तम भक्ति समेत उस पुरन्दर पुरोहित गुरूदेव की इस भाँति पूजा करनी चाहिए ।७६-७९। श्वेत कमलासन पर स्थित, चारभुजाएँ, महाकाय, वरदायक, दंडधारण किये, आजानु बाहु, विशाल नेत्र, रुद्राक्ष की माला और कमण्डलु लिये, श्रेष्ठ मुनिगणों से प्रशंसित एवं दैत्य कुल भूषणों से सुसेवित सिंहासन पर स्थित, नीलकमल के समान नेत्र, विकसित कमल पुष्पों की मालाओं से विभूषित, अनेक दैत्याधिपतियों के बच्चों को बार-बार अध्यापन कराने वाले, विविध प्रकार के शस्त्र तथा अस्त्रों में चतुर भाँति-भाँति के शास्त्रों में निष्णात, भृगुश्रेष्ठ, भृगुपुत्र, उस शुक्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'अन्नात्परिस्रुतमिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए तन्मय होकर भक्ति पूर्वक पश्चिम के दल में उन्हें स्थापित करके श्वेत चन्दन, वस्त्र, धूप, माला, लेपन, श्वेत पताका, क्षीर मिश्रित सत्तू, एवं कमल पुष्प, अक्षत के द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए । चार भुजाएँ, हाथ में शूल लिये, वरदायक, इन्द्रनील मणि की भाँति श्याम वर्ण, दिव्य वाण एवं धनुष धारण किये, नील कमल के आसन पर विराजमान्, नील कमल की भाँति कान्तिपूर्ण, नील वस्त्र, तथा माला से विभूषित् भयानक स्वरूप, भीषण काय, छाया देवी को आनन्द देने वाले, उस सूर्य पुत्र शनि की स्थापना 'शन्नो देवीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वायव्य दिशा में

शन्नो देवीति मन्त्रेण वायव्यां दिशि विन्यसेत् । कृष्णचन्दनवस्त्रैश्च कृष्णमाल्यानुलेपनैः ।।८९
धूपैर्नीलपताकाभिर्बलिभिर्माषमिश्रितैः । धूम्रवर्णं सदा केतुं गदाहस्तं वरप्रदम् ।।९०
द्विभुजं भीमकायं च धूम्राक्षं धूम्रवाससम् । केतुं कृण्वन्निति मन्त्रेण ऐशान्यां स्थापयेद्दिशि ।।९१
धूम्रवर्णैश्च माल्यैश्च धूम्रगन्धानुलेपनैः । धूम्रधूम्रपताकाभिर्बलिभिर्माषमिश्रितैः ।।९२
पूजयेत्परया भक्त्या केतुं सर्वार्थसिद्धिदम् । लोकपालानहं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकान् ।।९३
येषु पूजितमात्रेषु नालभ्यं विद्यते क्वचित् । देवराजं ततो ध्यायेत्पुष्पबाणनयप्रभम् ।।
द्विभुजं पीतसङ्काशं नीलेन्दीवरलोचनम् ।।९४
रक्तोत्पलधरं तद्वत्पीतवासःसमन्वितम् । चामरासक्तहस्तैश्च कन्यारत्नैश्च शोभितम् ।।९५
इन्द्राणीं चिन्तयेद्वामे उत्पलद्वयधारिणीम् । एवं सम्पूजयेद्भक्त्या सुरराजं जगत्प्रभुम् ।।
त्रातारमिति मन्त्रेण स्थापयेत्कर्णिकोत्तरे ।।९६
पूजयेत्परया भक्त्या धूपगन्धानुलेपनैः । नानाविधोपहारैश्च पताकाभिर्ध्वजैरपि ।।९७
बलिं क्षीरान्वितं दद्यान्मोदकं सितशर्कराम् । उत्तप्तस्वर्णसङ्काशं वीतिहोत्रं चतुर्भुजम् ।।९८
अर्धचन्द्रसमस्थं च अजवाहनमुत्तमम् । ज्वालावितानसंरक्तं मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।।९९
वरदं विभयं मालां दक्षे सूत्रं कमण्डलुम् । त्रिनेत्रं रक्तनयनं जटामुकुटमण्डितम् ।।१००
नानाभरणसम्पन्नं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । अग्निजिह्वेति मन्त्रेण स्नापयेदग्निदिग्दले ।।१०१

सविधान करनी चाहिए, कृष्ण चन्दन, वस्त्र, कृष्ण वर्ण की माला, अनुलेपन धूप, नील वर्ण की पताका, उरद मिश्रित बलि प्रदान करना चाहिए। धूएँ के समान वर्ण, हाथ में गदा लिए, वर प्रदायक, दो भुजा, भीमकाय, धूएँ के समान नेत्र, और वस्त्र, वाले उस केतु देव की स्थापना सदैव ईशान कोण में 'केतुं कृण्वन्निति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिए।८०-९१। धूएँ के समान वर्ण की माला तथा गंध, एवं अनुलेपन, धूएँ वर्ण की पताका, उरद मिश्रित बलि द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक उस समस्त अर्थ की सिद्धि प्रदायक केतु की पूजा करनी चाहिए। सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदायक उन लोकपालों का पूजन विधान बता रहा हूँ।९२-९३। जिनके पूजन मात्र से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती है, काम सौन्दर्य की भाँति प्रभा, दो भुजा, पीत वर्ण, एवं नील कमल के समान नेत्र वाले देवराज इन्द्र के ध्यान के अनुसार रक्त कमल धारण किये, उन्हीं की भाँति पीताम्बर से सुसज्जित हाथ में चामर लिये हुए कन्याओं से सुसेवित और दो कमलों को धारण किये वाम भागों में स्थित उस इन्द्राणी देवी का ध्यान पूजन करना चाहिए। इस प्रकार पंखुड़ियों के उत्तर भाग में स्थित उस जगत्प्रभु एवं देवेन्द्र इन्द्र की पूजा भक्ति पूर्वक 'त्रातारमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करने के उपरांत उत्तम भक्ति समेत धूप, गन्ध, लेप, विविध भाँति के उपहार पताका एवं ध्वजाओं द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए।९४-९७। क्षीर समेत बलि मोदक और श्वेत शक्कर (चीनी) आदि के प्रदान करने के उपरांत भली भाँति तपाये गये सुवर्ण की भाँति वर्ण, चार भुजाएँ अर्ध चन्द्र के समान स्थित, अज (बकरा) वाहन, विस्तृत ज्वालाओं से रक्तमय, शिर में सात शिखाओं से युक्त, वरदायक, भयरहित, माला, सूत्र, एवं कमण्डलु लिये, रक्तमय तीन नेत्र, जटा मुकुट विभूषित अेनक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, एवं सिद्ध गन्धर्वों से सुसेवित, उस अग्नि का दक्षिण दिशा के दल में 'अग्नि जिह्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापन एवं स्नान कराना चाहिए,

पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च रक्तमाल्यानुलेपनैः । धूपै रक्तपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि ।।१०२
नीलाञ्जनचयप्रख्यं नीलसिंहासनस्थितम् । महामहिषमारूढं दण्डपाशधरं विभुम् ।।१०३
करालवदनं भीमं ज्वालाघूर्णितलोचनम् । घोरदंष्ट्राकरालैश्च किङ्कराणां गणैर्वृतम् ।।
महिषं चिन्तयेद्वामे चित्रगुप्तं च दक्षिणे ।।१०४
अच्छीयस इति मन्त्रेण स्थापयेद्दक्षदिग्दले । पूजयेत्परया भक्त्या धर्मराजं जगद्गुरुम् ।।
राक्षसेन्द्रं महाकायं कृष्णवर्णं द्विबाहुकम् ।।१०५
नानाभरणसम्पन्नं खड्गहस्तं महाबलम् । वरमुक्ताविमानस्थं घोररूपं जलेश्वरम् ।।१०६
एष ते इति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां स्थापयेद्दिशि । कृष्णचन्दनवस्त्रैश्च कृष्णमाल्यानुलेपनैः ।।१०७
धूपैः कृष्णपताकाभिर्बलिभिर्माषमिश्रितैः । शुद्धस्फटिकसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।।१०८
द्विभुजं पाशहस्तं च सुन्दराङ्गं वरप्रदम् । वरुणस्येति मन्त्रेण स्थापयेत्पश्चिमे दले ।।१०९
सितचन्दनधूपैश्च पताकाभिर्ध्वजैरपि ।।११०

समीरणं कुञ्जरवर्णसन्निभं मृगाधिरूढं द्विभुजं द्विनेत्रम् ।
ध्वजाम्बरं चापि दधानमेकं नीलाम्बरं मेघगणैर्वृतं च।।१११

नीलचन्दनवस्त्रैश्च नीलमाल्यानुलेपनैः । पूजयेत्परया भक्त्या पताकाभिर्ध्वजैरपि ।।११२
धूपैर्नीलपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि ।।११३

ध्यायेद्द्विनेत्रं द्विभुजं धनेशं पीताम्बरं वै नरवाहनं च ।
गदाधरं भक्तवरप्रदं च आवाहयेदुत्तरपद्मपत्रे।।११४

पश्चात् रक्तवर्ण के पुष्प, माला, लेप, धूप, रक्तपताका, और खीर की बलि समेत उनका पूजन सुसम्पन्न करना बताया गया है ।९८-१०२। नीले अञ्जन-समूह की भाँति नील वर्ण के सिंहासन पर विराजमान, महान महिष (भैंसे) पर आसीन, दण्ड-पाश (फांस) धारण किये उस यम तथा भीषण मुख, भयंकर, त्यौरी चढ़ाने पर निकलती हुई ज्वालाओं से पूर्ण नेत्र, घोर एवं विकराल सींग और दाँत, सेवकों से आवृत्त, भाग में उस महिष तथा दक्षिण भाग में स्थित चित्रगुप्त का दक्षिण दिशा के दल में 'आच्छीपस इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उत्तम भक्तिसमेत जगद्गुरू धर्मराज का स्थापन-पूजन करना चाहिए । अनन्तर राक्षसेन्द्र, महाकाय, कृष्ण वर्ण, दो भुजा, अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, हाथ में खड्ग लिए महाबली, उत्तम मोतियों से अलंकृत विमान पर सुशोभित, एवं घोररूप, उस जलाधिपति का 'एष ते इति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए नैऋत्य दिशा में स्थापन तथा कृष्ण चन्दन, वस्त्र, कृष्ण वर्ण की माला और लेप, धूप, कृष्ण रंग की पताका, उरदमिश्रित बलि-प्रदान करने के उपरांत शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति, वर्ण, शंख, कुन्द पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, दो भुजा हाथ में फांस लिये, सौन्दर्य पूर्ण अंग, वरदायक उस वरुण देव का स्थापन-पूजन पश्चिम दल में 'वरुणस्येति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए ।१०३-१०९। श्वेत् चन्दन, धूप, पताका, ध्वजा द्वारा उनकी पूजा करने के उपरांत गज- राज के समान वर्ण, मृग पर स्थित, दो भुजा, दो नेत्र, ध्वज के वस्त्र एवं नीलाम्बर ग्रहण किये, मेघगणों से सेवित, उस वायु देव का नीलवर्ण के चन्दन, वस्त्र, माला, अनुलेपन, पताका, ध्वजा, धूप, नील पताका, एवं खीर बलि उपहार के समेत ध्यान-पूजन करना बताया गया है ।११०-११३। दो नेत्र, दो भुजा, पीत वस्त्र, एवं मनुष्य वाहन वाले गदाधारी भक्तों को वर प्रदान करने वाले उस धनेश

गन्धचन्दनवस्त्रैश्च पीतमाल्यानुलेपनैः ॥११५

धूपैः पीतपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि ॥११६

स्निग्धकर्पूरसङ्काशं तुषारकिरणप्रभम् । त्रिशूलतुम्बुरुधरं तथाभयवरप्रदम् ॥११७

उत्तुङ्गवृषभारूढं त्रिनेत्रं भस्मभूषितम् । कपालमालिनं तद्वत्खण्डेन्दुकृतशेखरम् ॥११८

एवं ध्यात्वा महेशानं स्थापयेदीशदिग्दले ॥११९

पूजयेत्परया भक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥१२०

सितध्वजपताकाभिर्बलिभिः पायसादिभिः। त्वमीशान इति मन्त्रेण ऋषिं छन्दः समीरयन् ॥१२१

ब्रह्माणं रक्तगौराङ्गं शोणपद्मसमप्रभम् । राजीवलोचनं तद्वत्पद्मगर्भसमप्रभम् ॥१२२

पद्मासनस्थितं तद्वच्छ्वेतवस्त्रं चतुर्भुजम् । चतुर्मुखं सुरश्रेष्ठं मेघगम्भीरनिस्वनम् ॥१२३

राजहंससमायुक्तं विमानवरसंस्थितम् । स्रुकस्रुवौ दक्षिणे हस्ते वामे दण्डं कमण्डलुम् ॥१२४

कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन्सिद्धगन्धर्वसेवितम् । आज्यस्थालीं तथैवाग्रे कुशांश्च समिधं तथा ॥१२५

वामपार्श्वे तु सावित्रीं दक्षिणे तु सरस्वतीम् । आब्रह्मन्निति मन्त्रेण स्थापयेत्पूर्वदिग्दले ॥१२६

नानाभक्ष्योपचारैश्च पूजयेद्गन्धचन्दनैः । धूपैः श्वेतपताकाभिर्बलिभिश्चाज्यपायसैः ॥१२७

अनन्तं शुक्लवर्णाभं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं जगदीश्वरम् ॥१२८

आधारभूतं जगतां स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् । नानाभरणसम्पन्नं फणाशतसमन्वितम् ॥१२९

(कुबेर) की स्थिति कमल पत्र के उत्तर की ओर करके गन्ध, चन्दन, वस्त्र, पीत वर्ण की माला, लेप, धूप, पीत पताका, खीर की बलि समेत पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। मनोरम कपूर के समान वर्ण, हिमकिरण की भाँति प्रभा, त्रिशूल और तुम्बरु (तुमड़ी), अभयवर प्रदायक, ऊँचे वृषभ पर स्थित, तीन नेत्र, भस्म से भूषित, कपाल (शिर) की माला एवं चन्द्रखण्ड मस्तक में धारण किये महेशान (शिव) का इस भाँति ध्यान करके ईशन कोण के दल में उन्हें स्थापित कर देना चाहिए।११४-११९। विविध भाँति के भक्ष्य पदार्थ, श्वेत वर्ण की ध्वजा, पताका और पायस (खीर) आदि बलि पुरस्सर 'त्वमीशान इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति से तन्मय होकर उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१२०-१२१। रक्त एवं गौर वर्ण, रक्त कमल के समान प्रभा, कमल की भाँति लोचन, उसी भाँति, पद्मगर्भित उसकी प्रभा कमलासन पर सुशोभित, श्वेत वस्त्र, चार भुजाएँ, चारमुख मेघ के समान गम्भीर वाणी, राजहंस समेत उक्त विमान पर स्थित दाहिने हाथों में स्रुक और स्रुवा, बाँयें हाथों में दण्ड हाथ में कमण्डलु धारण किये, लोकों की सृष्टि करते हुए की भाँति स्थित, सिद्ध एवं गन्धर्वों से सुसेवित, घृतपात्र, सम्मुख भाग में कुश तथा समिधाओं से युक्त, बायें पार्श्व में सावित्री और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती से अलंकृत उस देवश्रेष्ठ ब्रह्मा का इस भाँति ध्यान पूर्वक 'आब्रह्मन्निति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूर्व दिशा के दल में स्थापन करके अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ, गंध चंदन, धूप, श्वेत पताका, एवं घी मिश्रित खीर का बलि आदि उपचारों समेत उनकी पूजा करनी चाहिए।१२२-१२७। शुक्ल वर्ण की प्रभा, पीताम्बर धारण किये, चार भुजाएँ, शंख, चक्र, गदा तथा कमल हाथों में लिये विश्व के अधिनायक, जगदाधार, सुवर्ण की भाँति यज्ञोपवीत से भूषित, अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत सैकड़ों ब्रह्मों से युक्त उस अनन्त भगवान की

ॐ नमोस्त्विति मन्त्रेण स्थापयेद्वरुणान्तरे । पूजयेद्भक्ष्यभोज्यैश्च दीपगन्धानुलेपनैः ॥१३०
धूपैः श्वेतपताकाभिर्बलिभिश्चैव निर्मितैः । ततो मण्डलपूर्वे तु ब्रह्माणं पीतवाससम् ॥१३१
चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं स्रुवहस्तं वरप्रदम् । बिभ्रतं च श्रुतं तद्वत्तथा दण्डकमण्डलू ॥१३२
आब्रह्मन्निति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः । दक्षिणे त्र्यम्बकं ध्यायेच्छूलखट्वाङ्गधारिणम् ॥१३३
वरदं डमरुधरं नागयज्ञोपवीतिनम् । निबद्धजूटचन्द्रार्धं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥१३४
कपालमालिनं देवं भुजङ्गाभरणान्वितम् । त्रिनेत्रं कुन्दसङ्काशं भूतप्रेतगणैर्वृतम् ॥१३५
त्र्यम्बकं चेति मन्त्रेण पूजयेन्मधुपायसैः । अतसीपुष्पसङ्काशं हारकेयूरभूषितम् ॥१३६
नानाभरणसम्पन्नं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । दक्षिणे च गदां चक्रं वामे शङ्खं सपद्मकम् ॥१३७
श्रिया दक्षिणतो वामे सरस्वत्या समन्वितम् । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्थापयेत्पश्चिमे ततः ॥१३८
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः पायसेन घृतेन च । गणेशं तु चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥१३९
गजेन्द्रवदनं देवं श्वेतवस्त्रं चतुर्भुजम् । परशुं लगुडं वामे दक्षिणे दण्डमुत्पलम् ॥१४०
मूषकस्थं महाकायं शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् । युक्तं बुद्धिकुबुद्धिभ्यामेकदन्तं भयापहम् ॥१४१
नानाभरणसम्पन्नं सर्वापत्तिविनाशनम् । गणानां त्विति मन्त्रेण विन्यसेदुत्तरे ध्रुवम् ॥१४२

उत्तप्तजाम्बूनदहेमसन्निभां लक्ष्मीं सरोजासनसंस्थितां शुभाम्।
वामे सरोजं दधतीं तथैव हस्ते च दक्षे धृतचामरां च ॥१४३

प्रतिष्ठा, 'ओं नमोस्त्विति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वरुण को मध्य में करके भक्ष्य-भोज्य, दीप, गन्ध एवं लेप, धूप, श्वेत पताका तथा बलि समेत उनकी पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत मण्डल के पूर्व भाग में स्थित ब्रह्माण्ड का, जो चार भुजाएँ, चार मुख, स्रुवा हाथ में लिये, वरदायक, वेद तथा दण्ड-कमण्डलु ग्रहण किये है, 'आब्रह्मन्निति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूजन करना चाहिए। दक्षिण की ओर स्थित शूल खट्वांगधारी, वरदायक, डमरू लिये, साँप का यज्ञोपवीत धारण किये, जटा में अर्ध्य चन्द्र से बांये, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण, कपाल की माला, साँपों के आभरण से युक्त, तीन नेत्र कुन्द पुष्प की भाँति प्रभा, भूत प्रेत से घिरे उस देव की 'त्र्यम्बकमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक शहद पायस (खीर) पदार्थों द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करके अलसी पुष्प की भाँति वर्ण, हार, केयूर (बाँह का आभूषण), से विभूषित, अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत, पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, दाहिने में गदाचक्र और बाँये में शंख और कमल लिये दक्षिण में लक्ष्मी, तथा बाँये भाग में सरस्वती से सेवित उस विष्णु देव की स्थिति, 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र के द्वारा पश्चिम की ओर करके गन्ध पुष्प, खीर, एवं घी आदि वस्तुओं द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१२८-१३९। चार भुजाएँ, साँप का यज्ञोपवीत धारण किये, गजेन्द्र- वदन, श्वेत वस्त्र, बाँयें दोनों हाथों में फरसा और छड़ी दाहिने दोनों हाथों में दण्ड एवं कमल लिये, चूहे पर स्थित, महाकाय, शंख, कुन्द-पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, सुबुद्धि दुर्बुद्धि से युक्त, एक दाँत वाले, भयनाशक, अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, सम्पूर्ण आपत्तियों के विदारक, उस गणेश देव का स्थापन-पूजन उत्तर की ओर 'गणानां त्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए।१४०-१४२। संतप्त सुवर्ण के समान वर्ण, कमलासन पर सुशोभित शुभ, बाँयें हाथ में सरोज, दाहिने हाथ

श्रीश्च तेति च मन्त्रेण ऐशान्यां मण्डलाद्बहिः । स्थापयेत्पूजयेद्भक्त्या सितचन्दनपङ्कजैः ।।१४४
मोदकं परमान्नं च यवक्षीरं निवेदयेत् ।।१४५

ततो देवीमम्बिकां दिव्यरूपां ब्रह्मेन्द्राद्यैः स्तूयमानां त्रिनेत्राम् ।
सिंहेशस्थां तप्तजाम्बूनदाभां चन्द्रार्द्धेनाबद्धमौलिं जटाभिः ।।१४६
दिव्यैर्वस्त्रैर्जाहुभिः साग्रलम्बैर्दिव्यैर्माल्यैर्भूषणैः स्वैरुपेताम् ।
ब्रह्मेन्द्राद्यैर्दुर्जयां माहिषास्यं तीक्ष्णैरस्त्रैर्दानवं मर्दयन्तीम् ।।१४७
शूलं तीक्ष्णं बाणशक्ती च तीक्ष्णे खड्गं तीक्ष्णं बिभ्रतीं दक्षिणेन ।
चापं पाशं खेटकं चाङ्कुशं च घण्टां वामे बिभ्रतीं वै कुठारम् ।।१४८
शिरश्छेदादर्धजातं कबन्धं खड्गं तीक्ष्णं बिभ्रतीं दैत्यराजम् ।
नागैः पाशैर्वेष्टयित्वा समन्ताच्छूलेनैनं निघ्नतींदेहमध्ये ।।१४९
सेन्द्रैर्देवैः स्तूयमानां सुवेणीं गन्धर्वाद्यैः सिद्धसङ्घैश्च सेव्याम् ।
नानावस्त्रैर्भूषणैर्दीप्यमानां ध्यायेद्देवीमम्बिकामुज्ज्वलन्तीम् ।।१५०
वस्त्रैर्माल्यैर्यक्षधूपैर्वितानैर्भक्ष्यैर्भोज्यैर्मोदकैः[1] पायसैश्च ।
मांसैः पिष्टैश्छागलाद्यैरशेषः पूज्या देवी चण्डिकाऽभीष्टदा च ।।१५१

श्यामां च पृथिवीं ध्यायेत्पङ्कजद्वयधारिणीम् ।।१५२
मण्डूकस्थां द्विभुजां स्योना पृथिवीति चार्चयेत् । नैर्ऋत्यां विश्वकर्माणं द्विभुजं टङ्कधारिणम् ।।१५३

में चामर धारण किये, उस लक्ष्मी का मण्डल के बाहर ईशान कोण में 'श्रीश्च तेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापन करके श्वेत चन्दन, कमल पुष्प, मोदक, परमान्न, यवक्षीर पदार्थों को उन्हें अर्पित करते हुए उनका पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए।१४३-१४५। पश्चात् दिव्य रूप, ब्रह्मादि देवों द्वारा की गयी स्तुति सम्पन्न, तीन नेत्र, सिंहासनासीन, तपाये हुए सुवर्ण की भाँति प्रभा, चन्द्रखण्ड से आबद्ध शिर के बाल जटा- जूट की भाँति सुशोभित, दिव्य वस्त्र, आजानुबाहु, दिव्य मालाओं एवं भूषणों से विभूषित, ब्रह्मेन्द्र देवों का अजेय, अपने तीक्ष्ण अस्त्रों से महिषासुर का मर्दन करने वाली, दाहिने हाथ में तीक्ष्ण शूल, बाण, शक्ति, एवं तीक्ष्ण खड्ग तथा बाँयें हाथ में धनुष, फांस, खेटक, अंकुश घंटा, तथा कुठार धारण किये, खड्ग द्वारा काटे गये दैत्यराज का शिर तीक्ष्ण खड्ग, एवं नाग फांस से दैत्य को दृढ़ता पूर्वक बाँधकर उसके शरीर के मध्य भाग में शूल का प्रहार करने वाली, इन्द्रादि देवों द्वारा स्तुति सम्पन्न, सुन्दर वेणी से युक्त, गन्धर्व, तथा सिद्धों के समुदाय से सुसेवित, अनेक भाँति के वस्त्र और आभरणों से सुसज्जित उस भगवती अम्बिका देवी का इस भाँति ध्यान करके वस्त्र, माला, यक्ष धूप, वितान, भक्ष्य-भोज्य मोदक, खीर, बकरे का मांस आदि वस्तुओं द्वारा मन इच्छित फल प्रदान करने वाली उस चण्डिका देवी का पूजन करना चाहिए।१४६-१५१। दो कमल-पुष्पों को धारण किये, मेढक पर स्थित उस श्यामा पृथिवी का इस प्रकार ध्यान पूर्वक 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। तदुपरांत

---

१. यक्षकर्दमधूपैरित्यर्थः ।

उत्पलं दक्षिणे हस्ते पद्मस्थं पीतवाससम् । एवं ध्यात्वा ततो ब्रह्मन्निति मन्त्रेण पूजयेत् ।।१५४
स्वस्थां सरस्वतीं ध्यायेद्वरदाभयदायिनीम् । पीतवस्त्रां सुमुकुटां देवगन्धर्वसेविताम् ।।१५५
यामधा इति मन्त्रेण पूजयेत्सितचन्दनैः । बलिं श्वेतचरुं दद्यात्कृशरं यावकं तथा ।।१५६
स्थापयेद्वामदिग्भागे कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् । पूर्वादिद्वारदेशे तु पूजयेच्च मरुद्गणैः ।।१५७
अग्न्यादिषु च कोणेषु बहिर्भूतान्समाचरेत् । पिशाचा राक्षसा भूता वेतालकपिजातयः ।।१५८
निर्णासाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः । ततो मण्डलमध्ये तु वारुणं पूर्ववर्त्मना ।।१५९
पूरयेत्कलशे तत्र सुवर्णादिविनिर्मितम् । कूर्मं कूर्माकृति कुर्याच्छुद्धस्वर्णेन सत्तमाः ।।१६०
बृहत्पर्वप्रमाणेन राजतस्य च दुर्लभम् । पादं पादेन मानेन अङ्गुलं परिमण्डलम् ।।१६१
प्रौष्ठीमत्स्यं तथा कुर्यात्कुलीरं ताम्रनिर्मितम् । तेनैकस्य विनिर्माणं द्वयङ्गुलायामविस्तृतम् ।।१६२
तथा मानेन मण्डूकं तां भूमिं मुनिसत्तमाः । शिशुमारं च वै सम्यक्तोलकद्वयनिर्मितम् ।।१६३
अङ्गुलत्रयदीर्घं च तथा तस्याकृतिर्भवेत् । सितचन्दनवस्त्रैश्च पूजनीयाः समन्ततः ।।१६४
यावकैश्च विशेषेण बहुमन्त्रविशारदान् । बह्वृचौ पूर्वमत्स्यार्थे दक्षिणे तु यजुर्विदौ ।।१६५
सासनौ पश्चिमे चाथ उत्तरेऽथर्वणौ स्मृतौ । जयध्वमिति तान्ब्रूयाद्धोतृकान्पुनरेव हि ।।१६६
स्थापयित्वा पृथक्सूत्रे सर्पं च मातरुद्दीपमेव च । पश्चाङ्गं शिवसूक्तं च यथा विष्णोर्हरस्य च ।।१६७

नैऋत्य कोण में स्थित विश्वकर्मा का जो दो भुजा, टंक, दहिने हाथ में कमल पुष्प धारण किये, कमलासन पर सुशोभित, एवं पीत वस्त्र वाले उस विश्वकर्मा का इस भाँति ध्यान करके 'ब्रह्मान्निति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए। स्वस्थ, वर एवं अभय दान देने वाली पीताम्बर धारणी, मुकुट से सुशोभित एवं देव-गन्धर्व सेवित उस सरस्वती का इस भाँति ध्यान करके 'यामधा इति' इस मन्त्रके द्वारा श्वेत चन्दन, बलि, हवि, कृशरान्न (खिचड़ी), लप्सी आदि वस्तुओं के समर्पण पूर्वक वाम भाग में प्रतिष्ठित करके कुन्दन-पुष्प से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। पूर्वादि दरवाजों पर स्थित मरुद्गणों के समेत देवों एवं अग्नि आदि कोण के वाह्य भाग में स्थित पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल कपि, आदि जीवों की जो नासाहीन, रौद्र, तथा विकृत रूप वाले हैं, पूजा करने के उपरांत मण्डल के मध्यभाग में सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित घट को जल से पूर्णकर वरुण की पूजा करनी चाहिए तथा सत्तमवृन्द ! उस घट में शुद्ध सुवर्ण की बनायी गयी एक कछुवे के आकार की एक प्रतिमा भी होनी चाहिए।१५२-१६०। (अंगुली के) लम्बे पोर के परिणाम की चाँदी के अप्राप्त होने पर उसके चौथाई भाग के समान अर्थात् एक अंगुल परिमाण का उसका (घेरा) होना चाहिए, औष्ठी (सेहरी) मछली अथवा केकरहा की प्रतिमा का जिसकी लम्बाई-चौड़ाई दो अंगुल की हो, ताँबे के द्वारा निर्माण कराकर मुनि सत्तम वृन्द ! उसी मान से मेढ़क एवं उसके भूपृष्ठ की रचना करने के उपरांत शिशुमार (सूंस) जलचर की प्रतिमा दो तोले परिमाण की बनानी चाहिए, जो उसके आकार-प्राकार के समान तीन अंगुल की चौड़ी हो। श्वेत-चन्दन एवं वस्त्रों द्वारा उसे चारो ओर आच्छन्न कर उसकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। उस मत्स्य प्रतिमा के पूर्व की ओर बह्वृच वाले दक्षिण की ओर दो यजुर्वेत्ता।१६१-१६५। पश्चिम की ओर दो आसन और उत्तर की ओर दो अथर्वण वेत्ता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा होताओं के 'जयध्वम्' इस वाक्य के साथ करके पुनः पृथक् सूत्र पर अपनी माता को क्रुद्ध करने वाले साँप की स्थिति के

जयाग्रतः पुरुषसूक्तमद्भ्यः सम्भूतमेव च । आशुः शिशानमारभ्य वयं मोषाङ्गरुद्रके ॥१६८
यज्जाग्रतश्चाग्नेश्च विष्णोरराटमेव च । समस्ताध्यायरुद्रेण शतरुद्राख्यमीरितम् ॥१६९
(पञ्चाङ्गरुद्रस्य पुष्पदन्त ऋषिर्गायत्री छन्दो वेदाहमेतद्बीजं श्रीश्चते इति शक्तिर्नमस्ते रुद्र इति नायकः परमरुद्रो देवता परम स्तुतौ विनियोगः । सप्ताङ्गरुद्रस्य पुष्पदन्तऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः । त्र्यम्बकमिति अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । त्रिपादूर्ध्वमिति तर्जनीभ्यां स्वाहा । वेदाहमिति मध्यमाभ्यां वषट् । अमीषां चित्रमिति अनामिकाभ्यां हुम् । यवागूं सोम इति कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । परितो धेनुमिति करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् इति । यज्जाग्रत इति हृदयाय नमः । सहस्रशीर्षेति शिरसे स्वाहा । अद्भ्यः सम्भूत इति शिखायै वषट् । आशुः शिशान इति कवचाभ्यां हुं । नमस्ते रुद्र इति नेत्रत्रयाय वौषट् । रूढं ब्रह्मन्निति अस्त्राय फट् । चतुर्दिक्षु छोटिकादानम्[1] । इति सर्वाङ्गेषु ॥)
होमे प्रवर्तमाने तु सूक्तानन्यांश्च वै जपेत् । प्रजपेद्वारुणं सूक्तं तथा च पालसूक्तकम् ॥१७०
रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं समुज्ज्वलम् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं सर्वतोवरतं पृथक् ॥१७१
शाक्तं रौद्रं च सौम्यं च कूष्माण्डं जातवेदसम् । सौरसूक्तं च यजतो दक्षिणेन यजुर्विदः ॥१७२
वैराजं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिताम् । शैशवं पञ्चनिरयं गायत्र्यां ज्येष्ठसाम च ॥१७३

अनन्तर पञ्चाङ्ग समेत शिवसूक्त और पुरुषसूक्त का पाठ जिस प्रकार विष्णु एवं हर के लिए किया जाता है, करना चाहिए । 'यज्जाग्रत इति' पुरुष सूक्त के इस मंत्र के प्रारम्भ से 'अद्भ्यः सम्भृत इति' इस मंत्र पर्यंत 'आशुः शिशान' इति इस मंत्र से प्रारम्भ कर 'वयं मोषांग रुद्र के' 'यज्जाग्रतश्चाग्रेश्च' और 'विष्णोरराट इति' इस मंत्र के साथ समस्त रुद्राध्याय का पाठ जो शतरुद्री के नाम से ख्यात हैं, करना आवश्यक बताया गया है । 'पंचाङ्गरुद्र के पुष्पदन्त ऋषि' गायत्री छन्द, वेदाहंवीज, 'श्रीश्चते' 'शक्ति' नमस्ते रुद्र इति' नायक, परम रुद्र देवता, परम स्तुति में इस विनियोग का उपयोग किया जाता है । सप्ताङ्ग रुद्र के पुष्प-दन्त ऋषि, पंक्ति छन्द हैं, पश्चात् 'त्र्यम्बकमिति' अंगूठे, 'त्रिपादूर्ध्वमिति' से तर्जनी, 'वेदाऽहमिति' से मध्यमा, 'अमीषां चित्रमिति' से अनामिका 'यवागूं सोम इति' से कनिष्ठा, 'परितो धेनुमिति' से करतल करपृष्ट के विन्यास पूर्वक इसी करन्यास की भाँति हृदयन्यास भी करना कहा गया है—'यज्जाग्रत इति' से हृदय, 'सहस्र शीर्षेति' से शिर, 'अद्भ्यः संभूत इति' से शिखा, 'आशुः शिशान इति' से कवच (बाहुमूल) 'नमस्ते रुद्र इति' से नेत्र, और 'रूढं ब्रह्मन्निति' से अस्त्राय फट् करने के उपरांत चारों दिशाओं से छोटिका नामक मुद्रा प्रदर्शन करना चाहिए । इसी भाँति सर्वाङ्गीण कर्मो में भी यह आवश्यक बताया गया है । हवन के प्रारम्भ होने पर अन्य सूक्तों—वारुण, तथा पाताल सूक्त का भी पाठ करना आवश्यक कहा गया है । उसी भाँति रात्रिसूक्त, रौद्र, पवमान का समुज्ज्वल, एवं पुरुष सूक्त का पाठ करना चाहिए।१६६-१७१। शाक्त, रौद्र, सौम्य, कूष्माण्ड, जातवेदस, तथा सौरसूक्त का पाठ दक्षिण की ओर से यजुर्वेता को करने के उपरांत वैराज, पौरुष सूक्त, सौवर्ण रुद्र संहिता, शैशव पञ्च निरय, गायत्री, ज्येष्ठ-साम, वामदेव्य, बृहत्साम, रथंतर, गोव्रत, विकर्ण, इन सभी के पाठ राक्षसों के विनाशक और

---

१. इयं मुद्रा ताराकल्पे मेरुतन्त्रे चान्यत्रापि बहुषु तन्त्रेषूक्ता तत एवावधारणा कर्त्तव्या ।

वामदेव्यं बृहत्साम तथा चैव रथन्तरम् । गोव्रतं च विकर्णं च रक्षोघ्नं पावनं स्मृतम् ।।१७४
गायन्तं ब्राह्मणा ये च पूर्वादिद्वारदेशतः । अन्नात्परिस्रुत इति पञ्चपूर्वं सौरसूक्तकम् ।।१७५
रुद्राध्यायं च पञ्चाङ्गं रौद्र इत्यभिधीयते । आप्यायस्वेति च चतुः सौम्यं सूक्तं प्रचक्षते ।।१७६
ईशावेत्यादि स्वाङ्गं च कौष्माण्डं दशमं स्मृतम् । अग्ने बृहन्निति नवसूक्तं वै जातवेदसम् ।।१७७
षोडशं तु विभ्राड् बृहत्सौरं सूक्तं प्रकीर्तितम् । सौरसूक्तं ध्रुवोसीति इषवो मङ्गलं स्मृतम् ।।१७८
रात्रिसूक्तं हि यज्वाग्ने रक्षोघ्नं शैवसूक्तकम् । गणानान्त्वेति पञ्च आपोहिष्ठेति च त्रयम् ।।१७९
पवमानं तु तद्विद्धि पावमानं तु षोडश । समस्तं देवयागेषु तद्रात्रौ तु तदूर्ध्वकम् ।।
तदर्द्धार्द्धं च आरामे कूपे त्वेकमृचं जपेत् ।।१८०
स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिकुण्डेषु होमयेत् । संस्कुर्यादीक्षणाद्यैश्च सम्पूज्य च परस्परम् ।।१८१
प्रज्वाल्याग्निं च विधिवद्धोमं कुर्यादनन्तरम् । वागीश्वरं समभ्यर्च्य वागीश्वर्या समन्वितम् ।।१८२
यस्य देवस्य यो यागः प्रतिष्ठा यस्य कस्यचित् । प्रागेव तस्य जुहुयात्सहस्रं च शतं तथा ।।१८३
तिलाज्यैः पायसैर्वाथ पत्रपुष्पाक्षतेन च । ग्रहेभ्यो विधिवत्सर्वं तथेन्द्रायेश्वराय च ।।१८४
मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे । ऊर्जेन समिधा कुर्यादष्टाष्टौ स्वगृहेष्वपि ।।१८५
इन्द्रेश्वरमारुतानां तिलाज्येन घृतेन वा । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथाक्रमात् ।।१८६
दिगीशानां च प्रत्येकमष्टाष्टौ च विशेषतः । विश्वकर्मन्निति मन्त्रेण कृत्वा आज्याहुतित्रयम् ।।१८७
समित्त्रयं पलाशस्य अथवाश्वत्थसम्भवम् । एकैकामाहुतिं दद्यादाज्येन च विशेषतः ।।१८८

पावन बताये गये हैं। पूर्वादि दरवाजे से इनका गायन करते हुए ब्राह्मणों को 'अन्नात्परिस्रुत इति' इन मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक सौरसूक्त का पाठ करना चाहिए।१७२-१७५। रुद्राध्याय समेत पञ्चाङ्ग को रौद्र, 'आप्यायस्वेति' इन चारों को सौम्य सूक्त, 'ईशावेत्यादि समेत स्वांग को दशवाँ कौष्माण्ड, और 'अग्ने बृहन्निति' इन नव सूक्तों को जातवेदस् कहा जाता है। सोलहवाँ 'विभ्राड् बृहत् इति' को सौरसूक्त, 'ध्रुवोऽसीति' इस मांगलिक इषव, 'यज्वाग्ने' को रात्रिसूक्त, और शैव सूक्त को रक्षोघ्न बताया गया है। इसी भाँति 'गणानांत्वेति' इन पाँचों और 'आपोहिष्ठेति' इन तीनों को पवमान तथा सोलह ऋचाओं को पावमान कहा गया है। सभी देव यज्ञों में उस रात्रि के समय उसका ऊर्ध्वभाग, उपवन की प्रतिष्ठा में एक चौथाई और कूप की प्रतिष्ठा में एक ऋचा का जप करना चाहिए।१७६-१८०। अपने गृह्योक्त सूक्त के विधानानुसार प्रत्येक कुण्डों में हवन करना चाहिए—ईक्षणादिक संस्कार एवं परस्पर की अर्चा के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में विधान पूर्वक वागीश्वरी समेत वागीश्वर देव (पार्वती-शिव) की पूजा पूर्वक हवन करना चाहिए। जिस देव के उद्देश्य से याग अथवा उसकी प्रतिष्ठा की जाये, उसमें उस देव के निमित्त सहस्र अथवा शत आहुति सबसे पहले प्रदान करनी चाहिए। तिल, घी, खीर या पत्र, पुष्प, अक्षत द्वारा विधान पूर्वक ग्रहों, इन्द्रेश्वर, मरुद्गण और लोकपालों के लिए आहुति-प्रदान की जानी चाहिए, उसी भाँति सविधान विश्वकर्मा के लिए आठ-आठ समिधाएँ और इन्द्र, ईश्वर, एवं मरुद्गणों के लिए तिल तथा घी की एक-एक आहुति उनके मंत्रों द्वारा अर्पित करना बताया गया है। दिक्पालों के लिये आठ-आठ आहुतियाँ एवं 'विश्वकर्मन्निति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घी की तीन-तीन आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए। पलाश अथवा पीपल की तीन समिधा प्रज्वलित करके घी समेत एक-एक आहुति-प्रदान करना

शिवं प्रजापतिं विष्णुं दुर्गां च कमलामपि । सरस्वतीं च विधिवत्पृथिव्या इति पावकैः ॥१८९
भूतेभ्योऽप्याहुतिं दद्यादेवं मासद्वयं क्रमात् । अन्येषां मधुराक्तेन तिललाजैर्यथाक्रमम् ॥१९०
विष्णुं चैवं तु वायव्ये दुर्गायाश्च तथोत्तरे । कमलायाश्च ईशाने ईशानस्य सभूतकम् ॥१९१
एककुण्डे तु एकस्मिन्होमं कुर्याद्यथाविधि । पक्षे वै पञ्चकुण्डे तु पूर्वादीनां क्रमेण तु ॥१९२
एककुण्डे ग्रहान्कृत्वा कृत्वा बलभिदा सह । दक्षिणे क्रमतश्चैवं लोकेशं च तथैव च ॥१९३
पश्चिमे यस्य यागस्य दुर्गायाश्चोत्तरे दिशि । ईशाने भूतयक्ष्मा च जुहुयाद्देशिकोत्तमः ॥१९४
विष्ण्वादिदेवतानां च अग्रकुण्डे विधीयते । प्रथमे दिवसे कुर्याद्देवतानां च स्थापनम् ॥
द्वितीये पूजनं कुर्याद्धोमं कुर्याद्यथाविधि ॥१९५
बलिदानं तृतीये तु चतुर्थीकं चतुर्थके । नीराजनं पञ्चमे तु पञ्चाहसाध्यको विधिः ॥
त्र्यहसाध्ये तृतीये तु नवाहे त्वथ पञ्चमे ॥१९६
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वाप्यैशान्यादिक्रमेण तु । प्रादक्षिण्येन यज्ञं तु मन्त्रैः परिसमूहनम् ॥
मन्त्रपूर्वं साग्निकानां निरग्नेस्तुष्टिकेन तु ॥१९७
त्रिकुशेन महायागे विवाहादौ द्विपत्रकम् । वैश्वदेवे त्वेकपत्रमिति साधारणो विधिः ॥१९८
दिग्विदिक्षु परिस्तीर्य महायागेषु सर्वदा । दिक्षु मात्रं नित्यके च विश्वदेवे तथैव च ॥१९९

बताया गया है ।१८१-१८८। शिव, प्रजापति (ब्रह्मा), विष्णु, दुर्गा, कमला, सरस्वती, के निमित्त 'पृथिव्या इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सविधान आहुति-प्रदान करनी चाहिए । उसी प्रकार दो मास भूतों के लिए भी अन्य के लिए शहदमिश्रित तिल' लाजा (लावा), की आहुति-प्रदान करना बताया गया है । वायव्य कोण में विष्णु, उत्तर में दुर्गा, ईशान में कमला और भूतगण समेत शिव के लिये एक ही कुण्ड में एक साथ ही विधान पूर्वक हवन करना चाहिए तथा पाँच कुण्डों के निर्माण-विधान में पूर्वादि क्रम से आहुति-प्रदान करना कहा गया है ।१८९-१९२। एक कुण्ड में बलभिद् के समेत ग्रहों की, तथा दक्षिण की ओर से क्रमशः लोकपाल, पश्चिम में उस प्रधान देव के जिसके उद्देश्य से यज्ञ आरम्भ किया गया हो उत्तर में दुर्गा, और ईशान में भूतयक्ष्मा के लिए आहुति-प्रदान करना चाहिए ।१९३-१९४। उसी भाँति विष्णु आदि देवों के उद्देश्य से कुण्ड के अग्रभाग में आहुति-प्रदान करना बताया गया है । प्रथम दिन में देवों के स्थापन, दूसरे दिन पूजन एवं सविधान हवन, तीसरे दिन बलिप्रदान, चौथे दिन चतुर्थीक तथा पाँचवें दिन नीराजन प्रदान करना चाहिए, यह पाँच दिन के अनुष्ठान का विधान है उसी प्रकार तीन दिन के अनुष्ठान में तीसरे दिन, नव दिन वाले में नवें दिन और पाँच वाले में पाँचवें दिन नीराजन करना कहा गया है । उत्तरमुख अथवा पूर्वाभिमुख होकर ईशान आदि कोण के क्रम से प्रदक्षिणानुसार यज्ञ में मंत्रों द्वारा परिसमूहन (कुश) कर्म अग्निहोत्री के लिये मंत्रपूर्वक और निरग्नि के लिये मौन होकर करना चाहिए । महायाग में तीन कुशाओं द्वारा, विवाहादिकर्मों में दो पत्ते और वैश्वदेव विधान में एक पत्र रखकर उसे समाप्त किया जाता है, ऐसा साधारण विधानों में कहा गया है । महायागों में दिशाओं एवं विदिशाओं में नित्य एवं नैमित्तिक वैश्वदेव कर्मों में केवल दिशामात्र में कुश का स्तरण (बिछाना) करना चाहिए नित्यकर्म बिना किये नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान न करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से वह

अकृत्वा कर्म नित्यं च वृथा नैमित्तिकं भवेत् । तस्मात्फलाद्यैरपि तत्कृत्वा नैमित्तिकं चरेत् ।।२००
प्रायश्चित्ते वैश्वदेवे सायंप्रातः व्रतीषु च ।।२०१
मारणोच्चाटहोमेषु तथा सङ्कल्पिताकृती । प्रत्यवायकुले क्वापि तत्र नित्याकृतिं विना ।।२०२
शतार्द्धं जुहुयाद्यत्र तत्र नित्यं विवर्जयेत् । तूर्यहोमं ततः कृत्वा तूष्णीमेव जितेन्द्रियः ।।२०३
प्रजपेदिन्द्रमग्निं च सोमाय च यथाक्रमम् । ततस्तु समिधाहोमं व्याहृतिस्तदनन्तरम् ।।२०४
भूर्भुवः स्वाहेति तथा त्वन्न इत्यादि पञ्चकम् । अन्ते स्विष्टकृतं दद्याद्विधानं तस्य भोः शृणु ।।२०५
घृताहुतिं स्विष्टकृच्च द्विजसंस्कार कर्मसु । घृतैः स्विष्टकृतं दद्याद्यागादौ परिवर्जयेत् ।।२०६
सर्वौषध्युदकस्नानं करिदन्तोत्थमुष्णया । रथ्यावल्मीकगोष्ठस्य तथाश्वस्य खुरस्य च ।।२०७
त्रिगन्धं च त्रिशीतं च कुशमूलस्य मृत्तिकाः । निक्षिपेत्स्नानकुम्भेषु आचार्यादींस्तु स्थापयेत् ।।२०८
यजमानः पुरः कृत्वा दन्तकाष्ठपुरः सरम् । रात्रौ च भक्ष्यभोज्याद्यैः परितोष्य यवाक्षतम् ।।२०९
कृत्वा यथोक्तकालेन पूजयेत्तैलधारया । ततः प्रभाते विमले स्नानं कुर्याद्यथाविधि ।।२१०
स्नानगन्धैवतैर्मन्त्रैः सूक्तेन पुरुषेण तु । वारुणेन च सूक्तेन सुरास्त्वादि यथाक्रमम् ।।२११
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः ।।२१२
आखण्डलोग्निर्भगवान्यमो वै निर्ऋतिस्तथा । वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।।२१३
ब्रह्मणां सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा । कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।।२१४

निष्फल हो जाता है । इसलिये फलादि द्वारा उसकी समाप्ति करके नैमित्तिक कर्म करना बताया गया है ।१९५-२००। प्रायश्चित्त कर्म, वैश्वदेव, सायं-प्रातः के प्रति कर्म, मारण, उच्चाटन के हवन एवं विघ्न ध्वसं कार्यों में नित्य कर्म नहीं भी किया जाता है, तथा पचास संख्या की आहुति प्रधान कर्म में भी । पश्चात् उस संयमी को मौन होकर सूर्य हवन-समाप्ति के अनन्तर इन्द्र, अग्नि, एवं सोम के लिए जप और आहुति क्रमशः प्रदान करने पर समिधा हवन व्याहृति, 'भूर्भुवः स्वाहेति एवं त्वन्नइत्यदि' पाँच मंत्रों की आहुति देकर अन्त में स्विष्टकृत् हवन करना चाहिए । उसका विधान मैं बता रहा हूँ सुनो ! द्विजों के संस्कार कर्मों में स्विष्टकृत् हवन के समय घी की आहुति दी जाती है । परन्तु यज्ञ आदि कर्मों के अनुष्ठान में घी की आहुति द्वारा स्विष्टकृत् हवन करने का निषेध किया गया है ।२०१-२०६। समस्त औषधि मिश्रित उदक स्नान करना चाहिए, जिसके घर में गजदाँत द्वारा उभाडी गयी एवं गरम, गली की मिट्टी, वल्मीक (व्यमौर), गौओं के रहने की भूमि, अश्व के खुर के नीचे की मिट्टी, तीनों गन्ध, तीनों शीतकारक वस्तु, एवं कुश मूल की मिट्टी डाली गयी हो । तदुपरांत आचार्यादि व्यक्तियों के वरण एवं पूजन सुसम्पन्न करना बताया गया है । अपने समक्ष एकत्रित की हुई दातून आदि से लेकर राशि के भक्ष्य भोज्यादि सामग्रियों द्वारा भली भाँति उन्हें सन्तुष्ट करने के उपरांत यजमान जवा और अक्षत के ग्रहण पूर्वक नियमित समय में उस तेल की धारा का स्नान करके प्रातः काल के निर्मल समय में सविधान स्नान सुसम्पादित करे । स्नान के समय वरुण देव के मन्त्रों, पुरुषसूक्त, और वारुणसूक्त के पाठ पूर्वक अभिषेकार्थ देवों की इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर वासुदेव, जगन्नाथ, संकर्षण, प्रभु, इन्द्र, अग्नि, भगवान्, यम, निर्ऋति (राक्षस), वरुण, वायु, कुबेर, एवं शिव, देव तुम्हारा अभिषेक करें, ब्रह्मा समेत शेष और दिक्पाल सदैव तुम्हारी रक्षा करें, कीर्ति, लक्ष्मी, घृति, मेधा, पुष्टि,

बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समाहिताः ।।२१५
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः । ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।।२१६
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो देवा देवमातर एव च ।।२१७
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः । अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।।२१८
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये । सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।।२१९
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये । स्नानं समाप्य विधिवत्स्वगणेनानुलेपयेत् ।।२२०
गवामष्टोत्तरशतं तदर्धं चाथ विंशतिम् । आचार्यायाभिरूपाय प्रदद्यादभिपूजयन् ।।२२१
ततः प्रभाते विमले जले समवतारयेत् । शुद्धां च कपिलां दोग्ध्रीं घण्टाचामरवर्जिताम् ।।२२२
सामगाय ततो दद्यात्सुवर्णदक्षिणान्विताम् । यूपमादाय संस्थाप्य स्नापयेद्वारुणं जपन् ।।२२३
अच्छेवतेन मन्त्रेण गायत्र्या तदनन्तरम् । रोचनाभिस्त्रिरत्नेन तथा कुम्भोदकेन च ।।२२४
पर्वताग्रमृदा तोयनागवल्मीकजातया । गजदन्तमृदा चैव कूलमूलतमृदा तथात ।।२२५
पुष्पोदकेन शङ्खेन तथा रत्नोदकेन च । दध्यक्षतेन दुग्धेन घटेन शतधारया ।।२२६
सुगन्धेन त्रिशीतेन विलिप्य च समाहितः। दापयेत्कांस्यमूलं च दद्याल्लोहमयं च वा ।।२२७
माल्यवस्त्रैरलङ्कृत्य पूजयेद् गन्धचन्दनैः । ईशावा इति मन्त्रेण दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् ।।२२८

श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शांति, तुष्टि, कांति औ माताएँ ये सभी देवाङ्गनाएँ निश्चल मनोयोग द्वारा तुम्हारा अभिषेक करें ।२०७-२१५। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ग्रहगण प्रसन्न चित्त से तुम्हारा अभिषेक करें तथा देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनुदेव, देवमाताएँ, देव पत्नियाँ, वृक्ष, पर्वत, दैत्य, अप्सराएँ, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र, राजा लोग सभी वाहन, औषधि, रत्न समय के अवयव, सरिताएँ, सागर, शैल, तीर्थ, जलद नद, ये सभी समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए तुम्हारा अभिषेक करें । इस प्रकार विधिवत् स्नान करने के उपरांत अपने अनुचरों द्वारा अनुलेपन कराना चहिए । तदनन्तर आचार्य के लिए उनकी अर्चा करते हुए एकसौआठ, चौवन, अथवा बीस गायें अर्पित करना चाहिए ।२१६-२२१। पश्चात् प्रातःकाल के स्वच्छ समय में जलावतरण करके शुद्ध, दूध देने वाली, एवं घंटा चामर शून्य उस कपिला गाय को सुवर्ण की दक्षिणा समेत सामगायक विद्वान के लिए सुसमर्पित करना चाहिए । यज्ञीय यूप (स्तम्भ) को भूमि में स्थापित करके 'वारुण' मन्त्र 'अच्छेवत' एवं गायत्री मन्त्र के जप पूर्वक गोरोचन तथा तीन रत्नों से विभूषित उस कलश के जल द्वारा स्नान कराना चाहिए, जिसमें पर्वत के अग्रभाग, जल (संगम) गजस्थान, बल्मीक (व्यमौर), गजदाँत द्वारा खोदी हुए, एवं नदी तट की मिट्टी पड़ी हो, और पुष्पोदक, शंख, रत्नोदक, दही, अक्षत, एवं दुग्ध डाला गया हो । उस घट की अविरल धारा से स्नान कराने के उपरांत सुगन्धित तीनों शीत कारक वस्तुओं के लेपन करके उसके मूल भाग में कांसा या लोहा लगाकर माला, वस्त्र से उसे मनमोहक बनाये, पश्चात् गन्ध चन्दन से उसकी पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर 'ईशावा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करना चाहिए।२२२-२२८। तथा 'पुनस्त्वादिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पुष्प प्रदान

पुनस्त्वादिति मन्त्रेण पुनः पुष्पं समुत्सृजेत् । प्रादेशमात्रविस्तारं मध्ये वृत्तं षडङ्गुलम् ॥२२९
कांस्यचक्रस्य मानं तु ऊर्ध्वं यद्द्वादशाङ्गुलम् । तदूर्ध्वे विलिखेच्छूलं चतुरङ्गुलमानतः ॥२३०
अङ्गुष्ठहीने लोहस्य तत्र शूलं न कारयेत् । ततो मङ्गलपूर्वे तु द्विजातीनां मतेन च ॥२३१
समुत्सृजेच्च प्रासादं तडागं च विशेषतः । चतुर्दर्भं गृहीत्वा तु ईशानाभिमुखेन तु ॥
समुत्सृजेत्ततः पश्चाद्वाक्यमेतदुदीरयेत् ॥२३२
ओमित्यादिश्रीकृष्णद्वैपायनाभिधानवेदव्यासप्रणीतभविष्यपुराणोक्तफलप्राप्तिकामश्चतुष्कोणाद्य वच्छिन्नमत्कारितपुष्करिणीजलमेतदूर्जितं गन्धपुष्पार्घ्यार्चितं वरुणदैवतं सर्वसत्त्वेभ्यः स्नानावगाहनार्थमहमुत्सृजे ॥२३३
ततो वरुणसूक्तेन वरुणं नागसंयुतम् । मकरं कच्छपं चैव तोयेषु परिनिक्षिपेत् ॥२३४
पूजयेद्वरुणं देवमर्घ्यं दद्याद्विशेषतः । तेनोदकेन संस्नाप्य गजदन्तोत्थमृत्स्नया ॥२३५
श्वेताश्वसुरसम्भूतं श्रीश्चतेति च सञ्जपन् । आप्यायस्वेति मन्त्रेण मृदं चतुष्पथोद्भवाम् ॥२३६
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण कुशमूलेन स्थापयेत् । तीर्थतोयेन गन्धेन तथा पञ्चामृतेन च ॥२३७
गायत्र्या स्नापद्देवं रत्नतोयेन साधकः । आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरेण तदनन्तरम् ॥२३८
दधिक्राव्णेति दध्ना च मधुवातेति वै मधु । सरस्वत्यान्तेति जातीपुष्पतोयेन स्नापयेत् ॥२३९

करना कहा गया है । उस यूप का विस्तार प्रादेशमात्र और उसके मध्य में छः अंगुल का वृत्त बना रहता है । कांस्य चक्र के ऊपरी भाग के जो बारह अंगुल के मान का होता है, ऊर्ध्व भाग में चार अंगुल के मान का एक शूल का निर्माण करना चाहिए । यदि वह अंगूठे से भी हीन हो, तो उसे लोहे का शूल न बनाना चाहिए । उसके पश्चात् मांगलिक सूक्ति पूर्वक द्विजातियों की सम्मति से महल विशेषकर तालाब में चार कुश लेकर ईशान कोण के सम्मुख उसे डाल कर इस भाँति कहे—ॐ श्रीकृष्ण द्वैपायन नामक वेदव्यास प्रणीत भविष्य पुराण में बताये गये फलप्राप्ति के लिए अविच्छिन्न चार कोण वाली मेरे द्वारा निर्माण करायी गयी इस बावली के जल को, जो गंध पुष्प द्वारा अर्पित, तथा जिसके वरुण देवता हैं, सभी प्राणियों के स्नानार्थ मैं उत्सर्जन कर रहा हूँ । उसके अनन्तर वरुण सूक्त के उच्चारण पूर्वक नागसमेत वरुण, मकर (मगर) एवं कछुवे को उस जल में डाल देना चाहिए ।२२९-२३४। वरुण देव की पूजा के उपरांत उन्हें विशेषकर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । उनका स्नान उस कुम्भोदक से होना चाहिए जिसमें गजदाँत से खोदी हुई मिट्टी पड़ी हो । तथा श्वेत रंग के घोड़े के खुर की मिट्टी भी पड़ी हो, और 'भी श्रीश्चतेति' तथा 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक चौराहे की मिट्टी उसमें डालनी चाहिए । 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र द्वारा उस कुश के मूलभाग में स्थापित करके तीर्थ-जल, पञ्चामृत (गाय के दूध, दही, घी, शहद और शक्कर) से स्नान कराने के उपरान्त गायत्री के उच्चारणपूर्वक रत्न जल से स्नान कराना चाहिए, उसके पश्चात् 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र द्वारा क्षीर, 'दधिक्राव्णेति' इसके उच्चारण पूर्वक दही, 'मधुवातेति' इस मन्त्र का उच्चारण कर मधु, 'सरस्वत्यान्तेति' इसका उच्चारण करके जूही पुष्प के जल से क्रमशः स्नान कराना बताया गया है। 'वरुणोत्तममिति' इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता

(वरुणोत्तमिति मन्त्रस्य नारायण ऋषिः गायत्री छन्दो वरुणो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः। श्रीश्च ते इति मन्त्रस्य कर्दमऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सरिद्देवता अश्वखुरमृदा स्नाने विनियोगः। आप्यायस्वेति मन्त्रस्य पर्वत ऋषिः उष्णिक्छन्दः सरस्वती देवता वरुणप्रीतये चतुष्पथमृदः स्नाने विनियोगः। तद्विष्णोरिति मन्त्रस्य मैनाक ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सरस्वती देवता वरुणप्रीतये कुशमृदास्नाने विनियोगः। कया न इति मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सोमो देवता वरुणप्रीतये नागगन्धस्नाने विनियोगः। तेजोसीति मन्त्रस्य गर्ग ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वासवो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः। सरस्वत्यै भैषज्येनेति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो विष्णुर्देवता वरुणप्रीतये विनियोगः। पुष्पोदकस्नाने। अग्न आयाहीति मन्त्रस्य जनार्दन ऋषिः जगतीछन्द ऐन्द्री देवता वरुणप्रीतये विनियोगः॥)

प्रक्षिपेत्पञ्च व्रीहींश्च इदञ्चेति च सम्पठन्। पश्चान्नीराजनं कुर्यात्पञ्चघोषपुरःसरम्॥२४०

शिरीषपुष्पसम्भूतं दर्पणं कांस्यसम्भवम्। गोपीचन्दनसम्भूतं गङ्गामृत्तिकयाथवा॥

कृष्णां गां गोमयं वापि स्वस्तिकं शङ्खमेव च ॥२४१

कारयेत्पदकं वापि यवगोधूमकस्य वा। उत्पन्नस्वर्गसम्भूतं कलशं माषसम्भवम्॥

श्रीरसं पुष्पसम्भूतं दर्पणं कांस्यसम्भवम् ॥२४२

नन्द्यावर्ते मलयजे ततो निर्मलयेत्सुधीः। एकैकं प्रतिमन्त्रेण प्रत्येकं तु जलोपरि॥२४३

ध्रुवप्रतिकृतैर्मन्त्रैरष्टभिश्च यथाक्रमम्। पूर्वाक्षतं माषभक्तबलिं दद्याद्विधानतः॥२४४

हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उपयोग करना चाहिए। 'श्रीश्चतेति' इस मंत्र के कर्दम ऋषि, पंक्ति छन्द, सरित् देवता हैं, अश्व खुर से खोदी हुई मिट्टी के स्नान में इस विनियोग का उपयोग किया जाता है। 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के पर्वत ऋषि, उष्णिक् छन्द, सरस्वती देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ चौराहे की मिट्टी-स्नान में इस विनियोग का उच्चारण किया जाता है। 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र के मैनस्क ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सरस्वती देवता हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ कुश की मिट्टी के स्नान में यह विनियोग उपयुक्त होता है। 'कयान इति' इस मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द सोम देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ नाग-गन्ध के स्नान में इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है। 'तेजोऽसीति' इस मंत्र के भर्ग ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, वासव देवता हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए। 'सरस्वत्यै भैषज्येनेति' इस मंत्र के वाम देव ऋषि, पंक्ति छन्द, विष्णु देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए। पुष्पोदक के स्नान में उच्चारित किये जाने वाले 'अग्नि आयाहीति' इस मंत्र के जनार्दन ऋषि, जगती छन्द, ऐन्द्री देवता हैं, वरुण की प्रसन्नता के लिए इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए। ॐ पश्चात् 'इयञ्चेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पाँच धान्यों का प्रक्षेप करके अनन्तर पाँच वाद्यों के घोष समेत नीराजन करना चाहिए।२३५-२४०। शिरीष पुष्प जनित, दर्पण, कांसे, गोपी चन्दन, गंगा मिट्टी, कृष्ण वर्ण की गौ, गोबर, स्वस्तिका, शंख, जवा अथवा गेहूँ के पदक (स्थान) बनाकर स्वर्ग सम्भव कलश, माघ सम्भव, पुष्प जनित श्रीरस, दर्पण, कांसे को मलयज नन्द्यार्वत में निर्मल करके विद्वान् को चाहिए कि जल के ऊपर मंत्रोच्चारण पूर्वक इन एक-एक को प्रदान करके अक्षत समेत पाक किये हुए उरद की बलि सविधान अर्पित करनी चाहिए। उपरांत 'नारायण सूक्त के उच्चारण करके नारायण देव

ततो नारायणसूक्तेन देवं नारायणं व्रजेत् । अन्येषां चैव देवानां प्रदद्यात्त्रिंशतं बलिम् ।।२४५
तत आचमनीयं च वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण क्रमेणापि विधानतः ।।२४६
पृथक्पृथक्ततो दद्यात्तावंत्येनापि भो द्विजाः । वेदसूक्तसमायुक्ते यज्ञसूत्रसमन्विते ।।
सर्ववर्णप्रदे देव वाससी ते विनिर्मिते ।।२४७
शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितान्गन्धान्प्रगृह्य च विलिप्यताम् ।।२४८
अष्टोत्तरशतान्दीपान्परितः स्थापयेत्क्रमात् । तदर्धं वा पञ्चविंशं मन्त्रेण प्रयजेत्सुधीः ।।२४९
त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विषादस्त्वं तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।२५०
प्रदक्षिणं ततः कुर्यात्पञ्चधा सप्तधाथवा । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दद्याद्धूपं दशाङ्गकम् ।।२५१
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिः शुचिः । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।२५२
अलङ्कारैश्च गन्धैश्च पीतवस्त्रैस्तथैव च । दूर्वाक्षतेन माल्येन युक्तं पुष्पेण पूजयेत् ।।
दद्यात्पञ्चाञ्जलिं पश्चाद्विष्णुसूक्तं पुनर्जपेत् ।।२५३
ततः सुशोभने स्थाने वेदीं निर्माय देशिकः । वरुणं विन्यसेत्तत्र तथा पुष्करिणीमपि ।।२५४
विवाहोक्तेन विधिना कुर्यान्निर्मञ्छनादिकम् । गन्धपुष्पं ततो दद्याद्गां च दद्यात्सदक्षिणाम् ।।२५५
चामरं व्यजनं छत्रं कांस्यं लोहं तथैव च । कुर्यात्पुष्करिणीं रम्यां राजतीं च त्रिपादिकाम् ।।२५६

की बलि अर्पितपूर्वक अन्य देवों के लिए भी तीस बलि प्रदान करनी चाहिए ।२४१-२४५। अनन्तर आचमनीय जल और दो वस्त्र मंत्रोच्चारण पूर्वक सविधान समर्पित करना चाहिए । द्विजगण ! प्रत्येक देवों के लिए पृथक्-पृथक् सभी वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिए । देव ! वेदसूक्त समन्वित, यज्ञसूक्त युक्त, एवं समस्त वर्ण प्रदायक इस वस्त्र को आप के लिए समर्पित कर रहा हूँ और मैं आपके शरीर को नहीं जानता, और चेष्टा तो नितान्त ही नहीं जानता हूँ, अतः मेरे द्वारा प्रदान किये गये गन्ध को स्वीकार कर उसका लेपन कीजिये । पश्चात् उसके चारों ओर एक सौ आठ दीपों को प्रज्वलित करना चाहिए । उसके अभाव में पचास अथवा पच्चीस ही दीपक का प्रदान विद्वान् को समन्त्रक करना बताया गया है । 'तुम्हीं सूर्य चन्द्रमा की निर्मल ज्योति हो, विषाद (निर्मल) एवं समस्त ज्योति हो, अतः इस दीपक को ग्रहण कीजिए ।२४६-२५०। सात अथवा पाँच प्रदक्षिणा करने के अनन्तर दशांग धूप मंत्रोच्चारण पूर्वक विधानानुसार प्रदान करना चाहिए । वनस्पति के इस दिव्य, गंधपूर्ण, सुगन्धित, पवित्र, इस धूप को मैं भक्ति पूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, इसे स्वीकार कीजिये । आभूषण, गन्ध, पीत वस्त्र, दूर्वा, अक्षत, माला और पुष्पों से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत पाँच अञ्जलि उन्हें प्रदान कर पश्चात् विष्णु सूक्त का पाठ करना चाहिए ।२५१-२५३। तदुपरांत सौन्दर्य पूर्ण वेदी का निर्माण करके उस पर वरुण और पुष्करिणी को स्थापित करके विवाह विधान द्वारा निर्मञ्छनादिक क्रिया के अनन्तर गन्ध, पुष्प, एवं दक्षिणा समेत गौ का दान करना चाहिए । द्विजवृन्द ! चामर, व्यजन (पंखा), छत्र, कांसा, या लोहे अथवा चाँदी की तीन चरण वाली एवं रम्य पुष्करिणी का निर्माण करना चाहिए जिसकी प्रतिमा चौकोर, परम मनोहर, दो अंगूठे के समान चारों ओर का मण्डल, एवं सौन्दर्य पूर्ण माला की रचना हुई

चतुष्कोणां च सुषमां द्व्यङ्गुष्ठपरिमण्डलाम् । सुवर्णप्रतिमां कुर्याद्वालेनैकेन भो द्विजाः ॥२५७
अथवा स्वर्णपत्रे च कुङ्कुमेन तले लिखेत् । बाणशक्तिप्रमाणेन स्वर्णपत्रं तु द्व्यङ्गुलम् ॥२५८
कारयेच्चतुरस्रं च पीठोपरि न्यसेद्बुधः । नीराजनान्ते विप्रेन्द्राः संस्मरेदमृतं नरेत् ॥२५९
अशक्तेन तथैवैककाष्ठे वा पिप्पलच्छदे । ताम्रपट्टे लिखेद्वापि अलक्तेन यथाविधि ॥२६०
प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्तु वरुणाय निवेदयेत् । अहं वत्सरं कुर्याद्वेदघोषपुरः सरम् ॥२६१
अशोकः खदिरः शालो ह्यश्वत्थो बिल्वकस्तथा । धात्री कुरुबकश्चैव बकुलो नागकेशरः ॥२६२
एषामेव काष्ठयूपं यजमानप्रमाणकम् । समादाय च संस्थाप्य वस्त्राद्यैः प्रतिगृह्य च ॥२६३
यूपं रक्षेति मन्त्रेण खनित्वा च प्रदापयेत् । स्थिरो भवेति मन्त्रेण हस्तं दत्त्वा पठेत्ततः ॥२६४
तडागस्य तथैशान्यां तथा प्रासादकस्य च । प्रापयेद्दक्षिणे भागे आवासस्य च मध्यके ॥२६५
नौकां गत्वा ततः पश्चाद्यूपमादाय वाग्यतः । मध्यदेशे तडागस्य समुल्लङ्घ्य तथोत्तरम् ॥२६६
गन्तव्यं प्रकल्प्य तत्रैव आप्यायस्वेति वै ऋचा । शिलायां होमयेत्तत्र हुनेन्नौकाहुतित्रयम् ॥२६७
अङ्गदाय स्वाहेति भौमाय नम इत्यतः । लाजाशक्तौ दधिमधौ वासने प्रतिहोमयेत् ॥२६८
कूर्माय नम इत्युक्त्वा पृथिव्यै नम इत्युत । स्वाहेत्यनन्तमन्त्रेण दद्यादर्घ्यमनन्तरम् ॥२६९
पञ्चरत्नेन गन्धेन शङ्खेनार्घ्यं प्रदापयेत् । चतुरस्रं समाकीर्णं चतुर्दिक्ष्वघृतैर्जनैः ॥२७०
कल्पयेद्रोपयेत्तत्र हस्तं दत्त्वा पठेदिदम् । स्थिरो भवेति मन्त्रेण गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२७१

हो । अथवा दो अंगुल के सुवर्ण पत्र में कुंकुम द्वारा बाण शक्ति के प्रमाणानुसार चौकोर उसकी प्रतिमा का निर्माण करके उस पीठासन पर विद्वान् को प्रतिष्ठित करना चाहिए । विप्रेन्द्र, ! नीराजन के अन्त में उसका ध्यान एवं जल स्मरण करना बताया गया है । यदि इन धातुओं की प्राप्ति में असमर्थता प्रकट हो, तो एक काष्ठ, पीपल के पत्ते, अथवा ताँबे के ऊपर महावर द्वारा विधान पूर्वक उसका निर्माण करना चाहिए ।२५४-२६०। उस प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा करके उसे वरुण को सादर समर्पित करने के उपरांत वेद ध्वनि पूर्वक उसका वार्षिकोत्सव करना चाहिए । अशोक, खैर, साखू, पीपल, बेल, आँवला, कुरबक (रक्त पुष्प), बकुल (मौलिकसिरी), और नागकेशर इन्हीं काष्ठों का यूप (स्तम्भ) यज्ञ मान के प्रमाणानुरूप बनाकर वस्त्र से आवेष्टित करके 'धूपं रक्षेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भूमि के गढ्ढे में उसे प्रतिष्ठित करना चाहिए और पुनः उस पर 'स्थिरोभवेति' ऐसा कहते हुए हाथ में रखकर इस प्रकार कहे कि—तालाब के ईशान कोण में एवं महल के दक्षिण ओर निवास स्थान के मध्यभाग में सदैव स्थिर रहे । पश्चात् मौन होकर नौका द्वारा उस यूप (स्तम्भ) को लेकर (जलाशय के) उत्तर भाग को पार करके तालाब के मध्य प्रदेश में मार्ग (आसन) आदिकी कल्पना पूर्वक शिला के ऊपर 'आप्यायस्वेति' इस ऋचा के उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिए और तीन आहुति उस नौका के लिए भी 'अंगदाय स्वाहा' भौमाय नम इति' इस प्रकार कहकर आहुति प्रदान करे । लाजा (लावा) के अभाव में सुवासित दही, शहद का हवन करना चाहिए 'कूर्माय नमः, पृथिव्यैनमः स्वाहेति, कहकर आहुति प्रदान के उपरांत पञ्चरत्न, गन्ध, एवं शंख समेत उस अर्घ्य को इस भाँति अर्पित करना चाहिए, जो चौकोर के रूप में आकीर्ण और जिसका स्पर्श कोई मनुष्य न कर सके ।२६१-२७०। इस भाँति उसकी कल्पना एवं आरोप करके

चक्रं सदर्पणं दद्यान्नागदण्डशिरो गतः । विद्युदत्र च कर्तारं प्रहदुःखहरिप्रियम् ।।२७२
एवं चक्रं पूजयित्वा शूलं नागांश्च पूजयेत् । उच्चैर्ध्वजं ततः कृत्वा न नागेति च सम्पठेत् ।।२७३
गायत्रस्त्वेति मन्त्रेण पठेद्द्वारद्वयं ततः । दिक्पालेभ्यो बलिं दद्यान्माषभक्तं गुडौदनम् ।।२७४
रक्तपुष्पान्वितं कृत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् । सहस्रं वा धनं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।२७५
ततो भोज्यं सर्तापिश्च सहिरण्यं यथाविधि । इक्षुस्वस्तीतिकां दद्याज्जले मातृश्च पूजयेत् ।।२७६
मन्थरां वसुतां कान्तां राक्षसीं च पिशाचिकाम् । नागिनीर्नागपुत्रांश्च मध्ये सम्पूजयेत्ततः ।।२७७
पूर्णान्ते च पृथग्दद्याल्लाजाद्यैर्गुडमिश्रितैः । इन्द्रो बलवतीं स्वाहा यशो बलवतामपि ।।२७८
बृहत्पक्षाविशेषोऽयं मध्यमे च कनीयसे । बृहस्पते च इन्द्राय तव देवलतामिति ।।२७९
स्वाहेति जुहुयात्पश्चात्प्रणीतां चालयेत्ततः । कनिष्ठपक्षे प्रासादे तथा चैव जलाशये ।।२८०
मन्दरे तोरणस्यैव विष्वक्सेनं प्रकल्पयेत् । आरामे च तथा सेतौ विशेषः पञ्चनो द्विजाः ।।२८१
पूजान्तरेण यः कस्य जपेन्मन्त्रसहस्रकम् । स्तुतिं समाप्य विधिवदिमं मन्त्रमुदाहरेत् ।।२८२
सर्वसत्त्वेभ्य उच्छिष्टमपि तज्जलमुद्धृतम् । इति पठित्वा पुष्करिणीजलं हस्ते गृहीत्वा जले क्षिपेत्।।२८३
ततो जलमातृभ्यो नम इति जलामातृः प्रपूजयेत् । त्रैलोक्ये यानि स्थानानि स्थावराणि चराणि च।।२८४
तेषामाप्यायनायैतज्जलमुत्सृज्यते मया । मात्रे तु कृतमेतत्ते जगदानन्दकारकम् ।।२८५

उस पर हांथ रख 'स्थिरोभवेति' ऐसा कहकर पश्चात् गन्ध पुष्प द्वारा उसकी अर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए। उसके अनन्तर दर्पण समेत चक्र अर्पित करना चाहिए, जो नाग दण्ड के मूल भाग पर स्थित, विद्युत की भाँति प्रकाशक, कर्ता, के दुःख स्वरूप, और हरि को प्रिया हैं। इस भाँति चक्र अर्चा सादर सम्पन्न करके शूल और नागों की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् उस ध्वजा को ऊपर फहराकर 'न नागेति' एवं गायत्रस्वेति' इन मंत्रों के दोदार पाठ पूर्वक दिक्पालों के लिए पाक क्रिया उरद, गुडमिश्रित भात (मीठाभात) की बलि स्वर्ण के पुष्प समेत सादर प्रदान करना बताया गया है, पुनः सहस्र की संख्या में धन किसी कुटम्बी ब्राह्मण को अर्पित करके घी, एवं हिरण्य समेत भोज्य तथा विधानानुसार ऊख की स्वास्तिका के समर्पण पूर्वक जल में मातृपूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए।२७१-२७६। मंथरा, मध्यभाग में वसुता, कांता, राक्षसी, पिशाचिका, नागिनी और नागपुत्रों के दिन पृथक्-पृथक् गुडमिश्रित लावादि की आहुति 'इन्द्राय स्वाहा' कहते हुए प्रदान करनी चाहिए। यह बृहत्पक्ष का विशेष विधान बताया गया है, मध्यम और कनिष्ठ पक्ष में 'बृहस्पतये' इन्द्राय, तुभ्यं, और देवलतायै स्वाहेति' इस भाँति कहकर आहुति प्रदान के अनन्तर प्रणीता संचालन करना चाहिए। कनिष्ठ पक्ष, महल, जलाशय एवं मन्दर उपवन और सेतु निर्माण में विशेषकर तोरण की ही विष्णु प्रतिमा बनायी जाती है, पूजा के पश्चात् सहस्र मंत्रों के पाठ पूर्वक इस स्तुति क्रिया का विधिवत् सम्पादन कर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए सर्वसत्त्वेभ्य उच्छिष्टमपि तज्जलमुद्धृतम् ऐसा कह कर पुष्करिणी जल कोहाथ में लेकर जल में डाल देना चाहिए। तदनन्तर 'जलमातृभ्यो नम इति' इस प्रकार कहते हुए जल मातृकाओं की पूजा करके इस भाँति विनम्र भाव प्रदर्शन करके कि तीनों लोक में जितने चर अचर स्थान कल्पित हैं, उनके वृद्धयर्थ इस जल का त्याग मैं कर रहा हूँ, इस प्रकार माता के लिए यह त्यक्त जल जगत् के लिए कल्याणप्रदायक हो।२७७-२८५। समस्त

शिवाय सर्वभूतानां सदा पाहि जलाशयम् । पिबन्तो ह्यवगाहन्तः सुखिनः सर्वजन्तवः ।।२८६
जलं विश्वोपकाराय कृतमेतन्मया सदा । कीर्तिस्तिष्ठतु मे देवाश्चिराय धरणीतले ।।२८७
त्वत्प्रसादान्महाभाग नागराज नमोऽस्तु ते । येऽत्र केचिद्विपद्यन्ते स्वकर्मफलभोजनाः ।।२८८
तेषां दोषैर्न लिप्येऽहं स्वं स्वं गममवाप्नुयात् । नारायणो जगत्प्राणः सर्वकामप्रदायकः ।।२८९
अपेया मातरः सन्तु जगतां वृक्षयोनयः । अपाम्पते रसायात्र यादसाम्नीश्वर प्रभो ।।२९०
वरुणास्यासने कीर्ति सनातन नमोस्तु ते । तत्तोयं निधिवद्दद्याद्दक्षिणार्थं द्विजन्मने ।।२९१
सुवर्णं रजतं दद्यादनड्वाहं पयस्विनीम् । दद्याद्धनुद्वयं पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ।।२९२
वह्निपूजां पुरस्कृत्य मन्त्रेण प्राशयेत्ततः । पितॄणां दापयेदर्घ्यं ततो देवं प्रसादयेत् ।।२९३
बिम्बमुद्रां पद्ममुद्रां नागमुद्रां प्रदर्शयेत् । वैश्वानरा इति ऋचा पूजां कृत्वा विवर्जयेत् ।।२९४
यस्ते प्राणाञ्जपन्पश्चात्प्रकुर्यादथ चन्दनम् । प्रदक्षिणं ततः पश्चात्तडागस्य शृणु द्विजाः ।।२९५
ब्राह्मणान्पुरतः कृत्वा वेदघोषं समुच्चरन् । महामङ्गलपूर्वेण प्रविशेद्भवनं सुधीः ।।२९६
ततो गृहार्चनं कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् । दीनानां कृपणानां च सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।२९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवग्रहपूजनविधानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

प्राणियों के कल्याणार्थ इस जलाशय की सदैव रक्षा कीजिए, जिससे इस जलाशय के जल का पान एवं स्नान करके सम्पूर्ण जीव सुखी हों। हे देववृन्द ! समस्त विश्व के उपकारार्थ मैंने इसका निर्माण कराया है, अतः इस भूतल पर मेरी कीर्ति चिरकाल तक स्थित रहे। हे महाभाग, नागराज ! आपकी ही अनुकम्पा वश मैं इस कार्य को सुसम्पन्न कराने में समर्थ हुआ, अतः (हे) नागराज तुम्हें नमस्कार है। अपने जन्मान्तरीय कर्मानुसार जिसका इस महारम्भ में निधन हो गया है, उनका दोषभागी मुझे न होना पड़े क्योंकि प्राणियों को अपने अपने कर्म फलों की प्राप्ति होती है नारायण जगत् के प्राण और समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं। संसार में वृक्ष योनि के जीव और माताओं के लिए यह तृप्तिकारक हो, हे जलपते, इस और चराचर के अधिनायक प्रभो, वरुण के आसन, मेरी कीर्ति स्वरूप, सनातन, तुम्हें नमस्कार है, उस जल को दक्षिणा की भाँति ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए।२८६-२९१। सुवर्ण, चाँदी, बैल, दूध देने वाली दो नौका दान करके पश्चात् ब्राह्मण को प्रसन्न करना चाहिए। अग्नि पूजन समाप्ति के उपरांत प्राशन कर्म, पितरों के लिए अर्घ्य, एवं देवों को प्रसन्न करना चाहिए। बिम्बमुद्रा, पद्ममुद्रा, और नागमुद्रा प्रदर्शन के अनन्तर 'वैश्वानरा इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक पूजन 'यस्ते प्राणान्' का जप, चन्दन लेप और प्रदक्षिणा करनी चाहिए। द्विजवृन्द ! सरोवर का (प्रतिष्ठा विधान) बता रहा हूँ, सुनो ! वेदपाठी ब्राह्मणों को, जिसकी वेदध्वनि द्वारा आकाश मंडल गूँज रहा हो, सम्मुख करके महामङ्गल कर्मानुष्ठान द्वारा विद्वान् को उस भवन मे प्रवेश करना बताया गया है। उसके उपरांत गृह अर्चन ब्राह्मण भोजन एवं दीन हीन, कायरों को प्रसन्न करते हुए सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।२९२-२९७

श्री भविष्यमहापुराण के मध्यम-पर्व के द्वितीय भाग में देवग्रह पूजन विधान वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

मध्यमविधानवर्णनम्

सूत उवाच

सप्ताग्निष्टोमको नाम ह्युत्तमः कथितो विधिः । मध्यमे मध्यमफलं कनिष्ठे तु कनिष्ठकम् ।।१
अधुना मध्यमं वक्ष्ये विधिं शास्त्रानुसारतः । यथाविभवयोगेन यत्कर्तव्यं नरेण वै ।।२
सद्योऽधिवासकल्पेन यूपादीनधिवास्य च । पूर्वस्मिन्नेव दिवसे दैवज्ञकथिते शुभे ।।३
मुहूर्ते कलशं स्थाप्य सङ्गृह्य गणनायकम् । स्थापयेत्प्रथमं यूपमापोहिष्ठेतिमन्त्रकैः ।।४
शन्नो देव्यास्ततः पश्चाद् गन्धद्वारेति गन्धकम् । श्रीसूक्तेन ततो दद्यात्पुष्पं दूर्वाक्षतं ततः ।।५
काण्डादिति च मन्त्रेण ततो धूपं निवेदयेत् । ये गृह्णामीति च ऋचा पूजायां स्थापयेत्ततः ।।६
विवाहविधिना सर्वं कार्यं नैवाधिवासनम् ।।७
सर्वमेव प्रयुञ्जीत तडागादिषु पण्डितः । अधिवास्य तडागादीनाचार्यादींश्च सर्वशः ।।८
सङ्गृह्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपैर्दीपैः सुशोभनैः । ततः प्रभातसमये नित्यं निर्वर्त्य शास्त्रतः ।।९
वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्यान्मातृपूजापुरःसरम् । अलङ्कृत्य यथाशक्ति आचार्यादींश्चरेद्बुधः ।।१०
शृणुयात्पश्चिमे भागे मण्डपस्य समीपतः । मध्यदेशे समुद्भूतं यज्ञपात्रं प्रशस्यते ।।११

अध्याय २०

मध्यमविधान का वर्णन

सूत जी बोले—सात भाँति के अग्निष्टोम नामक यज्ञ का विधान बता दिया गया है, जिसमें मध्यम विधान का मध्यम फल, और कनिष्ठ का कनिष्ठ फल होना बताया गया है । मैं इस समय शास्त्रोक्त रीति से मध्यमविधान का, जो अपनी अर्थशक्ति के अनुसार मनुष्यों का परम कर्तव्य है, व्याख्यान कर रहा हूँ, सुनो ! ज्योतिषियों द्वारा बताये हुए पूर्व दिन के किसी शुभ मुहूर्त में अधिवास कल्प और यूप आदि का अधिवासन कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए ।१-३। उस शुभ मूहूर्त में कलश स्थापन पूर्वक गणपति पूजन करके सर्वप्रथम उस स्तम्भ की प्रतिष्ठा एवं पूजन 'आपोहिष्ठेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए करना चाहिए, तदुपरांत 'शन्नो देवी' और 'गन्धद्वारेति' मन्त्रोच्चारण द्वारा गन्ध, श्री सूक्त से पुष्प एवं दूर्वा अक्षत, 'काण्डादिति' से धूप 'ये गृह्णामि' इस ऋचा के द्वारा पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए ।४-६। पुनः विवाहोक्त विधान द्वारा सभी अधिवासन कर्म की समाप्ति बतायी गयी है, अतः सर्वप्रथम पण्डित वृन्द को चाहिए कि सरोवर आदि की भी प्रतिष्ठा में सरोवर और आचार्य आदि का अधिवासन सुसम्पन्न करते हुए गन्ध, पुष्प, धूप, दीप सविधान प्रदान करना चाहिए । पुनः प्रातः समय में शास्त्र के आदेशानुसार नित्य कर्म की समाप्ति पूर्वक मातृपूजा पुरस्सर वृद्धि श्राद्ध सुसम्पन्न करना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि यथाशक्ति आचार्य आदि ब्राह्मणों को अलंकृत करके मण्डप के सन्निकट पश्चिम भाग में प्रतिष्ठित करना चाहिए, क्योंकि मध्य देश में उत्पन्न वह यज्ञ पात्र के लिए प्रशस्त बताया गया है ।७-११। अथवा उसी देश के

अथवा तत्र देशीयं गुरुं वा श्रोत्रियोद्भवम् । यज्ञे प्रधानद्वितीयमृत्विगाचार्यमेव हि ॥१२
वैतानकल्पे सम्पन्नं शक्तिकल्पपरायणम् । निगमज्ञानसम्पन्नं यज्ञे पात्रं प्रशस्यते ॥१३
पत्नीहीनमपुत्रं च श्यावदन्तमदन्तकम् । गणानां याजकं षण्ढं स्वगोत्रं परिवर्जयेत् ॥१४
अप्रधानेषु यज्ञेषु दानयज्ञेषु सत्तमाः । नियोजयेत्स्वगोत्रं च होमे नास्ति विचारणा ॥१५
कुशप्रतिकृतौ चापि ततः स्वर्गं स गच्छति । धनमादौ च संशोध्य ततो यज्ञं समाचरेत् ॥१६
अयाज्ययाजनोद्भूतं पल्लवं व्यवहारके । कूटसाक्ष्येण पल्लवे स्थाप्यहारकमेव च ॥१७
देवस्वं ब्राह्मणस्वं च लोहविक्रयणं धनम् । हविर्विक्रयणं कृत्वा पुत्रभार्यादिविक्रयी ॥१८
निन्दितानि पुराणेषु यत्कृतं तत्र तत्फलम् । यज्ञसद्मनि विप्रांश्च न श्राद्धान्भोजयेत्क्वचित् ॥
न दद्यात्तस्य दानं च यावन्नैव समापयेत् ॥१९
ब्रह्मन्नाचार्यमुख्योऽसि संसारात्त्राहि मां विभो । त्वत्प्रसादाद्गुरो यज्ञे प्राप्नुयां मानसेप्सितम् ॥२०
चिरं मे शाश्वती कीर्तिर्यावल्लोकाश्चराचराः । प्रसीद त्वं महेशान प्रतिष्ठाकर्मसिद्धये ॥२१
त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारक । ज्ञानामृतप्रदाचार्य विष्णुरूप नमोऽस्तु ते ॥२२
ब्रह्मासनसमुद्भूतं प्रकाशितदिगन्तरम् । त्वं च जाम्बूनदप्रख्य यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२३

निवासी जो श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हो गुरु या यज्ञ में प्रधान दूसरा ऋत्विजाचार्य प्रतिष्ठित करना चाहिए क्योंकि यज्ञ विधान का निष्णात विद्वान् शक्ति कल्प का पारायण करने वाला, तथा शास्त्र ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति यज्ञ का प्रशस्त पात्र बताया गया है ।१२-१३। पत्नीहीन, पुत्रहीन, काले दाँत, दाँतहीन, गणों का यज्ञ कराने वाला, नपुंसक, स्वगोत्री का उस कर्म में परित्याग करना चाहिए । उत्तमवृन्द ! छोटे-छोटे यज्ञ, दानयज्ञ, एवं हवन कर्मानुष्ठान में अपने गोत्र वालों की नियुक्ति में विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है ।१४-१५। यदि किसी की प्राप्ति न हो तो कुश की प्रतिमा स्थापित करने से उसी भाँति स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसलिए सर्वप्रथम धन के संशोधन पूर्वक यज्ञानुष्ठान आरम्भ करना चाहिए ।१६। अनुचित यज्ञानुष्ठान द्वारा उत्पन्न, व्यवहार में पल्लव ग्राही, क्रूर साक्षी (झूठी गवाही देने वाला), हठी और मिथ्याभाषी, देव, ब्राह्मण के धन का विक्रय करने वाला, लोहे का विक्रेता, हवि, पुत्र और स्त्री का विक्रय करने वाला पुराणों में निन्दित बताया गया है, अतः ये सभी यज्ञ पात्र के अयोग्य हैं क्योंकि जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है । यज्ञभवन में श्राद्ध सम्बन्धी ब्राह्मणों को भोजन न कराना चाहिए और जब तक यज्ञ की समाप्ति न हो जाये, उस ब्राह्मण को दक्षिणा दान भी न करना चाहिए ।१७-१९। हे ब्रह्मन् ! आप मेरे मुख्य आचार्य हैं, विभो ! इस संसार से मेरी रक्षा कीजिये हे गुरो ! आप के अनुग्रह से ही मेरी अभीष्ट सिद्धि हो सकेगी । चर अचर लोकों की जितने दिनों तक स्थिति निश्चित रहे, उतने दिन मेरी शाश्वती कीर्ति दृढ़ निश्चल बनी रहे । हे महेशान ! इस प्रतिष्ठा कर्म के सिद्धयर्थ आप का प्रसन्न चित्त होना आवश्यक है । समस्त प्राणियों के आप आदि (ज्येष्ठ) हैं, संसार सागर के तारने वाले, ज्ञान रूपी अमृत रूपी अमृत प्रदायक, आचार्य, आप विष्णु रूप हैं, अतः आप को नमस्कार है । ब्रह्मा के आसन से उत्पन्न दिग्दिगन्त को प्रकाशित करने वाले आप जाम्बूनद (सुवर्ण) की भाँति ख्याति प्राप्त हैं, यजुर्वेद तुम्हें नमस्कार है ।२०-२३। विकसित कमल की भाँति

प्रफुल्लकमलोद्भासि भास्वराम्बरभूषित । प्रकीर्णशास्त्रसम्भार विधिज्ञ प्रणतोऽस्मि ते ।।२४
ज्वलद्वैश्वानरप्रख्य धूमश्यामालितानन । षडङ्गवेदतत्त्वज्ञ ऋत्विङ् मोक्षं समाचर ।।२५
ततस्तूर्यादिघोषेण पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् । यजमानः सपत्नीकः प्रविशेद्यागमण्डपम् ।।२६
स्वस्थाने स्थापयेद्विप्रान्मखे धर्मैर्यथाक्रमम् । पूजयेद्गन्धमाल्याद्यैर्गन्धाद्यैः सुमनोहरैः ।।२७
यज्ञे सुवितते योऽसौ पूज्यते पुरुषः सदा । नारायणस्वरूपोऽसौ यज्ञं मे सफलं कुरु ।।२८
मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु येन मन्त्राः सुविस्तृताः । यजुर्वेदार्थतत्त्वज्ञ ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ।।२९
यज्ञेषु साक्षी सर्वेषु वेदवेदार्थतत्त्ववित् । ऋग्वेदज्ञ महाप्राज्ञ विश्वरूप नमोऽस्तु ते ।।३०
माङ्गल्यं कर्मणां नित्यं शाश्वतं ब्रह्मरूपिणम् । सिद्धये मम यज्ञस्य नमामि शिवरूपिणम् ।।३१
पालयन्ति दिशः सर्वा विदिशश्च तथा इमाः । दिक्पालरूपिणं विप्रं यज्ञसिद्धयै नमाम्यहम् ।।
पातयेद्दक्षिणं जानु दिकिरान्विकिरेत्ततः ।।३२
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्माविष्णुशिवाः सर्वे रक्षां कुर्वन्तु तानि वै ।।३३
वेद्यावेदीति मन्त्रेण पठेद्वेदिं प्रणम्य च । सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैरिमं मन्त्रमुदाहरेत् ।।३४
याजनं यजमानश्च श्रेयसा तत्र याजकः । इदमर्घ्यमिदं पाद्यं धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।३५
ऐशान्यां कलशे देवं सम्पूज्य गणनायकम् । ब्रह्माणं वासुदेवं च द्वितीयकलशे यजेत् ।।३६

प्रसन्न, कान्तियुक्त वस्त्र से भूषित, विस्तृत शास्त्र के संभार स्वरूप विधिवेत्ता, तुम्हें नमस्कार है । प्रदीप्त अग्नि की भाँति ख्यात, (यज्ञ के) धूम से श्याम मुख वाले छहों अंगों समेत वेद के मर्मज्ञ, ऋत्विक् को मोक्ष प्रदान कीजिये । इसके पश्चात् यजमान पत्नी सहित तुरुही आदि वाद्यों के घोष से ब्राह्मणों को सम्मुख करके उनके पीछे-पीछे यागमण्डप में प्रवेश करे ।२४-२६। यज्ञ भवन में अपने अपने स्थान पर धर्मानुसार उन्हें आसीन कर सौन्दर्य पूर्ण गन्ध, माला आदि वस्तुओं से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए ।२७। अत्यन्त विस्तृत इस यज्ञानुष्ठान में जिस पुरुष की सदैव पूजा होती रहती है, नारायण स्वरूप वह मेरे इस यज्ञ को सफलता प्रदान करने की कृपा करें । सभी श्रेष्ठ यज्ञों में जिसके द्वारा मंत्रों का विस्तार हुआ है, यजुर्वेद के अर्थ मर्मज्ञ, एवं उस ब्रह्मरूप को नमस्कार है । सम्पूर्ण यज्ञों के साक्ष्य स्वरूप, वेदों के अर्थ वेत्ता, ऋग्वेद के निष्णात विद्वान् महायज्ञ तथा हे विश्व रूप तुम्हें नमस्कार है । कर्मों के मांगलिक स्वरूप, नित्य, शाश्वत, मेरे यज्ञ की सिद्धि के लिए जो ब्रह्मरूप एवं शिव (कल्याण) रूप है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ । समस्त दिशाओं और विदिशाओं के पालन करने वाले दिक्पाल रूपी उस ब्राह्मण को अपनी यज्ञ सफलता के निमित्त मैं नमस्कार कर रहा हूँ ।२८-३२। पश्चात् दाहिने घुटने के बल बैठकर विकास दान करके इस प्रकार रहे कि तीनों लोकों में स्थित समस्त चर, अचर, जीव, ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर, ये सभी रक्षा करने की कृपा करें । पुनः 'वेद्यावेदीति' इस मंत्र के द्वारा वेदी के प्रणाम पूर्वक गन्ध पुष्प आदि वस्तुओं से उसकी पूजा करने के अनन्तर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए— यजमान, भाजक, एवं भाजन कर्म, ये सभी भेद सम्पन्न हों, तथा इस अर्घ्य, पाद्य, और धूप को स्वीकार करने की करें । ईशान कोण में स्थित कलश में गणनायक देव की विधिवत् पूजा करके दूसरे कलश में ब्रह्मा और वासुदेव की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए । भगवान् विष्णु समेत द्वारका पुरी रुप से यह

मण्डलं चैव विष्णुर्वै द्वारकारूपमास्थितः । तेन त्वां पूजयाम्यद्य स्वर्गप्राप्तिं कुरुष्व मे ॥३७
पूर्वादिदिक्षु कलशान्संस्थाप्य च त्रयं त्रयम् । अर्धपादसवर्णेन निर्मितं तारणं बुधः ॥३८
गङ्गामृत्तिकया युक्ते पल्लवे सन्निवेदयेत् । मन्दरं कल्पयित्वा तु गोपीनां च कुलेन वा ॥३९
कलशोपरि संस्थाप्य मन्दरं सम्प्रपूजयेत् । स्योना पृथिवीति मन्त्रेण गन्धपुष्पैः पृथग्विधैः ॥४०
(स्योना पृथिवीति मन्त्रस्य सुमन्त ऋषिर्जगती छन्दो हरो देवता मन्दरप्रीतये विनियोगः)
एवं दक्षिणादिग्भागे नवतोलकनिर्मितम् । प्रादेशमात्रलोहं तु रौप्येण गन्धमादनम् ॥
मृदा सङ्घटनैः पश्चात्कदाचन ऋचा यजेत् ॥४१
कदाचनेति मन्त्रस्य सूर्य ऋषिस्त्रिष्टुपृछन्दः सूर्यो देवता गन्धमादनप्रीतये विनियोगः ॥)
उत्तरे तोरणतोद्वेरङ्गुष्ठद्वयमानके । तोलकद्वयमानेन यवानां पिष्टकोपरि ॥४२
(आप्यायस्वेति मन्त्रस्य कर्दम ऋषिर्जगती छन्दः शची देवता सुपार्श्वप्रीतये विनियोगः ॥)
पूजयेत्पार्श्वकलशे धात्रादीन्पूर्वदिक्क्रमात् । श्रीसूक्तेनैव मन्त्रेण यजेद्विजयसप्तकम् ॥
पूजयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतादिना ॥४३
अम्बाअम्बिकेति मन्त्रस्य नलिन ऋषिर्गायत्री छन्दः शम्भुर्देवता जयप्रीतये विनियोगः ;
गायत्र्या पूजयेद्दक्षे पश्चिमं कलशद्वयम् ॥४४
(गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता विजयप्रीतये विनियोगः ॥)

मण्डल स्थित है, इसलिए मैं तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ, मुझे अवश्य स्वर्ग की प्राप्ति हो । तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में कलश स्थापन पूर्वक तीन-तीन कलशों का तोरण बनाना चाहिए, जिसका अर्धपाद एक वर्ण का हो क्योंकि विद्वानों ने ऐसा ही विधान बताया है । गंगा-मिट्टी समेत पल्लव उसमें प्रक्षिप्त करके गोपियों के कुल द्वारा मंदर की कल्पना (निर्माण) पूर्वक कलश पर स्थापन-पूजन करना चाहिए उनके पूजन में 'स्योनापृथिवीति' इस मंत्र द्वारा गंध पुष्प प्रदान करना बताया गया है ।३३-४०। 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र के सुमंत ऋषि, जगती छन्द, एवं हर देवता हैं, मन्दर के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । इसी भाँति दक्षिण दिशा की ओर आदेशमात्र परिमाण में नवतोले लोहे अथवा चाँदी द्वारा गंधमादन की प्रतिमा निर्माण करने के पश्चात् उसमें मिट्टी का लेप करने 'कदाचन' इस ऋचा से उसका पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । 'कदाचनेति' इस मंत्र के सूर्य ऋषि, त्रिष्टुपृछन्द, सूर्य देवता हैं, गंध मादन के प्रसन्नार्थ यह विनियोग प्रयुक्त होता है । तोरणादि के उत्तर भाग में दो अंगुष्ठ के परिमाण में दो तोले की निर्माण की हुई प्रतिमा को जवा के पीठी बने हुए आटे के ऊपर उसे स्थापित करके 'अप्यायस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पार्श्व कलश पर धृत आदि की पूजा पूर्वादि क्रम से सुसम्पन्न करनी चाहिए । 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के कर्दम ऋषि, जगती छन्द, शची देवता हैं, सुपार्श्व में प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उपयोग करना चाहिए । श्रीसूक्त के उच्चारण करते हुए उत्तमभक्ति पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षतादि से विजय सप्त की पूजा करनी चाहिए ।४१-४३। 'अम्बाअम्बिकेति' मंत्र के नलिन ऋषि, गायत्री छन्द, एवं शंभु देवता हैं, जप के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । दक्षिण और पश्चिम में स्थापित दोनों कलशों की अर्चा गायत्री मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । गायत्री मंत्र के विश्वामित्र ऋषि, तथा

भद्रं चैव सुभद्रं च प्रयतः संयजेद्बुधः ॥४५
(उत्तरे युग्मकलशे मनोन्ना इति मन्त्रस्य अन्तक ऋषिर्बृहती छन्दो निर्ऋतिर्देवता भूतप्रीतये विनियोगः॥)
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासं कृत्वा विधानतः। विधायार्घ्यादिकं चैव धर्मादिमण्डले यजेत् ॥४६
मध्ये आधारशक्त्यादीन्वरुणं मध्यतो यजेत्। पूर्वादिक्रमतश्चैव इन्द्रादीन्कुलदेवताः ॥४७
पार्श्वद्वये कर्णिकायाः ब्रह्माणं चाप्यनन्तकम्। स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथोक्तैश्च बलिभिर्गन्धपुष्पकैः ॥४८
इन्द्राभिषेकमन्त्रस्य वाद्यं गान्धाररागकम्। अग्नेस्तेजोसीति वाद्यं रागं चैव वराटकम् ॥४९
घनकण्टकमस्यापि वाद्यं रागं तु गुर्जरम्। रक्षोधिपस्य सङ्ग्रामं वैतालं वाद्यमुच्यते ॥५०
नाटकाख्यं तथा रागं वरुणस्यापि मे शृणु। वाद्यं राज्याभिषेकाख्यं रागो वसन्तसंज्ञकः ॥५१
ईशस्य नन्दिघोषाख्यं वाद्यं रागोऽथ कामदः। सुवर्णं दुन्दुभिर्वाद्यं ब्रह्मणः कथितो बुधैः ॥५२
रागो देवी वसन्तश्च अनन्तस्य निबोध मे। वाद्यं गान्धारताराख्यं रागश्चाङ्गारवातकः ॥५३
सोमे घोषे भवेद्वाद्यं जलेशस्य महात्मनः। मालवाख्यो भवेद्रागः पत्राग्रेषु महानपि ॥५४
स्वैः स्वैर्धर्मैश्च सङ्गृह्य दक्षिणे पृथिवीं यजेत्। स्योना पृथिवीति मन्त्रेण उपचारैः पृथग्विधैः ॥५५
मण्डपस्योत्तरे भागे महादेवं प्रपूजयेत्। नमो वृक्षेभ्य इत्यादि नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥५६
(महादेवं द्विभुजं डमरुशूलधरमुमासहितं ध्यात्वा। नमो वृक्षेभ्य इति मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दश्चन्द्रो देवता चन्द्रप्रीतये विनियोगः॥) गन्धपुष्पादिभिर्भक्त्या भूतानि परितो यजेत् ॥५७

सविता देवता हैं, विनय के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है। विद्वान् को भद्र और सुभद्र की सप्रयत्न अर्चा करनी चाहिए। 'मनोन्ना' इस मंत्र के अंतक ऋषि, बृहती छन्द, और निर्ऋति देवता हैं, भूत के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है। पश्चात् भूत शूद्धि तथा विधान पूर्वक न्यास करके पुनः अर्घ्य विधान के अनन्तर धर्मादिमण्डल सहित देवों की अर्चा करना बताया गया है।४४-४६। मध्य भाग में आधार शक्ति आदि, और वरुण तथा पूर्व आदि क्रमशः इन्द्रादि कुल देवों की आराधना करना बताया गया है। कर्णिका के दोनों पार्श्व भाग में ब्रह्मा, और अनन्त की अर्चा उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक बलि एवं गन्ध पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। इन्द्राभिषेक मंत्र प्रयोग में गांधार राग का वाद्य, अग्नेस्तेजोऽसीति' इस मंत्र के प्रयोग में वराटक राग का वाद्य, 'घनकंटक के प्रयोग में गुर्जर राग का वाद्य, और राक्षस नायक के संग्राम में वैताल राग का वाद्य बताया गया है।४७-५०। वरुण एवं राग का नाटक मैं बता रहा हूँ, सुनो, ! उनका राज्याभिषेक नामक वाद्य और वसंत राग है, उसी भाँति ईश (शिव) का नंदिघोष नामक वाद्य और कामद राग, एवं ब्रह्मा का दुंदुभि वाद्य तथा सुवर्ण राग विद्वानों ने बताया है। अनन्त का देवी राग, वसंत वाद्य, गांधार तारा वाद्य और अङ्गार वातक राग, जलेश (वरुण) का सोम घोष वाद्य, मालव राग है। अपने-अपने धर्मानुसार इनके संग्रह करके 'स्योना पृथिवीति' मंत्र के उच्चारण द्वारा पृथक्-पृथक् उपचारों से पृथिवी पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। मण्डप के उत्तरीय भाग में प्रतिष्ठित महादेव की सविधि पूजा करनी चाहिए 'नमो वृक्षेभ्य इति' इस मंत्र के द्वारा नैवेद्य अर्पित करना बताया गया है। दो भुजा, सुमेरु, शूल धारण किये, एवं उमा महादेव का ध्यान करके चारों ओर भूतों से घिरे हुए उन्हें भक्ति पूर्वक गन्ध पुष्पादि प्रदान करना चाहिए। 'नमो वृक्षेभ्य इति' इस मंत्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, और

वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः । अस्मात्प्रयान्तु मे स्थानाद्ये चान्ये विघ्नकारकाः ॥५८
मधुयुक्तं पायसान्नं वरुणाय निवेदयेत् । पीतं चालोहितं कृष्णं शुक्लं कृष्णं च धूम्रकम् ॥५९
पीतं शुक्लं तथा चित्रं श्वेतमन्नं यथाक्रमम् । बलयस्तु दिगीशानां ग्रहाणामपि ताञ्छृणु ॥६०
क्षीरौदनं ग्रहेशाय शुक्लान्नं शशिने स्मृतम् । लोहितान्नं च भौमाय बुधाय क्षीरषाष्टिकम् ॥६१
पीतमन्नं देवगुरोः शुक्रस्य सिततन्डुलम् । मांसौदनं शनेर्ज्ञेयं राहोश्च कृष्णनक्तकम् ॥६२
धूम्रवर्णं तु ताम्रं तु भौमस्य क्षीरषाष्टिकम् । पिष्टकान्नं शिवस्योक्तं भूतानां माषभक्तकम् ॥६३
एवं बलिं विधायाथ अग्रे कुम्भं निवेशयेत् । प्रदेशद्वयङ्गुलं नाम अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥६४
बह्वङ्गुलकं विन्यस्य विन्यस्य कलशोपरि । निशावाञ्छितसूत्रैश्च संवेष्टय पिहितं तथा ॥६५
शरावं च पुनर्दद्याद्वर्धनीं प्रतिपूजयेत् । अस्त्राय फडिति मन्त्रेण ध्यात्वा देवं जलेश्वरम् ॥६६
सूक्तं यजेद्यथाशक्ति शतमष्टोत्तरं जपेत् । कुण्डेषु विन्यसेन्नागानष्टौ पूर्वादिषु क्रमात् ॥६७
अनन्तं पूजयेत्पूर्वं मानेनाङ्गुलमात्रकम् । निर्मितं काञ्चनेनैव सप्तवर्तिकया सुधीः ॥६८
राजतं वासुकिं नागं यजेत्पत्रान्तरे पुनः । पादमात्रेऽपि चाङ्गुष्ठमात्रं ताम्रस्य भक्ष्यकम् ॥६९
पञ्चाङ्गुलं तोलिकया लौहं कर्कोटकं पुनः । वर्तिकाभिः षोडभिर्बृहत्पर्वप्रमाणकम् ॥७०

चन्द्र देवता हैं, चन्द्रमा के प्रीत्यर्थ यह विनियोग बताया गया है । पुनः वेताल, पिशाच, राक्षस, सरीसृप, अथवा और जो कोई विघ्न करने वाले हैं, वे इस स्थान से अन्यत्र पधारने की कृपा करें । उपरांत शहद समेत खीर वरुण देव के लिए प्रदान कर पीत, रक्त वर्ण, कृष्ण, शुक्ल, पुनः कृष्ण, धूएँ के वर्ण के समान, पीत, शुक्ल, चित्र, एवं श्वेत अन्नों को क्रमशः दिक्पालों के लिए बलि बताया गया है, तदनन्तर ग्रहों के लिए बता रहा हूँ, सुनो ! ग्रहाधिपति (सूर्य) के क्षीर भात, चन्द्र के लिए श्वेत वर्ण के अन्न, भौम के लिए रक्तवर्ण, बुध के लिए क्षीर और साठी चावल, बृहस्पति के लिए पीत वर्ण के अन्न, शुक्र के लिए श्वेत चावल, शनि के लिए मांस भात, राहु के लिए कृष्ण वर्ण के अन्न बलि रूप में प्रदान करने चाहिए । भौम के लिए विशेषकर धूए, एवं ताँबें के वर्ण की भाँति अन्न और क्षीर-साठी चावल, शिव के लिए पीठी, और भूतों के लिए पका हुआ उरद बलि रूप में प्रदान करना चाहिए । इस भाँति विधान पूर्वक बलि प्रदान करने के उपरांत सम्मुख घर में प्रवेश करना बताया गया है, उसमें प्रदेश दो अंगुल का और वह एक सहस्र आठ अंगुल अथवा अनेक अंगुल का होता है, कलश के ऊपर उसे रखकर निशा वांछित सूत्र द्वारा उसके मुख को ढाँक कर और बाँध कर उसके ऊपर शराव (कसोरा) रखकर वर्धनी की भलीभाँति पूजा करनी चाहिए । 'अस्त्राय फट्' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक जलेश्वर देव का ध्यान पूजन करने के उपरांत यथा शक्ति सूक्त पाठ और एक सौ आठ बार जप करके पूर्वादि के क्रम से कलशों आठों नागों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।५९-६७। पूर्व की ओर एक अंगुलि प्रमाण की अनन्त की प्रतिमा का जिसका निर्माण विद्वद्वर द्वारा सुवर्ण की सात बत्तियों (शलाका) से किया गया हो, पूजन सुसम्पन्न करने के अनन्तर पत्रान्तर में स्थित वासुकी नाग की अर्चा सविधान समाप्त करनी चाहिए । चरण अथवा अंगूठे की भाँति ताँबे की मुख समेत दाढ़ (विवस्वान) का निर्माण करके पाँच अंगुल प्रमाण में लोहे की कर्कोटक (नाग) की प्रतिमा में जिसमें अंगुली के लम्बे पार की भाँति सोलह बत्तियाँ लगायी गयी हों, पूजन

शङ्खपालं कुशमयमर्धपादेन निर्मितम् । अङ्गुष्ठमात्रं रक्तेन नागं तालकमात्रकम् ॥७१
अङ्गुष्ठे तोलकं पश्चात्पद्मनागं पुनर्यजेत् । तोलकार्धप्रमाणेन अङ्गुलं परिमाणतः ॥७२
कुर्याच्छैलमयं सम्यग्यथावल्लक्षणान्वितम् । महापद्मस्य वै तस्य पूर्वमानेन निर्मितम् ॥७३
ध्यात्वानन्तं चतुर्बाहुं शुक्लसप्तफणान्वितम् । दक्षिणोर्ध्वकरे शङ्खमधिचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥७४
वामोर्ध्वे तु गदापद्मं मध्यस्थाने व्यवस्थितम् । सर्वालङ्कारसंयुक्तमेवं ध्यात्वा यथाविधि ॥७५
सहस्रशीर्षेति मन्त्रेण पूजयित्वा बलिं हरेत् । लाजैश्चतिलसंमिश्रैः क्षीरयुक्तैः पृथग्विधैः ॥७६
चतुर्विधं तथा श्वेतं सर्वालङ्कारसंयुतम् । स्वकीयं प्रजपेत्तत्र आप्यायस्वेति वै ऋचा ॥७७
पिण्याकं नागजिह्वां च तथा सर्जरसं दधि । बलयस्तस्य निर्दिष्टास्तक्षकं लोहितं यजेत् ॥७८
पद्मं टङ्कं दधानं च भुजाभ्यां नागसत्तमम् । मनोन्ना इति मन्त्रेण आज्यं सोमो बलिं हरेत् ॥७९
कर्कोटकं च द्विभुजं पीतवस्त्रधरं यजेत् । पञ्च नद्य इति ऋचा विष्णुक्रान्ता बलिर्भवेत् ॥८०
पीतवस्त्रं च कुलिशं याजयेत्तु चतुर्भुजम् । भुजाभ्यामूर्ध्वभागे तु रक्तपद्मधरं हरिम् ॥८१
शर्करा कुष्ठकं चैव बलिस्तस्य प्रकीर्तितः । द्विभुजं शङ्खपालं च शङ्खाभं शङ्खधारिणम् ॥८२
पद्मासनस्थं पद्माभ्यां हस्ताभ्यां च वरं विभुम् । ध्रुवक्षिति ध्रुवोसीति मन्त्राभ्यां पूजयेत्पृथक् ॥८३
घटौदनं भृङ्गराजं पद्मं च वलयस्तयोः । स्वगृह्योक्तेन विधिना संस्थाप्याग्निं कुशकण्डिकाम् ॥८४
कृत्वा आज्यस्य संस्कारं वारुणं श्रपयेच्चरुम् । जुहुयादष्टबिल्वानि दिगीशानां घृतेन वै ॥८५

सुसम्पन्न करके अर्धपाद के समान कुशमय शंखपाल नाग, रक्तवर्ण एवं अंगूठे के समान नाग, जो तालमात्र के होते हैं, और पश्चात् तोले के प्रमाण से अंगूठे के समान पद्मनाग और एक अंगुल के परिमाण में आधे तोले की शैल की बलि सहायक प्रतिमा का जो उनके समस्त लक्षणों से युक्त हो, पूजन सुसम्पन्न करके चार भुजाएँ, शुक्लवर्ण के सात फणों से युक्त ऊपर के दोनों दाहिने हाँथों में शंख चक्र से विभूषित और बाँयें दोनों हाँथों में गदा पद्म धारण किये, मध्यस्थान के आसन पर प्रतिष्ठित समस्त अलंकारों से अलंकृत उस अनन्त भगवान् का विधान पूर्वक इस भाँति ध्यान करके उपरांत 'सहस्रशीर्षेति' मंत्रोच्चारण करते हुए पूजन एवं लाजा (लावा), तिल मिश्रित क्षीर की चार प्रकार की श्वेत तथा समसाधरण बलि पृथक् विधानों द्वारा प्रदान कर 'आप्यायस्वेति' इस ऋचा का जप करना चाहिए ।६८-७७। पिण्याक (अलसी की खली), नागजिह्वा, सर्जरस (साखू का रस) और दही, यही उन सब के लिए बलि बताया गया है। रक्त वर्ण के तक्षक की प्रतिमा का पूजन करने के उपरांत अपने दोनों हाथो में कमल और रंक लिये हुए उस नाग श्रेष्ठ के लिए 'मनोन्ना इति, इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घी की बलि प्रदान करनी चाहिए पश्चात् दो भुजा, पीत वस्त्र धारण किये उस कर्कोटक की पूजा और 'पञ्च नद्या इति' इस ऋचा द्वारा विष्णुक्रान्ता की बलि प्रदान करना चाहिए ।७८-८०। पीतवस्त्र, कुलिश, और ऊपर के दोनों हांथों में रक्त कमल धारण किये उस चार भुजा वाले हरि नारायण का पूजन सुसम्पन्न करके शक्कर और कुष्ठक की बलि उन्हें सादर समर्पित करना चाहिए । दो भुजा शंख की आभा, शंखधारी, हाँथों में कमल लिये कमलासन पर आसीन उस उत्तम विभु शंखपाल की अर्चा 'ध्रुवक्षिति ध्रुवोऽसीति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पृथक्-पृथक् सुसम्पन्न करके घट भात, भृंगराज और कमल की बलि उन्हें सादर प्रदान करने के अनंतर अपने गृह्योक्त विधान द्वारा अग्नि स्थापन एवं कुश कण्डिका करके घी और हवि की (पंच) वारुणी तथा

एकैकामाहुतिं दद्याद्ग्रहाणां च त्रयंत्रयम् । सुसमिद्भिर्घृतमधुपयोभिर्मिश्रितैः पृथक् ॥८६
पलाशसमिधं पश्चात्प्रतिष्ठामाहुतित्रयम् । शिवस्य परमान्नेन जुहुयादष्टसङ्ख्यया ॥८७
मध्वाज्यगुडमिश्राभिर्लाजाभिर्जुहुयात्पृथक् । लाजान्यथोक्तं वितरेदेकैकामाहुतिं क्रमात् ॥८८
स्थालीपाकस्य जुहुयादेकैकामाहुतिं पुनः । वरुणं च समुद्दिश्य रुद्रं सर्वं पृथक्पृथक् ॥८९
वास्तोष्पतय इति मन्त्रेण पञ्चगव्यो भवेत्ततः । स्योनापृथिवीतिमन्त्रेण व्रीहिमृत्तिकया पुनः ॥९०
वृषान्न इति मन्त्रेण कया न इति वै पुनः । कुशमूलमृदा चैव चतुष्पथमृदा तथा ॥९१
इमा रुद्रेति मन्त्रेण श्रीश्चेति ऋचा पुनः । पद्मखण्डस्य च मृदा स्नापयेत्सुसमाहितः ॥९२
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण तथा पुष्पोदकेन च । तीर्थोदकेन कृष्णेन त्रिरक्तेन त्रिशीतकैः ॥९३
पञ्चरक्तेन रक्तानां मृदा कैश्च कुशोदकैः । स्वर्णतोयैश्च कलशैरष्टोत्तरशतेन तु ॥९४
तेजसैर्मार्त्तिकैश्चापि अष्टाविंशतिभिस्तथा । यथाशक्ति तु संस्थाप्य कुङ्कुमैश्चन्दनैरपि ॥९५
अन्नं लिप्य ततो मृद्भिर्दद्याच्चैव यथाक्रमम् । सुरासुरेति च ऋचा वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥९६
ध्वजं च धनुनागेति गन्धद्वारेति गोमयम् । धूरसीति ततो धूपं होत्रे चाहुतिदीपकम् ॥९७
सिन्धोरीति च सिन्दूरं स्वभावे रक्तकं तथा । मालतीकुसुमैः कृत्यैर्नागान्संस्थापयेत्ततः ॥९८
धाराभिः शतपुष्पाभिर्गन्धतोयादिभिस्तथा । अथवाश्वत्थपत्रेषु वटपत्रेषु वा सुधीः ॥९९
रोचनाकुङ्कुमैर्वापि संलिख्य तत्र पूजयेत् । प्रक्षिपेत्तत्र मुक्ता हि कलशेषु विनिक्षिपेत् ॥१००

आठ बेल की आहुति प्रदान करनी चाहिए इस भाँति दिक्पालों के लिए घी की एक एक और ग्रहों के लिए तीन-तीन आहुति समिधा की प्रज्वलित अग्नि में घी, शहद, एवं क्षीर मिश्रित पदार्थों को पृथक्-पृथक् प्रदान करने के उपरांत पलाश की समिधा में प्रतिष्ठा के निमित तीन आहुति प्रदान करनी चाहिए तथा शिव के लिए उत्तम अन्न की आठ आहुतियाँ । शहद, घी, एवं गुडमिश्रित लाजा (लावा) की पृथक्-पृथक् एक-एक आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए ।८१-८८। पुनः वरुण और रुद्र के लिए बने हुए पाक में से एक-एक आहुति प्रदान कर वास्तोष्पतय इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पञ्चगव्य से, 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र से धान्य की मिट्टी, वृषान्न इति' और 'कयान इति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक कुश के मूल भाग एवं चौराहे की मिट्टी, तथा 'इमारुद्रेति और 'श्रीश्चतेति' इस ऋचा का उच्चारण करते हुए पादखण्ड की मिट्टी से सावधान होकर स्नान करना चाहिए। पुनः 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र से पुष्पोदक तीर्थोदक कृष्ण, तीन रक्त और तीन शीतकारक, पांच रक्त वर्ण, रक्तवर्ण की मिट्टी, कुशोदक, सुवर्ण जल से, इस प्रकार एक सौ आठ कलश, एवं सुवर्ण और मिट्टी के अट्ठाइस कलशों के जल से स्नान कराने के उपरांत यथाशक्ति कुंकुम और चन्दन का अनुलेपन करके अन्न और मिट्टी के भी क्रमशः लेप के पश्चात् 'सुरासुरेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक दो वस्त्रों से उसे आवेष्टित करना चाहिए। पुनः 'धनुनागेति' इस मंत्र से ध्वज, गंधद्वारेति' से गोमय 'धूरसीति' से धूप, और होता के लिए आहुति दीपक 'सिन्धोरीति' से सिंदूर' स्वभावानुसार रक्तक और मालती पुष्पों द्वारा नागों को स्थापित करके सात पुष्पों और गन्ध तोय से अथवा पीपल या बरगद के पत्ते पर रोचना कुंकुम से उनकी प्रतिमा बनाकर सविधान पूर्वक पूजन करना चाहिए, पश्चात् उसे कलश में डाल देना बताया गया है ।८९-१००।

मण्डपस्योत्तरे देशे शय्यां निर्माय शोभनाम् । राजतं वारुणं तस्यां पादमात्रेण निर्मिताम् ।।१०१
अङ्गुष्ठमात्रं संस्थाप्य ततः पुष्करिणीमपि । स्वर्णपादेन घटितां चतुरस्रां सुशोभनाम् ।।१०२
अङ्गुष्ठमात्रं सम्पूज्य वरुणाय निवेदयेत् । यथाशक्ति ततो गां च सम्भवे पञ्चविंशतिः ।।१०३
सुवर्णं राजतं चैव धान्यं वासो वराटकम् ।।१०४
नागयष्टिं समादाय किञ्चिदुत्तरगां तथा ।।१०५
ततोक्षताय भौमाय कृत्वा चाज्याहुतित्रयम् । लाजान्दधिसमायुक्तं घृतं मधुगुडं तथा ।।१०६
क्षीरं च पिष्टकं चैव शष्कुलीगन्धपुष्पकम् । पञ्चामृतं पञ्चरत्नं गर्भे दद्यात्समाहितः ।।१०७
आचार्यो यजमानेन सुसन्नद्धैश्च भृत्यकैः । गङ्गाजलेशयोर्मध्ये पञ्चघोषपुरः सरम् ।।१०८
अवाप्य च ततो यष्टिं स्थिरो भवति वैरिणा । ध्रुवं ध्रुवेति मन्त्रेण यष्टिमामन्त्रयेत्ततः ।।१०९
यज्ञप्रियासि देवि त्वं सर्वविघ्नविनाशिनी । पाहि मां सर्वपापेभ्य आत्मना त्वं स्थिरीभव ।।११०
इत्यामन्त्र्य यजेच्चैव गायत्रीं च पठेत्ततः । वनस्पतेति विडवामिति मन्त्रं जपेत्पुनः ।।१११
पुनरागत्य तां वेदिं निर्मथ्य वरुणं प्रभुम् । तथा पुष्करिणीं चैव वर्धनीं कलशोदरैः ।।११२
अनिष्टं मार्जयेन्नागानुद्धृत्य कलशं तथा । पाषाणाभ्यन्तरं कृत्वा गोमयैः परिलिप्य च ।।११३
वरुणं पुष्करिण्यां च जलमध्ये विनिक्षिपेत् । नमोस्त्विति च मन्त्रेण बलिं दद्याच्च पायसम् ।।११४
निर्मन्थेत्तत्र यो नागः स्थापयेत्तु यथाविधि । श्रावयेत्तमिमं मंत्रमत्र सन्निहितो भव ।।११५

मण्डप के उत्तर प्रदेश में सौन्दर्य पूर्ण शय्या का निर्माण करके पादमात्र चाँदी की बनी हुई वरुण की प्रतिमा और अंगुष्ठ मात्र की पुष्करिणी की प्रतिमा, जिसके चौकोर निर्माण में सुवर्ण पाद से पूर्ति की गयी हो, उसे (शय्या) पर स्थापित करके पूजन के उपरांत उस पुष्करिणी की प्रतिमा को वरुण के लिए समर्पित करना चाहिए। पश्चात् यथाशक्ति सम्भव हो तो पच्चीस गाय अथवा एक ही गाय, सुवर्ण, चाँदी, धान्य, वस्त्र कौड़ी आदि प्रदान के उपरांत उस नागयष्टि और उत्तरगा को ग्रहण कर भौम के लिए तीन आहुति देने के उपरांत लाजा (लावा) दही समेत घी, शहद, रुद्र, क्षीर, पीठी, पूड़ी, गन्ध, पुष्प, पञ्चामृत, और पञ्चरत्न प्रदान करना चाहिए। आचार्य सन्नद्धभृत्यों के साथ यजमान समेत गंगा और जलेश के मध्य भाग में पाँच ध्वनियों से पूर्ण होकर उस यष्टि को स्थापित करके 'ध्रुवं ध्रुवेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे आमंत्रित करना चाहिए। पुनः हाथ जोड़कर 'देवी ! तुम यज्ञ की प्रिया हो, और समस्त विघ्नों का उन्मूलन करने वाली हो, अतः यहाँ अपनी दृढस्थिति कर सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा करो' इस प्रकार उसे आमंत्रित कर उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत गायत्री, 'वनस्पतेति विडवामिति' इन मंत्रों का जप करना चाहिए।१०१-१११। पश्चात् उस वेदी पर आकर कलश के भीतर वरुण और पुष्करिणी का मंथन करके अनिष्ट शमन और नागों के उद्धारपूर्वक कलश को पाषाण के अभ्यन्तर स्थापित कर गोमय (गोबर) से उसके चारों ओर लेप करके वरुण और पुष्करिणी को जल में डाल देना चाहिए, तदुपरांत 'नमोस्त्विति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक खीर की बलि उन्हें प्रदान कर उस निर्मन्थन किये गये नाग का सविधान स्थापन करके 'पुत्रसंन्निहितो भवेति' ऐसा कहकर हे नाग ! आप इसके स्वामी हैं, इसलिए इन जनों की रक्षा कीजिए, इस भाँति विनम्र प्रार्थना करके 'गायत्रेण त्वा

अत्र स्वामी भवान्नाग रक्षणीयस्त्वया जनः । गायत्रेण त्वा छन्दसामीमन्त्रं संश्रावयेत्पुनः ॥११६
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः पुरतो निक्षिपेद्दिशि । पिधाय नागराजानमृचाभ्यां परिसूत्रकैः ॥११७
सन्निरुद्धयाशु संस्थाप्य बलिं दद्याद्विधानतः । लाजौदनं मनस्तस्य यज्जाग्रत ऋचा जपेत् ॥११८
एवं भूरिति मन्त्रैः स्वैः स्वैरेव तु पृथग्विधैः । स्वासु दिक्षु च संस्थाप्य पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥११९
पूर्वभागे पुष्करिण्यां हरिताभं सवज्रकम् । हलग्रहीत मन्त्रेण न्यस्य लाजाहुतिं कुले ॥१२०
प्रातारर्मिति मन्त्रेण अग्नौ विन्यस्य मौक्तिकम् । मनः शिलां प्रवालं च अग्निमीडेति सम्पठेत् ॥१२१
वैश्वानरेण मन्त्रेण पठेल्लाजाहुतिं पुनः । दद्याद्ये ते शतमन्त्रेण पश्चिमे काटिकं न्यसेत् ॥१२२
शालिबीजेन सहितं कया न इति मन्त्रकम् । वरुणस्यो इति मन्त्रेण दद्यादष्टादशाहुतीः ॥१२३
उत्तरे रोचनां कन्यां तथैव गौरसर्षपम् । कुङ्कुमेन समायुक्तं कुविदण्डमृचा पठन् ॥१२४
विन्यस्य तेन मन्त्रेण प्रदद्यादाहुतिं पुनः । ऐशान्यां मन्द्रकं रङ्गमीशावा इति संपठन् ॥१२५
संस्थाप्याज्याहुतिं दद्यात्तमीशान ऋचा पुनः । आसद्यैर्मन्त्रसंयुक्तैर्देवं नारायणं यजेत् ॥१२६
वरुणात्मकं ततो ध्यात्वा ततो नीराजनं पठेत् । जानुभ्यामवनिं गत्वा पठेज्ज्ञानामृतं स्तवम् ॥१२७
धर्मो वंशं ततः कुर्यादुत्सर्गान्तो विधीयते । ततो देवीं पुनः कृत्वा दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥१२८
सर्वसत्त्वोपकाराय समुत्सृजेत्तु वै जनम् । उत्सृष्टं सर्वसत्त्वेभ्यो दृश्यते जलमूर्जितम् ॥१२९
रमन्तीं सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः । वरुणं च ततो देवं पुष्करिण्यां च निक्षिपेत् ॥१३०
जले वरुणमन्त्रेण मत्स्यादीन्प्रक्षिपेत्ततः । पक्षिणश्च शुभांस्तत्र भेकं कूर्मं च कर्दमम् ॥१३१

छन्दसामी' इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। पुनः गन्ध पुष्प आदि से उसकी अर्चा सुसम्पन्न करके सम्मुख दिशा में उसका प्रक्षेप तथा ऋचाओं द्वारा नागराजाओं को ढँककर और सूत्रों से चारों ओर बाँधकर उन्हें विधान पूर्वक बलि रूप में लावा भात प्रदान करके 'यज्जाग्रत इति' इस ऋचा का पाठ करे। इस प्रकार पृथ्वी आदि का अपने अपने मंत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् अपनी अपनी दिशाओं में प्रयत्न पूर्वक स्थापन पूजन करना चाहिए।११२-११९। पुष्करिणी के पूर्वभाग में वज्रसमेत उस हरिद्वर्ण की 'हलग्रहीत' मन्त्र द्वारा कुल में स्थापित लावा की आहुति देनी चाहिए, पश्चात्, अग्नि में उस मुक्ता को रखकर मनः शिला और प्रवाल भी साथ में लेकर 'अग्नि मीलेति- मंत्र का उच्चारण करते हुए अग्नि के मंत्र से लावा की आहुति पुनः प्रदान करनी चाहिए। तदुपरांत 'ये ते शतं' मन्त्र द्वारा पश्चिम में कटिवस्त्र प्रदान के उपरांत शालिबीज समेत 'कयानेति' 'वरुणस्यो' इति इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अठ्ठारह आहुति प्रदान करके उत्तर भाग में स्थित गोरोचन, कन्या, श्वेत वर्ण की राई और कुंकुम समेत उन्हें 'कुविदंडमिति' इस ऋचा के पाठ पूर्वक स्थापित कर पुनः आहुति प्रदान करना चाहिए। ईशान कोण में स्थित मंडक की 'रंगमीशावा इति' ऐसा उच्चारण करते हुए स्थिति करके 'तमीशान इति' इस ऋचा को पढ़ते हुए घी की आहुति प्रदान करनी चाहिए। पश्चात् 'आसद्यैरिति' मंत्र के उच्चारण से नारायण देव की अर्चा सुसम्पन्न करके वरुण का ध्यान पूर्वक उन्हें नीराजन प्रदान करना चाहिए, अनन्तर स्तोत्र द्वारा आराधना करे—उत्सर्ग के अन्त में धर्म, वंश की अभिवृद्धि कामना करते हुए देवी के लिए तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिए—आप समस्त जीवों के उपकारार्थ इस मनुष्य की (मेरी) रचना की है, (इसीलिए उसने) सर्वप्राणियों के हितार्थ इस जल को अर्पित किया है, सम्पूर्ण प्राणियों को इस जल में स्नान एवं पान कराने वाली उस देवी को नमस्कार है, इस प्रकार प्रार्थना के उपरांत वरुण देव

शैवालं प्रक्षिपेच्चैव दक्षिणां तदनन्तरम् । सुवर्णं धान्यरत्नं च आचार्याय पृथग्ददेत् ।।१३२
ऋत्विग्भ्यश्च पृथग्दद्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्राह्मणेभ्यो गायनेभ्यो वसुभ्यश्च पृथक्पृथक् ।।१३३
नित्यं समाप्य विधिवद्दद्यात्पूर्णाहुतिं पुनः । दद्यादर्घ्यं च सूर्याय हस्तास इति सञ्जपन् ।।१३४
ततः प्रदक्षिणावर्तं संवेष्टच क्षीरधारया । प्रासादपक्षे प्रासादमारामे अथ मण्डपम् ।।१३५
शताधिधारया शक्त्या त्रिवारं ब्राह्मणैः सह । विकीर्य लाजकुसुमं व्रीहींश्चैव कपर्दकान् ।।१३६
तूर्यघोषेण महता ततो विप्रपुरःसरम् । यजमानः सपत्नीकः प्रविशेत्स्वगृहं पुनः ।।१३७
ततो गृहार्चनं कृत्वा ब्राह्मणानथ भोजयेत् । कुमारींश्च कुमारांश्च दीनान्धकृपणानपि ।।१३८
नारायणं ततो दद्याद्विप्रमुद्दिश्य भक्तितः ।।१३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे विंशोऽध्यायः ।२०

इति मध्यमपर्वणि द्वितीयभागः समाप्तः ।२

अथ तृतीयोभागः

प्रथमोऽध्यायः

उपवनादिप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

आरामादौ विशेषो यो वक्ष्यतेऽत्र मयाधुना । मण्डलं कारयित्वा तु चतुरस्रं समं शुभम् ।।१

को उस पुष्करिणी में डाल देना चाहिए, पुनः उस जल में वरुण मन्त्र द्वारा मछलियों आदि तथा कल्याण मूर्ति पक्षी, मण्डूक, कछुवे, कर्दम (कीचड़) और शैवाल (सेवार) छोड़ना चाहिए। उसके अनन्तर दक्षिणा का प्रक्षेप करके आचार्य के लिए सुवर्ण, धान्य, रत्न की दक्षिणा पृथक् से देनी चाहिए। ऋत्विग्गण को भी अपने धनानुसार पृथक्-पृथक् प्रदान कर ब्राह्मण, गायक और वसुओं के लिए पृथक्-पृथक् देकर नित्य कर्म की समाप्ति के अनन्तर पूर्णाहुति प्रदान करके 'हस्ता स इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए। उसके उपरांत प्रदक्षिणा के क्रम से क्षीर धारा से जिसमें सैकड़ों धारा निकलती हुई दिखाई दें महल के पक्ष में महल, उपवन पक्ष में मण्डप को ब्राह्मणों समेत तीन बार आवेष्टित (घेर) कर देना चाहिए, पुनः चारों ओर लावा, पुष्प, व्रीही, और कौड़ियों को बिखेरते हुए तुरुही वाद्य के घोष समेत ब्राह्मणों को आगे कर उस महारम्भ के साथ पत्नी समेत यजमान अपने भवन में प्रवेश करे। पश्चात् गृहपूजन करके ब्राह्मण भोजन के उपरांत कुमारी, कुमार, दीन, अन्धे, कृपण को भी सन्तुष्ट करके उस नारायण की प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित कर देमा चाहिए।१२०-१३९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में मध्यमविधान वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।२०।

तृतीय भाग

अध्याय १

उपवन आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—उपवन आदि की प्रतिष्ठा में जो विशेषता कही गयी है, मैं वही बताने जा रहा हूँ, शुभ

ऐशान्यां कलशे देवं तत्र नाथं प्रपूजयेत् । मध्यमे कलशे पूजा ग्रहाणां च ततः परम् ॥२
स्वदिक्षु द्वारदेशे तु पश्चिमद्वारदेशयोः । ब्रह्माणं चाप्यनन्तं च मध्यतो वरुणं यजेत् ॥३
वरुणं चोदकुम्भस्थं भूतशाखासु शोभनम् । तेन चावाहयामि त्वां विभो स्वर्गाय वै भव ॥४
पूर्वगं मन्दरं स्थाप्य तोरणोपरि सत्तमाः । विष्वक्सेनं समभ्यर्च्य अर्चनं स्वर्गसंयुतम् ॥५
कर्णिकायां वासुदेवं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापद्मविभूषितम् ।६
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुकुटाद्यैरलङ्कृतम् । दक्षिणे कमला तस्य वामे पुष्टिव्यवस्थितिः ॥७
सिद्धकिन्नरयक्षाद्यैः स्तूयमानं सुरासुरैः । सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या विष्णोरराट इत्यृचा ॥८
दले सङ्कर्षणादींश्च विमलाद्याश्च नायिकाः । सम्पूज्य धूपदीपाद्यैरुपहारैरनुत्तमैः ॥९
घृतप्रदीपो देवस्य गुग्गुलुः सरलस्तथा । धूपो देवबलिः क्षीरं परमान्नं घृतप्लुतम् ॥१०
ध्यायेत्सोमं कर्णिकायां दक्षिणे पद्मसंस्थितम् । शुक्लाभं द्विभुजं शान्तं केयूराद्युपशोभितम् ॥११
प्रशस्यं देवयक्षाणां वरदाभयहस्तकम् । इमं देवा इति ऋचा उपचारैः पृथग्विधैः ॥१२
पूजयेच्च निशानाथं घृतभक्तं निवेदयेत् । इन्द्रं जयन्तमाकाशं वरुणं चाग्निमेव च ॥१३
ईशानं तत्पुरुषं चैव वायुं पूर्वादिदिक्ष्वपि । कर्णिकाया वामभागे वरदाभयहस्तकम् ॥१४

एवं चौकोर मण्डल बनाकर उसके ईशान कोण में स्थित कलश में प्रधान देव और मध्य कलश में ग्रहों की उत्तम अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए ।१-२। अपने अपने दिशाओं में, दरवाजे, एवं उसके पार्श्व भाग में पश्चिम द्वार और उस दिक्पाल के मध्य ब्रह्मा, अनन्त तथा मध्य में स्थित वरुण देव की पूजा करनी चाहिए ।३। घटोदक में स्थित वरुण देव का, जो भूतशाखाओं में परमसुशोभित हैं, मैं स्वर्ग प्राप्त्यर्थ आवाहन कर रहा हूँ ।४। उत्तमवृन्द ! पूर्व की ओर मन्दर का स्थापन करके तोरण के ऊपर विष्वक्सेन की अर्चा स्वर्ग लाभ के लिए करनी चाहिए । कर्णिका (पंखुडियों) में शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति, चार भुजाएँ, क्रमशः शंख, चक्र, गदा, तथा पद्म से विभूषित, श्रीवत्स एवं कौस्तुभ से अलंकृत हृदय स्थल, तथा मुकुट आदि से सुशोभित वासुदेव की पूजा भक्ति पूर्वक करनी चाहिए, जिसके दक्षिणभाग में कमला, बाँये पुष्टि व्यवस्था, तथा सिद्ध किन्नर यक्ष, सुर और असुर द्वारा स्तुति सम्पन्न है । विधान एवं भक्ति पूर्वक 'विष्णोरराट इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत दल में स्थित संकर्षणादि और विमला आदि नायिकाओं का पूजन करके धूप, दीप एवं उत्तम उपहार प्रदान करना चाहिए ।५-९। घी का दीपक, गुग्गुल, धूप, देवबलि, क्षीर और घी में डूबे हुए उत्तमान्न, उस देव के लिए प्रदान करना चाहिए । उस कर्णिका (पंखुड़ी) के दक्षिण भाग में कमलासन पर स्थित उस सोमदेव का जो शुक्लवर्ण की प्रभा, दो भुजा, शान्त स्वरूप, और केयूर आदि आभूषणों से विभूषित हैं, एवं देव-यक्षों में श्रेष्ठ वरद तथा अभय दान देने वाले है, इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पृथक् विधान तथा उपचारों द्वारा ध्यान-पूजन करना चाहिए । इस भाँति निशानाथ चन्द्रमा की अर्चा सुसम्पन्न करके घृत तक्र उन्हें अर्पित करने के उपरान्त इन्द्र, जयन्त, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष और वायु देवता का पूर्वादि दिशाओं में स्थापन पूजन करते हुए कर्णिका के बाँये भाग में वर और अभय दायक हाथ, दो भुजा, एवं शुक्ल वर्ण वाले महादेव की सविधान अर्चा करके 'त्र्यम्बकमिति' इस मंत्र द्वारा

द्विभुजं शुक्लवर्णं च महादेवं प्रपूजयेत् । त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण दद्याच्च घृतपिष्टकम् ।।१५
वासुदेवाय देवाय जुहुयादष्ट आहुतीः । परमान्नेन सौम्यस्य जुहुयादष्टविंशतिम् ।।१६
शिवाय परमान्नेन जुहुयादाहुतिद्वयम् । गणेशस्य तथाज्येन दद्देदेकाहुतिं बुधः ।।१७
ब्रह्मणो वरुणस्याथ एकैकामाहुतिं तथा । ग्रहाणां स्वोक्तसमिधा दिगीशानां पृथक्पृथक् ।।१८
एकैकामाहुतिं दद्यादाज्येन च यथाक्रमम् । कराली धूमली श्वेता लोहिता कनकप्रभा ।।१९
अतिरिक्ता पद्मरागा वह्निजिह्वा प्रकीर्तितताः । तासां मन्त्राः क्रमेणैव सादिवासान्त दिन्दवः ।।२०
यकारस्थाश्च विज्ञेया अष्टस्वरविभूषिताः । घृतमध्वाज्यसिक्ताभिर्होमयेच्च पृथक्पृथक् ।।२१
एकैकामाहुतिं दद्याद्दत्वा चैव रामाहितः । अग्नीषोमं तथेन्द्रं च पृथिवीमन्तरिक्षकम् ।।२२
स्थालीपाकेन जुहुयान्मधुक्षीरयवान्वितम् । एकैकामाहुतिं तेषां समुद्दिश्य पृथक्पृथक् ।।२३
यावकैर्गंधपुष्पाद्यैरर्चितव्रः सपरावकम् । जपस्व त्वं महाभाग श्रद्धया चैव वाग्यतः ।।२४
जापको विधिनानेन प्रजपेत्तत्र रुद्रकम् । मङ्गलं परमान्नं च सौरसूक्तं तथा जपेत् ।।२५
ततः सम्मृज्य विधिना स्नापयित्वा यथाविधि । यूपं गर्भे विनिक्षिप्य तत्र कुर्याद्विचक्षणः ।।२६
ध्वजानारोप्य प्रान्तेषु दद्यात्सोमं वनस्पतिम् । कोऽदादिति पठित्वा च वृक्षाणां कर्णवेधनम् ।।२७
सूच्या सुतीक्ष्णया कार्यं द्विपात्रे वामदक्षिणे । नवग्रहाणां तृप्त्यर्थं यावकं लड्डुकं तथा ।।२८
पिष्टकं च पृथग्दद्यात्कुमारीबालकेषु च । निशारञ्जितसूत्रेण[1] संवेष्ट्य च सचूर्णकम् ।।२९

उन्हें घी में डूबी हुई पीठी सादर समर्पित करनी चाहिए ।१०-१५। परमोत्तम देव वासुदेव के लिए उत्तमान्न की आठ आहुति, बुध के लिए अट्ठाइस, शिव के लिए दो और गणेश के लिए घी की एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । उसी भाँति ब्रह्मा और वरुण के लिए एक एक तथा ग्रहों के लिए उपरोक्त समिधा की प्रज्वलित अग्नि में एक-एक एवं दिगीश्वरों के लिए भी उसी प्रकार पृथक्-पृथक् एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । कराली, धूमली, श्वेता, लोहिता, कनकप्रभा, अतिरिक्त और पद्मरागा ये अग्नि की जिह्वाएँ हैं, इनके मंत्र भी क्रमशः बता दिये गये हैं, ये यकारस्थ और आठों स्वरों से सुशोभित हैं, इन्हें पृथक्-पृथक् घी, शहद, और घी में भीगे हुए पदार्थों की आहुति प्रदान करनी चाहिए ।१६-२१। इस प्रकार इन्हें एक-एक आहुति प्रदान करने के अनन्तर अग्निव्योम, इन्द्र, पृथिवी और अन्तरिक्ष के लिए बने हुए पाक द्वारा शहद, क्षीर मिश्रित जवा की एक एक आहुति पृथक्-पृथक् प्रदान करके हलुवा, गन्ध इत्यादि से अर्चा सुसम्पन्न करते हुए उस पुण्यात्मा व्रती को मौन होकर श्रद्धापूर्वक सपरावक का जप करना चाहिए । पुनः उस जप करने वाले को इसी विधान द्वारा मांगलिक परमान्न और सौर सूक्त का पाठ करना आवश्यक होता है । पश्चात् सविधान मार्जन एवं स्नान कराकर उस बुद्धिमान् को गर्भ में धूपस्तम्भ का स्थापन करना चाहिए ।२२-२६। प्रान्तों में ध्वजाओं के आरोहण पूर्वक सोमवनस्पति को प्रदान करते हुए 'कोऽदादिति' ऐसा कहकर अत्यन्त तीक्ष्ण सूची (सूई) द्वारा दाहिने बाँयें दोनो पत्तों में वृक्षों का कर्णवेध संस्कार सुसम्पन्न करना चाहिए । उपरांत नवग्रहों के तृप्त्यर्थ हलुआ लड्डू और पीठी कुमारियों और बच्चों को पृथक्-पृथक् प्रदान करना बताया गया है । हरिद्रा के रंग में रंगे हुए सूत्रों से

---

१. हारिद्रसूत्रेण ।

प्रदद्याद्दोहकं चैव वृक्षाणां विधिपूर्वकम् । प्राशयेच्चैव तान्वृक्षानिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥३०
वृक्षाग्रात्पतितस्यापि आरोहात्पतितस्य च । मरणे वास्थिभङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते ॥३१
धेनुं सुवर्णं धान्यं च आचार्याय प्रदक्षिणम् । दत्त्वा च ऋत्विजे दद्यात्सुवर्णं रजतं तथा ॥३२
धान्यं च ब्रह्मणे दद्याद् घृतभोज्यं सशर्करम् । इष्टां च दक्षिणां दद्यात्सदस्याय तथैव च ॥३३
अधिकलशं समानीय स्नानं कुर्याद्विधानतः । कृत्वा चैवानिशं कुर्याद्दद्यात्पूर्णाहुतिं तथा ॥३४
सर्वौषध्युदकं प्रोक्ष्य त्रिवारं क्षीरधारया । संवेष्ट्य त्रिश्चतुर्वारं ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥३५
गृहं व्रजेत्ततो विप्रैः कुर्याच्चैव गृहार्चनम् । ततो विशेषं वक्ष्यामि वरा एवेदमित्यृचा ॥३६
बलं कामं हयग्रीवं माधवं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं धनाध्यक्षं ततो नारायणं यजेत् ॥३७
दधिभक्तं बलिं दद्यात्पञ्चगव्यसमुद्भवम् । एवं सम्पूज्य विधिना दक्षिणे पृथिवीं यजेत् ॥३८
शुद्धकांञ्चनवर्णाभां वराभयकरां शुभाम् । मण्डूकस्थां च द्विभुजां सर्वालङ्कारसुन्दरीम् ॥३९
स्योना पृथिवीति मन्त्रेण पूजयित्वा यथाविधि । पायसं मधुसंयुक्तं बलिं दद्यात्सशर्करम् ॥४०
वामतो विश्वकर्माणं शुद्धस्फाटिकसन्निभम् । शूलटङ्कधरं शान्तं संयजेदुपचारकैः ॥४१
विश्वन्निति ऋचां तं च बलिं च मधु पिष्टकम् । दद्याज्जपेच्च कौष्माण्डं सूक्तं पौरुषमेव च ॥४२
मधुपायसयुक्तेन होमानष्टौ विधाय च । एकैकं होमयेत्पश्चात्पृथिवीहोमकर्मणि ॥४३
समुत्सृज्य ततः सेतुमिमं मन्त्रं पठेत्ततः । पिच्छिले पतितानां च उच्छ्रितेनाङ्गसङ्गतः ॥४४

उस चूर्ण समेत को बाँधकर उसी द्वारा वृक्षों का दोहक और प्राशन कर्म इसी विधान से सुसम्पन्न करते हुए इस भाँति मन्त्र प्रार्थना करनी चाहिए—वृक्ष के अग्रभाग एवं उस पर चढ़ते समय उस पर गिर कर हड्डी टूट जाये अथवा मृत्यु हो जाये, तो उसके निर्माण करने वाले को उस पाप का भागी न होना पड़े। इसके अनन्तर आचार्य के लिए दक्षिणा के रूप में धेनु, सुवर्ण, धान्य प्रदान कर ऋत्विक् के लिए सुवर्ण और चाँदी, ब्रह्मा के लिए धान्य, शक्कर समेत घी का भोजन तथा अन्य सदस्यों के लिए उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करके प्रधान कलश मंगाकर विधान पूर्वक स्नान और पूर्णाहुति करनी चाहिए।२७-३४। सम्पूर्ण औषधि समेत घटोदक से तीन बार प्रोक्षण एवं क्षीर धारा से तीन या चार बार मण्डल बनाकर ब्रह्मध्वनि के साथ ब्राह्मणों को आगे करके गृह प्रवेश करने के अनन्तर गृह-पूजा करनी चाहिए। इसमें कुछ विशेष बातों को बता रहा हूँ, बल, काय, हयग्रीव, माधव पुरुषोत्तम, वासुदेव, धनाधिप (कुबेर) और नारायण की अर्चा 'वरा एवेदमिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करके पञ्चगव्य एवं दही से बने हुए पदार्थ की बलि प्रदान करनी चाहिए। इस भाँति विधान पूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करने के अनन्तर शुद्ध सुवर्ण की भाँति प्रभा, वर एवं अभय प्रदान करने वाली, शुभ मूर्ति, मेढ़क पर स्थित, दो भुजा तथा समस्त अलंकारों से परम सौन्दर्यपूर्ण उस पृथिवी की अर्चा सविधान 'स्योनापृथिवीति' इसमंत्र से उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् दूध, शहद और शक्कर समेत उन्हें बलि प्रदान करके बाँयें भाग में स्थित शुद्ध स्फटिक की भाँति, शूल और टंकधारी तथा शांत उस विश्वकर्मा का पूजन उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। पुनः 'विश्वन्निति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक शहद और पीठी की बलि प्रदान कर कौष्माण्ड और पुरुष सूक्त का पाठ करना चाहिए। उपरांत शहदमिश्रित खीर की आठ आहुति प्रदान पूर्वक पश्चात् सभी के लिए एक एक आहुति उस पृथिवी हवन कर्म में प्रदान

प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् । ततोऽस्य प्रबन्धस्य श्रद्धया परया तथा ।।४५
ये चात्र प्राणिनः सन्ति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः । वेदागमेन यत्पुण्यं यथैव हि समर्पितम् ।।४६
गर्तं कृत्वा पञ्चरत्नं संस्थाप्यं तदनन्तरम् । संस्थाप्य च ततो यूपं सम्पूज्य च यथाविधि ।।४७
आचार्याय ततो दद्यादिष्टां च वरदक्षिणाम् । पूजयेद्द्विजदाम्पत्यं लाजाभिः परिपूजितम् ।।४८
पोटिकां च ततः शय्यां दद्यादिष्टार्थसिद्धये । सेतौ वृक्षस्थिता ये स्यू रोपयेत्कदलीं शुभाम् ।।४९
तेषां पार्श्वद्वयेप्येवमारामे च पृथक्पृथक् ।।५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे उपवनादिप्रतिष्ठावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

गोप्रचारवैशिष्ट्यवर्णनम्

सूत उवाच

गोप्रचारं पुनर्वक्ष्ये विशेषं तत्र मे शृणु । यजेद्विष्णुं सलक्ष्मीकमुपचारैः पृथग्विधैः ।।१
उपचारैश्च ब्रह्माणं रुद्रं चैव करालिकाम् । वराहं सोमसूर्ये च महादेवं यथाक्रमम् ।।२
होमं चैव यथा विष्णोः कमलायास्त्रयंत्रयम् । आज्येन क्षेत्रपालानामन्येषां मधुमिश्रितैः ।।३
एकैकामाहुतिं दद्याल्लाजादिषु पृथक्पृथक् । समुत्सृज्य विधानेन यूपं संस्थाप्य पूजयेत् ।।४

करना चाहिए ! अनन्तर उस सेतु के त्याग पूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करे कि किसी के (कीचड़ से) फिसल कर या ऊँचाई से गिरने पर मुझे इस सेतु प्रतिष्ठा कर्म करने के नाते धर्म की ही प्राप्ति हो पातक की नहीं । क्योंकि श्रद्धा पूर्वक मैंने उस सेतु का प्रबन्ध किया है । जो कोई प्राणी सेतु रूप से यहाँ स्थित हैं, वे रक्षा एवं वेदागम द्वारा प्राप्त पुण्य प्रदान करें इसके उपरांत गड्ढा बनाकर उसमें पञ्चरत्न समेत यूप स्तम्भ को प्रतिष्ठित करके यथाविधान उसकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए, अनन्तर आचार्य के लिए उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान कर लावा द्वारा द्विज दम्पती की पूजा और अपनी इष्ट सिद्धि के लिए पोटली समेत शय्यादान करके उस सेतु पर स्थित वृक्षों एवं उपवन के दोनों पार्श्वों में पृथक्-पृथक् केला के वृक्ष लगाने चाहिए ।३५-५०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

गो प्रचार के वैशिष्ट्य का वर्णन

सूत बोले—मैं उस गोप्रचार को पुनः बता रहा हूँ, उसकी विशेषता को भी सुनो ! लक्ष्मी समेत विष्णु की अर्चा पृथक्-पृथक् उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् उपचार द्वारा ब्रह्मा, रुद्र, करालिका, वराह, चन्द्र, सूर्य और महादेव का पूजन क्रमशः सुसम्पन्न करके यथाविधान विष्णु और कमला के लिए खीर की तीन-तीन आहुति प्रदानपूर्वक क्षेत्रपालों के लिए शहद मिश्रित लावादि की एक-एक पृथक्-पृथक् आहुति देने के अनन्तर विधानपूर्वक यूप का स्थापन और पूजन करना चाहिए

त्रिहस्तमात्रं रचितं कुर्यान्नागफणान्वितम् । रोपयेदेकहस्तेन गर्भे होमं प्रयोजयेत् ।।५
लाजासंयुक्तविधिना विश्वेषामिति सञ्जपन् । नागाधिपतये तद्वदच्युताय तृतीयकम् ।।६
भौमायेति चतुर्थं च ततो यूपं निवेदयेत् । मयि गृम्णामीति सम्पूज्य यूपं च रुद्रदैवतम् ।।७
सम्पूज्य रुद्रं पञ्चाङ्गं धान्यं वस्त्रं च दक्षिणान् । आचार्याय तथा होत्रे अन्येषामिष्टदक्षिणाम् ।।८
गोप्रचारे च शैलेयं यूपं हस्तद्वयान्वितम् । पञ्चशीर्षान्वितं कुर्याद्धस्तमात्रं प्ररोपयेत् ।।९
यूपं च चैत्रवृक्षं च कुण्डलीमठपीठिकाम् । संस्पृश्याचम्य वै विप्राः प्राणायामेन शुध्यति ।।१०
चतुर्हस्तप्रमाणेन शतकुण्डेन सम्मितम् । तदर्धं च कनिष्ठेन अष्टकाष्ठाधिकं भवेत् ।।११
भूमौ रत्नं च संस्थाप्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् । शिवलोकस्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः ।।१२
गोभ्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना । एवं निवेदयेद्यस्तु गोप्रचारं समाहितः ।।१३
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते । यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च ।।१४
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । पूर्वे सीमां निबध्नीयात्कृत्वा वृक्षस्य रोपणम् ।।१५
सेतुं कृत्वा दक्षिणतः पश्चिमेऽङ्गाररोपणम् । उत्तरे खानयेत्कूपं तस्य सीमां न लङ्घयेत् ।।१६
ततः सहस्रधारां च शस्येन परिपूरिताम् । प्रदद्याद्वा ततो विप्राः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१७
नगरग्रामपूर्वे वा उत्तरे पश्चिमेऽपि वा । न कुर्यादग्निदिग्भागे दक्षिणां वा ततः शुभाम् ।।१८

।१-४। तीन हाथ की नाग के फल की भाँति उसकी रचना करके एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट करने के उपरांत हवन कर्म प्रारम्भ करना चाहिए, 'विश्वेषामिति' इसका उच्चारण करते हुए लावा मिश्रित की आहुति विधान पूर्वक नागाधिपति, अच्युत और भौम के लिए प्रदान करके 'मयि गृम्णामिति' इस मंत्र के द्वारा पूजन और आहुति उस रुद्र देवता वाले यूप के लिए समर्पित करनी चाहिए ।५-७। पञ्चांग समेत रुद्र की उपासना करके आचार्य के लिए धान्य वस्त्र समेत अभीष्ट दक्षिणा प्रदान पूर्वक होता के लिए भी उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । गो-प्रचार कर्म में शिलाखण्ड के बने हुए यूप-स्तम्भ के जिसका आकार प्रकार दो हाथ का एवं पाँच शिखर बने रहते हैं, एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट कर उसका स्थापन-पूजन करना चाहिए । विप्रवृन्द ! यूप, चैत्रवृक्ष, कुण्डली मठ-पीठिका के स्पर्श करने पर आचमन और प्राणायाम द्वारा शुद्धि होती है । शत कुण्डी में उसे चार हाथ के प्रमाण का बनाना चाहिए, भूमि में रत्न स्थापित करके इस मंत्र का उच्चारण करना बताया गया है । शिवलोक और गौएँ समस्त देवों की पूजनीया हैं, इसलिए कल्याणार्थ मैंने गौओं के लिए इस भूमि का दान किया है, इस भाँति जो मनुष्य गो प्रचार (चारागाह) का विधान सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है । तृण, गुल्मों की जितने दिनों तक पृथिवी तल पर स्थिति रहती है, उतने सहस्र वर्ष वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । पूर्व प्रदेश में सीमा-सीमित करके वृक्ष रोपना चाहिए । दक्षिण में सेतु-निर्माण पूर्वक पश्चिम में अग्निशाला और उत्तर की ओर कूप-निर्माण करके इसकी सीमा पार न करनी चाहिए ।८-१६। विप्रवृन्द ! पश्चात् सहस्रधारा का, जो शस्य श्यामल पूर्ण हो, जो दान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । नगर-गाँव के पूर्व, उत्तर, पश्चिम अथवा अग्निकोण और दक्षिण में सम्बद्ध गो-प्रचार न करना चाहिए । गो-प्रचार का खनन अथवा उद्वाहन करने वाले मनुष्य का कुल-

गोप्रचारं खनेद्यस्तु वाहयेद्वा कथञ्चन । कुलानि पातयत्याशु ब्रह्महत्याश्च विन्दति ।।१९
स्वर्गं नयति गोचर्म सम्यग्दत्तं सदक्षिणम् । यावत्तृणानि तद्भूमौ सप्तसंख्यानि संख्यया ।।२०
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे विष्णुलोकान्न तच्च्युतिः ।।२१
महायागावसाने च यो न तर्पयति द्विजान् । निरर्थकं तस्य कर्म प्रयासफलमात्रकम् ।।२२
वृषोत्सर्गावसाने तु प्रदद्याद्यो महीं द्विजाः । न याति विप्राः प्रेतत्वं तस्माद्विप्रादमत्सराः ।।२३
तत्र मानं पृथक्चैव भृगुतात्र समागतः । अमानेन ददेद्यस्तु नरकं याति रौरवम् ।।२४
गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः । तद्गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम् ।।२५
गोप्रचारस्य देवस्य ब्राह्मणस्य च भो द्विजाः । यावत्कालावधेः सीमा अतीते नास्ति पातकम् ।।२६
मण्डपं पूजयेत्सूर्यं वासुदेवसमन्वितम् । होमस्तिलगुडाभ्यां च अष्टावष्टौ पृथक्पृथक् ।।२७
देहि मेति च मन्त्रेण विन्यसेन्मण्डपोपरि । यत्नसिद्धं ततः कृत्वा शुक्लं घटचतुष्टयम् ।।२८
समुत्सृजेज्जपेत्पश्चात्सौरं सूक्तं च वैष्णवम् । वटपत्रे तु संलिख्य चित्रं निर्माय वा पुनः ।।२९
दिक्पालान्संन्यसेत्स्वासु स्वासु दिक्षु विचक्षणः । बद्धाञ्जलिः पठेन्मन्त्रानिन्द्रादीनां यथाक्रमम् ।।३०
धर्मसंस्थापनार्थाय आत्मनो विभवाय च । वज्रहस्तो महेन्द्र त्वं धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३१
भो वह्ने मेषवाहस्त्वं चतुःशृङ्गविराजित । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३२
यम त्वं दक्षिणाशेष महामहिषवाहन । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३३

नाश हो जाता है, और उसे ब्रह्म-हत्या का दोष भागी होना पड़ता है। दक्षिणा समेत गोचर्म के समान भूमि का दान करने से भी स्वर्ग प्राप्ति होती है, उस भूमि में जितने दिन हरियाली रहती है, उसके सात गुने पर्यंत समय तक स्वर्ग में निवास रहता है, पश्चात् विष्णुलोक से उसकी कभी च्युति नहीं होती है।१७-२१। महायाग की समाप्ति में जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट नहीं करता है, उसका किया हुआ कर्म निष्फल एवं केवल प्रवास करना मात्र फल होता है। विप्रवृन्द ! वृषोत्सर्ग के समाप्ति में जो मनुष्य पृथिवी दान करता है, उसको कभी प्रेत नहीं होना पड़ता है, उसमें मान का पृथक् विधान बताया गया है, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि मानहीन पूर्वक उस कर्म की समाप्ति करने से रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है। जिस प्रदेश में सौ गायों के साथ एक वृष (सांड) भी स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता है, उसे गोचर्म, कहते हैं और वही सम्पूर्ण पापों का नाशक होता है। द्विजवृन्द ! गो प्रचारक किसी भी ब्राह्मण देव को उसके समयावधि के भीतर उसकी सीमा पार करने में दोष भागी नहीं होना पड़ता है। वासुदेव समेत सूर्य की अर्चा मण्डप में करने के अनन्तर तिल, गुड़ की पृथक् पृथक् आठ-आठ आहुति प्रदान करनी चाहिए। 'देहिमेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक मण्डप के ऊपर उसका विन्यास करके शुक्ल वर्ण चार कलशों का उत्सर्जन और सौर सूक्त तथा वैष्णव सूक्त का पाठ करना चाहिए। पश्चात् बरगद के पत्ते पर चित्र निर्माण कर दिक्पालों को अपनी अपनी दिशाओं में प्रतिष्ठित करना चाहिए। और हाँथ जोड़कर क्रमशः इन्द्रादि देवों के निमित्त इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए। हे महेन्द्र ! धर्म का स्थापन और अपने ऐश्वर्य वृद्धि के लिए हाँथ में वज्र लिये आप धर्म रक्षक बनाये गये हैं, हे अग्नि देव ! आप भेड़ वाहन एवं चार शिखरों से विभूषित हैं, अतः इस अनाथ मण्डप की धर्मतः रक्षा कीजिये। हे यम ! आप दक्षिण दिशा के अधीश्वर हैं, हे महामहिष (भैंसें) वाहन वाले ! इस अनाथ मण्डप की धार्मिक रक्षा कीजिये

मञ्चस्थो राक्षसेन्द्रस्त्वं खड्गपाणिर्महाबलाः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३४
वारिराट् ध्वजहस्तोऽसि पवनो मृगवाहनः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३५
धनाध्यक्षो गदाहस्तः पिङ्गाक्षो नरवाहनः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३६
आदिदेवोऽसि देवानां कर्ता हर्ता महेश्वरः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३७
अनन्तो नागराजो यो धरामुद्धृत्य तिष्ठति । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।।३८
चतुर्णामेव वर्णानां स्थित्यर्थं मृगपक्षिणाम् । प्रीतये वासुदेवस्य एवं मण्डपमुत्सृजेत् ।।३९
भग्ने स्तम्भे तृणे जीर्णे पुनस्तृणप्रदापने । स्थापने च तथैवास्य प्रतिष्ठा स्याद्यथाक्षया ।।४०
घातापायादिदोषेण म्रियन्ते यदि जन्तवः । प्रतिष्ठायां कृतायां तु धर्मो मे स्यान्न पातकम् ।।४१
मानुषाः पशवो ये च निवसन्तीह मण्डपे । स्वस्ति चास्तु सदा तेषां त्वत्प्रसादात्किल प्रभो ।।४२
ततस्त्रिगुणसूत्रेण सुत्रामाणेति वै ऋचा । सप्तधा वेष्टयित्वा तु दक्षिणां सम्प्रकाश्य च ।।४३
उपानहौ तथा छत्रमाचार्याय निवेदयेत् । मण्डपे भोजयेद्विप्रांस्तेषां दद्याद्यथेप्सितान् ।।४४
दीनेभ्यश्च पृथग्दद्याद्गृहं विप्रपुरःसरम् । प्रविशेत्तूर्यघोषेण प्रकुर्याच्च गृहार्चनम् ।।४५
एवं प्रपायां विज्ञेयो विशेषो वरुणं यजेत् । वासुदेवेन सहितं साङ्गोपाङ्गं सदक्षिणम् ।।४६
स्थालीपाकविधानेन प्रकुर्याद्देशिकोत्तमः । आचार्याय गृहं दद्यात्परिच्छदसमन्वितम् ।।४७

मञ्च पर स्थित, हाँथ में खड्ग लिये महाबली राक्षसेन्द्र ! आप भी इस अनाथ मण्डप की धर्मतः रक्षा कीजिये, हाथ में ध्वजा लिए जलाधिनाथ और मृगवाहन वायु देव ! इस अनाथ मण्डप की आप रक्षा कीजिए । हाथ में गदा लिये, पिंगल नेत्र, एवं मनुष्य वाहन वाले धनाधीश्वर कुबेर ! आप इस अनाथ मण्डप की धर्म के नाते रक्षा कीजिए । देवों के आदि देव, एवं कर्ता हर्ता महेश्वर ! इस अनाथ मण्डप की धार्मिक रक्षा कीजिए । नागराज अनन्त ! जो इस पृथिवी का भार उठाये हुए हैं, इस अनाथ मण्डप की रक्षा करें ।२२-३८। चारों वर्णों और पशु पक्षियों के स्थित्यर्थ एवं वासुदेव के प्रसन्नार्थ मण्डप का उत्सर्जन करना चाहिए । किसी स्तम्भ के टूटने अथवा जीर्ण होने पर पुनः तृण से छवाने और स्तम्भ के लगाने से उसकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार अक्षीण ही रहती है, कहना चाहिए, किसी प्रकार के घात, अथवा उपाय (विघ्न) दोष दूषित जन्तुओं के निधन होने पर इस प्रतिष्ठा-कर्मानुष्ठान द्वारा मुझे धर्म की प्राप्ति हो पातक की नहीं । मनुष्य और पशुगण, जितने इस मण्डप में निवास करते हैं, हे प्रभो ! आप की प्रसन्नता वश उनका सदैव कल्याण होता रहे ।३९-४२। पश्चात् तिगुनें किये हुए सूत्र द्वारा 'सुत्रामाणेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक उसे आवेष्टित करके पादत्राण और छत्ते समेत दक्षिणा आचार्य के लिए अर्पित करने के उपरांत मण्डप में ब्राह्मणों को मनोनीत भोजन सुसम्पन्न करना चाहिए । पुनः दीनों आदि के लिए उनके संतोष की कुछ वस्तुओं के प्रदान पूर्वक ब्राह्मणों को आगे कर तुरुही आदि वाद्यों के ध्वनि कोलाहल में गृह-प्रवेश के अनन्तर गृह-पूजन करना चाहिए । इसी भाँति प्रपा (पियाऊ) के स्थापन प्रतिष्ठा में भी होना चाहिए, उसमें विशेषकर वरुण की पूजा की जाती है । वासुदेव समेत सांगोपांग एवं दक्षिणा सहित उनकी पूजा सुसंपन्न करके बने हुए पाक-विधान द्वारा उसकी समाप्ति के उपरांत आचार्य के लिए छाये हुए गृह का प्रदान और ऋत्विजों के लिए जल पूर्णता के पात्र तथा

ऋत्विजे ताम्रपात्रं च जलपूर्णं च धान्यकम् । दिक्पालान्द्वारदेशे तु कूपयागे विशेषतः ।।४८
ब्रह्माणं नागराजानं द्वारपालौ च पश्चिमे । यजेन्मन्त्रैः पृथग्देवान्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ।।४९
बलिदानं विधानेन कृत्वा दद्याद्यथाविधि । पताकानामतस्तत्त्वं प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।।५०
वज्री च धूमली कृष्णा पीता चैवाथ वारुणी । शीघ्रा गौरी उमा चैव पीता शुक्ला प्रकीर्तिता ।।५१
कुम्भेषु पूजयेद्देवान्महेशं प्रथमं बुधः । ग्रहांश्च मध्यकलशे ब्रह्माणं च ततः परम् ।।५२
वेदिकापूर्वभागे तु उत्तरे कलशे शिवम् । दक्षिणे कलशे विष्णुं कर्णिकायां जलेश्वरम् ।।५३
कलशे विधिवद्भक्त्या उपचारैः पृथग्विधैः । सम्पूज्य वटपत्रे च नागान्संलिख्य नागजैः ।।५४
ये नागास्तान्प्रवक्ष्यामि अनन्तो वासुकिस्तथा । तथा कर्कोटकश्चैव पद्मश्च कुलिकस्तथा ।।
पद्मश्चैव महापद्मो मन्त्रैरेभिः पृथक्पृथक् ।।५५
पुण्डरीकदलाभास शुभकर्णान्तलोचन । फणासहस्रसंयुक्त शङ्खाब्जकृतलोचन ।।५६
अनन्त नागराजेन्द्र इहागच्छ नमोऽस्तु ते । सित कुन्देन्दुवर्णाभ विस्फुरद्भोगमण्डल ।।५७
सर्वनागस्य शूरस्य कृतस्वस्तिकलाञ्छन । नागेन्द्र तक्षक श्रीमन्निहागच्छ नमोऽस्तु ते ।।५८
नवीनजलदश्याम श्रीमन्कमललोचन । विषदर्पबलोन्मत्त ग्रीवायामेकशेखर ।।५९
शङ्खपाल इति ख्यात जलाधारप्रतीक्षक । अध्यक्षे नागलोकानामिहागच्छ नमोऽस्तु ते ।।६०
अतिपीत सुवर्णाभ चन्द्रार्धाङ्कितमस्तक । दीप्तभोगकृताटोप शुभलक्षणलक्षित ।।६१

धान्य प्रदान करना बताया गया है । कूप-याग (कूएँ की प्रतिष्ठा) में विशेषकर दरवाजे पर दिक्पालों तथा पश्चिम की ओर स्थित ब्रह्मा और नागराज एवं देवताओं की अर्चा पृथक्-पृथक् मन्त्र विधानों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । यथा विधान उन्हें बलि प्रदान करने के अनन्तर पताकाएँ प्रदान करनी चाहिए, मैं उसे क्रमशः बता रहा हूँ जो बज्री, धूमली, तृणा, पीता, वारुणी, शीघ्रा, गौरी, उमा, पीता और शुक्ला के नाम से ख्यात हैं । घट-स्थापन पूर्वक देवों की पूजा होनी चाहिए । विद्वानों को सर्वप्रथम महेश की अर्चा के अनन्तर मध्य कलश में ग्रहों एवं ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए । वेदी के पूर्व भाग में उत्तर की ओर स्थित कलश में शिव दक्षिण कलश में विष्णु, और कर्णिका के घट में जलाधीश्वर की पूजा भक्ति पूर्वक पृथक्-पृथक् सविधान उपचारों से करके बरगद के पत्ते पर नागों की प्रतिमा निर्माण पूर्वक अनन्त, वासुकी, कर्कोटक, कुलिक पद्म तथा महापद्म की अर्चा इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए । कमल दल की प्रभा, शुभ कानों तक बढ़े हुए विशाल नेत्र, सहस्र फणों से संयुक्त शंख तथा कमल की भाँति आकार वाले नागराजेन्द्र अनन्त ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ आने की कृपा कीजिये । श्वेत वर्ण के कुन्द पुष्प और इन्दु की भाँति वर्ण, स्फुटित फणों के मण्डल, सम्पूर्ण नागों को 'स्वस्तिक' के अंक से अंकित करने वाले, नागाधिराज श्रीमन् तक्षक ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ आकर कृतार्थ कीजिये । नवीन घन की भाँति श्यामल, श्रीमन्, कमल लोचन, विष के दर्प बल से उन्मत्त, ग्रीवा (गला) रूपी एक शिखर एवं जलाधार (मेघ) की प्रतीक्षा करने वाले, और नागलोक के अध्यक्ष शंखपाल नामक नागाधीश्वर! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ दर्शन देने की कृपा कीजिये ।४३-६०। अत्यन्त पीत वर्ण, सुवर्ण, की भाँति प्रकाश, अर्धचन्द्र से अंकित मस्तक प्रदीप्त फणों के घटाटोप , शुभ लक्षणों से सुशोभित, एवं

कुलीर नागराजेन्द्र सर्वतत्त्वहिते रत । तिष्ठेह यज्ञसिद्ध्यर्थं कामरूप नमोऽस्तु ते ॥६२
यः सुवर्णेन वर्णेन पद्मपत्रायतेक्षणः । पञ्च बिन्दुकृताभोगो ग्रीवायामेकशेखरः ॥
तस्मै ते पद्मनागेन्द्र तीव्ररूप नमोऽस्तु ते ॥६३
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः । सर्वे ते प्रीतमनसः पूजां गृह्णन्तु मे सदा ॥६४
स्वगृह्योक्तेन विधिना कृत्वाग्निस्थापनं बुधः । आज्यं संस्कृत्य जुहुयाद्दिगीशानां यथाक्रमम् ॥६५
आदित्यादिग्रहांश्चैव ब्रह्माणं कृष्णमेव च । मधुपिष्टेन च शिवं वरुणं जुहुयात्ततः ॥६६
प्रादेशमात्रं सम्प्रोक्ष्य यूपं चास्य प्रमाणकम् । चतुरस्रं शूलयुक्तं गणानानीय पूजयेत् ॥६७
कूपे निक्षिप्य तान्नागान्पञ्चरत्नं क्षिपेत्ततः । सुत्रामाणेति मन्त्रेण त्रिधा संवेष्ट्य सूत्रकैः ॥६८
रञ्जितैः कदलीवृक्षं वरुणाय समुत्सृजेत् । त्रातारमिति मन्त्रेण वस्त्रमाल्येन भूषयेत् ॥
कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यमुच्चरन् ॥६९
(ॐ अद्येत्यादि सर्वभूतेभ्यः फलपुष्पपत्रच्छायावृतमुख्यनानातरुविरचितमारामं वनस्पतिदैवतं सुपूजितं वेदव्यासाद्युक्तफलावाप्तये अमुकऋषिसगोत्रः अमुकदेव शर्माहमुत्सृजे ॥)
महोत्सवं ततः कुर्यात्कृत्वा बद्धाञ्जलिः पठेत् । वृक्षाग्रात्पतितस्यापि आरोहात्पतितस्य वा ॥७०
मरणे चास्थि भङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते । वज्राघातादिदोषेण म्रियन्ते तरवो यदा ॥७१
तद्दोषशमनार्थाय तस्याप्येतत्प्रतिष्ठितम् । मध्ये यूपं समारोप्य चतुष्कोणेऽपि यत्नतः ॥७२

सम्पूर्ण प्राणियों के उपकारक नाग राजेन्द्र कुलीर! काम (स्वेच्छा) रूपधारी, तुम्हें नमस्कार है, इस यज्ञ की सिद्धि के लिए इस स्थल को सुशोभित कीजिये। जो सुवर्ण के समान वर्ण से विभूषित, कमल पत्र की भाँति विशाल लोचन, पाँच बिन्दुओं से अंकित फण, ग्रीवा रूपी एक शिखर वाले तथा तीक्ष्ण स्वरूप वाले हैं उस पद्मनागेन्द्र को नमस्कार है। नागिनी, नाग कन्यायें और नाग कुमार लोग प्रसन्न मुख होकर सदैव मेरी की हुई पूजा स्वीकार करते रहें। पश्चात् अपने गृह्योक्त विधान द्वारा अग्नि-स्थापन करके घी के संस्कार पूर्वक दिक्पालों के लिए क्रमशः आहुति प्रदान करनी चाहिए। सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा, कृष्ण, तथा शहद समेत पीठी से वरुण और शिव के लिए आहुति प्रदान करने के उपरांत सप्रमाण बना हुआ आदेश मात्र को यूप-स्तम्भ की जो चौकोर एवं शूल युक्त रहता है, गणों के आवाहन पूर्वक पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। उपरांत कूप में उन नागों की प्रतिमा को डालकर पञ्चरत्न भी डाल देना चाहिए, पुनः 'सुत्रामाणेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए सूत्र से तीन बार उसे बाँध कर उस विभूषित केले के वृक्ष को वरुण के लिए समर्पित कर देना चाहिए। 'त्रातारमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वस्त्र और माला से उसे सुशोभित करने के अनन्तर कर्णवेध संस्कार करके उसके उत्सर्जन में इस भाँति कहना चाहिए ओं अद्येत्यादि संकल्प की भाँति कहते हुए 'समस्त प्राणियों के लिए फल, पुष्प, पत्ते और छाया से ढँके हुए भाँति-भाँति के अनेक वृक्षों वाले इस उपवन को जिसके वनस्पति देवता, सविधान पूजित हैं, वेदव्यास आदि ऋषियों के कथनानुसार फल प्राप्ति के लिए अमुक ऋषि का सगोत्री, एवं अमुक देव शर्मा मैं उत्सर्जन (त्याग) करता हूँ। तदुपरांत महोत्सव करके हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए। वृक्ष के अग्रभाग से अथवा चढ़ते समय गिर कर मरने या हड्डी टूटने पर उसका कर्ता पाप भागी न हो। वज्रादि आघातों द्वारा वृक्षों के निधन होने पर उस दोष के शान्त्यर्थ ऐसी ही प्रतिष्ठा करनी चाहिए। मध्य भाग में यूप-स्तम्भ की स्थापना-पूजन के अनन्तर चारों कोनों में शहद,

मधुलाजाक्षतं दद्यादञ्जनं माल्यमेव च । निशासूत्रेण संवेष्ट्य कदलीविटपं न्यसेत् ।।७३
वेष्टयेत्क्षीरधारां च पातयेद्घृतधारया । तोयान्वितं गुच्छयुक्तं वेष्टयेत्स्वगृहं व्रजेत् ।।७४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे गोप्रचारवैशिष्ट्यवर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

क्षुद्रारामप्रतिष्ठां च वक्ष्ये वै द्विजसत्तमाः । अमण्डले शुभे स्थाने द्विहस्तेऽप्यथ स्थण्डिले ।।१
स्थापयेत्कलशं तत्र विष्णुं सोमं समर्चयेत् । आचार्यमात्रं वरयेन्निशासूत्रैः प्रवेष्टयेत् ।।२
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य भूषयेद्भूषणादिना । दोहदं च ततो दद्यात्स्थापयेच्छतधारया ।।३
भोजयेत्पञ्च विप्रान्हि पुरतस्तं विशेषयेत् । कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यपूर्वकम् ।।४
दद्यद्यूपं मध्यदेशे रोपयेत्कदलीं ततः । रम्भाश्च रोपयेद्दिक्षु स्थालीपाकविधानतः ।।५
अष्टावष्टौ च जुहुयादन्येषां च घृतेन तु । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्विष्टकृत्तदनन्तरम् ।।६
दक्षिणां च ततो दद्यात्पूर्णां दत्त्वाहुतिं व्रजेत् ।।७
एकादिवृक्षं वृक्षाणां विधिं वक्ष्ये द्विजोत्तमाः । समुत्सृज्य ततो यूपं कर्मणा सह धर्मवित् ।।८

लावा, अक्षत, अञ्जन, माला से विभूषित करते हुए हरदी रंग से रंगे हुए सूत्रों से सुशोभित केले का वृक्ष लगाना चाहिए, पुनः क्षीर धारा घी, धारा समेत जल की धारा से घेर कर गुच्छे से अलंकृत करके अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए ।६१-७४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में गोप्रचार वैशिष्ट्य वर्णन
नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

लघु उपवन की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तमवृन्द ! छोटे उपवन की प्रतिष्ठा संक्षेप में बता रहा हूँ किसी शुभ स्थान में बिना मण्डल निर्माण के दो हाथ की भूमि (वेदी) पर कलश स्थापन पूर्वक विष्णु और चन्द्रमा की अर्चा सुसम्पन्न करने के अनन्तर केवल आचार्य का वरण करके हरदी के रंग से रंगे हुए सूत्रों से वृक्षों को आवेष्टित करते हुए माला और आभूषणों से विभूषित करना चाहिए। पश्चात् दोहद प्रदान करके शत धारा समेत उन्हें स्थापित करने के अनन्तर पाँच ब्राह्मणों का अभीष्ट भोजन प्रदान करते हुए कर्ण-वेध संस्कार पूर्वक उनके उत्सर्जन के समय पूर्व की भाँति करबद्ध प्रार्थना करना चाहिए। १-४। तदुपरांत मध्य प्रदेश में यूप-स्तम्भ की प्रतिष्ठा पूर्वक दिशाओं में कदली वृक्ष से सुशोभित करके बने हुए पाक की आठ-आठ आहुति प्रदान पूर्वक और अन्य लोगों के लिए घी की एक-एक आहुति प्रदान करके पूर्णाहुति स्विष्टकृत् हवन होनी चाहिए, पुनः दक्षिणा प्रदान करके पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिए। द्विजोत्तमवृन्द ! एक अथवा उससे अधिक वृक्षों का

वृक्षमूले यजेद्धर्मं पृथिवीं च विशं तथा । दिगीशांश्च तथा यक्षानाचार्यं तोषयेत्ततः ।।९
धेनुं च दक्षिणां दद्याद्दोहदं वृक्षपूजनम् । कृत्वा सम्यग्विधानेन सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।१०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे क्षुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

क्षुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अथाश्वत्थप्रतिष्ठायां मूले बाहुप्रमाणके । स्थण्डिलं कारयेत्तत्र चन्दनेनोक्षितं तथा ।।१
पद्मं प्रकल्पयेत्तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च । पूर्वेद्यू रात्रिसमये तद्विष्णोरिति वै ऋचा ।।२
स्थापयेद्वारिणा पूर्णं कया नेति च गन्धकम् । गन्धद्वारेति तैलेन श्रीश्चतेति च चन्दनम् ।।३
दद्याद्दूर्वाक्षतं कल्पे ब्राह्मणत्रयभोजनम् । कारयेत्सितसूत्रैश्च वेष्टयेच्चन्दनोक्षितैः ।।४
कुम्भे विनायकं पूज्य ब्राह्मणं च परे घटम् । स्वदिक्षु दिक्पतींश्चैव वृक्षमूले नवग्रहान् ।।५
मण्डले शिवमभ्यर्च्य पीठपूजापुरःसरम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि श्वेतं वृषभमेव च ।।६
द्विभुजं शूलहस्तं च सर्वाभरणसंयुतम् । आरोपयेत्स्वसामर्थ्याद्भूतशुद्धिं समाचरेत् ।।७

विधान बता रहा हूँ। उस धर्म वेत्ता को चाहिए कि विधान पूर्वक यूप स्थापन पूजन करके वृक्ष के मूल भाग में धर्म, पृथिवी, विश, दिक्पाल, यक्षगण, और आचार्य को सन्तुष्ट करना चाहिए। दक्षिणा रूप में योगदान करके भली भाँति विधान पूर्वक दोहद वृक्ष के पूजनानन्तर सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।५-१०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तृतीय भाग में लघु उपवन प्रतिष्ठा वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त।३।

अध्याय ४

लघु उपवन प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की प्रतिष्ठानुष्ठान में बाहु प्रमाण वाले उसके मूलभाग में वेदी का नर्माण कर पुनः चन्दन से सींचने के उपरांत उस पर सौन्दर्य पूर्ण कमल की रचना करनी चाहिए। सामान्य अर्घ्य सविधान प्रदान करके प्रथम दिन रात्रि के समय 'तद्विष्णोरिति' इस ऋचा के उच्चारणपूर्वक जल से पूर्ण कर उसकी स्थापना के पश्चात् 'कयानेति' इस मंत्र से गन्ध, 'गन्धद्वारेति' से तैल, श्रीश्चतेति' से चन्दन और दूर्वा अक्षत प्रदान करते हुए प्रथम कल्प में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। पुनः चन्दन से लिप्त सूत्रों से उसे आवेष्टित करके उस कलश में विनायक और दूसरे घट में ब्रह्मा की अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत अपनी अपनी दिशाओं में दिशाधीश्वर, वृक्ष के मूल भाग में नवग्रह, और मण्डल में पीठासन की पूजा पूर्वक शिव की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। इसके अनन्तर ध्यान बता रहा हूँ। श्वेत वृषभ (बैल) के ऊपर दो भुजा, हाथ में शूल लिए, समस्त आभूषणों से विभूषित उस प्रतिमा को आसीन कर अपने सामर्थ्यानुसार भूत-शुद्धि सविधान करना चाहिए।१-७।

ततोर्घ्यपात्रं कृत्वा तु पीठपूजां समाचरेत् । गणेशं गुरुपादं च जयं भद्रं समाहितः ।।८
मध्ये आधारशक्तिं च कूर्मानन्तौ सपद्मकौ । चन्द्रसूर्याग्निकादीनां मण्डलानि क्रमाद्यजेत् ।।९
पुनः पात्रान्तरस्थं च गृहीत्वा कुसुमं बुधः । पाणिकच्छपिकां कृत्वा ध्यायेद्वै वरुणं तथा ।।१०
पूर्ववच्च विधानेन दद्यात्पात्रादिकं त्रयम् । मधुपर्कं चासनं च पृच्छेच्च स्वागतं पुनः ।।११
मुद्रां प्रदर्श्य विधिवदङ्गपूजां समाचरेत् । पूर्वादिपत्रे इन्द्रादीन्ब्रह्माणं मध्यतो यजेत् ।।१२
अनन्तं पुरतश्चैव तेषामस्त्राणि तद्बहिः । मध्ये तोयाधिपं रुद्रं शान्तं चैव प्रशान्तकम् ।।१३
भूस्तत्त्वं च भुवस्तत्त्वं स्वस्तत्त्वादि च तत्त्वकम् । कामं धर्ममधर्मं च दिक्षु नारायणं शिवम् ।।१४
नैर्ऋते च यजेद्दुर्गां पार्श्वयोश्च शतक्रतुम् । विनायकं च विष्णुं च गङ्गां पृथिवि षष्टिकम् ।।१५
षोडशेनोपचारेण पूजयेच्च विशेषतः । मण्डलस्योत्तरे भागे नागरूपमनन्तकम् ।।१६
पञ्चकृष्णालकैः कुर्याद्बृहत्पर्वप्रमाणकम् । आरोपयेच्चाक्षताद्यैः श्वेतचन्दनपुष्पकैः ।।१७
पूजयेत्परया भक्त्या अग्निकार्यमथाचरेत् । वरुणं जुहुयात्पूर्वं मधुना पायसेन वा ।।१८
तिलाक्षतैर्वा आज्यैर्वा त्रिमध्वक्तैरथापि वा । अष्टोत्तरशतं कुर्याद्दिगीशानां घृतेन तु ।।१९
एकैकामाहुतिं दद्यात्पुष्पैस्तिलघृतेन च । नारायणं शिवं दुर्गां गणेशं च ग्रहान्निशि ।।२०
अष्टावष्टौ च जुहुयाद्घृतैरेकाहुतिर्भवेत् । ब्रह्मयुध्वानमितिमन्त्रेण ब्रह्माणं पायसेन तु ।।२१
एकाहुतिं ततो दद्यादापोहिष्ठेति वा त्रिभिः । ततो वरुणमुद्दिश्य दद्यादाज्याहुतित्रयम् ।।२२

पश्चात् अर्घ्यपात्र सुसज्जित करके पीठासन की पूजा करके गणेश गुरुपाद, जय, भद्र, मध्य में आधार शक्ति कमल समेत कच्छप, अनन्त, तथा चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि की अर्चा पूर्वक मण्डलस्थ सभी देवों की क्रमशः पूजा सुसम्पन्न करना चाहिए। पुनः अन्य किसी पात्र में स्थित पुष्प को ग्रहण कर अपने हाथ कच्छपाकार की मुद्रा बनाते हुए वरुण के ध्यान पूर्वक पूर्वोक्त विधानानुसार तीन पात्र प्रदान करके मधुपर्क, एवं आसन प्रदान के साथ स्वागत कहना चाहिए। मुद्रा-प्रदर्शन के उपरांत सविधान अंग पूजा, एवं पूर्वादि पत्रों पर इन्द्रादि मध्य में ब्रह्मा समेत सामने अनन्त तथा बहिर्भाग में उनके में उनके शस्त्र और मध्य भाग में जलाधिप रुद्र, शांत, प्रशान्त, भूस्तत्त्व, भुवस्तत्त्व, तथा स्वस्तत्त्वादि तत्त्व, काम, धर्माधर्म, दिशाओं में नारायण, शिव, नैर्ऋत्य में दुर्गा, दोनों पार्श्वभागों में इन्द्र, विनायक, विष्णु, गङ्गा और पृथिवी के साठ देवों की अर्चा षोडशोपचार विधान से सुसम्पन्न करनी चाहिए। विशेषकर मण्डल के उत्तर प्रदेश में नागस्वरूप अनन्त की प्रतिमा का जिसमें काली पाँच चोटियाँ, लम्बी-लम्बी गाँठ वाली हों, निर्माण करके अक्षत आदि श्वेत-चन्दन पुष्पों द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक पूजा करके हवन-आरम्भ करना चाहिए। सर्वप्रथम शहद और खीर की आहुति वरुण के लिए समर्पित करने के पश्चात् तिल अक्षत, अथवा घी, या शहद शक्कर मिश्रित घी की एक सौ आठ आहुति प्रदान कर दिक्पालों के लिए घी की एक-एक आहुति तथा रात्रि में नारायण, शिव, दुर्गा, गणेश एवं ग्रहेशों के लिए पुष्प, तिल और घी की आठ-आठ तथा घी की एक आहुति प्रदान करनी चाहिए। पुनः 'ब्रह्मयुध्वानमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक ब्रह्मा के लिए खीर की एक आहुति और 'आपोहिष्ठेति' से तीन आहुति देने के अनन्तर वरुण के लिए घी की तीन आहुति अर्पित करनी चाहिए।८-२२। पुनः 'इमं वरुणं इति' 'तद्वरोमा इति'

इमं वरुण इति वा तद्वरोना ऋचा पुनः । वरुणस्योत्तम्भनमसीति येनापावक एव च ।।२३
वातस्ययमिति पुनः पञ्चवर्णं यथाक्रमात् । ततो वरुणमुद्दिश्य घृतेन च गुडैः सह ।।२४
ततः स्विष्टकृते दद्याद्बलिं दद्यादनुक्रमात् । मध्वाज्यपायसं दद्याद्वरुणाय विशेषतः ।।२५
यवक्षीरं दिगीशेभ्यो ह्यन्येभ्यः पायसेन तु । नागाय पिष्टकं दद्याल्लाजाहोमाष्टकं पुनः ।।२६
अनन्तस्योत्तरे तीरे पद्मपत्रं परिस्तरेत् । अष्टाष्टापदमानेन वरुणं राजतेन तु ।।२७
कुर्यात्पूर्वद्वयेनापि बाणरत्तिसुवर्णकैः । कुर्यात्पुष्करिणीं तत्र पूर्वार्धे चतुरस्रके ।।२८
वरुणं विन्यसेत्तत्र तथा पुष्करिणीमपि । विधिवद्वाक्यपूर्वेण उत्सृजेच्च जलेशयम् ।।२९
ॐ अद्येत्यादि विष्णुरूपाय वरुणाय श्रुतिस्मृत्याद्युक्तवेदव्यासप्रणीताग्निष्टोमफलप्राप्तये पुष्करिणीप्रतिष्ठाकर्मणि इमां पुष्करिणीं सुवर्णरजतां स्वगृह्योदितां सालंकारां सुपूजितामसुक-गोत्रः अमुकदेवशर्मा तुभ्यमहं सम्प्रददे । इत्युत्सर्गवाक्यम् । ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणमुख्येभ्यः ममाग्निष्टोमाद्यनेकफलप्राप्तये इमं जलाशयं वरुणदैवतं सुपूजितं चतुर्मुखसहितं चतुःसत्त्वावच्छिन्न-स्नानपानाद्युपभोगाय अमुकसगोत्रः अमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ।।) ततो नौकां समाश्रय मध्यात्किञ्चित्तथोत्तरे।
जलाशयस्यमध्यं तु ऋत्विग्घोमं चरेत्ततः ।।३०
पूर्वावस्थायिनीं यष्टिं समारोप्य विधानतः । ततो वरुण सूक्तेन वरुणं राजतोद्भवम् ।।
पुष्करिण्या समं तेन नागयष्टयन्तरे क्षिपेत् ।।३१

'वरुणस्योत्तम्भनमसीति' 'येनापावक इति' एवं 'वातस्ययमिति' इन पाँचों मंत्रों द्वारा क्रमशः आहुति प्रदान के उपरान्त घी, गुड़ की आहुति वरुण के लिए देकर स्विष्टकृत करते हुए क्रम से उन्हें बलि प्रदान करनी चाहिए । विशेषकर वरुण के लिए शहद, घी और खीर की आहुति प्रदान के अनन्तर दिगीश्वरों के लिए जवाक्षीर, अन्य के लिए खीर, नाग के लिए पीठी की आठ आहुति प्रदान करनी चाहिए । अनंत के उत्तर तटपर कमल के पत्ते का स्तरण (बिछौना) बनाकर उसके ऊपर वरुण की चाँदी की प्रतिमा, जिसमें अष्ट धातु के आभरण तथा इनमें पूर्व के दो चरण पाँच रत्ती सुवर्ण के बने हों, स्थापित करके पूर्वार्ध भाग में पुष्करिणी की चौकोर प्रतिमा बनाकर उस आसन पर वरुण और पुष्करिणी को आसीन करके स्थापन-पूजन के उपरान्त सविधान जलाशय में उत्सर्जन करते समय इस भाँति कहना चाहिए—ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर श्रुति स्मृति के कथनानुसार वेदव्यास प्रणीत अग्निष्टोम फल प्राप्ति के लिए इस पुष्करिणी प्रतिष्ठानुष्ठान कर्म में अपने गृहस्थ विधानानुसार सुवर्ण रचित, और अलंकारों से अलंकृत एवं पूजित इस पुष्करिणी को विष्णु रूप वरुण के लिए अमुक गोत्र, अमुकदेव शर्मा मैं सादर समर्पित कर रहा हूँ उसका उत्सर्जन करना चाहिए । पुनः 'ओं अद्येत्यादि' कहकर 'अपने अग्निष्टोमादि अनेक फल प्राप्त्यर्थ वरुण देवता एवं चतुर्मुखसहित इस जलाशय को श्रेष्ठ ब्राह्मणों और चारों वर्णों के प्राणियों के स्नान पानादि उपभोग के लिए अमुक गोत्र, एवं अमुक देव शर्मा मैं सादर समर्पित कर रहा हूँ । पश्चात् नौकर द्वारा मध्य से कुछ उत्तर प्रदेश में पहुँच कर उस जलाशय के मध्य भाग में ऋत्विक् द्वारा हवनारम्भ करें । पुनः पहले से वहाँ सुरक्षित उस यष्टिका (लकड़ी या दंड) को विधानपूर्वक स्थापित एवं पूजित करने के उपरान्त वरुण सूक्त का उच्चारण करते हुए उस चाँदी की वरुण प्रतिमा को पुष्करिणी के साथ नागयष्टि

तत्रैवानन्तनागं च मन्त्रमेतदुदीरयेत् । पुण्डरीकदलाभास शुभरक्तान्तलोचन ॥
फणासहस्रसंयुक्त सुप्रतिष्ठ नमोऽस्तु ते ॥३२
दक्षिणां च ततो दद्यात्ततः पूर्णां विधाय च । मोचयेन्मकरान्ग्राहान्मीनकूर्माञ्जलेचरान् ॥३३
पद्मोत्पलं च शैवालं मन्त्रमेव प्रयत्नतः । पुष्करिण्यां च त्रिः कुर्यात्खातं सर्वप्रदक्षिणाम् ॥३४
आदित्याध्यायकं जप्त्वा क्षिपेल्लाजकपर्दकान् । पातयेत्क्षीधारां च सहस्रेण शतेन च ॥३५
सूत्रेण वेष्टयेत्प्राज्ञो रक्तेन च चतुष्क्रमात् । पथि सन्तोषयेद्दीनान्सन्तोष्य च गृहं व्रजेत् ॥३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम तृतीयभागे चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः
सरोवरादिप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्
सूत उवाच

नलिन्याश्च तथा वाप्या हृदस्य द्विजसत्तमाः । विधिं वक्ष्ये सहाङ्गेन विधानं शृणुत द्विजाः ॥१
स्वर्णपादेन मानेन पूर्वेद्युरधिवासयेत् । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण तथा अब्जैः शतैरपि ॥२
स्वमण्डले शुभे स्थाने विशेत्पूर्वमुखेन तु । गणेशं वरुणं चैव घटे सम्पूजयेच्छिवम् ॥३
वागीशं च तथा विष्णुं सूर्ये कुम्भे समर्चयेत् । पायसेनाहुतिं दद्याद्वरुणाय घृतेन च ॥४

के भीतर डाल देना चाहिए ।२३-३१। उसी स्थान पर अनंत नाग के लिए इस भाँति प्रार्थी होना चाहिए—कमल दल की भाँति प्रभा, शुभ रक्त वर्ण के नेत्र, और सहस्र फणों से संयुक्त एवं सुप्रतिष्ठित अनंत नाग तुम्हें नमस्कार है । इसके उपरान्त दक्षिणा और पूर्णाहुति प्रदान कर मकर, ग्राह, मछलियाँ, कछुवे आदि जलचरों को उसमें प्रविष्ट कराना चाहिए । कमल, नीलकमल, और शैवाल (सेवार) का प्रक्षेप मन्त्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करके उस पुष्करिणी में तीन गड्ढे प्रदक्षिणा समेत बनाना चाहिए । आदित्याध्याय के उच्चारण पूर्वक लावा कौड़ी डालने के उपरान्त सहस्रों अथवा सैकड़ों क्षीरधारा से सुशोभित करके रक्त वर्ण के सूत्र द्वारा उसे चारों ओर से आवेष्टित करने के पश्चात् मार्ग में दीनों को प्रसन्न करते हुए अपने घर को प्रस्थान करना चाहिए ।३२-३६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग का लघुउपवनप्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५
सरोवरादिप्रतिष्ठा विधान का वर्णन

सूत बोले—हे श्रेष्ठद्विजवृन्द ! नलिनी, बावली तथा सरोवर का साङ्गोपाङ्ग प्रतिष्ठा विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। प्रथम दिन स्वर्णपाद से निर्मित प्रतिमा पर सैकड़ों कमल-पुष्पों तथा 'आपोहिष्ठेति' मन्त्र से अधिवासन कर्म-सम्पादित करें ।२। तदनन्तर अपने मण्डल में शुभ स्थान पर पूर्वाभिमुख होकर घट की स्थापना करके तथा उसमें ही गणेश, वरुण और शिव की सविधि पूजा करनी चाहिए ।३। (इसके अनन्तर) सूर्य-कुम्भ में वागीश्वर तथा विष्णु की पुनः अर्चना करनी

एकैकामाहुतिं दद्यादन्येषां च स्रुवेण च । बलिदानं पायसेन उत्सृजेत्तदनन्तरम् ॥५
यूपं निवेशयेत्पश्चाद्दद्याद्धेनुं च दक्षिणाम् । पूर्णं दद्यात्सवित्रेऽर्घ्यं दत्त्वा तु स्वगृहं व्रजेत् ॥६
आरामस्य विधिं वक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिविस्तरम् । हीनारामस्य च तथा एकवृक्षस्य च द्विजाः ॥७
अरण्यमध्ये पाश्चात्ये उत्तरे वा विशेषतः । मण्डपं वर्तुलं कुर्यादर्घ्यहस्तप्रमाणकम् ॥८
तद्दक्षिणे भवेत्कुण्डं चतुरस्रं समं शुभम् । चतुर्मुखं च कर्तव्यं तोरणाद्यैरलङ्कृतम् ॥९
मन्दरादिकमावाह्य ततः सम्पूजयेत्क्रमात् । विष्वक्सेनं च तत्रैव पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥१०
भृगुं कर्णसमारूढं सर्वभूषणभूषितम् । विष्वक्सेनस्य मन्त्रोयं पूजायां चैव सर्वतः ॥११
द्वारपालं च सम्पूर्णं गौर्यादीन्कलशेषु च । स्वासु दिक्षु दिगीशानां बलिपुष्पाक्षतादिना ॥१२
नैर्ऋत्यवरुणयोर्मध्ये अनन्तं प्रतिपूजयेत् । इन्द्रेशानयोश्च मध्ये ब्रह्माणं च प्रकल्पयेत् ॥१३
वेदिपार्श्वे ततो गत्वा वेदिमावाह्य पूजयेत् । आसनं कल्पयित्वा तु सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥१४
ऐशाने कलशे विद्युद्ब्रह्माणं च तथा ग्रहान् । स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्गन्धपुष्पैर्नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥१५
मण्डलेशं वासुदेवं त्वासनं च बृहस्पतिम् । पूजयेत्परया भक्त्या पायसान्नं बलिं हरेत् ॥१६
द्विभुजं वासुदेवं च शङ्खचक्रधरं विभुम् । पद्मासनगतं ध्यायेत्पीतवस्त्रं सुशोभनम् ॥१७
नीलोत्पलदलाभासं हरिचन्दनचर्चितम् । देवर्षिसिद्धसहितं कलत्रद्वय संयुतम् ॥१८
ध्यात्वा आरोपयेदेवं बालादीनथ नायकान् । विमलाद्या नायिकाश्च दिगीशांश्च यथाविधि ॥१९

चाहिए। (इन देवों के निमित्त यज्ञ-कुण्ड में) तदनन्तर खीर की आहुति प्रदान करें तथा वरुण देव को (हव्य-स्वरूप) घी अर्पित करें।४। एक-एक आहुति स्रुव द्वारा प्रदान करते हुए पश्चात् उन्हें खीर की बलि प्रदान करनी चाहिए।५। यूप-स्तम्भ प्रवेश करने के अनन्तर धेनु समेत दक्षिणा पूर्णाहुति और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके अथ उपवन का सविस्तार प्रतिष्ठा-विधान जिससे एक वृक्ष का भी प्रतिष्ठानुष्ठान सुसम्पन्न किया जाता है, मैं बता रहा हूँ : अरण्य के मध्य भाग के पश्चात् भाग अथवा विशेष कर उत्तर प्रदेश में गोलाकार मण्डप की रचना करनी चाहिए, अर्घ्य हाथ के प्रमाण का हो उस मण्डप में चौकोर समभाग, एवं शुभ कुण्ड की रचना करके उस मण्डप के चारों दरवाजों को तोरणादि से विभूषित करना चाहिए। पश्चात् उसमें मंदरादि के आवाहन पूर्वक क्रमशः उनकी पूजा करनी चाहिए। उस स्थान पर विष्वक्सेन की अर्चा गन्ध-चन्दन द्वारा सुसम्पन्न करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। कर्ण पर आरूढ़, सर्वाभरण-भूषित भृगु को नमस्कार है। पश्चात् कलशों में द्वारपाल एवं गौर्यादि देवताओं तथा अपनी अपनी दिशाओं में दिगीश्वरों की अर्चा बलि, पुष्प, और अक्षतादि से सुसम्पन्न करके नैऋत्य में वरुण (पश्चिम) के मध्य भाग में अनन्त, इन्द्र और ईशान के मध्य में ब्रह्मा का स्थापन पूजन करते हुए वेदी के पार्श्व भाग में वेदी का आवाहन-पूजन करना चाहिए। आसन और अर्घ्य-प्रदान पूर्वक ईशान कोण के कलश में विद्युत्, ब्रह्मा, और ग्रहों की अर्चा उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक गन्ध-पुष्प, एवं नैवेद्यादि वस्तुओं द्वारा पृथक्-पृथक् सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए।६-१५। मण्डलेश वासुदेव भगवान् की आसन समेत अर्चा सुसम्पन्न करके बृहस्पति की भक्ति पूर्वक अर्चा के उपरान्त उन्हें खीर की बलि प्रदान करनी चाहिए। दो भुजा शंख-चक्रधारी-विभु, कमलासन पर सुशोभित पीताम्बर धारण किये सौन्दर्यपूर्ण उस वासुदेव भगवान् का, जो नीलकमल-दल की प्रभा सम्पन्न हरिचन्दन से चर्चित देव, ऋषि, सिद्धों समेत और दो स्त्रियों से सुसेवित हैं, इस भाँति के ध्यान पूर्वक बालों नायकों,

षोडशोच्चैः पृथग्रूपैः प्रतिपुष्पाञ्जलिक्रमात् । परितः पूजयेद्विष्णुं शिवं दुर्गां सरस्वतीम् ॥२०
शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यायेत्सोमं चतुर्मुखम् । अश्वारूढं दिव्यरूपं पद्माक्षं धृतपुष्पकम् ॥२१
वरदं देवगन्धर्वैः सेवितं मुनिभिः स्तुतम् । श्वेतं वनस्पतिं ध्यायेद्द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२
स्वरथस्थं महाबाहुं शङ्खाङ्कुशसखेटकम् । विद्यां च वामतो ध्यायेत्स्वमन्त्रेण च स्थापयेत् ॥२३
दशस्वरान्वितं तोयं स्वभावं तमसान्वितम् । मन्त्रोऽयं देवदेवस्य पूजायां विनियोजयेत् ॥२४
नीलं जयं भृङ्गिणं च परितश्च यथाक्रमात् । ततः कुशकण्डिकां कृत्वा स्थालीपाकं विधानतः ॥२५
अष्टोत्तरशतं चैव सोमाय द्वादशाहुतीः । वानस्पतेस्तथाष्टौ च आज्येऽन्येषां विधीयताम् ॥२६
एकैकामाहुतिं दद्यात्सप्तजिह्वामनन्तरम् । वास्तोष्पतय इति मन्त्रेण स्थालीपाकद्वयं नयेत् ॥२७
वनस्पतिं समुद्दिश्य ततोऽयमीरयेदृचम् । वृक्षादीन्स्थापयेत्पूर्वे गायत्र्या प्रथमं बुधः ॥२८
अब्जैरग्रं कांस्यवस्त्रं रत्नं दिक्षु यथाक्रमम् । व्रीहयश्चेति मन्त्रेण तथा च सरितश्च मे ॥२९
मित्रत्रयश्चेति तथा पूषा च मे ऋचा तथा । संस्थाप्य व्रीहीन्संवाप्य तत्रैव विधिपूर्वकम् ॥३०
क्षिपेद्गङ्गाजलं तोये सर्वौषध्युदकेन च । संस्थाप्य यजमानं च सुरास्त्वा मितिमन्त्रकैः ॥३१
आचार्यमात्मने तत्र संस्थितं द्विजपुङ्गवैः । समाप्य नित्यविधिनाचार्यायाथ च दक्षिणाम् ॥३२

विमलादि नायिकाओं और दिगीश्वरों की यथाविधान अर्चा षोडशोपचार द्वारा पुष्पाञ्जलि समेत पृथक्-पृथक् विधान से सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् चारों ओर स्थित, विष्णु, शिव, दुर्गा, सरस्वती एवं चतुर्मुख वाले सोम का ध्यान करना चाहिए, जो शुद्ध स्फटिक के समान, अश्व पर विराजित, दिव्य रूप कमल नेत्र, पुष्प धारण किये, वरदायक, देव-गन्धर्वों द्वारा सुसेवित और मुनियों से स्तुति सम्पन्न हैं। दो भुजा, पीत वस्त्र से सुशोभित, अपने रथ पर बैठे, महाबाहु, शंख, अंकुश एवं खेटक लिए उस श्वेत वर्ण के वनस्पति के ध्यान करते हुए बाँये भाग में विद्या का स्थापन-पूजन उनके मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। देवाधिदेव की अर्चा करते समय इसका उच्चारण आवश्यक होता है। दश स्वरों समेत, तमःपूर्ण जो जल स्वभाव वाला है। इस भाँति कहने के अनन्तर चारो ओर स्थित नील, जय, और भृङ्गी की क्रमशः पूजा करके कुशकण्डिका और पावन, निर्माण सविधान समाप्त कर एक सौ आठ आहुति देनी चाहिए। पुनः सोमदेव के लिए बारह, वनस्पति के लिए आठ और अन्य देवों के लिए घी की एक-एक आहुति प्रदान पूर्वक 'सप्तजिह्वामनन्तरमिति' 'वास्तोष्पतय इति' इस मंत्र के द्वारा दोनों पाकपात्रों को ले जाना चाहिए और वनस्पति के उद्देश्य से भी इस ऋचा का उच्चारण करना बताया गया है। विद्वान् को सर्वप्रथम पूर्व की ओर गायत्री मंत्र द्वारा वृक्षादिकों की स्थापना करके कमल पुष्पों से उसका अग्रभाग, काषाय वस्त्र, एवं रत्न का क्रमशः दिशाओं में स्थापन पूर्वक 'व्रीह्यश्चेति' 'सरितश्च मे इति' 'मित्रत्रयश्चेति' और 'पूषा च मेति' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए वहाँ व्रीहि का स्थापन और बीजवपन (रोपण) सविधान सुसम्पन्न करके गंगाजल एवं समस्त औषधियों समेत उस जल से बैठे हुए यजमान का अभिषेक 'सुरास्त्वामिति' मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। नित्यविधि समाप्ति के पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों समेत बैठे हुए आचार्य के लिए धेनु, लोहपात्र, सहित उनकी तथा अन्य ब्राह्मणों के लिए

धेनुं च लोहपात्रं च दत्त्वा इष्टां च दक्षिणाम् । ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दद्यात्पूर्णां गृहं व्रजेत् ।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे सरोवरादीनां प्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

क्षुद्रारामप्रतिष्ठां च वक्ष्ये च द्विजसत्तम । अमण्डले शुभे स्थाने द्विहस्तमयस्थण्डिले ।।१
स्थापयेत्कलशं तत्र सोमं विष्णुं समर्चयेत् । आचार्यमात्रं वरयेन्निशासूत्रैः प्रवेष्टयेत् ।।२
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य भूषयेद्भूषणादिना । दोहदं च ततो दद्यात्स्थापयेच्छितधारया ।।३
भोजयेत्पञ्च विप्रांश्च पुरतोऽन्ते विशेषतः । कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यपूर्वकम् ।।४
दद्याद्यूपं मध्यदेशे रोपयेत्कदलीं ततः । रम्भां च रोपयेद्दिक्षु स्थालीपाकविधानतः ।।५
अष्टावष्टौ च जुहुयादन्येषां च घृतेन तु । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्विष्टकृत्तदनन्तरम् ।।६
दक्षिणां च ततो दद्यात्पूर्णां दद्याद्गृहं व्रजेत् ।।७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

यथाशक्ति अभीष्ट दक्षिणा प्रदान करके पूर्णाहुति के अनन्तर अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए।१६-३३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में सरोवरादिप्रतिष्ठा विधान वर्णन नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

लघुउपवन प्रतिष्ठा-विधान का वर्णनम्

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! मैं छोटे-छोटे उपवन की प्रतिष्ठा कर्म विधान बता रहा हूँ । किसी शुभ स्थान में बिना मण्डल के दो हाथ प्रमाण की वेदी के निर्माण पूर्वक उस पर कलश स्थापन करके विष्णु और सोम की अर्चा करनी चाहिए । केवल आचार्य मात्र का वरण करके हरदी से रंगे सूत्रों से उन्हें उन वृक्षों को आवेष्टित एवं मालाओं और भूषणों से विभूषित करने के उपरांत शतधारासमेत दोहद का स्थापन-प्रदान करना बताया गया है । इस प्रकार की प्रतिष्ठारम्भ के समय पाँच ब्राह्मणों के भोजन दान, एवं कर्णवेध संस्कार पूर्वक उनका पूर्वोक्त वाक्यों के अनुसार उत्सर्जन करना चाहिए । मध्यभाग में यूप-स्तम्भ का स्थापन-पूजन सुसम्पन्न करने के उपरांत चारों ओर कदली-वृक्षों को लगाकर उसे सुशोभित करना चाहिए । पुनः सविधान पाक-कर्म के अनन्तर आठ-आठ आहुति प्रदान पूर्वक अन्य के लिए घी की एक-एक आहुति देकर स्विष्टकृत और दक्षिणा एवं पूर्णाहुति क्रमशः सुसम्पन्न करके अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए ।१-७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में लघुउपवनप्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रेष्ठवृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

एकादिवरवृक्षाणां विधिं वक्ष्ये द्विजोत्तमाः । वृक्षस्य पश्चिमे भागे स्थापयेत्कलशं ततः ॥१
वृक्षं संस्थापयेत्पूर्वं सूत्रेण परिवेष्टयेत् । ब्रह्माणं कलशेभ्यश्च सोमं विष्णुं वनस्पतिम् ॥२
ततस्तिलयवैर्होमानष्टाष्टौ विधिवच्चरेत् । समुत्सृज्य ततो यूपं कदल्या सह धर्मवित् ॥३
वृक्षमूले यजेद्धर्मं पृथिवीं च विशं तथा । दिगीशांश्च तथा यक्षान्नाचार्यं तोषयेत्ततः ॥४
धेनुं च दक्षिणां दद्याद्दोहदं वृक्षपूजनम् । कृत्वा सम्यग्विधानेन सविश्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ॥५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे श्रेष्ठवृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

अश्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

अथाश्वत्थप्रतिष्ठायां मूले बाहुप्रमाणकम् । स्थण्डिलं कारयेत्तत्र चन्दनेनाङ्कितं यथा ॥१

अध्याय ७

श्रेष्ठ वृक्ष प्रतिष्ठाविधान वर्णन

सूत जी बोले—श्रेष्ठद्विज वृन्द ! एक ही श्रेष्ठ वृक्ष का भी प्रतिष्ठा विधान मैं बता रहा हूँ । वृक्ष के पश्चिम भाग में कलशस्थापन पूर्वक सूत्र से आबद्ध कर वृक्ष का भी पूर्व की ओर स्थापन-पूजन करना चाहिए । उस कलश द्वारा ब्रह्मा, सोम, विष्णु, एवं वनस्पति की आराधना करके तिल और जवा की आठ-आठ आहुति सविधान प्रदान करने के उपरांत कदली-वृक्ष के साथ यूप-स्तम्भ का उत्सर्जन करना चाहिए । पुनः वृक्ष के मूल भाग में धर्म, पृथिवी, विश, दिगीश्वर, यक्ष एवं आचार्य को सपूजन प्रसन्न करते हुए धेनु समेत दक्षिणा प्रदान कर दोहद वृक्ष के सविधान पूजन समेत विधान पूर्वक सूर्य के लिए अर्घ्य-प्रदान करना चाहिए ।१-५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में श्रेष्ठवृक्ष प्रतिष्ठा विधान वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

पिप्पल प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—इसके उपरांत मैं अश्वत्थ पीपल की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ । उसके मूल भाग में चन्दन चर्चित बाहुप्रमाण की वेदी का निर्माण करके उस पर कमल की रचना एवं सामान्य विधान द्वारा

पद्मं प्रकल्पयेत्तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च । पूर्वेद्यू रात्रिसमये तद्विष्णोरिति वै ऋचा ॥२
स्थापयेद्वारिणा पूर्णं कयानेति च गन्धकम् । गन्धद्वारेति तैलेन श्रीश्चतेति च चन्दनम् ॥३
दद्याद्दूर्वाक्षतं कल्ये ब्राह्मणत्रयभोजनम् । कारयेत्सितसूत्रैश्च वेष्टयेच्चन्दनस्य च ॥४
कुम्भे विनायकं पूज्यब्राह्मणं च परे घटे । स्वदिक्षु दिक्पतींश्चापि वृक्षमूले नवग्रहान् ॥५
मण्डले शिवमभ्यर्च्य पीठपूजापुरःसरम् । पूर्वे चण्डं प्रचण्डं च दक्षिणे नन्दिभृङ्गिणौ ॥६
अनन्तं पश्चिमे काममुत्तरे गणनायकम् । कार्तिकेयं मध्यदेश आधारशक्तिपूर्वकम् ॥७
अनन्तं पृथिवीं चैव त्रिवृत्तं च त्रिमण्डलम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि श्वेतं वृषभमेव च ॥८
द्विभुजं शूलहस्तं च सर्वाभरणसंयुतम् । आरोपयेत्स्वतन्त्रेण मूले विष्णुं समर्चयेत् ॥९
शङ्करं च तथा मध्ये अग्रे ब्रह्माणकं यजेत् । बलिं च पिष्टकान्नं च दत्त्वा च श्रपयेच्चरुम् ॥१०
जुहुयाद्रुद्रमुद्दिश्य रुद्रसङ्ख्याहुतिं क्रमात् । अन्येषां च स्रुवेणैव होमं दद्यात्प्रयत्नतः ॥११
रोपयेत्कदलीवृक्षमाचार्यं परितोषयेत् । कृत्वा पूर्णां पञ्चधारां कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् ॥१२
क्षीरधारां च सम्पाद्य अर्घ्यं दत्त्वा गृहं व्रजेत् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे अश्वत्थप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अर्घ्य-प्रदान करने के अनन्तर पहले दिन रात्रि के समय 'तद्विष्णोरिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक जलपूर्ण उसे स्थापित करके 'कयानेति' मंत्र से गंध, 'गन्धद्वारेति' मंत्र से तैल, 'श्रीश्चेति' मंत्र से चन्दन सादर समर्पित करना चाहिए । दूर्वा, अक्षत समेत उसकी सादर सेवा के अनन्तर प्रातः तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर उसे श्वेत सूत्रों से आवेष्टित एवं चन्दन-चर्चित करते हुए कुम्भ में विनायक, दूसरे घट में ब्रह्मा, अपनी-अपनी दिशाओं में दिगीश्वरों और वृक्ष के मूलभाग में नवग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करते हुए मण्डल में शिव की अर्चा, पीठासन, पूजा पूर्वक पूर्व की ओर चंड-प्रचण्ड, दक्षिण की ओर नंदी और भृंगी, पश्चिम की ओर अनन्त, काम, उत्तर की ओर गणनायक, कार्तिकेय, और मध्यप्रदेश में आधार शक्ति पूर्वक अनन्त, पृथिवी, तीन भाँति की गोलायी लिए तीन मण्डल का स्थापन-पूजन करना चाहिए । अब मैं उनका ध्यान बता रहा हूँ, दो भुजा, शूल हाथ में लिए, समस्ताभरण विभूषित, उस श्वेत वर्ण के वृषभ की स्वतंत्र स्थापना करके मूल भाग में विष्णु, मध्य में शंकर, अग्रभाग में ब्रह्मा की पूजा करके पीठी की बलि प्रदान पूर्वक खीर का पाक बनाकर रुद्र के लिए ग्यारह आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए । अन्य के लिए स्रुवा द्वारा हवन करना बताया गया है । कदली-वृक्ष के आरोपण पूर्वक आचार्य को सन्तुष्ट करके पूर्णाहुति एवं पाँच धारा प्रदान करते हुए प्रदक्षिणा समेत क्षीर-धार एवं अर्घ्य-प्रदान कर अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए ।१-१३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पिप्पल प्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

बटप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

वटस्थानमथो वक्ष्ये तस्य मूले तु दक्षिणे । त्रिहस्तवेदिमुपरि स्थापयेत्कलशत्रयम् ॥१
गणेशं च शिवं विष्णुं पूजयित्वा हुनेच्चरुन् । रक्तसूत्रैस्त्रिगुणितैः स्वर्णमेव पुरःसरम् ॥२
यवक्षीरबलिं दद्यादुत्सृजेद्वाक्यमुच्चरन् । यूपमारोपयेत्पश्चाद्वटमूलैः समर्पयेत् ॥३
यक्षान्नागांश्च गन्धर्वान्सिद्धांश्चैव मरुद्गणान् ॥४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे बटप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

विल्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

वक्ष्ये बिल्वप्रतिष्ठां च पूर्वेद्युरधिवासयेत् । त्र्यम्बकं चेति मन्त्रेण स्थापयेद्गन्धवारिणा ॥१
सुनाभेति च मन्त्रेण मे गृह्णामीति चाक्षतम् । कयानेति ततो धूपं वस्त्रं माल्यं निवेदयेत् ॥२

अध्याय ९

बट-प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—मैं वट (बरगद) का प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ, उसके मूलभाग के दक्षिण की ओर तीन हाथ की वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर तीन कलशों के स्थापन पूर्वक गणेश, शिव, और विष्णु का क्रमशः स्थापन-पूजन सुसम्पन्न करते हुए खीर का हवन करना चाहिए । पश्चात् रक्तवर्ण के तीन सूत वाले सूत्र से उसे आवेष्ठित करके सुवर्ण प्रदान पूर्वक जवाक्षीर की बलि समर्पित करने के उपरांत पूर्वोक्त वाक्यानुसार उत्सर्जन और वटमूल द्वारा यूपस्तम्भ का स्थापन तथा यक्ष, नाग, गन्धर्व सिद्ध, और मरुद्गणों को सन्तुष्ट करते हुए समाप्ति करना चाहिए ।१-४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में बटप्रतिष्ठाविधान वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

बिल्व-प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—वेलवृक्ष की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, इस अनुष्ठान में सर्वप्रथम दिन अधिवासन कर्म में 'त्र्यम्बकमिति' मन्त्र से सुगन्धित जल पूर्ण स्थापन, 'सुनामेति' 'गृह्णामिति' इन मंत्रों से अक्षत, 'कयानेति' से धूप, वस्त्र और मालाओं को अर्पित करने के उपरांत रुद्र देव, मध्य में दुर्गा, कुबेर

यजेद्रुद्रं ततो देवं मध्ये दुर्गां धनेश्वरम् । ततः कल्ये समुत्थाय नित्यं निर्वर्त्य शास्त्रतः ॥३
स्वगृहे सप्त विप्रांश्च भोजयेद्द्विजदम्पती । मूले हस्तद्वयं दत्त्वा वर्तुला वेदिका भवेत् ॥४
तत्र गैरिकयुक्तेन कुसुंभचूर्णके न वा । निशारक्तेन वा कुर्यादष्टपत्रं सुशोभनम् ॥५
निवेष्टनं ततः कुर्याद्वृक्षस्य द्विजसत्तमाः । रक्त सूत्रैर्वेष्टयेच्च पञ्चसप्तनवभिस्तु ॥६
व्रीहींश्च वापयेत्तत्र उत्तराभिमुखस्तथा । शिवं विष्णुं च ब्रह्माणं पूजयेद् भूतिमिच्छता ॥७
शिवं च नायकं कुर्यादादित्यान्पत्रमूलके । शेषं च तरुमूले तु मध्येऽनन्तं शतक्रतुम् ॥८
वनपालं च सोमं च सूर्यं पृथ्वीमनुक्रमात् । होमस्तिलाक्षतैः कार्यो बलिं दद्याद्घृतौदनैः ॥९
यक्षेभ्यो माषभक्तं च वायनानि च द्वादश । ग्रहाणां प्रीतये दद्यात्क्षीरेणावेष्टय दक्षिणाम् ॥१०
काञ्चनं कास्य पात्रं च ताम्बूलं ताम्रपात्रकम् । यूपारोपं कर्णवेधं सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ॥११
अथ रात्रिप्रतिष्ठां च वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । यक्षैकवृक्षसंस्कारे न पुनर्जायते भुविः ॥१२
पूर्वेद्युरुपवाहे तु वृक्षमूले घटं न्यसेत् । विष्णुं शिवं गणेशं च पूजयित्वा तु स्थापयेत् ॥१३
कलशान्पञ्च वा सप्त गन्धतैलैरलंकृतान् । दुग्धेन पञ्चगव्येन शङ्खतोयेन यत्नतः ॥१४
सूत्रैः संवेष्टनं कृत्वा वस्त्रमाल्यैरनन्तरम् । काण्डादिति च मन्त्रेण दद्याद्दूर्वा क्षतं ततः ॥१५
विष्णुसूक्तेन च पुनः सिन्दूराञ्जनचन्दनम् । दद्यात्फलं च दीपं च स्वयं तत्र स्वपेत्ततः ॥१६
ततः प्रभाते विमले ब्राह्मणान्सप्त भोजयेत् । पूर्ववत्कलशं कृत्वा शिवं विष्णुं गणाधिपम् ॥१७

की अर्चा की सुसम्पन्नता पूर्वक प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में शास्त्रानुसार नित्यकर्म की समाप्ति करके अपने घर में सात ब्राह्मण, और द्विजदम्पती को उनके मनोनीत-भोजन कराना चाहिए। पुनः उसके मूलभाग में दो हाथ की गोलायी में वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर सुवर्ण अथवा चाँदी युक्त कुसुम चूर्ण, और हरदी के चूर्ण द्वारा अष्ट दल कमल की सौन्दर्यपूर्ण रचना के अनन्तर द्विजसत्तम वृन्द ! वृक्ष का निवेष्टन पूर्वक रक्त वर्ण के पाँच, सात, या नव सूत्रों से उस (वृक्ष को) आवेष्टित करते हुए धान्य-वपन (बीज बोने) के पश्चात् उत्तराभिमुख होकर अपने ऐश्वर्यार्थ 'शिव, विष्णु, एवं ब्रह्मा की पूजा सविधान सुसम्पन्न करनी चाहिए।१-७। पत्ते के मूल भाग में शिव, नायक, एवं आदि देवों के पूजन करते हुए वृक्ष के मूल भाग में शेष, मध्य में अनन्त, इन्द्र, दनपाल, सोम, सूर्य, एवं पृथिवी की पूजा क्रमशः करके तिल अक्षत से हवन करके एवं घी-भात की बलिप्रदान पूर्वक यक्षों के लिए पाक किये गये उरद, बारह वायन ग्रहों के प्रीत्यर्थ प्रदान करते हुए क्षीर से उसे आवेष्ठित कर दक्षिणा समेत, सुवर्ण, कांसे का पात्र, ताम्बूल, ताँबे का पात्र प्रीतिपूर्वक अर्पित करके यूप का स्थापन, कर्णवेध संस्कार, और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके समाप्ति करना चाहिए।८-११। इसके उपरांत मैं शास्त्रविहित रात्रि-प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ। यक्ष रूपी एक वृक्ष के संस्कार-कर्म सुसम्पन्न करने से इस भूतल पर पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है। प्रथम दिन उपवाह कर्म में वृक्ष के मूल भाग में घट-स्थापन पूर्वक विष्णु, शिव, गणेश का स्थापन-पूजन के उपरान्त पाँच या सात कलशों के स्थापन करने चाहिए, जो गन्ध-तैल से अलंकृत, दूध, पंचगव्य, और शंख-जल से पूर्ण, सूत्रों से आवेष्टित, एवं वस्त्र और मालाओं से सुशोभित किये गये हों। 'काण्डादिति' मंत्र से दूर्वा और अक्षत तथा विष्णु सूक्त से सिंदूर, अंजन एवं चन्दन के अर्पण पूर्वक फल और दीपदान करके वहाँ एकाकी शयन करना चाहिए। उपरांत प्रातःकाल नित्यकर्म करने के अनन्तर सात-ब्राह्मणों के भोजन पूर्वक पूर्व की

सोमं वनस्पतिं चैव एककुम्भे समर्च्चयेत् । हुनेत्पञ्चाहुतीस्तत्र यूपं दद्यात्समुत्सृजेत् ॥१८
बलिं च पायसेनैव प्रकुर्यात्कर्णवेधनम् । वेष्टयेत्क्षीरतोयेन धान्यं धेनुं च दक्षिणाम् ॥१९
दद्यादर्घ्यं हुनेत्पूर्णं भोजयेद्द्विजदम्पती ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे विल्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

शतहस्तमितां भुष्टिं नानातरुविभूषिताम् । पूगाम्रादिफलैर्युक्तं वास्तुं कृत्वा यजेत्तु यः ॥१
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके वसेच्चिरम् । तद्विधानं प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रानुसारतः ॥२
नित्यं निर्वर्त्य विधिवत्पञ्च विप्रान्समर्चयेत् । भोजयेत्पूजयेद्विष्णुं प्रजापतिसमन्वितम् ॥३
अग्निकार्यं ततः कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११

भाँति कलशों के अर्चन और शिव, विष्णु, गणाधिप, सोम एवं वनस्पति देव की अर्चा एक कलश पर सुसम्पन्न करके पाँच आहुति प्रदान करते हुए यूप-स्थापन और उत्सर्जन कर्म की समाप्ति पूर्वक खीर की बलि, कर्ण वेध संस्कार क्षीरमिश्रित जलधारा से आवेष्टित करके धान्य, एवं धेनु समेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। पुनः अर्घ्यप्रदान, पूर्ण हवन (पूर्णाहुति) करके द्विज दम्पति को भोजन कराना चाहिए।१२-२०

श्री भविष्यमहापुराण के मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में विल्वप्रतिष्ठा-विधान-वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त।१०।

अध्याय ११

सद्वृक्षप्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सौ हाँथ की विस्तृत भूमि में मुठ्ठी के प्रमाण से नपी हुई भूमि में भाँति-भाँति के अनेक वृक्षों से सुशोभित सुपारी, आम्र आदि फल वाले वृक्षों से विभूषित गृह-निर्माण कर जो यज्ञानुष्ठान करता है, वह साठ सहस्र वर्ष के चिरकाल समय तक स्वर्ग का निवास प्राप्त करता है, मैं उसी के विधान को शास्त्रीय रीति से बता रहा हूँ नित्य कर्म की समाप्ति के उपरांत पाँच ब्राह्मणों को पूजन एवं भोजन कराते हुए प्रजापति समेत विष्णु की पूजा करके हवन और ब्राह्मण-दक्षिणा सुसम्पन्न करनी चाहिए।१-४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में सद्वृक्ष प्रतिष्ठाविधान-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।११।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मण्डपप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिष्ठां मण्डपस्यैव शैलदारुमयस्य च । तृणकाष्ठस्य च विभो तृणजस्य च द्विजाः ॥१
अधिवासस्य पूर्वेद्युः शुभे लग्ने घटं न्यसेत् । सूर्यं सोमं तथा विष्णुं कलशे तु समर्चयेत् ॥२
प्रोक्षयेत्कुशतोयेन आपोहिष्ठेति वै ऋचाः । आप्यायस्वेति गन्धेन गन्धद्वारेति गन्धकम् ॥३
आकृष्णेनेति तैलेन श्रीश्च ते इति चन्दनम् । सिन्दूरालक्तकं दद्यादञ्जनं पूर्वया सह ॥४
ततः प्रभाते विमले श्राद्धं वृद्ध्यात्मकं चरेत् । दिक्पालांश्चैव विन्यस्य मण्डपे शुभलक्षणे ॥५
मध्ये वेद्यन्तरे चैव राजभिर्मण्डलं लिखेत् । सूर्यमावाहयेत्तत्र सोमं विष्णुं च पार्श्वयोः ॥६
गणेशं च ग्रहांश्चैव दिक्पालांश्च घटेऽर्चयेत् । पायसं जुहुयादग्नावष्टोत्तरशतं तथा ॥७
आदित्यस्य तथा विष्णोः सोमस्य द्वादशाहुतीः । बलिं च पायसं दद्यात्तैलं क्षीरमथापि वा ॥८
तत उत्सृज्य विधिवद्वाक्यमेतदुदीरयेत् । । जानुभ्यामवनिं गत्वा शनैरोष्ठं न चालयेत् ॥९
वास्तोष्पतिं च तत्रैव पूजयेद्गन्धचन्दनैः । अर्घ्यं दद्याच्च विधिवद्भूतेनैवाहुतिं हुनेत् ॥१०

अध्याय १२

मण्डप-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! पत्थर-काष्ठ, अथवा तृण काष्ठ के द्वारा निर्माण किये गये मण्डप की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ। प्रथम दिन अधिवासन कर्म के निमित्त किसी शुभ लग्न में घट-स्थापन पूर्वक सूर्य, सोम, एवं विष्णु की अर्चा घट में सुसम्पन्न करनी चाहिए।१-२। पश्चात् कुश-जल से 'आपोहिष्ठेति' मन्त्र से प्रोक्षण, 'आप्यायस्वेति' और 'गंधद्वारेति' इस मंत्र से गन्ध, 'आकृष्णेनेति' मंत्र से तेल, 'श्रीश्चतेति' मंत्र से चन्दन, सिन्दूर, अलक्तक (महावर) और अञ्जन के प्रदान पूर्वक दूसरे दिन निर्मल प्रातः समय में वृद्धि-श्राद्ध करते हुए उन शुभ लक्षणों से अंकित मण्डप में दिगीश्वरों के स्थापन-पूजन करना चाहिए।३-५। पुनः मध्य भाग में दूसरी वेदी के निर्माण पूर्वक किसी रंगीन वस्तु (द्रव्य) से मण्डल की रचना करके उसमें सूर्य के आवाहन-पूजन और दोनों पार्श्व भाग में सोम, विष्णु, और गणेश, ग्रहगण, एवं दिगीश्वरों की अर्चा उस घट में सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् खीर की एक सौ आठ आहुति प्रदान करते हुए सूर्य, विष्णु, एवं सोम के लिए बारह-बारह आहुति प्रदानकर, खीर, तेल, अथवा क्षीर की बलि देनी चाहिए। उपरांत उत्सर्जन-कर्म सविधान सुसम्पन्न करते हुए घुटने के बल बैठकर इस भाँति सविधान रहना चाहिए, जिसमें धीरे-धीरे भी ओष्ठ का प्रकम्पन न होने पाये। वहीं पर गन्ध-चन्दन द्वारा सविधान वास्तोष्पति की पूजा करके विधान पूर्वक अर्घ्य प्रदान और हवन करना चाहिए। 'ओं

(ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणादिसर्वसत्त्वेभ्यो विष्णुप्रीणनार्थमिमं मण्डपं सुपूजितं सूर्यदैवतं शैलेयेष्टकादिभिः सर्वसत्त्वेभ्यो रचितं श्रुतिस्मृत्युक्तफलप्राप्तिकामनया अमुकऋषिसगोत्रः श्यमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ।।)

ततः श्वेतघटं दद्यान्मण्डपोपरि सत्तमाः । त्रिगुणेन निशाक्तैर्वा वेष्टयेद्वारिधारया ।।११
दक्षिणां विधिवद्दद्यात्सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । तृणदेश्मनि वै सूर्यं वासुदेवसमन्वितम् ।।१२
घटे गणेशं वरदं वरं कृत्वा समुत्सृजेत् । ऐशान्यां दापयेद्धूपं ध्वजान्दिक्षु प्रकल्पयेत् ।।१३
मण्डपोपरि कलशं संस्थाप्य मन्त्रमुच्चरेत् । प्रपायां वरुणः पूज्यो विश्वकर्मा प्रयत्नतः ।।१४
पृथिवीं च गणेशं च पूजयित्वा हुनेद्घृतम् । सर्ववर्ज्यमिदं वाक्यं ध्वजमात्रं विधीयते ।।१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे मण्डपप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

महायूपनिर्माणप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्हस्तं महायूपं हस्तषोडशनिर्मितम् । वक्ष्ये तं च प्रतिष्ठां च रात्रौ त्रैरात्रिकं यजेत् ।।१
वरुणं सितकुम्भे च प्रपाकूपस्य पश्चिमे । गायत्र्या स्नापयेत्पूर्वमापोहिष्ठेति वै क्रमात् ।।२

अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर ब्राह्मण आदि सभी प्राणियों के लिए विष्णु के प्रसन्नार्थ इस मण्डप का, जो सुपूजित, सूर्य प्रधान देव, पत्थर ईंट द्वारा सभी लोगों के सहयोग से सुरचित है, श्रुति, स्मृति में बताये गये फल प्राप्ति की कामना से अमुक ऋषि का सगोत्री, एवं अमुक देव शर्मा में उत्सर्जन कर रहा हूँ। सत्तमवृन्द ! तदनन्तर मण्डप के ऊपर श्वेत वर्ण के घट-स्थापित पुरस्सर तीन गुने हरदी के रंग से सूत्रों को केवल जल धारा से आवेष्टित करकें सविधान दक्षिणा और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान कर समाप्ति करनी चाहिए। तृण (छप्पर वाले) मण्डप की प्रतिमा में वासुदेव समेत सूर्य और घट में वरदायक गणेश की अर्चा करके उत्सर्जन करना चाहिए। ईशान कोण में धूप प्रदान पूर्वक दिशाओं में ध्वजाओं की स्थापना करके मण्डप के ऊपर कलश स्थापन मंत्रोच्चारण पूर्वक 'प्रपा' (पियाउ) में वरुण के पूज्य होने की भाँति यहाँ विश्वकर्मा पूजित हैं, ऐसा कहकर पृथिवी, गणेश, की पूजा और हवन कर्म घी द्वारा सुसम्पन्न करते हुए कदाचित् इन वाक्यों के त्याग भी हो जायें पर ध्वज-विधान अवश्य होने चाहिए।६-१५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में मण्डपप्रतिष्ठा-विधान वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अध्याय १३

महायूप के निर्माण एवं प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—चार हाथ अथवा सोलह हाथ के महायूप (यज्ञीय स्तम्भ) के निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा बता रहा हूँ, इसकी प्रतिष्ठा के विधान में रात्रि में तीन रात्रि तक उसका अनुष्ठान होना बताया

गन्धद्वारेति गन्धं च अंशुना चेति तैलकम् । मनोज्ञा इति कुसुमं धूरसीति च धूपकम् ॥३
कयानेति ददेद्वस्त्रं नैवेद्यं दीपचन्दनम् । आदौ श्राद्धं न कर्तव्यं प्रतिष्ठान्ते विधीयते ॥४
दम्पतीभोजनं कुर्याद्वरयेदेकब्राह्मणम् । मण्डपे चाष्टहस्ते च कलशं तत्र विन्यसेत् ॥५
पूजयेद्वरुणं देवं नारायणसमन्वितम् । शिवं च पृथिवीं चैव स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथाक्रमात् ॥६
ततः कुशकण्डिकां कृत्वा स्थालीपाकविधानतः । वरुणं च समभ्यर्च्य जुहुयादाहुतीर्दश ॥७
अन्येषां च स्रुवेणैव दद्यादेकाहुतिं क्रमात् । वरुणस्योक्तवरुणं तत्त्वायामि ततः परम् ॥८
वरुणस्योत्तम्भनमसीति च आभ्यां देवांस्तथैव च । येनापावकचक्षसा पञ्चमं समुदाहृतम् ॥९
रात्रस्य यूपमित्यादि परं च दशमस्तकम् । ततः स्विष्टकृतं कृत्वा सप्तजिह्वं चरुं नयेत् ॥१०
इह वेत्यादिकं पञ्च ततः पञ्चाहुतिं हुनेत् । शम्भवे च पृथिव्यै च महाराजाय च क्रमात् ॥११
चरुपाकेति नैवेद्यं बलिं चैवागुरूदनम् । शङ्कराय च रुद्राय शर्वाय पशुपतये इति च ॥
उग्राय असनायेति भवाय तदनन्तरम् ॥१२
महादेवाय च पुनरीशानायेति च क्रमात् । चरुपाकेति नैवेद्यं बलिं चैवागुरूदनम् ॥१३
वाक्यपूर्वं सृजेत्तोयं तत्र वाक्करणं शृणु ॥१४
(ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणादिसर्वसत्त्वेभ्यः अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः श्रुतिस्मृत्याद्युक्तं कूप-प्रतिष्ठाजन्यफलप्राप्तये इमं सुपूजितं सच्छादितं वरुणदैवतममुकसगोत्रः अमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ॥)
दक्षिणां विधिवद्दद्याद्गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥१५

गया है। श्वेत कलश में वरुण का स्थापन प्रपा (पियाऊ) या कूप के निर्माण प्रतिष्ठा में करना बताया गया है, उसमें यह भी कहा गया है कि गायत्री, और 'आपोहिष्ठेति' से स्नान, 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुना चेति' से तेल, 'मनोज्ञा इति' से पुष्प, 'धूरसीति' से धूप, 'कयानेति' से वस्त्र, नैवेद्य, दीप एवं चन्दन, अर्पित करना चाहिए। प्रतिष्ठानुष्ठान के आरम्भ में श्राद्ध न करना चाहिए, प्रत्युत उसके अंत में करना बताया गया है। दम्पती भोजन और एक ब्राह्मण के वरण करने के उपरांत इस आठ हाथ के मण्डप में कलश-स्थापन पूर्वक वरुण, नारायण देव, शिव और पृथिवी की क्रमशः उनके मंत्री द्वारा अर्चा सुसम्पन्न करके कुश कण्डिका-विधान एवं पाक-विधान करते हुए वरुण की पूजा और उन्हें दश, आहुति समर्पित करनी चाहिए। पुनः अन्य देवों के लिए स्रुवा द्वारा क्रमशः एक एक आहुति प्रदान करते हुए वरुण की प्रार्थना 'वरुणस्योत्तम्भनमसीति' 'येनापावक चक्षसेति,' एवं 'रात्रस्य यूपमित्यादि' मंत्रों के उच्चारण पूर्वक करके स्विष्टकृत् के उपरांत सप्तजिह्वामय अग्नि की जिह्वा के तृप्त्यर्थ हवि की पाँच आहुति' इह वैत्यादिकमिति इन पाँचों मंत्रों द्वारा प्रदान कर शंभु, पृथिवी, और महाराज के लिए क्रमशः आहुति प्रदान करनी चाहिए।१-११। 'चरुपाकेति' नैवेद्य, बलि प्रदान के अनन्तर शंकर, रुद्र, शिव, पशुपति, उग्र, असन, भव, महादेव, तथा ईशान के लिए क्रमशः चतुर्थ्यन्त नामोच्चारण पूर्वक आहुति प्रदान करके 'चरुपाकेति' वाक्य द्वारा जलोत्सर्जन करने में इस भाँति वाक्य योजना की जाती है। 'ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर ब्राह्मण आदि सभी प्राणियों के लिए अमुक गोत्र अमुक देव शर्मा नामक मेरे पिता के श्रुति-स्मृति निहित कूप प्रतिष्ठाजनित फल प्राप्त्यर्थ सुपूजित, भली भाँति आच्छादित, वरुण देव प्रधान इसका उत्सर्जन अमुक गोत्र, अमुक देव शर्मा मैं कर रहा हूँ। पश्चात् विधान पूर्वक दक्षिणा प्रदान करते समय दूध देने वाली गौ का दान करना चाहिए।१२-१५। द्विजवृन्द ! अब मैं मण्डप अथवा छोटे

मण्डपे क्षुद्रकूपे च प्रतिष्ठां शृणुत द्विजाः । गणेशं वरुणं कुम्भे विधिवत्पूजयेत्सुधीः ॥१६
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च दद्याद्धूपं समुत्सृजेत् । दक्षिणां विधिवद्दद्याद्विप्रान्सम्पूजयेत्ततः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे महायूपनिर्माणप्रतिष्ठावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पुष्पवाटिकाप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

पुष्पारामप्रतिष्ठां तु वक्ष्ये शृण्वन्तु वै द्विजाः । मध्ये वेदिं त्रिहस्तां च कृत्वा संस्थापयेद्घटम् ॥१
अधिवासस्य पूर्वेद्युर्यथावद्विप्रभोजनम् । कृत्वा घटे गणेशं च सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥२
नारायणं स्थंडिले च जुहुयान्मधुपायसम् । विधिवद्यूपमारोप्य गोधूमान्सेचयेद्गुरौ ॥३
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च प्रदद्याच्चेति दक्षिणाम् । एतद्धाराजलेनैव यवान्नं सगुडं पयः ॥४
ऐशान्यां यूपमारोप्य विधिवद्द्विजसत्तमाः । कर्णवेधं समारोप्य स्नापयेत्कुशवारिणा ॥५
धान्यं यवं च गोधूमं दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । शतधारजलेनैव वेष्टयेत्परितो द्विजाः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे पुष्पवाटिकाप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।१४

कूप का प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ, सुनो ! विद्वान् को चाहिए कि घट स्थापन पूर्वक गणेश वरुण की अर्चा सविधान सुसम्पन्न करके रक्तवर्ण के सूत्रों से आवेष्टित करने के उपरांत धूप का उत्सर्जन, सविधान दक्षिणा प्रदान और ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए ।१६-१७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में महायूप निर्माण प्रतिष्ठा-विधान वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

पुष्पवाटिका प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! पुष्पवाटिका के प्रतिष्ठा-विधान को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीन हाथ की सौन्दर्य पूर्ण वेदी के निर्माण पूर्वक उसके मध्य भाग में वटस्थापन करके पहले दिन अधिवासन कर्म और यथोचित ब्राह्मणों के भोजन सुसम्पादित करने के उपरांत घर में गणेश, सूर्य, सोम, अग्नि, एवं नारायण देव के पूजन करते हुए वेदी पर शहद मिश्रित खीर की आहुति प्रदान करनी चाहिए । विधान पूर्वक यूपस्तम्भ का स्थापन, बृहस्पतिवार में गेंहू का सेवन करके रक्तवर्ण के सूत्रों से उसे आवेष्टित करते हुए दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । पुनः जवा, गुड़, क्षीर मिश्रित जल धारा से आवेष्टित करके द्विजवृन्द ! ईशान कोण में सविधान यूप का स्थापन, कर्णवेध संस्कार, कुश-जल से स्नान करने के अनन्तर धान्य, जवा, गेहूँ समेत दक्षिणा ब्राह्मण के लिए अर्पित करके जल की शत धारा से उसे आवेष्टित करना चाहिए ।१-६।

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पुष्पवाटिका प्रतिष्ठा-विधान वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तुलसीप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

ज्येष्ठाषाढे तुलस्याश्च प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् । यजमानः शुद्धदिने एकादश्यामथापि वा ॥१
ततो रात्रौ घटं स्थाप्य पूजयेत्परमेश्वरम् । नारायणं शिवं सोमं ब्रह्माणं चन्द्रमेव च ॥२
गायत्र्या स्नपनं कुर्यात्तथोक्तैर्मन्त्रकैरपि । कयानेति च गन्धेन अंशुनेति च तैलकम् ॥३
त्वां गन्धर्वेति च पुनः पुष्पं मन्डंशनेति च । मानस्तोकेति कुसुमं श्रीश्चतेति च चन्दनम् ॥४
वैश्वदेवीति च पुनर्मन्त्रेणानेन चन्दनम् । दूर्वामन्त्रेण दूर्वाश्च रूपेणेति च दर्पणम् ॥५
फलमन्त्रेण च फलं समेधेति च अञ्जनम् । सकुशैः पीतसूत्राद्यैर्वेष्टयेत्क्षीरधारया ॥६
शतधाराजलेनैव वेष्टयेत्स्वगृहं व्रजेत् । वस्त्रेणावृत्य विधिवद्बुधः काले घटं न्यसेत् ॥७
सप्तपञ्चत्रिभिर्वाथ तद्विष्णोरिति वै ऋचा । स्नापयेदथ साध्वीभिः कृतमङ्गलपूर्वकम् ॥८
ततः श्राद्धं समाप्यैव मातृपूजापुरःसरम् । आचार्यं वरयेत्पूर्वं गन्धाद्यैः कुसुमैरपि ॥९
आचार्य एव होता स्याद्ब्रह्माणं च सदस्यकम् । मण्डपे दशहस्तेऽपि वर्तुले स्थण्डिलेषु च ॥१०
सहस्रं मण्डलं कुर्यात्तत्र नारायणं यजेत् । ग्रहाँल्लोकेश्वरान्मध्ये आदित्यांश्च मरुद्गणान् ॥११
रुद्रान्वसूंश्च कलशे परितश्च समर्चयेत् । ततः कुशकण्डिकां कृत्वा होमं तिलयवेन तु ॥१२

अध्याय १५

तुलसी-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—ज्येष्ठ या आषाढ़ के मास में तुलसी की सविधान प्रतिष्ठा करनी चाहिए। किसी शुद्ध दिन अथवा एकादशी तिथि में यजमान को चाहिए कि रात्रि के समय घट स्थापन पूर्वक परमेश्वर, नारायण, शिव, सोम, ब्रह्मा, एवं इन्द्र की अर्चा करते हुए गायत्री तथा पूर्वोक्त मन्त्रों से स्नान, 'कयानेति' से गंध, 'अंशुनेति' से तेल, 'त्वां गन्धर्वेति ' और 'मंडंशनेति' से पुष्प, 'मानस्तोकेति' से कुसुम 'श्रीश्चतेति' से और 'वैश्वदेवीति' से चन्दन, दूर्वामंत्र से दूर्वा, 'रूपेणेति' से दर्पण, फलमंत्र से फल, और 'समेधेति' से अञ्जन से सुसज्जित करके कुश समेत पीले वर्ण के सूत्रों से आवेष्टित करते हुए क्षीर धारा और जल की शतधारा से आवेष्टित करके अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए। पश्चात् विद्वान् को चाहिए कि समयानुसार वस्त्र से सुसज्जित घट का स्थापन सुसम्पन्न करे।१-७। पुनः 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक मांगलिक कृत्यों के अनन्तर सात, पाँच, या तीन पतिव्रता स्त्रियों द्वारा स्नान कराने के पश्चात् मातृपूजा पूर्वक श्राद्ध समाप्ति कर गंध कुसुमादि द्वारा आचार्य का वरण करना चाहिए। दश हाथ वाले मण्डप में गोलाकार वेदी के त्रिकोण में आचार्य ही होता और ब्रह्मा, सदस्य गण होते हैं। सहस्र मण्डलों की रचना करके वहाँ नारायण देव की अर्चा, ग्रहण लोक पाल, मध्यभाग में आदित्य, मरुद्गण, रुद्र एवं वसु की अर्चा चारों ओर कलश-स्थापन पूर्वक सादर सम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात्

अष्टोत्तरशतं कुर्यादन्येषां शक्तितो हुनेत् । नारायणं समुद्दिश्य दद्यादुत्सृज्य सत्तमाः ॥१३
मध्ये यूपं समुद्दिश्य चरुपाकं बलिं ददेत् । कदलीं दिक्षु संन्यस्य ध्वजान्दिक्षु प्ररोपयेत् ॥१४
दक्षिणां काञ्चनं दद्यात्तिलं धान्यं सपुष्पकम् । धेनुं पयस्विनीं दद्याद्वेष्टयेत्क्षीरधारया ॥१५
जयन्त्याः सोमवृक्षस्य तथा सोमवटस्य च । पनसस्य कदम्बस्य निम्बस्य द्विजसत्तमाः ॥१६
पाटलाकनकस्यैव शाल्मलीनिम्बकस्य च । बिम्बाशोकवटस्यैव प्रतिष्ठां नैव कारयेत् ॥१७
भद्रकस्य शमीकोणचण्डातकबकस्य च । खदिरस्यैव कर्तव्यं कर्णवेधं न कारयेत् ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे तुलसीप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रतिष्ठाविशेषनियमवर्णनम्

सूत उवाच

वृक्षादीनां प्रतिष्ठां च उत्तमेषूत्तमं चरेत् । मध्ये मध्ये कनिष्ठा तु कनिष्ठं परिकीर्तितम् ॥१
वर्तुलं मण्डलं कुर्यात्तत्तु शीर्षे तथान्यके । मध्ये वा वेदिकां कुर्यात्तन्मध्ये कुण्डमण्डलम् ॥२
पूर्वेद्यू रात्रिसमये घटं संस्थाप्य पूजयेत् । शेषं सम्पूज्य विधिवत्पृथिवीं च शिवं तथा ॥३
गन्धतोयेन गायत्र्या सेतुं सम्पूज्य मोक्षयेत् । कयानेति च मन्त्रेण आप्यायस्वेति वै ऋचा ॥४
दद्याद्गन्धादिकं श्रीश्च ते लक्ष्मीरिति चन्दनम् । दूर्वामन्त्रेण दूर्वाश्च फलमन्त्रेण वै फलम् ॥५

कुश कण्डिका विधान पूर्वक तिल-जवा की एक सौ आठ आहुति, और अन्य के लिए यथा शक्ति की आहुति प्रदान करके श्रेष्ठवृन्द ! नारायण के उद्देश्य से दान एवं उत्सर्जन करना चाहिए । मध्य भाग में यूप की प्रतिष्ठा करके पाक किये हुए हवि की बलि प्रदान कर दिशाओं में कदली वृक्ष और ध्वजाओं से सुशोभित करना चाहिए । तिल, धान्य एवं पुष्प समेत सुवर्ण की दक्षिणा और गोदान देकर क्षीर धारा से आवेष्टित करना बताया गया है । द्विजवृन्द ! जयंती, सोम वृक्ष, सोमवट, कटहल, कदम्ब, नीम, पाटल, कनक (धतूरा), सेमर, नीम, बिम्ब अशोकवटी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । भद्रक, शमी, कोण, चण्डातक, बकवृक्ष, खैर वृक्षों की प्रतिष्ठा की जाती है, पर कर्ण वेध संस्कार नहीं ।८-१८

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में तुलसीप्रतिष्ठा-विधान वर्णन
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

प्रतिष्ठा-विशेष-विधाननियम का वर्णन

सूत जी बोले—वृक्षों की प्रतिष्ठा विधान में उत्तम वृक्षों की उत्तम, मध्यम की मध्यम और कनिष्ठ की कनिष्ठ प्रतिष्ठा करनी चाहिए । उसके शीर्ष (शिर) अथवा अन्तिम भाग में गोलाकार मण्डल की रचना पूर्वक मध्य भाग में वेदी और उसके मध्य में कुण्ड मण्डल का निर्माण करना चाहिए । पहले दिन रात्रि के समय घट-स्थापन पूर्वक शेष, पृथिवी, एवं शिव का सविधान पूजन करके गायत्री द्वारा गंध जल से सेतु की पूजा के उपरांत मुक्त करना चाहिए। 'श्रीश्चतेति' से चन्दन, दूर्वा मन्त्र से दूर्वा, और फल मन्त्र से

शन्नोदेवीति मन्त्रेण दद्यात्कुशपवित्रकम् । सुरासुरेति मन्त्रेण प्रदद्याद्वस्त्रयुग्मकम् ।।६
अञ्जनालक्तकं कुर्यान्मनोन्ना इति संपठन् । कुर्याच्छ्राद्धं परदिने वसुधारापुरः सरम् ।।७
वरयेदथ आचार्यं होतारं नृवरश्चरेत् । पात्रद्वयं विधातव्यं सदस्याचार्यमेव च ।।८
सेतुयागे विधातव्यं तथा धान्याचलेऽपि च । सहस्रहोमे वैकं तु विवाहे ब्रह्मऋत्विजौ ।।९
यजेदेनं कृते मौलियागार्थं यागमण्डपम् । वेदिमावाहयेत्पूर्वं मण्डपं प्रतिपूजयेत् ।।१०
विघ्नग्रहांल्लोकपालान्सर्वसिद्धिप्रदायकान् । स्थण्डिले सर्वतोभद्रे शेषं विष्णुं प्रदर्शयेत् ।।११
तत्रैव तु वराहाख्यं प्रतीतमृत्विगुत्तमम् । स्थालीपाकेन जुहुयादष्टाविंशतिकत्रयम् ।।१२
आज्येन तु वराहस्य होमपञ्चकमीरितम् । ततस्तिलयवे नैव एकैकामाहुतिं क्रमात् ।।१३
बलिं दद्यात्पृथग्रूपं शेषयेद्विधिपूर्वकम् । पिष्टकान्नं घृतान्नं च विस्तरे वा गुडौदनम् ।।१४
माषभक्तं तु लोकाय पृथिव्यै परमान्नकम् । वाक्यपूर्वं सृजेद्धीरो वाक्यप्रकरणं शृणु ।।१५
(ॐ अद्येत्यादि एकविंशतिकुलस्य विशिष्टस्वर्गप्राप्तय इमं सेतुं सङ्क्रमसमेतं विष्णुदैवतं सुरपूजितं विधिवद्वासुदेवस्य प्रीतयेऽहमुत्सृजे ।।)
बद्धाञ्जलिः पठेन्मन्त्रं कुर्याच्च विधिवत्ततः । पिच्छिले पतितानां च उद्गतेनाङ्गभङ्गतः ।।
प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् ।।१६
सेतोरस्य प्रबन्धस्य श्रद्धया परया युतः । ये चात्र प्राणिनः सन्ति सर्वेषां प्राणधारकाः ।।१७
वेदागमेन यत्पुण्यं कथितं सेतुबन्धने । तत्पुण्यं तु मया देव पाथेये हि समर्पितम् ।।१८

फल, 'शन्नोदेवीति' से कुश और पवित्री, 'सुरासुरेति' से दो वस्त्र, 'मनोन्ना इति' मंत्र से अंजन, अलक्तक (महावर) से सुसज्जित करना बताया गया है। पुनः दूसरे दिन वसुधारा पूर्वक श्राद्ध सम्पन्न करके आचार्य एवं होताओं के वरण और आचार्य, सदस्य के लिए दो पात्रों की कल्पना की जानी चाहिए।१-८। सेतु याग, धान्य-पर्वत-विधान, सहस्र संख्या की आहुति वाले हवन कर्म में एक (आचार्य मात्र) और विवाह में ब्रह्मा तथा ऋत्विक् की भी वरण पूजा होती है। मौलियागार्थ याग-मण्डप, वेदी के पूजन में प्रथम मण्डप पूजन बताया गया है। वेदी पर सर्वतोभद्र चक्र के सौन्दर्य पूर्ण निर्माण करके उस पर विधु ग्रहगण, सर्वसिद्धिप्रदायक लोकपालों के आवाहन-पूजा करके शेष समय में विष्णु का दर्शन-पूजन होना चाहिए। वहीं पर वराह नामक श्रेष्ठ ऋत्विक् की कल्पना कर पाक-विधान द्वारा बने पाक से अट्ठाइस की तिगुनी आहुति, वराह के लिए घी की पाँच आहुति प्रदान पूर्वक पश्चात् एक-एक आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए। पुनः पृथक्-पृथक् बलि प्रदान करके पीठी के अन्न पर घी-मिश्रित अन्न अथवा विस्तृत की इच्छा हो तो गुड़-भात (मीठाभात) प्रदान पूर्वक लोक के लिए पाक किये हुए उरद पृथिवी के लिए परमान्न प्रदान करते हुए उत्सर्जन कर्म में इस भाँति कहना चाहिए—'ओं अधेत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर इक्कीस कुल के प्राणियों के एक साथ स्वर्गप्राप्त्यर्थ इस सेतु का जो संक्रम समेत, विष्णु प्रधान देव, सुरपूजित हैं, सविधान मैं वासुदेव के प्रीत्यर्थ उत्सर्जन कर रहा हूँ। पश्चात् अञ्जली बाँधकर इस विधान द्वारा प्रार्थना करना चाहिए। कीचड़ में फिसल कर गिरने अथवा अङ्गभंग होने से निधन होने पर इस धर्म सेतु की प्रतिष्ठानुष्ठान सुसम्पन्न करने से मुझे धर्म की ही प्राप्ति हो, पातक की नहीं। उत्तम श्रद्धा पूर्वक इस सेतु के प्रबन्धक गण जो सभी के प्राणाधाररूप में हैं, उनके पुण्य, वेदों और आगमों में से सेतुबन्धन के

यूपं दद्यादिति मन्त्रेण अन्ते चापि तथा ध्वजान् । विधिवद्दक्षिणां दद्यात्कुलानि नव पञ्च वा ।।१९
पूर्णां दत्त्वा सवित्रेऽर्घ्यं दत्त्वा च स्वगृहं व्रजेत् । अनातपे क्षुद्रसेतोः प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ।।२०
पूर्वं च दधिवासं च प्रभाते विप्रभोजनम् । सेतुमध्यं ततो गत्वा गन्धादीन्विधिवच्चरेत् ।।२१
विष्णुं शिवं हुताशं च एककुण्डे समर्चयेत् । वास्तोष्पतिं यजेत्तत्र होमं तिलयवेन तु ।।२२
कुर्यादेकैकशो विप्रा अष्टाविंशतिसंख्यया । उत्सृज्य दापयेद्यूपं ध्वजवर्ज्यं हि सत्तमाः ।।
ज्ञातिभिः सह भुञ्जीत कृतकृत्योऽभिधीयते ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे प्रतिष्ठाविशेषनियमवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६

अथ सप्तदशोऽध्यायः

गोप्रचारविधिवर्णनम्

सूत उवाच

तत्र दण्डे च विप्रेन्द्राश्चतुरस्रे समन्ततः । षष्टिहस्तमितां भूमिं तस्य पूर्णां मनोरमाम् ।।१
प्रचारार्थं गवां चैव यो दद्यात्सुसमाहितः । षष्टिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।।२
तदर्धं च तदर्धं च तदर्धं वा समुत्सृजेत् । यो दद्यात्केवलां भूमिं कन्यां दासीं तथा वृषम् ।।३
अलङ्कारं विना धेनुं फलस्यार्धं प्रकीर्तितम् । अमण्डपे शुभे स्थाने शर्करादिविवर्जिते ।।४

लिए जो पुण्य बताया गया है, हे देव ! उन पुण्यों को मैं पाथेय के लिए आपको सौंप दिया है । पश्चात् मन्त्र पूर्वक यूप-स्थापन विधान ध्वजों की स्थापना, सविधान दक्षिणा चौदह कुलों की पूर्णाहुति सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए । आतपहीन समय में छोटे-छोटे सेतुओं की प्रतिष्ठा सदिधान सुसम्पन्न करने में पहले दधिवासन, प्रातःकाल ब्राह्मण-भोजन के उपरांत सेतु के मध्यभाग में जाकर गन्धादि से अर्चन सुसम्पन्न करते हुए विष्णु, शिव, और अग्नि के लिए एक कुण्ड में पूजन आहुति प्रदान करके तिल-जवा से वास्तोष्पति के लिए आहुति और प्रत्येक देव के लिए अट्ठाइस आहुति प्रदान करते हुए सत्तमवृन्द ! उत्सर्जन एवं यूप-स्तम्भ विधान की समाप्ति करनी चाहिए, इसमें ध्वजा लगाना निषेध किया गया है । पश्चात् अपने बन्धुओं के साथ भोजन करने से कृतकृत्य होना बताया गया है ।९-२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में प्रतिष्ठा-विशेष-नियम वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

गोप्रचारविधि का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रेन्द्रवृन्द ! उस दण्ड में जो मन लगाकर चारों ओर से चौकोर साठ हाथ परिमाण की सुन्दर एवं पूर्ण भूमि का दान गौओं के प्रचारार्थ (चारागाह) के लिए करता है, वह साठ सहस्र वर्ष पर्यंत रुद्रलोक में सम्मानित होता रहता है। अथवा उसकी आधी, चौथाई या आठवें भाग की भूमि अथवा केवल भूमि, कन्या, दासी तथा वृषभ और अलंकारहीन धेनु का दान करता है, उसे आधे फल की प्राप्ति होती है। मण्डपहीन किसी शुभ स्थान में जो मनोरम एवं दोषहीन हो, दो हाथ की वेदी बनाकर मध्य में

द्विहस्तवेदिकामध्ये प्रकुर्यात्सेतुमण्डपम् । तत्र सम्पूजयेद्रुद्रं ब्रह्माणं च शचीपतिम् ॥५
गणेशं क्षेत्रपालं च शेषं चैव दिगीश्वरान् । पञ्चोपचारैर्विधिवत्पूजयेत्पायसादिना ॥६
स्थालीपाकेन जुहुयादन्ते वै विप्रभोजनम् । अत्र यागे श्राद्धवर्ज्यं पूर्वेद्युरधिवासयेत् ॥७
त्र्यम्बकेनैव मन्त्रेण भूमिं संस्थाप्य पूजयेत् । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गन्धतैलं सचन्दनम् ॥८
प्रदद्यादसुनीतेति पुनस्तु नैव स्थापयेत् ।पञ्चगव्येन च पुनः श्रीश्चतेति च पुष्पकम् ॥९
एवं धूपस्य च तथा ओंधगृह्णाति मन्त्रकम् । गन्धद्वारेति गन्धेन अंशुनातेति तैलकम् ॥१०
सुरासुरेति कुसुमं दूर्वामन्त्रेण दूर्विकाम् । प्रभाते पूजयेद्देवान्रुद्रमुद्दिश्य होमयेत् ॥११
स्थालीपाकेन विधिना अन्येषां पूर्ववच्चरेत् । उत्सृज्यारोपयेद्दीपं स्थिरो भवेति वै ऋचा ॥१२
तन्त्रेण निर्मितं कुर्यात्सफलं च त्रिहस्तकम् । हस्तैकं प्रापयेन्मध्ये क्षेत्रे चैव विशेषतः ॥१३
स्थापयेत्तत्र मन्त्रेण पञ्चगव्येन यत्नतः । मधुवातेति मधुना आप्यायस्वेति वै दधि ॥१४
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण घटतोयैरनन्तरम् । पृथिवीं च वराहं च कूर्ममाधवशक्तिकान् ॥१५
वास्तोष्पतिं च विष्णुं च यूपे सम्पूजयेत्क्रमात् । दद्यादर्घ्यं च विवरे गर्ते होमं विवर्जयेत् ॥१६
अर्घ्यपाद्ये च दुष्टे च हस्तेनोत्सृज्य सत्तमाः ॥ (ॐ अद्येत्यादि गोब्राह्मणसर्वसत्त्वेभ्यः पर्यटनार्थाय इमां भूमिं सुपूजितां विष्णुदैवतां गोप्रचाररूपिणीं श्रुतिस्मृत्याद्युक्तफलप्राप्तयेऽहमुत्सृजे॥)
शिवलोकस्थिता गावः सर्वदेवैः सुपूजिताः । एवं निवेदयेद्विप्रो गोप्रचारं समाहितः ॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥१७

सेतु मण्डप के निर्माण करके उसमें भद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश, क्षेत्रपाल, शेष, और दिगीश्वरों की पञ्चोपचार समेत अर्चा करते हुए पाक-विधान द्वारा बनी हुई खीर से हवन और अन्त में ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करना चाहिए। इस याग विधान में श्राद्ध करना निषेध किया गया है। पर पहले दिन, अधिवासन कर्म अवश्य करना चाहिए। पुनः 'त्र्यम्बकमिति' से भूमि स्थापन पूजन, 'तद्विष्णोरिति' से गन्ध, तेल, चन्दन के प्रदान पूर्वक पंचगव्य 'श्रीश्चतेति' से पुष्प-प्रदान करना कहा गया है। इसी भाँति धूप के स्थापन पूजन में 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुनातेति' से तैल, 'सुरासुरेति' से कुसुम, दूर्वा के मन्त्र से दूर्वा प्रदान करके प्रभात काल में देवों की पूजा पूर्वक रुद्र के उद्देश्य से हवन करते हुए अन्य लोगों के लिए भी पाक द्वारा आहुति प्रदान करनी चाहिए। उत्सर्जन कर्म के अनन्तर 'स्थिरोभवेति' से दीप-स्थापन तीन हाथ के प्रमाण में जिसमें एक हाथ का प्रमाण उसका मध्य भाग रहता है, मंत्रोच्चारण पूर्वक एवं पंचगव्य समेत 'मधुवातेति' से शहद, 'आप्यायस्वेति' से दही और 'तद्विष्णोरिति' मन्त्र से घट-जल अर्पित करते हुए उस यूप (यज्ञीय स्तम्भ) में पृथिवी, वराह, कूर्म, माधव, शक्ति वास्तोष्पति, विष्णु की क्रमशः पूजा करके उस विवर में अर्घ्य-प्रदान पूर्वक गड्ढे में हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। श्रेष्ठवृन्द ! उस अर्घ्य, एवं पाद्य के दुष्ट होने पर उसे हाथ से हटा देने चाहिए। 'ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर जो ब्राह्मण समेत सभी प्राणियों के विचरण करने के उद्देश्य से मैं इस गोप्रचार रूपवाली, विष्णु प्रधान देवता, और सुपूजित भूमिका श्रुतिस्मृतिविहित फलप्राप्त्यर्थ उत्सर्जन कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए प्रार्थना करना चाहिए—गौएँ शिवलोक में स्थित होकर समस्त देवों द्वारा पूजित हों। जो ब्राह्मण गोप्रचार कर्म में मन लगाकर इस भाँति निवेदन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में सम्मानित होता है। और इस भूतल पर जितने

यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे गोप्रचारविधिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

दिनैकसाध्यप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

कलौ चैकाहसाध्येन प्रतिष्ठामल्पवित्तवान्। सद्योऽधिवासमाज्येन प्रकुर्यात्तान्त्रिकोत्तमः॥१
उत्तरं तु गते हंसे अतीते चोत्तरायणे। शरत्काले व्यतीते तु वसन्ते यज्ञमारभेत्॥२
नारायणादिमूर्तीनां द्वात्रिंशद्भेद एव तु। प्रतिष्ठां[1] प्रतिमानां च गदास्यादींश्च[2] सत्तमाः॥३
नित्यं[3] निर्वर्त्य मतिमान्कुर्यादभ्युदयं ततः। विप्रान्सम्भोजयेद्वाथ ततो यागगृहं व्रजेत्॥४
गणेशग्रहदिक्पालान्प्रतिकुम्भेषु पूजयेत्। स्थण्डिले पूजयेद्विष्णुं परिवारगणं यजेत्॥५
स्नापयेत्प्रथमं देवं तोयैः पञ्चविधैरपि। पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः पञ्चमृत्पिण्डकैरपि॥६
तिलतैलैश्च स्नेहैश्च कषायैरपि सत्तमाः। पञ्चपुष्पोदकैर्वाथ त्रिपदैरपि सत्तमाः॥७

दिन शुभ तृण-युग्मों की स्थिति सुरक्षित रहती है, उतने सहस्र वर्ष स्वर्ग लोक में वह सम्मान प्राप्त करता रहता है।१-१८

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में गोप्रचारविधि वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।१७।

अध्याय १८

एक दिन में साध्य-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—कलियुग के घोर संकटकालीन समय में अल्प धनिक वर्गों के लिए भी एकदिन में साध्य होने वाली प्रतिष्ठा का विधान बताया गया है, (मैं बता रहा हूँ)। उसे चाहिए कि उसी समय शीघ्रातिशीघ्र घी द्वारा अधिवासन कर्म की समाप्ति करे। सूर्य के उत्तरायण होने शरदकाल के व्यतीत होने पर वसन्त के समय इस यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करना बताया गया है। सत्तमवृन्द! उस प्रतिष्ठानुष्ठान में नारायण आदि देवों की बत्तीस प्रतिमाओं एवं गणेश आदि देवों की अर्चा सुसम्पन्न करके नित्यक्रिया के उपरांत आभ्युदयिक श्राद्ध, एवं ब्राह्मण-भोजन कराकर यज्ञभवन में उस बुद्धिमान् को प्रवेश करना चाहिए। प्रत्येक गणेश और दिगीश्वरादि देवों की अर्चा घटस्थापन पूर्वक करते हुए उसके वेदी पर परिवार गण समेत विष्णु की अर्चा सविधि सुसम्पन्न करना चाहिए। सर्व प्रथम पाँच प्रकार के जल, पंचामृत, पञ्चगव्य, और पाँच स्थान की मिट्टियों द्वारा देवों को स्नान कराकर तिल के तेल, कषाय स्नेह, पाँच पुष्पोदक अथवा त्रिपद द्वारा उनकी आराधना करनी चाहिए। तुलसी, कुसुम, पुष्पपत्र को त्रिपत्र,

---

१. विदधातेति शेषः। २. संपूज्येति शेषः। ३. तदेव व्यासेनाह—नित्यं निर्वर्त्येत्यादि।

तुलसीकुसुमापुष्पपत्राण्याहुस्त्रिपत्रकम् । पञ्चकाम्रशमीपद्मकरवीरं च पञ्चकम् ॥८
मृत्तिका करिदन्तस्य तथाश्वखुरमृत्तिका । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तु पञ्चमम् ॥९
कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां च होमं कुर्याद्यथाविधि । दक्षिणां विधिवद्दद्यात्पूर्णां तु तदनन्तरम् ॥१०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे दिनैकसाध्यप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामऽष्टादशोऽध्यायः।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवादिप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं तु विप्रेन्द्राः काल्यादीनां तथैव च । अधिवास्य च पूर्वेद्युः श्राद्धमभ्युदयात्मकम् ॥१
प्रथमे जलजैः स्नानं पञ्चगव्यैरनन्तरम् । पूर्ववच्च विधानेन कुम्भे दुर्गां समर्चयेत् ॥२
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः करीषशतधारया । श्रीबिल्वे पूजयेद्देवीं दद्यात्प्राणमनन्तरम् ॥३
बिल्वपत्रैः फलैर्वापि दद्याच्चापि शताहुतीः । एकैकशस्तु सर्वेषां दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् ॥४
प्रतिमां कालिकायाश्च तारायाश्च पृथक्पृथक् । ग्राह्यं विनार्चयेद्विप्राः पञ्चपञ्चशतैरपि ॥५
भोजयेत्स्नापयेद्देवीं गन्धतोयैर्दिनत्रयम् । ताम्रकुम्भेऽर्चयेद्देवीं त्रिदिनं प्रातरेव हि ॥६
समीरणं ततो दद्यात्पेटिकायां निवेशयेत् । ततोऽपि गन्धतोयैश्च स्नापयेत्कन्यकादिभिः ॥७
ततो वै चाष्टमदिने रात्रावपि प्रपूजयेत् । पशुदानं प्रकर्तव्यमग्निकार्यं च पायसैः ॥८

पंचक, आम, शमी, कमल, कनेर को पञ्चक, गजदाँत, अश्वखुर की मिट्टी, गो-मूत्र, गोबर, दूध, दहीं एवं घी को पञ्चगव्य कहते हैं। इस भाँति सविधान प्राण-प्रतिष्ठा-विधान सुसम्पन्न करके विधान पूर्वक हवन, दक्षिणा प्रदान के अनन्तर पूर्णाहुति करनी चाहिए।१-१०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में दिनैकसाध्यप्रतिष्ठा विधान वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।१८।

अध्याय १९

देवी आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रेन्द्रवृन्द ! इसके उपरांत मैं काली आदि की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, वह प्रतिष्ठा विधान भी उसी भाँति का है उसमें भी पहले दिन अधिवासन, एवं आभ्युदयिक श्राद्ध सुसम्पन्न करके जल तथा पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराकर पूर्व की भाँति सविधान घटस्थापन पूर्वक दुर्गा की अर्चा करनी चाहिए। पञ्चामृत, पञ्चगव्य की शतधारा द्वारा बेलवृक्ष के द्वारा देवी की पूजा के उपरांत प्राण-प्रतिष्ठा-कर्म सुसम्पन्न करके बेल के पत्र अथवा फलों द्वारा सौ आहुति प्रत्येक के लिए प्रदान कर सुवर्ण की दक्षिणा समर्पित करनी चाहिए। विप्रवृन्द ! कालिका और तारा देवी की प्रतिमा के पृथक्-पृथक् पूजन पच्चीस सौ आहुति प्रदान पूर्वक तीन दिन तक गन्ध जल द्वारा देवी का स्नान सुसम्पन्न करते हुए ताँबे के कलश में तीन दिन तक प्रातः कालीन पूजा करने के उपरांत वायु का उनके कन्याओं द्वारा गन्ध एवं तेल से उन्हें स्नान कराते हुए आठवें दिन भी रात्रि में सविधान उनकी पूजा, पशुदान, एवं खीर की आहुति प्रदान

शिवलिङ्गप्रतिष्ठां च वक्ष्ये तन्त्रमतं यथा । त्रिविप्रं भोजयेद्विप्रा अधिवास्यं विशेषतः ॥९
नित्यं समाप्य च पुनः कुर्यादभ्युदयं ततः । आचार्यं वरयेत्प्रातः स्नापयेत्पूर्ववर्त्मना ॥१०
परिवारगणैः सार्द्धमर्चयेत्तदनन्तरम् । दद्यात्समीरणं पश्चादग्निकार्यं समाचरेत् ॥११
तिलहेममयीं गां च दद्याद्गां च विधानतः । न नाम न च गोत्रं च होमकर्मणि सर्वदा ॥१२
पूर्णिमायां विशेषेण नान्येषां च कथञ्चन । होमान्ते वसुधारां च कुम्भे दत्त्वा विधानतः ॥१३
त्रिहस्तचरकायं च हस्तैकं चतुर्हस्तके । शालग्रामशिलायाश्च प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ॥१४
सद्योऽधिवासयेद्देवं द्वादश्यां स्नापयेदथ । रत्नतोयैः परिमलैस्त्रिगन्धैः पञ्चपल्लवैः ॥१५
कुम्भे प्रजापतिं स्थाप्य श्वेताब्जं नवनाभके । नवदुर्गोक्तमार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥१६
चक्रस्वरूपतो ज्ञेयं प्रदद्याच्च समीरणम् । आनीय ताम्रभाण्डे च त्रिकालं प्रतिपूजयेत् ॥१७
पायसान्नैरुत्पलैर्वा पङ्कजैर्वापि होमयेत् । सकाञ्चनं वस्त्रयुग्मं प्रदद्याद्भूरिदक्षिणम् ॥१८
श्रीसूर्यस्य गणेशस्य विरिञ्चेश्चापि सत्तमाः । वटवृक्षान्तिकं गत्वा स्थापयेद्वरुणं ततः ॥१९
रक्ताब्जे पूजयेत्सूर्यं परिवारसमन्वितम् । अष्टाविंशतिभिर्दत्त्वा दद्यात्प्राणमनन्तरम् ॥२०
एकाहमथवाकाशे गुप्तं कृत्वा दिनत्रयम् । त्र्यहादेव पुनः पूजां पुनर्होमं समाचरेत् ॥२१
पुनश्च भोजयेद्विप्रान्दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् । वाराह्यास्त्रिपुरायाश्च नारिकेलोदकैरपि ॥२२

करनी चाहिए।१-८। तंत्र मतानुसार मैं तुम्हें शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, इस अनुष्ठान में तीन ब्राह्मणों के भोजन सुसम्पन्न करने के अनन्तर विशेषकर अधिवासन कर्म की समाप्ति और नित्यकर्म करके आभ्युदयिक श्राद्ध एवं आचार्य का वरण करना चाहिए। पुनः प्रातः समय पूर्वोक्त रीति से स्नान कराकर परिवार गणों के साथ उनके अर्चन, वायुदान करते हुए हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए। पश्चात् तिल और सुवर्ण की गौ और विधान पूर्वक गोदान अर्पित करना बताया गया है। हवनकर्म में सदैव नाम गोत्र की अपेक्षा न रखनी चाहिए। विशेषकर पूर्णिमा में सभी के लिए यह बाते कही गयी है। तदनन्तर उस कलश में सविधान वसुधारा प्रदान करना चाहिए। शालिग्राम शिला के प्रतिष्ठा विधान, तीन, चार, अथवा एक हाथ की वेदी पर सुसम्पन्न करने के लिए पहले अधिवासन कर्म करके द्वादशी में प्रधान देव के स्नान और रत्न-जल, मकरन्द, तीनों गन्ध, एवं पाँचों पल्लवों से सुसज्जित कर उस कलश में प्रजापति, नवनाभक पर श्वेतकमल, एवं नवदुर्गा के प्रदर्शित पथ द्वारा परमेश्वर की पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् उन्हें चक्रांकित कर समीरणदान पूर्वक लाकर ताँबे के पात्र में उनकी त्रैकालिकी-पूजा करनी चाहिए। पुनः खीर, नील कमल या रक्तकमल की आहुति प्रदान पूर्वक सुवर्णसमेत युगलवस्त्र और अभीष्ट अधिक से अधिक की दक्षिणा प्रदान करना बताया गया है।९-१८। श्रेष्ठ वृन्द ! सूर्य, गणेश और विरञ्चि देव के प्रतिष्ठा-विधान को मैं बता रहा हूँ। किसी वटवृक्ष के समीप कलशस्थापन पूर्वक वरुण-स्थापन पूजन के उपरांत रक्त कमल में परिवार समेत सूर्यकी पूजा करके अट्ठाइस आहुति प्रदान करते हुए प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। पश्चात् एक-दिन अथवा तीन-दिन आकाश स्थल में उन्हें गुप्त रखकर पुनः तीन दिन के पूजनोपरांत हवन कर्म, ब्राह्मण, भोजन, एवं सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। वाराही अथवा त्रिपुर सुन्दरी देवी के प्रतिष्ठा-विधान में

स्थापयेद्वा विधानेन सिन्दूराद्यैः समर्चयेत् । दद्यात्समीरणं पश्चात् पुनः पूजां च होमयेत् ।।२३
पशुदानं च कर्तव्यं षण्मासैः पञ्चमोदकैः । कुमारीं भोजयेद्रात्रौ दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् ।।२४
प्रतिमां भुवनेशीं च महामायाम्बिकामपि । कामाक्षीं च ततो देवीमिन्द्राक्षीं चापराजिताम् ।।२५
पूर्वेद्यू रात्रिसमये पिष्टकाष्टौ निवेदयेत् । अष्टौ निर्माणयेत्पश्चाद्बलिं चाष्टौ विधानवित् ।।२६
परिवारगणैः सार्द्धं पूजयेत्प्रयतः सुधीः । समीरणं ततो दद्याच्छिवं सूर्यं यजेत्पुनः ।।२७
पायसान्नैश्च जुहुयात्त्रिदिनं लिपिपूजनम् । कुमारीपूजनं कुर्यादग्निकार्यं दिनत्रयम् ।।२८
पशुदानं च कर्तव्यं विभवे सति सत्तमाः । रात्रौ जागरणं कुर्यान्मठोत्सवपुरःसरम् ।।२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे देवादिप्रतिष्ठावर्णनं
नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

ग्रहोपद्रवोत्पातशान्तिवर्णनम्

सूत उवाच

दुर्निमित्तान्यथो वक्ष्ये शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । यस्य ये ग्रहदोषाः स्युस्तेषां शान्तिं यथाक्रमात् ।।१
दिव्यन्तरिक्षे भौमे चेत्येवं त्रिः परिकीर्तितम् । ग्रहर्क्षाद्यैः कृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे ।।२
उल्काहितो दिशो दाहः परिवेषस्तथैव च । जलाशयानां वै कृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम् ।।३

नारियल के जल द्वारा भी उनके स्थापन पूर्वक सविधान सिन्दूरादि से उन्हें विभूषित करना चाहिए। पुनः समीरण दान, पूजा और हवन करने के अनन्तर छह मास के पशु की बलि, पाँच प्रकार के जल से स्नान, रात्रि में कुमारी भोजन सुसम्पन्न करते हुए सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। भुवनेशी देवी की प्रतिमा, महामाया, अम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राणी देवी, एवं अपराजिता देवी के लिए पहले दिन रात्रि के समय पीठी के आठ भोज्य पदार्थ, सविधान आठ बलि और पश्चात् परिवार गणों समेत उनकी पूजा बुद्धिमानों को सुसम्पन्न करनी चाहिए। पुनः समीरण दान, शिव, सूर्य की पूजा, तीन दिन तक खीर की आहुति, विधिपूजन, कुमारी पूजन, तीन दिन तक हवन कार्य, तथा सत्तम वृन्द यथा शक्ति पशुदान और उस मठ के उत्सव पूर्वक रात्रि जागरण करना चाहिए।।१९-२९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में देवादिप्रतिष्ठावर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।१९।

अध्याय २०

ग्रहोपद्रवोत्पात शान्ति का वर्णन

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ वृन्द ! मैं उत्पातसूचक दुर्निमित्तों को तथा ग्रह दोष जनित उपद्रव की क्रमशः शांति बता रहा हूँ, आप लोग सुनिये ! स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी द्वारा ये अशुभ सूचक दुर्निमित्त उत्पन्न हैं, जिनका शांति-विधान सुसम्पन्न करना अत्यावश्यक होता है। यह नक्षत्र जनित उपद्रवों को दैवी, आकाश से गिरते हुए एक पतली रेखा के समान उस तेज पुञ्ज को, जिसके द्वारा दिशाओं में ज्वलन उत्पन्न होता है, परिवेष (किसी तेज राशि का मण्डलाकार दर्शन एवं जलाशय जनित कल्प को

भौमं चाल्पफलं ज्ञेयं दिव्यान्तरिक्षमेव च । सप्ताहमफलं दद्याद्दैवं चापि च तत्क्षणात् ॥४
देवानां हसनं चैव कल्कनं रुधिरस्रवः । अकस्माद्व्यसनं तत्र यत्र निर्घातनिर्दयः ॥
सर्पाद्यारोहणं चैव दैवं तदपि कीर्तितम् ॥५
ततो मेघात्समुत्पन्ना यदि वृष्टिः शिलातले । सप्ताहाभ्यन्तरे जीवमुत्पन्नं निष्फलं भवेत् ॥६
एकराशिस्थिताः पापाः शनिभौमदिवाकराः । पृथ्वी धूमाकुला तत्र रुदन्ति बहवो जनाः ॥७
अभिचारं गते जीवे शनौ च तत्र नागते । तत्र पश्यति राजेन्द्रः को धरां धारयिष्यति ॥८
सूर्यमपश्यनो द्वन्द्वं दिग्दाहश्च तथैव च । दर्शनं धूमकेतोश्च नक्षत्रे धूमदर्शनम् ॥९
भूकम्प एव मासे च एकमासे तथा दिने । राज्ञो जन्मदिने वाथ शक्रचापं दिनान्तरे ॥१०
दर्शनं खरवातस्य ग्रहयुद्धस्य दर्शनम् । मासत्रये तु ग्रहणमुल्कापातप्रपातनम् ॥११
आकाशेऽप्यथ भूमौ च तत्र मण्डूकमेव च । हरिद्रावृष्टिः पाषाणे सिंहबिल्वाकृतिर्यदि ॥
दर्शने राष्ट्रदुर्भिक्षमकरं नृपतिक्षयः ॥१२
चैत्रे कुम्भे नदीवेगदर्शने विप्लवो भवेत् । अर्कस्याद्भुतमेतद्धि स्रुग्युक्तं श्रपयेच्चरुम् ॥१३
आकृष्णेनेति मन्त्रेण अथवार्केण यत्नतः । प्रासादतोरणं तत्र द्वारं प्राकारवेश्म च ॥१४
धान्यसारं गवां सारं कूपेकुम्भप्रदर्शनम् । आदित्यस्याद्भुतं विद्यात्कमलं जुहुयात्ततः ॥१५

अन्तरिक्ष तथा भौम (भूमि में होने वाला) भी कहते हैं ।१-३। भौम का अल्प फल एवं दैवी अन्तरिक्ष के अन्तरिक्ष जनित अशुभ सूचक के परिणाम एक सप्ताह के उपरांत और देव का उसी समय दृष्टि गोचर होता है ।४। देवताओं का हँसना, कलह, रुधिर का स्राव, एवं निर्दयता पूर्ण आघात (वज्रादि जैसे गिरने) से वहाँ की जनता को भाँति-भाँति के अनेक दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं । उसी भाँति सर्पादि जीवों के आरोहण करने को भी दैवी ही बताया गया है ।५। उनके आरोहण करने के उपरांत यदि शिलातल पर घन वृष्टि होती है, तो एक सप्ताह तक के उत्पन्न जीव नष्ट हो जाते हैं ।६। एक राशि पर पाप ग्रह शनि, मंगल, एवं सूर्य के स्थित होने पर पृथिवी धूम संकुल से आच्छन्न हो जाती है और अनेक लोगों के आँसुओं की अविरल धारा बहती रहती है ।७। बृहस्पति के अभिचार स्थान पर प्राप्त होने और (उस समय) शनि के प्राप्त होने पर भूपेन्द्र कातर दृष्टि से देखते हुए चिंतातुर होता है कि यह पृथिवी अब किसके सहारे टिकेगी ।८। सूर्य को न देखने वाले को द्वन्द्व (शीतोष्ण दुःख) अनुभव करना पड़ता है उसी भाँति दिशाओं में धूमकेतु तारा के दर्शन तारा में धूम दिखायी पड़ने से एक मास अथवा उसी दिन में भूकम्प होता है । राजा के जन्म दिन या दूसरे दिन इन्द्र धनुष का दर्शन तीखी हवा और ग्रहों के युद्ध दिखायी देने से तथा तीन मास में ग्रहण पड़ने से उल्कापात जनित दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं ।९-११। आकाश और भूमि में उस समय मेढ़क, पत्थर की शिला पर हरदी रंग की वृष्टि, सिंह और बेल की आकृति दिखायी देने से राष्ट्र, दुर्भिक्ष तथा राजा का नाश होना बताया गया है । चैत्र मास में कुम्भ के सूर्य रहते हुए उस समय नदी-वेग दिखायी पड़ने से उपद्रव होता है । यह विप्लव सूर्य द्वारा उत्पन्न होता है पुनः उसकी शांति के लिए स्रुवा द्वारा हवि की आहुति, 'आकृष्णेनेति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रासादतोरण से सुसज्जित उस मण्डप में प्रदान करनी चाहिए।१२-१४। धान्य तत्त्व, गोतत्त्व या कुम्भ के कूप में दिखायी देने से इसे आदित्य जनित बताया गया है, इसकी निश्चित शांति के लिए कमल पुष्प की

सहस्रं जुहुयाद्वाथ ततः शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् । विकृताः पक्षिणश्चैव पाण्डुकपोतकास्ततः ॥१६
श्वेतोलूको बृहंश्चैव द्रोणकाकश्च कोकिलः । क्रौञ्चश्च वर्द्धनी चैव निपतन्ति गृहे यदि ॥१७
गृहे तस्य महोत्पातो भविष्यति न संशयः । स्थूलभङ्गग्रहणं प्ररोहणमथापि वा ॥१८
हाराः कटकटायन्ते जातस्य दन्तसम्भवः । हसता देवतानां च गात्रे स्वेदश्च जायते ॥
सर्पमण्डूकप्रसवः कुम्भे वापि क्वचिद्भवेत् ॥१९
निमित्तान्येवमादीनि जायन्ते यस्य वेश्मनि । षड्भिर्मासैश्च म्रियते गृहिणी च शुभा च या ॥२०
अशनिः पतते यत्र गृहे वज्रं च पादपे । शुक्ला वह्निस्फुलिङ्गाश्च तस्य विद्धि महद्भयम् ॥२१
खर्जूर उदरावर्ते निकोचगरलेऽपि च । फलिवृक्षे तिन्दुके च यत्र निर्जायते क्वचित् ॥२२
उद्याने देवगेहे च स्वगृहे चैत्यवृक्षके । कुर्यादादित्यवारे वा अयुतं तिलपायसम् ॥
ततः शान्तिर्भवेदाशु धेनुं दद्याच्च दक्षिणाम् ॥२३
पायसं तिलमुद्गौ च पुष्पं वा तालवृन्तकम् । इक्षुमोदकपिण्याकाञ्जुहुयाद्रविमुद्दिशन् ॥२४
सिंहासनं रथश्छत्रं ध्वजश्चामरभूषिते । अकस्माद्दृश्यते यत्र राज्ञो वान्यत्र कुत्रचित् ॥२५
नश्यन्ति च सत्यस्योज्ज्वलनं स्त्रीपुरुषयोः । आगमस्य च दृष्ट्वैव भङ्गः कटकटायनम् ॥२६
उपरिष्टाद्भवेद्यस्य महोत्पातो भवेदयम् । चलत्वं चाधरस्यापि तथा कटकटायनम् ॥२७
रुदितं कोकिलस्यापि उलूकोऽप्यशुभं वदेत् । राजामात्यविनाशाय महीं च तत्सुतोऽपि वा ॥
हस्तिनो मदयुक्ताश्च म्रियन्ते नात्र संशयः ॥२८
ताडीपूगादयो यत्र यमौ स्यातां प्रमादतः । गेही तत्र विनश्येत सदारः पुत्रसंयुतः ॥२९

सहस्र आहुति प्रदान करनी चाहिए। गृह के ऊपर (उल्लू) द्रोण कौवा, कोकिल, क्रौंच एवं वर्द्धनी (बढ़नी झाड़ू) गिरे तो उसघर में महान् उत्पात हो, इसमें संशय नहीं। हँसते हुए देवों के भागों में स्वेद, कुम्भ में साँप और मेढक के प्रसव आदि दुर्निमित्त जिसके गृह में उत्पन्न हों, उसकी शुभ मूर्ति पत्नी का देहावसान छः मास के भीतर हो जाता है। जिसके गृह या वक्ष पर वज्रा-घात होते हुए अग्नि कण की भाँति शुक्ल वर्ण की चिनगारियाँ दिखायी दें, तो उसे महान्, भय-ग्रस्त होना समझना चाहिए।१५-२१। खजूर, जल-भँवर, अखरोट, तृण के मूलभाग, फल लगे हुए वृक्ष, तेंदू, बगीचे, देवालय, निजगेह, और चैत्य वृक्ष पर वज्रपात होने से सूर्य के दिन तिल मिश्रित खीर की दश सहस्र आहुति धेनु की दक्षिणा समेत प्रदान करनी चाहिए, उससे शीघ्र शांति प्राप्त होती है। यह खीर, तिल मूंग, पुष्प, ताड़-फल के गुच्छे, गुड के लड्डू, तिल की खली की आहुति सूर्य के उद्देश्य से प्रदान करनी चाहिए।२२-२४। राजा के सिंहासन, रथ, ध्वज, चामर समेत छत्र के आकस्मिक दर्शन अन्यत्र होने उनके प्रसन्न होने स्त्री पुरुष की कामनाओं के जलते हुए दिखाई देने, वेदादि के दर्शन से कटकटायन (दाँतों का बजना) के भङ्ग होने इस भाँति के दुर्निमित होने वाले गृह पर व्यक्ति के महान् उत्पात होते हैं और उसी प्रकार अधरोष्ठ के स्फुरण होने एवं दाँत के कटकटाने से भी कोकिल के रुदन, उलूक को अशुभ वाणी, राजा, मन्त्री अथवा उनके पुत्र पृथिवी के विनाश और मदमत्त हाथी का निधन होता है, इसमें संशय नहीं।२५-२८। जिसके गृह में प्रमादवश ताड़-वृक्ष और सुपारी के वृक्ष यमल (दो मिले हुए) उत्पन्न होकर रह जाते हैं, उस पुरुष की स्त्री-पुरुष समेत मृत्यु हो जाती है। किसी बद्ध पुष्प में दूसरे पुष्प अथवा फल के अक्षत दर्शन हों तो

बद्धपुष्पे यदा पुष्पं फलं वा यदि दृश्यते । अक्षतादर्शनात्तत्र सोमस्याद्भुतदर्शनम् ॥
दधि मधु घृतं चैव जुहुयादयुतं द्विजाः ॥३०
पालाशं सोममुद्दिश्य सोमस्य च भवेद्दिने । इमं देवा इति मन्त्रेण सोमाय श्रपयेच्चरुम् ॥३१
उत्पतन्ति गृहे यस्य यवा माषाश्च पुष्कलाः । दधिक्षीराज्यपाकेषु रुधिरं दृश्यते यदि ॥३२
अकस्माद्गृहदाहस्तु अनग्निज्वलनं यथा । मेघहीना भवेद्विद्युद्वृषस्योद्गमनं तथा ॥३३
व्याधिलीना विनश्यन्ति निखिलाः पशुमानुषाः । एवं सर्वाणि भूतानि भवन्त्यकारके ध्रुवम् ॥३४
राजामात्यविनाशाय गेहे गेही विनश्यति । प्राणनाशाय विप्राणाहुत्या च प्रभवन्ति हि ॥३५
दृष्ट्वा चाभद्रमत्युग्रं जुहुयादयुतं क्रमात् । दधिमधुघृतैर्युक्तं खादिरोदुम्बरेऽपि च ॥३६
अग्निर्मूर्द्धेति मन्त्रेण श्रपितं लोहितं चरुम् । त्रिविप्रान्भोजयेद्दद्याद्दक्षिणां लोहितं ततः ॥
स्वर्णमङ्गारमुद्दिश्य ततः शान्तिः प्रजायते ॥३७
पुष्पं वा पातयेद्यत्र फलं वापि तथैव च । दध्यन्नं च घृतैर्मिश्रं रौप्यं हिरण्यमेव च ॥३८
हस्त्यश्वमहिषा गावो दारापत्यधनानि च । तुष्टेनाङ्गारकेणैव सर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥
आङ्गारकेण मन्त्रेण खादिरं चाक्षतैर्युतम् ॥३९
दक्षिणां च यथाशक्ति दद्याद्विप्राय वा पुनः । लोहितं च बलिं दद्यात्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥४०
धावन्ति चोर्ध्वपुच्छाश्च गृहे गावः स्वयं यदि । आरोहन्ति गृहं विप्राः सारमेयाश्च सूकराः ॥४१
गृहे यस्य भवन्त्येते तस्य भार्या विनश्यति । सर्वेषां वा भवेन्मृत्युर्वन्ध्या गौर्वा प्रजायते ॥४२

उसकी शान्त्यर्थ दही, शहद, घी की दश सहस्र आहुति पलाश की समिधा द्वारा प्रज्वलित अग्नि में सोम के दिन सोम के उद्देश्य से 'इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक खीर समेत प्रदान करनी चाहिए और इस उपद्रव को सोम द्वारा उत्पन्न होना बताया गया है।२९-३१। जिसके गृह में जवा, उरद भूसी समेत ऊपर उड़ते हुए दिखायी दें और दही, क्षीर, एवं घी के पाक में रुधिर का दर्शन हो, तो उसके यहाँ अकस्मात् गृह-दाह होता है। मेघ हीन विद्युत-दर्शन, एवं वृष (बैलों) के ऊपर की ओर कूदना-दौड़ना हो, तो सभी पशु और मनुष्य व्याधि-पीड़ित होकर मर जाते हैं। बिना शांति किये हुए इसी भाँति सभी प्राणियों, राजा, और मंत्री के विनाश, गृह में प्रधान गृहपति के विनाश होते हैं। अतः प्राण-रक्षार्थ ब्राह्मण के भोजन-दान और अग्नि को आहुति-प्रदान अवश्य करना चाहिए। किसी अकल्याणकर या उग्रतम दुर्निमित्त के होने पर क्रमशः दही, शहद, घी की दशसहस्र आहुति खैर या गूलर की प्रज्वलित अग्नि में 'अग्निमूर्धेति' मंत्र द्वारा लोहित वर्ण की खीर समेत प्रदान करना चाहिए, तथा तीन ब्राह्मणों के भोजन लोहित (रक्त) वर्ण या सुवर्ण की दक्षिणा समेत भौम के उद्देश्य से देने चाहिए, इससे शीघ्र शांति प्राप्त होती है।३२-३७। पुष्प, फल, दहीं एवं घी मिश्रित अन्न, चाँदी, सुवर्ण, हांथी, घोड़े महिष गौएँ स्त्री, पुत्र धन ये सभी पदार्थ भौम-ग्रह के प्रसन्नार्थ देना चाहिए एवं उनके प्रसन्न होने पर प्राप्त भी करना चाहिए। उस समय अंगारक (भौम) के मंत्रोच्चारण पूर्वक खैर की प्रज्वलित अग्नि में अक्षत समेत आहुति प्रदान कर ब्राह्मण के लिए यथा शक्ति दक्षिणा, और रक्त वर्ण की बलि प्रदान करने से शुभ की प्राप्ति होती है। विप्रवृन्द! पूँछ ऊपर किये गायें गृह में दौड़ती हों, कुत्ते और सूकर गृह के ऊपर चढ़ते हों, तो उस घर में उसकी स्त्री का विनाश, अथवा सभी का विनाश या गायें वंध्या हो जाती हैं।३८-४२।

मिथ्यावादेन गेही च राज्ञा वादैश्च तिष्ठति । अथवा यद्गृहे गावो नर्दयन्ति हसन्ति च ।।४३
धरणीहननं यत्र द्वयोरास्कन्दनं तथा । निमित्तान्येवमादीनि गोभ्यजातानि सत्तमाः ।।४४
यस्य गेहे भवन्त्येते नाशस्तस्य भवेद्ध्रुवम् । मण्डूकसर्पकूष्माण्डाः प्रसुवन्ति यथा स्त्रियः ।।४५
अकस्माद्यदि चैतानि बुधस्योत्पातलक्षणम् । शान्तिं तत्र प्रवक्ष्यामि यथा सम्पद्यते सुखम् ।।४६
दधिमधुघृताक्तं च अपामार्गं तथा पुनः । अयुतं बुधवारे च जुहुयाच्छ्रद्धया युतः ।।४७
उद्बुधस्वेति च मन्त्रेण बुधाय श्रपयेच्चरुम् । सुवर्णं बुधमुद्दिश्य गां च दद्यात्पयस्विनीम् ।।४८
सुवर्णं पुष्पवृष्टिं च सुफलं चाक्षतं तथा । गृहे प्राङ्गणके यस्य निपतन्ति कदाचन ।।४९
अलङ्कारयुतां वापि सर्वाभरणभूषिताम् । गृहमध्ये तु यः पश्येत्क्षीणामन्तर्हितां स्त्रियम् ।।५०
अकस्मान्मालतीपुष्पं जातं स्यात्तस्य वा गृहे । सोमाय न च सन्तुष्टः सर्वमेतत्प्रदृश्यते ।।५१
धनं धान्यं तथा पुत्र ऐश्वर्यं च वरस्त्रियः । सभृत्याश्च महिष्यश्च मरिष्यन्ति न संशयः ।।५२
श्रीश्चतेति च मन्त्रेण अपामार्गं तथा बुधः । सहस्रं बुधवारे च जुहुयाद् घृतसंयुतम् ।।५३
पयस्विनीं तथा गां च वासोयुगसमन्वितम् । द्विजाय श्रद्धया दद्यात्ततः सम्पद्यते शुभम् ।।५४
रक्तस्रावो भवेद्यत्र तत्र ऋत्विक्प्रसूयते । सिंहव्याघ्रगवादीनां धनहानिविपत्करः ।।५५
एको वृषस्त्रयोगावः सप्ताष्ट नव दन्तिनः । संवत्सरेण तस्यैका प्रसूतिर्विहिता पुनः ।।५६
पुनःपुनर्व्रतं चाशु अकाले मैथुनं तथा । गावो यत्र प्रसूयन्ते यमौ दोषकराविमौ ।।५७

अथवा मिथ्या कलह करने वाले गेही और राजा हो जाते हैं। जिसके गृह में गायें चिल्लाती और हँसती हों, पृथिवी में आघात करती हो, या दो गायों के आक्रमणात्मक युद्ध हों, अथवा सत्तमवृन्द ! इसे अश्व भी करें, तो इस प्रकार के दुर्निमित्त वाले गृह का निश्चित विनाश हो जाता है। स्त्रियों की भाँति मेढ़क, साँप, या कुम्हड़े में आकस्मिक प्रसव हो, तो इस उपद्रव सूचक को बुध द्वारा किया गया बताया गया है। उसकी शांति एवं सुख होने के विधान मैं बता रहा हूँ। बुधवार के दिन श्रद्धा-समेत दही, शहद एवं घी में डुबाकर अपामार्ग (चिचिरा) की दशसहस्र की आहुति 'अम्बिकेति' मंत्र पूर्वक बुध के उद्देश्य से खीर सहित प्रदान करनी चाहिए, पश्चात् सुवर्ण की दक्षिणा दूध देने वाली गौ के दान समेत ब्राह्मण के लिए अर्पित करनी चाहिए।४३-४८। जिसके गृह के प्राङ्गण में सुवर्ण, पुष्पवृष्टि, सुन्दरफल, अक्षत के आकस्मिक पतन ऊपर से कभी हों, एवं गृह के मध्य भाग में अलंकार समेत समस्त आभूषणों से सुविभूषित किसी क्षीण स्त्री के दर्शन हों, जो उसी समय अन्तर्हित हो जाये, अथवा उस घर में मालती पुष्प आकस्मिक उत्पन्न हो जाय, तो धन, धान्य, पुत्र, ऐश्वर्य, उत्तम-स्त्री एवं सेवक समेत प्रधान रानी की निश्चित मृत्यु होती है।४९-५२। विद्वान् को चाहिए कि उसकी शान्ति के लिए बुधवार के दिन 'श्रीश्चतेति' मंत्र द्वारा अपामार्ग (चिचिरा) को घी में डुबाकर उसकी सहस्र आहुति प्रदान पूर्वक दूध देने वाली गौ तथा दो वस्त्र दक्षिणा रूप में ब्राह्मण के लिए अर्पित करें उससे पश्चात् शांति प्राप्त होती है।५३-५४। जहाँ कहीं रक्तस्राव होता है, उसे ऋत्विक् प्रसव कहते हैं, उससे सिंह, वाघ, गौ आदि की धन हानि-पूर्वक उसे विपत्ति में फँसना पड़ता है।५५। एक वृष (बैल), तीन गायें, और चौबीस हाँथियों के प्रसव, वर्ष में एक बार होना बताया गया है, किन्तु यदि ये शीघ्रता वश अल्प समय में गर्भ धारण और अकाल में मैथुन एवं

भञ्जीकृतानि धान्यानि व्रीहयो यवतण्डुलाः । ग्राविमार्जारमण्डूकाः स्थूणाभङ्गे च प्राङ्गणे ॥५८
विकिरन्ति नखैर्भूमिं प्ररोहन्ति ग्रहं तथा । गृहे यस्य प्रजायन्ते तस्य मृत्युर्न संशयः ॥५९
षण्मासाभ्यन्तरे यत्र श्मशानं यास्यति ध्रुवम् । कलहं ज्ञातिवैरं च व्याधिपीडा भविष्यति ॥६०
विप्रलापो मित्रनाश इष्टेष्वनिष्टदर्शनम् । भार्यापुत्रविनाशश्च भवेदेषु विनिश्चितम् ॥६१
क्रियावन्तं यदा कुर्वन्कुर्वीत गृध्रबिल्वके । तदा राज्ञां विभ्रमश्च तथागृहविनाशनम् ॥६२
अमात्यवर्गाश्च पुरे राज्ञां राज्यपराङ्मुखाः । बृहस्पतिं समुद्दिश्य गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥६३
वारिमण्डे च कूपे च वाप्यां च मधुकाञ्जिके । क्षीरं दधिघृतं चैव जातं यदि भविष्यति ॥६४
अकस्मात्तत्र वृक्षश्च फलेन सह संयुतः । गृहमध्ये प्रजायेत ततः सम्पद्यते शुभम् ॥६५
बृहस्पतेस्तु तुष्टस्य सर्वमेतन्निदर्शनम् । गौरं बृहस्पतेश्चैव पकुर्यात्प्रायदक्षिजाम् ॥६६
अशुभं हि शुभेनैव शान्तिं होमं च कारयेत् । तत्रैव राक्षसं यत्र घटकं परिशोषणम् ॥६७
केसरी शर्करा तैलं राजतं ताण्डवं स्थितम् । माषभक्तं तथा धान्यं सुवर्णं रजतानि च ॥६८
ताम्रं कांस्यं तथा लोहं सीसकं पित्तलं तथा । स्थापितानीव दृश्यन्ते गृहे चैतानि यस्य वै ॥६९
धननाशो भवेत्तस्य स्वर्गभङ्गो ह्यथापि वा । व्याधिपीडे तथा घोरे राजोपद्रवबन्धने ॥
गजाश्वपशुभृत्यानां विनाशो जायते ध्रुवम् ॥७०

इसी भाँति गौ के प्रसव भी, दोनों दोष कारक बताये गये हैं। धान्य, ब्रीहि, जवा और चावल के कूट-छाँट कर रखने, उस समय टूटे खम्भे वाले प्राङ्गण में ग्रावि, बिल्ली, और मेंढक अपने नाखूनों से भूमि खोदते हों, और कूद-कूद कर ऊपर घर के चढ़ते हों, तो उस गृहपति की मृत्यु होती है इसमें संदेह नहीं। तथा छः मास के भीतर ही किसी की निश्चित श्मशानयात्रा (निधन), गृह में कलह, बन्धुओं से वैर एवं रोगजनित व्यथा उत्पन्न होती है। वियोग, मित्रनाश, इष्ट में अनिष्ट-कारक के दर्शन तथा पत्नी-पुत्र के विनाश भी अवश्यम्भावी होते हैं। किसी क्रियाशील की रचना करते हुए यदि गृद्ध और बिल्व (बेल) की रचना कर डाले उससे राजा को मोह तथा गृह विनाश होता है। और मंत्री वर्ग उस राजा के प्रतिकूल विरुद्ध-आचरण उस राजधानी में ही करने लगते हैं। अतः इसके शांत्यर्थ बृहस्पति के उद्देश्य से दूध देने वाली गौ के दान करना चाहिए।५६-६३। वारिमण्ड, कूप, बावली में शहद और कांजिका (सिरका ऊख से बनायी गयी खटायी) डालने से क्षीर का दही और घी बन जाये तो उस मनुष्य के घर में आकस्मिक फल समेत वृक्ष के उत्पन्न होने से शुभ होता है, अन्यथा नहीं। इन सभी उपद्रवों को वृहस्पति द्वारा उत्पन्न होना कहा गया है, अतः उनके प्रसन्नार्थ श्वेत वर्ण की राई, कमल और केसर का दान करना चाहिए। शुभ कार्य द्वारा अशुभ की शांति की जाती है, अतः इसके लिए हवन करना आवश्यक होता है, क्योंकि वहाँ परिशोषण करने वाला कोई घटक राक्षस ही रहता है।६४-६७। केसरी, शक्कर, तेल, शोभन नृत्य, पका उरद, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, काँसा, लोहा, सीसा, और पीतल पदार्थ जिसके घर में रखे हुए की भाँति आकस्मिक दिखायी दे, तो उसके धन का नाश, स्वर्ग की यात्राभङ्ग, घोर व्याधि-पीड़ित अथवा राजा की आज्ञा द्वारा बंधनों से बँधे (अर्थात् हथकड़ी बेड़ी) पहने हुए मृत्यु प्राप्त करना, एवं हांथी, घोड़े पशु और सेवकों की निश्चित मृत्यु होती है।६८-७०

यस्यैतानि प्रदृश्यन्ते पर्वतः कनकानि च । सम्पत्तस्य प्रजायेत निश्चला सुखदा सदा ।।७१
दन्तोत्तरेषु दन्ताश्च पङ्क्तिमाक्रम्य संस्थिताः । तेऽपि दोषकराः सर्वे शलाकाकृतिनस्तथा ।।
उपदन्ताश्च सर्वे ते न ते दोषकराः क्वचित् ।।७२
भाण्डे कुम्भे यदा चैव श्रूयते घनगर्जितम् । कञ्चुकानां गृहे चैव प्राकारः श्रूयते यदि ।।७३
मूषिकानां मुखे चैव ज्वलन्ती यस्य पश्यति । गेही तत्रैव नश्येत शुक्रस्याद्भुतदर्शनम् ।।७४
शांतिं तत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् । शमीपत्रं निर्मितं च यवैर्युक्तं गृहिण्यपि ।।
दधिमधुघृताक्तं च जुहुयाद्भार्गवे दिने ।।७५
शुक्लवासोयुगं चैव गां च शुक्लां पयस्विनीम् । सुवर्णं श्रद्धया चैव दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।।७६
देवागारे यदा भूमिर्लोहिता यस्य दृश्यते । पुष्पिता दृश्यते लोके तत्र विद्धि महद्भयम् ।।७७
राजा वा राजपुत्रो वा राज्यं वापि विनश्यति । मन्त्रिणो मन्त्रिपुत्राश्च म्रियन्ते नात्र संशयः ।।७८
यत्र वा दृश्यते लोके गृहे यस्य सुपूजिताः । पुष्पिताश्च गृहस्तम्भाः शरीरं च घटस्तथा ।।७९
हस्त्यश्वमहिषाश्चैव अजागावस्तथैव च । नित्यं स्वामिवधार्थाय पुष्पितां प्रवहन्ति च ।।८०
गृहे हंसो गृहे सम्यङ्मण्डूका जलचारिणः । द्वारे प्रविश्य सर्पश्च प्रतिमायाः प्रकल्पनम् ।।८१
अकस्माद्घटशब्दोऽपि यत्र कुत्रापि जायते । स्रवन्ति प्रमदा यत्र भिन्नास्ते स्युर्नवांगिकाः ।।८२
गृही तत्र विनश्येत सपुत्रपशुबान्धवः । धनुःखड्गधरा रात्रौ मध्याह्ने चान्द्रके तथा ।।८३
उदितो दृश्यते व्योम्नि ज्वलितः पावकस्तथा । मनुष्याङ्गनानां मरणं तथा स्याद्राष्ट्रविप्लवः ।।८४

जिसे पर्वत और सुवर्ण के दर्शन होते हैं, उसे निश्चल एवं सदैव सुख-दायक सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। दाँतों के ऊपरी स्थान में पंक्ति में आबद्ध होकर निकले हुए एवं शलाका की भाँति निकले हुए दाँत अशुभ सूचक माने जाते हैं, किन्तु, कहीं, इन्हें निर्दोष भी बताया गया है। किसी पात्र या घट में घन-गर्जन, भृत्यों के गृह में खाईं, तथा चूहियों के मुख में प्रकाश दिखायी देने से उस गृहपति की मृत्यु होती है, इस दोष को शुक्र द्वारा उत्पन्न होना कहा गया है, मैं उसकी शांति बता रहा हूँ, जिससे कल्याण की प्राप्ति होती है। शुक्र के दिन गृहपति या गृहिणी, शमी पत्र और जवा को दही, शहद एवं घी में डुबाकर उसी की आहुति प्रदान पूर्वक दो श्वेत वस्त्र शुक्ल वर्ण की दूध देने वाली गौ और सुवर्ण की दक्षिणा श्रद्धा-समेत ब्राह्मण को समर्पित करनी चाहिए। जिस किसी के निर्माण कराये हुए देवालय की भूमि रक्तवर्ण, और घर की भूमि पुष्पित (फूली हुयी) दिखायी देती है, उसे महान् भय उपस्थित होता है और राजा अथवा राजपुत्र का निधन एवं राज्य-विनाश, मंत्री या उसके पुत्र का निधन होता है, इसमें संदेह नहीं। जिस किसी के यहाँ घर में भली भाँति से पूजित गृह के स्तम्भ, शरीर, घट, हाथी, घोड़े, महिष (भैंस), अजा (बकरी), और गायें पुष्पित दिखायी देती हैं, वहाँ अवश्य गृहपति का निधन होता है।७१-८०। गृह में हंस, मेढ़क, जलचर या सर्प दरवाजे पर पहुँच कर किसी कल्पित प्रतिमा की भाँति अवस्थित दिखायी दे जिस किसी स्थान में घट-शब्द सुनायी पड़े और किसी नवीन बधू के रक्तस्राव, या किसी अंग के विदीर्ण होने से उस गृहपति का पुत्र, पशु एवं बन्धुगण समेत विनाश होता है। रात्रि के समय धनुष और खड्ग लिये मध्याह्न में चन्द्र, एवं आकाश में प्रज्वलित अग्नि के उदय के दर्शन होने से स्त्री-पुरुषों के निधन और राष्ट्र विप्लव

रससिद्धानि वस्तूनि सुराद्यश्चापि वा पुनः । हस्तिनो मदयुक्ताश्च अश्वा धीरितहिंसकाः ।।
विनश्यन्ति सदा चैते शनैरद्भुतदर्शने ।।८५
नगरे वा तथा ग्रामे जायन्ते तस्य वैरिणः । दिवा वा यदि वा रात्रौ शनेरद्भुतदर्शनम् ।।८६
मृगव्याघ्रादिरक्षांसि तथा गोमहिषा अपि । उत्पतन्ति यदा चैते शनेरद्भुतमादिशेत् ।।८७
निधिमन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । जुहुयादयुतं सम्यक्सस्यांश्च समिधं द्विजाः ।।८८
शन्नो देवीति मन्त्रेण शुभार्थं शनिवासरे । चरुं च श्रपयेत्तत्र समुद्दिश्य शनैश्चरम् ।।८९
गां च नीलां ततो दद्याज्जीवद्वत्सां पयस्विनीम् । वासोयुगं च विप्राय सुवर्णं रजतं तथा ।।९०
दत्त्वा तु श्रद्धया सम्यग्दक्षिणां शिरसि स्थिताम् । विधिं होमावसाने तु ततः सम्पद्यते शुभम् ।।९१
यदा द्वारे गोधिका च शङ्खिनी प्रविशेद्गृहम् । तदाऽशुभं विजानीयाद्राजपीडा धनक्षयः ।।
अयुतं जुहुयात्सम्यक्ततः सम्पद्यते शुभम् ।।९२
विना गर्जितमेघेन शिलावृष्टिः प्रजायते । रक्तमिश्रा हि पांडुश्च पतन्ती यत्र दृश्यते ।।९३
तत्र सन्दृश्यते चाभ्रं वृक्षा वातविवर्जिताः । शक्रध्वजस्तथा चापं पतनं सुमनस्य च ।।९४
दिवा शिवा पुरा रौति उलूको वा निशाचरः । निशि निपत्य काकुत्स्थे प्रदेशे रौति वा वृषः ।।९५
अधर्मप्रबला देशा राजा धर्मपराङ्मुखः । अन्योन्यं च जिघांसन्ति गोब्राह्मणमथापि वा ।।९६
गृहे गृही विनश्येच्च सपुत्रपशुबान्धवः । उत्सानं द्वारदेशेऽस्य मरणं राष्ट्रविभ्रमः ।।९७
राज्यनाशो भवेद्राज्ञो मरणं वाहनस्य च । विपरीतानि देशानि क्रमतः सम्भवन्ति हि ।।९८

होता है ।८१-८४। रस द्वारा सिद्ध की गयी वस्तुओं, मद्य आदि, मतवाले हाथी, घी काटने वाले, अश्व के विनाश शनि-जनित उत्पात में सदैव हुआ करते हैं । दिन अथवा रात्रि में शनि द्वारा उत्पात होता है, तो उसके शत्रु सभी नगर या ग्राम वाले हो जाते हैं । मृग, वाघ, आदि, राक्षस, गौ-महिष की उत्पत्ति द्वारा शनि कृत उत्पात सूचित होता है ।८५-८७। द्विजवृन्द ! मैं शुभकारक निधि मंत्र बता रहा हूँ, समिधा समेत शस्यों की दश सहस्र आहुति शनि के उद्देश्य से 'शन्नो देवीति' मंत्र द्वारा हवि समेत प्रदान करनी चाहिए । पश्चात् नील वर्ण की गो, जीवित बछड़े समेत दूध देने वाली गाय और दो वस्त्र समेत सुवर्ण और चाँदी की दक्षिणा ब्राह्मण के लिए समर्पित करके हवन के उपरांत उसे कल्याण की प्राप्ति होती है । दरवाजे पर गोधा (गोह), और शंखिनी के गृह में प्रवेश करने से अशुभ होना बताया गया है—राजा की ओर से पीड़ा एवं धन-क्षय होता है—अतः उसकी शांति के लिए दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए, उसी से शुभ की प्राप्ति होती है विना गर्जन के शिला वृष्टि (पत्थर पड़ने), रक्त मिश्रित पांडु वर्ण की होती हुयी वर्षा के दर्शन हों तो वहां पर मेघ, वायु संचार-हीन वृक्ष, इन्द्र-धनुष, इन्द्र ध्वज, एवं पुष्प-वृष्टि दिखायी देती है । दिन में पहले स्यारनी के रुदन, रात्रि में उलूक (उल्लू) या निशाचर की अशुभ वाणी, और रात में बैलों के बीच में कूदकर किसी बैल के चिल्लाने से उस देश में अधर्म की प्रधानता, धर्मविहीन राजा, (प्रजाओं में) एक-दूसरे की हिंसा गो-ब्राह्मणों की भी हिंसा करते हैं । गृह में पुत्र, पशु और बान्धव समेत गृहपति के विनाश द्वारा प्रदेश में मरण, राष्ट्र-विप्लव, राज्य-नाश राजा एवं वाहनों के निधन और उस समस्त प्रदेश में प्रतिकूल आचरण होने लगता है ।८८-९८।

राहुणा ग्रस्तसूर्योऽपि निशि चाथ यदा दिवा । तारकागणवच्चैव राज्ञां निधनकारकः ॥९९
सहामात्या विनश्यन्ति स्वर्गे ये च सुदुर्जयाः । परचक्रेण पात्यन्ते राजानो नात्र संशयः ॥१००
छायाध्वजश्च गगने दृश्यते चेत्कदाचन । दर्शनादेव राज्ञस्तु विनाशः सहराष्ट्रकैः ॥१०१
ज्वलितो दृश्यते यत्र पावकश्च सकृज्जले । वज्रे शिरसि गात्रे वा जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥१०२
द्वारोपान्ते तथा स्तम्भे आग्निर्वा धूम एव वा । पुरुषस्य तु तत्रैव मरणं जायते ध्रुवम् ॥१०३
गगनेऽशनिघातश्च शक्तिहस्तेन वा पुनः । अब्दस्याभ्यन्तरे तस्य मरणं नात्र संशयः ॥१०४
शिखावलयमध्ये तु सधूमः पावकोद्गमः । दृश्यते नगरे मध्ये तत्रैवाद्भुतदर्शनम् ॥१०५
शवस्य नीयमानस्य उत्थानं वा प्रमादतः । स्थापितस्य च लिङ्गस्य अन्यत्र गमनं तथा ॥१०६
निर्घातश्चापि भूकम्पो निवातोल्काप्रदर्शनम् । अकाले पुष्पिता वृक्षाः फलं चाकालसम्भवम् ॥१०७
अनिमित्तानि सर्वाणि दूरमागत्य निर्भरम् । अनिमित्तस्य नाशो यः सैंहिकेयकृतस्य च ॥१०८
नराणामासनं चैव गवां वा मानुषीगिरा । पक्षमात्रान्तरे तस्य पुत्रस्य मरणं दिशेत् ॥१०९
अयुतं जुहुयात्तत्र राहुमुद्दिश्य यत्नतः । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् ॥११०
दधिमधुघृताक्तं च कुर्याद्दूर्वाक्षतं तथा । कलायु इति मन्त्रेण जुहुयाद्रविवासरे ॥१११
चरुं च श्रपयेत्तत्र राहुमुद्दिश्य संश्रयात् । होमं कुर्यात्ततो गां च कपिलां[१] च पयस्विनीम् ॥११२
अतसीं तिलशङ्खौ वा वासोयुगमथापि वा । श्रद्धया राहुमुद्दिश्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥११३

दिन की भाँति रात्रि में भी राहु द्वारा ग्रस्त हुए सूर्य (सूर्यग्रहण) दिन में तारागण की भाँति राजाओं की मृत्यु का सूचक होता है। स्वर्ग में भी दुर्जेय समझे जाने वाले राजा की मंत्री समेत मृत्यु राष्ट्र द्वारा शीघ्र हो जाती है, इसमें संदेह नहीं। आकाश मण्डल में कभी ध्वज की छाया का आकस्मिक दर्शन हो, तो राज्य समेत राजा का विनाश होता है। जल में एक बार भी प्रज्वलित अग्नि के दर्शन, वज्र, शिर, एवं शरीर में भी दिखायी देने से उस मनुष्य के जीवन की आशा का त्याग कर देना चाहिए। दरवाजे के समीप, या किसी स्तम्भ में अग्नि अथवा धूम दिखायी दे तो उस पुरुष की निश्चित मृत्यु हो जाती है। आकाश में वज्राघात, शक्ति समेत हाथ के आघात जिसे मालूम पड़े उस वर्ष के भीतर ही उसकी मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं। नगर के मध्य भाग में स्थित किसी शिखावलय के भीतर धूएँ समेत अग्नि के प्रादुर्भाव शव के वहन करते हुए प्रमादवश उसका उठाना, स्थापित शिवलिङ्ग का अन्यत्र ले जाना, वज्राघात, भूकम्प, वायुहीन उल्का के प्रदर्शन असमय में वृक्षों के फूलने-फलने, ये सभी अशुभ सूचक दुर्निमित्त उसके दूर चले जाने पर फलप्रदायक नहीं होते हैं। इस प्रकार राहु द्वारा किये गये उस दुर्निमित्त का नाश हो जाता है, अन्यथा मनुष्यों के आसन और गौओं की मनुष्य की भाँति वाणी ये सभी एक पक्ष के भीतर उसके पुत्र-निधन की सूचना प्रदान करते हैं। इसलिए राहु के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए। मैं उस शुभप्रदायक शांति का विधान बता रहा हूँ। रवि के दिन 'कलायुइति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक दही, शहद, एवं घी में भिगोयी हुयी दूर्वा और अक्षत की खीर समेत आहुति प्रदान करने के उपरांत दूध देने वाली कपिला गौ और अलसी, तिल, शंख, एवं दो वस्त्र समेत दक्षिणा श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मण के लिए समर्पित करनी चाहिए।९९-११३।

दुरितस्य विनाशाय तस्य सम्पद्यते शुभम् । दधिमधुघृतक्षीरेण वारुणेन च वारुणे ।।११४
दृश्यते चाद्भुतं तेषु विशिष्टैर्दोषदर्शिभिः । गृही तत्र विनष्टश्च भवेत्सपशुबान्धवः ।।११५
दृश्यन्ते तत्र क्रौञ्चाश्च जम्बुका गृध्रवायसाः । दारुणं भीषणं घोरं नृत्यन्ति च हसन्ति च ।।११६
मैथुनानि च सर्वेषां यस्य वासे भवेद्यदि । मृत्युस्तस्य भवेदाशु ईश्वरस्य च शासनात् ।।११७
धूमकेतुर्यदा व्योम्नि ज्वलत्पावक सन्निभः । स्थानात्स्थानान्तरं याति भूमौ वा पतते भृशम् ।।
सबन्धुरस्यते राजा परचक्रैः स पीडितः ।।११८
दुर्भिक्षं मरणं चैव चिरं राष्ट्रे भविष्यति । गावो मर्कटकुम्भा वै विशन्ते गृहवेश्मनि ।।११९
गावश्च तस्य नश्यन्ति दारापत्यधनानि च । अन्यस्य दोषो भवति गृहे यान्ति प्रमादतः ।।१२०
अब्दान्तरे भवेन्मृत्युर्विरजा हि भविष्यति । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् ।।१२१
सप्ताश्वरथसंयुक्तं हेमच्छत्रविभूषितम् । विप्राय मण्डपं दद्याद्बिल्वपत्रमथापि वा ।।१२२
ऐन्द्रेणैव तु मन्त्रेण होमः कार्यो द्विजातिभिः । अकस्माच्छालतालाक्षखदिरोत्पलरोरकाः ।।१२३
गृहमध्ये प्रजायेत केतोरद्भुतदर्शनम् । हंसो वा द्रोणकाको वा मयूरो वा गृहोपरि ।।१२४
गृहे तस्य महोत्पातः केतोरद्भुतदर्शनम् । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यया सम्पद्यते शुभम् ।।१२५
दधिमधुघृताक्तं च जुहुयादयुतं कुशम् । त्र्यम्बकं चेति मन्त्रेण केतवेभिवपेच्चरुम् ।।१२६
नीलां धेनुं सवत्सां च बहुक्षीरप्रदां तथा । मृत्तिकां हेमवासश्च नानालङ्कारमेव च ।।१२७

दुर्निमित्त के विनाशार्थ दही, शहद, घी एवं क्षीर की आहुति वारुण मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करने से शुभ की प्राप्ति होती है। अन्यथा जो विशिष्ट दोष द्रष्टाओं को वे अशुभ-सूचक दुर्निमित्त दिखायी देते हैं उनके फल भी जैसे कि बताये गये हैं—पशु, पुत्र, एवं वान्धव गण समेत उस गृहपति का विनाश हो जाता है ये निश्चित प्राप्त होते हैं। जिसके निवास स्थान में क्रौंच, गीदड़, गीध, और कौवे दारुण, भीषण एवं घोर नृत्य परिहास तथा मैथुन आदि किया करते हों तो ईश्वर के शासन विधानानुसार उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। जिस समय आकाश में धूमकेतु प्रज्वलित अग्नि की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, अथवा भूमि पर उसका पतन होता है, उसी समय वहाँ का राजा अपने बन्धु गणों के समेत दूसरे राजा से पीड़ित होता है, और राष्ट्र में दुर्भिक्ष, मरण, चिरकाल तक होता रहता है। जिसके गृह में गौओं एवं बानर एवं कुम्भ का प्रवेश होता है, उसके गौओं स्त्री, सन्तान, और धन का विनाश शीघ्र हो जाता है और अन्य के दोष से भी उसे दोष भागी बनना एवं वर्ष के भीतर ही शक्ति हीन होकर मत्यु शय्या पर शयन करना पड़ता है, अतः उसके लिए शांति-विधान मैं बता रहा हूँ, जिससे कल्याण की प्राप्ति होती है। सात घोड़े जुते हुए एवं सुवर्ण के छत्र से अलंकृत रथ के मण्डप अथवा बिल्व-पत्र ब्राह्मण को समर्पित करते हुए ब्राह्मणों द्वारा साल (साखू) ताड़ वहेरा, खैर, नीलकमल, और कसेरु (कुइयाँ पुष्प की जड) की आहुति इन मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करानी चाहिए। ११४-१२३। गृहमध्य-भाग में केतु द्वारा उत्पात हंस, द्रोण कौवे या मयूर के पतन हों तो उस घर में महान् उत्पात होने की सम्भावना बतायी गयी है, अतः उस अशुभ की शांति एवं शुभ की प्राप्ति के लिए मेरे बताये हुए विधान को सुसम्पन्न करना चाहिए—दही, शहद, एवं घी में डुबाकर कुश की आहुति केतु के उद्देश्य से 'त्र्यम्बकमिति' मंत्र द्वारा खीर समेत प्रदान करके बछड़े समेत अधिक दूध देने वाली नील गाय, मिट्टी, सुवर्ण जड़ित, वस्त्र, भाँति-भाँति के अलंकार समेत दक्षिणा ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए,

दक्षिणां च प्रवक्ष्यामि यस्य नास्ति प्रतिक्रिया । देवमुद्दिश्य दानेन होमेन चरुणा तथा ।।१२८
दक्षिणस्यां दिशिच्छायां यः पश्येदात्मनः स्वयम् । स्वच्छायां पादुकस्यैव पश्येत्पञ्चशिरोद्वयम् ।।१२९
एवमेवैव यच्छिन्नं शिनष्टि च ततो हितम् । शीघ्रं नाशमवाप्नोति सप्ताहान्नात्र संशयः ।।१३०
उच्चावचान्प्रवक्ष्यामि यथा शास्त्रेण चोदितम् । काकमार्जारशूकानां कपोतानां विशेषतः ।।
मैथुनं दृश्यते तत्र तच्च राहोर्महाद्भुतम् ।।१३१
शनिमुद्दिश्य जुहुयादयुतं शनिवासरे । पूजयेदर्कपुष्पेण शतेन जुहुयाच्चरुम् ।।१३२
कृत्वा तत्रैव पश्येतशनेरद्भुतदर्शनम् । अष्टाविंशं चरुं कृत्वा ततः शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।।१३३
भुजपदोस्तथा चक्षुःस्पन्दने मरणं दिशेत् । तत्तु सोमाद्भुतं विद्याद्वामदक्षिणतः क्रमात् ।।१३४
कृष्णपक्षे भवेद्वामे विपरीतेऽद्भुतं दिशेत् । अनिष्टसूचकं यस्मात्तस्माच्छान्ति प्रकल्पयेत् ।।१३५
शतार्द्धं रविमुद्दिश्य शान्त्यर्थे होममाचरेत् । चरुपाकविधानेन यवैस्तिलसुसर्पिषा ।।१३६
पुस्तके यज्ञसूत्रं च असत्पात्रे चरौ तु वा । शक्रवस्त्रप्रदग्धे च सूर्यस्याद्भुतदर्शनम् ।।१३७
हयमारं त्रिमध्वक्तं जुहुयादिष्टसिद्धये । देवपुस्तकरत्नानि मणिकाञ्चनमेव च ।।१३८
लोहितस्याद्भुतं विद्यात्सहस्रं च दिशोधनम् । देवागारे तथा गोधा शङ्खिनी प्रविशेत्क्वचित् ।।१३९

क्योंकि केतु के उद्देश्य से दान, हवन एवं खीर प्रदान की क्रियाओं द्वारा उसे इस भाँति शान्त कर दिया जाता है, जिससे पुनः कोई प्रतिक्रिया होने की संभावना नहीं रहती है । दक्षिण दिशा में जो अपनी छाया का स्वयं दर्शन करते हैं अथवा उसके साथ-साथ चरण पादुका के इस भाँति के दर्शन हों, जिसमें दश शिर की कल्पना-सी प्रतीत होती हो, और उस प्रकार छिन्न होकर मस्तक से चूर्ण हो जाये तो शुभ समझना चाहिए, अन्यथा सप्ताह के भीतर ही उसका शीघ्र नाश होता है, इसमें संदेह नहीं ।१२४-१३०। मैं शास्त्र विहित उँच-नीच अशुभ कृत्यों को बता रहा हूँ ! जैसे कौवे, बिल्ली, शूक और विशेष कर कबूतर के मैथुन दर्शन रूपी अशुभ कर्म को राहु द्वारा उत्पन्न होना बताया गया है । शनिवार के दिन शनि के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति एवं मदार के पुष्प-समेत खीर की सौ आहुति प्रदान करनी चाहिए, यदि उसी स्थान पर पुनः शनि द्वारा उत्पन्न अशुभ-सूचक दुर्निमित्त के दर्शन हो जायें, तो अट्ठाइस आहुति खीर की पुनः प्रदान करने से निश्चित शांति प्राप्त होती है । बाँये भाग में दक्षिण भाग के क्रम से भुजा, चरण, तथा नेत्र का स्फुरण, मृत्यु-सूचक होता है, इस दुर्निमित्तको सोम द्वारा उत्पन्न समझना चाहिए । विशेषकर कृष्ण पक्ष में (स्त्री-पुरुष के) क्रमशः दाहिने और बाँये उपरोक्त अंग के स्फुरण अनिष्ट-सूचक होते हैं, अतः उसकी शान्ति क्रिया के अनुष्ठान शीघ्र सुसम्पन्न करना चाहिए ।१३१-१३५। सूर्य के उद्देश्य से शान्ति के लिए पाक-विधान द्वारा बनायी गयी खीर, जवा, तिल, और घी की शतार्द्ध (पचास) आहुति प्रदान करना बताया गया है ।१३६। पुस्तक पर यज्ञसूत्र और असत्पात्र में खीर के रखने एवं शक्र वस्त्र के जलने से होने वाले अशुभ को सूर्य द्वारा उत्पन्न जानना चाहिए, इसके शान्त्यर्थ त्रिमधु (शहद, शक्कर, एवं घी में डुबाकर कनेर की आहुति अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए सुसम्पन्न करके देव पुस्तक, रत्न, मणि, और सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए ।१३७-१३८। इसी भाँति लोहित (मङ्गल) जनित दुर्निमित में सहस्र आहुति प्रदान करना बताया गया है । देवालय में गोह, शंखिनी, द्रोण कौवे, बकुला, दो उलूक,

द्रोणकाको बकश्चैव उलूकद्वयमेव च । रक्तकण्ठः कपोतश्च व्याघ्र एणश्च वा विशेत् ।।१४०
यस्य देवगृहं पश्येत्तस्य तस्यायुतं हुनेत् । न चात्र गृहवैकृत्यं हसनं यदि दृश्यते ।।
सम्पत्तिसूचकं गेहे मरणं दुःखदर्शनम् ।।१४१
क्रन्दने हतराज्येन गजाश्ववाहने क्वचित् । सूर्यमुद्दिश्य जुहुयादयुतं सर्वसिद्धये ।।१४२
प्रमादात्कम्पने हानिः स्वेदे जाते विपद्भवेत् । क्षीरस्रावे च रुधिरे तत्र राज्ये महद्भयम् ।।१४३
गोच्छागौ वाथ गोमायुर्गृहोपरि प्रनृत्यति । यदा रौति दिवा फेरुस्तदा नाशो भवेद् ध्रुवम् ।।१४४
श्वजन्तुकावथ व्याघ्रो यथाशक्ति च धावति । ईशाने महिषस्तद्वत्तदा देशे च विप्लवः ।।१४५
राहोरद्भुतमुद्दिश्य सहस्रं जुहुयाच्चरुम् । वृक्षाद्भुतं यदा पश्येत्तत्र तस्यां परित्यजेत् ।।
यद्गृहेषु हुतं याति देशविप्लवमादिशेत् ।।१४६
देशे वा नगरे ग्रामे आरण्यपशुबन्धनम् । सर्पे वा विपरीतं च मांसपिण्डमथापि वा ।।
तद्गृहे मरणं चैव देशविप्लवमादिशेत् ।।१४७
दिवाद्भुतेऽयुतं रात्रौ द्विगुणं च भवेद् ध्रुवम् । द्विगुणं चापि सन्ध्यायामर्धरात्रे चतुर्गुणम् ।।१४८
अकाले तत्र मरणमकाले गृहिणीमृतिः । सौराद्भुतं विजानीयादशुभे वा विशोधनम् ।।१४९
एकैकस्यायुतं यत्र कुर्यात्तत्रैव होमयेत् । साङ्गोपाङ्गेन सहितमष्टावष्टौ हुतं च वा ।।१५०
अधिप्रत्यधिसहितं गृहपक्षेऽपि सत्तमाः । तन्मानेन हुतं विप्रा कुर्यात्तत्रैव भूषणम् ।।१५१

(रक्त कण्ठ, कबूतर, व्याघ्र, मृग के प्रवेश होने पर उसके शान्त्यर्थ दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए। इनके हसने (मुख की प्रसन्नता) देखने से गृहसम्बन्धी कोई क्षति नहीं होती है, प्रत्युत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार उनकी दुःखी अवस्था का दर्शन मरण सूचक बताया गया है।१३९-१४१। हाथी और घोड़े के करुण क्रन्दन से राज्य-विनाश होता है, अतः सर्वार्थ सिद्धि के लिए सूर्य के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति-प्रदान करनी चाहिए। प्रमाद-वश उनमें कम्पन होने से हानि, पसीने के निकलने से विपत्ति, एवं क्षीर या रुधिर के निकलने से राज्य में भीषण भय उपस्थित होता है। गृह के ऊपर गौ, बकरी, गीदड़ के नृत्य हों, एवं दिन में गीदड़, (स्यार) का रुदन हो, तो निश्चित विनाश ईशान कोण में कुत्ते, स्यार, बाघ और भैंसे के यथा शक्ति दौड़ने से उस देश में महान् उपद्रव होता है। अतः इसकी शान्ति के लिए राहु के उद्देश्य से खीर की सहस्र आहुति-प्रदान करनी चाहिए। वृक्ष जनित दुर्निमित्त दर्शन से उसी स्थान पर आहुति-प्रदान करना बताया गया है, अन्यथा, गृह में आकर आहुति-प्रदान करने से देश में उपद्रव होना अटल ही रहेगा। किसी प्रदेश, नगर, गाँव में जङ्गली पशु का बाँधना, अथवा सर्प का बाँधना, एवं मांस के पिंड का दर्शन करने से उस घर में मरण और देश में उपद्रव होना निश्चित रहता है। दिन में अशुभ दर्शन से दशसहस्र की रात्रि में उससे दुगुने अथवा संध्या समय में दुगुने और आधी रात के समय चौगुने संख्या की आहुति होनी चाहिए। सूर्य द्वारा उत्पन्न अशुभ-दर्शन से अकाल में गृहपति एवं गृहणी की मृत्यु हो जाती है, इसलिए उस अशुभ की शान्ति करना आवश्यक होता है।१४२-१४९। इस प्रकार एक एक अशुभ में दश सहस्र की आहुति तथा सांगोपाङ्ग उस उस अशुभ जनक देव के लिए आठ-आठ और अधिक आहुति प्रदान करना बताया गया है। सत्तमवृन्द ! इसी भाँति गृह निर्माण विषय में भी अधिदेव एवं प्रत्यधि

**एकैकस्याहुतं विप्रा अष्टावष्टौ हुतं च वा । अधिप्रत्यधिदेवानां याश्चान्याश्चाङ्गदेवताः ॥१५२
मानान्तं च ददेत्पूर्णां दत्त्वा पूर्णां न होमयेत् । वक्ष्ये ग्रहमखे मानं येन मानेन सिध्यति ॥१५३
अमानकरणे दोषस्तस्मान्मानं न हापयेत् । पङ्क्तिचत्वारिंशदाद्यैश्चतुर्धा विभजेन्नरः ॥१५४
अनिष्टाय ततो दद्याच्चरुहोमं विभागशः । अधिप्रत्यधिदेवानामष्टावष्टौ ह्युदाहृतम् ॥१५५
त्र्यम्बकादिषु मन्त्रेषु होमत्रयमुदाहृतम् । धनञ्जये तथा दद्याच्चरुहोमं विभागतः ॥१५६
आदित्यायाष्टावष्टाधिकं कल्पयेत्सुधीः । शतहोमे तु सर्वत्र दशाङ्गं कल्पयेन्नरः ॥१५७
अनिष्टाय युगाङ्गं तु ग्रहेभ्यो ह्यङ्गनाय च । अधिप्रत्यधिदेवानां तथैवाङ्गं प्रकल्पयेत् ॥१५८
द्वौ तु दद्यात्त्र्यम्बकाय तथा धनञ्जयाय च । तत्र होमो नायकाय सर्वत्रेद विचक्षणः ॥१५९
सहस्रे चैव विंशाङ्गे अनिष्टाय दशांशकम् । पञ्चांशेन ग्रहाणां च पञ्चांशेन यवानपि ॥१६०
तत्रानिष्टे पञ्चशतं तस्यार्धं ग्रहवाग्यतः । एकत्रिंशद्रुद्रेन्मानम् अन्येषां तु चतुर्दश॥१६१
ग्रहाधिकं होमयुगं तत्र भागे प्रकल्पयेत् । अधातये च तिथ्यङ्गं पञ्चाङ्गं यस्य चाद्भुतम् ॥१६२
ग्रहेभ्यश्चैव पञ्चाङ्गं तत्र दाङ्गं परानपि । एकैकाङ्गे भवेन्मानं षट्शतं षष्टिरेव च ॥१६३
अधिकं च भवेत्यष्टिर्दशमं भागशेषतः । अनिष्टांशे त्रिसहस्रं त्रिशतं त्रिंशतं तथा ॥१६४**

देव के लिए उसी मान से हवन करना उसकी शोभा वृद्धि करना है । विप्रवृन्द ! उन एक-एक अधिदेव, प्रत्यधि देव, और उसके अंग देवता के उद्देश्य से आठ-आठ आहुति जो माप दण्ड के अनुसार निश्चित है, प्रदान करना चाहिए । इसके उपरांत पूर्णाहुति प्रदान कर पुनः पूर्णाहुति के पश्चात् हवन के करने का विधान है । इसीलिए मैं गृह-यज्ञ में उस माप-दण्ड को बता रहा हूँ, जिसके उपयोग से उसकी सिद्धि प्राप्त होती है, और मान हीन उसके सुसम्पन्न करने से दोष भागी होना बताया गया है, अतः मान का त्याग कभी न करना चाहिए । मनुष्य को सर्वप्रथम उस के चार भाग करके जिसमें प्रत्येक भाग दश-दश की संख्या का रहता है, पश्चात् विभाग के क्रम से उस अनिष्ट के निवारणार्थ खीर की आहुति प्रदान करना श्रेयस्कर होता है—अधि, प्रत्यधि देवों के उद्देश्य से आठ-आठ आहुति त्र्यम्बकादि मंत्रों के प्रयोग में तीन हवन, इसी भाँति धनंजय के लिए विभागानुसार चरु (खीर) की आहुति-प्रदान पूर्वक सूर्य के लिए आठ आठ अधिक आहुति विद्वानों को प्रदान करनी चाहिए, तथा शत संख्या की आहुति में उनके दशांश की कल्पना सर्वत्र करनी चाहिए ।१५०-१५७। अनिष्ट-वारण के लिए ग्रहों उपग्रहों के लिए युगांग की भाँति अधिप्रत्याधि देवों के अंगों की कल्पना आवश्यक होती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् को त्र्यम्बक तथा धनंजय के दो-दो अंगों की कल्पना पूर्वक उस नायक के लिए सर्वत्र हवन विधान सुसम्पन्न करना बताया गया है ।१५८-१५९। सहस्र की आहुति में जब कि बीस अंगों की कल्पना की जाती है अनिष्ट के लिए दशांश, ग्रहों के लिए पाँच अंश की आहुति होती है, उसमें पाँच भाग जवा रहता है । यदि वहाँ पुनः अनिष्ट दर्शन हो, तो पाँच सौ ग्रहों के लिए ढाई सौ, जिसमें इकतीस का मान बताया गया है, अन्य के लिए चौदह आहुति-प्रदान की जाती है । ग्रहों से अधिक के लिए दो हवन किया जाता है, जिसमें तिथि को पाँच भाग की कल्पना की जाती है । ग्रहों के लिए पाँच और दूसरों के लिए केवल अंगमात्र की कल्पना की जाती है, जिसके एक-एक अंग के मान छः सौ साठ बताये गये हैं ।१६०-१६३। अधिक से अधिक इन साठ, या दशवें भाग की कल्पना पूर्वक अनिष्ट के लिए तीन सहस्र, तीन सौ तीस, ग्रहों के लिए चार सौ या सात सौ से भी अधिक एवं

चतुःशतं ग्रहाणां च तथा सप्तशताधिकम् । उपग्रहेभ्यो दद्याच्च पञ्चाशीत्यधिकं शतम् ॥१६५
तिथ्यङ्गभागः शेषेण ग्रहे सप्तशताधिकम् । एकैकं तु ग्रहस्यैवमादित्याय युगं भवेत् ॥१६६
ग्रहाङ्गे यः स्थितो भागो युगलं भागशेषतः । त्र्यम्बकाय च तद्दद्यात्तथा धनञ्जयाय च ॥१६७
शान्तिके पौष्टिके काम्यै यदीच्छेत्सुखमात्मनः । ग्रहाणां चायुतं होमं त्र्यहसाध्येन होमयेत् ॥१६८
त्र्यहसाध्ये विधानं यत्पुरैवोदीरितं द्विजाः । इदानीं प्रक्रमेणैव यो भागः स निगद्यते ॥१६९
पूर्वस्मिन्दिवसेऽनिष्टे सहस्रं त्रिशतोत्तरम् । इतरेषां ग्रहाणां च प्रत्येकं तु शतं शतम् ॥१७०
अधिप्रत्यधिदेवानां पञ्चाशद्धोम उच्यते । प्रथमेऽह्नि प्रदद्याच्च मिलित्वा त्रिसहस्रकम् ॥१७१
द्वितीयदिवसेऽनिष्टे द्विसहस्रमुदाहृतम् । प्रतिग्रहेभ्यस्त्रिशतं दद्यादष्टशताधिकम् ॥१७२
उपग्रहेभ्यो दद्याच्च षोडशेभ्यो यथाक्रमम् । एकाशीतिं ददौ यत्नादशीतिं चान्त्ययोर्द्वयोः ॥१७३
एवं द्वितीयदिवसे मिलित्वा षट्सहस्रकम् । अनिष्टाय त्रिशतं तु तृतीयदिवसे मतम् ॥१७४
तत्प्रत्येकं ग्रहाणां च द्वाचत्वारिंशदुच्यते । अधिप्रत्यधिदेवानां प्रत्येकं पञ्चत्रिंशकम् ॥१७५
तृतीयदिवसे दद्यान्मिलित्वैकसहस्रकम् । आदित्याय युगं दद्यादेकं तु त्र्यम्बकाय च ॥१७६
धनञ्जयाय होमैकमेकं चायुतमुच्यते । तदर्धकं ग्रहेभ्यश्च इतरेभ्यस्तदर्धकम् ॥१७७

उपग्रहों के लिए एक सौ पचासी भाग की कल्पना की जाती है। शेष पन्द्रहवाँ भाग जो ग्रहों के लिए समस्त सात सौ से भी अधिक बताया गया है, ग्रहों के लिए एक-एक भाग और आदित्य के लिए चार भाग की कल्पना की जाती है। ग्रहांगों के लिए स्थित शेष दो भाग त्र्यम्बक और धनंजय के लिए अर्पित करना चाहिए।१६४-१६७। शांति कर्म, पौष्टिक एवं काम्य कर्मों में अपने ऐच्छिक सुख के लिए ग्रहों के तीन दिन वाले अनुष्ठान कर्म दशसहस्र की आहुति-प्रदान करनी चाहिए। द्विजवृन्द ! तीन दिन में साध्य होने वाले उस अनुष्ठान विधान को पहले ही बता चुका हूँ, इस समय क्रमानुसार प्राप्त शेष भाग का वर्णन कर रहा हूँ। पहले दिन में अनिष्ट होने पर तेरह सौ, अन्य ग्रहों, के लिए सौ-सौ और अधिप्रत्यधि देवों के लिए पचास संख्या की आहुति इस प्रकार पहले दिन में सब मिलाकर तीन सहस्र की आहुति-प्रदान की जाती है। दूसरे दिन के अनिष्ट होने में दो सहस्र की आहुति दी जाती है, जिसमें प्रत्येक ग्रह के लिए तीन सौ आठ, सोलह उपग्रहों के लिए क्रमशः इक्यासी और अन्त के दोनों के लिए अस्सी, इस प्रकार दूसरे दिन में कुल मिलाकर छः सहस्र की आहुति प्रदान की जाती है। अनिष्ट-शान्ति के लिए तृतीय दिन तीन सौ आहुति-प्रदान करना चाहिए। ऐसा शास्त्रकारों का मत है। उसके बाद प्रत्येक ग्रहों के लिए बयालिस आहुतियाँ कही गयी हैं। अधि और प्रत्यधि देवताओं को (प्रधान देवता के बाद आवाहित देवताओं को अधिप्रत्यधि देवता कहा जाता है) प्रत्येक को ३५-३५ आहुतियाँ कही गयी हैं। अर्थात् प्रत्येक को ३५ आहुति देना चाहिए।१६८-१७५। तीसरे दिन सम्मिलित रूप में १००० आहुतियाँ देना चाहिए। आदित्य के लिए २००० एवं त्र्यम्बक (शिव) के लिए १००० आहुतियाँ देना चाहिए।१७६। धनञ्जय के लिए पाँच सौ तथा अन्यों के लिए ढाई सौ आहुति देनी चाहिए।१७७।

ग्रहाणां त्रिसहस्रं तु पञ्चानां च सहस्रकम् । त्रिसहस्रं भागशेषमादित्याय सहस्रकम् ॥१७८
त्र्यम्बकाय तथादद्यात्तथा धनञ्जयाय च । षट्पादाधिकषटषट्कसहस्रपरिसङ्ख्यया ॥
नवश्लोकशतोद्‌भुतं सम्पूर्णं स्याद्भविष्यकम् ॥१७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे ग्रहोपद्रवोत्पातशान्तिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

ग्रहों के लिए तीन हजार तथा पंचदेव के लिए एक हजार तथा आदित्य के लिए पूर्वोक्त में तीन हजार से भाग देने पर शेष एक हजार आहुति देनी चाहिए । त्र्यम्बक के लिए एक हजार धनञ्जय के लिए भी एक हजार आहुति-प्रदान करनी चाहिए ।१७८-१७९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तृतीयभाग में ग्रहों के उपद्रव-उत्पात-शान्ति वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

भविष्यपुराणम्—प्रतिसर्गपर्व

अथ प्रतिसर्गपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः

कृतयुगभूपाख्यानम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं[1] ततो जयमुदीरयेत् ।।

शौनक उवाच

भविष्याख्ये महाकल्पे ब्रह्मायुषि परार्द्धके । प्रथमेऽब्देह्नि तृतीये प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ।।१
अष्टाविंशे सत्ययुगे के राजानोऽभवन्मुने । तेषां राज्यस्य वर्षाणि तन्मे वद विचक्षण ।।२

सूत उवाच

कल्पाख्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माब्दस्य दिनत्रये । प्राप्ते सप्तमुहूर्ते च मनुर्वैवस्वतोऽभवत् ।।३
स तप्त्वा सरयूतीरे तपो दिव्यं शतं समाः । तच्छिक्कातोऽभवत्पुत्र इक्ष्वाकुः स महीपतिः ।।४
ब्रह्मणो वरदानेन दिव्यं यानं स आप्तवान् । नारायणं पूजयित्वा हरौ राज्यं निवेद्य च ।।५
षट्त्रिंशच्च सहस्राणामब्दं राज्यं तदाऽकरोत् । तस्माज्जातो विकुक्षिश्च शतहीनं[2] तदब्दकम् ।।६
राज्यं कृत्वा दिवं यातस्तस्माज्जातो रिपुञ्जयः । शतहीनं कृतं राज्यं तत्ककुत्स्थसुतः स्मृतः ।।७

अध्याय १

सत्ययुग के राजाओं का वर्णन

नारायण, नरोत्तम, नर और देवी सरस्वती को (प्रारम्भ में) नमस्कार करके तब जय (महाभारत एवं पुराणादि) का उच्चारण करना चाहिए ।

शौनक ने कहा—विचक्षण ! भविष्य महाकल्प के, जो ब्रह्मा का (आयु सम्बन्धी) उत्तरार्द्ध काल कहा जाता है, उस काल एवं अट्ठाईसवें सत्ययुग में, जिसमें पहले वर्ष के तीसरे दिन वैवस्वत नामक मनु उत्पन्न होते हैं, कौन-कौन राजा हुए हैं और उनके राज्य का काल मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१-२

सूत जी बोले—श्वेतवाराह नामक कल्प में ब्रह्मा के पहले वर्ष के तीसरे दिन के सातवें मुहूर्त में वैवस्वत नामक मनु का जन्म हुआ है। उन्होंने सरयू नदी के तट पर दिव्य सौ वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त (नाक से) छींकने के द्वारा इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न किया था। ब्रह्मा के वरदान से उन्हें एक दिव्य (तेजोमय) यान (सवारी) भी प्राप्त हुआ था। भगवान् विष्णु को राज्य का निवेदन करके नारायण की पूजा-ध्यान में अपने जीवन का समय व्यतीत करते हुए उन्होंने छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज्य-भार संभाला था। पश्चात् उनके विकुक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिनका राज्य-काल उनसे सौ वर्ष न्यून था। राज्यभार संभालते हुए विकुक्षि के स्वर्गीय होने के उपरान्त रिपुञ्जय का जन्म हुआ, उसका भी राज्यकाल उनसे (अपने पिता से) सौ वर्ष कम था। उनके ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ, ऐसा कहा गया है।

---

१. चैव । २. 'शतहीनम्, सहस्रहीनम्, इत्यनेन प्रतिस्थानतः 'षट्त्रिंशच्च सहस्राणाम्' इत्यारभ्यानुक्रमेण हीनत्वं ज्ञेयम् ।

शतहीनं कृतं राज्यं ततोऽनेनांस आत्मजः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो नृपः पृथुः ॥८
शतहीनं कृतं राज्यं विष्वगश्वश्च तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादार्द्रो नृपोऽभवत् ॥९
शतहीनं कृतं राज्यं भद्राश्वस्तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥१०
शतहीनं कृतं राज्यं श्रवस्थस्तत्सुतोऽभवत् । सत्यपादश्च सञ्जातः प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥११
उदयादस्तपर्यन्तं तैर्नृपैर्भूमिमण्डलम् । भुक्तं नीतिपरैर्देवैः श्रवस्थेन तु भूतले ॥
शतहीनं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततोऽभवत् ॥१२
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्कुवलयाश्वकः । शतहीनं कृतं राज्यं दृढाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१३
सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु निकुम्भकः । सहस्रहीनं राज्यं तत्सङ्कटाश्वस्तु तत्सुतः ॥१४
सहस्रहीनं राज्यं तत्तस्माज्जातः प्रसेनजित् । सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु तत्सुतः ॥१५
सहस्रहीनं राज्यं तन्मान्धाता तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं पुरुकुत्सस्तु तत्सुतः ॥१६
शतहीनं कृतं राज्यं त्रिशदश्वस्तु तत्सुतः । रथे यस्य स्मृता वाहा वाजिनस्त्रिशतो वराः ॥१७
अनरण्यस्ततो जातो ह्यष्टाविंशत्सहस्रकम् । राज्यं द्वितीयचरणे स्मृतं सत्ययुगस्य वै ॥१८
पृषदश्वस्ततो जातो राज्यं षष्ठसहस्रकम् । तदब्दं भूतले कृत्वा पितृलोकमुपाययौ ॥१९
हर्यश्वस्तु ततो जातो विष्णुभक्तकुले नृपः । सहस्रहीनं राज्यं तत्तत्सुतो वसुमांस्मृतः ॥२०
सहस्रहीनं राज्यं तत्त्रिधन्वा तनयस्ततः । सहस्रहीनं राज्यं तत्तेन राज्ञा च सत्कृतम् ॥२१

उसने भी उनसे सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया । पश्चात् उसके अंस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके भी (अपने पिता से) सौ वर्ष कम राज्य-काल के उपरांत पृथु नामक राजा उत्पन्न हुआ । इस प्रकार पृथु के विष्वगश्व, विष्वगश्व के राजा आर्द्र, आर्द्र के भद्राश्व, भद्राश्व के युवनाश्व, युवनाश्व के श्रवस्थ नामक पुत्र हुआ, जो इस भरत-भूमि में सत्य का प्रथमपाद चरण, बताया गया है । इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर सौ-सौ वर्ष कम है तथा सूर्य के उदय होने वाले प्रदेश से लेकर उनके अस्त होने वाले प्रदेश तक के मध्यवर्ती इस भूमि मंडल का उपभोग इन राजाओं ने अत्यन्त नीति-निपुणता के साथ किया था । श्रवस्थ के बृहदश्व, उनके कुवलयाश्व और कुवलयाश्व को पुत्र दृढाश्व हुआ ।३-१३। इनका भी राज्य-काल उत्तरोत्तर सौ वर्ष कम बताया गया है । पुनः उनके निकुम्भक, निकुंभ के संकटाश्व, संकटाश्व के प्रसेनजित, प्रसेनजित के रवणाश्व, रवणाश्व के मांधाता नामक पुत्र हुआ । इन लोगों का राज्य-काल उत्तरोत्तर सहस्र वर्ष कम बताया गया है । मांधाता के पुरुकुत्स तथा उनके त्रिशदश्वा नामक पुत्र हुए। मांधाता के पुरुकुत्स तथा उनके त्रिशदश्व नामक पुत्र हुए । इनका भी राज्य-काल सौ वर्ष उत्तरोत्तर न्यून बताया गया है । इनके रथ में तीस घोड़े जोते जाते थे इसीलिए इनका त्रिशदश्व नामकरण हुआ था । इनका अनारण्य नामक पुत्र हुआ, जिसने सत्य युग के द्वितीय चरण में अट्ठाईस सहस्र वर्ष समय तक इस वसुंधरा का उपभोग किया था । उनके पृषदश्व नामक पुत्र हुआ, जिसने छः सहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत पितरलोक की प्राप्ति की थी । इस विष्णुभक्त के कुल में उनके हर्यश्व, हर्यश्व के वसुमान् और वसुमान् के त्रिधन्वा नामक पुत्र की उत्पत्ति बतायी गई। इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर सहस्र वर्ष कम बताया गया है। इस प्रकार भारत के इस अवान्तर प्रदेश में सत्य

सत्यपादः समाप्तोऽयं द्वितीयो भारतेऽन्तरे । त्रिधन्वनश्च नृपतेस्त्रपारण्यस्तु वै सुतः ॥२२
सहस्रहीनं राज्यं तत्कृत्वा स्वर्गमुपाययौ । तस्माज्जातस्त्रिशङ्कुश्च राज्यं वर्षसहस्रकम् ॥२३
छद्मना हीनतां जातो हरिश्चन्द्रस्तु तत्सुतः । राज्यं त्रिंशत्सहस्रं च रोहितो नाम तत्सुतः ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हारीतस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चञ्चुभूपश्च तत्सुतः ॥२५
पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्विजयो नाम तत्सुतः । पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्रुरूकस्तनयस्ततः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सगरस्तनयोऽभवत् । भूपाश्च बाहुसेनान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ॥२७
राज्यमानं कृतं सम्यग्भूपैर्वैवस्वतादिभिः । मणिस्वर्णसमृद्धिश्च बह्वन्नं बहुदुग्धकम् ॥२८
पूर्णो धर्मस्तदा भूम्यां मुने सत्ययुगस्य वै । तृतीयचरणे मध्ये सगरो नाम भूपतिः ॥२९
शिवभक्तः सदाचारस्तत्पुत्राः सागराः स्मृताः । त्रिंशत्सहस्रवर्षं तद्राज्यं वै मुनिभिः स्मृतम् ॥३०
नष्टेषु सागरेष्वेवमसमञ्जस आत्मजः । शतहीनं कृतं राज्यमंशुमांस्तत्सुतोऽभवत् ॥३१
शतहीनं कृतं राज्यं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो भगीरथः ॥३२
शतहीनं कृतं राज्यं श्रुतसेनस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं नाभागस्तनयस्ततः ॥३३
शतहीनं कृतं राज्यमम्बरीषस्ततोऽभवत् । शैवाः षट् श्रुतसेनान्ता नाभागो वैष्णवो नृपः ॥३४
सत्यपादः समाप्तोऽयं तृतीयो भारतेऽन्तरे । अम्बरीषेण भूपेन शतहीनं कृतं पदम् ॥३५
चतुर्थे चरणे तस्य चाष्टादश सहस्रकम् । अब्दं राज्यं शुभं ज्ञातं कर्मभूम्यां च भारते ॥३६

का दूसरा चरण समाप्त हुआ, ऐसा कहा गया है ।१४-२१। राजा त्रिधन्वा के त्रपारण्य नामक पुत्र हुआ, जिसने उनसे सहस्र वर्ष कम समय तक राज्य का उपभोग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की । पुनः उनके (त्रपारण्य के) त्रिशंकु उत्पन्न हुए, जिसने सहस्र वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् त्रिशंकु के हरिश्चन्द्र नामक पुत्र हुआ, जो (विश्वामित्र को अपना सर्वस्वदान दे देने से) लक्ष्मीहीन (दरिद्र) हो गया था । उनका पुत्र रोहित नामक हुआ, जिसने तीस सहस्र वर्ष राज्य किया । रोहित के हारीत, चंचुभूप, चंचुभूप के विजय, विजय के रुरूक एवं रुरूक के सगर पुत्र हुए । बाहुसेन तक के राजाओं को वैष्णव होना बताया गया है । इन सभी राजाओं ने अपने पिता के समानकाल तक राज्य का उपभोग किया है । वैवस्वत मनु आदि राजाओं के समय में राज्य का मान विस्तृत मणियों तथा सुवर्णों से समृद्ध, अधिक अन्न की उपज और दूध की नदियाँ-सी बहती थीं । मुने ! इस प्रकार इस भूमण्डल में धर्म पूर्णरूप से विद्यमान था ।२२-२८। सत्ययुग के तीसरे चरण के मध्यकाल में सगर नामक राजा का जन्म हुआ था । वे परम शिवभक्त एवं सदाचारपरायण थे । उनके अनेक (साठ सहस्र) पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका राज्य-काल मुनियों ने तीस सहस्र वर्ष का बताया है । इन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर सगर-पुत्र असमञ्जस ने उनसे सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था । इस प्रकार असमञ्जस के अंशुमान्, अंशुमान् के दिलीप, दिलीप के भगीरथ, भगीरथ के श्रुतसेन, श्रुतसेन के नाभाग और नाभाग के अम्बरीश पुत्र हुए । इन राजाओं ने उत्तरोत्तर सौ-सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था । इनमें श्रुतसेन तक सभी राजा शैव (शिव के उपासक) और राजा नाभाग वैष्णव (विष्णु के उपासक) बताये जाते हैं। इस प्रकार भारत-भूमि में सत्ययुग के तीसरे चरण का समाप्त होना कहा गया है ।२९-३५। सत्ययुग के चौथे चरण में भारत की इस कर्मक्षेत्रभूमि में राजा अम्बरीष का अट्ठारह सहस्र वर्ष तक राज्य-भार का निभाना

एकोनत्रिंशद्वर्षाणि राज्यं तत्त्रिशतानि च । शतहीनं कृतं राज्यं सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषजः ।।३७
शतहीनं कृतं राज्यमयुताश्वस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यमृतुपर्णस्तु तत्सुतः ।।३८
शतहीनं कृतं राज्यं सर्वकामो नृपस्ततः । शतहीनं कृतं राज्यं नृपः कल्माषपादकः ।।३९
शतहीनं कृत राज्यं सुदासस्तनयोऽभवत् । तस्मादश्मकश्चैव मदयन्त्या वशिष्ठजः ।।४०
शतहीनं कृत राज्यं हरिवर्मा ततोऽभवत् । सप्त भूपाः सुदासान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ।।४१
गुरुशापात्तु सौदासो राज्याङ्गं गुरवेऽर्पयत् । गोकर्णलिङ्गभक्तश्च शैवः समय उच्यते ।४२
हरिवर्मा श्मकजो वैश्यवत्साधुपूजकः । ऊनत्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि वै ।।४३
हरिवर्माऽकरोद्राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्दिल्लीवयस्सुतः ।।४४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूपो विश्वासहस्ततः । राज्यं दशसहस्रं तन्नियज्ञः प्राकृतो नृपः ।।४५
तदधर्मप्रतापेन ह्यनावृष्टिस्तदाऽभवत् । शतवर्षमनावृष्टिस्सर्वराज्यं व्यनाशयत् ।।४६
यज्ञं कृत्वा वशिष्ठस्तु राज्ञीवचनतत्परः । यज्ञात्खट्वांग उत्पन्नः खट्वांगं शस्त्रमुद्वहन् ।।४७
इन्द्रसाहाय्यमगमद्राज्यं त्रिशतसहस्रकम् । कृत्वा तत्र वरं लब्ध्वा देवेभ्यो मुक्तितां गतः ।।४८
खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च राज्यं विंशत्सहस्रकम् । तस्मात्सुदर्शनो जातो देवीपूजनतत्परः ।।४९
वैष्णवा दाशरथ्यं तास्त्रयो विख्याततसद्वलाः । खट्वांगो दीर्घबाहुश्च वैष्णवौ परिकीर्तितौ ।।५०
सुदर्शनो महाप्राज्ञः काशीराजसुतां नृपः । उदूह्य भूपतीञ्जित्वा भूपसेवाप्रसादतः ।५१

बहुत सुखदायक बताया जाता है । राजा अम्बरीश के सिन्धुद्वीप नामक पुत्र हुए, जिन्होंने उनसे उन्तीस, तीस एवं सौ वर्ष कम राज्य किया था। सिन्धुद्वीप के अयुताश्व, अयुताश्व के ऋतुपर्ण, ऋतुपर्ण के सर्वकाम, सर्वकाम के कल्मषपाद, कल्मषपाद के सौदास और सौदास की स्त्री मदयन्ती में वशिष्ठ द्वारा राजा अश्मक तथा इनके हरिवर्मा नामक पुत्र हुए । इन लोगों का भी अपने से उत्तरोत्तर क्रमशः राज्य-काल सौ-सौ वर्ष कम बताया गया है । इनके क्रमबद्ध राजा सुदास तक, जो गणना में सात राजा होते हैं, विष्णु के उपासक कहे गये हैं । सुदास के पुत्र राजा अश्मक ने अपने गुरु वशिष्ठ द्वारा प्राप्त शाप के कारण अपना राज्य उन्हें अर्पित कर दिया था । राजा अश्मक शिव के गोकर्ण नामक लिंग के परमभक्त थे । अतः उन्हें महान् शैव होना कहा गया है । उनके पुत्र हरिवर्मा भी वैश्यों की भाँति अत्यन्त साधु-सेवी थे । उन्नीस सहस्र सात सौ वर्ष तक उनके राज्य-भार निभाने के उपरान्त दशरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस राजा ने अपने पिता के समान काल तक राज्यभार का वहन किया है । पश्चात् उनके दिल्लीवय नामक पुत्र हुआ और उनके राजा विश्वासह हुए । यद्यपि इस राजा ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया, किन्तु अपनी मूर्खता एवं उद्दण्डता के कारण कभी किसी यज्ञ का अनुष्ठान न कर सका । इस घोर अधर्म के कारण सौ वर्ष तक जल-वृष्टि ही नहीं हुई, जिसके परिणाम स्वरूप समस्त राज्य का नाश हो गया।३६-४६। पश्चात् रानी के अनुनय-विनय करने पर वशिष्ठजी ने यज्ञ-द्वारा खट्वांग नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसने अपने खट्वाङ्ग अस्त्र धारण करके इन्द्र की सहायता से तीस सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया, तदुपरांत देवताओं द्वारा वरदान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। खट्वांग के दीर्घबाहु नामक पुत्र हुए, जिन्होंने बीस सहस्र वर्ष राज्य किया है। दीर्घबाहु के सुदर्शन नामक पुत्र हुए, जो देवी के परम उपासक थे। हरिवर्मा, दशरथ एवं दिलीप नामक ये तीनों बलशाली राजा परम विख्यात वैष्णव हो चुके हैं। राजा खट्वाग और दीर्घबाहु भी विष्णु के उपासक थे। महाबुद्धिमान् राजा सुदर्शन ने देवी जी की अनुकम्पावश काशीराज की कन्या के साथ पाणिग्रहण करके

राज्यं भरतखण्डान्तमदधद्धर्मतो नृपः । वर्षपञ्चसहस्राणि राज्यं चक्रे स भूपतिः ॥५२
स्वप्नमध्ये वचः प्रोक्तं महाकाल्या नृपाय वै । वत्स त्वं प्रियया सार्द्धं वशिष्ठादिभिरन्वितः ॥५३
हिमालयं गिरिं प्राप्य वासं कुरु महामते । महावायुप्रभावेन क्षयो भरतखण्डके ॥५४
रत्नाकरः पश्चिमोऽब्धिस्तस्य द्वीपाः क्षयं गताः । महोदधिः पूर्वतोऽब्धिस्तस्य द्वीपा क्षयं गताः ॥५५
वाडवोऽब्धिर्दक्षिणे च तस्य द्वीपाः क्षयं गताः । हिमाब्धिरुत्तरे तस्य सगरैः खनितो हि सः ॥५६
ये द्वीपास्तु सुविख्यातास्तेऽपि सर्वे लयं गताः । भारतो वर्ष एवासौ वत्सरे सप्तमेऽहनि ॥५७
सजीवः प्रलयं यायात्तस्मात्त्वं जीवितो भव । तथेति मत्वा स नृपः पर्वतं वै हिमालयम् ॥५८
प्राप्तवान्मुख्यभूपैश्च मुख्यवैश्यैर्द्विजैः सह । पञ्चवर्षप्रमाणेन वायुस्तेजः क्रमाज्जलम् ॥५९
शर्करा च मही प्राप्तस्ततो जीवाः क्षयं गताः । पञ्चवर्षमिते काले जलं जाता वसुन्धरा ॥६०
शान्ता भूत्वा पुनर्वायुर्जलं सर्वमशोषयत् । दशवर्षान्तरे भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कृतयुगभूपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१

युद्धस्थल में राजाओं पर विजय प्राप्त किया, पश्चात् भरतखण्ड का यह समस्त राज्य अपने अधिकार में करके पाँच सहस्र वर्ष तक इसका उपभोग किया तदुपरांत भगवती महाकाली ने स्वप्न में उस राजा से कहा—वत्स ! महामते ! तू अपनी धर्म-पत्नी एवं वशिष्ठादि महर्षियों समेत हिमालय पर्वत पर जाकर निवास करो, क्योंकि महावायु के प्रभाव से इस भरतखण्ड (भारतवर्ष) का विनाश उपस्थित है क्योंकि पश्चिमीय रत्नाकर समुद्र के द्वीप, पूर्वीय महोदधि के मध्यवर्ती, दक्षिण दिशा में रहने वाले वडवानल वाले समुद्र द्वीप और हिमालय के उत्तरीय समुद्र के द्वीप, जिसे सगर के वंशजों ने खोदकर निरस्त किया था, विनष्ट हो चुके हैं। इस प्रकार सभी ख्यातिप्राप्त द्वीपों के समूल विलीन होने के उपरांत यह भारतवर्ष भी इस वर्ष के सातवें दिन इस प्रलय के समुद्री बाढ़ में सभी जीव समेत विलीन हो जायेगा। अतः तुम अपने जीवन की रक्षा करो।' भगवती की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर उस राजा ने प्रमुख नृपगण, वैश्यों एवं ब्राह्मणों समेत हिमालय पर अपना आवासस्थान बनाया। पश्चात् पाँच-पाँच वर्ष तक क्रमशः वायु, तेज और जल द्वारा समस्त (पार्थिव) तत्त्व का नाश प्रारम्भ हुआ। उसमें समस्त पृथिवी का शक्कर की भाँति कण हो गया जिसमें सभी जीव नष्ट हो गये, पुनः पाँच वर्ष तक अनवरत इस पृथिवी पर जल वृष्टि होती रही, पश्चात् शांत होकर वायु ने सभी जल को सुखा दिया। इस भाँति दश वर्ष के अनन्तर यह भारतीय भूमि केवल स्थल की भाँति दिखायी देने लगी।४७-६१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कृतयुग के राजाओं का
वर्णन नामक पहला अध्याय।१।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

त्रेतायुगभूपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयागुरुवासरे । सुदर्शनो जनैः सार्द्धमयोध्यामगमत्पुनः ।।१
मायादेवीप्रभावेण पुरं सर्वं मनोहरम् । महावृद्धियुतं प्राप्तं बह्वन्नं सर्वरत्नकम् ।।२
दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा सुदर्शनः । प्राप्तवान्ब्राह्मतं लोकं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।।३
नन्दिनीवरदानेन तत्पुत्रो रघुरुत्तमः । दशवर्षसहस्राणि दिलीपो राज्यसत्कृतः ।।४
राज्यं कृतं च रघुणा दिलीपान्ते पितुस्समम् । रघुवंशस्ततः ख्यातस्त्रेतायां भृगुनन्दन ।।५
विप्रस्य वरदानेन तत्पुत्रोऽज इति स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत् ।।६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्रामो हरिः स्वयम् । एकादश सहस्राणि रामराज्यं प्रकीर्तितम् ।।७
तस्य पुत्रः कुशो नाम राज्यं दशसहस्रकम् । अतिथिर्नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुः समम् ।।८
निबन्धो नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् । तस्माज्जातो नलो नाम त्रेतायां शक्तिपूजकः ।।९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मान्नाभः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुण्डरीकः सुतोऽभवत् ।।१०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमधन्वा तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं द्वारको नाम तत्सुतः ।।११
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुरुर्नाम सुतस्ततः ।।१२

अध्याय २

त्रेतायुग के राजाओं का वर्णन

सूतजी बोले—वैशाखमास में शुक्लपक्ष की तृतीया वृहस्पति के दिन राजा सुदर्शन ने अपने परिजनों समेत अयोध्यापुरी में पुनः आगमन किया। माया देवी के अनुग्रहवश उस नगर में, जो सब भाँति मनोहर, सर्वसमृद्ध, अधिक अन्न एवं सभी प्रकार के रत्नों से पूर्ण था, दश सहस वर्ष तक राज्य का उपभोग करके वे ब्रह्मलोक पहुँच गये। सुदर्शन के पुत्र दिलीप हुए और दिलीप के पुत्र रघु हुए, जो नन्दिनी के वरदान से उत्पन्न थे। सम्मानपूर्वक दश सहस्र वर्ष तक राजा दिलीप के राज्य करने के उपरान्त रघु ने भी उनके समान काल तक राज्य का भारवहन किया था। भृगुनन्दन! त्रेतायुग में उन्होंने अपने नाम का (रघु) वंश चलाना आरम्भ किया था, पश्चात् ब्राह्मण के वरदान द्वारा उनके अज नामक पुत्र हुआ ऐसा कहा गया है। उन्होंने भी अपने पिता के समान काल तक राज्य किया था। अज के दशरथ हुए और दशरथ के स्वयं विष्णु भगवान् ने रामरूप से अवतार लिया था। दशरथ ने अपने पिता के समान काल तक राज्य-भार संभाला था और राम ने ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। उनके पुत्र कुश हुए, जिन्होंने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। कुश के अतिथि, अतिथि के निबंध, निबंध के शक्ति, शक्ति के परम उपासक राजा नल, नल के नाभ, नाभ के पुण्डरीक, पुण्डरीक के क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा के द्वारक, द्वारक के अहीनज और अहीनज के कुरु हुए जिन्होंने त्रेतायुग में सौ योजन के विस्तृत कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था। इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर अपने पिता के समान ही बताया गया है। इस

कुरुक्षेत्रं कृतं तेन त्रेतायां शतयोजनम् । त्रेतापादस्समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥१३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारियात्रः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दलपालस्सुतस्ततः ॥१४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं छद्मकारी तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुक्थः सुतोऽभवत् ॥१५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वज्रनाभिस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शंखनाभिस्ततोऽभवत् ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं व्युत्थनाभिस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विश्वपालस्ततोऽभवत् ॥१७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं स्वर्णनाभिस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुष्पसेनस्तु तत्सुतः ॥१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ध्रुवसन्धिस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमपवर्मा तु तत्सुतः ॥१९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीघ्रगन्ता तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुपालस्तु तत्सुतः ॥२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रसूवश्रुत उच्यते । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुसन्धिस्तनयोऽभवत् ॥
त्रेतापादः समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥२१
उदयादुदयं यावद्राज्ञा तत्र सुसंधिना । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मामर्बस्तनयस्ततः ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महाऽश्वस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्वालः सुतस्ततः ॥२३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदैशान एव तत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुरुक्षेपस्ततोऽभवत् ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सपालस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सव्यूहस्ततोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतिव्योमा ततो नृपः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतो देवकरस्ततः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सहदेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततो नृपः ॥२७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भानुरत्नस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुप्रतीकस्ततोऽभवत् ॥२८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुदेवस्सुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनक्षत्रस्ततोऽभवत् ॥२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतः केशीनरस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमन्तरिक्षस्ततो नृपः ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुवर्णांगो नृपोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो ह्यमित्रजित् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्राजस्ततोऽभवत् ॥३२

प्रकार भारत के अवान्तर प्रदेश में त्रेतायुग का पहला चरण समाप्त हुआ।१-१३। राजा कुरु के पारियात्र, पारियात्र के दलपाल, दलपाल के छद्मकारी, छद्मकारी के उक्थ, उक्थ के वज्रनाभि, वज्रनाभि के शंखनाभि, शंखनाभि के व्युत्थिताभि व्युत्थिताभि के विश्वपाल, विश्वपाल के स्वर्णनाभि, स्वर्णनाभि के पुष्पसेन, पुष्पसेन के ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि के अपवर्मा, अपवर्मा के शीघ्रगंता, शीघ्रगंता के मरुपाल, मरुपाल के प्रसूवश्रुत एवं प्रसूवश्रुत के सुसंधि नामक पुत्र हुए, जिन्होंने सूर्योदय प्रदेश से आरम्भ कर उसके चारों ओर के समस्त भूमण्डल पर अपना आधिपत्य प्राप्त किया। इन राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक राज्य भार संभाला था, ऐसा कहा गया है।१४-२१। पुनः सुसंधि के मामर्ब, मामर्ब के महाश्व, महाश्व के बृहद्वाल, बृहद्वाल के बृहदैशान, बृहदैशान के ऊरुक्षेप, ऊरुक्षेप के वत्सपाल, वत्सपाल के वत्सव्यूह, वत्सव्यूह के प्रतिव्योमा, प्रतिव्योमा के देवकर। देवकर के सहदेव, सहदेव के बृहदश्व, बृहदश्व के भानुरत्न, भानुरत्न के सुप्रतीक, सुप्रतीक के मरुदेव, मरुदेव के सुनक्षत्र,

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मराजस्ततो नृपः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः कृतञ्जयः ।।३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो रणञ्जयः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सञ्जयस्तत्सुतः स्मृतः ।।३४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शाक्यवर्धनः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्रोधदानस्तु तत्सुतः ।।३५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादतुलविक्रमः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रसेनजित् ।।३६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शूद्रकः स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुरथस्तत्सुतोऽभवत् ।।३७
पितुरर्द्धं कृतं राज्यं सर्वे तु रघुवंशजाः । पञ्चषष्टिमिता भूपा देवीपूजनतत्पराः ।।३८
हिंसायज्ञपराः सर्वे स्वर्गलोकमितो गताः । बुद्धा जाताश्च ये पुत्रास्ते सर्वे वर्णसङ्कराः ।।३९
त्रेतातृतीयचरणप्रारम्भेन नवतां गताः । इन्द्रेण प्रेषितो भूमौ चन्द्रमा रोहिणीपतिः ।।४०
प्रयागनगरे रम्ये भूमिराज्यमचीकरत् । विष्णुभक्तश्चन्द्रमाश्च शिवपूजनतत्परः ।।४१
मायादेवीप्रसन्नार्थे शतं यज्ञमचीकरत् । अष्टादशसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ।।४२
तस्य पुत्रो बुधो नाम मेरुदेवस्य वै सुतः । इलामुद्वाह्य धर्मेण तस्माज्जातः पुरूरवाः ।।४३
चतुर्दशसहस्राणि भूमिराज्यमचीकरत् । उर्वशीं सोऽपि स्वर्वेश्यां समये नैव भोग्यवान् ।।४४
आयुर्नाम सुतो जातो धर्मात्मा विष्णुतत्परः । षट्त्रिंशच्च सहस्राणि राज्यं कृत्वा पुरूरवाः ।।४५
गन्धर्वलोकं सम्प्राप्य मोदते दिवि देववत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमायुषो नहुषस्सुतः ।।४६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततः शक्रत्वमागतः । त्रिलोकीं स्वदशं चक्रे वर्षमेकसहस्रकम् ।।४७
मुनेर्दुर्वाससः शापान्नृपोऽजगरतां गतः । पञ्च पुत्रा ययातेश्च त्रयो म्लेच्छत्वमागताः ।।४८
द्वौ तथार्यत्वमापन्नौ यदुर्ज्येष्ठः पुरुर्लघुः । तपोबलप्रभावेण राज्यं लक्षाब्दसंमितम् ।।४९
कृत्वा विष्णुप्रसादेन ततो वैकुण्ठमागतः । यदोः पुत्रः स्मृतः क्रोष्टा राज्यं षष्टिसहस्रकम् ।।५०

सुनक्षत्र के केशीनर, केशीनर के अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष के सुवर्णांग, सुवर्णाङ्ग के अमित्रजित्, अमित्रजित् के बृहद्राज, बृहद्राज के धर्मराज, धर्मराज के कृतञ्जय, कृतञ्जय के रणञ्जय, रणञ्जय के सञ्जय, सञ्जय के शाक्यवर्धन, शाक्यवर्धन के क्रोधदान, क्रोधदान के अतुलविक्रम, अतुलविक्रम के प्रसेनजित्, प्रसेनजित् के शूद्रक, तथा शूद्रक के सुरथ नामक पुत्र हुए। इन राजाओं का राज्यकाल उत्तरोत्तर इनके पिता के समान ही बताया गया है। रघुवंशीय पैंसठ राजाओं ने अपने पिता के आधे समय तक राज्य का उपभोग किया है, जो देवी के परम उपासक और हिंसात्मक यज्ञ के अनुष्ठापक थे। उन सभी लोगों ने स्वर्ग की प्राप्ति की है। बुद्ध होने वाले सभी पुत्र वर्ण संकर कहे गये हैं। त्रेतायुग के तीसरे चरण के आरम्भिक काल में इनका नवोत्थान कहा जाता है।२२-४०। इन्द्र के भेजे हुए रोहिणी पति चन्द्रमा ने इस भूमण्डल पर आकर इस रमणीक प्रयाग नगर को अपनी राजधानी बनाया। चन्द्रमा विष्णु के परमभक्त एवं नित्य शिव की भी पूजा करते थे। माया देवी के प्रसन्नार्थ उन्होंने सौ यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था। अठारह सहस्र वर्ष राज्य करके उनके दिवंगत होने पर उनके पुत्र-बुध ने राज्यभार संभाला, जो मेरुदेव के पुत्र कहे जाते हैं। बुध ने इला का धार्मिक रीति से पाणिग्रहण करके पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसने चौदह सहस्र वर्ष राज्य किया था। उन्होंने प्रतिज्ञानुसार उर्वशी अप्सरा का भी उपभोग किया था। उनके आयु नामक पुत्र हुआ, जो धर्मात्मा एवं विष्णु का उपासक था। राजा पुरुरवा छत्तीस

वृजिनघ्नस्सुतस्तस्माद्राज्यं विंशत्सहस्रकम् । तस्मात्स्वाहार्चनः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् ।।५१
तस्माच्चित्ररथः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् । अरविन्दस्सुतस्तस्मात्कृतं राज्यं पितुः समम् ।।५२
अथ श्रवास्ततो जातस्तेजस्वी विष्णुतत्परः । पितुरर्द्धं कृतं राज्यं तत्पुत्रस्तामसः स्मृतः ।।५३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुशनसस्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीतांशुकनृपोऽभवत् ।। ।।५४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कमलांशुस्ततोऽभवत् ।।५५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारावतसुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जामघस्तत्सुतोऽभवत् ।।५६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विदर्भस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्राथो नाम सुतस्ततः ।।५७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुन्तिभोजस्तु तत्सुतः । पुरुर्दैत्यसुतापुत्रः पाताले वृषपर्वणः ।।५८
उषित्वा नगरे तस्मिन्मायाविद्यस्ततोऽभवत् । प्रयागस्य प्रतिष्ठाने पुरे राज्यमथाकरोत् ।।५९
दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः । देवीभक्तः स नृपतिस्तत्पुत्रो जनमेजयः ।।६०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रचिन्वांस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रवीरस्तनयोऽभवत् ।।६१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नभस्यस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भवदस्तत्सुतस्स्मृतः ।।६२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुद्युम्नस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुत्रो बाहुगरः स्मृतः ।।६३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं संयातिस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धनयातिस्ततोऽभवत् ।।६४

सहस्र वर्ष राज्य का उपभोग करके गन्धर्वलोक में आज भी देवताओं की भाँति आनन्दानुभव कर रहे हैं। उनका पुत्र आयु भी अपने पिता के समान समय तक राज्यभार का वहन किया था। पुनः आयु के पुत्र नहुष हुए जो अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग कर पश्चात् इन्द्र बनाये गये थे। उन्होंने समस्त तीनों लोकों को अपने अधीन करके उस पर एक सहस्र वर्ष तक अपना आधिपत्य जमाया था। पुनः दुर्वासा मुनि के शापवश उन्हें अजगर होना पड़ा था। राजा ययाति के पाँच पुत्र थे, जिसमें तीन म्लेच्छ एवं दो आर्य हुए थे। ज्येष्ठ का नाम यदुस था छोटे का नाम पुरु था। अपने तपोबल के प्रभाव से उन्होंने एकलक्ष वर्ष तक राज्य का उपभोग करके पश्चात् भगवान् विष्णु की प्रसन्नता से स्वर्ग की प्राप्ति की। यदु का पुत्र-क्रोष्टा बताया गया है, जिसने साठ सहस्र वर्ष राज्य किया था। उनके वृजिनघ्न नामक पुत्र हुआ जिसने बीस सहस्र वर्ष राज्य किया था। वृजिनघ्न के स्वाहार्चन, स्वाहार्चन के चित्ररथ और चित्ररथ के अरविंद हुए। इन लोगों ने भी अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया है। इसके उपरांत, अरविंद के श्रवा नामक पुत्र हुआ जो तेजस्वी एवं विष्णु का परम उपासक था। उसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया है। श्रवा के पुत्र तामस, तामस के उशनस्, उशनस् के शीतांशु, शीतांशु के कमलांशु, कमलांशु के पारावत, पारावत के जामघ, जामघ के विदर्भ, विदर्भ के क्राथ, क्राथ के कुंती भोज, और पाताल निवासी वृषपर्वा द्वारा दैत्य की कन्या में पुरु नामक पुत्र हुआ।४१-५८। उस नगर में रहते हुए पुरु के माया विद्य नामक पुत्र हुआ, जिसने प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर में अपनी राजधानी स्थापित करके दशसहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत स्वर्ग की प्राप्ति की। उस देवी भक्त राजा के जनमेजय, जनमेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् के प्रवीर, प्रवीर के नभस्य, नभस्य के भवद, भवद के सुद्युम्न, सुद्युम्न के बाहुगर, बाहुगर के संयाति, संयाति के

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमैन्द्राश्वस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्रन्तिनरः सुतः ॥६५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः सुतपाः स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सवरणस्तनयस्ततः ॥६६
हिमालयगिरौ प्राप्ते तपः कर्तुं मनो दधत् । शतवर्षं ततः सूर्यस्तपतीं नाम कन्यकाम् ॥६७
संवरणाय ददौ तुष्टो रविलोकं नृपो गतः । ततो मायाप्रभावेन युगं प्रलयमागतम् ॥६८
चत्वारः सागरा वृद्धा भारतं क्षयतां गतम् ! द्विवर्षे सागरे भूमिरुषिता भूधरैस्सह ॥६९
महावायुप्रभावेन सागराः शुष्कतां गताः । अगस्त्यतेजसा भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥७०
पञ्चवर्षान्तरे भूमिर्वृक्षदूर्वादिसंयुता । सूर्याज्ञया च संवर्णस्तपस्वी मुनिना सह ॥७१
वशिष्ठेन त्रिवर्णैश्च मुख्यैः सार्धं समागतः ॥७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये त्रेतायुगभूपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

द्वापरनृपोपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

संवर्णश्च महीपालः कस्मिन्काले समागतः । लोमहर्षण मे ब्रूहि द्वापरस्य नृपांस्तथा ॥१

धनयाति, धनयाति के ऐन्द्राश्व, ऐन्द्राश्व के रंतिनर, रंतिनर के सुतपा, और सुतपा के संवरण हुए, जिसने हिमालय पर्वत पर जाकर सौ वर्ष तक तप किया। उनके तपश्चर्या से प्रसन्न होकर सूर्य ने उन्हें अपनी तपन्ती नाम की कन्या प्रदान की। पुनः राजा सूर्य लोक चले गये। तदुपरांत माया के प्रभाव से युगप्रलय उपस्थित हुआ। चारों ओर के समुद्र में जल की बाढ़ आ गई जिससे भारतवर्ष नष्ट हो गया। पर्वतों समेत पृथिवी दो वर्ष तक समुद्र के भीतर पड़ी रही। पश्चात् महावायु की प्रखरता से सागर सूख गये। अगस्त्य के तेजोबल के कारण पृथिवी केवल स्थल रूप में दिखायी देने लगी। पाँच वर्ष के भीतर वृक्षों एवं दूर्वादिकों से परिपूर्ण होकर यह पृथिवी पुनः हरी भरी हो गई। उपरांत सूर्य की आज्ञा प्राप्त कर राजा संवर्ण, तपस्वी वशिष्ठ मुनि एवं प्रमुख तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) समेत पुनः इस भूतल पर आये ।५९-७२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में त्रेतायुग के राजाओं का वर्णन नामक दूसरा अध्याय ।२।

अध्याय ३

द्वापर के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—लोमहर्षण ! राजासंवर्ण का यहाँ आगमन किस समय में हुआ और द्वापर युग के राजाओं को भी बताने की कृपा कीजिए ।१

सूत उवाच

भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु त्रयोदश्यां भृगौ दिने । संवर्णे मुनिभिः सार्द्धं प्रतिष्ठाने समागतः ।।२
प्रतिष्ठानं कृतं रम्यं पञ्चयोजनमायतम् । अर्धकोशोन्नतं हर्म्यं रचितं विश्वकर्मणा ।।३
बुद्धिवंशे प्रसेनस्य सक्तााया भूपतिः कृतः । यदुवंशे सात्वतश्च मधुराभूपतिः कृतः ।।४
म्लेच्छवंशे श्मश्रुपालो मरुदेशस्य भूपतिः । क्रमेण वर्द्धिता भूपाः प्रजाभिः सहिता भुवि ।।५
दशवर्षसहस्राणि संवर्णो भूपतिःस्मृतः । तस्यात्मजोऽयमर्चाज्ञः कृतं राज्यं पितुस्समम् ।।६
तस्य पुत्रः सूरिजापी पितुरर्द्धं च राज्यकृत् । सूर्ययज्ञस्तस्य पुत्रः सौरयज्ञपरायणः ।।७
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादातिथ्यवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं द्वादशात्मा तु तत्सुतः ।।८
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो दिवाकरः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रभाकरः ।।९
शतहीनं कृतं राज्यं भास्वदात्मा च तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं विवस्वज्ज्ञस्तदात्मजः ।।१०
शतहीनं कृतं राज्यं हरिदश्वार्चनस्ततः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैकर्तनः सुतः ।।११
शतहीनं कृतं राज्यं स्तस्मादर्केष्टिमान्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मार्तण्डवत्सलः ।।१२
शतहीनं कृतं राज्यं मिहिरार्थस्तु तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादरुणपोषणः ।।१३
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्द्युमणिवत्सलः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्तरणियज्ञकः ।।१४
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मैत्रेष्टिवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं चित्रभानुस्सुतस्ततः ।।१५
शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैरोचनः स्मृतः । शतहीनं कृतं राज्यं हंसन्यायी तु तत्सुतः ।।१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वेदप्रवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्सावित्र उच्यते ।।१७
शतहीनं कृतं राज्यं धनपालस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं म्लेच्छहन्तसुतः स्मृतः ।।१८

सूत जी बोले—भादों मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी शुक्रवार के दिन मुनियों के साथ राजा संवर्ण इस प्रतिष्ठानपुर में आये हैं। विश्वकर्मा ने इस प्रतिष्ठानपुर को पांच योजन में विस्तृत एवं रमणीक बनाया है, जिसमें एक-एक मील की ऊँचाई के सुन्दर महल बने थे। बुद्धिवंश में प्रसेन सक्ति का, यदुवंश में सात्वत मथुरा (मधुरा) का और म्लेच्छ वंश में श्मश्रुपाल मरुदेश का राजा हुआ। इन राजाओं ने इस भूतल पर अपनी-अपनी प्रजाओं समेत अधिकाधिक उन्नति की। राजा संवरण ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। संवर्ण के यमर्चाज्ञ, तथा यमर्चाज्ञ के सूरिजापी हुए। इनमें केवल सूरिजापी के सूर्ययज्ञ नामक पुत्र हुआ, जो सूर्य के यज्ञानुष्ठान का ही पारायण करने वाला था। इसने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य का उपभोग किया था। सूर्ययज्ञ के आतिथ्यवर्धन, आतिथ्यवर्धन के द्वादशात्मा, द्वादशात्मा के दिवाकर, दिवाकर के प्रभाकर, प्रभाकर के भास्वदात्मा, भास्वदात्मा के विवस्वज्ज्ञ, विवस्वज्ज्ञ के हरिदश्वार्चन, हरिदश्वार्चन के वैकर्तन, वैकर्तन के अर्केष्टिमान्, अर्केष्टिमान् के मार्तण्डवत्सल, मार्तण्डवत्सल के मिहिरार्थ, मिहिरार्थ के अरुणपोषण, अरुणपोषण के द्युमणिवत्सल, द्युमणिवत्सल के तरणियज्ञक, तरणियज्ञक के मैत्रेष्टिवर्धन, मैत्रेष्टिवर्धन के चित्रभानु, चित्रभानु के वैरोचन, वैरोचन के हंसन्यायी।२-१६। हंसन्यायी के वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धन के सावित्र, सावित्र के धन पाल, धनपाल के म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहंता के आनन्दवर्धन, आनन्दवर्धन के धर्मपाल, धर्मपाल के ब्रह्मभक्त,

शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादानन्दवर्द्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं धर्मपालसुतस्ततः ॥१९
शतहीनं कृतं राज्यं ब्रह्मभक्तसुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्ब्रह्मेष्टिवर्द्धनः ॥२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादात्मप्रपूजकः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परमेष्ठी सुतस्ततः ॥२१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्धैरण्यवर्द्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं धातृयाजी तु तत्सुतः ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तद्विधातृप्रपूजकः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैद्रुहिणः क्रतुः ॥२३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैरञ्च्य उच्यते । शतहीनं कृतं राज्यं तत्पुत्रः कमलासनः ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शमवर्ती तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं श्राद्धदेवस्तु तत्सुतः ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै पितृवर्द्धनः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमदत्तस्तु तत्सुतः ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सौमदत्तिस्तदात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै सोमवर्द्धनः ॥२७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमवतंसः सुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतंसस्तनयस्ततः ॥२८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परातंसस्तदात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमयतंसस्ततोऽभवत् ॥२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समातंसस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनुतंसस्तदात्मजः ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमधितंसस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमभितंसस्तदात्मजः ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समुत्तंसस्ततोऽभवत् । पितुस्तल्यं कृतं राज्यं तंसोनाम सुतोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यन्तस्तनयस्ततः । शकुन्तलायां तस्माच्च भरतोनाम भूपतिः ॥३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यन्तः स्वर्गीत गतः । भरतोनाम तत्पुत्रो देवपूजनतत्परः ॥३४
महामायाप्रभावेन षट्त्रिंशद्वर्षजीवनम् । षट्त्रिंशब्दसहस्राणि नृपायुर्वर्द्धितं तथा ॥३५
तस्य नाम्ना स्मृतः खण्डो भारतो नाम विश्रुतः । तेन भूमेर्विभागश्च कृतं राज्यं पृथक् चिरम् ॥३६

और ब्रह्मभक्त के ब्रह्मेष्टिवर्द्धन, हुए, इनमें राजा वेद प्रवर्धन और ब्रह्मेष्टिवर्द्धन ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया है एवं शेष राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के राज्यकाल से सौ-सौ वर्ष कम समय तक ब्रह्मेष्टिवर्द्धन के आत्मप्रपूजक, आत्मप्रपूजक के परमेष्ठी, परमेष्ठी के हैरण्यवर्द्धन, और हैरण्यवर्द्धन के धातृयाजी हुए, जिन्होंने अपने पिता के राजकाल से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया है, एवं शेष राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक धातृयाजी के विधातृप्रपूजक, विधातृप्रपूजक के वैद्रुहिण, वैद्रुहिण के वैरोच्य, वैरोच्य के कमलासन, कमलासन के समवर्ती, समवर्ती के श्राद्धदेव, श्राद्धदेव के पितृवर्द्धन, पितृवर्द्धन के सोमदत्त, सोमदत्त के सौमदत्ति, सौमदत्ति के सोमवर्द्धन, सोमवर्द्धन के अवतंस, अवतंस के प्रतंस, प्रतंस के परातंस, परातंस के अयतंस, अयतंस के समातंस, समातंस के अनुतंस, अनुतंस के अधितंस, अधितंस के अभितंस, अभितंस के समुत्तंस, समुत्तंस के तंस, तंस के दुष्यंत, दुष्यंत के शकुंतला के गर्भ से भरत उत्पन्न हुए, पश्चात् स्वर्गारोहण हो गया। इन सभी राजाओं का राजकाल उत्तरोत्तर उनके पिता के समान ही बताया गया है, केवल राजा कमलासन को छोड़कर क्योंकि कमलासन ने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था। राजा भरत देवी जी के परम उपासक थे।१७-३४। महामाया के प्रभाव से छत्तीस वर्ष का जीवन छत्तीस सहस्रवर्ष का हो गया। उन्हीं के नाम से इस प्रदेश का भारतखण्ड (भारतवर्ष) नाम पड़ा। इन्होंने इस पृथिवी मंडल का विभाग करके अपना

दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माज्जातो महाबलः । दिव्यं वर्षशतं राज्यं भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥३७
दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माद्भवनमन्युमान् । अष्टादशसहस्राणि समा राज्यं प्रकीर्तितम् ॥३८
बृहत्क्षेत्रस्ततो ह्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुहोत्रस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३९
वीतिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् । यज्ञहोत्रस्ततोऽप्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४०
शक्रहोत्रस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । प्रसन्नो भगवानिन्द्रस्तं नृपं स्वर्गमाप्तवान् ॥४१
तद्दायोध्यापतिः श्रीमान्प्रतापेन्द्रो महाबलः । भारतं वर्षमदधद्वर्षं दशसहस्रकम् ॥४२
मण्डलीकस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विजयेन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४३
धनुर्दीप्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । इन्द्राज्ञया शक्रहोत्रो घृताच्या सह भूतले ॥४४
प्राप्तवान्सधनुर्दीप्तं जित्वा राज्यमचीकरत् । हस्तीनाम सुतो जात ऐरावतसुतं गजम् ॥४५
आरुह्य पश्चिमे देशे हस्तिनानगरी कृता । दशयोजनविस्तीर्णा स्वर्गंगायास्तटे शुभा ॥४६
राज्यं दशसहस्रं च तत्र वासं चकार सः । तत्पुत्रस्त्वजमीढाख्यः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४७
तस्माज्जातो रक्षपालः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुशम्यर्णस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृत पदम् ॥४८
तस्य पुत्रः कुरुर्नाम पितुरर्द्धं कृतं पदम् । इन्द्रस्य वरदानेन सदेहः स्वर्गमागतः ॥४९
तदा सात्वतवंशेऽस्मिन्वृष्णिर्नाम महाबलः । मथुरायां स्थितो राज्यं सर्वं स्ववशमाप्तवान् ॥५०
भगवतो वरदानेन हरेरद्भुतकर्मणः । पञ्चवर्षसहस्रं च सर्वं राज्यं वशीकृतम् ॥५१

राज्य पृथक् स्थापित कर उसका उपभोग किया था । इनका राजकाल दिव्य वर्ष से सौ वर्ष का बताया जाता है । पुनः इनके भरद्वाज और भरद्वाज के भदन मन्युमान् हुए, इन सभी का राजकाल भरत के समान ही कहा गया है । अठारह सहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत इनके बृहत्क्षेत्र नामक पुत्र हुआ तथा बृहत्क्षेत्र के सुहोत्र, सुहोत्र के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के यज्ञहोत्र और यज्ञहोत्र के शक्रहोत्र हुए जिन्हें प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र ने स्वर्ग निवास प्रदान किया था । इनमें केवल वीतिहोत्र ने दशसहस्र वर्ष राज्य किया था । और शेष राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक । वे महाबली श्रीमान् राजा प्रतापेन्द्र अयोध्या अधीश्वर थे । उन्होंने दश सहस्र वर्ष तक इस भारत वर्ष का राज्यभार वहन किया था । पश्चात् उनके मण्डलीक, मण्डलीक के विजयेन्द्र और विजयेन्द्र के धनुर्दीप्त, हुए । इन राजाओं ने अपने पिता के समान काल राज्य किया है । (कुछ काल के अनन्तर) इन्द्र की आज्ञा से शक्रहोत्र घृताची अप्सरा के समेत इस भूमण्डल पर आकर राजा धनुर्दीप्त पर विजय प्राप्त कर वहाँ का राज्य करने लगे । उनके हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने ऐरावत-पुत्र गजेन्द्र पर आरूढ़ होकर पश्चिम के प्रदेश में हस्तिनापुर नामक नगर बसाया था जो स्वर्गंगा के तटपर दश योजन के विस्तार में सुशोभित हो रही थी । उस नगर में उन्होंने दशसहस्र वर्ष तक राज्य का भार निभाया था । पुनः उनके अजमीढ, अजमीढ़ के रक्षपाल, रक्षपाल के सुशम्यर्ण तथा सुशम्यर्ण के कुरु हुए, जिन्होंने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया था और शेष भूपगण अपने पिता के समान काल तक । इन्द्र से वरदान प्राप्त कर राजा कुरु ने इसी शरीर समेत स्वर्ग यात्रा की । उस समय सात्वत वंश के महाबली राजा वृष्णि ने मथुरा में रहकर समस्त राज्य को अपने अधीन कर लिया था । आश्चर्य जनक भगवान् विष्णु के वरदान द्वारा उन्होंने पाँच सहस्र

निरावृत्तिस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । दशारी तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५२
वियामुनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । जीमूतस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५३
विकृतिस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातो भीमरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५४
तस्माज्जातो नवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातो दशरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५५
तस्माज्जातश्च शकुनिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातः कुशुम्भश्च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५६
तस्माज्जातो देवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । देवक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५७
तस्य पुत्रो मधुर्नाम पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । ततो नवरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५८
कुरुवत्सस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्मादनुरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।५९
पुरुहोत्रः सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विचित्राङ्गस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६०
तस्मात्सात्वतवान्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भजमानस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६१
विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुरभक्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६२
तस्माच्च सुमनाः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । ततिक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६३
स्वायम्भुवस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । हरिदीपक एवासौ तस्य राज्यं पितुस्समम् ।।६४
देवमेधास्सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुरपालस्तदा जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६५
शक्राज्ञया कुरुश्चैव द्वापरत्रितये पदे । व्यतीते च सुकेश्यास्स स्वर्वेश्यायाः पतिः प्रभुः ।।६६
आगतो भारते खण्डे कुरुक्षेत्रं तदा कृतम् । विंशद्योजनविस्तीर्णं पुण्यक्षेत्रं स्मृतं बुधैः ।।६७
द्वादशाब्दसहस्रं च कुरुणा राज्यसात्कृतम् । तस्माज्जह्नुस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६८
तस्माच्च सुरथो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६९
सार्वभौमस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । जयसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७०

वर्ष तक समस्त राज्य का उपभोग किया था ।३५-५१। अनन्तर उनके निरावृत्ति, निरावृत्ति के दशारी, दशारी के वियामुन, वियामुन के जीमूत, जीमूत के विकृति, विकृति के भीमरथ, भीमरथ के नवरथ, नवरथ के दशरथ, दशरथ के शकुनि, शकुनि के कुशुम्भ, कुशुम्भ के देवरथ, देवरथ के देवक्षेत्र, देवक्षेत्र के मधु, मधु के नवस्थ, नवस्थ के कुरुवत्स, कुरूवत्स के अनुरथ, अनुरथ के पुरुहोत्र, पुरुहोत्र के विचित्राङ्ग, विचित्राङ्ग के सात्वतवान्, सात्वत्वान के भजमान्, भजमान के विदूरथ, विदूरथ के सुरभक्त, सुरभक्त के सुमना, सुमना के ततिक्षेत्र, ततिक्षेत्र के स्वायंभुव, स्वायंभुव के हरिदीपक, हरिदीपक के देवमेधा और देवमेधा के सुरपाल नामक पुत्र हुए । इन सभी राजाओं का राजकाल उत्तरोत्तर उनके पिता के समान ही है । द्वापर युग के तीसरे चरण की समाप्ति समय में स्वर्गाधिनायक इन्द्र की आज्ञा से राजा कुरु ने अपनी पत्नी सुकेशी अप्सरा के साथ इस भारत वर्ष में आकर कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था, जिस पुण्यक्षेत्र का विस्तार विद्वानों ने बीसयोजन का बताया है । उस क्षेत्र में अधिनायक के पद पर रहकर उन्होंने उसे बारह सहस्र वर्ष तक सुशोभित किया था। पश्चात् उनके जह्नु, जह्नु के सुरथ, सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जपसेन जपसेन के अर्णव हुए, जो चारों समुद्रों को भी अपना कर अपने पिता के

तस्मादर्णद एवासौ पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । चतुस्सागरगामी च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७१
अयुतायुस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् । अक्रोधनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७२
तस्मादृक्षस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भीमसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।७३
दिलीपस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । प्रतीपस्तस्य तनयो राज्यं पञ्चसहस्रकम् ।।७४
शन्तनुस्तस्य पुत्रश्च राज्यमेकसहस्रकम् । विचित्रवीर्यस्तत्पुत्रो राज्यं वै द्विशतं समाः ।।७५
पाण्डुश्च तनयो यस्मिन्राज्यं पञ्चशतं कृतम् । युधिष्ठिरस्तस्य सुतो राज्यं पञ्चाशदब्दकम् ।।७६
सुयोधनेन षष्ट्यब्दं कृतं राज्यं ततः परम् । युधिष्ठिरेण निधनं तस्य प्राप्तं कुरुस्थले ।।७७
पूर्वं देवासुरे युद्धे ये दैत्याश्च सुरैर्हताः । ते सर्वे शन्तनो राज्ये जन्मवन्तः प्रतस्थिरे ।।७८
लक्षमक्षौहिणी तेषां तद्भारेण वसुन्धरा । शक्रस्य शरणं प्राप्तावतारं च ततो हरेः ।।७९
स सौरेर्वसुदेवस्य देवक्यां जन्मनाविशत् । एवं कृष्णो महावीर्यो रोहिणीनिलयं गतः ।।८०
पञ्चत्रिंशदुत्तरं च शतं वर्षं च भूतले । उषित्वा कृष्णचन्द्रश्च ततो गोलोकमागतः ।।८१
चतुर्थचरणान्ते च हरेर्जन्म स्मृतं बुधैः । हस्तिनापुरमध्यस्थाभिमन्योस्तनयस्ततः ।।८२
राज्यमेकसहस्रं च ततोऽभूज्जनमेजयः । त्रिसहस्रं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् ।।८३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं यज्ञदत्तस्ततः सुतः । राज्यं पञ्चसहस्रं च निश्चक्रस्तनयोऽभवत् ।।८४

समान काल तक राज्य पर प्रतिष्ठित रहे । तथा अर्णव के अयुतायु पुत्र हुए, जिन्होंने दशसहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था । पुनः अयुतायु के अक्रोधन, अक्रोधन के ऋक्ष, ऋक्ष के भीमसेन, भीमसेन के दिलीप, और दिलीप के प्रतीप उत्पन्न हुए जिन्होंने पाँच सहस्र वर्ष तक राज्य किया था, तथा शेष राजा लोग उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक । प्रतीप के शंतनु हुए, जिन्होंने एक सहस्र वर्षतक राज्य किया, पश्चात् उनके पुत्र विचित्रवीर्य हुए उन्होंने दो सौ वर्ष तक राज्य किया था ।५२-७५। विचित्रवीर्य के पांडु हुए, जिन्होंने पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया । पांडु के युधिष्ठिर हुए, जिनका राजकाल पचास वर्ष का बताया जाता है । सुयोधन के साठ वर्ष राज्य करने के उपरांत कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर द्वारा उसका निधन हुआ था । पहले समय में देवासुर संग्राम में असुरों द्वारा जिन दैत्यों की मृत्यु हुई थी, वे दैत्यगण राजा शांतनु के राज्य में जन्म लिए । इस प्रकार उन लोगों की एक लक्ष अक्षौहिणी सेना के भार से पीड़ित होकर पृथिवी इन्द्र की शरण में गई थी । पश्चात् विष्णु भगवान् का अवतार सूरवंशी राजा वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी में जन्म ग्रहण के द्वारा हुआ था । अनन्तर महापराक्रमी भगवान् कृष्ण के अवतरित होने पर कालान्तर में रोहिणी का निधन हुआ था । इस भूतल पर भगवान् कृष्णचन्द्र ने एक सौ पैंतीस वर्ष तक प्राणियों को सुखी बनाकर पश्चात् गोलोक को प्रस्थान किया था। विद्वानों ने भगवान् का अवतार जन्म (द्वापर के) चौथे चरण के अन्त समय में बताया है। हस्तिनापुर में (युधिष्ठिर के) अभिमन्यु और अभिमन्यु के परीक्षित हुए, जिन्होने एक सहस्र वर्ष तक राज्य किया । पुनः परीक्षित के जनमेजय, जनमेजय के शतानीक, और शतानीक के यज्ञदत्त हुए। इन राजाओं ने तीन सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। पश्चात् यज्ञदत्त के निश्चक्र हुए जिन्होंने पाँच सहस्र वर्ष तक राज्य किया है निश्चक्र के

सहस्रमेकं राज्यं तदुष्ट्रपालस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माच्चित्ररथस्सुतः ।।८५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिमांस्तनयस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुषेणस्तनयोऽभवत् ।।८६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनीथस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मखपालः सुतोऽभवत् ।।८७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं न चक्षुस्तनयस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखवन्तस्ततोऽभवत् ।।८८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मात्पारिप्लवस्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनयस्तत्सुतोऽभवत् ।।८९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मेधावी तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो नृपञ्जयः ।।९०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मृदुस्तत्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तिग्मज्योतिस्तु तत्सुतः ।।९१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो बृहद्रथः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसुदानस्ततोऽभवत् ।।९२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुद्यान उच्यते ।।९३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनरः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं निर्मित्रस्तनयोऽभवत् ।।९४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमकस्तत्सुतोऽभवत् । राज्यं त्यक्त्वा स मेधावी कलापग्राममाश्रितः ।।९५
म्लेच्छैश्च मरणं प्राप्तो यमलोकमतो गतः । नारदस्योपदेशेन प्रद्योतस्तनयस्ततः ।।९६
म्लेच्छयज्ञः कृतस्तेन म्लेच्छा हननमागताः ।।९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
द्वापरनृपोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

उष्ट्रपाल हुए जिसने एक सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया है । उष्ट्रपाल के चित्ररथ, चित्ररथ के धृतिमान्, धृतिमान् के सुषेण, सुषेण के सुनीथ, सुनीथ के मखपाल, मखपाल के नचक्षु, नचक्षु के सुखवन्त, सुखवन्त के पारिप्लव, पारिप्लव के सुनय, सुनय के मेधावी, मेधावी के नृपञ्जय, नृपंजय के मृदु, मृदु के तिग्मज्योति, तिग्मज्योति के बृहद्रथ, बृहद्रथ के वसुदान, वसुदान के शतानीक, शतानीक के उद्यान, उद्यान के अहीनर, अहीनर के निर्मित्र और निर्मित्र के क्षेत्रक हुए, जिन्होंने उस राज्य का परित्याग कर कलाप गाँव में निवास स्थान बनाया था, पश्चात् वहाँ म्लेच्छों द्वारा उनका निधन हुआ जिससे उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा । अनन्तर नारद के उपदेश देने पर उनके पुत्र प्रद्योत ने म्लेच्छ यज्ञ आरम्भ किया जिससे उन्होंने म्लेच्छों का समूल नाश किया था ।७६-९७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में द्वापर के राजाओं का वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

चतुर्थोऽध्यायः

द्वापरयुगभूपाख्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

कथं यज्ञः कृतस्तेन प्रद्योतेन विचक्षण ! सर्वं कथय मे तात त्रिकालज्ञ महामुने ।।१

सूत उवाच

एकदा हस्तिनगरे प्रद्योतः क्षेमकात्मजः । आस्थितः स कथामध्ये नारदोऽभ्यागमत्तदा ।।२
तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा पूजयामास धर्मवित् । सुखोपविष्टः स मुनिः प्रद्योतं नृपमब्रवीत् ।।३
म्लेच्छैर्हतस्तव पिता यमलोकमतो गतः । म्लेच्छयज्ञप्रभावेण स्वर्गतिर्भविता हि सः ।।४
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षो ब्राह्मणान्वेदवित्तमान् । आहूय स कुरुक्षेत्रे म्लेच्छयज्ञं समारभत् ।।५
यज्ञकुण्डं चतुष्कोणं योजनान्येव षोडश । रचित्वा देवतां ध्यात्वा म्लेच्छांश्च जुहुयान्नृपः ।।६
हारहूणान्बर्बरांश्च गुरुण्डांश्च शकान्खसान् । यवनान्पल्लवांश्चैव रोमजान्खरसम्भवान् ।।७
द्वीपस्थितान्कामरूश्च चीनान्सागरमध्यगान् । प्राहूय भस्मसात्कुर्वन्वेदमन्त्रप्रभावतः ।।८
ब्राह्मणान्दक्षिणां दत्त्वा अभिषेकमकारयत् । क्षेमको नाम नृपतिः स्वर्गलोकं ततो गतः ।।९

अध्याय ४

द्वापर के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—हे विचक्षण ! तात ! त्रिकालज्ञ ! एवं महामुने ! राजा प्रद्योत ने उस (म्लेच्छ) यज्ञ को किस भाँति किया था मुझे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें ।

सूत जी बोले—एक समय क्षेमक के पुत्र प्रद्योत अपने हस्तिनगर की राजधानी में सिंहासनारूढ़ हो कुछ कथाओं की चर्चा कर रहे थे कि उसी समय वहाँ महर्षि नारद का आगमन हुआ । उन्हें देखकर परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस धार्मिक राजा ने उनका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया । सुखासीन होकर नारद मुनि ने राजा प्रद्योत से कहा—'म्लेच्छों द्वारा तुम्हारे पिता का निधन हुआ है, इसीलिए उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा, अब वे म्लेच्छ यज्ञ के प्रभाव से ही स्वर्ग निवासी हो सकते हैं, सुनते ही क्रुद्ध होने के कारण उसकी आँखे ताँबे की भाँति रक्त वर्ण की हो गईं । उसने शीघ्र वैदिक विद्वान् ब्राह्मणों को निमंत्रित करके कुरुक्षेत्र में म्लेच्छयज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया । उस अनुष्ठान में चौकोर एवं सोलह योजन के विस्तृत यज्ञ-कुण्ड की रचना करके देवता के ध्यान पूर्वक उस राजा ने उसमें म्लेच्छों की आहुति प्रदान करना आरम्भ किया । वेदमंत्र के प्रभाव से उसने हार, हूण, बर्बर, गुरुण्ड (अंग्रेज), शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव, द्वीपनिवासी कामरू, चीनी, एवं सागर के मध्यवर्ती प्रदेशों के म्लेच्छों को मंत्र द्वारा बुलाकर आहुति करके भस्म कर दिया । पुनः ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत अभिषेक भी सविधान समाप्त किया। तत्पश्चात् राजा क्षेमक को स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई। उसी

म्लेच्छहन्ता नाम तस्य विख्यातं भुवि सर्वतः । राज्यं दशसहस्राब्दं कृतं तेन महात्मना ।।१०
स्वर्गलोकं गतो राजा तत्पुत्रो वेदवान्स्मृतः । द्विसहस्रं कृतं राज्यं तदा म्लेच्छः कलिः स्वयम् ।।
नारायणं पूजयित्वा दिव्यस्तुतिमथाकरोत् ।।११

कलिरुवाच

नमोऽनन्ताय महते सर्वकालप्रवर्तिने ।।१२
चतुर्युगकृते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे । दशावताराय हरे नमस्तुभ्यं नमोनमः ।।१३
नमः शक्त्यावताराय रामकृष्णाय ते नमः । नमो मत्स्यावताराय महते गौरवासिने ।।१४
नमो भक्तावताराय कल्पक्षेत्रनिवासिने । राज्ञा वेदवता नाथ मम स्थानं विनाशितम् ।।
मम प्रियस्य म्लेच्छस्य तत्पित्रा वंशनाशनम् ।।१५

सूत उवाच

इति स्तुतस्तु कलिना म्लेच्छस्य सह भार्यया ।।१६
प्राप्तवान्स हरिः साक्षाद्भगवान्भक्तवत्सलः । कलिं प्रोवाच स हरिर्युष्मदर्थे युगोत्तमम् ।।१७
बहुरूपमहं कृत्वा तवेच्छां पूरयाम्यहम् । आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा ।।१८
विष्णुकर्दमतो जातौ म्लेच्छवंशप्रवर्धनौ । हरिस्त्वन्तर्दधे तत्र कलिरानन्दसङ्कुलः ।।१९
गिरिं नीलाचलं प्राप्य किञ्चित्कालमवासयत् । पुत्रो वेदवतो जातः सुनन्दो नाम भूपतिः ।।२०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनपत्यो मृतिं गतः । आर्यदेशाः क्षीणवन्तो म्लेच्छवंशं बलान्विताः ।।२१

दिन से राजा प्रद्योत का नाम इस भूमण्डल में चारो ओर 'म्लेच्छहंता' विख्यात हुआ । दशसहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत उस महात्मा राजा ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया । तदनन्तर उनके पुत्र वेदवान् ने दो सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस समय म्लेच्छ कलियुग स्वयं नारायण की पूजा करके दिव्य स्तुति से उनकी प्रार्थना कर रहा था ।

कलि ने कहा—अनंत, महान्, सम्पूर्ण काल के प्रवर्तक, चारों युग के रचयिता, एवं साक्षी, तुम्हें वासुदेव को नमस्कार है । हे हरे ! तुम्हारे दश, अवतार को नमस्कार है, शक्त्या अवतार लेने वाले तुम्हें रामकृष्ण को नमस्कार है । मत्स्यावतार लेने वाले, महान्, एवं गौरवासी को नमस्कार है । भक्तों के लिए अवतार लेने वाले, तथा कल्पक्षेत्र के निवासी आपको नमस्कार है । नाथ ! राजा वेदवान् ने मेरे स्थानों को नष्ट कर दिया है और उसके पिता ने मेरे प्रिय म्लेच्छवंशों का समूल नाश कर दिया है । १-१५

सूत जी बोले—स्त्री समेत म्लेच्छ कलि के इस प्रकार स्तुति करने पर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु ने साक्षात् उसे दर्शन दिया । भगवान् ने कलि से कहा कि 'तुम लोगों के लिए यह युग अत्युत्तम है । इसमें मैं स्वयं अनेक रूप धारण कर तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए तैयार हूँ । आदम नाम का पुरुष और हव्यवती नाम की उसकी पत्नी म्लेच्छों के वंश के प्रवर्द्धक ये दोनों विष्णु कर्दम से उत्पन्न होंगे ।' यह कहकर विष्णु उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और कलि आनन्दातिरेक में निमग्न हुआ । पश्चात् उसने नीलगिरि पर पहुँच कर कुछ दिन के लिए अपना निवास स्थान बनाया उधर वेदवान् के सुनंद नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया, किन्तु सन्तानहीन होकर इस लोक से प्रस्थित

भविष्यन्ति भृगुश्रेष्ठ तस्माच्च तुहिनाचलम् । गत्वा विष्णुं समाराध्य गमिष्यामो हरेः पदम् ॥२२
इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । अष्टाशीतिसहस्राणि गतास्ते तुहिनाचलम् ॥२३
विशालायां समासाद्य विष्णुगाथां प्रचक्षिरे । इति व्यासेन कथितं वाक्यं कलिविशारदम् ॥
श्रोतारं स मनः कृत्वा भविष्यं समुदीरयत् ॥२४

व्यास उवाच

मनः शृणु ततो गाथां भावीं सूतेन वर्णिताम् । कलेर्युगस्य पूर्णां तां तच्छ्रुत्वा तृप्तिमाह्व ॥२५

सूत उवाच

षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तद्द्वापरे युगे । बहुकीर्तिमती भूमिरार्यदेशस्य कीर्तिता ॥२६
क्वचिद्विप्राः स्मृता भूपाः क्वचिद्राजन्यवंशजाः । क्वचिच्छूद्राः क्वचिद्विप्राः कुत्रचिद्वर्णसङ्कराः ॥२७
द्विशताष्टसहस्रे द्वे शेषे तु द्वापरे युगे । म्लेच्छदेशस्य या भूमिर्भविता कीर्तिमालिनी ॥२८
इन्द्रियाणि दमित्वा यो ह्यात्मध्यानपरायणः । तस्मादादमनामासौ पत्नी हव्यवती स्मृता ॥२९
प्रदाननगरस्यैव पूर्वभागे महावनम् । ईश्वरेण कृतं रम्यं चतुःक्रोशायतं स्मृतम् ॥३०
पापवृक्षतले गत्वा पत्नीदर्शनतत्परः । कलिस्तत्रागतस्तूर्णं सर्परूपं हि तत्कृतम् ॥३१
वञ्चिता तेन धूर्तेन विष्ण्वाज्ञा भङ्गतां गता । खादित्वा तत्फलं रम्यं लोकमार्गप्रदं पतिः ॥३२

हुआ । तत्पश्चात् नैमिषारण्य निवासी समस्त द्विज वृन्द 'भृगुश्रेष्ठ ! यह आर्य देश क्रमशः क्षीण होगा और म्लेच्छवंश के लोग सबल होंगे इसलिए हमलोग हिमालय पर्वत पर चलकर भगवान् विष्णु की आराधना करके उनके लोक की प्राप्ति करेंगे, इस प्रकार की बातें सुनकर अठ्ठासी सहस्र की संख्या में वे लोग हिमालय की यात्रा के लिए अग्रसर हुए । विशाला में पहुँच कर उन लोगों ने विष्णु-गाथा का प्रचार किया । इस प्रकार व्यास ने अपने मन को श्रोता बनाकर उसे सम्बोधित करते हुए कलि विषयक समस्त भविष्य की बातों की चर्चा की—

व्यास जी बोले—हे मन ! सूत द्वारा व्याख्या की गई उस पूरी गाथा को जो कलियुग में होने वाली है, सुनो, और उसे सुनकर शान्त हो जाओ ।

सूत जी बोले—द्वापर युग के सोलह सहस्र वर्ष शेष रहते समय आर्यदेश की भूमि अनके भाँति की कीर्ति से व्याप्त होगी—कहीं ब्राह्मण लोग राजा होंगे, कहीं क्षत्रिय वंश के लोग, कहीं वैश्य वर्ग, कहीं शूद्र और कहीं वर्णसंकर वृन्द । आठ सहस्र दो सौ वर्ष द्वापर युग के शेष रहने पर म्लेच्छदेश की जो भूमि अनेक कीर्ति लताओं से गुम्फित बतायी गई है उसमें इन्द्रियों का दमन करते हुए जो आत्मध्यान परायण रहा उसी से उसका नाम आदम और उसकी पत्नी का नाम हव्यवती बताया गया है । प्रदान नगर के पूर्व भाग में ईश्वरकृत चार कोश में विस्तृत एवं सुरम्य एक विशाल जंगल है, उसमें पाप-वृक्ष के नीचे जाकर उसने अपनी पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट की । उस समय कलि साँप का रूप धारण कर वहाँ शीघ्रता से पहुँच गया तथा उस धूर्त ने उन्हें उससे वंचित कर विष्णु की आज्ञा भंगकर दी । पुनः लोक मार्ग के प्रदर्शक उस दम्पति ने उस मनोहर फल का भक्षण कर गूलर के पत्ते द्वारा वायुपान भी किया । तदुपरांत जितनी

उदुम्बरस्य पत्रैश्च ताभ्यां वाप्यशनं कृतम् । सुताः पुत्रास्ततो जाताः सर्वे म्लेच्छा बभूविरे ।।३३
त्रिंशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम् । फलानां हवनं कुर्वन्पत्न्या सहदिवं गतः ।।३४
तस्माज्जातः सुतः श्रेष्ठः श्वेतनामेति विश्रुतः । द्वादशोत्तरवर्षं च तस्यायुः परिकीर्तितम् ।।३५
अनुहस्तस्य तनयः शत हीनं कृतं पदम् । कीनाशस्तस्य तनयः पितामहसमं पदम् ।।३६
महल्ललस्तस्य सुतः पञ्चहीनं शतं नव । तेन राज्यं कृतं तत्र तस्मान्मानगरं स्मृतम् ।।३७
तस्माच्च विरदो जातो राज्यं षष्ट्युत्तरं समाः । ज्ञेयं नवशतं तस्य स्वनाम्ना नगरं कृतम् ।।३८
हनूकस्तस्य तनयो विष्णुभक्तिपरायणः । फलानां हवनं कुर्वन्तस्त्वं ह्यसि जयन्सदा ।।३९
त्रिशतं पञ्चषष्टिश्च राज्यं वर्षाणि तत्स्मृतम् । सन्देहः स्वर्गमायातो म्लेच्छधर्मपरायणः ।।४०
आचारश्च विवेकश्च द्विजता देवपूजनम् । कृतान्येतानि तेनैव तस्मान्म्लेच्छः स्मृतो बुधैः ।।४१
विष्णुभक्त्याग्निपूजा च ह्यहिंसा च तपो दमः । धर्माण्येतानि मुनिभिर्म्लेच्छानां हि स्मृतानि वै ।।४२
मतोच्छिलस्तस्य सुतो हनुकस्यैव भार्गव । राज्यं नवशतं तस्य सप्ततिश्च स्मृताः समाः ।।४३
लोमकस्तस्य तनयो राज्यं सप्तशतं समाः । सप्तसप्ततिरेवास्य तत्पश्चात्स्वर्गतिं गतः ।।४४
तस्माज्जातः सुतो न्यूहो निर्गतस्तूह एव सः । तस्मान्न्यूहः स्मृतः प्राज्ञै राज्यं पञ्चशतं कृतम् ।।४५
सीमः शमश्च भावश्च त्रयः पुत्राः बभूविरे । न्यूहः स्मृतो विष्णुभक्तस्सोऽहं ध्यानपरायणः ।।४६
एकदा भगवान्विष्णुस्तत्स्वप्ने तु समागतः ।।४७
वत्स न्यूह शृणुष्वेदं प्रलयः सप्तमेऽहनि । भविता त्वं जनैस्सार्धं नावमारुह्य सत्वरम् ।।४८

संतान उत्पन्न हुई सभी म्लेच्छ हुए । नव सौ तीस वर्ष उनकी आयु बतायी गयी है । फलों के हवन करते हुए पत्नी समेत उनके स्वर्गीय होने पर उनके श्वेत नामक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । जिसकी एक सौ बारह वर्ष की आयु कही गयी है । उनके अनुह नामक पुत्र हुआ जिसने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया ।१६-३६। पुनः अनुह के कीनाश हुआ, जिसने अपने पितामह (बाबा) के समान काल तक राज्य किया । उनका पुत्र महल्लल हुआ, जिसका राजकाल नव सौ पंचानबे वर्ष का बताया जाता है । महल्लल के मानगर और मानगर के विरद हुए, जिन्होंने नव सौ साठ वर्ष राज्य किया तथा अपने नाम से एक नगर का भी निर्माण किया । उनके हनूक हुए, जो विष्णु, भक्ति का पारायण और फलों के हवन सदैव करते हुए परमार्थतत्त्व के ज्ञाता हुए । तीन सौ पैंसठ वर्ष राज्य करके उस म्लेच्छ धर्मानुयायी ने सदेह स्वर्गकी प्राप्ति की । आचार, विवेक रखते हुए ब्राह्मण बनकर देव-पूजन करना विद्वानों ने यही म्लेच्छ होना बताया है, और यही वे भी करते थे । 'विष्णु-भक्ति, अग्नि-पूजा, अहिंसा, तप और दम' मुनियों ने म्लेच्छों का यही धर्म बताया है । भार्गव ! पुनः हनुक के मतोच्छिल हुए, जिन्होंने नव सौ सत्तर वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । मतोच्छिल के लोमक हुए जिसने सात सौ वर्ष राज्य किया, पश्चात् वे स्वर्गीय हो गये । लोमक के न्यूह हुए, जिन्होंने पाँच सौ वर्ष राज्य किया । उनके सीम, शम और भाव नामक तीन पुत्र हुए । न्यूह विष्णु भक्त थे, वे 'सोऽहं' (मैं वही हूँ) का सदैव ध्यान करते थे ।३७-४६। एक बार भगवान् विष्णु ने स्वप्न में उनसे कहा कि—वत्स ! न्यूह आज के सातवें दिन प्रलय होगा अतः अपने आत्मीय जनों

जीवनं कुरु भक्तेन्द्र सर्वश्रेष्ठो भविष्यसि । तथेति मत्वा स मुनिर्नावं कृत्वा सुपुष्टिताम् ।।४९
हस्तत्रिशतलम्बां च पञ्चाशद्धस्तविस्तृताम् । त्रिंशद्धस्तोच्छ्रितां रम्यां सर्वजीवसमन्विताम् ।।५०
आरुह्य स्वकुलैस्सार्द्धं विष्णुध्यानपरोऽभवत् । सांवर्तको मेघगणो महेन्द्रेण समन्वितः ।।५१
चत्वारिंशद्दिनान्येव महावृष्टिमकारयत् । सर्वं तु भारतं वर्षं जलैः प्लाव्य तु सिन्धवः ।।५२
चत्वारो मिलिताः सर्वे विशालायां न चागताः । अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ब्रह्मवादिनः ।।५३
न्यूहश्च स्वकुलैस्सार्धं शेषास्सर्वे विनाशिताः । तदा च मुनयस्सर्वे विष्णुमायां प्रदुष्टुवुः ।।५४

मुनय ऊचुः

नमो देव्यै महाकाल्यै देवक्यै च नमो नमः । महालक्ष्म्यै विष्णुमात्रे राधा देव्यै नमो नमः ।।५५
रेवत्यै पुष्पवत्यै च स्वर्णवत्यै नमो नमः । कामाक्षायै च मायायै नमो मात्रे नमो नमः ।।५६
महावातप्रभावेन महामेघरवेण च । जलधाराभिरुग्राभिर्भयं जातं हि दारुणम् ।।५७
तस्माद्भयाद्भैरवि त्वमस्मान्संरक्ष किङ्करान् । तदा प्रसन्ना सा देवी जलं शान्तं तया कृतम् ।।५८
अब्दान्तरे मही सर्वा स्थली भूत्वा प्रदृश्यते । आराच्च शिषिणा नाम हिमाद्रेस्तटभूमयः ।।५९
न्यूहस्तत्र स्थितो नावमारुह्य स्वकुलैस्सह । जलान्ते भूमिमागत्य तत्र वासं करोति सः ।।६०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चर्तुयुगखण्डापरपर्याये द्वापरनृपोपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

समेत शीघ्र नाव पर बैठकर अपने जीवन की रक्षा करना' भक्तेन्द्र ! इससे तुम सभी भक्तों में श्रेष्ठ कहलाओगे । भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर एक सुदृढ़ नाव पर जो तीन सौ हाथ की लम्बी, पचास हाथ की चौड़ी, और तीस हाथ की ऊँची थी, अपने कुल समेत समस्त जीवों को उस पर बैठाकर स्वयं विष्णु का ध्यान करने लगे । सांवर्तक नामक मेघ गण ने महेन्द्र के साथ चालीस दिन तक अत्यन्त घोर वृष्टि की जिससे चारों समुद्र का जल आपस में सम्मिलित होने के कारण विशाला के अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष जलमग्न हो गया । अठ्ठासी सहस्र ब्रह्मवादी महर्षियों एवं अपने कुल के लोगों के साथ न्यूह के अतिरिक्त सभी कुछ नष्ट हो गया । पश्चात् मुनिगण विष्णु-माया की स्तुति करने लगे—

मुनियों ने कहा—देवी महाकाली तथा देवकी को नमस्कार है, महालक्ष्मी, विष्णु की माता, एवं राधा देवी को नमस्कार है । रेवती, पुष्पवती, स्वर्णवती, कामाक्षा, माया एवं उस माँ को नमस्कार है । महावायु के प्रभाव एवं महान् मेघों के गर्जन समेत इस भयानक जलधारा से हम लोगों के लिए अत्यन्त कठिन भय उपस्थित हुआ है, अतः हे भैरवि ! हम सेवकों की रक्षा तुम्हारे हाथ है । पश्चात् देवी ने प्रसन्न होकर उस जल को शान्त किया । एक वर्ष के अनन्तर (पृथिवी केवल स्थल के रूप में दिखायी देने लगी । हिमालय के समीप उसके तट की भूमि, जिसे शिषिणा कहा गया है, राजा न्यूह अपने परिवारों समेत नाव लेकर उसी स्थान पर ठहरे थे । पश्चात् भूमि में आकर वहाँ उन्होंने निवास किया ।४७-६०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में द्वापर के राजाओं का वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगभूपाख्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

साम्प्रतं वर्तते यो वै प्रलयान्ते मुनीश्वर । दिव्यदृष्टिप्रभावेन ज्ञातं ब्रूहि ततःपरम् ॥१

सूत उवाच

न्यूहो नाम स्मृतो म्लेच्छो विष्णुमोहं तदाकरोत् । तदा प्रसन्नो भगवांस्तस्य वंशः प्रवर्द्धितः ॥२
म्लेच्छभाषा कृता तेन वेदवाक्यपराङ्मुखा । कलेश्च वृद्धये ब्राह्मीं भाषां कृत्वाऽपशब्दगाम् ॥३
न्यूहाय दत्तवान्देवो बुद्धीशो बुद्धिगः स्वयम् । विलोमं च कृतं नाम न्यूहेन त्रिसुतस्य वै ॥४
सिमश्च हामश्च तथा याकूतो नाम विश्रुतः । याकूतः सप्तपुत्रश्च जुम्रो माजूज एव सः ॥५
मादी तथा च यूनानस्तूवलोमसकस्तथा । तीरासश्च तथा तेषां नामभिर्देश उच्यते ॥६
जुम्रा दश कनाब्जश्व रिफतश्च तजर्रुमः । तन्नाम्ना च स्मृता देशा यूनाद्या ये सुताः स्मृताः ॥७
इलीशस्तरलीशश्च कित्तीहूदानिरुच्यते । चतुर्भिर्नामभिर्देशास्तेषां तेषां प्रचक्रिरे ॥८
द्वितीयतनयाद्धामात्सुताश्चत्वार एव ते । कुशो मिश्रश्च कूजश्च कनआंस्तत्र नामभिः ॥९
देशाः प्रसिद्धा म्लेच्छानां कुशात्षट्तनयाः स्मृताः । स वा चैव हबीलश्च सर्वतोरगमस्तथा ॥१०
तथा सवतिका नाम निमरूहो महाबलः । तेषां पुत्राश्च कलनः सिनारोरक उच्यते ॥११

अध्याय ५

कलियुग के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—मुनीश्वर ! प्रलय के पश्चात् अर्थात् वर्तमान समय में जो राजा विद्यमान है, दिव्य-दृष्टि के प्रभाव से आप उसे जानते हैं, अतः आप उसे बताने की कृपा करें ।

सूत जी बोले—उस म्लेच्छ राजा न्यूह ने अपनी भक्ति से जब विष्णु को मुग्ध कर लिया उस समय प्रसन्न होकर भगवान् ने उसके वंश की वृद्धि की । उन्होंने वेद के विरुद्ध म्लेच्छ भाषा और कलि की वृद्धि के लिए ब्राह्मी भाषा का अपशब्द के रूप में निर्माण किया ।१-३। बुद्धि पारगामी बुद्धीश देव ने स्वयं न्यूह के लिए (उपरोक्त रचनात्मक) बुद्धिमत्ता दी । पश्चात् न्यूह ने विलोम रीति से अपने तीनों पुत्रों का 'सिम' हाम और 'याकूत' नामकरण किया । पुनः याकूत के 'जुम्र' माजूज' मादी' 'यूनान' 'तूव' 'लोमसक' एवं 'तीरास' नामक ये सात पुत्र हुए । उन्ही के नामानुसार उनका देश भी बताया गया है— जुम्रा, दशकनाब्ज, रिफत, तजर्रूम आदि उन यूनान आदि पुत्रों के देश हैं । इलीश, तरलीश 'कित्ती' और 'हूदानि' इन्हीं चारों नामों के अनुसार उनका पृथक्-पृथक् देश भी बताया गया है। दूसरे पुत्र के 'कुश' 'मिश्र' 'कूज' और 'कनआन्' नामक चार पुत्र हुए, जिनके नामानुसार म्लेच्छ देशों की ख्याति हुई। कुश के 'सवा' 'वहबील' 'सर्वतोरगम्' सवतिका, और 'निमरूह ' नामक पुत्र हुए तथा इन लोगों के 'अकृदा' वो वुन,

अक्कदो बावुनश्चैव रसनादेशकाश्च ते । श्रावयित्वा मुनीन्सूतो योगनिद्रावशं गतः ॥१२
द्विसहस्रे शताब्दान्ते बुद्धा पुनरथाब्रवीत् । सिमवंशं प्रवक्ष्यामि सिमो ज्येष्ठः स भूपतिः ॥१३
राज्यं पञ्चशतं वर्षं तेन म्लेच्छेन सत्कृतम् । अर्कन्सदस्तस्य सुतश्चतुस्त्रिंशच्च राज्यकम् ॥१४
चतुश्शतं पुनर्ज्ञेयं सिल्हस्तत्तनयोऽभवत् । राज्यं तस्य स्मृत तत्र षष्ट्युत्तरचतुःशतम् ॥१५
इब्रतस्य सुतो ज्ञेयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । फलजस्तस्य तनयश्चत्वारिंशद्द्वयं शतम् ॥१६
राज्यं कृतं तु तस्माच्च रऊ नाम सुतः स्मृतः । सप्तत्रिंशच्च द्विशतं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१७
तस्माच्च जूज उत्पन्नः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । नहूरस्तस्य तनयो वयः षष्ट्युत्तरं शतम् ॥
राज्यं चकार नृपतिर्बहुशत्रून्विहिंसयन् ॥१८
ताहरस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्मात्पुत्रोऽविरामश्च नहूरो हारनस्त्रयः ॥१९
एवं तेषां स्मृता वंशा नाममात्रेण कीर्तिताः । सरस्वत्याश्च शापेन म्लेच्छभाषा महाधमाः ॥२०
तेषां वृद्धिः कलौ चासीत्संक्षेपेण प्रकीर्तिता । संस्कृतस्यैव वाणी तु भारतं वर्षमूह्यताम् ॥२१
अन्यखण्डे गता सैव म्लेच्छा ह्यानन्दिनोऽभवन् । एवं ते विप्र कथितं विष्णुभक्तद्विजैस्सह ॥२२

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा मुनयस्सर्वे विशालायां निवासिनः । नरं नारायणं देवं सम्पूज्य विनयान्विताः ॥२३

रसना देशक आदि पुत्र बताये गये हैं। इतनी बातों को मुनियों को सुनाकर सूत अपनी योगनिद्रा में निमग्न हो गये ।४-१२। दो सहस्र आठ सौ वर्ष के व्यतीत होने पर बुद्ध ने पुनः कहा कि मैं सिमवंश का वर्णन करूंगा, जिस कुल में सिम नामक सर्वप्रथम राजा हुआ था। उस म्लेच्छ राजा ने पाँच सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था, पश्चात् उसके 'अर्कन्सद' नामक पुत्र हुआ, जो चार सौ चौंतीस वर्ष तक राज्य सिंहासन पर सुशोभित था। उसके 'सिलह हुए, जिसका राज्यकाल चार सौ आठ वर्ष का बताया गया है। पुनः उसके 'इब्र' हुए, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया। उसका पुत्र 'फलज' नामक हुआ उसने दो सौ चालीस वर्ष तक राज्य किया। उसके 'रऊ' नामक पुत्र हुआ, जिसका राज-काल दो सौ सैंतीस वर्ष का बताया गया है। पुनः उसके 'जूज' हुए जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। उसके 'नहूर' हुआ, उसने एक सौ साठ वर्ष तक राज्य किया। नहूर के ताहर हुए, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया। पश्चात् उसके अविराम, नहूर और हारन, नामक तीन पुत्र हुए। इस प्रकार इन लोगों के वंश का वर्णन केवल नाममात्र से किया गया है। सरस्वती के शाप के कारण इन म्लेच्छों की महाअधम म्लेच्छ भाषा हुई, जिन म्लेच्छों की वृद्धि कलियुग में संक्षेपतः कही गई है। इस भारत वर्ष नामक प्रदेश का आधारभूत संस्कृत वाणी है, जो बाहर के अन्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के (म्लेच्छ) निवासियों को आनन्द देने वाली कही गई है। विप्र ! इस प्रकार विष्णुभक्त ब्राह्मणों द्वारा यह वृत्तान्त तुम्हें सुनाकर समाप्त किया गया ।१३-२२

व्यास जी बोले—इसे सुनकर विशाला निवासी समस्त मुनिवृन्द अनुनय-विनय समेत नरनारायण देव की पूजा करके दो सौ वर्ष तक उनके ध्यान में प्रसन्नता पूर्ण निमग्न रहे। तत्पश्चात् शौनकादि

ध्यानं चक्रुर्मुदा युक्ता द्विशतं परिवत्सरान् । तत्पश्चाद्बोधितास्सर्वे शौनकाद्या मुनीश्वराः ।।२४
सन्ध्यातर्पणदेवार्चाः कृत्वा ध्यात्वा जनार्दनम् । लोमहर्षणमासीनं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ।।२५
व्यासशिष्य महाभाग चिरं जीव महामते ! साम्प्रतं वर्तते यो वै राजा तन्मे वद प्रभो ।।२६

सूत उवाच

त्रिसहस्राब्दसम्प्राप्ते कलौ भार्गवनन्दन । आवन्ते शङ्खनामाऽसौ साम्प्रतं वर्तते नृपः ।।२७
म्लेच्छदेशे शकपतिरथ राज्यं करोति वै । शृणु तत्कारणं सर्वं यथा यस्य विवर्धनम् ।।२८
द्विसहस्रे कलौ प्राप्ते म्लेच्छवंशविवर्द्धिता । भूमिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानापथविवर्द्धिता ।।२९
ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं शुभम् । म्लेच्छाचार्यश्च मूशाख्यस्तन्मतैः पूरितं जगत् ।।३०
देवार्चनं वेदभाषा नष्टा प्राप्ते कलौ युगे । तल्लक्षणं शृणु मुने म्लेच्छभाषाश्चतुर्विधाः ।।३१
व्रजभाषा महाराष्ट्री यावनी च गुरुण्डिका । तासां चतुर्लक्षविधा भाषाश्चान्यास्तथैव च ।।३२
पानीयं च स्मृतं पानी बुभुक्षा भूख उच्यते । पानीयं पापड़ीभाषा भोजनं कक्कनं स्मृतम् ।।३३
इष्टिशुद्धरवः प्रोक्त इस्तिनी मसपावनी । आहुतिर्वै आजु इति ददाति च दधाति च ।।३४
पितृपैतरभ्राता च बादरः पतिरेव च । सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्पस्तथापुनः ।।३५
जानुस्थाने जैनुशब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च । सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका ।।३६
रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैव फर्वरी । षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहारमीदृशम् ।।३७

मुनीश्वरों ने ज्ञान प्राप्त कर संध्या, तर्पण एवं देवों की पूजा करने के उपरांत जनार्दन भगवान् का ध्यान करके आसनासीन लोमहर्षण से नम्रतापूर्वक प्रश्न किया । व्यासशिष्य, महाभाग एवं हे महामते ! आप दीर्घजीवी हों । हे प्रभो ! आधुनिक समय में जो राजा राज्य का उपभोग कर रहा है, उसका वर्णन करने की कृपा कीजिए ।२३-२६

सूत जी बोले—भार्गवनन्दन ! कलियुग के तीन सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर इस वर्तमान काल में अवन्तिपुरी में शंख नामक राजा राज्य कर रहा है, म्लेच्छ देश में शकपति जिस प्रकार जिसकी वृद्धि हुई है उसका कारण बता रहा हूँ, सुनो ! कलियुग के दो सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर म्लेच्छ वंश की वृद्धि होगी, जिसमें समस्त पृथिवी के म्लेच्छमय होने पर भाँति-भाँति के पंथों की भी अभिवृद्धि बतायी गयी है । ब्रह्मावर्त प्रदेश के अतिरिक्त किसी अन्य प्रदेश में सरस्वती के तट पर म्लेच्छाचार्य 'मूशा' ने समस्त संसार में म्लेच्छमत का प्रचार किया । देवों की पूजा और वेदभाषा का नष्टप्राय होना कलियुग में बताया गया है । मुने ! म्लेच्छ भाषा चार प्रकार की होती है, उसके लक्षण को बता रहा हूँ, सुनो ! व्रजभाषा, महाराष्ट्री, यावनी (यवनों की भाषा) और गुरुण्ड्रिका (अंग्रेजी भाषा), यही म्लेच्छ भाषा के चार भेद हैं तथा इन भाषाओं के चार लक्ष अवान्तर भेद कहे गये हैं । इनके प्रचलित समय में पानीय (जल) को पानी, बुभुक्षा को भूख और कहीं पानीय को पापड़ी एवं भोजन को कक्कन, आहुति को आजु इति, जानु के स्थान पर जैनु, और सप्त सिन्धु के स्थान पर हप्त हिन्दु का प्रयोग यवनों की भाषा में किया जायेगा । उसी प्रकार गुरुण्डों (गोरों) की भाषा में रविवार को संडे, फाल्गुन मास को फर्वरी, और साठ को सिक्सटी कहा जायेगा, ऐसा

या पवित्रा सप्तपुरी तासु हिंसा प्रवर्तते । दस्यदः शबरा भिल्ला मूर्खा आर्ये स्थिता नराः ।।३८
म्लेच्छदेशे बुद्धिमन्तो नरा वै म्लेच्छधर्मिणः । म्लेच्छाधीना गुणाः सर्वेऽवगुणा आर्यदेशके ।।३९
म्लेच्छराज्यं भारते च तद्द्वीपेषु स्मृतं तथा । एवं ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ हरिं भज महामते ।।४०
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे रोदनं चक्रिरे बहु ।।४१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगभूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगभूपाख्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

ब्रह्मावर्ते कथं म्लेच्छा न प्राप्ताः कारण वद । सूतः प्राह शृणुष्वेदं सरस्वत्याः प्रभावतः ।।१
म्लेच्छाः प्राप्ता न तत्स्थाने काश्यपो नाम वै द्विजः । कलौ प्राप्ते सहस्राब्दे स्वर्गात्प्राप्तः सुराज्ञया ।।२
आर्यावती च तत्पत्नी दश पुत्रानकल्मषान् । काश्यपात्सा लब्धवती तेषां नामानि मे शृणु ।३
उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिश्रकौ । अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्ड्य एव च ।।४
चतुर्वेदीति कथिता नामतुल्यगुणाः स्मृताः । तेषां मध्ये काश्यपश्च सर्वज्ञानसमन्वितः ।।५

कहा गया है (भारत की) पवित्र सातों पुरी में हिंसा होती रहेगी, क्योंकि आर्य प्रदेश में दस्यु, शबर, भिल्ल और मूर्खों की स्थिति बनी रहेगी। म्लेच्छ देशों में बुद्धिमान् होते हुए मनुष्य म्लेच्छ धर्मी होगें क्योंकि सभी गुण म्लेच्छों के अधीन और समस्त अवगुण (दोष) आर्य प्रदेशों में बिखरे रहेंगे। भारतवर्ष एवं द्वीपान्तरों में म्लेच्छों का राज्य रहेगा, मुनिश्रेष्ठ ! तथा महामते ! ऐसा समझकर भगवान् का भजन कीजिये। ऐसी बातें सुनते ही सभी मुनियों ने बहुत रुदन किया ।२७-४१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग के राजाओं का वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

कलियुग के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—ब्रह्मावर्त प्रदेश में म्लेच्छों की पहुँच न होने पायी, इसका कारण बताने की कृपा कीजिये। सूत जी बोले—सुनो ! सरस्वती के प्रभाव से म्लेच्छ उस स्थान में पहुँच नहीं पाये। कलियुग के एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर देवों की आज्ञा प्राप्त कर काश्यप नामक द्विज का उस प्रदेश में स्वर्ग से आगमन हुआ। आर्यावती उनकी पत्नी का नाम था। उन दोनों (पति-पत्नी) ने पवित्रता पूर्ण दशपुत्रों को उत्पन्न किया उनके नामों को बता रहा हूँ सुनो ! १-३। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय और चतुर्वेदी यही उनके नाम तथा नामानुसार उनमें गुण बताये गये

काश्मीरे प्राप्तवान्सोऽपि जगदम्बां सरस्वतीम् । तुष्टाव पूजनं कृत्वा रक्तपुष्पैस्तथाक्षतैः ।।६
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पाञ्जलिसमन्वितः ।।७

काश्यप उवाच

मातः शङ्करदयिते मयि ते करुणा कुतो नास्ति । भोऽसि[1] त्वं जगदम्बा जगतः किं मां बहिर्नयसि ।।८
देवि त्वं सुरहेतोर्धर्मद्रोहिणमाशु हंसि मातः । उत्तमसंस्कृतभाषां त्वं कुरु म्लेच्छांश्च मोहयेः शीघ्रम्।।९
अम्ब त्वं बहुरूपा हुङ्काराद्धूम्रलोचनं हंसि । भीमं दुर्गा दैत्यं हत्वा जगतां सुखं नयसि ।।१०
दम्भं मोहं घोरं गर्वं हत्वा सदा सुखं शेषे । बोधय मातर्जगतो दुष्टान्नष्टान्कुरु त्वं वै ।।
तदा प्रसन्ना सा देवी भो मुनेस्तस्य मानसे ।।११
वासं कृत्वा ददौ ज्ञानं मिश्रदेशे मुनिर्गतः । सर्वान्म्लेच्छान्मोहयित्वा कृत्वाथ तान्द्विजन्मनः ।।१२
संख्यादशसहस्रं च नरवृन्दं द्विजन्मनाम् । द्विसहस्रं स्मृता वैश्याः शेषाः शूद्रसुताः स्मृताः ।।१३
तैः सार्द्धमार्यदेशे स सरस्वत्याः प्रसादतः । अवसद्वै मुनिश्रेष्ठो मुनिकार्यरतः सदा ।।१४
तेषामार्यसमूहानां देव्याश्च वरदानतः । वृद्धिर्भवति बहुला चतुष्कोटिनराः स्त्रियः ।।१५

हैं। उन लोकों में काश्यप सर्वज्ञानी थे। उन्होंने काश्मीर में जाकर रक्तवर्ण के पुष्पों और अक्षतों से जगदम्बा सरस्वती की पूजा की। धूप, दीप, तथा नैवेद्य अर्पित करने के उपरांत पुष्पाञ्जलि लेकर प्रार्थना करना आरम्भ किया।४-७

काश्यप बोले—मातः ! शंकरप्रिये ! मेरे लिये तुम्हें करुणा क्यों नहीं हो रही है ? आप जगत् की माता हैं, तो मुझे जगत् के बाहर क्यों निकाल रही हैं। हे देवि, मातः ! देवों के कार्य के लिए आप धर्मद्रोही का शीघ्र नाश करती हैं। उत्तम संस्कृत भाषा की ही प्रधानता रहे अतः म्लेच्छों को शीघ्र मोहित करो। अम्ब ! तुम्हारे अनेकों रूप हैं, हुंकार से धूमलोचन तथा उस भीषण दुर्गादैत्य का वध करके आपने समस्त जगत् को सुखी बनाया है। दम्भ, मोह, घोर अभिमान का नाश करके आप सदैव सुख शयन करती हो। अतः मातः ! मुझे ज्ञान प्रदान कर जगत् के दुष्टों का नाश करो ! मुने उस समय देवी प्रसन्न होकर उनके मानस स्थल में निवास करके उन्हें ज्ञान प्रदान किया, जिसके कारण वे महर्षि मिश्र देश के लिए प्रस्थान किये। वहाँ उन्होंने सभी म्लेच्छों को मोह-मुग्ध (जडवत्) करके उनमें दशसहस्र को ब्राह्मण क्षत्रिय, दो सहस्र को वैश्य और शेष को शूद्र की कोटि में रखकर कुछ दिन के उपरांत उनके पुत्रों समेत इस आर्य प्रदेश में आकर सरस्वती की प्रसन्नता से निवास करते हुए उस मुनिश्रेष्ठ ने सदैव मुनि-कार्य में निरत रहकर अपना जीवन व्यतीत किया। देवी के वरदान द्वारा उन आर्य समूहों की अत्यन्त वृद्धि हुई, जिसमें चार करोड़ स्त्री पुरुष की संख्या कही गई है। उनके पुत्र एवं पौत्रों के वर्तमान

---

१. "भोऽसि" इत्यत्र "भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि" इत्यनेन यादेशे कृते "ओतो गार्ग्यस्य" इत्यनेन यलोपे कृते "भो असि" इत्ययमेवसंधिः समीचीनः । अयमुपरिनिर्दिष्टः संधिस्त्वार्षः । केषांचिन्मतेन भवसि इति योजनीयमित्येव सुवचमिति परास्वम् ।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च तद्भूपः काश्यपो मुनिः । विंशोत्तरशतं वर्षं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१६
राज्यपुत्राख्यदेशे च शूद्राश्चाष्टसहस्रकाः । तेषां भूपश्चार्यपृथुस्तस्माज्जातस्स मागधः ॥१७
मागधं नाम तत्पुत्रमभिषिच्य ययौ मुनिः । इति श्रुत्वा भृगुश्रेष्ठः शौनको हर्षमागतः ॥१८
सूतं पौराणिकं नत्वा विष्णुध्यानपरोऽभवत् । पुनश्च श्रुतिवर्षान्ते बोधिता मुनयस्तथा ॥१९
नित्यनैमित्तिकं कृत्वा पप्रच्छुरिदमादरात् । लोमहर्षण मे ब्रूहि के राजानश्च मागधात् ॥
कलौ राज्यं कृतं यैस्तु व्यासशिष्य वदस्व नः ॥२०

सूत उवाच

मागधो मागधे देशे प्राप्तवान्काश्यपात्मजः ॥२१
पितृराज्यं स्मृतं तेन त्वार्यदेशः पृथक्कृतः । पाञ्चालात्पूर्वतो देशो मागधः परिकीर्तितः ॥२२
आग्नेय्यां च कलिङ्गश्च तथावन्तस्तु दक्षिणे । आनर्तदेशो नैर्ऋत्यां सिन्धुदेशस्तु पश्चिमे ॥२३
वायव्यां कैकयो देशो मद्रदेशस्तथोत्तरे । ईशाने चैव कोणिन्दश्चार्यदेशश्च तत्कृतः ॥२४
देशनाम्ना तस्य सुता मगधस्य महात्मनः । तेभ्योंऽशानि प्रदत्तानि तत्पश्चात्क्रतुमुद्वहन् ॥२५
बलभद्रस्तदा तुष्टो यज्ञभावेन भावितः । शिशुनागः क्रतोर्जातो बलभद्रांशसम्भवः ॥२६
शतवर्षं कृतं राज्यं काकवर्मा सुतोऽभवत् । तद्राज्यं नवतिवर्षं क्षेमधर्मा ततोऽभवत् ॥२७
अशीतिवर्षं राज्यं तत्क्षेत्रौजास्तत्सुतोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं वेदमिश्रस्ततोऽभवत् ॥२८

समय में भी काश्यप मुनि ही राजा थे। उन्होंने एक सौ बीस वर्ष राज्य किया। राजपुत्र के प्रदेश में आठ सहस्र शूद्र निवासी थे। उनका राजा आर्य पृथु था, जिसके मागध नामक पुत्र हुआ। उसी मागध राजकुमार का राज्याभिषेक करके मुनि ने प्रस्थान किया। इसे सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक अत्यन्त हर्षित हुए। पौराणिक सूत जी को नमस्कार करके पुनः विष्णु का ध्यान करना आरम्भ किया। चार वर्ष के उपरांत ज्ञान संपन्न होने पर मुनियों ने नित्य-नैमित्तिक कर्म करके नम्रता पूर्वक पूँछा—लोमहर्षण ! मगध के पश्चात् कौन-कौन राजा हुए, तथा जिन्होंने कलि में राज्य का उपभोग किया है, हे व्यास शिष्य ! उपरोक्त सभी बातें बताने की कृपा कीजिए।८-२०

सूत जी बोले—काश्यप के पुत्र उस मागध ने मागध देश में पहुँच कर उसे पिता का राज्य समझ कर आर्य प्रदेश को उससे पृथक् कर लिया। पांचाल देश से पूर्व का प्रदेश मागध बताया गया है। उसी प्रकार उसके आग्नेय में कलिंग, दक्षिण में अवन्त नैऋत्य में आनर्त, पश्चिम में सिंधुदेश, वायव्य में कैकयदेश उत्तर में मद्रदेश और ईशान में कोणिन्द देश हैं, उसी को आर्यदेश कहा गया है। उस महात्मा मागध के देश नामक पुत्र था। उन्हें उनका अंश प्रदानकर यज्ञानुष्ठान, आरम्भ किया। उस यज्ञानुष्ठान से प्रभावित होकर बलभद्र ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। पश्चात् बलभद्र के अंश से उस यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर शिशुनाग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने सौ वर्ष तक राज्य किया। शिशुनाग के काकवर्मा हुए, उन्होंने नब्बे वर्ष तक राज्य किया। काकवर्मा के क्षेमधर्मा हुए जिन्होंने अस्सी वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। क्षेमधर्मा के क्षेत्रौजा हुए जिन्होंने उनसे दश वर्ष कम समय तक राज्य किया। पुनः उनके वेदमिश्र हुए उसने भी अपने पिता से दश वर्ष कम समय तक राज्य किया। वेदमिश्र के अजात

दशहीनं कृतं राज्यं ततोऽजातरिपुस्सुतः । दशहीनं कृतं राज्यं दर्भकस्तनयोऽभवत् ।।२९
दशहीनं कृतं राज्यमुदयाश्वस्ततोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं नन्दवर्धन एव तत् ।।३०
दशहीनं कृतं राज्यं तस्मान्नन्दसुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शूद्रीगर्भसमुद्भवः ।।३१
नन्दाज्जातः प्रनन्दश्च दशवर्षं कृतं पदम् । तस्माज्जातः परानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३२
तस्माज्जातस्समा नन्दो विंशद्वर्षं कृतं पदम् । तस्माज्जातः प्रियानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३३
देवानन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । यज्ञभङ्गः सुतस्तस्मात्पितुरर्द्धं कृतं पदम् ।।३४
मौर्यानन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । महानन्दस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।३५
एतस्मिन्नेव काले तु कलिना संस्मृतो हरिः । काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुतः ।।३६
बौद्धधर्मं च संस्कृत्य पट्टणे प्राप्तवान्हरिः । दशवर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छाक्यमुनिः स्मृतः ।।३७
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छुद्धोदनोऽभवत् । त्रिंशद्वर्षं कृतं राज्यं शाक्यसिंहस्ततोऽभवत् ।।३८
शताद्रौ द्विसहस्रेऽब्दे व्यतीते सोऽभवन्नृपः । कलेः प्रथमचरणे वेदमार्गो विनाशितः ।।३९
षष्टिवर्षं कृतं राज्यं सर्वबौद्धा नराः स्मृताः । नरेषु विष्णुर्नृपतिर्यथा राजा तथा प्रजाः ।।४०
विष्णोर्वीर्यानुसारेण जगद्धर्मः प्रवर्त्तते । तस्मिन्हरौ ये शरणं प्राप्ता मायापतौ नराः ।।४१
अपि पापसमाचारा मोक्षवन्तः प्रकीर्तिताः । शक्यासिंहाद्बुद्धसिंहः पितुरर्द्धं कृतं पदम् ।।४२

रिपु, अजातरिपु के दर्भक, दर्भक के उदयाश्व, उदयाश्व के नंदवर्धन, नंदवर्धन के नंद हुआ, जिसका जन्म ग्रहण करना किसी शूद्री के गर्भ से बताया जाता है, उसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। उपरोक्त सभी राजवृन्द ने अपने पिता से उत्तरोत्तर दश वर्ष न्यून समय तक राज्य किये है। पुनः नन्द के प्रनन्द हुआ जिसने दश वर्ष तक राज्य किया। उसके परानन्द हुआ जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। परानन्द के समानन्द हुआ उसने बीस वर्ष तक राज्य किया। समानन्द के प्रियानन्द, प्रियानन्द के देवानन्द, और देवानंद के यज्ञभंग नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। उपरोक्त सभी राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक राज्य किया यज्ञ भंग के मौर्यानन्द, मौर्यानन्द के महानन्द हुए जिन्होंने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया।२१-३५। उसी समय कलि ने प्रार्थना करके भगवान् को प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर हरि ने काश्यप द्वारा गौतम के नाम से जन्म ग्रहण किया ऐसा कहा गया है। उन्होंने बौद्धधर्म को अपनाकर पटना जाकर दशवर्ष तक राज्य किया। पश्चात् उनके शाक्य मुनि हुए, जिन्होंने बीस वर्ष तक राज्य किया। शाक्य मुनि के शुद्धोदन हुए, उन्होंने तीस वर्ष तक राज्य किया। पुनः उनके शाक्य सिंह हुआ। जिसका जन्म काल दो सहस्र सात सौ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर बताया गया है। कलि के इस प्रथम चरण के समय इसी राजा ने वेद मार्ग को नष्ट किया है। इसने साठ वर्ष तक राज्य किया है। इसके इतने समय में राजकाल में सभी मनुष्य बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गये। मनुष्यों में राजा विष्णु का रूप माना जाता है, और जैसा राजा वैसी प्रजा का होना नियमतः सिद्ध है। विष्णु के पराक्रम के अनुसार जगत् का धर्म प्रचलित होता है। उस समय उस मायापति भगवान् के शरण में जो मनुष्य पहुँच जाते हैं, वे कैसे भी पापी क्यों न हो मोक्ष के भागी हो ही जाते है। शाक्य सिंह के बुद्ध सिंह हुआ, जिसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। बुद्ध सिंह के

चन्द्रगुप्तस्तस्य सुतः पौरसाधिपतेःसुताम् । सुलूवस्य तथोद्वाह्य यावनीबौद्धतत्परः ॥४३
षष्टिवर्षं कृतं राज्यं बिन्दुसारस्ततोऽभवत् । पितृस्तुल्यं कृतं राज्यमशोकस्तनयोऽभवत् ॥४४
एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः । अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत् ॥४५
वेदमन्त्रप्रभावाच्च जाताश्चत्वारि क्षत्रियाः । प्रमरस्सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विदः ॥४६
त्रिवेदी च तथा शुक्लोथर्वा स परिहारकः । ऐरावतकुले जातान्गजानारुह्यते पृथक् ॥४७
अशोकं स्ववशं चक्रुस्सर्वे बौद्धा विनाशिताः । चतुर्लक्षाः स्मृता बौद्धाः दिव्यशस्त्रैः प्रहारिताः ॥४८
अवन्ते प्रमरो भूपश्चतुर्योजनविस्तृताम् । अम्बावतीं नाम पुरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगभूपवर्णनोपाख्यानं नाम षष्ठोध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

शशिवंशभूपवर्णनम्

सूत उवाच

चित्रकूटगिरेर्देशे परिहारो महीपतिः । कलिञ्जरपुरं रम्यमक्रोशायतनं स्मृतम् ॥१
अध्यास्य बौद्धहन्ता स सुखितोभवदूर्जितः । राजपुत्राख्यदेशे च चपहानिर्महीपतिः ॥२

चन्द्र गुप्त हुए, जिसने पौरसाधिपति की सुलूवस्य की पुत्री उस यवनी के साथ पाणिग्रहण करके उस बौद्ध ने पत्नी समेत साठ वर्ष तक राज्य किया । चन्द्रगुप्त के बिंदुसार हुआ उसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । बिंदुसार के अशोक हुए । उसी समय में कोई ब्राह्मण श्रेष्ठ कान्यकुब्ज ने अर्बुद पर्वत के शिखर पर ब्रह्महवन आरम्भ किया था । वहाँ वेदमंत्र के प्रभाव से चार क्षत्रिय उत्पन्न हुए जिसमें प्रमर सामवेदी, चपहानि यजुर्वेदी एवं त्रिवेदी और शुक्ल अथर्ववेद के ज्ञाता थे । इन लोगों के चढ़ने के लिए ऐरावत कुल में उत्पन्न पृथक्-पृथक् हाथी नियुक्त थे । इन्होने अशोक को अपने अधीनकर उन समस्त बौद्धों का जिनकी संख्या चार लक्ष बतायी जाती है, दिव्य शस्त्रों द्वारा विनाश किया पश्चात् प्रमर नामक राजा ने अनन्त प्रदेश की चार योजन की विस्तृत अम्बावती नामक नगरी को अपनी राजधानी बनाकर सुख पूर्वक रहने लगा ।३६-४९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग के राजाओं का वर्णन
नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

शशिवंश के राजाओं का वर्णन

सूत जी बोले—परिहार नामक राजा ने चित्रकूट पर्वत के प्रदेश में रमणीक एवं एक कोश का विस्तृत कलिंजर नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया। उसमें अपना निवास स्थान बनाकर उस बौद्धहन्ता ने सुखी-जीवन व्यतीत किया। राजपुत्र नामक प्रदेश में राजा चपहानि अजमेर नामक नगर में, जो

अजमेरपुरं रम्यं विधिशोभासमन्वितम् । चातुर्वर्ण्ययुतं दिव्यमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३
शुक्लो नाम महीपालो गत आनर्तमण्डले । द्वारकां नाम नगरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४

शौनक उवाच

तेषामग्न्युद्भवानां च ये भूपा राज्यसत्कृताः । तान्मे ब्रूहि महाभाग सूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५
गच्छध्वं ब्राह्मणाः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् । तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विष्णोर्ध्यानं प्रचक्रिरे ॥६
पूर्णे द्वे च सहस्रान्ते सूतो वचनमब्रवीत् । सप्तत्रिंशशते वर्षे दशाब्दे चाधिके कलौ ॥७
प्रमरो नाम भूपालः कृतं राज्यं च षट्समाः । महामदस्ततो जातः पितुरर्धं कृतं पदम् ॥८
देवापिस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । देवदूतस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं स्मृतं पदम् ॥९
तस्माद्गन्धर्वसेनश्च पञ्चाशदब्दभूपदम् । कृत्वा च स्वसुतं शङ्खमभिषिच्य वनं गतः ॥१०
शङ्खेन तत्पदं प्राप्तं राज्यं त्रिंशत्समाः कृतम् । देवाङ्गना वीरमती शक्रेण प्रेषिता तदा ॥११
गन्धर्वसेनं सम्प्राप्य पुत्ररत्नमजीजनत् । सुतस्य जन्मकाले तु नभसः पुष्पवृष्टयः ॥१२
पेतुर्दुन्दुभयो नेदुर्वान्ति वाताः सुखप्रदाः । शिवदृष्टिर्द्विजो नाम शिष्यैस्सार्धं वनं गतः ॥१३
विंशद्भिः कर्मयोगं च समाराध्य शिवोऽभवत् । पूर्णे त्रिंशच्छते वर्षे कलौ प्राप्ते भयङ्करे ॥१४
शकानां च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये । जातश्शिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद्गुह्यकालयात् ॥१५

निर्माण कला के सौन्दर्य से पूर्ण और चारों वर्णों के मनुष्यों से युक्त था, अपना निवास स्थान बनाकर सुख का अनुभव करने लगा । और शुक्ल नामक भूपाल ने आनर्त प्रदेश के द्वारका नामक नगर में रहकर सुख का अनुभव किया । १-४

शौनक ने कहा—महाभाग ! अग्निद्वारा उत्पन्न राजाओं का, जिन्होंने सम्मानपूर्वक राज्य का उपभोग किया है, वर्णन करने की कृपा कीजिये । तत्पश्चात् सूत जी ने कहा—आप सभी ब्राह्मण वृन्द यहाँ से चले जाने की व्यवस्था करें तो अच्छा हो, क्योंकि मैं इस समय योगनिद्रा के वशीभूत होने के नाते कुछ भी बताने में असमर्थ हूँ इसे सुनकर सभी मुनिवृन्द भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे । दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर सूत जी ने पुनः उन महर्षियों से कहा—तीन सहस्र सात सौ दश वर्ष काल के व्यतीत होने पर प्रमर नामक राजा हुए, जिसने छह वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । प्रमर के महामह हुए, उन्होंने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया । महामह के देव, देव के देवदूत, और देवदूत के गन्धर्वसेन हुए जिन्होंने पचास वर्ष तक राज्य किया, शेष और भूप लोगों ने अपने पिता के समान काल तक । पश्चात् गन्धर्वसेन ने अपने पुत्र राजा शंख का अभिषेक करके वन में निवास करने के लिए प्रस्थान किया । शंख के तीस वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत देवराज इन्द्र ने वीरमती नामक देवांगना को जंगल निवासी उनके पिता गंधर्वसेन के पास भेजा जिसे अपना कर उन्होंने पुत्ररत्न की प्राप्ति की । उस पुत्र रत्न के जन्म ग्रहण के समय आकाश से पुष्पों की वृष्टि, दुंदुभी की ध्वनि, और मनोहर वायु का संचार होने लगा । (उस पुत्र की) शिव दृष्टि (मांगलिक दृष्टि) होने के नाते वह द्विज अपने शिष्यों को साथ लेकर जंगल चला गया। वहाँ जाकर उसने कर्मयोग के अभ्यास से शिवस्वरूप की प्राप्ति की। कलि के तीन सहस्र वर्ष के व्यतीत होने पर उस भीषण समय में शकों के विनाशार्थ और आर्यधर्म की वृद्धि के लिए उसे

विक्रमादित्यनामानं पिता कृत्वा मुमोद ह । स बालोऽपि महाप्राज्ञः पितृमातृप्रियङ्करः ॥१६
पञ्चवर्षे वयः प्राप्ते तपसोऽर्थे वनं गतः । द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तपः ॥१७
पश्चादम्बावतीं दिव्यां पुरीं यातः श्रियान्वितः । दिव्यं सिंहासनं रम्यं द्वात्रिंशन्मूर्तिसंयुतम् ॥१८
शिवेन प्रेषितं सोऽपि तस्मै पदमग्रहीत् । वैतालस्तस्य रक्षार्थं पार्वत्या निर्मितो गतः ॥१९
एकदा स नृपो वीरो महाकालेश्वरस्थलम् । गत्वा सम्पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥२०
सभा धर्ममयी तत्र निर्मिता व्यूहविस्तरा । नानाधातुकृतस्तम्भा नानामणिविभूषिता ॥२१
नानाद्रुमलताकीर्णा पुष्पवल्लीभिरन्विता । तत्र सिंहासनं दिव्यं स्थापितं तेन शौनक ॥२२
आहूय ब्राह्मणान्मुख्यान्वेदवेदाङ्गपारगान् । पूजयित्वा विधानेन धर्मगाथामथाऽशृणोत् ॥२३
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वैतालो नाम देवता । स कृत्वा ब्राह्मणं रूपं जयाशीर्भिः प्रशस्य तम् ॥२४
उपविश्यासने विप्रो राजानमिदमब्रवीत् । यदि ते श्रवणे श्रद्धा विक्रमादित्यभूपते ॥२५
वर्णयामि महाख्यानमितिहाससमुच्चयम् ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगसम्भूतरविशशिवंशभूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७
॥ इति प्रथमखण्डं सम्पूर्णम् ॥ ।१

शिव की आज्ञा से गुह्यकों के यहाँ से पुनः प्रत्यक्ष होना पड़ा ।५-१५। पिता ने उस पुत्र का 'विक्रमादित्य' नामकरण करके अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की । वह बालक भी महाबुद्धिमान् एवं अपने पिता-माता का अत्यन्त प्रिय करने वाला हुआ । पाँच वर्ष की अवस्था में उसने तप करने के लिए वन-प्रस्थान किया । बारह वर्ष तक दृढ़ प्रयत्न एवं विक्रम पूर्वक तप करने के उपरांत श्री सम्पन्न होकर वह अम्बावती नामक दिव्य पुरी में गया । वहाँ एक रमणीक दिव्य सिंहासन, जिसमें बत्तीस मूर्तियाँ (कठपुतरी) बनी हुई थी, शिव ने उसके लिए भेजा । उसे उसने स्वीकार किया । पार्वती जी ने उसके रक्षार्थ एक वैताल को उत्पन्न कर वहाँ भेज दिया । एक बार उस वीर राजा ने महाकालेश्वर के यहाँ जाकर देवाधिदेव पिनाकी शिवजी की पूजा की वहाँ धर्म सभा का भी निर्माण किया गया, जिसमें विस्तृत व्यूह की रचना और भाँति-भाँति के धातुओं के खम्भे लगाये गये थे वह मणियों से विभूषित, अनेक भाँति के वृक्षों एवं लताओं से आच्छन्न और पुष्प वल्लियों से संयुक्त थी । शौनक ! उसी धर्म सभा में उन्होंने उस दिव्य सिंहासन की स्थापना की । पश्चात् मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों को जो वेद-वेदाङ्ग निष्णात थे, बुलाकर सविधान उनकी अभ्यागत सेवा करके उनके द्वारा धर्मगाथा का श्रवण किया । उसी बीच उस बैताल नामक देव ने भी ब्राह्मण का वेष धारण कर 'जय हो' इस प्रकार के आशीर्वाद प्रदान समेत उनकी प्रशंसा करते हुए आसनासीन होकर राजा से कहा । राजन्, विक्रमादित्य ! यदि आप को सुनने की इच्छा है, तो मैं इतिहासों से पूर्ण एक महा आख्यान का वर्णन कर रहा हूँ सुनो—१६-२६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग में उत्पन्न शशिवंश के भूपों का वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

द्वितीयखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्तस्स तु वैतालो महाकालेश्वरस्थितः । शिवं मनसि संस्थाप्य राजानमिदमब्रवीत् ॥१
विक्रमादित्यभूपाल शृणु गाथां मनोरमाम् । वाराणसी पुरी रम्या महेशो यत्र तिष्ठति ॥२
चातुर्वर्ण्यप्रजा यत्र प्रतापमुकुटो नृपः । महादेवी च महिषी धर्मज्ञस्य महीपतेः ॥३
तत्पुत्रो वज्रमुकुटो मन्त्रिणः सुतवल्लभाः । षोडशाब्देऽथ सम्प्राप्ते हयारूढो वनं गतः ॥४
अमात्यतनयश्चैव बुद्धिदक्ष इति श्रुतः । हयारूढो गतः सार्धं समानवयसा वने ॥५
स दृष्ट्वा विपिनं रम्यं मृगपक्षिसमन्वितम् । मुमोद वज्रमुकुटः कामाशयवशं गतः ॥६
तत्र दिव्यं सरो रम्यं नानापक्षिनिनादितम् । तस्य कूले शिवस्थानं मुनिवृन्दैः प्रपूजितम् ॥७
दृष्ट्वा तत्र गतौ वीरौ परमानन्दमापतुः। एतस्मिन्नन्तरे भूपे करणाटक भूपते ॥८
दन्तवक्रस्य तनया नाम्ना पद्मावती मता । कामदेवं नमस्कृत्य कामिनी कामरूपिणी ॥९
चिक्रीड सखिभिः क्रीडां सरोमध्ये मनोहरा । तदा तु वज्रमुकुटो मन्दिरादागतो बहिः ॥१०

दूसरा खण्ड

अध्याय १

कलियुग के इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—महाकालेश्वर में स्थित उस वैताल ने मन में शिवजी को स्थापित कर राजा से कहा—राजन्, विक्रमादित्य ! मैं एक मनोरम गाथा सुना रहा हूँ, सुनो—वाराणसी (वनारस) की उस रमणीक नगरी में जिसमें महेश्वर निवास करते हैं, और जहाँ चारों वर्णों की प्रजाएँ रहती हैं, प्रताप मुकुट नामक राजा राज कर रहा था । उस धर्मज्ञ राजा की प्रधान रानी का नाम महादेवी था। उसके पुत्र का नाम वज्रमुकुट था, जो मंत्री के पुत्रों का परमप्रेमी था। सोलह वर्ष की अवस्था में वह घोड़े पर सवार होकर किसी जंगल में गया। मंत्री का पुत्र बुद्धिदक्ष भी समान वय होने के नाते घोड़े पर बैठकर उसके साथ चला गया। वहाँ उस मनोहर जंगल को देखकर, जो पशुओं और पक्षियों से युक्त था, राजकुमार वज्रमुकुट आनन्द विभोर हो गया, किन्तु साथ-साथ कामविवश भी हुआ।१-६। वहाँ पर एक दिव्य एवं मनोरम तालाब दिखायी पड़ा, जो पक्षियों के कलरव ध्वनि से मुखरित हो रहा था । उसके तट पर एक शिवालय को देखकर, जो महर्षियों से अत्यन्त पूजनीय था, वे दोनों वीर परमहर्षित हुए । उसी समय करनाटक के राजा दंतवक्र की कन्या पद्मावती ने, जो कामिनी, काम की स्त्री रति के समान थी, कामदेव को नमस्कार करके सखियों समेत उस तालाब में क्रीड़ा करना आरम्भ

दृष्ट्वा पद्मावतीं बालां तुल्यरूपगुणान्विताम्। मूर्च्छितः पतितो भूमौ सा दृष्ट्वा सा तु मुमोह वै ।।११
प्रबुद्धो वज्रमुकुटो मां याहि शिवशंकर । इत्युक्त्वा भूपतनयः पुनर्बालां ददर्श ह ।।१२
शिरसः पद्मकुसुमं सा गृहीत्वा तु कर्णयोः । कृत्वा चखान दशनैः पादयोर्दधती पुनः ।।१३
पुनर्गृहीत्वा तत्पुष्पं हृदये सम्प्रवेशितम् । इति भावं च सा कृत्वाऽऽलिभिः सार्धं ययौ गृहम् ।।१४
तीर्थार्थं च समं पित्रा सम्प्राप्ता गिरिजावने । तस्यां गतायां स नृपो मारबाणेन पीडितः ।।१५
महतीं मानसीं पीडां प्राप्तवान्मोहमागतः । उन्मादीव ततो भूत्वा खाद्यपानविवर्जितः ।।१६
ध्यात्वा पद्मावतीं बालां मौनव्रतमचीकरत् । तदा कोलाहलो जातः प्रतापमुकुटान्तिके ।।१७
कुमारः कां दशां प्राप्त इति हाहेति सर्वतः । त्रिदिनान्ते मन्त्रिसुतो बुद्धिदक्षो विशारदः ।।१८
अब्रवीद्वज्रमुकुटं सत्यं कथय भूपते । स आह कारणं सर्वं यथा जातं सरोवरे ।।१९
तच्छ्रुत्वा बुद्धिदक्षश्च विहस्याह महीपतिम् । महाकष्टेन सा देवी मित्रत्वं हि गमिष्यति ।।२०
करणाटकभूपस्य दन्तवक्रस्य सा सुता । पद्मावतीति विख्याता दधती त्वां स्वमानसे ।।२१
पुष्पभावेन ज्ञात्वाहं त्वां नयामि तदन्तिके । इत्युक्त्वा तस्य पितरं प्रतापमुकुटं प्रति ।।२२
आहाज्ञां देहि भूपाल यास्येहं कारणाटके । त्वत्सुतस्य चिकित्सार्थं स वज्रमुकुटोऽचिरम् ।।२३
आयामि नाऽत्र सन्देहो यदि जीवयसे सुतम् । तथेति मत्वा स नृपः प्रादात्पुत्रं च मन्त्रिणे ।।२४

किया। उस समय वज्रमुकुट मंदिर से बाहर निकलकर कुमारी पद्मावती को, जो रूप गुण में उसके अनुरूप थी, देखकर मूर्च्छित होकर भूमि में गिर गया, और वह कुमारी भी राजकुमार को देखकर मोहित हो गई। चैतन्य होने पर वज्रमुकुट ने कहा—शिव, शंकर! मेरी रक्षा करो! पश्चात् पुनः राजकुमार ने उस कामिनी की ओर देखा।७-१२। उस समय राजकुमारी ने शिर से कमल पुष्प लेकर उसे कानों में लगाकर दाँतों से काटकर अपने दोनों चरणों के नीचे रख लिया, पुनः उसे उठाकर हृदय (चोली) के भीतर रख लिया। इस प्रकार का भाव प्रकट कर वह सखियों के साथ घर चली गई। वह इस पार्वती के जंगल में अपने पिता के साथ तीर्थ-यात्रा करने आई थी। उसके चले जाने पर वह राजकुमार अत्यन्त काम पीड़ित होने लगा। उसे इतनी अधिक मानसिक पीड़ा हुई कि वह मूर्च्छित हो गया। पश्चात् उन्मादी पुरुष की भाँति खान-पान का भी त्याग कर दिया। बोलना बन्द कर दिया। इस प्रकार उसके मौन-व्रत धारण करने से इतना महान् कोलाहल हुआ कि राजा प्रताप मुकुट से भी यह बात छिपी न रही। 'हा' कुमार की कैसी अवस्था प्राप्त हो गई, यही भावना चारों ओर फैल गई तीन दिन के उपरांत मंत्रि-पुत्र बुद्धिदक्ष ने, जो कुशल व्यक्ति था, वज्रमुकुट से कहा—भूपते! सत्य बात क्या है? उसने भी तालाब के तट पर जो कुछ जिस प्रकार से हुआ था, कह सुनाया। उसे सुनकर बुद्धिदक्ष ने हँसकर राजा से कहा—वह देवी बड़ी कठिनाई से मित्र बन सकेगी।१३-२०। उसने (उसके किये हुए भाव का अर्थ भी) बताया कि—करणाटक प्रदेश के राजा दंतवक्र की वह कन्या है, पद्मावती उसका नाम है। तुम्हें वह चाहती है। उसके द्वारा किये गये पुष्प के भाव से मैंने यह सब कुछ समझ लिया है और उसी द्वारा तुम्हें उसके समीप ले चल रहा हूँ। ऐसा कहकर उनके पिता प्रताप मुकुट से उसने कहा—हे राजन्! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं आपके पुत्र की चिकित्सा के लिए करणाटक जा रहा हूँ। वज्रमुकुट समेत मैं शीघ्र ही वहाँ से वापस आऊँगा। यदि पुत्र को जीवनदान देना चाहते हैं तो अविलम्ब इसे

हयारूढौ गतौ शीघ्रं दन्तवक्रस्य पत्तने । काचिद्वृद्धा स्थिता तत्र तस्या गेहं च तौ गतौ ॥२५
बहुद्रव्यं ददौ तस्यै बुद्धिदक्षो विशारदः। ऊषतुर्मन्दिरे तस्मिन्रात्रिं घोरतमोवृताम् ॥२६
प्रातः काले तु सा वृद्धा गच्छन्ती राजमन्दिरम् । तामाह मन्त्रितनयः शृणु मातर्वचो मम ॥२७
पद्मावतीं च सम्प्राप्यैकान्ते मद्वचनं वद । ज्येष्ठशुक्लस्य पञ्चम्यामिन्दुवारे सरोवरे ॥२८
यो दृष्टः पुरुषो रम्यस्त्वदर्थे समुपागतः । इति श्रुत्वा ययौ वृद्धा पद्मं तस्यै न्यवेदयत् ॥२९
रुष्टा पद्मावती प्राह चन्दनार्द्राङ्गुलीयिका । गच्छ गच्छ महादुष्टे तलेनोरस्यताडयत् ॥३०
अङ्गुलीभिः कपोलौ च तस्याः स्पृष्ट्वा ययौ गृहम् । सा तु वृद्धा बुद्धिदक्षं सर्वं भावं न्यवेदयत् ॥३१
समित्रं दुःखितं प्राह शृणु मित्र शुचं त्यज । त्वामाह भूपतेः कन्या प्राणप्रिय वचः शृणु ॥३२
त्वदर्थे ताडितं वक्षः कदा मित्रं भविष्यसि । श्रुत्वा तन्मधुरं वाक्यं रजो देहे समागतम् ॥३३
रजस्वलान्ते भो मित्र तवास्यं चुम्बितास्म्यहम् । इति श्रुत्वा भूपसुतः परमानन्दमाययौ ॥३४
त्रिदिनान्ते तु सा वृद्धा पद्मावत्यै न्यवेदयेत् । त्वामुत्सुकः स भूपालस्तव दर्शनलालसः ॥३५
तं भजस्वाद्य सुश्रोणि सफलं जीवनं कुरु । इति श्रुत्वा महाहृष्टा सा मस्यार्द्राङ्गुलीयकम् ॥३६
गवाक्षद्वारि निष्कास्य तले पृष्ठे च ताडिता । तथैव वृद्धा तं प्राप्य मन्त्रिणं चाब्रवीद्वचः ॥३७

स्वीकार कीजिये। ऐसी बातें सुनकर राजा ने शीघ्रतया उसे स्वीकार कर अपने पुत्र को उसे सौंप दिया। वे दोनों युवक घोड़े पर सवार होकर राजा दन्तवक्र के नगर को चल पड़े। वहाँ पहुँचकर किसी वृद्धा स्त्री के घर ठहर गये। कार्य-निपुण बुद्धिदक्ष ने उस वृद्धा स्त्री को बहुत-सा द्रव्य देकर उसी के घर में उस घोर अंधकार की रात्रि को व्यतीत किया।२१-२६। प्रातः काल जब वह वृद्धा राजा के यहाँ जाने को प्रस्तुत हुई तो मंत्रि-पुत्र (बुद्धिदक्ष) ने उससे कहा—माँ एक बात मेरी भी सुन लो! पद्मावती के पास पहुँच कर एकान्त में उससे कहना कि—ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी चन्द्रवार को जिस सुन्दर पुरुष को देखा था, वह तुम्हारे लिए आ गया है। यह सुनकर कर वृद्धा ने राजा के यहाँ जाकर पद्मावती से उसकी सभी बातें बतायी। क्रुद्ध होकर पद्मावती ने उससे कहा—महादुष्टे! जा, जा (यहाँ से) ऐसा कहकर चन्दन से गीली अंगुलियों समेत हाथ के तलवे से उस वृद्धा की छाती में आघात करके उसके दोनों कपोल में अंगुलियों के स्पर्श का चिह्न अंकित कर दिया। वृद्धा ने उस समस्त वृतान्त को बुद्धिदक्ष से निवेदन किया। उसे समझकर उसने अपने दुःखी मित्र से कहा—मित्र! शोक का त्यागकर राजकन्या द्वारा कही हुई उसकी प्राणप्रिय बातों को सुनो! वह तुम्हारे लिए इसके वक्षस्थल को ताड़ित कर यह बतायी कि 'हम दोनों' मित्र (अर्थात् दोनों हृदय) कब एक होंगे। मित्र! तुम्हारी अमृतमयी वाणी सुनकर मेरे शरीर में रज उत्पन्न हो गया है। अतः रजस्वला से शुद्ध होकर मैं तुम्हारे मुख का चुम्बन मात्र करूँगी। उसकी कही हुई ये बातें सुनकर वह राजकुमार परमहर्षित हुआ। तीन दिन के पश्चात् वह वृद्धा पुनः पद्मावती के पास जाकर उससे कही—तुमसे मिलने के लिए वह राजा बहुत उत्सुक है, इसीलिए वह बार-बार तुम्हारे दर्शन की लालसा प्रकट कर रहा है। अतः सुश्रोणि! आज उसकी सेवा करके अपने जीवन को सफ़ल करो। इसे सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और गवाक्ष (खिड़की) के मार्ग से उसे निकालकर उसकी पीठ में भीगी हुई अंगुलियों समेत (हाथ के) तलवे से अंकित कर दिया। पश्चात् उस वृद्धा ने मंत्रि-पुत्र (बुद्धिदक्ष) के पास जाकर उस वृत्तान्त

प्रसन्नो बुद्धिदक्षश्च मित्रं प्राह शृणुष्व भोः। पश्चिमे दिशि भोः स्वामिन्गवाक्षं तव निर्मितम् ॥३८
अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्य भज मां कामविह्वलाम्। श्रुत्वा तद्वज्रमुकुटः प्रियादर्शनलालसः ॥३९
ययौ शीघ्रं महाकामी रमणीं तामरामयत्। मासान्ते कामशिथिलो मित्रदर्शनलालसः ॥४०
पद्मावतीं प्रियां प्राह शृणु वाक्यं वरानने। येन प्राप्तवती मह्यं त्वं सुभ्रूः सुरदुर्लभा ॥४१
तन्मित्रं बुद्धिदक्षश्च किं नु तिष्ठति साम्प्रतम्। आज्ञां देहि प्रिये मह्यं दृष्ट्वा यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥४२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य निष्ठुरं कुलिशोपमम्। मिष्टान्नं सविषं कृत्वा मन्त्रिणे सा न्यवेदयत् ॥४३
तदा तु बुद्धिदक्षश्च चित्रगुप्तप्रपूजकः। ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं न तु भक्षितवान्स्वयम् ॥४४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भूपतिस्त्वरयान्वितः। विवेकवन्तं मित्रं तं दृष्ट्वा प्राह रुषान्वितः ॥४५
कस्मान्न खादितं मित्र भोजनं मत्प्रियाकृतम्। विहस्य बुद्धिदक्षस्तु सारमेये ददौ हि तत् ॥४६
भुक्त्वा स मरणं प्राप्तः स दृष्ट्वा विस्मितो नृपः। स्त्रीचरित्रं च विज्ञाय स्नेहं त्यक्त्वाऽब्रवीत्तु तम् ॥४७
मित्र गच्छ गृहं शीघ्रं मया त्यक्ता च पापिनी। स आह शृणु भूपाल गच्छ शीघ्रं प्रियान्तिकम् ॥४८
तदलङ्कारमाहृत्य त्रिशूलं कुरु जानुनि। प्रसुप्तां त्यज भो मित्र या हि त्वं मा विचारय ॥४९
इति श्रुत्वा ययौ भूपस्तथा कृत्वा समागतः। स्वमित्रेण ययौ सार्धं श्मशाने रुद्रमण्डपे ॥५०

को सुनाया।२७-३७। प्रसन्न होकर बुद्धिदक्ष ने मित्र से कहा—स्वामिन्! पश्चिम दिशा की खिड़की तुम्हारे मार्ग के लिए निश्चित है, उसने कहा है उसी मार्ग से आधीरात के समय आकर मेरी कामपीड़ा की शान्ति के लिए मेरा आलिङ्गन करो। इसे सुन कर (अपनी) प्रिया का दर्शनाभिलाषी एवं महाकामी उस वज्र- मुकुट ने शीघ्रतया वहां पहुंचकर उस रमणी के साथ रमण किया। एक मास के उपरांत काम से शिथिल होने पर उसने अपने मित्र के दर्शन के लिए अभिलाषा प्रकट करते हुए पद्मावती से कहा—वरानने! मेरी एक बात सुनो! जिस (व्यक्ति) के द्वारा मैंने तुम जैसी सुन्दर भौहों वाली स्त्री को प्राप्त किया, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ मानी जाती है।२८-४१। वह मेरा परममित्र बुद्धिदक्ष इस समय यहाँ वर्तमान है, अतः प्रिये! मुझे आज्ञा प्रदान करो, मैं उससे मिलकर पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा। वज्र के समान निष्ठुर इस बात को सुनकर उसने विष मिले मिष्ठान्न (मिठाई) उस मंत्रि-पुत्र के लिए उपहार दिया। बुद्धिदक्ष भी चित्रगुप्त की उपासना करता था, इसीलिए उसके कारण को समझ उसका भक्षण नहीं किया। उसी समय राजकुमार ने आकर विवेक करते हुए अपने मित्र से क्रुद्ध होकर कहा—मित्र! मेरी प्रिया द्वारा बनाये गये इस पकवान का भक्षण क्यों नहीं कर रहे हो! बुद्धिदक्ष ने हँसकर उसे किसी कुत्ते को दे दिया वह खाते ही मर गया। उसे देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ। उस समय स्त्रीचरित्र की ओर ध्यान देकर उसने उस (स्त्री) स्नेह के त्याग पूर्वक मित्र से कहा—मित्र! मैंने उस पापिनी का त्याग कर दिया! अब शीघ्र घर चलो। उसने कहा—राजन्, सुनो! तुम अपनी उस प्रिया के पास शीघ्र जाओ। वहाँ जाकर उसके आभूषण का अपहरण करते हुए उसकी जानु (घुटने) त्रिशूल से अंकित कर देना। मित्र! उसके इस सुलभ मिलाप का त्याग कर मेरी इस बात को बिना विचारे ही करो। इसे स्वीकार कर वह राजा उस कार्य को बताये हुए के अनुसार करके लौट आया और अपने मित्र के साथ श्मशान के समीप वाले शिवालय की ओर चल दिया।४२-५०। वहाँ (बुद्धिदक्ष ने) अपना योगी का वेष बनाकर

शिष्यं कृत्वा नृपं तं स योगरूपो हि भूषणम् । विक्रयार्थं ददौ तस्मै स्वमित्राय स बुद्धिमान् ।।५१
स वज्रमुकुटो मत्वा तदाज्ञां नगरं गतः । चोरोयमिति तं मत्वा बद्धा राज्ञो हि रक्षिणः ।५२
शीघ्रं निवेदयामासुर्दन्तवक्त्रस्तमब्रवीत् । क्व प्राप्तं भूषणं रम्यं सर्वं कथय पूरुष ।।५३
जटिलः प्राह भो राजञ्श्मशाने मद्गुरुः स्थितः । तेन दत्तं विक्रयार्थं भूषणं स्वर्णगुण्ठितम् ।।५४
इति श्रुत्वा स नृपतिस्तूर्णमाहूय तद्गुरुम् । भूषणं पृष्टवान् राजा योगी प्राह शृणुष्व भोः ।।५५
श्मशाने सधितं मन्त्रं मया योगिस्वरूपिणा । पिशाची प्रापिता काचित्तस्याश्चिह्नं मया कृतम् ।।५६
वामजानुनि शूलेन तया दत्तं हि भूषणम् । ज्ञात्वा तत्कारणं राजा सुता निष्कासिता गृहात् ।।५७
स वज्रमुकुटस्तां तु गृहीत्वा गृहमाययौ । विहस्य प्राह वैतालः शृणु विक्रमभूपते ।।५८
कस्मै पापं महत्प्राप्तं चतुर्णां मे वदाधुना ।।

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूपतिः ।।५९
विहस्य भार्गवं प्राह प्राप्तं पापं हि भूपतेः । मित्रकार्यममात्येन स्वामिकार्यं च रक्षिभिः ।।६०
भूपपुत्रेणार्थसिद्धं कृतं तस्माच्च भूपतेः । महत्पापं च सम्प्राप्तं तेनासौ नरकं गतः ।।६१
रजोवतीं सुतां दृष्ट्वा न विवाहेत यो नरः । स पापी नरकं याति षष्टिवर्षसहस्रकम् ।।६२
गान्धर्वं च विवाहं वै कामिन्या च कृतं यया । तस्या विघ्नकरो यो वै स पापी यमपीडितः ।।६३

उस राजा को शिष्य बनाया, पश्चात् उस बुद्धिमान् ने उस आभूषण को विक्रयार्थ अपने मित्र को सौंप दिया । बज्रमुकुट भी उस आज्ञा को शिरोधार्य कर नगर में पहुँच गया । उसी बीच राजा के रक्षक (सिपाही) उसे चोर समझ बाँधकर राजा के सामने उपस्थित किये । राजा दन्तवक्त्र उससे बोले—हे मनुष्य ! यह सुन्दर आभूषण तुम्हें कहाँ कैसे प्राप्त हुआ, सब बातें मुझसे कहो ! उस जटाधारी ने कहा—राजन् ! श्मशान स्थान में मेरे गुरु रहते हैं, सुवर्ण से आच्छन्न इस आभूषण को विक्रयार्थ उन्होंने मुझे दिया है । इसे सुनकर राजा ने शीघ्र उस गुरु को बुलाकर उस भूषण प्राप्ति के विषय में पूँछा । अनन्तर योगी ने कहा—(मैं बता रहा हूँ) आप लोग सुनिये ! मैं योगी का वेष धारण कर श्मशान में मंत्र सिद्धि कर रहा था, उसी बीच कोई पिशाचिनी वहाँ आई । मैंने अपने त्रिशूल से उसके घुटने में चिह्नकर दिया है, उसी ने यह आभूषण प्रदान किया । राजा उसके कारण को समझ कर अपनी पुत्री को घर से निकाल दिया । पश्चात् बुद्धिदक्ष वज्रमुकुट समेत उस राजकुमारी को साथ लेकर अपने घर आया । इतनी बातें कहने के उपरांत बैताल ने हँसकर विक्रमादित्य से कहा—राजन् सुनो ! इन चारों में किसको अधिक पाप का भागी होना पड़ा ! ५१-५८

सूतजी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रमादित्य ने हँसकर कहा कि पाप का भागी राजा हुआ क्योंकि मंत्री ने मित्रकार्य, सेवकों ने स्वामी का कार्य और राजकुमार ने अपना स्वार्थ सम्पन्न किया । अतः महापापी राजा ही हुआ जिसके नाते उसे नरक की प्राप्ति हुई । जो मनुष्य अपनी कन्या का विवाह उसके रजस्वला होने की जानकारी रखते हुए भी नहीं करता है, उस पापी को साठ सहस्र वर्ष तक नरक का अनुभव करना पड़ता है । अपने गान्धर्व विवाह के लिए कन्या के तैयार होने पर जो कोई उसमें बाधक

अदृष्टदोषां यः कन्यां विवेकेन विना त्यजेत् । स पापी नरकं याति लक्षवर्षप्रमाणकम् ॥६४
इति श्रुत्वा स वैतालो धर्मगाथां नृपेरिताम् । प्रसन्नहृदयः प्राह भूपतिं धर्मतत्परम् ॥६५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१

द्वितीयोऽध्यायः

कलियुगेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्रसन्नमनसं भूपं महासिंहासने स्थितम् । द्विजवर्यः स वैतालो वचः प्राह प्रसन्नधीः ॥१
एकदा यमुनातीरे धर्मस्थलपुरी शुभा । धनधान्यसमायुक्ता चतुर्वर्णसमन्विता ॥२
गुणाधिपो महीपालस्तत्र राज्यं चकार वै । हरिशर्मा पुरोधास्तु स्नानपूजनतत्परः ॥३
तस्य पत्नी सुशीला च पातिव्रतपरायणा । सत्यशीलः सुतो जातो विद्याध्ययनतत्परः ॥४
तस्यानुजा मधुमती शीलरूपगुणान्विता । द्वादशाब्दवयः प्राप्ते विवाहार्थं पिता यदा ॥५
भ्राता बभ्राम तौ सर्वं चिन्तुतश्च सुतावरम् । कदाचिद्राजपुत्रस्य विवाहे समतो द्विजः ॥६
पठनार्थे तु काश्यां वै सत्यशीलः स्वगं गतः । एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्विजः कश्चित्समागतः ॥७

होता है, वह पापी यमराज द्वारा दंडित होता है, विवेकहीन होकर उसके परित्याग करने पर उस पापी को एक लक्ष वर्ष तक नरक-यातना का अनुभव करना पड़ता है। इस मार्मिक गाथा को सुनकर, जिसे राजा ने विवेकपूर्ण बताया था, प्रसन्न होकर उस बैताल ने उस धार्मिक राजा से कहा—५९-६५

श्री भविष्यमहापुराण प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीयइतिहास
समुच्चय वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त।१।

अध्याय २

कलियुग के इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! उस वैताल ने प्रसन्नतापूर्ण होकर प्रसन्नचित्त वाले उस राजा से कहा। जो उस समय महासिंहासन पर सुशोभित हो रहा था। एक बार यमुना जी के तट पर धर्मस्थल नामक एक सुन्दर पुरी में, जो धन-धान्य से परिपूर्ण, एवं चारों वर्णों के मनुष्यों से युक्त थी, गुणाधिप नामक राजा राज्य कर रहा था। स्नान पूजन के लिए नियत हरिशर्मा नामक उनके पुरोधा (पुरोहित) थे। सुशीला नामक पतिव्रतपरायणा उनकी पत्नी एवं सत्यशील नामक पुत्र था, जो विद्याध्ययन के लिए कटिबद्ध रहता था। शील, रूप, और गुणों से सम्पन्न मधुमती नामक उनकी एक पुत्री भी थी। बारह वर्ष की अवस्था होने पर उसके विवाहार्थ पिता और भ्राता दोनों कन्यां के अनुरूप वर की खोज करने लगे। उसी बीच पिता राजकुमार के विवाह में और भ्राता सप्तशील अपने अध्ययनार्थ काशी चला गया। राजन् ! उस

वामनो नाम विख्यातो रूपशीलवयोवृतः । सुता मधुमती तं च दृष्ट्वा कामातुराऽभवत् ॥८
भोजनं छादनं पानं स्वप्नं त्यक्त्वा च विह्वला । चकोरीव विना चन्द्रं कामबाणप्रपीडिता ॥९
दृष्ट्वा सुशीला तं बाला वामनं ब्राह्मणं तथा । वारयामास ताम्बूलैः स्वर्णद्रव्यसमन्वितैः ॥१०
हरिशर्मा प्रयोगे च द्विजं दृष्ट्वा त्रिविक्रमम् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं सुतार्थेऽवरयत्तदा ॥११
सत्यशीलस्तु काश्यां वै गुरुपुत्रं च केशवम् । वरित्वा तं भगिन्यर्थे ययौ गेहं मुदान्वितः ॥१२
माघकृष्णत्रयोदश्यां भृगौ लग्नं शुभं स्मृतम् । त्रयो विप्रास्तदा प्राप्ताः कन्यार्थं रूपमोहिताः ॥१३
तस्मिन्काले तु सा कन्या भुजङ्गेनैव दंशिता । मृता प्रेतत्वमापन्ना पूर्वकर्मप्रभावतः ॥१४
तदा ते ब्राह्मणः यत्नं कारयामासुरुत्तरम् । न जीवनवती बाला गरलेन विमोहिता ॥१५
हरिशर्मा तु तत्सर्वं कृत्वा वेदविधानतः । आययौ मन्दिरं राजन्सुतागुणविमोहितः ॥१६
त्रिविक्रमस्तु बहुधा दुःखं कृत्वा स्मरानुगः । कन्थाधारी यतिर्भूत्वा देशाद्देशान्तरं ययौ ॥१७
केशवस्तु महादुःखी प्रियास्थीनि गृहीतवान् । तीर्थात्तीर्थान्तरं प्राप्तः कामबाणेन पीडितः ॥१८
भस्मग्राही वामनस्तु विरहाग्निप्रपीडितः । तस्थौ चितायां कामार्तः पत्नीध्यानपरायणः ॥१९
एकदा सरयूतीरे लक्ष्मणाख्यपुरे शुभे । त्रिविक्रमस्तु भक्षार्थे सम्प्राप्तो द्विजमन्दिरे ॥२०
तस्मिन्दिने रामशर्मा शिवध्यानपरायणः । यतिनं वरयामास भोजनार्थं स्वमन्दिरे ॥२१

समय वामन नामक एक ब्राह्मण, जो रूप, शील एवं वयस्क था, हरिशर्मा के यहाँ आ पहुँचा । मधुमती कन्या उसे देखकर कामातुर हो गई उसने व्याकुल होकर भोजन, वस्त्र, पान और शयन का त्यागकर दिया केवल चन्द्र के वियोग में चकोरी की भाँति कामबाण की पीड़ा का अनुभव करने लगी ।१-९। सुशीला ने अपनी पुत्री की अवस्था और उस वामन ब्राह्मण को देखकर कुछ स्वर्ण द्रव्य के साथ ताम्बूल प्रदान द्वारा उसका वरण कर लिया । हरिशर्मा ने प्रयाग में किसी त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण को देखकर, जो वेद और वेदाङ्ग के तत्त्व का निष्णात ज्ञाता था, अपनी कन्या के निमित्त उसका वरण किया । उधर सत्यशील ने केशव नामक अपने गुरुपुत्र को अपनी बहिन के निमित्त वरण करके अत्यन्त आनन्द विभोर होता हुआ घर को प्रस्थान किया। माघकृष्ण त्रयोदशी शुक्रवार के दिन शुभ लग्न में कन्या का पाणिग्रहण करने के लिए वे तीनों ब्राह्मण उसके रूप पर मोहित होकर वहाँ पहुँच गये। उसी समय किसी सर्प ने उस कन्या को काट लिया, जिससे पूर्व कर्म के प्रभाव से उसे प्राण त्यागने पर प्रेत होना पड़ा। उस समय उन तीनों ब्राह्मणों ने उसकी प्राणरक्षा के लिए अनेक यत्न किया, पर विष की तीक्ष्णतावश वह स्त्री जीवित न रह सकी। पश्चात् हरिशर्मा ने वैदिक विधान द्वारा उसकी अन्येष्टि क्रिया समाप्त की। राजन् ! अपनी कन्या के गुणों के स्मरण द्वारा अत्यन्त मुग्ध होते हुए वे अपने घर लौट आये।१०-१६। आये हुए उन ब्राह्मणों में त्रिविक्रम काम पीड़ित होकर अनेक दुखों का अनुभव करता हुआ कंधा (गुदड़ी) धारण कर देश-देशान्तर भ्रमण के लिए चल पड़ा। केशव ने महादुःखी होकर अपनी प्रिया की अस्थियों का संचय करके कामबाण से पीड़ित होकर एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को प्रस्थान किया। और वामन उसके विरह से संतप्त होकर उसके भस्म को लेकर कामार्त एवं केवल पत्नी का ध्यान करता हुआ चिता पर बैठ गया।१७-१९। एक बार सरयू नदी के तट पर स्थित लक्ष्मण नामक नगर में किसी ब्राह्मण के दरवाजे पर भिक्षा के निमित्त त्रिविक्रम पहुँच गया। शिवध्यान का पारायण करने वाले रामशर्मा ने उस दिन भोजनार्थ अपने घर

तस्य पत्नी विशालाक्षी रचित्वा बहुभोजनम् । आहूय यतिनं राजन्पात्रमालभमाकरोत् ॥२२
तस्मिन्काले च तद्वालो मृतः पापवशं गतः । अरोदीतस्य सैरन्ध्री विशालाक्ष्यपि भर्त्सिता ॥२३
न रोदनं त्यक्तवती पुत्रशोकाग्नितापिता । रामशर्मा तदा प्राप्तो मन्त्रं सञ्जीवनं शुभम् ॥२४
जपित्वा मार्जनं कृत्वा जीवयामास बालकम् । विनयाननतो विप्रस्तं च संन्यासिनं तदा ॥२५
भोजनं कारयित्वा तु मन्त्रं सञ्जीवनं ददौ । त्रिविक्रमस्तु तं मन्त्रं पठित्वा यमुनातटे ॥२६
प्राप्तवान्यत्र ता नारी दाहिता हरिशर्मणा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजपुत्रो मृतिं गतः ॥२७
दाहितस्तनयः पित्रा शोककर्त्रा तदामुना । जीवनं प्राप्तवान्बालस्तस्य मन्त्रप्रभावतः ॥२८
गुणाधिपस्य तनयो राज्ञो धर्मस्थलीपतेः । त्रिविक्रमं वचः प्राह वीरबाहुर्महाबलः ॥२९
जीवनं दत्तवान्मह्यं वरयाद्य वरं मम । स विप्रः प्राह भो राजन्केशवो नाम यो द्विजः ॥३०
गृहीत्वास्थि गतस्तीर्थे तमन्वेषय मा चिरम् । वीरबाहुस्तथा मत्वा दूतमार्गेण तं प्रति ॥३१
प्राप्तस्तं कथयामास यथा प्राप्तं हि जीवनम् । इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवोऽस्थिसमन्वितः ॥३२
प्रगत्यास्थीनि सर्वाणि ददौ तस्मै द्विजातये । पुनः सञ्जीविता बाला केशवादीन्वचोऽब्रवीत् ॥३३
योग्या धर्मेण यस्याहं तस्मै प्रयामि धर्मिणे । इति श्रुत्वा वचस्तस्य मौनव्रतस्त्रयः स्थिताः ॥३४
अतस्त्वं विक्रमादित्य धर्मज्ञ कथयस्व मे । कस्मै योग्या च सा बाला नाम्ना मधुमती शुभा ॥३५

उस यती (संन्यासी) को बुलाया था । उनकी पत्नी विशालाक्षी अनेक भाँति के भोजन पात्र में आये हुए यति के सम्मुख रख रही थी, कि राजन् ! उसी समय उसका पुत्र अपने कर्म के प्रभाव से मृतक हो गया । पश्चात् उनकी सहचरी विशालाक्षी ने जब भर्त्सना करने पर भी पुत्रशोक से संतप्त होने के कारण रुदन करना बन्द नहीं किया । तब रामशर्मा ने संजीवनी मंत्र की प्राप्ति करके उसके जप और संमार्जन द्वारा पुत्र को जीवित किया । अनन्तर विनम्र होकर उस ब्राह्मण ने उस संन्यासी को भोजन कराकर उसे शुभसंजीवनीमंत्र भी प्रदान किया । त्रिविक्रम ने उस मंत्र की सिद्धि यमुना तट के उस स्थान पर प्राप्त की, जहाँ हरिशर्मा ने उस स्त्री (पुत्री) का दाह किया था । उसी समय वहाँ के राजपुत्र का निधन हो गया । उपरांत उसके पिता ने शोक-संतप्त होकर उसका दाहकर्म किया । उस बालक ने भी उस मंत्र के प्रभाव से जीवदान प्राप्त किया । तदुपरांत राजा गुणाधिप के उस महाबली पुत्र ने जिसे उस मंत्र के प्रभाव से जीवनदान प्राप्त हुआ था, त्रिविक्रम से कहा—आप ने मुझे जीवनदान दिया है, अतः मन इच्छित वरदान माँग लीजिये । ब्राह्मण ने कहा—राजन् ! केशव नाम का ब्राह्मण जो अस्थियों को लेकर तीर्थ चला गया है, शीघ्र उसका अन्वेषण होना चाहिए । राजकुमार वीरबाहु ने दूत द्वारा अपनी जीवनदान प्राप्ति की कथा उससे कहला दिया । ऐसी बातें सुनकर केशव ने अस्थियों समेत मार्ग से ही वापस आकर उस ब्राह्मण (त्रिविक्रम) को समस्त अस्थियाँ प्रदान की । अनन्तर जीवित होने पर वह स्त्री केशव आदि उन तीनों ब्राह्मणों से कहने लगी कि धर्मतः मैं जिसकी स्त्री होने के योग्य हूँ, उसी धार्मिक के साथ मैं चलने के लिये तैयार हूँ । इसे सुनकर वे तीनों ब्राह्मण मौन हो गये । अतः धर्मज्ञ, विक्रमादित्य तुम्हीं इसका निर्णय बताओ कि वह मधुमती नामक कन्या किसकी स्त्री होने के योग्य है ।२०-३५

सूत उवाच

विहस्य विक्रमादित्यो वैतालं प्राह नम्रधीः । योग्या मधुमती नारी वामनाय द्विजन्मने ।।३६
प्राणदाता तु यो विप्रः पितेव गुणतत्परः । अस्थिदाता तु यो विप्रो भ्रातृतुल्यस्स वेदवित् ।।३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

कलियुगभूपाख्यानेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विप्रवर्य महाभाग श्रृणु गाथां मनोरमाम् । वैतालो भूपतिश्रेष्ठ पुनर्विक्रममब्रवीत् ।।१
वर्द्धवन्नगरे रम्ये नानाजननिषेविते । तत्राभवन्महीपालो रूपसेनो महाबलः ।।२
विद्वन्माला प्रिया तस्य पतिसेवापरायणा । एकदा क्षत्रियः कश्चिन्नाम्ना वीरवरः स्मृतः ।।३
पुत्रकन्यासपत्नीको वृत्त्यर्थं समुपागतः । विनयावनतो भूत्वा रूपसेनं महीपतिम् ।।४
किञ्चिच्छ्रुत्वा ददौ स्वर्णं सहस्रं प्रत्यहं नृप । वीरसेनस्तु तल्लब्ध्वा वह्नौ तीर्थे द्विजातिषु ।।५
व्ययं कृत्वा तु तच्छेषं स कुल्ये भुक्तवान्स्वयम् । एवं वर्षे गते राजन्राजलक्ष्मीः शिवाज्ञया ।।६

सूत जी बोले—नम्रता पूर्वक राजा विक्रमादित्य ने हँसकर वैताल से कहा—वह मधुमती कन्या उस वामन नामक ब्राह्मण की स्त्री होने के योग्य है । क्योंकि प्राण देने वाला पिता के समान और अस्थि देने वाला, भ्राता के समान होता है ।३६-३७

श्री भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

कलियुग के भूपाख्यानेतिहास समुच्चय का वर्णन

शौनक ने कहा—महाभाग, श्रेष्ठ विप्रवृन्द ! सुन्दर गाथा कह रहा हूँ सुनो ! वैताल ने उस श्रेष्ठ राजा विक्रमादित्य से कहा—वर्द्धमान नामक नगर में, जो रमणीक एवं अनेक भाँति के मनुष्यों से सुसेवित था, महाबली रूपसेन नामक राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम विद्युन्माला था, जो पति सेवा का ही पारायण करती थी । एक वार वीरवर नामक एक क्षत्री अपने पुत्र, कन्या और पत्नी समेत सेवावृत्ति (नौकरी) के लिए उस राजा के दरबार में उपस्थित हुआ और विनम्र होकर उसने राजा रूपसेन से कह कर नौकरी निश्चित करा लिया जिसमें राजा प्रतिदिन एक सहस्र सुवर्ण की मुद्रा उसे प्रतिदिन देने लगा । वीरसेन (वीरवर) उसे वेतन के रूप में ग्रहण कर अग्नि, तीर्थ, एवं द्विजातियों में व्यय करने से जो अवशिष्ट होता था, उसी से अपने परिवार समेत जीवन निर्वाह करता था । राजन् ! इस प्रकार एक वर्ष

परीक्षार्थं श्मशाने च रोदनं बहु कुर्वती । अर्धरात्रे तदा राजा बुद्ध्वा प्राह स्वसेवकम् ॥७
गच्छ वीरवर त्वं वै यतोऽसौ श्रूयते रवः । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं मह्यं शीघ्रं निवेदय ॥८
इति श्रुत्वा वीरवरः शस्त्रास्त्रकुशलो बली । स तत्र गत्वा यत्रास्ते राजलक्ष्मीः शुभानना ॥९
श्लक्ष्णं वचश्च तामाह किमर्थं रोदने स्थिता । महत्कष्टं च किं प्राप्तं कारणं देवि मे वद ॥१०
इति श्रुत्वा राजलक्ष्मीर्वीरसेनं तमब्रवीत् । राजलक्ष्मीं च मां विद्धि रूपसेनस्य भूपतेः ॥११
मासान्ते प्रलयं यास्ये तस्माच्छोचामि भो बलिन् । स आह शृणु भो देवि त्वदल्पायुस्समीरितम् ॥
केन पुण्येन दीर्घायुस्त्वं भवेः कारणं वद ॥१२

देव्युवाच

महाबाहो महाप्राज्ञ यदि ते तनयस्य वै ॥१३
कपालमर्प्य त्वं च चण्डिकायै तदानघ । दीर्घायुर्भविता चाहं स्वामिकार्यं प्रसाधय ॥१४
इति श्रुत्वा वीरवरो मन्दिरे स्वयमागतः । पत्नीं प्राह प्रसन्नात्मा सुतं देव्यै निवेदय ॥१५
तथेत्युक्त्वा तु सा साध्वी तनयं प्राह निर्भया । राज्ञोऽर्थे तव देहं वै पुत्र पासि कुरुष्व तत् ॥१६
तथा मत्वा तु तत्पुत्रो भगिन्या मातृसंयुतः । चण्डिकाभवनं प्राप्याब्रवीत्स्वपितरं तदा ॥१७
भोस्तात मे कपालं च चण्डिकायै समर्पय । दीर्घायुर्येन यत्नेन राजलक्ष्मीश्च तत्कुरु ॥१८

के व्यतीत होने के उपरांत भगवान् शिव की आज्ञा शिरोधार्यकर राजलक्ष्मी उस (वीरवर) की परीक्षा के लिए श्मशान में जाकर अत्यन्त रुदन करने लगी । आधी रात के समय राजा जागकर अपने सेवक से कहा—वीरवर ! जाओ इस (रुदन की) ध्वनि का, जिसे तुम सुन रहे हो, कारण का भलीभाँति पता लगाकर शीघ्र मुझसे कहो । ऐसा सुनकर शस्त्रास्त्र के निपुण एवं बली उस वीरवर ने वहाँ जाकर जहाँ वह राजलक्ष्मी रुदन कर रही थी, उस शुभ मुखवाली से प्रियवाणी कहा—देवि ! क्यों रुदन कर रही हो, तुम्हें क्या महान् कष्ट है, मुझे बताओ ! इसे सुनकर राजलक्ष्मी ने उस वीरसेन से कहा—बलिन् ! मै राजा रूपसेन की राजलक्ष्मी हूँ, इस मास के अन्त समय में मेरा प्रलय (नाश) हो जायेगा, इसीलिए मैं शोक कर रही हूँ । पश्चात् उसने कहा—देवि ! सुनो इससे तो तुम्हारी अल्पायु मालूम हो रही है, किन्तु किसी पुण्य के द्वारा तुम्हारी दीर्घायु संभव हो सके, तो उसे बताने की कृपा करो ।१-१२

देवी जी बोली—महाबाहो, महाप्राज्ञ ! यदि तुम, अपने पुत्र का शिर चण्डिका देवी के लिए अर्पित कर सको तो हे अनघ ! मेरी दीर्घायु हो जाये । अतः अपने स्वामी के लिए इसकी सिद्धि अवश्य करो । इसे सुनकर वीरवर ने स्वयं अपने घर, आकर प्रसन्न हृदय से पत्नी से कहा—पुत्र, देवी जी के लिए समर्पित कर दो' उस पतिव्रता ने निर्भय होकर उसे स्वीकार किया, पश्चात् पुत्र से कहा—'पुत्र ! राजा के किसी कार्य के लिए ही तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण किया गया है, अतः उसे अवश्य पूरा करो ।' पुत्र ने उसे स्वीकार कर अपनी भगिनी और माता के साथ चण्डिका देवी के मंदिर में पहुँचकर अपने पिता से कहा—हे पिता ! मेरा शिर चण्डिका के लिए समर्पित कर दीजिये क्योंकि राजलक्ष्मी जिस प्रकार से दीर्घायु प्राप्त करें, वह

इति श्रुत्वा वीरसेनः शिरश्छित्त्वा समर्पयत् । तस्यानुजा मृता तत्र तथा माता तथा पिता ।।१९
दृष्ट्वा तद्रूपसेनस्तु कारणं सर्वमादितः । सेवकं सत्यसन्धं च मत्वा तु स्वशिरोऽर्पयत् ।।२०
तदा प्रसन्ना सा देवी नृपनुज्जीव्य साब्रवीत् । वरं वरय भूपाल यथेष्टं शीघ्रमाप्नुयाः ।।२१
स आह वीरसेनस्तु सकुलो जीवमाप्नुयात् । तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तर्हिताभवत् ।।२२
रूपसेनः प्रसन्नात्मा स्वसुतां कामरूपिणीम् । ददौ सुताय वैतालो नृपतिं प्राह विस्मितः ।।
मुख्यस्नेहं कृतं केन तेषां मध्ये वदस्व मे ।।२३

राजोवाच

मुख्यस्नेहं कृतं राज्ञा दासार्थे स्वतनुं ददौ । स्वर्णस्नेही वीरवरो धर्मप्रीतिः पतिव्रता ।।
बन्धुप्रीतिश्च भगिनी पितृस्नेही तु पुत्रकः ।।२४
महान्स्नेहः कृतो राज्ञा रूपसेनेन धीमता ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम तृतीयोऽध्यायः ।३

कार्य हम लोगों को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए। ऐसा सुनकर वीरसेन ने उसका शिर काटकर देवी को अर्पित कर दिया। तत्पश्चात् उसी प्रकार क्रमशः उसकी भगिनी, माता और पिता सभी लोग मृतक हो गये। आदि से अंत तक समस्त कारण को जानकर राजा रूपसेन ने अपने उस सेवक को सत्यवक्ता समझते हुए, अपना भी शिर अर्पित कर दिया। उस समय प्रसन्न होकर देवी ने राजा को प्राणदान देकर उससे कहा—राजन्! यथेच्छ वरदान माँगो, मैं उसे शीघ्र देने को तैयार हूँ। राजा ने कहा—यह वीरसेन सपरिवार जीवित हो जायें। वैसा ही करके देवी उसी समय अन्तर्हित हो गईं। तदुपरांत रूपसेन ने प्रसन्न होकर सौन्दर्यपूर्ण अपनी पुत्री का पाणिग्रहण उस (वीरवर) के पुत्र के साथ सुसम्पन्न कर दिया। अनन्तर वैताल आश्चर्य करता हुआ (विक्रम) से कहा। उनमें मुख्य स्नेह किसका था।१३-२३

राजा ने कहा—मुख्य स्नेह राजा का था, क्योंकि अपने सेवक के निमित्त उसने अपनी शरीर का परित्याग किया था। और वीरवर उस सुवर्ण की मुद्रा का स्नेही था, उसकी पतिव्रता धर्म से प्रेम करती थी, भगिनी अपने माता की प्रेमिका थी और उसका पुत्र अपने पिता का स्नेही था। इसलिए बुद्धिमान् राजा रूपसेन ने उन लोगों के साथ महान् स्नेह प्रकट किया।२४-२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयभूपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । काचिद्भोगावती नाम्ना नगरी परमाद्भुता ॥१
रूपवर्मा च नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै । चूडामणिरिति ख्यातः शुको बुद्धिविशारदः ॥२
तस्य भूपस्य गेहे च निवसञ्छुभपञ्जरे । कदाचिद्रूपवर्मा च त्रिंशदब्द उरूर्जितः ॥३
पप्रच्छ मम योग्या वै शुक काचिद्वराङ्गना । चेदास्ते तर्हि मे ब्रूहि श्रुत्वा तं चाब्रवीच्छुकः ॥४
मगधेश्वरभूपस्य कन्या चन्द्रवती शुभा । तव योग्या हि भो राजन्साम्प्रतं तां गृहाण वै ॥५
इति श्रुत्वा स नृपतिर्गणेशं द्विजसत्तमम् । प्रेषयित्वा ददौ दव्यं यथोद्वाह्या तथा कुरु ॥६
गणेशोऽपि गतस्तूर्णं देशे मागधके शुभे । महादेवं च सम्पूज्य चकार स्तवनं मुदा ॥७
नमः शिवाय शान्ताय सर्वाभीष्टप्रदायिने । भवाय शङ्करायैव रुद्राय सततं नमः ॥८
मृडायानन्दरूपाय सर्वदुःखहराय च ॥९
इत्युक्तवति विप्रे च तदा चन्द्रवती शुभा । कामातुराब्रवीच्चैनां नाम्ना मदनमञ्जरीम् ॥१०
मम योग्यश्च पुरुषः कश्चिदस्ति महीतले । साऽह भो रूपवर्मा च योग्यो भोगापुरीपतिः ॥११

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत उवाच—इसे सुनकर वैताल ने राजा से पुनः कहा—परम अद्भुत एक भोगावती नामक नगरी है, जिसमें रूपवर्मा नामक राजा राज करता था। उसके बुद्धिविशारद एक शुक (तोता) था, जिसका नाम चूडामणि बताया गया है। वह उस राजा के यहाँ एक सुन्दर पिंजरे में रहता था। तीस वर्ष की अवस्था होने पर किसी समय उस रूपवर्मा ने उस शुक से पूँछा—शुक ! मेरे योग्य कोई सुन्दरी है ! यदि है, तो बताओ ! उसे सुनकर उस शुक ने कहा—राजन् ! मगध देश के राजा की पुत्री, जिसका नाम चन्द्रावती है, आप के योग्य है, इस समय उसी का ग्रहण कीजिये। ऐसा सुनकर उस राजा ने गणेश नामक किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को यथेच्छ धन देकर उससे कहा—जिस प्रकार उसके साथ विवाह हो सके, वही कीजियेगा। यह गणेश नामक ब्राह्मण भी शीघ्रतया मगध देश में पहुँचकर वहाँ महादेव जी की प्रार्थना करके प्रसन्नचित्त से उनकी स्तुति करने लगा। शिव, शान्त, एवं समस्त अभीष्ट के प्रदायक को नमस्कार है, भव, शंकर एवं रुद्र के लिए अनवरत नमस्कार है। मृड, आनन्दरूप, तथा सम्पूर्ण दुःख के अपहरण करने वाले को नमस्कार है। इस प्रकार उस ब्राह्मण के स्तुति करने के समय में चन्द्रावती कामातुर होकर मदनमंजरी नामक मैना से कहने लगी—इस भूतल में मेरे योग्य कोई पुरुष है ? उसने कहा—भोगावती पुरी का राजा रूपवर्मा तुम्हारे योग्य हैं। यह सुनकर उस राजपुत्री ने मनोरथ सिद्धि

इति श्रुत्वा तु सा देवी दुर्गां वाञ्छितदायिनीम् । तुष्टाव मनसा सुभ्रूर्यया जातमिदं जगत् ।।१२
नमो नमो जगन्मातर्मम कार्यप्रदायिनि । त्रिलिङ्गजननी त्वं वै वर्णमूर्तिः सनातनी ।।१३
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा सन्ध्या नमस्तस्यै नमो नमः । नृपतिं रूपवर्माणं मत्पतिं कुरु भोः शिवे ।।१४
इति स्तुत्या प्रसन्नाभूज्जगदम्बा जगन्मयी । पितरं मगधेशं च मोहयित्वा च मातरम् ।।१५
विवाहं कारयामास मासान्ते सिद्धरूपिणी । रूपवर्मा चन्द्रवती बुभुजाते परं सुखम् ।।१६
एकस्मिन्दिवसे राजन्मेनां मदनमञ्जरीम् । नृपः प्राह विवाहं त्व शुशुकेन कुरुष्व भोः ।।१७
मेनका प्राह भो राजन्विवाहाश्चेदृशो मताः । उत्तमाधममध्याश्च पुरुषास्त्रिविधाः स्मृताः ।।१८
तथैव त्रिविधा नारी यथा योग्यो वरो भवेत् । उत्तमा या भवेन्नारी योग्याया चाधमाय वै ।।१९
शृणु तत्कारणं राजन्मया दृष्टं यथाऽभवत् । इलापुरे वसत्येको वैश्यो लक्षपतिर्धनी ।।२०
अनपत्यो देवयाजी तस्य पत्नी पतिव्रता । बहुयत्नेन तनयस्तस्य जातो महाधमः ।।२१
द्यूतक्रीडापरो नित्यं सुरापाने रतस्तदा । वेश्यागामी महाधूर्तो नित्यं मांसाशनः खलः ।।२२
तस्य धर्मं च पितरौ समालोक्य वनं गतौ । नरं नारायणं ध्यात्वा परमं पदमापतुः ।।२३
मदपालस्तु तनयः कृत्वा सर्वधनव्ययम् । अन्यदेशे च वृत्त्यर्थं जगाम धनवर्जितः ।।२४
प्राप्तश्चन्द्रपुरे रम्ये यत्र हेमपतिः स्थितः । वृत्तान्तं कथयामास वैश्यं हेमपतिं हि सः ।।२५
देवयाजी सुतोऽहं वै स्वल्पं वै धनमाहृतम् । देशान्तरे विक्रयार्थे सिन्धुमार्गेण प्राप्तवान् ।।२६

करने वाली उस दुर्गा देवी का, जिसने इस जगत् का निर्माण किया है, मानसिक आराधना आरम्भ की ।१-१२। हे जगत् की माता ! आप के लिए बार-बार नमस्कार है, आप मेरे कार्य की सिद्धि करने वाली हैं । आप त्रिलिङ्ग की जननी, सनातनी वर्णमूर्ति हैं, स्वाहा, स्वधा, एवं संध्या भी आप ही हैं अतः आपको बार-बार नमस्कार है । हे शिवे ! राजा रूपवर्मा को मेरा पति कीजिये । इस प्रकार की स्तुति करने पर जगन्मयी जगदम्बा ने प्रसन्न होकर उसके पिता मगधेश, तथा माता को मोहित करके उसी मास के अन्त में उन दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न करा दिया। पश्चात् वे दोनों सुखोपभोग करने लगे ।१३-१६। एक दिन राजा ने मदन मंजरी नामक उस मैना से कहा कि—तुम इस शुक के साथ अपना विवाह संस्कार सम्पन्न करा लो। मैना बोली—राजन् ! विवाह इस प्रकार का अच्छा होता है, जिसमें यथायोग्य स्त्री- पुरुष हो क्योंकि उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के पुरुष होते हैं उसी प्रकार तीन भाँति की स्त्रियाँ भी होती है। अतः उत्तमा नारी अधमपुरुषों के योग्य नहीं होती हैं क्योंकि राजन् ! इसका कारण जिस प्रकार मैंने देखा है, बता रही हूँ, सुनो ! इलापुर नगर में एक लक्षपति वैश्य रहता था, जिसका नाम देवयाजी बताया जाता है। उसकी पत्नी पतिव्रता थी, किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं थी । बहुत प्रयत्न करने पर महादुष्ट एक पुत्र उत्पन्न हुआ। द्यूत की क्रीडा, मद्यपान, और वैश्याओं का साथ करता हुआ वह महाधूर्त प्रतिदिन मांस का भक्षण भी करता था। उसके इस कुकृत्य को देखकर उसके माता और पिता दोनों ने बन में जाकर नरनारायण का ध्यान करके परमपद की प्राप्ति की। उसके पुत्र मदनपाल ने घर के समस्त धन का अपव्यय करके निर्धन होने पर अपने वृत्यर्थ (व्यापार के लिए) किसी अन्य देश की यात्रा की। उस यात्रा में वह उस रमणीक चन्द्रपुर में पहुँचा, जिसमें हेमपति नामक वैश्य रहता था। उसने उस सेठ से अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया—मैं देवयाजी वैश्य का पुत्र हूँ, अपने पास थोड़ा-सा

महावायुप्रभावेन द्रव्यं तन्मग्नमम्भसि । तल्लज्जया न यास्येऽहं पितरं प्रति मारिष ॥२७
इति श्रुत्वा हेमपतिः स्वपत्नीं काममञ्जरीम् । वचः प्राह प्रसन्नात्मा संयोगो विधिना कृतः ॥२८
चन्द्रकान्तिं सुतां दास्ये तद्वराय त्वदाज्ञया । सामन्त्र्य दम्पती राजन्ददौ कन्यायां विधानतः ॥२९
स्वगृहे वासयामास मदपालं सुतापतिम् । मासमेकमुषित्वा तं श्वशुरं प्राह नम्रधीः ॥३०
आज्ञां देहि धनाध्यक्ष स्वगेहं यामि मा चिरम् । इति श्रुत्वा हेमपतिः स्वसुतां स्वर्णभूषिताम् ॥३१
चन्द्रकान्तिं सदासीं च तस्मै दत्त्वा गृहं ययौ । नरान्विसृज्य दुष्टात्मा शिबिकावाहकान्नृप ॥३२
दासीं हत्वा तदा पत्नीं विसृज्य धनवर्जिताम् । एकाकी प्राप्तवान्गेहं मदपालो महाधमः ॥३३
वर्षान्तरे च तत्स्वर्णं व्ययं कृत्वा कुमार्गके । बुभुक्षितः पुनः शोकं चकार बहुधा नृप ॥३४
पुनश्च श्वशुरस्यैव गृहे सम्प्राप्तवान्खलः । चन्द्रकान्तिस्तु तं दृष्ट्वा स्वपतिं प्राह नम्रधीः ॥३५
मया निवेदितं पित्रे धनं चौरैश्च लुण्ठितम् । अतस्त्वं त्यज सन्तापं चिरं वस गृहे मम ॥३६
तथेत्युक्त्वा महाधूर्त उवास कतिचिद्दिनम् । ज्ञात्वा विमोहितां पत्नीमर्द्धरात्रे तमोवृते ॥३७
हत्वा तां स ययौ गेहं गृहीत्वा बहुभूषणम् । अयोग्योऽयमतो राजन्विवाहः शुकमेनयोः ॥३८
इति श्रुत्वा शुकः प्राह भूपतिं करुणानिधिम् । विवाहं न करिष्यामि नार्य्या त्वाधमया सह ॥३९

धन लेकर समुद्री मार्ग से इस प्रदेश में विक्रयार्थ आया था । पर महावायु के झकोरे से मेरा सम्पूर्ण द्रव्य जल में डूब गया । आर्य ! अतः लज्जावश मैं अपने माता-पिता के पास नहीं जा रहा हूँ । ऐसा सुनकर हेमपति ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी काम मंजरी से कहा—ब्रह्मा ने यह उत्तम सुन्दर संयोग उपस्थित किया है, तुम्हारी सम्मति प्राप्त कर मैं पुत्री चन्द्रकांति का पाणिग्रहण इससे कराना चाहता हूँ । आपस में उन दोनों ने इस प्रकार मंत्रणा करके विधान पूर्वक उसे कन्यादान दे दिया ।१९-२९। उपरांत अपने घर में ही उस जामाता मदनपाल को भी ठहराया । एक मास रहकर उसने विनम्र होकर अपने श्वसुर से कहा—हे धनाध्यक्ष ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं शीघ्र अपने गृह जाना चाहता हूँ । इसे सुनकर हेमपति ने अपनी कन्या चन्द्रकान्ति को सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित करके दासीसमेत उसके साथ भेज दिया । राजन् ! उस दुष्टात्मा ने (कुछ दूर जाकर) पालकी के वाहक कहारों और इतर मनुष्यों को लौटाकर दासी का प्राण ले लिया । पश्चात् समस्तधन ग्रहणकर अपनी पत्नी को अकेली छोड़कर महानीच मदनपाल एकाकी गृह पहुँच गया । एक वर्ष के भीतर उस धन का कुमार्ग में अपव्यय करने पर पुनः भूखे रहकर अत्यन्त शोक करने लगा । तदुपरांत वह दुष्ट पुनः अपने श्वसुर के यहाँ पहुँचा । चंद्रकांति अपने पति को देखकर नम्रता पूर्वक उससे बोली मैंने अपने पिता से कह दिया है कि चोरों ने मेरे धन का अपहरण किया है, अतः आप अपने संताप का त्याग कर इसी मेरे गृह में सदैव निवास करो । उसे स्वीकार कर उस महाधूर्त ने कुछ दिन वहाँ रहकर अपनी उस पत्नी को अत्यन्त मोहित समझकर एक दिन अंधेरी आधी रात के समय उसका प्राण का अपहरण करके उसके सम्पूर्ण आभूषणों को लेकर वहाँ से चल दिया । अतः कह रही हूँ कि राजन् ! तोता और मैना का विवाह संबंध करना अयोग्य होने के नाते अनुचित है । ऐसा सुनकर उस शुक (तोते) ने उस कारुणिक राजा से कहा—मैं इस प्रकार की अधम स्त्री से सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता हूँ । क्योंकि यह मैना नारी के समान अधम और श्यामांगी होने के

अधमा मेनका नारी श्यामाङ्गा च कुरूपिणी । उत्तमोऽहं शुको राजन्पुरुषश्च हरेत्तनुम् ।।४०
शृणु तत्कारणं भूप मया दृष्टं महोत्तमम् । नगरे काञ्चनपुरे वणिक्छङ्खपतिः श्रुतः ।।४१
तस्य पुत्रस्तु मेधावी सिन्धुगुप्तो गुणी धनी । प्रभावती प्रिया तस्य श्रीदत्तस्तत्सुतः स्मृतः ।।४२
विवाहमकरोत्तस्य जयश्रीपत्तने शुभे । सोमदत्तस्य सुतया जयलक्ष्म्या समन्वितम् ।।४३
श्रीदत्तस्तु गतो देशं वाणिज्यार्थं कुरुस्थलम् । आयाति द्वादशाब्दे तु सधनो गेहमागतः ।।४४
जयलक्ष्मीस्तु कामेन पीडिता पितृमन्दिरे । अमात्यतनयेनैव होमदत्तेन मोहिता ।।४५
दूती मार्गेण तं प्राप्य व्ययं कृत्वा धनं बहु । रमयामास सा नारी तेन सार्द्धं महाधमा ।।४६
त्रिमासान्ते च तत्स्वामी श्रीदत्तः श्वशुरालये । सम्प्राप्तः सा तु तं दृष्ट्वा महद्दुःखमुपाययौ ।।४७
अर्धरात्रे तु तन्मात्रा प्रेषिता स्वपतिं प्रति । जयलक्ष्मीश्च सम्प्राप्ता क्रोधेन स्फुरिताधरा ।।४८
बहुमानेन स्वपतिस्नेहं कृत्वालयं ययौ । तदा तु कुलटा सा च गता दूतीगृहं प्रति ।।४९
शून्यालये होमदत्तो दंशितो भुजगेन वै । सुष्वाप मरणं प्राप्य तदा बाला समागता ।।५०
वेगेन रमयामास तं जारं विषमोहितम् । पिप्पलस्थः पिशाचश्च दृष्ट्वा तां जारिणीं शुभाम् ।।५१
शवदेहं च सम्प्राप्य रमणीं तामरीरमत् । खनित्वा दशनैर्नासां पिप्पलोपरि सोऽगमत् ।।५२
कफल्लो नाम चौरस्तु दृष्ट्वा तत्कारणं तदा । कामिन्या अनुगो भूत्वा मन्दिरे तत्प्रविष्टवान् ।।५३

नाते कुरूपा है । राजन् ! मैं उत्तम शुक हूँ । राजन् ! मैं उस कारण को बता रहा हूँ, जिसे मैने स्वयं देखा है । कांचनपुर नामक नगर में शंखपति नामक एक बनिया रहता था ।३०-४१। उसके पुत्र का नाम सिंधुगुप्त था, जो गुणी एवं धनी व्यक्ति था । उसकी पत्नी का नाम प्रभावती और पुत्र का श्रीदत्त नाम था । उसने जयश्री नामक नगर के निवासी सोमदत्त की पुत्री जयलक्ष्मी का पाणिग्रहण अपने पुत्र (श्रीदत्त) के साथ सम्पन्न किया । पश्चात् श्रीदत्त ने अपने व्यापारार्थ कुरुदेश की यात्रा की । वहाँ से धन की राशि अर्जित करके बारहवें वर्ष अपने घर आया । इधर जयलक्ष्मी अपने पिता के गृह में रहती हुई एक दिन काम पीड़ित होने पर मंत्रीपुत्र सोमदत्त पर मोहित हो गई । उस महाअधम स्त्री ने दूती द्वारा उससे सम्पर्क स्थापित करके अधिक धन के अपव्यय समेत उसके साथ रमण कराना आरम्भ किया । तीन मास के उपरांत उसका पति श्रीदत्त अपनी ससुराल आया । उसे आया हुआ देखकर वह दुःख का अनुभव करने लगी । आधीरात के समय उसकी माता ने उसे उसके पति के पास भेजा । यद्यपि अत्यन्त क्रुद्ध होने के नाते जयलक्ष्मी का ओंठ स्फुरित हो रहा था, तथापि किसी प्रकार वहाँ गई ।४२-४८। अत्यन्त सम्मान समेत अपने पति के साथ स्नेह प्रकट कर अपने महल में लौट आई । पश्चात् वह व्यभिचारिणी उस दूती के घर गई तो देखा कि उस (संकेत वाले) शून्य घर में सोमदत्त किसी सर्प के काटने से निष्प्राण होकर पड़ा है । किन्तु वह स्त्री वहाँ पहुँच कर विषमुग्ध उस जारपुरुष के साथ वेग से रमण करने लगी । उसी स्थान के पीपल के वृक्ष पर रहने वाला कोई पिशाच उस सुन्दरी व्यभिचारिणी को देखकर उस शव की देह में प्रविष्ट होकर उस रमणी के साथ अत्यन्त रमण किया । पश्चात् दाँतों से उसकी नाक काट कर उसी पीपल पर पुनः चला गया। कोई कफल्ल नामक चोर उस घटना को देखकर उस कामिनी के पीछे-पीछे उसके महल में चला गया।४९-५३।

तदा तु जयलक्ष्मीश्च स्वपतिं प्राप्य दुर्भगा । चक्रे सा रोदनं गाढं सर्वे लोकाः प्रतस्थिरे ।।५४
नासाहीनां सुतां दृष्ट्वा सोमदत्तो महाधनः । बद्ध्वा जामातरं शीघ्रं राजान्तिकमुपाययौ ।।५५
नृपाज्ञया राजदूतास्तमुद्बन्धनमादधुः । तदा कफल्लः सम्प्राप्य सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ।।५६
मत्वा तस्य वचः सत्यं जयलक्ष्मीं महाधमाम् । रासभोपरि संस्थाप्य कृत्वा दुर्गतिरूपिणीम् ।।५७
नगरात्प्रेषयामास वनं शार्दूलसेवितम् । अतस्त्वं शृणु भूपाल मेनामद्योग्यिका न हि ।।५८
इत्युक्त्वा स तु वैतालो विक्रमं प्राह नम्रधीः । नारी पापाधिका वाथ पुरुषस्तद्वदस्व मे ।।५९

विक्रम उवाच

ब्रह्मणोऽगुणरूपस्य मायावर्णस्वरूपिणी । तमो नपुंसकं ज्ञेयं त्रिलिङ्गैकं तदव्ययम् ।।६०
अव्ययं ब्रह्मणो धाम माया लिङ्गस्वरूपिणी । तया जातमिदं विश्वं तदम्बायै नमो नमः ।।६१
क्लीबा स्त्री सर्वदा श्रेष्ठा स्त्रियास्तु पुरुषस्तथा । अव्याधिकश्च पुरुषो नारी कर्माधिका मता ।।६२
क्लीबमज्ञानमधिकं कथितं पूर्वकोविदैः । कर्मैव बन्धनं पुंसां ज्ञानं निर्बन्धनं स्मृतम् ।।६३
अतः पापाधिका नारी पुरुषो हीनकिल्बिषः ।।६४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलयुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

उस समय वह अभागिनी जयलक्ष्मी अपने पति के समीप जाकर अत्यन्त रुदन करने लगी, जिससे कि सभी लोग वहाँ पहुँच आये । महाधनी सोमदत्त ने अपनी पुत्री को नाकविहीन देखकर अपने जामाता को बाँध कर शीघ्र राजा के यहाँ पहुँचाया । राजा के आदेश से राज कर्मचारीगण उसे फाँसी पर चढ़ाना चाहते थे कि उसी समय वही कफल्ल नामक चोर ने वहाँ पहुँच कर राजा से समस्त घटना का वर्णन किया । उसकी बातें सत्य मानकर राजा ने उस महानीच जयलक्ष्मी को, विरूप करके उसकी दुर्गति की गई, गधे पर बैठाकर अपने नगर से निकाल कर बाघ आदि जानवरों से युक्त किसी जगंल में भेज दिया। अतः नृप ! मेरी बात सुनो मैना मेरे योग्य नहीं है। इतना कहकर वैताल ने नम्रता पूर्वक विक्रमादित्य से कहा—अधिक पाप करने वाली स्त्रियाँ होती हैं या पुरुष यह मुझे बताने की कृपा कीजिये ।५४-५९

विक्रम बोले—उस निर्गुण ब्रह्म की माया वर्ण स्वरूप और तम नपुंसक बताया गया है, अतः वही एक अव्यय ब्रह्म तीनों लिंगों वाला कहा जाता है। ब्रह्म का तेज अक्षीण और उसकी माया लिंगों (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग) का स्वरूप बतायी गयी है । उसी के द्वारा यह निखिल विश्व उत्पन्न हुआ है, अतः उस अम्बिका को नमस्कार है। नपुंसक स्त्री सदैव श्रेष्ठ होती हैं और स्त्री से अधिक पुरुष । व्याधिहीन पुरुष और नारी, अधिक कर्म करने वाली बतायी गई है । उसी प्रकार पण्डितों ने क्लीब (नपुंसक) में अज्ञान अधिक बताया है । पुरुष के लिए कर्म ही एक बन्धन और बन्धनहीन होना ज्ञान बताया गया है। अतः अधिक पाप कर्म करने वाली नारी और पाप कर्महीन पुरुष कहा गया है।६०-६४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य महाभाग श्रुत्वा वैताल एव सः । प्रसन्नात्मा वचः प्राह भूपतिं ज्ञानसम्पदम् ।।१
उज्जयिन्यां महाराज महाबल इति श्रुतः । चन्द्रवंशी नृपः प्राज्ञो वेदशास्त्रविशारदः ।।२
तस्य दूतो हरिर्दासः स्वामिकार्यकरः सदा । भक्तिमाला प्रिया तस्य साधुसेवापरायणा ।।३
तस्यां जाता रूपवती कन्या कमललोचना । महादेवीति विख्याता सर्वविद्याविशारदा ।।४
हरिदासं च सा प्राह शृणु तात वचो मम । मत्ताऽधिको नरो यो वै तस्मै मां तु प्रदस्व भोः ।।५
तथेत्युक्त्वा पिता राजन्राज्ञाहूतो गतः सभाम् । नत्वा तं नृपतिः प्राह हरिदास शृणुष्व भोः ।।६
तैलङ्गाधिपतिं गच्छ हरिश्चन्द्रं महीपतिम् । तस्य क्षेमं तथा ज्ञात्वा मां निवेदय मा चिरम् ।।७
इति श्रुत्वा द्विजः प्रागाद्धरिश्चन्द्रं महामतिम् । कुशलं वर्णयामास महाबलनृपस्य वै ।।८
श्रुत्वा प्रसन्नहृदयो हरिश्चन्द्रो महीपतिः । श्वशुरस्तस्य नृपतेः स भूयो हर्षमागतः ।।९
हरिदासं स पप्रच्छ कलेरागमनं कदा । इत्युक्तः स तु तं प्राह न्यूहश्च भविताधिकम् ।।१०
यदा राज्यं कृतं तेन कलेरागमनं तदा । ब्रह्मणोऽस्य मुखाज्जात ॐकारः सत्यपूजितः ।।११

अध्याय ५

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुश्रेष्ठ, महाभाग ! प्रसन्न होकर उस वैताल ने ज्ञान-निधि उस राजा विक्रमादित्य से कहा—महाराज ! उज्जयिनी पुरी में चन्द्रवंश में उत्पन्न महाबल नामक एक राजा राज कर रहा था, जो वेद शास्त्रों में निष्णात था । हरिदास नामक उसका सेवक सदैद अपने स्वामी का कार्य करता था । भक्तिमाला उसकी पत्नी का नाम था, जो सदैव साधु-सेवा में निरत रहती थी । उस पत्नी से महादेवी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जो कमल की भाँति नेत्रवाली, रूपवती, समस्त विद्याओं में निपुण थी । उसने हरिदास के कहा—तात ! मेरी एक बात सुनो ! मुझसे अधिक गुण सम्पन्न जो पुरुष हो, उसे ही मुझे समर्पित करना । पिता ने स्वीकार किया, किन्तु उसी समय राजा ने उन्हें बुलवाया, वे राजसभा में चले गये। राजा ने उन्हें प्रणाम करके कहा—विप्र हरिदास ! तैलङ्गाधीश्वर राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ जाकर उनका कुशल क्षेम जानकर शीघ्र मुझे बताओ।१-७। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ पहुँच कर राजा महाबल का कुशल मंगल वर्णन किया, जिसे सुनकर राजा हरिश्चन्द्र, जो महाबल राजा के श्वसुर थे, बार-बार हर्ष में निमग्न होने लगे। तदुपरांत उन्होंने हरिदास से पूछा कि—कलि का आगमन कब होगा ? हरिदास ने कहा—न्यूह के समय में। जिस समय वे राजसिंहासन पर स्थित होंगे उस समय कलि का आगमन होगा कलि के समय में ब्रह्मा के मुख से निःसृत ओंकार ही सत्यपूजित

द्वितीयास्यान्च विविधा भाषा लोकविमोहिनी । जाता कलेर्हितार्थाय यमलोकहितैषिणी ।।१२
यदा धर्मं च वेदोक्तं विपरीतं हि दृश्यते । कलिराज्यं तदा ज्ञेयं म्लेच्छा यस्य प्रियाः स्मृताः ।।१३
कलिनाऽधर्ममित्रेण सर्वे देवा निराकृताः । पापस्यैव मृषा भार्या दुःखं तत्तनयः स्मृतः ।।१४
दुर्गतिस्तस्य चार्धांगी गेहे गेहे तदा भवेत् । क्रोधवश्याः नृपाः सर्वे ब्राह्मणाः कामकिङ्कराः ।।१५
लोभवश्यास्तु धनिनो महत्त्वं शूद्रका गताः । नार्यो लज्जाविहीनाश्च किङ्कराः स्वामिघातकाः ।।१६
निष्फला तु मही जाता कलौ प्राप्ते हि दृश्यते । ये हरेः शरणं प्राप्तास्ते सर्वे मुदिताः कलौ ।।१७
इति श्रुत्वा हरिश्चन्द्रो दत्त्वा तस्मै मुदक्षिणाम् । स्वगेहं प्राप्तवान्राजा विप्रस्तु शिबिरं ययौ ।।१८
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो बुद्धिकोविदः । स्वविद्यां दर्शयामास हरिदासाय धीमते ।।१९
विमानं शीघ्रगं नाम देव्या दत्तं महोत्तमम् । मन्त्रजापात्समुद्भूतं कामजं विस्मयप्रदम् ।।२०
तस्मिन्ददर्श कन्यार्थे तदा विप्रो विमोहितः । वारित्वा तं स्वकन्यार्थं ततः स्वपुरमागतः ।।२१
हरिदासस्य तनयो मुकुन्दो नाम कोविदः । पठित्वा स्वगुरुं प्राह वृणीष्व गुरुदक्षिणाम् ।।२२
गुरुराह च शिष्यं तं शृणु वाचं मुकुन्द मे । दापय स्वस्य भगिनीं मत्पुत्राय च धीमते ।।२३
तथेत्युक्त्वा मुकुन्दस्तु स्वगेहं शीघ्रमाययौ । तस्मिन्काले महादेवी द्रौणिशिष्यं द्विजं शुभम् ।।२४
वामनं वरयामास तं विप्रं शब्दवेधिनम् । दक्षिणादिभिरभ्यर्च्य ताम्बूलेन विधानतः ।।२५

और (संस्कृत मिश्र) दूसरी भाषा प्रधान होगी, जो अपने अनेक रूपों से लोगों को मुग्ध करेगी । कलि का हित उसी से सम्पन्न होगा, क्योंकि वह यम-लोक का भी हित चाहेगी । जिस समय वेदोक्त धर्म विपरीत दिखायी दे, उसे कलिराज्य जानना चाहिए, क्योंकि म्लेच्छ ही उसके प्रिय होंगे, ऐसा कहा गया है । अधर्म मित्र की सहायता से कलि में समस्त देववृन्द न रहने के समान रहेंगे । पाप की मृषा (झूठ) नामक भार्या, दुःख नामक पुत्र, और दुर्गति नामक अर्द्धांगिनी प्रत्येक गृहों में निवास करेंगी । क्रोध के वशीभूत सभी राजा, काम के सेवक समस्त ब्राह्मण, लोभ के वशीभूत धनिकवर्ग और महत्त्व शूद्रों को प्राप्त होगा । स्त्रियाँ लज्जाहीन, सेवक स्वामी के घातक होंगे । कलि के समय में पृथिवी प्रायः फलहीन होगी । उस समय जो एक मात्र भगवान् की शरण में रहेगा वही प्रसन्न दिखायी देगा ।८-१७। इसे सुनकर राजा हरिश्चन्द्र उस ब्राह्मण को मन इच्छित दक्षिणा प्रदान करके अपने महल चले गये और ब्राह्मण अपने शिविर में आये । उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक ब्राह्मण ने उस विद्वान् हरिदास को अपनी विद्या (का चमत्कार) दिखाना आरम्भ किया—शीघ्रगामी नामक उत्तम विमान को जिसे देवी ने प्रदान किया था, मंत्रजप कर प्रकट किया । वह कामप्रद एवं आश्चर्यप्रद भी था । उस पर उस ब्राह्मण को बैठाकर इस भाँति दिखाया था, जिससे वह अपनी कन्या के निमित्त उस पर मुग्ध हो गया । पश्चात् अपनी कन्या के लिए उसका वरण करके वह अपनी पुरी को लौट आया । हरिदास का मुकुंद नामक पुत्र, अध्ययन के उपरांत अपने गुरुजी से गुरुदक्षिणा देने के लिए पूछा । गुरुजी ने अपने शिष्य से कहा—मुकुंद मेरी बात सुनो ! मेरे इस विद्वान् पुत्र के लिए अपनी भगिनी को दिला दो । इसे स्वीकार करके मुकुंद अपने घर आये । उसी समय महादेवी ने वामन नामक एक ब्राह्मण को, जो द्रोणाचार्य का शिष्य एवं शब्दवेधी वाण चलाने में निपुण था, दक्षिणा समेत उसकी पूजा करके ताम्बूल द्वारा उसका वरण कर

त्रयस्ते ब्राह्मणाः प्राप्ताः सुतार्थे गुणकोविदाः । एतस्मिन्नन्तरे कामी राक्षसो दैवमोहितः ।।२६
महादेवीं जहाराशु प्राप्तो विन्ध्याचले गिरौ । तदा ते दुःखिनो भूत्वा विलेपुः कामपीडिताः ।।२७
धीमान्नाम द्विजो विद्वांस्तान्प्राह गणकोत्तमः । विन्ध्याचले गिरौ बाला चास्ते क्रव्यादवश्यगा ।।२८
स्वविमाने समारोप्य तौ द्विजौ बुद्धिकोविदः । विन्ध्याचले गिरौ प्राप्तः शब्दवेधी तदा धनुः[१] ।।२९
समारोप्य शरेणैव जघानाशु स राक्षसम् । कन्यां गृहीत्वा ते जग्मुरुज्जयिन्यां विमानगाः ।।३०
मिथो विवादवन्तस्ते दृष्ट्वा कन्यां स्मरानुगाः । कस्मै योग्या भवेत्कन्या भूप मे कृपया वद ।।३१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूपतिः । प्रश्रयावनतः प्राह वैतालं रुद्रकिङ्करम् ।।३२
विदित्वा योऽददत्कन्यां पितृतुल्यो द्विजो हि सः । येन प्राप्ता विमानेन स तु तद्भ्रातृकः स्मृतः ।।३३
हत्वा यो राक्षसं वीरं कन्यायोग्यो हि सोऽभवत् ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

लिया ।१८-२५। जिस समय वे तीनों गुण-निपुण ब्राह्मण वहाँ विवाह के लिए उपस्थित हुए, उस समय दुर्भाग्य वश किसी राक्षस ने मोहित होकर उस कन्या का अपहरण करके विंध्याचल पर्वत को प्रस्थान किया। उपरांत वे विप्रवृन्द कामपीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होने के नाते विलाप करने लगे। उस समय धीमान् नामक एक विद्वान् ज्योतिषी ने उन लोगों से कहा—विंध्याचल पर्वत पर एक राक्षस के अधीन वह स्त्री वर्तमान है। इसे सुनकर बुद्धिकोविद ने उन दोनों ब्राह्मणों को भी अपने विमान पर बैठाकर विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचाया। वहाँ उस धनुर्धारी ने धनुष पर वाण चढ़ाकर उस राक्षस का निधन कर दिया। पश्चात् वे सब कन्या समेत विमान द्वारा उज्जयिनी पहुँच गये। वहाँ काम-पीड़ित होकर वे तीनों विप्र आपस में उस स्त्री के निमित्त विवाद करने लगे। राजन्! कृपया आप यह बताइये कि वह कन्या किसकी स्त्री होने के योग्य है ।२६-३१

सूत जी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रम ने नम्रतापूर्वक उस रुद्रसेवक वैताल से कहा—समस्त वृतान्त जानकर जो उस कन्या से कहा वह उसके पिता के समान एवं जिसके विमान द्वारा वह प्राप्त हुई वह भ्राता के समान हुआ। अतः जो राक्षस का वध करके उसके लिए इच्छुक था वही कन्या के साथ संबंध स्थापित करने के योग्य हुआ ।३२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

---

१. श्लोकद्वयमेकान्वयि ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनराह स वैतालः शृणु राजन्कथामिमाम् । ग्रामे धर्मपुरे रम्ये नानाजननिषेविते ।।१
तत्राभवन्महीपालो धर्मशीलो महोत्तमः । लज्जादेवी च महिषी तस्य भूपस्य भूपते ।।२
अन्धको नाम तन्मन्त्री न्यायशास्त्रविशारदः । कियता चैव कालेन देवीमन्दिरमुत्तमम् ।।३
धर्मशीलेन रचितं तत्र दुर्गा प्रतिष्ठिता । अपत्यार्थे भूपतिना कृतस्तत्र महोत्सवः ।।४
अर्द्धरात्रे महागौरी नृपं प्राह वृणीष्व भोः । श्रुत्वामृतमयं वाक्यं धर्मशीलो नृपोत्तमः ।।५
स्तुतिं चकार नम्रात्मा येन दुर्गा प्रसीदति ।।

धर्मशील उवाच

एका तु प्रकृतिर्नित्या सर्ववर्णस्वरूपिणी ।।६
सा त्वं भगवती साक्षात्त्वया सर्वमिदं ततम् । त्वदाज्ञया सुरश्रेष्ठो रचित्वा लोकमुत्तमम् ।।७
महालक्ष्म्या त्वया सार्द्धं बुभुजे निर्मलं सुखम् । त्वद्भक्त्या भगवान्विष्णुस्त्रैलोक्यं ब्रह्मनिर्मितम् ।।८
पालयंश्च महालक्ष्म्या त्वया सार्द्धं सनातनि । त्वद्बलेन महादेवि त्रैलोक्यं विष्णुपालितम् ।।९

अध्याय ६

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—पुनः वैताल ने कहा—राजन् ! इस कथा को सुनो ! उस धर्मपुर गाँव में जो रमणीक और अनेक जाति के मनुष्यों से सुसेवित था, महान् एवं उत्तम धर्मशील नामक राजा राज कर रहा था । भूपते ! उसकी प्रधान रानी का नाम लज्जा देवी, एवं मंत्री का नाम अंधक था, न्याय शास्त्र का निष्णात विद्वान् था । कुछ दिन के उपरांत राजा धर्मशील ने अपने सन्तानार्थ एक उत्तम मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें भी दुर्गा जी की प्रतिष्ठा कराया । पश्चात् उस राजा ने वहाँ महान् उत्सव भी किया । उस दिन आधीरात के समय गौरी जी ने राजा से कहा कि—वरदान की याचना करो । इस अमृत वाणी को सुनकर राजा धर्मशील ने नम्रतापूर्वक इस प्रकार की स्तुति करना आरम्भ किया, जिससे दुर्गा जी प्रसन्न होती हैं ।१-५

धर्मशील बोले—जो प्रकृति एक और नित्य है, समय पर सव वर्णों की स्वरूपिणी हो जाती है । साक्षात् भगवती वही आप हैं जिसने इस विश्व को विस्तृत किया । आप की ही आज्ञा शिरोधार्य कर श्रेष्ठ देवगण उत्तमलोक की रचना करके तुम्हारे महालक्ष्मी के साथ निर्मल सुख का उपभोग करते हैं । सनातनि ! तुम्हारी भक्ति द्वारा विष्णु ब्रह्मरचित तीनों लोकों का तुम महालक्ष्मी के साथ ही पालन करते हैं । महादेवि ! तुम्हारे बल से (शिव जी) विष्णु द्वारा पालन-पोषण किये गये इस त्रैलोक्य को तुम्ही

महाकाल्या त्वया सार्द्धं भस्म कृत्वा विराजते । सर्वे देवास्तथा दैत्याः पितरो मनुजाः खगाः ।।१०
त्वल्लीलया च ते जाता जगन्मातर्नमोऽस्तु ते । इत्युक्तवन्तं नृपतिं वागुवाचाशरीरिणी ।।११
महाबलो महावीर्यस्तनयस्ते भविष्यति । तव स्तुत्या प्रसन्नाऽहं दास्यामि विविधं फलम् ।।१२
इति श्रुत्वा स नृपतिः स्वगेहं प्राप्य निर्भयः । राज्ञ्यै निवेदयामास देवीवचनमुत्तमम् ।।१३
ततः प्रभृति राजेन्द्र मूर्तौ जाता स्वयं किल । एकस्मिन्दिवसे राजन्रजकः कलिभोजनः ।।१४
काशीदासेन सहितो ग्रामं धर्मपुरं गतः । तत्र दृष्ट्वा शुभां कन्यां कामाङ्गीं नाम विश्रुताम् ।।१५
पित्रान्वितां राजमार्गे गच्छन्तीं श्रमपीडिताम् । मुमोह कामवेगेन रजकः कलिभोजनः ।।१६
कामान्धश्चण्डिकां प्राह जगन्मातः सनातनि । यदि मे भविता सुभ्रूस्तर्हि दास्यामि ते शिरः ।।१७
जातियोग्या ममैवास्ति रजकस्य सुता शुभा । इति श्रुत्वा तु सा देवी वचनं रजकस्य दै ।।१८
मोहयित्वा च पितरं तस्याः पाणिग्रहः कृतः । स सुतां कामिनीं प्राप्य प्रसन्नात्मा गृहं ययौ ।।१९
भुक्त्वा स विविधं भोगं तया सार्द्धं सुखप्रदम् । वर्षान्तरे शिरो देव्यै गत्वा शीघ्रं समर्पयत् ।।२०
काशिदासस्तु तच्छ्रुत्वा स्नेहेन त्वरितोऽगमत् । स्वशिरो दत्तवान्देव्यै कामाङ्गी पतिशोकतः ।।२१
अर्पयित्वा शिरो देव्यै देवीरूपत्वमागता । तदा प्रसन्ना सा चण्डी त्रीनुज्जीव्याब्रवीच्च तान् ।।२२
वरं वरयतामद्य यो यः कामो ह्यभीप्सितः । काशिदासस्तु तां प्राह कामाङ्गीं मां समर्पय ।।२३

महाकाली के साथ भस्म करके सुशोभित होती हो । समस्त देव, दैत्य, पितृगण, मनुष्य एवं पक्षी तुम्हारी ही लीला द्वारा उत्पन्न हुए हैं, अतः जगन्मातः ! तुम्हें नमस्कार है । इस भाँति स्तुति करने वाले उस राजा से आकाशवाणी द्वारा उन्होंने कहा—।६-११। महाबलवान् एवं महापराक्रमी पुत्र तुम्हारे यहाँ उत्पन्न होगा । तथा तुम्हारी स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ अतः तुम्हें अनेक भाँति के फल प्रदान करूंगी । ऐसा सुनकर राजा ने अपने महल में पहुँचकर अपनी रानी से देवी की सभी बातें कह सुनाया । पश्चात् उसी दिन से उन्होंने उस राजेन्द्र के शरीर में निवास करना भी आरम्भ किया । राजन् ! एक दिन कलि भोजन नामक एक रजक (धोबी) काशीदास नामक एक व्यक्ति के साथ धर्मपुर नामक किसी गाँव में गया था । उस गाँव में कामाङ्गी नामक एक कन्या को देखकर, जो अपने पिता के साथ उसी राजमार्ग (सड़क) से भ्रान्त होकर जा रही थी, रजक कलि भोजन काम के वेग से उत्पन्न होने के नाते उस पर मोहित हो गया । पश्चात् कामांध होकर उसने चण्डिका देवी से कहा—हे सनातनि, जगन्मातः ! यदि यह सुन्दरी मेरी (स्त्री) होना स्वीकार कर लें तो मैं तुम्हें अपना शिर अर्पित कर दूँगा । और वह मेरी ही जाति के किसी रजक की पुत्री है (इसीलिए मैं याचना कर रहा हूँ) । उस रजक की ऐसी बातें सुनकर देवी जी ने उसके पिता को मोहित करके उसका पाणिग्रहण उसके साथ सुसम्पन्न करा दिया। पश्चात् वह रजक उस कामिनी स्त्री को साथ लेकर अपने घर चला गया। उसके साथ अनेक प्रकार के सुखप्रद सुखों का उपभोग करके उसने उसी वर्ष के अंत समय में देवी के लिए अपना शिर अर्पित कर दिया। काशीदास ने भी उसके स्नेह वश शीघ्र वहाँ जाकर देवी को अपना शिर प्रदान किया। अनन्तर वह कामाङ्गी भी पति के लिए शोक करती हुई वहाँ जाकर देवी को अपना शिर अर्पित करके देवी स्वरूप की प्राप्ति की। उस समय चंडी देवी ने प्रसन्न होकर तीनों को जीवित कर उन लोगों से कहा—जिसकी जो इच्छा हो, वर की याचना करे। काशीदास ने कहा मुझे कामाङ्गी को दे दीजिये।१२-२३। किन्तु उस कामाङ्गी ने

कामाङ्गी सा तु तां प्राह स्वपतिं मां समर्पय । कलिभोजन एवासौ देवीं प्राह प्रसन्नधीः ॥२४
मित्राङ्गं सुन्दरं मह्यं देहि मातर्नमो नमः । तेषां वाचस्तदा श्रुत्वा सा दुर्गा मौनमास्थिता ॥
यथाकामं दत्तवती वरं दारसुरूपिणी ॥२५

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपं प्राह विहस्य भोः ॥२६
किं कृतं च तया देव्या तेषामर्थे वदस्व मे । इत्युक्तः स तु भूपालो वैतालमिदमब्रवीत् ॥२७
कपालमुत्तमं देहे तया च्छिन्नं द्वयोस्तदा । विपरीतं कृतं मात्रा वरं स्वं स्वं समाप्नुयुः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

तस्मिन्काले स वैतालो भृगुवर्यः प्रसन्नधीः । राजानमुत्तमां गाथां वर्णयामास विश्रुताम् ॥१
चम्पापुरी च विख्याता चम्पकेशो महीपतिः । तत्रास्ते बलवान्धन्वी महिषी तत्सुलोचना ॥२

कहा कि मुझे मेरे पति को समर्पित कीजिये और कलिभोजन ने प्रसन्न होकर देवी से कहा—मातः मित्र के इस सुन्दर अंग को मुझे देने की कृपा कीजिये, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । उन लोगों की ऐसी बातें सुनकर दुर्गा देवी ने उस समय मौन धारण कर लिया । किन्तु पश्चात् वर भी प्रदान किया ।२४-२५

सूत जी बोले—इतना कहकर वैताल ने हँसकर राजा से कहा—देवी जी ने उनकी इच्छा कैसे पूरी की, उसे विवेचन पूर्वक मुझे बताने की कृपा कीजिये । इस प्रकार कहने पर राजा ने वैताल से कहा—देवी जी ने उन दोनों की शरीर से उनके उत्तम शिर को काट लिया । इस प्रकार देवी जी ने तो विपरीत किया, किन्तु उन्हें अपने वरदान की प्राप्ति हो गई ।२६-२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियगुीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस समय वह वैताल प्रसन्न होकर राजा से एक उत्तम गाथा का वर्णन करने लगा । चम्पापुरी में चम्प नामक राजा, जो बलवान एवं धनुर्धारी था, राज कर रहा था । उसकी प्रधान रानी का नाम सुलोचना था । उनके त्रिलोक सुन्दरी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, चन्द्र के समान

त्रिलोकसुन्दरी नाम कन्या तस्यामजायत । वदनं चन्द्रवद्यस्या भ्रुवौ चापसमे स्मृते ।।३
मृगाक्षी कोकिलरवा कोमलाङ्गी महोत्तमा । देवैर्मनोवृता बाला किमन्यैर्मानुषैर्नृप ।।४
तस्याः स्वयम्वरो जातो नृपा बहुविधास्तदा । तस्या योगेन सम्प्राप्ता ये भूपा भुवि विश्रुताः ।।५
इन्द्रो यमः कुबेरश्च वरुणो विबुधोत्तमः । कृत्वा नरमयं रूपं तदर्थे समुपागताः ।।६
चम्पकेशमिदं प्राह शृणु राजन्वचो मम । सर्वशास्त्रेषु निपुणं रूपवन्तं मनोरमम् ।।
इन्द्रदत्तं च मां विद्धि स्वसुतां मे समर्पय ।।७
द्वितीयस्तु तदा प्राह धर्मदत्तं मनोरमम् । धनुर्वेदेषु निपुणं स्वकन्यां दातुमर्हसि ।।८
तृतीयश्चाह भो राजन्धनपालाय शोभिने । सर्वजीवस्य भाषाणां ज्ञायिने गुणरूपिणे ।।
मह्यं च स्वसुतां शीघ्रं समर्पय सुखी भव ।।९
चतुर्थश्चाह भो राजन्सर्वकलासु कोविदः । पञ्चरत्नसमुद्योगी प्रत्यहं भूपते ह्यहम् ।।१०
पुण्यार्थमेकरत्नं च होमार्थं द्वितियं वसु । आत्मार्थं तृतीयं रत्नं[1] पत्न्यर्थे तुरियं वसु ।।११
शेषं सुभोजनार्थं च रत्नं नित्यं मयाहृतम् । ईदृग्विधं मां पुरुषं स्वसुतां दातुमर्हसि ।।१२
इति श्रुत्वा वचस्तेषां मोहितो नृपतिस्तदा । स्वसुतां प्राह धर्मात्मा कस्मै दास्यामि कन्यके ।।१३
सा देवी तु वचः श्रुत्वा व्रीडिता दैवमोहिता । नोत्तरं च ददौ तस्मै स्वपित्रे धर्मशालिनी ।।१४
इत्युक्त्वा स तु वैतालो विहस्योवाच भूपतिम् । कस्मै योग्या भवेत्कन्या रूपयौवनशालिनी ।।१५

जिसका मुख, धनुष की भाँति भौहें, मृग के समान नेत्र एवं कोकिल की भाँति वाणी थी। नृप उस परम सुन्दरी कोमलाङ्गी को प्राप्त करने के लिए जब देवगण इच्छुक थे, तो मनुष्यों को क्या कहा जा सकता है। उसका स्वयम्बर हुआ, जिसमें पृथिवी के ख्यातिप्राप्त अनेक राजवृन्द उसके लिए लालायित होकर आये थे। देवश्रेष्ठ इन्द्र, यम, कुबेर, और वरुणदेव भी मनुष्य वेष में उसकी प्राप्ति के लिए वहाँ उपस्थित थे। एक ने चम्पकेश से कहा—राजन् ! मेरी बात सुनो ! समस्त शास्त्रों में निपुण, रूपवान्, एवं सौन्दर्यपूर्ण मैं हूँ, मेरा नाम इन्द्रदत्त है। ऐसा जानकर मुझे अपनी कन्या प्रदान कीजिये। दूसरे ने कहा—मेरा नाम धर्मदत्त है, मैं मनोहर एवं धनुर्वेद में कुशल हूँ अतः मुझे अपनी कन्या देने की कृपा कीजिये। तीसरे ने कहा—राजन् ! मुझ धनपाल के लिए जो समस्त जीवों की भाषा का ज्ञाता, और गुणी है, शीघ्र अपनी कन्या अर्पित करके सुख का अनुभव कीजिये।१-९। चौथे ने कहा—राजन् ! मैं समस्त कला का विद्वान् हूँ, तथा प्रतिदिन पाँच रत्न की प्राप्ति के लिए उद्योग करता हूँ। उन्हें प्राप्तकर पहले रत्न को पुण्यार्थ दूसरे को हवन के निमित्त, तीसरा अपने लिए, चौथा पत्नी के लिए और पाँचवा क्लीब के भोजनार्थ प्रदान करता हूँ। अतः मुझ जैसे पुरुष को आप अपनी कन्या प्रदान करें। ऐसी बातें सुनकर राजा मोहित हो गया। उस समय उस धर्मात्मा ने अपनी कन्या से कहा—पुत्रि ! मैं तुम्हें किसे अर्पित करूँ ? वह देवी उस समय उनकी बात सुनकर दैवयोग से लज्जा के कारण अपने उस धार्मिक पिता को कुछ उत्तर न दे सकी। इतना कहकर उस वैताल ने हँसकर राजा से कहा—रूप, और यौवन सम्पन्न वह कन्या किसके योग्य हुई ?

---

१. द्वितीयं तृतीयं तुरियं वसु' इत्यादावीकारह्रस्व आर्षः।

सूत उवाच

इत्युक्तः स तु भूपालो वचनं तं समब्रवीत् । धर्मदत्ताय सा कन्या योग्या भवति रूपिणी ॥१६
सर्वशास्त्रेषु निपुणः स द्विजो वर्णतः स्मृतः । भाषावेत्ता तु वणिजो धनधान्यप्रसारकः ॥१७
कलाज्ञः स तु शूद्रो हि धनुर्वेदी स भूपतिः । सवर्णाय च वैताल सदा योग्या हि कन्यका ॥
अतो विवाहिता बाला धर्मदत्ताय शीलिने ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । विदेहदेशे भूपाल नगरी मिथिलावती ॥१
गुणाधिपस्तत्र राजा धनधान्यसमन्वितः । चिरंदेव इति ख्यातो राजन्यः कश्चनागतः ॥२
वृत्त्यर्थं मिथिलादेशे तत्र वासं चकार सः । वर्षान्ते भूपतिः सोऽपि चतुरङ्गबलान्वितः ॥३
मृगयार्थे वनं प्राप्तस्तत्र शार्दूलमुत्तमम् । दृष्ट्वा तं चावधीद्राजा क्रोधताम्रेक्षणो वने ॥४
व्याघ्रमार्गेण भूपालो वनान्तरमुपाययौ । चिरन्देवस्तु तत्पश्चाद्गतः स गहने वने ॥५

सूत जी बोले—ऐसा कहने पर राजा ने वैताल से कहा—वह रूपवती कन्या धर्मदत्त के योग्य हुई क्योंकि वह सम्पूर्ण शास्त्र में निपुण और जन्मना ब्राह्मण जाति का था । वह भाषावेत्ता तथा अपने धन धान्य की वृद्धि करने वाला वैश्य, कला-निपुण वह शूद्र, और धनुर्वेदी वह राजा क्षत्रिय था । अतः वैताल ! कन्या सदैव अपनी जाति के योग्य होती है । इसीलिए शीलसम्पन्न उस धर्मदत्त के साथ उस कन्या का विवाह संस्कार किया गया ।१०-१८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इसे सुनकर वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! विदेह प्रदेश में मिथिला नामक नगरी है, धन-धान्य सम्पन्न गुणाधिप नामक राजा वहाँ राज कर रहा था । सेवावृत्ति के लिए चिरंदेव नामक एक राजपुत्र मिथिला पुरी में आकर रहने लगा । एक वर्ष के पश्चात् राजा गुणाधिप ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना समेत आखेट के लिए जंगल में जाकर एक बाघ का शिकार किया । उसी क्रोध के आवेश में राजा उस बाघ के मार्ग से किसी जंगल में पहुँच गये । चिरंदेव भी उनके पश्चात् उसी गहन वन

क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापपीडितः । चिरन्देवमुवाचाशु भोजनं देहि मेऽद्य भोः ॥६
इति श्रुत्वा स राजन्यो हत्वा हरिणमुत्तमम् । संस्कृत्य प्रददौ राज्ञे तन्मांसं भूपतिप्रियम् ॥७
तुष्टो भूपस्तदा प्राह वरं वरय सत्तम । वाञ्छितं ते ददाम्याशु स ह्योवाच महीपतिम् ॥८
त्वया सहस्रमुद्राश्च खादिता मम भूपते । गृहमानीय भूपाल ताः समर्पय मा चिरम् ॥९
शतमुद्रास्तु मासान्ते मह्यं देहि कटुम्बिने । तथेत्युक्त्वा स नृपतिः स्वगेहं शीघ्रमाययौ ॥१०
एकस्मिन्दिवसे राजन्स च राजा गुणाधिपः । चिरंदेवं स्वभृत्यं च प्रेषयामास सागरे ॥११
स गत्वा सागरतटे देवीमूर्तिं ददर्श ह । नाम्ना कुसुमदां देवीं मार्कण्डेयस्थलस्थिताम् ॥१२
गन्धर्वतनयां सुभ्रूं पूजयित्वा प्रसन्नधीः । प्राञ्जलिः पुरस्तस्थौ तदा देवी समागता ॥१३
वरं वरय तं प्राह चिरंदेवस्तु चाब्रवीत् । पाणिं गृहाण मे सुभ्रूस्त्वद्रूपेण विमोहितः ॥१४
इति श्रुत्वा तु सा देवी विहस्योवाच कामिनम् । अद्य स्नानं विधेहि त्वं मत्कुण्ठे देवनिर्मिते ॥१५
तथेत्युक्त्वा गतस्तोये प्लावितो मिथिलां ययौ । स स्थितो भूपतिं प्राह कारणंविस्मयप्रदम् ॥१६
गुणाधिपस्तु तच्छ्रुत्वा स्वभृत्येन समन्वितः । प्राप्तवान्मन्दिरे देव्याः सा भूयः प्राह पुण्यदा ॥१७
गान्धर्वेण विवाहेन मां गृहाण गुणाधिप । इति श्रुत्वा नृपः प्राह यदि देवि वचो मम ॥१८
पुण्यदे त्वं गृहणाद्य तर्हि त्वां सम्भजाम्यहम् । तथेति मत्वा तं प्राह सत्वं कार्यं निवेदय ॥१९
स होवाच शृणु त्वं भो मम भृत्यं चिरं सुरम् । भज त्वं चपलापाङ्गि देवि सत्यं वचः कुरु ॥२०

में पहुँच गये । क्षुधा के नाते राजा का कंठ सूख गया था, श्रम और संताप से पीडित होकर राजा ने चिरंदेव से कहा—आज मुझे शीघ्र भोजन दीजिये ।१-६। इसे सुनकर उस राजा के पुत्र ने उत्तम हरिण का शिकार करके उसका मांस पकाकर राजा को अर्पित किया । उस प्रियमांस के भोजन से संतुष्ट होकर राजा ने उससे कहा—श्रेष्ठ ! इच्छित वर की याचना करो । उसने राजा से कहा—तुम्हारे यहाँ अवैतनिक कार्य करते हुए मैं (एक सेठ की) सहस्र मुद्रा खा गया हूँ । अतः राजन् ! घर बुलवाकर उसे शीघ्र दे दीजिये और परिवार के पोषणार्थ मुझे सौ मुद्रा का मासिक वेतन प्रदान करने की कृपा करते रहें । राजा उसे स्वीकार करके सबके समेत अपने घर चले आये । राजन् ! एक दिन राजा गुणाधिप ने अपने सेवक चिरंदेव को सागर के समीप भेजा । उन्होंने सागर के तट पर पहुँचकर कुसुमदा नामक एक देवी की मूर्ति को देखा, जो मार्कंडेय के स्थल पर सुशोभित हो रही थी । वह प्रसन्न होकर उस सुन्दरी गन्धर्व पुत्री की पूजा करके अंजलि बाँध कर सामने खड़ा हुआ कि देवी जी ने आकर कहा—वर की याचना करो । चिरंदेव ने कहा—सुन्दरि ! मैं रूप पर मुग्ध हूँ, अतः मेरा हाथ ग्रहण करो । यह सुनकर उस देवी ने हँसकर उस कामीपुरुष से कहा—चिरंदेव ! देवों द्वारा निर्मित इस मेरे कुण्ड में आज स्नान करो ।७-१५। उसने स्वीकार कर जल के भीतर ज्यों डुबकी लगाया कि अपने को मिथिला में स्थित देखा । वहाँ रहकर उस विस्मयदायक वृतान्त को उसने राजा से कहा—राजा गुणाधिप जो उसे सुनकर उसके समेत उस देवी के मन्दिर में पहुँच गया । देवी ने राजा से कहा—गुणाधिप ! गांधर्व विवाह द्वारा मुझे स्वीकार करो ! उसे सुनकर राजा ने कहा—देवि ! पुण्यदे ! यदि तुम मेरी एक बात मानती हो तो मैं तुम्हें स्वीकार करने को तैयार हूँ । देवी ने उसे स्वीकार करके कहा—शीघ्र उस कार्य का निवेदन कीजिये । उन्होंने कहा—चपल नेत्रे ! चिरंदेव नामक मेरे सेवक को स्वीकार कर अपनाओ । देवि ! मेरी इस बात को

प्रीडिता तु कथां कृत्वा भूपतिं प्राह कामिनी । मां भजस्व दयासिन्धो कामिनीं शक्रचोदिताम् ॥२१
चिरंदेवं तु सम्प्राप्य कामान्धा त्वां समागता । पुष्पदन्तस्य तनया गन्धर्वस्य शुभानना ॥
शापिता देवदेवेन नरभोगकरी ह्यहम् ॥२२
इति श्रुत्वा स भूपालो धर्मात्मा शीलविग्रहः । कथं भजाम्यहं सुभ्रूः स्नुषामिव सुधर्मिणीम् ॥२३
चिरंदेवस्तु राजन्यो मत्पुत्र इव वर्तते । तस्य त्वं भोगिनी नारी शोभने भव साम्प्रतम् ॥२४
लज्जिता सा तदा देवी स्नुषेव च वदर्त वै ॥२५
इत्युक्त्वा भूपतिं प्राह वैतालो रुद्रकिङ्कर । सत्यं धर्मश्च कस्यैव जातस्तन्मे वदस्व भोः ॥२६

सूत उवाच

भूपतिस्तं विहस्याह चिरन्देवस्य जायते । सत्यं धर्मश्च वैताल शृणु तत्कारणं शुभम् ॥२७
नृपाणां परमो धर्मः सर्वोपकरणं स्मृतः । कृतोपकारभृत्यस्य तेन तत्किं हि सत्यता ॥२८
भृत्येन च कृतं कर्म तच्छृणुष्व वदाम्यहम् । विना वृत्तिं स्थितो गेहे भूपतेर्गुणशालिनः ॥
सेवावृत्तिः कृता सर्वा यथान्यैर्न नरैः कृता ॥२९
पश्चाद्भूपतिना ज्ञातः सङ्कटे बृहदागते । चिरन्देवस्तु तस्माच्च कारणादधिको मतः ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाष्टमोऽध्यायः ।८

अवश्य सत्य करो । उस कामिनी ने लज्जित होकर राजा से कहा—दया सागर ! इन्द्र द्वारा प्रेषित मुझ कामिनी को अपना लो क्योंकि गन्धर्व पुष्पदन्त की मैं पुत्री हूँ । चिरंदेव के द्वारा मैं काम विह्वल होकर तुम्हारे पास आई हूँ । मुझ कल्याणमुखी को इन्द्र ने शाप प्रदान किया है कि 'तुम्हारा उपभोग मनुष्य करेंगे ।' इसे सुनकर शीलस्वरूप उस धर्मात्मा राजा ने कहा—सुभ्रू ! तुम ऐसी सुधर्मिणी को मैं कैसे अपना सकता हूँ, क्योंकि तुम मेरी स्नुषा (पुत्र-वधू) के समान हो और राजकुमार चिरंदेव मेरे पुत्र के समान । शोभने ! तुम उसी की उपभोग्य हो, तुम इसका विचार करो । पश्चात् वह लज्जित होती हुई उनकी पुत्र-वधू की भाँति स्थित हुई । इतना कहकर रुद्र-सेवक उस वैताल ने राजा (विक्रम) से कहा—सत्यतः एवं धर्मानुसार वह किसकी हुई मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१६-२६

सूत जी बोले—राजा ने हँसकर कहा—वैताल ! सत्यतः, धर्मतः वह चिरंदेव की हुई, क्योंकि मैं उस शुभ कारण को बता रहा हूँ, सुनो ! सभी लोगों का उपकार करना राजा का परमधर्म बताया गया है । अतः राजा ने अपने सेवक का उपकार किया है इससे उनकी कोई सत्यता नहीं कही जा सकती । किन्तु सेवक ने जो कुछ किया है, उसे भी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! उस गुणशाली राजा के गृह में वह सेवक विना किसी जीविका के स्थित रहा । और वहाँ रहकर अन्य सेवकों की भाँति उसने भी सेवा की । पश्चात् उस महासंकट के उपस्थित होने पर राजा को उसकी परिस्थिति का परिचय प्राप्त हुआ । इसी कारण उससे अधिक चिरंदेव का महत्त्व है ।२७-३०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भो शौनक महाबुद्धे वैतालेन महीपतिः । महाप्रवीणश्च मतस्तमाह स च भूपतिम् ॥१
राजन्कामपुरे रम्ये वीरसिंहो महीपतिः । न्यायतो धर्मतश्चैव तत्र राज्यमचीकरत् ॥२
हिरण्यदत्तस्तत्रैव वैश्यो धनमदान्वितः । कामालसा तस्य सुता रूपयौवनशालिनी ॥३
अवसत्सुखतो नित्यं वसन्ते कुसुमप्रिया । कदाचित्कुसुमार्थं वै वनं भ्रमरनादितम् ॥४
गच्छन्तीं तां समालोक्य धर्मदत्तात्मजो बली । सोमदत्त इति ख्यातः पस्पर्शमदनालसाम् ॥५
सा तु तं निर्जने स्थाने प्रोवाच विनयान्विता । कन्यकाहं महावीर त्यज मां धर्मतोऽद्य भोः ॥६
विवाहे सति पूर्वं त्वां भजामि दशमेऽहनि । अतो दशदिनस्यैवादेशं देहि दयानिधे ॥७
तथेति मत्वा तां त्यक्त्वा निजगेहं समागतः । कामालसा तु तद्ग्रामे पित्रा दत्ता वराय च ॥८
मदपालाय वैश्याय मणिग्रीवसुताय च । श्वशुरस्य गृहं गत्वा स्वमित्रं प्रत्यचिन्तयत् ॥९
नवमेऽहनि तत्स्वामी गृहीत्वा कामिनीं बलात् । कामातुरः स पत्नीं तामालिलिङ्ग मदान्वितः ॥१०
अरुदत्सा तु तत्पत्नी मित्रवाक्येन कर्षिता । तामुवाच तदा वैश्यः शान्तिपूर्वमिदं वचः ॥११

अध्याय ९

कलियुग के इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—महाबुद्धे, शौनक ! उस महाकुशल राजा का सम्मान करता हुआ वैताल ने उनसे कहा—राजन् ! रमणीक कामपुर नामक नगर में राजा वीरसिंह न्याय और धर्म के अनुसार राज करता था । उसी नगर में धनी, मानी हिरण्यदत्त नामक वैश्य भी रहता था । रूप-यौवन सम्पन्न कामालसा नामक उसकी पुत्री, जो सुखी जीवन व्यतीत कर रही थी, कुसुमप्रिय होने के नाते वसंत के समय नित्य पुष्पों के लिए लालायित रहती थी । एक बार वह पुष्प-संचय के लिए भ्रमर गुंजित किसी उपवन में जा रही थी, उस समय उसे धर्मदत्त के पुत्र सोमदत्त ने देखकर बल प्रयोग करना चाहा कि उस निर्जन स्थान में उसने नम्रता पूर्वक कहा—महावीर ! अभी कन्या हूँ, अतः धर्मतः मुझे छोड़ दीजिये ।१-६। विवाह हो जाने पर उसके दशवें दिन पहले आपकी ही सेवा करूँगी । अतः दयानिधे । दश दिन के लिए (मुझे मुक्त करने की) आज्ञा प्रदान कीजिए । वह उसे स्वीकार करके अपने घर आया । उस कन्या के पिता ने उसी गाँव में मणिग्रीव वैश्य के पुत्र मदपाल के साथ उसका पाणिग्रहण कार्य सम्पन्न कर दिया । वह स्त्री अपने श्वसुर के घर जाकर अपने मित्र के प्रति चिंतित होने लगी । नवमें दिन कामातुर एवं मदांध होने के नाते (उसके स्वामी ने) उस कामिनी को पकड़कर बलात् आलिंगन करना चाहा कि उसकी पत्नी उस पूर्व मित्र की बातों का स्मरण करके रुदन करने लगी । उस समय उसके पति ने शान्तिपूर्वक यह कहा—शोभने ! तुम्हारी आँखें तो मद से भरी दिखायी दे रही हैं, फिर क्यों रुदन कर रही हो, मुझसे

किं रोदिषि मदाघूर्णे सत्यं कथय शोभने । सा तु सत्यवती प्राह यथाजातं हि कानने ॥१२
यदि नायामि पार्श्वे त्वां सोमदत्त धनोत्तम । तदा वैधव्यतां प्राप्य भजामि वृजिनं हि तत् ॥१३
इति वाक्येन बद्धाहं यास्याम्यद्य तदन्तिके । इति श्रुत्वा च तत्स्वामी तामाज्ञाप्य मुदान्वितः ॥१४
सुष्वाप सा तु तत्पार्श्वे ह्यागमत्कामविह्वला । तदा चौरस्तु तां दृष्ट्वा सर्वाभरणभूषिताम् ॥१५
वचश्चोवाच लोभात्मा कुत्र यासि च सुन्दरि । केनैवापेक्षिता रात्रौ सत्यं कथय भामिनि ॥१६
कामालसा तु तं चौरमुवाच मदविह्वला । रक्षिता कामबाणेन स्वमित्रं प्रति यामि भोः ॥१७
चौरस्तामाह भोः सुभ्रूर्भूषणं देहि मेऽबले । चौरोऽहं ते धनग्राही सा श्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥१८
आलिंग्योपपतिं मित्रं तुभ्यं दास्यामि भूषणम् । तथेत्युक्त्वा तु तेनैव सोमदत्तं समागता ॥१९
दृष्ट्वा तामब्रवीद्वैश्यः कथं याता स्मरालसे । सत्यं कथय मे शीघ्रं तत्पश्चात्त्वां भजाम्यहम् ॥२०
कामालसा तु तच्छ्रुत्वा यथा जातं तथाऽब्रवीत् । श्रुत्वा स ज्ञानहृदयो विष्णुदेवेन बोधितः ॥२१
मत्वा पतिव्रतां नारीं परिक्रम्य व्यसर्जयत् । चौरस्तु कारणं श्रुत्वा विष्णुदेवेन बोधितः ॥२२
गेहे प्रवेशयामास तत्पतिर्यत्र तिष्ठति । सा तु कामालसा देवी स्वपातिव्रत्यधर्मिणी ॥२३
बुभुजे विषयान्दिव्यान्देवदेवेन चोदितान् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह कोविदम् ॥
कस्य सत्यं स्मृतं श्रेष्ठं तेषां मध्ये वदस्व मे ॥२४

सत्य कहो । उस सत्यवती ने उपवन में जो कुछ हुआ था उस को उसी ढंग से उससे कहकर यह भी कहा 'भीमसोमदत्त ! यदि मैं तुम्हारे समीप न आ सकी तो मैं अपना वैधव्य जीवन व्यतीत करती हुई उस पाप का प्रायश्चित करूँगी !' इस प्रकार वचन-बद्ध होने के नाते मैं उसके समीप अवश्य जाऊँगी । यह सुनकर उसके पति ने उसे जाने के लिए सहर्ष आज्ञा प्रदान किया ।७-१४। पश्चात् कुछ समय तक उसके पार्श्व भाग में शयन करने के उपरांत कामपीड़ित होकर वह कामिनी अपने मित्र के यहाँ गई । मार्ग में चोर ने उसे समस्त आभूषणों से सुसज्जित देखकर उसके लोभवश उससे कहा सुन्दरि ! कहाँ जा रही हो, इस रात्रि में तुम्हारा किसने सम्मान नहीं किया । भामिनि ! मुझसे सत्य कहो । मदांध होती हुई कामालसा ने उस चोर से कहा—काम-बाण से रक्षित होकर मैं अपने मित्र के यहाँ जा रही हूँ । चोर ने उससे कहा—सुभ्रु ! अबले ! अपना आभूषण मुझे दे दो, क्योंकि मैं चोर होने के नाते धन का ही ग्रहण करता हूँ । इसे सुनकर उसने कहा उस उपपति अपने मित्र के साथ आलिंगन करके तुम्हें आभूषण प्रदान करूँगी । इसे स्वीकार करके वह भी उसके साथ सोमदत्त के यहाँ गया । उस कामिनी को देखकर उस वैश्य ने कहा—कामालसे ! यहाँ किस प्रकार तुम्हारा आगमन हुआ शीघ्र सत्य बातें बताओ, पश्चात् तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा । कामालसा ने सभी बातों का यथावत् वर्णन किया । इसे सुनकर विष्णुदेव द्वारा अवबोधित होने पर उसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ । अनन्तर पतिव्रता मानकर उसकी परिक्रमा करके सम्मान पूर्वक लौटा दिया । विष्णुदेव द्वारा उसके कारण ज्ञान कराने पर वह चोर भी उसके पति के गृह में जाकर प्रवेश किया । अनन्तर वह कामालसा देवी अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से देवाधिदेव द्वारा प्राप्त दिव्य विषयों का उपभोग कर जीवन व्यतीत करने लगी । इतना कहकर वैताल ने उस कोविद राजा से कहा—उनमें किसका सत्य श्रेष्ठ कहना चाहिए, मुझे बताइये ।१५-२४

सूत उवाच

इत्युक्तः स तु भूपालो वैतालमिदमब्रवीत् ॥२५
चौरस्य सत्यता श्रेष्ठा यथा जाता तथा शृणु । नृपभीत्या स वैश्यस्तु तां नारीं न तु भुक्तवान् ॥२६
वैधव्यभीत्या सा देवी स्वमित्रं प्रति चागता । धर्मभीत्या च तत्स्वामी स्वपत्नी न तु भुक्तवान् ॥२७
चौरस्तु सत्यभीत्या वै त्यक्त्वा तां मुदमागतः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

वैतालस्तु महाभाग राजानमिदमब्रवीत् । गौडदेशे महाराज वर्धनं नाम वै पुरम् ॥१
गुणशेखर आख्यातो भूपालस्तत्र धर्मवान् । तन्मन्त्री निर्भयानन्दो जैनधर्मपरायणः ॥२
कदाचिद्भूपतिर्यातो मन्दिरे गिरिजापतेः । पूजयामास तं देवं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ॥३
वृश्चिकस्तत्र सम्प्राप्य ददंश नृपतिं रुषा । तत्कष्टेन स भूपालो मूर्छितः पतितो भुवि ॥४
तदा तु निर्भयानन्दो विषमुत्तार्य तस्य वै । भूपतिं वर्णयामास जैनधर्मपरायणः ॥५

सूत जी बोले—ऐसा कहने पर राजा ने वैताल से कहा—श्रेष्ठ सत्यता चोर की है, मैं उसका कारण भी बता रहा हूँ, सुनो ! राजा के भय से उस वैश्य ने उस नारी का उपभोग नहीं किया, वैधव्य-भय के नाते वह देवी अपने मित्र के यहाँ गई । और उसके स्वामी ने धर्मभय के नाते अपनी पत्नी का उपभोग नहीं किया ! किन्तु चोर ने केवल सत्य के भय से सहर्ष उसका त्याग किया ।२५-२८

श्री भविष्यमहापुराण मे प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग ! वैताल ने राजा से यह कहा कि—महाराज ! गौड़ देश में वर्धन नामक नगर है, उसमें ख्यातिप्राप्त एवं धार्मिक गुणशेखर नामक राजा राज करता था। जैन धर्मानुयायी निर्भयानन्द नामक उनका मंत्री था। किसी समय राजा ने शिव जी के मन्दिर में जाकर उस सर्वव्यापी एवं ईश्वर शंकर जी की अर्चना की। उसी समय एक बिच्छू ने क्रुद्ध होकर राजा को काट लिया। उस दुःख से दुःखी होकर राजा मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उस समय जैनधर्मी निर्भयानन्द ने उस विष का

शृणु राजन्महाभाग शत्रून्षण्मानसाधमान् । कामः क्रोधस्तथा लोभो रतिर्हिंसा च तृष्णिका ॥
रजोगुणाच्च ते जातास्तेषां भेदाः पृथक्पृथक् ॥६
मोहो दम्भो मदश्चैव ममताशा च गर्हणा । तमोगुणाच्च ते जातास्तैरिदं पूरितं जगत् ॥७
कामी विष्णुस्तथा रुद्रः क्रोधी लोभी विधिस्तथा । दम्भी शक्रो यमो मोही मदी यक्षपतिः स्वयम् ॥८
माया वश्याश्च ते सर्वे तर्हि तत्पूजनेन किम् । षट्शत्रुभिर्जितो यो वै स जिनो मुनिभिः स्मृतः ॥९
न जितः स जिनो ज्ञेयोऽद्वैतवादी निरञ्जनः । तस्य ध्यानेन भावेन मोक्षवन्तो नराः सदा ॥१०
तत्प्रसादाय यो धर्मः शृणु मे वसुधाधिप । गोपूजनेन ते देवास्तुष्टिं यान्ति सदैव हि ॥११
अतो गोपूजनं शुद्धं हिंसा सर्वत्र वर्जिता । मदपानेन सर्वात्मा जिनः क्लेशं समाप्नुयात् ॥१२
तस्मान्मांसं च पानं च वर्जितं सर्वदैव हि । न्यायेनोपार्जितं वित्तं भोजयेच्च बुभुक्षितान् ॥१३
रविरात्मा जिनस्यैव तत्प्रकाशे हि भोजयेत् । इत्येवं वर्णयित्वैनं मन्त्री गेहमुपाययौ ॥१४
तथैव मत्वा स नृपो जिनधर्मं गृहीतवान् । कियता चैव कालेन वेदमार्गो हि लङ्घितः ॥१५
तदा तु दुःखिता राज्ञी शिवस्य शरणं ययौ ॥१६
वरदानेन रुद्रस्य पुत्रो जातो महोत्तमः । धर्मराज इति ख्यातो वेदव्रतपरायणः ॥१७
गुणशेखर एवासौ पञ्चत्वे निरयं ययौ । धर्मराजस्तदा राज्यं कृतवान्धर्मतः स्वयम् ॥१८

अपहरण करके राजा से कहा—महाभाग, राजन् ! इन छहों शत्रुओं का, जो मान संस्थित एवं अधम हैं, मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! काम, क्रोध, लोभ, रति, हिंसा और तृष्णा ये छहों दोष रजोगुण से उत्पन्न होते है, इनका भेद पृथक्-पृथक् बताया गया है ।१-६। मोह, दंभ, मद, ममता, तथा निन्दित आशा की जो जगत् में व्याप्त हैं, तमोगुण से उत्पत्ति हुई है । विष्णु कामी है, शिव क्रोधी, ब्रह्मा लोभी, इन्द्र दम्भी, यम मोही, और कुबेर अभिमानी हैं । इस प्रकार ये सभी देवगण माया के अधीन हैं अतः इनके पूजन करने से क्या लाभ हो सकता है । उपरोक्त छहों शत्रुओं द्वारा जिसकी हार हो गयी है, उसे मुनियों ने अजिन बताया है, और जिसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लिया वह अद्वैतवादी रागादि हीन होने के नाते जिन कहा गया है । उसी के ध्यान एवं भाव रखने से मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति होती है । पृथिवीपति ! उनकी प्रसन्नता के लिए जो धर्म बताया गया है मैं कहा रहा हूँ, सुनो ! गो-पूजन से वे देवगण भी सदैव प्रसन्न रहते हैं इसलिए गो-पूजन ही शुद्ध धर्म है क्योंकि हिंसा सर्वत्र वर्जित की गई है । मदपान करने से सर्वात्मा भूत जिन को कष्ट होता है, अतः मांस भोजन और मद्यपान कराना सदैव निषिद्ध कहा गया है । न्यायतः धन का उपार्जन करके भूखे को भोजन करना चाहिए । सूर्य ही जिनकी आत्मा कहे गये हैं अतः जैनियों को उनके प्रकाशित रहने पर ही भोजन करना चाहिए । इस प्रकार (जैन धर्म का वर्णन करके वह मंत्री घर चला गया । तथा उसकी बातें स्वीकार करके राजा ने जिन धर्म को ग्रहण किया । कुछ समय व्यतीत होने पर उन्होंने वेद-मार्ग का उल्लंघन कर दिया । उस समय उनकी रानी ने अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् शिव की शरण प्राप्त की ।७-१६। रुद्र के वरप्रदान द्वारा रानी के महान् उत्तम पुत्र हुआ । उस वेद-व्रत के पारायण करने वाले का धर्मराज नामकरण हुआ । पश्चात् राजा गुणशेखर का निधन हुआ जिससे उन्हें नरक की प्राप्ति हुई । उस समय धर्मराज स्वयं धार्मिक राज्य करने लगा । अनन्तर उसके धर्म के

तस्य धर्मप्रभावेण तत्पिता स्वर्गमाप्तवान् । त्रयः पत्न्योभवंस्तस्य गुणरूपा महोत्तमाः ॥१९
वसन्तसमये राजा ताभिः सह वनान्तरे । संयातो रमयामास पुष्पभ्रमरनादिते ॥२०
श्रमितः स तु भूपालो राज्ञीभिः सह मोदितः । सरोदरे स्नापितवान्मदाघूर्णितलोचनः ॥२१
गृहीत्वा कुसुमं पाद्मं करे राज्ञै समर्पयत् । पदि हीनत्वमायाता पतता कुसुमेन वै ॥२२
दुःखितः स तु भूपालो राज्ञीं तामचिकित्सयत् । रात्रौ प्राप्ते द्वितीया तु चन्द्रशीलेन मोहिता ॥२३
अपतद्व्याकुलीभूत्वा शुद्धं पादमभूत्ततः । पतितायाश्च शब्देन तृतीया ज्वरिताऽभवत् ॥२४
तस्या मूर्च्छा तदा क्षीणा द्वितीयाया अजायत । नृस्पर्शेन सा सभूर्ज्वरतां विहाय च ॥२५
प्रभाते सुंदरे जाते स ताभिर्गृहमाययौ । इत्युक्त्वा स तु वैतालो भूपतिं प्राह नम्रधीः ॥
आसां मध्ये महाराज का श्रेष्ठा सुकुमारिका ॥२६

राजोवाच

तृतीया सुकुमारी च तासां मध्ये महोत्तमा । वायुप्रकृतितश्चासौ पद्मपुष्पेण खञ्जिता ॥२७
शीतांशुना द्वितीया तु मूर्च्छिता कफभावतः । शब्दमात्रेण सन्तापो यस्यां जातो हि सोत्तमा ॥२८
विहस्याह पुनर्देवो भवभक्तं महीपतिम् । जैनधर्मः प्रधानो हि वेदधर्मोऽथवावद ॥२९
सहोवाच प्रधानोऽसौ वेदधर्मः सनातनः । अष्टौ श्रेण्यो हि तस्यैव ब्रह्मणोऽव्यक्तरूपिणः ॥३०
शूद्रो वैश्यस्तथा क्षत्री ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यकृत् । गेही वन्यो यतिश्चैव क्रमाच्छ्रेष्ठाः प्रकीर्तिताः ॥३१

प्रभाव से उसके पिता को स्वर्ग की प्राप्ति हुई । धर्मराज के गुणानुरूप और अत्यन्त उत्तम प्रकृति की तीन स्त्रियाँ हुई । वसंत ऋतु में किसी समय वह राजा अपनी रानियों समेत एक उपवन में जिसमें पुष्पो के ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे, जाकर रमण करने लगा । शान्त होने पर वह राजा स्त्रियों समेत मदमत्त होकर प्रसन्नता प्रकट करता हुआ किसी सरोवर में स्नान करने लगा ।१७-२१। वह एक कमल पुष्प लेकर रानी के हाथ में अर्पित किया, किन्तु उस पुष्प के पतन होने से उसका चरण लँगड़ा हो गया । दुःखी होकर राजा ने उस रानी की चिकित्सा की । पुनः रात्रि के समय चन्द्रप्रकाश होने पर चन्द्रकी किरणों से मुग्ध होकर घबड़ाकर गिर गई, किंतु, (पहली स्त्री का) चरण अच्छा हो गया । और उसके गिरने के शब्द सुनकर तीसरी स्त्री को ज्वर हो आया । उस समय दूसरी पत्नी की मूर्च्छा छूट गई । राजा के स्पर्श करने से उसका ज्वर भी दूर हो गया । सुन्दर प्रभात होने पर वह उन स्त्रियों को लेकर अपने घर आया । इतना कहकर नम्रता पूर्वक उस वैताल ने राजा से कहा महाराज ! इन स्त्रियों में कौन सुकुमारी श्रेष्ठ कही जायगी ।२२-२६

राजा ने कहा—उनमें तीसरी स्त्री परमोत्तम है क्योंकि वायु प्रकृति होने से पहली स्त्री का चरण कमल पुष्प (के स्पर्श) से लंगड़ा हो गया, कफ के अधिक कष्ट होने से चन्द्र किरण के कारण दूसरी स्त्री मूर्च्छित हो गई और शब्द मात्र सुनकर तीसरी को संताप हो गया अतः यही सर्वोत्तम उसकी स्त्री है। पश्चात् शिवभक्त उस राजा से वैताल ने पुनः कहा—प्रधान जैन धर्म है या वेद धर्म ? उन्होंने कहा सनातन (नित्य) होने के नाते वेदधर्म प्रधान है। उस व्यक्त रूपी ब्रह्म (वेद) के आठ श्रेणियाँ हैं—शूद्र, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बताये गये हैं।२७-३१।

यः कृत्वा दारसंसर्गं यतिवद्वर्तते गृही । स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।३२
गृहेषु यतिवद्धर्मो जैनशास्त्रे प्रकीर्तितः । पाखण्डः स स्मृतः प्राज्ञैर्वर्जनीयो हि सर्वदा ।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे चतुर्युगखण्डापरपर्यायेकलियुगीयेतिहाससमुच्चये दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाभाग स वैतालो हि देवता । राजानमब्रवीद्गाथां धर्मप्रश्नमयीं शुभाम् ।।१
राजन्पुण्यपुरे रम्ये नानाजननिषेविते । धर्मवल्लभभूपालस्तत्र राज्यं पुराकरोत् ।।२
सत्यप्रकाशस्तन्मन्त्रीलक्ष्मीश्चामात्यकामिनी । कदाचित्स तु भूपालो मन्त्रिणं प्राह धर्मवित् ।।३
आनन्दः कतिधा लोके तन्ममाचक्ष्व सत्तम । स होवाच महाराज सुखं चैव चतुर्विधम् ।।४
ब्रह्मचर्याश्रमे यो वै ब्रह्मानन्दो महोत्तमः । गार्हस्थ्ये विषयानन्दो मध्यमः कथितो बुधैः ।।५
वानप्रस्थे महाराज स धर्मानन्दकोऽधमः । कर्मकाण्डेन चानन्दः सत्यधर्मः स वै स्मृतः ।।६
संन्यस्ते तु शिवानन्दस्स हि सर्वोत्तमोत्तमः । विषयानन्दको राजन्स्त्रीप्रधानः प्रकीर्तितः ।।७

जो गृहस्थ पुरुष स्त्री का सम्पर्क रखते हुए संन्यासी की भाँति रहता है । वह पापी नरक में महाप्रलय काल तक रखा जाता है । घर में संन्यासियों की भाँति रहना जैनशास्त्र में बताया गया है । इसलिए वह पाखण्डधर्म कहा गया है, बुद्धिमानों को सदैव उसका परित्याग करना चाहिए ।३२-३३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग ! शौनक ! उस वैताल देव ने पुनः शुभ एवं धार्मिक प्रश्न वाली गाथा को राजा से कहा—राजन् ! रमणीक उस पुण्यपुर नामक नगर में धर्म वल्लभ नामक राजा पहले राज करता था । सत्य प्रकाश उसके मंत्री का नाम था, जिसकी सेवा लक्ष्मी कामिनी की भाँति करती थी । किसी समय धर्मवेत्ता उस राजा ने मंत्री से कहा—सत्तम ! लोक में कितने प्रकार का आनन्द है, मुझे बताइये । उसने कहा—महाराज ! चार प्रकार का सुख बताया गया है—ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मानन्द महान, उत्तम बताया गया है, गार्हस्थ्याश्रम में विषयानंद कहा गया है, जिसे विद्वानों ने मध्यम श्रेणी में रखा है।१-५। महाराज! वानप्रस्थ में धर्मानन्द को अधम बताया गया है, क्योंकि कर्मकाण्ड में कोई आनन्द नहीं है, पर, सत्यधर्म वही कहा गया है। और संन्यास में शिवानंद कहा गया है, वही सर्वोत्तम एवं परमोत्तम आनन्द है। राजन् ! विषयानन्द को स्त्री-प्रधान कहा गया है क्योंकि नृप ! गृहस्थाश्रम में

स्त्रियं विनासुखं नास्ति गृहस्थाश्रमके नृप । इति श्रुत्वा स भूपालो देशान्तरमुपाययौ ॥८
पत्नीमन्वेषयामास स्वयोग्यां धर्मतत्पराम् । प्राप्तवान्न तु वामाङ्गीं मनोवृत्त्यनुसारिणीम् ॥९
स भूपो मन्त्रिणं प्राह नारीमन्वेषयाद्य भोः । नो चेत्प्राणानहं त्यक्ष्ये सत्यं वाक्यं ब्रवीम्यहम् ॥१०
इति श्रुत्वा ययौ मन्त्री देशाद्देशान्तरं प्रति । सिन्धुदेशे च सम्प्राप्य समुद्रं प्रति सोऽगमत् ॥
तुष्टाव मनसा सिन्धुं सर्वतीर्थपतिं शुभम् ॥११

बुद्धिप्रकाश उवाच

सिन्धुदेव नमस्तुभ्यं सर्वरत्नालय प्रभो ॥१२
अहं ते शरणं प्राप्तः शरणागतवत्सल । त्वां नमामि जलाधीशं गङ्गादिसरितां पतिम् ॥१३
स्त्रीरत्नं देहि राज्ञोऽर्थे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सागरः सरितां पतिः ॥१४
जले वृक्षं सुवर्णांगं पत्रविद्रुमकं महत् । मुक्ताफलान्वितं दिव्यं मन्त्रिणे समदर्शयत् ॥१५
तस्योपरि स्थिता बाला सुकुमारी मनोरमा । तत्रैव सालये जाता वृक्षेण सह भूपते ॥१६
इति दृष्ट्वा महाश्चर्यं नृपान्तिकमुपाययौ । वर्णयित्वा तु तत्सर्वं राज्ञा सार्धं समाप्तवान् ॥१७
तथाविधं नृपो दृष्ट्वा सागरान्तमुपाययौ । बालया सह पातालं प्राप्तवान्भूपतिः स्वयम् ॥१८
तां नारीं प्राह नम्रात्मा त्वदर्थेऽहं समागतः । गान्धर्वेण विवाहेन मां प्रापय वरानने ॥१९
विहस्य साऽऽह तं भूपं कृष्णपक्षे चतुर्दशी । तद्दिनेऽहं समागत्य त्वां भजामि नृपोत्तम ॥२०

बिना स्त्री के सुख सम्भव नहीं होता है । ऐसा सुनकर वह राजा देशान्तर में जाकर अपने अनुरूप धार्मिक पत्नी की खोज करने लगा । किन्तु मनोनुकूल वामांगी उसे प्राप्त नहीं हुई । पश्चात् उसने अपने मंत्री से कहा—आज मेरे लिए स्त्री की खोज अवश्य करो नहीं तो मैं सत्य कह रहा हूँ, प्राण परित्याग कर दूँगा । ऐसा सुनकर उस मंत्री ने देश देशान्तर के लिए प्रस्थान किया । सिंधु देश में पहुँचकर उसने समुद्र के यहाँ जाकर उस सभी तीर्थों के स्वामी की मानसिक स्तुति करना आरम्भ किया—६-११

बुद्धिप्रकाश ने कहा—प्रभो ! सिंधुदेव, सम्पूर्ण रत्नों के आलय ! तुम्हें नमस्कार है । शरणागत वत्सल ! मैं तुम्हारी शरण आया हूँ, गंगा आदि नदियों के स्वामी, एवं जलाधीश को मैं नमस्कार करता हूँ । अतः मेरे राजा के निमित्त स्त्री रत्न प्रदान कीजिये, अन्यथा मैं प्राण परित्याग करने जा रहा हूँ । यह सुनकर सरित्पति सागर ने प्रसन्न होकर जल में एक इस भाँति का वृक्ष सुवर्ण की भाँति जिसके अंग, विद्रुम (मूंगा) के समान पत्र, और मुक्ताफल से युक्त था, उस मंत्री को दिखाया । नृप ! उसी वृक्ष पर एक सुकुमारी एवं मनोरमा स्त्री स्थित थी किन्तु उसी स्थान पर वृक्षसमेत वह डूब गई । इस प्रकार का आश्चर्य देखकर वह मंत्री राजा के समीप आकर उस घटना का वर्णन करके राजा के साथ उसी स्थान पर पुनः गया ।१२-१७। राजा भी उसी प्रकार की घटना देखकर समुद्र के भीतर प्रवेश करके उस स्त्री के साथ पाताल पहुँच गया । विनम्र होकर उसने उस स्त्री से कहा—मैं तुम्हारे लिए ही यहाँ आया हूँ अतः गांधर्व विवाह द्वारा मुझे अपनाओ । उसने हँसकर के राजा से कहा नृपश्रेष्ठ ! मैं कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन आकर आपकी सेवा करूँगी । इसे सुनकर वह राजा उस दिन कामपीड़ित होकर हाथ में खड्ग लेकर

इति श्रुत्वा स नृपतिस्तद्दिने स्मरविह्वलः । खड्गहस्तो ययौ तत्र यत्र देवीगृहोत्तमम् ॥२१
एतस्मिन्नन्तरे तत्र राक्षसो बकवाहनः । तां बालां स च पस्पर्श नृपः क्रोधातुरोऽभवत् ॥२२
कामान्धो राक्षसं हत्वा स्वपत्नीं प्राह निर्भयाम् । कोऽयं तेऽत्र समायातः कारणं वद भामिनि ॥२३
साह भोः शृणु भूपाल विद्याधरसुता ह्यहम् । पितृप्रिया मदवती कामार्ता वनमागता ॥२४
नागता भोजने काले पितृमात्रोश्च मन्दिरे । ज्ञात्वा ध्यानेन मत्पित्रा शापिता तच्छृणुष्व भोः ॥२५
अद्य कृष्णचतुर्दश्यां त्वां भजिष्यति राक्षसः । कृष्णपक्षचतुर्दश्यां भुंक्ष्व त्वमपराधकम् ॥२६
तदाहं रोदनं कृत्वा ब्रवीमि पितरं प्रति । कदामुक्तिर्भवेद्देव तत्त्वं कथय सुव्रत ॥२७
स होवाच कुमारि त्वं वीरभुक्ता भविष्यसि । तदा शापस्य मुक्तिः स्यात्साहं तव विमोचिता ॥२८
त्वदाज्ञयाहं यास्यामि भो राजन्पितृमन्दिरे । इति श्रुत्वा नृपः प्राह मम गेहं समाव्रज ॥२९
त्वया सार्द्धं गमिष्यामि गृहं विद्याधरस्य तत् । तथेत्युक्त्वा तु सा देवी नृपगेहं समाययौ ॥३०
तदा तु नगरे तस्मिन्नृणां जातो महोत्सवः । मन्त्री दृष्ट्वा तु तं भूपं दिव्यपत्नीसमन्वितम् ॥
पञ्चत्वमगमत्तूर्णं कुतो हेतोर्हि तद्वद ॥३१

राजोवाच

मन्त्री बुद्धिप्रकाशस्तु दृष्ट्वा देवीं समागताम् ॥३२
नृपं स हृदि सन्ध्यात्वा राज्यभङ्गभयातुरः । त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्गं शृणु यत्कारणं शुभम् ॥३३

देवी के उस उत्तम मन्दिर में पहुँचा किन्तु उसी समय बक पक्षी की सवारी पर आकर राक्षस ने उस स्त्री का स्पर्श किया ! उसे देखकर वह क्रोधातुर हो गया । अनन्तर कामांध होकर राजा ने उस राक्षस का वधकर के उस निर्भय अपनी पत्नी से कहा—भामिनि ! तुम्हारा यह कौन है, और यहाँ क्यों आया । इसका कारण बताओ । उसने कहा—राजन् ! सुनो ! मैं विद्याधर की पुत्री हूँ । अपने पिता की लाडिली होने के नाते मैं मत्त एवं कामातुर होकर वन में चली आई, भोजन समय में भी अपने माता-पिता के गृह न जा सकी । पश्चात् मेरे पिता ने ध्यान द्वारा उसे समझकर मुझे शाप दिया कि—आज कृष्ण चतुर्दशी के दिन तुम्हें राक्षस की सेवा करनी पड़ेगी । अतः इस कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में तुम अपने अपराध परिणाम का भोग करो । उस समय मैं रुदन करती हुई अपने पितरों से कहने लगी—देव, सुव्रत ! मेरी मुक्ति कब होगी, इसे निश्चित बताने की कृपा कीजिये । उन्होंने कहा—कुमारि ! जिस समय में तू वीरोपभोग्या होगी । उस समय यह मेरा शाप छूट जायगा । राजन् ! मैं तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर अपने पिता के गृह जाना चाहती हूँ। ऐसा सुनकर उस राजा ने उससे कहा—मेरे घर चलो। पश्चात् मैं भी तुम्हारे साथ विद्याधर के यहाँ चलूँगा। उस देवी ने स्वीकार कर राजा के घर प्रस्थान किया। उस समय राजा के नगर में मनुष्यों ने महान् उत्सव किया। किन्तु, उस दिव्यपत्नी समेत राजा को देखकर उस मंत्री का निधन हो गया, वैताल ने पूछा—इसका कारण बताइये।१८-३१

राजा ने कहा—मंत्री बुद्धिप्रकाश उस दिव्य रमणी को देखकर अपने हृदय में राजा के विषय में सोचने लगा—कि स्त्री के वश होने के नाते राजभंग हो जायेगा। इसका कोई प्रतीकार न देखकर उस भय

विषयी यो हि भूपालस्तस्य राज्यविनाशनम् । स्त्रीमदं प्राप्तराज्यस्य सदा हानिमवाप्नुयात् ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विहस्य स तु वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । राजंश्चूडापुरे रम्ये भूपश्चूडामणिः स्मृतः ॥१
देवस्वामी गुरुस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः । तस्य पत्नी विशालाक्षी पतिधर्मपरायणा ॥२
शिवमाराधयामास पुत्रार्थे वरवर्णिनी । रुद्रस्य वरदानेन कामदेवसमः सुतः ॥३
हरिस्वामीति विख्यातो जातो देवांशवान्बली । सर्वसम्पत्समायुक्तो देवतुल्यसुखी क्षितौ ॥४
रूपलावण्यिका नाम्ना तत्पत्नी हि सुरांगना । जाता देवलशापेन तस्य नन्दनतो नृप ॥५
एकदा पतिना सार्द्धं वसन्ते कुसुमाकरे । हर्म्ये सुष्वाप सम्प्रीत्या शय्यामध्यास्य सुन्दरी ॥६
सुकलो नाम गन्धर्वस्तस्या रूपेण मोहितः । तां जहार विमाने स्वे संस्थाप्य स्वपुरं ययौ ॥७
प्रबुद्धः स तु तां नारीं मृगयामास विह्वलः । अलब्ध्वा व्याकुलो भूत्वा देशं त्यक्त्वा वनं गतः ॥८

से वह अपना प्राण परित्याग कर स्वर्ग चला गया। क्योंकि जो राजा विषयी होते हैं उनके राज्य का नाश हो जाता है और स्त्री रूपी मद (नशे) की प्राप्ति करने से राज्य की सदैव हानि होती रहती है ।३२-३४

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक ग्यारहवाँ अध्याय ।११।

अध्याय १२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

शौनक ने कहा—वैताल ने हँसकर राजा से कहा—राजन् ! चूड़ापुर में चूड़ामणि नामक राजा राज कर रहा था । वेद एवं वेदाङ्ग निष्णात देवस्वामी उसका गुरु था । विशाल नेत्र वाली उसकी पत्नी सदैव पतिधर्म का ही पारायण करती थी । उस सुन्दरी ने पुत्र कामनया शिव जी की उपासना की । भगवान् रुद्र जी के वरदान द्वारा उसके हरिस्वामी नामक ख्यातिप्राप्त पुत्र हुआ, जो कामदेव के समान सुन्दर बली एवं देवांश युक्त था । वह सम्पूर्ण सम्पत्ति से युक्त होकर देवता के समान पृथ्वी पर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा । रूपलावण्यिका नामक उसकी पत्नी थी । नृप ! वह देवाङ्गना थी, देवल के शाप से उसके लड़के से उत्पन्न हुई थी । उस हरे-भरे वसन्त के समय में एक दिन वह सुन्दरी अपने पति के साथ महल में मृदुशय्या पर शयन कर रही थी । उस समय सुकल नामक एक गन्धर्व उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका अपहरण करके अपने विमान पर बैठाकर उसे अपने नगर ले गया। उसके पति ने जागने पर घबड़ा कर अपनी पत्नी को खोजने का प्रयास किया। उसके न मिलने पर विह्वल होकर वह देश का परित्याग

संन्यस्य विषयान्सर्वान्हरिध्यानपरायणः । कदाचित्प्राप स स्नेही विप्रगेहमुपागतः ।।९
प्रपच्य पायसमपि वटवृक्षमुपाश्रितः । वृक्षोपरि निधायाशु नदीस्नानमथाकरोत् ।।
भोजनं च ततो राजन्सर्पेण गरलीकृतम् ।।१०
ततो यतिः समायातो भुक्त्वा मदमुपाययौ । विषेण पीडिततनुर्दृष्ट्वा ब्राह्मणमब्रवीत् ।।११
त्वया प्रदत्तं मूर्खेण पायसं विषमिश्रितम् । मरणं यामि भो दुष्ट ब्रह्महत्यामवाप्स्यसि ।।१२
इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य शिवलोकमुपाययौ । रूपतेजोयुतां देवीं गृहीत्वा सुखमाप्तवान् ।।१३
इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । कस्मै प्राप्ता ब्रह्महत्या तेषां मध्ये वदस्व मे ।।१४

राजोवाच

स्वाभाविकविषो नागो ह्यज्ञानेन विषं कृतम् । अतो दोषी हि भुजगो ब्रह्महत्यां न चाप्तवान् ।।१५
बुभुक्षिते ददौ भिक्षां स द्विजो दैवमोहितः । ब्रह्महत्यामतो नायात्कुलधर्मपरायणम् ।।१६
आत्मना च कृतं पापं भोक्तव्यं सर्वदा जनैः । आत्मत्यागो ब्रह्महत्या चातिथेश्चावमाननम् ।।१७
ब्रह्महत्या तदा ज्ञेया विषदत्तेन सा तथा । आत्मत्यागः स्मृतो दैवात्तस्मात्सोऽपि न पापवान् ।।१८
यैर्नरैः कथिता वार्ता ब्रह्महत्या त्वया कृता । तेषां ब्राह्मणहत्या सा न्यायभ्रष्टवतां नृणाम् ।।१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

कर जंगल चला गया । वहाँ जाकर वह सभी विषयों के त्यागपूर्वक (संन्यास लेकर) भगवान् का ध्यान करने लगा । एक बार खीर खाने की इच्छा से वह किसी ब्राह्मण के घर क्षुधापीडित होकर पहुँचा । वहाँ से खीर लाकर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गया पश्चात् उस पायस को उसी वृक्ष पर रख कर नदी में स्नानार्थ चला गया । राजन् ! उसी बीच किसी सर्प ने उसे अपने विष से दूषित कर दिया । अनन्तर उस संन्यासी को उसका भक्षण करने से मद (नशा) होने लगा । विष की व्यथा से व्याकुल होकर उसने उस ब्राह्मण से कहा कि उसी ब्राह्मण ने खीर में विष मिला दिया है । अतः दुष्ट ! मैं प्राण त्याग कर रहा हूँ, तुम्हें ब्रह्म-हत्या का पाप भोगना पड़ेगा । इतना कहने के उपरांत वह प्राण परित्याग करके शिवलोक जाकर वहां रूप एवं तेज युक्त देवी की प्राप्ति कर सुख का अनुभव करने लगा । इतना कह कर वैताल ने राजा से कहा—उनमें ब्रह्महत्या का भागी कौन हुआ ? मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१-१४

राजा ने कहा—साँपों में विष का होना स्वाभाविक है और अज्ञान वश उसने उसे दूषित किया था, इसीलिए वह दोषी अवश्य है, पर, ब्रह्महत्या का भागी नहीं । तथा वह ब्राह्मण दुर्भाग्यवश उस भूखे ब्राह्मण संन्यासी को भिक्षा प्रदान किया है, ऐसा करके उसने अपने कुलधर्म की रक्षा ही की है अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं हो सकती । मनुष्यों को सर्वदा अपने किये हुए पाप-कर्म का फल भोगना ही पड़ता है । ब्राह्मण द्वारा अपमानित होकर उस ब्राह्मण के यहाँ विष मिश्रित भोजन प्राप्त कर उसके भक्षण करने से अह अतिथि आत्मत्याग किये होता तो वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी होता । उसने दैव (भाग्य) वश आत्मत्याग किया अतः वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी नहीं है । जो मनुष्य उस बात की चर्चा करते हुए यह कहेंगे कि ब्रह्महत्या तुमने की है, उन्हीं न्यायभ्रष्ट मनुष्यों को वह ब्रह्महत्या लगेगी ।१५-१९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृतकृत्यः प्रसन्नात्मा वैतालो नृपमब्रवीत् । नगरे चन्द्रहृदये रणधीरो नृपोऽभवत् ॥१
तत्र वैश्योऽवसद्धर्मी नाम्ना धर्मध्वजो धनी । तस्य पुत्री समायाता सुन्दरी सुखभाविनी ॥२
एकदा नगरे तस्मिन्यातुभक्तो नरोऽभवत् । द्यूतविद्यापरो नित्यं मद्यमांसपरायणः ॥३
वाशरो नाम तत्रासीद्राक्षसः पुरुषादनः । तस्मै मद्यं च मांसं च प्रत्यहं स च दत्तवान् ॥४
प्रसन्नो राक्षसो भूत्वा यातुभक्तं तमब्रवीत् । वरं वरय यो योग्यो मत्तः सर्वमवाप्स्यसि ॥५
स होवाच वरो मह्यं देयस्ते पुरुषादक । गुप्तगर्तं च भूमध्ये कुरु चौरनिरूपणम् ॥६
इति श्रुत्वाकरोद्गर्तं नरबुद्धिविमोहनम् । स्वयं तत्र स्थितो देवः स्वभक्तेन समन्वितः ॥७
तेन रात्रौ तु चौर्येण नृपदासी वराङ्गना । हृता संस्थापिता गर्ते बहुद्रव्यं तथा हृतम् ॥८
सप्तपत्न्योऽभवंस्तस्य चतुर्वर्णस्य योषितः । तासां मध्ये भूपदासी तस्य चौरस्य वल्लभा ॥९
नृपदुर्गसमं गेहं रचितं तेन रक्षसा । भूतले गुप्तरूपं च नरबुद्धिविमोहनम् ॥१०
चोरितं बहुधा द्रव्यं गर्ते संस्थापितं बलात् । तदा ते व्याकुला राजञ्जना राजानमब्रुवन् ॥११

अध्याय १३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—कृतकृत्य होकर उस वैताल ने प्रसन्नचित्त से राजा से कहा—चन्द्रहृदय नामक नगर में रणधीर नामक राजा राज कर रहा था। उसी नगर में धर्मध्वज नामक एक धार्मिक वैश्य रहता था। उसके सुखभाविनी नामक एक सौन्दर्य पूर्ण कन्या थी। एक बार उस नगर में एक मनुष्य राक्षस की उपासना करने लगा। द्यूत (जुए) खेलना और मद्य-मांस का भक्षण करना उसका नित्य दैनिक कार्य था। पुरुष का भक्षण करने वाला, वाशर नामक एक राक्षस वहाँ रहता था। उसी के लिए वह मद्य मांस प्रतिदिन अर्पित करता था। प्रसन्न होकर राक्षस ने उस भक्त से कहा। यथेच्छ वर की याचना करो, मैं सभी कुछ देने को तैयार हूँ। पुरुषभक्षक ! यदि मुझे आप वरदान प्रदान करना चाहते हैं, तो भूमि के भीतर एक गुप्त स्थान (चोरी का माल रखने के लिए) बनाइये। इसे सुनकर उस राक्षस ने एक इस प्रकार का गुप्त स्थान बनाया जिसमें मनुष्यों की बुद्धि चकित हो जाती थी। उस स्थान में उस राक्षस के साथ वह भक्त रहने लगा। एक बार रात्रि में उस चोर ने राजा की एक दासी का अपहरण करके उसी स्थान में रख दिया , उसने भी अधिक संख्या में द्रव्य का अपहरण किया। इस प्रकार उस चोर की चारों वर्णों वाली सात पत्नियाँ थी। किन्तु उनमें राजा की वह दासी ही उस चोर की हृदयेश्वरी थी। राक्षस ने उस स्थान का निर्माण राजा के दुर्ग के समान दृढ़ एवं इस भूतल में मनुष्यों की बुद्धि को चकित करने वाला किया था। उसने चोरी तथा बलपूर्वक अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण करके संचय किया। उस

त्यजाम नगरीं भूप चौरविघ्नकरीं तव । इति श्रुत्वाय भूपेन रक्षिणः शस्त्रसंयुताः ॥
स्थापिता नगरे तस्मिश्चौरहिंसापरायणाः ॥१२
आज्ञाप्य स ययौ गेहं तैस्तु श्रुत्वा तथा कृतम् ॥१३
राक्षस्या मायया सर्वे मोहिता रक्षिणस्तदा । चौरेण बहुधा द्रव्यं हृतं च धनिनां बलात् ॥१४
पुनस्ते प्रययुर्भूपं रणधीरं समेरयन् । श्रुत्वा तु विस्मितो राजा स्वयं नगरमागतः ॥१५
अर्धरात्रे तमोभूते स चौरो नृपमागतम् । ज्ञात्वाब्रवीच्च राजानं को भवानत्र चाप्तवान् ॥१६
नृपोऽब्रवीदहं चौरश्चोदितार्थः समागतः । यास्यामि धनिनां गेहे भवान्मे वचनं कुरु ॥१७
मया सार्द्धं च बहुधा द्रव्यं हर सुखी भव । तथा मत्वा तु बहुधा चौरेण धनमाहृतम् ॥१८
गर्तमध्ये गतो रात्रौ स्थापयित्वा नृपं बहिः । एतस्मिन्नेव तत्पत्नी नृपदासी वराङ्गना ॥१९
भूपतिं प्राह भो राजन्गच्छ शीघ्रं स्वकं गृहम् । चौरोऽसौ हि त्वदर्थे च मृत्युं कुर्वन्गृहं गतः ॥२०
इत्युक्त्वा सा तु भूपाय मार्गभेदमदर्शयत् । नृपोऽपि स्वगृहं प्राप्य प्रभाते विमले रवौ ॥२१
आययौ सेनया सार्द्धं यत्र चौरः स्वयं स्थितः । चौरोऽपि भयमासाद्य वाशरं नाम राक्षसम् ॥२२
सम्पूज्य वर्णयामास यथा जातं तथाविधि । विहस्याह च रक्षस्तं त्वया मे भोजनं कृतम् ॥२३
अद्य भक्ष्याम्यहं सर्वान्मानुषान्दैवचोदितान् । इत्युक्त्वा स ययौ घोरो राक्षसो नृपतिं प्रति ॥२४

समय वहाँ की प्रजा अधीर होकर राजा से कहने लगी । राजन् ! चोरों के द्वारा इस नगर में अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो गई हैं, अतः हम लोग इसके परित्याग करने के लिए प्रस्तुत हैं । ऐसा सुनकर राजा ने अपने शस्त्रधारी रक्षकों को, जो चोरों की हिंसा करने में निपुण थे, उस नगर के चारों ओर नियुक्त कर दिया । किन्तु राक्षस की माया से मोहित होकर वे रक्षकगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, और उन चोरों ने बल प्रयोग करके धनवानों के भाँति-भाँति के धनों का अपहरण कर ही लिया । नगर के प्रजा वर्ग ने पुनः उस रणधीर राजा के पास जाकर उन घटनाओं का निवेदन किया । उसे सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर स्वयं नगर के रक्षार्थ वहाँ उपस्थित हुआ ।१-१५। उस अंधेरी रात में आधी रात के समय चोर ने आये हुए राजा से पूछा—आप कौन हैं, तथा यहाँ आने का प्रयोजन क्या है । राजा ने कहा—मैं भी चोर हूँ, चोरी के निमित्त यहाँ आया हूँ । मैं धनवानों के यहाँ चलने के लिए प्रस्तुत हूँ, आप भी मेरी बात स्वीकार करें—मेरे साथ चलकर अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण करके सुखी जीवन व्यतीत करें । चोर ने उसे स्वीकार करके अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण कर राजा को बाहर खड़ा करके स्वयं उस धन को रखने के लिए भीतर उस गुप्त स्थान में प्रविष्ट हुआ । उसी बीच वह दासी जो उस चोर की पत्नी के रूप में वहाँ रहती थी, राजा से कहने लगी—राजन् ! आप शीघ्र अपने घर को प्रस्थान कीजिये क्योंकि वह चोर भीतर जाकर आप के निधन के लिए उपाय कर रहा है । इतना कहकर उस दासी ने राजा को वहाँ का मार्ग भेद भी दिखा दिया । राजा अपने घर पहुँच कर निर्मल प्रभात के समय सूर्य के उदयकाल में अपनी सेना के साथ उस चोर के स्थान पर पहुँच गया । पश्चात् भयभीत होकर उस चोर ने वाशर नामक उस राक्षस से सभी वृत्तान्त जो कुछ रात में जिस प्रकार हुआ था कह सुनाया । राक्षस ने हँसकर उससे कहा । आज तुमने मुझे अच्छा भोजन प्रदान किया । दुर्भाग्यवश आये हुए उन सभी मनुष्यों का भक्षण करने के लिए मैं चल

चखाद बहुलां सेनां तेऽपि याता दिशो दश । आक्रान्तः स च भूपालो रक्षसा विकलीकृतः ॥२५
तदा चौरः स्वयं प्राप्य भूपतिं प्राह रोषतः । पलायनं न भूपस्य योग्यं धर्मजनस्य वै ॥२६
इति श्रुत्वा नृपश्चैव तूर्णमागत्य तत्र ह । ध्यात्वा देवीं महाकालीं लब्ध्वा मन्त्रं महोत्तमम् ॥२७
रक्षसा सह तद्गर्तं भस्मसादभवत्क्षणात् । निगडैस्तं बबन्धाशु चौरं नगरलुण्ठकम् ॥२८
तथा सर्वधनैः सार्धं स्त्रीभिस्ताभिः समाययौ । राज्यस्थानं समासाद्य दुर्गतिस्तस्य चाभवत् ॥२९
पटहाताडितेनैव शब्देन च गृहे गृहे । ज्ञापितं करणं सर्वं तच्चौरस्य वधस्य तैः ॥३०
तद्दिने नगरे तस्मिन्भ्रामितो गर्दभोपरि । धर्मध्वजगृहद्वारे स चौरो हि समागतः ॥३१
तस्य रूपं समालोक्य मुमोह सुखभाविनी । पितरं प्राह दुःखार्ता चौरं मोचय सत्वरम् ॥३२
स गत्वा नृपतिं प्राह पञ्चलक्षधनं मम । गृहाण चौरमोक्षार्थे म्रियते न हि मे सुता ॥३३
विहस्याह नृपस्तं वै चौरोऽयं धनलुण्ठकः । कर्हिचिन्न मया त्याज्यो भुवि वै पुरुषाधमः ॥३४
इति श्रुत्वा निराशोऽभूत्स चौरो मरणं गतः । शल्यारोपणकाले तु प्राक्प्रहस्य ततोऽरुदत् ॥३५
एतस्मिन्नेव तत्पुत्री देवमायाविमोहिता । गृहीत्वा चौरदेहं तु वह्निकुण्डे तु सागमत् ॥३६
तदा प्रसन्ना सा दुर्गा तावुजीव्य प्रसादतः । तस्यै दत्तो वरो दिव्यो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥३७
इत्युक्त्वा स तु भूपालं पुनः प्राह विहस्य तम् । किं कारणेन चौरोऽसौ प्राक्प्रहस्य ततोऽरुदत् ॥३८

रहा हूँ । इस प्रकार कहकर राक्षस राजा के पास पहुँचा । बहुधा सैनिकों का उसने भक्षण कर लिया और जो किसी प्रकार जीवित रहे इधर-उधर भाग गये । उस राक्षस ने राजा के अंगों को क्षत-विक्षत करके उन्हें भ्रान्त कर दिया । उस बीच वह चोर रुष्ट होकर राजा के पास पहुँच कर कहने लगा—धार्मिक राजा को (युद्ध से) भागना उचित नही है । इसे सुनकर राजा ने महाबली देवी के मन्दिर में शीघ्रता से पहुँचकर उनका ध्यान करके महान् एवं परमोत्तम मंत्र की प्राप्ति की । पश्चात् राक्षस समेत उस गुप्त भवन को उसी समय भस्म करके नगर में चोरी करने वाले उस चोर को हथकड़ियों से बाँधकर उसके समस्त धन एवं स्त्री समेत उसे राजस्थान (राजदरबार) में लाकर उसकी अत्यन्त दुर्दशा की । अनन्तर ढोल बजवाकर प्रत्येक घरों से उसके वध करने के निमित्त प्रमाण माँगने पर नागरिकगणों ने समस्त कारणों को उपस्थित किया । उस दिन उसे गधे पर बैठाकर नगर में घुमाते हुए उसे धर्मध्वज वैश्य के दरवाजे पर लाया गया कि सुखभाविनी नामक वैश्य की पुत्री उसे देखकर उसके रूप पर मुग्ध हो गई । पश्चात् दुःखी होकर उसने अपने पिता से कहा—इस चोर को शीघ्र छुड़ा लीजिये । उसने राजा के पास जाकर कहा—मेरे पास पाँच लाख मुद्रा है, उसे ग्रहणकर चोर को छोड़ दीजिये, नही तो मेरी पुत्री का निधन हो जायेगा । हँसकर राजा ने कहा—धन का अपहरण करने वाला यह चोर है अतः इस भूतल में इस नीच पुरुष का परित्याग मैं कभी नही कर सकता इसे सुनकर वह निराश हो गया और उस चोर का जीवनान्त कर दिया गया। शूली पर चढ़ने के समय पहले उसने हँसा, पश्चात् रुदन किया। उसी समय देवमाया से मुग्ध होकर उस वैश्य की पुत्री चोर-देह को लेकर अग्नि कुण्ड में पहुँच गई। उस समय भी दुर्गा जी प्रसन्न होकर कृपया उसे जीवितकर मुक्ति-भुक्ति फल प्रदानपूर्वक दिव्य वर भी प्रदान किया। इतना कहकर उस (वैताल) ने हँसकर राजा से कहा—चोर ने पहले हँसकर पश्चात् रुदन किया, इसका क्या कारण है।१६-३८।

राजोवाच

मदर्थे सुन्दरी नारी स्वप्राणान्दातुमुद्यता । तस्यै किं च प्रदातव्यं मया तत्स्नेहरूपिणा ॥३९
अतो रोदितवान्पश्चाद्धसने कारणं शृणु । धन्योऽयं भगवान्कृष्णो यस्य लीलेयमीदृशी ॥४०
अधर्मिणे च नाकस्य फलं दातुं समर्हति । धर्मिणो नरकस्यैव फलं तस्मै नमो नमः ॥४१
अतः स हसितः पूर्वं मोहितो हरिलीलया । इति श्रुत्वाह वैतालो हरेः शरणमुत्तमम् ॥४२
वाक्यं तेन कृतं शूल्यामतो जीवितवाञ्छुचिः ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य महाभाग वैतालो नृपमब्रवीत् । राजन्पुष्पावती रम्या नगरी तत्र भूपतिः ॥
सुविचार इति ख्यातः प्रजापालनतत्परः ॥१
चन्द्रप्रभा तस्य पत्नी रूपयौवनशालिनी । तस्यां जाता सुता देवी नाम्ना चन्द्रावली मता ॥२
कदाचित्स्वालिभिः सार्द्धं विपिनं कुसुमाकरम् । आययौ तत्र वै विप्रं सुदेवं सा ददर्श ह ॥३

राजा ने कहा—यह सुन्दरी स्त्री मेरे लिए प्राण परित्याग करने को तैयार है, यद्यपि मैं उसका प्रीतिभाजन हूँ, पर उसे क्या दे सकता हूँ, इसलिए उसने रुदन किया : अब हँसने का कारण बता रहा हूँ, सुनो ! भगवान् कृष्ण धन्य हैं, जिसकी ऐसी लीला है कि अधर्मी को स्वर्ग और धर्म को नरक वास प्रदान करते हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है । इसी भगवान् की लीला से मोहित होकर वह पहले हँसा था । इसे सुनकर वैताल ने कहा—भगवान् का शरण ही उत्तम है क्योंकि शूली होने पर उसे पवित्र जीवन प्राप्त हो गया ।३९-४३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य, महाभाग ! वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! पुष्पावती नामक रमणीक नगरी में सुविचार नामक राजा राज करता था । वह प्रजाओं के पालनपोषण में सदैव कटिबद्ध रहता था । रूप-यौवन सम्पन्न चन्द्रप्रभा नामक उसकी पत्नी थी । उस रानी से चन्द्रावती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई । एक बार वह अपनी सखियों समेत एक जंगल में गई, जहाँ भाँति-भाँति के पुष्प सुशोभित हो रहे थे । वहाँ सुदेव नामक ब्राह्मण को देखकर वह मुग्ध हो गई और वह ब्राह्मण भी मोहित होकर पृथिवी

मोहिता चाभवद्देवी विप्रोऽपि पतितः क्षितौ । कामबाणव्यथां प्राप्य गतप्राण इवाभवत् ।।४
तस्यां गतायां सदने द्वौ विप्रौ तत्र चागतौ । मूलदेवः शशी नाम्ना तत्र विद्याविशारदौ ।।५
तथागतं द्विजं दृष्ट्वा रूपयौवनशालिनम् । पप्रच्छ कारणं सर्वं येन मोहत्वमागतः ।।६
स श्रुत्वा रोदनं कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् । कृपालुर्मूलदेवस्तु तं स्वगेहमवाप्तवान् ।।७
गृहे जप्त्वा महामन्त्रं चामुण्डाबीजसंयुतम् । कृतवान्गुटिके चोभे सुदेवाय समार्पयत् ।।८
एकया सुन्दरी कन्या द्वादशाब्दमयी शुभा । द्वितीयया महावृद्धो मूलदेवस्तदाभवत् ।।९
द्वौ गतौ राजसदने नृपमाशीर्भिरर्च्य तम् । हेतुं निवेदयामास तच्छृणुष्व महामते ।।१०
नगरे तान्त्रिके राजन्मद्गेहं सुन्दरोपमम् । विलापध्वजनाम्ना वै राज्ञो संलुठितं बलात् ।।११
पलायितौ सुतः पत्नी तावन्वेष्टुं समाययौ । इयं वधूर्महाराज मम तत्पुत्रभाविनी ।।१२
यावदहं न गच्छामि स्वगेहे रक्ष धर्मतः । इति श्रुत्वा स नृपतिश्चाहूय स्वसुतां तदा ।।
तस्यै समर्प्य तां पश्चात्स द्विजो गेहमाययौ ।।१३
सुदेवस्तु निशीथे वै रमणीं प्राह निर्भयः । कुतस्ते मन उद्विग्नं सत्यं कथय मे सखि ।।१४
साह मे हृदये नित्यं सुदेवो ब्राह्मणोत्तमः । उषितस्तद्वियोगेन व्याकुलाहं सदा सखे ।।१५
सुदेवश्चाह भोः सुभ्रूर्यदि ते ब्राह्मणोत्तमम् । समर्पयामि तत्त्वं मे किं ददासि वदस्व भोः ।।
साह ते सर्वदा दासी भवामि द्विजभामिनि ।।१६
इति श्रुत्वा सुदेवस्तु मुखान्निष्कृष्य यन्त्रकम् । पूर्वदेहत्वमापन्नस्तया सार्द्धं समारमत् ।।१७

पर गिर पड़ा । काम के बाणों से पीड़ित होकर निर्जीव की भाँति वह दिखाई देता था । उस कुमारी के घर चले जाने पर मूलदेव और शशी नामक दो ब्राह्मण उस ब्राह्मण के दरवाजे पर आये । रूप-यौवन सम्पन्न उस ब्राह्मण को देखकर उसके मोहित होने का कारण उन्होंने पूँछा । उसने रुदन करके सभी वृत्तान्त कह सुनाया । वह दयालुमूलदेव अपने घर आकर चामुण्डा देवी के बीज समेत मंत्र का जप करके दो गुटिका बनाकर सुदेव को दे दिया । उसके द्वारा उनमें से एक बारह वर्ष की सुन्दरी कन्या और दूसरा मूलदेव अत्यन्त वृद्ध का रूप धारण करके राज दरबार में पहुँचे । वहाँ आशीर्वाद प्रदान कर राजा का सम्मान प्रकट किया । महामते ! उनके वहाँ प्रविष्ट होने का कारण भी सुनो ! उसने कहा—राजन् ! तांत्रिक नगर में मेरा एक सौन्दर्यपूर्ण गृह है । वहाँ के विलापध्वज नामक राजा बलात् मेरे घर को लुटवाना चाहता था, इससे मेरे घर के दोनों पुत्र और पत्नी घर से न जाने कहाँ चले गये । मैं उन दोनों पुत्र एवं पत्नी को ढूंढ़ने आया हूँ । महाराज ! यह मेरी पुत्रवधू है । जब तक मैं न आऊँ अपने गृह में इसकी धर्मपूर्वक रक्षा कीजिये । इसको सुनकर राजा ने अपनी पुत्री को बुलाकर उसे उस वधू को सौंप दिया और वह ब्राह्मण भी अपने घर चला गया । १-१३। आधी रात के समय उस रमणी ने राजकन्या से कहा—सखि ! तुम्हारा मुख म्लान क्यों है, मुझे सत्य बताओ ! उसने कहा—मेरे हृदय में सुदेव नामक ब्राह्मण नित्य निवास करता है, अतः सखे ! उसी के वियोग-व्यथा से पीड़ित रहती हूँ । उसने कहा सुभ्रु ! यदि मैं उस श्रेष्ठ ब्राह्मण सुदेव को तुम्हारे पास पहुँचा दूँ, तो मुझे क्या (पुरस्कार) दे सकोगी । उसने कहा द्विजभामिनी ! मैं तुम्हारी सर्वदा दासी रहूँगी । यह सुनकर उसने अपने मुख से उस यंत्र को निकालकर पूर्व शरीर की

चतुर्मास्यो भवद्गर्भस्तस्मिन्काले तु भो नृप ॥१८
अमात्यतनयो विप्रस्त्रीरूपं प्रति मोहितः । तदा मरणसम्पन्नं ज्ञात्वा तं मदनालसम् ॥१९
मन्त्री स्नेहाच्च बहुधा सञ्चिन्त्य हृदि पण्डितैः । तस्मै समर्पयामास तां नारीं मन्त्रसम्भवाम् ॥२०
साह भोऽमात्यतनय त्रिमासं तीर्थमण्डले । संस्नाहि तर्हि मे योग्यो भविष्यसि तथा कुरु ॥२१
तथा मत्वा मन्त्रिसुतो नम्रात्मा मदनालसः । तीर्थान्तरं गतःसोऽपि सुदेवस्तस्य योषितम् ॥२२
भूपकान्तिं कामवशां चालिलिङ्ग स कामुकः । सा तु गर्भं दधाराशु द्विमासस्य द्विजेन वै ॥२३
सुदेवो मानुषो भूत्वा मूलदेवगृहं ययौ । सर्वं निवेदयामास यथाजातं नृपालये ॥२४
मूलदेवः प्रसन्नात्मा शशिनं नाम मित्रकम् । विंशद्वर्षतरं कृत्वा स्वयं वृद्धस्य रूपवान् ॥२५
राज्ञे निवेद्य तत्सर्वं वधूं मे देहि भूपते । तदा तु स नृपो भीत्या तं प्राह श्लक्ष्णया गिरा ॥२६
मन्त्री राजकरो नाम तत्पुत्रो मदनालसः । दृष्ट्वा तव वधूं रम्यां मुमोह मरणोन्मुखः ॥२७
स्वपुत्रस्य वियोगेन स मन्त्री च तथेदृशः । तथाहं ब्राह्मणान्वृद्धान्पृष्ट्वा तस्मै च तामदाम् ॥२८
यथा प्रसन्नो हि भवान्कुरु त्वं च तथाविधम् । मूलदेवस्तु नृपतिं प्रोवाच विषमुद्गिरन् ॥२९
देहि भूप सुतां मह्यं तत्पुत्रस्य सुखाय वै । तथैव मत्वा स नृपः सुतां चन्द्रावलीं शुभाम् ॥३०
दत्त्वा च वेदविधिना बहुधा द्रव्यसंयुताम् । स्वयं चकार राज्यं वै ब्रह्मदोषविवर्जितः ॥३१
शशी तु भूपतेः कन्यां गृहीत्वा स्वगृहं ययौ । सुदेवस्तु तदा दुःखी मूलदेवमुवाच ह ॥३२

प्राप्ति की और उसके साथ रमण करना आरम्भ किया ।१-१७। नृप ! वह कुमारी चारमास की गर्भवती हो गई । उस समय मंत्री का पुत्र उस ब्राह्मण पत्नी को देखकर मोहित हो गया था । उस मंत्री पुत्र मदनालस को निष्प्राण होने की भाँति देखकर मंत्री के स्नेहवश राजा ने हृदय में विचारते हुए पण्डितों की सम्मति से उस मंत्र संभूत नारी को उसे समर्पित कर दिया । अनन्तर उस ब्राह्मण स्त्री ने उससे कहा—अमात्य पुत्र ! तीन मास तक आप तीर्थों में स्नान करते हुए मेरे अनुरूप योग्य होने का प्रयत्न कीजिये । उसे स्वीकार कर मंत्री पुत्र मदनलालस ने विनम्रतया तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया । पश्चात् उस कामुक ने उसकी पत्नी का जो रानी के समान सुन्दरी एवं कामपीड़ित थी, उपभोग करके उसे भी दो मास की गर्भवती बना दिया । पश्चात् मनुष्यरूप धारणकर उसने मूलदेव के घर पहुँचकर उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । प्रसन्न होकर मूल देव ने उस शशी नामक मित्र को बीस वर्ष का युवक और स्वयं वृद्ध का रूप धारणकर राजा के पास पहुँचा । उन्होंने कहा—भूपते ! मेरी पुत्रवधू प्रदान कीजिये । उस समय भयभीत होकर राजा ने नम्रता पूर्वक कहा—राजकर नामक मंत्री का पुत्र मदन लालस उस अधिक सुन्दरी वधू को देखकर मोहित हो गया था । उसके लिए उसे मरणासन्न देखकर मंत्री ने अपने पुत्र के वियोग का कारण मुझसे कहा मैंने वृद्ध ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्तकर उसे उसको सौंप दिया। अब आप जिस भाँति प्रसन्न हो सके मुझे आदेश दें । मूलदेव ने विषपूर्ण शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा—राजन् ! मेरे पुत्र के सुखार्थ आप अपनी कन्या प्रदान करें । उसे स्वीकार करके राजा ने चन्द्रावली नामक अपनी पुत्री को अनेक भाँति के द्रव्यों समेत वैदिक विधान द्वारा उन्हें प्रदानकर उपस्थित ब्रह्मदोष से मुक्त होकर राज्य का उपभोग किया । शशी राजकन्या को साथ लेकर अपने घर चला गया । उस समय

मदीयेयं नृपसुता भोगपत्नी महोत्तमा । तच्छ्रुत्वा मूलदेवस्तु विस्मितःस तथाकरोत् ।।३३
इत्युक्त्वा नृपतिं प्राह वैतालो रुद्रकिङ्करः । कस्मै प्राप्ता नृपसुता धर्मतस्तद्वदस्व मे ।।३४

राजोवाच

पितामात्राज्ञया पुत्री देवानां सन्मुखे स्थिता । यस्मै निवेदिता तस्मै स योग्या धर्मतः सदा ।।३५
शास्त्रेषु कथितं देव स्त्रीरत्नं सर्वदैव हि । यथाक्षेत्रं भुवि ख्यातं बीजमन्येन रोपितम् ।।३६
तत्क्षेत्रं कृषिकारस्य बीजदातुर्न चैव ह । तस्माद्वै राजतनया शशिनं वरयिष्यति ।।३७
सुदेवस्य वै तनयो योग्यत्वं हि गमिष्यति ।।३८
इति ते कथितं देव यथा शास्त्रेषु भाषितम् । किं कृतं मन्त्रिपुत्रेण तथैव कथयस्व मे ।।३९
इति श्रुत्वा स होवाच स पुत्रो मदनालसः । वृन्दावनं शुभं प्राप्य राधाकुण्डे समागतः ।।४०
स स्नात्वा बहुलाष्टम्यां तत्पुण्येन नृपोत्तम । भस्मसादभवत्पापं येन मोहत्वमागतः ।।४१
स्मृत्वा स हृदि गोविन्दं तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।४२

मदनालस उवाच

नमस्ते दयासिन्धवे कृष्णदेव त्वयेदं तत विश्वमम्भोधिरूपम् ।
त्वयैकेन लीलार्थतो देव देव प्रियाराधया सार्द्धमेतद्धि गुप्तम् ।।४३
जगत्यन्तकाले त्वया काममूर्त्या जगत्संहृतं वै नमस्ते नमस्ते ।
मदीया च बुद्धिर्हृषीकेश शुद्धा यथा स्यात्तथैवेश शीघ्रं कुरु त्वम् ।।४४

सुदेव ने दुःखी होकर मूलदेव से कहा—यह राजपुत्री मेरे उपभोगार्थ है । उसे सुनकर मूलदेव ने आश्चर्य प्रकट करते हुए वैसा ही किया । इतना कहकर रुद्रसेवक वैताल ने राजा से कहा—धर्मतः राजकन्या किसे प्राप्त होनी चाहिए मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१८-३४

राजा ने कहा—माता-पिता की आज्ञा प्राप्तकर कन्या देवों के सम्मुख उपस्थित होकर जिसके लिए निवेदित की जाती है, वह धर्मतः सदैव उसी के योग्य रहती है । देव ! शास्त्रों में स्त्रियों को सदैव रत्नरूप बताया गया है, जिस प्रकार पार्थिव क्षेत्रों (खेतों) में बीज का आरोपण किसी दूसरे के द्वारा होने पर वह क्षेत्र किसान का ही रह जाता है, बीज बोने वाले का नहीं । उसी प्रकार राजपुत्री शशी का ही वरण करेगी और उसका गर्भस्थित पुत्र सुदेव को प्राप्त होना चाहिए । देव ! इस प्रकार मैंने शास्त्र विहित नियमों की व्याख्या कर दी । उसने पुनः राजा से कहा—पश्चात् मंत्रिपुत्र ने क्या किया, मुझसे बताइये । ऐसा सुनकर उन्होंने कहा । मंत्रीपुत्र मदनलालस ने वृन्दावन में पहुँचकर बहुलाष्टमी के दिन राधा कुण्ड में स्नान किया । नृपसत्तम ! उसी पुण्य के प्रभाव से उसका वह पाप, जिसके द्वारा वह मोहित हुआ था, भस्म हो गया । उपरांत अपने हृदय में गोविन्द जी का स्मरण करते हुए श्लक्ष्णवाणी से उनकी स्तुति की ।३५-४२

मदनलालस ने कहा—हे कृष्णदेव ! सागर रूप इस विश्व का विस्तार आप ने ही किया है, अतः आप दयासिंधु को नमस्कार है, तथा देवदेव ! अपनी लीला के निमित्त आप एकाकी इसकी रचना करके अपनी प्रेयसी राधा जी के समेत इसकी रक्षा करते हैं, और अन्त समय में आप ही कालमूर्ति होकर इस विश्व का संहार करते हैं, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । हृषीकेश ! मेरी बुद्धि की शुद्धि जिस प्रकार

इति स्तोत्रप्रभावेन देवदेवेन नोचिताः । कामपाशात्तस्य बुद्धिः स क्षत्रीगृहमागयौ ।।४५
रमणीं स्वां समालिङ्ग्य ननन्द मुदितो नृप । विप्रदोषविनाशाय हृदि सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ।।
सुदेवं स समाहूय स्वां स्वसारं ददौ मुदा ।।४६
सुदेवस्तस्य भगिनीं क्षत्रियस्य मदातुराम् । धर्मेणोद्वाह्य स्वं गेहं प्राप्तवान्कामकिङ्करः ।।४७
इति ते कथितं भूप चरित्रं तस्य धीमतः । मूलदेवस्य विप्रस्य तथान्यत्कथयाम्यहम् ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्रशस्य भूपतिं शुद्धं वैतालो रुद्रकिङ्करः । पुनराख्यानकं विप्र वर्णयामास सुन्दरम् ।।१
कान्यकुब्जे महाराज ब्राह्मणो दानशीलकः । बभूव सत्यसन्धश्च देवीपूजनतत्परः ।।
प्रतिग्रहेण यद्द्रव्यं तेन दानमचीकरत् ।।२
कदाचित्तु शरत्काले नवदुर्गाव्रतं ह्यभूत् । न प्राप्तं दानतो द्रव्यं तदा चिन्तातुरोऽभवत् ।।३
किं कर्तव्यं मया चाद्य येन द्रव्ययुतो ह्यहम् । कन्या निमन्त्रिताश्चाद्य कथं ता भोजयाम्यहम् ।।४

हो सके शीघ्रतया वही आप करें । इस स्तोत्र के प्रभाव से देवाधिदेव द्वारा उसकी बुद्धि कामपाश से मुक्त हो गई। पश्चात् वह क्षत्री अपने घर आया। नृप ! अपनी पत्नी का आलिङ्गन करके वह अत्यन्त हर्षित हुआ। उस बुद्धिमान् ने अपने हृदय में विप्रदोष द्वारा विनाश की कल्पना करके उनके प्रसन्नार्थ सुदेव ब्राह्मण को बुलाकर प्रसन्न मुद्रा समेत अपनी भगिनी का पाणिग्रहण उनके साथ कर दिया। सुदेव ने कामकिंकर होने के नाते उसकी मदोन्मत्त भगिनी का पाणिग्रहण धर्मतः सुसम्पन्न करके अपने घर के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार राजा का चरित्र और उस बुद्धिमान् मूलदेव की कथा के बाद अन्य को कथा कहकर बात समाप्त किया।४३-४८

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।१४।

अध्याय १५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—विप्र ! रुद्रगण उस वैताल ने राजा की प्रशंसा करते हुए पुनः एक सुन्दर आख्यान का वर्णन करना आरम्भ किया। महाराज ! कान्यकुब्ज प्रदेश में दानशील ब्राह्मण रहता था। वह सत्यवक्ता एवं देवी जी की पूजा के लिए कटिबद्ध रहता था। प्रतिग्रह (दान) रूप में उसे जो कुछ द्रव्य की प्राप्ति होती थी उसका दान करता था। एक बार शरद काल में उसने नवदुर्गा का व्रत करना आरम्भ किया। एक दिन स्वयं दान करने के लिए उसे दुर्गाव्रत में कहीं से द्रव्य की प्राप्ति न होने के नाते वह चिंतित होने लगा—आज मैं कौन-सा उपाय करूँ जिससे द्रव्य की प्राप्ति हो जाये क्योंकि भोजन के लिए कन्याओं को

इति शोकसमायुक्तस्तदा देवीप्रसादतः । मुद्राः पञ्च तदा प्राप्तास्ताभिर्व्रतमचीकरत् ।।५
निराहारव्रतं तेन कृतं तु नवमाह्निकम् । तेन व्रतप्रभावेन मृतो देवत्वमागतः ।।६
जीमूतकेतुरिति च सोभूद्विद्याधराधिपः । हिमाचलगिरौ रम्ये पुरे विद्याधरे शुभे ।।७
उवास कतिचिद्वर्षान्दिव्यभोगप्रभोगवान् । तत्र कल्पद्रुमं नित्यं पूजयामास भक्तितः ।।८
तेन वृक्षप्रभावेन जातः पुत्रो महोत्तमः । सर्वाकलासु निपुणो नाम्ना जीमूतवाहनः ।।९
स वै पूर्वभवे राजन्मध्यदेशे महोत्तमे । क्षत्रियः शूरसेनाख्यो बभूव वसुधाधिपः ।।१०
एकदा मृगयाकेलिलोलुपः स महीपतिः । आप्तवान्उत्पलारण्यं यत्र बाल्मीकिरास्थितिः ।।११
चैत्रशुक्लनवम्यां तु न कृतं जीवघातनम् । उत्सवं रामदिवसे चकार विधिवन्नृपः ।।१२
बाल्मीकेश्च कुटीमध्ये रात्रौ जागरणं कृतम् ।।१३
श्रुता राममयी गाथा तस्य पुण्यप्रभावतः । विद्याधरत्वमापन्नो मुमुदे तत्र शक्रवत् ।।१४
कल्पवृक्षस्य वै पूजा कृता तेन महात्मना । वर्षान्तरे द्रुमः प्राह वरं वरय सत्तम ।।१५
स तमाह महावृक्ष मदीयं नगरं शुभम् । धनधान्यसमायुक्तं यथैव स्यात्तथा कुरु ।।१६
इत्युक्ते सति वृक्षेण नगरं भूपतेः समम् । कृतं तदा न कोऽप्यासीद्यो मन्येत्पार्थिवाश्रयम् ।।१७
सर्वे ते राजतुल्याश्च कल्पवृक्षप्रसादतः । तदा तौ तु पितापुत्रौ तपसोऽर्थे वनं गतौ ।।१८

निमंत्रित किया है आज उन्हें कैसे भोजन कराऊँगा । इस प्रकार शोक करते हुए उसे देवी जी की कृपावश पाँच रूपयें की प्राप्ति हो गई, जिससे उसका व्रत समाप्त हो सका ।१-५। उसने नव दिन तक निराहार रहकर उस व्रत को पूरा किया । उस व्रत के प्रभाव से वह प्राण परित्याग के अनन्तर देवयोनि में उत्पन्न होकर जीमूतकेतु नामक विद्याधरों का अधिनायक हुआ । हिमाचल पर्वत के उस रमणीक विद्याधर नगर में दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए उसने कुछ वर्षों का समय व्यतीत किया । वहाँ वह भक्तिपूर्वक नित्य कल्पवृक्ष की पूजा करता था । उस वृक्ष की कृपावश उसके उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सम्पूर्ण कलाओं में निपुण था एवं जीमूतवाहन उसका नाम था । राजन् ! पूर्वजन्म में वह उस परमोत्तम मध्यदेश में शूरसेन नामक क्षत्रिय राजा था । एकबार वह राजा मृगया की क्रीडा में मुग्ध होकर उस कमलवन में पहुँच गया जहाँ वाल्मीकि ऋषि रहा करते थे । चैत्र शुक्ल की नवमी में उसने कोई जीव हिंसा नहीं की । किन्तु उस राजा ने सविधान उत्सव करके उस रात दिन को व्यतीत किया । महर्षि बाल्मीकि की पर्णकुटी में उसने मध्य-रात्रि तक जागरण करके भगवान् रामचन्द्र की गाथाओं का श्रवण किया । जिसके पुण्य के प्रभाव से विद्याधर होकर वह इन्द्र की भाँति सुखी जीवन व्यतीत करने लगा । उस महात्मा ने एक वर्ष तक कल्पवृक्ष की पूजा की इसके उपरांत उसने कहा—सत्तम ! वर की याचना करो।६-१५। उसने कहा—महावृक्ष ! मेरे उस शुभ नगर को धन धान्य-पूर्ण जिस भाँति हो सके बनाइये । ऐसा कहने पर उस वृक्ष ने उस नगर को राजा के नगर की भाँति बना दिया । जो किसी राजा के आश्रित रह रहा था (उस वृक्ष के प्रभाव से) स्वयं राजा वन बैठा । उस नगर में कल्पवृक्ष के प्रभाव से सभी राजा की भाँति सुखी थे । उस समय वे पिता पुत्र दोनों तप करने के लिए बन चले गये । मलय पर्वत के उस रमणीक स्थान में

मलयाद्रौ महारम्ये तेपतुर्बहुलं तपः । एकस्मिन्दिवसे राजन्मलयध्वजभूपतेः ॥१९
कमलाक्षीति विख्याता कन्या च शिवमंदिरे । स्वसख्या सहिता प्राप्ता शिवपूजनतत्परा ॥२०
जीमूतवाहनश्चैव पूजार्थे मन्दिरं ययौ । बालां ददर्श दिव्याङ्गीं सर्वभूषासमन्विताम् ॥२१
तस्या दर्शनमात्रेण कामबाणेन पीडितः । मनसा कामदेवं तं तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥२२

जीमूतवाहन उवाच

मदनाय नमस्तुभ्यं कृष्णपुत्राय ते नमः । शम्बरप्राणहन्त्रे च चतुर्व्यूहाय ते नमः ॥२३
पंचबाणाय कामाय प्रद्युम्नाय नमो नमः । मद्योग्यां कुरु सुश्रोणीं कामिनीं कमलाननाम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्मकरध्वजदेवता । मोहयित्वा च पितरं तद्विवाहमकारयत् ॥२५
विश्वावसुरिति ख्यातस्तस्य भूपस्य वै सुतः । भगिनीपतिना सार्द्धं स ययौ गन्धमादनम् ॥२६
नरं नारायणं नत्वा गरुडोत्तुङ्गमाययौ । तदा नागस्य वै माता शङ्खचूडस्य भो नृप ॥२७
रुरोद बहुधा तत्र यत्र जीमूतवाहनः । दुःखितः स जगामाशु दयालुर्दीनवत्सलः ॥२८
वृद्धामाश्वास्य पप्रच्छ केनेदं दुःखमागतम् । साह मे तनयो देव गरुडास्ये गमिष्यति ॥२९
तद्वियोगेन दुःखार्ता विलपामि महाकुला । इति ज्ञात्वा स नृपतिर्गरुडोत्तुङ्गमाययौ ॥३०
गरुडोऽपि गृहीत्वा तं नभोमार्गमुपागमत् । तस्याङ्गदोऽसृजा लिप्तो न्यधात्तत्र भामिनी ॥३१
कमलाक्षी तु वियति स्थितं गरुडभक्षितम् । विलोक्य चारुदद्गाढं पतिदुःखेन दुःखिता ॥३२

पहुँचकर वे दोनों घोर जप करने लगे। राजन् ! एक दिन राजा मलयध्वज की कमलाक्षी नामक कन्या अपनी सहेलियों के साथ शिव जी की आराधना हेतु उनके मंदिर में आई। जीमूतवाहन भी पूजार्थ उसी मन्दिर मे पहुँचे। वहाँ उस दिव्य अंगवाली कन्या को देखा, जो सम्पूर्ण उपमाओं से युक्त थी।१६-२०। उसे देखते ही कामबाण से पीडित होकर उन्होंने कारुणिक स्वरों द्वारा कामदेव की मानसिक आराधना की।

जीमूतवाहन बोला—मदन को नमस्कार है, कृष्ण पुत्र को नमस्कार है। शंबर के प्राण का अपहरण करने वाले एवं चारों व्यूहरूप तुम्हें नमस्कार है। पाँचोबाण, काम, एवं प्रद्युम्न को बार-बार नमस्कार है, सुन्दर श्रोणी तटवाली, तथा उस कमलमुखी कामिनी को मेरे अधीन कीजिये। इसे सुनकर उस समय भगवान् मकरध्वज देव ने उसके पिता को मोहित करके उसका विवाह संस्कार सुसम्पन्न करा दिया। विश्वावसु नामक वहाँ का राजपुत्र अपने भगिनी पति (जीजा) के साथ गंधमादन पर्वत पर गया। वहाँ नर-नारायण को नमस्कार करके गरुडोतुङ्ग पर पहुँचा। राजन् उस समय शंखचूड नामक सर्प की माता जीमूतवाहन के सम्मुख अधीर होकर रुदन करने लगी। दयालु दीनवत्सल उस जीमूत वाहन ने उस वृद्धा को आश्वासन देकर उससे पूछा तुम्हें क्या कष्ट है ? उसने कहा—मेरा पुत्र गरुड का भक्ष्य हो जायगा। उसी के वियोग दुःख से अधीर होकर रुदन कर रही हूँ। राजन् यह जानकर वह भी उसी गरुडोतुङ्ग नामक स्थान पर आया।२३-३०। गरुड उसे ग्रहण कर आकाश मार्ग में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने उस स्त्री को जिसके शरीर में उसके पति का रक्त आदि लगा हुआ था, उतार दिया। उस आकाश में स्थित होकर वह स्त्री गरुड द्वारा भक्षित अपने पति को देखकर पति दुःख से दुःखी होती हुई

तदा तु गरुडस्त्रस्तस्तत्रागत्य त्वरान्वितः । जीमूतवाहनं प्राह कस्मात्त्वं मम भक्षितः ।।३३
स होवाच प्रभो मेऽद्य वचः शृणु महामते । शङ्खचूडस्य जननी महादुःखेन दुःखिता ।।३४
तस्याः पुत्रस्य रक्षार्थं सम्प्राप्तोऽहं तवान्तिकम् । इत्युक्ते सति भूपाल शङ्खचूडश्च पन्नगः ।।३५
तद्बालस्यैव दुःखेन दुःखितः शत्रुमाप्तवान् । मां प्रभक्ष कृपासिन्धो त्वदाहारार्थमागतम् ।।३६
सन्त्यज्य मानुषं दिव्यं कुर्वाहारं महामते । तदा प्रसन्नो गरुडो ददौ तस्मै वरत्रयम् ।।३७
जीमूतवाहनायैव विद्याधरसुताय च । शङ्खचूडकुलं नाहं भक्षयिष्ये कदाचन ।।३८
त्वं तु विद्याधरपुरे प्राप्य राज्यं महोत्तमम् । सुभोजयित्वा लक्षाब्दं ततो वैकुण्ठमेष्यसि ।।३९
इत्युक्त्वान्तर्दधौ देवः स पित्रा राज्यमाप्तवान् । स्वपत्न्या सह राज्याङ्गं भुक्त्वा वैकुण्ठमाययौ ।।४०
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह नम्रधीः । तेषां मध्ये महाराज कस्य प्राप्तं महाफलम् ।।४१

राजोवाच

शङ्खचूडस्य सम्प्राप्तं जीवदानमहाफलम् । नृपस्यैवोपकारं च स्वभावो विधिना कृतः ।।४२
पतिव्रताप्रभावेन जीवदानेन भूपतेः । सन्तुष्टो गरुडो जातस्तस्य किं तर्हि तत्फलम् ।।४३
निर्भयः शङ्खचूडस्तु स्वशत्रुं प्रति चागमत् । शरीरमर्पयित्वा तं ततः प्राप्तं महाफलम् ।।४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

प्रगाढ़ रुदन करने लगी । उस समय भयभीत होकर गरुड भी वहाँ शीघ्र पहुँचकर जीमूतवाहन से बोले कि—तुम मेरे भक्ष्य कैसे हो गये । उन्होंने कहा—महामते, सुनो, मैं बता रहा हूँ । शंखचूड़ की माता अत्यन्त दुःख से दुखी थी । उसके पुत्र के रक्षार्थ मैं आप के पास पहुँचा हूँ । राजन् ! ऐसा कहने पर शंखचूड़ नामक नाग ने उस सर्प के दुःख से दुःखी होकर अपने शत्रु गरुड के पास जाकर कहा—कृपासिंधो ! मेरा भक्षण कीजिये, मैं आपके भोजनार्थ आया हूँ । महामते ! इस मनुष्य का परित्याग कर इस दिव्य आहार को अपनाइये । उस समय प्रसन्न होकर गरुड ने तीन वर प्रदान किया । उन जीमूतवाहन ने विद्याधर देव से कहा—मैं शंखचूड के कुल का भक्षण कभी नहीं करूँगा । तुम विद्याधर के नगर में उस महान् उत्तम राज्य की प्राप्ति करो । तथा एक लक्ष वर्ष तक उसका उपभोग करके ने उपरांत वैकुण्ठ की प्राप्ति करोगे । इतना कहकर गरुड अन्तर्हित हो गये । और वह अपने पिता के समेत उस राज्य की प्राप्ति किया । पश्चात् अपनी रानी के समेत उस राज्य का उपभोग करने के अनन्तर उन्होंने वैकुण्ठ की प्राप्ति की । इतना कहकर वैताल ने नम्रता पूर्वक राजा से कहा—महाराज ! उनमें किसे उस महान् फल की प्राप्ति हुई ।३१-४१

राजा बोले—उस जीवदान का महाफल शंखचूड को प्राप्त हुआ क्योंकि ब्रह्मा ने राजाओं को परार्थ करना स्वाभाविक बताया है । और पतिव्रता के प्रभाव से राजा को जीवदान प्राप्त हुआ तथा उसी से गरुड भी प्रसन्न हुए, किन्तु उसका कुछ फल नहीं है । अतः निर्भय होकर शंखचूड के अपने शत्रु के सम्मुख जाकर अपनी शरीर के समर्पण करने से उन्हें उस महाफल की प्राप्ति हुई ।४२-४४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अथ षोडशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्
सूत उवाच

पुनः प्राह स वैतालो भूपतिं ज्ञानकोविदम् । चन्द्रशेखरभूपस्य नगरी दक्षिणे स्थिता ।।१
रत्नदत्तोऽवसद्वैश्यो धर्मज्ञो धनधान्यवान् । कामावरूथिनी तस्य सुता जाता महोत्तमा ।।२
तद्रूपमुत्तमं दृष्ट्वा स वैश्यो भूपतिं प्रति । उवाच भो महाराज सुता मम सुरेप्सिता ।।३
तां गृहाण कृपासिन्धो त्वद्योग्या विधिनिर्मिता । इति श्रुत्वा तु वचनं भूपतिश्चन्द्रशेखरः ।।४
मन्त्रिणं विदुरं प्राह त्वं च गच्छ महामते । यथायोग्यं हि तद्रूपं मां निवेदय सत्वरम् ।।५
इत्युक्त्वा स ययौ गेहं भूपतिश्चन्द्रशेखरः । श्यामला नाम तत्पत्नी ज्ञात्वा राजानमागतम् ।।६
धूपदीपादिभिः पुष्पैर्यथायोग्यैः समार्चयत् । एतस्मिन्नेव काले तु गौश्च शार्दूलपीडिता ।।७
हम्भाशब्देन महता विललाप भयातुरा । तच्छ्रुत्वा स तु भूपालः खड्गहस्तः समभ्यगात् ।।८
शीघ्रं हत्वा तु शार्दूलं मुमोद नृपतिस्तदा । मुकुलो दानवो नाम तद्देहाद्रूपमाप्तवान् ।।९
भूपतिं प्राह नम्रात्मा धर्मज्ञं चन्द्रशेखरम् । त्वया विमोचितो नाथ यास्यामि वरुणालयम् ।।१०
प्रह्लादस्यैव शापने व्याघ्रदेहत्वमागतः । परिक्रम्य ययौ दैत्यः प्रह्लादं प्रति सत्वरः ।।११

अध्याय १६
कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस वैताल ने पुनः ज्ञाननिपुण उस राजा से कहा—दक्षिण प्रदेश में राजा चन्द्रशेखर की राजधानी है जिसमें रत्नदत्त नामक वैश्य जो धर्मज्ञ एवं धन धान्य से सम्पन्न था निवास करता था। कामावरूथिनी नामक परम सुन्दरी कन्या उसके उत्पन्न हुई। उसके उत्तम सौन्दर्य को देखकर उस वैश्य ने राजा से कहा—महाराज ! मेरी पुत्री परम सुन्दरी है, जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं। कृपासिन्धो ! आप उसे स्वीकार करे, क्योंकि ब्रह्मा ने आप के अनुरूप ही उसकी रचना की है। इसे सुनकर राजा चन्द्रशेखर ने अपने विदुर नामक मंत्री से कहा—महामते ! उसका सौन्दर्य देखकर आप मुझसे शीघ्र उसका यथायोग्य वर्णन करो। इतना कहकर राजा चन्द्रशेखर अपने निवास भवन चले गये। श्यामला नामक उनकी पत्नी ने राजा का आगमन जानकर धूप, दीप, एवं पुष्पादि से उनकी यथोचित पूजा सुसम्पन्न की। उसी समय वाघ से पीड़ित होकर किसी गौ ने अपने रंभने वाले शब्द के द्वारा ऊँचे स्वर से विलाप करना आरम्भ किया। उसे सुनकर राजा हाथ में खड्ग लेकर वहाँ पहुँच गया। शीघ्रता से उस वाघ का वध करके वह राजा प्रसन्नता प्रकट कर रहा था कि उसी बीच मुकुल नामक दानव उस बाघ के शरीर से अपने रूप की प्राप्ति करके नम्रतापूर्वक राजा चन्द्रशेखर से कहने लगा—नाथ ! तुम्हारे द्वारा मुक्ति प्राप्तकर मैं वरुण के गृह जा रहा हूँ। १-१०। प्रह्लाद के शाप प्रदान करने से मुझे बाघ की देह प्राप्त हुई थी। उपरांत वह दैत्य परिक्रमा करके प्रह्लाद के समीप चला गया और राजा

नृपतिर्गृहमागत्य सुष्वाप परया मुदा । प्रभाते बोधितो राजा सभायां स्वयमागमत् ॥१२
नृपोक्तः स ययौ तत्र यत्र कामावरूथिनी । दिव्यमूर्तिमयीं दृष्ट्वाचिन्तयत्स स्वमानसे ॥१३
अस्या मूर्तिप्रभावेन राजाऽसौ मोहमाप्स्यति । इति ज्ञात्वा नृपं प्राह सैव त्वद्योग्यका न हि ॥१४
तथा मत्वा स नृपतिर्न विवाहमथाकरोत् । रत्नदत्तस्य भूपस्य सेनायाः पतये ददौ ॥१५
बलभद्रस्य सा पत्नी बभूव वरवर्णिनी । एकदा नृपतिस्तां वै दृष्ट्वा कामावरूथिनीम् ॥१६
मोहितः कामबाणेन मूर्च्छितः पतितो भुवि । तदा सेनापतिस्तूर्णं नृपमुत्थाप्य सत्वरम् ॥१७
शिबिकां चैव संस्थाप्य सभायां च समैरयत् । तदा प्रबुद्धो नृपतिः प्राह सेनापतिं मुदा ॥१८
कस्येयं सुन्दरी भार्या कुतो जाता महोत्तमा । बलभद्रस्तु तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह नम्रधीः ॥१९
ममेयं सुन्दरी नारी रत्नदत्तस्य सा सुता । राज्यभङ्गभयान्मन्त्री न रूपं त्वयि वर्णितवान् ॥२०
मम दासस्य या पत्नी त्वद्योग्या भूपते सदा । तदेच्छां पूरयिष्यामि तां गृहाण कृपानिधे ॥२१
इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षो भूपतिस्तमुवाच ह । तवेयं धर्मतो भार्या प्राप्ता सुन्दररूपिणी ॥२२
गृह्णामि यदि तां देवीं नरके यमकिंकराः । पातयित्वा महादुःखं भजयिष्यन्ति तर्हि भोः ॥२३
इत्युक्त्वा भूपतिस्तूर्णं विरहाग्निप्रपीडितः । मरणं प्राप्तवान्राजा गतो धर्मपुरान्तिके ॥२४
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपं प्राह शृणुष्व भोः । मृते राजनि तत्पत्नी सती भूत्वा प्रदृश्यते ॥२५
सेनापतिस्तु तत्रैव भस्मसादभवत्क्षणात् । कामावरूथिनी देवी भस्म कृत्वा कलेवरम् ॥२६

भी अपने महल में पहुँच कर परमानन्द में निमग्न होते हुए शयन किये । प्रातः काल प्रवोधित होने (जगाये जाने) पर राजा राजसभा में आये । उधर राजा के कहने पर वह मंत्री कामावरूथिनी नामक उस कन्या के पास जाकर उस दिव्य सौन्दर्य को देखकर अपने मन में विचार करने लगा कि—इस रूप को देखकर राजा अवश्य मोहित हो जायगा । अतः उसने राजा से कहा—वह कन्या आप के योग्य नहीं है । राजा उसकी बात स्वीकार करके उसके साथ विवाह नहीं किया । पश्चात् उस उत्तमाङ्गी कन्या का पाणिग्रहण राजा रत्नदत्त के बलभद्र नामक सेनापति के साथ सम्पन्न हुआ ।११-१५। एक बार राजा उस कामावरूथिनी को देखकर कामबाण से मुग्ध होकर पृथिवी पर गिर पड़े ! उस समय सेनापति ने शीघ्र राजा को पालकी में बैठाकर राजसभा में पहुँचाया । वहाँ चेतना आने पर राजा ने प्रसन्नतया सेनापति से कहा—यह सुन्दरी किसकी पत्नी एवं कहाँ उत्पन्न हुई है ? इसे सुनकर बलभद्र ने नम्रता प्रकट करते हुए कहा—यह सुन्दरी मेरी पत्नी एवं रत्नदत्त की पुत्री है, राज्य के भंग हो जाने के भय से मंत्री ने उसके रूप का वर्णन आप से नहीं किया । किन्तु राजन् ! मुझ सेवक की पत्नी सदैव आप के योग्य ही है अतः कृपानिधे ! उसका ग्रहण करें मैं आपकी इच्छापूर्ति करने को तैयार हूँ । इतना कहने पर राजा क्रोध के नाते रक्तनेत्र करके कहने लगा—यह सुन्दरी धर्मतः तुम्हारी ही पत्नी है, इसलिए यदि मैं इस देवी का ग्रहण करता हूँ तो यमदूत मुझे नरक में गिरा देंगे उस समय मुझे अत्यन्त दुःख का अनुभव करना पड़ेगा। ऐसा कह राजा उसकी वियोग अग्नि से पीड़ित होकर शीघ्र प्राण-परित्याग करके धर्मपुर पहुँच गया।१६-२४। इतना कहकर वैताल ने राजा से कहा राजा के निधन होने पर उनकी पत्नी रानी सती हो गई और सेनापति भी उसी समय वहाँ भस्म हो गया। पश्चात् कामावरूथिनी देवी ने भी अपनी देह को

स्वर्गं गतास्तु ते सर्वे कस्य पुण्याधिकं मतम् । स होवाच च वैतालं राजा धर्माधिको मतः ॥२७
मरणं किङ्करस्यैव योग्यं भूपतिहेतवे । पतिव्रताया मरणं पतिसङ्गेन योग्यकम् ॥२८
दत्ता यत्किङ्करेणैव सुन्दरी नृपहेतवे । धर्मभीत्या न नृपतिस्तामगृह्णात्स कामुकः ॥२९
जित्वा कामं तथा पाल्यं धर्मं तस्मान्नृपेऽधिकम् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम षोडशोऽध्यायः । १६

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्रोवाच वैतालस्तदा ब्राह्मणरूपवान् । शृणु भूप महाभाग कथां तव मनोरमाम् ॥१
उज्जयिन्यां महाभाग महासेनो नृपोऽभवत् । तस्य राज्येऽवसद्विप्रो देवशर्मेति विश्रुतः ॥२
गुणाकरस्तस्य सुतो मद्यमांसपरायणः । द्यूतेन संक्षयं वित्तं तस्य पापस्य चाभवत् ॥३
बान्धवैः स परित्यक्तो बभ्राम वसुधातले । कदाचिद्दैवयोगेन सिद्धाश्रममुपागमत् ॥४

भस्म करके उन सब के साथ में स्वर्गपुरी को प्रस्थान किया । किन्तु, इन सब में किसका पुण्य अधिक है ? राजा ने वैताल से कहा—राजा के लिए सेवक का मरण प्राप्त होना धर्मतः अधिक (श्रेष्ठ) है । और पतिव्रता का पति के साथ प्राण परित्याग करना उचित ही है एवं सेवक ने राजा को अपनी सुन्दरी स्त्री प्रदान किया, पर, धर्मभय के नाते राजा कामुक होने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत काम को जीतकर धर्म का पालन किया । अतः राजा का धर्म अधिक है ।२५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस ब्राह्मण रूपधारी वैताल ने पुनः राजा से कहा—राजन् महाभाग ! मैं तुम्हें मनोहर कथा सुना रहा हूँ सुनो ! महाभाग ! उज्जयिनी नगर में महासेन नामक राजा रहता था । उसी के राज्य में देव शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ऐसा बताया जाता है । गुणाकर नामक उसी का पुत्र था। नित्य मद्य-मांस का सेवन करता था। उस पापी ने द्यूत (जूआ) खेलकर अपना सम्पूर्ण धन नष्ट कर दिया । पश्चात् बन्धुओं द्वारा त्याग करने पर पृथ्वी में चारों ओर घूमने लगा । एक बार वह दैवयोग से

कपर्दी नाम तं योगी कपालान्नैरपूजयत् । ज्ञात्वा पैशाचमन्नं स बुभुक्षुर्न गृहीतवान् ।।५
तदातिथ्यं तदर्थं स यक्षिणीं समुपाह्वयत् । तया रात्रौ महानन्दं प्राप्तवान्स द्विजः शयी ।।६
प्रातः काले तु संप्राप्ते कैलासं यक्षिणी गता । स द्विजस्तद्वियोगेन योग्यन्तिकमुपाययौ ।।७
कपर्दी प्रददौ तस्मै विद्यां यक्षिणिकर्षिणीम् । चत्वारिंशद्दिनान्येव निशीथे जलमध्यगः ।।८
स जजाप शुभं मन्त्रं न प्राप्तां कामचारिणी । तदा योग्याज्ञया विप्रः स्वयं तु ममतां त्यजन् ।।९
प्राप्तवान्पितरौ नत्वा स्वगेहे निवसन्निशि । प्रातः संन्यासिवद्भूत्वा कुलैश्च रुदितैर्द्विजः ।।१०
प्रतिबोधिवनं प्राप्तस्तच्छिष्यत्वमुपाययौ । पञ्चाग्निमध्ये स स्थित्वा तन्मन्त्रमजपच्छुचिः ।।११
न प्राप्ता योगिनी देवी तदा चिन्तातुरोऽभवत् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं ज्ञानकोविदम् ।।१२
पुनराह कथं देवी न प्राप्ता यक्षिणी प्रिया । श्रुत्वाह नृपतिर्विप्र वैतालं रुद्र किङ्करम् ।।१३
त्रिविधं कर्म भो विप्र सिद्ध्यर्थे साधकाय वै ! मनोवाग्विहितं कर्म परलोके सुखप्रदम् ।।१४
सुन्दराङ्कृतं ज्ञेयं पुनर्वाक्कायसम्भवम् । किञ्चित्सिद्धिप्रदं ज्ञेयमिह जन्मनि वीक्षितम् ।।१५
परत्र च भुवर्लोके पिण्डदेहकृतं स्मृतम् । मनः कायेन सम्भूतं परजन्मनि राज्यदम् ।।१६
मनोवाक्कायसम्भूतमिह जन्मनि सिद्धिदम् । परत्र परमां सिद्धिं तत्कर्म प्रददाति हि ।।१७
तस्मात्कर्तव्यमेवेह त्रिविधं कर्म साधकैः । अन्यवित्तेन स द्विजः कृतवान्कर्म मन्त्रजम् ।।

सिद्धाश्रम में पहुँच गया ।१-५। वहाँ कपर्दी नामक योगी रहता था । उसने कपाल में अन्न रखकर उससे उस अतिथि की सेवा करनी चाही, किन्तु उसे पिशाच का पुत्र समझकर उसने भूखा रहने पर भी उसका ग्रहण् नहीं किया । पश्चात् उसने उसकी आथित्य सेवा के निमित्त यक्षिणी का आह्वान किया । उस रात्रि ब्राह्मण ने उसके साथ शयनादि करके महान, आनन्द की प्राप्ति की । प्रातःकाल होने पर वह यक्षिणी कैलास पर्वत पर चली गई । उपरांत उसके वियोग से दुःखी होकर वह उस योगी के पास गया । कपर्दी ने उसे यक्षिणी का आकर्षण करने वाली विद्या प्रदान किया । मध्य रात्रि में वह जल के भीतर जाकर उस शुभ मंत्र का जप करने लगा । इस प्रकार चालीस दिन तक उस मंत्र का जप करने पर भी वह यक्षिणी की प्राप्ति न कर सका । उस समय योगी की आज्ञा प्राप्तकर वह ब्राह्मण माया-मोह के त्याग पूर्वक अपने माता पिता का अभिवादन करके प्रातःकाल संन्यासी का वेष धारण करके रोते कलपते अपने परिवारों को छोड़कर प्रतिबोधि वन में चला गया ।६-११। वहाँ उनके शिष्य होने के उपरांत पंचाग्नि के मध्य में स्थित होकर आचरण पूर्वक वह उस मंत्र का जप करने लगा वहां भी योगिनी की प्राप्ति न होने पर उसे चिंता होने लगी । इतना कहकर वैताल ने ज्ञाननिपुण राजा से कहा—उसे वह यक्षिणी देवी प्रेयसी के रूप में क्यों नहीं प्राप्त हुई ! इसे सुनकर राजा ने उस रुद्र सेवक वैताल से कहा—विप्र ! साधक को सिद्धि प्राप्ति करने के लिए तीन प्रकार का कर्म बताया गया है—मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, वाणी और शरीर द्वारा किये गये कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, मन और काय द्वारा किये गये कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में राज्य की प्राप्ति होती है । मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है।१२-१७। इसलिए साधकों को इस तीन प्रकार के कर्म को

अतोऽन्यजन्मनि प्राप्तो यक्षत्वं तत्परो द्विजः ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालः प्रसन्नवदनोऽभवत् ॥१९
साधु साध्विति तं प्रोच्य सद्वाक्यैः समपूजयत् । इतिहासं पुनः प्राह परीक्षार्थे नृपाय सः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाप्राज्ञ वैतालस्तं हि सोऽब्रवीत् । सुदक्षो नाम नृपतिर्वसन्कम्बलके पुरे ॥१
न्यायवान्धर्मवाञ्छूरो दाता शिवपरायणः । तस्य राज्येऽवसद्वैश्यो धनाध्यक्ष इति श्रुतः ॥२
तनया सुन्दरी तस्य नाम्ना धनवती शुभा । गौरीदत्ताय वैश्याय पित्रा दत्ता वराङ्गना ॥३
कियता चैव कालेन मोहिनी तत्सुताभवत् । द्वादशाब्दवयस्तस्याः पिता तु निधनं गतः ॥४
तदा धनवती रण्डा निधना पितुरन्तिके । कन्यया सह सम्प्राप्ता निशि मार्गे तमोनये ॥५

सुसम्पन्न करना चाहिए । उस ब्राह्मण ने दूसरे के धन का उपभोग करते हुए उस मंत्र का जप किया था अतः उसे दूसरे जन्म में यक्षत्व की प्राप्ति होगी ।१८

सूत जी बोले—इतना कहने पर वह वैताल हर्षित होकर साधु, साधु कहते हुए उत्तम वाणी द्वारा उसका अत्यन्त सम्मान किया । उपरांत राजा के परीक्षार्थ इतिहास कहना पुनः आरम्भ किया।१९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—शौनक, महाप्राज्ञ ! वैताल ने राजा से कहा—कम्बल नगर में सुदक्ष नामक राजा रहता था, जो न्यायी, धार्मिक, शूर, दानी एवं शिव जी का उपासक था । उसकी राजधानी में धनाध्यक्ष नामक वैश्य रहता था, उसकी धनवती नामक परमसुन्दरी कन्या थी । उस रमणीक कन्या को उसके पिता ने गौरीदत्त वैश्य को प्रदान कर दिया । कुछ समय के अनन्तर मोहिनी नामक कन्या उससे उत्पन्न हुई । उसकी बारहवर्ष की अवस्था होने पर उसके पिता का निधन हो गया । उस समय धनवती पति के निधन होने के नाते निर्धनावस्था में अपनी कन्या समेत अपने पिता के यहाँ जा रही थी । अंधेरी रात में

न्यायशर्मा द्विजः कश्चिद्ब्रह्मस्वस्यापहारकः । नामसत्यत्वभावेन शूल्यां न निधनं गतः ॥६
अकस्माद्वैश्यजा प्राप्ता तत्करं सा तदास्पृशत् । तेन दुःखेन महता रुरोदोच्चैर्द्विजश्च सः ॥७
हा राम कृष्णं प्रद्युम्नानिरूद्धेति पुनः पुनः । श्रुत्वा धनवती दीना को भवानिति साब्रवीत् ॥८
द्विज आह च विप्रोऽहं त्र्यहं शूल्यां निरूपितः । यदि दास्यसि मे कन्यां कोटिस्वर्णं ददामि ते ॥९
श्रुत्वा धनवती तस्मा उद्वाह्य मोहिनीं सुताम् । वटमूले स्थितं द्रव्यं खनित्वा गृहमाययौ ॥१०
मोहिन्यपि पतिं प्राह भवान्मृत्युवशं गतः । कुतो जायेत तनयस्तन्मे ब्रूहि दयानिधे ॥११
द्विजः प्राह शृणु व्यङ्गे यदा ते हृच्छयो भवेत् । तदा त्वं पण्डितं प्राप्य पुत्रमुत्पादयाशु वै ॥१२
इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य यमलोकं गतो द्विजः । नारकीं यातनां नित्यं बुभुजे निन्द्यकर्मजाम् ॥१३
मातुर्गृहे तु सा नारी मोहिनी यौवनान्विता । समयं हृदये कृत्वा तिष्ठन्ती च पुनः पुनः ॥१४
के भोगाश्च किमाश्चर्यं को जागर्ति शयीत कः । पापो व्याधिश्च दुःखं च कुतो जातं हृदि स्थितम् ॥१५
इति श्लोकं द्विजानाह नोत्तरं च ददुर्द्विजाः । मेधावी नाम काश्मीरे स्थितो विप्रः समागतः ॥१६
तामुवाच प्रसन्नात्मा शृणु मोहिनि सुन्दरि । सुगन्धि वनिता वस्त्रं गीतं पानं च भोजनम् ॥
शय्या च भूषणं ज्ञेयो भोगो ह्यष्टविधो बुधैः ॥१७

उसे मार्ग में न्याय शर्मा नामक एक ब्राह्मण मिला, जिसे किसी ब्राह्मण का सर्वस्व का अपहरण करने पर भी अपने नाम की सत्यता के नाते उसे शूली हुई और उसका निधन नहीं हुआ (अर्थात् उसके धन का हरण भी नहीं किया गया) ।१-६। अकस्मात् उसकी पुत्री उसके पास जाकर अपने हांथ से उसके चरण स्पर्श किया कि वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा राम कृष्ण' प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध ! इन्हीं नामों का बार-बार उच्चारण करते हुए रुदन करने लगा । उसे सुनकर वह दीन-कृपणा धनवती उसके समीप जाकर कहने लगी—आप कौन हैं ? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ किन्तु तीन दिन से मेरे मन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है, यदि इस कन्या को मुझे अर्पित कर दो तो मैं तुम्हें कोटि सुवर्ण प्रदान करूँगा । यह सुनकर धनवती ने अपनी मोहिनी नामक पुत्री का विवाह संस्कार उसके साथ सम्पन्न कर दिया । पश्चात् बरगद के नीचे पृथ्वी के भीतर सुरक्षित द्रव्य को खोदकर अपने घर चली आई। मोहिनी ने अपने पति से कहा—दयानिधे आप तो मरणासन्न हो रहे हैं, मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा । ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! जब तुम्हें काम उत्पन्न हो तो तुम किसी पण्डित के पास पहुँचकर उसी द्वारा पुत्र को उत्पन्न करना ।७-१२। इतना कहकर वह ब्राह्मण मरणोपरांत यमलोक में पहुँच गया । वहाँ वह अपने किये हुए निन्दित कर्मों के परिणाम स्वरूप नारकीय यातनाओं का अनुभव करने लगा । अपनी माता के घर में रहकर वह मोहिनी यौवनावस्था प्राप्त होने पर भी अपने पति की प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण करके (अनुचितपथ से) रुक जाती थी । कौन भोग हैं, क्या आश्चर्य है, कौन जागरण करताहै, कौन शयन कर रहा है, पाप, व्याधि एवं दुःख, हृदय में रहकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसी श्लोक का अर्थ वह ब्राह्मण से पूछती थी, पर किसी ने उसका उत्तर न दिया । पश्चात् मेधावी नामक एक काश्मीर निवासी ब्राह्मण वहाँ आया । उसने प्रसन्न होकर उस मोहिनी से कहा—सुन्दरि ! इसका अर्थ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सुगंध, स्त्री, वस्त्र, ज्ञान, पेयपदार्थ, भोजन, शय्या और भूषण इन्हीं आठ प्रकार के भोग को विद्वानों ने बताया है । नित्य प्रति

अहन्यहनि भूतानि म्रियन्ते जनयन्ति[1] च । ममतां यः करोत्येषां तदाश्चर्यं स्मृतं बुधैः ॥१८
यो विवेकं समासाद्य कुरुते कर्मसंग्रहम् । संसारे घोरतमसि स जागर्ति विवेकवान् ॥१९
संसाराजगरं ज्ञात्वा वैराग्यं योऽकरोद्भुवि । औदासीन्यं समाधिं च सुखं शेते हि मानवः ॥२०
सङ्कल्पाज्जायते कामस्ततो लोभः प्रजायते । लोभाज्जातश्च तृष्णायां स पापो निरयप्रदः ॥२१
जलप्रकृत्यां यो जातो रसो रसविकारवान् । रसाज्जातस्य देहेऽस्मिन्व्याधिः कर्मभयोऽशुभः ॥२२
रुद्रात्काल्यां समुद्भूतो मोहो हृदि च लोकहा । स तुष्टाव महादेवीं पत्न्यर्थे सुरपूजिताम् ॥२३
मिथ्यादृष्टिस्ततो जाता मोहस्य दयिताभवत् । तस्मात्स्नेहश्च तत्पत्न्यां जातश्च ममताप्रियः ॥२४
तयोः सकाशात्सञ्जातं दुःखं शोकसमन्वितम् । इति श्रुत्वा तु सा नारी मुमोह वरवर्णिनी ॥२५
मानी शूरश्च चतुरोऽधिकारी गुणवान्सखा । स्त्रीरक्षकश्च पुरुषो वशं नारीं सदा नयेत् ॥२६
तस्यै गर्भं च विप्रोऽसौ दत्त्वा स्वर्णं गृहीतवान् । सापि नारी सुखं लेभे तेन गर्भेण प्रत्यहम् ॥२७
कदाचिद्दशमासान्ते मोहिनीमब्रवीच्छिवः । स्वप्नान्तरे महाराज सापि ज्ञात्वा तथाकरोत् ॥२८
दोलामध्ये सहस्रं च स्वर्णं चैव स्वबालकम् । राजद्वारे स्थापयित्वा सुष्वाप जननी सुखम् ॥२९
शिवेन बोधितो राजा सुतार्थी रुद्रपूजकः । द्विजपुत्रं समालेभे मोहिन्यां जातमुत्तमम् ॥३०

जीव मरते और उत्पन्न होते हैं, इसके लिए जो मोहित होता है विद्वानों ने उसे ही आश्चर्य बताया है ।१३-१८। जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है । संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है । संकल्प से नाम, काम से लोभ और लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है, जो इन्हें अपनाता है, उसे पापी कहा गया है, जो नरकप्रद है । जलप्रकृति से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही रस विकारी होता है, इस देह में उसी रसद्वारा अशुभ कर्म भय की उत्पत्ति होती है, उसे ही व्याधि कहा गया है । रुद्र द्वारा काली में लोक का अपहरण करने वाला मोह हृदय में उत्पन्न हुआ । उन्होंने पत्नी के लिए महादेवी की आराधना की, उससे सुरपूजित मिथ्या दृष्टि उत्पन्न हुई, जो मोह की प्रेयसी कही जाती है । उसी पत्नी से स्नेह और ममता की उत्पत्ति हुई ।१९-२४। इन्हीं दोनों के संगम से शोकपूर्ण दुःख की उत्पत्ति हुई है । इसे सुनकर वह उत्तमांगी मोहिनी मुग्ध हो गई । क्योंकि मानी, शूर, चतुर, अधिकारी, गुणवान् सखा तथा स्त्रीरक्षक पुरुष के वश में स्त्रियाँ सदैव रहती हैं । उस ब्राह्मण ने उसे गर्भवती करने के उपरांत उसका धन ग्रहण करके प्रस्थान किया । पश्चात् वह स्त्री भी उस गर्भ के द्वारा प्रतिदिन सुख का अनुभव करने लगी । दशवें मास के आरम्भ में शिव जी ने उस मोहिनी से कहा—महाराज ! वह स्वप्न की बातें वैसी ही सुसम्पन्न की । पालकी के भीतर एक सहस्र सुवर्ण संपन्न उस बालक को शयन कराकर राजा के दरवाजे पर जाकर उस पुत्र को वहीं रखकर स्वयं भी निद्रित हो गई । उसी समय शिव जी ने उस राजा को जो सुतार्थी एवं रुद्र का उपासक था उस बालक को अपनाने के लिए आदेश दिया । मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न उस ब्राह्मण पुत्र को राजा ने अपना पुत्र

---

१. जायन्त इत्यर्थः ।

कारयित्वा जातकर्म वितताार धनं बहु । हरदत्तश्च नाम्नासीत्सर्वविद्याविशारदः ।।३१
पितुरन्ते च तद्राज्यं प्राप्य धर्मं प्रकाशयन् । गयाश्राद्धं कृतं तेन फल्गूतीरे विधानतः ।।३२
त्रयो हस्तास्तदा जाताः स राजा विस्मितोऽभवत् ।।३३
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह भो नृप ! कस्मै योग्यो हि पिण्डोऽसौ श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ।।३४
द्रव्यार्थी पण्डितो ज्ञेयो गुरुतुल्यश्च भूपतिः । चौराय पिण्ड उचितो यस्य नारी च मोहिनी ।।३५

सूत उवाच

तेन पिण्डप्रभावेन स चौरो ब्रह्मद्रव्यहा । निरयान्निःसृतो विप्र स्वर्गलोकं समागतः ।।३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

चित्रकूटे च नृपती रूपदत्त इति श्रुतः । वने मृगप्रसङ्गेन वनान्तरमुपाययौ ।।१
मध्याह्ने सरसस्तीरे मुनिपुत्रीं ददर्श सः । चिन्वतीं पद्मकुसुमं रूपयौवनशालिनीम् ।।२

बनाकर उसका जात संस्कार किया जिसमें अत्यन्त धन का व्यय किया गया । उसका नाम हरदत्त रखा गया । वह सम्पूर्ण विद्या का पारगामी हुआ । पिता के निधन होने पर उस राज्य का स्वामी होकर उसने धर्म का विस्तार किया । फल्गु नदी के तटपर उसने विधानपूर्वक गया का श्राद्ध आरम्भ किया । उस समय उस नदी में से तीन हाथ निकले जिसे देखकर उस राजा को महान्, आश्चर्य हुआ । इतना कहकर उस वैताल ने राजा से कहा—नृप ! उस पिंड का अधिकारी कौन हुआ । इसे सुनकर राजा ने कहा—पण्डित तो द्रव्यार्थी थे, और राजा गुरु के समान होता है, अतः वह पिण्ड उस चोर को प्राप्त होना चाहिए, जिसकी मोहिनी स्त्री थी ।२५-३५

सूत जी बोले—विप्र ! उस पिण्ड के प्रभाव से ब्राह्मण द्रव्य का अपहरण करने वाले उस चोर ब्राह्मण ने नरक से मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति की ।३६

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

चित्रकूट में रूपदत्त नामक राजा रहता था । वह मृगया (शिकार) के लिए एक वन से दूसरे वन में पहुँच गया । वहाँ मध्याह्न के समय सरोवर के तट पर कमल-पुष्प का संचय करने वाली किसी मुनि की पुत्री को देखा । जो रूपलावण्य पूर्ण और यौवन के मदसे उन्मत्त सी रहती थी ।१-२। वे दोनों आपस में एक दूसरे

तस्या नेत्रे स्वयं नेत्रे चैकीभूते समागते । एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तत्र प्राप्तो ददर्श तौ ॥३
तस्य दर्शनमात्रेण नृपतेर्ज्ञानमागतम् । विनयावनतो राजा धर्मं पप्रच्छ चोत्तमम् ॥४
तमुवाच मुनिर्धीमान्दयाधर्मप्रपोजणम् । निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥५
अनर्हान्दण्डमादद्यादर्हपूजाफलं भजेत् । मित्रता गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे ॥६
सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । मृदुता दानसमये सन्तुष्टिर्निन्द्यकर्मणि ॥७
इत्युक्त्वा स मुनिः पुत्रीं तस्मै दत्त्वा गृहं ययौ । राजापि च तया सार्द्धं वटमूलेऽशयिष्ट वै ॥८
तदा तु राक्षसः कश्चित्तत्पत्नीभक्षणोत्सुकः । बोधयामास नृपतिं बलिं तस्मै स भूपतिः ॥९
दानार्थं चैव क्रव्यादे सप्तवर्षात्मकं द्विजम् । समयं कृतवान्राजा सत्येन स्वगृहं ययौ ॥१०
अमात्यैः सम्मतं कृत्वा स्वर्णलक्षं ददौ द्विजे । मध्यं बालं पुरस्कृत्य राक्षसाय बलिं ददौ ॥११
मृत्युकाले द्विजसुतो विहस्योच्चै रुरोद ह । कथं हास्यं कृतं तेन तत्पश्चाद्रोदनं कथम् ॥१२
इति श्रुत्वा नृपः प्राह शृणु वैतालिक द्विज । ज्येष्ठपुत्रं पितुर्हृद्यं मातृहृद्यमवर्यकम् ॥१३
ज्ञात्वा स मध्यमः पुत्रो राजानं शरणं ययौ । निर्दयी रूपसेनश्च पत्नीकल्याणभिक्षुकः ॥१४
खड्गहस्तं नृपं ज्ञात्वा जहास शिवतत्परः । राक्षसाय शरीरं मे प्राप्तमस्माद्रुरोद ह ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

से आँख मिला रहे थे कि उसी समय वहाँ पहुँच कर महर्षि ने उन दोनों को देख लिया। उनके देखते ही राजा को ज्ञान उत्पन्न हो गया। विनय विनम्र होकर राजा ने उनसे उत्तम धर्म की जिज्ञासा की। ज्ञान- निपुण मुनि ने दया और धर्म का अत्यन्त पोषक वर्णन आरम्भ किया। अभयदान के समान कोई दान न कहीं है और न होगा। इसीलिए अपराधी को दण्ड प्रदान करने से पूजनीय की पूजा का फल प्राप्त होता है। गौ और ब्राह्मण से नित्य मित्रता, दंडविधान में समता, देवों की अर्चना में सत्यता, गुरु की सेवा में (इन्द्रिय) दमन, दान के समय कोमलता और निंदित कर्मों में संतोष करना चाहिए। इतना कहकर वे महर्षि उन्हें अपनी पुत्री प्रदान कर घर चले गये। उपरांत राजा उसके साथ किसी बरगद के मूल भाग पर शयन करने लगे। उस समय किसी राक्षस ने उनकी पत्नी को भक्षण करने के व्याज से राजा को जगाकर कहा—मुझे बलि चाहिए। 'तदनन्तर आज के सातवें दिन दान रूप में सात वर्ष का एक ब्राह्मण पुत्र मैं आपको दूँगा। इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा करके राजा अपने घर चले गये। वहाँ पहुँचकर अपने मंत्री से परामर्श करके एक ब्राह्मण को एक लक्ष का सुवर्ण प्रदानकर उसके मध्यम पुत्र का क्रय किया और राक्षस को उसी की बलि दी गई। निधन के समय उस बालक ने पहले हँसा और पश्चात् रुदन किया। उसने पहले हँसकर पीछे रुदन क्यों किया। इसे सुनकर राजा ने वैताल से कहा—द्विज ! ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए और कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता को प्रिय होता है, ऐसा जानकर वह मध्यम (मझला) पुत्र राजा की शरण में गया किन्तु निर्दयी उस राजा रूपसेन को हाथ में खड्ग लिए हुए देखकर उस बालक ने अपने कल्याणार्थ हँसा और राक्षस की उदरपूर्ति के लिए मेरी शरीर जा रही है, ऐसा जानकर उसने रुदन किया।३-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो नृपं प्राह पुनः कथाम् । विशालनगरे रम्ये विपुलेशो महीपतिः ॥१
तस्य ग्रामे वनद्वैश्योऽर्थदत्तो विपणे रतः । अनङ्गमञ्जरी कन्या तस्य जाता मनोरमा ॥२
सुवर्णनाम्ने वैश्याय पिता वै दत्तवान्स्वयम् । कदाचित्कमलग्रामात्सुवर्णो द्वीपमागमत् ॥
द्रव्यलाभाय न्यवसच्चिरं कालं स लुब्धवान् ॥३
अनङ्गमञ्जरीगेहे दैवयोगाद्द्विजोत्तमः । कमलाकरनामासौ कृत्ययोगात्समागतः ॥४
होमान्ते सुन्दरी नारी मार्जनार्थे सुता गता । दृष्ट्वा तां कामकलिकां मुमोह द्विजसत्तमः ॥५
सुतापि मदघूर्णाक्षी विप्राय समयं ददौ । निशीथे तम उद्भूते त्वं मां प्राप्य सुखी भव ॥६
इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं तस्याः ध्यानं तदाकरोत् । कामाग्निना चिरं तप्तः सुष्वाप परमासने ॥७
अर्द्धरात्रे तु सा नारी द्विजागमनतत्परा । मार्गमन्वेषमाणा सा प्रियस्य स्मरपीडिता ॥८
नागतः स द्विजो दैवात्तदा सा मरणं गता । कमलाकर एवाशु समयान्ते समाययौ ॥९

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना सुनकर वैताल ने पुनः राजा से कथा कहना आरम्भ किया । उस रमणीक विशाल नामक नगर में विपुलेश नामक राजा राज्य करता था । उस नगर में अर्थदंत नामक एक व्यापार कुशल वैश्य रहता था । उसके अनंगमञ्जरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । उसके पिता ने सुवर्ण नामक वैश्य के साथ उसका पाणिग्रहण सुसम्पन्न करा दिया । एक बार वह सुवर्ण नामक वैश्य ने कमल नगर से किसी द्वीप के लिए प्रस्थान किया । उस लोभी ने द्रव्य के लोभवश वहाँ चिरकाल तक निवास किया । दैव योगात् एक दिन अनंगमञ्जरी के यहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका नाम कमलाकर था, किसी अनुष्ठान के निमित्त आया । हवन करने के उपरांत मार्जनार्थ वह सुन्दरी वहाँ आई । काम की कली की भाँति उसे देखकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने मुग्ध होकर अपनी मदभरी (नशीली) आँखों से ताकती हुई उससे मिलने के लिए समय प्रदान किया । 'इस अंधेरी रात में आधीरात के समय तुम मुझसे मिलकर अत्यन्त सुख का अनुभव करो' इसे सुनकर वह ब्राह्मण उसके ध्यान में निमग्न हो गया। काम की अग्नि द्वारा चिरकाल से संतप्त रहने के नाते वह परमोत्तम आसन पर निद्रा के अधीन हो गया।१-७। आधीरात के समय वह सुन्दरी काम पीडित होने के नाते उस ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर होकर उस अपने प्रिय का मार्ग देखने लगी। दैव संयोगवश वह ब्राह्मण उस समय न आ सका, इससे उसने अपने प्राण का परित्याग कर लिया । पश्चात् कमलाकर भी वहाँ पहुँचकर उस सुन्दरी का निधन

स्वर्गं गतास्तु ते सर्वे कस्य पुण्याधिकं मतम् । स होवाच च वैतालं राजा धर्माधिको मतः ॥२७
मरणं किङ्करस्यैव योग्यं भूपतिहेतवे । पतिव्रताया मरणं पतिसङ्गेन योग्यकम् ॥२८
दत्ता यत्किङ्करेणैव सुन्दरी नृपहेतवे । धर्मभीत्या न नृपतिस्तामगृह्णात्स कामुकः ॥२९
जित्वा कामं तथा पाल्यं धर्मं तस्मान्नृपेऽधिकम् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम षोडशोऽध्यायः ।१६

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्रोवाच वैतालस्तदा ब्राह्मणरूपवान् । शृणु भूप महाभाग कथां तव मनोरमाम् ॥१
उज्जयिन्यां महाभाग महासेनो नृपोऽभवत् । तस्य राज्येऽवसद्विप्रो देवशर्मेति विश्रुतः ॥२
गुणाकरस्तस्य सुतो मद्यमांसपरायणः । द्यूतेन संक्षयं वित्तं तस्य पापस्य चाभवत् ॥३
बान्धवैः स परित्यक्तो बभ्राम वसुधातले । कदाचिद्दैवयोगेन सिद्धाश्रममुपागमत् ॥४

भस्म करके उन सब के साथ में स्वर्गपुरी को प्रस्थान किया । किन्तु, इन सब में किसका पुण्य अधिक है ? राजा ने वैताल से कहा—राजा के लिए सेवक का मरण प्राप्त होना धर्मतः अधिक (श्रेष्ठ) है । और पतिव्रता का पति के साथ प्राण परित्याग करना उचित ही है एवं सेवक ने राजा को अपनी सुन्दरी स्त्री प्रदान किया, पर, धर्मभय के नाते राजा कामुक होने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत काम को जीतकर धर्म का पालन किया । अतः राजा का धर्म अधिक है ।२५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस ब्राह्मण रूपधारी वैताल ने पुनः राजा से कहा—राजन् महाभाग ! मैं तुम्हें मनोहर कथा सुना रहा हूँ सुनो ! महाभाग ! उज्जयिनी नगर में महासेन नामक राजा रहता था । उसी के राज्य में देव शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ऐसा बताया जाता है । गुणाकर नामक उसी का पुत्र था। नित्य मद्य-मांस का सेवन करता था। उस पापी ने द्यूत (जूआ) खेलकर अपना सम्पूर्ण धन नष्ट कर दिया । पश्चात् बन्धुओं द्वारा त्याग करने पर पृथ्वी में चारों ओर घूमने लगा । एक बार वह दैवयोग से

कपर्दी नाम तं योगी कपालान्नैरपूजयत् । ज्ञात्वा पैशाचमन्नं स बुभुक्षुर्न गृहीतवान् ।।५
तदातिथ्यं तदर्थं स यक्षिणीं समुपाह्वयत् । तया रात्रौ महानन्दं प्राप्तवान्स द्विजः शयी ।।६
प्रातः काले तु संप्राप्ते कैलासं यक्षिणी गता । स द्विजस्तद्वियोगेन योग्यन्तिकमुपाययौ ।।७
कपर्दी प्रददौ तस्मै विद्यां यक्षिणिकर्षिणीम् । चत्वारिंशद्दिनान्येव निशीथे जलमध्यगः ।।८
स जजाप शुभं मन्त्रं न प्राप्तां कामचारिणी । तदा योग्याज्ञया विप्रः स्वयं तु ममतां त्यजन् ।।९
प्राप्तवान्पितरौ नत्वा स्वगेहे निवसन्निशि । प्रातः संन्यासिवद्भूत्वा कुलैश्च रुदितैर्द्विजः ।।१०
प्रतिबोधिवनं प्राप्तस्तच्छिष्यत्वमुपाययौ । पञ्चाग्निमध्ये स स्थित्वा तन्मन्त्रमजपच्छुचिः ।।११
न प्राप्ता योगिनी देवी तदा चिन्तातुरोऽभवत् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं ज्ञानकोविदम् ।।१२
पुनराह कथं देवी न प्राप्ता यक्षिणी प्रिया । श्रुत्वाह नृपतिर्विप्र वैतालं रुद्र किङ्करन् ।।१३
त्रिविधं कर्म भो विप्र सिद्ध्यर्थे साधकाय वै । मनोवाग्विहितं कर्म परलोके सुखप्रदम् ।।१४
सुन्दराङ्कृतं ज्ञेयं पुनर्वाक्कायसम्भवम् । किञ्चित्सिद्धिप्रदं ज्ञेयमिह जन्मनि वीक्षितम् ।।१५
परत्र च भुवर्लोके पिण्डदेहकृतं स्मृतम् । मनः कायेन सम्भूतं परजन्मनि राज्यदम् ।।१६
मनोवाक्कायसम्भूतमिह जन्मनि सिद्धिदम् । परत्र परमां सिद्धिं तत्कर्म प्रददाति हि ।।१७
तस्मात्कर्तव्यमेवेह त्रिविधं कर्म साधकैः । अन्यवित्तेन स द्विजः कृतवान्कर्म मन्त्रजम् ।।

सिद्धाश्रम में पहुँच गया ।१-५। वहाँ कपर्दी नामक योगी रहता था । उसने कपाल में अन्न रखकर उससे उस अतिथि की सेवा करनी चाही, किन्तु उसे पिशाच का पुत्र समझकर उसने भूखा रहने पर भी उसका ग्रहण नहीं किया । पश्चात् उसने उसकी आथित्य सेवा के निमित्त यक्षिणी का आह्वान किया । उस रात्रि ब्राह्मण ने उसके साथ शयनादि करके महान, आनन्द की प्राप्ति की । प्रातःकाल होने पर वह यक्षिणी कैलास पर्वत पर चली गई । उपरांत उसके वियोग से दुःखी होकर वह उस योगी के पास गया । कपर्दी ने उसे यक्षिणी का आकर्षण करने वाली विद्या प्रदान किया । मध्य रात्रि में वह जल के भीतर जाकर उस शुभ मंत्र का जप करने लगा । इस प्रकार चालीस दिन तक उस मंत्र का जप करने पर भी वह यक्षिणी की प्राप्ति न कर सका । उस समय योगी की आज्ञा प्राप्तकर वह ब्राह्मण माया-मोह के त्याग पूर्वक अपने माता पिता का अभिवादन करके प्रातःकाल संन्यासी का वेष धारण करके रोते कलपते अपने परिवारों को छोड़कर प्रतिबोधि वन में चला गया ।६-११। वहाँ उनके शिष्य होने के उपरांत पंचाग्नि के मध्य में स्थित होकर आचरण पूर्वक वह उस मंत्र का जप करने लगा वहां भी योगिनी की प्राप्ति न होने पर उसे चिंता होने लगी । इतना कहकर वैताल ने ज्ञाननिपुण राजा से कहा—उसे वह यक्षिणी देवी प्रेयसी के रूप में क्यों नहीं प्राप्त हुई ! इसे सुनकर राजा ने उस रुद्र सेवक वैताल से कहा—विप्र ! साधक को सिद्धि प्राप्ति करने के लिए तीन प्रकार का कर्म बताया गया है—मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, वाणी और शरीर द्वारा किये गये कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, मन और काय द्वारा किये गये कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में राज्य की प्राप्ति होती है । मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है।१२-१७। इसलिए साधकों को इस तीन प्रकार के कर्म को

अतोऽन्यजन्मनि प्राप्तो यक्षत्वं तत्परो द्विजः ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालः प्रसन्नवदनोऽभवत् ॥१९

साधु साध्विति तं प्रोच्य सद्वाक्यैः समपूजयत् । इतिहासं पुनः प्राह परीक्षार्थे नृपाय सः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाप्राज्ञ वैतालस्तं हि सोऽब्रवीत् । सुदक्षो नाम नृपतिर्वसन्कम्बलके पुरे ॥१

न्यायदान्धर्मवाञ्छूरो दाता शिवपरायणः । तस्य राज्येऽवसद्वैश्यो धनाध्यक्ष इति श्रुतः ॥२

तनया सुन्दरी तस्य नाम्ना धनवती शुभा । गौरीदत्ताय वैश्याय पित्रा दत्ता वराङ्गना ॥३

कियता चैव कालेन मोहिनी तत्सुताभवत् । द्वादशाब्दवयस्तस्याः पिता तु निधनं गतः ॥४

तदा धनवती रण्डा निधना पितुरन्तिके । कन्यया सह सम्प्राप्ता निशि मार्गे तमोमये ॥५

सुसम्पन्न करना चाहिए । उस ब्राह्मण ने दूसरे के धन का उपभोग करते हुए उस मंत्र का जप किया था अतः उसे दूसरे जन्म में यक्षत्व की प्राप्ति होगी ।१८

सूत जी बोले—इतना कहने पर वह वैताल हर्षित होकर साधु, साधु कहते हुए उत्तम वाणी द्वारा उसका अत्यन्त सम्मान किया । उपरांत राजा के परीक्षार्थ इतिहास कहना पुनः आरम्भ किया।१९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—शौनक, महाप्राज्ञ ! वैताल ने राजा से कहा—कम्बल नगर में सुदक्ष नामक राजा रहता था, जो न्यायी, धार्मिक, शूर, दानी एवं शिव जी का उपासक था । उसकी राजधानी में धनाध्यक्ष नामक वैश्य रहता था, उसकी धनवती नामक परमसुन्दरी कन्या थी । उस रमणीक कन्या को उसके पिता ने गौरीदत्त वैश्य को प्रदान कर दिया । कुछ समय के अनन्तर मोहिनी नामक कन्या उससे उत्पन्न हुई । उसकी बारहवर्ष की अवस्था होने पर उसके पिता का निधन हो गया । उस समय धनवती पति के निधन होने के नाते निर्धनावस्था में अपनी कन्या समेत अपने पिता के यहाँ जा रही थी । अंधेरी रात में

न्यायशर्मा द्विजः कश्चिद्ब्रह्मस्वस्यापहारकः । नामसत्यत्वभावेन शूल्यां न निधनं गतः ॥६
अकस्माद्वैश्यजा प्राप्ता तत्करं सा तदास्पृशत् । तेन दुःखेन महता रुरोदोच्चैर्द्विजश्च सः ॥७
हा राम कृष्णं प्रद्युम्नानिरूद्धेति पुनः पुनः । श्रुत्वा धनवती दीना को भवानिति साब्रवीत् ॥८
द्विज आह च विप्रोऽहं त्र्यहं शूल्यां निरूपितः । यदि दास्यसि मे कन्यां कोटिस्वर्णं ददामि ते ॥९
श्रुत्वा धनवती तस्मै उद्वाह्य मोहिनीं सुताम् । वटमूले स्थितं द्रव्यं खनित्वा गृहमाययौ ॥१०
मोहिन्यपि पतिं प्राह भवान्मृत्युवशं गतः । कुतो जायेत तनयस्तन्मे ब्रूहि दयानिधे ॥११
द्विजः प्राह शृणु व्यङ्गे यदा ते हृच्छयो भवेत् । तदा त्वं पण्डितं प्राप्य पुत्रमुत्पादयाशु वै ॥१२
इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य यमलोकं गतो द्विजः । नारकीं यातनां नित्यं बुभुजे निन्द्यकर्मजाम् ॥१३
मातुर्गृहे तु सा नारी मोहिनी यौवनान्विता । स्मरन्दं हृदये कृत्वा तिष्ठन्ती च पुनः पुनः ॥१४
के भोगाश्च किमाश्चर्यं को जागर्ति शयीत कः । पापो व्याधिश्च दुःखं च कुतो जातं हृदि स्थितम् ॥१५
इति श्लोकं द्विजानाह नोत्तरं च ददुर्द्विजाः । मेधावी नाम काश्मीरे स्थितो विप्रः समागतः ॥१६
तामुवाच प्रसन्नात्मा शृणु मोहिनि सुन्दरि । सुगन्धि वनिता वस्त्रं गीतं पानं च भोजनम् ॥
शय्या च भूषणं ज्ञेयो भोगो ह्यष्टविधो बुधैः ॥१७

उसे मार्ग में न्याय शर्मा नामक एक ब्राह्मण मिला, जिसे किसी ब्राह्मण का सर्वस्व का अपहरण करने पर भी अपने नाम की सत्यता के नाते उसे शूली हुई और उसका निधन नहीं हुआ (अर्थात् उसके धन का हरण भी नहीं किया गया) ।१-६। अकस्मात् उसकी पुत्री उसके पास जाकर अपने हांथ से उसके चरण स्पर्श किया कि वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा राम कृष्ण' प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध ! इन्हीं नामों का बार-बार उच्चारण करते हुए रुदन करने लगा । उसे सुनकर वह दीन-कृपणा धनवती उसके समीप जाकर कहने लगी—आप कौन हैं ? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ किन्तु तीन दिन से मेरे मन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है, यदि इस कन्या को मुझे अर्पित कर दो तो मैं तुम्हें कोटि सुवर्ण प्रदान करूँगा । यह सुनकर धनवती ने अपनी मोहिनी नामक पुत्री का विवाह संस्कार उसके साथ सम्पन्न कर दिया । पश्चात् बरगद के नीचे पृथ्वी के भीतर सुरक्षित द्रव्य को खोदकर अपने घर चली आई। मोहिनी ने अपने पति से कहा—दयानिधे आप तो मरणासन्न हो रहे हैं, मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा । ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! जब तुम्हें काम उत्पन्न हो तो तुम किसी पण्डित के पास पहुँचकर उसी द्वारा पुत्र को उत्पन्न करना ।७-१२। इतना कहकर वह ब्राह्मण मरणोपरांत यमलोक में पहुँच गया । वहाँ वह अपने किये हुए निन्दित कर्मों के परिणाम स्वरूप नारकीय यातनाओं का अनुभव करने लगा । अपनी माता के घर में रहकर वह मोहिनी यौवनावस्था प्राप्त होने पर भी अपने पति की प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण करके (अनुचितपथ से) रुक जाती थी । कौन भोग हैं, क्या आश्चर्य है, कौन जागरण करताहै, कौन शयन कर रहा है, पाप, व्याधि एवं दुःख, हृदय में रहकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसी श्लोक का अर्थ वह ब्राह्मण से पूछती थी, पर किसी ने उसका उत्तर न दिया । पश्चात् मेधावी नामक एक काश्मीर निवासी ब्राह्मण वहाँ आया । उसने प्रसन्न होकर उस मोहिनी से कहा—सुन्दरि ! इसका अर्थ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सुगंध, स्त्री, वस्त्र, ज्ञान, पेयपदार्थ, भोजन, शय्या और भूषण इन्हीं आठ प्रकार के भोग को विद्वानों ने बताया है । नित्य प्रति

अहन्यहनि भूतानि म्रियन्ते जनयन्ति[1] च । ममतां यः करोत्येषां तदाश्चर्यं स्मृतं बुधैः ॥१८
यो विवेकं समासाद्य कुरुते कर्मसंग्रहम् । संसारे घोरतमसि स जागर्ति विवेकवान् ॥१९
संसाराजगरं ज्ञात्वा वैराग्यं योऽकरोद्भुवि । औदासीन्यं समाधिं च सुखं शेते हि मानवः ॥२०
सङ्कल्पाज्जायते कामस्ततो लोभः प्रजायते । लोभाज्जातश्च तृष्णायां स पापो निरयप्रदः ॥२१
जलप्रकृत्यां यो जातो रसो रसविकारवान् । रसाज्जातस्य देहेऽस्मिन्व्याधिः कर्ममयोऽशुभः ॥२२
रुद्रात्काल्यां समुद्भूतो मोहो हृदि च लोकहा । स तुष्टाव महादेवीं पत्न्यर्थे सुरपूजिताम् ॥२३
मिथ्यादृष्टिस्ततो जाता मोहस्य दयिताभवत् । तस्मात्स्नेहश्च तत्पत्न्यां जातश्च ममताप्रियः ॥२४
तयोः सकाशात्सञ्जातं दुःखं शोकसमन्वितम् । इति श्रुत्वा तु सा नारी मुमोह वरवर्णिनी ॥२५
मानी शूरश्च चतुरोऽधिकारी गुणवान्सखा । स्त्रीरक्षकश्च पुरुषो वशं नारीं सदा नयेत् ॥२६
तस्यै गर्भं च विप्रोऽसौ दत्त्वा स्वर्णं गृहीतवान् । सापि नारी सुखं लेभे तेन गर्भेण प्रत्यहम् ॥२७
कदाचिद्दशमासान्ते मोहिनीमब्रवीच्छिवः । स्वप्नान्तरे महाराज सापि ज्ञात्वा तथाकरोत् ॥२८
दोलामध्ये सहस्रं च स्वर्णं चैव स्वबालकम् । राजद्वारे स्थापयित्वा सुष्वाप जननी सुखम् ॥२९
शिवेन बोधितो राजा सुतार्थी रुद्रपूजकः । द्विजपुत्रं समालेभे मोहिन्यां जातमुत्तमम् ॥३०

जीव मरते और उत्पन्न होते हैं, इसके लिए जो मोहित होता है विद्वानों ने उसे ही आश्चर्य बताया है ।१३-१८। जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है। संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है । संकल्प से नाम, काम से लोभ और लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है, जो इन्हें अपनाता है, उसे पापी कहा गया है, जो नरकप्रद हैं । जलप्रकृति से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही रस विकारी होता है, इस देह में उसी रसद्वारा अशुभ कर्म भय की उत्पत्ति होती है, उसे ही व्याधि कहा गया है । रुद्र द्वारा काली में लोक का अपहरण करने वाला मोह हृदय में उत्पन्न हुआ । उन्होंने पत्नी के लिए महादेवी की आराधना की, उससे सुरपूजित मिथ्या दृष्टि उत्पन्न हुई, जो मोह की प्रेयसी कही जाती है । उसी पत्नी से स्नेह और ममता की उत्पत्ति हुई ।१९-२४। इन्हीं दोनों के संगम से शोकपूर्ण दुःख की उत्पत्ति हुई है । इसे सुनकर वह उत्तमांगी मोहिनी मुग्ध हो गई । क्योंकि मानी, शूर, चतुर, अधिकारी, गुणवान् सखा तथा स्त्रीरक्षक पुरुष के दश में स्त्रियाँ सदैव रहती हैं । उस ब्राह्मण ने उसे गर्भवती करने के उपरांत उसका धन ग्रहण करके प्रस्थान किया । पश्चात् वह स्त्री भी उस गर्भ के द्वारा प्रतिदिन सुख का अनुभव करने लगी । दशवें मास के आरम्भ में शिव जी ने उस मोहिनी से कहा—महाराज ! वह स्वप्न की बातें वैसी ही सुसम्पन्न की । पालकी के भीतर एक सहस्र सुवर्ण संपन्न उस बालक को शयन कराकर राजा के दरवाजे पर जाकर उस पुत्र को वहीं रखकर स्वयं भी निद्रित हो गई । उसी समय शिव जी ने उस राजा को जो सुतार्थी एवं रुद्र का उपासक था उस बालक को अपनाने के लिए आदेश दिया । मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न उस ब्राह्मण पुत्र को राजा ने अपना पुत्र

---

१. जायन्त इत्यर्थः ।

कारयित्वा जातकर्म विततार धनं बहु । हरदत्तश्च नाम्नासीत्सर्वविद्याविशारदः ।।३१
पितुरन्ते च तद्राज्यं प्राप्य धर्मं प्रकाशयन् । गयाश्राद्धं कृतं तेन फल्गूतीरे विधानतः ।।३२
त्रयो हस्तास्तदा जाताः स राजा विस्मितोऽभवत् ।।३३
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह भो नृप । कस्मै योग्यो हि पिण्डोऽसौ श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ।।३४
द्रव्यार्थी पण्डितो ज्ञेयो गुरुतुल्यश्च भूपतिः । चौराय पिण्ड उचितो यस्य नारी च मोहिनी ।।३५

सूत उवाच

तेन पिण्डप्रभावेन स चौरो ब्रह्मद्रव्यहृा । निरयान्निःसृतो विप्र स्वर्गलोकं समागतः ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाऽष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

चित्रकूटे च नृपती रूपदत्त इति श्रुतः । वने मृगप्रसङ्गेन वनान्तरमुपाययौ ।।१
मध्याह्ने सरसस्तीरे मुनिपुत्रीं ददर्श सः । चिन्वतीं पद्मकुसुमं रूपयौवनशालिनीम् ।।२

बनाकर उसका जात संस्कार किया जिसमें अत्यन्त धन का व्यय किया गया । उसका नाम हरदत्त रखा गया । वह सम्पूर्ण विद्या का पारगामी हुआ । पिता के निधन होने पर उस राज्य का स्वामी होकर उसने धर्म का विस्तार किया । फल्गु नदी के तटपर उसने विधानपूर्वक गया का श्राद्ध आरम्भ किया । उस समय उस नदी में से तीन हाथ निकले जिसे देखकर उस राजा को महान् आश्चर्य हुआ । इतना कहकर उस वैताल ने राजा से कहा—नृप ! उस पिंड का अधिकारी कौन हुआ । इसे सुनकर राजा ने कहा—पण्डित तो द्रव्यार्थी थे, और राजा गुरु के समान होता है, अतः वह पिण्ड उस चोर को प्राप्त होना चाहिए, जिसकी मोहिनी स्त्री थी ।२५-३५

सूत जी बोले—विप्र ! उस पिण्ड के प्रभाव से ब्राह्मण द्रव्य का अपहरण करने वाले उस चोर ब्राह्मण ने नरक से मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति की ।३६

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

चित्रकूट में रूपदत्त नामक राजा रहता था । वह मृगया (शिकार) के लिए एक वन से दूसरे वन में पहुँच गया । वहाँ मध्याह्न के समय सरोवर के तट पर कमल-पुष्प का संचय करने वाली किसी मुनि की पुत्री को देखा । जो रूपलावण्य पूर्ण और यौवन के मदसे उन्मत्त सी रहती थी ।१-२। वे दोनों आपस में एक दूसरे

तस्या नेत्रे स्वयं नेत्रे चैकीभूते समागते । एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तत्र प्राप्तो ददर्श तौ ॥३
तस्य दर्शनमात्रेण नृपतेर्ज्ञानमागतम् । विनयावनतो राजा धर्मं पप्रच्छ चोत्तमम् ॥४
तमुवाच मुनिर्द्धीमान्दयाधर्मप्रपोषणम् । निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥५
अनर्हान्दण्डमादद्यादर्हपूजाफलं भजेत् । मित्रता गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे ॥६
सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । मृदुता दानसमये सन्तुष्टिर्निन्द्यकर्मणि ॥७
इत्युक्त्वा स मुनिः पुत्रीं तस्मै दत्त्वा गृहं ययौ । राजापि च तया सार्द्धं वटमूलेऽशयिष्ट वै ॥८
तदा तु राक्षसः कश्चित्तत्पत्नीभक्षणोत्सुकः । बोधयामास नृपतिं बलिं तस्मै स भूपतिः ॥९
दानार्थं चैव क्रव्यादे सप्तवर्षात्मकं द्विजम् । समयं कृतवान्राजा सत्येन स्वगृहं ययौ ॥१०
अमात्यैः सम्मतं कृत्वा स्वर्णलक्षं ददौ द्विजे । मध्यं बालं पुरस्कृत्य राक्षसाय बलिं ददौ ॥११
मृत्युकाले द्विजसुतो विहस्योच्चै रुरोद ह । कथं हास्यं कृतं तेन तत्पश्चाद्रोदनं कथम् ॥१२
इति श्रुत्वा नृपः प्राह शृणु वैतालिक द्विज । ज्येष्ठपुत्रं पितुर्हृद्यं मातृहृद्यमवर्यकम् ॥१३
ज्ञात्वा स मध्यमः पुत्रो राजानं शरणं ययौ । निर्दयी रूपसेनश्च पत्नीकल्याणभिक्षुकः ॥१४
खड्गहस्तं नृपं ज्ञात्वा जहास शिवतत्परः । राक्षसाय शरीरं मे प्राप्तमस्माद्रुरोद ह ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

से आँख मिला रहे थे कि उसी समय वहाँ पहुँच कर महर्षि ने उन दोनों को देख लिया । उनके देखते ही राजा को ज्ञान उत्पन्न हो गया । विनय विनम्र होकर राजा ने उनसे उत्तम धर्म की जिज्ञासा की । ज्ञान- निपुण मुनि ने दया और धर्म का अत्यन्त पोषक वर्णन आरम्भ किया । अभयदान के समान कोई दान न कहीं है और न होगा । इसीलिए अपराधी को दण्ड प्रदान करने से पूजनीय की पूजा का फल प्राप्त होता है । गौ और ब्राह्मण से नित्य मित्रता, दंडविधान में समता, देवों की अर्चना में सत्यता, गुरु की सेवा में (इन्द्रिय) दमन, दान के समय कोमलता और निंदित कर्मों में संतोष करना चाहिए । इतना कहकर वे महर्षि उन्हें अपनी पुत्री प्रदान कर घर चले गये । उपरांत राजा उसके साथ किसी बरगद के मूल भाग पर शयन करने लगे । उस समय किसी राक्षस ने उनकी पत्नी को भक्षण करने के व्याज से राजा को जगाकर कहा—मुझे बलि चाहिए । 'तदनन्तर आज के सातवें दिन दान रूप में सात वर्ष का एक ब्राह्मण पुत्र मैं आपको दूँगा । इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा करके राजा अपने घर चले गये । वहाँ पहुँचकर अपने मंत्री से परामर्श करके एक ब्राह्मण को एक लक्ष का सुवर्ण प्रदानकर उसके मध्यम पुत्र का क्रय किया और राक्षस को उसी की बलि दी गई । निधन के समय उस बालक ने पहले हँसा और पश्चात् रुदन किया । उसने पहले हँसकर पीछे रुदन क्यों किया । इसे सुनकर राजा ने वैताल से कहा—द्विज ! ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए और कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता को प्रिय होता है, ऐसा जानकर वह मध्यम (मझला) पुत्र राजा की शरण में गया किन्तु निर्दयी उस राजा रूपसेन को हाथ में खड्ग लिए हुए देखकर उस बालक ने अपने कल्याणार्थ हँसा और राक्षस की उदरपूर्ति के लिए मेरी शरीर जा रही है, ऐसा जानकर उसने रुदन किया ।३-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो नृपं प्राह पुनः कथान् । विशालनगरे रम्ये विपुलेशो महीपतिः ॥१
तस्य ग्रामे दसद्वैश्योऽर्थदत्तो विपणे रतः । अनङ्गमञ्जरी कन्या तस्य जाता मनोरमा ॥२
सुवर्णनाम्ने वैश्याय पिता वै दत्तवान्स्वयम् । कदाचित्कमलग्रामात्सुवर्णो द्वीपमागमत् ॥
द्रव्यलाभाय न्यवसच्चिरं कालं स लुब्धवान् ॥३
अनङ्गमञ्जरीगेहे दैवयोगाद्द्विजोत्तमः । कमलाकरनामासौ कृत्ययोगात्समागतः ॥४
होमान्ते सुन्दरी नारी मार्जनार्थे सुता गता । दृष्ट्वा तां कामकलिकां मुमोह द्विजसत्तमः ॥५
सुतापि मदघूर्णाक्षी विप्राय समयं ददौ । निशीथे तम उद्भूते त्वं मां प्राप्य सुखी भव ॥६
इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं तस्या ध्यानं तदाकरोत् । कामाग्निना चिरं तप्तः सुष्वाप परमासने ॥७
अर्द्धरात्रे तु सा नारी द्विजागमनतत्परा । मार्गमन्वेषमाणा सा प्रियस्य स्मरपीडिता ॥८
नागतः स द्विजो दैवात्तदा सा मरणं गता । कमलाकर एवाशु समयान्ते समाययौ ॥९

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना सुनकर वैताल ने पुनः राजा से कथा कहना आरम्भ किया। उस रमणीक विशाल नामक नगर में विपुलेश नामक राजा राज्य करता था। उस नगर में अर्थदंत नामक एक व्यापार कुशल वैश्य रहता था। उसके अनंगमञ्जरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। उसके पिता ने सुवर्ण नामक वैश्य के साथ उसका पाणिग्रहण सुसम्पन्न करा दिया। एक बार वह सुवर्ण नामक वैश्य ने कमल नगर से किसी द्वीप के लिए प्रस्थान किया। उस लोभी ने द्रव्य के लोभवश वहाँ चिरकाल तक निवास किया। दैव योगात् एक दिन अनंगमञ्जरी के यहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका नाम कमलाकर था, किसी अनुष्ठान के निमित्त आया। हवन करने के उपरांत मार्जनार्थ वह सुन्दरी वहाँ आई। काम की कली की भाँति उसे देखकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने मुग्ध होकर अपनी मदभरी (नशीली) आँखों से ताकती हुई उससे मिलने के लिए समय प्रदान किया। 'इस अंधेरी रात में आधीरात के समय तुम मुझसे मिलकर अत्यन्त सुख का अनुभव करो' इसे सुनकर वह ब्राह्मण उसके ध्यान में निमग्न हो गया। काम की अग्नि द्वारा चिरकाल से संतप्त रहने के नाते वह परमोत्तम आसन पर निद्रा के अधीन हो गया। १-७। आधीरात के समय वह सुन्दरी काम पीडित होने के नाते उस ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर होकर उस अपने प्रिय का मार्ग देखने लगी। दैव संयोगवश वह ब्राह्मण उस समय न आ सका, इससे उसने अपने प्राण का परित्याग कर लिया। पश्चात् कमलाकर भी वहाँ पहुँचकर उस सुन्दरी का निधन

दृष्ट्वा मृत्युवशां सुभ्रूं स्वयं मरणमागतः । प्रभाते चार्थदत्तो वै दाहयामास तां शुचा ॥१०
सुवर्णश्च तदागत्य विललाप प्रियां प्रति । चितायां भस्मसाद्भूत्वा स्वर्गलोके तु सा ययौ ॥११
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह विक्रमम् । कस्य स्नेहोऽधिकस्तेषां कुतः स्वर्गपुरं ययौ ॥१२

राजोवाच

पतिः स्नेहोऽधिकस्तेषां मध्यमौ नारिविप्रकौ । द्विजस्नेहेन सा नारी मृता स्वर्गपुरं ययौ ॥१३
वैश्यवर्णैः सदा पूज्यो ब्राह्मणो ब्रह्ममूर्तिमान् ॥१४
द्विजोऽपि नाप्तवान्नारीं तदा स्वर्गगतिं हरिम् । हृदि कृत्वा च निधनं प्राप्तो ह्यस्मात्त्रिविष्टपम् ॥१५
सुवर्णो हृदि संज्ञाय मत्प्रिया ब्रह्मवत्सला । मां त्यक्त्वा तु दिवं याता वह्निदाहप्रभावतः ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहासमुच्चये विंशोऽध्यायः ।२०

अथैकविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानं प्राह नम्रधीः । जयस्थलपुरे रम्ये वर्धमानो नृपोऽभवत् ॥१

होना देखकर अपना प्राणान्त कर लिया । प्रातःकाल अर्थदत्त ने उस स्त्री का दाह संस्कार किया । सुवर्ण भी वहाँ आकर अपनी प्रेयसी के लिए रुदन करने लगा । किंतु वह चिता में भस्म होकर स्वर्गलोक पहुँच गई । इतना कहकर वह वैताल राजा विक्रम से कहने लगा उनमें किसका स्नेह अधिक था । और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हुई ।८-१०

राजा ने कहा—उसके पति का स्नेह अधिक है और उस स्त्री तथा ब्राह्मण का स्नेह मध्यम कोटि का है । ब्राह्मण के स्नेह से उस स्त्री का निधन होने के नाते उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई क्योंकि वैश्यों को सदैव ब्रह्मपूर्ति ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, एवं वह ब्राह्मण भी उस स्त्री की प्राप्ति नहीं कर सका उसने स्वर्गाधिनायक विष्णु का ध्यान करते हुए अपना निधन किया था अतः उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई । तथा सुवर्ण भी अपने हृदय में यही समझा कि मेरी प्रिया ब्राह्मण सेविका थी इसीलिए वह मेरा त्याग कर अग्नि दाह के प्रभाव से स्वर्ग चली गई ।११-१६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीयइतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

अध्याय २१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना कहने पर उस वैताल ने विनम्र होकर राजा से कहा—जयस्थल नगर में

तस्य ग्रामेऽवसद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः । विष्णुस्वामीति विख्यातो राधाकृष्णपरायणः ।।२
चत्वारश्चात्मजास्तस्य चतुर्भागपरायणाः । द्यूतकर्मा च कुलटो विषयी नास्तिकः श्रुतः ।।३
कदाचिद्दैवयोगेन निर्धनत्वं च ते गताः । पितरं विष्णुशर्माणं नेमुस्ते विनयान्विताः ।।४
ऊचू रमा कथं नष्टा तद्वदस्व पितः प्रिय । पितोवाच तु तच्छ्रुत्वा द्यूतकर्मन्निशामय ।।५
द्यूतो धनव्ययकरः पापमूलो महाखलः । व्यभिचारस्तथा चौर्यं निर्दयत्वमतो भवेत् ।।
द्यूतकर्मप्रभावेण त्वदीयद्रव्यसंक्षयः ।।६
धनोपायेन भोः पित्रोर्वाक्यं कुरु मतिं प्रति । तीर्थव्रतप्रभावेण त्वत्पापं संक्षयं व्रजेत् ।।७
हे पुत्र कुलट त्वं वै वेश्यासङ्गं महाशुभम् । त्यक्त्वा ब्रह्मपरो भूत्वा ब्रह्मचर्ये मतिं कुरु ।।८
विषयिन्मांसमदिरे नित्यपापविवर्धिके । अतः प्राप्स्यति चौर्यत्वमतो वै निरयस्तथा ।।९
तस्मात्त्वं प्रभुमीशानं विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् । निवेद्य सर्वथा द्रव्यं भुञ्जीथा वाग्यतः स्वयम् ।।१०
नास्तिकत्वं देवनिन्दां परित्यज्य मतिं कुरु । आत्मा सर्वाभयो नित्यमात्मशक्तिश्च चण्डिका ।।११
आत्मनोऽङ्गानि देवाश्च सर्वजीवगुहाशयाः । ताञ्ज्ञात्वा पूजनं तेषां कुरु त्वं पापशान्तये ।।१२
इति ते वचनं श्रुत्वा गतास्तीर्थान्तरं प्रति ।शिवमाराधयामासुर्विद्यार्थे सर्वरूपिणम् ।।१३
वर्षान्ते च महादेवो विद्यां सञ्जीवनीं ददौ । ते प्राप्य वनमागत्य परीक्षार्थे समुद्यताः ।।१४

वर्धमान नामक राजा हुआ । उसकी राजधानी में विष्णु स्वामी नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेदवेदाङ्ग निष्णात एवं राधाकृष्ण का उपासक था । उस ब्राह्मण के चार पुत्र चार प्रकार के कर्म करने वाले थे—जुआड़ी, कुलमर्यादानाशक, विषयी (व्यभिचारी) एवं नास्तिक थे । दैवात् वे सब निर्धन हो गये । पश्चात् अपने पिता विष्णु शर्मा के पास पहुँचकर विनयावनत होकर उन लोगों ने कहा—प्रियपिता ! हम लोगों की लक्ष्मी नष्ट कैसे हो गई । उनके पिता ने कहा—सुनो ! जुआ खेलने से धन नष्ट हो गया है । द्यूतक्रीडा धन का नाशक, पाप का मूल एवं महाखल बताया गया है । उसी से उसका कर्ता व्यभिचारी, चोर तथा निर्दयी होता है । जूआ खेलने के नाते तुम्हारा धन नष्ट हो गया है, अतः धनोपार्जन के लिए हमारी बातें स्वीकार करो । तीर्थयात्रा और व्रतानुष्ठान से तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे ।१-७। और पुत्र महाअशुभ वेश्या का साथ करके कुल की मर्यादा का नाश करना उचित नहीं । उसके त्याग पूर्वक ब्रह्म के ध्यान करने के लिए ब्रह्मचारी रहना स्वीकार करो । विषयी के लिए उन्होंने कहा । नित्य पापवर्द्धक उस मांस मदिरा का सेवन करने से वह चोर एवं नरकगामी होता है, अतः तुम्हें उस प्रभु को जो ईशान, विष्णु, जपनशील एवं जगत्पति हैं को अर्पित करके पश्चात् उस द्रव्य का उपभोग मौन होकर करना चाहिए । उस नास्तिक से उन्होंने कहा—तुम देवों की निन्दा का परित्याग करो, यह आत्मा निर्भय, एवं नित्य है, और आत्मा की शक्ति चण्डिका हैं एवं इस आत्मा के सम्पूर्ण जीवों के निवासभूत देवगण, अंग हैं, ऐसा जानकर अपनी पाप शान्ति के लिए उन लोगों की उपासना करो ।' इन बातों को सुनकर वे सब तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्तुत हो गये। वहाँ जाकर विद्याध्ययन के लिए सर्वरूपी शिव जी की आराधना करने लगे।८-१३। एक वर्ष के उपरांत महादेव जी ने उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान किया। पश्चात् उन लोगों ने उस विद्या की परीक्षा के निमित्त किसी मृतक वाघ की अस्थियों को एकत्र करके उस पर उस मंत्र से

मृतव्याघ्रास्थिनि श्रेष्ठं मन्त्रपूताम्बु चाक्षिपत् । तेन मन्त्रप्रभावेण पञ्जरत्वमुपागतम् ॥१५
तस्योपर्य्येव कुलटो मन्त्रपूतं पयोऽक्षिपत् । घनमांसं च रुधिरं तेन मन्त्रेण चाभवत् ॥१६
विषयी चाक्षिपच्चैव तस्योपरि जलं शुभम् । तेन मन्त्रप्रभावेण त्वक्प्राणत्वमुपागतम् ॥१७
सुप्तं व्याघ्रं च संज्ञाय नास्तिकस्तु जलं ददौ । मन्त्रेण बोधितो व्याघ्रस्तांश्च विप्रानखादयत् ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानमिदमब्रवीत् । राजन्मूर्खो हि कस्तेषां श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥१९
बोधितो येन स व्याघ्रः स मूर्खस्त्वधिको मतः । इति श्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वैतालः पुनरब्रवीत् ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चय एकविंशोऽध्यायः ।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

वैताल उवाच

भोराजन्बिल्वतीग्रामे गङ्गायामुनमध्यगे । अहं पूर्वभवे चासं क्षत्रसिंहो महीपतिः ॥१

अभिमंत्रित जल का प्रक्षेप किया। उस मंत्र के प्रभाव से उसका पांजर (जंघे) उत्पन्न होकर स्वस्थ्य हो गये ! उसके ऊपर उस कुलटे ने पुनः अभिमंत्रित जल का प्रक्षेप किया जिससे उसमें दृढमांस और रक्त संचार होने लगा। पुनः उस विषयी ने उसके ऊपर जल का प्रक्षेप किया जिससे उसमें उस मंत्र के प्रभाव से ऊपरी चर्म और भीतरी प्राण वायु प्रविष्ट हो गया। उस शयन किये हुए बाघ को देखकर उस नास्तिक ने उसके ऊपर जल का प्रक्षेप किया। जिससे उसी समय मंत्र द्वारा चेतना प्राप्त कर उस वाघ ने उन्हें भक्षित कर लिया।१५-१८

सूत जी बोले—इतना कहकर वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! उनमें कौन मूर्ख था इसे सुनकर राजा ने कहा—जिसने उसे चेतना प्रदान की, वही सबसे अधिक मूर्ख था। यह सुनकर उस द्विजश्रेष्ठ वैताल ने पुनः कहा।१९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।२१।

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

वैताल बोले—राजन् ! गंगा-यमुना के मध्य प्रदेश में बिल्वती नामक गाँव है। जन्मान्तर में मैं

तस्य ग्रामेऽवसद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः । शम्भुदत्त इति ख्यातो रुद्रभक्तिपरायणः ॥२
उभकौ तनयौ तस्य सर्वविद्याविशारदौ । विष्णुभक्तः स्मृतो ज्येष्ठो नाम्ना लीलाधरो बली ॥
शाक्तोऽभवत्तदनुजो मोहनो नाम निश्रुतः ॥३
कदाचित्क्षत्रसिंहस्तु यज्ञार्थी यज्ञहेतवे । शम्भुदत्तं समाहूय ससुतं धर्मकोविदम् ॥
स्वयं च कारयामास च्छागमेधं सुरप्रियम् ॥४
शम्भुदत्तस्तु वृद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः । चतुश्चक्रांश्च संस्थाप्य कलशं कार्यसिद्धिदम् ॥५
हव्यैः सुसंस्कृतै रम्यैश्चकार हवने मुदा । छागमाहूय विधिवत्पूजयामास भूपतिः ॥६
लीलाधरस्तु तं दृष्ट्वा छागं च मरणोन्मुखम् । दयालुर्वैष्णवो धीमानब्रवीद्वचनं रुषा ॥७
दारुणं नरकं योग्यमनया जीवहिंसया । सर्वेशो भगवान्विष्णुर्हिंसायज्ञेन दुष्यति ॥८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्येष्ठबन्धोश्च मोहनः । मृदुपूर्वं जहासोच्चैर्वचनं प्राह नम्रधीः ॥९
पुरा सत्ययुगे भ्रातर्ब्राह्मणा यज्ञतत्पराः । अजेनैव हि यष्टव्यमिति ज्ञात्वा परां श्रुतिम् ॥१०
तिलाधिकमजं मत्वा हव्ये ते तु मनो दधुः । तदा शक्रादयो देवा वह्निमध्ये समागताः ॥११
ऊचुस्ते मधुरं वाक्यं त्वन्मतं निष्फलप्रदम् । अजश्छागः स्मृतो वेदैस्तेन यष्टव्यमन्तरम् ॥१२
श्रुत्वेति वचनं तेषां विस्मिता मुनयोऽभवन् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पितृयोनिरमावसुः ॥१३
विमानं परमारुह्य मुनीन्प्रोवाच निर्भयः । छागमेधेन यष्टव्यं सुराणां तृप्तिहेतवे ॥१४

वहाँ का क्षत्रसिह नामक राजा था । उसी गाँव में शम्भुदत्त नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेदवेदांगवेत्ता एवं रुद्र की उपासना करता था । उसके दो पुत्र थे, जो सभी विद्याओं में कुशल थे । ज्येष्ठ का नाम लीलाधर था, जो बली एवं विष्णु की उपासना करता था और कनिष्ठ का नाम मोहन था जिसे शक्ति का उपासक बताया गया है । एक बार राजा क्षत्रसिंह ने यज्ञार्थ उस धर्म निपुण शम्भुदत्त को उसके पुत्र के समेत बुलाया । और स्वयं देवप्रिय उस छागमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया ।१-४। शिवभक्त एवं वृद्ध शम्भुदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक चार चक्र का निर्माण करके उसी पर कार्यसिद्धिप्रद कलशों के स्थापन करके उस रमणीक एवं सुसंस्कृत हव्य द्वारा हवन कार्य सुसम्पन्न किया । राजा ने उस छाग (बकरी) को मंगाकार सविधान उसकी पूजा थी । दयालु, लीलाधर ने जो विष्णु के उपासक एक एवं परम बुद्धिमान थे, उस छाग को मरणोन्मुख देखकर रोषपूर्ण वाणी से कहा—इस जीवहिंसा द्वारा भीषण नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि सर्वेश भगवान् विष्णु हिंसा यज्ञ से अप्रसन्न होते हैं । इस प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता की बात सुनकर मोहन ने पहले तो मन्दमुसुकान किया पश्चात् नम्रता पूर्वक ऊँचे स्वर से कहा—भ्राता ! पहले सत्ययुग में यज्ञानुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों ने 'छागमेध से ही यज्ञ सुसम्पन्न करना चाहिए' इस श्रुति को उत्तम समझकर और तिल से अधिक अज का महत्त्व स्वीकार करके उसी द्वारा हवन को आरम्भ करना निश्चय किया । उस समय अग्निकुण्ड में शक्रादि समस्त देवगण उपस्थित होकर मधुरवाणी से कहने लगे कि तुम्हारा सिद्धान्त निष्फल प्रद है क्योंकि अज छाग को वेद में बताया गया है ।५-१२। अतः उसी छाग द्वारा ही यज्ञ करना श्रेयस्कर होगा । उनकी ऐसी बातें सुनकर महर्षियों को महान् आश्चर्य हुआ । उसी बीच पितृयोनि में उत्पन्न अमावसु ने उत्तम

इति श्रुत्वा वचस्तस्य तथा कृत्वा शिवं ययुः । तस्मात्त्वं च मया सार्द्धं यज्ञं कुरु महामते ॥१५
इति श्रुत्वा वचो घोरं लीलाधर उदारधीः । मोहनं प्राह धर्मात्मा यज्ञस्त्रेतायुगेऽभवत् ॥१६
रजोगुणमयो लोकस्त्रेतायां सम्बभूव ह । हिंसा सत्ययुगे नासीद्धर्मस्तत्र चतुष्पदः ॥१७
हव्येन तर्पिता देवा न मांसै रक्तसम्भवैः । इति श्रुत्वा क्षत्रसिंहस्त्यक्त्वा छागं भयातुरम् ॥१८
फलाद्यैः कारयामास तदा पूर्णाहुतीर्नृप । एतस्मिन्नन्तरे देवी तामसी क्रोधमूर्च्छिता ॥
नगरं दाहयामास नरनारीसमन्वितम् ॥१९
महामायाप्रभावेण शम्भुदत्तः शिवप्रियः । स भूत्वा च महोन्मादी त्यक्त्वा देहं दिवं ययौ ॥२०
तदा लीलाधरो विप्रो दशपुत्रोपजीवकः । बालानध्यापयामास ग्रामे पद्मपुरे शुभे ॥२१
क्षत्रसिंहस्तु नृपतिर्मोहनान्तिकमाययौ । प्रसादं कारयामास देवमातुरनुग्रहम् ॥२२

मोहन उवाच

बीजमन्त्रजपाद्ब्रह्मा ब्राह्मीं शक्तिमवाप्तवान् । तदम्बायै नमस्तुभ्यं महावीरायै नमो नमः ॥२३
जप्त्वा सप्तशतीं विष्णुर्वैष्णवीं शक्तिमाप्तवान् । तदम्बायै नमस्तुभ्यं महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥२४
प्रणवास्तनया यस्यास्तुरीयपुरुषप्रिया । तदम्बायै नमस्तुभ्यं प्रणवायै नमो नमः ॥२५
यया दृश्यमिदं जातं यया वै पाल्यते जगत् । यस्या देहे स्थितं विश्वं तदम्बायै नमो नमः ॥२६

विमान पर बैठकर उन मुनियों से कहा—देवताओं की तृप्ति के लिए छागमेघ द्वारा ही यज्ञारम्भ करना चाहिए । इसे सुनकर उन्होंने वैसा ही उसे सुसम्पन्न करके कल्याण की प्राप्ति की अतः महामते ! मेरे साथ आप भी इस यज्ञ को सुसम्पन्न करें । इस घोरवाणी को सुनकर उदारचेता एवं धार्मिक लीलाधर ने मोहन से कहा—वह यज्ञ त्रेतायुग में हुआ है क्योंकि त्रेतायुग में रजोगुण प्रधान (जीव) होते हैं और सत्ययुग में धर्म के चार चरण वर्तमान रहने के नाते उसमें हिंसा नहीं होती है । देवगण द्रव्य द्वारा तृप्त होते हैं न कि मांस और रुधिर से । इसे सुनकर भयभीत होकर क्षत्रसिंह ने उस छाग के त्यागपूर्वक फलों आदि से पूर्णाहुति प्रदान की । नृप ! उस समय तामसी देवी ने क्रुद्ध होकर नर-नारी समेत उस नगर को भस्म कर दिया । महामाया के प्रभाव से शिवप्रिय शम्भुदत्त महा उन्मादी की अवस्था में देह का त्याग कर देवलोक चले गये । उस लीलाधर ब्राह्मण ने पद्मपुर नामक नगर में विद्यार्थियों के अध्यापन द्वारा दश पुत्रों की जीविका का निर्वाह करना आरम्भ किया । और राजा क्षत्र सिंह ने मोहन के समीप पहुँचकर देवमाता के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए उन्हें प्रसन्न किया । १३-२२

मोहन ने कहा—ब्रह्मा ने बीज मन्त्र का जप करके ही अपनी वाहनी शक्ति की प्राप्ति की है अतः अम्बा को नमस्कार है उस महापराक्रमशालिनी को बार-बार नमस्कार है । विष्णु ने सप्तशती की आराधना करके वैष्णवी शक्ति की प्राप्ति की है । अतः माता को नमस्कार है, उस महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है। २३-२४। प्रणव जिसके पुत्र हैं और जो स्वयं तुरीय (चौथे) पुरुष की जो प्रेयसी है, उस माता को नमस्कार है, उस प्रणवरूपा को बार-बार नमस्कार है। जिसके द्वारा यह समस्त जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है और इसका पालन-पोषण हो रहा है तथा जिसकी देह में यह विश्व स्थित है, उस अम्बा को

शची सिद्धिस्तथा मृत्युः प्रभा गीर्वाणसैनिकाः। स्वाहा च निर्ऋती रात्रिर्ऋद्धिर्भुक्तिस्त्वदुद्भवा॥
लोकपालप्रिया त्वं हि लोकमातर्नमो नमः ॥२७
तृष्णा तृप्ती रतिर्नीतिर्हिंसा क्षांतिर्मतिर्गतिः। निन्दा स्तुतिस्तथेर्ष्या च लज्जा त्वं हि नमो नमः ॥२८
इत्यष्टकप्रभावेण क्षत्रसिंहो महीपतिः। शिवलोकं गतः साधुर्वैतालत्वमवाप्तवान् ॥२९
तस्मात्त्वं विक्रमादित्य भज दुर्गां सनातनीम्। शिवाज्ञया त्वहं प्राप्तस्त्वत्समीपे महीपते ॥३०
प्रश्नोत्तरेण भूपाल मया त्वं सम्परीक्षितः। भुजयोस्ते स्थितिर्मे स्याज्जहि सर्वरिपून्भुवि ॥३१
दस्युनष्टाः पुरीः सर्वाः क्षेत्राणि विविधानि च। शास्त्रमानेन संस्थाप्य समयं कुरु भो नृप ॥३२
यो नृपः सर्वतीर्थानि पुनरुद्धारयिष्यति। स हि मत्स्थापितं संवद्विपरीतं करिष्यति ॥३३
विक्रमाख्यानकालोऽयं पुनर्धर्मं करोति हि। द्वादशाब्दशतं वर्षं द्वापरो हि प्रवर्तते ॥३४
तदन्ते भुवि कृष्णांशो भविष्यति महाबली। कलेरुद्धरणार्थाय म्लेच्छवंशविवृद्धये ॥३५
सूताद्या मुनयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः। विशालायां समागत्य चक्रतीर्थनिवासिनः॥
भविष्यन्ति महाराज पुराणश्रवणे रताः ॥३६
इत्युक्त्वा स तु वैतालस्तत्रैवान्तरधीयत। नृपतिर्विक्रमादित्यः परमानन्दमाप्तवान् ॥३७
तस्माद्यूयं मुनिश्रेष्ठा ज्ञात्वा सन्ध्यां समागताम्। शिवं भजत सर्वेशं ध्याननिष्ठासमन्विताः ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वाविंशोऽध्यायः।२२

बार-बार नमस्कार है। इन्द्राणी, सिद्धि, मृत्यु, प्रभा, कार्तिकेय, स्वाहा, राक्षस, रात्रि, ऋद्धि, और भुक्ति तुम्हीं से उत्पन्न है, तुम्हीं लोकपाल की प्रिया हो, अतः लोकमाता को बार-बार नमस्कार है। तृष्णा, तृप्ति, रति, नीति, हिंसा, क्षांति (त्याग), मति, गति, निन्दास्तुति ईर्ष्या एवं लज्जा रूप तुम्हें बार-बार नमस्कार है। इस अष्टक (स्तुति) के प्रभाव से राजा क्षत्र सिंह ने शिव लोक की प्राप्ति की। वही मैं वैताल के रूप में आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ, इसलिए विक्रमादित्य! सदैव वर्तमान रहने वाली श्री दुर्गा जी की आराधना करो। महीपते! मैं भगवान् शंकर की आज्ञा से यहाँ आया हूँ! राजन्! इस प्रश्नोत्तर द्वारा मैंने आप की परीक्षा की है। तुम्हारी दोनों भुजाओं में मेरी स्थिति रहेगी। अतः इस भूतल पर स्थित अपने शत्रुओं का नाश करो। राजन्! अब दस्यु गण नष्ट हो गये हैं, अतः समस्त पुरी, एवं भाँति-भाँति के क्षेत्रों का शास्त्र प्रमाण द्वारा संस्थापन करो। जो राजा सम्पूर्ण तीर्थों का पुनरुद्धार करेगा, वह मेरे द्वारा स्थापित संवत् के प्रतिकूल कार्य करेगा। विक्रम का ख्यातिप्राप्त काल द्वारा पुनः धर्म प्रचार प्रारम्भ होगा। बारह सौ वर्ष द्वापर का शेष समय है, इसके अन्त समय में महाबली कृष्ण का अंश उत्पन्न होगा जिससे कलि का उद्धार और म्लेच्छ वंशों की वृद्धि होगी। महाराज! नैमिषारण्य निवासी सूत आदि महर्षि वृन्द विशालापुरी में पहुँचकर चक्रतीर्थ के निवासी होकर पुराणश्रवण में निमग्न रहेगें। इतना कहकर वह वैताल उसी स्थान से अन्तर्हित हो गया और राजा विक्रमादित्य को परमानंद की प्राप्ति हुई। इसलिए श्रेष्ठ मुनिवृन्द! संध्या समय की उपस्थिति जानकर आप लोग ध्याननिष्ठ होकर सर्वाधिक शिव जी की आराधना कीजिये।२५-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।२२।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तु मुनयो विशालानगरीस्थिताः । स्नात्वा केदारकुण्डे ते मनसा पूजयच्छिवम् ॥१
समाधिनिष्ठास्ते सर्वे वर्षमेकं व्यतीतयन् ॥२
एतस्मिन्नन्तरे राजा विक्रमादित्यभूपतिः । नत्वा मुनीन्समाधिस्थांस्तुष्टाव परया गिरा ॥३
उषित्वा ते तु मुनयः सूतं गत्वाऽब्रुवन्निदम् । सोऽयं राजा समायातो यस्यैवं वर्णिता कथा ॥४
वाजिमेधं च नृपतेः कारयामस्त्वदाज्ञया । भवान्हि चक्रतीर्थे च स्थित्वा ध्यानपरो भवेत् ॥५
तथेत्युक्त्वा तु सूतस्तैः सार्धं च पुनरागमत् । विधिना कारयामास हयमेधं महामखम् ॥६
पूर्वे तु कपिलस्थानं दक्षिणे सेतुबन्धनम् । पश्चिमे सिन्धुनद्यन्तं चोत्तरे बदरीवनम् ॥७
हयो जगाम तरसा ततः क्षिप्रां नदीं गतः । त्यक्त्वा कलेवरं वह्नौ स्वर्गलोकमतो ययौ ॥८
नृपयज्ञे सुराः सर्वे सपत्नीकाः समागताः । चन्द्रमास्तत्र नायातो भूपतिर्विमना अभूत् ॥९
यज्ञान्ते विविधं दानं दत्त्वा वैतालसंयुतः । चन्द्रलोकं गतो राजा चन्द्रमाः सुखितोऽभवत् ॥१०
भोभो राजन्महाभाग कलौ प्राप्ते भयङ्करे । मद्गतिर्भूतले नास्ति तस्मान्नायामि तेऽन्तिकम् ॥११

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

व्यास जी बोले—विशाला नगरी में स्थित महर्षि वृन्द ने इसे सुनकर केदार कुण्ड में स्नान करके शिव जी की मानसिक अर्चना प्रारम्भ की । इसी प्रकार समाधिनिष्ठ होकर एक वर्ष का समय व्यतीत किया कि उसी समय राजा विक्रमादित्य वहाँ आकर उन समाधिस्थ महर्षियों की उत्तम वाणी द्वारा स्तुति करने लगे । पश्चात् वे मुनिगण सूत जी के पास जाकर कहने लगे कि आपने जिसकी कथा का वर्णन किया है, वही राजा यहाँ आया हुआ है । यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो हम लोग राजा के अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ करायें, किन्तु, आप चक्रतीर्थ में चलकर वहीं ध्यान करें । उसे स्वीकार कर सूत जी ने उनके साथ पुनः उसी स्थान पर आकर अश्वमेध नामक उस महायज्ञ का अनुष्ठान सविधान सुसम्पन्न कराया । १-६ । पूर्व में कपिला स्थान, दक्षिण में सेतुबन्धन, पश्चिम में सिन्धु नदी, और उत्तर में बदरिकाश्रम के जंगल तक शीघ्रता से जाकर वह अश्व क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँच गया । वहाँ अपने कलेवर (देह) को अग्नि में डालकर स्वयं स्वर्गलोक चला गया । राजा के उस यज्ञ समारोह में सभी देवगण अपनी पत्नियों के समेत आये थे। केवल चन्द्रमा का आगमन वहाँ नहीं हुआ था, अतः अन्य मनस्क होकर राजा भाँति-भाँति के दान देने के उपरांत वैताल के साथ चन्द्रलोक में गये। उससे चन्द्रमा का सुख प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा—राजन्! महाभाग! इस भीषण कलि के आगमन से पृथ्वी तल पर मेरी गति नहीं होती है, इसीलिए मैं तुम्हारे

दत्त्वा सुधामयं तोयं चन्द्रश्चान्तर्दधे पुनः । ज्ञात्वेन्द्रस्तत्र सम्प्राप्य द्विजरूपी ह्ययाचयत् ।।१२
दत्तं राज्ञा तदमृतं शक्रः स्वर्गमुपागतः । तेन तस्य फलं जातमायुर्लक्षसमं ह्यभूत् ।।१३
तस्मिन्काले द्विजः कश्चिज्जयन्तो नाम विश्रुतः । तत्फलं तपसा प्राप्तः शक्रतः स्वर्गृहं ययौ ।।१४
जयन्तौ भर्तृहरये लक्षस्वर्णेन वर्णयन् । भुक्त्वा भर्तृहरिस्तत्र योगारूढो वनं ययौ ।।१५
विक्रमादित्य एवास्य भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् । शतवर्षं मुदा युक्तो जगाम मरणे दिवम् ।।१६
शौनकाद्यास्तु ऋषयो ज्ञात्वा भूपस्य स्वर्गतिम् । गत्वा सूतं प्रणम्योचुर्धर्मं मुख्यं वदाधुना ।।१७
तेभ्यः सूतः पुराणानि श्रावयामास वै पुनः । शतवर्षं पञ्चलक्षश्लोकमध्यापयन्मुदा ।।
ते श्रुत्वा मुनयः सर्वे जग्मुर्हृष्टाः स्वमालयम् ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः । पृच्छन्ति विनयेनैव सूतं पौराणिकं खलु ।।१

समीप न आ सका। पश्चात् अमृतमय जल प्रदान कर चन्द्रमा वहां अन्तर्हित हो गये। यह बात इन्द्र को विदित हुई। इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर उसकी याचना की। राजा ने उसे इन्द्र को दे दिया। अनन्तर इन्द्र स्वर्ग चले आये। उसे इन्द्र को प्रदान करने के नाते राजा की आयु लक्ष के समान हो गई। उस समय जयन्त नामक किसी ब्राह्मण ने तप द्वारा इन्द्र से उसी फल की प्राप्ति करके स्वर्ग को प्रस्थान किया। जयन्त ने राजा भर्तृहरि से एक लक्ष सुवर्ण की मुद्रा ग्रहणकर उनसे उसका वर्णन किया। भर्तृहरि उसका उपभोग करके योग की तैयारी कर वन वन चले गये। पश्चात् राजा विक्रमादित्य सौ वर्ष तक उस राज्य का निष्कटंक उपभोग करके स्वर्ग चले गये। शौनकादि ऋषिगण ने राजा को स्वर्गीय जानकर सूत के पास जाकर प्रणाम पूर्वक उनसे कहा—इस समय मुख्य धर्म की चर्चा कीजिये। सूत जी ने पुनः उन्हें पुराणों का श्रवण कराया। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर सौ वर्ष तक पाँच लक्ष श्लोकों का उन्हें अध्ययन कराया। मुनिवृन्द उन्हें श्रवण करके हर्ष निमग्न होते हुए अपने-अपने गृह चले गये।७-१८

श्री भविष्यमहापुराण में प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।२३।

अध्याय २४

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

व्यास जी बोले—एक बार शौनक आदि ऋषिगण ने नैमिषारण्य में एकत्र होकर नम्रता पूर्वक पुराणवेत्ता सूत जी से पूछा—भगवन्! लोक के कल्याणार्थ चारों युगों में पूजनीय सेवा करने योग्य और

भगवन्ब्रूहि लोकानां हितार्थाय चतुर्युगे । कः पूज्यः सेवितव्यश्च वाञ्छितार्थप्रदायकः ।।२
विनायासेन वै कामं प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् । सत्यं ब्रह्मन्वदोपायं नराणां कीर्तिकारकम् ।।३

सूत उवाच

नवाम्भोजनेत्रं रमाकेलिपात्रं चतुर्बाहुचामीकराचारुगात्रम् ।
जगत्त्राणहेतुं रिपौ धूम्रकेतुं सदा सत्यनारायणं स्तौमि देवम् ।।४
श्रीरामं सहलक्ष्मणं सकरुणं सीतान्वितं सात्त्विकं । वैदेहीमुखपद्मलुब्धमधुपं पौलस्त्यसंहारकम् ।
वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्तानुकम्पाकरं । शत्रुघ्नेन हनूमता च भरतेनासेवितं राघवम् ।।५
कलिकलुषविनाशं कामसिद्धिप्रकाशं सुरवरमुखभासं भूसुरेण प्रकाशम् ।
विबुधबुधविलासं साधुचर्याविशेषं नृपतिवरचरित्रं भोः शृणुष्वेतिहासम् ।।६
एकदा नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया । पर्यटन्विविधाँल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागमत् ।।७
तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नानाक्लेशसमन्वितान् । आधिव्याधियुतानार्तान्पच्यमानान्स्वकर्मभिः ।।८
केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम् । इति सञ्चिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ।।९
तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् । शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ।।१०
प्रसन्नवदनं शान्तं सनकाद्यैरभिष्टुतम् । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ।।११

अभीष्ट फल प्रदान करने वाला कौन है, जिससे मनुष्यों की शुभ कामनाएँ अनायास सफल हो सकें। ब्रह्मन् ! मनुष्यों के कीर्तिप्रद उस सत्य उपाय को बतलाने की कृपा कीजिये ।१-३

सूत जी बोले—मैं उस सत्यनारायण देव की सदैव आराधना करता हूँ, जिसका नूतन कमल के समान नेत्र, स्वयं लक्ष्मी की क्रीड़ा का पात्र, चार भुजाएँ, सुवर्ण के समान सौन्दर्य पूर्ण शरीर, जगत् की रक्षा का मुख्य हेतु और शत्रुओं के लिए (विनाश सूचक) धूम्रकेतु, रूप है। लक्ष्मण समेत श्री रामचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ, जो कारुणिक, सीता सहित, सात्विक, जानकी के मुखकमल के लोभी भ्रमर, पुलस्त्यवंश रावणादि के संहारक, वंदनीय चरणकमल, देवश्रेष्ट, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, एवं शत्रुघ्न, हनुमान और भरत से सुसेवित तथा रघुकुल में उत्पन्न हैं। उस राजा का श्रेष्ठ चरित सुनो, जो कलिमलनाशक, कामनाओं की सिद्धि करने वाला, श्रेष्ठ देवों के मुख का प्रकाशक, ब्राह्मण द्वारा प्रकाशित, देवों एवं विद्वानों का विलास, साधुओं द्वारा विशेष महत्त्व प्राप्त एवं इतिहास रूप है ।४-६। एक बार नारद योगी ने दूसरों पर कृपा करने की इच्छा से सभी लोकों में विचरते हुए इस मनुष्यलोक में आगमन किया। यहाँ सभी जन-वर्ग को देखकर जो अनके भाँति के दुःखों से दुःखी, मानसिक, शारीरिक रोगों से ग्रस्त, दरिद्रता से पीड़ित, और अपने कर्मों से परिपक्व हो रहे थे, किस उपायं द्वारा इनके दुःख नष्ट होंगे इसका अपने मन में विचार करते हुए वे उस समय विष्णु के लोक चले गये। वहाँ नारायण देव को देखकर, जो शुक्लवर्ण, चार भुजाएँ क्रमशः शंख, चक्र, गदा, पद्म उनमें धारण किये, वनमाला से सुशोभित, प्रसन्नमुख, शांत, एवं सनकादि साधुओं से स्तुत हो रहे थे, ऐसे उन देवाधिदेव की स्तुति करना प्रारम्भ किया ।७-११

नारद उवाच

नमो वाङ्मनसातीतरूपायानन्तशक्तये । नादिमध्यान्तदेवाय निर्गुणाय महात्मने ।।१२
सर्वेषामादिभूताय लोकानामुपकारिणे । अपारपरिमाणाय तपोधाम्ने नमो नमः ।।१३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स्तुतिं विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत् । किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते ।।१४
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते । श्रुत्वा तु नारदो विष्णुमुक्तवान्सर्वकारणम् ।।१५
नारदस्य वचः श्रुत्वा साधुसाध्वित्यपूजयत् । शृणु नारद वक्ष्यामि व्रतमेकं सनातनम् ।।१६
कृते त्रेतायुगे विष्णुर्द्वापरेऽनेकरूपधृक् । कलौ प्रत्यक्षफलदः सत्यनारायणो विभुः ।।१७
चतुष्पादो हि धर्मश्च तस्य सत्यं प्रसाधनम् । सत्येन धार्यते लोकः सत्ये ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ।।१८
सत्यनारायणव्रतमतः श्रेष्ठतमं स्मृतम् । इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नारदः पुनरब्रवीत् ।।१९
किं फलं किं विधानं च सत्यनारायणार्चने । तत्सर्वं कृपया देव कथयस्व कृपानिधे ।।२०

भगवानुवाच

नारायणार्चने वक्तुं फलं नालं चतुर्मुखः । शृणु संक्षेपतो ह्येतत्कथयामि तवाग्रतः ।।२१
निर्धनोऽपि धनाढ्यः स्यादपुत्रः पुत्रवान्भवेत् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यमन्धोऽपि स्यात्सुलोचनः ।।२२
मुच्यते बन्धनाद्बद्धो निर्भयः स्याद्भयातुरः । मनसा कामयेद्यं यं लभते तं विधानतः ।।२३

नारद बोले—वाणी एवं मन से अगोचर रूप वाले उस अनंत शक्ति वाले देव को नमस्कार है, जो आदि, मध्य, एवं अन्तहीन, निर्गुण, तथा महात्मा है । और सभी के आदि काल में रहने वाला, लोक का उपकारक एवं अजेय परिमाण वाला है उस तपोनिधि को बार-बार नमस्कार है ।१२-१३

सूतजी बोले—इस प्रकार की स्तुति सुनकर विष्णु ने नारद से कहा—महाभाग ! आपका आगमन कैसे हुआ, और आप क्या चाहते है, सभी बातें बताइये । मैं उन्हें (उनकी प्राप्ति के कारण समेत) तुम्हें बताऊँगा । इसे सुनकर नारद ने विष्णु जी से उन समस्त कारणों को बताया । नारद की बातें सुनकर उन्होंने 'साधु-साधु' कहकर उनका अधिक सम्मान प्रकट किया और कहा—नारद ! मैं एक सनातन (अविनाशी) व्रत की व्याख्या तुम्हें बताऊँगा जो सत्य, त्रेतायुग तथा द्वापर में अनेक रूपधारी विष्णु और कलियुग में प्रत्यक्ष फलप्रदायक वही व्यापक सत्यनारायण रूप हैं । धर्म के चार चरण बताये गये हैं, किन्तु उसका मुख्य साधन सत्य है क्योंकि सत्य के द्वारा लोक का धारण होता है और उसी सत्य में ब्रह्मप्रतिष्ठित है, अतः उस सत्यनारायण का व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ है। भगवान् की ऐसी बातें सुनकर नारद पुनः बोले—देव, कृपानिधे ! सत्यनारायण देव की पूजा करने में उसका फल एवं विधान बताने की कृपा कीजिये।१४-२०

श्रीभगवान् बोले—नारायण की पूजा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में चार मुखवाले ब्रह्मा भी असमर्थ हैं। इसलिए मैं तुम्हारे सम्मुख संक्षेप में उसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! उसे सुसम्पन्न करने से निर्धन धनवान्, अपुत्री पुत्रवान्, अपहरण किये गये राज्य का लाभ, अंधे को सुन्दर नेत्र, बँधे हुए को बंधन-मोक्ष, भयभीत-निर्भय की प्राप्ति करता है, तथा मन में उत्पन्न सभी कामनाओं की

इह जन्मनि भो विप्र भक्त्या च विधिनार्चयेत् । लभेत्कामं हि तच्छीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ।।२४
प्रातःस्नायी शुचिर्भूत्वा दन्तधावनपूर्वकम् । तुलसीमञ्जरीं धृत्वा ध्यायेत्सत्यस्थितं हरिम् ।।२५

नारायणंसान्द्रघनावदातं चतुर्भुजं पीतमहार्हवाससम् ।
प्रसन्नवक्त्रं नवकञ्जलोचनं सनन्दनाद्यैरुपसेवितं भजे।।२६

करोति ते व्रतं देव सायङ्काले त्वदर्चनम् । श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ।।२७
इति सङ्कल्प्य मनसा सायंकाले प्रपूजयेत् । पञ्चभिः कलशैर्जुष्टं कदलीतोरणान्वितम् ।।२८
शालग्रामं स्वर्णयुक्तं पूजयेदात्मसूक्तकैः । पञ्चामृतेन संस्नाप्य चन्दनादिभिरर्चयेत् ।।२९
ॐ नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि । चतुःपदार्थदात्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः ।।३०
जप्त्वेत्यष्टोत्तरशतं जुहुयात्तद्दशांशकम् । तर्पणं मार्जनं कृत्वा कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ।।३१
षडध्यायीं सत्यमुख्यां तत्पश्चात्तत्प्रसादकम् । सम्यग्विभज्य तत्सर्वं दापयेच्छ्रोतृकाय च ।।३२
आचार्यायादिभागं च द्वितीयं स्वकुलाय सः । श्रोतृभ्यश्च तृतीयं च चतुर्थं चात्महेतवे ।।३३
विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । देवर्षेऽनेन विधिना सत्यनारायणार्चनम् ।।३४
कारयेद्यदि भक्त्या च श्रद्धया च समन्वितः । व्रती कामानवाप्नोति वाञ्छितानिह जन्मनि ।।३५
इह जन्मकृतं कर्म परजन्मनि पच्यते । परजन्मकृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वदा नरैः ।।३६

सफलता प्राप्त होती है। ब्राह्मण ! इस जन्म में भक्तिसमेत सविधान उसे सुसम्पन्न करने से उसको मनोरथ की पूर्ति शीघ्र होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। प्रातः काल दातून समेत स्नान करने के उपरांत (संध्यादि कर्म से) पवित्र होकर तुलसी की मंजरी हाथ में लेकर सत्यस्थित भगवान् का ध्यान करना चाहिए—'मैं उस नारायण देव की आराधना कर रहा हूँ, जो सघन बादलों की भाँति स्वच्छ, चारभुजाएँ, अत्यन्त उत्तम पीताम्बर, प्रसन्नमुख, नवीन कमल की भाँति नेत्र एवं सनक आदि मुनियों से सुसेवित हैं।२१-२६। देव ! मैं तुम्हारा व्रतानुष्ठान कर रहा हूँ, संध्या के समय में तुम्हारी पूजा करके कथा श्रवण करूँगा और पश्चात् अन्त में आप के प्रसाद का सेवन करूँगा।' इस प्रकार मानसिक संकल्प करके सायंकाल में उनकी विधिवत् पूजा करनो चाहिए। पाँच कलशों को सुसज्जित करके कदली (केले) के तोरण समेत आत्मसूक्त द्वारा सुवर्ण युक्त शालिग्राम की अर्चना करते हुए पंचामृत से स्नान कराकर चन्दन-चर्चित कर देना चाहिए। 'ओं' भगवान् सत्यदेव का ध्यान करता हुआ मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ और चारों पदार्थ के दाता को बार-बार नमस्कार है। एकसौ आठ बार इसका जप करके इसके दशांश से हवन, तर्पण और मार्जन सुसम्पन्न करते हुए भगवान् की इस छह अध्यायवाली सत्य प्रधान पवित्र कथा का श्रवण करना चाहिए। उपरांत उनके प्रसाद को विभक्त करके श्रोताओं आदि को देना चाहिए पहला भाग आचार्य को, दूसरे अपने बन्धु वर्ग को, तीसरा श्रोताओं को और चौथा भाग अपने लिए रखकर ब्राह्मणों को सप्रेम भोजन से सन्तुष्ट करके स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। देवर्षि ! इस विधान द्वारा यदि श्रद्धा भक्ति समेत सत्यनारायण की पूजा सुसम्पन्न हो तो व्रत करने वाले उस मनुष्य की सभी कामनाएँ इसी जन्म में सफल हो जाती हैं। इस जन्म में किये हुए कर्मों के फल दूसरे जन्म में और दूसरे जन्म में किये गये कर्मों के फल मनुष्यों को सदैव भोगने पड़ते हैं।२७-३६। किन्तु सत्यनारायण का व्रत इसी जन्म में सभी

सत्यनारायणव्रतमिह सर्वान्कामान्ददाति हि । अद्यैव जगतीमध्ये स्थापयामि त्वदाज्ञया ।।३७
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो नारदः स्वर्गतिं ययौ । स्वयं नारायणो देवः काश्यां पुर्यां समागतः ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

कृपया ब्राह्मणद्वारा प्रकटीकृतवान्स्वकम् । इतिहासमिमं वक्ष्ये संवादं हरिविप्रयोः ।।१
काशीपुरीति विख्याता तत्रासीद्ब्राह्मणो वरः । दीनो गृहाश्रमी नित्यं भिक्षुः पुत्रकलत्रवान् ।।२
शतानन्द इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः । एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतस्तस्य श्रीपतिः ।।३
विनीतस्यातिशान्तस्य स बभूवाक्षिगोचरः । वृद्धब्राह्मणवेषेण पप्रच्छ ब्राह्मणं हरिः ।।
क्व यासीति द्विजश्रेष्ठ वृत्तिः कामेन कथ्यताम् ।।४

शतानन्द उवाच

भिक्षावृत्तिरहं सौम्य कलत्रापत्यहेतवे । याचितुं धनिनां द्वारि व्रजामि धनमुत्तमम् ।।५

कामनाएँ सफल करता है। अतः मैं आज ही इसकी प्रतिष्ठा संसार के मध्यभाग में करने जा रहा हूँ, इतना कहकर विष्णुदेव अन्तर्हित हो गये और नारद ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। पश्चात् सत्यनारायणदेव का काशीपुरी में आगमन हुआ ।२३-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—मैं विष्णु भगवान् और ब्राह्मण के संवाद विषयक इतिहास की चर्चा कर रहा हूँ, जिसमें भगवान् ने ब्राह्मण द्वारा अपने स्वयं को कृपया प्रकट किया है। ख्यातिप्राप्त काशीपुरी में शतानन्द नामक एक भिक्षुक ब्राह्मण रहता था, जो दीन-हीन, गृहस्थ, पुत्र-कलत्र समेत विष्णु के व्रत का पारायण करने वाला था। एक बार भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में विनयविनम्र एवं अतिशांत उस ब्राह्मण के सम्मुख लक्ष्मीपति भगवान् दिखायी पड़े। वृद्ध ब्राह्मण का वेष धारणकर भगवान् ने उस ब्राह्मण से पूँछा—द्विजश्रेष्ठ ! आप अपनी जीविका के लिए कहाँ जा रहे हैं ? १-४

शतानन्द ने कहा—सौम्य ! मेरी भिक्षावृत्ति है, इसलिए अपने परिवार के पोषणार्थ मैं धनवानों के यहाँ भिक्षा की याचना करने जा रहा हूँ ।५

नारायण उवाच

भिक्षावृत्तिस्त्वया दीर्घकालं द्विज सदा धृता। तद्वारक उपायोऽयं विशेषेण कलौ किल ॥६
ममोपदेशतो विप्र सत्यनारायणं भज। दारिद्र्यशोकशमनं सन्तापहरणं हरेः॥
चरणं शरणं याहि मोक्षदं पद्मलोचनम्[1] ॥७
एवं सम्बोधितो विप्रो हरिणा करुणात्मना। पुनः पप्रच्छ विप्रोऽसौ सत्यनारायणो हि कः॥८

वृद्धब्राह्मण उवाच

बहुरूपःसत्यसङ्कः सर्वव्यापी निरञ्जनः। इदानीं विप्ररूपेण तव प्रत्यक्षमागतः॥९
दुःखोदधिनिमग्नानां तरणिश्चरणौ हरेः। कुशलाः शरणं यान्ति नेतरे विषयात्मिकाः॥१०
आहृत्य पूजासम्भारान्हिताय जगतां द्विज। अर्चयंस्तमनुध्यायंस्त्वमेतत्प्रकटी कुरु॥११
इति ब्रुवन्तं विप्रोऽसौ ददर्श पुरुषोत्तमम्। जलदश्यामलं चारुचतुर्बाहुं गदादिभिः[2] ॥१२
पीताम्बरं नवाम्भोजलोचनस्मतपूर्वकम्। वनमालामधुव्रातचुम्बितांघ्रिसरोरुहम्॥१३
निशम्य पुलकाङ्गोऽसौ प्रेमपूर्णसुलोचनः। स्तुवन्गद्गदया वाचा दण्डवत्पतितो भुवि॥१४
प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारकम्। अनाथनाथं शिवदं शरण्यमनघं शुचिम्॥१५
अव्यक्तं व्यक्ततां यातं तापत्रयविमोचनम् ॥१६

नारायण बोले—ब्राह्मण! (निर्धन होने के नाते) आप बहुत दिनों से भिक्षा की याचना ही सदैव करते आये हैं अतः इस कलियुग में इससे मुक्त होने के लिए मैं निश्चित उपाय बता रहा हूँ—विप्र! मेरे उपदेश से आप सत्यनारायण देव की आराधना कीजिये। भगवान् का चरण दारिद्र्य एवं शोक का नाशक तथा संतापहारी है, अतः (उनकी सेवार्थ) उस मोक्षप्रद एवं कमलनेत्र वाले की शरण में अवश्य प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार करुणासागर भगवान् विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण बार-बार कहने लगा कि सत्यनारायण कौन है। ६-८

वृद्ध ब्राह्मण बोले—जो (सत्यनारायण) अनेक रूपवाले, सत्यप्रतिज्ञ, सभी में व्यापक तथा त्रिगुण रहित हैं, वे इस समय ब्राह्मणवेष धारणकर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं। भगवान् का चरण दुःखसागर में डूबने वाले प्राणियों के लिए नौका रूप है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष ही उनकी शरण में प्राप्त होते हैं न कि अन्य विषयाभिलाषी। विप्र! संसार के कल्याणार्थ पूजनसामग्री एकत्र करके उसी द्वारा उनकी अर्चना एवं ध्यान करते हुए उसे विख्यात करो। इस प्रकार कहने वाले उन पुरुषोत्तम को ब्राह्मण ने इस भाँति देखा जिसको नवीन मेघ की भांति श्यामल वर्ण, चारो बाहुओं में क्रमशः गदा आदि से भूषित, पीताम्बर ओढ़े, नवीन कमल के समान नेत्र, मन्दमुसुकान, वनमाला पहने, भ्रमरों द्वारा चरणकमल चुम्बित हो रहा है। उन्हें देखकर हर्षातिरेक से गद्गद् होकर प्रेमपूर्ण नेत्रों वाला वह ब्राह्मण अपनी गद्गद्वाणी द्वारा स्तुति करता हुआ पृथिवी में गिरकर दण्डवत् करने लगा। मैं उस जगन्नाथ को प्रणाम करता हूँ, जो जगत् के कारण, अनाथ के नाथ, कल्याणप्रद, शरणदायक, अघहीन, पवित्र, अव्यक्त को व्यक्त करने वाले

---

१. पद्मं लोचयति बोधयतीति 'कर्मण्यण्। पद्माधिकसुन्दरमित्यर्थः। २. उपेतमित्यर्थः।

नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्रे नमः शुद्धसत्त्वाय विश्वस्य भर्त्रे ॥
करालाय कालाय विश्वस्य हर्त्रे नमस्ते जगन्मङ्गलायात्ममूर्ते ॥१७
धन्योऽस्म्यद्य कृती धन्यो भवोऽद्य सफलो मम। वाङ्मनोगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः ॥१८
दिष्टं किं वर्णयाम्याहो न जाने कस्य वा फलम्। क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं फलवान्कृतः ॥१९
पूजनं च प्रकर्तव्यं लोकनाथ रमापते। विधिना केन कृपया तदाज्ञापय मां विभो ॥२०
हरिस्तमाह मधुरं सस्मितं विश्वमोहनः। पूजायां मम विप्रेन्द्र बहु नापेक्षितं धनम् ॥२१
अनायासेन लब्धेन श्रद्धामात्रेण मां यज। ग्राहग्रस्तोऽजामिलो वा यथाऽभून्मुक्तसङ्कटः ॥२२
विधानं शृण विप्रेन्द्र मनसा कामयेत्फलम्। पूजारम्भृतसम्भारः पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥२३
गोधूमचूर्णं पादार्द्धं सेटकादिप्रमाणतः। दुग्धेन तावता युक्तं मिश्रितं शर्करादिभिः ॥२४
तच्चूर्णं हरये दद्याद् घृतयुक्तं हरिप्रियम्। गोदुग्धेनैव दधिना गोघृतेन समन्वितम् ॥२५
गङ्गाजलेन मधुना युक्तं पञ्चामृतं प्रियम्। पञ्चामृतेन संस्नाप्य शालग्रामोद्भवां शिलाम् ॥२६
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्वेदवादैर्मनोहरैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलादिभिरर्चयेत् ॥२७
मिष्टान्नपानसन्मानैर्भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैस्तथा। ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूजयेद्भक्तितत्परः ॥२८
ब्राह्मणैः स्वजनैश्चैव वेष्टितः श्रद्धयान्वितः। त्वया सार्द्धं मम कथां शृणुयात्परमादरात् ॥२९
इतिहासं तथा राज्ञो भिल्लानां वणिजोऽस्य च। कथांते प्रणमेद्भक्त्या प्रसादं विभजेत्ततः ॥३०

एवं तीनों तापों के शमन करने वाले हैं ।९-१६। सत्यनारायण को नमस्कार है, इसके कर्ता को नमस्कार है, जो शुद्ध सत्त्व, विश्व का पालन-पोषण करने वाला, करालकाल की मूर्ति धारणकर संसार का अपहरण करने वाला, एवं जगत् की मांगलिक मूर्ति है। आप वाणी एवं मन से अगोचर (अप्रत्यक्ष) होते हुए भी मुझे दर्शन दिया अतः आज मैं धन्य हूँ, कृतकार्य हो गया हूँ और मेरा जन्म सार्थक हो गया। आज मैं अपने भाग्य का क्या वर्णन करूँ क्योंकि मैं नहीं जानता कि किस वाणी का यह फल मुझे आज प्राप्त हुआ कि मेरे ऐसे मंदभागी एवं अकर्मण्य की भी देह सफल हो गई। लोकनाथ, रमापते ! किस विधान द्वारा आपका पूजन किया जायगा, विभो ! उसे बताने की कृपा करें। विश्व मोहन भगवान् विष्णु ने मन्द मुसुकान करते हुए उससे कहा। विप्रेन्द्र ! मेरी पूजा में अधिक धन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अनायास जो कुछ प्राप्त हो जाये, उस धन से तथा श्रद्धालु होकर मेरी पूजा करो और उसके द्वारा ग्राहग्रस्तगज एवं अजामिल की भाँति संकट मुक्त हो जाओ। विप्रेन्द्र ! मैं उस विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! जिसमें पूजा सामग्री एकत्रकर जिस विधान द्वारा पूजा सुसम्पन्न की जाती है। सेर के हिसाब से आधा या चौथाई भाग के गेहूँ का चूर्ण (आटा) में उतना ही दूध, घी एवं शक्कर आदि मिलाकर वह प्रिय प्रसाद भगवान् को समर्पित करना चाहिए। गौ का दूध, दही, घी, गंगाजल और शहद युक्त इस पंचामृत द्वारा उस शालग्राम मूर्तिका स्नान कराकर गंध, पुष्प, नैवेद्य, धूप, दीप, एवं ताम्बूलादि से वेदमंत्रों के उच्चारण समेत उनकी अर्चना करके मिठाई, तथा भक्ष्य भोज्य में ऋतुकालीन फलों एवं पुष्पों को समर्पित कर अपने बन्धुवर्ग एवं ब्राह्मणों समेत श्रद्धा सम्पन्न होकर मेरी उस कथा का श्रवण करना चाहिए जिसमें राजा, भिल्ल (लकड़ी का विक्रेता), और उस वैश्य का इतिहास वर्णित है। कथा की समाप्ति में भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणामकर प्रसाद का विभाग करना चाहिए।१७-३०।

लब्धं प्रसादं भुञ्जीत मानयन्न विचारयेत् । द्रव्यादिभिर्न मे शान्तिर्भक्त्या केवलया यथा ।।३१
विधिनानेन विप्रेन्द्र पूजयन्ति च ये नराः । पुत्रपौत्रधनैर्युक्ता भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।।३२
अन्ते सान्निध्यमासाद्य मोदन्ते ते मया सह । यं यं कामयते कामं सुव्रती तं तमाप्नुयात् ।।३३
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्विप्रोऽपि सुखप्राप्तवान् । प्रणम्यागाद्यथादिष्टं मनसा कौतुकाकुलः ।।३४
अद्य भैक्ष्येण लब्धेन पूज्यो नारायणो मया । इति निश्चित्य मनसा भिक्षार्थी नगरं गतः ।।३५
विना देहीति वचनं लब्ध्वा च विपुलं धनम् । कौतुकायासमनसा जगाम निजमालयम् ।।३६
वृत्तान्तं सर्वमाचख्यौ[1] ब्राह्मणी सान्वमोदत । सादरं द्रव्यसम्भारमाहृत्य भर्तुराज्ञया ।।३७
आहूय बन्धुमित्राणि तथा सान्निध्यवर्तिनः । सत्यनारायणं देवं यजाम स्वगणैर्वृतः ।।३८
भक्त्या तुतोष भगवान्सत्यनारायणः स्वयम् । कामं दित्सुः प्रादुरासीत्कथान्ते भक्तवत्सलः ।।३९
वव्रे विप्रोऽभिलषितमिहामुत्र सुखप्रदम् । भक्तिं परां भगवति तथा तत्सङ्गिनां व्रतम् ।।४०

रथं कुञ्जरं मञ्जुलं मन्दिरं च हयं चारु चामीकरालं कृतं च ।
धनं दासदासीगणं गां महीं च लुलायाः सदुग्धा हरे देहि दास्यम् ।।४१

तथास्त्विति हरिः प्राह ततश्चान्तर्दधे प्रभुः । विप्रोऽपि कृतकृत्योऽभूत्सर्वे लोका विसिस्मिरे ।।४२

प्राप्त प्रसाद का सम्मान करते हुए बिना विचार किये ही उसका भक्षण कर लेना चाहिए । द्रव्यादि प्रदान द्वारा मैं उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ, जितना कि केवल भक्ति द्वारा । विप्रेन्द्र ! जो मनुष्य इस विधान द्वारा मेरी पूजा करते हैं वे पुत्र, पौत्र, तथा धनों से सम्पन्न होकर उत्तम भोगों का उपभोग करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, पश्चात् प्राण परित्याग करने पर मेरे साथ रहकर आनन्दानुभव भी करते हैं जिस प्रकार की कामनाएँ होती जाती हैं व्रत करने वाले उस मनुष्य की वे सभी कामनाएँ उत्पन्न क्रमानुसार सफल होती रहती हैं ।३१-३३। इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये और उस ब्राह्मण को भी महान् सुख की प्राप्ति हुई । पश्चात् प्रणाम करके उस कौतुक में विभोर होता हुआ वह ब्राह्मण मनइच्छित दिशा की ओर चल दिया । 'आज भिक्षा में जो कुछ प्राप्त होगा उससे मैं नारायण की पूजा करूँगा ।' अपने मन में ऐसा निश्चय करके वह भिक्षुक ब्राह्मण नगर की ओर प्रस्थित हुआ । बिना याचना किये ही उसे अत्यन्त धन की प्राप्ति हुई, यह देखकर वह कौतुक मग्न होकर अपने घर चला आया और अपनी पत्नी से समस्त वृतान्त कह सुनाया । वह ब्राह्मणी उसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पति की आज्ञा से उस द्रव्य के भार को ग्रहण कर अपने बांधव, मित्र, तथा पड़ोसी आदि को 'आज मैं सत्यनारायण देव की पूजा करूँगी' यह कहकर बुलवाया। उपरांत सभी के साथ भगवान् की पूजा सुसम्पन्न किया। उस भक्ति से भगवान् सत्यनारायण स्वयं प्रसन्न होकर कथा के अंत में उसकी कामनाओं की सफलता प्रदान करने के लिए वहाँ प्रादुर्भूत हुए। भगवान् भक्तवत्सल के कहने पर उस ब्राह्मण ने कहा—भगवन् ! पहले आप लोक परलोक के सुखों को प्रदान करने वाली अपनी उस पराभक्ति को प्रदान कीजिये और उसे प्राप्त करने वाला व्रत भी। पश्चात् रथ, हाथी, सुवर्ण खचित सुन्दर महल, धन, अनेक दास-दासी, गौ, पृथिवी, दूध देने वाली भैंस और अपनी सेवा प्रदान कीजिये।३४-४१। भगवान् नारायण उसे स्वीकार कर अन्तर्हित हो गये तथा ब्राह्मण

---

१. ब्राह्मणीमिति शेषः ।

प्रणम्य भुवि कायेन प्रसादं प्रापुरादरात् । स्वं स्वं धाम समाजग्मुर्धन्यधन्येति वादिनः ।।४३
प्रचचार ततो लोके सत्यनारायणार्चनम् । कामसिद्धिप्रदं मुक्तिभुक्तिदं कलुषापहम् ।।४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

राजासीद्धार्मिकः कश्चित्केदारमणिपूरके । चन्द्रचूड इति ख्यातः प्रजापालनतत्परः ।।१
शान्तो मधुरवाग्धीरो नारायणपरायणः । बभूवुः शत्रवस्तस्य म्लेच्छा विन्ध्यनिवासिनः ।।२
तस्य तैरवभवद्युद्धमतिप्रबलदारुणैः । भुशुण्डीयुद्धनिपुणैः क्षेपणैः परिघायुधैः ।।३
चन्द्रचूडस्य महती सेना यमपुरे गता । शतं रथास्तथा नागा सहस्रं तु हयास्तथा ।।४
पत्तयः पञ्चसाहस्रा मृताः स्वर्गपुरं ययुः । दस्यवः पञ्चसाहस्रा मृताः कैतवयोधिनः ।।५
आक्रान्तः स महाभागस्तैर्म्लेच्छैर्दम्भयोधिभिः । त्यक्त्वा राष्ट्रं च नगरं सैकाकी वनमाययौ ।।६
तीर्थव्याजेन स नृपः पुरीं काशीं समागतः । तत्र नारायणं देवं वन्द्यं सर्वगृहे गृहे ।।७

कृतकृत्य हो गया। इसे देखकर सभी लोगों को महान् आश्चर्य हुआ। सभी लोगों ने दण्डवत् करके प्रसाद ग्रहण किया और (ब्राह्मण के लिए) धन्य-धन्य कहते हुए अपने अपने घर को प्रस्थान किया। उसी समय से भगवान् सत्यनारायण देव की अर्चना प्रचलित हुई जो कामनाओं की सफलता, भुक्ति-मुक्ति की प्रदायक और पाप का नाश करने वाली है।४२-४४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।२५।

अध्याय २६

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

सूत जी बोले—केदारमणि नगर में चन्द्रचूड नामक राजा रहता था, जो परम धार्मिक, प्रजापालन में सदैव कटिबद्ध, शांत, मधुरभाषी, धीर, और नारायण का उपासक था। विंध्याचल निवासी म्लेच्छगण उसके शत्रु थे, जिन लोगों के साथ उस राजा का अत्यन्त भीषण युद्ध आरम्भ हुआ था। उस युद्ध में भुशुण्डी एवं परिघ आदि अस्त्रों के निपुण योद्धाओं द्वारा चन्द्रचूड की वह विशाल सेना नष्ट कर दी गई। उसमें सौ रथ, उतने हांथी, सहस्र घोड़े और पाँच सहस्र की पैदल सेना थी और पाँच सहस्र दस्युगण भी मृतक हुए, जो कूटनीति से युद्ध कर रहे थे। ये सभी प्राणपरित्याग कर स्वर्ग पहुँच गये। पश्चात् उन म्लेच्छ योद्धाओं द्वारा वह पुण्यात्मा राजा घिर गया, किसी भाँति वहाँ से निकलकर अकेले जंगल में पहुँचा। तीर्थयात्रा के व्याज से वह घूमता हुआ काशी नगर में पहुँचा। वहाँ प्रत्येक घरों में

ददर्श नगरीं चैव धनधान्यसमन्विताम् । यथा द्वारावती ज्ञेया तथा सा च पुरी शुभा ॥८
विस्मितश्चन्द्रचूडश्च दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् । सत्येन रोधितां लक्ष्मीं शीलधर्मसमन्विताम् ॥९
दृष्ट्वा श्रुत्वा सदानन्दं सत्यदेवप्रपूजकम् । पतित्वा तच्चरणयोः प्रणनाम मुदा युतः ॥१०
द्विजराज नमस्तुभ्यं सदानन्द महामते । भ्रष्टराज्यं च मां ज्ञात्वा कृपया मां समुद्धर ॥११
यथा प्रसन्नो भगवाँल्लक्ष्मीकान्तो जनार्दनः । तथा तद्वद यद्योग्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥१२

सदानन्द उवाच

दुःखशोकादिशमनं धनधान्यप्रवर्धनम् । सौभाग्यसन्ततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम् ॥१३
सत्यनारायणव्रतं श्रीपतेस्तुष्टिकारकम् । यस्मिन्कस्मिन्दिने भूप यजेच्चैव निशामुखे ॥१४
तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् । पञ्चभिः कलशैर्युक्तं ध्वजपञ्चसमन्वितम् ॥१५
तन्मध्ये वेदिकां रम्यां कारयेत्स व्रती द्विजैः । तत्र स्थाप्य शिलारूपे कृष्णं स्वर्णसमन्वितम् ॥१६
कुर्याद्गन्धादिभिः पूजां प्रेमभक्तिसमन्वितः । भूमिशायी हरिं ध्यायन्सप्तरात्रं व्यतीतयेत् ॥१७
इति श्रुत्वा स नृपतिः काश्यां देवमपूजयत् । रात्रौ प्रसन्नो भगवान्ददौ राज्ञेऽसिनुत्तमम् ॥१८
शत्रुपक्षक्षयकरं प्राप्य खड्गं नृपोत्तमः । प्रणम्य च सदानन्दं केदारमणिमाययौ ॥१९
हत्वा दस्यून्षष्टिशतांस्तेषां लब्ध्वा महद्धनम् । हरिं प्रपूजयामास नर्मदायास्तटे शुभे ॥२०
पौर्णमास्यां विधानेन मासि मासि नृपोत्तमः । अपूजयत सत्यदेवं प्रेमभक्तिसमन्वितः ॥२१

वन्दनीय नारायण देव को प्रतिष्ठित देखा पश्चात् द्वारावती की भाँति धन-धान्य युक्त उस नगरी को भी । उसे देखकर राजा चन्द्रचूड अवाक् रह गये, अनन्तर सत्य द्वारा धर्मशील समेत लक्ष्मी का अवरुद्ध होना देखकर उन्हें और भी महान् आश्चर्य हुआ । तदुपरान्त सत्य देव के अनन्य भक्त श्री सदानन्द जी को देख सुन कर उनके चरण पर गिर कर पुलकित शरीर से उन्हें प्रणाम करने लगा—द्विजराज, महामते, सदानन्द ! तुम्हें नमस्कार है, मेरे राज्य का अपहरण हो गया। है, अतएव मेरा उद्धार कीजिये। भगवान् लक्ष्मीकान्त जो जनार्दन कहे जाते हैं, को प्रसन्न करने के लिए किसी पापनाशक व्रत को बताइये।१-१२

सदानन्द ने कहा—एक सत्यनारायण देव का व्रत, जो दुःख, शोक आदि का नाशक, धन-धान्य का वर्द्धक, सौभाग्य, और संतान प्रदायक एवं सर्वत्र विजय प्रदान करने वाला है, भगवान् लक्ष्मी पति को प्रसन्न करता है । नृप ! जिस किसी दिन संध्या के समय में उनकी पूजा करनी चाहिए । केले के खम्भे लगाकर उसे तोरण द्वारा सुसज्जित करते हुए उस व्रती को चाहिए कि पाँच पताकाओं समेत पाँच कलशों की प्रतिष्ठा के अनन्तर उसके मध्य भाग में ब्राह्मणों द्वारा रमणीक वेदी का निर्माण कराये । उस पर सुवर्ण समेत शिलारूप की कृष्ण (शालिग्राम) को स्थापित कर प्रेम भक्ति पूर्वक गंधादि द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । पश्चात् भूमिशायी होकर भगवान् का ध्यान करते हुए उस राजा ने वहाँ काशीपुरी में देव की पूजा की । उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने राजा को एक उत्तम खड्ग प्रदान किया । उस शत्रुदलों के विनाशक खड्ग को ग्रहण कर सदानन्द को प्रणाम पूर्वक वह राजा केदारमणि नगर चला गया । वहाँ के छह सहस्र शत्रुओं के संहार द्वारा राजा उनसे अत्यन्त धन की प्राप्ति कर नर्मदा के शुभ तट पर भगवान् की व्रत पूजा सुसम्पन्न किया ।१३-२०। अनन्तर वह श्रेष्ठ राजा प्रत्येक मास की पूर्णिमा के दिन

तद्व्रतस्य प्रभावेण लक्षग्रामाधिपोऽभवत् । राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दमन्ते विष्णुपुरं ययौ ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथेतिहासं शृणुत यथा भिल्लाः कृतार्थिनः । विचरन्तो वने नित्यं निषादाः काष्ठवाहिनः ।।१
वनात्काष्ठानि विक्रेतुं पुरीं काशीं ययुः क्वचित् । एकस्तृषाकुलो यातो विष्णुदासाश्रमं तदा ।।२
ददर्श विपुलैश्वर्यं सेवितं च द्विजैर्हरिम् । जलं पीत्वा विस्मितोऽभूद्भिक्षुकस्य कुतो धनम् ।।३
यो दृष्टोऽकिञ्चनो विप्रो दृश्यतेऽद्य महाधनः । इति सञ्चिन्त्य हृदये स पप्रच्छ द्विजोत्तमम् ।।४
ऐश्वर्यं ते कुतो ब्रह्मन्दुर्गतिस्ते कुतो गता । आज्ञापय महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।।५

सदानन्द उवाच

सत्यनारायणस्याङ्गसेवया किं न लभ्यते । न किं किञ्चित्सुखमाप्नोति विना तस्यानुकम्पया ।।६

प्रेम भक्ति में निमग्न होकर सत्यदेव की पूजा करने लगा । उस व्रत के प्रभाव से वह एक लक्ष गाँवों का अधिपति हो गया । उसमें साठ वर्ष तक सुखोपभोग करके अन्त में विष्णु की पुरी में चला गया ।२१-२२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन
नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अध्याय २७

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

सूत जी बोले—इसके अनन्तर उस इतिहास को सुनो ! जिसमें भिन्न जातियों के निषादगणों का जो काष्ठवाहन (लकड़ी ढोने) का कार्य करते हुए उन जंगलों में नित्य घूमा करते थे, कृतार्थ होना बताया गया है । एकबार जंगल से लकड़ी लेकर वे उसके विक्रयार्थ काशीपुरी में पहुँचे । उनमें से एक पिपासा से आकुल होकर किसी भगवद्भक्त के आश्रम में गया । वहाँ अत्यन्त ऐश्वर्य सम्पन्न ब्राह्मणों को देखा, जो भगवान् की व्रत आराधना में लगे हुए थे । उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, जल पीकर वह सोचने लगा कि इन भिक्षुकों को धन की प्राप्ति कहाँ से हो गई । जो ब्राह्मण अत्यन्त अकिंचन दिखाई देता था, वही आज महा धनवान् दिखाई दे रहा है, (क्या कारण है) इस प्रकार अपने मन में विचार करके उसने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से पूँछा—ब्रह्मन् ! आप की दुर्गति का नाश एवं इस ऐश्वर्य की प्राप्ति कहाँ से हुई है । महाभाग ! इसे आप बताने की कृपा करें, मुझे सुनने की इच्छा हो रही है ।१-५

सदानन्द बोले—सत्यनारायण देव की सेवा करने पर किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है (अर्थात् सभी की प्राप्ति होती है), उनकी अनुकम्पा से विहीन होने पर सुख का लेश मात्र भी नहीं प्राप्त होता है ।६।

निषाद उवाच

अहो किमिति माहात्म्यं सत्यनारायणार्चने । विधानं सोपचारं च ह्युपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥७
साधूनां समचित्तानामुपकारवतां सताम् । न गोप्यं विद्यते किञ्चिदार्तानामार्तिनाशनम् ॥८
इति पृष्टो विधिं वक्तुमितिहासमथाब्रवीत् । चन्द्रचूडो महीपालः केदारमणिपूरके ॥९
ममाश्रमे समायातः सत्यनारायणार्चने । विधानं श्रोतुकामोऽसौ मामाह सादरं वचः ॥१०
मया यत्कथितं तस्मै तन्निबोध निषादज । सङ्कल्प्य मनसा कामं निष्कामो वा जनः क्वचित् ॥११
गोधूमचूर्णं पादार्धं सेटकाद्यैः सुचूर्णकम् । संस्कृतं मधुगन्धाज्यैर्नैवेद्यं विभवेऽर्पयेत् ॥१२
पञ्चामृतेन संस्नाप्य चन्दनाद्यैश्च पूजयेत् । पायसापूपसंयावदध्धिक्षीरमथो हरेत् ॥१३
उच्चावचः फलैः पुष्पैर्धूपदीपैर्मनोरमैः । पूजयेत्परया भक्त्या विभवे सति विस्तरैः ॥१४
न तुष्येद्द्रव्यसम्भारैर्भक्त्या केवलया यथा । भगवान्परितः पूर्णो न मानं वृणुयात्क्वचित् ॥१५
दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा राजपूजां जनार्दनः । विदुरस्याश्रमे वासमातिथ्यं जगृहे विभुः ॥१६
सुदाम्नस्तण्डुलकणाञ्जग्ध्वा मानुष्यदुर्लभाः । सम्पदोऽदाद्धरिः प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्ष्यते ॥१७
गोपो गृध्रो वणिग्व्याधो हनुमान्सविभीषणः । येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकायाधवादयः ॥१८
नारायणान्तिकं प्राप्य मोदन्तेऽद्यापि यद्वशाः । इति श्रुत्वा नरपतिः पूजासम्भारमादरात् ॥१९

निषाद ने कहा—अहो, उनका इतना महत्त्व है, तो मुझे भी उन सत्यनारायण देव की अर्चना का विधान उपचार समेत बताने की कृपा कीजिये । क्योंकि उन साधुओं के लिए कष्टनाशक कोई वस्तु गोप्य नहीं होती है,जो समचित्त उपकारी एवं सज्जन होते हैं । उन्हें विधान बताने के व्याज से उसे एक इतिहास बताया—केदारमणिपुर में चन्द्रचूड नामक राजा रहता है, वह मेरे आश्रम में आकर सत्यनारायण की अर्चना का विधान जानने के लिए मुझसे सादर अनुनय विनय करने लगा । निषाद पुत्र ! मैंने उससे जो कुछ कहा, उसे बता रहा हूँ, सुनो ! मनुष्यों को चाहिए कि अपनी कामनाओं का मानसिक सङ्कल्प करके या यूँ ही, गेहूँ के पाव आधसेर आटे का शहद, गंध, घी एवं नैवेद्य द्वारा उत्तम प्रसाद (पंजीरी) बनाकर भगवान् को समर्पित करें । और पंचामृत से स्नान एवं चन्दनादि से पूजा सुसम्पन्न करके उन्हें खीर, मालपूआ, लपसी, दही और दूध अर्पित करे । इस प्रकार अपने धनानुसार विस्तृत या लघु उनकी पूजा छोटे बड़े फलों, पुष्पों, तथा उत्तम धूपदीपों द्वारा भक्ति विभोर हुए सुसम्पन्न करनी चाहिए ।७-१४। क्योंकि केवल भक्ति द्वारा जितना वे प्रसन्न होते हैं, उतना द्रव्यों के संभार द्वारा कभी नहीं । भगवान् सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं, अतः उनके विषय में कभी मान न करना चाहिए । इसीलिए विभु जनार्दन भगवान् ने दुर्योधन द्वारा की गई सेवा अस्वीकार करके विदुर के आश्रम में (शाक का) आतिथ्य सप्रेम स्वीकार किया । तथा सुदामा के उन चावल के कणों (किनकियों) का सप्रेम भक्षण करके भगवान् ने उन्हें मनुष्य-दुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया। अतः भगवान् केवल भक्ति मात्र की चाह करते हैं। गोपगण गीध (जटायु) वैश्य, व्याघ, हनुमान, विभीषण और इस प्रकार अन्य पापात्मा वृत्रादि दैत्यगण, आज भी भगवान् के समीप रहकर आनन्द का अनुभव कर रहे हैं । इसे सुनकर राजा ने सादर सामग्री एकत्र करके उनकी पूजा की, जिससे उन्हें धन की प्राप्ति हुई और आज भी नर्मदा के तट पर सुखानुभव कर रहे हैं ।

कृतवान्स धनं लब्ध्वा मोदते नर्मदातटे । निषाद त्वमपि प्रीत्या सत्यनारायणं भज ॥२०
इह लोके सुखं प्राप्य चान्ते सान्निध्यमाप्नुयाः । कृतकृत्यो निषादोऽभूत्प्रणम्य द्विजपुङ्गवम् ॥२१
स गत्वा स्वगणानाह माहात्म्यं हरिसेवने । ते हृष्टमनसः सर्वे समयं चक्रुरादृताः ॥२२
सत्यनारायणे पूजां काष्ठलब्धेन यावता । वयं कुलैः करिष्यामः पुण्यवृक्षविधानतः ॥२३
इति निश्चित्य मनसा काष्ठं विक्रीय लेभिरे । चतुर्गुणं धनं हृष्टाः स्वं स्वं भवनमाययुः ॥२४
मुदा स्त्रीभ्यस्समाचख्युर्वृत्तान्तं सर्वमादितः । ताः श्रुत्वा हृष्टमनसः पूजनं चक्रुरादरात् ॥२५
कथान्ते प्रणमन्भक्त्या प्रसादं जगृहुस्ततः । स्वजातिभ्यः परेभ्यश्च ददुस्तच्चूर्णमुत्तमम् ॥२६
पूजाप्रभावतो भिल्लाः पुत्रदारादिभिर्युताः । लब्ध्वा भूमितले द्रव्यं ज्ञानचक्षुर्महोत्तमम् ॥२७
भुक्त्वा भोगान्यथेष्टन्ते दरिद्रान्धा द्विजोत्तम । जग्मुस्ते वैष्णवं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथ ते वर्णयिष्यामि कथां साधूपचारिताम् । नृपोपदेशतः साधुः कृतार्थोऽभूद्वणिग्यथा ॥१

इसलिए निषाद ! तुम भी प्रेम पूर्वक सत्यनारायण देव की आराधना करो जिससे इस लोक में सुखानुभव करने के उपरांत, अंत समय में उनके समीप निवास करो । पश्चात् कृतकृत्य होकर वह निषाद उस द्विज श्रेष्ठ को प्रणाम करके वहाँ जाकर अपने साथियों से भगवान् का माहात्म्य कहने लगा । उसे सुनकर उन लोगों ने हर्ष विभोर होते हुए सादर प्रतिज्ञा की कि इन लकड़ियों के विक्रय करने पर जितने द्रव्य की प्राप्ति होगी, उसके द्वारा हम लोग सपरिवार सविधान सत्यनारायण देव की पूजा करेंगे—ऐसा मन से निश्चय करके वे लोग लकड़ियों के विक्रय करके चौगुने धन की प्राप्ति पूर्वक प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर चले गये । घर में पहुँच कर सभी आमूल वृत्तान्त स्त्रियों से कह सुनाया इसे सुनकर उन लोगों ने हर्षित होकर सादर उस पूजन को सम्पन्न किया—कथाश्रवण के उपरांत भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रसाद ग्रहण किया—अपनी जाति तथा इतर जाति के लोगों में उसका वितरण किया । द्विजोत्तम ! उस पूजा के प्रभाव से पुत्र-स्त्री समेत वे भिल्लगण इस भूतल में द्रव्य एवं उत्तम ज्ञान-चक्षु की प्राप्ति करके यथेच्छ भोगों को प्राप्त करने के उपरांत वे दरिद्रान्ध योगी दुर्लभ उस वैष्णवधाम को चले गये ।१५-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—मैं अब तुम्हें उस साधु वैश्य का चरित सुनाऊँगा, जो राजा के उपदेश देने पर कृतार्थ

मणिपूरपतो राजा चन्द्रचूडो महायशाः । सह प्रजाभिरानर्च सत्यनारायणं प्रभुम् ॥२
अथ रत्नपुरस्थायी साधुर्लक्षपतिर्वणिक् । धनैरापूर्य तरणीः सह गच्छन्नदीतटे ॥३
ददर्श बहुलं लोकं नानाग्रामविलासिनम् । मणिमुक्ताविरचितैर्वितानैस्समलङ्कृतम् ॥४
वेदवादांश्च शुश्राव गीतवादित्रसङ्गतान् । रम्यं स्थानं समालोक्य कर्णधारं समादिशत् ॥५
विश्रामयात्र तरणीरिति पश्यामि कौतुकम् । भर्त्रादिष्टस्तथा चक्रे कर्णधारः सभृत्यकः ॥६
तटसीम्नः समुत्तीर्य मल्ललोला विलासिनः । कर्णधारा नगा वीरा युयुधुर्मल्ललीलया ॥७
स्वयमुत्तीर्य सामात्यो लोकान्पप्रच्छ सादरम् । यज्ञस्थानं समालोक्य प्रशस्तं समुदा ययौ ॥८
किमत्र क्रियते सभ्या भवद्भिर्लोकपूजितैः । सभ्या ऊचुश्च ते सर्वे सत्यनारायणो विभुः ॥९
पूज्यते बन्धुभिः सार्धं राज्ञा लोकानुकम्पिना । प्राप्तं निष्कण्टकं राज्यं सत्यनारायणार्चनात् ॥१०
धनार्थी लभते द्रव्यं पुत्रार्थी सुतमुत्तमम् । ज्ञानार्थी लभते चक्षुर्निर्भयः स्याद्भयातुरः ॥११
सर्वान्कामानवाप्नोति नरः सत्यसुरार्चनात् । विधानं तु ततः श्रुत्वा चैलं बद्ध्वा गलेऽसकृत् ॥१२
दण्डवत्प्रणिपत्याह कामं सभ्यानमोदयत् । अनपत्योऽस्मि भगवन्वृथैश्वर्यो वृथोद्यमः ॥१३
पुत्रं वा यदि वा कन्यां लभेयं त्वत्प्रसादतः । पताकां काञ्चनीं कृत्वा पूजयिष्ये कृपानिधिम् ॥१४
श्रुत्वा सभ्या अब्रुवंस्ते कामनासिद्धिरस्तु ते । हरिं प्रणम्य सभ्यांश्च प्रसादं भुक्तवांस्तदा ॥१५

हो गया था । मणिनगर का महायशस्वी राजा चन्द्रचूड अपनी प्रजाओं समेत सत्यनारायण प्रभु की अर्चना कर रहा था । उसी बीच रत्नपुर का लक्षपति एवं वैश्य जाति का साधु उस नाव पर बैठकर जिसमें अत्यन्त धन भरा हुआ था । जाते हुए अनेक ग्रामों एवं उसके निवासियों को देखते हुए एवं सुन्दर स्थान को देखा, जो मणि मोतियों द्वारा खचित वितानों से अलंकृत था । वहाँ वेदपाठ के श्रवण समेत गायन वाद्य भी सुना । उस रमणीक स्थान को देखकर उसने अपने सेवकों से कहा जो नाव चला रहे थे।१-५। नाव को यहाँ रोक दो, क्योंकि मैं इस कौतुक को देखना चाहता हूँ । उन्होंने स्वामी की आज्ञा प्रदान करने पर अपने सहायकों समेत वैसा ही किया । उस नदी के तट पर उतरकर मल्लयुद्ध निपुण वे नाव चलाने वाले वहाँ के मल्लाहों के साथ (अपने दाव-पेच द्वारा) युद्ध करते हुए मनोरञ्जन दिखाने लगे । उस साधु ने अपने मंत्री को साथ लेकर नाव से उतरकर सादर लोगों से पूछा । पश्चात् उस प्रशस्त यज्ञ-स्थान को देखकर हर्षित होते हुए वहाँ भी गया—सज्जन वृन्दों ! आप महानुभाव यहाँ क्या कर रहे हैं ? इस प्रकार पूँछने पर उन सज्जनों ने कहा—लोगों पर अनुग्रह रखने वाले यहाँ के राजा अपने बन्धुवर्गों के साथ में सत्यनारायण देव की पूजा कर रहे हैं । इसी के प्रभाव से उन्हें निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति हुई है । (इसके श्रवण करने पर) धनार्थी द्रव्य, पुत्रेच्छुक उत्तम पुत्र, ज्ञानार्थी ज्ञाननेत्र एवं भयभीत निर्वाण की प्राप्ति करते हैं । अर्थात् सत्यदेव की पूजा करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ सफल होती हैं । उसके उपरांत (पूजन के) विधान को सुनकर गले में एक वस्त्र बाँधकर बार-बार दण्डवत् प्रणाम करके उन सभ्य सज्जनों को प्रसन्न किया और कहा भी, कि भगवन् ! मैं सन्तान-हीन हूँ, इसलिए मेरा ऐश्वर्य एवं उसके उपार्जन का उद्यम करना व्यर्थ है । किन्तु अपनी प्रसन्नतावश यदि मुझे इस अवस्था में भी किसी सन्तान पुत्र अथवा कन्या की प्राप्ति हो जाये तो मैं सुवर्ण की पताका के समर्पण द्वारा कृपानिधि भगवान् की पूजा करूँगा।६-१४। इसे सुनकर उन सज्जनों ने कहा—तुम्हारी कामना सफल हो, उपरांत उन

जगाम स्वालयं साधुर्मनसा चिन्तयन्हरिम् । स्वगृहे ह्यागते तस्मिन्नार्यो मङ्गलपाणयः ।।१६
मङ्गलानि विचित्राणि यथोचितमकारयन् । विवेशान्तःपुरे साधुर्महाकौतुकमङ्गलः ।।१७
ऋतुस्नाता सती लीलावती पर्यचरत्पतिम् । गर्भं धृतवती साध्वी सनये सुषुवे तु सा ।।१८
कन्यां कमललोलाक्षीं बान्धवामोदकारिणीम् । साधुः परां मुदं लेभे वितताार धनं बहु ।।१९
विप्रानाहूय वेदज्ञान्कारयामास मङ्गलम् । लेखयित्वा जन्मपत्रीं नाम चक्रे कलावतीम् ।।२०
कलानिधिकले वासौ ववृधे सा कलावती । अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।।२१
दशवर्षा भवेत्कन्या ततः प्रौढा रजस्वला । प्रौढां कालेन तां दृष्ट्वा विवाहार्थमचिन्तयत् ।।२२
नगरे काञ्चनपुरे वणिक्छङ्खपतिः श्रुतः । कुलीनो रूपसम्पत्तिशीलौदार्यगुणान्वितः ।।२३
वरयामास तं साधुर्दुहितुः सदृशं वरम् । शुभे लग्ने बहुविधैर्मङ्गलैरग्निसन्निधौ ।।२४
वेदवादित्रनिनदैर्ददौ कन्यां यथाविधि । मणिमुक्ताप्रवालानि वसनं भूषणानि च ।।२५
महामोदमनाः साधुर्मङ्गलार्थं ददौ च ह । प्रेम्णा निवासयामास गृहे जामातरं ततः ।।२६
तं मेने पुत्रवत्साधुः स च तं पितृवत्सुधीः । अतीते भूयसः काले सत्यनारायणार्चनम् ।।
विस्मृत्य सह जामात्रा वाणिज्याय ययौ पुनः ।।२७

सभ्यों के प्रणाम पूर्वक प्रसाद भक्षण कर भगवान् का मानसिक चिन्तन करता हुआ वह वैश्य अपने घर को लौट आया ।१५-१६। उसके आने पर घर की स्त्रियाँ हाथों में मांगलिक वस्तुओं को लेकर विचित्र भाँति के मांगलिक कर्म करने लगीं । अनन्तर उस साधु वैश्य ने उस महान् मांगलिक कौतुक समेत अपने नगर में प्रवेश किया । कुछ समय के उपरांत लीलावती नामक उसकी पत्नी ने ऋतुकालीन स्नान करके पति की सेवा-शुश्रूषा द्वारा गर्भधारण किया और समय प्राप्त होने पर उस पति परायण ने एक कन्या रत्न उत्पन्न किया, जिसके कमल की भाँति विशाल, तथा चपल नेत्र और जो स्वयं बन्धु वर्गों को आनन्द प्रदान करने वाली थी । उसे देखकर वह वैश्य आनन्द विभोर होकर अत्यन्त धन का वितरण करने लगा । वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर कर मंगल कर्म सुसम्पन्न कराकर ज्योतिषी ब्राह्मण द्वारा जन्मपत्री बनवाया और स्वयं उसका नामकरण कलावती किया । वह कलावती भी कलानिधि चन्द्र की कला की भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगी । (कन्यायें) आठ वर्ष की अवस्था में गौरी, नव वर्ष की अवस्था में रोहिणी दश वर्ष की अवस्था में कन्या और उसके पश्चात् प्रौढा एवं रजस्वला कही गई हैं । उसने समय पाकर अपनी कन्या की प्रौढ़ावस्था देखकर उसके विवाहार्थ काञ्चनपुर नगर के निवासी उस शंखपति नामक वैश्य का, जो कुलीन, रूप सौन्दर्य युक्त, शील एवं उदार आदि गुण युक्त था, अपनी पुत्री के समान वर की उपलब्धि होने पर उसके लिए वरण किया । पश्चात् शुभ लगन में भाँति-भाँति के अनेक मांगलिक समारोह समेत यथा विधान जिसमें वैदिक ध्वनियों से वह स्थान गुंजित हो रहा था, उसके साथ अपनी कन्या का पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराया । उस साधु ने उसकी मांगलिक कामना के निमित्त मणि, मोती, मूंगे, वस्त्र, एवं आभूषणों को प्रसन्नता में विभोर होकर प्रदान किया । पश्चात् अत्यन्त प्रेम के नाते उसे (दामाद को) अपने ही घर में रख लिया । वह साधु उससे पुत्र की भाँति प्रेम करने लगा और वह उससे अपने पिता की भाँति । अधिक दिनों के बीत जाने पर सत्यनारायण की पूजा का स्मरण न रहा, और अपने दामाद के साथ अपने व्यापार के लिए पुनः प्रस्थान भी किया ।१७-२७

सूत उवाच

अथ साधुः समादाय रत्नानि विविधानि च ॥२८

नौकाः संस्थाप्य स ययौ देशाद्देशान्तरं प्रति । नगरं नर्मदातीरे तत्र वासं चकार सः ॥२९

कुर्वन्क्रयं विक्रयं च चिरं तस्थौ महामनाः । कर्मणा मनसा वाचा न कृतं सत्यसेवनम् ॥३०

ततः कर्मविपाकेन तापमापाचिराद्वणिक् । कस्मिंश्चिद्दिवसे रात्रौ राज्ञो गेहे तमोवृते ॥३१

ज्ञात्वा निद्रागतान्सर्वान्हृतं चौरैर्महाधनम् । प्रभाते वाचितो राजा सूतमागधवन्दिभिः ॥३२

प्रातः कृत्यं नृपः कृत्वा सदः सम्प्राविशच्च सः । ततस्तत्र समायातः किङ्करो राजवल्लभः ॥३३

उवाच स तदा वाक्यं शृणुष्व त्वं धरापते । मुक्तामालाश्च बहुधा रत्नानि विवधानि च ॥३४

मुमुषुश्चौरा गतास्सर्वे न जानीमो वयं नृप । इति विज्ञापितो राजा पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥३५

उवाच क्रोधताम्राक्षो यूयं संयात मा चिरम् । सचौरं द्रव्यमादाय मत्पार्श्वं त्वमुपानय ॥३६

नो चेद्धनिष्ये सगणानिति दूतान्समादिशत् । नृपवाक्यं समाकर्ण्य प्रजग्मुस्ते च किङ्कराः ॥३७

बहुयत्नैर्न संशोध्य द्रव्यं चौरसमन्वितम् । एकीभूत्वा निशि तदा महाचिन्तातुरोऽभवत् ॥३८

हन्ता मां सगणं राजा किं करोमि कुतः सुखम् । नृपदण्डाच्च मे मृत्युः प्रेतत्वाय भवेदिह ॥३९

नर्मदायां च मरणं शिवलोकप्रदायकम् । इत्येवं सम्मतं कृत्वा नर्मदायास्तटं ययुः ॥४०

विदेशिनोऽस्य वणिजो ददर्श विपुलं धनम् । मुक्ताहारं गले तस्य लुण्ठितं वणिजोऽस्य च ॥४१

सूत जी बोले—भाँति-भाँति के रत्नों को अपनी नौका में रखकर वह साधु उस नाव द्वारा देश-देशान्तर के लिए प्रस्थित हुआ। नर्मदा नदी के तट पर एक नगर में पहुँचकर नाव रोक कर ठहर गया। क्रय-विक्रय करता हुआ वह महात्मा वैश्य अधिक दिनों तक वहाँ रहने पर भी कर्म, मन, अथवा वाणी द्वारा सत्य-नारायण की सेवा का स्मरण न कर सका जिससे उस वैश्य को देव दुर्विपाक (दुर्भाग्य) वश शीघ्र ही (उसके परिणाम-स्वरूप) संतप्त होना पड़ा। किसी दिन रात्रि के समय घने अंधकार में राजा के यहाँ सब को निद्रित समझकर चोरों ने वहाँ से अत्यन्त धन की चोरी की।२८-३२। प्रातः काल सूत, मागध एवं बंदियों द्वारा जागकर राजा प्रातः काल का कृत्य समाप्त करके सभा में प्रविष्ट हुआ कि—राजा के प्रिय सेवकों ने वहाँ आकर कहा—पृथिवी पते ! मेरी बातों को सुनने की कृपा करें। मोतियों की मालाएँ और अनेक भाँति के रत्नों को चुराकर चोर गण भाग गये, राजन् ! उनके विषय में हम लोग कुछ भी नहीं जानते हैं। इस प्रकार निवेदन करने पर पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ वह राजा क्रुद्ध होने के नाते रक्तनेत्र होकर कहने लगा—तुम लोग शीघ्र जाओ और धन समेत उन चोरों को मेरे सम्मुख उपस्थित करो। नहीं तो तुम्हें गणसमेत प्राण-दण्ड दिया जायगा। इस प्रकार उसने अपने सेवकों को आज्ञा प्रदान की। वे सेवक वर्ग राजा की बातें सुनकर वहाँ से चल दिये। अनेक प्रयत्न करने पर भी धन समेत चोर का पता न मिलने पर वे सब रात्रि में एकत्र होकर चिन्तित होने लगे। राजा, गणसमेत हमें प्राणदण्ड देगा, अतः क्या करूँ, सुख की प्राप्ति कैसे हो। राजदण्ड द्वारा होने वाली मृत्यु मुझे प्रेत बनायेगी ही अतः नर्मदा में डूबकर प्राण परित्याग करना कल्याणप्रद समझता हूँ, इस प्रकार निश्चय करके वे लोग नर्मदा के तट पर पहुँचे।३३-४०। वहाँ उस विदेशी वैश्य के विपुल धन तथा उस साधु के कण्ठ में सुशोभित उस मोती के हार को देखकर अपनी रक्षा के निमित्त उसे चोर निश्चय कर बाँध

चौरोऽयमिति निश्चित्य तौ बलन्धात्मरक्षणात् । सधनं सह जामात्रा नृपान्तिकमुपानयत् ॥४२
प्रतिकूले हरौ तस्मिन्राज्ञापि न विचारितम् । धनागारे धनं नीत्वा बध्नीत तौ सुदुर्मती ॥४३
कारागारे लोहमयैः श्रृङ्खलैरङ्घ्रिपादयोः । इति राजाज्ञया दूतास्तथा चक्रुर्निबन्धनम् ॥४४
जामात्रा सहितः साधुर्विललाप भृशं मुहुः । हा पुत्र तात तातेति जामातः क्व धनं गतम् ॥४५
क्व स्थिता च सुता भार्या पश्य धातुर्विपर्ययम् । निमग्नौ दुःखजलधौ को वां पास्यति सङ्कटात् ॥४६
मया बहुतरं धातुर्दिप्रियं हि पुरा कृतम् । तत्कर्मणः प्रभावोऽयं न जाने कस्य वा फलम् ॥४७
ससंश्वशुरजामात्रौ द्वादशेषु विषादिनौ ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ।२८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

तापत्रयहरं विष्णोश्चरितं तस्य ते शिवम् । श्रृण्वन्ति सुधियो नित्यं ते वसन्ति हरेः पदम् ॥१
प्रतिकूले हरौ तस्मिन्यास्यन्ति निरयान्बहून् । तत्प्रिया कमला देवी चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥२

लिया । उसके धन एवं दामाद समेत उसे राजा के समीप उपस्थित किया । भगवान् के प्रतिकूल होने के नाते राजा भी उनके विषय में कुछ विचार न कर धनालय (खजाने) में धन रखकर इन दोनों दुष्टों को बाँधकर लोहे की श्रृंखला (जंजीर) से इनके दोनों चरण बाँधकर जेल में डाल दो, इस प्रकार राजा के आदेश होने पर उनके सेवकों ने वैसा ही उन्हें बन्धनों से जकड़ दिया । दामाद समेत साधु बार-बार विलाप करता था—हा, पुत्र, तात जामात ! मेरा धन कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और स्त्री कहाँ है । भाग्य का उलट-फेर देखो, इसी कारण हम लोग दुःख सागर में डूब रहे हैं, इस संकट से हमारी कौन रक्षा करेगा । मैंने पहले अनेक बार भगवान् को, अप्रसन्न किया है, उसी का यह दुर्विपाक परिणाम उपस्थित है, अथवा नहीं जानता यह किस कर्म का फल प्राप्त हो रहा है, इस प्रकार वे श्वसुर जामाता दोनों बारह दिनों तक चिन्तित रहकर दुःखों का अनुभव करते रहे हैं ।४१-४८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य वर्णन
नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अध्याय २९

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—भगवान् विष्णु का चरित तीनों तापों का विनाश करता है, वही उसे तथा तुम्हारे लिए कल्याणप्रद है । जो विद्वद्गण नित्य उसका श्रवण करते हैं, वे भगवान् के स्थान की प्राप्ति करते

धर्मो यज्ञो नृपश्चौरः सर्वे लक्ष्मीप्रियङ्कराः । विप्रेभ्यश्चातिथिभ्यश्च यद्दानं धर्म उच्यते ॥३
मातृभ्यो देवताभ्यश्च स्वधा स्वाहेति वै मखः । धर्मस्यैव मखस्यैव रक्षको नृपतिः स्मृतः ॥४
द्वयोर्हन्ता हि चोरः स ते सर्वे धर्मकिङ्कराः । यत्र सत्यं ततो धर्मस्तत्र लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥५
सत्यहीनस्य तत्साधोर्धनं यत्तद्गृहे स्थितम् । हृतवानवनीपालः चौरैर्भार्यातिदुःखिता ॥६
वासोऽलङ्करणादीनि विक्रीय बुभुजे किल । नास्ति तत्पच्यते किञ्चित्तदा कष्टमगाहत ॥७
अथैकस्मिन्दिने कन्या भोजनाच्छादनं विना । गता विप्रगृहेऽपश्यत्सत्यनारायणार्चनम् ॥८
प्रार्थयन्तं जगन्नाथं दृष्ट्वा सा प्रार्थयद्धरिम् । सत्यनारायण हरे पिता भर्ता च मे गृहम् ॥९
आगच्छत्वर्चयिष्यामि भवन्तमिति याचये । तथास्तु ब्राह्मणैरुक्ता ततः सा त्वाश्रमं ययौ ॥१०
मात्रा निर्भर्त्सिते यं तं कालं कुत्र स्थिता शुभे । वृत्तान्तं कथयामास सत्यनारायणार्चने ॥११
कलौ प्रत्यक्षफलदः सर्वदा क्रियते नरैः । कर्तुमिच्छाम्यहं मातरनुज्ञातुं त्वमर्हसि ॥१२
देशमायातु जनकः स्वामी च मम कामना । रात्रौ निश्चित्य मनसा प्रभाते सा कलावती ॥१३
शीलपालस्य गुप्तस्य गेहे प्राप्ता धनार्थिनी । बन्धो किञ्चिद्धनं देहि येन सत्यार्चनं भवेत् ॥१४

है । भगवान् के प्रतिकूल (अप्रसन्न) रहने पर अनेक भाँति के नरकों की प्राप्ति होती है । भगवान् की प्राणप्रिया कमला देवी हैं और धर्म, यज्ञ, राजा एवं चोर नामक ये चार पुत्र हैं, जो लक्ष्मी का प्रिय कार्य करते रहते हैं । ब्राह्मण तथा अतिथि के निमित्त दिये जाने वाले दान को धर्म बताया गया है, मातृकाओं और देवताओं के लिए स्वधा तथा स्वाहा के द्वारा अर्पित करने को मख (यज्ञ) कहा गया है । इन्हीं दोनों (धर्म और यज्ञ) के रक्षक को राजा, एवं इन्हीं दोनों के विनाशक को चोर कहा जाता है । इसीलिए सब धर्म सेवक हैं । जहाँ सत्य की स्थिति रहती है, उसी स्थान पर लक्ष्मी स्थिर रहती है । सत्य-हीन होने के नाते उस साधु के नौकास्थित धन को राजा और घर में स्थित धन को चोरों ने चुराकर उसकी पत्नी को इतना कष्ट प्रदान किया । जिससे उसने अपने आभूषणों वस्त्रों आदि को भी विक्रय करके प्राण-रक्षा की किन्तु कुछ दिन के अनन्तर भोजन बनाने की किसी सामग्री के न रहने पर वे दोनों माता-पुत्री लकड़ी ढ़ोने लगी । इसके उपरांत एक दिन वह कन्या भोजन-वस्त्र विहीन होकर एक ब्राह्मण के घर गई जहाँ सत्यनारायण देव की पूजा हो रही थी ।१-८। वहाँ जगन्नियन्ता की प्रार्थना हो रही थी । उसे देखकर उसने भी भगवान् से प्रार्थना की—सत्यनारायण भगवान् ! हमारे पिता और पति दोनों सकुशल घर आ जाँये तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी, यही आप से प्रार्थना कर रही हूँ । वहाँ के ब्राह्मणों ने कहा—वैसा ही होगा । पश्चात् वह घर चली आई । पर घर आने पर उसे उसकी माता ने डाँटते हुए कहा—शुभे ! तुम इतने समय तक कहाँ रही ! उसने उस सत्यनारायण की अर्चना का सभी वृत्तान्त उसे सुना दिया । कलियुग में यह प्रत्यक्ष फल प्रदान करता है, अतः मनुष्य सदैव इसे किया करते हैं । इसलिए मातः ! तुम्हारी यदि आज्ञा हो जाये तो इसे मैं भी करना चाहती हूँ । क्योंकि मेरी एकान्त कामना है कि पिता और स्वामी शीघ्र घर आ जायँ । इस प्रकार रात्रि में निश्चय करके प्रातः काल वह कलावती कन्या शीलपाल नामक गुप्त के यहाँ जाकर कुछ धन की याचना करने लगी—भ्रातः ! 'कुछ थोड़ा-सा धन दीजिये जिससे सत्यनारायण की अर्चना सुसम्पन्न हो जाये।९-१४। इसे सुनकर शीलपाल ने उसे पाँच सुवर्ण की

इति श्रुत्वा शीलपालः पञ्चनिष्कं धनं ददौ । त्वत्पितुश्च ऋणं शेषं मयीत्येव कलावति ।।१५
इत्युक्त्वा सोऽनृणो भूत्वा गयाश्राद्धाय संययौ । सुताऽपि तेन द्रव्येण कृतं सत्यार्चनं शभम् ।।१६
लीलावती सह तया भक्त्याकार्षीत्प्रपूजनम् । पूजनेन विशेषेण तुष्टो नारायणोऽभवत् ।।१७
नर्मदातीरनगरे नृपः सुष्वाप मन्दिरे । रात्रिशेषे सुपर्यङ्के निद्रां कुर्वति राजनि ।।
उवाच विप्ररूपेण बोधयञ्छ्लक्ष्णया गिरा ।।१८
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तौ साधू परिमोचय । अपराधं विना बद्धौ नो चेच्छं न भवेत्तव ।।१९
इत्येवं भूपतिश्चैव विप्ररूपेण बोधितः । तदा ह्यन्तर्दधे विष्णुर्विनिद्रो नृपतिस्तदा ।।२०
विस्मितः सहसोत्थाय दध्यौ ब्रह्म सनातनम् । सभायां मन्त्रिणे राजा स्वप्नहेतुं न्यवेदयत् ।।२१
महामन्त्री च भूपालं प्राह सत्येन भो द्विज । मयापि दर्शितं स्वप्नं वृद्धविप्रेण बोधितम् ।।
अतस्तौ हि समानीय सम्पृच्छ विधिवन्नृप ।।२२
आनीय साधुं पप्रच्छ सत्यमालम्ब्य भूपतिः । कुत्रत्यौ वां कुलं किं वा वसतिः कस्य वा पुरे ।।२३

साधुरुवाच

रम्ये रत्नपुरे वासो वणिग्जातौ जनिर्मम । वाणिज्यार्थं महाराज वाणिज्यं जीविकावयोः ।।२४
मणिमुक्तादिविक्रेतुं क्रेतुं वा तव पत्तने । प्राप्तौ दूतैश्च बद्धावां त्वत्समीपमुपागतौ ।।२५
प्रतिकूले विधौ को वा दशां नाप्नोति वै पुमान् । विनापराधं राजेन्द्र मणिचौरानवादयन् ।।२६

मुद्रा (गिन्नी) प्रदान किया । और कहा—कलावति ! यह तुम्हारे पिता का ऋण मेरे यहाँ रह गया था, इतना कहकर ऋण से मुक्त होने पर वह गया श्राद्ध के लिए चला गया । और उस कन्या ने उस धन द्वारा सत्यनारायण की शुभ पूजा अपनी माता लीलावती समेत भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न किया । उस पूजन द्वारा नारायण अत्यन्त प्रसन्न हुए । नर्मदा के तट पर राजा मन्दिर में शयन कर रहा था । थोड़ी सी रात्रि के शेष रहते समय जब कि राजन् अपनी शय्या पर निद्रामग्न शयन कर रहा था । ब्राह्मण का रूप धारण करके विष्णु ने विनम्र वाणी द्वारा उससे कहा—राजेन्द्र ! उठो, उठो ! उन दोनों साधुओं को शीघ्र मुक्त करो, तुमने बिना अपराध उन्हें बाँध रखा है, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा । इस प्रकार ब्राह्मण रूप द्वारा भगवान् के कहने पर राजा जाग उठे । उस समय भगवान् अन्तर्हित हो गये । आश्चर्य प्रकट करता हुआ राजा सहसा उठकर सनातन ब्रह्म के ध्यान पूर्वक सभा में पहुँचकर स्वप्न का कारण मंत्रियों से कहने लगा—द्विज ! प्रजागण और मंत्री सभी राजा से कहने लगे कि यह सत्य है, मैंने भी इसी भाँति का स्वप्न देखा है, जिसमें वृद्ध ब्राह्मण द्वारा ज्ञान कराया गया है । पश्चात् राजा ने उन दोनों वैश्यों को बुलाकर सादर पूँछा । उन दोनों के आने पर उनसे राजा ने कहा—आप लोग कहाँ रहते हैं, किस कुल में उत्पन्न हैं और किस नगर के निवासी हैं ।१५-२३

साधु ने कहा—रमणीक रत्नपुर का मैं निवासी हूँ, वैश्य कुल में मेरा जन्म हुआ है, महाराज ! हमारी जीविका व्यापार ही है, अतः व्यापार के लिए हम दोनों मणि-मोतियों के क्रय-विक्रयार्थ आप के नगर में आये थे । वहाँ आप के सेवकों ने आकर हमें बाँध कर आप के सम्मुख उपस्थित किया । भाग्य के पलट जाने पर मनुष्य को कौन-सी दशा प्राप्त नहीं है इसीलिए बिना अपराध भी कृष्ण को मणि का चोर

आवां न चौरौ राजेन्द्र तत्त्वतस्त्वं विचारय । श्रुत्वा तन्निश्चयं ज्ञात्वा तयोर्बन्धनकारणम् ॥२७
छेदयित्वा दृढं पाशं लोमशातिमकारयत् । कारयित्वा परिष्कारं भोजयामास तौ नृपः ॥२८
नगरे पूजयामास वस्त्राभूषणवाहनैः । अब्रवीत्पूजितः साधुर्भूपतिं विनयान्वितः ॥२९
कारागारे बहुविधं प्राप्तं दुःखमतः परम् । आज्ञापय महाराज देशं गन्तुं कृपानिधे ॥३०
श्रुत्वा साधुवचो राजा प्राह कोशाधिकारिणम् । मुद्राभिस्तरणीः सद्यः पूरयाशु मदाज्ञया ॥३१
जामात्रा सहितः साधुर्गीतवादित्रमङ्गलैः । स्वदेशं चलितोऽद्यापि न चक्रे हरिसेवनम् ॥३२
सत्यनारायणो देवः प्रत्यक्षफलदः कलौ । स एव तापसो भूत्वा चक्रे साधुविडम्बनम् ॥३३

तापस उवाच

धर्मः किं नौषु ते साधो मामनादृत्य यासि भोः । प्रत्युत्तरमदात्साधुः क्षिप नौकाश्च सत्वरम् ॥३४
भोः स्वामिन्मे धनं नास्ति लतापत्रादिपूरितम् । नौभिर्गच्छामि स्वस्थानं विरोधे नात्र किं फलम् ॥३५
इत्युक्तस्तापसः प्राह तथास्त्विति वचः क्षणात् । धनमन्तर्दधे साधोर्लतापत्रावशेषितम् ॥३६
धनं नौकासु नास्तीति साधुश्चिन्तातुरोऽभवत् । किमिदं कस्य वा हेतोर्धनं कुत्र गतं मम ॥३७
वज्रपाताहत इव भृशं दुःखितमानसः । क्व यास्यामि क्व तिष्ठामि किं करोमि धनं कुतः ॥३८
इति मूर्च्छागतः साधुर्विललाप पुनः पुनः । जामात्रा बोधितः पश्चात्तापसं तं जगाम ह ॥३९

कहा गया था । राजेन्द्र ! आप भली भाँति विचार कर सकते हैं—हम दोनों चोर नहीं है । उनके बन्धन के कारण को सुनकर तथा उसे निश्चित मानकर उनकी हथकड़ी बेड़ी काटकर, उनके क्षौर कराकर तथा उन्हें भूषणों से भूषित करके राजा ने उन्हें भोजन कराया ।२४-२८। पुनः अपने नगर में वस्त्र, आभूषण एवं वाहन (सवारियों) समेत उनकी पूजा सुसम्पन्न करने पर साधु ने विनय-विनम्र होकर राजा से कहा—महाराज ! जेल में तो बहुत दुःखों का अनुभव करना पड़ा, किन्तु अब तो दूसरी अवस्था में हूँ, अतः कृपानिधे ! आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं अपने देश जाना चाहता हूँ । साधु की बातें सुनकर राजा ने अपने कोषाध्यक्ष से कहा—मेरी आज्ञा है, इनकी नौका मुद्राओं से परिपूर्ण कर दीजिये । इसके उपरांत अपने जामाता समेत वह साधु मांगलिक गायन-वाद्य समेत स्वदेश के लिए प्रस्थित हुआ, किन्तु इतने पर भी उसने भगवान् की अर्चना न की । कलियुग में सत्यनारायण देव प्रत्यक्ष फल प्रदान करते हैं, अतः तपस्वी का वेष धारणकर भगवान् साधु की भाँति व्यवहार करने लगे—२९-३३

तापस ने कहा—साधो ! तुम्हारी नौका में क्या है, और मेरा अनादर करके चले जा रहे हो यह क्या धर्म है ? इसके उत्तर में साधु ने कहा—नाव छोड़ दीजिये । महाराज ! मेरी नौका में धन नहीं है केवल लता-पत्र से यह भरी पड़ी है । अतः इस नौका द्वारा मैं अपने घर जा रहा हूँ, इसमें विरोध करने से क्या लाभ हो सकता है । इतना कहने पर उस तापस ने कहा—इसी क्षण तुम्हारी बात सत्य हो। तदनन्तर साधु वैश्य का धन तो अन्तर्हित हो गया और नौका में केवल लतापत्र आदि शेष रह गये । अपनी नौका में धन न देखकर साधु व्याकुल हो गया और सोचने लगा—यह क्या हुआ, क्या कारण है, मेरा पात्र कहाँ चला गया । वज्राघात से आहत होने की भाँति अत्यन्त दुःखित होकर अब कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, और क्या करूँ, हा मेरा धन क्या हो गया ।३४-३९। इस प्रकार मूर्च्छित होकर वह वैश्य बार-बार विलाप करने लगा। पश्चात् जामाता के बताने पर वह तपस्वी के पास गया। गले में वस्त्र बाँधकर तपस्वी को प्रणाम

गले वसनमादाय प्रणनाम स तापसम् । को भवानिति पप्रच्छ देवो गन्धर्व ईश्वरः ॥४०
देवदेवोऽथ वा कोऽपि न जाने तव विक्रमम् । आज्ञापय महाभाग तद्विडम्बनकारणम् ॥४१

तापस उवाच

आत्मा चैवात्मनः शत्रुस्तथात्र च प्रियोऽप्रियः । त्यज मौढचमतिं साधो प्रवादं मा वृथा कृथाः ॥४२
इति विज्ञापितः साधुर्न बुबोध महाधनः । पुनः स तापसः प्राह कृपया पूर्वकर्मतः॥४३
चन्द्रचूडो यदानर्च सत्यनारायणं नृपः । अनपत्येन सुचिरं पुत्रकन्यार्थिना त्वया ॥४४
प्रार्थितं न स्मृतं ह्येव इदानीं तप्यसे वृथा । सत्यनारायणो देवो विश्वव्यापी फलप्रदः ॥४५
तमनादृत्य दुर्बुद्धे कुतः सम्यग्भवेत्तव । पुरा लब्धवरं स्मृत्वा सस्मार जगदीश्वरम् ॥४६
सत्यनारायणं देवं तापसं तं ददर्श ह । प्रणम्य भुवि कायेन परिक्रम्य पुनः पुनः ॥
तुष्टाव तापसं तत्र साधुर्गद्गदया गिरा ॥४७

साधुरुवाच

सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम् । यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम् ॥४८
त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यन्त्यात्मनः शुभम् । दुःखाम्भोधौ सदा मग्ना दुःखे च सुखमानिनः ॥४९
मूढोहं धनगर्वेण मदान्धीकृतलोचनः । न जाने स्वात्मनः क्षेमं कथं पश्यामि मूढधीः ॥५०

किया और कहने लगा—आप कौन हैं देव, गन्धर्व या ईश्वर ! अथवा देवाधिदेव हैं, मैं आप के पराक्रम जानने में असमर्थ हूँ । महाभाग ! इस भाँति के व्यवहार करने का कारण बताइये ।४०-४१

तापस बोले—साधो ! आत्मा ही आत्मा का शत्रु है तथा वही उसका प्रिय और अप्रिय भी । अतः व्यर्थ बाद करने की आवश्यकता नहीं है, अपनी मूढ़ता का त्याग करो । तापस के इस भाँति कहने पर भी उस धनाढ्य साधु को ज्ञान उत्पन्न न हुआ । इसलिए उसके पूर्व कर्मों के कारण कृपा करते हुए तापस ने कहा—राजा चन्द्रचूड़ जिस समय सत्यनारायण की पूजा कर रहे थे, सन्तानहीन होकर तुमने भी सन्तानार्थ उनकी प्रार्थना की थी, क्या तुमने उसका विस्मरण नहीं किया, फिर क्यों व्यर्थ संतप्त हो रहे हो । दुर्बुद्धे ! सत्यनारायण देव विश्वव्यापी हैं, और वही फल प्रदान करते हैं, उनका अनादर करने पर तुम्हें सुख प्राप्त कैसे हो सकता है । पश्चात् उस वैश्य ने पहले समय में प्राप्त हुए वरदान का स्मरण करते हुए ज़गदीश्वर का स्मरण किया, पुनः उस तपस्वी को सत्यनारायण देव के रूप में देखा । पृथिवी में गिरकर दण्डवत् करके उनकी बार-बार परिक्रमा करते हुए अपनी गद्गद वाणी द्वारा तापस को प्रसन्न करने लगा—४२-४७

साधु ने कहा—सत्यनारायण देव को नमस्कार है, जो सत्य रूप, सत्य प्रतिज्ञ और जगत् में सत्य रूप से वर्तमान हैं । तुम्हारी माया से मुग्ध होकर मनुष्य अपने आत्म कल्याण को नहीं देखता है, तथा दुःख सागर में निमग्न रहते हुए भी अपने को सुखी अनुभव करता है। मैं तो मूर्ख हूँ, धन के गर्व से मेरे दोनों नेत्र अन्धे से हो गये हैं। इसलिए अपने आत्म-कल्याण को नहीं जानता हूँ, एवं मूर्खबुद्धि होने के नाते देख भी कैसे सकता हूँ। अतः हरे ! मेरी दुष्टता को क्षमा कीजिये, आप तपोनिधि को नमस्कार है। मुझे अपना

क्षमस्व मम दौरात्म्यं तपोधाम्ने हरे नमः। आज्ञापयात्मदास्यं मे येन ते चरणौ स्मरे ॥५१
इति स्तुत्वा लक्षमुद्राः स्थापिताः स्वपुरोधसि। गत्वावासं पूजयिष्ये सत्यनारायणं प्रभुम् ॥५२
तुष्टो नारायणः प्राह वाञ्छा पूर्णा भवेत्तु ते। पुत्रपौत्रसमायुक्तो भुक्त्वा भोगांस्त्वनुत्तमान् ॥
अन्ते सान्निध्यमासाद्य मोदसे त्वं मया सह ॥५३
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः साधुश्च स्वाश्रमं ययौ। सप्ताहेन गृहं प्राप्तः सत्यदेवेन रक्षितः ॥५४
आगत्य नगराभ्याशे प्राहिणोद्दूतमाश्रमम्। गृहमागत्य दूतोऽपि प्राह लीलावतीं प्रति ॥५५
जामात्रा सहितः साधुः कृतकृत्यः समागतः। सत्यनारायणार्चायां स्थिता साध्वी सकन्यका ॥५६
पूजाभारं सुतायै सा दत्त्वा नौकान्तिकं ययौ। सखीगणैः परिवृता कृतकौतुकमङ्गला ॥५७
कलावती त्ववज्ञाय प्रसादं सत्वरा ययौ। पातुं पतिमुखाम्भोजं चकोरीव दिनात्यये ॥५८
अवज्ञानात्प्रसादस्य नौकाशङ्खपतेरथ। निमग्ना जलमध्ये तु जामात्रा सह तत्क्षणात् ॥५९
मग्नं जामातरं पश्यन्विललाप स मूर्च्छितः। लीलावती तु तद्दृष्ट्वा मूर्च्छिता विललाप ह ॥६०
ततः कलावती दृष्ट्वा पपात भुवि मूर्च्छिता। रम्भेव वातविहता कान्तकान्तेतिवादिनी ॥६१
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणाकरकौशल। त्वया विरहिता पत्या निराशा विधिना कृता ॥
पत्युरर्द्धं गतं कस्मादर्द्धाङ्गं जीवनं कथम् ॥६२

दास बनाने की कृपा करें जिससे आपके चरणों का स्मरण करता रहूँ।४८-५१। इस भाँति स्तुति करके एक लक्ष मुद्रा सामने रखा और कहा—घर पहुँचकर सत्यनारायण देव की अर्चना करूँगा। उपरांत नारायण ने प्रसन्न होकर कहा—'तुम्हारा मनोरथ सफल हो' तथा पुत्र-पौत्र समेत उत्तम भोगों के उपभोग करने के पश्चात् मेरे समीप रहकर आनन्दानुभव करना। इतना कहकर विष्णु अन्तर्हित हो गये और वह वैश्य अपने नगर की ओर चला। सत्यदेव से सुरक्षित होकर वह वैश्य सातवें दिन अपने घर पहुँचा। अपने नगर के समीप पहुँचकर उसने अपने घर एक सेवक भेजा। घर पहुँचकर वह सेवक लीलावती से कहने लगा कि—जामाता के साथ कृतकृत्य होकर साधु आ गये। उस समय वह अपनी कन्या समेत सत्यनारायण की अर्चना कर रही थी।५२-५६। उसने पूजा का संभार कलावती पर रखकर स्वयं नौका के पास चली गई। कलावती भी, जो सखियों के साथ मैं वहाँ मांगलिक कौतुक कर रही थी, प्रसाद-परित्याग रूप अनादर करके शीघ्र वहाँ पहुँच गई। उस समय वह सायंकाल में चकोरी की भाँति पति के कमलमुख का पान करना चाहती थी, किन्तु, उस प्रसाद के अपमान करने के कारण शंखपति की नौका जामाता के समेत उसी क्षण जल में अन्तर्हित हो गई। अपने जामाता को उस जल में निमग्न होते देखकर वह वैश्य मूर्च्छित होकर विलाप करने लगा, लीलावती भी उसे सुनकर मूर्च्छित होकर विलाप करने लगी। पश्चात् इसे सुनकर कलावती भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिर पड़ी। चेतना प्राप्त होने पर विलाप करने लगी—वायु के झोंके से कम्पित केले की भाँति काँपती हुई—कान्त-कान्त कहकर पुकारने लगी तथा हा नाथ, प्रिय धर्म एवं करुणानिधि-कौशल ! मुझ वियोगिनी को देव ने पति से सर्वदा के लिए पृथक् कर दिया। पति का शरीरार्ध भाग तो चला गया, शेष यह अर्द्धांग भाग जीवित कैसे रहे।५७-६२

सूत उवाच

कलावती चारुकलासु कौशला प्रवालरक्ताङ्घ्रितलातिकोमला ।
सरोजनेत्राम्बुकणान्विमुञ्चती मुक्तावलीभिस्तनकुड्मलाञ्चिता ॥६३
हा सत्यनारायण सत्यसिन्धो मग्नं हि मामुद्धर तद्वियोगे ।
श्रुत्वार्तशब्दं भगवानुवाच वचस्तदाकाशसमुद्भवं च ॥६४
साधो कलावती क्षिप्रं मत्प्रसादं हि भोजयेत् । तत्पश्चादिह सम्प्राप्य पतिं प्राप्स्यति मा शुचः ॥६५
इत्याकाशे वचः श्रुत्वा विस्मिता तच्चकार सा । नारायणस्य कृपया पतिं प्राप्ता कलावती ॥६६
तत्रैव साधुः साह्लादो भक्त्या परमया युतः । पूजनं लक्षमुद्राभिः सत्यदेवस्य चाकरोत् ॥६७
तेन व्रतप्रभावेन पुत्रपौत्रसमन्वितः । भुक्त्वा भोगान्मुदा युक्तो मृतः स्वर्गपुरं ययौ ॥६८
इतिहासमिमं भक्त्या शृणुयाद्यो हि मानवः । सोऽपि विष्णुप्रियतरः कामसिद्धिमवाप्नुयात् ॥६९
इति ते कथितं विप्र व्रतानामुत्तमं व्रतम् । कलिकाले परं पुण्यं ब्राह्मणस्य मुखोद्भवम् ॥७०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि
श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९

सूत जी बोले—कलावती ने, जो सुन्दर कलाओं में निपुण, मूंगे की भाँति चरणतल रक्तवर्ण एवं अति कोमल तथा कमल की भाँति अपने विशाल नेत्रों से अश्रुविन्दुओं की पवित्र धारा बहाती थी, जो मुकुलित पुष्पों की भाँति उसके स्तनों पर मोती के हार की भाँति दिखाई देती थी, कहा—हा सत्य-नारायण सत्यसिंधो ! इस पति वियोग से मेरा उद्धार कीजिये, मैं इसमें डूब रही हूँ । इन कारुणिक वाक्यों को सुनकर भगवान् आकाशवाणी द्वारा बोले—साधो ! यह कलावती शीघ्र मेरे प्रसाद का भक्षण कर ले, पश्चात् यहाँ आने पर अपने पति की प्राप्ति कर सकेगी, अतः शोक मत करो । इस आकाशवाणी को सुनकर उसने विस्मित होती हुई वैसा ही किया नारायण की कृपा से कलावती ने पति दर्शन प्राप्त किया । उसी स्थान पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस साधु ने अनन्य भक्ति में विभोर होकर एक लक्ष मुद्रा द्वारा सत्यनारायण देव की अर्चना किया । उस व्रत के प्रभाव से पुत्र-पौत्र युक्त होकर उसने उत्तम भोगों के उपभोग करते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत किया और निधन होने के उपरांत स्वर्ग निवास प्राप्त किया । जो मानव भक्ति समेत इस इतिहास का श्रवण करेंगे वे विष्णु के अत्यन्त प्रिय होंगे और उनकी कामनाएँ सफल होंगी । विप्र ! इससे इस उत्तमव्रत को, जो कलिकाल में परमपुण्य स्वरूप और ब्राह्मण के मुख से निकला है, तुम्हें सुना दिया ।६३-७०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन
नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्गुह्यजं कर्म वृत्तं प्रोक्तं पुरातनैः । व्रतानां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं नारायणव्रतम् ।।१
त्वन्मुखेन श्रुतं सूत तापत्रयविनाशनम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि लिङ्गजं कर्मचोत्तमम् ।।२
सर्वेषां ब्रह्मचर्याणां ब्रह्मचर्ये हि किं परम् । तन्मे वद महाप्राज्ञ सर्वज्ञोऽसि मतौ मम ।।३

सूत उवाच

आसीत्पुरा कलियुगे पितृशर्मा द्विजोत्तमः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो यमलोकभयान्वितः ।।४
ज्ञात्वा घोरतमं कालं कलिकालमधर्मजम् । वार्धनं यमराष्ट्रस्य तदा चिन्तातुरोऽभवत् ।।५
केनाश्रमेण वर्णेन मम श्रेयो भवेदिह । कलौ संन्यासमार्गो हि दम्भपाखण्डखण्डितः ।।६
वानप्रस्थः कलौ नास्ति ब्रह्मचर्यं क्वचित्क्वचित् । गार्हस्थ्यं कर्म सर्वेषां कर्मणां श्रेष्ठमुच्यते ।।७
अतः स्त्रीसङ्ग्रहो ग्राह्यो मया घोरे कलौ युगे । यदि मे च भवेन्नारी मनोवृत्त्यनुसारिणी ।।
तर्हि मे सफलं जन्म मम श्रेयो भवेदिह ।।८
इत्येवं सम्मतं कृत्वा शिवां मङ्गलदायिनीम् । चन्दनाद्यैश्च सम्पूज्य तुष्टाव मनसा पराम् ।।
विश्वेश्वरीं जगन्मूर्तिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।।९

अध्याय ३०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषि ने कहा—भगवन् ! जिस गुह्य कर्म-वृत्तान्त को प्राचीनों ने कहा था, जो सभी व्रतों में श्रेष्ठ एवं नारायणव्रतप्रधान है, उसे हम लोगों ने आपके मुखारबिन्द द्वारा श्रवण किया । सूत जी ! इस समय उस लिंगज कर्म को, जो उत्तम एवं तीनों तापों को नष्ट करता है, सुनने की इच्छा है । महाप्राज्ञ ! सभी के ब्रह्मचर्य में श्रेष्ठ क्या है ? हमें बताने की कृपा करें क्योंकि मेरी सम्मति से आप सर्वज्ञ हैं ।१-३

सूत जी बोले—कलियुग में पितृशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वेद एवं वेदाङ्ग के तत्त्वों का ज्ञाता और सदैव यमलोक से भयभीत था । इस कलिकाल के घोरतम काल (समय) को जानकर, जो अधर्म द्वारा उत्पन्न एवं यमराज के यहाँ जाने के लिए बंधन रूप था, अत्यन्त चिंतित हुआ 'किस आश्रम या वर्ण (जाति) द्वारा मेरा कल्याण होगा' क्योंकि कलियुग में संन्यास-मार्ग दम्भ तथा पाखंड से दूषित हो गया है । और वानप्रस्थ कलि में है ही नहीं, हाँ, ब्रह्मचर्य की प्रथा कहीं-कहीं पर प्रचलित हैं । किन्तु, गार्हस्थ्य-कर्म सभी कर्मों में श्रेष्ठ बताया गया है, इसलिए मुझे इस घोर कलियुग के समय स्त्री का संग्रह करना श्रेयस्कर होगा—यदि मुझे मनोनुकूल स्त्री की प्राप्ति हो जाये, तो मेरा जन्म सार्थक तथा मेरा कल्याण भी होगा इस प्रकार निश्चित करके मंगल प्रदान करने वाली शिवा पार्वती की जो विश्वेश्वरी, जगत्स्वरूप एवं सच्चिदानन्द रूप होकर प्रख्यात है, आराधना चन्दनादि द्वारा सुसम्पन्न करके मानसिक स्तुति करते हुए उन्हें प्रसन्न करने लगा—४-९

पितृशर्मोवाच

नमः प्रकृत्यै सर्वायै कैवल्यायै नमोनमः । त्रिगुणैक्यस्वरूपायै तुरीयायै नमोनमः ॥१०
महत्तत्त्वजनन्यै च द्वन्द्वकर्त्र्यै नमोनमः । ब्रह्ममातर्नमस्तुभ्यं साहङ्कारपितामहि ॥११
पृथग्गुणायै शुद्धायै नमो मातर्नमो नमः । विद्यायै शुद्धसत्त्वायै लक्ष्म्यै सत्त्वरजोमयि ॥१२
नमो मातरविद्यायै ततः शुद्धयै नमो नमः । काल्यै सत्त्वतमोभूत्यै नमो मातर्नमो नमः ॥१३
स्त्रियै शुद्धरजोमूर्त्यै नमस्त्रैलोक्यवासिनि । नमो रजस्तमोमूर्त्यै दुर्गायै च नमो नमः ॥१४
इति श्रुत्वा स्तवं देव्या प्रसादः स्थापितस्तया । सुतायां विष्णुयशसो ब्राह्मणस्य तदा स्वयम् ॥१५
तामुद्वाह्य द्विजो देवीं नाम्ना वै ब्रह्मचारिणीम् । न्यवसन्मथुरायां स कृत्वा धर्मं स्वयं हृदि ॥१६
प्रियायै स रजोवत्यै ऋतुदानं करोति हि । चत्वारश्चात्मजाश्चासंश्चतुर्वेदैक्यधारिणः ॥१७
ऋग्यजुश्च तथा साम तुर्यश्चासीदथर्वणः । ऋचश्च तनयो व्याडिर्न्यायशास्त्रविशारदः ॥१८
यजुषस्तु सुतो जातो मीमांसो लोकविश्रुतः । पाणिनिः सामनस्यैव सुतोऽभूच्छब्दपारगः ॥१९
पुत्रो वररुचिः श्रेष्ठोऽथर्वणस्य नृपप्रियः । ते गता मागधेशस्य चन्द्रगुप्तस्य वै सभाम् ॥२०
नृपस्तान्पूजयामास बहुमानपुरःसरम् । अब्रवीत्तांस्ततो राजा ब्रह्मचर्यं हि किं परम् ॥२१
व्याडिराह महाराज यः स्तुतौ तत्परः पुमान् । न्यायतोऽखिलदेवानां ब्रह्मचारी हि मे मतः ॥२२

पितृशर्मा बोले—सर्वरूपप्रकृति को नमस्कार है, उस केवल स्वरूप को नमस्कार है, तीनों गुणों की एक मूर्ति तथा तुरीय (चौथे) स्वरूप को बार-बार नमस्कार है, महत्तत्व को जन्म देने वाली को नमस्कार है, जो सुखदुःखादि को प्रदान करती रहती है, ब्रह्ममातः ! तथा अहंकार समेत पितामहि ! तुम्हें नमस्कार है, मातः ! तुम्हारे निर्गुण एवं शुद्धस्वरूप को नमस्कार है, सत्वरजोगुणात्मके ! विद्या, शुद्धसत्व, एवं पितामही को नमस्कार है, मातः ! अविद्या तथा उससे शुद्ध रूप को बार-बार नमस्कार है, मातः ! सत्व तथा तमोगुण वाली काली को बार-बार नमस्कार है, शुद्धरज वाली स्त्री स्वरूप और त्रैलोक्य निवासिनी को नमस्कार है, रज तथा तमोमूर्ति दुर्गा जी को बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार की स्तुति सुनकर देवी जी ने उनपर कृपा की। विष्णुयशस्वी नामक ब्राह्मण की कन्या का पाणिग्रहण उस ब्राह्मण के साथ सुसम्पन्न हो गया। उस ब्राह्मण ने उस देवी का ब्रह्मचारिणी नामकरण करके मथुरा पुरी का निवासी होकर उसके साथ धर्माचरण आरम्भ किया। ऋतुकालीन (मासिक धर्म) स्नान के अनन्तर वह ब्राह्मण उसमें ऋतुदान करने लगा जिससे कुछ दिनों में उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए।१०-१७। जो चारों ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद के निष्णात् विद्वान् थे। उनमें ऋगवेद के व्याधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो न्यायशास्त्र में निपुण था। यजुर्वेदी के लोक प्रख्यात मीमांसा नामक पुत्र हुआ, सामवेदी के शब्द-शास्त्र (व्याकरण) का पारगामी विद्वान् पाणिनि नामक हुआ और अथर्ववेदी के वररुचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो राजप्रिय एवं श्रेष्ठ था। वे सभी मगधाधिनायक चन्द्रगुप्त की सभा में पहुँचे। राजा ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनकी सेवा की पश्चात् उसने सब से पूँछा—ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ वस्तु है क्या ? व्याधि ने कहा—महाराज ! जो पुरुष न्यायतः समस्त देवों की

मीमांसश्चाह भो राजन्यज्ञे यो हि पुमान्परः । कर्मणा यजते देवान्रोचनादिभिरर्चयेत् ॥२३
हवनं तर्पणं कृत्वा ब्रह्मादिकसुरान्प्रति । तत्प्रसादं हि गृह्णीयाद्ब्रह्मचारी च स स्मृतः ॥२४
श्रुत्वेदं पाणिनिश्चाह चन्द्रगुप्त शृणुष्व भोः । त्रिधास्वरैः परं ब्रह्म शुद्धशब्दमयैः परैः ॥२५
तथैव सूत्रपाठैश्च लिङ्गधातुगणावृतैः । यो यजेद्ब्रह्मचारी स परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२६
श्रुत्वा वररुचिश्चाह शृणु मागधभूपते । गृहीत्वा यज्ञसूत्रं यः प्राप्तो गुरुकुले वसन् ॥२७
दण्डलोमनखाधारी भिक्षार्थी वेदतत्परः । आज्ञया च गुरोर्वर्तेद्ब्रह्मचारी हि स स्मृतः ॥२८
इति तेषां वचः श्रुत्वा पितृशर्माब्रवीदिदम् । यो गृहस्थे वसन्विप्रः पितृदेवातिथिप्रियः ॥२९
गामी पाणिगृहीतायामृतुकालां यतेन्द्रियः । ब्रह्मचारी हि मुख्यस्स श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥३०
स्वामिन्यद्भवता चोक्तं धर्मज्ञेन यशस्विना । कलौ भयङ्करे प्राप्ते स धर्मो हि मतो मम ॥३१
इत्युक्त्वा तस्य शिष्योऽभूद्गुरुवाक्यपरायणः । तथान्ते मरणं प्राप्य स्वर्गलोकं नृपो ययौ ॥३२
पितृशर्मापि मनसा ध्यात्वा दामोदरं हरिम् । हिमालयं गिरिं प्राप्य योगध्यानपरोऽभवत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०

स्तुति के लिए कटिबद्ध रहता है, उसका श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है । मीमांसा ने कहा—राजन् ! जो पुरुष यज्ञ में कर्मकाण्ड विधान से गोरोचन चन्दनादि से देवों की पूजा करते हुए ब्राह्मणों एवं देवों को हवन-तर्पण द्वारा प्रसन्न करता हुआ एवं उनके प्रसाद को ग्रहण करता है वही श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है । इसे सुनकर पाणिनि ने कहा—राजन् चन्द्रगुप्त ! जो परमशुद्ध शब्द (शास्त्र) मय तीनों स्वरों (उदात्त, अनुदात्त और स्वरित) एवं सूत्रों के पाठ द्वारा जिसमें लिंग, धातु तथा गणों के सन्निवेश हैं, परब्रह्म का यज्ञानुष्ठान सुसम्पन्न करता है, वही ब्रह्मचारी है, और उसे परब्रह्म की प्राप्ति होती है । यह सुनकर वररुचि ने कहा—मगधाधिनायक ! यज्ञोपवीत संस्कार होने पर जो गुरुकुल में रहते हुए दण्ड, लोम, नख को धारण कर भिक्षाटन करके वेदाध्ययन में अनुरक्त रहता है और सदैव गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करता है, वही ब्रह्मचारी है इन लोगों की बातें सुनकर पितृशर्मा ने कहा—जो ब्राह्मण गृहस्थी में रहते हुए पितृ, देव तथा अभ्यागत की सेवा में तत्पर रहकर ऋतुकाल के उपरांत अपनी धर्मपत्नी के साथ ही गमन करता है, वही संयमी मुख्य ब्रह्मचारी कहा गया है । इसे सुनकर राजा ने कहा—स्वामिन् ! इस भयंकर कलि के समय आपकी ही बात उत्तम एवं धार्मिक प्रतीत हो रही है, क्योंकि आप धर्मज्ञाता तथा परमयशस्वी हैं और मेरी भी यही सम्मति है । इतना कहकर गुरुवाक्य का अनन्य प्रेमी वह राजा उनका शिष्य हुआ एवं निधन होने पर स्वर्ग पहुँच गया । उपरांत पितृशर्मा भी भगवान् दामोदर का मानसिक ध्यान करते हुए हिमालय पर्वत पर पहुँचे और वहाँ योगियों की भाँति समाधिनिष्ठ हुए ।१८-३३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्सर्वतीर्थानां दानानां किं परं स्मृतम् । यत्कृत्वा च कलौ घोरे परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥१

सूत उवाच

सामनस्य सुतः श्रेष्ठः पाणिनिर्नाम विश्रुतः । कणभुक्परशिष्यैश्च शास्त्रज्ञैः स पराजितः ॥२
लज्जितः पाणिनिस्तत्र गतस्तीर्थान्तरं प्रति । स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि संतर्प्य पितृदेवताः ॥३
केदारमुदकं पीत्वा शिवध्यानपरोऽभवत् । पर्णाशी सप्तदिवसाञ्जलभक्षस्ततोऽभवत् ॥४
ततो दशदिनान्ते स वायुभक्षो दशाहनि । अष्टाविंशद्दिने रुद्रो वरं ब्रूहि वचोऽब्रवीत् ॥५
श्रुत्वामृतमयं वाक्यमस्तौद्गद्गदया गिरा । सर्वेशं सर्वलिङ्गेशं गिरिजावल्लभं हरम् ॥६

पाणिनिरुवाच

नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे । नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च ॥७
पापान्तकाय भर्गाय नमोऽनन्ताय वेधसे । नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशङ्कर ॥८
यदि प्रसन्नो देवेश विद्यामूलप्रदो भव । परं तीर्थं हि मे देहि द्वैमातुरपितर्नमः ॥९

अध्याय ३१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! समस्त तीर्थों में कौन तीर्थ श्रेष्ठ है, जिसकी सेवा करने पर निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाती है ।१

सूत जी बोले—सामन (सामवेदी) के पुत्र पाणिनि जी शास्त्रार्थ में काणभुक् के प्रशिष्य (शिष्य के शिष्य) से पराजित हो गये थे । लज्जित होकर पाणिनि जी उसी समय तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थित हो गये । सभी तीर्थों में स्नान एवं पितृदेव तर्पण करते हुए केदार तीर्थ में पहुँचे और वहाँ जलपान करके शिव जी का ध्यान करना आरम्भ किया । सात दिन तक जीर्ण शीर्ण पत्तों का भक्षण करने के उपरांत दश दिन तक जलपान और दश दिन तक केवल वायुभक्षण किया । अनन्तर अट्ठाईसवें दिन रुद्र भगवान् ने कहा—वर की याचना कीजिये ! इस अमृतमयी वाणी को सुनकर उन्होंने शंकर भगवान् की जो सर्वेश सम्पूर्ण लिंगों के ईश एवं गिरिजा के हृदय वल्लभ हैं, अपनी गद्गद् वाणी द्वारा स्तुति करना आरम्भ किया ।२-६

पाणिनि बोले—महान्, सर्वेश, हितैषी, नन्दी पर बैठने वाले, देव, विद्या एवं अभयदान देने वाले रुद्र को नमस्कार है । पापनाशक, देव, अनन्त तथा ब्रह्मरूप को नमस्कार है, उमापति, हर ईश रूप और लोकशंकर को नमस्कार है । देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे विद्याओं का मूल कारण प्रदान करने की कृपा करें । हे द्वैमातुर के पिता ! आप को नमस्कार है, आप इन्हीं श्रेष्ठ तीर्थों को मुझे प्रदान करें ।७-९।

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महादेवः सूत्राणि प्रददौ मुदा । सर्ववर्णमयान्येव अइउणादिशुभानि वै ।।१०
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे । यः प्राप्तो मानसे तीर्थे सर्वतीर्थफलं भजेत् ।।११
मानसं हि महत्तीर्थं ब्रह्मदर्शनकारकम् । पाणिने ते ददौ विप्र कृतकृत्यो भवान्भव ।।१२
इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रः पाणिनिः स्वगृहं ययौ । सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च ।।१३
लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमाप्तवान् । तस्मात्त्वं भार्गवश्रेष्ठ मानसं तीर्थमाचर ।।१४
यतो याता स्वयं गङ्गा सर्वतीर्थमयी शिवा । गंगातीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।।१५

श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।३१

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

तोतादर्यां द्विजः कश्चिद्बोपदेव इति श्रुतः । बभूव कृष्णभक्तश्च वेदवेदाङ्गपारगः ।।१
गत्वा वृन्दावनं रम्यं गोपगोपीनिषेवितम् । मनसा पूजयामास देवदेवं जनार्दनम् ।।२

सूत जी बोले—यह सुनकर महादेव जी ने प्रसन्न होकर उन्हें सूत्रों को प्रदान किया, जो समस्त वर्ण (अक्षर) मय शुभ अइउण के रूप में हैं। इस ज्ञानसरोवर रूप मानसतीर्थ में जो सत्य रूप जल से परिपूर्ण एवं राग-द्वेष रूपी मल से हीन हैं, जो पहुँचकर स्नान करता है, उसे समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं। उन्होंने कहा—विप्र, पाणिनि ! यह मानस नामक महान् तीर्थ है, इसी से ब्रह्मदर्शन प्राप्त होता है, मैंने इसे तुम्हें दे दिया इससे आप कृतकृत्य हो जायेगें। इतना कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि जी भी अपने घर पहुँच गये। उन्होंने उनमें सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, और लिंगसूत्रों की सृष्टि कर निर्वाण प्राप्त किया। अतः भार्गवश्रेष्ठ आप भी मानसतीर्थ का सेवन कीजिये। क्योंकि उसी द्वारा सम्पूर्ण तीर्थमयी एवं कल्याणप्रदायिनी गंगा की उत्पत्ति हुई है। गंगातीर्थ से श्रेष्ठतीर्थ न कोई है और न होगा।१०-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।३१।

अध्याय ३२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—तोतादरी में बोपदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो कृष्ण जी का भक्त एवं वेद-वेदाङ्ग का निष्णात विद्वान् था, गोप-गोपियों द्वारा सुसेवित उस रमणीक वृन्दावन में जाकर उन्होंने देव-नायक जनार्दन भगवान् की आराधना आरम्भ की।१-२। एक वर्ष के उपरांत भगवान् कृष्ण ने उन्हें प्रत्यक्ष

वर्षान्ते च हरिः साक्षाद्ददौ ज्ञानमनुत्तमम् । तेन ज्ञानेन सम्प्राप्ता हृदि भागवती कथा ।।३
शुकेन वर्णिता या वै विष्णुराताय धीमते । तां कथां वर्णयामास मोक्षमूर्तिं सनातनीम् ।।४
कथान्ते भगवान्विष्णुः प्रादुरासीज्जनार्दनः । उवाच स्निग्धया वाचा वरं ब्रूहि महामते ।।५

बोपदेव उवाच

नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक । त्वया ततमिदं विश्वं देवतिर्यङ्नरादिकम् ।।६
त्वन्नाम्ना नरकार्ताश्च ते कृतार्थाः कलौ युगे । त्वया दत्तं भागवतं श्रीमद्व्यासेन निर्मितम् ।।
माहात्म्यं तस्य मे ब्रूहि यदि दत्तो वरस्त्वया ।।७

श्रीभगवानुवाच

एकदा भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्करः ।।८
बौद्धराज्ये जगत्प्राप्ते दम्भपाखण्डनिर्मिते । दृष्ट्वा काश्यां भूमितुङ्गं प्रणनाम मुदा युतः ।।
जय सच्चिदानन्द विभो जगदानन्द कारक ।।९
इति श्रुत्वा शिवा प्राह को देवोऽस्ति तदोत्तमः । स होवाच महादेवि यज्ञः सप्ताहमत्र वै ।।१०
तस्माद्भूमिपवित्रत्वमिह प्राप्तं वरानने । सर्वतीर्थाधिकत्वं च स्वयं ब्रह्म सनातनम् ।।११
इति श्रुत्वा शिवा देवी प्राप्तासीद्गुह्यकालयम् । रुद्रेण सहिता तत्र भूमिशुद्धिमकारयत् ।।१२
चण्डीशश्च गणेशश्च नन्दिनो गुह एव च । रक्षार्थे स्थापितास्तत्र देवदेवेन भो द्विज ।।१३

होकर उत्तम ज्ञान प्रदान किया । उसी ज्ञान द्वारा उनके हृदय में सम्पूर्ण भागवती कथा का ज्ञान हुआ, जिसे शुकदेव जी ने अनन्यविष्णु-भक्तों को सुनाया था । मोक्ष की साक्षात् मूर्ति एवं सनातनी (अविनाशिनी) उस कथा का वर्णन उन्होंने किया, जिससे कथा की समाप्ति के समय में भगवान् विष्णु ने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिया । पश्चात् जनार्दन देव ने कहा कि महामते ! वरदान की याचना करो ।३-५

बोपदेव ने कहा—लोकों के ऊपर अनुग्रह रखने वाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है, आपने ही इस निखिल विश्व की जो देव, पक्षी एवं मनुष्यों आदि से युक्त है, रचना करके उसे विस्तृत किया है । कलियुग में नरक भीरु प्राणी, तुम्हारे नामस्मरण के नाते कृतार्थ रहेंगे । जिस श्रीमद्भागवत की रचना श्रीमान् व्यास जी ने की है, उसे आपने मुझे प्रदान किया है, आपने यदि मुझे वरदान दिया है, तो उसका माहात्म्य मुझे बताने की कृपा कीजिये ।६-७

श्रीभगवान् बोले—एकबार भगवान् शंकर जी भवानी को साथ लेकर उस समय काशीपुरी में आये, जब कि सारा जगत् दंभ-पाखण्डपूर्ण उस बौद्ध राज्य से आक्रान्त था । वहाँ पहुँचकर भूमि-तुरंग (ढीले) को सहर्ष प्रणाम किया—विभो ! जगत् के आनन्दप्रदायक एवं सच्चिदानन्द रूप आप की जय हो। इसे सुनकर शिवा (पार्वती) ने कहा—तुम्हारा प्रधान देव यहाँ कौन है ! उन्होंने कहा—महादेवि ! यहाँ सप्ताहयज्ञ हुआ था, इसीलिए शोभनेमुखे ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र हो गई है । इसे सुनकर पार्वती जी ने शंकर के साथ उसी गुह्यस्थान में अपना वासस्थान बनाया और उस भूमि को पवित्र किया। द्विज ! देवाधिदेव ने चंडीश, गणेश, नन्दी और स्कन्द को वहाँ रक्षार्थ नियुक्त करके कहा—देवि ! मेरी उस

शृणु देवि कथां रम्यां मम मानससंस्थिताम् । इत्युक्त्वा ध्यानमास्थाय सप्ताहेन स्ववर्णयत् ।।१४
अष्टाहे नेत्र उन्मील्य दृष्ट्वा निद्रागतां शिवाम् । बोधयामास भगवान्कथान्ते लोकशङ्करः ।।१५
कियती ते श्रुता गाथा श्रुत्वाह जगदम्बिका । सुधामन्थनपर्यन्तं चरित्रं शिवयेरितम् ।।१६
कोटरस्थः शुकः श्रुत्वा चिरञ्जीवत्वमागतः । पार्वत्या रक्षितोऽसौ वै शुकः परमसुन्दरः ।।१७
स्थित्वा शिवस्य सदने मम ध्यानपरोऽभवत् । ममाज्ञया शुकः साक्षात्त्वदीयहृदयस्थितः ।।१८
तेन प्राप्तं भागवतं माहात्म्यं चास्य दुर्लभम् । त्वं वै गन्धर्वसेनाय पित्रे विक्रमभूपतेः ।।१९
नर्मदाकूलमासाद्य श्रावयस्वं कथां शुभाम् । हरिमाहात्म्यदानं हि सर्वदानपरं स्मृतम् ।।२०
सत्पात्राय प्रदातव्यं विष्णुभक्ताय धीमते । बुभुक्षितान्नदानं च तद्दानस्य समं न हि ।।२१
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो बोपदेवः प्रसन्नधीः ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३२

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वाग्जं कर्म स्मृतं सूत वेदपाठः सनातनः । बहुत्वात्सर्ववेदानां श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।।१

रमणीक कथा को सुनो ! जो मेरे मानस स्थान में स्थित हैं । इस प्रकार कहकर ध्यान पूर्वक उसका वर्णन करना आरम्भ किया। आठवें दिन आँख खोलकर लोक के कल्याणरूप भगवान् शंकर ने पार्वती को निद्रामग्न देखकर जगाया और कहा—कहाँ तक की कथा का श्रवण किया है। जगदम्बा ने कहा क्षीरसागर का मन्थन पर्यन्त कथा मैंने सुनी है।८-१६। वहाँ वृक्ष के कोटर में एक शुक-शावक उस कथा को सुन रहा था जिससे उसे चिरजीवन प्राप्त हुआ। उस परम सुन्दर शुक की रक्षा पार्वती जी स्वयं कर रहीं थीं, वह भी उस शिव-मन्दिर में रहकर मेरा ध्यान कर रहा था। मेरी आज्ञा से वही शुक तुम्हारे हृदय में स्थित हुआ, इसी से तुम्हें भागवत का दुर्लभ माहात्म्य प्राप्त हुआ है। नर्मदा के तट पर स्थित राजा विक्रमादित्य के पिता गन्धर्व सेन को इस शुभ कथा का श्रवण कराओ। क्योंकि भगवान् का माहात्म्यदान सभी दानों से श्रेष्ठ बताया गया है । इसे उस सत्पात्र में रखना चाहिए, जो विष्णुभक्त और परम विद्वान् हो। बुभुक्षित (भूखे) के लिए अन्नदान भी उस दान के समान नहीं है। यह कहकर बोपदेव भी प्रसन्न हुए ।१७-२२

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

अध्याय ३३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—सूत ! वेद-पाठ करना सनातन से वाणी का प्रशस्तकर्म बताया गया है किन्तु,

केन स्तोत्रेण वेदानां पाठस्य फलमाप्नुयात् । पापानि विलयं यान्ति तन्मे वद विचक्षण ॥२

सूत उवाच

विक्रमादित्यराज्ये तु द्विजः कश्चिदभूद्भुवि । व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत् ॥३
त्रिपाठिनो द्विजस्यैव भार्या नाम्ना हि कामिनी । मैथुनेच्छावती नित्यं मदाघूर्णितलोचना ॥४
द्विजस्सप्तशतीपाठे वृत्त्यर्थी कर्हिचिद्गतः । ग्रामे देवलके रम्ये बहुवैश्यनिषेविते ॥५
तत्र मासो गतः कालो नाययौ स स्वमन्दिरम् । तदा तु कामिनी दुष्टा रूपयौवनसयुता ॥६
दृष्ट्वा निषादं सबलं काष्ठभारोपजीविनम् । तस्मै दत्वा पञ्च मुद्रा बुभुजे कामपीडिता ॥७
तदा गर्भं दधौ सा च व्याधिवीर्येण सञ्चितम् । पुत्रोऽभूद्दशमासान्ते जातकर्म पिताकरोत् ॥८
द्वादशाब्दे गते काले स धूर्तो वेदवर्जितः । व्याधकर्मकरो नित्यं व्याधिकर्मा ह्यतोभवत् ॥९
निष्कासितौ द्विजेनैव मातृपुत्रौ द्विजाधमौ । त्रिपाठी ब्रह्मचर्यं तु कृतवान्धर्मतत्परः ॥१०
प्रत्यहं चण्डिकापाठं कृत्वा विन्ध्यगिरौ वसन् । जीवन्मुक्तोऽभवच्छीघ्रं जगदम्बाप्रसादतः ॥११
निषादस्य गृहे चोभौ वने गत्वोषतुर्मुदा । प्रत्यहं जारभावेन बहुद्रव्यमुपार्जितम् ॥१२
व्याधकर्मा तु चौर्येण पितृमातृप्रियङ्करः । एकदा दैवयोगेन शिवामन्दिरमाययौ ॥१३
चौरवृत्तिपरो धूर्तः स्त्रिया भूषणमाहरत् । कैश्चिज्ज्ञातः स नो धूर्तो बहुमायाविशारदः ॥१४

चार वेद होने के नाते सब का पाठ असम्भव है। अतः मुझे यह सुनने की इच्छा है कि किस स्तोत्र द्वारा वेद-पाठ का फल प्राप्त होता है। विचक्षण ! अतः उस पापनाशक को बताने की कृपा करें।१-२

सूतजी बोले—राजा विक्रमादित्य के राज्य में कोई व्याधकर्मा (बहेलिये का कर्म करने वाला) ब्राह्मण रहता था, जिसका जन्म ग्रहण करना ब्राह्मणी में शूद्र द्वारा कहा गया है। एक त्रिपाठी ब्राह्मण की स्त्री का नाम कामिनी था, सदैव मैथुन के लिए उत्सुक रहने के नाते जिसकी आँखें मद से भरी रहती थीं। एक बार वह त्रिपाठी जी दुर्गा सप्तशती का पाठ करने के लिए किसी यजमान के यहाँ किसी गाँव में चले गये थे जिसमें देवलक एवं वैश्यों की संख्या अधिक थी। वहाँ एक मास तक रहने के नाते वे अपने घर न आ सके। उसी बीच उनकी दुष्टा पत्नी कामिनी ने अपने रूप एवं यौवन में मदांध होकर उस बलवान व्याध को बुलाकर जो काष्ठ (लकड़ी) द्वारा अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, उसे पाँच मुद्रा प्रदान कर अत्यन्त काम-पीड़ित होने के नाते उससे भली भाँति भोग कराया। पश्चात् उस व्याध के वीर्य द्वारा उसने गर्भवती होकर दशवें मास में पुत्र उत्पन्न किया उसके पिता ने उसका जात कर्म सुसम्पन्न किया। बारह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर वह धूर्त एवं विद्याध्ययन न करने के नाते नित्य व्याध-कर्म (शिकार) करने लगा उसी से उसका व्याधकर्मा नामकरण हुआ। त्रिपाठी ने उन दोनों माता-पुत्र अधमों को अपने घर से निकाल दिया। पश्चात् त्रिपाठी ब्रह्मचर्य पालन करते हुए विन्ध्यगिरि पर नित्य चण्डिका का पाठ करने लगे जिससे जगदम्बा के प्रसाद से वे शीघ्र जीवनमुक्त हो गये। वे दोनों घर से निकलकर वन में उसी व्याध के यहाँ प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे। वहाँ रहकर उस स्त्री ने कर्म (पर पुरुषों से भोग) द्वारा अत्यन्त द्रव्यों का उपार्जन किया।३-१२। वह व्याध-कर्मा चोरी करने के नाते अपने माता-पिता का प्रिय हुआ। एक बार दैवयोग से देवी जी के मन्दिर में आकर उस धूर्त चोर ने स्त्रियों के

कदाचित्प्राप्तवांस्तत्र द्विजवस्त्रसमुद्गतम् । श्रुतमादिचरित्रं हि तेन शब्दप्रियेण वै ॥१५
पाठपुण्यप्रभावेण धर्मबुद्धिस्ततोऽभवत् । दत्त्वा चौर्यधनं सर्वं तस्मै विप्राय पाठने ॥१६
शिष्यत्वमगमत्तत्राक्षरमैशं जजाप ह । बीजमन्त्रप्रभावेण तदङ्गात्पापमुल्बणम् ॥१७
निःसृतं कृमिरूपेण बहुवर्णेन तापितम् । त्रिवर्षान्ते च निष्पापो बभूव द्विजसत्तमः ॥१८
पठित्वाक्षर मालां च जजापादिचरित्रकम् । द्वादशाब्दमिते काले काश्यां गत्वा स तु द्विजः ॥१९
अन्नपूर्णां महादेवीं तुष्टाव परया मुदा । रोचनाद्यैश्च सम्पूज्यां मुनिदेवनिषेविताम् ॥२०
नित्यानन्दकरी पराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी निर्धूताखिलपापपावनकरी काशीपुराधीश्वरी ।
नानालोककरी महाभयहरी विश्वम्भरी सुन्दरी विद्यां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥२१
स इत्यष्टोत्तरं जप्त्वा ध्यानस्तिमितलोचनः । सुष्वाप तत्र मुदितः स्वप्ने प्रादुरभूच्छिवा ॥२२
दत्त्वा तस्मै हि ऋग्विद्यां पुनरन्तरधीयत । उत्थाय स द्विजो धीमाँल्लब्ध्वा विद्यामनुत्तमाम् ॥२३
विक्रमादित्यभूपस्य यज्ञाचार्यो बभूव ह । यज्ञान्ते योगमास्थाय जगाम तु हिमालयम् ॥२४
एतत्ते वर्णितं विप्र पुण्यमादिचरित्रकम् । ब्रह्मीभूय यथा विप्रो लेभे सिद्धिमनुत्तमाम् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रथमचरित्रवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।३३

आभूषणों का अपहरण किया । कुछ लोगों ने उस निपुण मायावी की धूर्तता को पहचान लिया । पश्चात् वह भी ब्राह्मण-वेष में वहाँ आकर देवी जी के आदि चरित्रों का श्रवण किया । उपरांत उस मधुरवाणी द्वारा किये गये पाठ के पुण्य-प्रभाव से उसकी धार्मिक बुद्धि हो गई । वह उसी पाठकरने वाले ब्राह्मण को सम्पूर्ण धन प्रदानकर उसी से दीक्षा प्राप्तकर शिव-मंत्र का जप करने लगा । उस बीज मंत्र के प्रभाव से उसके ज्वलन्त पाप कृमिरूप होकर उसके शरीर से निकलने लगे, जो (मुख निःसृत) पाठ के अक्षरों से संतप्त हो रहे थे । तीन वर्ष के उपरांत वह निष्पाप होकर श्रेष्ठ ब्राह्मण हो गया । पुनः अक्षर माला का पाठ करते हुए आदि चरित्र का जप करना प्रारम्भ किया । पश्चात् बारहवें वर्ष वह ब्राह्मण काशी में पहुँचकर प्रसन्नचित्त से महादेवी अन्नपूर्णा को प्रसन्न करने लगा जो रोचना आदि से सुपूजित एवं मुनि और देवों से सुसेवित हो रही थी । अन्नपूर्णेश्वरी मा ! मुझे विद्या प्रदान कीजिये । आप नित्य आनन्द करने वाली, दूसरे को निर्भय बनाने वाली, और सौन्दर्य की निधि हैं । आप उस काशी पुरी की अधिष्ठात्री देवी हैं, जो समस्त पापों के नाशपूर्वक उसे पवित्र करती हैं, अनेक लोकों के निर्माण करने वाली, महान् भय के अपहरण करने वाली और विश्व के पालन-पोषण करने वाली आप प्रधान सुन्दरी एवं कृपारूप अवलम्बन प्रदान करने वाली हैं ।१३-२१। इस प्रकार इसका एक सौ आठ बार जाप करके ध्यान करते हुए उसी स्थान पर आँखे मूंद कर शयन कर गया । उसके स्वप्न में देवी जी प्रत्यक्ष होकर उसे ऋग्विद्या प्रदानकर स्वयं अन्तर्हित हो गई । वह विद्वान् ब्राह्मण जागने पर उस अनुपम विद्या की प्राप्ति के अनन्तर राजा विक्रमादित्य के यज्ञ का आचार्य हुआ । पश्चात् यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर वह योग के अभ्यास के लिए हिमालय पर्वत पर चला गया। विप्र ! इस प्रकार इस आदि चरित्र प्रधान पवित्र कथा को तुम्हें सुना दिया, जिसमें उस ब्राह्मण को ब्राह्मणत्व प्राप्ति के साथ उत्तम सिद्धि की प्राप्ति हुई।२२-२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

उज्जयिन्यां पुरा विप्र राजन्यः सर्वहिंसकः । बभूव मद्यमांसाशी भीमवर्मेति विश्रुतः ॥१
मांसलोभेन स खलः सूकरान्ग्रामकुक्कुटान् । हत्वा चाभक्षयत्पापी वेश्यासङ्गपरायणः ॥२
नरमांसं स क्रव्यादस्त्यक्त्वान्यान्भक्षकोऽभवत् । एवं बहुगते काले भीमवर्मा महाधमः ॥
विशूच्याग्निवशं यातो ममार च युवापि सः ॥३
कारितश्चण्डिकापाठस्तेन दुष्टेन भीरुणा । तस्य पुण्यप्रभावेन नागतो नरकान्प्रति ॥४
पुनः क्षत्रत्वमगमन्मागधे स महीपतिः । महानन्दीति विख्यातो राजनीतिपरायणः ॥५
जातिस्मरो बभूवासौ वेदधर्मपरायणः । कात्यायनस्य शिष्योऽभून्महाशाक्तस्य धीमतः ॥६
तस्मै नृपाय स मुनिर्दत्त्वा मध्यचरित्रकम् । सबीजं पुनरागत्य विन्ध्ये शक्तिपरोऽभवत् ॥७
नृपोऽपि प्रत्यहं देवीं महालक्ष्मीं सनातनीम् । रोचनाद्यैश्च सम्पूज्य जपन्मध्यचरित्रकम् ॥८
पुण्यक्षेत्रत्वमगमन्महामायाप्रसादतः । शूद्रभावं परित्यज्य क्षत्रभावमुपागतः ॥९
द्वादशाब्दान्तरे प्राप्तस्तद्गुरुः शक्तितत्परः । लक्षचण्डीं नृपादेव कारयामास धर्मतः ॥१०

अध्याय ३४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—विप्र ! उज्जयिनी नगरी में भीमवर्मा नामक क्षत्रिय राजा रहता था, जो सभी की हिंसा करके मद्य-मांस का भक्षण करता था । वह दुष्ट मांस के लोभ से सूकरों एवं मुर्गों की भी हिंसा करके भक्षण कर लेता था तथा वह पापी वेश्या प्रसंग भी करता था । वह राक्षस केवल मनुष्य का मांस त्याग कर अन्य सभी के मांस का भक्षण करता था । वह अपनी युवावस्था में ही विसूचिका (हैजे) की बीमारी से आक्रान्त होकर इस लोक से चला गया ।१-३। उसने चण्डिका का पाठ कराया था जिस पुण्य के प्रभाव से दुष्ट नरकयातना से बचकर पुनः मगधाधिपति के यहाँ क्षत्रिय कुल में जन्म ग्रहण किया। महानंदी उसका नाम था। वह राजनीति का अत्यन्त प्रेमी था। वहाँ वह अपनी पूर्व जाति के स्मरण होने से वैदिक धर्म का अनुयायी होकर वह महाशाक्त एवं परम धीमान् कात्यायन जी का शिष्य हुआ । उस महर्षि ने राजा को (सप्तशती) का मध्यमचरित्र बीजसमेत प्रदान किया। पुनः कात्यायन ने विंध्य पर्वतपर आकर शक्ति की उपासना करना आरम्भ किया और राजा भी प्रतिदिन उस सनातनी महालक्ष्मी देवी की पूजा चन्दनादि से सुसम्पन्न करके मध्यमचरित्र का पाठ कर रहा था—जिससे महामाया के प्रसाद से पुण्य क्षत्रत्व प्राप्त किया। शूद्र भाव का परित्याग पूर्वक क्षत्रिय भाव प्राप्ति किया। बारह वर्ष के उपरांत शक्ति की उपासना करके उनके गुरुजी पुनः लौटकर घर आये और उस राजा के द्वारा लक्ष चण्डी का अनुष्ठान

तदा प्रादुरभूद्देवी जगदम्बा सनातनी । नृपाय धर्ममर्थं च कामं मोक्षं हि चाददात् ।।११
महानन्दी महाभागो भुक्त्वा भोगं सुरेप्सितम् । अन्ते जगाम परमं लोकं देवनमस्कृतम् ।।१२
इति ते कथिता विप्र यत्प्रोक्तं यजुषो गतिः । सा वै मध्यचरित्रेण प्राप्ता शूद्रनृपेण वै ।।१३
इत्येवं वर्णितं विप्र माहात्म्यं मुनिवर्णितम् ।।१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये मध्यमचरित्रवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चित्रकूटे गिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तत्रावसन्महाप्राज्ञ उपाध्यायः पतञ्जलिः ।।१
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो गीताशास्त्रपरायणः । विष्णुभक्तः सत्यसन्धो भाष्यशास्त्रविशारदः ।।२
कदाचित्स तु शुद्धात्मा गतस्तीर्थान्तरं प्रति । काश्यां कात्यायनेनैव तस्य वादो महानभूत् ।।३
वर्षान्ते च तदा विप्रो देवीभक्तेन निर्जितः । लज्जितः स तु धर्मात्मा सन्तुष्टाव सरस्वतीम् ।।४

आरम्भ करवाया ।४-१०। उस समय सनातनी एवं जगज्जननी देवी जी ने प्रत्यक्ष होकर उस राजा को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान किया । इस प्रकार वह महानन्दी नामक राजा देवों की भाँति भोगों का यथेच्छ उपभोग करके अन्त में उस देववन्दनीय परमलोक की प्राप्ति किया । विप्र ! इस भाँति मैंने वह कथा सुना दी जिसमें पूजा करने वालों की गति का वर्णन किया गया है—उस मध्यम चरित्र द्वारा उपासना करके उस राजा शूद्र ने उसी को प्राप्त किया है । अब इस मुनि वर्णित माहात्म्य को यही समाप्त करता हूँ ।११-१४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

अध्याय ३५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—चित्रकूट पर्वतपर, जो अनेक भाँति के धातुओं से विभूषित हैं, पतञ्जलि नामक महाविद्वान् अध्यापक रहते थे, जो वेद-वेदाङ्ग के तत्वों के ज्ञाता, गीता-शास्त्र में निष्णात विष्णु-भक्त, सत्य-प्रतिज्ञ एवं भाष्य शास्त्र के निपुण विद्वान् थे । एक बार उस शुद्धात्मा पुरुष ने तीर्थयात्रा के निमित्त काशीपुरी में पहुँचकर कात्यायन जी के साथ महान् शास्त्रार्थ आरम्भ किया । एक वर्ष के उपरान्त उस देवीभक्त के द्वारा पराजित होने पर उस धर्मात्मा पतञ्जलि ने लज्जित होकर सरस्वती जी की आराधना करना आरम्भ किया—१-४

पतञ्जलिरुवाच

नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः । शिवायै सर्वमाङ्गल्ये विष्णुमाये च ते नमः ।।५
त्वमेव श्रद्धा बुद्धिस्त्वं मेधा विद्या शिवङ्करी । शान्तिर्वाणि त्वमेवासि नारायणि नमो नमः ।।६
इत्युक्ते सति विप्रे तु वागुवाचाशरीरिणी । विप्रोत्तम चरित्रं मे जप चैकाग्रमानसः ।।७
तच्चरित्रप्रभावेण सत्यं ज्ञानमवाप्स्यसि । कात्यायनस्य विप्रस्य राजसंज्ञानमुद्धतम् ।।
मद्भक्त्या तेन सम्प्राप्तं पराजय पतञ्जले ।।८
इति श्रुत्वा वचो देव्या विन्ध्यवासिनिमन्दिरम् । गत्वा तां पूजयामास तुष्टाव स्तोत्रपाठतः ।।९
ज्ञानं प्रसादजं विप्रः प्राप्य विष्णुपरायणम् । कात्यायनं पराजित्य परां मुदमवाप ह ।।१०
ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तिलकं तुलसीकण्ठमालिकाम् । कृष्णमन्त्रं च शिवदं स्थापयित्वा गृहे गृहे ।।११
जने जने तथा कृत्वा महाभाष्यमुदैरयत् । चिरञ्जीवित्वमगमद्विष्णुमायाप्रसादतः ।।१२
इति ते कथितो विप्र जाप्यानामुत्तमो जपः । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छन्ति शौनकाद्या महर्षयः ।।१३
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ।।१४
मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः । मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ।।१५
शुचिर्यो हि नरो नित्यमितिहाससमुच्चयम् । शृणुयाद्धर्मकामार्थी स याति परमां गतिम् ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये उत्तमचरितमाहात्म्यं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।३५

पतञ्जलि ने कहा—देवी जी को नमस्कार है, महामूर्ति एवं उस सर्वमूर्तिमयी को बार-बार नमस्कार है। शिवा (कल्याणरूप), समस्त मंगल प्रदान करने वाली, उस विष्णुमाया को नमस्कार है। श्रद्धा, बुद्धि, मेधा, विद्या, कल्याणरूपा, शांति एवं वाणि तुम्हीं हो, अतः नारायणि ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। ब्राह्मण के इस भाँति आराधना करने पर आकाशवाणी हुई—ब्राह्मण ! एकाग्रचित्त से मेरे उत्तम चरित्र का जप करो उसी चरित्र के प्रभाव से सत्यज्ञान की प्राप्ति होगी। कात्यायन को यह राजस-ज्ञान भी उसी से प्राप्त हुआ है। मेरी भक्ति द्वारा ही उसने पतञ्जलि को पराजित किया है। देवी जी की ऐसी वाणी सुनकर विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर उन्होंने पूजा करने के उपरांत स्तोत्र-पाठ द्वारा देवी को प्रसन्न किया।५-९। उस ब्राह्मण ने देवी की प्रसन्नतावश विष्णु पारायण का उत्तम ज्ञान प्राप्त-कर कात्यायन को पराजित कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। पश्चात् ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, कण्ठ में तुलसी की माला, एवं कल्याणप्रद कृष्ण-मंत्र का प्रत्येक घरों के प्रत्येक प्राणियों में प्रचार करके महाभाष्य की रचना की। विष्णुमाया के प्रसाद से उन्होंने चिर जीवन प्राप्त किया है। विप्र ! इस प्रकार मैंने उत्तम जप की व्याख्या कर दी। आप शौनकादि महर्षिगण अब क्या सुनना चाहते हैं। सभी लोगों को कल्याण प्राप्त हो, कोई भी दुःखी न रहे। भगवान् विष्णु, तथा उनका गरुडध्वज, पुण्डरीकांक्ष रूप मंगलमय है और हरिस्वरूप तो मंगल के निधि ही हैं। पवित्रतापूर्ण होकर जो मनुष्य इस इतिहास समुच्चय का श्रवण करेगा, उसे धर्म, काम एवं अर्थ प्राप्ति समेत परमगति की प्राप्ति होगी।१०-१६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।३५।

।। (दूसरा खण्ड समाप्त) ।।

तृतीयखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

विक्रमाख्यानकालवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्विक्रमाख्यानकालोऽयं भवतोदितः । शतद्वादशसमर्धादौ द्वापरस्य समो भुवि ॥१
अस्मिन्काले महाभाग लीला भगवता कृता । तामेतां कथयास्मान्त्वै सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥२

सूत उवाच

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥३
भविष्याख्ये महाकल्पे प्राप्ते वैवस्वतेन्तरे । अष्टाविंशद्द्वापरान्ते कुरुक्षेत्रे रणोऽभवत् ॥४
पाण्डवैर्निर्जिताः सर्वे कौरवाः युद्धदुर्मदाः । अष्टादशे च दिवसे पाण्डवानां जयोऽभवत् ॥५
दिनान्ते भगवान्कृष्णो ज्ञात्वा कालस्य दुर्गतिम् । शिवं तुष्टाव मनसा योगरूपं सनातनम् ॥६

कृष्ण उवाच

नमः शान्ताय रुद्राय भूतेशाय कपर्दिने । कालकर्त्रे जगद्भर्त्रे पापहर्त्रे नमो नमः ॥७
पाण्डवान्रक्ष भगवन्मद्भक्तान्भूतभीरुकान् । इति श्रुत्वा स्तवं रुद्रो नन्दियानोपरि स्थितः ॥
रक्षार्थं शिविराणां च प्राप्तवाञ्छूलहस्तधृक् ॥८

अध्याय १

विक्रमाख्यान काल का वर्णन

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! राजा विक्रमादित्य की सामयिक कथा आप ने सुना दी । द्वापर के बारह सौ वर्ष शेष रहने के समय भगवान् कृष्ण ने इस भूतल में अपनी लीला की है । आप सदैव सर्वज्ञ हैं, अतः उसी कथा को हमें सुनाने की कृपा करें । १-२

सूत जी बोले—भविष्य नामक महाकल्प में वैवस्वत मनु के समय जो अट्ठाईसवें द्वापर का अन्त समय बताया गया है, कुरुक्षेत्र में भीषण संग्राम हुआ था । उस युद्ध में मदांध कौरवगण पाण्डवों द्वारा पराजित हुए और पाण्डवों को अठारहवें दिन विजय भी प्राप्त हो गई थी । भगवान् कृष्ण ने दिन के अन्त समय में काल की दुर्गति समझकर उस सनातन योगी शिवजी की मानसिक, आराधना की । ३-६

कृष्ण ने कहा—शांत, रुद्र, भूतेश एवं कपर्दी को नमस्कार है, काल के कर्ता, जगत् के पालन-पोषण करने वाले, एवं पाप नाशक को बार-बार नमस्कार है । भगवन् ! पांडवों की रक्षा कीजिये, ये मेरे भक्त एवं भूत-भीरु हैं । इस स्तुति को सुनकर भगवान् रुद्र नन्दी पर बैठकर हाथ में शूल लिए उनके रक्षार्थ

तदा नृपाज्ञया कृष्णः स गतो गजसाह्वयम् । पाण्डवाः पञ्च निर्गत्य सरस्वत्यास्तटेऽवसन् ॥९
निशीथे द्रौणिभोजौ च कृपस्तत्र समाययुः । तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं तेभ्यो मार्गं शिवोऽददात् ॥१०
अश्वत्थामा तु बलवाञ्छिवदत्तमसिं तदा । गृहीत्वा स जघानाशु धृष्टद्युम्नपुरःसरान् ॥११
हत्वा यथेष्टमगमद्द्रौणिस्ताभ्यां समन्वितः ॥१२
पार्षतस्यैव सूतश्च हतशेषो भयातुरः । पाण्डवान्वर्णयामास यथा जातो जनक्षयः ॥१३
आगस्कृतं शिवं ज्ञात्वा भीमाद्याः क्रोधमूर्च्छिताः । स्वायुधैस्ताडयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥१४
अस्त्रशस्त्राणि तेषां तु शिवदेहे समाविशन् । दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे प्रजघ्नुस्तलमुष्टिभिः ॥१५
ताञ्छशाप तदा रुद्रो यूयं कृष्णप्रपूजकाः । अतोऽस्माभी रक्षणीया वधयोग्याश्च वै भुवि ॥१६
पुनर्जन्म कलौ प्राप्य भोक्ष्यते चापराधकम् । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पाण्डवा दुःखितास्तदा ॥१७
हरिं शरणमाजग्मुरपराधनिवृत्तये । तदा कृष्णयुताः सर्वे पाण्डवाः शस्त्रवर्जिताः ॥१८
तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं तदा प्रादुरभूच्छिवः । वरं वरयत प्राह कृष्णः श्रुत्वाब्रवीदिदम् ॥१९
शस्त्राण्यस्त्राणि यान्येव त्वदङ्गे क्षपितानि वै । पाण्डवेभ्यश्च देहि त्वं शापस्यानुग्रहं कुरु ॥२०
इति श्रुत्वा शिवः प्राह कृष्णदेव नमोऽस्तु ते । अपराधो न मे स्वामिन्मोहितोऽहं तवाज्ञया ॥२१
तद्वशेन मया स्वामिन्दत्तः शापो भयङ्करः । नान्यथा वचनं मे स्यादंशावतरणं भवेत् ॥२२

शिविरों में पहुँच गये । उस समय राजा की आज्ञा से कृष्ण हस्तिनापुर चले गये । और पाँचों पाण्डवों ने वहाँ से निकल कर सरस्वती के तट पर अपना निवास स्थान बनाया था । आधीरात के समय द्रोणि (अश्वत्थामा), भोज और कृपाचार्य वहाँ पहुँच गये । इन लोगों ने भगवान् रुद्र की मानसिक स्तुति की । शिव ने उन्हें मार्ग प्रदान किया । उस समय बलवान् अश्वत्थामा शिवद्वारा प्राप्त तलवार से धृष्टद्युम्न आदि का शीघ्र बध करके उन दोनों के समेत वहाँ से अपने अभीष्ट स्थान चले गये । पार्षदों (सेवकों) में मरने से बचे हुए सूत ने पाण्डवों से उस नरसंहार का वर्णन किया । जिस प्रकार वह घटना हुई थी । उस समय शिव को अपराधी समझकर भीमादि पाण्डवों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने अस्त्रों द्वारा देवाधिदेव पिनाकी शंकर जी को क्षत-विक्षत किया—उनके अस्त्र शस्त्र शिव जी की शरीर में प्रविष्ट होकर वहीं रह गये । इसे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ । पश्चात् अपने हाथों की हथेली (झापड़) मुट्ठी (मुक्के) द्वारा उन पर प्रहार किया । उस समय भगवान् रुद्र ने उन्हें शाप दिया—तुमलोग कृष्ण के पुजारी हो, इसलिए मेरे द्वारा रक्षित रहने पर भी इसी पृथिवी में तुम्हारा वध होगा—कलियुग में पुनः जन्म ग्रहण करके इस प्रकार के अपने अपराध के फल का अनुभव करोगे ।' इतना कहकर शिव जी अन्तर्हित हो गये और पाण्डवगण दुःखी होकर अपने अपराध की क्षमा याचना के लिए भगवान् की शरण में गये । उस समय अस्त्र विहीन पाण्डव लोग कृष्ण समेत भगवान् रुद्र को मानसिक स्तुति द्वारा प्रसन्न करने लगे । वहाँ प्रत्यक्ष होकर शिव ने कहा—वर की याचना करो । इसे सुनकर कृष्ण ने कहा—आपके अंगों में प्रविष्ट उन अस्त्रों शस्त्रों को उन्हें लौटाकर उनके शाप के लिए कृपा कीजिये ।७-२०। इसे सुनकर शिव ने कहा—कृष्णदेव ! तुम्हें नमस्कार है । स्वामिन् ! इसमें मेरा अपराध नहीं है, मैं आप की माया से मोहित हो गया था । उसी से यह भयंकर शाप दे दिया । इसलिए मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती, इन

वत्सराजस्य पुत्रत्वं गमिऽष्यति युधिष्ठिरः । बलखानिरिति ख्यातः शिरीषाख्यपुराधिपः ॥२३
भीमो दुर्वचनाद्दुष्टो म्लेच्छयोनौ भविष्यति । वीरणो नाम विख्यातः स वै वनरसाधिपः ॥२४
अर्जुनांशश्च मद्भक्तो जनिष्यति महामतिः । पुत्रः परिमलस्यैव ब्रह्मानन्द इति स्मृतः ॥२५
कान्यकुब्जे हि नकुलो भविष्यति महाबलः । रत्नभानुसुतोसौ वै लक्ष्मणो नाम विश्रुतः ॥२६
सहदेवस्तु बलवाञ्जनिष्यति महामतिः । भीष्मसिंह सुतो जातो देवसिंह इति स्मृतः ॥२७
धृतराष्ट्रांश एवासौ जनिष्यत्यजमेरके । पृथिवीराज इति स द्रौपदी तत्सुता स्मृता ॥२८
वेला नाम्ना च विख्याता तारकः कर्ण एव हि । रक्तबीजस्तथा रुद्रो भविष्यति महीतले ॥२९
कौरवाश्च भविष्यन्ति मायायुद्धविशारदाः । पाण्डुपक्षाश्च ते सर्वे धर्मिणो बलशालिनः ॥३०

सूत उवाच

इति श्रुत्वा हरिः प्राह विहस्य परमेश्वरम् । मया शक्त्यवतारेण रक्षणीया हि पाण्डवाः ॥३१
महावती पुरी रम्या मायादेवीविनिर्मिता । देशराजसुतस्तत्र ममांशो हि जनिष्यते ॥३२
देवकीजठरे जन्मोदयसिंह इति स्मृतः । आल्हादो मम धामांशो जनिष्यति गुरुर्मम ॥३३
हत्वाग्निवंशजान्भूपान्स्थापयिष्यामि वै कलिम् । इति श्रुत्वा शिवो देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये विक्रमाख्यानकाले प्रथमोऽध्यायः ।१

लोगों का आंशिक जन्म होगा ही । युधिष्ठिर वत्सराज (वत्छराज) के बलखान (मलखान) नामक पुत्र और शिरीष (सिरसा) नगर के अधिनायक होंगे । दुष्टवचन कहने के नाते भी म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होकर वीरण नामक वनरस के अधिपति होंगे । महाबुद्धिमान् एवं मेरा भक्त अर्जुन अपने अंश से परिमल के यहाँ ब्रह्मानन्द नामक पुत्र उत्पन्न होंगे । कान्यकुब्ज प्रदेश में राजा रत्नभानु (रतीभान) के यहाँ महा बलवान् नकुल लक्ष्मण (लषन) नामक पुत्र होंगे । महाबुद्धिमान् एवं महाबली सहदेव भीष्म सिंह के देव सिंह नामक पुत्र होंगे । धृतराष्ट्र के अंश से पृथिवीराज नामक राजा अजमेर में उत्पन्न होगा, द्रौपदी जिसकी सुता होकर जन्म ग्रहण करेगी । उसका वहाँ वेला नाम होगा । कर्ण तारक (सादर) के नाम से उत्पन्न होंगे । रक्तबीज तथा रुद्र भी इस भूतल में जन्म ग्रहण करेंगे । ये कौरवगण मायावी होकर युद्ध निपुण होंगे किन्तु पाण्डव पक्ष के सभी धार्मिक एवं बलवान् होंगे ।२१-३०

सूत जी बोले—यह सुनकर कृष्ण ने हँसकर परमेश शिव जी से कहा—मैं शक्ति-अवतार द्वारा पाण्डवों की रक्षा करूँगा । माया देवी द्वारा विरचित महावती नामक पुरी में मेरे अंश से देशराज के द्वारा देवकी के उदर से पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका उदयसिंह नाम होगा । मेरे तेजपुञ्ज का अधिकांश रूप आल्हार (आल्हा) नाम से उत्पन्न होगा । जिसके द्वारा अग्निवंशीय राजाओं के नाशपूर्वक कलि की स्थापना करूँगा । यह सुनकर शिव जी उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।३१-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
विक्रमाख्यान काल नामक पहला अध्याय समाप्त ।१।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शालिवाहनकालवर्णनम्

सूत उवाच

प्रातःकाले च सम्प्राप्ते पाण्डवाः पुत्रशोकिनः । प्रेतकार्याणि ते कृत्वा भीष्मान्तिकमुपाययुः ।।१
राजधर्मान्मोक्षधर्मान्दानधर्मान्विभागशः ।श्रुत्वायजन्नश्वमेधैस्त्रिभिरुत्तमकर्मभिः ।।२
षट्त्रिंशदब्दराज्यं हि कृत्वा स्वर्गपुरं ययुः । जनिष्यन्ते तदंशा वै कलिधर्मविवृद्धये ।।३

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिः सर्वान्पुनः सूतो वदिष्यति । गच्छध्वं मुनयः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् ।।
चक्रतीर्थे समाधिस्थो ध्यायेऽहं त्रिगुणात्परम् ।।४
इति श्रुत्वा तु मुनयो नैमिषारण्यवासिनः । योगसिद्धिं समास्थाय गमिष्यन्त्यात्मनोऽन्तिके ।।५
द्वादशाब्दशते कालेऽतीते ते शौनकादयः ।।६
उत्थाय देवखाते च स्नानध्यानादिकाः क्रियाः । कृत्वा सूतान्तिकं गत्वा वदिष्यन्ति पुनर्वचः ।।७

ऋषय ऊचुः

विक्रमाख्यानकालोऽयं द्वापरे च शिवाज्ञया । विनीतान्भगवन्भूमौ तदा तान्नृपतीन्वद ।।८

अध्याय २

शालिवाहनकाल का वर्णन

सूत जी बोले—शोकाकुल पाण्डवों ने प्रातः काल होने पर निधन हुए उन प्राणियों के प्रेतकार्य समाप्त कर भीष्म के यहाँ प्रस्थान किया । उनके समीप में पहुँचकर राजधर्म, मोक्षधर्म, और दानधर्म का सविभाग श्रवण किया । पश्चात् तीन अश्वमेध यज्ञों का सविधान अनुष्ठान सुसम्पन्न करते हुए के छत्तीस वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत स्वर्गपुरी चले गये । पुनः उन्हीं के अंश कलिधर्म के वृद्ध्यर्थ जन्म ग्रहण करेंगे ।१-३

व्यास जी बोले—इतना कहकर सूत जी पुनः उन महर्षियों से कहेंगे कि मैं अब योगनिद्रा के अधीन हो रहा हूँ । अतः आप लोग चले जाइये । मैं चक्रतीर्थ में समाधिस्थ होकर त्रिगुणातीत उस परब्रह्म का चिंतन करूँगा इसे सुनकर नैमिषारण्यवासी मुनिगण भी योग-सिद्धि द्वारा अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष प्राप्त करेंगे । पुनः बारह सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरात वे सौनकादि गण जागृत होकर उस देव सरोवर में स्नान ध्यानादि क्रिया सुसम्पन्न करने के उपरांत सूत जी के समीप पहुँच कर उनसे कहेंगे ।४-७

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! द्वापर में भगवान् शिव जी की जो आज्ञा हुई थी, उसके अनुसार विक्रम-काल (संवत्सर) का यह समय उपस्थित है, इसलिए इस भूतल के राजाओं का वर्णन कीजिये ।८

सूत उवाच

स्वर्गते विक्रमादित्ये राजानो बहुधाऽभवन् । तथाष्टादशराज्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥९
पश्चिमे सिन्धुनद्यन्ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे । उत्तरे बदरीस्थाने पूर्वे च कपिलान्तिके ॥१०
अष्टादशैव राष्ट्राणि तेषां मध्ये बभूविरे । इन्द्रप्रस्थं च पाञ्चालं कुरुक्षेत्रं च कापिलम् ॥११
अन्तर्वेदी व्रजथ्यैवाजमेरं मरुधन्व च । गौर्ज्जरं च महाराष्ट्रं द्राविडं च कलिङ्गकम् ॥१२
आवन्त्यं चोडुपं वङ्गं गौडं मागधमेव च । कौशल्यं च तथा ज्ञेयं तेषां राजा पृथक्पृथक् ॥१३
नानाभाषास्थितास्तत्र बहुधर्मप्रवर्तकाः । एवमब्दशतं जातं ततस्ते वै शकादयः ॥१४
श्रुत्वा धर्मविनाशं च बहुवृन्दैः समन्विताः । केचित्तीर्त्वा सिन्धुनदीमार्य्यदेशं समागताः ॥१५
हिमपर्वतमार्गेण सिन्धुमार्गेण चागमन् । जित्वार्य्याल्लाँठयित्वा तान्स्वदेशं पुनराययुः ॥१६
गृहीत्वा योषितस्तेषां परं हर्षमुपाययुः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः ॥१७
विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं गृहीतवान् । जित्वा शकान्दुराधर्षाश्चीनतैत्तिरिदेशजान् ॥१८
बाह्लीकान्कामरूपांश्च रोमजान्खुरजाञ्छठान् । तेषां कोशान्गृहीत्वा च दण्डयोग्यानकारयत् ॥१९
स्थापिता तेन मर्य्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक्पृथक् । सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्य्यस्य चोत्तमम् ॥२०
म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना । एकदा तु शकाधीशो हिमतुङ्गं समाययौ ॥२१
हूणदेशस्य मध्ये वै गिरिस्थं पुरुषं शुभम् । ददर्श बलवान्राजा गौराङ्गं श्वेतवस्त्रकम् ॥२२

सूत जी बोले—राजा विक्रमादित्य के स्वर्गीय होने के उपरांत उस वसुधातल पर अनेक राजा एवं अट्ठारह राज्य हुए हैं, मैं उनके नाम बता रहा हूँ सुनो ! पश्चिम में सिंधु नदी, दक्षिण में सेतुबन्ध, उत्तर में बदरीनाथ धाम और पूर्व में कपिलाश्रम, इन्ही के मध्य में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), पांचाल (पंजाब), कुरुक्षेत्र, कपिला, अन्तर्वेदी, व्रजथ्य, अजमेर, मरुधन्वा, गौर्ज्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, द्राविड, कलिंग, अवंती, उडुप,, बंग (बंगाल) गौड़, मागध और कोशल नामक ये अट्ठारह राज्य स्थापित हुए । इनके पृथक्-पृथक् राजा थे, जो अनेक भाँति के भाषा-भाषी, और अनेक धर्म के प्रवर्तक थे । सौ वर्ष के उपरांत शकादि गणों ने उनके धर्म का विनष्ट होना सुनकर अपने अनेक सहायक वृन्दों समेत, जो सिंधु नदी को पारकर इस आर्य प्रदेश में आये थे तथा कुछ हिमालय पर्वत और कुछ लोग समुद्र मार्ग से, आर्यों पर विजय प्राप्तकर उन्हें लूट-पाट कर अपने देश लौट गये ।९-१६। साथ में इनकी स्त्रियों का अपहरण भी करते गये, जिससे उन्हें वहाँ पहुँचने पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त होने लगा । उसी समय शालिवाहन नामक राजा ने जो विक्रमादित्य का पौत्र कहा जाता था, अपने पिता का राज्य पुनः अपने अधीन किया । उस विजय में उसने दुर्धर्ष शकों चीन और तैत्तिरि (तातार) देश में उत्पन्न बाह्लीक, कामरूप, रोम तथा खुर (खुरासन) के राजाओं को बाँधकर उनके कोश (खजानों) को दंड के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने ही म्लेच्छों और आर्यों की भिन्न-भिन्न मर्यादा स्थापित की। आर्यों के राष्ट्र का नाम करण सिन्धुस्थान हुआ। (जो आधुनिक समय में हिंदुस्तान के रूप में है) उस महात्मा ने म्लेच्छों का स्थान सिन्धु के पार प्रदेश में स्थापित किया। एक बार शकाधिनायक ने हिमालय के एक टीले की यात्रा की।१७-२१। वहाँ हूण प्रदेश के मध्य में उस पर्वतपर एक शुभमूर्ति वाले पुरुष का दर्शन किया, जो गौरवर्ण और श्वेतवस्त्र से सुसज्जित

को भवानिति तं प्राह स होवाच मुदान्वितः । ईशपुत्रं च मां विद्धि कुमारीगर्भसंभवम् ।।२३
म्लेच्छधर्मस्य वक्तारं सत्यव्रतपरायणम् । इति श्रुत्वा नृपः प्राह धर्मः को भवतो मतः ।।२४
श्रुत्वोवाच महाराज प्राप्ते सत्यस्य संक्षये । निर्मर्यादे म्लेच्छदेशे मसीहोऽहं समागतः ।।२५
ईशामसी च दस्यूनां प्रादुर्भूता भयङ्करी । तामहं म्लेच्छतः प्राप्य मसीहत्वमुपागतः ।।२६
म्लेच्छेषु स्थापितो धर्मो मया तच्छृणु भूपते । मानसं निर्मलं कृत्वा मलं देहे शुभाशुभम् ।।२७
नैगमं जपमास्थाय जपेत् निर्मलं परम् । न्यायेन सत्यवचसा मनसैक्येन मानवः ।।२८
ध्यानेन पूजयेदीशं सूर्यमण्डलसंस्थितम् । अचलोऽयं प्रभुः साक्षात्तथा सूर्योऽचलः सदा ।।२९
तत्त्वानां चलभूतानां कर्षणः स समन्ततः । इति कृत्येन भूपाल मसीहा विलयं गता ।।३०
ईशमूर्तिर्हृदि प्राप्ता नित्यशुद्धा शिवङ्करी । ईशामसीह इति च मम नाम प्रतिष्ठितम् ।।३१
इति श्रुत्वा स भूपालो नत्वा तं म्लेच्छपूजकम् । स्थापयामास तं तत्र म्लेच्छस्थाने हि दारुणे ।।३२
स्वराज्यं प्राप्तवान्राजा हयमेधमचीकरत् । राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दं स्वर्गलोकमुपाययौ ।।३३
स्वर्गते नृपतौ तस्मिन्यथा चासीत्तथा शृणु ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये शालिवाहनकालो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

था । 'आप कौन हैं', ऐसा पूँछने पर उसने प्रसन्न होकर कहा—मैं ईश पुत्र हूँ, मेरा जन्म कुमारी के गर्भ से हुआ है । मैं म्लेच्छधर्म का प्रवक्ता और सत्यव्रत का पारायण करता हूँ । इसे सुनकर राजा ने कहा—धर्म के विषय में आप का क्या मत है ? उसने कहा—महाराज ! इस म्लेच्छ देश में जो सत्यहीन एवं मर्यादा विहीन है, मसीहा होकर आया हूँ । यह ईसामसी ही दस्युगणों के लिए भीषण रूप धारण करेगी । उसी को मैं म्लेच्छों से प्राप्त कर मसीहा हुआ हूँ । भूपते ! म्लेच्छों में मैं धर्म की स्थापना कर चुका हूँ । बता रहा हूँ, सुनिये ! देह में स्थित शुभाशुभ रूपी मलग्रस्त मन को निर्मल करके मनुष्य सत्य एवं न्याय को अपना कर सावधान होकर वैदिक मंत्र जपपूर्वक सूर्य मण्डल स्थित उस निर्मल परमेश की ध्यान पूजा करे । जिस प्रकार परमेश्वर अचल हैं उसी भाँति सदैव साक्षात् सूर्य भी । राजन् ! प्राणियों के नश्वर तत्त्वों (पंच तत्त्वों) का चारों ओर से कर्षण करने खींचने से ही, इस कर्म द्वारा मसीहा नष्ट हो गया और हृदय में ईश की मूर्ति जो नित्य शुद्ध तथा कल्याणप्रद है, स्थित हो गई । इसीलिए मेरा नाम 'ईसामसीह' है इसे सुनकर राजा ने उस म्लेच्छ पूजक को नमस्कार पूर्वक उस भीषण म्लेच्छ स्थान में प्रतिष्ठित कर दिया । पश्चात् अपने राज्य में लौटकर राजा ने अश्वेमधयज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न करके साठ वर्ष राज्योपभोग के उपरांत स्वर्ग को प्रस्थान किया । राजा के स्वर्ग चले जाने पर पुनः जो कुछ हुआ, कह रहा हूँ, सुनो ! ।२२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में शालिवाहन काल का वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।।२।

अथ तृतीयोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

शालिवाहनवंशे च राजानो दश चाभवन् । राज्यं पञ्चशताब्दं च कृत्वा लोकान्तरं ययुः ।।१
मर्य्यादा क्रमतो लीना जाता भूमण्डले तदा । भूपतिर्दशमो यो वै भोजराज इति स्मृतः ।।
दृष्ट्वा प्रक्षीणमर्य्यादां बली दिग्विजयं ययौ ।।२
सेनया दशसाहस्र्या कालिदासेन संयुतः । तथान्यैर्ब्राह्मणैः सार्द्धं सिन्धुपारमुपाययौ ।।३
जित्वा गान्धारजान्म्लेच्छान्काश्मीरान्नारवाञ्छठान् । तेषां प्राप्य महाकोशं दण्डयोग्यानकारयत् ।।४
एतस्मिन्नन्तरे म्लेच्छ आचार्य्येण समन्वितः । महामद इति ख्यातः शिष्यशाखासमन्वितः ।।५
नृपश्चैव महादेवं मरुस्थलनिवासिनम् । गङ्गाजलैश्च संस्नाप्य पञ्चगव्यसमन्वितैः ।।
चन्दनादिभिरभ्यर्च्य तुष्टाव मनसा हरन् ।।६

भोजराज उवाच

नमस्ते गिरिजानाथ मरुस्थलनिवासिने । त्रिपुरासुरनाशाय बहुमायाप्रवर्त्तिने ।।७
म्लेच्छैर्गुप्ताय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे । त्वं मां हि किङ्करं विद्धि शरणार्थमुपागतम् ।।८

अध्याय ३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—शालिवाहन के वंश में दश राजाओं ने क्रमशः जन्म ग्रहणकर पाँच सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया है । पश्चात् वे स्वर्गगामी हो गये । उन लोगों के राजकाल में मर्यादा क्रमशः विलीन होती गई, यहाँ तक कि दशवें राजा भोज के समय मर्यादा इस भूतल में नाममात्र रह गई थी उस बली राजा ने मर्यादा को नष्ट-भ्रष्ट देखकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया, जिसमें दश सहस्र सेना के साथ कालिदास भी थे । अन्य ब्राह्मणों को भी साथ रखकर वह राजा सर्वप्रथम सिंधु नदी के पार पहुँचकर गांधार प्रदेश के म्लेच्छों और काश्मीर के (नारव) दुष्टों पर विजय प्राप्ति पूर्वक उनके कोशों (खजानों) को दण्डरूप में अपनाते हुए आगे बढ़ा । उसी समय 'महामद' (मोहम्मद) नामक म्लेच्छों का आचार्य (गुरु) अपने शिष्यों समेत प्रचार कर रहा था । राजा भोज भी मरुस्थल प्रदेश में स्थित शिव जी की पूजा पंचगव्य समेत गंगाजल एवं चन्दनादि से सुसम्पन्न करके उनकी स्तुति करने लगे—।१-६

भोजराज बोले—मरुभूमि के निवासी गिरिजापति को नमस्कार है, जिन्होने अत्यन्त माया के प्रवर्तक त्रिपुरासुर का नाश किया है, म्लेच्छों द्वारा रक्षित शुद्ध एवं सच्चिदानंद रूप हैं । मैं आपका सेवक हूँ, आपकी शरण में उपस्थित हूँ ।७-८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स्तवं देवः शब्दमाह नृपाय तम् । गन्तव्यं भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले ।।९
म्लेच्छैस्सुदूषिता भूमिर्वाहीका नाम विश्रुता । आर्य्यधर्मो हि नैवात्र वाहीके देशदारुणे ।।१०
बभूवात्र महामायी योऽसौ दग्धो मया पुरा । त्रिपुरो बलिदैत्येन प्रेषितः पुनरागतः ।।११
अयोनिः स वरो मत्तः प्राप्तवान्दैत्यवर्द्धनः । महामद इति ख्यातः पैशाचकृतितत्परः ।।१२
नागन्तव्यं त्वया भूप पैशाचे देशधूर्तके । मत्प्रसादेन भूपाल तव शुद्धिः प्रजायते ।।१३
इति श्रुत्वा नृपश्चैव स्वदेशान्पुनरागमत् । महामदश्च तैः सार्द्धं सिन्धुतीरमुपाययौ ।।१४
उवाच भूपतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः । तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः ।।१५
ममोच्छिष्टं सभुञ्जीयाद्यथा तत्पश्य भो नृप । इति श्रुत्वा तथा दृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ।।१६
म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्तस्य भूपस्य दारुणे ।।१७
तच्छ्रुत्वा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम् । माया ते निर्मिता धूर्त नृपमोहनहेतवे ।।१८
हनिष्यामि दुराचारं वाहीकं पुरुषाधमम् । इत्युक्त्वा स द्विजः श्रीमान्नवार्णजपतत्परः ।।१९
जप्त्वा दशसहस्रं च तद्दशांशं जुहाव सः । भस्म भूत्वा स मायावी म्लेच्छदेवत्वमागतः ।।२०
भयभीतास्तु तच्छिष्या देशं वाहीकमाययुः । गृहीत्वा स्वगुरोर्भस्म मदहीनत्वमागतम् ।।२१
स्थापितं तैश्च भूमध्ये तत्रोषुर्मदतत्पराः । मदहीनं पुरं जातं तेषां तीर्थं समं स्मृतम् ।।२२
रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः । पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि सोऽब्रवीत् ।।२३

सूत जी बोले—इस स्तुति को सुनकर शिव जी ने राजा से कहा—भोजराज ! आप महाकालेश्वर स्थान के वाहीक नामक भूमि प्रदेश में जाइये, वह भूमि म्लेच्छों द्वारा दूषित हो रही है। उस भीषण 'वाहीक प्रान्त में आर्यधर्म नहीं है। यहाँ बलि दैत्य से प्रेषित यही त्रिपुरासुर पुनः आ गया है, जिस महामायावी को मैंने भस्म कर दिया था। वह अयोनि से उत्पन्न, श्रेष्ठ, एवं दैत्यवंश का वर्द्धक है। 'महामद' (मुहम्मद) उसका नाम है, जो सदैव पिशाच कर्म ही करता रहता है। अतः राजन् तुम इस धूर्त एवं पिशाच के प्रदेश में मत ठहरो, मेरी कृपा से तुम्हारी शुद्धि हो जायगी । इसे सुनकर राजा अपने देश के लिए चल दिये । अपने शिष्यों समेत महामद भी सिंधु नदी के तटपर आया । उस कुशल मायावी ने प्रेम भाव से राजा से कहा—महाराज ! आपके देव मेरे दास हैं, नृप ! देखिये ये मेरा उच्छिष्ट भोजन करते हैं । इसे देख सुनकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ ।९-१६। और वह भी उस भीषण म्लेच्छ-धर्म का अनुयायी होने के लिए सोचने लगा । उस समय कालिदास ने क्रुद्ध होकर महामद से कहा—धूर्त ! राजा को मोहित करने के लिए यह तुम्हारी माया है, अतः तुम ऐसे दुराचारी एवं वाहीक के अधमाधम का मैं वध कर दूँगा । इतना कहकर वह ब्राह्मण नवार्ण मंत्र का दशसहस्त्र जप करने के उपरांत उसके दशांश से आहुति-प्रदान करने लगा । उसी में वह भस्म होकर म्लेच्छों का देवता हो गया । पश्चात् उसके सभी शिष्यगण भयभीत होकर वाहीक देश चले गये । वहाँ अपने गुरु (मुहम्मद) का भस्म ले जाकर भूमि के मध्य (नीचे) स्थापित करके वे लोग शान्त हो गये । उस स्थान को 'मदहीन पुर' (मदीना) के नाम से स्थापित किया । वही उन लोगों का तीर्थ स्थान है ।१७-२२। रात्रि के समय वह मायावी देव पिशाच रूप से भोज

आर्य्यधर्म्मो हि ते राजन्सर्वधर्मोत्तमः स्मृतः । ईशाज्ञया करिष्यामि पैशाचं धर्मदारुणम् ॥२४
लिङ्गच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी स दूषकः । उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥२५
विना कौलं च पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम । मुसलेनैव संस्कारः कुशैरिव भविष्यति ॥२६
तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्मदूषकाः । इति पैशाचधर्मश्च भविष्यति मया कृतः ॥२७
इत्युक्त्वा प्रययौ देवः स राजा गेहमाययौ । त्रिवर्णे स्थापिता वाणी सांस्कृती स्वर्गदायिनी ॥२८
शूद्रेषु प्राकृती भाषा स्थापिता तेन धीमता । पञ्चाशदब्दकालं तु राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२९
स्थापिता तेन मर्य्यादा सर्वदेवोपमानिनी । आर्य्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः ॥३०
आर्य्यवर्णाः स्थितास्तत्र विन्ध्यान्ते वर्णसङ्कराः । नरा मुसलवन्तश्च स्थापिताः सिन्धुपारजाः ॥३१
बर्बरे तुषदेशे च द्वीपे नानाविधे तथा । ईशामसीहधर्म्माश्च सुरै राज्ञैव संस्थिताः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

स्वर्गते भोजराजे तु सप्तभूपास्तदन्वये । जाताश्चाल्पायुषो मन्दास्त्रिशताब्दान्तरे मृताः ॥१

से कहने लगा—राजन् ! तुम्हारा आर्यधर्म सभी धर्मों से उत्तम है । मैं तो ईशा की आज्ञावश इस दारुण धर्म का प्रचार कर रहा हूँ—लिंग कटाना, शिखा (चोटी) हीन होकर केवल दाढ़ी रखना, बड़ी बड़ी बाते करना और सर्वभक्षी मेरे वर्ग के लोग होंगे । कौलतन्त्र के बिना ही वे पशुओं के भक्षण करेंगे, कुश के स्थान पर मूसल द्वारा अपने सभी संस्कार उनके होंगे इसीलिए यह मुसलमान जाति धर्मदूषक कही जायगी । इस प्रकार का पैशाच धर्म मैं विस्तृत करूँगा इतना कहकर वह चला गया और राजा भी अपने घर लौट आये । तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों) में इन्होंने स्वर्गप्रद संस्कृत वाणी और शूद्रों में प्राकृत भाषा स्थापित की । पश्चात् पचास वर्ष राज करने के उपरांत स्वर्गगामी हो गये । उन्होंने ही सर्व देवों की मर्यादा तथा विंध्य हिमालय के मध्य प्रदेश की पुण्य भूमि में आर्यावर्त नामक देश स्थापित किया । वहाँ आर्य जाति के लोग रहते हैं और विंध्य के अन्त में वर्णसंकर गण तथा सिंधुपार के मुसलमानों को भी स्थान दिया । ईसामसीह धर्म, वर्वर, तुष तथा सभी द्वीपों में देव एवं राजाओं की भाँति स्थापित हो गया ।२३-३२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—राजा भोज के स्वर्गीय होने के उपरांत उनके कुल के क्रमशः सात राजा और हुए थे,

बहुभूपवतो भूमिस्तेषां राज्ये बभूव ह । वीरसिंहश्च यो भूपः सप्तमः सम्प्रकीर्तितः ॥२
तदन्वये त्रिभूपाश्च द्विशताब्दान्तरे मृताः । गङ्गासिंहश्च यो भूपो दशमः स प्रकीर्तितः ॥३
कल्पक्षेत्रे च राज्यं स्वं कृतवान्धर्मतो नृपः । अन्तर्वेद्यां कान्यकुब्जे जयचन्द्रो महीपतिः ॥४
इन्द्रप्रस्थेऽनङ्गपालस्तोमरान्वयसम्भवः। अन्ये च बहवो भूपा बभूवुर्ग्रामराष्ट्रपाः ॥५
अग्निवंशस्य विस्तारो बभूव बलवत्तरः । पूर्वे तु कपिलस्थाने वाहीकान्ते तु पश्चिमे ॥६
उत्तरे चीनदेशान्ते सेतुबन्धे तु दक्षिणे । षष्टिलक्षाश्च भूपाला ग्रामपा बलवत्तराः ॥७
अग्निहोत्रस्य कर्तारो गोब्राह्मणहितैषिणः । बभूवुर्द्वापरसमा धर्मकृत्यविशारदाः ॥८
द्वापराख्यसमः कालः सर्वत्र परिवर्तते । गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥९
ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो देशे देशे स्थितो मखः । आर्यधर्मकरा म्लेच्छा बभूवुः सर्वतोमुखाः ॥१०
इति दृष्ट्वा कलिर्घोरो म्लेच्छया सह भीरुकः । नीलाद्रौ प्राप्य मतिमान्हरिं शरणमाययौ ॥११
द्वादशाब्दमिते काले ध्यानयोगपरोऽभवत् । ध्यानेन सच्चिदानन्दं दृष्ट्वा कृष्णं सनातनम् ॥१२
तुष्टाव मनसा तत्र राधया सहितं हरिम् । पुराणमजरं नित्यं वृन्दावननिवासिनम् ॥१३

कलिरुवाच

साष्टाङ्गदण्डवत्स्वामिन्गृहाण मम चेश्वर । पाहि मां शरणं प्राप्तं चरणे ते कृपानिधे ॥१४

किंतु अल्पायु होने के नाते उन भाग्यहीनों का राजकाल तीन सौ वर्ष के भीतर ही समाप्त हो गया । और वे स्वर्गीय होते गये । उनके राज्य के अन्तर्गत छोटे-छोटे अनेक राजा हुए । उनके कुल के सातवें राजा का नाम वीरसिंह बताया जाता है । उनके कुल के तीन राजा दो सौ वर्ष के अन्तर्गत स्वर्गीय हो गये थे । दशवें राजा का नाम गंगा सिंह बताया जाता है, जिसने कल्पक्षेत्र में अपने राज्य का धर्मतः उपभोग किया है । अन्तर्वेदी नामक कान्यकुब्ज प्रदेश में जयचन्द्र नामक राजा हुआ तथा इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में तोमर कुलभूषण अनंगपाल नामक राजा हुआ । इसी भांति ग्राम-राष्ट्रपाल (जमीदार-तालुकेदार) के रूप में अनेक राजा हुए । अग्निवंश का बलवत्तर विस्तार हुआ है पूर्व में कपिलाश्रम, पश्चिम में वाहीकान्त उत्तर में चीन के अन्त तक और दक्षिण में सेतुबन्ध तक विस्तृत भूमि में साठ लाख बलवान ग्रामाधिप (जमीदार-तालुकेदार) हुए हैं, जो अग्निहोत्र करने वाले तथा गो-ब्राह्मण के हितैषी थे । उन धर्मकुशल राजाओं के समय में द्वापर के समान ही धर्म का प्रचार था, इसी से सभी स्थानों में द्वापर के समय का ही अनुभव हो रहा था । सभी घरों में धन था, प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक थे, गाँव-गाँव में देवता प्रतिष्ठित थे और देश-देश में यज्ञानुष्ठान का महारम्भ हुआ था । उस समय चारों ओर म्लेच्छ राजा आर्य-धर्म के ही अनुयायी थे । इसे देखकर घोर कलि म्लेच्छ समेत अत्यन्त भीरु होकर नीलांचल पर पहुँचकर उस बुद्धिमान् ने भगवान् की शरण ली । वहाँ उसने बारह वर्ष तक ध्यानयोग किया—अपने ध्यान में सच्चिदानन्द एवं सनातन भगवान् कृष्ण को देखकर उसने राधा समेत उन भगवान् को मानसिक स्तुति द्वारा प्रसन्न किया जो पुराण (प्राचीन) रूप, अजर और नित्य वृन्दावन में निवास करते हैं ।१-१३

कलि ने कहा—स्वामिन् ! मेरे किये हुए साष्टांग दण्डवत् को आप स्वीकार करें । कृपानिधान ! मैं आपके चरण की शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये । आप समस्त पापों के नाशक तथा समस्त काल-

सर्वपापहरस्त्वं वै सर्वकालकरो हरिः । भवान्गौरः सत्ययुगे त्रेतायां रक्तरूपकः ॥१५
द्वापरे पीतरूपश्च कृष्णत्वं मम दिष्टके । मत्पुत्राश्च स्मृता म्लेच्छा आर्य्यधर्मत्वमागताः ॥१६
चतुर्गेहं च मे स्वामिन्द्यूतं मद्यं सुवर्णकम् । स्त्री हास्यं चाग्निवंश्यैश्च क्षत्रियैश्च विनाशितम् ॥१७
त्यक्तदेहस्त्यक्तकुलस्त्यक्तराष्ट्रो जनार्दन । त्वत्पादाम्बुजमाधाय स्थितोऽहं शरणं त्वयि ॥१८
इति श्रुत्वा स भगवान्कृष्णः प्राह विहस्य तम् । भो कले तव रक्षार्थं जनिष्येहं महावतीम् ॥१९
ममांशो भूमिमासाद्य क्षयिष्यति महाबलान् । म्लेच्छवंशस्य भूपालान्स्थापयिष्यति भूतले ॥२०
इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत । कलिस्तु म्लेच्छया सार्धं परमानन्दमाप्तवान् ॥२१
एतस्मिन्नन्तरे विप्र यथा जातं शृणु स्वयम् । आभीरी वाक्सरे ग्रामे व्रतपा नाम विश्रुता ॥२२
नवदुर्गाव्रतं श्रेष्ठं नववर्षं चकार ह । प्रसन्ना चण्डिका प्राह वरं वरय शोभने ॥२३
तां यदि मे मातर्वरो देयस्त्वयेश्वरि । रामकृष्णसमौ बालौ भवेयातां ममान्वये ॥२४
तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत । वसुमान्नाम नृपतिस्तस्या रूपेण मोहितः ॥२५
उद्वाह्य धर्मतो भूपः स्वगेहे तामवासयत् । तस्यां जातौ नृपात्पुत्रौ देशराजस्तु तद्वरः ॥२६
आवार्यो वत्सराजश्च शतहस्तिसमो बले । जित्वा तौ मागधान्देशान्राज्यवन्तौ बभूवतुः ॥२७
शतयत्तः स्मृतो म्लेच्छः शूरो वनरसाधिपः । तत्पुत्रो भीमसेनांशो वीरणोभूच्छिवाज्ञया ॥२८

रूप भगवान् हैं। आप का रूप सत्ययुग में गौर, त्रेता में रक्तवर्ण, द्वापर में पीतवर्ण और मेरे समय सौभाग्यवश आप कृष्णरूप है। मेरे पुत्र जिन्हें म्लेच्छ कहा जाता है, आर्यधर्म के अनुयायी हो गये हैं।१४-१६। स्वामिन्! मेरे लिए चार घरों का निर्माण किया गया है—द्यूत (जूआ खेलने का स्थान) मद्य का स्थान, सुवर्ण-स्थान, ओर स्त्रियों के हास्य। इन्हें अग्निवंश के क्षत्रियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। जनार्दन! मैं इस समय देह, कुल और राष्ट्र का त्यागकर आपके चरणकमल में स्थित हूँ। यह सुनकर भगवान् कृष्ण ने मन्दमुस्कान करते हुए कहा—कले! तुम्हारी रक्षा के लिए महाबली मैं उत्पन्न हूँगा। वहाँ मेरा अंश भूतल में पहुँचकर उन बलशाली राजाओं का विनाश करके महीतल में म्लेच्छ वंश के राजाओं की प्रतिष्ठा करेंगे। इतना कहकर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और म्लेच्छ समेत कलि को परम आनन्द की प्राप्ति हुई। उस बीच विप्र! जो घटना घटी मैं बता रहा हूँ, सुनो! बाक्सर (बक्सर) नामक गाँव में एक व्रतपा नामकी आभीरी (अहीरिन) रहती थी, जिसने नववर्ष तक अनवरत श्री दुर्गा जी की उपासना की थी। प्रसन्न होकर उससे चण्डिका देवी ने कहा—शोभने! वर की याचना करो। उसने कहा—मातः! यदि आपको वर प्रदान करना है, तो ईश्वरि (स्वामिनि) मेरे कुल में रामकृष्ण के समान दो बलशाली बालकों की उत्पत्ति हो।' इसे स्वीकार करके देवी उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गई। वसुमान् नामक एक राजा ने उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उसके साथ धार्मिक विवाह संस्कार सुसम्पन्न करके उसे अपने महल में रख लिया। उस राजा के उस रानी द्वारा 'देशराज और कनिष्ठ वत्सराज' नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो सौ हाथी के समान बलवान् थे। उन दोनों ने मगध के राजा पर विजय प्राप्तकर वहाँ के राजा हो गये। वनरस के अधिपति शतयत्त (सैयद) नामक म्लेच्छ अत्यन्त शूर था। उसके शिव की आज्ञावश भीमसेन के अंश से उत्पन्न, वीरन नामक पुत्र हुआ।१७-२८। एक म्लेच्छ ताड़ के

तालवृक्षप्रमाणेन चोर्ध्ववेगो हि तस्य वै । तालनो नाम विख्यातः शतयत्नेन वै कृतः ।।२९
ताभ्यां नृपाभ्यां तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् । युद्धेन हीनतां प्राप्तस्तालनो बलवत्तरः ।।३०
तदा मैत्रीं कृत्वा ताभ्यां तालनेन समन्विता । जयचन्द्रपरीक्षार्थे त्रयः शूराः समाययुः ।।३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहासमुच्चयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इन्द्रप्रस्थेऽनङ्गपालोऽनपत्यश्च महीपतिः । पुत्रार्थं कारयामास शैवं यज्ञं विधानतः ।।१
कन्यके च तदा जाते शिवभागप्रसादतः । चन्द्रकान्तिश्च ज्येष्ठा वै द्वितीया कीर्तिमालिनी ।।२
कान्यकुब्जाधिपायैव चन्द्रकान्तिं पितादवत् । देवपालाय शुद्धाय राष्ट्रपालान्वयाय च ।।३
सोमेश्वराय भूपाय चपहानिकुलाय तु । अजमेराधिपायैव तथा वै कीर्तिमालिनीम् ।।४
जयशर्मा द्विजः कश्चित्समाधिस्थो हिमालये । दृष्ट्वा भूपोत्सवं रम्यं राज्यार्थे स्वमनोऽदधत् ।।५
त्यक्त्वा देहं स शुद्धात्मा चन्द्रकान्त्याः सुतोऽभवत् । जयचन्द्र इति ख्यातो बाहुशाली जितेन्द्रियः ।।

बराबर ऊँचाई तक कूदता था इसीलिए उसका तालन नाम रखा गया था उस समय उससे सैयद का रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हुआ । उसमें बलवान् होने के नाते तालन की विजय हुई । पश्चात्, आपस में मित्रता करके वे तीनों शूर जयचंद्र की परीक्षा के लिए उनके यहाँ गये ।२९-३१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहास समुच्चय वर्णन
नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के राजा अनंगपाल ने पुत्रार्थ (पुत्रेष्टि नामक) यज्ञ का सविधान अनुष्ठान आरम्भ किया । भगवान् शिव की प्रसन्नता से 'चन्द्रकांति और कीर्तिमालिनी, नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं । पिता ने चन्द्रकान्ति का पाणिग्रहण कान्यकुब्ज (कन्नौज) के अधीश्वर राजा देवपाल द्वारा सुसम्पन्न कराया, जो शुद्ध एवं राष्ट्रपाल के कुल में उत्पन्न था । उसी प्रकार कीर्तिमालिनी का पाणिग्रहण राजा सोमेश्वर के साथ सुसम्पन्न हुआ, जो चपहानि कुल में उत्पन्न होकर अजमेर का अधीश्वर था । उस समय जय शर्मा नामक कोई ब्राह्मण हिमालय पर्वत पर समाधिस्थ होकर कठिन तप कर रहा था । राजा के यहाँ उस राज महोत्सव को देखकर उसे भी राजा होने की इच्छा हुई । पश्चात् उस शुद्धात्मा ने देह परित्याग कर पुनः चन्द्रकान्ति के गर्भ से जन्म ग्रहण किया, जो जयचन्द्र

रत्नभानुश्च सञ्जज्ञे शूरस्तस्यानुजो बली ॥६
स जित्वा गौडवङ्गादीन्मरुदेशान्मदोत्कटान् । दण्डयान्कृत्वा गृहं प्राप्य भ्रात्राज्ञातत्परोऽभवत् ॥७
गङ्गासिंहस्य भगिनी नाम्ना वीरवती शुभा । रत्नभानोश्च महिषी बभूव वरवर्णिनी ॥८
नकुलांशस्तदा भूमौ तस्यां जातः शिवाज्ञया । लक्षणो नाम बलवान्खड्गयुद्धविशारदः ॥
स सप्ताब्दान्तरे प्राप्ते पितुस्तुल्यो बभूव ह ॥९
त्रयश्च कीर्तिमालिन्यां पुत्रा जाता मदोत्कटाः । धुन्धुकारश्च प्रथमस्ततः कृष्णकुमारकः ॥
पृथिवीराज कनिष्ठात्मज इति स्मृतः ॥१०
द्वादशाब्दवयः प्राप्तः सिंहखेलस्ततोऽभवत् । श्रुत्वा चानङ्गपालश्च तस्मै राज्यं स्वयं ददौ ॥
गत्वा हिमगिरिं रम्यं योगध्यानपरोऽभवत् ॥११
मथुरायां धुन्धकारोऽजमेरे च ततोऽनुजः । राजा बभूव नीतिज्ञस्तौ सुतौ पितुराज्ञया ॥१२
प्रद्योतश्चैव विद्योतः क्षत्रियौ चन्द्रवंशजौ । मन्त्रिणौ तस्य भूपस्य बलवन्तौ मदोत्कटौ ॥१३
प्रद्योततनयो जातो नाम्ना परिमलो बली । लक्षसेनाधिपः सो हि तेन राज्ञैव संस्कृतः ॥१४
विद्योताद्भीष्मसिंहश्च गजसेनाधिपोऽभवत् । स्वर्गतेऽनङ्गपाले तु भूमिराजो महीपतिः ॥१५
दृष्ट्वा तान्विप्रियान्सर्वान्निजराज्यान्निराकरोत् । प्रद्योताद्याश्च चत्वारः स्वशूरैर्द्विशतैर्युताः ॥१६
कान्यकुब्जपुरं प्राप्य जयचन्द्रमवर्णयन् । जयचन्द्र महीपाल त्वन्मातृष्वसृजो नृपः ॥१७
मातामहस्य ते राज्यं प्राप्तवान्निर्भयो बली । न्यायेन कथितोऽस्माभिरर्द्धराज्यं हि ते स्मृतम् ॥१८
सर्वराज्यं कथं भुंक्षे श्रुत्वा तेन निराकृताः । भवन्तं शरणं प्राप्ता यथायोग्यं तथा कुरु ॥१९

के नाम से ख्यातिप्राप्त, बलशाली एवं संयमी था । उसके कनिष्ठ (छोटे) भ्राता का नाम रत्नभानु था, जो शूर और पराक्रमी था ।१-६। उसने गौड, बंग आदि और मरुदेश के मदांध राजाओं पर विजय प्राप्ति समेत उनसे दंड-कर ग्रहण करते हुए अपने घर आकर अपने भाई की आज्ञा से सेवा शिरोधार्य की । गंगासिंह की वीरमती नामक भगिनी रत्नभानु की प्रधान स्त्री हुई, जिसके गर्भ से शिव की आज्ञा वश नकुल का अंश लक्ष्मण के नाम से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जो बलवान् एवं खड्ग युद्ध में अत्यन्त निपुण था । वह सात वर्ष की अवस्था में ही अपने पिता के समान दिखाई देने लगा । कीर्तिमालिनी के धुंधकार, कृष्णकुमार और पृथिवीराज नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए । पृथिवीराज सबसे छोटा था जो बारह वर्ष की और अधिक अवस्था हो जाने पर सिंह खेल नामक अपने पिता के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था । उसे सुनकर अनंगपाल ने अपना राज्य उसे समर्पित कर दिया और स्वयं हिमालय पर्वत पर जाकर योगाभ्यास करने लगा । मथुरा का राजा धुंधकार और अजमेर का राजा उसका छोटा भाई हुआ । ये दोनों अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर राजसिंहासन पर बैठ गये । चन्द्रवंश के प्रद्योत और विद्योत नामक दो क्षत्रिय कुमारों ने पृथिवीराज के राजमंत्री का पद-भार ग्रहण किया, जो बलवान् एवं मदोत्कट थे।७-१३। प्रद्योत के पुत्र का नाम परिमल था, जो स्वयं बली तथा उसी राजा द्वारा उसकी एक लक्ष सेना का अधिनायक हुआ था एवं विद्योत से उत्पन्न भीष्मसिंह गजराजो की सेनाओं का अधिपति हुआ । राजा अनंगपाल के स्वर्गीय होने पर राजा पृथिवीराज ने उन सबको अपने प्रतिकूल देखकर राज्य से निकाल दिया । प्रद्योत

इति श्रुत्वा महीपालो जयचन्द्र उवाच तान् । अश्वसैन्ये मदीये चाधिकारी ते सुतो भवेत् ॥२०
नाम्ना परिमलः शूरस्त्वं मन्मन्त्री भवाधुना । विद्योतश्च तथा मन्त्री गजसैन्ये हि भीष्मकः ॥२१
वृत्त्यर्थे च मया वो वै पुरी दत्ता महावती । महीपतेश्च भूपस्य नगरी सा प्रियङ्करी ॥२२
इति श्रुत्वा तु ते सर्वे तथा मत्वा मुमोदिरे । महीपतिस्तु बलवान्दुःखात्सन्त्यज्य तां पुरीम् ॥२३
कृत्वोर्वायां पुरीमन्यां तत्र वासमकारयत् । अगमा मलना चैव भगिन्यौ तस्य चोत्तमे ॥२४
अगमा भूमिराजाय चान्या परिमलाय सा । दत्ता भ्रात्रा विधानेन परमानन्दमापतुः ॥२५
विवाहान्ते च भूराजा दुर्गमन्यमकारयत् । कृत्वा च नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिवासिनीम् ॥२६
देहली सुमुहूर्तेन दुर्गद्वारे सुरोपिता । गता सा योजनान्ते वै वृद्धिरूपा सुकालतः ॥२७
विस्मितः स नृपो भूत्वा देहली नाम चाकरोत् । देहलीग्राम इति च प्रसिद्धोऽभून्नृपाज्ञया ॥२८
त्रिवर्षान्ते च भो विप्रा जयचन्द्रो महीपतिः । लक्षषोडशसैन्याढ्यस्तत्र पत्रमचोदयत् ॥२९
किमर्थं पृथिवीराज मद्दायं मे न दत्तवान् । मातामहस्य वै दायं चार्द्धं मे च समर्पय ॥३०
नो चेन्मच्छस्त्रकठिनैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः । इति ज्ञात्वा महीराजो विंशल्लक्षाधिपो बली ॥३१

आदि वे चारों अपने दो सौ सूर-वीरों समेत कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) में राजा जयचन्द्र के पास पहुँचकर कहने लगे—राजा जयचन्द्र ! आपकी मातृ-भगिनी (मौसी) का पुत्र आपके मातामह (नाना) के राज्य का उपभोग निर्भय होकर कर रहा है । हम लोगों ने न्यायतः उस राजा से कहा—आप इस राज्य के आधे भाग के ही अधिकारी हैं अतः सम्पूर्ण राज्य का उपभोग आप कैसे कर रहे हैं ? इसे सुनकर उसने हमलोगों को निकाल दिया । हम लोग अब आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं, जैसा उचित हो, कीजिए । इसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने उन लोगों से कहा—मेरी अश्वसेना के अधिनायक तुम्हारे दोनों पुत्र बना दिये गये । और परिमल से कहा कि—आप इस समय विद्योत समेत मेरे मंत्रीपद का भार ग्रहण करें । भीष्मक गज सेना का अधिपति बनाया गया ।१४-२१। आप लोगों की जीविका के निमित्त वह महावती नामक पुरी प्रदान की गई है, जो राजा महीपति (माहिल) की अत्यन्त प्रिय नगरी है । यह सुनकर वे सब अत्यन्त हर्ष निमग्न हुए । राजा महीपति (माहिल) बलवान् होते हुए भी अत्यन्त दुःख के साथ उस पुरी का त्यागकर उर्वी (उरई) नामक नगर में आकर रहने लगे । उनकी अगमा और मलना (मल्हना) नाम की दो बहिनें थीं अगमा का पाणिग्रहण भूमिराज (पृथिवीराज) से, मलना का पणिग्रहण परिमल के साथ सुसम्पन्न हुआ । विवाह हो जाने के उपरान्त भूमिराज (पृथिवीराज) ने एक अन्य दुर्ग (किले) का निर्माण कराया और चारों वर्णों के मनुष्यों को निवासी बनाकर अपनी पुरी को सुसज्जित करा दिया। उस दुर्ग के द्वारपर शुभ मुहूर्त में उन्होने (देहली) (सुंरग) लगवाई, जो एक योजन (चार कोस) तक विस्तृत होती हुई अधिक दिनों में सुसम्पन्न की गई थी। उसे देखकर राजा स्वयं विस्मित हुए और उसका देहली नाम रखा । उस दिन से राजा की आज्ञा वश वह देहली (दिल्ली) ग्राम के नाम से ख्यात होने लगी। विप्र ! तीन वर्ष के उपरान्त राजा जयचन्द्र ने अपनी सोलह लाख सेनाओं को सुसज्जित करके वहाँ पत्र भेजा—पृथिवीराज ने मेरे दाय भाग का अपहरण क्यों किया, अब तक मुझे क्यों नहीं दे दिया ? अस्तु अब भी मेरे मातामह (नाना) के राज्य का अर्धभाग दाय रूप में मुझे शीघ्र प्रदान करें। अन्यथा मेरे कठिन अस्त्रों द्वारा उनका सैनिक बल नष्ट कर दिया जायगा । पत्र को देखकर मदांध महीराज

दूतं वै प्रेषयामास राजराजो मदोत्कटः । जयचन्द्र महीपाल सावधानं शृणुष्व तत् ॥३२
यदा निराकृता धूर्ता मया ते चन्द्रवंशिनः । ततः प्रभृति सेनाङ्गं विंशल्लक्षं समाहृतम् ॥३३
त्वया षोडशलक्षं च युद्धसैन्यं समाहृतम् । सर्वे वै भारते भूपा दण्डयोग्याश्च मे सदा ॥३४
भवान्न दण्ड्यो बलवान्करं मे दातुमर्हति । नो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥३५
इति ज्ञात्वा तयोर्घोरं वैरं चासीन्महीतले । भूमिराजश्च बलवाञ्जयचन्द्रभयार्दितः ॥३६
जयचन्द्रश्च बलवान्पृथिवीराजभीरुकः । जयचन्द्रश्चार्यदेशमर्द्धराष्ट्रमकल्पयत् ॥३७
पृथिवीराज एवासौ तथार्द्धं राष्ट्रमानयत् । एवं जातं तयोर्वैरमग्निवंशप्रणाशनम् ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

एकदा रत्नभानुर्हि महीराजेन पालिताम् । दिशं याम्यां स वै जित्वा तेषां कोशानुपाहरत् ॥१

(पृथिवीराज) ने भी जो बीस लाख की सेना सुसज्जित किया तथा दूत भेजकर कहा—राजा जयचन्द्र ! सावधान होकर मेरी बातें सुनो ! २२-३२। जिस समय मैंने उन चन्द्रवंशी क्षत्रियों को अपने यहाँ से निकाल दिया था उसी समय से मैंने बीस लाख सेना का सुसंगठन करना आरम्भ किया था, जो इस समय भली भाँति सुसज्जित है । तुमने तो केवल सोलह लाख ही सेना की सहायता से युद्ध करने की तैयारी की है । भारत के सभी राजा दंडित होने के नाते सदैव मुझे दंडकर देते हैं केवल एक तुम हीं अपने को बलवान समझने के नाते कर नहीं देते । किन्तु अब उसे शीघ्र प्रदान करो, नहीं तो मेरे कठिन बाणों द्वारा तुम्हारी सेना नष्ट हो जायगी । इसे जानकर इन दोनों में इस भूतल में अनुपम वैर उत्पन्न हुआ । भूमिराज (पृथिवीराज) बलवान् होकर भी जयचन्द्र के भय से दुःखी हो रहे थे । और जयचन्द्र भी बली होते हुए पृथिवीराज से भयभीत हो रहा था । जयचन्द्र ने आर्य देश (भारत) का आधा राज्य अपनाया था और पृथिवीराज ने शेष आधे भाग को । इसी विषय को लेकर दोनों में महान् वैर उत्पन्न हुआ जिससे अग्निवंश का समूल नाश हो गया ।३३-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार रत्नभानु (रतीमान) ने पृथिवीराज के राज्य के दक्षिणी प्रदेश पर विजय

महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः । रत्नभानोश्च तिलको बभूव बहुविस्तरः ।।२
तिलका नाम विख्याता या तु वीरवती शुभा । श्रेष्ठा द्वादशराज्ञीनां जननी लक्षणस्य वै ।।३
जयचन्द्रस्य भूपस्य योषितः षोडशाभवन् । तासां न तनयो ह्यासीत्पूर्वकर्मविपाकतः ।।४
गौडभूपस्य दुहिता नाम्ना दिव्यविभावरी । जयचन्द्रस्य महिषी तद्दासी सुरभानवी ।।५
रूपयौवनसंयुक्ता रतिकेलिविशारदा । दृष्ट्वा तां स नृपः कामी बुभुजे स्मरपीडितः ।।६
तस्यां जाता सुता देवी नाम्ना संयोगिनी शुभा । द्वादशाब्दवयः प्राप्ता सा बभूव वराङ्गना ।।७
तस्याः स्वयम्बरे राजाह्वयद्भूपान्महाशुभान् । भूमिराजस्तु बलवाञ्छ्रुत्वा तद्रूपमुत्तमम् ।।८
विवाहार्थे मनश्चासीच्चन्द्रभट्टमचोदयत् । मन्त्रिप्रवर भो मित्र चन्द्रभट्ट मम प्रिय ।।९
कान्यकुब्जपुरीं प्राप्य मन्मूर्तिं स्वर्णनिर्मिताम् । स्थापय त्वं सभामध्ये यद्वृत्तान्तं तु मे वद ।।१०
इति श्रुत्वा चन्द्रभट्टो भवानीभक्तितत्परः । गत्वा तत्र भृगुश्रेष्ठ यथ प्रोक्तस्तथाकरोत् ।।११
स्वयंवरे च भूपाश्च नानादेश्याः समागताः । त्यक्त्वा संयोगिनी तान्वै नृपमूर्तिविमोहिता ।।१२
पितरं प्राह कामाक्षी यस्य मूर्तिरियं नृप । भविष्यति स मे भर्ता सर्वलक्षणलक्षितः ।।१३
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा चन्द्रभट्टमुवाच तम् । यदि ते भूपतिश्चैव सर्वसैन्यसमन्वितः ।।१४
सञ्जयेद्योगिनीमेतां तर्हि मेऽतिप्रियो भवेत् । चन्द्रभट्टस्तु तच्छ्रुत्वा तत्तु सर्वमवर्णयत् ।।१५

प्राप्तकर उसके कोष (खजाने) का अपहरण कर लिया था। उसे सुनकर पृथिवीराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रत्नभानु का तिलक अत्यन्त विस्तृत रूप में था। इसीलिए उस कल्याणमूर्ति वीरमती को तिलका भी कहते थे, बारह रानियों में प्रधान एवं लक्षण (लखन) की जननी थी। राजा जयचन्द्र की सोलह रानियाँ थीं, किन्तु जन्मान्तरीय दुर्विपाक वश किसी के कोई सन्तान न थी। उनकी प्रधान रानी जिसका नाम दिव्य विभावरी था, गौड़ भूप की कन्या थी। उनकी साथ की आई हुई दासी का नाम सुरभानवी था, रूप-यौवन सम्पन्न एवं रतिक्रीड़ा में अत्यन्त निपुण थी। उसे देखकर राजा जयचन्द्र अपनी काम-पीड़ा को सहन न कर सकने के नाते उसके साथ खूब रमण किया। पश्चात् उसके संयोगिनी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। बारह वर्ष की अवस्था में ही वह कन्या अप्रतिम सर्वाङ्ग सुन्दरी दिखायी देने लगी। उस समय उसके स्वयम्वर के लिए राजा ने सभी देशों के राजाओं को निमंत्रित किया। बलवान् पृथिवीराज भी उसके उत्तम सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर स्थिर न रह सके। उससे विवाह संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से चन्द्रभट्ट (चन्दवरदाई भाँट) को बुलाकर कहा—मंत्रिश्रेष्ठ, चन्द्रभट्ट! मेरे प्रिय! कान्यकुब्ज (कन्नौज) पुरी में जाकर मेरी सुवर्ण की मूर्ति वहाँ सभा में स्थापित करना, उसके विषय में जैसा वहाँ का वृत्तान्त हो मुझसे कहना। भृगुश्रेष्ठ! भगवती के अनन्य भक्त चन्द्रभट्ट ने जैसा कहा गया था, वैसा ही उस कार्य को पूरा किया। उस स्वयम्बर में अनेक देशों के राजागण उपस्थित थे, किन्तु संयोगिनी ने उन सबका त्यागकर केवल पृथिवीराज की उस प्रतिमा-सौन्दर्य पर मुग्धहोकर अपने पिता से कहा— 'नृप! जिस राजा की यह मूर्ति है, सर्वलक्षण सम्पन्न वही राजा मेरा पति होगा।' इसे सुनकर जयचन्द्र ने चन्द्रभट्ट से कहा—यदि तुम्हारा राजा सभी सेनाओं के साथ यहाँ आकर युद्ध में इस पर विजय प्राप्तकर सके, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा। चन्द्रभट्ट ने उसे सुनकर पृथिवीराज से उसका आनुपूर्वी वर्णन किया। १-१५।

पृथिवीराज एवासौ श्रुत्वा सैन्यमचोदयत् । एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षास्तुरङ्गमाः ।।१६
रथाः पञ्चसहस्राश्च धनुर्बाणविशारदाः । लक्षाः पदातयो ज्ञेया द्वादशैव महाबलाः ।।१७
राजानस्त्रिशतान्येव महीराजपदानुगाः । सार्द्धं द्वाभ्यां च बन्धुभ्यां कान्यकुब्जे नृपोऽगमत् ।।१८
धुन्धुकारश्च तद्बन्धुर्गजानीकपतिस्सदा । हयानीकपतिः कृष्णकुमारो बलवत्तरः ।।१९
पदातीनां नृपतयः पतयस्तत्र चाभवन् । महान्कोलाहलो जातः स्थलीं शून्यामकारयत् ।।२०
विंशत्कोशप्रमाणेन स्थितं तस्य महाबलम् । जयचन्द्रस्तु संज्ञाय महीराजस्य चागमम् ।।२१
स्वसैन्यं कल्पयामास लक्षषोडशसम्मितम् । एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षाः पदातयः ।।२२
वाजिनश्चाष्टलक्षाश्च सर्वयुद्धविशारदाः । द्विशतान्येव राजानः प्राप्तास्तत्र समागमे ।।२३
आगस्कृतं महीराजं मत्वा ते शुक्लवंशिनः । युद्धार्थिनः स्थितास्तत्र पुरमागस्कृतं ह्यभूत् ।।२४
ईशनद्याः परे कूले तद्दोला स्थापिता तदा । नानावाद्यानि रम्याणि तत्र चक्रुर्महारवम् ।।२५
रत्नभानुर्गजानीके रूपानीके हि लक्षणः । ताभ्यां सेनापतिभ्यां तौ सङ्गुप्तौ बलवत्तरौ ।।२६
प्रद्योतश्चैव विद्योतो रत्नभानुं ररक्षतुः । भीष्मः परिमलश्चैव लक्षणं चन्द्रवंशजः ।।२७
भूपाः पदातिसैन्ये च संस्थिता मदविह्वलाः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं दारुणं सैन्यसंक्षयम् ।।२८
हया हयैर्मृता जाता गजाश्चैव गजैस्तथा । पदातयः पदातैश्च मृताश्चान्ये क्रमाद्रणे ।।२९
भूपैश्च रक्षिताः सर्वे निर्भया रणमाययुः । यावत्सूर्यः स्थितो व्योम्नि तावद्युद्धमवर्तत ।।३०

पृथिवीराज ने शीघ्र अपनी सेनाओं को सुसज्जित होने के लिए आज्ञा प्रदान किया । उस सेना में एक लाख गजराज के सैनिक, सात लाख अश्वारोही, पाँच सहस्र रथ वाले, जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे, बारह लाख पैदल सैनिक थे, और तीन सौ राजा पृथिवीराज के साथ चल रहे थे । अपने दोनों भाइयों को साथ लेकर राजा पृथिवीराज कान्यकुब्ज (कन्नौज) की पुरी में पहुँच गये । उस सेना में धुंधुकार गज सेनानायक और अश्वारोही सेना के अधिपति बलवान् कृष्णकुमार बनाये गये थे । तथा पैदल की सेनाओं के अधिनायक राजा लोग बनाये गये थे । उसमें इतना महान् कोलाहल हो रहा था, जिससे पृथिवी निःशब्द मालूम होती थी । बीस कोश की भूमि में वह सेना घेरा डाले पड़ी थी । पश्चात् राजा जयचन्द्र पृथिवीराज का आगमन सुनकर अपनी सोलह लाख की सेना को सुसज्जित होने का आदेश दिया । उस सेना में एक लाख गज सैनिक, सात लाख पैदल, आठ लाख अश्वारोही जो सभी भाँति के युद्ध में कुशल थे, तथा दो सौ राजा उनकी सहायता के लिए उपस्थित थे । वे चन्द्रवंशी राजागण पृथिवीराज को अपराधी जानकर चारो ओर से युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गये । ईशनदी के दूसरे तटपर संयोगिनी का ढोला (डोला) रखा गया, जहाँ मधुरध्वनि वाले अनेक बाजे बज रहे थे ।१६-२५। गजसेना नायक रत्नभानु और रूपानीक लषन (लखन) नामक इन दोनों सेनापतियों द्वारा उस डोला की रक्षा हो रही थी । प्रद्योत और विद्योत रत्नभानु की रक्षा कर रहे थे, और चन्द्रवंशी भीष्म तथा परिमल लषन की । राजा की पैदल सेनाएँ मदांध होकर भीषणरूप धारणकर सेना का वध करने लगीं । उस युद्ध में घोड़े द्वारा घोड़े की, हाथी द्वारा हाथी की और पैदल द्वारा पैदल सेना के योधाओं की मृत्यु होने लगी । केवल राजा लोग उस युद्ध की रक्षा निर्भय होकर कर रहे थे । जब तक सूर्य आकाश मण्डल में स्थित रहते थे, तब तक युद्ध होता

एवं पञ्चदिनं जातं युद्धं वीरजनक्षयम् । गजा दशसहस्राणि हया लक्षाणि संक्षिताः ॥३१
पञ्चलक्षं महीभर्तुर्हतास्तत्र पदातयः । राजानो द्वे शते तत्र रथाश्च त्रिशतं तथा ॥३२
कान्यकुब्जाधिपस्यैव गजा नवसहस्रकाः । सहस्रैकं रथा ज्ञेयास्त्रिलक्षं च पदातयः ॥३३
एकलक्षं हयास्तत्र मृताः स्वर्गपुरं ययुः । षष्ठाहे समनुप्राप्ते पृथिवीराज एव सः ॥३४
दुःखितो मनसा देवं रुद्रं तुष्टाव भक्तिमान् । सन्तुष्टस्तु महादेवो मोहयामास तद्बलम् ॥३५
प्रसन्नस्तु महीराजो गतः संयोगिनीं प्रति । दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं मुमोह वसुधाधिपः ॥३६
संयोगिनी नृपं दृष्ट्वा मूर्च्छिता चाभवत्क्षणात् । एतस्मिन्नन्तरे राजा तद्दोलामनयद्बलात् ॥३७
जगाम देहलीं भूपः सर्वसैन्यसमन्वितः । योजनान्ते गते तस्मिन्बोधितास्ते मदोद्धटाः ॥३८
दृष्ट्वा नैव तदा दोलां प्रजग्मुर्वेगवत्तराः । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः ॥३९
अर्द्धसैन्यं च संस्थाप्य स्वयं गेहमुपागमत् । उभौ तद्भ्रातरौ वीरौ चार्द्धसैन्यसमन्वितौ ॥४०
सूकरक्षेत्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितौ । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे प्रद्योतादिमहाबलाः ॥४१
स्वसैन्यैः सह सम्प्राप्य महद्युद्धमकारयन् । हया हयैश्च सञ्जग्मुर्गजा अथ गजैः सह ॥४२
सङ्कुलश्च महानासीद्दारुणो लोमहर्षणः । दिनान्ते संक्षयं यातं तयोश्चैव महद्बलम् ॥४३
भयभीताः परे तत्र ज्ञात्वा रात्रिं तमोवृताम् । प्रदुद्रुवुर्भयाद्वीरा हतशेषास्तु देहलीम् ॥४४
प्रद्योताद्याश्च ते वीरा देहलीं प्रति संययुः । पुनस्तयोर्महद्युद्धं ह्यभवल्लोमहर्षणम् ॥४५
धुन्धुकारश्च प्रद्योतं हृदि बाणैरताडयत् । त्रिभिश्च विषनिर्धूतैर्मूर्च्छितः स ममार च ॥४६

था ।२६-३०। इस प्रकार वह वीर नाशक युद्ध पाँच दिन तक होता रहा जिसमें पृथिवीराज के दश सहस्र गजराज, एक लाख घोड़े, पाँच लाख पैदल की सेना, दो सौ राजा और तीन सो रथारोही का निधन हुआ और कन्नौज के राजा जयचन्द्र के नव सहस्र गजराज, एक सहस्र रथ, तीन लाख पैदल और एक लाख अश्वारोही सैनिकों का निधन हुआ । छठें दिन राजा पृथिवीराज ने अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् शंकर की मानसिक आराधना की । प्रसन्न होकर महादेव जी ने जयचन्द्र की सेना को मोहित कर दिया । उस समय प्रसन्न होकर पृथिवीराज संयोगिनी के पास जाकर उसके रूप-सौन्दर्य को देखते ही मुग्ध हो गया और संयोगिनी भी उसे देखकर उसी समय मोहमूर्च्छित हो गई । उसी बीच राजा ने बलपूर्वक उस डोले को साथ लेकर सेनाओं समेत देहली (दिल्ली) के लिए प्रस्थान कर दिया । एक योजन (चार कोस) तक उनके चले आने पर (जयचन्द्र) के मदांध सैनिकों की आँखें खुलीं । वहाँ डोला न देखकर वे सब अत्यन्त वेग से पीछा करने लगे । उनके कोलाहल (शोर) को सुनकर राजा पृथिवीराज अपनी आधी सेना वहाँ रखकर स्वयं अपने घर चले गये । उनकी आधी सेना समेत उनके दोनों भाइयों ने बाराह क्षेत्र में युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर सेना समेत आये हुए प्रद्योतादि महाबलवानों के साथ महान् युद्ध आरम्भ कर दिया । घोड़े का घोड़ों के साथ, हाथी का हाथियों के साथ भीषण एवं रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हुआ । संध्या होते-होते दोनों ओर की सेनाओं का अत्यन्त नाश हो गया । उस अंधेरी रात में शेष बचे हुए पृथिवीराज के सैनिक भयभीत होकर देहली (दिल्ली) भाग गये।३१-४४। किन्तु प्रद्योत आदि योद्धाओं ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। वहाँ पुनः भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में धुंधुकार ने प्रद्योत के हृदय में बाण-प्रहार किया। इस

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा विद्योतश्च महाबलः । आजगाम गजारूढो धुन्धुकारमताडयत् ।।४७
त्रिभिश्च तोमरैः सोऽपि मूर्च्छितो भूमिमागमत् । मूर्च्छितं भ्रातरं दृष्ट्वा धुन्धुकारं महाबलम् ।।४८
तदा कृष्णकुमारोऽसौ गजस्थस्त्वरितो ययौ । रुषाविष्टश्च तं वीरं भल्लेनैवसताडयत् ।।४९
भल्लेन तेन सम्भिन्नो मृतः स्वर्गपुरं ययौ । विद्योते निहते तस्मिन्सर्वसैन्यत्रमूपतौ ।।५०
रत्नाभानुर्महावीरोऽयुध्यत्तेन समन्वितः । एतस्मिन्नन्तरे राजा सहस्रगजसंयुतः ।।५१
लक्षणं सहितं ताभ्यां क्रुद्धं तं समयुध्यत । शिवदत्तवरो राजा भीष्मं परिमलं रुषा ।।५२
रुद्रास्त्रैर्मोहयामासलक्षणं बलवत्तरम् । मूर्छितांस्तान्समालोक्य रत्नभानुः शरैर्निजैः ।।५३
धुन्धुकारं महीराजं वैष्णवैः समनोहयन् । कृष्णको रत्नभानुश्च युयुधाते परस्परम् ।।५४
उभौ समबलौ वीरौ गजपृष्ठस्थितौ रणे । अन्योऽन्यनिहतौ नागौ खड्गहस्तौ महीतले ।।५५
युयुधाते बहून्मार्गान्कृतवन्तौ सुदुर्जयौ । प्रहरान्तं रणं कृत्वा मरणायोपजग्मतुः ।।५६
हते तस्मिन्महावीर्ये कान्यकुब्जा भयातुराः । मूर्छितांस्त्रीन्समादाय पञ्चलक्षबलैर्युताः ।।५७
रणं त्यक्त्वा गृहं जग्मुर्नृपशोकपरायणाः । रत्नभानौ च निहते हतोत्साहाश्च भूमिपाः ।।५८
स्वं स्वं निवेशनं जग्मुर्महीराजभयातुराः । देवानाराधयामासुर्यथेष्टं ते गृहे गृहे ।।५९
महीराजस्तु बलवान्सप्तलक्षबलान्वितः । धुन्धुकारेण सहितो बन्धुकृत्योर्ध्वमाचरत् ।।६०
तथा भीष्मः परिमलो लक्षणः पितरं स्वकम् । गङ्गाकूले समागम्य चोर्ध्वदैहिकमाचरन् ।।६१

प्रकार उनके विषाक्त तीन बाणों द्वारा क्षत-विक्षत (घायल) होकर प्रद्योत का प्राण विसर्जन हो गया। भ्राता का निधन देखकर महाबली विद्योत ने अपनी हाथी बढ़ाकार धुंधुकार पर प्रहार किया। उनके तीन बार तोमर नामक अस्त्र द्वारा प्रहार करने पर वे मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। अपने भाई धुंधुकार को मूर्च्छित देखकर कृष्णकुमार ने अपनी हाथी बढ़ाई। क्रुद्ध होकर उस वीर पर भाले का प्रहार किया जिससे वह मृतक होकर चला गया। सेनानायक विद्योत के निधन होने पर महापराक्रमी रत्नभानु ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसी समय धुंधुकार (धांधू) एक सहस्र गज सेना लेकर लषन से युद्ध करने लगा, जिसकी सहायता भीष्म और परिमल कर रहे थे। शिव का वरदान प्राप्त उस राजा ने उन तीनों—भीष्म, परिमल और लषन को अपने रुद्रास्त्र द्वारा मूर्च्छितकर दिया। रत्नभानु (रतीभान) ने उन्हें मूर्च्छित देखकर अपने वैष्णवास्त्र द्वारा धुंधुकार (धांधू) को मूर्च्छित कर कृष्णकुमार के साथ युद्धारम्भ किया। वे दोनों समान बली, वीर एवं गजराज पर स्थित थे। अपनी कला-कुशलता से उन्होंने एक दूसरे के गज का निधन कर दिया। पश्चात् भूतल में स्थित होकर हाथ में खड्ग लेकर उन दुर्मदान्धों ने युद्ध करते हुए अनेक मार्गों का निर्माण किया। और उसी रण-स्थल में एक दूसरे पर घात-प्रतिघात करते हुए प्राण विसर्जन किया। उन दोनों के निधन होने पर कान्यकुब्ज (कन्नौज) के सैनिक भयभीत होकर उन तीनों को तथा बची हुई पाँच लाख सेना को लेकर अपने घर चले आये। शोकग्रस्त होकर राजाओं ने रत्नभानु के स्वर्गीय होने पर और भी हतोत्साह का अनुभव किया। अनन्तर पृथिवीराज के भय से अपने अपने घर जाकर वे राजागण अपने इष्टदेवों की आराधना करने लगे। बलवान् पृथिवीराज ने अपनी शेष सात लाख की सेना और धुंधुकार को साथ लेकर घर जाकर अपने भाई की अन्त्येष्टि क्रिया प्रारम्भ की। और भीष्म, परिमल एवं लषन ने गंगा जी के तट पर पहुँचकर अपने पिता का अन्तिम संस्कार सुसम्पन्न किया।४५-६१। इस प्रकार रण-स्थल में

भूमिराजस्य विजयो जयचन्द्रयशो रणे । प्रसिद्धमभवद्भूमौ गेहे गेहे जने जने ।।६२
जयचन्द्रः कान्यकुब्जे देहल्यां पृथिवीपतिः । उत्सवं कारयित्वा तु परमानन्दमापयौ ।।६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भीष्मः सिंहस्थिते गङ्गाकूले शक्रप्रपूजकः । शक्रं सूर्यमयं ज्ञात्वा तपसा समतोषयत् ।।१
मासान्ते भगवानिन्द्रो ज्ञात्वा तद्भक्तिमुत्तमाम् । वरं वरय च प्राह श्रुत्वा शूरोऽब्रवीदिदम् ।।२
देहि मे वडवां दिव्यां यदि तुष्टो भवान्प्रभुः । इति श्रुत्वा तदा तस्मै वडवां हरिणीं शुभाम् ।।३
ददौ स भगवानिन्द्रस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।।४
तस्मिन्काले परिमलः पितृशोकपरायणः । पार्थिवैः पूजयामास महादेवमुमापतिम् ।।
परीक्षार्थे शिवः साक्षात्सर्परोगेण तं ग्रसत्[1] ।।५

पृथिवीराज का विजय और जयचन्द्र का यश इस भूतल में घर-घर के प्रत्येक मनुष्यों में व्याप्त हो गया । जयचन्द्र ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा पृथिवीराज ने देहली (दिल्ली) में अनुपम उत्सव को सुसम्पन्न करके परम आनन्द की प्राप्ति की ।६२-६३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भीष्मसिंह ने गंगा जी के तट पर इन्द्र की पूजा करना आरम्भ किया । पश्चात् इन्द्र को सूर्यमय जानकर तप द्वारा उन्हें प्रसन्न किया । एक मास के उपरान्त भगवान् इन्द्र ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उनसे कहा—वर की याचना कीजिये । उसे सुनकर उस शूरवीर ने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे एक दिव्य वडवा (घोड़ी) देने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर उन्होंने एक शुभ हरिणी नामक वडवा (घोड़ी) उन्हें प्रदान किया । भगवान् इन्द्र उसके पश्चात् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । उसी समय परिमल ने पिता के शोक से दुःखी होकर पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना करना आरम्भ किया था । उनकी परीक्षा करने के लिए शिव जी ने उन्हें सर्परोग से पीड़ित कर दिया ।१-५।

---

१. अडभाव आर्षः ।

व्यतीते पञ्चमे मासे नृपः शक्तिविवर्जितः । न तत्याज महापूजां महाक्लेशसमन्वितः ॥६
मरणाय ययौ काशीं स्वपत्न्या सहितो नृपः । उवास वटमूलान्ते रात्रौ रोगप्रपीडितः ॥७
एतस्मिन्नन्तरे कश्चित्पन्नगो मूलसंस्थितः । शब्दं चकार मधुरं श्रुत्वा रुद्राहिरायगौ ॥८
रुद्राहिं पन्नगः प्राह भवान्निर्दय मन्दधीः । शिवभक्तं नृपमिमं पीडयेत्प्रत्यहं खलः ॥९
मूर्खोऽयं भूपतिः साक्षादारनालं पिबेन्नहि । इति श्रुत्वा स रुद्राहिराह रे पन्नगाधम ॥१०
राज्ञो देहे परं हर्षं प्रत्यहं प्राप्तवानहम् । स्वगेहं दुःखतस्त्याज्यं कथं त्याज्यं मया शठ ॥११
मूर्खोऽयं भूपतिर्यो वै तैलोष्णं यन्न दत्तवान् । इत्युक्त्वान्तर्गतो देहे श्रुत्वा सा मलना सती ॥१२
चकार पन्नगोक्तं तद्गतरोगो नृपोऽभवत् । तैलोष्णैर्बिलमापूर्य चखान च सती स्वयम् ॥१३
ततो जातं स्वयं लिङ्गमङ्गुष्ठाभं सनातनम् । ज्योतीरूपं चिदानन्दं सर्वलक्ष्मसमन्वितम् ॥१४
निशीथे तम उद्भूते दिक्षु सूर्यत्वमागतम् । दृष्ट्वा स विस्मितो राजा पूजयामास शङ्करम् ॥१५
महिम्नस्तवपाठैश्च तुष्टाव गिरिजापतिम् । तदा प्रसन्नो भगवान्वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ॥१६
श्रुत्वाह नृपतिर्देवं यदि तुष्टो महेश्वर । श्रीपतिर्मे गृहं प्राप्य वसेन्मत्प्रियकारकः ॥१७
तथेत्युक्त्वा महादेवो लिङ्गरूपत्वमागतः । प्रत्यहं भारमेकं च सुवर्णं सुषुवे तनोः ॥१८

पाँचवें मास की समाप्ति तक राजा एकदम शक्तिहीन हो गया, किन्तु उस महादुःख से दुःखी होने पर भी उन्होंने उस पूजन का त्याग नहीं किया। पश्चात् मरण के निमित्त उस राजा ने अपनी पत्नी समेत काशी को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उस रात्रि उस रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी वटवृक्ष के नीचे ही शयन किया। उसी बीच उस वट के मूल भाग में रहने वाले एक सर्प ने मधुर ध्वनि किया। उसे सुनकर रुद्रसर्प (रोगी के अन्दर रहने वाला) वहाँ आया। उससे उसने कहा—तुम बड़े निर्दयी एवं मूर्ख हो, दुष्ट! इस शिव भक्त राजा को तू नित्य पीड़ित करता है। यह राजा भी मूर्ख ही है, नहीं तो इसे अब तक कभी (इस रोग से मुक्ति पाने के लिए) आरनाल का पान कर लेना चाहिए। इसे सुनकर उस रुद्रपन्नग ने उससे कहा—रे नीच पन्नग! राजा के इस देह में मुझे नित्य परमानन्द की प्राप्ति होती है। अतः शठ! मैं इसका त्याग कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि अपने, घर का त्याग दुःख के कारण ही किया जाता है। राजा भी मूर्ख ही है, जो तुम्हारे बिल में तेल गरम करके नहीं डाल देता। इतना कहकर वह पुनः राजा की देह के भीतर चला गया। पश्चात् उस साध्वी मलना (मल्हना) रानी ने उस सर्प के बताये हुए उपाय को सुसम्पन्न किया उससे राजा का रोग विनष्ट हो गया और उसकी बिल को गरम तेल से भरकर वह रानी स्वयं उसे खोदने भी लगी।६-१३। उससे एक अंगुष्ठमात्र का शिव लिंग उत्पन्न हुआ, जो सनातन, आकाश रूप, सच्चिदानन्द रूप एवं सर्वलक्षण सम्पन्न था। उस अंधेरी रात के आधी रात के समय भी उसके निकलने से दिशाओं में प्रकाश सूर्योदय के समान ही दिखाई देने लगा। उसे देखकर राजा आश्चर्य-चकित होकर शंकर जी की पूजा करने लगे। उन्होंने महिम्न पाठ द्वारा गिरिजापति की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वरयाचना के लिए कहा उसे सुनकर राजा ने कहा—देव, महेश्वर! यदि आप मुझपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो मेरी इच्छापूर्ति के लिए 'श्रीपति' मेरे घर में निवास करें। इतना कहकर महादेव लिङ्गरूप धारणकर अपने शरीर से एक भार सुवर्ण प्रतिदिन राजा को देने लगे। और प्रसन्न

तदा मलस्तु सन्तुष्टः प्राप्तो गेहं महावतीम् । भीष्मसिंहेन सहितः परमानन्दमाययौ ॥१९
ततःप्रभृति वर्षान्ते जयचन्द्रपुरीं ययौ । दृष्ट्वा परिमलं राजा कृतकृत्यत्वमागतः ॥२०
दिष्ट्या ते संक्षितो रोगो दिष्ट्या ते दर्शितं मुखम् । भवान्निजपुरीं प्राप्य सुखी भवतु मा चिरम् ॥२१
यदा मे विघ्न आभूयात्तदा त्वं मां समाचर ! इति श्रुत्वा परिमलो गत्वा स्थानमवासयत् ॥२२
तदा तु लक्षणो वीरो भगवन्तमुपार्पतिम् । जगन्नाथमुपागम्य समभ्यर्च्चापरोऽभवत् ॥२३
पक्षमात्रान्तरे विष्णुर्जगन्नाथ उषापतिः । वरं ब्रूहि वचश्चेति लक्षणं प्राह हर्षतः ॥२४
इत्युक्तः स तु तं देवं नत्वोवाच विनम्रधीः । देहि मे वाहनं दिव्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥२५
इति श्रुत्वा जगन्नाथः शक्तिमैरावताद्गजात् । समुत्पाद्य ददौ तस्मै दिव्यामैरावतीं मुदा ॥२६
आरुह्यैरावतीं राजा लक्षणो गेहमाययौ । स वै परिमलो राजा जगाम च महावतीम् ॥२७
एतस्मिन्नन्तरे वीरास्तालनाद्या मदोत्कटाः । महावतीं पुरीं प्राप्य ददृशुस्तं महीपतिम् ॥२८
तेन सार्द्धं च महतीं प्रीतिं कृत्वा न्यवासयन् । मासान्ते च पुनस्ते वै राजानो विनयान्विताः ॥२९
ऊचुस्तं शृणु भूपालवयं गच्छामहेपुरीः । तदा राजाऽपि तान्प्राह सर्वान्क्षितिपतीनथ ॥
दत्त्वाधिकारं पुत्रेभ्यस्तदाऽऽयास्यामि वोऽन्तिकम् ॥३०
तथेत्युक्तास्तु ते राज्ञा स्वगेहं पुनराययुः । सानुजो देशराजस्तु द्विजेभ्यः स्वपुरं ददौ ॥३१
पुत्रेभ्यस्तालनो वीरो ददौ वाराणसीं पुरीम् । अलिकोल्लामतिः कालात्पत्रः पुष्पोदरीवरी ॥३२

होकर राजा परिमल भी अपने घर महावती पुरी आकर भीष्मसिंह समेत परम आनन्द से रहने लगे।१४-१९। एक वर्ष के उपरान्त वे राजा जयचन्द्र के यहाँ गये। राजा ने परिमल को देखकर अपने को कृतकृत्य समझ— परम सौभाग्य है कि आप स्वस्थ्य हो गये, और आज मुझे आपके प्रसन्न मुख का दर्शन मिला। अब आप, अपने नगर में जाकर सुखपूर्वक रहो, किसी विघ्न-बाधा के उपस्थित होने पर बुलाऊँगा, तब आइयेगा। इसे सुनकर परिमल अपने यहाँ जाकर सुख का अनुभव करने लगे। उस समय लक्षण (लषन) भी ऊषापति भगवान् विष्णु की उपासना कर रहे थे। एक पखवारे के व्यतीत होने पर ऊषापति जगन्नाथ विष्णु भगवान् ने उनसे कहा—वर की याचना करो ! इस प्रकार कहने पर उन्होंने विनय-विनम्र होकर नमस्कारपूर्वक उन देव से कहा—'मुझे एक दिव्यवाहन प्रदान कीजिये, जो समस्त शत्रुओं के नाश करने में समर्थ हो। इसे सुनकर जगन्नाथ जी ने ऐरावतगज से शक्ति उत्पन्न कर एक-एक दिव्य ऐरावत नामक हाथी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रदान किया। उसी पर आसनासीन होकर राजा लषन अपने घर आये। राजा परिमल के महावती पहुँचने पर तालन आदि दुर्मदा वीरगण ने भी वहाँ पहुँचकर परिमल का दर्शन किया। वहाँ उनके साथ घनिष्ठ मैत्री स्थापित कर प्रेमपूर्वक रहने लगे। एक मास के उपरान्त उन लोगों ने राजा से विनयपूर्वक कहा—राजन्। अब हम लोग अपने नगर जाना चाहते हैं, आप आज्ञा प्रदान करें। राजा ने आज्ञा दी उन लोगों ने कहा—मै अपने सभी अधिकार लड़कों को सौंपकर पुनः यहीं आपके समीप आ जाऊँगा।२०-३०। इस प्रकार राजा से कहकर वे सब अपने घर चले गये। अपने छोटे भाई (वत्सराज) समेत देशराज ने अपना नगर ब्राह्मणों को अर्पित कर दिया। वीरतालन ने अपना वनारस नगर पुत्रों को सौंप दिया जिनके क्रमशः अलिकोल्लामति, काल, पत्र, पुष्पोदरी वरी, करी, नरी एवं

करीनरी सुललितस्तेषां नामानि वै क्रमात् । द्वौ द्वौ पुत्रौ स्मृतौ तेषां पितुस्तुल्यपराक्रमौ ।।३३
स वै पुत्राज्ञया शूरस्तालनो राक्षसप्रियः । यातुधानमयं देवं तुष्टाव म्लेच्छपूजनैः ।।३४
तथा वसुमतः पुत्रौ भूपती देशवत्सजौ । शक्रं सूर्य्यं समाराध्य कृतकृत्यौ बभूवतुः ।।३५
सिंहिनीं नाम वडवां यातु दत्ता भयानका । आरुह्य बलावाञ्छूरो गमनाय मनो दधौ ।।३६
पञ्चशब्दं महानागमिन्द्रदत्तं मनोरमम् । देशराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ।।३७
हयं पपीहकं नाम सूर्यदत्तं नरस्वरम् । वत्सराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ।।३८
त्रयः शूराः समागम्य नगरीं ते महावतीम् । ऊषुस्तत्र महात्मानो बहुमानेन सत्कृताः ।।३९
सेनाषष्टिसहस्रं तत्तेषां स्वामी स तालनः । मन्त्रिणौ भ्रातरौ तौ च नृपतेश्चन्द्रवंशिनः ।।४०
तैर्वीरै रक्षितो राजा कृतकृत्यत्वमागतः ।।४१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

जम्बूको नाम भूपालो महीराजो भयातुरः । कालियेन युतः प्राप्तो नर्मदायास्तटे शुभे ।।१

सुललित ये नाम बताये गये हैं । इनके प्रत्येक के दो-दो पुत्र थे, जो अपने पिता के समान पराक्रमशाली थे । राक्षसप्रिय तालन ने अपने पुत्रों के आदेश से म्लेच्छपूजन द्वारा राक्षसदेव को प्रसन्न किया । अनन्तर वसुमान के पुत्र देशराज और वत्सराज ने क्रमशः इन्द्र और सूर्य की आराधना की । यातुधान (राक्षस) ने सिंहनी नामक घोड़ी तालन को प्रदान किया, इन्द्र के दिये हुए पंचशब्द नामक गज देशराज को और पपीहा नामक घोड़ा सूर्य का दिया हुआ, जो मनुष्य की भाँति बोलता था, वत्सराज को मिला । ये तीनों शूर-वीर अपने वाहनों पर बैठकर महावती नगरी में पहुँचे और वहाँ सादर सम्मानपूर्वक रहने लगे । वहाँ उनकी साठ सहस्र सेना के अधिनायक तालन बनाये गये और उस चन्द्रवंशी राजा (परिमल) के मन्त्रिपद का भार उन दोनों भाइयों ने संभाला । इस भाँति उन तीनों वीरों द्वारा सुरक्षित होकर राजा परिमल अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करने लगे । ३१-४१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—जम्बूक नामक राजा ने भयभीत होकर अपने पुत्र कालिय (करिया) को साथ

पार्थिवैः पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् । षण्मासान्ते महादेवो जम्बूकं प्राह भूपतिम् ।।२
वरं वरय तेऽभीष्टं भूप आह कृताञ्जलिः । अजितत्वं नृपैः सर्वैर्देहि मे करुणानिधे ।।३
तथेत्युक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । कालियस्तत्सुतो लब्ध्वा वीरो माहेश्वरं वरम् ।।४
मोहनं सर्वसैन्यानां पितुरन्तिकमाययौ । पितरं प्राह नम्रात्मा देह्याज्ञां तात मत्प्रियाम् ।।५
गमिष्यामि बलैः सार्द्धं गङ्गां शुद्धजलां शुभाम् । तथेत्युक्त्वा पिता तस्मै ययौ तु स्वं निवेशनम् ।।६
भगिनीं प्राह बलवान्विजयैषिणि शोभने । किमिच्छसि शुभं वस्तु तदाज्ञां देहि मा चिरम् ।।७
साह ग्रैवेयकं हारं मणिमुक्ताविभूषितम् । मत्प्रियं देहि मे वीर तथेत्युक्त्वा ययौ गृहात् ।।८
कालियो लक्षतुरगैः संयुतस्त्वरितोऽगमत् । प्राप्य गङ्गासागरगां कृत्वास्नानं विधानतः ।।९
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो जयचन्द्रपुरीं ययौ । निर्धनः समभूद्राजा बाहुशाली महाबलः ।।१०
कान्यकुब्जे महाहारो न प्राप्तो बहुमूल्यकः । तदोर्वीयाधिपेनैव महीशेन प्रबोधितः ।।११
ययौ महावतीं रम्यां शिवदत्तवरो बली । रुरोध नगरीं सर्वां श्रुत्वा राजा भयातुरः ।।१२
रुद्रं कपर्दिनं शम्भुं शरण्यं शरणं ययौ । शिवाज्ञया नृपो धीमान्बलैः षष्टिसहस्रकैः ।।१३
सार्द्धं पुराद्बहिर्यातस्त्रिभिः शूरैः सुरक्षितः । तस्य नागाः सहस्रं च देशराजश्च तत्पतिः ।।१४
हयाः षोडशसाहस्रा वत्सराजस्तु तत्पतिः । शेषाः पदातयस्तस्य तालनेनैव रक्षिताः ।।१५

लेकर नर्मदा के तट पर देवाधिदेव पिनाकपाणि शिव की आराधना पार्थिव पूजन द्वारा करना आरम्भ किया। छठें मास की समाप्ति में महादेव ने राजा जम्बूक से कहा—यथेच्छ वर की याचना कीजिये। राजा ने हाथ जोड़कर कहा—'करुणानिधे ! मुझे अजेय कर दीजिये, जिससे कोई राजा मुझे जीत न सके।' उसे स्वीकार कर महादेव उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये। उसके पुत्र कालिय ने शंकर के उस वरदान मोहनास्त्र की प्राप्ति कर अपने पिता से विनम्र होकर कहा—'तात ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं पवित्र जलपूर्ण गंगा का दर्शन करने के लिए सेना समेत जा रहा हूँ।' पिता आज्ञा प्रदान कर अपने महल चले गये और उसने अपनी भगिनी (बहिन) से कहा—शोभने, विजये ! तुम्हें कौन-सी उत्तम वस्तु चाहिये, मुझे शीघ्र बताओ। उसने कहा—वीर ! मणि-मोतियों से विभूषित (नौलखा) हार मुझे अत्यन्त प्रिय है। अतः इसे अवश्य ला देना। उसने स्वीकार कर घर से प्रस्थान कर दिया।१-८। कालिय एक लाख अश्वारोहियों की सेना लेकर गंगासागर पर पहुँचा वहाँ विधान समेत स्नान करने के उपरान्त ब्राह्मणों को दान देकर जयचन्द्र के नगर की ओर चला। वहाँ बाहुशाली एक महाबलवान् जयचन्द्र को निर्धन की भाँति समझकर छोड़ दिया। कान्यकुब्ज (कन्नौज) में उसे बहुमूल्य वाला वह महाहार जब न मिला, तब उस समय उर्वीय (उरई) के राजा ने उससे बताया। पश्चात् वह राजा शिव जी से प्राप्त वरदान के नाते मदान्ध होकर उस रमणीक महावतीपुरी में जाकर उसे चारों ओर से घेर लिया। उसे सुनकर राजा भयभीत होकर भगवान् शंकर की शरण पहुँचकर आराधना करने लगे। शिव की आज्ञा से राजा साठ सहस्र सेना लेकर तथा उन तीनों महाबलवानों से सुरक्षित होते हुए नगर के बाहर रणस्थल में पहुँच गये। इनकी सेना में एक सहस्र हाथी की सेना थी जिसके नायक देशराज बनाये गये थे।९-१४। सोलह सहस्र अश्वारोही की सेना थी, जिसका आधिपत्य वत्सराज को प्राप्त था, और शेष पैदल की सेना तालन के

अभवत्तुमुलं युद्धं तेषां वीरवरक्षयम् । अहोरात्रप्रमाणेन महद्धोरमवर्तत ॥१६
ते हत्वा शात्रवीं सेनां चक्रुर्जयरवान्मुहुः । भयार्ता नार्मदेयाश्च माहिष्मति[1] निवासिनः ॥१७
दुद्रुवुः सर्वतो विप्र दृष्ट्वा तान्कालियो नृपः । आश्वास्य प्रययौ युद्धमर्द्धसैन्यसमन्वितः ॥१८
हृदि कृत्वा महादेवं मोहनं बाणमादधत् । सिद्धमन्त्रप्रभावेण मोहितास्ते बभूविरे ॥१९
शेषास्ते शत्रवः सर्वे रिपुघातार्थ संययुः । अलसांस्तान्कपालेषु जघ्नुस्ते भयवर्जिताः ॥२०
भीष्मसिंहस्तथा दृष्ट्वा बोधयामास सैनिकान् । सूर्यदत्तेन बाणेन सञ्ज्ञाख्यानेन तत्र वै ॥२१
भैरवाख्येन भल्लेन शत्रुदेहमताडयत् । मूर्च्छितः सोऽपतद्वीरो गजपृष्ठे शरार्दितः ॥२२
तदा माहिष्मती सेना निर्ययौ सा दिशो दश । मुहूर्तं कश्मलं प्राप्य पुनरुत्थाय कालियः ॥२३
भल्लेन तच्छिरः कायादपाहरत् भूमिपः । हते तस्मिन्महावीर्ये तालनाद्या महाबलाः ॥२४
कालियं ते पराजित्य तं शत्रुं प्रत्यषेधयन् । महाकष्टान्वितो भूपो ध्यात्वा मनसि शङ्करम् ॥२५
मोहयित्वा रिपून्सर्वान्स ययौ स्वं निवेशनम् । अर्द्धसैन्येन सहिता हतशेषास्त्रयस्तथा ॥२६
तदा परिमलो राजा दृष्ट्वा शत्रुपराजयम् । परिष्वज्य महावीरान्स्वगेहं पुनराययौ ॥२७
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः । तालनं च समाहूय सेनाधीशमकरायत् ॥२८

अधिकार में थी । दोनों राजाओं का तुमुल संग्राम आरम्भ हुआ, वीरगण भूमिशायी होने लगे, वह घोर युद्ध दिन-रात में समान रूप से हो रहा था । (परिमल के) सैनिकों ने शत्रुसेना का नाश करके 'जय-जय' की ध्वनि से अपनी विजय की सूचना बार-बार देना आरम्भ किया और नर्मदा तट के माहिष्मती नगर के निवासी (करिया) की सेना भयभीत होकर चारों ओर भागने लगी । विप्र ! राजा कालिय (करिया) ने भागते हुए उन्हें देखकर आश्वासन (धैर्य) दिया । पश्चात् शेष बची हुई अपनी आधी सेना समेत युद्ध के लिए पुनः वहाँ (रणस्थल में) पहुँचा । वहाँ उसने अपने हृदय में महादेव जी का ध्यान करके मोहनबाण का प्रयोग किया । उस सिद्धमंत्र के प्रभाव से वे सब मोहित हो गये । शेष शत्रुसेना अपने शत्रु (परिमल) के सैनिकों का संहार (शिरश्छेदन) करने लगी । इसे देखकर कर भीष्मसिंह ने सैनिकों को सूर्यप्रदत्त उस संज्ञा नामक बाण द्वारा चैतन्य किया । पश्चात् भैरव नामक भल्लास्त्र से शत्रु की देह में आघात किया, जिससे वह वीर (करिया) अपनी हाथी पर व्यथित एवं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।१५-२२। उस समय उसकी सेना सभी दिशाओं में तितर-वितर हो गई। एक घड़ी मूर्च्छित रहने के उपरान्त कालिय ने उठकर अपने भाला से भीष्म का शिरश्छेदन कर दिया। उस महाबली के स्वर्गीय होने पर तालन आदि बलवानों ने उस कालिय शत्रु को आगे बढ़ने से रोकना आरम्भ किया। पश्चात् अत्यन्त दुःखी होकर उस राजा ने शंकर जी का मानसिक ध्यान करते हुए शत्रुओं को मोहित कर अपने घर को प्रस्थान किया। इधर ये तीनों—तालन आदि वीरों ने अपनी बची हुई आधी सेना लेकर नगर में प्रवेश किया। उस समय राजा परिमल शत्रु का पराजय सुनकर उन आये हुए वीरों का गले मिलकर अत्यन्त सम्मान किया। इसे सुनकर जयचन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने तालन को बुलाकर अपने यहाँ सेनाधीश बनाया।२३-२८।

---

१. ङीपोह्रस्व आर्षः ।

भीष्मसिंहे गते लोके पञ्चमासान्तरे नृपे । तत्पत्नी जनयामास पुत्ररत्नं शुभाननम् ॥२९
सा तु गुर्जरभूपस्य तनयाख्या मदालसा । दिव्यं पुत्रं समालोक्य मुमुदे सगणा भृशम् ॥३०
श्रुत्वा तज्जन्म नृपतिर्विततार धनं बहु । आहूय गणकान्प्राज्ञाञ्जातकर्म ह्यकारयत् ॥३१
सहदेवांश एवासौ भुवि जातः शिवाज्ञया । देवसिंहः कृतो नाम गणकैः शास्त्रचिन्तकैः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अथ नवमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कालियं तौ पराजित्य भ्रातरौ नृपसेवकौ । गतौ गोपालके राष्ट्रे भूपतिर्दलवाहनः ॥१
सहस्रचण्डिकाहोमे नानाभूपसमागमे । गृहीतौ महिषौ ताभ्यां भूपैरन्यैश्च दुर्जयौ ॥२
पूर्वं हि नृपकन्याभ्यां प्रत्यहं बन्धनं गतौ । तौ सम्पूज्य विधानेन ददौ ताभ्यां च कन्यके ॥३
देवकीं देशराजाय ब्राह्मीं तस्यानुजाय वै । ददौ दुर्गाज्ञया राजा रूपयौवनशालिनीम् ॥४

भीष्म सिंह के स्वर्गीय होने पर पाँच मास के भीतर ही उनकी पत्नी ने एक शुभ पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जो गुर्जर (गुजरात) देश के राजा की पुत्री थी। मदालसा उसका नाम था। उसके दिव्य पुत्र का जन्म सुनकर सभी लोग प्रसन्न हुए। राजा ने उसके जातकर्म संस्कार तथा जन्म के उपलक्ष्य में अत्यन्त धन वितरण किया। ज्योतिषियों द्वारा जातकर्म सुसम्पन्न होने के उपरान्त उनके पूँछने पर उन्होंने बताया—सहदेव का शिव की आज्ञा से अंश इस बालक के रूप में पृथिवी तल को सुशोभित करने के लिए आया है।' पश्चात् उन विद्वानों ने 'देवसिंह' उसका नामकरण किया।२९-३२।

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अध्याय ९

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—राज-सेवक दोनों भाइयों ने कालिय (करिया) को पराजित करके गोपालक राज्य के अधीश्वर राजा दलवाहन के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ सहस्र चण्डी के अनुष्ठान में हवन का आरम्भ होने जा रहा था जिसमें अनेक राजागण उपस्थित थे। इन दोनों भाइयों ने (देवी के बलिदानार्थ) उपस्थित उन भैंसों को पकड़कर अपने अधीन कर रखा था जिन्हें अन्य कोई राजा नहीं पकड़ सकता था। राजा की दोनों कन्याओं ने उन्हें पहले ही बाँध रखा था। प्रसन्न होकर राजा ने अपनी दोनों कन्याएँ इन दोनों भाइयों को प्रदान किया। देवकी देशराज को और ब्राह्मी वत्सराज को देकर दुर्गा जी की आज्ञा से उन रूप यौवनशालिनी कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार सविधान सुसम्पन्न कराया।१-४। उन कन्याओं के साथ

लक्षावृत्तिं तथा वेश्यां गीतनृत्यविशारदाम् । कन्ययोश्च सखीं रम्यां मेघमल्लाररागिणीम् ॥५
शतं राजान्रथान्पञ्च हयांश्चैव सहस्रकान् । चत्वारिंशच्च शिबिकाः प्रददौ दलवाहनः ॥६
बहुद्रव्ययुतां कन्यां दासदासीसमन्विताम् । उदूह्य वेदविधिना प्रापतुश्च महावतीम् ॥७
मलना तां वधूं दृष्ट्वा तस्यै ग्रैवेयकं ददौ । ब्राह्म्यै षोडशशृङ्गारं तथा द्वादशभूषणम् ॥८
राजा च परमानन्दी देशराजाय शूरिणे । ददौ दशपुरं रम्यं नानाजननिषेवितम् ॥९
ऊषतुस्तत्र तौ वीरौ राजमान्यौ महाबलौ । एतस्मिन्नन्तरे जातो देवसिंहो हराज्ञया ॥१०
जाते तस्मिन्कुमारे तु देवकी गर्भमादधौ । दासश्रुता यतेर्देवी सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ॥११
गौराङ्गं कमलाक्षं च दीप्यमानं स्वतेजसा । तदानन्दमयो देवः शक्रः सुरगणैः सह ॥१२
शङ्खशब्दं चकारोच्चैर्जयशब्दं पुनःपुनः । दिशः प्रफुल्लिताश्चासन्ग्रहाः सर्वे तथा दिवि ॥१३
आयाता बहवो विप्रा वेदशास्त्रपरायणाः । चक्रुस्ते जातकर्मास्य नामकर्म तथाविधम् ॥१४
रामांशं तं शिशुं ज्ञात्वा प्रसन्नवदनं शुभम् । भाद्रकृष्णतिथौ षष्ठ्यां चन्द्रवारेऽरुणोदये ॥१५
सञ्जातः कृत्तिकाभे च पितृवंशयशस्करः । आह्लादनाम्नाह्यभवत्प्रश्रितश्च महीतले ॥१६
मासान्ते च सुते जाते ब्राह्मी पुत्रमजीजनत् । धर्मजांशं तथा गौरं महाबाहुं सुवक्षसम् ॥१७
तदा च ब्राह्मणाः सर्वे दृष्ट्वा बालं शुभाननम् । प्रसन्नवदनं चारुपद्मचिह्नपदस्थितम् ॥१८

लक्षावृत्ति नामक वेश्या, जो नृत्य एवं गान में अत्यन्त निपुण थी, और मेघ मलार राग गाने वाली उसकी सुन्दरी सखियाँ भेजी गईं तथा सौ हाथी, पाँच सहस्र घोड़े और चालीस पालकी भी राजा दलवाहन ने सप्रेम प्रदान किया। अत्यन्त धनराशि और अनेक दास दासी गणों समेत उन कन्याओं को लेकर सविधान विवाह हो जाने के उपरान्त अपनी महावती पुरी में वे दोनों भाई चले आये। मलना ने उस वधू को देखकर वह अमूल्य (नौलखा) हार, ब्राह्मी को सोलह शृंगार तथा बारह आभूषण प्रदान किया। परमानन्द मग्न होकर राजा परिमल ने दश गाँव जिसमें भाँति-भाँति की जाति के मनुष्य अधिक संख्या में रह रहे थे, वीर देशराज को प्रदान किया। उसी स्थान में ये दोनों पराक्रमी भाई रहने लगे। शिव की आज्ञावश जिस समय देवसिंह ने जन्म ग्रहण किया उसी समय देवकी ने गर्भ-धारण किया था, समय पाकर गौरवर्ण, कमलवत् नेत्र एवं अपनी आभा से देदीप्यमान सन्तान के उत्पन्न होते ही देवताओं के सहित इन्द्र आनन्दित हुए। शंखों की ध्वनि और बार-बार जय शब्द होने लगे। दिशाएँ हरी-भरी दिखाई देने लगी, उसी भाँति आकाश में ग्रहगण प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। वेद-शास्त्र के पारगामी अनेक ब्राह्मण विद्वानों ने वहाँ एकत्र होकर उस शिशु का जातकर्म एवं नामकरण सविधान सुसम्पन्न किया।५-१४। शुभ एवं प्रसन्नमुख वाले उस पुत्र को, जो भाद्र कृष्ण की षष्ठी चन्द्रवार के दिन अरुणोदय बेला तथा कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न एवं अपने पितृवंश को यशस्वी बनाने वाला था, राम का अंश जानकर उसका 'आह्लाद' (आल्हा) नामकरण किया। वह बालक इसी नाम से इस भूतल में ख्याति प्राप्त किया। इस बालक के जन्मग्रहण करने के एक मास पश्चात् ब्राह्मी ने भी पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जो गौरवर्ण, लम्बी भुजाएँ, विशालवक्षस्थल, तथा धर्म-पुत्र (युधिष्ठर) का अंश था।१५-१७। उस समय ब्राह्मणों ने उस बच्चे को देखकर, जिसका शुभ-प्रसन्नमुख और चरण-तल, सुन्दर कमल चिह्न से विभूपित था, महाबली होने के नाते उसका 'बलस्वामी (मलखान) नामकरण ब्राह्मणों ने

तृतीयाब्दे वयः प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । शक्रस्तद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो जगाम ह ।।४४
क्रीडन्त चन्दनारण्ये कृष्णांशो भ्रातृभिः सह । नभस्थं पुरुषं दृष्ट्वा सहस्राक्षं जहास वै ।।४५
अश्विनी हरिणी दिव्या उच्चैः श्रवसमन्तिके । गत्वा गर्भमुपादाय स्वगेहं पुनरराययौ ।।४६
वर्षान्तरे च सुषुवे कपोतं तनयं शुभम् । पञ्चाब्दे च समायाते विद्याध्ययनमास्थिताः ।।४७
ब्राह्मणं शिवशर्माणं सर्वविद्याविशारदम् । स्वभक्त्या सेवनं कृत्वा ते चक्रुर्वेदपाठिकाम् ।।४८
अष्टाब्दे चैव कृष्णांशो नामपत्रादिकां क्रियाम् । लिखतां बालकानां च कृष्णांशः श्रेष्ठतामगात् ।।४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णांशावतारो नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

नवमाब्दं वयः प्राप्ते कृष्णांशो बलवत्तरः । पठित्वान्वीक्षिकीं विद्यां चतुःषष्टिकलास्तथा ।।१
धर्मशास्त्रं तथैवापि सर्वश्रेष्ठो बभूव ह । तस्मिन्काले भृगुश्रेष्ठ महीराजो नृपोत्तमः ।।२

तीसरे वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर उस सबल एवं कृष्णांश (से उत्पन्न उदय) के दर्शनाभिलाषी इन्द्र घोड़े पर बैठकर वहाँ आये, जहाँ वह चन्दन के वन में अपने भाइयों के साथ बाल-क्रीडा में निमग्न हो रहा था ! उस समय आकाश में स्थित इन्द्र को देखकर उस बालक ने अट्टहास (ठठाकर हँसा) किया, इधर हरिणी नामक बड़वा (घोड़ी) भी इन्द्र के उस दिव्य उच्चैः श्रवा नामक घोड़े के पास पहुँचकर उसके द्वारा गर्भ धारणकर पुनः अपने घर लौट आई । पश्चात् वर्ष की समाप्ति में उसने कपोत (कबूतर) नामक एक पुत्र (अश्व) उत्पन्न किया । पाँचवें वर्ष के आरम्भ में इन बालकों ने विद्याध्ययन आरम्भ किया । शिवशर्मा नामक ब्राह्मण की, जो सम्पूर्ण विद्या में निपुण थे, भक्ति-श्रद्धा से सेवा कर रहे थे, जो इन्हें शिक्षा दे रहे थे । आठ वर्ष की अवस्था में वह उदयसिंह अध्ययन करने वाले सभी बालकों में कुशाग्र बुद्धि हुआ, पत्रादि-लेखन भली-भाँति कर लेता था ।४४-४९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—नवें वर्ष के आरम्भ में वह सबल कृष्णांश (उदयसिंह) राजनीति विद्या, चौंसठ कलाओं और धर्मशास्त्र में निपुणता प्राप्तकर सर्वश्रेष्ठ होने के नाते ख्याति प्राप्त हुआ । भृगुश्रेष्ठ ! उस समय राजा पृथिवीराज ने कर (माल-गुजारी) ग्रहण करने के लिए अपनी सेना को महावती (महोबा)

करार्थं प्रेषयामास स्वसैन्यं च महावतीम् । ते वै लक्षं महाशूराः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणः ।।३
ऊचुः परिमलं भूपं शृणु चन्द्रकुलोद्भव । सर्वे च भारते वर्षे ये राजानो महाबलाः ।।४
षडंशं करमादायास्मद्राजाय ददति वै । भवान्करे हि तस्यैव योग्यो भवति साम्प्रतम् ।।५
अद्यप्रभृति चेद्राज्ञे तस्मै दद्यात्करं न हि । महीराजस्य रौद्रास्त्रैः क्षयं यास्यति सैनिकैः ।।६
ये भूपा जयचन्द्रस्य पक्षगास्ते हि तद्भयात् । ददन्ते भूमिराजाय दण्डं तन्मानसत्कृताः ।।७
इति श्रुत्वा स नृपतिस्तस्मै राज्ञे महात्मने । करं षडंशमादाय ददौ प्रीतिसमन्वितः ।।८
दशलक्षमितं द्रव्यं गृहीत्वा ते समाययुः । महीराजः प्रसन्नात्मा पूर्ववैरमपाहरत् ।।९
तदा ते लक्षशूराश्च कान्यकुब्जमुपाययुः । जयचन्द्रं तु नत्वोचुः शृणु लक्षणकोविद ।।१०
पृथ्वीराजो महाराजो दण्डं त्वत्तः समिच्छति । इत्युक्तस्तैर्वैष्णवास्त्री लक्षणस्तानुवाच ह ।।११
मद्देशे मण्डलीकाश्च बहवः सन्ति साम्प्रतम् । भूमिराजो माण्डलिको मयि जीवति मा भवेत् ।।१२
इत्युक्त्वा वैष्णवास्त्रं तान्क्रुद्धः स च समादधत् । तदस्त्रज्वालतः सर्वे भयभीताः प्रदुद्रुवुः ।।१३
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महद्भयमुपागमत् । दशाब्दं च वयः प्राप्ते कृष्णांशे मल्लकोविदे ।।१४
नानामल्लाः समाजग्मुस्तेन राज्ञैव सत्कृताः । तेषां मध्ये स कृष्णांशो बाहुशाली बभूव ह ।।१५
उर्वीयाधिपतेः पुत्रः षोडशाब्दवया बली । शतमल्लैश्च सहितः कदाचित्स समागतः ।।१६

नगर में भेजा। महापराक्रमी एवं शस्त्रास्त्रधारी उन एक लाख सैनिकों ने राजा परिमल से कहा—चन्द्रकुलोत्पन्न , राजन् ! हम लोगों की बातें सुनने की कृपा करें । भारत वर्ष के जितने बलवान् राजा हैं, सभी (अपनी आय का) छठाँ भाग कररूप में हमारे महाराजा को समर्पित करते हैं । अब आप भी उन्हें कर देने की क्षमता प्राप्त करें, अतः आज से आपको यह राजकर अर्पित करना पड़ेगा, नहीं तो, कर न देने पर पृथिवीराज के सैनिकों के रुद्रास्त्रों द्वारा आप नष्ट कर दिये जायेंगे क्योंकि जयचन्द्र के पक्ष वाले सभी राजागण भयभीत होकर पृथिवीराज को वह राजकर सदैव मान-सत्कार के साथ प्रदान करते आ रहे हैं । इसे सुनकर राजा (परिमल) ने छठाँ भाग राजदण्ड रूप में महाराज पृथिवीराज को सप्रेम समर्पित किया ।१-८। दश लाख द्रव्य लेकर वे सैनिकगण वहाँ से चले आये और पृथिवीराज ने भी प्रसन्न होकर पुराने वैर का त्यागकर दिया । पश्चात् वे एक लाख के सैनिक शूरों ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) में पहुँचकर राजा जयचन्द्र से नमस्कारपूर्वक कहा—लक्षणकोविद ! महाराज पृथिवीराज ने आपसे राजकर माँगा है, इतना कहने पर वैष्णवास्त्र के लक्षणवेत्ता उस राजा ने उन लोगों से कहा—मेरे राज्य में इस समय अनेक मण्डलीक (छत्रधारी) राजा हैं, किन्तु मेरे जीवन-काल में पृथिवीराज मण्डलीक राजा न बने । पश्चात् क्रुद्ध होकर उसने अपने वैष्णवास्त्र का प्रयोग करना ही चाहा कि सैनिकगण उस अस्त्र की ज्वाला से भयभीत होकर भाग गये । इसे सुनकर पृथिवीराज भी अत्यन्त भयभीत हुए । दशवें वर्ष की अवस्था में कृष्णांश (उदयसिंह) मल्ल विद्या में भी निपुण हो गया। उस समय महावती नगरी में अनेक मल्लों (पहलवानों) का आगमन हुआ। राजा ने उन सबको आतिथ्य सत्कार प्रदान किया। मल्लों के वहाँ एकत्र होने पर सबसे अधिक बली उदयसिंह ही दिखाई देने लगा। उन मल्लों में पृथिवीराज का पुत्र, जो सोलह वर्ष का था, अपने सौ मल्लों समेत उपस्थित था।९-१६। उसने फूफा राजा परिमल से कहा राजन् ! यह

पितृष्वसृपतिं भूपं नत्वा नाम्नाऽभयोबली । उवाच शृणु भूपाल कृष्णोऽयं मदमत्तरः ।।१७
तेन सार्द्धं भवेन्मल्लयुद्धं मम नृपोत्तम । इति वज्रसमं वाक्यं श्रुत्वा राजा भयातुरः ।।१८
उवाच श्यालजं प्रेम्णा भवान् युद्धविशारदः । अष्टाब्दोऽयं सुतः स्निग्धो मम प्राणसमो भुवि ।।१९
क्व भवान्वज्र सदृशः क्व सुतोऽयं सुकोमलः । अन्यैर्मल्लैर्मदीयैश्च सार्द्धं योग्यो भवान्रणे ।।२०
इति श्रुत्वा नृपः श्यालो महीपतिरिति स्मृतः । स तमाह रुषाविष्टो बालोऽयं बलवत्तरः ।।२१
शृणु तत्कारणं भूप यथा ज्ञातो मया शिशुः । आगस्कृतं महीराजं मत्वा सतिलकः सुतम् ।।२२
पण्डितांश्च समाहूय मुहूर्तं पृष्टवान्मुदा । गणेशो नाम मतिमाञ्ज्योतिश्शास्त्रविशारदः ।।२३
लक्षणं वचनं प्राह महीराजमनुत्तमम् । शिवदत्तवरो राजन्कुबेर इव साम्प्रतम् ।।२४
कृष्णांशस्तस्य योग्योऽयं देशराजसुतोऽवरः । नान्योऽस्ति भूतले राजन्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ।।२५
तच्छ्रुत्वा लक्षणो वीरः पूर्वे बर्हिष्मतीं प्रति । कल्पक्षेत्रं दक्षिणे च भूमिग्रामं तु पश्चिमे ।।२६
उत्तरे नैमिषारण्यं स्वकीयं राष्ट्रमादधत् । अतः श्रेष्ठः कुमारोऽयं कान्यकुब्जे मया श्रुतः ।।२७
नागोत्सवे च भूपाल पञ्चम्यां च नभस्सिते । दृश्यमात्रं कुमाराङ्गं तस्माद्योग्यो ह्ययं सुतः ।।२८
इति श्रुत्वा स कृष्णांशो वाक्छरेण प्रपीडितः । अभयं भुजयोः शीघ्रं गृहीत्वा सोऽयुधद्बली ।।२९
क्षणमात्रं रणं कृत्वा भूमिमध्ये तमक्षिपत् । अभयस्य भुजो भग्नस्तत्र जातो बलेन वै ।।३०
मूर्च्छितं स्वसुतं ज्ञात्वा खड्गहस्तो महीपतिः । प्रेषयामास तान्मल्लान्कृष्णांशस्य प्रहारणे ।।३१

कृष्ण अधिक मदमत्त दिखाई देता है, और मेरा भी नाम अभय है, अतः नृपोत्तम ! उससे मेरा मल्ल युद्ध होना चाहिए । वज्र के समान इस बात को सुनकर राजा ने कातर होकर अपने साले से कहा—आप युद्ध कुशल हैं, मेरा यह स्निग्धपुत्र, जो मेरा प्राणप्रिय है, अभी आठ ही वर्ष का है । कहाँ वज्र की भाँति कठोर आयु और कहाँ अत्यन्त सुकोमल यह बालक ।' मेरे यहाँ और अन्य मल्ल रहते हैं, आप उनके साथ रण-कुशलता दिखा सकते हैं ! इसको सुनकर उसने क्रुद्ध होकर कहा—'यह बालक अत्यन्त बलवान् है' राजन् ! इसका कारण तथा मैं जिस प्रकार इस बालक को जानता हूँ, कह रहा हूँ, सुनिये ! अपने पुत्र पृथिवीराज को अपराधी समझकर राजा तिलक ने पण्डितों को बुलवाकर उनसे मुहूर्त पूँछा । उस समय ज्योतिषशास्त्र के निपुण विद्वान् पण्डित गणेश जी ने लक्षण-फलों की व्याख्या करना आरम्भ किया—राजन् ! देशराज का वह सर्वश्रेष्ठ पुत्र इसके योग्य है, जो शिव जी से वरदान प्राप्तकर इस समय कुबेर की भाँति दिखाई पड़ता है तथा कृष्ण के अंश से उत्पन्न है । राजन् ! और दूसरा इस भूतल में कोई भी इसके योग्य नहीं है' यह मैं बार-बार सत्य ही कह रहा हूँ ।१७-२५। उसे सुनकर वीर लक्षण (लषन) ने पूर्व बर्हिष्मती नगरी, दक्षिण में कल्पक्षेत्र, पश्चिम में भूमिग्राम और उत्तर में नैमिषारण्य तक अपना राज्य स्थापित किया। अतः मैंने सुना कि कान्यकुब्ज (कन्नौज) का राजकुमार सर्वश्रेष्ठ है। राजन् ! श्रावणमास की इस नाग-पञ्चमी के दिन कुमारों के अंग दृश्य होते ही हैं इसलिए इस योग्य बालक का मेरे साथ मल्ल-युद्ध होना ही चाहिए । इसे सुनकर वह कृष्णांश (उदयसिंह) उनके वाक्शर से अत्यन्त पीड़ित होकर अभय के दोनों बाहुओं को शीघ्रता से पकड़कर युद्ध करने लगा—क्षण में उससे युद्ध करके उसे भूमि में फेंक दिया—उस युद्ध में उसने अभय की भुजा तोड़ दी ।२६-३०। राजा ने अपने पुत्र को संज्ञाहीन (मूर्छित

रुषाविष्टांश्च ताञ्ज्ञात्वा कृष्णांशो बलवत्तरः । तानेकैकं समाक्षिप्य विजयी स बभूव ह ।।३२
पराजिते मल्लबले खड्गहस्तो महीपतिः । मरणाय मतिं चक्रे कृष्णांशस्य प्रभावतः ।।३३
ज्ञात्वा तमीदृशं भूपं वारयामास भूपतिः । अभयं नीरुजं कृत्वा प्रेम्णा गेहमवासयत् ।।३४
नवाब्दाङ्के च कृष्णांशे चाह्लादाद्याः कुमारकाः । मृगयार्थे दधुश्चितं तमूचुर्भूपतिं प्रियम् ।।३५
नमस्ते तात भूपाग्र्य सर्वानन्दप्रदायक । अस्मभ्यं त्वं हयान्देहि मत्प्रियान्करुणाकर ।।३६
इति श्रुत्वा वचस्तेषां तथेत्युक्त्वा महीपतिः । भूतले वासिनोऽश्वान्वै दिव्यान्राट् चतुरो वरान् ।।३७
ददौ तेभ्यो मुदा युक्तो हरिणीगर्भसम्भवान्

ऋषय ऊचुः

त्वन्मुखेन श्रुतं सूत हरिणी वडवा यथा ।।३८
भीष्म सिंहाय सम्प्राप्ता शक्राद्देवेशतो मुने । इदानीं श्रोतुमिच्छामः कुतो जातास्तुरङ्गमाः ।।३९
दिव्याङ्गा भूषणापन्ना नभस्सलिलगामिनः

सूत उवाच

देशराजेन भूपेन पुरा धर्मयुतेन वै ।।४०
सेवनं भास्करस्यैव कृतं च द्वादशाब्दिकम् । सेवान्ते भगवान्सूर्यो वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ।।४१

देखकर हाथ में तलवार लिए उन मल्लों को कृष्णांश के हननार्थ भेजा । उन मल्लों को क्रुद्ध एवं रोषपूर्ण जानकर उस बलवान् कृष्णांश ने उनमें से एक-एक को भूमि में गिराकर विजय की प्राप्ति की । मल्ल सैनिकों के पराजित हो जाने पर राजा ने हाथ में तलवार लेकर उस कृष्णांश द्वारा अपने जीवन को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध होने का निश्चय किया । राजा ने उन्हें इस प्रकार मरण के लिए निश्चित तैयार जानकर अभय को आरोग्य करके उसके समेत राजा को अपने यहाँ प्रेम-पूर्वक रखा । नवें वर्ष के आरम्भ में कृष्णांश (उदय सिंह) के आह्लाद (आल्हा) आदि कुमारों समेत मृगयार्थ जंगल के लिए प्रस्थान किया । उन्होंने प्रस्थान करते समय राजा से कहा—भूपश्रेष्ठ, तात ! सम्पूर्ण आनन्द को प्रदान करने वाले आप परमकारुणिक हैं अतः हमें उन प्रिय घोड़ों को दे दीजिये । उसे सुनकर राजा ने उसे स्वीकार करते हुए अत्यन्त हर्षमग्न होकर उन चारों कुमारों के लिए पृथिवी निवासी चार दिव्य घोड़े प्रदान किये, जो हरिणी नामक घोड़ी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।३१-३७

ऋषियों ने कहा—मुने ! सूत ! भीष्मसिंह को देवेश इन्द्र के द्वारा वह हरिणी घोड़ी जिस प्रकार से प्राप्त हुई थी, हम लोगों ने आपके द्वारा उसे सुन लिया । अब यह सुनने की इच्छा है कि ये घोड़े, जो कुमारों को राजा द्वारा प्राप्त हुए हैं और जो दिव्यभूषणों से सुसज्जित एवं नभ (सलिल) चारी हैं, किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं ? ३८-३९

सूत जी बोले——धार्मिक राजा देशराज ने पहले समय में लगातार बारह वर्ष तक सूर्य की सेवा की थी। तदुपरान्त प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने उनसे कहा—वर की याचना करो । उन्होंने कहा—देव !

प्राह देव नमस्तुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया । हयं दिव्यमयं देहि नभस्थलजलातिगम् ।।४२
तथेत्युक्त्वा रविः साक्षाद्ददौ तस्मै पपीहकम् । लोकान्पाति पपीर्ज्ञेयस्तस्येदं नाम चोत्तमम् ।।४३
अतः पपीहको नाम लोकपालनकर्मवान् । स हयो मदमत्तश्च हरिणीं दिव्यरूपिणीम् ।।४४
बुभुजे स्मरवेगेन तस्यां जातास्तुरङ्गमाः । मनोरथश्च पीताङ्गः करालः कृष्णरूपकः ।।४५
एकगर्भे समुद्भूतौ शैव्यसुग्रीवकांशकौ । यस्मिन्दिने समुद्भूतौ जिष्णुविष्णुकलांशतः ।।४६
तदा जातौ हरिण्याश्च मेघपुष्पबलाहकौ । बिन्दुलश्च सुवर्णाङ्गः श्वेताङ्गो हरिनागरः ।।४७
दिव्याङ्गास्ते हि चत्वारः पूर्वं जाता महाबलाः । पश्चादंशावताराश्च जातास्तेषां महात्मनाम् ।।४८
इति ते कथितं विप्र शृणु तत्र कथां शुभाम् । भूतले ते हयाः सर्वे प्राप्ताश्चोपरिभूमिगाः ।।४९
देवसिंहाय बलिने ददौ चाश्वं मनोरथम् । आह्लादाय करालं च कृष्णां शायैव बिन्दुलम् ।।५०
ब्रह्मानन्दाय पुत्राय प्रददौ हरिनागरम् । ते चत्वारो हयारूढा मृगयार्थं वनं ययुः ।।५१
हरिणीं वडवां शुभ्रां बलखानिः समारुहत् । तदनु प्रययौ वीरो वनं सिंहनिषेवितम् ।।५२
आह्लादेनैव शार्दूलो हतः प्राणिभयङ्करः । देवसिंहेन सिंहश्च सूकरो बलखानिना ।।५३
ब्रह्मानन्देन हरिणो हतस्तत्र महावने । मृगाः शतं हतास्तैश्च तान्गृहीत्वा गृहं ययुः ।।५४
एतस्मिन्नन्तरे देवी शारदा च शुभानना । मृगी स्वर्णमयी भूत्वा तेषामग्रे प्रधाविता ।।५५

तुम्हें नमस्कार है, यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो मुझे आकाश-गंगा के जल में चलने वाले उस घोड़े को प्रदान करने की कृपा कीजिये ।'४०-४२। इसे स्वीकार कर सूर्य ने उसे पपीहा (लोक की रक्षा करने वाला) नामक घोड़ा प्रदान किया । पश्चात् लोक पालन करने वाला यह पपीहा नामक अश्व मदोन्मत्त होने के नाते काम को रोकने में असमर्थ होकर उस दिव्य हरिणी नामक घोड़ी के साथ मैथुन किया, जिसके गर्भ से ये—पीले वर्ण का मनोरथ (मनोहर) और कृष्ण वर्ण का कराल (भीषणाकार) ये दोनों एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए, उन्हें शैव्य और सुग्रीव का कला अंश बताया जाता है । पश्चात् जिष्णु और विष्णु कला के अंश हरिणी के गर्भ से मेघपुष्प और बलाहक उत्पन्न हुए, जिन्हें सुवर्ण के समान अंगवाले को विन्दुल (वेंदुल) और श्वेतवर्ण वाले को हरिनागर कहा गया है । प्रथम दिव्य अंग वाले ये महावली चार घोड़े उत्पन्न हुए, अनन्तर इन्हीं अश्वों के अंश से अनेक की उत्पत्ति हुई है । विप्र ! इस प्रकार इनकी उत्पत्ति कथा तुम्हें बता दी गई । अब आगे समाचार बता रहा हूँ, सुनो ! इन चारों घोड़ों के भूमि पर प्राप्त होने पर मनोरथ नामक अश्व बलवान देवसिंह को दिया गया, आह्लाद (आल्हा) के लिए कराल, उदयसिंह को विन्दुल, और पुत्र ब्रह्मानन्द को हरिनागर नामक अश्व दिया गया । ये चारों राजकुमार अपने घोड़ों पर सवार होकर मृगया के लिए किसी जंगल की ओर चल पड़े ।४३-५१। उस समय उन सबके पीछे बलखान (मलखान) भी अपनी हरिणी घोड़ी पर बैठकर जा रहा था । वहाँ वे सब सिंह के जंगल में पहुँचकर, आह्लाद (आल्हा) ने एक बाघ का शिकार किया, जो प्राणियों के लिए भयंकर होता है । उसी प्रकार देवसिंह ने सिंह, बलखान ने शूकर और ब्रह्मानन्द ने हरिण का शिकार किया । इस प्रकार उन कुमारों ने उस जंगल में सैकड़ों जंगली जीवों का शिकार करके उन्हें साथ लेते हुए अपने घर को प्रस्थान किया । उसी बीच कल्याणमुखी देवी शारदा ने सुवर्ण की मृगी का रूप धारणकर उनके

दृष्ट्वा तां मोहिताः सर्वे स्वैः स्वैर्बाणैरताडयन् । शरास्तुः संक्षयं जग्मुर्मृग्यङ्गे बलवत्तरः ।।५६
आह्लादाद्याश्च ते शूरा विस्मिताश्च बभूविरे । तस्मिन्काले स कृष्णाङ्गो बाणेनैव ह्यताडयत् ।।५७
तदा च पीडिता देवी भयभीता ययौ वनम् । कृष्णांशः क्रोधताम्राक्षस्तत्पश्चात्प्रययौ बली ।।५८
वनान्तरं च सम्प्राप्य देवी धृत्वा स्वकं वपुः । तमुवाच प्रसन्नाक्षी परीक्षा ते मया कृता ।।५९
यदा ते च भयं भूयात्तदा त्वं मां सदा स्मर । साधयिष्यामि ते कार्यं कृष्णांशो हि भवान्विभुः ।।६०
इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शारदा सर्वमङ्गला । कृष्णांशस्तु ययौ गेहं तैश्च सार्द्धं मुदा युतः ।।६१
तदा पराक्रमं तेषां दृष्ट्वा राजा सुखोऽभवत् । गृहे गृहे च सर्वेषां लक्ष्मीर्देवी समाविशत् ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

दशाब्दे च वयः प्राप्ते विष्णोः शक्त्यवतारके । वसन्तसमये रम्ये ययुस्ते प्रमदावनम् ।।१

सम्मुख दौड़ना आरम्भ किया ।५२-५५। उसे देखकर मोहित होकर कुमारों ने अपने-अपने बाणों से उस पर प्रहार किया किन्तु, उनके वे भीषण बाण, उस मृगी के अंगों में प्रविष्ट होकर भी नष्ट हो जाया करते थे । उसे देखकर आह्लाद आदि कुमार अत्यन्त आश्चर्य-चकित होने लगे । उस समय उदयसिंह ने अपने बाण से उस पर आघात किया । उस बाण से पीड़ित एवं भयभीत होकर देवी दूसरे जंगल में चली गई । पश्चात् कृष्णांश (उदयसिंह) भी क्रुद्ध होने के नाते अपने नेत्र को ताँबे की भाँति रक्तवर्ण करते हुए उसके पीछे चल पड़ा । वहाँ दूसरे जंगल में पहुँचकर देवी ने अपने स्वरूप को धारण करके प्रसन्न मुख मुद्रा करती हुई उससे कहा—मैंने तुम्हारी परीक्षा ली है, अतः जब कभी तुम्हें कहीं किसी प्रकार का भय दिखाई पड़े, उस समय सदैव मेरा स्मरण करते रहना, मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगी, क्योंकि आप विभु (व्यापक) एवं कृष्ण के अंश से अवतरित हैं । इतना कहकर वह सर्वमंगला शारदा देवी अन्तर्हित हो गई और उदयसिंह उन कुमारों के साथ प्रसन्नतापूर्ण होते हुए घर पहुँचे । उस समय राजा उन कुमारों के पराक्रम को देखकर अत्यन्त सुखी हुए और वहाँ उसी समय से लक्ष्मी देवी ने भी प्रत्येक घरों में निवास करना आरम्भ किया ।५६-६२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अध्याय ११

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस विष्णु की शक्ति के अवतार-उदयसिंह के दशवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ में

ऊषुस्तत्र व्रताचारे माधवे कृष्णवल्लभे । स्नात्वा च सागरे प्रातः पूजयामासुरम्बिकाम् ॥२
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विधानतः । जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं दध्युः सर्वकरीं शिवाम् ॥३
कन्दमूलफलाहारा जीवहिंसाविवर्जिताः । तेषां भक्तिं समालोक्य मासान्ते जगदम्बिका ॥४
ददौ तेभ्यो वरं रम्यं तच्छृणुध्वं समाहिताः । आह्लादाय सुरत्वं च बलत्वं बलखानये ॥५
कालज्ञत्वं च देवाय ब्रह्मज्ञत्वं नृपाय च । कृष्णांशायैव योगत्वं दत्त्वा चान्तर्दधे शिवा ॥६
कृतकृत्यास्तदा ते वै स्वगेहं पुनराययुः । तेषां प्राप्ते वरे रम्ये मलना पुत्रमूर्जितम् ॥७
श्यामाङ्गं सात्यकेरंशं सुषुवे शुभलक्षणम् । स ज्ञेयो रणजिच्छूरो राजन्यप्रियकारकः ॥८
आषाढे मासि सम्प्राप्ते कृष्णांशो हयवाहनः । उर्वीयां नगरीं प्राप्य एकाकी निर्भयो बली ॥९
दृष्ट्वा स नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिषेविताम् । द्विजशालां ययौ शूरो द्विजधेनुप्रपूजकः ॥१०
दत्त्वा स्वर्णं द्विजातिभ्यः सन्तर्प्य द्विजदेवताः । महीपतिगृहं रम्यं जगाम बलवत्तरः ॥११
नत्वा स मातुलं धीमांस्तथान्यांश्च सभासदः ॥१२
तदा नृपाज्ञया शूरा बन्धनाय समुद्यताः । खड्गहस्ताः समाजग्मुर्यथा सिंहं गजाः शशाः ॥१३
मोहितं तं नृपं कृत्वा दुष्टबुद्धिर्महीपतिः । कृत्वा लोहमयं जालं तस्योपरि समादधेः ॥१४

एक दिन राजकुमारों ने वसन्त ऋतु के रमणीक आगमन में आनन्द का अनुभव करते हुए प्रमदाओं के उपवन की ओर प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर कृष्णप्रिय उस वसंत के समय उन लोगों ने व्रत करने का निश्चय किया—प्रातःकाल सागर में स्नान करके सामयिक पुष्प, फल, धूप एवं दीप द्वारा सविधान भगवती अम्बिका देवी की पूजा किया । पश्चात् कुमारगण सप्तशती (दुर्गाजी) का स्तोत्र पाठ करके जगज्जननी कल्याणी पार्वती जी का ध्यान करने लगे, और भोजन में केवल कन्दमूल का फलाहार करते थे । इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए वहाँ के उनके एक मास के जीवन में अत्यन्त परिवर्तन हो गया था—जीव हिंसा से अत्यन्त विरत थे । उनकी इस प्रकार की भक्ति से प्रसन्न होकर जगदम्बा भगवती ने उन्हें जो सुन्दर वर प्रदान किया है, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! आह्लाद (आल्हा) को देवत्व, बलखान (मलखान) को बल, देव (डेबा) को काल-ज्ञान, राजा (ब्रह्मा) को ब्रह्म-ज्ञान और उदयसिंह को योग-प्रदान करके भगवती वहाँ अन्तर्हित हो गई और वे कुमारगण अपने को कृतकृत्य समझते हुए अपने घर आ गये । उन लोगों के उस प्रकार के रम्य वरदान प्राप्त करने के उपरान्त रानी मलना ने एक तेजस्वी पुत्र का जन्म दिया ।१-७। जो श्यामवर्ण एवं सात्यकि का अंश था । वह शूर, रणकुशल और राजाओं का प्रियपात्र हुआ । आषाढ़मास में एक दिन उदयसिंह अपने घोड़े पर बैठकर अकेला ही उर्वी (उरई) नगरी पहुँच गये । वहाँ बली एवं निर्भय उस सुन्दर नगरी को देखते हुए जिसमें चारों जाति के लोग सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे, द्विज-शाला में ब्राह्मणों को देखा । वह ब्राह्मण और गाय का महान् भक्त था इसीलिए वहाँ द्विजातियों को सुवर्ण देकर द्विज-देवताओं को प्रसन्न करता हुआ वह बली राजा के उस रमणीक महल में पहुँच गया । वहाँ स्थित अपने मामा और अन्य सभासदों को नमस्कार करने के उपरान्त राजा की आज्ञा पाकर उस धीमान् को बाँधने के लिए उनके शूर-वीर तैयार हो गये । वे सब हाथ में खड्ग लेकर सिंह के ऊपर गज की भाँति एक साथ ही उसके ऊपर टूट पड़े । राजा ने उस बालक को मंत्रमोहित करके एक लोहे का जाल-सा बनाकर उसी पर स्वयं स्थित हो गया था ।८-१४। उसी बीच देवमाया

एतस्मिन्नन्तरे वीरो बोधितो देवमायया । आगस्कृतान्रिपून्ज्ञात्वा खड्गहस्तः समावधीत् ।।१५
हत्वा पञ्चशतं शूरो हयारूढो महाबली । उर्वीया नगरीं प्राप्य जलपाने मनो दधौ ।।१६
कूपे दृष्ट्वा शुभा नार्यो घटपूर्तिकरीस्तदा । उवाच मधुरो वाक्यं देहि सुन्दरि मे जलम् ।।१७
दृष्ट्वा ताः सुन्दरं रूपं मोहनायोपचक्रिरे । भित्त्वा तासां तु वै कुम्भान्पाययित्वा हयं जलम् ।।१८
वनं गत्वा रिपुं जित्वा बद्ध्वा तमुभयं बली । चण्डिकापार्श्वमागम्य तद्वधाय मनो दधे ।।१९
श्रुत्वा स करुणं वाक्यं त्यक्त्वा स्वनगरं ययौ । नृपान्तिकमुपागम्य वर्णयामास कारणम् ।।२०
श्रुत्वा परिमलो राजा द्विजातिभ्यो ददौ धनम् । समाघ्राय स कृष्णांशं कृतकृत्योऽभवन्नृपः ।।२१
सम्प्राप्तैकादशाब्दे तु कृष्णांशे युद्धदुर्मदे । महीपतिर्निरुत्साहः प्रययौ देहलीं प्रति ।।२२
बलिं यथोचितं दत्त्वा भगिन्यै भयकातरः । रुरोद बहुधा दुःखं देशराजात्मजप्रजम् ।।२३
अगमा भगिनी तस्य दृष्ट्वा भ्रातरमातुरम् । स्वपतिं वर्णयामास श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ।।२४
अद्याहं स्वबलैः सार्द्धं गत्वा तत्र महावतीम् । हनिष्यामि महादुष्टं देशराजसुतं रिपुम् ।।२५
इत्युक्त्वा धुन्धुकारं च समाहूय महाबलम्। सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं तनुत्यजम् ।।२६
केचिच्छूरा हयारूढा उष्ट्रारूढा महाबलाः । गजारूढा रथारूढाः संययुश्च पदातयः ।।२७

(शारदा) ने उस कुमार को बोधित किया । पश्चात् वह खड्ग हाथ में लेकर उन अपराधी शत्रुओं का संहार करने लगा । थोड़ी देर में पाँच सौ शूरों का हनन किया । तदनन्तर वह महाबली अपने घोड़े पर बैठकर उर्वी (उरई) नगरी के भीतर प्रविष्ट हो गया । वहाँ पहुँचकर उसे जलपान करने की इच्छा हुई । उसने कूप पर जल-घट भरने वाली सुन्दरियों से कहा—सुन्दरि ! मुझे (थोड़ा) जल चाहिए ।' वे स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य को देखकर उसे मोहित करने का उपक्रम करने लगीं । उस समय उसने उनके घड़े फोड़कर अपने घोड़े को जलपान कराकर उसके उपरान्त वन में पहुँचकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की और उन्हें बाँधकर चण्डिका के सम्मुख उपस्थित किया एवं सोच रहा था कि देवी को इसकी भेंट (बलि रूप में) की जाय । इस होने वाली कारुणिक चर्चा को सुनकर राजा पृथिवीराज अपने नगर से वहाँ राजा परिमल के पास आये और उनसे सभी कारणों को कह सुनाया । इसे सुनकर राजा परिमल द्विजातियों को धन-दान करके उदयसिंह के शिर का स्पर्श एवं आघ्राण (सूँघना) किया । इससे अपने को कृतकृत्य समझने लगे । उस युद्ध-दुर्मद उदयसिंह के ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करने पर वह राजा पृथिवीराज हतोत्साहित होकर अपनी देहली (दिल्ली) को लौट गया । भय-कातर होकर अपनी-भगिनी को यथोचित बलि प्रदानपूर्वक वह देशराज-पुत्र (उदयसिंह) द्वारा जनित दुःख का अनुभव करके अत्यन्त रुदन किया । उसकी भगिनी का नाम अगमा था । उसने अपने भाई को आकुल देखकर उसका समाचार अपने पतिदेव से कहा । उसे सुनकर राजा ने यह कहा—मैं आज अपनी सेना लेकर महावती (महोबा) नगर जाकर उस दुष्ट देशराज-पुत्र (उदयसिंह) का हनन करूँगा । इतना कहकर महाबली धुंधुकार (धांधू) को बुलाकर आज्ञा दिया—मेरी सात लाख सेना को जो सदैव प्राण परित्याग के लिए कटिबद्ध रहती है, शीघ्र सुसज्जित करो । कुछ शूरवीर घोड़े पर बैठकर जा रहे हैं, कुछ ऊँट, हाथी और रथ पर तथा उनके साथ पदाति (पैदल) सेना भी जा रही है ।१५-२७। देवसिंह (डेबा) को समय-परिज्ञान का वर प्राप्त

देवसिंहस्तु कालज्ञः श्रुत्वा चागमनं रिपोः । नृपपार्श्वं समागम्य सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ।।२८
श्रुत्वा परिमलो राजा विह्वलोऽभूद्भयातुरः । बलखानिस्तमुत्थाय हर्षयुक्त इवाह च ।।२९
अद्याहं च महीराजं धुन्धुकारं ससैन्यकम् । जित्वा दण्डचं च भवतः करिष्यामि तवाज्ञया ।।३०
इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य सेनापतिरभून्मुने । तदा तु निर्भया वीरा दृष्ट्वा राजानमातुरम् ।।३१
चतुर्लक्षबलैः सार्द्धं ते युद्धाय समाययुः । शिशपाख्यं वनं घोरं छेदयित्वा रिपोस्तदा ।।३२
ऊषुस्तत्र रणे मत्ताः सर्वशत्रुभयङ्कराः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र धुन्धुकारादयो [१]बलाः ।।३३
कृत्वा कोलाहलं शब्दं युद्धाय समुपाययुः । पूर्वाह्णे तु भृगुश्रेष्ठ सन्नद्धास्ते शतघ्निपाः ।।३४
शतघ्नीभिस्त्रिसाहस्रैः पञ्चसाहस्रका ययुः । द्विसहस्रशतघ्नीभिः सहिताश्चन्द्रवंशिनः ।।३५
सैन्यं षष्टिसहस्रं च स्वर्गलोकमुपाययौ । तदर्द्धं च तथा सैन्यं महीराजस्य संक्षितम् ।।३६
दुद्रुवुर्भीरुकाः शूरा बलखानेर्दिशो दश । रथा रथै रणे हन्युर्गजाश्चैव गजैस्तथा ।।३७
हया हयैस्तथा उष्ट्रा उष्ट्रपैश्च समाहनन् । एवं तुमुले जाते दारुणे रोमहर्षणे ।।३८
हाहाभूतान्स्वकीयांश्च सैन्यान्दृष्ट्वा महाबलान् । अपराह्णे भृगुश्रेष्ठ पञ्च शूराः समाययुः ।।३९
ब्रह्मानन्दः शरैः शत्रूननयद्यमसादनम् । देवसिंहस्तथा भल्लैराह्लादस्तत्र तोमरैः ।।४०
बलखानिः स्वखड्गेन कृष्णांशस्तु तथैव च । द्विलक्षान्क्षत्रियाञ्जघ्नुः सर्वसैन्यैः समन्ततः ।।४१

हो चुका है, अतः उन्होंने शत्रु का आगमन जानकर राजा के पास जाकर सभी कुछ कह सुनाया । इसे सुनकर राजा परिमल भयभीत होकर आकुल होने लगे। उन्हें कातर होते देखकर बलखानि (मलखान) ने उमङ्ग में आकर उन्हें उठा लिया और हर्षातिरेक से कहना आरम्भ किया—आज मैं राजा पृथिवीराज और सेना धुंधुकार (धांधू) को जीतकर आपके आदेश से राजकर उनसे ग्रहणकर सदैव के लिए उन्हें आपकी प्रजा (रियाया) बना दूँगा।२८-३०। मुने ! इतना कहकर उसने नमस्कार पूर्वक सेनानायक होना स्वीकार किया। उस समय उसके निर्भय वीरगण अनुगामी हुए, किन्तु राजा फिर भी कातर ही बने रहे। वे वीर चार लाख की संख्या में होकर वहाँ युद्धस्थल में युद्ध के लिए पहुँच गये। वहाँ शत्रु के शिशपा नामक वन को काटकर वे शत्रु भयंकर एवं मदोन्मत्त सैनिक रहने लगे। उसी बीच धुंधुकार (धांधू) आदि महाबल कोलाहल करते हुए वहाँ पहुँचकर युद्धारम्भ कर दिये। भृगुश्रेष्ठ ! पूर्वाह्न के समय के सैनिक गण कटिवद्ध होकर तीन सहस्र की संख्या में तोप लेकर पाँच सहस्र की संख्या में स्वयं घोर युद्ध करने लगे। उसमें चन्द्रवंशी क्षत्रिय अपनी दो सहस्र तोप के साथ सेना समेत युद्ध कर रहे थे।३१-३५। उस भयानक संग्राम में चन्द्रवंशी राजा परिमल की साठ सहस्र की सेना धर्मपुरी पहुँच गई तथा उसकी आधी सेना पृथिवीराज की भी। बलखान (मलखान) के शूरवीर भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। रथी-रथी के साथ, हाथी-हाथी के साथ, घोड़े-घोड़े के साथ और ऊँट वाले ऊँटवाले के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे। भृगुश्रेष्ठ ! उस रोमाञ्चकारी भीषणयुद्ध में अपनी सेना को पराजित होते देखकर दूसरे पहर दिन में पाँच शूरों ने एकत्र होकर सैनिकों के भीतर प्रवेश किया—ब्रह्मानंद अपने वाणों द्वारा शत्रुओं को यमपुरी भेजने लगे उसी प्रकार देवसिंह भाले, आह्लाद (आल्हा) तोमर, बलखानि (मलखान) अपने खड्ग और उदय सिंह भी उसी भाँति शत्रुओं को भूमिशायी कर रहे थे—इन शूरों ने अपने सैनिकों समेत शत्रु की दो लाख सेनाओं को समाप्त कर दिया।३६-४१। उस समय महाबली

---

१. बलिन इत्यर्थः ।

दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं धुन्धुकारो महाबलः । आह्लादं च स्वभल्लेन गजारूढः समावधीत् ॥४२
आह्लादे मूर्च्छिते तत्र देवसिंहो महाबलः । भल्लेन भ्रातरं तस्य दंशयामास वेगतः ॥४३
स तीक्ष्णव्रणमासाद्य गजस्थः संमुमोह वै । आगताः शतराजानो नानादेश्या महाबलाः ॥४४
शस्त्राण्यस्त्राणि तेषां तु छित्त्वा खड्गेन वत्सजः । स्वखड्गेन शिरांस्येषां पातयामास भूतले ॥४५
हते शत्रुसमूहे तु तच्छेषास्तु प्रदुद्रुवुः । महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा भग्नं स्वसैन्यकम् ॥४६
आजगाम गजारूढः शिवदत्तवरो बली । रौद्रेणास्त्रेण हृदये चावधीद्वत्सजं रिपुम् ॥४७
आह्लादं च तथा वीरं देवं परिमलात्मजम् । मूर्च्छयित्वा महावीराञ्छत्रुसैन्यमुपागमत् ॥४८
पूजयित्वा शतघ्नीश्च महावधमकारयत् । रोपणस्त्वरितो गत्वा राज्ञे सर्वमवर्णयत् ॥४९
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखखानिर्महाबलः । कपोतं हयमारुह्य नभोमार्गेण चागमत् ॥५०
मूर्च्छयित्वा महीराजं स्वबन्धूंश्च सवाहनान् । कृत्वा नृपान्तमागम्य बन्धनाय समुद्यतः ॥५१
तदोत्थाय महीराजो महादेवेन बोधितः । पुनस्तांस्वशरै रौद्रैर्मूर्च्छयामास कोपवान् ॥५२
सुखखान्यादिकाञ्छूरान्सम्बध्य निगडैर्दृढैः । नृपं परिमलं प्राप्य पुनर्युद्धमचीकरत् ॥५३
हाहाभूतं स्वसैन्यं च दृष्ट्वा स उदयो हरिः । नभोमार्गे हयं कृत्वा ताः शतघ्नीरनाशयत् ॥५४
महीराजगजं प्राप्य बद्ध्वा तं निगडैर्बली । आह्लादपार्श्वमागम्य भ्रात्रे भूपं समर्पयत् ॥५५

धुंधुकार ने अपनी सेना को पराजित होते देखकर हाथी पर बैठे ही अपने भाले से आह्लाद पर आघात किया। आह्लाद के मूर्च्छित हो जाने पर महावली देवसिंह ने भाले से उसके भाई के ऊपर महान् वेग के साथ आघात किया, जिसके द्वारा तीक्ष्ण व्रण (घाव) होने से वह हाथी पर बैठा ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। उस समय बड़े-बड़े बलवान् सैकड़ों राजा अनेक देशों से आये थे, उनके शस्त्रास्त्रों को अपने खड्ग द्वारा बलखान (मलखान) ने शीघ्रता से काट दिया और उनके शिर भी काटकर भूतल में छिन्न-भिन्न कर दिया। उसमें जो कुछ थोड़े शेष रह गये वे भयभीत होकर भाग निकले इस प्रकार अपनी सेना का नाश देखकर बलवान् पृथिवीराज ने, जो शिव जी से वर प्राप्त कर चुका था अपने हाथी पर बैठकर उस रणभूमि में प्रस्थान किया—रौद्र अस्त्र से बलखान के हृदय में और उसी प्रकार आह्लाद तथा परिमल पुत्रगण—इन महावीरों को मूर्च्छित करके वे शत्रु की सेना में पहुँच गये। वहाँ शतघ्नी (तोपों) की पूजा करके उसके द्वारा सेनाओं का वध कराया। इस दृश्य को देखकर रोपण वीर ने राजा के पास पहुँचकर सम्पूर्ण वृतान्त का वर्णन किया ।४२-४९। इसी बीच वीर महाबली सुखखानि ने अपने कपोत नामक घोड़े पर बैठकर आकाश मार्ग से वहाँ रणस्थल में पहुँचकर पृथिवीराज को मूर्च्छित किया, और अपने बन्धुओं को वाहनों पर बैठाकर उनके समेत मूर्च्छित पृथिवीराज को बाँधने के लिए उनके पास वह पहुँचा ही था कि उसी समय पृथिवीराज ने महादेव द्वारा चेतना प्राप्तकर क्रुद्ध होकर पुनः अपने रौद्रास्त्र द्वारा उन सुखखानि आदि वीरों को मूर्च्छित करके और शृंखलाओं (जंजीरों) से उन्हें बाँधकर उनके समेत राजा परिमल के पास पहुँच पुनः युद्धारम्भ किया । उस समय हाहाकार करती हुई अपनी सेना को देखकर कृष्णांश (उदय सिंह) ने घोड़े पर बैठकर आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचकर उनकी तोपें और सेनाओं का समूल नाश कर दिया ।५०-५४। पश्चात् पृथिवीराज की हाथी के पास पहुँचकर उस बली ने पृथिवीराज को हथकड़ी-वेणी द्वारा दृढ़ बन्धन में डालकर आह्लाद (आल्हा) के

तदा तु पृथिवीराजो लज्जितस्तेन निर्जितः । पञ्चकोटिधनं दत्त्वा स्वगेहं पुनराययौ ।।५६
देवसिंहाज्ञया शूरो बलखानिर्हि वत्सजः । तैर्द्रव्यैर्नगरीं रम्यां कारयामास सुन्दरीम् ।।५७
शिरीषाख्यं पुरं नाम तेन वीरेण वै कृतम् । सर्ववर्णसमायुक्तं द्विक्रोशायामसंमितम् ।।५८
तत्रैव न्यवसद्वीरो वत्सजः स्वकुलैः सह । त्रिंशत्क्रोशे कृतं राष्ट्रं तत्रैव बलखानिना ।।५९
श्रुत्वा परिमलो राजा तत्रागत्य मुदान्वितः । आघ्राय वत्सजं शूरं देशराजसुतं तथा ।।६०
ब्रह्मानन्देन सहितः स्वगेहं पुनराययौ ।।६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

द्वादशाब्दे हि कृष्णांशे यथाजातं तथा शृणु । इषशुक्लदशम्यां च राज्ञां जातः समागमः ।।१
कान्यकुब्जे महारम्ये नानाभूपाः समाययुः । श्रुत्वा पराजयं राज्ञो महीराजस्य लक्षणः ।।२
कृष्णांशदर्शने वाञ्छा तस्य चासीत्तदा मुने । पितृव्यं भूपतिं प्राह द्रष्टुं यास्यामि तं शुभम् ।।३

पास आकर उन्हें पृथिवीराज को सौंप दिया । उस समय पृथिवीराज उससे पराजित होकर अत्यन्त लज्जित हुए और पाँच करोड़ का धन उन्हें (भेंट) प्रदानकर अपने घर चले गये । उस समय देवसिंह की आज्ञा प्राप्तकर वत्स पुत्र बलखानि ने उन द्रव्यों द्वारा एक सुन्दर नगरी का निर्माण कराया । उस वीर ने उस नगरी का शिरीस (शिरसा) नामकरण किया । उसमें सभी जाति के मनुष्य रह रहे थे जो दो कोश तक व्याप्त थी । उसी राजधानी में अपने परिवार समेत बलखानि रहकर अपना राष्ट्र तीस कोश में स्थापित किया । इसे सुनकर राजा परिमल अत्यन्त प्रसन्न होकर उदय सिंह समेत वहाँ आये और उनके शिर का आघ्राण करके ब्रह्मानन्द समेत पुनः अपनी राजधानी लौट गये ।५५-६१

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय-इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११।

अध्याय १२

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदय सिंह के बारहवें वर्ष की अवस्था में जो कुछ हुआ मैं कह रहा हूँ, सुनो—कान्यकुब्ज (कन्नौज) नामक राजधानी में आश्विन शुक्ल दशमी के दिन राजाओं का महान् समागम हुआ। लक्षण (लषन) ने उस समय पृथिवीराज की पराजय सुनकर उदय सिंह के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। मुने ! उसने अपने पितृव्य (चाचा) राजा जयचन्द्र से कहा—मैं उस (उदयसिंह) को देखने के

जितो येन महीराजः सर्वलोकप्रपूजितः । इति श्रुत्वा वचस्तस्य जयचन्द्रो महीपतिः ।।
भ्रातृजं प्रणतं प्राह शृणु शुक्लयशस्कर ।।४
राजराजपदं ते हि कथं संहर्तुमिच्छसि । इत्युक्त्वा जयचन्द्रस्तु तदाज्ञां नैव दत्तवान् ।।५
राजानस्ते च सहिताः स्वसैन्यैः परिवारिताः । कृष्णांशं द्रष्टुमिच्छन्तः संययुश्च महीपतिम् ।।६
शिरीषाख्यपुरस्थं च ज्ञात्वा कृष्णांशमुत्तमम् । महीपतिं पुरस्कृत्य समाजग्मुर्नृपास्तदा ।।७
ददृशुस्तं महात्मानं पुण्डरीकनिभाननम् । प्रसन्नवदनाः सर्वे प्रशशंसुः समन्ततः ।।८
तदा महीपतिः क्रुद्धो वचनं प्राह भूपतीन् । यस्येयं च कृता श्लाघा युष्माभिर्दूरवासिभिः ।।
पितरौ तस्य बलिनौ माहिष्मत्यां मृतिं गतौ ।।९
जम्बुको नाम भूपालो नार्मदीयैः समन्वितः । बद्ध्वा तौ प्रययौ गेहं लुण्ठयित्वा धनं बहु ।।
शिलापत्रे समारोप्य तयोर्गात्रमचूर्णयत् । शिरसी च तयोश्छित्त्वा वटवृक्षे समारुहत् ।।१०
अद्यापि तौ स्थितौ वीरौ हा पुत्रेति प्रभाषिणौ । प्रेतदेहे च पितरौ यस्य प्राप्तौ महाबलौ ।।
तस्योदयो वृथा ज्ञेयो वृथाकीर्तिः प्रियङ्करी ।।११
इति श्रुत्वा स कृष्णांशो भूपतीन्प्राह नम्रधीः । गतौ मत्पितरौ सार्द्धं गुर्जरे यत्र वै रणः ।।१२
म्लेच्छैर्नराशनैः सार्द्धं तन्नृपेण रणोऽभवत् । देशराजो वत्सराजो युद्धं कृत्वा भयङ्करम् ।।
म्लेच्छैस्तैश्च हतौ तत्र श्रुतेयं विश्रुता कथा ।।१३

लिए जाना चाहता हूँ, जिसने पृथिवीराज को पराजित कर समस्त लोकों में प्रतिष्ठा प्राप्त की है । इसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने अपने विनय-विनम्र भतीजे लक्षण (लषन) से कहा—'तुम्हारा पद राजाधिराज (महाराज) का है, इस प्रकार उसे क्यों नष्ट करना चाहते हो ।' इतना कहकर उन्होंने उसे आज्ञा नहीं प्रदान किया ।१-५। पश्चात् आये हुए राजगण अपनी सेना समेत उदयसिंह के दर्शनाभिलाषी होकर महीपति के यहाँ पहुँचे । वहाँ शिरीषपुर में स्थित उदयसिंह को जानकर वे राजगण महीपति को प्रमुख बनाकर उनके पास पहुँच गये । उस समय उदयसिंह को जैसे कमल की भाँति मुख सौन्दर्यपूर्ण दिखाई देता था, देखकर वे राजगण प्रसन्नतापूर्ण होकर चारों ओर उनकी प्रशंसा करने लगे ।६-८। उसे सुनकर क्रुद्ध होकर महीपति ने उस सभा के भीतर ही राजाओं से कहा—आप दूर निवासीगण जिसकी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, उनके पिता की मृत्यु महिष्मती नगरी में हुई है—जम्बूक नामक वहाँ का राजा अपने नर्मदा निवासी सैनिकों समेत यहाँ आकर उन्हें बाँधकर एवं अत्यन्त धन को लूटकर अपने घर चला गया। वहाँ शिलापत्र (पत्थर के कोल्हू) में उनकी देह को पिसवा दिया है और उनके शिर आज भी वहाँ वटवृक्ष में लटक रहे हैं । इस प्रकार वे वहाँ पुत्र कहते हुए आज भी स्थित हैं, जिसके बलवान पिता इस भाँति प्रेत शरीर में दुःखानुभव कर रहे हों, उसका अभ्युदय होना व्यर्थ है और उसकी प्रिय कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। इसे सुनकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह ने उन राजाओं के समक्ष कहा—मेरे पिता गुर्जर (गुजरात) गये थे, जहाँ वह युद्ध हुआ था । नरभक्षी म्लेच्छों के साथ वहाँ उस (गुजरात के) राजा का युद्ध आरम्भ हो गया । देशराज और वत्सराज वहाँ रण-स्थल में भीषण संग्राम करते हुए म्लेच्छों द्वारा स्वर्गीय हुए ।' ऐसा मैंने सुना था,

मातुलेनाद्य कथितं नवीनं मरणं तयोः । चेत्सत्यं वचनं तस्य पौरुषं मम पश्यत ।।१४
इत्युक्त्वा तान्स कृष्णांशो मातरं प्राह सत्वरम् । हेतुं च वर्णयामास भाषितं च महीपतेः ।।१५
श्रुत्वा वज्रसमं वाक्यं रुरोद जननी तदा । नोत्तरं प्रददौ माता पतिदुःखेन दुःखिता ।।१६
ज्ञात्वा पितृवधं श्रुत्वा जम्बूकं शिवकिङ्करम् । मनसा स च कृष्णांशस्तुष्टाव परमेश्वरीम् ।।१७
जय जय जय जगदम्ब भवानि ह्यखिललोकसुरपितृमुनिखानि ।
त्वया ततं सचराचरमेव विश्वं पातमिदं हृतमेव ।।१८
इति ध्यात्वा स कृष्णांशः सुष्वाप निजसद्मनि । तदा भगवती तुष्टा तालनं बलवत्तरम् ।।
मोहयित्वाशु तत्पार्श्वे प्रेषयामास सर्वगा ।।१९
चतुर्लक्षबलैः सार्द्धं तालनः शीघ्रमागतः । स्वसैन्यं चोदयामास चैकलक्षं महाबलम् ।।२०
बलखानिस्तदा प्राप्तश्चैकलक्षबलान्वितः । अनुजं तत्र संस्थाप्य शिरीषाख्ये महाबलः ।।२१
सज्जीभूतान्समालोक्य तानुद्याने ससैन्यकान् । भीतः परिमलो राजा कृष्णांशं प्रति चाययौ ।।२२
विह्वलं नृपमालोक्य कृष्णांशोऽऽश्वासयन्मुदा ।।२३
लक्षसैन्यं तदीयं च गृहीत्वा चाधिपोऽभवत् । शतघ्नयः पञ्चसाहस्रा नानावर्णाः सुवाहनाः ।।२४
पताकाः पञ्चसाहस्राः साहस्रं काष्ठकारिणः । गजा दशसहस्राश्च रथाः पञ्चसहस्रकाः ।।२५
त्रिलक्षाश्च हयाः सर्वे उष्ट्रा दशसहस्रकाः । शेषाः पदातयो ज्ञेयास्तस्मिन्सैन्ये भयानके ।।२६
तालनश्च समायातः सर्वसेनाधिपोऽभवत् । देवसिंहो रथानां च सर्वेषामीश्वरोऽभवत् ।।२७

किन्तु मामा ने आज उन दोनों के मरण में नवीनता प्रकट की है। यदि यह कहना इनका सत्य है, तो मेरे पौरुष को आप लोग देखियेगा, देर नहीं है।९-१४। इतना सभा में कहकर उदयसिंह अपनी माता के पास पहुँचे, उनसे महीपति का कथन स्पष्ट कहकर उन्होंने पूँछा भी, किन्तु वज्र के समान इस वाणी को सुनकर उनकी माता ने पतिःदुःख से दुःखी होकर रुदन करने के अतिरिक्त कुछ उत्तर नहीं दिया। पश्चात् उदयसिंह ने अपने पिता का वध और राजा जम्बूक का शिवभक्त होना जानकर भगवती दुर्गा जी का मानसिक स्मरण करना आरम्भ किया—उस शिव की अर्द्धांगिनी जगज्जननी की बार-बार जय हो, जो निखिल लोक के सुर, पितृ और मुनियों की निधान रूप हैं। तू ही इस चर, अचरमय जगत् को उत्पन्न, पालन एवं संहार करती हो। इस प्रकार मानसिक ध्यान करते हुए उदयसिंह शय्यापर नींदमग्न हो गये। उस समय भगवती ने प्रसन्न होकर बली तालन को मोहित कर उसे उदयसिंह के पास भेजा। अपनी चार लाख सेना समेत तालन वहाँ शीघ्र आ गया। बलखानि (मलखान) भी एक लाख सेना समेत वहाँ आया। वह अपनी राजधानी की रक्षा में अपने छोटे भाई को रखकर आया था। इस प्रकार अपने उद्यान में सेनाओं का जमाव देखकर राजा परिमल भयकातर होकर उदयसिंह के समीप पहुँचे। उन्हें आतुर देखकर उदयसिंह ने उन्हें धैर्य प्रदान किया और उनकी एक लाख सेना के अधिनायक भी हो गये। वहाँ की एकत्र हुई सेना में पाँच सहस्र तोप, नाना भाँति के वाहन, पाँच सहस्र पताकाएँ, एक सहस्र बढ़ई (काष्ठ का कार्य करने वाले), दश सहस्र गजराज, पाँच सहस्र रथ, तीन लाख घोड़े, दश सहस्र ऊँट और शेष पैदल की सेना थी।१५-२६। सम्पूर्ण सेनाओं का आधिपत्य तालन को सौंपा गया। उसी प्रकार देवसिंह सभी

बलखानिर्हयानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् । आह्लादश्च गजानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् ॥
पत्तीनां चैव सर्वेषां कृष्णांशश्चाधिपोऽभवत् ॥२८
नत्वा ते मलनां भूपो दत्त्वा दानान्यनेकशः । समाययुश्च ते सर्वे दक्षिणाशां बलान्विताः ॥२९
पक्षमात्रगतः कालो मार्गे तस्मिन्रणैषिणाम् । छित्त्वा तत्र वनं घोरं नानाकण्टकसंयुतम् ॥
सेनां निदारयामासुर्निर्भयास्ते महाबलाः ॥३०
देवसिंहमतेनैव योगिनस्ते तदाभवन् । नर्तकश्चैव कृष्णांशश्चाह्लादो डमरूप्रियः ॥३१
मड्डुधारी तदा देवो वीणाधारी च तालनः । वत्सजः कांस्यधारी च बलखानिर्महाबलः ॥३२
मातुरग्रे स्थितास्ते वै ननृतुः प्रेमविह्वलाः । मोहिता देवकी चासीन्न ज्ञातं तत्र कारणम् ॥३३
मोहितां मातरं दृष्ट्वा परं हर्षमुपाययुः । तदा तां कथयामासुर्वयं ते तनया हि भोः ॥३४
नत्वा तां प्रययुः सर्वे पुरीं माहिष्मतीं शुभाम् । नगरं मोहयामासुर्वाद्यगानविशारदाः ॥३५
दूत्या सार्द्धं रिपोर्गेहं ययुस्ते कार्यतत्पराः । नृत्यगानसुवाद्यैश्च राज्ञस्ते मोहने रताः ॥३६
विसंज्ञां महिषीं कृत्वा कृष्णांशः सर्वमोहनः । प्राप्तवांस्तत्र यत्रासौ तत्सुता विजयैषिणी ॥३७
दृष्ट्वा सा सुन्दरं रूपं श्यामाङ्गं पुरुषोत्तमम् । मुमोह वशमापन्ना मैथुनार्थं समुद्यता ॥३८
दृष्ट्वा तथा गतां नारीं कृष्णांशः श्लक्ष्णया गिरा । शत्रोर्भेदं च पप्रच्छ कामिनीं मदविह्वलाम् ॥३९

रथ सेना के अधिनायक हुए, बलखानि सभी अश्वारोही सेना के गजराओं के आह्लाद और पदाति (पैदल) सेनाओं के अधिनायक उदयसिंह बनाये गये । यात्रा के समय सभी भाइयों ने रानी मलना का चरण-स्पर्श किया तथा अनेक भाँति का दान करके दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े । उन रणाभिलाषी वीरों का एक पक्ष (पन्द्रह दिन) का समय मार्ग में व्यतीत हो गया । उपरान्त वे अपने इष्ट स्थान पर पहुँचकर वहाँ के घोर वन को कटवाकर जो अनेक भाँति के कण्टकों से आकीर्ण था, अपनी सेना को ठहरा दिया । वह निर्भय महाबली भ्रातृगण देव सिंह की आज्ञा से योगी का रूप धारण किया । नर्तन (नाचना) को उदयसिंह, डमरू को आह्लाद, झाल को देवसिंह, वीणा को तालन और कांस्य (कांसे की बनी हुई टुन-टुनी) मजीरा को वत्स पुत्र महावलवान बलखानि (मलखान) ने ग्रहण किया और अपनी माता के सम्मुख प्रेममग्न होकर वे लोग नृत्य करने लगे । उसे देखकर देवकी मोहित हो गई, किन्तु उसका कारण उन्हें ज्ञात नहीं हुआ।२७-३३। अपनी माता को मोहित होते देखकर वे सब अत्यन्त हर्षित हुए और अपनी माता से कहा—माता ! हम सब आपके ही पुत्र हैं। पश्चात् उन्हें नमस्कार करके वे कुमारगण शुभ-माहिष्मती नगरी में पहुँचकर वहाँ के नागरिकों को अपने नृत्य-गान आदि से मुग्ध करने लगे क्योंकि वे अपनी कला में अत्यन्त निपुण थे। कार्य परायण वे कुमार दूती के साथ अपने शत्रु के महल में पहुँचकर अपनी-अपनी नृत्य आदि की कला-कुशलता से उस राजसभा को मुग्ध कर दिये । सबको मोहित करने वाले उदयसिंह ने तो राजा की प्रधान रानी को जड़ की भाँति चेतनाहीन (अत्यन्त मुग्ध) ही कर दिया। अनन्तर वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ राजकुमारी विजया रहती थी। उसने पुरुषश्रेष्ठ उदयसिंह को, जो कि श्यामवर्ण और सौन्दर्यपूर्ण रूप था, देखकर वह इतना मोह-मुग्ध हुई कि (लज्जाहीन होकर वह) उनसे उपभोग कराने के लिए तैयार हो गई।३४-३८। उदयसिंह ने उसे उस प्रकार काम-पीड़ित देखकर उस मदमत्त कामिनी से शत्रु को

साह भो देवकीपुत्र यदि पाणिं ग्रहीष्यसि । तर्हि ते कथयिष्यामि पितुर्भेदं हि दारुणम् ॥४०
तथेत्युक्त्वा स बलवाँस्तस्याः पाणिं गृहीतवान् । ज्ञात्वा भेदं रिपोः सर्वं तामाश्वास्य ययौ मुदा ॥४१
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी बाधिता प्राह योगिनम् । देशराजप्रियाहारं नवलक्षस्य मूल्यकम् ॥
तुभ्यं दास्यामि सन्तुष्टा नृत्यगानविमोहिता ॥४२
इति श्रुत्वा वत्ससुतस्तां प्रशस्य गृहीतवान् । प्रययौ बन्धुभिः सार्द्धं जम्बुको यत्र तिष्ठति ॥४३
ननर्त तत्र कृष्णांशो बलखानिरगायत । आह्लादस्तालनो देवो दध्नुर्वाद्यगतीर्मुदा ॥४४
मोहितोऽभून्नृपस्तत्र कालियः स्वजनैः सह । कामं वस्त्रं कृष्णाङ्ग यच्च ते हृदये स्थितम् ॥४५
इति श्रुत्वा वचः शत्रोर्बलखानिर्महाबलः । तमाह भो महीपाल लक्षावर्तिर्वरांगना ॥
स्वविद्यां दर्शयेन्मह्यं तदा तृप्तिं व्रजाम्यहम् ॥४६
इति श्रुत्वा तथा मत्वा लक्षावर्तिं नृपोत्तमः । सभायां नर्तयामास देशराजप्रियां तथा ॥४७
सा वेश्या सुतमाह्लादं ज्ञात्वा योगित्वमागतम् । रुरोद तत्र दुःखार्ता नेत्रादश्रूणि मुञ्चती ॥४८
रुदितां तां समालोक्य रुदन्नाह्लाद एव सः । स्वभुजौ ताडयामास तत्प्रियार्थे महाबलः ॥४९
कृष्णांशस्तत्र तं हारं तस्याः कण्ठे प्रदत्तवान् । उवाच क्रोधताम्राक्षस्तामाश्वास्य पुनः पुनः ॥५०
अहं चोदर्यसिहोऽयं पितुर्वैरार्थमागतः । हनिष्यामि रिपुं भूपं सात्मजं सबलं तथा ॥५१

पराजित करने के लिए भेद पूछा । उसने कहा—देवकी पुत्र ! आप मेरा हाथ पकड़कर अपनी बनाने की प्रतिज्ञा करें तो मैं अपने पिता के कठिन भेदों को बता सकती हूँ । उन्होंने स्वीकार करते हुए उसका हाथ पकड़ा और शत्रु के भेद को जानकर उसे अश्वासन दिया, पश्चात् प्रसन्न होकर अपने निवास स्थान को ओर लौट पड़े । उसी बीच रानी ने प्रेममग्न होकर उस योगी से कहा—मैं तुम्हारे नृत्य से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें इस देशराज की रानी का नौलखाहार उपहार में दे रही हूँ' इसे सुनकर वत्स पुत्र (बलखान) ने रानी की विस्तृत प्रशंसा करते हुए उसे सादर ग्रहण किया । पश्चात् सबको साथ लेकर वे राजा जम्बूक के महल में पहुँचे ।३८-४३। वहाँ पहुँचकर उदयसिंह नृत्य और बलखानि गान करने लगे एवं शेष तालन आदि उसी भाँति अपने वाद्यों की ध्वनि में मग्न होने लगे । वहाँ अपने बन्धुओं समेत कालिय (करिया) भी उपस्थित था । उसने उदयसिंह से कहा—श्याम जी ! मनइच्छित वस्तु की याचना करो। शत्रु की इस वाणी को सुनकर बलखानि ने कहा—राजन् ! लक्षावर्ति नामक वेश्याङ्गना यदि अपनी कला-प्रवीणता का प्रदर्शन कराये तो हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी । इसे सुनकर राजा ने लक्षावर्ति नामक वेश्या को जो देशराज की परम प्रेयसी थी, उस सभा में नृत्य करने के लिए आदेश प्रदान किया । वह वेश्या पुत्र आह्लाद को योगी का वेष धारण किये देखकर अपनी आँखों से आँसुओं की धारा बहाती हुई रुदन करने लगी। उस समय उसे रुदन करते देखकर आह्लाद ने भी रुदन करते हुए अपनी दोनों भुजाओं पर ताल ठोकना आरम्भ किया, उधर उदयसिंह ने उसके कंठ को उसी हार से विभूषित कर दिया । क्रुद्ध होकर रक्तनेत्र करके आह्लाद ने कहा—मैं और यह उदयसिंह अपने पिता के वैर शोधनार्थ यहाँ आये हैं । अपने शत्रु राजा एवं उसके समस्त परिवार का हनन मैं निश्चित करूँगा।४४-५१। इसे सुनकर बलवान् कालिय ने

इति श्रुत्वा वचस्तस्य कालियो बलवत्तरः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य शतव्यूहसमन्वितः ।।५२
तेषां च बन्धनायैव कपाटं समरुद्ध सः । ताञ्छत्रून्समनुज्ञाय पाशहस्तान्सशस्त्रगान् ।।५३
स्वं स्वं खड्गं समाकृष्य क्षत्रियास्ते समाघ्नत । शतशूरे हते तैश्च कालियो भयकातरः ।।५४
त्यक्त्वा तातं प्रदुद्राव ते तु गेहाद्बहिर्ययुः । स्वसैन्यं शीघ्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ।।
शिबिराणि कृतान्येव नर्मदाकूलमास्थितैः ।।५५
कृत्वा तु नर्मदासेतुं नल्वमात्रं सुपुष्टिदम् । स्वसैन्यं तारयामास चतुरङ्गसमन्वितम् ।।५६
रुरोध नगरीं सर्वां बलखानिर्बलैर्युतः । शतघ्नीरग्रतः कृत्वा महाशब्दकरीस्तदा ।।
माहिष्मत्याश्च हर्म्याणि पातयामास भूतले ।।५७
नराश्च स्वकुलैः सार्द्धं मुख्यद्रव्यसमन्विताः । विन्ध्याद्रेश्च गुहां प्राप्य तत्रोषुर्भयकातराः ।।५८
कालियस्तु गजानीके पञ्चशब्दगजे स्थितः । हस्तिपा दशसाहस्रा युद्धाय समुपाययुः ।।५९
तस्यानुजः सूर्यवर्मा त्रिलक्षैस्तुरगैर्युतः । तुण्डिलश्च रथैःसार्द्धं रथस्थश्च सहस्रकैः ।।६०
रङ्कणो वङ्कणश्चोभौ चतुर्लक्षपदातिभिः ।।
जग्मतुस्तौ महाम्लेच्छौ म्लेच्छभूपसहस्रकैः । दाक्षिणात्यग्रामपास्ते तौ पुरस्कृत्य संययुः ।।६१
उभे सेने समासाद्य युद्धाय समुपस्थिते । तयोश्च तुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।।६२
त्रियामे रुधिरैस्तेषां नदी प्रावर्तत द्रुतम् । दृष्ट्वास्रजां नदीं घोरां मांसकर्दमवाहिनीम् ।।

अपने पिता की आज्ञा से शतव्यूह सेनाओं को उन लोगों को बाँधने तथा प्रमुख दरवाजे के फाटक (किवाड़) को बन्द करने के लिए आदेश दिया । शत्रु की उस सशस्त्र सेना को सम्मुख उपस्थित होते देखकर वे क्षत्रिय वीर अपने-अपने खड्ग लेकर उसमें प्रविष्ट होकर उन्हें धराशायी करने लगे । उन सौ शूरों की सेना को नष्ट होते देखकर कालिय (करिया) भयभीत होकर अपने पिता को छोड़कर वहाँ से भाग गया और आह्लाद आदि ने क्षत्रिय वीर उस राजमहल से बाहर हो गये । पश्चात् शीघ्रता से अपनी सेना में पहुँचकर उसे सुसज्जित कर युद्ध के लिए तैयार हो गये । इन लोगों ने नर्मदा के तट पर अपने शिविरों को लगवाया था ।५२-५५। पुनः नल्वमात्र एक सुपुष्ट सेतु बनाकर उसी द्वारा अपनी सेनाओं को नर्मदा पार किया । और बलखानि (मलखान) आदि वीरों ने निश्चितकर चारों ओर से सेना द्वारा उस माहिष्मती नगरी को घेर लिया तथा भीषण गर्जना करने वाली तोपों के गोले से उस नगरी की गगन चुम्बी अट्टालिकाओं वाले महलों को भूमि पर गिरवाना आरम्भ कर दिया । वहाँ के निवासी भयभीत होकर अपने परिवार एवं प्रमुख द्रव्यों को लेकर विंध्य-पर्वत की गुफाओं में जाकर रहने लगे। उस कालिय (करिया) ने गजों की सेना के मध्य में पंचशब्द नामक गजराज पर स्वयं स्थित होकर दश सहस्र पीलवानों समेत रणस्थल की ओर प्रस्थान किया। उसी भाँति सूर्य वर्मा नामक उसका अनुज तीन लाख अश्वारोहियों की सेना को साथ लेकर, तुंदिल रथ पर बैठकर एक सहस्र रथियों के साथ, रंकण-वंकण नामक दोनों म्लेच्छों, चार लाख की सेना और एक सहस्र म्लेच्छ राजाओं एवं दक्षिण प्रदेश निवासी इन दोनों म्लेच्छों को अग्रसर करके युद्धस्थल की ओर प्रस्थित हुए। रणस्थल में दोनों सेनाएँ हृदय-विदारक तुमुल युद्ध करने लगीं।५६-६२। उस तीन प्रहर के युद्ध में रक्त की नदी प्रवाहित हो चली जिसमें मांस पंक की

बलखानिरमेयात्मा खड्गपाणिर्नरो ययौ ॥६३
भल्लहस्तस्तदा देवो मनोरथहये स्थितः । बिन्दुलस्थश्च कृष्णांशः खड्गेनैव रिपूनहन् ॥६४
आह्लादश्च गदाहस्तः पोथयामास वाहिनीम् । रूपणो नाम शूद्रश्च शक्तिहस्तोन्यहन्रिपून् ॥
तालनो हस्तनिस्त्रिंशो माहिष्मत्यां हनन्ययौ ॥६५
एवं महाभये जाते रणे तस्मिन्महाबले । दुद्रुवुः सर्वतो वीराः पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ॥६६
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा कालियो बलखानिकम् । गजस्थस्ताडयामास स्वबाणैस्तं महाबलः ॥६७
हरिणी वडवा तस्य ज्ञात्वा स्वामिनमातुरम् । गजोपरि समास्थाय स्वपादैस्तमपातयत् ॥६८
पतिते कालिये वीरे पञ्चशब्दो महागजः । शृंखलैस्ताडयामास शूरांस्तान्मदमत्तकान् ॥६९
मूर्च्छिते पञ्चशूरे तु रूपणो भयकातरः । देवकीं वर्णयामास यथाजातं गजेन वै ॥७०
तदा तु दुःखिता देवी दोलमारुह्य सत्वरा । तं गजं च समासाद्य वर्णयामास कारणम् ॥७१
गजराज नमस्तुभ्यं शक्रदत्त महाबल । एते पुत्रास्तु ते वीर पालनीया यथा पितुः ॥७२
इति श्रुत्वा दिव्यगजो देवमायाविशारदः । देवकीं शरणं प्राप्य क्षमस्वागस्कृतं मम ॥७३
इत्युक्ते गजराजे तु कृष्णांशो बलवत्तरः । त्यक्त्वा मूर्च्छां ययौ तत्र यत्राह्लादश्च मूर्च्छितः ॥७४
तमुत्थाप्य करस्पर्शैर्बलखानिसमन्वितः । पितुर्गजं महामत्तमाह्लादाय प्रदत्तवान् ॥
करालमश्वं दिव्याङ्गं रूपणाय तदा ददौ ॥७५
मूर्च्छितं कालियं शत्रुं बद्ध्वा स निगडैर्दृढैः । सेनान्तं प्रेषयामास बलखानिर्महाबलः ॥७६

भाँति बह रहा था, उसे देखकर बलखानि हाथ में खड्ग, देवसिंह मनोरथ घोड़े पर बैठे हुए हाथ में भाला लिए, विंदुल घोड़े पर बैठकर उदयसिंह खड्ग, आह्लाद गदा, रूपन शक्ति और तालन अपनी तलवार लिए शत्रु सेना को धराशायी करते हुए माहिष्मती में प्रविष्ट हो गये। वीरों के उस भीषण संग्राम में वीर सैनिक त्राहि-त्राहि करके भागने लगे।६३-६६। उस समय अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर कालिय ने हाथी पर स्थित रहकर ही अपने बाणों से बलखानि पर घात-प्रवात किया। पश्चात् उनकी हरिणी नामक घोड़ी ने अपने स्वामी को आतुर समझकर शत्रु की हाथी पर पहुँचकर अपने चरणों से उसे भूमि पर गिरा दिया। वीर कालिय (करिया) के गिर जाने पर पंचशब्द नामक गजराज ने लोहे की शृंखला (जंजीर) द्वारा इन मदोन्मत्त पाँचों भाइयों को मूर्च्छित कर दिया। पाँचों वीरों के मूर्च्छित होने पर रूपन ने शीघ्रता से देवकी के पास जाकर उस गजराज द्वारा किये गये कृत्य का यथावत् वर्णन किया। उसे सुनकर दुःख का अनुभव करती हुई देवकी ने डोला द्वारा वहाँ पहुँचकर उस गजराज से उन कारणों का विस्तृत वर्णन किया—शक प्रदत्त एवं महाबली गजराज तुम्हें नमस्कार है, वीर पुत्रों की रक्षा तुम्हें सदैव पिता की भाँति करनी चाहिए। इसे सुनकर देवमय निपुण वह गज देवकी की शरण में पहुँचकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगा।६७-७३। उसी बीच सबल उदयसिंह चेतना प्राप्तकर आह्लाद के समीप पहुँचकर उन्हें अपने करस्पर्श द्वारा चेतना प्रदान किये। पुनः बलखानि समेत अपने पिता के उस गजराज को आह्लाद को सौंपकर कराल नामक उस दिव्य अश्व को रूपन को दे दिया। अनन्तर मूर्च्छित उस कालिय नामक शत्रु को हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर महाबलशाली बलखानि ने उसे अपनी सेना में भेज

सूर्यवर्मा तदा ज्ञात्वा बद्धं बन्धुं च कालियम् । प्रययौ शत्रुसेनान्तं क्रोधेन स्फुरिताधर: ।।७७
तमायान्तं समालोक्य ते वीरा युद्धदुर्मदा: । रथस्थं मण्डलीकृत्य स्वं स्वमस्त्रं समाक्षिपन् ।।७८
कुण्ठितेऽस्त्रे तदा तेषां विस्मितास्तेऽभवन्मुने । चिन्तां च महतीं प्राप्ता: कथं वध्यो भवेदयम् ।।७९
तस्यास्त्रैस्ते महावीरा व्रणार्तिभयपीडिता: । त्यक्त्वा युद्धं पुनर्गत्वा रणं चक्रु: पुन: पुन: ।।८०
एवं कति दिनान्येव बभूव रण उत्तम: । आह्लादो वत्सजो देवस्तालनो भयसंयुत: ।।
कृष्णांशं शरणं जग्मुस्तेन वीरेण मोहिता: ।।८१
कृष्णस्तु तं तथा दृष्ट्वा देवीं विश्वविमोहिनीम् । तुष्टाव मनसा वीरो रात्रिसूक्तं पठन्हृदि ।।८२
तदा तुष्टा जगद्धात्री दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी । मोहयित्वा तु तं वीरं तत्रैवान्तरधीयत ।।८३
निद्रया मोहितं दृष्ट्वा कृष्णांशस्तु महाबल: । बबन्ध निगडैस्तं च देवक्यन्ते समागमत् ।।८४
तुन्दिलश्च तथा ज्ञात्वा भ्रातृशोकपरिप्लुत: । आजगाम हयारूढ: खड्गहस्तो महाबल: ।।
रिपुसैन्यस्य मध्ये तु बहुशूरानताडयत् ।।८५
माहिष्मात्याश्च ते शूरा रङ्कणेन समन्विता: । तत्सैन्यं भञ्जयामासुस्तालनेन प्रपालितम् ।।८६
प्रद्रुतं स्वं बलं दृष्ट्वा तालन: परिघायुध: । शिरांसि पोथयामास म्लेच्छानां च पृथक्पृथक् ।।८७
वङ्कणं च तथा हत्वा खड्गेनैव च रङ्कणम् । तुन्दिलं च तथा बद्ध्वा दिनान्ते शिबिरं ययौ ।।८८

दिया । सूर्यवर्मा को जिस समय यह मालूम हुआ कि मेरा भाई कालिय शत्रुओं द्वारा शृंखलाबद्ध है, क्रोध के वेग से अपने होठ फरफराते हुए उसी समय वह शत्रु की सेना में प्रविष्ट हो गया । उसे आते हुए देखकर वे युद्ध-दुर्मद वीर रथ पर बैठे हुए उसे चारों ओर से मंडलाकार घेरकर अपने-अपने अस्त्रों के प्रहार करने लगे । किन्तु मुने ! उसके ऊपर किसी अस्त्र का आघात नहीं हो पाता था । अत: अपने अस्त्रों को कुण्ठित देखकर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ और बहुत बड़ी चिन्ता हुई कि इसका बध कैसे किया जाय । पश्चात् उसके अस्त्रों से इन वीरों के देह में व्रण होने लगा । उससे पीडित होकर वे युद्ध से भाग जाते और पुन: आकर युद्ध करते । इस प्रकार कई दिन तक ऐसा ही उत्तम युद्ध होता रहा, अनन्तर आह्लाद, बलखानि, देवसिंह और तालन आदि उस वीर द्वारा भयकातर एवं मोहित होकर उदयसिंह की शरण में पहुँचे । उन्हें इस भाँति आकुल देखकर उदयसिंह ने विश्व को मोहित करने वाली देवी की मानसिक आराधना की वे अपने हृदय में रात्रिसूक्त का पाठंकर रहे थे।७४-८२। उस समय जगत् को धारण करने वाली एवं दुर्ग (किले) के समान कष्टों के नाश करने वाली भगवती दुर्गा जी प्रसन्न होकर उस (सूर्यवर्मा) वीर को मोहितकर वहीं अन्तर्हित हो गईं। महाबली उदयसिंह ने उसे निद्रामग्न देखकर हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर देवकी के समीप उपस्थित किया। इस समाचार के प्राप्त होने पर तुंदिल ने भ्रातृ-शोक से व्याकुल होकर हाथ में खड्ग लिए शत्रु सेना की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर शत्रु के सैनिकों को धराशायी करने लगा और माहिष्मती का रंकण नामक शूर तालन की सेना को। अपनी सेना को भागते हुए देखकर तालन ने अपने परिघ, अस्त्र द्वारा म्लेच्छों के शिरश्छेदन करके उन्हें भूमि में गिरा दिया। पुन: रंकण और वंकण का खड्ग द्वारा बध करके तथा तुंदिल को बाँधकर वे सायंकाल के समय शिविर में पहुँच

कालिये च रिपौ बद्धे सुबद्धे सूर्यवर्मणि । तुन्दिले च तथा बद्धे रङ्कणे वङ्कणे हते ।।८९
सहस्रं म्लेच्छराजानो हतशेषा बलान्विताः । पक्षमात्रमहोरात्रं युद्धं चक्रुः समन्ततः ।।९०
प्रत्यहं तालनो वीरः सेनापतिरमर्षणः । षष्टिं भूपाञ्जघानाशु शत्रुसैन्यभयङ्करः ।।९१
भयभीता रिपोः शूराः हता भूपा हतौजसः । हतशेषा ययुर्गेहमर्द्धसैन्या भयातुराः ।।९२
जम्बुकस्तु तथा श्रुत्वा दुःखितो गेहमाययौ । गतं ह्यनशनं कृत्वा रात्रौ शोचन्नशेत सः ।।९३
निशीथे समनुप्राप्ते तत्सुता विजयैषिणी । पूर्णा तु सा कला ज्ञेया राधाया व्रजवासिनी ।।९४
आस्वास्य पितरं तं च ययौ मायाविशारदा । रक्षकाञ्छिबिराणां च मोहयित्वा समाययौ ।।९५
भ्रातरो तत्र गत्वासौ यत्र सर्वानबोधयत् । कृत्वा सा राक्षसीं मायां पञ्चवीरानमोहयत् ।।९६
निरस्त्रकवचान्बन्धून्प्रतिदोलां समारुहत् । पितुरन्तिकमासाद्य तस्मै भ्रातॄन्ददौ मुदा ।।९७
प्रभाते बोधिताः सर्वे स्नानध्यानादिकाः क्रियाः । कृत्वा ययू रिपोः शालां दृष्टवन्तो न तांस्तदा ।।९८
बभूवुर्दुःखिताः सर्वे किमिदं कारणं कथम् । तानुवाच तदा देवः प्राप्ता ह्यत्र रिपोः सुता ।।९९
कृत्वा सा राक्षसीं मायां हृत्वा तान्गेहमाययौ । तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गत्वा यत्रैव तद्गुरुः ।।१००
विन्ध्योपरि महारण्ये नानासत्त्वनिषेविते । कुटीरं तस्य तत्रैव नाम्नैवैलविली हि सः ।।
योगसिद्धियुतः कामी राक्षसेभ्यो हि निर्भयः ।।१०१

गये । इस प्रकार कालिय, सूर्य वर्मा, और तुंदिल के बांधे जाने एवं रंकण तथा वंकण के निधन होने पर वे म्लेच्छ राजगण जो सहस्रों की संख्या में वहाँ स्थित थे, अपनी सेना समेत एक पक्ष (पखवारा) तक रात दिन युद्ध करते रहे ।८३-९०। वीर सेनापति तालन ने क्रुद्ध होकर साठ म्लेच्छ राजाओं का शीघ्र वध कर दिया । वे (तालन) शत्रु की सेना के लिए काल रूप दिखाई देने लगे—म्लेच्छ शत्रु के शूरवीर तथा राजगण जो शेष रह गये अपनी अवशिष्ट सेना समेत भयभीत होकर अपने-अपने घर भाग गये । इस समाचार के श्रवण करने पर राजा जम्बूक को अत्यन्त दुःख हुआ, वे अनशन व्रत करते हुए रात में बिना भोजन किये ही शय्या पर शयन कर गये । चिन्तित रहने के कारण उन्हें नींद नहीं आई । आधी रात के समय उनकी विजया नामक पुत्री ने जो पूर्णकला की ज्ञाता तथा व्रज निवासिनी राधा रूप थी, अपने पिता को आश्वासन प्रदानकर शत्रु के शिविर स्थान पर पहुँचकर वहाँ के रक्षकों को मोहित कर दिया । पश्चात् अपने भाइयों के समीप पहुँचकर उन पाँच (आह्लाद आदि) वीरों को भी अपनी राक्षसी माया द्वारा मोहितकर अपने भाइयों को डोला में बैठाकर अपने पिता को समर्पित कर दिया । प्रातःकाल जागने पर स्नान-ध्यान आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर सब लोग शत्रु-स्थान गये, जहाँ उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया था, वहाँ उन्हें न देखकर अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए लोग कहने लगे कि ऐसा होने का कारण क्या है ? उस समय देवसिंह (डेबा) ने कहा—यहाँ शत्रु की पुत्री (विजया), आई थी, वही अपनी राक्षसी माया द्वारा उन्हें यहाँ से भगा ले गई है, अतः तुम लोग मेरे साथ वहाँ चलो जहाँ उसके गुरु रहते हैं । उसके गुरु का नाम ऐलविली है, वे विंध्यपर्वत के ऊपर भाँति-भाँति के पशु आदि से निसेवित उस महावन में कुटी बनाकर रहते हैं । वह योग-सिद्धि प्राप्त है, इसीलिए उसे राक्षसों से कोई भय नहीं है ।९१-१०१। किन्तु, इतना होते

जम्बुकस्य सुता तत्र प्रत्यहं स्वजनैर्युता । एकाकिनी च सा रात्रौ स्वं गुरुं तमरीरमत् ।।१०२
कृतेयं चैल विलिना माया मनुजमोहिनी । कार्यसिद्धिं गमिष्यामो गत्वा तं पुरुषाधमम् ।।
इति श्रुत्वा तु चत्वारो विनाह्लादं ययुर्वनम् ।।१०३
गीतनृत्यप्रवाद्यैश्च मोहयित्वा च तं दिने । वासं चक्रुश्च तत्रैव धूर्तं मायाविशारदम् ।।१०४
स तु पूर्वभवे दैत्यश्चित्रो नाम महागुरुः । बाणकन्यामुषां नित्यमवाञ्छच्छिवपूजकः ।।
जात ऐलविली नाम यक्षपूजो स वेगवान् ।।१०५
तयोर्मध्ये प्रमाणोऽयं विवाहो मे यदा भवेत् । तदाहं त्वां भजिष्यामि संत्यक्त्वोद्वाहितं पतिम् ।।१०६
हते तस्मिन्महाधूर्ते गत्वा संग्राममूर्द्धनि । जम्बुकस्य ययुर्दुर्गं दृष्ट्वा ते तं समारुहन् ।।
हत्वा तत्र स्थितान्वीराञ्छतघ्न्यः परिखाकृताः ।।१०७
तदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली । जित्वा पञ्च महावीरान्बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः ।।
शैवं यज्ञं च कृतवांस्तेषां नाम्नोपबृंहितम् ।।१०८
रूपणस्तु तथा ज्ञात्वा देवकीं प्रत्यवर्णयत् । तदा तु दुःखिता देवी भवानीं भयहारिणीम् ।।
मनसा च जगामाशु शरण्यां शरणं सती ।।१०९
तदा तुष्टा जगद्धात्री स्वप्नान्ते तामवर्णयत् । अहो देवकि कल्याणि पुत्रशोकं त्यजाधुना ।।११०
यदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली । होमं कर्ता स मन्दात्मा तेषां च बलिहेतवे ।।१११
मोहयित्वा तदाहं तं मोचयित्वा च ते सुतान् । विजयं ते प्रदास्यामि मा च शोके मनः कृथाः ।।११२
इति श्रुत्वा सती देवी नमस्कृत्य महेश्वरीम् । पूजयामास विधिवद्धूपदीपोपहारकैः ।।११३

हुए भी वह अत्यन्त कामी है । राजा जम्बूक की पुत्री प्रतिदिन स्वजनों समेत या अकेले ही आकर उसके साथ रमण करती है । उसी ऐलविली ने मनुष्य मोहित करने वाली इस माया को उसे प्रदान किया है । उस नीच पुरुष के समीप पहुँचकर हम लोग अवश्य कार्य-सिद्ध कर लेंगे, इसे सुनकर आह्लाद के अतिरिक्त वे चारो भाई उस वन के लिए चल दिये । वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने उस धूर्त मायावी को अपने नृत्य-गान द्वारा मुग्ध करके उस दिन उसी के निवास स्थान पर निवास किया । वह नराधम पूर्वजन्म में चित्र नामक महाराक्षस था, जो बाणासुर की कन्या उषा को अपनाने के लिए नित्य शिव जी की आराधना कर रहा था । इस जन्म में इसका ऐलविली नाम हुआ है । वह अत्यन्त आवेग से यक्ष की पूजा कर रहा है, क्योंकि उन दोनों में यह निश्चय हुआ है कि जब मेरा विवाह संस्कार हो जायेगा तो उस विवाहित पति का त्याग करके मैं सदैव के लिए आपकी हो जाऊँगी । पश्चात् इन लोगों ने उसका वध करके पुनः उस रणस्थल में पहुँचकर जम्बूक के दुर्ग पर चढ़ाई कर दी । और चारो ओर से उसे घेरकर वहाँ के वीरों को धराशायी कर दिया। उस समय राजा जम्बूक ने जिन्हें शिवजी का वरदान प्राप्त था, उन पाँचों महावीरों को पराजित करके हथकड़ी बेड़ी द्वारा उन्हें बाँधकर उनकी बलि देने के निमित्त शैव-यज्ञ करना आरम्भ किया। तदुपरान्त इसका आनुपूर्वी वर्णन रूपन ने देवकी से किया। उसे सुनकर अत्यन्त अधीर होकर देवकी ने भयनाशिनी भगवती पार्वती की शरण में जाकर उनकी मानसिक आराधना की। १०२-१०९। प्रसन्न होकर

एतस्मिन्नन्तरे राजा देवमायाविमोहितः । सुष्वाप तत्र होमान्ते ते च जाता ह्यबन्धनाः ॥११४
तैर्बद्धो जम्बुको राजा निगडैरायसैर्दृढैः । ते तं बद्ध्वा ययुः शीघ्रं देवकीं प्रति निर्भयाः ॥११५
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कालियाद्यास्त्रयः सुताः । त्रिलक्षं सैन्यमादाय युद्धाय समुपाययुः ॥११६
पुनर्युद्धमभूद्घोरं सेनयोरुभयोस्तदा । तालनाद्याश्च चत्वारो हत्वा तां रिपुवाहिनीम् ॥११७
त्रींञ्छत्रून्कोष्ठकीकृत्य स्वशस्त्रैर्जघ्नुरूर्जिताः । एवं दिनानि कतिचित्तत्र जातो महारणः ॥११८
कालियो दुःखितो भूत्वा सस्मार मनसा हरम् । मोहनं मन्त्रमासाद्य मोहयामास तान्रिपून् ॥११९
एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकी पतिदेवता । पातिव्रत्यस्य पुण्येन सुतान्तिकमुपागता ॥१२०
बोधयित्वा तु कृष्णांशं पञ्चशब्दगजास्थितम् । पुनस्तुष्टाव जननीं सर्वविश्वविमोहिनीम् ॥
तदा तुष्टा स्वयं देवी बोधयामास तान्मुदा ॥१२१
आह्लादः सूर्यवर्माणं कालियं च ततोऽनुजः । जघान बलखानिस्तं तुन्दिलं जम्बुकात्मजम् ॥१२२
ते तु पूर्वभवे विप्र जरासन्धः सकालियः । द्विविदो वानरः शूरः सूर्य्यवर्मेह चाभवत् ॥१२३
त्रिशिरास्तुन्दिलो जातः शृगालः स च जम्बुकः । नित्यवैरकराः सर्वे भूपाश्चासन्महीतले ॥१२४
हतेषु शत्रुपुत्रेषु देवकी जम्बुकं रिपुम् । खड्गेन तर्जयामास पतिशोकपरायणा ॥१२५
कृष्णांशः शिरसी पित्रोर्गृहीत्वा स्नेहकातरः । जम्बुकस्यैव हृदये स्थापयामास विह्वलः ॥१२६

जगज्जननी देवी ने उनसे कहा—देवकि ! कल्याणि ! इस समय पुत्र-शोक क्यों कर रही हो । जिस समय जम्बूक हवन करते हुए उन लोगों की बलि देने के लिए प्रस्तुत होगा मैं उस समय उसे मोहित कर तुम्हारे पुत्रों को मुक्तकर उन्हें विजय प्रदान करूँगी, इसलिए मेरा कहना है कि तुम अपने मन में शोक के लिए स्थान मत दो । इसे सुनकर उस पतिव्रता ने नमस्कारपूर्वक धूप, दीप एवं उपहार द्वारा सविधि महेश्वरी देवी की पूजा सुसम्पन्न की । इसी समय राजा देव-माया द्वारा मोहित होकर निद्रित हो गये, और ये लोग बन्धनमुक्त होने पर दृढ़ शृंखला द्वारा उस राजा को बाँधकर निर्भय होकर अपनी माता देवकी के पास पहुँचे । इसे सुनकर कालिय आदि तीनों पुत्रों ने तीन लाख सैनिकों को साथ लेकर रणस्थल में जाते ही युद्ध की घोषणा की । उन दोनों सेनाओं का आपस में पुनः घोर संग्राम आरम्भ हुआ, जिसमें तालन आदि चारों वीरों ने उस सेना का हनन करके उन तीन भाइयों को जो प्रमुख शत्रु थे, घेर कर अपने-अपने अस्त्रों से कठिन आघात-प्रतिघात करना आरम्भ किया । इस प्रकार समान रूप से कई दिन तक वह युद्ध होता रहा । उस समय कालिय दुःखी होकर भगवान् शंकर का मानसिक स्मरण करने लगा । पश्चात् मोहन-मंत्र द्वारा शत्रुओं को मुग्ध कर रहा था ।११०-११९। उसी समय पतिपरायण देवकी देवी ने अपने पतिव्रत पुण्य के प्रभाव से अपने पुत्रों के पास पहुँचकर पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित उस पुत्र को बोधित करती हुई निखिल विश्व का विमोहन करने वाली माता को पुनः प्रसन्न किया, जिससे देवी द्वारा चेतना प्राप्तकर आह्लाद ने सूर्यवर्मा, उदयसिंह ने कालिय, और बलखानि ने जम्बु पुत्र तुन्दिल का निधन किया । विप्र ! पूर्व जन्म में कालिय जरासंध था, उसी भाँति सूर्य वर्मा द्विविद नामक बानर, तुन्दिल त्रिशिरा राक्षस और जम्बूक शृगाल था । इस भूतल पर ये नृपगण सदैव ईर्ष्या, वैर एवं कलह किया करते थे । इस प्रकार शत्रु के पुत्रों के निधन होने के उपरान्त पतिशोकपरायण देवकी ने शत्रु जम्बूक को खड्ग से छिन्न-भिन्न किया । अनन्तर उदयसिंह ने स्नेह से आर्द्र होकर अपने पिता के दोनों शिर अधीर होते हुए

विहस्य तौ तदा तत्र प्रोचतुर्वचनं प्रियम् । चिरं जीव हि कृष्णांश गयां कुरु महामते ॥
इति वाणी तयोर्जाता बलिनोः प्रेतदेहयोः ॥१२७
खड्गहस्ता च सा देवी शिलायन्त्रे तु तं रिपुम् । संस्थाप्य चोदयामास स्वपुत्रान्हर्षसंयुता ॥१२८
हे पुत्राः स्वपितुः शत्रुं जम्बुकं पुरुषाधमम् । खण्डं खण्डं च तिलशः कृत्वानन्दसमन्विता ॥१२९
सञ्चूर्णयत तद्गात्रं तत्तैलैर्मदनिर्मितैः । स्नास्याम्यहं तथेत्युक्त्वा रुरोद जननी भृशम् ॥१३०
तथा कृत्वा तु ते पुत्रा महिषीं ससुतां तदा । बलखानियुतास्तत्राहूय चक्रुश्च तत्क्रियाम् ॥१३१
तदा परिमलं राज्ञी दृष्ट्वा स्वामिनमातुरम् । मरणायोन्मुखं विप्रं पञ्चत्वमगमन्मुने ॥१३२
तत्सुता खड्गमानीय बलखानिभुजं प्रति । कृतिल्दा मूर्च्छयित्वा तं तत्पक्षानन्वधावत ॥१३३
तालनं देवसिंहं च रामांशञ्च तथाविधम् । कृत्वान्यांश्च तथा शत्रूनगच्छत्कुलकातरा ॥१३४
कृष्णांशं मोहयित्वाशु मायया च समाहरत् । हते तत्र शते शूरे बलखानिरमर्षितः ॥
तच्छिरश्च समाहृत्य चितायां च समाक्षिपत् ॥१३५
तदा वाणी समुत्पन्ना बलखाने शृणुष्व भोः । अवध्या च सदा नारी त्वया वध्या ह्यधर्मिणः ॥१३६
फलमस्य विवाहे स्वे भोक्तव्यं पापकर्मणः ! इति श्रुत्वा तदा दुःखं बलखानिर्ययौपुरम् ॥१३७
ततस्तु सैनिकाः सर्वे महाहर्षसमन्विताः । शतोष्ट्रभारवाह्यानि लुण्ठयित्वा धनानि च ॥१३८

जम्बूक के हृदय स्थान पर रखा । उस समय वे दोनों शिर हँसकर बोले—उदयसिंह, चिरजीवी रहो । महामते ! मेरे निमित्त गया में श्राद्ध अवश्य करो । उस प्रेत देह से निकली हुई ऐसी वाणी को सुनकर देवकी देवी ने शिला-यंत्र (पत्थर के कोल्हू) में शत्रु जम्बूक को स्थापित करती हुई हर्षातिरेक से पुत्रों से कही—पुत्रगण ! अपने पिता के परम शत्रु एवं इस नराधम जम्दूक का तिल की भाँति खण्ड-खण्ड कर इसे इसमें पिसवा डालो, क्योंकि मैं इसकी देह के तेल को लगाकर स्नान करूँगी, इतना कहकर वे अत्यन्त रुदन करने लगीं । वे पुत्र उनकी आज्ञा पालन करने के उपरान्त बलखानि (मलखान) आदि पुत्रों के साथ रानियों समेत एकत्र होकर अपने पिता की अन्येष्टिक्रिया किये । उसी समय रानी मलना ने अपने पति राजा परिमल को मरणासन्न देखा । विप्र ! उस समय उनके देहावसान हो जाने पर उनकी (जम्बूक की) पुत्री खड्ग लेकर बलखानि (मलखान) को मूर्च्छित करने के उपरान्त उनके पक्ष के तालन, देवसिंह एवं आह्लाद (आल्हा) को मूर्च्छित करती हुई शत्रु के अन्य शूर-सामन्तों को मूर्च्छित कर अपनी माया द्वारा उनका अपहरण कर ली । उसके द्वारा अपने सौ वीरों के निधन होने पर क्रुद्ध होकर बलखानि (मलखान) ने उसका शिर काटकर उसी चिता में डाल दिया ।१२०-१३५। उसी समय आकाशवाणी हुई—बलखाने (मलखान) ! मेरी बात सावधान होकर सुनो, स्त्री सदैव अवध्य मानी गई है, किन्तु , तुम्हारे जैसे अधर्मी ने इस (स्त्री-हत्या) काम को भी कर ही डाला, अतः इस पापकर्म का दुष्परिणाम अपने विवाह में तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा । इसे सुनकर वह बलखानि (मलखान) को अत्यन्त दुःख का अनुभव हुआ। अनन्तर उनके वीर सैनिकों ने हर्ष निमग्न होकर सैकड़ों ऊँट, धन लूटकर शेष बची हुई

महावतीं समाजग्मुः कृतकृत्यत्वमागताः । हतशेषैश्चार्द्धसैन्यैः सहिता गेहमाययुः ।।१३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कस्मिन्मास्यभवद्युद्धं तयोः कतिदिनानि च । तत्पश्चात्स्वपुरीं प्राप्य तदा किमभवन्मुने ।।१

सूत उवाच

पौषमास्यभवद्युद्धं तयोः शतदिनानि च । ज्येष्ठे मासि गृहं प्राप्ता दध्मुर्वाद्यान्यनेकशः।।२
श्रुत्वा परिमलो राजा स्वसुताञ्जयिनो बलीन् । ददौ दानानि विप्रेभ्यः सुखं जातं गृहे गृहे।।३
इति श्रुत्वा महीराजो बलखानिं महाबलम् । तत्रागत्य नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः।।४
अर्द्धकोटिमितं द्रव्यं मत्तः प्राप्य सुखीभव । माहिष्मत्यश्च राष्ट्रं मे देहि वीर नमोऽस्तु ते।।५
वर्षे वर्षे च तद्द्रव्यं गृहाण बलवन्प्रभो । इति श्रुत्वा तथा मत्वा बलखानिर्गृहं ययौ ।।६

आधी सेना समेत अपने को कृतकृत्य मानते हुए महावती (महोबा) के लिए प्रस्थान किया।१३६-१३९

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अध्याय १३

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—मुने ! इन दोनों माहिष्मती एवं महावती (महोबा) वालों का आपस में किस मास में कितने दिनों तक युद्ध होता रहा। पश्चात् अपनी राजधानी में पहुँचकर महावती (महोबा) वालों ने क्या किया ? १

सूत जी बोले—उन दोनों का भीषण संग्राम पौष मास से आरम्भ होकर समान रूप से सौ दिन तक होता रहा। इस प्रकार ज्येष्ठ में वे महावती के वीर अपने घर पहुँचकर अनेक प्रकार के वाद्यों की हर्ष ध्वनि करने लगे। बली एवं विनयी उन अपने पुत्रों की विजय ध्वनि को सुनकर राजा परिमल ने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें अनेक भाँति के दान प्रदान किये और वहाँ के प्रत्येक प्राणी सुख का अनुभव करने लगे। इस विजय-समाचार को सुनकर पृथिवीराज ने विनय-विनम्र पूर्वक नमस्कार के उपरान्त महाबलवान् बलखानि (मलखान) से कहा—वीर ! आधा कोटि द्रव्य मैं आपको दे रहा हूँ, इसे ग्रहणकर सुख का अनुभव करते हुए आप माहिष्मती का राज्य मुझे लौटा दें। आपको नमस्कार है, प्रभो ! मैं इतना ही द्रव्य प्रत्येक वर्ष समर्पित करता रहूँगा। इसे स्वीकार कर बलखानि (मलखान) ने उन्हें वह राज्य लौटा दिया

वयस्त्रयोदशाब्दे च कृष्णांशे बलवत्तरे । तथा जाता हरेर्लीला भृगुश्रेष्ठ तथा शृणु।।७
भाद्रे शुक्ले त्रयोदश्यां चाह्लादः सानुजो ययौ । गयार्थे धनमादाय हस्त्यश्वरथसङ्कुलम्।।८
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो वत्सजो हरिणीस्थितः । देवः पपीहकारूढः सुखखानिः करालके।।९
चत्वारो द्विदिनान्ते च गयाक्षेत्रं समाययुः । पूर्णिमान्ते पुरस्कृत्य षोडशश्राद्धकारिणः।।१०
शतं शतं गजांश्चैव भूषितांश्च रथांस्तथा । ददुर्हयान्सहस्रं च हेममालाविभूषितान्।।११
धेनूर्हिरण्यरत्नानि वासांसि विविधानि च । दत्त्वा ते सुफलीभूय स्वगेहाय दधुर्मनः।।१२
लक्षावर्तिस्तु या वेश्या ययौ बदरिकाश्रमम् । प्राणांस्तत्र परित्यज्य साप्सरस्त्वमुपागता।।१३
राकां चन्द्रे तु सम्प्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये । काश्यां समागता भूपा नाना देश्याः कुलैः सह।।१४
हिमालयगिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तत्र शार्दूलवंशीयो नेत्रसिंहो महीपतिः।।१५
रत्नभानौ हते शूरे नेत्रसिंहो भयातुरः । नवतुङ्गे समासाद्य तोषयामास वासवम्।।१६
द्वादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्कामृतं मुदा । पार्वत्या निर्मितं यत्तु दासवाय स्वसेविने।।१७
ददौ ढक्कामृतं राज्ञे पुनः प्राह शुभं वचः । अस्य शब्देन भूपाल त्वं सैन्यं जीवयिष्यसि।।१८
क्षयं शीघ्रं गमिष्यन्ति शत्रवस्ते महाभटाः । प्राप्ते ढक्कामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः।।१९

पश्चात् अपने घर चले गये ।२-६। भृगुश्रेष्ठ ! उदयसिंह के तेरह वर्ष की अवस्था में भगवान् ने जिस प्रकार की लीला की है, मैं बता रहा हूँ, सुनो । भाद्रपद (भादों) मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन आल्हाद (आल्हा) ने उदयसिंह को साथ लेकर अनेक हाथी, घोड़े, रथ एवं द्रव्य समेत गया में पिण्डदानार्थ प्रस्थान किया । उस यात्रा में उदयसिंह बिन्दुल (बेंदुल) पर, मलखान हरिणी पर, देवसिंह पपीहा पर और सुखखानि कराल नामक घोड़े पर आसीन थे । ये चारों दो दिन की यात्रा कर गया क्षेत्र पहुँच गये । वहाँ पूर्णिमा से आरम्भ कर अगले (क्वार के प्रथम) पन्द्रह दिन (पूर्णपितृयज्ञ) तक उन्होंने सोलह श्राद्धों को सुसम्पन्न किया । जिसमें उन्होंने सौ गजराज, सौ रथ और सुवर्ण की मालाओं से विभूषित एक सहस्र घोड़े का दान करते हुए गौ, हिरण्य रत्न एवं अनेक भाँति के वस्त्रों को अर्पित किया पश्चात् सुफल होने पर घर चलने के लिए निश्चित किया । उनके यहाँ की रहने वाली लक्षावर्ति (लखपातुर) नामक वेश्या ने भी बदरिकाश्रम में जाकर अपने प्राण परित्यागकर अप्सरत्व की प्राप्ति की (अर्थात् पुनः अप्सरा हो गई) । गया जी से लौटकर वे सब काशी में आकर निवास करने लगे, क्योंकि पूर्णचन्द्र (पूर्णिमा) के दिन राहु द्वारा चन्द्रमा में ग्रहण होने के नाते चारों ओर अंधकार हो गया था । उसमें स्नानार्थ अनेक देश के राजा काशी में आकर रह रहे थे । उनमें शार्दूल (बघेल) वंशीय नेत्र सिंह नामक राजा भी उपस्थित था, जो भाँति-भाँति की धातुओं से विभूषित एवं रमणीक उस हिमालय के प्रदेश का निवासी था । वीर रत्नभानु के निधन होने के उपरान्त भयभीत होकर नेत्रसिंह राजा ने नेत्रतुंग नामक स्थान पर पहुँचकर इन्द्र की आराधना की ।७-१६। बारह वर्ष के उपरान्त आराधना से प्रसन्न होकर देवराज (इन्द्र) ने उन्हें ढक्का (डमरू) रूपी अमृत प्रदान किया, जिसे पार्वती जी ने, अपने परम सेवक इन्द्र के लिए बनाया था । उसे राजा को देकर यह शुभ वाक्य भी कहा—नृप ! इसकी ध्वनि द्वारा तुम्हारी सेना जीवित हुआ करेगी और शत्रु के वीरभट्ट योद्धा शीघ्र नष्ट हो जायेंगे । इस डमरू की

नगरं कारयामास तत्र सर्वजनैर्युतम् । योजनान्तं चतुर्द्वारं दुराधर्षं परैः सदा ।।२०
नेत्रसिंहगढं नाम्ना विख्यातं भारते भुवि । काश्मीरान्ते कृतं राज्ये तेन शृङ्गसमन्ततः ।।२१
पालितं नेत्रसिंहेन तत्पुरं पुत्रवन्मुने । नेत्रपाल इति ख्यातो ग्रामोऽसौ दुर्गमः परैः ।।२२
सोऽपि राजा समायातो नेत्रसिंहो महाबलः । कन्या स्वर्णवती तस्य रेवत्यंशसमन्विता ।।
कामाक्ष्या वरदानेन सर्वमायाविशारदा ।।२३
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं कन्यां बालेन्दुसदृशाननाम् । मूर्च्छिताश्चाभवन्भूपा रूपयौवनमोहिताः ।।२४
दृष्ट्वा तां च तथाह्लादः सर्वरत्नविभूषिताम् । षोडशाब्दवयोयुक्तां कामिनीं रतिरूपिणीम् ।।
मूर्च्छितश्चापतद्भूमौ सा तं दृष्ट्वा मुमोह वै ।।२५
दोलामारुह्य तत्सख्यौ नृपान्तिकमुपाययुः । आह्लादस्तु समुत्थाय महामोहत्वमागतः ।।२६
दृष्ट्वा तथाविधं बन्धुं कृष्णांशः प्राह दुःखितः । किमर्थं मोहमायातो भवाँस्तत्त्वविशारदः ।।२७
रजो रागात्मकं विद्धि प्रमादं मोहजं तथा । ज्ञानासिना शिरस्तस्य छिन्धित्वमजितः सदा ।।२८
इति श्रुत्वा वचो भ्रातुस्त्यक्त्वा मोहं ययौ गृहम् । भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्सहस्रं वेदतत्परान् ।।२९
दुर्गामाराधयामास जप्त्वा मध्यचरित्रकम् । मासान्ते च तदा देवी दत्त्वाभीष्टं हृदि स्थितम् ।।३०

प्राप्ति के उपरान्त महाबली नेत्रसिंह ने एक सार्वजनिक नगर का निर्माण कराया, जो एक योजन (चारकोश) का विस्तृत एवं जिसके चारों दरवाजे शत्रुओं के लिए अत्यन्त अजेय थे। इस भारत प्रदेश के पृथिवीतल में वह 'नेत्रसिंह गढ़ के नाम से ख्यात हुआ। काश्मीर के समीप वाला प्रदेश उसका राज्य था, जो उसकी पर्वतीय शिखरों के चारों ओर विस्तृत है। मुने! उस नगर का पालन नेत्रसिंह ने अपने पुत्र की भाँति किया था, जिससे उस शत्रु द्वारा दुर्गम ग्राम का नाम 'नेत्रपाल' हुआ।१७-२२। (काशी की यात्रा में) उस बलवान् नेत्रसिंह नामक राजा के साथ स्वर्णवती (सोना) नामक उनकी पुत्री भी थी, जो रेवती के अंश से उत्पन्न होकर कामाक्षी देवी के वर प्रदान द्वारा सम्पूर्ण माया के कार्यों में निपुण हो गई थी। उस सौन्दर्यपूर्ण कन्या को जिसका मुख नवीन (द्वितीया के) चन्द्रमा के समान था, देखकर स्नान में आये हुए नृपतिगण उसके रूप-यौवन पर मुग्ध होकर अचेतन की भाँति अवाक् हो गये। उसी भाँति आह्लाद (आल्हा) भी समस्त रत्नों से अलंकृत उस सुन्दरी को देखकर जो सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के नाते काम-मद-विह्वल एवं रति-मूर्ति के समान थी, मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गये और वह कन्या भी उन्हें देखकर मोहित हो गई। उसे उसकी दोनों सखियों ने डोला में बैठाकर राजा के समीप पहुँचाया। उस महामोह से किसी भाँति चेतना प्राप्त करने पर आह्लाद (आल्हा) को पुनः चेतनाहीन होते देखकर अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए उदयसिंह ने कहा—आप तत्त्व के ज्ञाता हैं, अतः आप इतना मोह-मुग्ध क्यों हो रहे हैं? जबकि आप यह जानते हैं कि—रजोगुण से अनुराग उत्पन्न होता है, उससे मोह तथा मोह से प्रमाद होता है। तुम सदैव अजेय हो, इसलिए ज्ञान रूपी तलवार से इसका समूल नाश कर दो। भाई की ऐसी बात सुनकर उन्होंने मोह का त्याग किया पश्चात् अपने घर के लिए प्रस्थान किया। घर पहुँचकर भगवती दुर्गाजी की मध्यम चरित्र द्वारा आराधना करके सहस्रों वैदिक एवं विद्वान् ब्राह्मणों को प्रिय भोजन से प्रसन्न किया। उसी मास के अन्त में देवी ने उन्हें अभीष्ट सिद्धि

मोहयामास तां कन्यां विवाहार्थमनन्दिता । स्वप्ने ददर्श सा बाला रामांशं देवकीसुतम् ।।३१
प्रातर्बुद्ध्वा तु सञ्चिन्त्य महामोहमुपाययौ । तदा ध्यात्वा च कामाक्षीं सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ।।३२
पौषमासे तु सम्प्राप्ते शुककण्ठे सुपत्रिकाम् । बद्ध्वा तं प्रेषयामास शुकं पत्रस्थितं प्रियम् ।।३३
स गत्वा पुष्पविपिनं महावतिपुरीस्थितम् । नरशब्देन वचनं कृष्णांशाय शुकोऽब्रवीत् ।।३४
वीर तेऽवरजो बन्धुर्नाम्नाल्हादो महाबलः । तस्मै हि प्रेषिता पत्री स्वर्णवत्या हितप्रदा ।।३५
तां ज्ञात्वा च पुनस्तस्या उत्तरं देहि मत्प्रियम् । अथवा पत्रमालिख्य तत्त्वं मे कुरु कण्टके ।।३६
इति श्रुत्वोदयो वीरो गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । ज्ञातवांस्तत्र वृत्तान्तमाल्हादाय पुनर्ददौ ।।३७
जम्बुकश्च नृपो वीरो स्वदत्तवरो बली । अजेयोऽन्यनृपैर्वीर त्वया युधि निपातितः ।।३८
तथाविधं मत्पितरमिन्द्रदत्तवरं रिपुन् । तमेवं जहि सङ्ग्रामे मम पाणिग्रहं कुरु ।।३९
इति ज्ञात्वा स आह्लादस्तामाश्वास्य हृदि स्थिताम् । शुककण्ठे बबन्धाशु लिखित्वा पत्रमुत्तमम् ।।४०
स शुकः पन्नगः पूर्वं पुण्डरीकेन शापितः । रेवत्यंशस्य कार्यं च कृत्वा मोक्षत्वमागतः ।।४१
मृते तस्मिञ्छुके रम्ये देवी स्वर्णवती तदा । दाहयित्वा ददौ दानं विप्रेभ्यस्तस्य तृप्तये ।।४२
माघमासि च सम्प्राप्ते पञ्चम्यां कृष्णपक्षके । आह्लादः सप्तलक्षैश्च सैन्यैः सार्द्धं ययौ मुदा ।।४३
तालनाद्याश्च ये शूराः स्वं स्वं वाहनमाश्रिताः । आह्लादं रक्षयन्तस्ते ययुः पञ्चदशाहकम् ।।४४

प्रदानकर विवाहार्थ उस कन्या को मोहित किया। उस कुमारी ने स्वप्न में देवकी पुत्र आल्हाद (आल्हा) का दर्शन प्राप्त किया।२३-३१। प्रातःकाल उठने पर वह उसी विषय में चिन्ता करती हुई अत्यन्त मोहित हुई। उस समय उसने समस्त मनोरथ प्रदान करने वाली कामाक्षी देवी को ध्यानपूर्वक पौषमास के आरम्भ में एक पत्र लिखकर शुक (तोते) के कंठ में बाँध दिया, पश्चात् प्रियपत्रवाहक उस शुक (तोते) को भेज दिया। वह शुक महावती नगर के पुष्पवाटिका में पहुँचकर वहाँ उदयसिंह से मनुष्य की वाणी में कहा—वीर ! तुम्हारे भाई महाबलवान् आल्हाद (आल्हा) के लिए स्वर्णवती (सोना) राजकुमारी ने यह पत्र भेजा है। इसे जानकर मुझे उत्तर दें अथवा पत्र लिखकर मेरे कंठ में बाँधने की कृपा करें। इसे सुनकर वीर उदयसिंह ने उस पत्र को लेकर पढ़ा, समस्त वृत्तान्त जानकर पश्चात् आल्हाद (आल्हा) को दे दिया। उसमें लिखा था—वीर ! शिव द्वारा वरदान प्राप्त करने वाले राजा जम्बूक ऐसे अनेक अजेय भूपों को तुमने जिस प्रकार रणाङ्गण में स्वर्गीय बताया है, उसी प्रकार इन्द्र द्वारा वरदान प्राप्त मेरे पिता रूप शत्रु को संग्राम में पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करो।' इसे पढ़कर आल्हाद (आल्हा) ने उसे आश्वासन प्रदानकर उत्तर में एक पत्र लिखकर उसके गले में बाँध दिया। वह शुक (तोता) जन्मान्तर में पन्नग था, पुण्डरीक द्वारा शाप प्राप्त होने के नाते शुक का रूप धारण किये था। रेवती के अंश से उत्पन्न उस स्वर्णवती (सोना) नामक राजकुमारी के कार्य को सुसम्पन्न करने के उपरान्त यह शुक परलोक पहुँच गया।३२-४१। उसके देहावसान होने पर कुमारी स्वर्णवती (सोना) ने उसका दाहसंस्कार करके ब्राह्मणों को उसके तृप्त्यर्थ दान प्रदान किया। माघ मास की कृष्णपञ्चमी के दिन आल्हाद (आल्हा) ने प्रसन्न होकर अपनी सात लाख सेनाओं के साथ वहाँ के लिए प्रस्थान किया। तालन आदि सबल शूरों ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर चारों ओर से आल्हाद (आल्हा) की रक्षा में

वङ्गदेशं समुल्लङ्घ्य शीघ्रं प्राप्ता हिमालयम् । रूपणं पत्रकर्त्तारं बलखानिरुवाच तम् ।।४५
गच्छ त्वं वीर कवची करालाश्वं समास्थितः । पञ्चशस्त्रसमायुक्तो राजानं शीघ्रमावह ।।४६
युद्धचिह्नं तनौ कृत्वा मामागच्छ त्वरान्वितः । तथा मत्वा शिखण्डयंशो ययौ शीघ्रं स रूपणः ।।४७
स ददर्श सभां राज्ञो बहुशूरसमन्विताम् । पार्वतीयैर्नृपैः सार्द्धं सहस्रैर्बलवत्तरैः ।।४८
स उवाच नृपश्रेष्ठं नेत्रसिंहं महाबलम् । त्वत्सुतायाः विवाहाय बलखानिर्महाबलः ।।
सप्तलक्षबलैर्गुप्तः सम्प्राप्तस्तव राष्ट्रके ।।४९
तस्मात्त्वं स्वसुतां शीघ्रमाह्लादाय समर्पय । शुल्कं मे देहि नृपते युद्धरूपं सुदारुणम् ।।५०
इति श्रुत्वा वचस्तस्य स राजा क्रोधमूर्च्छितः । पट्टनाधिपमाज्ञाय भूपं पूर्णबलं रुषा ।।
अरुधत्स कपाटं च तस्य बन्धनहेतवे ।।५१
पाशहस्तान्छूरशतं पट्टनाधिपरक्षितान् । दृष्ट्वा स रूपणो वीरः खड्गयुद्धमचीकरत् ।।५२
हत्वा तन्मुकुटं राज्ञो गृहीत्वाकाशगो बली । बलखानिं तु संप्राप्य चिह्नं तस्मै न्यवेदयत् ।।५३
इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सप्तलक्षदलैर्युतः । अरुधन्नगरीं सर्वां नेत्रसिंहेन रक्षिताम् ।।५४
नेत्रसिंहस्तु बलवान्पार्वतीयैर्नृपैः सह । हिमतुङ्गतलं प्राप्य युद्धार्थी तान्समाह्वयत् ।।५५
सहस्रं च गजास्तस्य हया लक्षं महाबलाः । सहस्रं च नृपाः शूराश्चतुर्लक्षपदातिभिः ।।५६

सन्नद्ध रहकर पन्द्रहवें दिन उस राजधानी में पदार्पण किया । बंग देश को पारकर ये लोग शीघ्र हिमालय के प्रदेश में पहुँचकर संदेशवाहक रूपण से बलखानि (मलखान) ने कहा—वीर ! कवच धारणपूर्वक कराल (करील) नामक घोड़े पर बैठकर पाँचों अस्त्र लिए हुए तू राजा के पास पहुँचकर उन्हें हमारे आगमन की सूचना देने के पश्चात् अपनी देह में कोई युद्धचिह्न अंकित कर शीघ्र लौट आवो । इसे स्वीकार करके वह शिखण्डी का अंश रूपण राजधानी में शीघ्र प्रविष्ट हुआ । उसने वहाँ जाकर राजा की राजसभा को देखा, जिसमें पर्वतीय अनेक शूरवीर नृपतिगण अपने शूर-सामन्तों समेत उपस्थित होकर वहाँ की श्रीवृद्धि कर रहे थे । महाबलवान् राजा नेत्रसिंह से उसने कहा—बलखानि (मलखान) नामक महाबली योद्धा अपनी सात लाख सेना लेकर अपनी कन्या के पाणिग्रहणार्थ इस राजधानी में उपस्थित हुए हैं—अतः आप अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार आल्हाद (आल्हा) के साथ शीघ्र सुसम्पन्न करने के लिए प्रस्तुत हो जाँय । और राजन् ! इसका पुरस्कार मुझे भीषण-युद्ध के रूप में मिलना चाहिए । उसकी ऐसी बात सुनकर राजा ने क्रोधान्ध होकर पूर्णबल नामक अपने सदनाध्यक्ष को आदेश दिया । उसने रूपण को बाँधने हेतु (रंगभूमि के) विशाल दरवाजे को बंद करा दिया । नगराध्यक्ष की अध्यक्षता में आये हुए उनके रक्षकवीरों को देखकर जो सौ की संख्या में उपस्थित होकर पाश (फांस) अस्त्र से सुसज्जित थे, रूपण हाथ में खड्ग लेकर युद्ध करने के लिए उनके सम्मुख खड़ा हो गया । पश्चात् युद्ध में उन्हें धराशायी कर और राजा के मुकुट को लेकर आकाशमार्ग से वह बलखानि (मलखान) के समीप पहुँचकर उन्हें वह राज-मुकुट सौंप दिया । यह साहस देखकर बलखानि (मलखान) ने प्रसन्न होकर सात लाख सैनिकों समेत उस नेत्रसिंह की सुरक्षित राजधानी को चारों ओर से घेर लिया । बलवान् नेत्रसिंह ने भी अपने पर्वतीय राजाओं को साथ लेकर हिमालय की ऊँची तलहटी में उन्हें युद्धार्थ निमन्त्रित किया । उनकी सेना में एक सहस्र गज, एक लाख घोड़े, एक सहस्र की संख्या में वीर नृपगण और चार लाख पदाति (पैदल) की सेना थी ।४२-५६। गज सेनानायक योगसिंह ने अपनी सेना समेत बलखानि

योगसिंहो गजैः सार्द्धं बलखानिं समाह्वयत् । भोगसिंहो हयैः सार्द्धं कृष्णांशं च समाह्वयत् ।।५७
विजयो नृपपुत्रश्च सर्वभूपतिभिः सह । देवसिंहस्तथा म्लेच्छै रूपणं च समाह्वयत् ।।५८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोस्तत्र दारुणम् । निर्भयाश्चैव ते शूराः पार्वतीयाः समन्ततः ।।
जघ्नुस्ते शात्रवीं सेनां द्विलक्षां वीरपालिताम् ।।५९
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा चत्वारो मदमत्तकाः । दिव्यानश्वान्समारुह्य चक्रुः शत्रोर्महावधम् ।।
पुनरुज्जीवितं सर्वं ढक्कामृतरवाद्बलम् ।।६०
युद्धाय सम्मुखं प्राप भृगुश्रेष्ठ पुनः पुनः । अहोरात्रं रणश्चासीत्तेषां तत्रैव दारुणः ।।६१
एवं सप्ताह्नि सञ्जाते युद्धे भीरुभयङ्करे । उपायैर्बहुभिर्वीराश्चक्रुश्चैव रणं बहुम् ।।६२
पुनस्ते जीवमापन्ना जघ्नुस्तान्रिपुसैन्यपान् । तालनाद्यास्तु ते शूरा दुःखितास्तत्र चाभवन् ।।
निराशां विजये प्राप्य कृष्णांशं शरणं ययुः ।।६३
तानाश्वास्य स कृष्णांशस्तत्र दिव्यहये स्थितः । नभोमार्गेण बलवान्स्वर्णवत्यन्तिकं ययौ ।।६४
हर्म्योपरि स्थितां देवीं सर्वशोभासमन्विताम् । नत्वोवाच वचः श्लक्ष्णं किङ्करोहमिहोदयः ।।
शरण्यां त्वामुपागच्छं कामाक्षीमिव भामिनि ।।६५
वृत्तान्तं कथयामास यथासीच्च महारणः । श्रमेण कर्शिता वीरा निराशां जीवनेऽगमन् ।।६६
साह चोदयसिंह त्वं कामाक्ष्या मन्दिरं व्रज । अहं च स्वालिभिः सार्धं नवम्यां पूजने रता ।।६७

(मलखान) को, अश्व सेनाध्यक्ष भोगसिंह ने उदय सिंह को तथा राजपुत्र विनयकुमार ने राजाओं समेत उस रणस्थल में देवसिंह, तालन एवं रूपण को युद्ध के लिए ललकारा । दोनों के वीरभट सैनिकों ने एक दूसरे पर भीषण आघात-प्रतिघात करते हुए उस युद्ध को अत्यन्त भयानक बना दिया । पर्वतीय शूरों ने चारों ओर से घेरकर शत्रु की दो लाख सेनाओं का हनन कर दिया । उस समय अपनी सेना का विनाश होते उन चारों मत्तोन्मत्त वीरों ने अपने दिव्य अश्व वाहनों पर बैठकर शत्रुदल का महान् वध करना आरम्भ किया । किन्तु शत्रु के सैनिक वीर डमरू के ध्वनि रूप अमृतपान करने से शीघ्र जीवित हो जाते थे और बार-बार युद्धार्थ सम्मुख पहुँच जाते थे । भृगुश्रेष्ठ ! इस प्रकार बार-बार उनके जीवित होने के नाते वह युद्ध दिन-रात में समान रूप से चलते हुए सात दिन में भीषणाकार हो गया । उसमें वीरों ने अपनी अनेक भाँति की रण कुशलता प्रकट की, किन्तु शत्रुसैनिक पुनः जीवित होकर इनकी सेनाओं का बध करने लगे । इसे देखकर तालन आदि शूर वीरों ने अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए विजय के लिए सर्वथा निराश होकर उदयसिंह के पास पहुँचकर प्रार्थना की ।५७-६३। उन्होंने उन्हें धैर्य प्रदानकर अपने दिव्य वाहन पर बैठकर आकाश मार्ग से राजकुमारी स्वर्णवती (सोना) के महल में पहुँचकर उसे देखा, जो समस्त सौन्दर्य से अलंकृत होकर अपने प्रासाद पर देवी की भाँति स्थित थी । नमस्कारपूर्वक स्निग्ध वाणी द्वारा उससे कहा—मैं आपका सेवक उदय सिंह हूँ, भामिनि ! कामाक्षी देवी की भाँति आपकी शरण में मैं उपस्थित हुआ हूँ । पश्चात् उस युद्ध के समस्त वृत्तान्त को उससे निवेदन किया। और यह भी कहा कि—हमारे सैनिक वीर अत्यन्त क्लान्त होने के नाते विजय से निराश हो गये हैं। उसने कहा—उदयसिंह ! इस समय तुम कामाक्षी देवी के मन्दिर में चलो । मैं अपनी सखियों समेत नवमी के दिन देवी के

ढक्कामृतस्य वाद्येन पूजये सर्वकामदाम् । इति श्रुत्वा स बलवान्स्वसैन्यं प्रति चागमत् ।।६८
अर्धशेषां रणात्सेनां पराजाप्य च दुद्रुवुः । पट्टनाख्यपुरे प्राप्ता जयं प्राप्य महाबलाः ।।६९
पराजिते रिपौ तस्मिन्नेत्रसिंहसुतैः सह । गृहमागत्य बलवान्विप्रेभ्यो गोधनं ददौ ।।७०
नवम्यां पितरं प्राह देवी स्वर्णवती तदा । कामाक्षीसेवनेनाशु कुरु यागोत्सवं मम ।।
यत्प्रसादाच्च विजयी दुर्जयेभ्योऽभवद्भवान् ।।७१
इति श्रुत्वा पिता प्राह स्वप्नो दृष्टस्तथा मया । पूजनान्मङ्गलं राज्ञां नो चेद्विघ्नो हि शोभने ।।७२
पित्रोक्तैवं निशायां तु सा सुता पितुराज्ञया । ढक्कामृतस्य वाद्येन कामाक्षीमन्दिरं ययौ ।।७३
कृष्णांशो माल्यकारस्य वधूर्भूत्वा समागतः । ढक्कामृतं च नारीभ्यो गृहीत्वा त्वरितो ययौ ।।७४
एतस्मिन्नन्तरे वीराः षष्टिर्वाहनसंयुताः । ढक्कार्थं प्रययुः शीघ्रं सर्वशस्त्रैः समुद्यताः ।।७५
तानागतान्स बलवान्दृष्ट्वा खड्गं गृहीतवान् । पञ्चपञ्चाशतः शूराननयद्यमसादनम् ।।७६
कृष्णांशस्त्वरितो गत्वा रूपणो यत्र तिष्ठति । ढक्कामृतं च सम्प्राप्य हयारूढो ययौ सभाम् ।।७७
हृते ढक्कामृते दिव्ये नेत्रसिंहो भयातुरः । ऐन्द्रं यज्ञं तथा कृत्वा हवनाय परोऽभवत् ।।७८
प्रभाते समनुप्राप्ते ते वीराः स्वबलैः सह । तरसा प्रययुः सर्वे गजोष्ट्रहयसंस्थिताः ।।
दिनान्ते प्राप्तवन्तश्च यत्राभूत्स महारणः ।।७९
कृष्णांशः पूजयित्वा तं दध्मौ ढक्कामृतं बली । तच्छब्देन मृता वीराः पुनरुज्जीवितास्तदा ।।८०

पूजनार्थ वहाँ आऊँगी ।६४-६७। किसी स्त्री (दासी) के हाथ में वह डमरू वाद्य भी रहेगा । उससे उसका अपहरण कर लेना ।' इतना सुनकर वह बलवान् अपनी सेना में चला आया । पश्चात् अपनी बंधी हुई आधी सेना समेत रण का त्यागकर पटना नगर में आकर रहने लगा ।६८-७३। शत्रु के पराजित होने पर नेत्र सिंह ने अपने पुत्रों समेत घर आकर ब्राह्मणों को गो धनादि का दान दिया । पश्चात् नवमी के दिन राजकुमारी स्वर्णवती (सोना) ने अपने पिता से कहा—कामाक्षी देवी की आराधना के लिए मैं वहाँ जाना चाहती हूँ, अतः आप उस मेरे यज्ञोत्सव की तैयारी शीघ्र करा दें, क्योंकि उसी के प्रसाद से आपने अजेय शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है । इसे सुनकर पिता ने कहा—मैंने भी इसी भाँति का स्वप्न आज देखा है—उनके पूजन से ही राजाओं का कल्याण होता है, अन्यथा शोभने ! विघ्न का महान् भय होता है । पिता की ऐसी बात सुनकर उसने पिता की आज्ञा प्राप्तकर डमरू बजवाती हुई कामाक्षी देवी के मन्दिर में प्रवेश किया । उस समय उदसिंह वहाँ के माली की पुत्र-बहू (पतोहू) बनकर उपस्थित थे, वे स्त्री के हाथ से उस डमरू को छीनकर वहाँ से भाग निकले । उसी बीच साठ सैनिक वीरों ने वाहन पर बैठे हुए अस्त्रों से सुसज्जित होकर उस डमरू के निमित्त उदयसिंह के पीछे अनुगमन किया। उन सबल सैनिकों को देखकर उन दोनों वीरों ने उन साठ सैनिकों को यमपुरी भेज दिया । पश्चात् उदयसिंह रूपन को साथ लेकर अपने शिविर में पहुँच गये। उस अमृत रूपी डमरू के अपहरण हो जाने पर भयभीत होकर नेत्रसिंह ने पुनः 'ऐन्द्र' यज्ञ के समारम्भ की तैयारी के लिए आदेश प्रदान किया । प्रातःकाल होने पर अपने-अपने हाथी, घोड़े एवं ऊँटों आदि वाहनों पर बैठकर वेग से चलते हुए सायंकाल तक उस स्थान पर वे वीरगण पहुँच गये जहाँ वह घोर युद्ध नेत्र सिंह के साथ आरम्भ हुआ था। उदयसिंह ने पूजनपूर्वक उस डमरू की ध्वनि की जिससे उसकी अमृत ध्वनि सुनकर उनके मृतक सैनिकों ने पुनः जीवन प्राप्त किया।७४-८०। पुनः वे

सप्तलक्षबलं तस्य पुनः प्राप्तं मदातुरम् । रुरोध नगरीं सर्वां दध्मौ वाद्यान्यनेकशः ।।८१
रुद्धे तु नगरे तस्मिन्नेत्रसिंहो भयातुरः । स्वात्मानमर्पयामास वह्नौ शक्राय धीमते ।।८२
तदा प्रसन्नो भगवानुवाच नृपतिं प्रति । रामांशोऽयं च कृष्णांशो भुवि जातौ कलैकया ।।८३
तस्मै योग्याय सा कन्या रामांशाय यशस्विने । योगिनीयं स्वर्णवती रेवत्यंशादवतारिणी ।।८४
इत्युक्त्वा च स्वयं देवो ढक्कामृतमुमाप्रियम् । हृत्वा वह्नौ समाक्षिप्य दुर्गायै संन्यवेदयत् ।।८५
गते तस्मिन्सुरपतौ स राजा ब्राह्मणैः सह । महीपतिं प्रति ययौ मेलनार्थं समुद्यतः ।।८६
तथागतं नृपं दृष्ट्वा कृष्णांशश्च महीपतिः । आह्लादमातुलः प्राह मान्यः सर्वबलैः सदा ।।८७
राजन्नयं स बलवानाह्लादः सानुजैः सह । मत्पङ्क्तौ न स्थितो वीरः कुले हीनत्वमागतः ।।८८
आदौभीरी स्मृता तेषां किं त्वया विदितं न हि । यदि देया त्वया कन्या तर्हि त्वं हीनतां व्रज ।।८९
अतस्त्वं वचनं चेदं कुलयोग्यं शृणुष्व भोः । चातुरो बालकान्नीचांस्तालनेन समन्वितान् ।।९०
वञ्चयित्वा विवाहार्थे शिरांस्येषां समाहर । मण्डपान्ते मखं कृत्वा चामुण्डायै समर्पय ।।९१
त्वत्कन्यया समाहूता वीरा वै रेवती हि सा । पश्चात्कन्यां स्वयं हत्वा कुलकल्याणमावह ।।९२
नो चेद्भवान्क्षयं यायात्सकुलो जम्बुको यथा । इत्युक्त्वा स ययौ सार्द्धं यत्राह्लादस्य बान्धवः ।।९३

अपने साथ मदोन्मत्त सैनिकों द्वारा चारों ओर से उस नगरी को घेरकर अनेक भाँति के वाद्यों की ध्वनि कराने लगे । उस ध्वनि के साथ अपने नगरी को अवरुद्ध होना सुनकर भयभीत होते हुए नेत्रसिंह उस यज्ञ के अग्निकुण्ड में इन्द्र के प्रसन्नार्थ अपने को अर्पित कर दिया । उससे प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र ने राजा से कहा—आह्लाद (आल्हा) और उदय सिंह के रूप में राम और कृष्ण अपनी एक कला द्वारा इस भूतल में अवतरित हुए हैं, इसलिए उस यशस्वी रामांश आह्लाद (आल्हा) के योग्य आपकी कन्या है । क्योंकि वह कन्या भी योगिनी और रेवती के अंश से उत्पन्न है । इतना कहकर स्वयं देवराज ने पार्वतीप्रिय डमरू का अपहरण करके उसे उसी अग्निकुण्ड में प्रक्षिप्त कर श्री दुर्गाजी से निवेदन करते हुए अपने लोक को प्रस्थान किया । सुरपति इन्द्र के चले जाने पर उस (उदयसिंह) से संधि करने की इच्छा से नेत्रसिंह ने उर्वी (उरई) निवासी महीपति (माहिल) के यहाँ प्रस्थान किया । राजा को देखकर आथिथ्य सेवा के उपरान्त आह्लाद (आल्हा) के मामा ने उनसे कहा—'राजन् ! यद्यपि यह आह्लाद (आल्हा) अपने भाइयों के नाते अत्यन्त बलवान् है, तथापि हीन कुल में उत्पन्न होने के कारण मेरी पंक्ति (समाज) में इनका प्रवेश नहीं हो पाया है ।८१-८८। क्योंकि ऐसा सुना भी गया है कि इनकी 'पूर्वजा' जाति की अहीरिनि थी । क्या यह तुम्हें विदित नहीं है ! यदि इन्हें अपनी कन्या प्रदान करोगे तो तुम्हें भी समाज से बहिष्कृत होना पड़ेगा ।' अतः अपने कुल के योग्य मेरी इस बात को सुनो ! तालन समेत चौथे पुत्र (उदयसिंह) को कहीं किसी प्रवंचना द्वारा वंचित कर उस विवाह में उनके शिर काट लो और उसे मण्डप के अन्त में चामुण्डादेवी को अर्पित कर दो तथा तुम्हारी कन्या के आह्वान करने पर ही ये वीरगण आये हुए हैं । अतः इसके पश्चात् अपने हाथ से उस रेवती कन्या का भी शिरश्छेदन करना तुम्हें आवश्यक होगा, क्योंकि इसी में तुम्हारे कुल का कल्याण दिखाई दे रहा है ।८९-९२। अन्यथा राजा जम्बूक की भाँति आप भी सकुटुम्ब नष्ट हो जाँयेंगे । सुयोधन के अंश से उत्पन्न उस महीपति (माहिल) की बातों को स्वीकार

इति श्रुत्वा स शल्यांशः सुयोधनमुखेरितम् । तथेत्युक्त्वोत्सवं कृत्वा मण्डपान्ते विधानतः ॥
आह्लादस्य समीपं स गत्वैतद्वञ्चनाय हि । तमाह दण्डवत्पादौ गृहीत्वा नृपतिस्स्वयम् ॥९४
भवन्तोंऽशावताराश्च मया ज्ञाताः सुरोत्तमात् । निरस्त्रान्पञ्च युष्मांश्च पूजयित्वा यथाविधि ॥
रामांशाय स्वकन्यां च दास्यामि कुलरीतितः ॥९५
इत्याह्लादं समादिश्य स नृपश्छलमाश्रितः । दुर्गोत्सवे ययौ गेहं तद्वधाय समुद्यतः ॥९६
सहस्रं मण्डपे भूपान्संस्थाप्य स्वबलैः सह । तालनाद्यांश्च षट् शूरान्मण्डपान्ते समाह्वयत् ॥९७
विवाहप्रथमावर्ते योगसिंहोऽसिमुत्तमम् । वरमाहत्य शिरसि जगर्ज बलवान्रुषा ॥९८
तमाह तालनो धीमानयोग्यं भवता कृतम् । श्रुत्वाह नेत्रसिंहस्तं कुलरीतिरियं बलिन् ॥
निरायुधैः परैः सार्द्धं शस्त्रिणां सङ्गरो हि नः ॥९९
इति श्रुत्वा योगसिंहं कृष्णांशस्तं समारुधत् । भोगसिंहं तथाकृष्य बलखानिर्गृहीतवान् ॥१००
विजयं तृतीयावर्ते सुखखानिर्न्यरुन्द्ध वै । चतुर्थावर्तके शत्रुं नृपं पूर्णबलं शठम् ॥
रूपणस्तं गृहीत्वाशु युयुधे तद्बलैः सह ॥१०१
पञ्चमे बहुराजानं तालनश्च समारुधत् । षष्ठावर्ते नेत्रसिंहं तथाह्लादो गृहीतवान् ॥१०२
सम्प्राप्ते तुमुले युद्धे बहुशूराः क्षयं गताः । निरायुधाः षड् बलिनः संक्षम्य व्रणमुत्तमम् ॥

करके शल्यांश से उत्पन्न नेत्रसिंह ने उनसे कहा—मण्डप के अन्त में आपके समेत उन पाँचों व्यक्तियों को निरस्त्र वहाँ बुलाकर उस रात्रि में सबका पूजन करूँगा पश्चात् रामांश आह्लाद (आल्हा) को अपनी पुत्री प्रदान करूँगा । इतना कहकर वह आह्लाद के यहाँ गया जहाँ वे अपने बंधुओं आदि के साथ रह रहे थे । उनके चरण का साष्टाङ्ग दण्डवत् करके राजा ने उनसे कहा—आप लोग देवश्रेष्ठ के अंश से उत्पन्न हुए हैं, यह मुझे भी विदित हुआ है (अतः मैं आपकी बात अङ्गीकार कर रहा हूँ) इतना कहकर अपने घर चले आये और दुर्गाजी के महोत्सव में उन लोगों के वध करने की तैयारी करने लगे—अपनी सेना समेत एक सहस्र राजाओं को मण्डप के भीतर गुप्त रखकर पश्चात् तालन आदि उन छः शूरवीरों को विवाहार्थ उस मंडप में निमंत्रित किया ।९३-९७। वहाँ पहुँचने पर विवाह कार्य आरम्भ हुआ, उसकी पहली भाँवर में योगसिंह ने अपनी उस उत्तम तलवार से आह्लाद (आल्हा) के शिर पर आघात करके रोषपूर्ण गर्जना की । उसे देखकर तालन ने उनसे कहा—आपने महान् अनुचित कार्य किया है । उसे सुनकर नेत्रसिंह ने कहा—बलिन् ! यह मेरे कुल की रीति है अस्त्रहीन शत्रुओं से सशस्त्र हम लोग घोर युद्ध करते हैं । इसे सुनकर उदयसिंह ने योगसिंह को रोक लिया और भोगसिंह को बलखानि (मलखान) ने पकड़ लिया ।९८-१००। तीसरी भाँवर में प्रहार करने वाले विजय को सुखखानि ने रोक लिया, चौथी भाँवर में पूर्णबल नामक शठ राजा को रूपन ने पकड़कर उससे घोर युद्ध किया । पाँचवें भाँवर में बहु राजा को तालन ने रोका और छठें भाँवर में आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं नेत्रसिंह को पकड़ लिया । उस घोर युद्ध में अनेक शूरवीर आहत हुए । ये छहों व्यक्ति निरायुध रहने पर भी अपने-अपने शत्रुको अस्त्रहीन कर देते

निरायुधान्रिपून्स्वान्स्वांश्चक्रुः शक्तिप्रपूजकाः ॥१०३
एतस्मिन्नन्तरे देवः कालदर्शी समागतः । नभोमार्गेण तानश्वांस्तेभ्य आगत्य सन्ददौ ॥१०४
बिन्दुलं चैव कृष्णांशो देवस्तत्र मनोरथम् । रूपणश्च करालाश्वं चाह्लादस्तु पपीहकम् ॥१०५
हरिणीं बलखानिश्च तद्भ्राता हरिनागरम् । सिंहनीं तालनः शूरः समारुह्य रणोद्यतः ॥१०६
रात्रौ तन्नृपतेः सेनां हत्वा बद्ध्वा च तत्पतिम् । दोलां गेहाच्च निष्काश्य सप्तभ्रमरकारिताम् ॥१०७
स्वसैन्यं ते समाजग्मुर्निर्भया बलवत्तराः । तान्सर्वान्नेत्रसिंहादीन्दृष्ट्वा पाहीति जल्पितः ॥१०८
निगडैरेकतः कृत्वा पश्च भूपान् हि वश्चकान् । कारागारे महाघोरे तत्र तान्संन्यदारयत् ॥१०९
नेत्रसिंहो वरो भ्राता सुन्दरारण्यभूमिपः । हेतुं ज्ञात्वा ययौ शीघ्रं मायावी लक्षसैन्यकः ॥११०
तत्रागत्य हरानन्दो नाम्ना तानयुधद्बली । नेत्रसिंहस्य सैन्यं च चतुर्लक्षं तदागमत् ॥१११
पश्चलक्षै रणो घोरः सप्तलक्षयुतैरभूत् । पश्चाहोरात्रमात्रं च तयोश्चासीत्स संकुलः ॥
अर्द्धसैन्दं रिपोस्तत्र हतशेषमदुद्रुवत् ॥११२
विस्मितः स हरानन्दो रुद्रमायाविशारदः । बलाधिक्ययुताञ्ज्ञात्वा शिवध्यानपरोऽभवत् ॥११३
रचित्वा शाबरीं मायां नानारूपविधारिणीम् । पाषाणभूतान्सकलान्कृत्वा भूपान्समाययौ ॥११४
ससुतं भ्रातरं ज्येष्ठं नृपं पूर्णबलं ततः । मोचयित्वा ययौ गेहं कृतकृत्यो महाबली ॥११५
आह्लादं निगडैर्बद्ध्वा मायया जडतां गतम् । नेत्रसिंहः स बलवान्ययौ स्वं दुर्गमुद्यतः ॥

थे। उसी बीच काल-तत्त्व के ज्ञाता देवसिंह ने आकाश मार्ग से आकर उनके वाहनों को उन्हें प्रदान किया। पश्चात् विन्दुल (वेंदुल) पर उदयसिंह, मनोरथ (मनोहर) पर देवसिंह, कराल (करील) पर रूपन, पपीहा पर आह्लाद (आल्हा), हरिणी पर बलखानि (मलखान), हरिनागर पर सुखखानि, और सिंहनी पर तालन सवार होकर रण के लिए तैयार हो गये।१०१-१०६। उस रात्रि में उन्होंने राजा की सेना का विध्वंस करके उनके अध्यक्ष (सेनानायक) को बाँध लिया। पुनः डोला को घर से बाहर ले जाकर सहर्ष सातों भाँवर की समाप्ति की। पश्चात् वे वीर अपने सेनाओं के बीच शिविर में पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर त्राहि-त्राहि करने वाले नेत्रसिंह आदि को देखकर हथकड़ी-बेड़ी से आबद्धकर उन वंचकों को घोर कारागर में डाल दिया। तदुपरान्त नेत्रसिंह के छोटे भाई हरानन्द ने जो सुन्दर नामक जंगल का राजा था, अपने भाई की दशा सुनकर एक लाख सेना समेत वहाँ आकर युद्धारम्भ कर दिया उसी बीच नेत्रसिंह की भी चार लाख सेना आ गई। यह पाँच लाख सेना शत्रु के सात लाख की सेना से युद्ध करने लगी। उस तुमुल संग्राम में शत्रु की आधी सेना समाप्त हो गई और शेष सैनिक भागने लगे। उसे देखकर हरानन्द को महान् आश्चर्य हुआ। पश्चात् उस मायावी ने, जो रुद्र की माया में अत्यन्त निपुण था, शत्रु को सबल देखकर शिव का ध्यान करना आरम्भ किया। अनन्तर भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाली उस शाबरी माया द्वारा सेना समेत शत्रुओं को पाषाण-शिला बनाकर पुत्र समेत बड़े भाई और पूर्णबल को मुक्त कराकर वह अपने घर चला गया।१०७-११५। जाते समय नेत्रसिंह ने माया द्वारा अचेतन आह्लाद (आल्हा) को हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर साथ लेकर अपने दुर्ग को प्रस्थान किया। घर पहुँचने पर अपने भाई की

तं प्रशंस्यानुजं वीरो विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥११६
तदा स्वर्णवती दीना बद्धं ज्ञात्वा पतिं निजम्। कृष्णांशाद्यान्मोहितांश्च शम्भुमायावशानुगान्॥११७
रुरोदोच्चैस्तदा देवीं ध्यायन्ती कामरूपिणीम्। तदा तुष्टा जगद्धात्री मूर्च्छितांस्तानबोधयत्॥११८
ते सर्वे चेतनां प्राप्ताः प्राहुः स्वर्णवतीं मुदा। क्वास्थितो बन्धुराह्लादो देवि त्वं कारणं वद ॥११९
यथा बद्धः स्वयं स्वामी कथयामास सा तथा। अहं शुकी भवाम्यद्य भवान्बिदुलसंस्थितः ॥१२०
इत्युक्त्वा सा शुकी भूत्वा कृष्णांशेन समन्विता। यत्रास्ते तत्पतिर्बद्धस्तत्र सा कामिनी ययौ ॥१२१
कृष्णांशोऽपि हयारूढो नभोमार्गेण चाप्तवान्। अभीरीं मूर्तिमास्थाय स्वामिनं प्रति सा ययौ ॥१२२
आश्वास्य तं यथायोग्यं कृष्णांशं प्रत्यवर्णयत्। कृष्णांशस्तत्र बलवान्हत्वा दुर्गनिवासिनः ॥१२३
रक्षकान्छतसाहस्रान्हत्वा भ्रातरमाययौ। पौर्णिमां मधुयुक्तां च ज्ञात्वा सर्वे त्वरान्विताः ॥१२४
अयोध्यां शीघ्रमागम्य स्नात्वा वै सरयूं[1] नदीम्। होलिकादाहसमये शीघ्रं वेण्यां समागता ॥१२५
स्नानध्यानादिका निष्ठाः कृत्वा गेहमुपाययुः। सागरस्य तटं प्राप्य कृत्वा ते च महोत्सवम् ॥

प्रशंसापूर्वक ब्राह्मणों को दान प्रदान किया। उस समय स्वर्णवती (सोना) ने अपने पति को बँधा हुआ और उनके बंधुवर्ग एवं सैनिकों को शम्भु की माया से मोहित (अचेतन) देखकर अधीर होकर रुदन किया। पश्चात् कामरूपिणी देवी को ध्यानपूर्वक प्रसन्न करने लगी, प्रसन्न होकर जगज्जननी ने उन मूर्च्छितों को चेतना प्रदान की। ज्ञान होने पर उन लोगों ने स्वर्णवती (सोना) से पूँछा—देवि! भाई आह्लाद (आल्हा) कहाँ हैं, उसका कारण शीघ्र बताइये। जिस प्रकार उसके स्वामी आबद्ध होकर गये थे, उसने सब कुछ सविस्तृत कह सुनाया और उदयसिंह से यह भी कहा कि—मैं तोते का रूप धारणकर तुम्हारे साथ चल रही हूँ, तुम घोड़े पर बैठो। इतना कहकर वह तोते का रूप धारण कर उदयसिंह के साथ वहाँ गई, जहाँ उसके स्वामी बँधे हुए कारागार में पड़े थे। उदयसिंह भी आकाशमार्ग से वहाँ पहुँच गये। स्वर्णवती (सोना) ने अहीरिनि का रूप धारणकर अपने पति के पास पहुँचकर उन्हें आश्वासन प्रदान किया। पुनः उदयसिंह से वहाँ का सभी मार्मिक भेद वर्णन किया। बलवान् उदयसिंह ने समस्त दुर्ग रक्षकों का जो सहस्र की संख्या में वहाँ सदैव रह रहे थे, हनन करके अपने भाई को साथ ले उसी चैत्र की पूर्णिमा के दिन अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। स्वर्णवती ने प्रसन्न होकर वहाँ अत्यन्त स्नान-दर्शन किया। पश्चात् होली के अवसर पर वे सब वेणी तट पर पहुँचे।११६-१२५। वहाँ स्नान-ध्यान करके अपने घर पहुँच गये। कुछ दिन के उपरान्त सागर के तट पर जाकर एक विशाल महोत्सव का आयोजन किया, उसे सुसम्पन्न करने के उपरांत चैत्रकृष्ण पञ्चमी के दिन पुनः अपने घर आकर सानन्द रहने लगे। ऊँट (गाडियों) पर चलने वाले संदेश वाहक दूतगण फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी के दिन ही अपने घर पहुँच गये थे। उस समय मलना तथा राजा परिमल के आनन्द की सीमा नहीं रही, घर-घर महोत्सव मनाकर

---

१. सप्तम्यर्थे द्वितीया।

चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्यां स्वगेहं पुनराययुः ।।१२६
दूता उष्ट्रसमारूढास्तत्क्षेमकरणोत्सुकाः । वैशाखे शुक्लपञ्चम्यां स्वगेहं पुनराययुः ।।१२७
मलना भूपतिश्चैव गेहे गेहे महोत्सवम् । कारयित्वा विधानेन ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।।१२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्दशाब्दे कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु । जयन्तः शक्रपुत्रश्च जानकीशापमोहितः ।।
कलौ जन्मत्वमापन्नः स्वर्णवत्युदरेऽवसत् ।।१
चैत्रशुक्लनवम्यां च मध्याह्ने गुरुवासरे । स जातश्चन्द्रवदनो राजलक्षणलक्षितः ।।२
जाते तस्मिन्सुतश्रेष्ठे देवाः सर्षिगणास्तदा । इन्दुलोऽयं महीं जातो जयन्तो वासवात्मजः ।।
इत्यूचुर्वचनं तस्मादिन्दुलो नाम चाभवत् ।।३
आह्लादो जातकर्मादीन्कारयित्वा शिशोर्मुदा । ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वर्णधेनुवृन्दं हयान्गजान् ।।४
इन्दुले तनये जाते द्विमासान्ते महीतले । योगसिंहस्तदागत्य स्वर्णवत्यै ददौ धनम् ।।५
नेत्रसिंहसुतं दृष्ट्वा मलना स्नेहसंयुता । पप्रच्छ कुशलप्रश्नं भोजयित्वा विधानतः ।।६

उन्होंने ब्राह्मणों को अधिकाधिक दान प्रदान किया ।१२६-१२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की चौदह वर्ष की अवस्था में जो कुछ हुआ है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इन्द्र-पुत्र जयन्त ने जानकी जी के शाप द्वारा कलि में जन्म ग्रहण करने के निमित्त रानी स्वर्णवती (सोना) के गर्भ में निवास किया । चैत्र शुक्ल नवमी में बृहस्पति के मध्याह्न समय उसने राजकुमार के रूप में जन्म ग्रहण किया, जिसका मुख चन्द्रमा की भाँति सौन्दर्यपूर्ण एवं वह स्वयं राजलक्षणों से सम्पन्न था । उस उत्तम बालक के जन्मग्रहण करने पर ऋषियों समेत देवों ने कहा—'यह वासवपुत्र जयन्त इन्दुल होकर भूतल में जन्म ग्रहण किया है ।' इसीलिए उस कुमार का 'इन्दुल' नामकरण हुआ । उस समय प्रसन्नतापूर्ण आह्लाद (आल्हा) ने उस कुमार का जातकर्म संस्कार सुसम्पन्न कराने के उपरान्त ब्राह्मणों को सुवर्ण, धेनु एवं अनेक हाथी-घोड़े दान रूप में समर्पित किया । इन्दुल के पृथ्वीतल पर जन्म ग्रहण करने के दो मास पश्चात् योगसिंह ने वहाँ जाकर स्वर्णवती (सोना) को अत्यधिक धन प्रदान किया । उस समय रानी मलना ने नेत्रसिंह के पुत्र योगसिंह को देखकर स्नेह-विभोर होने के नाते अत्यन्त गद्‌गद कंठ से उनसे कुशल प्रश्न पूछा, पश्चात् सविधान भोजन कराने के अनन्तर उनके महल में जहाँ वे ठहराये गये थे,

शतवृन्दाश्च नर्तक्यो नानारागेण संयुताः । तत्रागत्यैव ननृतुर्यत्र भूपसुतः स्थितः ।।७
सप्तरात्रमुषित्वा स योगसिंहो ययौ गृहम् । षण्मासे च सुते जाते देवेन्द्रः स्नेहकातरः ।।८
पुत्रस्नेहेन तं पुत्रं स जहार स्वमायया । संहृत्य बालकं श्रेष्ठमिन्द्राण्यै च समर्पयत् ।।९
स्नेहप्लुता शची देवी स्वस्तनौ तमपाययत् । देव्या दुग्धं स वै पीत्वा षोडशाब्दसमोऽभवत् ।।१०
इन्दुं पीयूषभवनं गृह्णाति वपुषा स्वयम् । अतः स इन्दुलो नाम जयन्तश्च प्रकीर्तितः ।।
स बालः स्वपितुर्विद्यां पठित्वा श्रेष्ठतामगात् ।।११
विनष्टे बालके तस्मिन्देवी स्वर्णवती तदा । रुरोदोच्चैस्तदा दीना हा पुत्र क्व गतोऽसि भोः ।।१२
ज्ञात्वाह्लादं तथा भूतं दशग्रामे तथाविधे । रौद्रः कोलाहलो जातो रुदतां च नृणां मुने ।।१३
आह्लादः स्वकुलैः सार्द्धं निराहारो यतेन्द्रियः । शारदां शरणं प्राप्तस्त्रिरात्रं तत्र चावसत् ।।१४
तदा तुष्टा स्वयं देवी वागुवाचाशरीरिणी । हे पुत्र स्वकुलैः सार्द्धं मा शुचस्त्वं सुतं प्रति ।।१५
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च स्वर्गलोकमुपागतः । दिव्यविद्यां पठित्वा स त्रिवर्षान्ते [1] गमिष्यति ।।१६
यावत्त्वं भूतलेऽवात्सीस्तावत्स [2] भूतले वसेत् । तत्पश्चात्स्वर्गतिं प्राप्य जयन्तो हि भविष्यति ।।१७

सैकड़ों नर्तकियाँ अपने भाँति-भाँति के राग एवं कला-कुशलता द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगीं । इस प्रकार आनन्द-सागर में सात रात्रि रुकने के उपरान्त वे अपने घर गये । उस कुमार की छह मास की अवस्था तक अपने दिनों को व्यतीत करने में इन्द्र अधीर हो गये, उनसे न रहा गया, अन्ततोगत्वा पुत्रस्नेहवश उन्होंने अपनी माया द्वारा उस अपने पुत्र का अपहरण कर लिया । उस श्रेष्ठ बालक का अपहरण करके उसे अपनी इन्द्राणी (स्त्री) को सौंप दिया ।१-९। स्नेह-कातर होकर शचीदेवी ने उसे शीघ्र अपने स्तनों का पान कराया । देवी का दुग्धपान करने से वह कुमार सोलहवर्ष की अवस्था वालों के समान दिखाई देने लगा । उसने अमृत राशि चन्द्रमा की समानता अपने असाधारण शरीर द्वारा प्राप्त की । इसलिए जयन्त को इन्दुल कहा गया है । उसने अपने पिता की विद्या का अध्ययन करके श्रेष्ठता प्राप्त की थी ।१०-११। बालक के अपहृत होने पर उसे कहीं न देखकर स्वर्णवती (सोना) दीन-हीन होकर 'हा पुत्र', तुम कहाँ चले गये, इस प्रकार कहती हुई उच्च स्वर से रुदन करने लगी । इस समाचार को सुनकर आह्लाद (आल्हा) एवं उस 'दशग्राम' के निवासी गण हाय-हाय करने लगे । मुने ! इस प्रकार वहाँ जनता के क्रन्दन से करुणा का सागर उमड़ आया । आह्लाद (आल्हा) ने अपने कुटुम्ब के साथ निराहार एवं संयमी रहकर भगवती शारदा की शरण में पहुँचकर तीन रात तक वहाँ निवास किया । उस समय प्रसन्न होकर देवी ने आकाशवाणी की—पुत्र ! तुम उस कुमार के विषय में कुटुम्ब समेत शोक क्यों कर रहे हो, चिन्ता छोड़ दो ! वह इन्द्र का पुत्र जयन्त है, अतः अपने पिता के यहाँ स्वर्गलोक चला गया है । वहाँ दिव्य विद्या का अध्ययन करके तीन वर्ष पश्चात् आ जायगा और जब तक तुम इस भूतल पर निवास करोगे वह तुम्हारे साथ रहेगा। पश्चात् स्वर्ग पहुँचकर जयन्त के रूप में हो जायगा।१२-१७। देवी की इस बात को सुनकर वे

---

१. आगमिष्यतीत्यर्थः । २. वत्स्यसीत्यर्थः ।

इत्युक्ते वचने देव्या निश्शोकास्ते तदाभवन् । दशग्रामपुरं प्राप्य समूषुर्ज्ञानतत्पराः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इन्दुले स्वर्गसम्प्राप्ते ते वीराः शोककातराः । शारदां पूजयामासुः सर्वलोकनिवासिनीम् ॥१
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं त्रिसन्ध्यं प्रेमभक्तितः । ध्यानेनानन्दमापन्नास्तदा सप्तशतेऽहनि ॥२
सामन्तद्विजपुत्रश्च चामुण्डो नाम विश्रुतः । सोऽष्टवर्षवया भूत्वा पूजयामास चण्डिकाम् ॥३
द्वादशाब्दे ततो जाते त्रिचरित्रस्य पाठतः । परीक्षार्थं तु भक्तानां साक्षान्मूर्तित्वमागता ॥४
कुण्डिकेयं च भो भक्ताः पूरयामि च तामहम् । यूयं तु मनसोपायैः कुरुध्वं पूरणे मतिम् ॥५
सुखखानिस्तु बलवान्मधुपुष्पैस्तथा फलैः । कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ॥
बलखानिस्तथा मांसैर्मूलशर्मा तु रक्तकैः ॥६
देवकी च तदा हव्यैश्चन्दनादिभिरर्चनैः । कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ॥७

शोक-परित्यागपूर्वक अपने नगर 'दशग्राम' चले गये, वहाँ ज्ञानियों की भाँति दिन व्यतीत करने लगे ।१८

श्री भविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अध्याय १५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय-वर्णन

सूत जी बोले—इन्दुल के स्वर्ग चले जाने पर वीरगणों ने शोक से दुःखी होकर समस्त लोकों में निवास करने वाली श्री शारदा देवी जी की पूजा की । प्रेम में मग्न होकर भक्तिपूर्वक वे लोग तीनों काल सप्तशती स्तोत्र का पाठ करते हुए ध्यान द्वारा आनन्द प्राप्त करने लगे । सामन्त ब्राह्मण का पुत्र, जिसे लोग चामुण्ड कहते हैं, आठ वर्ष की अवस्था से चण्डिका देवी की उपासना तीनों चरित्रों के पाठ द्वारा कर रहा था ।१-३। उस समय उसकी बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । सातवें दिन भक्तजनों के परीक्षार्थ भगवती ने अपनी साक्षात् मूर्ति प्रकटकर उन लोगों से कहा—'भक्तवृन्द ! मैं इस अपने कुण्ड को पूर्ण करना चाहती हूँ, तुम लोग अपने मन से इसके पूर्ण होने का उपाय निश्चित कर इसे पूर्ण करो । इसे सुनकर बलवान् सुखखानि ने सर्वप्रथम धूप, पुष्प और फलों द्वारा उस कुण्ड की पूर्ति करना चाहा, किन्तु प्रयत्न करने पर असफल ही रहे—उसकी पूर्ति न कर सके । उसी प्रकार बलखानि (मलखान) ने मांस, मूल शर्मा ने रक्त-पुष्प और देवकी ने चन्दन-पुष्प से पूर्ण करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी पूर्ति न हो

आह्लादश्चैव सर्वाङ्गैरुदयः शिरसा स्वयम् । कुण्डिकां पूरयामास तदा पूर्णत्वमागता ।।८
उवाच वचनं देवी स्वभक्तान्भक्तवत्सला । सुखखाने भवान्वीरो भविष्यति सुरप्रियः ।।९
बलखानिर्महावीरो दीर्घे काले च मृत्युभाक् ! मूलशर्मा तु बलवान्रक्तबीजो भविष्यति ।।१०
देवकी च भवेद्देवी चिरकालं स्वलोकगा । आह्लादश्चैव कृष्णांशस्तयोर्मध्ये द्वयं वरम् ।।
एकस्तुदेववत्प्रोक्तो बलाधिक्यो द्वितीयकः ।।११
निष्कामोऽयं देवसिंहो मृतो मोक्षत्वमाप्नुयात् । इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ते सर्वे तृप्तिमागताः ।।१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्राप्ते सप्तदशाब्दे च कृष्णांशे तत्र चाभवत् । शृणु त्वं मुनिशार्दूल दृष्टं यद्योगदर्शनात् ।।१
रत्नभानौ मृते राज्ञि मरुधन्वमहीपतिः । गजसेनस्तदा विप्र पृथ्वीराजभयातुरः ।।२
आराध्य पावकं देवं यज्ञध्यानव्रतार्चनैः । द्वादशाब्दं समाचारः प्रेमभक्त्या ह्यतोषयत् ।।३

सकी । उस समय आह्लाद (आल्हा) ने अपने सर्वाङ्ग तथा उदयसिंह ने अपने शिर को समर्पित करके उस कुण्डिका की पूर्ति कर दी, इससे प्रसन्न होकर भक्त वत्सला भगवती ने भक्तों से कहा—'वीर, सुखखाने ! तुम देव-प्रिय होगे, महाबली बलखानि (मलखान) की मृत्यु दीर्घकाल में होगी बलवान् मूलशर्मा रक्तबीज होंगे, देवकी देवी अपने लोक में चिरकाल से प्रवेश करेंगी, आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह के प्रति दो वरदान दे रही हूँ, एक देवता की भाँति रहेगा एवं दूसरे में बलाधिक्य होगा और निष्काम कर्म करने वाले देवसिंह मृत्यु के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करेंगे । इतना कहकर माताजी अन्तर्हित हो गई और वे (भक्तवृन्द) अत्यन्त प्रसन्नता से रहने लगे ।४-१२

श्रीभविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय-वर्णन
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुनि शार्दूल ! उदयसिंह की सत्रहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर योगबल से मैंने जो कुछ देखा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! विप्र ! राजा रत्नभानु के स्वर्गीय होने पर मरुधन्व देश के राजा गजसेन ने पृथ्वीराज से भयभीत होकर यज्ञ, ध्यानव्रत एवं अर्चना द्वारा अग्निदेव की आराधना

तदा प्रसन्नो भगवान्पावकीयं हयं शुभम् । ददौ तस्मै सुतौ चोभौ कन्यां च गजमुक्तिकाम् ।।४
पावकास्ते हि चत्वारः समुद्भूता महीतले । अग्निवर्णा महावीराः सर्वलक्षणलक्षिताः ।।५
अष्टादशवयोभूताः सर्वे ते मुनिपुङ्गव । जातमात्रा देवसमाः सर्वविद्याविशारदाः ।।६
अष्टादशाब्दवयसा सा कन्या वरवर्णिनी । दुर्गायाश्च वरं प्राप्ता धर्मांशस्त्वां वरिष्यति ।।७
शार्दूलवंशी स नृपः कृतवान्वै स्वयंवरम् । नानादेश्या नृपाः प्राप्ताः सुताया रूपमोहिताः ।।८
मार्गशीर्षे सिते पक्षे चाष्टम्यां चन्द्रवासरे । तस्याः स्वयंवरश्चासीत्सानृपान्प्रति चाययौ ।।९
विद्युद्वर्णं मुखं तस्याश्चञ्चलायास्तथागतम् । दृष्ट्वा मुमोह धर्मांशो बलखानिर्महीपतिः ।।१०
सापि दृष्ट्वा च तं वीरं मुमोह गजमुक्तिका । बुद्ध्वा तस्मै ददौ मालां वैजयन्तीं शुभानना ।।११
तारकाद्याश्च भूपालाः सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः । रुरुधुः सर्वतो वीरं ते बलात्कन्यकार्थिनः ।।१२
तथाविधान्नृपान्दृष्ट्वा भूपान्पञ्चशतान्बली । स शीघ्रं खड्गमुत्सृज्य शतभूपशिरांस्यहन् ।।१३
सर्वतो वध्यमानं तं बलखानिं स तारकः । तद्भुजाभ्यां ददौ खड्गं स तदङ्गे द्विधाभवत् ।।१४
महीराजसुतो ज्येष्ठो दृष्ट्वा खड्गं तथा गतम् । अपोवाह रणाच्छूरस्तत्पश्चात्ते नृपा ययुः ।।१५
पराजिते नृपबले बलखानिर्महाबलः । तां कन्यां शिबिकारूढां स्वगेहं सोऽनयद्बली ।।१६

की ।१-३। प्रसन्न होकर भगवान् अग्निदेव ने एक सुन्दर अश्व, दो पुत्र और गजमुक्तिका (गज मोतिना) नाम की एक कन्या प्रदान की । पावकांश से उत्पन्न ये चारों अग्नि के समान वर्ण, स्वयं महाबली एवं सर्वलक्षणों से अलंकृत थे, इस धरातल पर जन्म ग्रहण किये । मुनिश्रेष्ठ ! अठारह वर्ष की अवस्था में ये सभी देवों की भाँति सौन्दर्यपूर्ण तथा समस्त विद्याओं में निपुण हो गये । अठारह वर्ष की ही अवस्था में उस उत्तमाङ्गी कन्या को प्रसन्न होकर दुर्गाजी ने वर प्रदान किया था।—वत्स पुत्र (मखलान) तुम्हारा पति होगा । बघेलवंशी राजा गजसेन ने अपनी कन्या के विवाहार्थ स्वयंवर किया, जिसमें उनकी कन्या के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अनेक देश के राजवृन्दों का आगमन हुआ था । मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्लाष्टमी में चन्द्रवासर के दिन स्वयम्बर में आये हुए राजाओं के 'वरणार्थ वह कन्या आई, जो स्वयं चपल एवं उसका मुख विद्युत की भाँति कान्तिपूर्ण था । राजा बलखानि (मलखान) तो उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया और वह कुमारी गजमुक्तिका (गजमोतिका) भी उन्हें देखकर कामपीड़ित होने लगी । और उसी अवस्था में उस शुभ-वदना ने उनके गले में वैजयन्ती माला पहना कर दी । तारक आदि नृपगण, जो उस कन्या के वरणार्थ वहाँ उपस्थित थे, बलप्रयोग करते हुए चारों ओर से बलखानि (मलखान) को घेर लिये । उन पाँच सौ राजाओं को अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर बलखानि (मलखान) ने शीघ्रता से हाथ में खड्ग लेकर सौ राजाओं के शिर काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया । तारक ने उस समय बलखानि (मलखान) को चारों ओर से घिरा देखकर अपने खड्ग से उनके हाथों पर आघात किया, परन्तु उनकी देह में वह खड्ग आघात करते ही दो टुकड़ा हो गया । पृथ्वीराज के ज्येष्ठ पुत्र (तारक) इसे देखकर तथा अश्व के अपहरण हो जाने पर उनके समेत सभी राजगण भाग निकले । राजाओं के पराजित हो जाने पर बलखानि (मलखान) ने उस कन्या को शिविका (पालकी) में बैठाकर अपने घर को प्रस्थान किया ।४-१६। उस समय अपनी पुत्री को जाते हुए देखकर राजा गजसेन ने

तां गच्छन्तीं सुतां दृष्ट्वा गजसेनो महीपतिः। महीपत्याज्ञया प्राप्तो ज्ञात्वा तं क्षत्रियाधमम् ॥१७
जम्बुकघ्नं महावीरं मायया तन्मोहयत् । जाते निद्रातुरे वीरे दुर्गायाः शापमोहिते ॥१८
निगडैस्तं सुबन्धाशु दृढैर्लोहमयै रुषा । लोहदुर्गं च सम्प्राप्य ग्रामरूपं महीपतिः ॥१९
चाण्डालांश्च समाहूय कठिनांस्तत्रवासिनः । वधायाज्ञापयामास तस्य दण्डैरनेकशः ॥२०
ते रौद्रास्तं समाबाध्य ताडयामासुरूर्जिताः । तत्ताडनात्तदा निद्रा तत्रैव विलयं गता ॥२१
दृष्ट्वा ततस्तु चाण्डालान्बलखानिरताडयत् । तलमुष्टिप्रहारेण चाण्डाला मरणं गताः ॥२२
मृते पञ्चशते रौद्रे तच्छेषा दुद्रुवुर्भयात् । कपाटं सुदृढं कृत्वा नृपान्तिकमुपाययुः ॥२३
स नृपः कारणं ज्ञात्वा हस्तबद्धो महाबली । उवाच तत्र गत्वासौ वचनं कार्यतत्परः ॥२४
भवान्महाबलो वीर चाण्डालैर्बन्धनं गतः । दस्युभिर्लुण्ठितस्तत्र निद्रावश्यो वनं गतः ॥२५
मत्सुता भवने प्राप्ता दिष्टया त्वं जीवितं गतः । उद्वाह्य मत्सुतां शीघ्रं स्वगेहं यातुमर्हसि ॥
इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तं प्रशस्य तथाकरोत् ॥२६
मण्डपे वेदकर्माणि विवाहार्थं चकार सः । जातायां मण्डपार्चायां पत्रमाह्लादहेतवे ॥२७
तदाज्ञया लिखित्वासौ गजसेनोऽग्निसेवकः । उष्ट्रारूढं समाहूय शीघ्रं पत्रमचोदयत् ॥२८
बलखानेर्विवाहोऽत्र भवान्सैन्यसमन्वितः । सम्प्राप्य योग्यद्रव्याणि भुक्त्वा त्वं तृप्तिमावह ॥२९

उर्वी पति माहिल तथा पराजित राजाओं की सम्मति से बलखानि (मलखान) को, जो क्षत्रियाधम, जम्बूक का हन्ता एवं महावीर था, अपनी माया से मोहित किया। पश्चात् दुर्गा शाप के कारण मोहित एवं निद्रित उस वीर को हथकड़ी-बेड़ी से दृढ़ आबद्ध करके लोहदुर्ग वाले ग्रामरूप में पहुँचकर वहाँ के निवासी चाण्डालों को बुलाकर कहा—'अनेक भाँति के दण्ड देते हुए इसका वध करो।' इस प्रकार की आज्ञा पाकर भीषण चाण्डालगण उन्हें बेतों आदि के प्रहार से पीड़ित करने लगे। कुछ समय पश्चात् उनकी मूर्च्छा नष्ट हो गई। चाण्डालों को प्रहार करते हुए देखकर बलखानि (मलखान) ने हथेलियों (थप्पड़ों) और मुट्ठियों के प्रहार से उन्हें धराशायी कर दिया। पाँच सौ चाण्डालों के निधन होने से शेष बचे हुए वहाँ से भाग निकले। पश्चात् (उस दुर्ग का) कपाट (किवाड़) भलीभाँति दृढ़ता से बन्द करके बलखानि (मलखान) भीतर राजा के पास पहुँचे।१७-२३। सभी कारणों को जानकर राजा ने अञ्जलि बाँधकर कहा—'वीर! खेद का विषय है कि चाण्डालों ने आपको बाँध लिया और चोरों ने धन का अपहरण कर लिया है, शायद, आप उस वन में पहुँचकर निद्रित हो गये थे। मेरी कन्या मेरे भवन में आ गई है, सौभाग्य से आपको जीवित देख रहा हूँ। अब उसके साथ विवाह करके आप शीघ्र अपने घर चले जाइये। इसे सुनकर बलखानि (मलखान) ने प्रसन्न होकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की। राजा ने भी विवाहार्थ मण्डप आदि की रचना के लिए आदेश प्रदान किया। विवाह की तैयारी हो जाने पर अग्नि सेवक गजसेन ने आह्लाद (आल्हा) के पास पत्र लिखकर एक संदेशवाहक को, जो सांडिया पर पत्र-वाहन का कार्य करता था, देकर कहा—इस पत्र को शीघ्र आह्लाद (आल्हा) के पास ले जाओ। पत्र में लिखा था कि—'बलखानि (मलखान) का विवाह यहाँ होना निश्चित हुआ है, आप सेना समेत यहाँ आकर मेरे द्वारा किये गये आतिथ्य सत्कार को स्वीकार करने की कृपा करें।'२४-२९। पश्चात् उसी रात्रि में राजा ने

इत्युक्ते निशि जातायां बलखानिर्महाबलः । भोजनं कृतवांस्तत्र विषजुष्टं नृपार्पितम् ॥३०
गरलं तेन सम्भुक्तं न ममार वराच्छुभात् । ततः काले च सम्प्राप्ते दृष्ट्वा मोहत्वमागतम् ॥
पुनर्बबन्ध निगडैस्ताडयामास वेतसैः ॥३१
विषदोषमसृक्द्वारान्निस्सृतं[1] सर्वदेहतः । तदा बुबोध बलवान्भूपतिं प्राह नम्रधीः ॥३२
राजन्किमीदृशं जातं त्वत्सैन्यं ताडने रतम् । स आह भो महावीर मत्कुले रीतिरीदृशी ॥
यातनां प्रथमं प्राप्य तदनूद्वाहितो भवेत् ॥३३
इत्युक्ते सति भूपाले गजमुक्ता समागता । पितरं प्राह वचनं कोऽयं तत्ताडने गतः ॥३४
नृपः प्राह सुते शीघ्रं याहि त्वं निजमन्दिरे । कृषिकरोऽयमायातो द्रव्यार्थं ताडने गतः ॥३५
इति श्रुत्वा वचो घोरं बलखानिर्महाबलः । छित्त्वा तद्बन्धनं घोरं खड्गहस्तः समाययौ ॥३६
शूरान्पञ्चशतं तं च रुद्ध्वा शस्त्रैः समन्ततः । प्रजघ्नतस्तु तान्सर्वान्बलखानिर्व्यनाशयत् ॥३७
गजसेनसुतो ज्येष्ठः सूर्यद्युतिरुपागतः । बद्ध्वा पुनस्तं बलिनं गर्तमध्ये समाक्षिपत् ॥३८
तथा गतं पतिं दृष्ट्वा गजमुक्ता सुदुःखिता । निशि तत्र गता देवी दत्त्वा द्रव्यं तु रक्षकान्[2] ॥३९
पतिं निष्काश्य रुदती व्यजनं पतये ददौ । रात्रौ रात्रौ तथा प्राप्ता व्यतीतं पक्षमात्रकम् ॥४०
एतस्मिन्नन्तरे वीरश्चाह्लादः सप्तलक्षकैः । सैन्यैः सहाययौ शीघ्रं श्रुत्वा तत्रैव कारणम् ॥४१

बलखानि (मलखान) को भोजन में विष भक्षण करा दिया। किन्तु भोजन भक्षण करने पर भी वरदान प्राप्त होने के कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई। मूर्च्छित होने पर राजा ने पुनः हथकड़ी-बेड़ी से दृढ़ बाँधकर उनके पैरों पर बेतों के प्रहार कराने लगा। उस समय सम्पूर्ण देह में व्याप्त विष के रक्त के द्वारा बाहर निकल जाने पर बलखानि (मलखान) को चेतना प्राप्त हुई। उन्होंने विनम्र होकर राजा से कहा—राजन्! क्या कारण है, आपकी सेना मुझ पर आघात कर रही है। राजा ने कहा—वीर! मेरे कुल की रीति ही इस प्रकार है कि—प्रथम यातनाओं के उपभोग प्रदानकर पश्चात् उसका विवाह किया जाता है। राजा के इस प्रकार कहने पर राजकुमारी गजमुक्ता (गजमोतिना) वहाँ आकर अपने पिता से कहने लगी। इस प्रहारों द्वारा किसे दण्डित किया जा रहा है।३०-३४। राजा ने कहा—पुत्रि! तू शीघ्र अपने महल चली जा, यह एक खेतिहर किसान है, राजकर के लिए दण्डित हो रहा है। इस घोर अपमानपूर्ण बात को सुनकर महाबली बलखानि (मलखान) ने अपने शृंखला-बन्धनों को तोड़कर हाथ में खड्ग ग्रहण कर उसके द्वारा उन घेरे हुए पाँच सौ सैनिकों को, जो शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर वहाँ युद्धार्थ उपस्थित थे, छिन्न-भिन्न करके धराशायी कर दिया। अनन्तर राजा गजसेन के सूर्यद्युति (सूर्यमणि) नामक ज्येष्ठ पुत्र ने वहाँ आकर उस बली बलखानि (मलखान) को पुनः बंधन समेत गर्त (गड्ढे-खाई) में डाल दिया। पति की उस अवस्था को देखकर गजमुक्ता (गजमोतिना) अत्यन्त दुःख का अनुभव करती हुई आधी रात के समय वहाँ पहुँचकर रक्षकों (सिपाहियों) को द्रव्य देकर भीतर कारागार में अपने पति के पास गई और उन्हें सविधि व्यञ्जन भोजन कराकर लौट आई। प्रत्येक रात्रि में इसी प्रकार का क्रम चलता हुआ एक पक्ष (पखवारा) का समय व्यतीत हो गया।३५-४०। पश्चात् अपनी सात लाख सेना समेत आह्लाद

---

१. सम्बन्धमनुवर्तिष्यत इतिवदिहापि नपुंसकत्वम्। २. रक्षकेभ्य इत्यर्थः।

बलखानिर्गतो गर्ते रुरोध नगरीं तदा । गजैः षोडशसाहस्रैर्गजसेनो रणं ययौ ।।४२
त्रिलक्षैश्च हयैः सार्द्धं सूर्यद्युतिरुपाययौ । कान्तामलस्तदा प्राप्तस्त्रिलक्षैश्च पदातिभिः ।।४३
तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं हि सैन्ययोः । रक्षिते तालनाद्ये च गजसेनाद्यके तदा ।।४४
द्वितीयेऽह्नि समायाते गजसेनो महाबलः । प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पावकीयं समारुहत् ।।
दाहयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैश्च पालितम् ।।४५
भस्मीभूतं बलं दृष्ट्वा तालनः शत्रुसम्मुखे । गत्वा भल्लेन भूपालं ताडयामास वेगतः ।।४६
मूर्छितं नृपमाज्ञाय सूर्यद्युतिरुपाययौ । पावकीयं समारुह्य दाहयामास तालनम् ।।४७
एतस्मिन्नन्तरे शूरौ देवौ चाह्लादकृष्णकौ । बबन्धतू रुषाविष्टौ सूर्यद्युतिमरिन्दमम् ।।४८
सुबद्धं भ्रातरं ज्ञात्वा हयं कान्तामलोऽरुहत् । देवसिंहं च सम्मोह्य कृष्णांशं प्रति सोऽगमत् ।।
गृहीत्वा तं स कृष्णांशं तस्य तेजः समाहरत् ।।४९
सप्तलक्षबलं सर्वं वह्निभूतमभूत्तदा । अमरत्वात्स आह्लादस्तदा तु समजीवयत् ।।५०
गजसेनस्यार्द्धसैन्यं तैश्च सर्वैर्विनाशितम् । विजयं नृपतिः प्राप्य हर्षितो गेहमाययौ ।।५१
वह्निभूतं च कृष्णांशं दृष्ट्वाह्लादः सुदुःखितः । दुर्गां देवीं स तुष्टाव मनसा रणमूर्द्धनि ।।५२
तदा देवी वचः प्राह वत्स ते पुत्र एव च । स्वर्गादागत्य सर्वाणि पुनरुज्जीवयिष्यति ।।५३
इत्युक्ते वचने देव्या इन्दुलो वासवाज्ञया । द्वादशाब्दसमं रूपं धृत्वा विद्याविशारदः ।।

(आल्हा) वहाँ शीघ्र पहुँच गये ।४१। उन्होंने पहले ही सुना था कि बलखानि (मलखान) किसी गर्त (खाईं) में पड़े हुए हैं, इसलिए उनकी नगरी को चारों ओर से घेरकर युद्धार्थ राजा को निमन्त्रित किया । सोलह सहस्र की गजसेना समेत गजसेन, तीन लाख घोड़े की सेना समेत सूर्यद्युति (सूर्यमणि) और तीन लाख पदाति (पैदल) की सेना लेकर छोटे भाई कांतामल ने उस रणस्थल में पहुँचकर दिन-रात्रि का अविराम घोर युद्ध आरम्भ किया । तालनादि और गजसेनादि की अध्यक्षता में दोनों सेनाओं ने भीषण संग्राम करते हुए प्रथम दिन व्यतीत किया । किन्तु, महाबली गजसेन ने दूसरे दिन अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर अग्नि का प्रयोग किया, जिससे तालन आदि की सेनायें भस्मीभूत हो गईं । इसे देखकर तालन ने अपने भाला के प्रहार से राजा गजसेन को मूर्च्छित कर दिया । तदुपरांत सूर्यद्युति ने उस अग्नि के घोड़े द्वारा तालन को भस्म कर दिया । उसी बीच आह्लाद (आल्हा), और उदयसिंह ने क्रुद्ध होकर सूर्यद्युति को बाँध लिया । अपने भाई को दृढ़बंधन में पड़ा देखकर कांतामल उस घोड़े पर बैठा । वह देवसिंह को मोहितकर उदयसिंह के पास गया, किन्तु उदयसिंह ने उसे पकड़कर उस (घोड़े) के तेज का अपहरण कर लिया, जिससे उनकी सात लाख की सेना तत्काल भस्मीभूत हो गई, केवल एक आह्लाद (आल्हा) ही अमर होने के नाते शेष रह गये ।४२-५०। उन्होंने गजसेन की अवशिष्ट सेना को थोड़े ही समय में नष्ट कर दिया । किन्तु विजय राजा गजसेन की ही रही, वे अपने घर लौट आये । उदयसिंह के भस्म हो जाने पर आह्लाद (आल्हा) ने भगवती दुर्गाजी की मानसिक आराधना की । उस समय देवी ने कहा—'वत्स ! तुम्हारा पुत्र स्वर्ग से आकर इन सभी मृतकों को पुनः जीवन प्रदान करेगा ।' देवी जी के इस प्रकार कहने पर उस समय इन्द्र के यहाँ से विद्याविशारद इन्दुल बारह वर्ष के समान अवस्था प्राप्तकर

[1]वडवामृतमारुह्य हयं तत्र समागतः ॥५४
तदङ्गादुद्धृता वाहा मेघा इव समन्ततः । पावकं शमयामासुस्त्रयस्ते देवतोपमाः ॥५५
शमीभूते तदा वह्नौ स्वमुखात्सहयो मुदा । लालामुद्वाहयामास तया ते जीवितास्ततः ॥५६
जीविते सप्तलक्षे तु शमीभूते हि पावके । गजसेनः सुताभ्यां च प्रयातः सर्वतोदिशम् ॥५७
लक्षं सैन्यं तु ये शिष्टास्ते सर्वेऽपि भयातुराः । दुद्रुवुर्भार्गवश्रेष्ठ दिव्यरूपत्वधारिणः ॥५८
केचित्संन्यासिनो भूत्वा केचिद्वै ब्रह्मचारिणः । जीवत्वं प्राप्तवन्तस्ते तथान्ये संक्षयं गताः ॥५९
बद्ध्वा तान्गजसेनादींस्त्रीञ्छूरान्स च तालनः । कृष्णांशेन समायुक्त इन्द्रदुर्गं समाययौ ॥६०
बलखानिं च निष्काश्य तालनस्तदनन्तरम् । पृष्टवान्कारणं सर्वं श्रुत्वा तन्मुखतो वचः ॥
तान्वीरांस्ताडयामास वेतसैः स्तम्भबन्धनैः ॥६१
गजमुक्ताज्ञया विप्र सेनापतिरुदारधीः । तालनस्तान्समुत्सृज्य विवाहार्थं समाययौ ॥
बलखानिर्हयारूढो गजमुक्ता च मण्डपे ॥६२
गजसेनस्तदा दिव्यैर्भोजनैस्तानभोजयत् । निवास्य लोहदुर्गे तान्कपाटः[2] सुदृढीकृतः ॥
लक्षशूरान्स संस्थाप्य स्वयं रुद्रपुरं ययौ ॥६३
ते रात्रौ लोहदुर्गेषु ह्युषित्वा यत्नतो बलात् । प्रभाते च कपाटेन द्वारं दृष्ट्वा तदाब्रवीत् ॥

अमृत-अश्व पर बैठकर वहाँ आया । उसके घोड़े के अंग से मेघ की भाँति तीन घोड़े प्रकट होकर जो तीनों देवों की भाँति दिखाई दे रहे थे, उस रणस्थल की अग्नि का शमन किये । पश्चात् उस प्रमुख घोड़े ने अग्नि को शान्त देखकर अपने मुख से लार टपकाया, जिसमें वे सभी जीवित हो उठे । अग्नि के शांत होने एवं शत्रु की सात लाख सेना को पुनः जीवित होकर सुसज्जित देखकर राजा गजसेन अपने दोनों पुत्रों समेत चारों ओर भागने लगे । उनके पास जो एक लाख सैनिक शेष रह गये थे, वे भयभीत होकर अनेक भाँति के अपने वेष बनाकर इधर-उधर भाग निकले । कुछ संन्यासी के रूप में और कुछ ब्रह्मचारी के रूप में थे—इन्हीं लोगों का जीवन सुरक्षित रहा, किन्तु , जो सैनिकों के वेष में थे, धराशायी कर दिये गये । तदुपरान्त तालन ने दोनों पुत्रों समेत गजसेन को बाँधकर उदयसिंह के साथ इन्द्र दुर्ग के लिए प्रस्थान किया । वहाँ जाकर बलखानि (मलखान) को उस बंधन एवं खाईं से मुक्तकर उनसे समस्त कारणों को पूँछने लगे । पश्चात् उन तीनों को स्तम्भ में बाँधकर बेंतों के प्रहार द्वारा दण्डित करने लगे । विप्र ! उसी समय गजमुक्ता (गजमोतिना) ने वहाँ आकर अपने पिता एवं भाइयों को मुक्त कराया । पश्चात् विवाह की तैयारी होने लगी । अश्वारूढ़ होकर बलखानि (मलखान) और गजमुक्ता (गजमोतिना) उस मण्डप स्थान में पहुँचकर सुशोभित होने लगे ।५१-६२। वहाँ राजा गजसेन ने दिव्य भोजनों द्वारा उन लोगों का आतिथ्य सत्कार किया । किन्तु, यह सत्कार छलपूर्ण था, उसी व्याज से उन्हें उस लोहदुर्ग में रखकर उसके दरवाजे को सुदृढ़ बन्द करा दिया गया और एक लाख शूर सैनिकों को वहाँ गुप्त रक्षक के रूप में नियत कर राजा स्वयं अपने पुत्री, पुत्रों समेत चले गये । प्रातःकाल दरवाजे को बन्द देखकर सेना

---

१. वडवामृत इति तदीयाश्वस्य नाम, तेन हयशब्देन न पौनरुक्त्यम् । २. गजसेनेनेतिभावः ।

द्वारमुद्घाटयाशु त्वं नो चेत्प्राणांस्त्यजिष्यसि ॥६४
इति सेनापतिः श्रुत्वा लक्षशूरान्समादिशत् । नानायत्नैश्च हन्तव्याः शत्रवो भयकारिणः ॥६५
इति श्रुत्वा तु ते शूराः शतघ्न्यस्त्रैः सुरोपिताः । एकैकं क्रमशो जघ्नुर्वृन्दं ते वैरतत्पराः ॥६६
हते दशसहस्रे तु कृष्णांशो बिन्दुलं हयम् । समारुह्य जघानाशु स्वखड्गेन महद्बलम् ॥६७
हतशेषा भयार्ताश्च सहस्राशीतिसम्मिताः । इन्द्रदुर्गं प्रति प्राहुर्यथा जातो बलक्षयः ॥६८
श्रुत्वा भयातुरो राजा स्वसुताभ्यां समन्वितः । गजमुक्तां पुरस्कृत्य बहुद्रव्यसमन्विताम् ॥
स्वपापं क्षालयामास दत्त्वा कन्यां विधानतः ॥६९
षोडशोष्ट्राणि स्वर्णानि गृहीत्वाह्लाद एव सः । ययौ स्वगेहं महितः पुत्रभ्रातृसमन्वितः ॥७०
सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे देवी स्वर्णवती स्वयम् । इन्दुलं स्वाङ्कमारोप्य ललाप[1] करुणं बहु ॥७१
मृताहं च त्वया पुत्रपुनरुज्जीविता खलु । धन्याहं कृतकृत्यास्मि जयन्त तव दर्शनात् ॥७२
इति श्रुत्वेन्दुलो वीरो नत्वाह जननीं मुदा । अनृणं नाधिगच्छामि त्वत्तो मातः कदाचन ॥७३
सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे राजा परिमलः सुधीः । वाद्यानि वादयामास विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥७४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६

नायक से कहा गया कि—दरवाजे (के किंवाड़) को शीघ्र खोलवा दो, अन्यथा तुम्हें प्राण परित्याग करना पड़ेगा ।६३-६४। सेनानायक ने इसे सुनकर अपने सैनिकों को आदेश दिया कि—'इन भीषण शत्रुओं का सभी प्रकार से हनन करना आरम्भ हो। इतना सुनकर वे शूर वीरगण अपने शस्त्र तथा तोप आदि चलाने लगे। इन सबने भी सैनिक वृन्दों को छिन्न-भिन्न करके धराशायी करना आरम्भ किया। दशसहस्र सैनिक के निधन होने के उपरान्त उदयसिंह ने अपने विन्दुल (वेंदुल) नामक अश्व पर आसीन होकर अपने खड्ग द्वारा उन सैनिकों का वध करना आरम्भ किया। शेष अस्सी सहस्र सेना भयभीत होकर इन्द्र दुर्ग पहुँच गई, वहाँ उसने जिस प्रकार सैनिकों का हनन हुआ था, इसे राजा से कहा—इसे सुनकर राजा गजसेन ने अत्यन्त भयभीत होकर अपने दोनों पुत्रों समेत आह्लाद (आल्हा), के पास आकर कुमारी गजमुक्ता (गजमोतिना) को अनेक द्रव्यों समेत उन्हें समर्पित कर उर्वी (उरई) पति (माहिल) द्वारा किये गये अपने पाप का प्रक्षालन किया। प्रसन्न होकर आह्लाद (आल्हा) ने सोलह ऊँट पर सुवर्ण लेकर अपने पुत्र एवं बंधुओं समेत अपने घर को प्रस्थान किया। आह्लाद (आल्हा) के घर पहुँचने पर देवी स्वर्णवती (सोना) ने इन्दुल (इन्दल) को अपने अंक (गोद) में बैठाकर बहुत करुण रुदन किया—पुत्र ! मेरे जैसे मृतक को आज तुमने पुनः जीवित कर दिया, जयन्त ! तुम्हारे दर्शन से मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गई।' इसे सुनकर वीर इन्दुल ने भी प्रसन्नतापूर्ण होकर अपनी माता से नमस्कार पूर्वक कहा—माता ! मैं तुम्हारे ऋण से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता हूँ। इस समाचार को सुनकर राजा परिमल ने वाद्यों की ध्वनिपूर्वक ब्राह्मणों को धन दान करना आरम्भ किया ।६५-७४

श्री भविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

---

१. विलापमकरोदित्यर्थः ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्
सूत उवाच

कृष्णांशेऽष्टादशाब्दे तु यथाजातं तथा शृणु । मृते कृष्णकुमारे तु भूपतौ रत्नभानुना ।।१
महीराजः सुदुःखार्तो लक्षचण्डीमकारयत् । होमान्ते तु तदा देवी वागुवाच नृपं प्रति ।।२
वर्षे वर्षे तु ते सप्त भविष्यन्त्यगसम्भवाः । कुमाराः कौरवांशाच्च द्रौपद्यंशाः सुता नृप ।।३
इत्युक्ते वचने तस्मिन्राज्ञी गर्भमथो दधौ । कर्णांशश्च सुतो जातस्तारको बलवत्तरः ।।४
द्वितीयाब्दे तथा जाते दुश्शासनशुभांशतः । नृहरिरिति विख्यातस्तृतीयाब्दे तु चाभवत् ।।५
उद्धर्षांशः सरदनो दुर्मुखांशस्तु मर्दनः । विकर्णांशः सूर्य्यकर्मा भीमश्चांशो विविंशतेः ।।६
वर्द्धनश्चित्रबाणांशो वेला तदनु चाभवत् । यथा कृष्णा तथा सैव रूपचेष्टागुणैर्मुने ।।७
भुवि तस्यां च जातायां भूकम्पो दारुणोऽभवत् । अट्टाट्टहासमशिवं चामुण्डा खे चकार ह ।।
रक्तवृष्टिः पुरे चासीदस्थिशर्करया युता ।।८
ब्राह्मणाश्च समागत्य जातकर्मादिकां क्रियाम् । कृत्वा नाम तथा चक्रे शृणु भूमिप साक्षरम् ।।९
इला च शशिनो माता विकल्पेनाऽभवद्भुवि । तस्माद्वेलेति विख्याता कन्येयं रूपशालिनी ।।१०

अध्याय १७
कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की अट्ठारहवें वर्ष की अवस्था में जो कुछ मैंने देखा, सुना, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! रत्नभानु द्वारा राजा कृष्ण कुमार के निधन हो जाने पर पृथ्वीराज ने अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए लक्षचण्डी यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया । हवन हो जाने पर देवी ने राजा से आकाशवाणी द्वारा कहा—तुम्हारी अगमा नामक रानी के गर्भ द्वारा सात वर्षों तक प्रत्येक वर्ष कौरवांश एवं द्रौपदी के अंश से कुमार जन्म ग्रहण करते रहेंगे । अनन्तर रानी ने गर्भ धारण किया, जिससे कर्ण के अंश से तारक नामक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ । दूसरे वर्ष दुःशासन के अंश से 'नृहरि' नामक पुत्र, तीसरे वर्ष उद्धर्षांश से 'सरदन' नामक, (चौथे वर्ष) दुर्मुखांश से 'मर्दन' नामक, (पाँचवें वर्ष) विकर्णांश से 'सूर्यकर्मा' नामक, छठें भीम, सातवें वर्धन के पश्चात् एक कन्या का भी जन्म हुआ । मुने ! जिस प्रकार कृष्णा (द्रौपदी) के रूप-सौन्दर्य, चेष्टा एवं गुण थे, वैसे ही इस कन्या के भी हैं, इस कन्या के जन्म ग्रहण समय में भयंकर भूकम्प हुआ और चामुण्डा देवी ने आकाश में अमांगलिक (विश्व विनाशक) अट्टहास किया । नगर में अस्थि के चूर्ण मिश्रित रक्त की वृष्टि हुई । १-८। ब्राह्मणों ने वहाँ जाकर उसका जातकर्म संस्कार सुसम्पन्न कराने के अनन्तर उस कन्या का जो नामकरण किया, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! शशी की माता का नाम इला, उसी ने अपने वैकल्पिक रूप से इस भूतल में जन्म ग्रहण किया, इसलिए उस रूप-सुन्दरी कन्या

जातायां च सुतायां स पिता विप्रेभ्य उत्तमम् । ददौ दानं मुदा युक्तो वासांसि विविधानि च ।।११
द्वादशाब्दवयः प्राप्ते सा सुता वरवर्णिनी । उवाच पितरं नम्रा शृणु त्वं पृथिवीपते ।।१२
मण्डपे रक्तधाराभिर्यो मां संस्नापयिष्यति । द्रौपद्या भूषणं दाता स मे भर्ता भविष्यति ।।१३
स्वर्णपत्रे तदा राजा पद्यं वेलामखोद्भवम् । लिखित्वा तारकं प्राह त्वमन्वेषय तत्पतिम् ।।१४
सार्द्धं लक्षत्रयं द्रव्यं गृहीत्वा लक्षसैन्यकः । नृपान्तरं ययौ शीघ्रं तारकः पितुराज्ञया ।।१५
सिन्धुस्थाने चार्यदेशे भूपं भूपं ययौ बली । न गृहीतं नृपैः कैश्चित्तद्वाक्यं घोरमुल्बणम् ।।
महीपतिं स सम्प्राप्य मातुलं तद्वचोऽब्रवीत् ।।१६
श्रुत्वा स आह भो वीर ब्रह्मानन्दो महाबलः । स च वाक्यं प्रगृह्णीयादाह्लादाद्यैः सुरक्षितः ।।१७
किं त्वया विदितं नैव चरितं तस्य विश्रुतम् । भवान्षड्बन्धुसहितः कृष्णांशाद्यैर्विवाहितः ।।१८
ते सर्वे वशगास्तस्य ब्रह्मानन्दस्य धीमतः । नास्ति भूमण्डले कश्चित्तद्बलेन समो नृपः ।।१९
इति श्रुत्वा ययौ तूर्णं तारकः स्वबलैः सह । तत्पद्यं कथयित्वाग्रे हस्तबद्धस्तदाभवत् ।।२०
कृष्णांशस्तु गृहीत्वाशु पद्यं वाक्यमुवाच ह । अहं विवाहयिष्यामि ब्रह्मानन्दं नृपोत्तमम् ।।२१
तूष्णीं भूतास्तदा सर्वे तारकः स द्विजैः सह । अभिषेकं तदा कृत्वा स्वगेहं पुनराययौ ।।२२
माघमासे सिते पक्षे त्रयोदश्यां सुवासरे । विवाहलग्नं शुभदं वरकन्यार्थयोस्तदा ।।२३

का 'वेला' (अर्थात् वह इला का ही रूपान्तर है) नामकरण हुआ । उसके उत्पन्न होने पर उसके पिता ने अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए ब्राह्मणों को उत्तम अनेक भाँति के वस्त्रों समेत दान प्रदान किया । बारह वर्ष की अवस्था में उस उत्तम कन्या ने अपने पिता से कहा—'आप मेरी बात सुनें, पृथिवीपते ! 'मण्डप में रक्त की धारा पर जो मुझे शयन करायेंगे, वही मुझ द्रौपदी को भूषण प्रदान करने वाला पुरुष मेरा पति हो सकेगा ।' बेला के मुख से निकले हुए इस पद्यांश को सुवर्ण के पत्र में अंकित कराकर राजा ने तारक को देते हुए कहा—'कन्या के लिए इस भाँति के पति का अन्वेषण करो ।' पश्चात् तारक ने अपने पिता की आज्ञा से एक लाखसैनिक और साढ़े तीन लाख द्रव्य समेत राजाओं के यहाँ प्रस्थान किया । सिन्धु नदी के तट से आरम्भकर आर्य देशों के सभी राजाओं के पास उनकी यात्रा हुई, किन्तु घोर विष की भाँति उस वाक्य को किसी राजा ने स्वीकार नहीं किया । तदुपरांत उन्होंने इधर-उधर भ्रमण करते हुए अपने मामा (माहिल) के यहाँ पहुँचकर उनसे सब वृत्तान्त कहा ।९-१६। उसे सुनकर उनके मामा ने कहा—'वीर ! राजकुमार ब्रह्मानन्द के यहाँ जाओ, जो स्वयं महाबली एवं आह्लाद (आल्हा) आदि से सुरक्षित है, तुम्हारी इन बातों को वह अवश्य स्वीकार करेगा ।' और क्या उसके चरित्र को तुम नहीं जानते ! छः भाइयों समेत आप के विवाह को उदयसिंह आदि ही सुसम्पन्न कराये थे, उस बुद्धिमान् ब्रह्मानन्द के अधीन वे सभी लोग हैं । उनके समान बली कौन राजा इस भूमण्डल मे है ? इसे सुनकर तारक (ताहर) ने अपने सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर अञ्जली बांधकर उस पद्य को सुनाया । उदयसिंह ने शीघ्र उस पत्र को लेकर कहा—'मैं नृपश्रेष्ठ ब्रह्मानन्द के द्वारा उस कन्या का पाणिग्रहण कराऊँगा।' उस समय सभा एकदम निस्तब्ध थी, तारक ने ब्रह्मानन्द का अभिषेक (तिलक) करके अपने घर को प्रस्थान किया।१७-२२। माघमास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन वर-कन्या का विवाह शुभ लग्न में होना निश्चित

सप्तलक्षबलैः सार्द्धं लक्षणश्च सतालनः । महावतीं पुरीं प्राप्तो बली परिमलादिभिः ॥२४
आह्लादो लक्षसैन्याढ्यः कृष्णांशेन समन्वितः । बलखानिर्लक्षसैन्यः संयुतः सुखखानिना ॥२५
नेत्रसिंहो लक्षसैन्यो योगभोगसमन्वितः । रणजिच्च बली बालो द्विलक्षबलसंयुतः ॥२६
एवं द्वादशलक्षाणां सैन्यानामधिपो बली । तालनः सिंहिनीसंस्थो वडवां प्रययौ सह ॥२७
सैन्यैर्द्वादशलक्षैश्च सहितस्तालनो बली । आययौ देहलीग्रामे महीराजानुपालिते ॥२८
देवो मनोरथारूढो बिन्दुलस्थः स कृष्णकः । वडवामृतमासाद्य स्वर्णवत्याः सुतो गतः ॥२९
रूपणश्च करालस्थ आह्लादश्च पपीहके । बलखानिः कपोतस्थो हरिणस्थोऽनुजस्ततः ॥३०
रणजिन्मलनापुत्रः संस्थितो हरिनागरे । पञ्चशब्दगजारूढो महावत्यधिपो गतः ॥३१
विमानवरमारुह्य धीवरैः शतवाहिकैः । मणिमुक्तास्वर्णमयं सहस्रैर्वाद्यकैर्युतम् ॥३२
अयुतैश्च पताकैश्च[1] वेत्रपाणिसहस्रकैः । सहस्रैः शिबिकाभिश्च पञ्चसाहस्रकै रथैः ॥३३
शकटैर्महिषोढैस्तु तथा पञ्चसहस्रकैः । सर्वतोपस्कृतं[2] रम्यं ब्रह्मानन्दं समागत ॥३४
श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः । विस्मितः स बभूवाथ शिबिराणि मुदा ददौ ॥३५

हुआ ।२३। उस बारात में प्रस्थान करने के लिए सात लाख सैनिक समेत तालन महावती (महोबा) नगर में पहुँचे, लाख सैनिक समेत आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह, सुखखानि के साथ, लाख सैनिक लेकर बलखानि (मलखान), योग-भोग (योगा-भोगा) समेत लाख सैनिक लेकर नेत्र सिंह, और दो लाख सेना समेत रणविजयी बाल बली वहाँ पहुँचे । इस प्रकार बारह लाख सेना समेत उसके अध्यक्ष तालन ने अपनी सिंहिनी घोड़ी पर बैठकर उन बारह लाख सेनाओं का संचालन करते हुए पृथिवीराज के दिल्ली नगर में आकर सैनिकों को विश्राम के लिए आज्ञा प्रदान की । उस यात्रा में देवसिंह मनोरथ (मनोहर) नामक घोड़े पर, उदयसिंह बिन्दुल (वेंदुल) पर, स्वर्णवती (सोना) का पुत्र इन्दुल (इंदल) अपनी अमृत घोड़ी पर, रूपन कराल पर, आह्लाद (आल्हा) पपीहा पर, बलखानि (मलखान) कपोत (कबूतर) नामक घोड़े पर, सुखखानि हरिण नामक घोड़े पर, और रण-विजयी एवं मलना के पुत्र ब्रह्मानन्द स्वयं हरिनागर नामक घोड़े पर सुशोभित हो रहे थे । उसी प्रकार पञ्चशब्द नामक गजराज पर महावती (महोबा) का अधिनायक राजा परिमल स्वयं विराजमान था । उनके साथ उत्तम विमान था, जो मणि, मुक्ता एवं सुवर्णों से खचित तथा सैकड़ों धीमर (कहार जाति के) लोग जिसका संवाहन कर रहे थे, उसके साथ अनेक भाँति की वाद्य ध्वनियाँ, दशसहस्र पताकाएँ, हाथ में वेत (की छड़ी) लिए हुए सहस्र सभा स्थान के भृत्यगण, सहस्र शिविकाएँ (पालकियाँ), पाँच सहस्र रथ, और पाँच सहस्र भैंसा गाड़ियाँ ब्रह्मानन्द को घेरे हुए चल रही थीं । उस बारात के कोलाहल (शोर) सुनकर राजा पृथ्वीराज को महान् आश्चर्य हुआ, पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके रहने के लिए शिबिर (तम्बू) आदि प्रदान किया ।२४-३५। अपने दुर्ग के दरवाजे की (द्वारपूजा आदि) क्रिया को विधानपूर्वक सुसम्पन्न करने के उपरान्त उन्होंने कहा—बेला

---

१. पताकावद्भिः —इत्यर्थः । 'कुन्ता विशन्ति' इतिवन्मत्वर्थीयोऽच्, तद्वत्सु लक्षणा वा, परन्तु—लक्षणापक्षेऽजहल्लिङ्गत्वात्पताकाभिरित्येव सुसाधु स्यात् । २. सन्धिरार्षः ।

दुर्गद्वारिक्रियां रम्यां कृत्वा विधिविधानतः । द्रौपद्या भूषणं देहि वेलायै स तमब्रवीत् ॥३६
इन्दुलस्तु ययौ स्वर्गं वासवं प्रति चाब्रवीत् । द्रौपद्याभूषणं सर्वं देहि मह्यं सुरोत्तम ॥३७
कुबेरात्स समानीय दिव्यमाभूषणं ददौ । इन्दुलः प्रहरान्ते च प्राप्तः पित्रे न्यवेदयत् ॥३८
आह्लादस्तु स्वयं गत्वा वेलायै भूषणं ददौ । प्राप्ते ब्राह्मे मुहूर्ते तु विवाहस्तत्र चाभवत् ॥३९
सम्प्राप्ते प्रथमावर्ते तारकः खड्गमाददौ । आह्लादस्तं समासाद्य युयुधे बहुलीलया ॥४०
नृहरिस्तु द्वितीये च कृष्णांशं प्रति चारुधत् । तथा सरदनं वीरं बलखानिरुपाययौ ॥४१
मर्दनं सुखखानिस्तु चतुर्थावर्तकेऽरुधत् । रणजित्सूर्यवर्माणं स भीमं रूपणो बली ॥
देवस्तु वर्धनं वीरं सप्तावर्ते क्रमाद्ययौ ॥४२
शतभूपान्खड्गधारान्गजसेनादिकांस्तदा । लक्षणाद्याः समाजग्मुर्मण्डपे बहुविस्तृते ॥४३
भग्नभूतं नृपबलं दृष्ट्वा राजा रुषान्वितः । महीराजो ययौ क्रुद्धो गजं चारिभयङ्करम् ॥४४
जित्वा तान्नेत्रसिंहादीञ्छब्दवेधी नृपोत्तमः । लक्षणं प्रययौ शीघ्रं बौद्धिनीं हस्तिनीं[१] स्थितम् ॥४५
शिवं मनसि संस्थाप्य जित्वा बद्ध्वा रुषान्वितः । अगमत्तमुपगृह्य दर्शयामास तं नृपम् ॥४६

(कन्या) के लिए द्रौपदी के सभी आभूषण भेजने की कृपा करें ।' इसे सुनकर इन्दुल (इंदल) ने स्वर्ग में इन्द्र के पास पहुँचकर उनसे कहा—सुरश्रेष्ठ ! द्रौपदी के सभी आभूषण मुझे दिलवाने की कृपा करें ।" इन्दुल ने उसी समय कुबेर के यहाँ से द्रौपदी के सभी आभूषणों को मंगाकर इन्हें सौंप दिया । उसे लेकर इन्दुल ने पुनः एक प्रहर के भीतर ही अपने पिता के पास पहुँचकर निवेदनपूर्वक उसे सौंप दिया । आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं वहाँ जाकर उन आभूजणों को सानुराग बेला के लिए भिंजवाया । पश्चात् ब्राह्म मुहूर्त में विवाह-संस्कार भी आरम्भ हुआ । प्रथम भाँवरि के समय तारक (ताहर) ने खड्ग से वर (ब्रह्मानन्द) के ऊपर आघात किया, किन्तु आह्लाद (आल्हा) ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर उस प्रहार को रोककर अपनी कई लीलाओं द्वारा उनसे युद्ध किया । दूसरी भाँवरि में नृहरि के प्रहार को उदयसिंह तथा तीसरी भाँवरि में सरदन के प्रहार को बलखानि (मलखान) ने रोक लिया । उसी भाँति चौथी भाँवरि में मर्दन द्वारा किये गये आघात को सुखखानि, पाँचवीं में ब्रह्मानन्द ने स्वयं सूर्यवर्मा को, रूपन ने भीम को और सातवीं भाँवरि में देवसिंह (डेबा) ने वीरवर्धन को रोक लिया था । उस समय उस विस्तृत मण्डप (रंगभूमि) के मैदान में गजसेन आदि सौ राजाओं समेत लक्षण (लखन) आदि वीर भी वहाँ उपस्थित होकर राजा की सेनाओं को धराशायी करने लगे । अपनी सेनाओं को तितर-वितर होते देखकर राजा पृथ्वीराज ने क्रुद्ध होकर अपने अरिभयंकर नामक गजराज पर बैठकर वहाँ रणस्थल में घोर युद्ध करना आरम्भ किया ।३६-४४। उस शब्दवेधी नृपश्रेष्ठ ने नेत्रसिंह आदि वीरों को पराजित करते हुए उस लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर जो बौद्धिनी नामक हस्तिनी पर सुशोभित हो रहे थे, घोर संग्राम आरम्भ किया । मन में शिव का ध्यान करते हुए अत्यन्त रोषपूर्ण होकर पृथ्वीराज ने उन पर विजय प्राप्त-कर उन्हें बाँध भी लिया, पश्चात् ले जाकर राजा को दिखाया । उसे सुनकर राजा परिमल ने अत्यन्त

---

१. सकर्मताषीं ।

श्रुत्वा परिमलो राजा कृष्णांशं भीरुको ययौ । वृत्तान्तं कथयामास चाह्लादादिपराजयम् ।।४७
अजितः स च कृष्णांशो नभोमार्गेण मन्दिरम् । गत्वा जगर्ज बलवान्योगिन्यानन्ददायकः ।।४८
तदा स लक्षणो वीरस्त्यक्त्वा बन्धनमुत्तमम् । विष्णुं मनसि संस्थाप्य महीराजं समाययौ ।।४९
गृहीत्वा चागमां दोलां स्वयं शिबिरमाप्तवान् ।।५०
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे त्यक्त्वा मूर्च्छां समन्ततः । खड्गयुद्धेन तान्जित्वा बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः ।।५१
सान्वयाञ्छतभूपांश्च हत्वा तद्रुधिरावहैः । द्रौपदीं स्नापयामासुर्वेलारूपां कलोत्तमाम् ।।५२
विवाहान्ते च ते सर्वे शिबिराणि समाययुः । समुत्सृज्य सुतान्सप्त सुभोज्यैस्ते ह्यभोजयन् ।।५३
भुक्तवत्सु सुवीरेषु साहस्रास्तैः सुतैः सह । रुरुधुः सर्वतो जघ्नुरस्त्रशस्त्रैः समन्ततः ।।५४
सहस्रशूरांस्तान्हत्वा पुनर्बद्धा महाबलान् । शिबिराणि समाजग्मुस्तेषां हास्यविशारदाः ।।५५
दशलक्षसुवर्णानि गृहीत्वा नृपतिर्बली । वेलां नवोढामादाय गत्वा नत्वा तमब्रवीत् ।।५६
प्रद्योतसुत हे राजँल्लक्षणोऽसौ महाबलः । मम पत्नीं समादाय दासीं कर्तुं समिच्छति ।।५७
इति श्रुत्वा परिमलः सर्वभूपसमन्वितः । बहुधा बोधितश्चैव न बुबोध तदा नृपः ।।५८
तदा महासती वेला विललाप भृशं मुहुः । तच्छ्रुत्वा स च कृष्णांशः सहितो बलखानिना ।।

भयभीत होकर उदयसिंह से कहा—आह्लाद (आल्हा) आदि सभी राजा पृथ्वीराज के युद्ध में पराजित हो गये हैं, अजेय उदयसिंह ने शीघ्र आकाशमार्ग से राजा के महल में पहुँचकर अत्यन्त गर्जना की । योगिनी के आनन्द प्रदाता उदयसिंह के उस भीषण गर्जना से वीर लक्षण (लाखन) ने रोष में आकर अपने बंधनों को तोड़ दिया और मन में विष्णु का ध्यान करके पृथ्वीराज के महल में शीघ्र पहुँचकर रानी अगमा को डोला के साथ में लेकर अपने शिविर में लौट आये । उसी बीच सभी लोगों में मूर्च्छानिष्ट होकर चेतना आ गई थी, वे अपने-अपने खड्ग आदि अस्त्रों को लेकर शत्रु की सेना को धराशायी करने लगे । विजय प्राप्त करते हुए उन्हें हथकड़ी-बेड़ियाँ बाँधकर उनके कुल के केवल सौ राजाओं का बध किया, जिसके रुधिर की धारा में द्रौपदी रूप सर्वाङ्ग सुन्दरी बेला ने स्नान किया । अनन्तर विवाह के वे योद्धागण अपने-अपने शिविर में चले गये । वहाँ पहुँचकर राजा के सातों पुत्रों को मुक्तबंधन कर दिया । वे सब घर पहुँचकर बारात के भोजन का प्रबन्धकर सभी लोगों को निमन्त्रित किये । वहाँ दुर्ग के गुप्त स्थानों में सेना सुसज्जित होकर प्रतीक्षा कर रही थीं । उसी समय महावती (महोबा) वाले बाराती भोजनार्थ अस्त्रों से सुसज्जित होकर पहुँचे । राजा के सातों पुत्रों ने आतिथ्य सत्कार में भाग लिया, उसी बीच उन गुप्त सैनिकों ने युद्धारम्भ कर दिया । भोजन त्यागकर वीरों ने उन सहस्र सैनिकों के निधनपूर्वक सातों पुत्रों को पुनः बाँध लिया और साथ रखकर उनकी हँसी करते हुए अपने शिविरों के लिए प्रस्थान किये ।४५-५५। पश्चात् पृथ्वीराज ने दशलक्षसुवर्ण समेत वेला कन्या को साथ में लेकर राजा परिमल के पास जाकर उनसे करबद्ध प्रार्थना की—'प्रद्योतसुत, राजन् ! इस महावली लक्षण (लाखन) ने मेरी अगमा नामक स्त्री का अपहरण कर उसे दासी बनाना चाहा है । इसे सुनकर राजा परिमल ने अन्य सभी राजाओं समेत लक्षण (लाखन) को बहुत समझाया, किन्तु उस राजा की समझ में कुछ नहीं आया। पश्चात् उसी स्थान पर महासती बेला अत्यन्त विलाप करने लगी । उस करुणक्रन्दन को सुनकर

तामाश्वास्य तदा वेलां नभोमार्गेण चाययौ ॥५९
लक्षणं तर्जयित्वासौ गृहीत्वा चागमन्मुदा । नभो मार्गेण गेहे तं कृष्णांशः समपेषयत् ॥६०
पुनस्त्यक्त्वा सप्त सुतान्सहितान्नृपतेस्तु ते । शपथं कारयामासुर्दम्भं प्रति महाबलाः ॥
उषित्वा दशरात्रान्ते ह्यध्युर्गंतुमनो मुने ॥६१
महीराजस्तु बलवान्गृहीत्वा भूपतेः पदौ । स उवाचाश्रुपूर्णाक्षस्तदा परिमलं नृपम् ॥६२
महाराज वधूस्ते च वेलेयं द्वादशाब्दिका । पितृमातृवियोगं च न क्षमन्ती तु बालिका ॥६३
तस्मात्तां त्वं परित्यज्य गच्छ गेहं सुखी भव । पतियोग्या यदा भूयात्तदा त्वां पुनरेष्यति ॥६४
इत्युक्त्वा च वचो राजा स स्नेहादङ्कमस्पृशत् । चूर्णीभूते परिमले चाह्लादस्तत्र दुःखितः ॥
महीराजं स पस्पर्श स राजा चूर्णतां गतः ॥६५
भग्नास्थी भूपती चोभौ पावकीयैश्चिकित्सकैः । सुखवन्तौ गृहं प्राप्य कृतकृत्यत्वमागतौ ॥६६
मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमुद्वाहितं गृहे । कृत्वोत्सवं बहुविधं विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥
होमं वै कारयामास चण्डिकायाः प्रसादतः ॥६७
सभायां लक्षणो वीरो यात्राकाले तमब्रवीत् । अगमां जयचन्द्राय मत्वा जित्वा हृतां तु ताम् ॥
नभोमार्गेण सम्प्राप्तौ योगिनौ च शिवाज्ञया ॥६८

उदयसिंह और बलखानि (मलखान) ने बेला को आश्वासन प्रदानपूर्वक आकाशमार्ग से लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उनकी भर्त्सजना की। अनन्तर अगमा को लेकर आकाशमार्ग द्वारा उदयसिंह ने उन्हें उनके महल पहुँचा दिया और शिविर में आकर पृथ्वीराज के सातों पुत्रों को भी मुक्तबंधन कर दिया। उन पुत्रों ने बंधन-मुक्त होने पर पुनः दम्भ न करने की शपथ की। मुने ! इस भाँति राजा परिमल वहाँ दशरात्रि तक रहने के उपरान्त अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान करने लगे।५९-६१। उस समय राजा पृथ्वीराज ने आँखों में आसू भरकर उनके चरणों को पकड़कर कहा—महाराज ! यह आपकी बहू बेला अभी बारह ही वर्ष की है, बालिका होने के नाते यह माता-पिता के वियोग को सहन न कर सकेगी। इसलिए इसे यहाँ छोड़कर आप अपने घर जाने की कृपा करें, पुनः इसे पति-योग्य हो जाने पर आपकी सेना में उपस्थित करूँगा।' इतना कहकर राजा पृथ्वीराज सस्नेह राजा परिमल से मिले। किन्तु, उन दोनों के मिलने में राजा परिमल को अंग-भंग देखकर आह्लाद (आल्हा) को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने पृथिवीराज को पकड़कर चूर्ण कर दिया। दोनों राजाओं की अस्थियों के टूट जाने पर अग्नि चिकित्सक राजा नेत्रसिंह ने उन्हें आरोग्य किया, जिससे वे दोनों सुखी होकर अपने-अपने घर चल पड़े। रानी मलना ने अपने पुत्र को विवाहित देखकर हर्षातिरेक से ब्राह्मणों को भाँति-भाँति का दान दिया और चण्डिका के प्रसन्नार्थ सविधान हवन सुसम्पन्न कराया। राजा लक्षण (लाखन) अपनी यात्रा के अवसर पर उसी सभा में रानी मलना से उस वृत्तान्त को बताये—जयचन्द्र की स्त्री बनाने के लिए अगमा का मैंने विजय-पूर्वक अपहरण किया था, किन्तु, शिव की आज्ञा से इन दोनों योगियों ने मेरे पास पहुँचकर उसे छीन लिया और उसे (उसके) अपने भवन पहुँचा दिया।६२-६८। (अन्यथा वैसा करने का मेरा विचार निश्चित हो

जहतुस्तौ च मां जित्वा तत्तीक्ष्णभयमोहितम् । अद्याहं धाम गच्छामि चिरं जीव नृपोत्तम ।।
इत्युक्तवन्तं तं नत्वा ययुर्भूपाः स्वमालयम् ।।६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विंशाब्दे चैव कृष्णांशे यथा जातं यथा शृणु । सागराख्यसरस्तीरे कदाचिदिन्दुलो बली ।।
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं तत्र ध्यानान्वितोऽभवत् ।।१
एतस्मिन्नन्तरे हंसा आकाशाद्भूमिमागताः । तेषां च रुतशब्दैश्च स ध्यानादुत्थितोऽभवत् ।।२
वक्ष्यमाणं वचः प्राहुर्धन्योऽयं दिव्यविग्रहः । पर्वतानां हिमगिरिर्वनं वृन्दावनं तथा ।।३
महावती पुरीणां च सागरः सरसामपि । नारीणां पद्मिनी नारी नृणां श्रेष्ठस्त्वमिन्दुलः ।।४
भो इन्दुल महाप्राज्ञ मानसे सरसि स्थिताः । वयं श्रुत्वा श्रियो वाक्यं नलिनी सागरं गताः ।।५
दृष्ट्वा तत्र शुभां नारीं सर्वाभरणभूषिताम् । सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतनाट्यविशारदाम् ।।६

चुका था) पश्चात् प्रसन्नतापूर्ण होकर राजा ने विदा माँगी—नृपश्रेष्ठ ! आप चिरंजीवी हों, मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं आज घर जाना चाहता हूँ । उनके जाने के पश्चात् सभी नृपगण राजा परिमल से सप्रेम नमस्कार पूर्वक विदा होकर अपने-अपने घर गये ।६९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की बीस वर्ष की अवस्था में उनके जो कुछ चरित्र हुए हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार सागर नामक किसी सर (तालाब) के तट पर पहुँचकर उदयसिंह ने सप्तशती स्तोत्र के जप (पाठ) पूर्वक भगवती का ध्यान करना आरम्भ किया । उसी समय आकाश से हंसगण वहाँ उतरे । उनके शब्दों के सुनने से इनका ध्यान भंग हो गया । पश्चात् उठकर वे उन हंसों की ध्वनि सुनने लगे, वे कह रहे थे—दिव्य शरीर धारण करने वाला यह धन्य है, जिस प्रकार पर्वतों में हिमालय, बनों में वृन्दावन, नगरियों में महावती (महोबा), सरों में सागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार स्त्रियों में पद्मिनी, और पुरुषों में इन्दुल सर्वश्रेष्ठ हैं। पश्चात् हंसों ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—महाप्राज्ञ, इन्दुल ! हम लोग मानसरोवर के निवासी हंस हैं, लक्ष्मी की बात को स्वीकार कर नलिनीसागर गये थे ।१-५। वहाँ समस्त आभूषणों से सुसज्जित एक परम सुन्दरी स्त्री को देखा था, जो अपनी सात सुन्दरी सखियों समेत वहाँ

दृष्ट्वा मोहत्वमापन्ना वयं देशान्तरं गताः । विलोकिता नराः सर्वेऽत्रास्माभिर्जगतीतले ।।
त्वत्समो न हि कोऽप्यत्र पद्मिनी सदृशो वरः ।।७
तस्मात्त्वं नः समारुह्य तां देवीं द्रष्टुमर्हसि । तथेत्युक्त्वा शक्रसुतो हंसराजं समारुहत् ।।८
सिंहलद्वीपके रम्ये ह्यार्यसिंहो नृपः स्थितः । तत्सुता पद्मिनी नाम्ना रूपयौवनशालिनी ।।
रागिण्यः सप्त विख्यातास्तत्सख्यः प्रमदोत्तमाः ।।९
नलिनीसागरे रम्ये गिरिजामन्दिरं शुभम् । तत्र स्थितां च तां देवीमिन्दुलः स ददर्श ह ।।१०
सापि तं सुन्दरं दृष्ट्वा हंसदेहे सनास्थितम् । सम्मोह्याहूय तं देवं तेन सार्द्धमरीरमत् ।।११
वर्षमेकं ययौ तत्र नानालीलासु मोहितः । नक्तं दिवं न बुबुधे रममाणस्तया सह ।।१२
भक्तिगर्वत्वमापन्ने चाह्लादे जगदम्बिका । दृष्ट्वा चान्तर्दधे देवी गर्वाचरणकुण्ठिता ।।१३
तस्य प्राप्तं महद्दुःखमाह्लादस्य जयैषिणः । स कैश्चित्पुरुषैर्वीरः कथितोऽभूत्स्वमन्दिरे ।।१४
इन्दुलं रूपसम्पन्नं लङ्कापुरनिवासिनः । राक्षसास्तं समाहृत्य स्वगेहं शीघ्रमाययुः ।।१५
इति श्रुत्वा वचो घोरं सकुलो विललाप ह । हा हा शब्दो महांश्चासीत्तेषां तु रुदतां मुने ।।१६
कृष्णांशो रुदितं प्राहाह्लाद ज्येष्ठं शृणुष्व भोः । जित्वाहं राक्षसान्सर्वांस्तालनाद्यैः समन्वितः ।।
इन्दुलं त्वां समेष्यामि भवान्धैर्यपरो भवेत् ।।१७
बलखानिश्च कृष्णांशो देवसिंहश्च तालनः । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं लङ्कां प्रतिययुर्मुदा ।।१८

उपस्थित थी, गायन एवं नाट्य-निपुणा उस स्त्री को देखकर मोहित होकर हम लोग देश-देशान्तरों में भ्रमण किये, इस धरातल के सभी मनुष्यों को देखा, किन्तु तुम्हारे समान पुरुष पद्मिनी के समान कोई स्त्री नहीं है, अतः हमारे ऊपर बैठकर आप वहाँ चलने की कृपा करें तो बड़ी प्रसन्नता होगी । इन्दुल भी स्वीकार कर हंसराज की पीठ पर बैठा ।६-८। रमणीक सिंहलदीप में आर्य सिंह नामक राजा राज करता था । पद्मिनी नामक उसकी पुत्री थी, जो रूप-यौवन सम्पन्न अनुपम ललना थी । सातों रागिणियाँ सुन्दरी स्त्रियों के वेष में उसकी सहेलियाँ हुई थीं । नलिनी सागर के तट पर स्थित पार्वती जी के उस रम्य भवन में स्थित होकर वह मनोविनोद कर रही थी । उसी अवसर में इन्दुल वहाँ पहुँचकर उसे देखा । उस सुन्दरी ने हंस की पीठ पर स्थित परम सुन्दर उस पुरुष को देखकर मुग्ध होकर उस पुरुष श्रेष्ठ को अपने पास बुलाया और उसके साथ रमण किया । उसकी अनेक भाँति की लीलाओं से मोहित होकर इन्दुल एक वर्ष तक वहाँ रह गये । उसी बीच आह्लाद (आल्हा) को देवी की भक्ति का गर्व हो गया था, भगवती जगदम्बिका उस गर्व का सर्वनाश करने के लिए अन्तर्हित हो गईं । पश्चात् आह्लाद (आल्हा) को अत्यन्त दुःख का अनुभव करना पड़ा, क्योंकि उस समय कुछ लोगों ने उनसे उसी मन्दिर में कहा—इन्दुल के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लंका निवासी राक्षसों ने उसका अपहरण कर अपने घर को प्रस्थान कर दिया है ।९-१५। इसे सुनते ही सकुटुम्ब आह्लाद (आल्हा) विलाप करने लगे । मुने ! रुदन करते हुए उन लोगों के मुख से हा-हा शब्द हो रहे थे । उस समय उदयसिंह ने अपने भाई से, जो अधीर होकर रुदन कर रहे थे, कहा—तालन आदि के साथ मैं उन राक्षसों को पराजित कर इन्दुल को लाकर सौंप दूँगा, किन्तु आप धीरज को अपनाते रहें । अनन्तर बलखानि (मलखान), उदयसिंह, देवसिंह (डेबा) और

मार्गप्राप्ताश्च ये भूपा ग्रामपा राष्ट्रपास्तथा । यथायोग्यं बलिं रम्यं प्राप्य तस्मै न्यवेदयन् ॥१९
ये भूपा मदमत्ताश्च जित्वा तांरतालनो बली । बद्ध्वा तैश्च समागच्छत्सेतुबन्धं शिवस्थलम् ॥२०
पूजयित्वा च रामेशं रामेण स्थापितं शिवम् । सिंहलद्वीपमगमन्षण्मासाभ्यन्तरे तदा ॥२१
नलिनीसागरं प्राप्य तत्र वासमकारयन् । पत्रं सम्प्रेषयामास बलखानिर्नृपाय च ॥२२
आर्य्यसिंह महाभाग स्वपोतान् देहितीर्णकान् । भवांश्च स्वबलैः सार्द्धं लङ्कां प्रति व्रजाधुना ॥
नो चेत्त्वां सबलं जित्वा राष्ट्रभङ्गं करोम्यहम् ॥२३
इति श्रुत्वा पत्रवचो भूपतिर्बलवत्तरः । रक्षितः शक्रपुत्रेण युद्धाय समुपाययौ ॥२४
इन्दुलः स्तम्भनं मन्त्रं संस्थाप्य शर उत्तमे । स्तम्भयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैः सुरक्षितम् ॥२५
दिवसे सुखशर्मा च त्रिलक्षैः स्वदलैः सह । आर्य्यसिंहस्य तनयो महद्युद्धमचीकरत् ॥२६
निशामुखे च सम्प्राप्ते शक्रपुत्रो महाबलः । शतपुत्रैः क्षत्रियाणां सार्द्धं युद्धाय चाययौ ॥२७
तेषां हया हरिद्वर्णा योगिवेषधरा बलात् । महतीं ते सहस्रं च रिपोः सेनां व्यनाशयन् ॥
तत्पश्चाद्गेहमासाद्य तदा तैः सुखितोऽवसत् ॥२८
एवं जाताश्च षण्मासास्तयोर्युद्धं हि सेनयोः । क्रमेण संक्षयं प्राप्तं बलखानेर्महद्बलम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८

तालन ने अपनी सात लाख सेना समेत लंका के लिए प्रस्थान किया । मार्ग में जो राजा मिल जाते थे, वे उचित भेंट प्रदानपूर्वक इन लोगों की प्रार्थना करते थे, और जो अपने मद में मुग्ध रहते थे, बली तालन उन्हें पराजित करके हथकड़ी-बेड़ी से आबद्ध उन्हें साथ लिए चल रहे थे । इस प्रकार वे सेतुबंध के शिवालय के समीप पहुँच गये । वहाँ भगवान् राम द्वारा स्थापित रामेश्वर जी की पूजा करने के पश्चात् सिंहलद्वीप की यात्रा किये । छः मास की यात्रा में वहाँ पहुँचकर नलिनी सागर पर उन लोगों ने अपना निवास-स्थान बनाया । बलखानि (मलखान) ने पत्र लिखकर राजा के पास भेजा—'पुण्यात्मन् ! आर्य सिंह ! अपनी नौकाएँ भेज दीजिए, हम लोग आप के नगर में आना चाहते हैं, अथवा अपनी सेना समेत आप इस समय इसी लंका में आ जाँय ।' अन्यथा सेना समेत विजय प्राप्तकर आपका राष्ट्र भंगकर दूँगा ।'१६-२३। पत्र को पढ़कर बली राजा ने इन्द्र पुत्र (इन्दुल) द्वारा सुरक्षित होने के नाते युद्ध के लिए शीघ्र प्रस्थान कर दिया । इन्दुल ने स्तम्भन मंत्र द्वारा अभिमंत्रित बाण से तालन आदि की सेनाओं को स्तम्भित कर दिया । दिन में सुख शर्मा अपने तीन लाख सैनिकों द्वारा युद्ध किया, और रात्रि हो जाने पर इन्दुल जी सौ राज कुमारों को साथ लेकर युद्धार्थ उस रण-स्थल में गया । उनके घोड़े हरित् (हरे) वर्ण (रंग) के थे, और कुमार गण योगी के वेष बनाये थे । शत्रु की सहस्रों संख्या की उस बड़ी सेना को नष्ट कर घर में सुखपूर्वक रहते थे । इस प्रकार दोनों सेनाओं का अविराम गति से छः मास तक युद्ध हुआ, जिसमें क्रमशः बलखानि (मलखान) की वह विशाल सेना नष्ट होने लगी ।२४-२९

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च बलखानिर्महाबलः । सम्प्राप्य मानसीं पीडां युद्धार्थं विमुखोऽभवत् ॥१
देवसिंहं समाहूय त्रिकालज्ञं महामतिम् । तं मन्त्रं मन्त्रयामास कार्यसिद्धिर्यथा भवेत् ॥
श्रुत्वोवाच महायोगी देवसिंहो महाबलः ॥२
महेन्द्रतनयः कश्चित्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः । त्वत्सैन्यं रोधयित्वा वै दिव्यास्त्रेण दिवामुखे ॥
रात्रौ स्वयं समागम्य करोति बलसंक्षयम् ॥३
अतस्त्वं मत्सहायेन तालनेन समन्वितः । कृष्णांशेन समागम्य शक्रपुत्रं शुभाननम् ॥
विजयी भव शीघ्रं हि नो चेद्यायां यमक्षयम् ॥४
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवसिंहस्य भाषितम् । यत्नं चकार बलवान्भ्रातृमित्रसमन्वितः ॥५
एकविंशाब्दकृष्णांशे सम्प्राप्ते युद्धकोविदे । सेनां निवेशयामास पोतेषु हयवाहनः ॥६
अर्द्धसैन्यं च तत्रैव स्थापयित्वा महाबलः । अर्द्धसैन्येन कृष्णांशो दक्षिणां दिशमागमत् ॥७
हयारूढाश्च ते शूराः सर्वे युद्धसमन्विताः । कपाटं दृढमुद्धाटच नगरान्तमुपाययुः ॥८
हत्वा ते रक्षिणः सर्वाल्लुण्ठयित्वा पुरं शुभम् । रिपोर्दुर्गं समासाद्य चक्रुः शत्रोर्महाक्षयम् ॥९

अध्याय १९

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाबली बलखानि (मलखान) ने अपनी सेना का ह्रास देखकर मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हुए युद्ध बन्द करने का आदेश प्रदान किया, पश्चात् तीनों काल के ज्ञाता एवं बुद्धिमान् देवसिंह (डेबा) को बुलाकर कार्य की सफलता के हेतु उनसे मंत्रणा करना आरम्भ किया। उनकी बातों को सुनकर महाबली एवं महायोगी देवसिंह ने कहा—इन्द्र के किसी पुत्र ने, जो सभी शस्त्र एवं अस्त्रों के प्रयोग में अत्यन्त निपुण है, प्रातःकाल ही अपने दिव्यास्त्र द्वारा तुम्हारी सेना को अवरुद्ध (रोक) कर देता है। पश्चात् रात्रि में स्वयं आकर उनके निधन करता है, इसलिए मेरी सहायता से तुम तालन और उदयसिंह को साथ लेकर उस सुन्दर इन्द्र पुत्र पर शीघ्र विजय प्राप्त करो, अन्यथा शीघ्र नष्ट होकर यमपुरी पहुँच जावोगे। देवसिंह की ऐसी बात सुनकर बलवान् बलखानि (मलखान) ने अपने भाइयों तथा मित्रों के सहयोग से प्रयत्न करना आरम्भ किया। उस समय उदयसिंह की इक्कीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस युद्ध के पण्डित उदयसिंह ने अपनी सेना को पोत (जहाजों) में छिपा दिया, आधी सेना को उसी स्थान (जहाज में) पर रखकर शेष आधी सेना समेत दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया, उनके सैनिक अत्यन्त युद्ध-कुशल एवं अश्वारोही थे। १-८½। नगर के दरवाजे पर पहुँचकर अत्यन्त दृढ़बद्ध उस दरवाजे (किवाड़) को खोलकर वहाँ के रक्षकों का हनन करते हुए भीतर नगर को लूटना आरम्भ कर दिया। पश्चात् शत्रु के दुर्ग पर पहुँचकर वहाँ के शत्रु-सैनिकों के संहार करने के अनन्तर राजा के

राज्ञोऽन्तः पुरमागत्य कृष्णांशो बलवत्तरः । ददर्श सुन्दरीं बालां पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ।।
सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतनृत्यविशारदाम् ।।१०
बलाद्दोलां समारोप्य लुण्ठयित्वा रिपोर्गृहम् । जगाम शिबिरे तस्मिन्यत्र जातो महारणः ।।११
बलखानिस्तु बलवान्देवतालनसंयुतः । जघान शात्रवीं सेनामिन्दुलास्त्रेण पालिताम् ।।१२
सुखवर्माणमागत्य सेनाध्यक्षं रिपोः सुतम् । सर्वतस्तं स्वकीयास्त्रैर्जघ्नुस्ते मदविह्वलाः ।।१३
हते तस्मिन्महावीर्ये जयन्तः क्रोधमूर्च्छितः । सेनामुज्जीवयांचक्रे शक्रपुत्रः प्रतापवान् ।।१४
श्यालं च सुखवर्माणं सञ्जीव्य स्वगृहं ययौ । तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्बहुरोदनतत्परान् ।।१५
विस्मितः स ययौ गेहं यथा पूर्वं तथाविधः । न ददर्श प्रियां तत्र सखीभिः सहितां मुने ।।१६
आर्य्यसिंहगृहं गत्वा पृष्टवान्सर्वकारणम् । ज्ञात्वा संलुण्ठितं गेहं शत्रुभिः शस्त्रकोविदैः ।।१७
रुरोद सुभृशं वीरो हा प्रिये मदविह्वले । दर्शयाद्य मुखं रम्यं त्वत्पतिस्त्वदां समुत्सुकः ।।१८
इत्येवं रोदनं कृत्वा वडवोपरि संस्थितः । धनुस्तूणीरमादाय खड्गं शत्रुविमोहनम् ।।
एकाकी स ययौ क्रुद्धो निशि यत्र स्थितो रिपुः ।।१९
एतस्मिन्समये वीरो बलखानिर्महाबलः । दृष्ट्वा तां सुन्दरीं बालां विललाप भृशं मुहुः ।।२०
हा इन्दुल महावीर हा मद्बन्धो प्रियङ्कर । त्वद्योग्येयं शुभा नारी रूपयौवनशालिनी ।।२१
दर्शनं देहि मे शीघ्रं गृहाणाद्य शुभाननाम् । इत्युक्त्वा मूर्च्छितो भूत्वा मानसे पूजयञ्छिवाम् ।।२२

अन्तःपुर में उदयसिंह पहुँच गये । वहाँ कमल के समान विशाल नेत्रवाली उस सुन्दरी पद्मिनी नारी को देखकर, जो अपनी सातों सखियों समेत नृत्य-गायन में ही समय व्यतीत किया करती थी, सखियों समेत उसके डोले को साथ ले अपने शिविर में चले आये, जहाँ वह भीषण युद्ध हुआ था । इधर बलवान् बलखानि (मलखान) ने देव और तालन की सहायता से इन्दुल की अध्यक्षता में संग्राम करने वाली उस शत्रु-सेना का विध्वंस करके सेनाध्यक्ष शत्रु-पुत्र सत्यवर्मा को चारों ओर से घेरकर उसे धराशायी कर दिया । उन मदोन्मत्तों द्वारा सत्यवर्मा के हनन होने पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रतापी शक्र-पुत्र जयन्त (इन्दुल) ने सेना समेत अपने साले को जीवितकर अपने भवन को प्रस्थान किया । वहाँ सभी लोगों को रुदन करते देखकर सदैव की भाँति अपनी प्रेयसी के महल में गये, किन्तु मुने ! सखियों समेत अपनी प्रिया को वहाँ न देखने पर आर्यसिंह के महल में जाकर उन्होंने सभी कारणों का पता लगाया । विदित हुआ कि—शस्त्र निपुण शत्रुओं ने घर को लूटकर उसका अपहरण कर लिया है ।९-१७। वह वीर अत्यन्त रुदन करने लगा—हा, प्रिये, मदविह्वले ! शीघ्र अपने सुन्दर मुख को दिखाओ, तुम्हारा पति तुम्हें देखने के लिए अधीर हो रहा है । इस प्रकार विलाप समेत रुदन करके धनुष-बाण और शत्रुओं को मोहित करने वाले खड्ग को लेकर घोड़ी पर बैठकर क्रुद्ध होकर अकेला ही रणस्थल में पहुँच गया । उसी समय बलशाली बलखानि (मलखान) उस परम सुन्दरी कामिनी को देखकर अत्यन्त विलाप करने लगा । हा, इन्दुल, महावीर, हा मेरे बन्धु प्रियकारक ! यह रूप-यौवन सम्पन्न एवं परम सुन्दरी तुम्हारी ही प्रिया होने के योग्य है, कहाँ छिपे हो, शीघ्र दर्शन देकर इस कल्याणमुखी को अपनाओ । इस प्रकार विलाप करके शिव की मानसिक आराधना करते हुए बलखानि (मलखान) मूर्च्छित हो गये । उसी बीच महाबली इन्द्रपुत्र

तस्मिन्काले च सम्प्राप्तः शक्रपुत्रो महाबलः । जघान शात्रवीं सेनां कृष्णांशेनैव पालिताम् ।।२३
दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च तालनो वाहिनीपतिः । सिंहनादं ननादोच्चैः सिंहिन्युपरि संस्थितः ।।२४
न जयः सैन्यनाशेन तव वीर भविष्यति । मां हत्वा जहि मत्सैन्यं योगिन्बालस्वरूपक ।।२५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शक्रपुत्रो भयङ्करः । जघान हृदये बाणान्स तु खड्गेन चाच्छिनत् ।।
स्वभल्लेन पुनर्वीरो दंशयामास वक्षसि ।।२६
इन्दुले मूर्च्छिते तस्मिन्वडवा दिव्यरूपिणी । आकाशोपरि सम्प्राप्य जयन्तं समबोधयत् ।।२७
तदा स बालस्त्वरितः कालास्त्रं चाप आदधे । तेन जातो महाञ्छब्दस्तालनः स ममार ह ।।२८
मृते सेनापतौ तस्मिन्कृष्णांशो मदविह्वलः । नभोमार्गेण सम्प्राप्य जगर्ज च मुहुर्मुहुः ।।२९
इन्दुलः क्रोधताम्राक्षस्त्वाग्नेयं शरमाददे । वह्निभूतं नभस्तत्र स्वयोगेन महाबलः ।।
कृत्वा शीघ्रं ययौ शत्रुं स तु वायव्यमादधे ।।३०
स्वयोगेनैव कृष्णांशः पीत्वा वायव्यमुत्तमम् । पुनर्जगाम तत्पार्श्वं कलैकः[1] स हरेः स्वयम् ।।३१
तथाविधं रिपुं दृष्ट्वा शक्रपुत्रो महाबलः । गन्धर्वास्त्रं समादाय मोहनायोपचक्रमे ।।३२
पुनर्योगबलेनैव तदस्त्रं संक्षयं गतम् । वारुणं शरमादाय तस्योपरि समाक्षिपत् ।।३३
स्वयोगेनैव कृष्णांशो जलं सर्वं मुखेऽकरोत् । एवं सर्वाणि चास्त्राणि पीत्वा पीत्वा पुनःपुनः ।।३४

(इन्दुल) ने उदयसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करने वाली सेना का विध्वंस कर दिया । उपरान्त नायक तालन ने उस सेना को नष्ट होते देखकर सिंहिनी घोड़ी पर बैठकर सिंहनाद किया—वीर ! केवल सेनाओं के विध्वंस करने से तुम्हारी विजय नहीं होगी । बालस्वरूप योगिन् ! पहले मुझे धराशायी करो । पश्चात् मेरी सेनाओं का हनन करो । उस भीषण इन्दुल ने इतना सुनकर तालन के हृदय पर बाण का प्रहार किया । उसे उन्होंने खड्ग से काट दिया । पश्चात् अपने भाले से वक्षस्थल में आघात कर उन्हें मूर्च्छित भी कर दिया । इन्दुल के मूर्च्छित होने पर दिव्य रूप धारण करने वाली घोड़ी आकाश में पहुँच गई, वहाँ उन्हें चेतना प्राप्त हुई ।, उस समय उस बालक ने कालास्त्र को अपने धनुष पर रखा । जिससे महान् शब्द और तालन की मृत्यु हो गई । सेनापति के निधन हो जाने पर आकाशमार्ग से पहुँचकर उदयसिंह बार-बार गर्जना करने लगे । उस सयम इन्दुल ने क्रुद्ध होकर अग्नि-बाण का प्रहार किया, जिससे पूर्ण आकाश अग्निमय दिखाई देने लगा । पश्चात् उसने वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया ।१८-३०। उदयसिंह अपने योगबल द्वारा उसका पान करके एकदम उनके पार्श्व में पहुँच गये । महाबली इन्द्र-पुत्र ने शत्रु की घृष्टता को देखकर उनके मोहनार्थ गन्धर्वास्त्र का प्रयोग किया, किन्तु, योगबल द्वारा पुनः वह अस्त्र नष्ट हो गया । उसके ऊपर उन्होंने वारुणास्त्र का प्रयोग किया, उदयसिंह ने अपने योगबल द्वारा उसका पान कर लिया । इस प्रकार बाहुशाली एवं संयमी उस उदयसिंह ने प्रसन्नचित्त होकर उनके सभी-अस्त्रों का बार-बार पान करके उनके प्रयत्न को निष्फल कर दिया । उस समय क्रुद्ध होकर इन्दुल

---

१. एका कला यस्मिन्स इति विग्रहः ।

ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा बाहुशाली यतेन्द्रियः। इन्दुलस्तु तदा क्रुद्धोऽश्विनीं त्यक्त्वा भुवि स्थितः ॥
चर्म खड्गं गृहीत्वाशु खड्गयुद्धमचीकरत् ॥३५
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता देवाद्याः सर्वभूमिपाः । ददृशुस्तन्महद्युद्धं सर्वविस्मयकारणम् ॥३६
प्रातःकाले च सम्प्राप्ते बलखानिर्महाबलः । ददर्श बालकं रम्यं जटाजिनसमन्वितम् ॥३७
श्रमेण कर्शितो वीरः शक्रपुत्रः प्रतापवान् । बलखानेः पितुर्बन्धोः शपथं कृतवान्स्वयम् ॥३८
स्वखड्गेनैव कृष्णांश शिरस्तव हराम्यहम् । नो चेन्मे दूषिता माता नाम्ना स्वर्णवती सती ॥
इत्युक्त्वा खड्गमादाय ययौ शीघ्रं रुषान्वितः ॥३९
बलखानिस्तु तं ज्ञात्वा त्यक्त्वास्त्रं प्रेमकातरः । पुत्रान्तिकमुपागम्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥४०
हे इन्दुल महाभाग पितृमातृयशस्कर । आह्लादप्राणसदृश स्वर्णवत्यङ्गमानस ॥४१
पूर्वं हत्वा च मां वीर स्वपितृव्यं ततः पुनः । तथैवोदयसिंहं च देवसिंहं तथा कुलम् ॥
सुखी भव महावीर गेहे वै सुखवर्मणः ॥४२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञात्वा च स्वकुलं शिशुः। त्यक्त्वा खड्गं पतित्वा च स्वपितृव्यस्य पादयोः ॥
कृतवान्रोदनं गाढमपराधनिवृत्तये ॥४३
उवाच मधुरं वाक्यं शृणु तात मम प्रिय । नारीयं दूषिता वेदैर्नृणां मोहप्रदायिनी ॥४४
देवो वा मानुषो वापि पन्नगो वापि दानवः । आर्य्य नारीमयैर्जालैर्बन्धनाय समुद्यतः ॥४५

ने घोड़ी से उतर पृथिवी पर स्थित होकर खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। उसी बीच देवसिंह आदि राजाओं ने उस भीषण युद्ध की ओर दृष्टिपात किया, जिसे देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य हुआ।३१-३६। प्रातःकाल होने पर महाबली बलखानि (मलखान) ने उस सुन्दर बालक (इन्दुल) को देखा, जो जटा एवं मृगचर्म धारणकर सुशोभित हो रहे थे। प्रतापी इन्द्रपुत्र वह उस समय अत्यन्त श्रमित दिखाई देता था। उसने अपने पिता की, जो बलखानि (मलखान) के भाई होते थे, शपथ की—'कृष्णांश (उदयसिंह)! इसी अपने खड्ग द्वारा तुम्हारा शिरश्छेदन करूँगा।' यदि ऐसा न किया तो मेरी माता स्वर्णवती (सोना) को दूषित (असती) समझना। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा करके वह दोषपूर्ण होकर हाथ में खड्ग लेकर शीघ्र वहाँ पहुँच गया। बलखानि (मलखान) ने उसे देखकर प्रेम गद्गद होने के नाते अपने अस्त्र के त्यागपूर्वक पुत्र के समीप पहुँचकर कहा—इन्दुल! महाभाग एवं माता-पिता को यश प्रदान करने वाले तुम आह्लाद (आल्हा) के प्राण समान तथा स्वर्णवती (सोना) के मानस अंग हो, इसलिए वीर! पहले मेरा वध करो, पश्चात् अपने अन्य पितृ (चाचा) उदयसिंह, देवसिंह और समस्त कुल-कुटुम्ब का निधन करके सुखवर्मा के घर रहकर सुख का अनुभव करो। उनकी ऐसी बातें सुनकर उस बालक ने उन्हें अपने ही कुल में उत्पन्न जानकर खड्ग दूर रखकर शीघ्र अपने पितृव्य (चाचा) के चरण पर शिर रखा, और अपने अपराध की क्षमा के लिए अत्यन्त रुदन करते हुए कहा—मेरे प्रिय तात! वेदों में बताया गया है—स्त्रियाँ पुरुषों को मोहित करती हैं, वह देव, मनुष्य, पन्नग अथवा दानव कोई भी हो, अतः ये दूषित हैं, आर्य! यह नारीमय जाल आबद्ध करने के लिए ही सदैव उद्यत रहता है।३७-४५। आज मुझे

सोऽहमाजन्मशुद्धस्य पितुराह्लादकस्य च । गेहे जातो जयन्तश्च शक्रपुत्रः स्वयं विभो ।।४६
पद्मिन्या जनितं मोहं गृहीत्वा ज्ञातवान्न हि । क्षमस्व मम मन्दस्य शेषमज्ञानजं पितुः ।।४७
इत्युक्त्वा स पुनर्बालो रुरोद स्नेहकातरः । सेनामुज्जीवयामास तालनं च महाबलम् ।।४८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णांशो वचनं शिशोः । परमानन्दमागम्य हृदये तमरोपयत् ।।
उत्सवं कारयामास तत्र देशे जने जने ।।४९
आर्य्यसिंहस्तु तच्छ्रुत्वा नानाद्रव्यसमन्वितः । ददौ कन्यां विधानेन पद्मिनीमिन्दुलाय वै ।।५०
शतं हयांस्तथा नागान्मुक्तामणिविभूषितान् । कन्यार्थे तान्ददौ राजा जामात्रे बहुभूषणम् ।।५१
प्रस्थानमकरोत्तेषां स प्रेम्णा वाक्यगद्गदः । ते तु सर्वे मुदा युक्ताः स्वगेहं शीघ्रमाययुः ।।५२
उषित्वा मासनेकं तु तस्मिन्मार्गे भयानके । कीर्तिसागरमासाद्य चक्रुस्ते बहुधोत्सवम् ।।५३
आह्लादस्तु प्रसन्नात्मा सुतं पत्नीसमन्वितम् । दृष्ट्वा विप्रान्समाहूय ददौ दानान्यनेकशः ।।५४
दशहाराख्यनगरं सम्प्राप्तः स्वकुलैस्सह । कृष्णांशस्य महाकीर्तिर्जाता लोके जने जने ।।५५
पृथ्वीराजस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ । सा तु वै पद्मिनी नारी दुर्वासः शापमोहिता ।।५६
अप्सरस्त्वं स्वयं त्यक्त्वा भूमौ नारीत्वमागता । द्वादशाब्दप्रमाणेन सोषित्वा जगतीतले ।।५७

इसका पूर्ण अनुभव हो रहा है—यद्यपि मैं इन्द्र का पुत्र जयन्त हूँ, और पिता आह्लाद (आल्हा) के जो आजन्म विशुद्ध हैं, कुल में जन्म ग्रहण किया तथापि इस पद्मिनी के मोह में विभोर होकर मैंने इस पर ध्यान कभी नहीं दिया। अतः मुझ मन्दभागी एवं अज्ञानी का अपराध क्षमा करने की कृपा करें। इतना कहकर वह बालक स्नेह से अधीर होकर पुनः रुदन करने लगा। मैंने सेना समेत महाबली तालन को जीवित कर दिया है, उस बालक की इस बात को सुनकर उदयसिंह ने परमानन्द निमग्न होकर उसे अपने अङ्क (गोद) में बैठा लिया। पश्चात् उसी प्रदेश में प्रत्येक मनुष्यों में महान् उत्सव सुसम्पन्न कराया। आर्य सिंह ने भी इस समाचार को सुनकर अनेक भाँति के द्रव्य समेत उस पद्मिनी कन्या का पाणि-ग्रहण इन्दुल के द्वारा सविधान सुसम्पन्न कराया तथा मुक्ता (मोती) और मणियों से विभूषित अनेक गजराज एवं अत्यन्त आभूषण अपने जामाता (जामाई) को प्रदान किया। अनन्तर उन लोगों के प्रेम वाक्य से गद्गद होकर अपने घर लौट आये और उन सबने भी आनन्दानुभव करते हुए अपने देश के लिए प्रस्थान किया।४६-५२। एक मास की यात्रा में उस भीषण मार्ग की समाप्ति करके कीर्तिसागर पर पहुँचकर उन लोगों ने अनेक भाँति के उत्सव की आयोजना की। आह्लाद (आल्हा) ने अत्यन्त प्रसन्न होकर पत्नी (पुत्र-वधू) समेत पुत्र को देखकर ब्राह्मणों को निमंत्रित कर अनेक भाँति के दान प्रदानकर उन्हें तृप्त किया। पश्चात् दशहार नगर के प्रत्येक प्राणी अपने कुटुम्ब समेत वहाँ एकत्र होकर उदयसिंह की विशाल कीर्ति का यशोगान करने लगे, जो प्रत्येक प्राणियों में व्याप्त होने ने नाते अत्यन्त दूर तक विस्तृत हो गई। पृथिवीराज ने भी इसे सुनकर महान् विस्मय प्रकट किया। दुर्वासा के शाप के कारण उस पद्मिनी स्त्री ने अप्सरा पद का त्यागकर इस भूतल में मनुष्य (नारी) रूप में जन्म ग्रहण किया था। बारह वर्ष की आयु

यक्ष्मणा मरणं प्राप्य स्वर्गलोकमुपाययौ । नवमासान्कृतो वासस्तया चाह्लादमन्दिरे ।।५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

मुने पाञ्चालदेशे तु राजासीद्बलवर्द्धनः । तस्य पत्नी विशालाक्षी जलदेवीति विश्रुता ।।१
बिसेनवंशभूपालो वेदतत्त्वविशारदः । सस्त्रीकः पूजयामास वरुणं यादसां पतिम् ।।२
तस्य पुत्रावुभौ जातौ क्षत्रधर्मपरायणौ । लहरो ज्येष्ठतनयो मयूरध्वज एव हि ।।३
द्वादशाब्दवया भूत्वा मयूरध्वज एव सः । आज्ञया ज्येष्ठबन्धोश्च स्कन्ददेवमतोषयत् ।।४
यतेन्द्रियस्तथा मौनी वानप्रस्थपरायणः । पञ्चाब्दं तद्व्रती भूत्वा जपध्यानपरोऽभवत् ।।५
तदा प्रसन्नो भगवान्सेनानीरग्निभूः स्वयम् । स्वरूपं दर्शयामास सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ।।६
मयूरध्वज एवापि दृष्ट्वा सर्वमयं शिशुम् । देवसेनासहायं च तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।७

तक वह इस जगत् में सुशोभित रही । तदुपरान्त यक्ष्मा रोग से पीड़ित होकर पुनः स्वर्ग चली गई । उसने आह्लाद (आल्हा) के महल में केवल नव मास ही निवास किया था ।५३-५८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! पाञ्चाल (पंजाब) देश में बलवर्द्धन नामक राजा राज्य करता था । उसकी विशालाक्षी पत्नी का नाम 'जलदेवी' था । वेदतत्त्व निपुण एवं विसेन वंशावतंस उस राजा ने जलाधिनायक दम्पती (स्त्री-पुरुष) वरुण की आराधना की, जिससे उनके दो पुत्ररत्न उत्पन्न हुए, जो नितान्त क्षत्रिय धर्म के ही पारायण करने वाले थे । ज्येष्ठ का नाम लहर और कनिष्ठ (छोटे) का नाम मयूरध्वज रखा गया । बारह वर्ष की अवस्था में मयूरध्वज ने अपने ज्येष्ठ भाई की आज्ञा प्राप्तकर स्कन्द देव की आराधना आरम्भ की । उसने संयम और मौन धारणकर पाँच वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम की भाँति रहकर जप ध्यान को सविधि सम्पन्न किया । पश्चात् अग्निपुत्र एवं सेनानायक भगवान् स्कन्द ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने आश्चर्यजनक स्वरूप के दर्शन देने की कृपा की । मयूरध्वज ने उस सर्वमय देव को देखकर जो उनके इष्टदेव थे, स्निग्ध वाणी द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की ।१-७

मयूरध्वज उवाच

जयति ते वपुर्दिव्यविग्रहं नयति सर्वदा देवतागणान् ।
पिबति मातृियं दुग्धमुत्तमं वर्धति सर्वदा दैत्यदानवान् ॥८
नमस्ते देवसेनेश महिषासुरमर्दन । षडानन महाबाहो तारकप्राणनाशक ॥९
प्रसन्नो भव सर्वात्मन्गुहशक्तिधराव्यय । किङ्करं पाहि मां नित्यं शरणागतवत्सल ॥१०
इति श्रुत्वा स्तुतिं तस्य सेनानीस्तमुवाच वै । किं तेऽभीष्टं नृपश्रेष्ठ अतः सर्वमवाप्स्यसि ॥११
इत्युक्तस्तेन देवेन भूपतिः प्राह नम्रधीः । बलं मे देहि भगवन्सहायं कुरु सर्वदा ॥१२
तथेत्युक्त्वा तु तं स्कन्दस्तत्रैवान्तर्दधे पुनः । स नृपस्तु प्रसन्नात्मा कारयामास वै पुरम् ॥१३
नाम्ना मयूरनगरं नरवृन्दसमन्वितम् । द्वियोजनायामयुतं स्कन्ददेवेन रक्षितम् ॥१४
लहरो नाम तद्बन्धुर्द्विदशाब्दप्रयत्नतः । वरुणं पूजयामास नदीनदसमन्वितम् ॥१५
तदा प्रसन्नो भगवान्वरुणो यादसां पतिः । वरं ब्रूहीति वचनं प्रेम्णेवाच महीपतिम् ॥१६
इति श्रुत्वाऽमृतमयं वचनं लहरो नृपः । तुष्टाव श्लक्ष्णया वाचा पाशिनं पयसां पतिम् ॥१७

लहर उवाच

यस्य चित्तं महज्ज्ञेयं तपो बलसमन्वितम् । अतः प्रचेतास्ते नाम नमस्तुभ्यं प्रचेतसे ॥१८
रुणद्धि पयसां वेगं न केनाप्यवरोधितः । अतस्त्वं वरुणो नाम नमस्ते वरुणाय वै ॥१९
दैत्यानां बन्धनार्थाय देवानां जयहेतवे । दिव्यः पाशस्त्वयानीतः पाशिने ते नमोनमः ॥२०

मयूरध्वज ने कहा—तुम्हारी इस दिव्य शरीर की जय हो, जो देवगणों का (सेनानी) रूप में संचालन करती हुई केवल अपनी माता के दुग्ध का ही पान करके समस्त दैत्य-दानवों का वध करती है। देवसेना के अधीश्वर, महिषासुर के विध्वंसक, छः मुख वाले, महाबाहो एवं तारकासुर के हन्ता आपको नमस्कार है। सर्वात्म भू ! गुहशक्तिधारी मुझपर आप सदैव प्रसन्न हों, तथा शरणागत वत्सल ! मुझ सेवक की रक्षा कीजिये। इसे सुनकर स्कन्द ने कहा—नृपश्रेष्ठ ! तुम क्या चाहते हो, कहो ! मुझसे सभी कुछ प्राप्तकर सकोगे। देव स्कन्द के इस प्रकार कहने पर नम्रता पूर्वक राजा ने कहा—'भगवन् ! मुझे बल प्रदान करके सर्वदा मेरी सहायता करने की कृपा करें।' इसे स्वीकार कर भगवान् स्कन्द उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये, और उस राजा ने प्रसन्न होकर एक नगर का निर्माण कराया जिसका नामकरण 'मयूरनगर' हुआ, उसमें अनेक जाति के मनुष्य निवास करते थे, तथा वह दो योजन में विस्तृत और स्कन्ददेव से सुरक्षित था। उनके भाई लहर ने भी बीस वर्ष तक अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक नदी-तट समेत वरुण की उपासना की। उस समय प्रसन्न होकर वरुण भगवान् ने प्रेमवाणी द्वारा राजा से कहा—नृप ! वर की याचना करो ! इस अमृतमयीवाणी को सुनकर राजा लहर ने अपनी स्निग्धवाणी द्वारा जलाधिपति एवं पाश (कांस) वस्त्रधारी उन वरुण को प्रसन्न किया।८-१७

लहर ने कहा—तपोबल युक्त होने के नाते आपका चित्त महत्तापूर्ण है, इसीलिए 'प्रचेता' आपका नामकरण हुआ है, मैं उस प्रचेता को नमस्कार कर रहा हूँ। जल के उस वेग को, जो किसी के द्वारा रोका न जा सके, आप अनायास रोक लेते हैं, अतः आपका 'वरुण' नाम हुआ, मैं उस वरुण को नमस्कार करता हूँ। दैत्यों को आबद्ध करने एवं देवों के विजयार्थ आपने दिव्यपाश अस्त्र को अपनाया,

इति स्तुतस्तदा देवो राज्ञा तेनैव धीमता । नगरीं कारयामास लाहरीमथ चोत्तमाम् ।।२१
त्रियोजनायामयुतां चतुर्वर्णसमन्विताम् । स्वयं च ग्रामरक्षार्थं तत्रोवास जलाधिपः ।।२२
भूपस्तु तत्प्रसादेन प्राप राज्ञीं शुभाननाम् । रावी नाम महाश्रेष्ठा ज्ञेया देवाङ्गनोपमा ।।२३
तस्यां स जनयामास सुतान्षोडशसम्मितान् । धार्तराष्ट्रांशजान्मुख्यान्गजतुल्यबलान्वितान् ।।२४
तत्पश्चात्कन्यका जाता नाम्ना मदनमञ्जरी । द्वादशाब्दवयःप्राप्ते सुतायाः स तु भूपतिः ।।२५
देवसिंहं वरं मत्वा चन्द्रवंशिनमुत्तमम् । प्राहूय ज्येष्ठतनयं प्रेषयामास भूपतिः ।।२६
रणधीरस्तु तनयो लक्षमुद्रान्वितो बली । सहस्रशूरसहितः प्राप्तवान्स महावतीम् ।।२७
नत्वा परिमलं भूपं तदीयान्कुलशालिनः । स्वहेतुं वर्णयामास विवाहार्थे स्वसुः स्वयम् ।।२८
श्रुत्वा परिमलो भूपो देवसिंहं महामतिम् । आहूय वचनं प्राह विवाहार्थे मनः कुरु ।।२९
देवसिंहस्तु बलवान्पितृव्यं प्राह नम्रधीः । विवाहं न करिष्यामि ब्रह्मचर्यं व्रतं मम ।।३०
बहुधा प्रार्थितस्सर्वैर्द्विजवृन्दसमन्वितैः । न तत्याज व्रतं श्रेष्ठं देवसिंहो महामतिः ।।३१
तदा परिमलो भूपो रणधीरं वचोऽब्रवीत् । सुखखानिरयं बालो विवाहार्थे ददाम्यहम् ।।३२
तथेति मत्वा स नृपो रणधीरो गृहं ययौ । पितरं कथयामास सुखखानिर्महाव्रतः ।।३३

इसलिए पाश अस्त्रधारी को बार-बार नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार वरुणदेव की आराधना करके उस बुद्धिमान् राजा ने लहरी नामक नगरी का निर्माण करवाया जो तीन योजन में विस्तृत तथा चारों वर्णों के मनुष्यों से सुशोभित हो रही थी । उस नगरी के रक्षार्थ स्वयं वरुणदेव वहाँ निवास करते थे । तदुपरान्त राजा को वरुण देव की अनुकम्पावश कल्याणमुखी रानी की प्राप्ति हुई, जिसका नाम रावी था, तथा जो अत्यन्त श्रेष्ठ देवांगना के समान रूप-यौवन सम्पन्न थी । राजा द्वारा उस रानी के गर्भ से सोलह पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई, जो धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों के अंश से उत्पन्न एवं गजराज के समान बली थे । पश्चात् मदन मंजरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या का जन्म हुआ । उसकी बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर राजा ने चन्द्रवंशी देव सिंह के साथ उस कन्या का विवाह करने के विचार से अपने ज्येष्ठ पुत्र को उनके पास भेजा । पुत्र रणधीर ने भी एक लाख मुद्रा एवं सहस्र शूर सामन्तो समेत महावती को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा परिमल तथा उनके वंशजों को नमस्कार करके अपने आगमन का कारण बताया कि—'मैं अपनी भगिनी के विवाहार्थ ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ।'१८-२८। इसे सुनकर राजा ने उस कुशाग्रबुद्धि वाले देवसिंह को बुलाकर कहा—मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम इस विवाह को स्वीकार कर लो । इसे सुनकर बली देवसिंह ने नम्रतापूर्वक अपने पितृव्य (चाचा) से कहा—'मैंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का नियम किया है, अतः विवाह करने में असमर्थ हूँ ।' इसे सुनकर विप्रगणों ने भी वहाँ एकत्र होकर उन्हें अनेक भाँति से समझाया, किन्तु उस वीर व्रतधारी देवसिंह ने अपने व्रत का त्याग करना उचित नहीं समझा । अतः उसी पर दृढ़ रहे । अनन्तर राजा परिमल ने रणवीर से कहा— 'मैं इस सम्बन्ध के लिए सुखखानि नामक बालक को आपको सौंपता हूँ, आप उसी का विवाह स्थिर कीजिये ।' राजा रणधीर ने उसे सहर्ष स्वीकार कर अपने गृह को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर अपने पिता से सुखखानि के व्रत एवं रूपगुण की प्रशंसा की।२९-३३। बीच में महीपति (माहिल) बोल उठे—राजन्! इस

एतस्मिन्नन्तरे धूर्तो महीपतिरुवाच तम् । अयोग्योऽयं दिवाहोऽत्र पावकीये कुलोत्तमे ।।३४
शूद्रीयोऽत्र वरो राजन्वर्णसङ्करकारकः । तस्मात्त्वं सैन्यसहितो जेतुं तान्गन्तुमर्हसि ।।३५
कारागारे लोहमये बन्धनं कुरु भूपतेः । मत्कीर्तिः स्वर्गगा नित्यं जगत्यन्ते भविष्यति ।।३६
जितस्तैर्जम्बुको राजा नेत्रसिंहस्तु यो नृपः । तथा गजपतिर्भूपः पृथ्वीराजो महाबलः ।।३७
आर्यसिंहस्तथान्ये च जितास्ते बलवत्तराः । इति श्रुत्वा वचो रम्यं लहरो नृपसत्तमः ।।३८
सेनां संस्थापयामास चतुरङ्गबलान्विताम् । चतुर्लक्षमितां श्रेष्ठां पालितां षोडशात्मजैः ।।३९
माघशुक्लदशम्यां च बलखानिं महाबलः । सम्प्राप्तः स्वकुलैस्सार्द्धं चतुर्लक्षबलान्वितम् ।।४०
देशे पाञ्चालके रम्ये लहरीनगरे स्थितः । द्वादशाब्दे च कृष्णांशे तत्र वासमकारयत् ।।४१
नृपतेराज्ञया शूरा युद्धाय समुपाययुः। बलखानिस्तु धर्मात्मा दृष्ट्वा शूरांस्तथागतान् ।।
वीरानाज्ञापयामास स्वकीयान्सङ्गरे पुनः ।।४२
तयोर्युद्धमभूद्घोरं तेनयोर्लोमहर्षणम् । पञ्चमेऽह्नि दिवा प्राप्ते बलखानिर्महाबलः ।।
कृष्णांशेनैव सहितो रिपोर्वधमकारयत् ।।४३
पराजिताश्च ते शूरा हतशेषा भयातुराः । तान्दृष्ट्वा षोडशसुता रथं स्वंस्वं समास्थिताः ।।
युद्धायाभिमुखं जग्मुर्धनुर्बाणविशारदाः ।।४४
कृष्णांशस्तांस्तथा दृष्ट्वा शरवर्षसमन्वितान् । एकाकी प्रययौ शीघ्रं खड्गचर्मधरो बली ।।४५

पावकीय उत्तम कुल के योग्य वह विवाह नहीं है, क्योंकि वर शूद्र से उत्पन्न होने के नाते वर्णसंकर है, अतः उन पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना समेत वहाँ अवश्य गमन करो । भूपते ! उन्हें हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर इस लोहे के जेल में अवश्य करो, जिससे आपकी इस अन्तिम अवस्था में आपकी कीर्ति संसार में विचरण करती हुई स्वर्ग तक पहुँच जाये क्योंकि उन लोगों में राजा जम्बूक, राजा नेत्रसिंह, राजा गजपति, महाबली पृथ्वीराज तथा आर्यसिंह और ये अन्य बलवान् नृप हैं, सभी को पराजित कर विजय प्राप्ति की है । इस बात को सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा लहर ने अपनी चार लाख की चतुरंगिणी सेना को जिसकी अध्यक्षता उनके सोलह पुत्र कर रहे थे, नित्य प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया । माघ शुक्ल दशमी के दिन महाबली बलखानि (मलखान) चार लाख सैनिकों समेत अपने कुल कुटुम्ब के साथ पंजाब प्रान्त के लहरी नामक नगरी में पहुँच गये । उनके साथ बारह वर्ष की अवस्था वाले उदयसिंह भी वहाँ रह रहे थे ।३४-४१। राजा की आज्ञा से उनके सैनिकगण ने युद्ध की घोषणा कर दी । धर्मात्मा बलखानि (मलखान) ने आये हुए उन शूरों को देखकर संग्राम में विजयी होने के लिए अपने सैनिक वीरों को आदेश प्रदान किया । दोनों सैनिकों का भीषण एवं रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया । पाँचवें दिन महाबली बलखानि (मलखान) ने उदयसिंह को साथ लेकर स्वयं शत्रुओं का वध किया । उस रणस्थल में शत्रु के अनेक सैनिकों ने वीरगति प्राप्त की, और शेष भयभीत होकर भाग निकले । अपनी सेना को तितर-वितर एवं सामने उपस्थित शत्रुओं को देखकर उन सोलह राजकुमारों ने भी जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे, अपने-अपने रथ पर बैठकर रणस्थल में पहुँचकर युद्ध आरम्भ कर दिया । बाणों की वर्षा करने वाले उन कुमारों को रणस्थल में उपस्थित देखकर उदयसिंह ने खड्ग और (ढाल) लेकर स्वयं अकेले ही वहाँ

तेषां धनूंषि सञ्छिद्य बद्ध्वा तान्युद्धदुर्मदान् । आह्लादाय ददौ वीरः कृष्णांशो रणकोविदः ।।४६
पुत्राणां बन्धनं श्रुत्वा लहरो नृपसत्तमः । प्लावयामास तत्सैन्यं बलखानेर्महात्मनः ।।४७
जलीभूते तथा सैन्ये जयन्तो बलवत्तरः । वायव्यास्त्रेण समरे शुशोष सकलं जलम् ।।
लहरस्य ततः सेनामुवाह बहुयोजनम् ।।४८
तदा तु भगवान्देवो वरुणो यादसां पतिः । सुतामुद्वाहयामास लहरस्य महीपतेः ।।४९
लहरोऽपि प्रसन्नात्मा ज्ञात्वांशं जगतीतले । भक्तिं चकार शुद्धानामंशानां परया मुदा ।।५०
दत्त्वा च बहुधा द्रव्यं परिक्रम्य पुनःपुनः । स्वान्ते[1] निवेशयामास मासमात्रं प्रसन्नधीः ।।५१
अंशास्तेऽपि महापूजां गृहीत्वा लहरप्रदाम् ।दोलामारोप्य तां देवीं स्वगेहाय ययुर्मुदा ।।५२
इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । सुखखानेर्विवाहं च श्रुत्वानन्दमवाप्नुयात् ।।५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम विंशोऽध्यायः ।२०

पहुँचकर उनके धनुष को नष्ट कर उन मदान्धों को बाँध लिया । पश्चात् रणपण्डित उदयसिंह ने उन्हें लाकर आह्लाद (आल्हा) को सौंप दिया ।४२-४६। अपने पुत्रों को आबद्ध सुनकर राजा लहर ने महात्मा बलखानि (मलखान) की सेना को जल के प्रवाह में प्रवाहित किया । बलवान् जयन्त ने सेना को जलरूप देखकर अपने वायव्य अस्त्र से शत्रु के सभी जल का शोषण कर दिया और उनकी सेना को अनेक योजन की दूरी पर पहुँचा दिया । उस समय जलाधिनायक भगवान् वरुण देव ने स्वयं राजा लहर की कन्या का विवाह संस्कार सुखखानि के साथ सुसम्पन्न कराया । इसे जानकर राजा लहर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस भूतल में वे वरुणदेव के सदैव के लिए अनुपम एवं अटलभक्त हो गये । तदनंतर अनेक द्रव्य उन वीरों के मरण पर रखकर उनकी बार-बार परिक्रमा की और प्रसन्नतया उन्हें अपने महल में एक मास तक अतिथि बनाया । वे वीर भी उनकी उस महती पूजा का सादर ग्रहणपूर्वक उस वधू (बहू) को डोला में बैठाकर प्रसन्न होते हुए अपने घर लौट आये । विप्र ! इस प्रकार इस उदयसिंह के चरित को तुमसे वर्णन किया, जिसमें सुखखानि के विवाह को सुनकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा ।४७-५३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

---

१. स्वसमीप इत्यर्थः ।

अथैकविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषि उवाच

गृहं गत्वा च ते वीराः किं चक्रुश्चरितं शुभम् । तत्त्वं कथय विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।।१

सूत उवाच

गृहमागत्य ते सर्वे परितो भूपतेः सभाम् । गत्वा वार्तां तथा चक्रुर्यथा जातो महारणः ।।२
श्रुत्वा परिमलो भूपो वाजिवृन्दं क्षयं गतम् । आहूय स च कृष्णांशं वचनं प्राह नम्रधीः ।।३
सिन्धुदेशे च गन्तव्यं त्वया च बलशालिना । पञ्चलक्षान्हयान्कृत्वा पुनरागच्छ वै गृहम् ।।४
इति श्रुत्वा तु कृष्णांशो देवसिंहेन संयुतः । स्वर्णभारसहस्रोष्ट्रान्गृहीत्वा तरसा ययौ ।।५
शूरैश्च दशसाहस्रैस्सार्द्धं तत्र समागतः । मयूरनगरी यत्र चतुर्वर्णसमन्विता ।।६
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते मालाकारस्य वै सुता । पुष्पानाम समासन्ना चारम्भे कुसुमार्थिनी ।।७
कृष्णांशस्तु तदा पूजां कृत्वा देवमयो मुदा । जगाम विपिनं रम्यं वसन्ते पुष्पनालिके ।।८
बह्वाश्चर्ययुतं पुष्पं मत्तभ्रमरनादितम् । दृष्ट्वा मुमोह कृष्णांशस्तदर्थे स्वयमुद्यतः ।।९
एतस्मिन्नन्तरे पुष्पा पुष्पार्थे समुपागता । ददर्श देवसदृशं षोडशाब्दमयं नरम् ।।

अध्याय २१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषि बोले—विप्रेन्द्र ! घर पहुँचकर उन वीरों ने जो कुछ चरित किया है, उसे सुनाने की कृपा करें, हमलोगों के समक्ष आप सर्वज्ञ हैं ।१

सूत जी बोले—उन वीरों ने घर पहुँचने पर राजा (परिमल) की सभा को चारों ओर से अलंकृत करते हुए जिस प्रकार वहाँ युद्ध आदि हुआ था । सभी का वर्णन करके राजा को सुनाया । उन बातों को राजा परिमल ने सुना कि वहाँ की रणस्थली में घोड़ों का अधिक ध्वंस हुआ है, उन्होंने उदयसिंह को बुलाकर नम्रतापूर्वक कहा—सिन्धु प्रदेश में जाकर तुम पाँच लाख घोड़ों का क्रय करके शीघ्र चले आओ। इसे सुनकर उदयसिंह ने देवसिंह को साथ लेकर एक सहस्र भार सुवर्ण ऊँटों पर रखकर और दश सहस्र सेना समेत वहाँ के लिए प्रस्थान किया । वहाँ की मयूर नामक नगरी में पहुँचकर, जो चारो वर्णों के मनुष्यों से सुशोभित हो रही थी, प्रातःकाल के समय देखा, एक माली की कन्या, जिसका नाम पुष्पा था, पुष्प के लिए जा रही है । देवांश उदयसिंह भी पूजा के उपरान्त प्रसन्न मुखमुद्रा में उसी उपवन में पहुँचे, जहाँ ऋतुराज बसंत की छत्रछाया में विकसित कलियाँ आश्चर्य प्रकट कर रही थीं और मतवाले होकर भौरें उन पर गूँज रहे थे। उस उपवन की छटा देखकर उदयसिंह मोहित हो गये ।२-९। उसी बीच वह पुष्पा भी पुष्प संचय के लिए वहाँ आ गई। उसने देखा—यह पुरुष देवता की भाँति सर्वाङ्ग सुन्दर सोलह वर्ष की अवस्था

प्रसन्नवदनं शान्तमिन्द्रनीलमणिद्युतिम् ॥१०
कृष्णांशस्तु शुभां नारीं दृष्ट्वाश्चर्यमुपागतः । पप्रच्छ वचसा तां वै कस्येयं परसुन्दरी ॥
स्वर्गलोकाद्विहायाता यदि वा पन्नगी स्वयम् ॥११
इति श्रुत्वा च सा प्राह मालाकारस्य वै सुता । अहं शूद्री महाबाहो पुष्पार्थे समुपागता ॥१२
पुष्पेणानेन भूपाल तुलिता भूपतेः सुता । नाम्ना पुष्पवती देवी राधेव सगुणावली ॥१३
देवैश्च प्रार्थिता बाला रूपयौवनशालिनी । मकरन्दभयाद्देवास्तस्या योग्या न वै बलात् ॥१४
शृणु तत्कारणं भूप मकरन्दो यथा भवेत् । मयूरध्वजभूपेन सम्प्राप्तो गुहतो वरः ॥१५
अजेयोऽन्यैश्च कृष्णांशादृते त्वं जगतीतले । तन्मित्रं पृथिवीराजो राजराजः शिवप्रियः ॥१६
स राज्यं कारयामास धर्ममेधं हरिप्रियम् । तदा प्रसन्नो भगवान्यज्ञेशो यज्ञमूर्तिमान् ॥१७
मिथुनं जनयामास पावकात्सुन्दराननम् । मकरन्दः सुतो ज्ञेयः कन्या पुष्पवती मता ॥१८
पञ्चमाब्दवया भूत्वा मकरन्दो महाबलः । तुष्टाव तपसा धर्मं वेदधर्मपरायणः ॥१९
द्वादशाब्दवयः प्राप्ते मकरन्दे नृपप्रिये । प्रसन्नो भगवान्धर्मो ददौ तस्मै महाहयम् ॥२०
शिलामयं महावेगं शत्रुसेनाक्षयङ्करम् । तमश्वं स्वयमारुह्य सर्वपूज्यो ह्यभूत्सुखी ॥२१
तस्येदं सुन्दरं दिव्यं विपिनं सुरपूजितम् । भवानर्हति वै श्रेष्ठः पुष्पवत्याः कलेवरम् ॥२२

सम्पन्न, प्रसन्नमुख, शान्त और इन्द्रनील मणि की भाँति इसके देह की आभा है । उदयसिंह ने भी उस कल्याणमुखी को देखकर विस्मित हो उठे । उन्होंने उससे पूँछा कि—सुर सुन्दरी की भाँति यह स्त्री किसकी प्रिया है, जो स्वर्गलोक से यहाँ आई है, अथवा स्वयं पन्नगी ही है ? इसे सुनकर उस माली की कन्या ने कहा—महाबाहो ! मैं शूद्र कुल में उत्पन्न हूँ, यहाँ पुष्प संचय करने आई हूँ । नृप ! इसी पुष्प द्वारा वह राजकुमारी तुलित (तौली) की जायगी, जिसका नाम पुष्पावती देवी है, और जो गुण समूहों से सुशोभित राधा की भाँति ख्याति प्राप्तकर चुकी है । उस रूप-यौवन सम्पन्न कुमारी के लिए लालायित होकर देवगण प्रार्थी रहते हैं । मकरन्द के भय से देवगण कोई बल प्रयोग नहीं करते हैं, राजन् ! मैं उस कारण को बता रही हूँ, सुनो ! राजा मयूरध्वज ने स्कन्द से वरदान प्राप्त किया है कि—उदयसिंह के अतिरिक्त और सभी के लिए तुम इस भूतल में अजेय हो ।' तथा उनके मित्र राजा पृथिवीराज हैं, जो राजाधिराज और शिव के अनन्य भक्त हैं । एक बार राजा ने भगवान् विष्णु के प्रसन्नार्थ धर्ममेध नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् यज्ञेश ने अग्नि द्वारा सुन्दर मुख वाले मिथुन (जुड़वाँ) सन्तान की उत्पत्ति की जिसमें एक मकरन्द नामक पुत्र और दूसरी पुष्पवती नाम की कन्या हुई ।१०-१८। पाँच वर्ष की अवस्था में महाबलवान् मकरन्द ने, जो वेद धर्म का परायण करने वाले थे, अपने तप द्वारा धर्म को प्रसन्न करना आरम्भ किया । पुनः मकरन्द की बारहवर्ष की अवस्था में भगवान् धर्मदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें एक महान् अश्व प्रदान किया, जो पाषाणमय, महावेगवान् एवं शत्रु की सेना का विध्वंस करने वाला था । उस घोड़े को अपनाने के कारण वे सभी के पूज्य तथा सब भाँति से सुखी हुए । यह सुन्दर उपवन उन्हीं का है, जो दिव्य और देवपूजित हैं । पश्चात् उसने यह भी कहा कि—'पुष्पवती (फुलवा) का रूप सौन्दर्य आपके ही योग्य है । इस बात को सुनकर उदयसिंह अत्यन्त मोहित होकर

इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशः स्मरपीडितः । ददौ बहुधनं तस्यै मालिन्या गेहमागतः ॥२३
देवसिंहस्तु कालज्ञो ज्ञात्वा मोहत्वमागतम् । कृष्णांशं बोधयामास पद्यैः साङ्ख्यसमुद्भवैः ॥२४
कृष्णांशस्तु ततस्सार्द्धं देवसिंहेन तन्मयः । सिन्धुदेशं समागत्य क्रीत्वा सर्वहयांस्तदा ॥२५
मासान्ते गृहमागत्य राज्ञे सर्वान्न्यवेदयत् । पुष्पवत्याः शुभं रूपं ध्यात्वा पुष्पेरितं बली ॥
कृष्णांशो मोहमागत्य तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥२६

कृष्णांश उवाच

देवमाये महामाये नित्यशुद्धस्वरूपिणि । पाहि मां कामदेवार्त्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२७
मधुकैटभसम्मोहे महिषासुरघातिनि । पाहि मां कामदेवार्त्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२८
धूम्रलोचनसन्दाहे चण्डमुण्डविनाशिनि । पाहि मां कामदेवार्त्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२९
रक्तबीजासृक्कपीते सर्वदैत्यभयङ्करे । पाहि मां कामदेवार्त्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥३०
निशुम्भदैत्यसंहारे शुम्भदैत्यविनाशिनि । पाहि मां कामदेवार्त्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥३१
इति स्तुत्वा च सुष्वाप स वीरः परमासने । तदा तु शारदा देवी तस्याः स्वप्नप्रदर्शनम् ॥
चकार प्रत्यहं देवी वरदाभयकारिणी ॥३२
एवं गते चतुर्मासे जलवृष्टिकरे मुने । त्रिविंशाब्दवयश्चासीत्कृष्णांशस्य यशस्करम् ॥३३
कार्तिके कृष्णपक्षे तु गतोऽसौ देवसंयुतः । मयूरनगरे रम्ये मकरन्देन रक्षिते ॥३४
पुष्पागृहमुपागम्य तत्र वासमचीकरत् ॥३५

कामपीड़ित हुए, अनन्तर उसे बहुत-सा धन देकर उसके घर आये । कालदर्शी देवसिंह ने उदयसिंह को उस कुमारी के प्रति मोहित जानकर सांख्यमत के उपदेश द्वारा उन्हें ज्ञान प्रदान किया । तदुपरान्त देवसिंह के साथ उदयसिंह ने सिन्धु देश में पहुँचकर घोड़ों का क्रय करके मास की समाप्ति तक घर पहुँच-कर राजा को निवेदनपूर्वक सौंप दिया । एक दिन पुष्पा द्वारा वर्णन किये गये पुष्पवती के शुभरूप का ध्यान करके मोहित हो जाने पर उदयसिंह ने जगदम्बिका की आराधना की ।१९-२६

उदयसिंह ने कहा—हे देवमाये, महामाये एवं नित्यशुद्ध स्वरूप धारण करने वाली देवि ! कामदेव द्वारा मैं अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिये और पुष्पवती को मेरे प्रति सचेष्ट करने की कृपा कीजिये । मधु कैटभ को संमोहित करने वाली तथा महिषासुर का उन्मूलन करने वाली देवि ! मुझ कामपीड़ित की रक्षा करते हुए पुष्पवती को प्रबोधित कीजिये । धूम्रलोचन को भस्म करनेवाली एवं चण्ड-मुण्ड की विनाशिनी देवि ! आपने रक्तबीज के रक्त का पान करके समस्त दैत्यों को भयभीत किया है । निशुंभ और शुंभ दैत्य का वध करने वाली देवि ! मुझ कामपीड़ित की रक्षा करते हुए आप उस पुष्पवती को मेरे प्रति अनुरागपूर्ण कीजिये । इस प्रकार देवी की आराधना करते हुए वे अपने उत्तमासन पर निद्रित हो गये । उस समय स्वप्न में शारदा देवी ने दर्शन दिया । इसी प्रकार वरदहस्ता भगवती ने प्रतिदिन उन्हें दर्शन देकर वर्षाकाल के चार मास व्यतीत करा दिया । मुने ! उस समय उदयसिंह की तेइस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी ।२७-३३। कार्तिकमास के आरम्भ में देवसिंह को साथ लेकर उदयसिंह ने मकरन्द रक्षित उस मयूर नगर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उसी पुष्पा मालिनी के घर

एकदा सुन्दरं हारं कृष्णांशेनैव गुण्ठितम् । मणिमुक्तायुतं रम्यं नानापुष्पसमन्वितम् ॥
गृहीत्वा प्रययौ पुष्पा पुष्पवत्याश्रमन्दिरे ॥३६
सा तु ग्रैवेयकं दृष्ट्वा त्वष्ट्रेव रचितं प्रियम् । हृदि कृत्वा मुमोहाशु कामिनी रतिरूपिणी ॥३७
अये सखि महामाये सत्यं कथय मेऽग्रतः । ग्रैवेयकमिदं रम्यं कुतः प्राप्तं मम प्रियम् ॥३८
इति श्रुत्वा वचस्तस्या मकरन्दभयातुरा । पुष्पा पुष्पाञ्जलिं कृत्वा वचनं प्राह तां प्रति ॥३९
जीवदानं च मे देहि तर्हि ते कथयाम्यहम् । तथेत्युक्तवतीं कन्यां साह मे भगिनी शुभे ॥४०
कृष्णा नाम महारम्या सर्वलोकविमोहिनी । महावत्यां गृहं तस्या मद्गृहे सा समागता ॥
तया विरचितं सुभ्रूग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥४१
इति श्रुत्वा तु वचनं देवी पुष्पवती स्वयम् । उवाच मालिनीं वाक्यं शीघ्रं दर्शय तां मम ॥४२
मकरन्दभयाद्देवास्तथान्ये पुरुषा भुवि । मत्समीपे गतिर्नास्ति तेषां सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥४३
इति श्रुत्वा वचो घोरं पुष्पा तु भयकातरा । नोवाच वचनं किञ्चित्पृच्छ्यमाना मुहुः पुनः ॥४४
तदा पुष्पवती प्राह किं ते भयमुपागतम् । साह मे भगिनी रम्या यदि त्वद्गेहमागता ॥४५
मोहितः पुरुषः कश्चिद्बलात्तां हि भजिष्यति । तर्हि मे मरणं ज्ञेयं कुलधर्मपरायणे ॥४६

में रहने लगे । एक बार उदयसिंह द्वारा गूंथे गये एक सुन्दर हार को लेकर जिसमें पुष्पों के बीच-बीच में मोतियों और मणियों को लगाकर उसे अत्यन्त मनमोहक बनाया गया था, पुष्पा ने पुष्पवती के भवन में जाकर उसे प्रदान किया । उस अनुपम हार को देखकर, जो त्वष्ट्रा की भाँति रचित एवं अत्यन्त प्रिय था, रति के समान सुन्दरी उस कामिनी ने मोहित होकर उसे हृदय में धारण कर लिया (पहन लिया) । पश्चात् उससे कहा—अये सखि ! महामाये । मेरे समक्ष सत्य कहना, मेरे मन को हरण करने वाले इस सुन्दर हार को तूने कहाँ से प्राप्त किया है । इस बात को सुनकर मकरन्द के भय से भयभीत होकर पुष्पा ने अपनी अञ्जलि में पुष्प रखकर उससे कहा—आप मुझे जीवन-दान प्रदान करने की कृपा करें तो मैं सभी कुछ बता सकती हूँ । कुमारी के अभय दान देने पर उसने कहना आरम्भ किया—शुभे ! कृष्णा नाम की मेरी एक भगिनी है, जो अत्यन्त सुन्दरी एवं समस्त लोक को मोहित करने वाली है, उसका घर महावती (महोबा) राजधानी में है, इस समय मेरे यहाँ आई हुई है । शुभ्रे ! उसी ने इस मनोहर हार को गूँथा है ।३४-४१। इसे सुनकर देवी पुष्पवती ने मालिनी से कहा—मुझे उसे शीघ्र दिखाओ । तुम जानती हो कि इस भूतल में मकरन्द के भय से देव अथवा कोई भी मनुष्य मेरे पास तक पहुँच नहीं सकता है, मैं यह सत्य कह रही हूँ । इस दारुण वाणी को सुनकर भयभीत होकर पुष्पा उस समय कुछ भी न कह सकी, यद्यपि उसने बार-बार पूछा भी । पुष्पवती ने उसकी ओर देखकर कहा—तुझे किसी बात का भय हो रहा है क्या ? उसने कहा—वह मेरी भगिनी परम सुन्दरी है, उसके यहाँ आने पर मोहित होकर किसी पुरुष ने बल प्रयोग द्वारा उसके साथ उपभोग कर लिया तो उस समय निश्चित मेरा मरण हो जायगा । आपसे इसलिए कहा कि आप कुल धर्म का सतत पालन करती हैं । इसे सुनकर धर्ममूर्ति पुष्पवती ने फिर

इति श्रुत्वा पुष्पवती पुनः प्रोवाच धर्मिणी । मयूरध्वज एवापि मत्पिता नीतितत्परः ।।
अयोग्यं ये करिष्यन्ति ते यास्यन्ति यमालयम् ।।४७
अतस्त्वं शीघ्रमादाय तद्दोलां च मन्दतिके । दर्शयित्वा च तां रम्यां पुनर्गच्छ गृहं स्वकम् ।।४८
तथेति मत्वा सा शूद्री गृहमागत्य भामिनी । कृष्णांशं वर्णयामास यथा प्रोक्तं तया मुने ।।४९
इति श्रुत्वा वचो रम्यं कृष्णांशो बलदत्तरः । नासा वेधं स्वयं कृत्वा पुनर्नारीमयं वपुः ।।
जगाम पुष्पया सार्द्धं दोलामारुह्य वीर्यवान् ।।५०
तदा पुष्पवती देवी दृष्ट्वा कृष्णां मनोरमाम् । उवाच वचनं पुष्पां शृणु मे वचनं सखि ।।५१
यादृशीयं शुभा नारी तादृशः पुरुषो मया । स्वप्नान्ते प्रत्यहं दृष्टो रमणो मया सह ।।५२
कृष्णांशश्च स तामाह देशराजसुतो वरः । उदयो नाम विख्यातस्तस्याहं ललिता सखी ।।५३
प्रत्यहं रचितं हारमध्य पूजनहेतवे । स वीरस्तु गृहीत्वा तं देवीं पूज्य[1] न्यवेदयत् ।।५४
एकदा प्रस्थितं वीरं पुष्पमध्ये शनैःशनैः । उदासीनं च तं दृष्ट्वा प्रोवाचाहं समागता ।।५५
मोहोऽयं ते कुतः प्राप्तः स त्वं कथय मा चिरम् । इत्युक्तः स तु मामाह स्वप्नांते प्रत्यहं सखि ।।५६
मया दृष्टा शुभा नारी रूपयौवनशालिनी । तद्वियोगेन दुःखार्तं मुखं म्लानत्वमागतम् ।।५७
इति श्रुत्वा पुष्पवती तामाह रुचिराननाम् । विवाहो मे यदा तेन सार्द्धं रम्यो भविष्यति ।।५८
तदा त्वां तर्पयिष्यामि बहुद्रव्यैः शुभानने । अतस्त्वं गच्छ तत्पार्श्वं शीघ्रं तस्मै निवेदय ।।५९

कहा—तुम भली भाँति जानती हो कि मेरे पिता मयूरध्वज अत्यन्त नीतिज्ञ पुरुष हैं इस प्रकार का अयोग्य कार्य जो पुरुष करेगा, उसे यमराज के यहाँ प्रस्थान करना पड़ेगा । इसलिए तू उसके डोले को शीघ्र मेरे पास लाकर उस सुन्दरी को मुझे दिखाने के पश्चात् पुनः अपने घर चली जाना । उसे स्वीकार कर उस शूद्र जाति की स्त्री ने घर आकर उदयसिंह से उन सभी बातों को बताया । मुने ! इस सुन्दर वाणी को सुनकर बलवान् उदयसिंह ने अपने नासिका को स्वयं छेदकर आभूषण धारण किया । अपना परमसुन्दरी स्त्री का वेष बनाकर वह पराक्रमी डोले में बैठकर पुष्पा के साथ चल दिया । उस परम सुन्दरी कृष्णा को देखकर पुष्पवती ने पुष्पा से कहा—सखे ! मेरी एक बात सुनो ! जिस प्रकार इस सुन्दरी का रूप रङ्ग है, इसी भाँति के पुरुष को मैं नित्य स्वप्न में देखती हूँ, जो आकर मेरे साथ रमण करता है । उसे सुनकर उदयसिंह ने कहा—देशराज के श्रेष्ठपुत्र, जिनका उदयसिंह नाम है, मैं उनकी ललिता (प्रिय) सखी हूँ । मैं उनके पूजन के लिए नित्य हार गूँथती हूँ, जिसे ग्रहणकर वे पूजन के उपरान्त देवी को समर्पित करते हैं ।४२-५४। एक बार उपवन के पुष्पों के बीच धीरे-धीरे जा रहे थे, उस समय उनका मुख कुछ मलीन था, मैंने वहाँ पहुँचकर उनकी उदासीनता को देखकर कहा—आज आप चिन्तित क्यों हैं, मुझसे शीघ्र बताइये । इसे सुनकर मुझसे उन्होंने कहा—'सखि ! मैं एक रूप यौवन सम्पन्न परम सुन्दरी स्त्री को नित्य स्वप्न में देखता हूँ, उसके वियोग दुःख से मेरा चित्त बहुत म्लान हो रहा है । इसे सुनकर पुष्पवती ने उस सुन्दरी से कहा—शुभानने ! जिस समय मेरा शुभ विवाह उनके साथ सुसम्पन्न होगा, उस समय मैं तुम्हें अनेक भाँति के द्रव्यों से तृप्त कर दूँगी । इसलिए तुम उनके पास शीघ्र जाकर मेरा उनसे निवेदन करना । इसे

---

१. ल्यवार्षः ।

इति श्रुत्वा तु तद्वाचं पुष्पा प्रेमसमन्विता । दोलामारोप्य तां कृष्णां स्वगेहं गन्तुमुद्यता ॥६०
दुर्गद्वारे तु प्राप्तायां तद्दोलायां च भार्गव । मकरन्दो महावीर्य्यो द्वादशाब्दवया बली ॥६१
दोलासमीपमागत्य ददर्श रुचिराननाम् । कृष्णामिन्दीवरश्यामां चारुनेत्रां मनोहराम् ॥६२
मुमोह बलवान्वीरो गोवर्धन कलांशकः । प्रेम्णोवाच स चार्वाङ्गि शृणु मे वचनं प्रिये ॥६३
मद्गृहं शीघ्रमागच्छ पत्नी मम भवाधुना । इति श्रुत्वा तु सा कृष्णा विहस्योवाच भूपतिम् ॥६४
कुलीनस्त्वं महावीर वह्निकुण्डात्समुद्भवः । षोडशाब्दवयास्तूणी [1]शनिभल्लसमन्वितः ॥६५
त्वद्योग्या भूपतेः कन्या चन्द्रसूर्य्यान्वयस्य वै । अहं शूद्री हीनतमा कथं योग्या तवेह वै ॥६६
कन्याहं शूद्रजातेश्च ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थिता । इति श्रुत्वा तु वचनं मकरन्दो नृपात्मजः ॥६७
बलाद्गृहीत्वा तां नारीं पस्पर्श हृदये स्वयम् । कृष्णांशस्तु तदा तस्मै दत्त्वा हृदयवेदनाम् ॥
मोहयित्वा नृपसुतं सदेवः स्वगृहं ययौ ॥६८
मकरन्दस्तु सम्बुद्धो मदनाग्निप्रपीडितः । गेहमागत्य पुष्पायाः सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥६९
तत्स्नेहकातरं भूपं मकरन्दं महाबलम् । पुष्पाह श्लक्ष्णया वाचा शृणु पार्थिवसत्तम ॥७०
महावती पुरी रम्या तत्र कृष्णागृहं शुभम् । त्वद्भयाच्च गता गेहं कृष्णांशस्य च सा सखी ॥७१
रोदनं कुर्वती गाढं तव निन्दनतत्परा ॥७२

सुनकर प्रेम गद्गद होकर पुष्पा कृष्णा को डोला में बैठाकर अपने घर चल दी । भार्गव ! दुर्ग के दरवाजे पर उस डोला के आने पर महापराक्रमी मकरन्द ने, जिसकी आयु उस समय बारह वर्ष की थी, उस डोले के समीप आकर उस सुन्दरमुखी कृष्णा को देखा, जो नील कमल की भाँति श्यामल वर्ण, विशाल सुन्दर नेत्र एवं मन को हरण करने वाली थी । गोवर्द्धन की कला से उत्पन्न वह वीर उसी समय मुग्ध हो गया । प्रेम से गद्गद होकर उसने कहा—'प्रिये ! मेरी एक बात स्वीकार करो ! मैं चाहता हूँ कि इसी समय मेरे भवन में चलकर मेरी पत्नी होना शीघ्र स्वीकार करो । इसे सुनकर कृष्णा ने मन्द मुसुकान करते हुए राजकुमार से कहा—महावीर ! आप कुलीन एवं अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए हैं, आपकी सोलह वर्ष की अवस्था दिखाई देती है (अर्थात् विवाह के योग्य हैं) और तरकस, तलवार एवं भाले आदि अस्त्र से युक्त भी हैं ।५५-६५। आपके इस रूप के अनुरूप सोमवंशी या सूर्यवंशी राजा की कोई कन्या ही हो सकती है । मैं शूद्र कुल में उत्पन्न हूँ, जो छोटी जाति की कही जाती है, इसलिए आपके योग्य मैं कैसे हो सकती हूँ । मैं शूद्रकुल में उत्पन्न होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रही हूँ । इसे सुनकर राजकुमार मकरन्द ने बलात् उसे पकड़कर अपने हृदय (छाती) से लगा लिया । उस समय उदयसिंह उसके हृदय में एक पीड़ा उत्पन्न करते हुए उसे मोहित कर चले गये, पश्चात् देवसिंह के साथ अपने घर पहुँचे । उधर मकरन्द चेतना प्राप्त करने पर काम की अग्नि से संतप्त होने लगा । और उसी समय पुष्पा के घर जाकर उससे सभी वृतान्त कहा । कृष्णा के स्नेह में निमग्न उस महाबली मकरन्द को देखकर पुष्पा ने नम्रतापूर्वक कहा—श्रेष्ठराजन् ! आप मेरी बातें सुनें ! महावती (महोबा) राजधानी में कृष्णा का घर है, आपसे भयभीत होकर वह मेरी सखी उदयसिंह के घर चली गई वह अत्यन्त रुदन करती हुई आपकी निन्दा कर

---

१. शनिदत्तभल्लसमन्वित इत्यर्थः । अत एव—एकोननवतितमेपद्ये 'शनिभल्लूकरं ग्राही'—इत्युक्तं संगच्छते ।

आगमिष्यति वै वीरो बलैस्सार्धं महाबलः । अतस्त्वं सर्वसैन्यानि सज्जीभूतानि वै कुरु ।।७३
जितो येन महावीरः पितृव्यो लहरस्तव । विवाहं कारयामास तद्बन्धोः सुतया सह ।।७४
इति श्रुत्वा वचो घोरं मकरन्दो महीपतिः । शतघ्नीः स्थापयामास दुर्गकूटेषु दारुणाः ।।७५
स्वसैन्यं च समाहूय त्रिलक्षं खड्गसंयुतम् । तत्रैव स्थापयामास राष्ट्ररक्षार्थमुद्यतः ।।७६
कृष्णांशस्तु गृहं प्राप्य बलखानिमुवाच तत् । श्रुत्वा स च महावीरो भ्रातृमित्रसमन्वितः ।।
पञ्चलक्षबलैस्सार्द्धं मयूरनगरं ययौ ।।७७
शतघ्न्यः पञ्चसाहस्रा गजा दशसहस्रकाः । एकलक्षं हयाः सर्वे शेषा ज्ञेयाः पदातयः ।।
उषित्वा पक्षमात्रं तु मार्गे पाञ्चालके तदा ।।७८
मकरन्दस्तु तच्छ्रुत्वा शनिभल्लकरः स्थितः । सेनामाज्ञापयामास जहि शत्रून्महाबलान् ।।७९
श्रुत्वा पदातयो लक्षं शतघ्नीर्वह्निमाददन् । ते तु वै सप्तसाहस्राश्चक्रुः शत्रुबलक्षयम् ।।८०
ग्रामस्य दक्षिणद्वारे हयारूढास्तदा ययुः । भुशुण्डीक्षेपणीशक्तिखड्गयुद्धविशारदाः ।।८१
एकलक्षं हयास्सर्वे मकरन्दस्य भूपतेः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं हयसेनयोः ।।८२
तदा तु पश्चिमद्वारे गजा विंशत्सहस्रकाः[1] । तथा दशसहस्रैश्च शत्रुभिः सह संययुः ।।८३
उष्ट्ररक्षा महावीराश्चत्वारिंशत्सहस्रकाः । बलखान्यादिभिः सार्द्धं युयुधुर्दिशि चोत्तरे[2] ।।८४

रही थी। जिस महाबली ने आपके पितृव्य (चाचा) लहर को पराजित कर उनकी पुत्री का विवाह अपने भाई के साथ कर लिया, दे वीर उदयसिंह अवश्य आयेंगे अतः आप भी अपनी सेना को सुसज्जित करें। इस भीषण बात को सुनकर राजा मकरन्द ने अपने दुर्ग के दरवाजों पर तोपों को रखाकर खड्गधारी अपने तीन लाख सैनिकों को भी राष्ट्र के रक्षार्थ उसी स्थान में नियुक्त किया।६६-७६। उदयसिंह ने अपने गृह पहुँचने पर बलखानि (मलखान) से सभी वृतान्त कहा। उस बलशाली ने उसे सुनकर अपने भाई एवं मित्रों समेत पाँच लाख सैनिकों को साथ लेकर मयूर नगर के लिए प्रस्थान किया। उनकी सेना में पाँच सहस्र तोपें, दश सहस्र हाथी, एक लाख घोड़े और शेष पदाति (पैदल) सेना थी। उसके साथ वे पन्द्रह दिन की यात्रा करके पंजाब प्रान्त के उस मयूर नगर में पहुँच गये। यह आगमन सुनकर मकरन्द ने स्वयं तलवार और भाले को हाथ में लेकर रणाङ्गण में पहुँचकर सेनाओं को आदेश दिया कि—इन महाबली सैनिकों का विध्वंस करो। इसे सुनकर उसके एक लाख के पैदल सैनिकों ने तोपों में अग्नि (पलीता) लगाना आरम्भ किया जिससे उस सात सहस्र सैनिकों द्वारा शत्रु-सेना का विध्वंस होने लगा। दुर्ग के दक्षिण द्वार पर बलखानि (मलखान) के एक लाख अश्वारोहियों के साथ, जो भुशुंडी शक्ति और खड्ग द्वारा युद्ध करने में अत्यन्त कुशल थे, मकरन्द के एक लाख अश्वारोही सैनिकों ने घोर युद्ध आरम्भ किया। वहाँ पर दोनों अश्वारोही दलों का आपस में भीषण एवं रोमाञ्चकारी महान् युद्ध हो रहा था।७७-८२। पश्चिम दरवाजे पर बीस सहस्र की सेना दश सहस्र शत्रु-सैनिकों से युद्ध कर रही थी, उसी प्रकार चालीस सहस्र ऊँट की सेना बलखानि (मलखान) आदि वीरों के साथ उत्तर दरवाजे पर घोर युद्ध

---

१. इकारलोपश्छान्दसः। २. अनुदात्तेल्लक्षणस्यानित्यत्वाच्छान्दसत्वाद्वा परस्मैपदम्।

अहोरात्रमभूद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । ततः पराजितास्सर्वे बलखानेर्महाबलाः ॥८५
त्यक्त्वा युद्धं तु ते सर्वे दुद्रुवुश्च दिशो दश । कृष्णांशो बिन्दुलारूढो बलखानिः कपोतगः ॥८६
मनोरथस्थितो देवश्चाह्लादस्तु गजस्थितः । पूर्वादिक्रमतो द्वारि गतास्ते रणदुर्मदाः ॥८७
सत्सरुं खड्गमुत्सृज्य चक्रुः शत्रुमहावधम् । पराजिताश्च ते शूरा मकरन्दमुपाययुः ॥८८
वह्निपुत्रस्तुबलवान्वाजिनं च शिलामयम् । शनिभल्लकरग्राही तमारुह्य रणं ययौ ॥८९
कृष्णांशाद्याश्च ते शूरा रुरुधुस्सर्वतोदिशम् । तं च कण्ठे ददौ खड्गं बलखानिर्महाबलः ॥९०
स्वभल्लं देवसिंहश्च तमङ्के च समाहनत् । आह्लादो वक्षसि शरं कृष्णांशः खड्गमुत्तमम् ॥९१
शिलावाजिप्रभावेण कश्मलं न जगाम ह । स दृष्ट्वा निष्फलान्वीराञ्जगर्ज भैरवं ध्वनिम् ॥९२
शनिभल्लेन ते सर्वे बभूवुर्मूर्च्छिता रणे । तेऽश्वाः शिलाश्ववेगेन मूर्छिताश्चाभवन्क्षणात् ॥९३
मकरन्दस्तु बलवान्बद्ध्वा तान्युद्धदुर्मदान् । प्रसन्नात्मा ययौ गेहं स्वपित्रे तान्न्यवेदयत् ॥९४
दृष्ट्वा पराजितान्वीरान्रूपणो भयकातरः । महावतीं पुरीं प्राप्य भूपतिं समवर्णयत् ॥९५
ब्रह्मानन्दस्तु तच्छ्रुत्वा लक्षसैन्यसमन्वितः । इन्दुलेन सहायेन मयूरनगरं ययौ ॥९६
लिखित्वा निर्ममं पत्रं तद्राज्ञे त्वरितो ददौ । भूमिराजसुताकान्तं विद्धि मां मनुजर्षभ ॥९७
कृष्णांशाय सुतां देहि नाम्ना पुष्पवतीं शुभाम् । नो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥९८

कर रही थी। यह रोमाञ्चकारी युद्ध अविरल गति से दिन-रात चल रहा था। पश्चात् बलखानि (मलखान) के सैनिक पराजित होकर रणस्थल छोड़कर चारों ओर भागने लगे। उस समय विन्दुल (बेन्दुल) पर बैठकर उदयसिंह, कपोत (कबूतर) पर बलखानि (मलखान), मनोरथ (मनोहर) पर देवसिंह (डेबा) और गज पर आह्लाद (आल्हा) सवार होकर क्रमशः पूर्व आदि दरवाजों पर पहुँचकर अपने तीक्ष्ण खड्ग द्वारा शत्रुओं का वध करने लगे। उनके, अस्त्रों के आघात को सहन न कर सकने के कारण वे शूरवीर रणस्थल से भागकर मकरन्द के पास पहुँचे। अग्नि-पुत्र मकरन्द ने अपने सैनिकों को पलायन करते हुए देखकर अपने शिलामय अश्व पर बैठकर तलवार और भाले को सँभालकर रण के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचते ही उदयसिंह आदि वीरों ने उसे चारों ओर से घेर लिया, उपरान्त महावली बलखानि (मलखान) ने खड्ग द्वारा कण्ठ में प्रहार किया, उसी भाँति देवसिंह ने भाले, आह्लाद ने बाण द्वारा वक्षस्थल में और उदयसिंह ने खड्ग का प्रहार किया। किन्तु उस पाषण के घोड़े पर बैठने के नाते उन वीरों के सभी प्रहार निष्फल हो गये। पश्चात् उन्हें निष्फल देखकर उस वीर ने भीषण गर्जना की। और उस भाले द्वारा सभी वीरों को मूर्च्छित किया। उस पत्थर घोड़े के वेग से उनके घोड़े भी मूर्च्छित हो गये थे।८३-९३। बलवान मकरन्द ने उन दुःसहवीरों को उसी अवस्था में बांधकर अपने पिता के सामने लाकर उनसे निवेदन किया। वीरों को पराजित देखकर भयभीत होकर रूपन ने शीघ्र महावती (महोबा) आकर राजा से सब वृत्तान्त कहा। उसे सुनकर ब्रह्मानन्द ने इन्दुल को साथ लेकर एक लाख सैनिक समेत मयूर नगर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर एक दिन निर्मम पत्र लिखकर राजा के पास भेजा। नृपवर! मैं पृथ्वीराज की पुत्री का पति (जमाई) हूँ, मेरा नाम ब्रह्मानन्द है। आप अपनी पुष्पवती नामक कन्या उदयसिंह के लिए सौंप दीजिये, अन्यथा मेरे कठिन बाण प्रहारों द्वारा आपकी सेना

निशम्येति नृपश्रेष्ठो मयूरध्वज एव सः । मकरन्देन सहितो द्विलक्षबलसंयुतः ।।
अहोरात्रं कृतं[1] युद्धं तेन सार्द्धं भयप्रदम् ।।९९
ब्रह्मानन्दस्तु बलवान्बाणयुद्धमचीकरत् । मकरन्दस्य भल्लेन मूर्छितः सोऽपतद्भुवि ।।१००
तदा स्वर्णवतीपुत्रो जयन्तः शक्रसम्भवः । स्वविद्यां दर्शयामास मकरन्दाय धीमते ।।१०१
वैष्णवास्त्रप्रभावेन शिलाश्वो भस्म चाभवत् । ब्रह्मास्त्रेण भृगुश्रेष्ठ शनिभल्लोऽपतद्भुवि ।।१०२
नागपाशेन तं बद्ध्वा मकरन्दं महाबलम् । विवाहं कारयामास कृष्णांशस्य महात्मनः ।।१०३
सेनामुज्जीवयामास स्वकीयामिन्दुलो बली । मङ्गलं कारयामास मकरन्दो गृहे गृहे ।।
ददौ कन्यां विधानेन बहुद्रव्यसमन्विताम् ।।१०४
मयूरध्वजभूपालो महास्नेहमचीकरत् । नृपाज्ञां ते पुरस्कृत्य ययुः सार्द्धं महावतीम् ।।१०५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकविंशोऽध्यायः ।२१

नष्ट हो जायगी । नृपश्रेष्ठ राजा मयूरध्वज ने उसे सुनकर मकरन्द को साथ लेकर दो लाख सैनिकों समेत रणस्थल में पहुँचकर शत्रुओं से दिन-रात का भीषण युद्ध आरम्भ कर दिया । बलवान् ब्रह्मानन्द बाण युद्ध कर रहे थे । उसी समय मकरन्द के भाले से मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गये । स्वर्णवती (सोना) के पुत्र शक्रसम्भव जयन्त ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर बुद्धिमान् मकरन्द को अपनी विद्या की चमत्कृति दिखाई—अपने वैष्णवास्त्र द्वारा उसके शिला अश्व को भस्म करके ब्रह्मास्त्र द्वारा शनि-भाला से उनके हाथ भूमि पर गिरा दिया । भृगुश्रेष्ठ ! उस महाबली मकरन्द को नागपाश में बांधकर उदयसिंह के साथ उसकी भगिनी का विवाह सुसम्पन्न कराते हुए उस बली ने अपनी ओर की सभी सेनाओ को जीवित किया । तदुपरान्त मकरन्द ने अपनी राजधानी के प्रत्येक घरों में महान् माङ्गलिक उत्सव बड़े समारोह के साथ सुसम्पन्न कराया । उस असवर पर राजा मयूरध्वज ने अनेक भाँति के द्रव्यों समेत अपनी पुत्री का दान किया । कई दिन के पश्चात् स्नेह विभोर उस राजा की आज्ञा प्राप्तकर ये वीरगण अपनी महावती (महोबा) राजधानी लौट आये ।९४-१०५

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

---

१. मयूरध्वजेनेति शेषः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्
सूत उवाच

महावत्यां तु सम्प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । मङ्गलं कृतवान्राजा तदा परिमलो बली ।।१
पुष्पवत्या तया सार्द्धं गीतनृत्यविशारदः । कृष्णांशः प्रत्यहं गेहे नुमोह सखिभिः सह ।।२
हेमन्तशिशिरे वीरो रहः क्रीडां करोति वै । यथा शक्रोऽप्सरोभिश्च तथैव ह्युदयो बली ।।३
ग्राम्यधर्मं न कृतवान्सर्वस्पर्शविशारदः । एकदा नृत्यक्रीडायां देवी पुष्पवती स्वयम् ।।४
कृष्णांशं वचनं प्राह पूर्वजन्मनि को भवान् । इति श्रुत्वोदयो वीरो विहस्योवाच वै वचः ।।५
नृपोऽहं चन्द्रदासश्च पूर्वजन्मनि हे प्रिये । बाल्यात्प्रभृति मे दुःखं प्राप्तं दैवविनिर्मितम् ।।६
शालग्रामशिलापूजा प्रत्यहं वै मया कृता । तेन पुण्यप्रभावेन सार्वभौमो बभूव ह ।।७
मृतेऽहनि तु सम्प्राप्ते शालग्रामे मनो दधौ । सायुज्यं मे हरेश्चासीत्स्वयं ब्रह्मप्रसादतः ।।८
कलिना प्रार्थितो विष्णुः कालात्मा परमेश्वरः । स्वदेहान्मां तु निष्काश्य भूमौ जनिमचीकरत् ।।९
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति वै प्रिये । युगधर्मस्य मर्यादास्थापनाय भवाम्यहम् ।।१०
सत्ये तु मानसी पूजा देवानां तृप्तिहेतवे । त्रेतायां वह्निपूजा च यज्ञदानादिका क्रिया ।।११

अध्याय २२
कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—बलवान् उदयसिंह के महावती (महोबा) नगरी में पहुँचने पर राजा परिमल ने मांगलिक उत्सव कराया । उदयसिंह प्रतिदिन सखियों समेत पुष्पवती के साथ नृत्य-गान करते हुए उसके साथ मनोरञ्जन में ही सम्पूर्ण समय व्यतीत करने लगे । जिस प्रकार इन्द्र हेमन्त शिशिर के दिनों में अप्सराओं के साथ क्रीडा में अनुरक्त रहते हैं, उसी भाँति उदयसिंह भी उसके साथ क्रीडा करने लगे । उन्होंने अपनी निपुणता से उसका सर्वस्पर्श करने पर भी उसके साथ उपभोग नहीं किया । एक बार नृत्य करते समय पुष्पवती देवी ने स्वयं उदयसिंह से पूँछा—आप पूर्व जन्म में कौन थे । इस बात को सुनकर उदयसिंह ने हँसकर कहा—प्रिये ! पूर्वजन्म में चन्द्रहास नामक राजा था । बाल्यकाल से ही मैं दैवयोग से दुःखी था । भगवान् शालग्राम की मूर्तिपूजा प्रतिदिन करता था जिसके पुण्यप्रभाव से मैं राजा हुआ । १-७। प्राणवियोग के समय मेरा मन शालिग्राम की मूर्ति में आसक्त हो गया था, इसलिए स्वयं ब्रह्मा की प्रसन्नतावश भगवान् में मेरी सायुज्य मुक्ति हो गई थी । अनन्तर कलि ने कालात्मा परमेश्वर विष्णु की प्रार्थना की । उन्होंने अपनी देह से मुझे पृथक् कर इस भूतल में जन्म ग्रहण कराया । प्रिये ! जिस-जिस समय धर्म का नाश सम्भव होता है, युगधर्म की मर्यादा के स्थापनार्थ मैं उन दिनों जन्म ग्रहण करता हूँ । सत्ययुग में देवताओं के प्रसन्नार्थ मानसी पूजा की जाती है, उसी भाँति त्रेता में यज्ञदान आदि क्रिया रूप अग्नि पूजा, द्वापर में देवों के

द्वापरे मूर्तिपूजा च देवानां वै प्रियङ्करी । कलौ तु दारुणे प्राप्ते ब्रह्मपूजनमुत्तमम् ।।१२
अहं हंसः सत्ययुगे त्रेतायां यज्ञपूरुषः । हिरण्यगर्भश्च प्रिये द्वापरेऽहं सुखप्रदः ।।
शालग्रामः कलौ प्राप्ते देवानां तृप्तये ह्यहम् ।।१३
मुनयो देवतास्सर्वास्तथा पितृगणाः प्रिये । सर्वे ते तृप्तिमायान्ति शालग्रामस्य पूजनात् ।।१४
द्विजातिभिस्त्रिवर्णैश्च पूजनं चन्दनादिकैः । शूद्रैश्च स्नानमात्रेण भक्तिभावेन पूजनम् ।।१५
म्लेच्छैश्च दर्शनं पुण्यं विनयाद्भक्तिभावतः । शालग्रामः स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।।
तस्य दर्शनमात्रेण क्षयं यास्यन्ति वै मलाः ।।१६
इति ते कथितं देवि युगमर्यादमुत्तमम्[1] । पुरा त्वं कस्य तनया सत्यं कथय मेऽचिरम् ।।१७

पुष्पवत्युवाच

पूर्वजन्मनि वेश्याहं चन्द्रकान्तिरिति श्रुता । गाननृत्यादिकं वाद्यं देवस्याग्रे मया कृतम् ।।१८
तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गलोकमुपागता । देवैश्च प्रार्थिता तत्र रूपयौवनशालिनी ।।१९
ब्रह्मचर्यं न तत्याज स्वर्गलोकेऽपि वै ह्यहम् । तेन पुण्यप्रभावेण चोषा बाणसुताऽभवम् ।।
अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्म मम पाणिं गृहीतवान् ।।२०
कलिना प्रार्थितो देवो मम स्वामी स्वहेतवे । अर्चावतारमासाद्य मार्कण्डेयस्थलं गतः ।।२१

प्रियार्थ मूर्तिपूजा और भीषण कलियुग के समय ब्रह्मपूजन उत्तम बताया गया है । प्रिये ! सत्ययुग में हंस, त्रेता में यज्ञपुरुष और द्वापर में हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ, तथा कलियुग में देवों की तृप्ति के लिए सुखदायक शालिग्राम मैं ही होता हूँ । प्रिये ! शालिग्राम के पूजन करने से महर्षि, देवता और पितृगण ये सभी प्रसन्न होते हैं । द्विजाति (उपनयनधारी) तीनों वर्णों को चन्दनादि द्वारा शालिग्राम की सप्रेम पूजा करनी चाहिए । शूद्रों को केवल स्नानमात्र करके भक्ति-भाव द्वारा ही उनका पूजन करना बताया गया है, और म्लेच्छों को भक्तिभाव से नम्र होकर उनके दर्शन करने से पुण्य प्राप्त होती है । क्योंकि शालिग्राम सत्-चित् और आनन्द रूपी शरीर धारण करने वाले स्वयं ब्रह्म है । उनके दर्शनमात्र से मल (पाप) नष्ट हो जाते हैं । देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें युग-मर्यादा की उत्तम व्याख्या बता दी । अब तुम मुझसे सत्य कहो कि—पूर्वजन्म में तुम किसकी पुत्री थी ।८-१७

पुष्पवती बोली—पूर्वजन्म में मैं चन्द्रकान्ति नामक वेश्या थी । मैंने देवता के सामने नृत्य-गायन वाद्य किये थे, जिस पुण्य के प्रभाव से मुझे स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी । वहाँ मेरे रूप-यौवन पर मुग्ध होकर देवों ने मेरी प्रार्थना की, किन्तु उस स्वर्गलोक में रहकर भी मैंने अपने ब्रह्मचर्य को भली-भाँति सुरक्षित रखा था । उसी पुण्य के प्रभाव से मैंने बाणासुर के यहाँ उसकी ऊषा नाम की पुत्री होकर जन्म ग्रहण किया, उसमें ब्रह्मरूप अनिरुद्ध ने तब मेरा पाणिग्रहण किया था ।१८-२०। पश्चात् कलि ने अपने स्वार्थ के लिए मेरे स्वामी की प्रार्थना की, इसीलिए वे अर्चावतार द्वारा उत्पन्न होकर मार्कण्डेय के यहाँ चले गये वहाँ

---

१. नपुंसकत्वमार्षम् ।

स्वप्रसादस्य महिमा दर्शितस्तेन तत्र वै । अत्रैव स्थितिमर्यादो दारुरूपस्य मे [1]पतेः ॥२२
अहं तस्याज्ञया स्वामिञ्जम्बूकस्य सुताऽभवम् । दिव्यरूपसमायुक्ता नाम्नाहं विजयैषिणी ॥२३
कृतं ममैव मरणं त्वद्भ्राता बलखानिना । मकरन्दस्य भगिनी भूत्वा त्वां पतिमागता ॥२४
तेन दोषेण त्वद्भ्राता यातनां तीव्रमागतः[2] । राज्ञ इन्नगठस्यैव गेहे गजपतेः स्वयम् ॥
इत्युक्त्वा मौनमास्थाय रेमे पत्या सभं मुदा ॥२५
होलिकासमये प्राप्ते मलना स्नेहदुःखिता । सुतां चन्द्रावलीं रम्यां स्वप्नान्ते सा ददर्श ह ॥
रुरोद निशि दुःखेन स्वसुतास्नेहकातरा ॥२६
तदोदयो महावीरो ज्ञात्वा रोदनकारणम् । शूरैश्च दशसाहस्रैस्सार्द्धं बहुधनैर्युतः ॥
एकाकी प्रययौ वीरो यत्र चन्द्रावलीगृहम् ॥२७
महीपतिस्तु तच्छत्रुर्ज्ञात्वा कारणमुत्तमम् । पश्चाज्जगाम कार्यार्थी स तु दुर्योधनांशकः ॥
बलीठाठमिति ख्यातं ग्रामं यादवपालितम् ॥२८
वीरसेनो नपस्तत्र त्रिलक्षबलसंयुतः । अष्टौ सुताश्च तस्यासन्रूपयौवनशालिनः ॥२९
कामसेनः प्रसेनश्च महासेनस्तथैव च । सुखसेनो रूपसेनो विष्वक्सेनो मधुव्रतः ॥
मधुपश्च क्रमाज्जाता यादवांशाश्च यादवाः ॥३०

उन्होंने अपने प्रसाद की महिमा उन्हें दिखाई । काष्ठरूप मेरे पति की वह मर्यादा आज यहाँ भी स्थित है । स्वामिन् ! मैं उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य कर पुनः राजा जम्बूक के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई थी । उस समय मुझे दिव्य रूप की प्राप्ति थी, और मेरा नाम विजयैषिणी (विजया) था । वहाँ तुम्हारे भाई बलखानि (मलखान) द्वारा मेरा निधन हुआ था । (इस समय आप जानते ही हैं कि) मकरन्द की भगिनी होकर मैंने आपको पति रूप में प्राप्त किया है और उसी दोष से आपके भाई ने राजा गजपति के यहाँ स्वयं जाकर अत्यन्त तीव्र यातना का अनुभव किया था । इतना कहकर पति के साथ स्थित मैना की भाँति वह मौन हो गई । होली के अवसर आने पर एक दिन रानी मलना ने अत्यन्त स्नेह के नाते दुःखी होकर अपनी सुन्दरी पुत्री चन्द्रावली को स्वप्न में देखा । उस रात वे अपनी पुत्री के स्नेह से अत्यन्त अधीर होकर सम्पूर्णरात रुदन करती हुई दुःखों का ही अनुभव करती रह गई थीं । उस समय उनके रुदन के कारण को जानकर उदयसिंह के दश सहस्र शूर सामन्तों समेत अनेक भाँति के द्रव्यों को लेकर अकेले ही चन्द्रावली के घर को प्रस्थान किया ।२१-२७। उनके प्रबल शत्रु महीपति (पृथ्वीराज) ने भी कारण जानकर उनके पश्चात् ही वहाँ के लिए प्रस्थान किया था । क्योंकि दुर्योधन के अंश से उत्पन्न होने के नाते उसमें स्वार्थ की तत्परता अधिक मात्रा में थी । यदुवंशियों से सुरक्षित एक 'ठाठ' नामक गाँव था, जिसमें वीरसेन नामक राजा अपने तीन लाख सैनिकों समेत रहता था । उसके रूप यौवन सम्पन्न आठ पुत्र थे—कामसेन, प्रसेन, महासेन, सुखसेन, रूपसेन, विष्वक्सेन, मधुव्रत और मधुप यही क्रमशः उनके नाम थे, जो यादव के अंश से उत्पन्न यादवों की मर्यादा-वृद्धि कर रहे थे । वहाँ की सभा में पहुँचकर नर केसरी

---

१. पत्युः । २. क्रियाविशेषणम् ।

तत्र गत्वा च कृष्णांशस्सभायां नरकेसरी । दण्डवत्प्रणतो भूत्वा वीरसेनं महीपतिम् ॥३१
मलनालिखितं पत्रं दत्त्वा राज्ञे महामनाः । दशभारं सुवर्णस्य पुनर्वासमचीकरत् ॥३२
व्यञ्जनानि विचित्राणि भुक्त्वा यादवसंयुतः । चन्द्रावलीं समागत्य कुशलं च न्यवेदयत् ॥३३
प्रेमोत्सुका च भगिनी कृष्णांशं प्राह दुःखिता । भवान्द्व्यब्दवया वीर तदाहं च विवाहिता ॥३४
विंशदब्दस्ततो जातो विस्मृता पितृमातृभिः । समर्थेन त्वया वीर संस्मृता भगिनी स्वयम् ॥३५
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं च मे । बन्धुदर्शनमात्रेण सर्वं च सफलं मम ॥३६
प्रसन्नात्मोदयस्तत्र भगिनीं प्राह नम्रधीः । जम्बुकेन गृहं सर्वं लुण्ठितं बलशालिना ॥३७
तस्य दुःखेन भूपालो भयभीतो दिने दिने । महाकष्टेन विजयो जम्बुकाच्चाभयोऽभवत् ॥३८
महीराजस्तु बलवान्रुरोध नगरीं मम । मया विवाहितो भ्राता ब्रह्मा तत्सुतया सह ॥३९
पुनश्च सिंहलद्वीपे जयन्तार्थे वयं गताः । एवं विधानि दुःखानि बहूनि ह्यभवन्पितुः ॥४०
अतस्त्वां प्रति सुप्रीता वयं भगिनिकिङ्कराः । मृदुवाक्यमिति श्रुत्वा तदा चन्द्रावली मुदा ॥४१
गेहं निवासयामास स्वकीयं प्रेमविह्वला । एतस्मिन्नन्तरे धूर्तो महीपतिरुपाययौ ॥४२
सभायां वीरसेनस्य राज्ञा तेनैव सत्कृतः । वार्तान्तरं समासाद्य तमुवाच महीपतिः ॥४३
निष्कासिताश्च ते सर्वे राज्ञाह्लादादयः खलाः । चोरितो नृपतेः कोशो हीनजात्यैर्महाबलैः ॥४४

उदयसिंह ने राजा वीरसेन को दण्डवत्प्रणाम करने के उपरान्त उन्हें दश भार सुवर्ण समेत मलना का लिखा पत्र प्रदान किया । पश्चात् उन यादवों के साथ उत्तम विचित्र भाँति के व्यंजनों का आस्वादन करके चन्द्रावली के महल में जाकर उनसे सब कुशल क्षेम सुनाया । प्रेम से अधीर होकर उसने अपना दुःख प्रकट किया—वीर ! जिस समय मेरा विवाह हुआ था, आप दो वर्ष के थे । आज बीस वर्ष का दिन पूरा हो रहा है, पिता-माता ने कभी मेरा स्मरण ही नहीं किया । मुझे एकदम भूल गये । वीर ! तुम्हीं इस योग्य हुए कि मेरा स्मरण तो किया । आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल हो गया, कहाँ तक कहूँ भाई के दर्शन से मेरा सभी कुछ सफल हो गया ।२८-३६। उस समय प्रसन्न होकर उदयसिंह ने नम्रतापूर्वक अपनी भगिनी से कहा—सबल जम्बूक ने आकर घर को लुटवा लिया था, उसी दुःख में दुःखी एवं भयभीत होकर राजा अपना दिन व्यतीत कर रहे थे, पश्चात् हमलोगों ने (समाने होने पर) अत्यन्त कष्ट से जम्बूक पर विजय प्राप्त की । इधर पृथ्वीराज ने भी हमारी राजधानी को चारों ओर से घेर लिया था, फिर उन्हें पराजित कर मैंने अपने भाई ब्रह्मा का विवाह उनकी पुत्री बेला से सुसम्पन्न कराया । अनन्तर इन्दुल के लिए हमें सिंहलद्वीप जाकर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इस प्रकार के अनेक दुःखों के अनुभव पिता जी को करने पड़े । इसलिए इधर आने-जाने का अवसर नहीं मिल सका, किन्तु, भगिनी ! अब हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं, इसीलिए (वहाँ ले चलकर) हम लोग तुम्हारी सेवा करना चाहते हैं क्योंकि हम सब तुम्हारे सेवक ही तो हैं । इस प्रकार की कोमल वाणी को सुनकर प्रेम व्याकुल होती हुई चन्द्रावली ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें अपने निजी महल में ठहराया । उसी बीच उस धूर्त महीपति ने वीरसेन की सभा में पहुँचकर आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के उपरान्त बीच में बात काटकर उनसे कहा ।३७-४३। राजा ने आह्लाद (आल्हा) आदि सभी दुष्टों को अपने यहाँ से निर्वासित कर (निकाल) दिया है । कारण कि

तदा तु कुण्ठिताः सर्वे शिरीषाख्यपुरेऽवसन् । छिद्रदर्शी तु कृष्णांशो गेहं तव समागतः ।।४५
चन्द्रावल्याश्च वै दोलां गृहीत्वा स गमिष्यति । सत्यं ब्रवीमि भूपाल नान्यथा वचनं मम ।।४६
इति श्रुत्वा वीरसेनो ज्ञात्वा तत्सत्यकारणम् । कामसेनं समाहूय चन्द्रावल्याः पतिं सुतम् ।।४७
वचनं प्राह भोः पुत्र बन्धनं कुरु तस्य वै । इति श्रुत्वा कामसेनो विषमादाय दारुणम् ।।४८
भोजनाय ददौ तस्मै ज्ञात्वा चन्द्रावली तदा । भ्रातुरन्तिकमासाद्य पात्रमादाय सा ययौ ।।४९
कामसेनश्च कुपितो गृहीत्वा दण्डवेतसम् । स्वप्रियां ताडयामास स दृष्ट्वा तं तदाकुपत् ।।५०
गृहीत्वा भुजयोस्तं वै बन्धनाय समुद्यतः । बन्धनत्वं गते पुत्रे वीरसेनो महाबलः ।।५१
पुत्रानाज्ञापयामास तस्य बन्धनहेतवे । एतस्मिन्नन्तरे वीरो दोलामादाय सत्वरम् ।।५२
सेनामध्ये समागम्य महद्युद्धमचीकरत् । एकतो दशसाहस्रास्त्रिलक्षास्तु तथैकतः ।।
अहोरात्रमभूद्युद्धं दारुणं रोमहर्षणम् ।।५३
हता लक्षं महाशूरा उदयेन महाबलाः । शेषाः प्रदुद्रुवुस्सर्वे यादवा भयकातराः ।।५४
दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं सप्तपुत्रा महाबलाः । स्वान्गजांश्च समारुह्य कृष्णांशं रुरुधू रुषा ।।५५
स वीरो बिन्दुलारुढो भूमौ कृत्वा गजासनान् । तेषामस्त्राणि संच्छिद्य बध्नाति बलदर्पितः ।।५६
इति श्रुत्वा वीरसेनः सूर्यभक्तिपरायणः । सौरमस्त्रं समादाय तस्य सैन्यमदाहयत् ।।
तेनास्त्रेणैव कृष्णांशः सहयो मूर्च्छितो भुवि ।।५७

इन नीचों ने उनके कोष (खजाने) में चोरी की थी। उसी समय से ये लोग शिरीष (सिरसा) नामक गाँव में रह रहे हैं। अवसरवादी उदयसिंह इस समय आपके घर आया हुआ है, वह चन्द्रावली का डोला लेकर चला जायगा। भूप! मैं यह सब सत्य कह रहा हूँ, मेरी बात अन्यथा नहीं होती है। इसे सुनकर राजा वीरसेन ने इसे सत्य समझकर अपने पुत्र कामसेन को, जो चन्द्रावली का पति था, बुलवाया और कहा—पुत्र! उदयसिंह को बाँध लो! यह सुनकर कामसेन ने तीक्ष्ण विष भोजन में डालकर उदयसिंह को दिया। यह समाचार पाकर चन्द्रावली शीघ्र भाई के पास जाकर उस पात्र को लेकर वहाँ से चली गई! क्रुद्ध होकर कामसेन ने अपनी पत्नी चन्द्रावली को बेंत की छड़ी से अत्यन्त पीड़ित किया। उस समय क्रुद्ध होकर उदयसिंह ने उसके दोनों हाथ-पाँव बाँध दिये। महाबली वीरसेन ने अपने पुत्र के बाँधे जाने पर उदयसिंह को बाँधने के लिए अन्य पुत्रों को आदेश दिया। उसी अवसर में उदयसिंह ने डोला लेकर अपने सैनिक शिविर में आकर शत्रुओं से घोर युद्ध किया। एक ओर दशसहस्र की सेना और दूसरी ओर तीन लाख सैनिक उस भीषण युद्ध में भाग ले रहे थे। वह रोमाञ्चकारी युद्ध अविराम गति से दिन-रात चल रहा था।४४-५३। शत्रु के एक लाख सैनिकों का निधन हुआ और एक सहस्र सैनिकों का उदयसिंह के भी निधन हुआ। जो अवशिष्ट रहे वे यादवों से भयभीत होकर भाग गये। अपने सैनिकों के पराजित हो जाने पर उन सातों पुत्रों ने अपने-अपने गजों पर बैठकर उदयसिंह को चारों ओर से घेर लिया। वीर उदयसिंह ने भी विन्दुल पर बैठे हुए हाथियों के सिंहासन समेत उन्हें पृथ्वी पर धूल-धूसरित करते हुए उनके अस्त्रों को काटकर उन सबको बाँध लिया। इसे सुनकर सूर्य के अनन्य भक्त वीरसेन ने सौर (सूर्य द्वारा प्राप्त) अस्त्र से इनकी सेना को भस्म कर दिया और उसी अस्त्र के प्रयोग से घोड़े समेत उदयसिंह भी मूर्च्छित हो गये।५४-५७।

वीरसेनस्तु तं बद्ध्वा मोचयित्वा सुतान्वधूम् । स्वगेहमागतस्तूर्णं नानावाद्यान्यवादयत् ।।५८
हतशेषास्तदा वीराः कृष्णांशस्य ययुर्दिशः । हेतुं परिमलस्याग्रे सर्वमूचुस्तदादितः ।।५९
महीपतिं महाधूर्तं मत्वा राजाब्रवीदिदम् । गच्छ त्वं मलनापुत्र लक्षसैन्यसमन्वितः ।।६०
बद्ध्वा स्वभगिनीकान्तं स्वबन्धुं मोचयाशु वै । इति श्रुत्वा च स सुतो लक्षसेनासमन्वितः ।।६१
शीघ्रं गत्वा च नगरीं रुरोध बलवान्रुजा । युद्धी भूते बले तस्मिन्वीरसेनो नृपोत्तमः ।।
सौरमस्त्रमुपादाय दाहनार्थं समुद्यतः ।।६२
सज्जीभूते तदस्त्रे तु ब्रह्मानन्दो महाबलः । ब्रह्मास्त्रेणैव स शरं वारयामास वै रुषा ।।६३
दृष्ट्वा भयान्वितो भूपस्तमेव शरणं ययौ । ब्रह्मानन्दस्तु तं भूपं वचनं प्राह निर्भयः ।।६४
धूर्तवाक्येन हे भूपमद्बन्धुर्वाधितस्त्वया । अवध्या च सदा नारी त्वत्सुतस्तामताडयत् ।।
अतस्त्वं भगिनीयुक्तं स्वसुतं देहि मे नृप ।।६५
इति श्रुत्वा च नृपतिर्वचनं प्राह नम्रधीः । मत्सुता च गृहे नास्ति कामसेनं गृहाण भोः ।।६६
इत्युक्त्वा वीरसेनश्च सुतं चन्द्रावलीं तथा । दत्त्वा तस्मै प्रसन्नात्मा तत्प्रस्थानमकारयत् ।।६७
ब्रह्मानन्दोऽपि बलवान्कृष्णांशेन समन्वितः । सेनयाशीतिसाहस्त्र्या ययौ सार्द्धं महावतीम् ।।६८
मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्रेमविह्वलकम्पिता । स्नापयित्वाश्रुधाराभिर्द्विजातिभ्यो ददौ धनम् ।।६९

उस समय वीरसेन ने उन्हें बाँधकर अपने पुत्रों समेत वधू (बहू) को भी मुक्त कराकर अपने घर में अनेक भाँति के वाद्यों द्वारा महोत्सव मनाया । उदयसिंह के शेष वीर सामन्त इधर-उधर भाग गये । उनमें से कुछ लोगों ने परिमल के पास पहुँचकर आदि से अन्त तक सभी वृत्तान्त कहा—महीपति (पृथिवीराज) को महाधूर्त जानकर राजा ने ब्रह्मानन्द से कहा—एक लाख सेना समेत तुम शीघ्र वहाँ जाओ । अपनी भगिनी के पति को बाँधकर अपने भाई को मुक्त कराओ । इसे सुनकर एक लाख सैनिकों को लेकर ब्रह्मानन्द ने वहाँ पहुँचकर अत्यन्त क्रोधादेश में उस नगरी को चारों ओर से घेर लिया । पश्चात् युद्धस्थल में आये हुए उनके सैनिकों को बाँध लिया । सेना के आबद्ध हो जाने पर राजा वीरसेन ने अपने सौर अस्त्र के प्रयोग से उन्हें भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके उस अस्त्र द्वारा प्रयोग करते समय ब्रह्मानन्द ने अपने ब्रह्मास्त्र से उसे शांत करते हुए अपना क्रुद्ध स्वरूप प्रकट किया । उसे देखकर राजा वीरसेन ने अत्यन्त भयभीत होकर उन्हीं की शरण प्राप्त की । निर्भय होकर ब्रह्मानन्द ने उनसे कहा ।५८-६४। नृप ! एक धूर्त के कहने से मेरे भाई को बाँध लिया, और स्त्रियाँ सदैव अवध्य होती हैं, किन्तु तुम्हारे पुत्र ने इसका उल्लघंन कर उसे (भगिनी को) अत्यन्त ताड़ना दी । इसलिए आप अपनी पुत्री समेत उस कामसेन पुत्र को मेरे अधीन कीजिये । इसे सुनकर राजा ने नम्रतापूर्वक कहा—मेरी कन्या इस समय घर में नहीं है, किन्तु कामसेन उपस्थित है । इतना कहकर वीरसेन ने कामसेन समेत चन्द्रावली को उन्हें सौंप दिया, पश्चात् प्रसन्नतापूर्ण होकर उनका प्रस्थान भी कराया । बलवान् ब्रह्मानन्द ने उदयसिंह और अस्सी सहस्र सेना साथ लेकर महावती (महोबा) को प्रस्थान किया ।६५-६८। घर पहुँचने पर रानी मलना ने अपने पुत्र को देखकर प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गई कि अपने आँसुओं से उन्हें स्नान कराकर

इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । शृण्वतां कलिपापघ्नं कथयिष्यामि वै पुनः ॥७०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्विंशाब्दकं प्राप्ते कृष्णांशे बलशालिनि । इषशुक्लदशम्यां च कृतो राज्ञा महोत्सवः ॥१
भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्दत्त्वा तेभ्यो हि दक्षिणाः । स्वभृत्येभ्यस्तथा दित्तं यथायोग्यं क्रमाद्ददौ ॥२
कार्तिक्यां शुभयुक्तायां कृष्णांशो बलसंयुतः । इन्दुलेन च संयुक्तो देवसिंहेन संयुतः ॥३
अयुतैः स्वर्णद्रव्यैश्च शूरैर्दशसहस्रकैः । ययौ बर्हिष्मतीस्थाने नानाभूपसमन्विते ॥४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चित्ररेखा समागता । वृता सप्तालिभिर्देवी चित्रगुप्तप्रपूजिनी ॥५
गङ्गामध्ये महारम्यं यानं मायामयं तया । कृतं कौतूहलयुतं बहुसम्पत्समन्वितम् ॥६
आगतास्तत्र राजानो नाना तद्दर्शनोत्सुकाः । तदोदयो देवयुतो जयन्तेन समन्वितः ॥
शतशूरैश्च सहितो दर्शनार्थमुपाययौ ॥७

ब्राह्मणों को धन वितरण किया। विप्र ! इस प्रकार तुम्हें कृष्णांश (उदयसिंह) का शुभचरित सुना दिया गया, और मैं उस पापहारी चरित को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ६९-७०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२२।

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—बलशाली उदयसिंह की चौबीसवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ होने पर राजा ने आश्विन शुक्ल दशमी (विजया दशमी) के दिन महान् उत्सव किया। उस उत्सव में ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा प्रदानकर अत्यन्त तृप्त करने के उपरांत अपने राज्य के सेवकों को भी यथायोग्य पुरस्कार रूप धन प्रदान किया। कार्तिक मास के शुभ योग के दिन वीर उदयसिंह ने इन्दुल (इंदल) और देवसिंह (डेवा) को साथ लेकर दश सहस्र सुवर्ण एवं दशसहस्र सेना समेत बर्हिष्मती नामक नगरी के लिए प्रस्थान किया, जहाँ अनेक राजागण आकर पहले से ही निवास कर रहे थे। उसी बीच वहाँ चित्रलेखा आयी जो सात सखियों के साथ चित्रगुप्त की पूजा करती थी। उसने गंगा के मध्य में एक अत्यन्त सुन्दर यान अपनी माया द्वारा निर्मित कर कौतूहल प्रदर्शनार्थ रखा था, जिसमें सम्पत् भी लगा दिया गया था। उस कौतूहल को देखने के लिए अनेक देश के भूपवृन्द वहाँ आकर रह रहे थे। उस समय उदयसिंह भी देवसिंह और इन्दुल समेत अपने सौ शूर वीरों के साथ उसे देखने के लिए वहाँ आये थे। १-७। उस जल समूह में राजा बाह्लीक की परम सुन्दरी चित्ररेखा

चित्ररेखा महारम्या वाह्लीकनृपतेः सुता । ददर्श सुन्दरं कान्तमिन्दुलं शशिवन्मुखम् ॥
येन स्वप्नान्तरे रम्यं सार्द्धं भुक्तं तया सुखम् ॥८
तमाह्लादसुतं ज्ञात्वा साभिनन्दनदेहजा । कृत्वा मोहमयं जालं शुकभूतं तदेन्दुलम् ॥९
हृत्वा स्वयम्बरे रम्ये परमानन्दमाययौ । पुनराहृत्य तां मायां स्वगेहाय ययौ मुदा ॥१०
कृष्णांशस्तु तदा बुद्ध्वा न ददर्श स्वकं शिशुम् । देवसिंहं बोधयित्वा पप्रच्छ क्व गतः शिशुः ॥११
कालज्ञो देवसिंहोऽपि मोहितश्चित्रमायया । न ज्ञातस्तेन वै बालः क्व गतः केन वा हृतः ॥१२
विस्मितं देवसिंहं च दृष्ट्वा कृष्णांशको बली । रुरोदोच्चैस्तदा गाढं चित्रमायाविमोहितः ॥१३
श्रुत्वा तु रोदनं तस्य खलस्तत्र महीपतिः । ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा यत्राह्लादः स्वयं स्थितः ॥
रुदित्वा तत्र वै गाढं वचनं प्राह नम्रधीः ॥१४
उदयो नाम ते भ्राता मोहयित्वा मदेन[१] तौ । देवमिन्दुलमेवासौ हत्वा धारास्वरोपयत् ॥१५
प्रत्यक्षं न मया दृष्टं तेन वीरेण वै कृतम् । शतं स्वर्णं च मे दत्त्वा विनयेनावरोधितः ॥१६
देवसिंहस्ततो[२] बुद्ध्या न ज्ञातं तेन यत्कृतम् । इति श्रुत्वा तु वचनं निश्चयं नाधिगच्छति ॥१७
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तौ तौ वीरौ रोदने रतौ । तद्वियोगेन कृष्णांशः स्वदेहं त्यक्तुमुद्यतः ॥१८
आह्लादौ निश्चयं ज्ञात्वा भाषितं च महीपतेः । कृष्णांशं ताडयामास वैतसैश्चर्मकर्तनैः ॥१९

नामक पुत्री ने उस अत्यन्त सुन्दर इन्दुल को देखा, जिसके मुख की कान्ति चन्द्रमा की भाँति निर्मल एवं सुखप्रद दिखाई देती थी तथा स्वप्न में जिसने उसके साथ रमण का सुख प्रदान किया था । अभिनंदन की पुत्री ने उन्हें आल्हाद (आल्हा) का पुत्र जानकर उन्हें शुक (तोता) बनाकर एक माया जाल (माया द्वारा रचित पींजड़े) में रख लिया । उस स्वयम्बर में उनका अपहरण करने से उसे परमानन्द की प्राप्ति हुई । पश्चात् अपने माया दृश्य को समाप्तकर वह प्रसन्नता पूर्ण होती हुई अपने घर चली गई । जागने पर उदयसिंह ने अपने बच्चे को न देखकर देवसिंह को जगाकर पूँछा—लड़का कहाँ चला गया । यद्यपि देवसिंह प्रत्येक समय की बात जानते थे, किन्तु उस समय चित्ररेखा की माया से मोहित होने के कारण वे स्वयं न जान सके कि लड़का कहाँ गया है और उसने उसका अपहरण किया है । उनके कुछ उत्तर न देने तथा उन्हें स्वयं विस्मय प्रकट करते देखकर उदयसिंह उस चित्रमाया से मुग्ध होने के नाते उच्च स्वर से अत्यन्त गाढ़रुदन करने लगे । उन्हें रुदन करते हुए सुनकर दुष्ट महीपति (माहिल) ने प्रसन्न होकर आह्लाद (आल्हा) के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उनके सामने गाढ़रुदन करते हुए नम्रता पूर्वक कहा ।८-१४। तुम्हारे भाई उदयसिंह ने देवसिंह तथा इन्दुल को अत्यन्त मद प्रद (नशीली) वस्तु खिलाकर मूर्च्छित कर दिया था । पश्चात् (उसी नशे में) इन्दुल को मृतक करके गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया । उस वीर ने जो कुछ किया, मैंने वहाँ अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है । उसने मुझे नम्रता पूर्वक सौ सुवर्ण मुद्रा प्रदानकर कहीं भी कहने से रोक दिया है, और पश्चात् चैतन्य होने पर देवसिंह भी अपनी बुद्धि कौशल से, उसने जो कुछ किया है, नहीं जान सके । उनके इतना कहने पर भी आल्हा (आह्लाद) को निश्चय नहीं हो रहा था, परन्तु, उसी समय रुदन करते हुए वे दोनों वीर भी वहाँ पहुँच

---

१. मादकद्रव्येणेत्यर्थः । २. अहमिति शेषः ।

तस्य माता तथा पत्नी भगिनी प्रेमदुःखिताः । आह्लादं बोधयामासुर्धूर्तमायाविमोहितम् ॥
न बोधितस्तदा वीरश्चित्रमायाविमोहितः ॥२०
तदा पुष्पवती देवी स्वपतिं भ्रातृपीडितम् । दृष्ट्वा तत्र गता शीघ्रं पतिदुःखेन दुःखिता ॥२१
विनापराधं कृष्णांशो महानिन्दामवाप्तवान् । तदा वेदविदो विप्रा आह्लादं प्राहुरूर्जितम् ॥२२
वधस्त्यागः समो ज्ञेयो योग्यं बुद्ध्या विचारय । इत्युक्तः स तुरीयात्मा पुत्रशोकेन दुःखितः ॥२३
चाण्डालांश्च समाहूय बद्ध्वा तं पुत्रघातिनम् । दत्त्वा तेभ्यः सपत्नीकं वधं कुरुत मा चिरम् ॥२४
अस्य नेत्रे समुत्पाट्य मां दर्शयत संयुताः । इति श्रुत्वा गतास्ते वै गहनं व्याघ्रसेवितम् ॥२५
देवसिंहस्ततो गत्वा दत्त्वा तेभ्यो महद्धनम् । सम्प्राप्य दम्पती वीरश्चाण्डालेभ्यो वनं ययौ ॥२६
बलखानेस्तु या पत्नी गजमुक्ता पतिव्रता । दम्पती पालयामास गुह्यगेहे मुदा युता ॥२७
चाण्डालास्ते तु सङ्गत्य मृगनेत्रे च तं[1] ददुः । देवसिंहस्तदागत्य क्रोधात्मा च तमब्रवीत् ॥
धिक्त्वां पापं दुराचारं त्वया मे हिंसितः सखा ॥२८
जीवितस्त्वत्सुतो भूमौ तदन्वेषणहेतवे । यास्यामि विविधान्राष्ट्रान्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

गये । भ्रातृपुत्र (भतीजे) के वियोग से उदयसिंह उस समय अपनी शरीर का त्याग करने को तत्पर हो गये । उनकी उस अवस्था को देखकर आह्लाद (आल्हा) को महीपति (माहिल) की बातों का विश्वास हो गया । क्रुद्ध होकर उन्होंने वेत के डंडे से, जिसमें चर्म लगा रहता है, उदयसिंह को अत्यन्त पीटना आरम्भ किया । उनकी माता, पत्नी, एवं भगिनी ये सभी लोग प्रेम के कारण अत्यन्त दुःखी होकर उस धूर्त की माया से मुग्ध हुए आह्लाद (आल्हा) को समझाने लगे, किन्तु चित्ररेखा की माया से मोहित होने के नाते कुछ भी ज्ञान न हो सका । उस समय पुष्पवती देवी अपने पति को भाई द्वारा पीड़ित देखकर वहाँ शीघ्र पहुँचकर पति के दुःख से दुखी होने लगी । बिना अपराध के उदयसिंह की बड़ी निन्दा हुई । उसी समय वैदिक विद्वानों ने आह्लाद (आल्हा) से कहा—वध और त्याग दोनों समान बताये गये हैं, जो योग्य हो, आप स्वयं विचार कर लें । इतना कहने पर उन शुद्धात्मा आह्लाद (आल्हा) ने पुत्र शोक से दुःखी होकर चांडालों को बुलाकर उन्हें पुत्रहन्ता उदयसिंह को बाँधकर सौंप दिया पश्चात् उन लोगों से कहा—पत्नी समेत इन दोनों (स्त्री-पुरुष) का शीघ्र वध करो और इन दोनों के नेत्र लाकर मुझे अवश्य दिखाना इसे सुनकर वे चाण्डाल (खलासी) उन्हें लेकर अत्यन्त घोर जंगल प्रदेश में चले गये, जहाँ वाघ आदि भीषण हिंसक पशुगण रहते थे । उस समय देवसिंह वहाँ जाकर उन चाण्डालों को अधिक धन प्रदान कर पत्नी समेत उदयसिंह को साथ लेकर बल-खानि के घर चले गये। पतिव्रता गजमुक्ता (गजमोतिना) ने उन दोनों को अपने घर में छिपा कर रख लिया, और यथावत् पालन-पोषण करना आरम्भ किया। चाण्डालों ने मृग के नेत्र लाकर आह्लाद (आल्हा) को प्रदान किया। उस समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर देवसिंह ने उस से कहा—'तुम्हारे जैसे दुराचारी पापी को धिक्कार है, तुमने मेरे सखा का वध कराया है।१५-२८। मैं सत्य और अत्यन्त सत्य कह रहा हूँ तुम्हारा पुत्र जीवित है, उसके अन्वेषण के लिए मैं अनेक राजाओं के

---

१. तस्मा इत्यर्थः ।

इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः शिरीषाख्यपुरं शुभम् ॥२९
गजमुक्तामनुज्ञाप्य दम्पती प्राप्य निर्भयः । मयूरनगरं रम्यं निशि घोरं समाययौ ॥३०
मकरन्दस्तु बलवाञ्ज्ञात्वा तत्सर्वकारणम् । स्वसुः पतिं च भगिनीं स्वान्ते प्रेम्णा न्यवासयत् ॥३१
धर्ममाराधयामास यज्ञैर्नानाविधैः स्तवैः । प्रसन्नो धर्मराजश्च मकरन्दमुवाच ह ॥३२
अभिनन्दनभूपस्य सुता चित्रप्रपूजिनी । नाट्यात्मजा केसरिणी तत्सखी दम्भकोविदा ॥३३
केसरिण्या गुरुर्ज्ञेयः कुतुको योगरूपधृक् । तेन प्रसारिता माया शतयोजनमन्तरा ॥३४
शत्रुभिर्दुर्गमा भूमिः शत्रुपाषाणकारिणी । चित्रगुप्तप्रभावेण निर्भयो भूपतिः स्वयम् ॥३५
चित्ररेखा भूपसुता उयन्तस्तु तया हृतः । नररूपधरो रात्रौ शुकरूपधरो दिने ॥
इन्दुलश्च स्थितो दुःखी चित्रमायाविमोहितः ॥३६
कृष्णांशश्च भवान्देवः सहितः सूर्यवर्मणा । मया दत्तानि यन्त्राणि गृहीत्वा ते मुदा युताः ॥
चित्ररेखां समागत्य नृत्यादींस्तैः समं कुरु ॥३७
मोहयित्वा च तां देवीं पठित्वा तन्मतं शुभम् । पुनरागच्छ वै शीघ्रं सैन्ययोगं पुनः कुरु ॥३८
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्स राजा विस्मयान्वितः । कृष्णांशं वर्णयामास यथा धर्मेण भाषितम् ॥३९
फाल्गुने मासि संप्राप्ते त्रयस्ते योगिरूपिणः । ययुरिन्द्रगरं रम्यं नृत्यगीतविशारदाः ॥४०
मृदङ्गाङ्कस्तदा देवो मकरन्दो विपञ्चिमान् । नृत्यगानकरो वीरः कृष्णांशः सर्वमोहनः ॥४१

यहाँ जा रहा हूँ। इतना कहकर उस वीर ने शिरीष (सिरसा) नगरी के लिए प्रस्थान किया। गजमुक्ता (गजमोतिना) से आज्ञा प्राप्तकर उन (स्त्री-पुरुष) को साथ लेकर उसे अंधेरी रात के आधीरात के समय मयूर नगर पहुँच गये। वहाँ बलवान् मकरन्द ने समस्त कारणों को भली भाँति समझकर अपनी भगिनी तथा उदयसिंह को सप्रेम अन्तःपुर में निवास कराया। पश्चात् मकरन्द ने नाना भाँति के यज्ञ द्वारा धर्म की आराधना की। प्रसन्न होकर धर्मराज ने मकरन्द से कहा—राजा अभिनन्दन की पुत्री चित्ररेखा जो चित्रगुप्त की उपासना करती है, केशरिणी नामक उसकी सखी है जो नाट्य की पुत्री एवं दम्भ की विदुषी है उसी केशरिणी का एक कुतुक नामक गुरु है, जो योगरूप धारण करता रहता है, उसी ने सौ योजन तक अपनी माया का विस्तार किया, जिसकी भूमि शत्रुओं के लिए एक अत्यन्त दुर्गम है और वह माया भूमि शत्रु को पाषाण बना देती है। चित्रगुप्त के प्रभाव से वह राजा अत्यन्त निर्भीक रहता है।२९-३५। उसी राजा की चित्ररेखा नामक पुत्री ने (इन्दुल) का अपहरण किया है, वह उसे रात्रि में पुरुष के रूप में और दिन में शुक तोते के रूप में रखती है। उस चित्रमाया से मोहित होकर इन्दुल वहाँ अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रहा है, इसलिए उदयसिंह आप देवसिंह और सूर्यवर्मा सब लोग मिलकर मेरे दिये हुए मन्त्र को लेकर चित्ररेखा के पास जाओ। वहाँ नृत्य आदि द्वारा उसे मोहितकर उस कुमारी से उसकी विद्या का अध्ययन कर चले आवो। उपरांत सेनाओं समेत वहाँ पर युद्ध करो। इतना कहकर देव धर्मराज अन्तर्हित हो गये और जागकर राजा अत्यन्त विस्मित होने लगे। पश्चात् उन्होंने धर्मराज के बताये हुए सभी उपायों समेत उनकी आदि से अन्त तक सभी बातें उदयसिंह से बतायी। फाल्गुन मास के आरम्भ में नृत्य-गान निपुण वे तीनों योगी का वेष धारणकर रमणीक इन्द्रगृह नगर में राजा गजपति की राजसभा में पहुँचकर देवसिंह ने मृदङ्ग, मकरन्द ने सारङ्गी बजाना आरम्भ किया और उदयसिंह

**मोहयित्वा च नगरं तथा गजपतिं नृपम् । सकुलं च ससैन्यं च तुष्टो राजाब्रवीदिदम् ।।४२
वाञ्छितं ब्रूहि मे योगिन्स श्रुत्वा प्राह नम्रधीः । देहि मे सूर्यवर्माणं स्वसुतं कार्यहेतवे ।।४३
कृत्वा कार्यमहं शीघ्रं पुनर्दास्यामि ते सुतम् । विधिना निर्मितो धर्मो राजभिर्विश्वरक्षणम् ।।४४
इति श्रुत्वा गजपतिर्दत्त्वा तेभ्यः स्वकं सुतम् । स्वराज्ञीमाययौ राजा गतास्ते कार्यतत्पराः ।।४५
पक्षमात्रेण बाह्लीकं नगरं प्रययुर्मुदा । धर्मदत्तानि यन्त्राणि गृहीत्वा शत्रुमन्दिरम् ।।४६
आययुर्लास्यतत्त्वज्ञा नृपमोहनतत्पराः । सर्वे च नागराः प्राप्तास्तत्र क्षत्रगणा मुदा ।।४७
मोहितास्तैश्च ते सर्वे गीतनृत्यविशारदैः । महद्धनं ददौ तेभ्यस्तोमरान्वयसम्भवाः ।।४८
तानादाय पुनर्भूपः स्वगेहमभिनन्दनः । आययौ गेहनृत्यार्थी कारयामास वै पुनः ।।४९
मकरन्दस्तदा वीणां मृदङ्गं भीष्मजो दली । मञ्जीरं सूर्यवर्मा च कृष्णांशो गाननृत्यकम् ।।५०
गृहीत्वा मोदयामासुर्नारीवृन्दा महोत्तमम् । चित्ररेखा स्वयं दृष्ट्वा तेषां मोहनहेतवे ।।५१
मायां निर्वापयामास निष्फला साऽभवत्क्षणात् । मोहितातैश्च सा देवी तानुवाच मुदान्विता ।।५२
वाञ्छितं ब्रूहि मे वीर कृष्णांशश्चाह तां वधूम् । शुकं देहि च मे देहि नो चेच्छापं ददाम्यहम् ।।५३
इति श्रुत्वा चित्ररेखा शोकव्याकुलचेतना । कृष्णांशं योगिनं प्राह सत्यं कथय को भवान् ।।५४**

सर्वमोहक नृत्य-गान करने लगे । अपनी कला कुशलता से उन लोगों ने वहाँ के नागरिकों एवं राजा को एकदम मोहित कर दिया । अपने कुल कुटुम्ब एवं सेना समेत प्रसन्न होकर राजा से कहा—योगिन् ! आप मनइच्छित वस्तु बताइये, क्या चाहते हैं । इसे सुनकर उन लोगों ने नम्रता पूर्वक कहा—आप अपने पुत्र सूर्यवर्मा को (कुछ दिन के लिए) मुझे दे दीजिये, मुझे कुछ विशेष कार्य करना है ।३६-४३। कार्य हो जाने पर मैं आपके पुत्र को शीघ्र लौटा दूँगा । क्योंकि ब्रह्मा ने विश्व की रक्षा के लिए ही राजाओं का धर्म बनाया है ऐसा सुनकर राजा ने उन्हें अपना पुत्र सौंप दिया, पश्चात् वे अपने अन्तः पुर में चले गये और इन लोगों ने अपना कार्यारम्भ किया । पन्द्रह दिन की यात्रा करके ये लोग बाह्लीक नगर पहुँचे, वहाँ धर्मराज द्वारा प्रदत्त यंत्र को लेकर प्रसन्नता मग्न होते हुए शत्रु के महल में प्रविष्ट हो गये, जहाँ सभी नागरिक क्षत्रीगण उपस्थित थे । इन लोगों ने अपनी नृत्य-गायन एवं वाद्य की कलाओं द्वारा वहाँ की उपस्थित जनता समेत सभी क्षत्रियगण को अत्यन्त मोहित किया । उससे तोमर कुलभूषण क्षत्रीगण ने प्रसन्नता विभोर होकर इन्हें अत्यन्त धन प्रदान किया। पश्चात् वे राजा अभिनन्दन के महल में नृत्य करने के लिए गये। वहाँ मकरन्द ने वीणा और देवसिंह ने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया तथा सूर्यवर्मा मजीरा बजा रहे थे एवं उदयसिंह अपने नृत्य-गान द्वारा वहाँ स्थित राजा और रानियों को मोहितकर रहे थे। इनकी कलाओं से वहाँ का नारीवृन्द अत्यन्त मुग्ध हो गया । उसी समूह में चित्ररेखा भी उपस्थित थी जिसने इन लोगों के मोहनार्थ अनेक भाँति की माया का निर्माण अनेक बार भी किया, किन्तु वह उसी समय निष्फल हो गयी । मोहित होकर उसने उन लोगों से कहा वीर ! आप क्या जानते हैं, कहिये ! उदयसिंह ने उस स्त्री से कहा—देवि ! उस शुक (तोते) को मुझे दे दीजिये नहीं तो मैं शाप प्रदान करूँगा। इसे सुनकर चिंतित होती हुई चित्ररेखा ने योगियों से कहा—सत्य कहिये, आप कौन

इन्द्राद्या देवतास्सर्वे मया निर्मितया यया । मोहिताः क्षणमात्रेण न भवान्मोहितो मया ।।५५
देवो नारायणो वापि धर्मो वापि शिवः स्वयम् । इत्युक्तस्स तु कृष्णांशो वचनं प्राह निर्भयः ।।५६
उदयो नाम मे राज्ञि देवसिंहोऽयमुत्तमः । मच्छयालो मकरन्दोऽयं सूर्यवर्मा तथाविधः ।।५७
इन्दुलस्य वियोगेन वयं योगित्वमागताः । मद्गुरुश्च तथोन्मादी सङ्कुलस्तद्वियोगतः ।।५८
शुकं देहि महामाये इन्दुलं देहि वा यदि । इत्युक्त्वाशु रुरोदोच्चैर्हा इन्दुल महाबल ।।५९
दर्शनं देहि मे शीघ्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । इत्येवं वादिनं वीरं चित्ररेखा महोत्तमा ।।६०
कृत्वा लज्जां पुनः प्राह मां च पुत्रं गृहाण भोः । कृत्वा नरमयं रूपं स्वकान्तं सर्वसुन्दरम् ।।६१
पतित्वा तच्चरणयो रुरोदोच्चैश्च दम्पती । तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा कृष्णांशो हर्षसंयुतः ।।६२
इन्दुलेनैव लिखितं गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । धर्मयन्त्रप्रभावेण मयूरनगरं ययौ ।।६३
सूर्यवर्मा गतो गेहं मकरन्देन मानितः । देवसिंहस्तु बलवान्गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् ।।६४
ययौ मनोरथारूढो यत्राह्लादः शुचान्वितः । को भवानिति तं प्राह महोन्मादीव दृश्यते ।।६५
देवसिंहं च मां विद्धि त्वपुत्रान्वेषणे रतम् । पत्रं गृहाण भो वीर लिखितं त्वत्सुतेन वै ।।६६
इति श्रुत्वा स आह्लादश्चाह्लादं परमाप्तवान् । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं यथाविधि सुतो हृतः ।।६७
महीपतिं समाहूय वचनं प्राह नम्रधीः । सत्यं कथय मे भूप कृष्णांशेन हृतस्सुतः ।।६८

हैं ।४४-५४। क्योंकि मेरी जिस माया द्वारा इन्द्रादि देवगण क्षणमात्र में मुग्ध हो जाते हैं, वह आप में निष्फल हो गई, आप मोहित न हो सके, अतः आप नारायण देव, धर्मराज, अथवा स्वयं शिव देव हैं। उसके इतना कहने पर उदयसिंह ने कहा। देवि ! मेरा नाम उदयसिंह है, मेरे साथ में देवसिंह, मेरा साला मकरन्द और सूर्यवर्मा हैं। इन्दुल के वियोग में हम लोगों ने योगी का वेष धारण किया था। मेरे बड़े भाई आह्लाद (आल्हा) को उसके वियोग में उन्माद हो गया है, अतः देवि ! शुक (तोते) अथवा इन्दुल को शीघ्र मुझे सौंप दो। इतना कहकर वे मुक्त कंठ से रुदन करने लगे—हा महाबल, इन्दुल ! मुझे शीघ्र दर्शन प्रदान करो, अन्यथा मैं प्राण त्यागकर रहा हूँ। इसे सुनकर सुन्दरी चित्ररेखा लज्जा का भाव प्रदर्शित करती हुई उनसे कही—पुत्र समेत मुझे भी ग्रहण करने की कृपा कीजिये। इतना कहकर उसने इन्दुल का सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष रूप बनाया। पश्चात् वे दम्पती उनके चरण पर गिरकर उच्च स्वर से रुदन करने लगे। हर्षमग्न होकर उदयसिंह ने उन्हें आश्वासन पूर्वक इन्दुल से एक पत्र लिखवाया। उसे लेकर वे उसी यंत्र के प्रभाव द्वारा मयूर नगर पहुँच गये।५५-६३। पश्चात् मकरन्द से सम्मानित होकर सूर्यवर्मा अपने घर चले गये। बलवान् देवसिंह ने उस पत्र को लेकर मनोरथ नामक घोड़े पर बैठकर महाबली (महोवा) के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे आल्हाद (आल्हा) के पास गये। वहाँ पुत्र शोक से व्यथित होकर उन्मादी की भाँति बैठे हुए आल्हाद (आल्हा) ने उन्हें देखकर कहा—आप कौन हैं, उन्मादी की भाँति घूम रहे हैं। उन्होंने कहा—मैं आप के पुत्र का अन्वेषण करने वाला देवसिंह हूँ। वीर ! इस पत्र को ग्रहण कीजिये, जिसे स्वयं आप के पुत्र ने लिखा है। इसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) को परम आनन्द की प्राप्ति हुई। जिस प्रकार उनके पुत्र का अपहरण हुआ था, उन्होंने सभी कारणों के जानने की चेष्टा की।६४-६८। पश्चात् महीपति ! (माहिल) को बुलवाकर नम्रता पूर्वक उन्होंने उनसे कहा—

सहोवाच श्रुतं वीर कृष्णांशेन यथा हतः । इत्युक्त्वा तु विहस्याशु कार्यसिद्धिमुपागतः ॥६९
आह्लादः क्रोधताम्राक्षः केशानाकृष्य तं मुदा । वेतसैस्ताडयामास स्वहस्तेन पुनः पुनः ॥७०
श्रुत्वा परिमलो राजा सपत्नीकस्समागतः । बहुधा मोदयामास रामांशं बहुरूपिणम् ॥७१
अरे धूर्त महापापिन्मद्बन्धुर्घातितस्त्वया । गतो यत्र मम प्राणस्सकुलं त्वां नयाम्यहम् ॥७२
तदा महीपतिर्दुःखी निःश्वासो मौनमास्थितः । तदघं हृदि संस्थाप्य महापीडामवाप्तवान् ॥७३
एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलखानिः समागतः । विमुच्य मातुलं धूर्तं ज्येष्ठबन्धुमसान्त्वयत् ॥७४
स चकार विवाहार्थमुद्योगं भ्रातृजस्य वै । नेत्रसिंहो नृपः प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७५
तारकश्च तमायातस्सार्द्धं शूरसहस्रकैः । वीरसेनः स्वयं प्राप्तः शूरैः सार्द्धं नवाऽयुतैः ॥७६
तालनश्च ततः प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ! सूर्यवर्मा तथा प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७७
ब्रह्मानन्दः स्वयं प्राप्तस्त्रिलक्षबलसंयुतः । आह्लादश्च शुचाविष्टो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७८
हा बन्धो क्व गतस्त्वं वै मां त्यक्त्वा पुरुषाधमम् । इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः शोकव्याकुलचेतनः ॥७९
बलखानिस्तु बलवाल्लँक्षसैन्यसमन्वितः । देवसिंहेन सहितो बाह्लीकं प्रति सोऽगमत् ॥८०
अहोरात्रप्रमाणेन मासैकः पथि वै गतः। ज्येष्ठकृष्णस्य पञ्चम्यां बाह्लीकग्राममाप्तवान् ॥
व्यूहः स्वकीयसैन्यानां रचितो बलखानिना ॥८१

राजन् ! जिस प्रकार उदयसिंह द्वारा मेरे पुत्र का अपहरण हुआ है, आप सत्य बताने की कृपा करें। उन्होंने कहा—वीर ! उदयसिंह ने जिस प्रकार उसका वध किया मैंने सुना था और आप को बताया भी था। इतना कहकर उन्होंने हँसते हुए कहा--'मेरा कार्य तो सिद्ध हो गया।' इतना सुनते ही आह्लाद (आल्हा) के दोनों नेत्र क्रुद्ध होने के नाते ताँबे की भाँति रक्त वर्ण के हो गये। उन्होंने बेत की छड़ी लेकर स्वयं अपने हाथ से उन पर आघात करना आरम्भ किया। उसे सुनकर पत्नी समेत राजा परिमल ने वहाँ आकर रामांश एवं अनेकरूप धारी आह्लाद (आल्हा) को प्रबोधित (समझाने) करने लगे। क्रुद्ध होकर दण्डित करते समय आह्लाद (आल्हा) उससे कह रहे थे—अरे धूर्त महापापिन् ! तुमने मेरे भाई का निधन कराया है, इसलिए वह मेरा प्राण जहाँ गया है, उसी स्थान में मैं तुम्हें सकुटुम्ब भेज रहा हूँ। उस समय महीपति (माहिल) भी मौन होकर दीर्घ निश्वास लेते हुए अपने हृदय में किये हुए अपराध के स्मरण पूर्वक उस महापीडा का अनुभव कर रहे थे। उसी बलखानि (मलखान) ने आकर उन मातुल (मामा) को अपने बड़े भाई द्वारा वध किये जाने से मुक्त कराया। पश्चात् अपने भतीजे के विवाह की तैयारी करने लगे। उस आयोजन में एक लाख सैनिक समेत नेत्रसिंह डेढ़ सहस्र शूरवीरों समेत तारक (ताहर), साढ़े नब्बे सहस्र सेना लेकर वीरसेन एक लाख सेना लेकर तालन, एक लाख सैनिक समेत सूर्य वर्मा तीन लाख सैनिक समेत ब्रह्मानन्द और अत्यन्त चिंतित अवस्था में आह्लाद (आल्हा) भी एक लाख सैनिकों समेत विलाप करते हुए चल रहे थे—हा बंधो ! मुझ नीच पुरुष को छोड़कर तुम कहाँ चले गये। उनकी चेतना भी कभी-कभी लुप्त हो जाती थी। बलवान् बलखानि (मलखान) ने भी देवसिंह के साथ में अपने एक लाख सैनिकों समेत बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया। दिन-रात की यात्रा करते हुए वे सब वीरगण एक मास में वाह्लीक नगर पहुँचे। उस दिन ज्येष्ठ कृष्ण की पञ्चमी थी। ६९-८१। वहाँ पहुँचने पर

एको रथः स्थितो युद्धे तत्पश्चात्संस्थिता गजाः । पश्चाश्च क्रमात्तेषां वाजिनश्च शतंशतम् ॥८२
तेषां पश्चात्क्रमाज्ज्ञेयाः पत्तयो दश संस्थिताः । एका सेना च सा ज्ञेया तत्प्रमाणं ब्रवीम्यहम् ॥८३
एको रथो गजास्सर्वे शतार्द्धं तु हयास्तु ये । सेनायां पञ्चसाहस्राः शतघ्न्यस्तु तथा स्मृताः ॥८४
पञ्चायुतानि सेनायां सर्वे पदचराः स्मृताः । एवंविधाश्च ताः सेना बलखानेश्च षोडश ॥८५
गजास्तु दशसाहस्रा मदमत्ताः पृथग्ययुः । युद्धेऽस्मिन्गणितं ह्येवं शूराः शत्रुप्रहारिणः ॥८६
अभिनन्दनभूपस्य म्लेच्छाः पैशाचधर्मिणः । त्रिलक्षाश्च हयारूढा एकलक्षाः शतघ्निपाः ॥८७
एकलक्षः पदचरा भुशुण्डीपरिघायुधाः । तोमरान्वयसंयुक्ताः क्षत्रियाः प्रयुतानि वै ॥
गजस्थास्तत्र सम्प्राप्ता यत्राह्लादमहाचमूः ॥८८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् । मदमत्ताश्च ते सर्वे निर्भया रणमाययुः ॥८९
सप्ताहोरात्रमभवद्युद्धं समरशालिनाम् । बाह्लीकस्यार्द्धसेना च क्षयं नीता च तैर्नृपैः ॥९०
एकलक्षं हताः सर्वे बलखानेश्च सैन्यपैः । हाहाभूते शत्रुसैन्ये भयभीते दिशो गते ॥
हर्षिता बलखान्याद्या जय दुर्गे वचोऽब्रुवन् ॥९१
दृष्ट्वा सैन्यविनाशं च राज्ञः सप्तकुमार । कौरवांशाश्च ते मुर्यत्र जातो महारणः ॥९२
महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकौ । सुनन्दश्च सुरानन्दः प्रनन्दः क्रमतो भवाः[1] ॥९३
गजस्थास्ते महावीरास्तोमरान्वयसम्भवाः । सेनां जघ्नुः शरैस्तीक्ष्णैर्बलखानेर्महात्मनः ॥९४

बलखानि (मलखान) ने व्यूह रचना आरम्भ किया । पहले रथ के सैनिक, गज, पचास घोड़े पश्चात् उनके पीछे दश-दश पदाति (पैदल) की सेना स्थित की गई । उस एक सेना का प्रमाण मैं बता रहा हूँ जिसमें रथ, गज, और पचास-पचास घोड़े थे—सेना में पाँच सहस्र तोपें, और पचास सहस्र पदाति (पैदल) सैनिक थे । इस प्रकार बलखानि (मलखान) की सोलह सेना थी, जिसमें दश सहस्र मदोन्मत्त गजराज पृथक्-स्थित किये गये थे । शत्रुओं पर आघात करने वाली उनकी सेना की इस प्रकार गणना कर दी गई । राजा अभिनन्दन की सेना की गणना इस प्रकार बतायी गयी है—पिशाचधर्मी म्लेच्छ तीन लाख की संख्या में अश्वारोही थे, एक लाख तोपें और एक लाख पदाति (पैदल) सैनिक, जो भुशुण्डी एवं परिघ अस्त्र से सुसज्जित थे । तोमर कुल के वीर क्षत्रीगण दश लाख की संख्या में गजों पर आसीन होकर रणस्थल में आह्लाद (आल्हा) की सेना के समीप पहुँच गये । दोनों सेनाओं का रोमाञ्चकारी एवं भीषण तुमुल युद्ध होने लगा । उन मदमत्त वीरों ने निर्भय होकर रणभेरी बजाना आरम्भ कर दिया, अविराम गति से दिन-रात होते हुए वह युद्ध सात दिन तक हुआ । वाह्लीक की आधी सेना और बलखानि (मलखान) की एक लाख सेना उस युद्ध में काम आई । शत्रु की सेना में हाय-हाय मच गया, भयभीत होकर वे लोग इधर-उधर भागने लगे और बलखानि (मलखान) आदि के सैनिक 'जयदुर्गे' के नारे लगाते हुए हर्षित हो रहे थे।८२-९१। अपनी सेनाओं को विनष्ट होते देखकर वे सातों राजकुमार, जो कौरवों के अंश से उत्पन्न थे, रण-क्षेत्र में पहुँच गये। महानन्द, नन्द, परानन्द, उपनन्द, सुनन्द, सुरानन्द और प्रनन्द उनके नाम थे, और तोमर कुल के वे भूषण गजराजों पर स्थित थे। अपने तीक्ष्ण वाणों के प्रहारों से बलखानि (मलखान) के

---

१. क्रमतो भवां येषां त ।

भयभीताश्च ते सर्वे बलखानिमुपाययुः । दृष्ट्वा सैन्यं पराभूतं बलखानिस्तदा रुषा ।।९५
अन्वधावत[1] वेगेन कपोतस्थो महाबलः । नन्दं प्रति तथा देवः परानन्दं च तालनः ।।९६
उपनन्दं सूर्यवर्मा सुनन्दं प्रति तारकः । नेत्रसिंहः सुरानन्दं प्रनन्दं प्रति यादवः ।।९७
युध्यमानास्तु ते सर्वे परस्परवधैषिणः । दिनार्द्धमभवद्युद्धं बहुवीरप्रणाशनम् ।।९८
पराजितास्तु ते पुत्रा बाह्लीकस्य महाबलाः । त्यक्त्वा युद्धं ययुर्गेहं भीरुका बलखानिना ।।९९
दृष्ट्वा तेषां बलं घोरमभिनन्दनभूमिपः । कुतुकं च समाहूय नाट्यां केशरिणीं तथा ।।
कथितं कारणं राज्ञा यथा जातः पराजयः ।।१००
इति श्रुत्वा तु कुतुकस्तमाश्वास्य महीपतिम् । स ध्यात्वा शाम्बरीं मायां महादेवेन निर्मिताम् ।।
तत्सैन्यं मोहयामास शिलाभूतमचेतनम् ।।१०१
तदा केसरिणी नाट्या अष्टौ बद्ध्वा महाबलान् । राज्ञः पार्श्वमुपागम्य दत्त्वा तान्गेहमाययौ ।।१०२
बाह्लीकश्च प्रसन्नात्मा बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः । लुण्ठित्वा द्रविणं तेषां कोशमध्ये समाक्षिपत् ।।१०३
देव्याश्च वरदानेन देवसिंहो भयातुरः । महावतीं समागम्य स्वर्णवत्यै न्यवेदयत् ।।१०४
ज्ञात्वा स्वर्णवती देवी सर्वविद्याविशारदा । श्येनीं मूर्तिं समास्थाय ययौ पुष्पवतीं प्रति ।।१०५
दृष्ट्वा तु दम्पती तत्र मकरन्दं गृहे स्थितौ । रुदित्वा कथयामास यथा प्राप्तः पराजयः ।।१०६

सैनिकों को धराशायी करने लगे । पश्चात् भयभीत होकर वे सैनिक बलखानि (मलखान) की शरण में पहुँच गये । अपनी सेना को पराजित होते देखकर बलखानि (मलखान) ने क्रुद्ध होकर कपोत (कबूतर) नामक घोड़े पर बैठकर उस रण क्षेत्र को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर नन्द के साथ देवसिंह, परानन्द के साथ तालन, उपनन्द से सूर्यवर्मा, सुनन्द से तारक (ताहर), सुरानन्द के साथ नेत्रसिंह, एवं प्रनन्द के साथ यादव (मकरन्द) का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । उन वीरों ने परस्पर एक दूसरे के वध की इच्छा करते हुए दोपहर तक घोर युद्ध किया । जिसमें अनेक वीरगण हताहत हुए । पश्चात् बाह्लीक के वे राजकुमार बलखानि (मलखान) के भय से भयभीत होकर युद्ध छोड़कर भाग निकले । राजा अभिनन्दन ने शत्रु की सेना को भीषण देखकर कुतुक तथा नाट्या केशरिणी को बुलवाकर उनसे अपने पराजय का सभी कारण यथावत् बताया । इसे सुनकर कुतुक ने राजा को आश्वासन देते हुए महादेव द्वारा निर्मित उस शांबरी माया के ध्यान पूर्वक शत्रुओं की सेनाओं को पाषाण बनाकर चेतनाहीन कर दिया । उस समय नाट्या केशरिणी ने महाबलवान् उन आठों वीरों को बाँधकर राजा को ले जाकर सौंप दिया और स्वयं अपने घर चली गई । बाह्लीक राज्याधिपति (अभिनन्दन) ने उन्हें हथकड़ी बेड़ी से दृढ़ आबद्धकर उनके कोष को लुटवाकर अपने कोष में संचित करा लिया । देवी द्वारा प्राप्त किये हुए वरदान के नाते देवसिंह शेष रह गये, जो उसकी माया से प्रभावित न हो सके थे, उन्होंने भयातुर होकर महावती (महोवा) में पहुँचकर स्वर्णवती (सोना) से सभी वृत्तान्त कहा। सम्पूर्ण विद्याओं की विदुषी स्वर्णवती (सोना) उसी समय बाज पक्षी का रूप धारणकर पुष्पवती के पास चली गई।९२-१०५। वहाँ मकरन्द के घर दम्पती (स्त्री-पुरुष) को देखकर रुदन करती हुई उनसे अपने पक्ष के पराजय का कारण बताया। उस समय

---

१. धावु गतिशुद्धयोरित्यात्मनेपदिनो रूपमेतत् ।

कृष्णांशस्तु तदा दुःखी मकरन्दं वचोऽब्रवीत् । गच्छ वीर मया सार्द्धं मद्गुरुर्बन्धनं गतः ।।१०७
कुलक्षये महत्पापं सुप्रोक्तं पूर्वसूरिभिः । निमग्नान्दुःखजलधौ समुद्धर मम प्रिय ।।१०८
इति श्रुत्वा तु तच्छ्यालः शूरायुतसमन्वितः । संन्यस्तवेषमास्थाय खड्गचर्मसमन्वितः ।।
कृष्णांशेन हयारूढो बाह्लीके त्वरितो ययौ ।।१०९
तदा स्वर्णवती देवी पुष्पवत्या समन्विता । श्येनीरूपमुपास्थाय ययौ यत्र महारणः ।।११०
स छित्त्वा शाम्बरीं मायां बोधयित्वा स्वसैनिकान् । रुरोध नगरीं तस्य बाह्लीकस्य महात्मनः ।।१११
दृष्ट्वा ताञ्छत्रुसंयुक्तान्कुतुकस्तु तया सह । पुनश्च शाम्बरीं मायां प्रेषयामास तान्प्रति ।।११२
छित्त्वा सा सकलां मायां बद्ध्वा तौ दैत्यसन्निभौ । नगरं दाहयामास तस्य भूपस्य मायया ।।११३
न दाहो दाहमापन्नो न भस्मो भस्मवान्खलु । स्वर्णवत्या कृतं चित्रं स्वयं देव्या न मायया ।।११४
तदा पुष्पवती देवी हत्वा केसरिणीं रुषा । तन्मांसैस्तर्पयामास गृध्रगोमायुवायसान् ।।११५
कुतुकं च तथाभूतं हत्वा स्वर्णवती स्वयम् । कारागारे लोहमये स्थितान्वीरानमोचयत् ।।११६
पुनरागम्य सा देवी तया सार्द्धं शुभानना । मकरन्दः स्थितो यत्र कृष्णांशेन समन्वितः ।।११७
ते सर्वे विस्मिताश्चासञ्ज्ञात्वा देव्या विमोहिताः । क्रोधवन्तो महावीरा युद्धाय समुपाययुः ।।११८
पुनश्चासीत्तयोर्युद्धं सेनयोरुभयोर्मृधे । बलखानिं महानन्दो नन्दश्चाह्लादमाययौ ।।११९

दुःखी होकर उदयसिंह ने मकरन्द से कहा—मेरे साथ चलने के लिए शीघ्र तैयारी करो, क्योंकि मेरे गुरु (आह्लाद) भी बंधन में फँस गये हैं। पूर्व के विद्वानों ने बताया है कि—कुलक्षय होने पर महापातक की प्राप्ति होती है ! अतः मेरे प्रिय ! दुःख सागर में डूबते हुए मेरा उद्धार करो। इतना सुनकर उनके साले ने दश सहस्र सैनिकों समेत संन्यासी का वेष धारणकर हाथ में खड्ग और चर्म (ढाल) लिए बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया। घोड़े पर बैठे हुए उदयसिंह उस सैन्य का संचालन शीघ्रता से कर रहे थे। उस समय स्वर्णवती (सोना) भी पुष्पवती समेत उसी बाज पक्षी के वेष में वहाँ के रणस्थल में पहुँच गई। उसने शाम्बरी माया के विध्वंस पूर्वक अपने सैनिकों को चेतना प्रदान की जो चैतन्य होने पर पुनः अभिनन्दन की राजधानी को चारों ओर से घेर लिये। शत्रु सेना को चैतन्य देखकर उनसे ऊपर कुतुक ने केशरिणी के साथ रहकर पुनः शाम्बरी माया (जादू) का जाल रचा। इन दोनों (युवतियों) ने पुनः उनकी माया के नाशपूर्वक उन दोनों दुष्टों को बाँध लिया पश्चात् उस राजधानी को भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु राजा की माया द्वारा सुरक्षित होने के नाते दाह में ज्वलन शक्ति रह न गई, अतः भस्म किये जाने पर वह भस्म न हो सका। क्योंकि उस माया का निर्माण स्वयं चित्ररेखा ने किया था। स्वर्णवती (सोना) के उस प्रयास को विफल होते देखकर पुष्पवती देवी ने क्रुद्ध होकर केशरिणी का निधन कर उसके मांसों से गीधों और स्यारों को तृप्त किया। उधर स्वर्णवती (सोना) ने भी कुतुक का हनन करके जेल में लोहे की श्रृंखलाओं से दृढ़ आबद्ध उन अपने वीरों को मुक्त किया।१०६-११६। पश्चात् वह (स्वर्णवती) देवी पुष्पवती के साथ मकरन्द के पास आई, जहाँ वे उदयसिंह समेत स्थित थे। शत्रु के सैनिकों ने अपने को देवी द्वारा अत्यन्त मुग्ध जानकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुनः युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। उन दोनों सैनिकों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें बलखानि (मलखान) के साथ महानन्द, आह्लाद से नंद,

परानन्दस्तथा देवं तारकं चोपनन्दनः । सुनन्दो नेत्रसिंहं च सुरानन्दश्च तालनम् ॥१२०
प्रनन्दो वीरसेनं च ब्रह्मानन्दं स भूपतिः । गजस्थिताश्च ते सर्वे धनुर्युद्धपरायणाः ॥
अहोरात्रमभूद्युद्धं तेषां च तुमुलं क्रमात् ॥१२१
एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ चित्ररेखा समागता । स्वकीयान्व्याकुलीभूतांस्तादृशांश्च विलोक्य वै ॥१२२
चित्रगुप्तं तदा ध्यात्वा चित्रमायामचीकरत् । तदा तद्बान्धवाश्चासन्बहुधा चाभिनन्दनाः ॥१२३
तान् दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे भयभीताश्च दुद्रुवुः । त्यक्त्वा युद्धमयीं भूमिं शोकव्याकुलचेतनाः ॥१२४
पञ्चयोजनमागत्य ततो वासमकारयन् । सन्ध्याकाले तमोभूते निरुत्साहा महाबलाः ॥१२५
हा कृष्णांश महाबाहो शरणागतवत्सल । इन्दुलस्ते कुमारोऽयं संहृतश्चित्ररेखया ॥१२६
तया विमोहिता वीरा वयं ते शरणं गताः । इत्युक्त्वा रोदनं चक्रुः क्व गतोऽसि महामते ॥१२७
तदा कोलाहलश्चासीद्रुदतां बलशालिनाम् । आह्लादं गर्हयित्वा ते मूर्छिता भुवि विह्वलाः ॥१२८
आह्लादस्तु तथा श्रुत्वा वज्रपाताहतः स्वयम् । उन्मादिवत्तदा भूत्वा ताडयामास वक्षसि ॥१२९
एतस्मिन्नन्तरे योगी कृष्णांशो भगवत्कला । चन्द्रोदये स्वयं प्राप्तश्चाष्टम्यां भृगुवासरे ॥१३०
शूरश्च दशसाहस्रैर्मकरन्देन संयुतः । तत्सेनां बोधयामास पालितां बलखानिना ॥१३१
जित्वा तान्सर्वभूपालान्गृहीत्वा विपुलं धनम् । पञ्चशब्दस्थितं बन्धुं प्रत्यागत्य जगर्ज वै ॥१३२

देवसिंह से परानन्द, तारक से उपनंद, नेत्रसिंह से सुनन्द और तालन से सुरानन्द, वीरसेन से प्रनन्द, और ब्रह्मा से स्वयं राजा युद्ध कर रहे थे । राजकुमार गण गजराज पर स्थित होकर धनुर्युद्ध अविराम गति से कर रहे थे । वह युद्ध दिन-रात चलता रहा पश्चात् उसी बीच रात्रि में चित्ररेखा ने वहाँ रणस्थल में आकर अपने पक्ष के सैनिकों को व्याकुल देखकर चित्रगुप्त के ध्यान पूर्वक चित्रमाया का निर्माण किया । उसने उस माया में अनेक सहायक बन्धुगण का निर्माण किया था, जो अधिकांश अभिनंदन वंश के दिखाई दे रहे थे । उन्हें देखकर महावती के सैनिक अत्यन्त भयभीत एवं आश्चर्य चकित होकर पलायन करने लगे । शोकग्रस्त तथा व्याकुल होकर उन सैनिकों ने वहाँ से भागकर पाँच योजन (बीस कोश) की दूरी पर अपना निवास स्थान बनाया । संध्या समय अँधेरे में वे बलवान् सैनिकगण हतोत्साहित होकर रुदन करते हुए विलाप कर रहे थे—महा महाबाहो, उदयसिंह ! शरणागत को अपनाने वाले चित्ररेखा ने तुम्हारे इन्दुल कुमार का अपहरण कर लिया है । उसी द्वारा विमोहित होकर हमलोग तुम्हारी शरण में प्राप्त हैं । इस भाँति विलाप करके उच्चस्वर से रुदन किया । हा महामते ! तुम कहाँ हो । सैनिकों के रुदन करने पर महान् कोलाहल (शोर) हुआ । वे सब आह्लाद (आल्हा) की निन्दा करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये ।११७-१२८। इसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) भी वज्रपात हो जाने की भाँति स्वयं आहत होकर उन्मादी की भाँति अपने वक्षःस्थल को ताडित करने लगे । उसी बीच भगवान् की कला एवं कृष्ण के अंश से उत्पन्न उदयसिंह योगी के वेष में मकरन्द तथा दशसहस्र सैनिकों समेत अष्टमी शुक्रवार के दिन चन्द्रोदय होने पर वहाँ पहुँच गये। तदुपरान्त बलखानि (मलखान) की सेनाओं में लूट करना आरम्भ किया सभी राजाओं को जीतकर विपुल धन की प्राप्ति की। पुनः पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित अपने

तस्य शब्देन शेषांशो बोधितो बलशालिना । शकुनं शुभमालोक्य भुजावुत्थाप्य वीर्यवान् ।।
स्वांके निवेशयामास कृष्णांशं योगिरूपिणम् ।।१३३
स्नापयित्वाश्रुधाराभिः कृष्णांशं प्रेमविह्वलः । दत्त्वा द्विजातिमुख्येभ्यो वर्णयामास कारणम् ।।१३४
कृष्णांशोऽपि प्रसन्नात्मा स्वकीयां सकलां कथाम् । वर्णयित्वा यथाभूतां पुनर्बाह्लीकमाययौ ।।१३५
चित्राविद्यां स्वयं कृत्वा पाठितां चित्ररेखया । बद्ध्वाभिनन्दनं नृपं ससुतं च समन्त्रिणम् ।।
विवाहं कारयामास जयन्तस्य तया सह ।।१३६
बाह्लीकस्तु प्रसन्नात्मा दत्त्वा च विपुलं धनम् । स्वसुतां चित्ररेखां च जयन्ताय मुदा ददौ ।।१३७
शतं गजान्हयांस्तत्र सहस्राणि धनैर्युतान् । शतं दासांस्तथा दासीर्जयन्ताय स्वयं ददौ ।।१३८
प्रस्थानं कारयामास बलखानेर्महात्मनः । श्रावणे मासि सम्प्राप्तास्ते सर्वे च महावतीम् ।।१३९
स्वं स्वं गेहं ययुस्सर्वे भूपाश्चाह्लादमानिताः । इति ते कथितं विप्र चरित्रं कलिनाशनम् ।।
शृण्वतां सर्वपापघ्नं कथयिष्यामि वै पुनः ।।१४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

भाई के सामने आकर सिंहनाद किया । उनके शब्द को सुनकर बलशाली (मलखान) ने उन्हें पहचान लिया । उस समय उस पराक्रमी को शुभ शकुन भी हो रहा था, अतः उसने अटल भाव से अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर योगी वेषधारी उदयसिंह को अपने अंक (गोद) में बैठा लिया, पश्चात् उनके प्रेम में अधीर होकर आँसुओं की धारा से उन्हें स्नान कराया, और ब्राह्मणों को दान द्वारा तृप्त करते हुए सभी कारणों का आद्योपान्त वर्णन किया । प्रसन्न होकर उदयसिंह ने भी अपनी सकल कथा सुनाई । अनन्तर पुनः सैन्यों का संचालन करते हुए बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने चित्ररेखा द्वारा अधीत उस विद्या का प्रबल प्रयोग करके चित्ररेखा की माया का ध्वंस-कर दिया । राजा अभिनन्दन को उनके पुत्रों एवं मंत्रियों समेत बाँधकर इन्दुल द्वारा उनकी पुत्री चित्ररेखा का पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराया । उस समय राजा अभिनन्दन ने भी अत्यन्त हर्षमग्न होकर अत्यन्त धन समेत अपनी पुत्री इन्दुल को समर्पित की जिसमें सौ हाथी, सौ, घोड़े, सहस्र गायें, सौ दास और उतनी ही दासियाँ थीं । इन्हें सादर ग्रहण करते हुए बलखानि (मलखान) ने महावती (महोबा) को प्रस्थान किया । और श्रावणमास में सभी दल-बल समेत महावती (महोबा) पहुँचने पर आह्लाद (आल्हा) ने सभी सैनिकों एवं राजाओं का यथोचित्त पुरस्कार पुरस्सर सम्मान किया, पश्चात् वे सब आतिथ्य ग्रहण करते हुए अपने-अपने घर चले गये । विप्र ! इस प्रकार कलिनाशक चरित्र तुम्हें मैंने सुना दिया । समस्त पापों के नाशक इस चरित्र को मैं पुनः कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! ।१२९-१४०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

कलियुगेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृष्णांशे च गृहं प्राप्ते चेन्दुले च विवाहिते । महीपतिस्सदा दुःखी देहलीं प्रति चागमत् ॥१
वृत्तान्तं च नृपस्याग्रे कथयित्वा स तारकः । परं विस्मयमापन्नः कृष्णांशचरितं प्रति ॥२
एतस्मिन्नन्तरे मन्त्री चन्द्रभट्ट उदारधीः । भूमिराजं वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ॥३
मया चाराधिता देवी वैष्णवी विश्वकारिणी । त्रिवर्षान्ते च तुष्टाभूद्वरदा भयहारिणी ॥४
तया दत्तं शुभं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम् । ततोऽहं ज्ञानवान्भूत्वा कृष्णांशं प्रति भूपते ॥
चरित्रं वर्णयामास तस्य कल्मषनाशनम् ॥५
इत्युक्त्वा स च शुद्धात्मा ग्रन्थं भाषामयं शुभम् । माहात्म्यं देविभक्तानां श्रावयामास वै सभाम् ॥६
तच्छ्रुत्वा भूमिराजस्तु विस्मितश्चाभवत्क्षणात् । महीपतिस्तदा प्राह दिव्याश्वबलदर्पितः ॥
उदयो नाम बलवान्यस्यैवं वर्णिता कथा ॥७
चत्वारो वाजिनो दिव्या जलस्थलखगाश्च ते । शीघ्रं तांश्च समाहृत्य स्वयं भूप बली भव ॥८
इति श्रुत्वा स नृपतिः श्रुतवाक्यविशारदम् । आहूय कुन्दनमलं प्रेषयामास सत्वरम् ॥९

अध्याय २४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इन्दुल के विवाह संस्कार को सुसम्पन्न कराकर उदयसिंह के घर पहुँचने पर महीपति (माहिल) सदा दुःखी रहने लगे। पश्चात् तारक (ताहर) समेत दिल्ली जाकर उन्होंने राजा के समक्ष सभी वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर उदयसिंह के चरित्र में राजा को महान् आश्चर्य हुआ। उसी बीच उदार एवं बुद्धिमान मंत्री चन्द्रभट्ट ने राजा से कहा—राजन्! मैंने जगज्जननी वैष्णवी देवी की आराधना की है। उस वरदहस्ता एवं अभयदान देने वाली देवी ने, जो मेरी आराधना द्वारा तीसरे वर्ष की समाप्ति में प्रसन्न हुई थी, कुमति का नाशक शुभज्ञान मुझे प्रदान किया है। नृप! पश्चात् उसी ज्ञान द्वारा मुझे उदयसिंह चरित्र विषयक जानकारी हुई है। इसीलिए मैंने उनके पापापहारी चरित्र का वर्णन करते हुए एक ग्रन्थ का निर्माण किया है। इतना कहकर उन्होंने उस भाषा ग्रन्थ को जिसमें शुद्ध भाषा द्वारा देवी के भक्तों का माहात्म्य वर्णन किया गया था, सभा में स्थित लोगों को सुनाया। उसे सुनकर पृथ्वीराज उसी समय अत्यन्त आश्चर्य चकित होने लगे। उस समय महीपति (माहिल) ने कहा—जिस बलवान् उदयसिंह का यह चरित्र कथारूप में वर्णित है उन्हें दिव्य घोड़ों का अभिमान अधिक है, क्योंकि उसके दिव्य शरीरधारी चार घोड़े हैं, जो जल, स्थल एवं आकाश में समान रूप से चलते हैं उनका शीघ्र अपहरण करके आप स्वयं सबसे बली हो सकते हैं।१-८। इसे सुनकर राजा ने कुन्दनमल नामक एक सेवक को बुलाया जो व्यावहारिक वार्तालाप में अत्यन्त निपुण था

महावतीं समागत्य स दूतो भूपतिं प्रति । उवाच वचनं प्रेम्णा महीराजस्य भूपतेः ।।१०
वाजिनस्ते हि चत्वारो दिव्यरूपाः शुभप्रभाः । दर्शनार्थे तत्र वधूर्वेला नाम ममात्मजा ।।११
तयाहूतान्हयान्भूप देहि मे विस्मयं त्यज । नो चेद्वेलाग्निना सर्वे क्षयं यास्यन्ति सैन्यपाः ।।१२
इति श्रुत्वा वचो घोरं स भूपो भयकातरः । आह्लादादीन्समाहूय वचनं प्राह नम्रधीः ।।
हयान्स्वान्स्वान्मुदा देहि मदीयं वचनं कुरु ।।१३
इति श्रुत्वा स आह्लादो ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । उवाच मधुरं वाक्यं शृणु भूप शिवप्रिय ।।१४
यत्र नः संस्थिताः प्राणास्तत्र ते वाजिनः स्थिताः । न दास्यामो वयं राजन्सत्यं सत्यं न चान्यथा ।।१५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजा परिमलो बली ।।१६
शपथं कृतवान्घोरं शृण्वतां बलशालिनाम् । भोजनं ब्रह्ममांसस्य पानीयं गोऽसृजोपमम् ।।१७
शय्या स्वमातृसदृशी ब्रह्महत्योपमा सभा । मम राष्ट्रे च युष्माभिर्वासः पापमयो महान् ।।१८
इति श्रुत्वा तु शपथं देवकी शोकतत्परा । चकार रोदनं गाढं सगेहजनविग्रहा ।।१९
पञ्चविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे योगतत्परे । भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां तद्गेहाद्धर्मतत्पराः ।।२०
निर्ययुः कान्यकुब्जं ते जयचन्द्रेण पालितम् । स्वर्णवत्या पुष्पवत्या सहिताश्चित्ररेखया ।।२१
इन्दुलः प्रययौ शीघ्रमयुताश्वबलैस्सह । करालं हयमारुह्य पञ्चशब्दं च तत्पिता ।।

और उसे सभी बातें बताकर शीघ्र भेज दिया। वह दूत महावती (महोबा) राजधानी में पहुँचकर नम्रता पूर्वक पृथ्वीराज के सन्देश को कहने लगा—राजन् ! दिव्य एवं शुभ शरीरधारी चार घोड़े आप के हैं, उन्हें देखने के लिए मेरी पुत्री वेला, जो आप की पुत्रवधू है, अपनी इच्छा प्रकट कर रही है। अतः भूप ! उसकी इच्छा के अनुसार आप आश्चर्य का परित्याग करते हुए घोड़ों को शीघ्र भेजने की व्यवस्था करें, अन्यथा (नहीं तो) इस भीषण सन्देश को सुनकर अत्यन्त भयभीत होते हुए राजा परिमल ने आह्लाद (आल्हा) आदि को बुलाकर उनसे नम्रतापूर्वक कहा—मेरी बात स्वीकार करो—अपने-अपने घोड़े प्रसन्नता पूर्वक उन्हें समर्पित कर दो। उसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) ने उन जगन्मयी कल्याणी पार्वती देवी का ध्यान करके मधुर वाणी द्वारा राजा से कहा—शिवप्रिय राजन् ! शरीर स्थित प्राण के समान ये घोड़े मुझे प्रिय हैं, और उन्हीं के स्थान में वे स्थित भी हैं, अतः राजन् ! घोड़े देने में हम लोग विवश हैं, यह मैं सत्य एवं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ, यह बात अन्यथा नहीं हो सकती है, इसे सुनकर बलशाली राजा परिमल ने उन बलवीरों के समक्ष घोर शपथ किया— । ब्राह्मण मांस के समान यहाँ का भोजन, गौ के रक्त के समान जल, माता के समान शय्या, ब्रह्महत्या के समान यहाँ की सभा और मेरे राज्य में निवास करना तुम्हारे लिए महान् पाप है ।९-१८। इस भीषण शपथ को सुनकर देवी देवकी अत्यन्त चिंतित होकर गाढ़ रुदन करने लगी, उन्हें देखकर उनके जन परिजन सभी रुदन करने लगे। उस समय उदयसिंह की पच्चीस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। भाद्रपद शुक्ल की चतुर्दशी के दिन उन धार्मिक वीरों ने उनके घर से निकल कर राजा जयचन्द्र की कान्यकुब्ज (कन्नौज) नामक राजधानी को प्रस्थान किया। उस यात्रा से स्वर्णवती (सोना) पुण्यवती एवं चित्ररेखा समेत इन्दुल दश सहस्र अश्वारोहियों के साथ चल रहे थे। वे स्वयं कराल नामक घोड़े पर बैठे थे और उनके पिता पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित थे। उसी प्रकार

कृष्णांशो बिन्दुलारूढो देवकीमनुसंययौ ।।२२
त्यक्त्वा ते भूपतेर्ग्रामं सर्वसम्पत्समन्वितम् । पथि त्र्यहमुषित्वा ते जयचन्द्रमुपाययुः ।।२३
नत्वा तं भूपतिं प्रेम्णा गदित्वा सर्वकारणम् । उषित्वा शीतलास्थाने पूजयामासुरम्बिकाम् ।।२४
जयचन्द्रस्तु भूपालो देवसिंहेन वर्णितः । तेभ्यश्च न ददौ वृत्तिं भूमा परिमलाज्ञया ।।२५
कुण्ठितो देवसिंहस्तु गत्वा कृष्णांशमुत्तमम् । उदित्वा कारणं सर्वं स श्रुत्वा रोषमादधौ ।।२६
त्वरितं बिन्दुलारूढो हयपञ्चशतावृतः । लुण्ठयामास नगरं पालितं लक्ष्णेन तत् ।।२७
दृष्ट्वा तं लक्षणो वीरो हस्तिनः पृष्ठमास्थितः । शरेण ताडयामास कृष्णांशं हृदयं दृढम् ।।२८
निष्फलत्वं गतो बाणो विष्णुमन्त्रेण प्रेरितः । विस्मितः स तु भूपालो वाहनाद्भूमिमागतः ।।२९
नत्वा तच्चरणौ दिव्यौ कुलिशादिभिरन्वितौ । तुष्टाव दण्डवद्भूत्वा लक्षणो गद्गदं[1] गिरा ।।३०

लक्षण उवाच

वैष्णवं विद्धि मां स्वामिन्विष्णुपूजनतत्परम् । जानेऽहं त्वां महाबाहो कृष्णशक्त्यवतारकम् ।।३१
त्वदृते को हि मे बाणं निष्फलं कुरुते भुवि । क्षमस्व मम दौरात्म्यं नाथ ते मायया कृतम् ।।३२
इत्युक्त्वा तेन सहितो जयचन्द्रं महीपतिम् । गत्वा तं कथयामास यथा प्राप्तः पराजयम् ।।३३

विन्दुल (वेंदल) पर बैठकर उदयसिंह देवकी देवी के अनुगामी होकर चल रहे थे ।१९-२२। उन वीरों ने राजा के उस सुसम्पन्न गाँव के परित्याग पूर्वक तीन दिन की यात्रा करके जयचन्द्र की राजधानी को देखा । वहाँ पहुँचकर नमस्कार पूर्वक राजा से समस्त वृत्तान्त बताकर शीतला स्थान में रहकर चण्डिका देवी की पूजा की । अपने निष्कासन के सभी कारणों का देवसिंह द्वारा वर्णन करने पर राजा जयचन्द्र ने उन्हें कोई वृत्ति देने से इसलिए अस्वीकार किया कि परिमल की सम्मति नहीं थी पश्चात् देवसिंह ने निराश होकर उदयसिंह के पास जाकर उनसे उस वृत्तान्त का वर्णन किया जिसे सुनकर उदयसिंह ने अत्यन्त उत्तेजित होकर शीघ्र बिन्दुल पर बैठकर पाँच सौ सैनिकों समेत लक्षण (लाखन) द्वारा सुरक्षित नगर का लूट करना आरम्भ कर दिया । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) ने अपने हाथी पर बैठकर उनके सामने पहुँचकर उदयसिंह के हृदय में बाण प्रहार किया । किन्तु, विष्णु मंत्र द्वारा प्रेरित होने पर भी वह बाण निष्फल हो गया । आश्चर्य चकित होकर राजा लक्षण (लाखन) हाथी से उतरकर पृथिवी में खड़े होकर उनके चरण की, जो वज्र आदि सेवकों से विभूषित थे, नमस्कार पूर्वक अपनी गद्गद् वाणी द्वारा उनकी स्तुति की ।२३-३०

लक्षण (लाखन) ने कहा—स्वामिन् विष्णु का पूजन करने वाला मैं वैष्णव (विष्णु का भक्त) हूँ। महाबाहो ! मैं आपको भली भाँति जानता हूँ, आप कृष्ण भगवान् की शक्ति द्वारा अवतरित हुए हैं। क्योंकि आप के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष मेरे बाण को असफल करने वाला इस भूतल में नहीं है। अतः नाथ ! मेरी इस धृष्टता को आप क्षमा करें, क्योंकि आप की माया से प्रेरित होकर मैंने ऐसा किया है।३१-३२। इतना कहकर उनको साथ लेकर लक्षण (लाखन) जयचन्द्र के पास पहुँचकर उनसे अपने पराजय का क्रमशः

---

१. गद्गदं यथा स्यात्तथा गिरा तुष्टावेत्यन्वयः ।

नृपस्तयोः परीक्षार्थं यौ तु छायाविमोहितौ । गजौ कुवलयापीडौ त्यक्तवाञ्छीतलास्थले ।।३४
तदाह्लादोदयौ वीरौ गृहीत्वा तौ स्वलीलया । चकृषतुर्बलात्पुच्छे क्रोशमात्रं पुनः पुनः ।।३५
मृतौ कुवलयापीडौ दृष्ट्वा राजा भयातुरः । ददौ राजगृहं ग्रामं तयोरर्थे प्रसन्नधीः ।।३६
इषशुक्ले तु सम्प्राप्ते लक्षणो नाम वै बली । नृपाज्ञया ययौ शीघ्रं तैश्च[1] दिग्विजयं प्रति ।।३७
सप्तलक्षबलैस्सार्द्धं तालनाद्यैश्च संयुतः । वाराणसीं पुरीं प्राप्य रुरोध नगरीं तदा ।।३८
रुद्रवर्मा च भूपालो गौडवंशयशस्करः । पञ्चायुतैः स्वसैन्यैश्च सार्द्धं युद्धार्थमाप्तवान् ।।३९
यामभात्रेण तं जित्वा षोडशाब्दस्य वै करम् । कोटिमुद्रामयं प्राप्य जयचन्द्राय चार्पयत् ।।४०
मागधेशं पुनर्जित्वा नाम्ना विजयकारिणम् । विंशत्यब्दकरं प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ।।४१
पञ्चकोटीश्च वै मुद्रा राजतस्य पुनर्ययौ । अङ्गदेशपतिं भूपं मायावर्माणमुत्तमम् ।।४२
सैन्यायुतयुतं जित्वा विंशत्यब्दस्य वै करम् । कोटिमुद्राश्च सम्प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ।।४३
वङ्गदेशपतिं वीरो लक्षणो वै युतश्च तैः । लक्षसैन्ययुतं भूपं कालीवर्माणमुत्तमम् ।।
अहोरात्रेण तं जित्वा महायुद्धेन लक्षणः , ।।४४
विंशत्यब्दकरं प्राप्य कोटिं स्वर्णमयं तदा । प्रेषयामास भूपाय जयचन्द्राय वै मुदा ।।४५

यथोचित वर्णन किये । तदुपरान्त राजा ने उनके परीक्षार्थ कुबलयापीड नामक हाथियों को जो छाया से मोहित किये थे, शीतला-स्थान के विशाल प्राङ्गण में भेजा । उस समय आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह ने लीलापूर्वक उसे पूँछ की ओर पकड़कर एक कोश तक खींचा-खींची की, जिससे उस कुवलयापीड़ नामक गजराज की मृत्यु हो गई । उसका निधन देखकर भयभीत होते हुए राजा ने उन्हें राजग्रह नामक गाँव सौंप दिया । पश्चात् आश्विन शुक्ल के आरम्भ होने पर बलवान् लक्षण (लाखन) ने राजा की आज्ञा प्राप्तकर उन वीरों के साथ दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया । उस यात्रा में अपने सात लाख सैनिकों समेत तालन आदि भी चल रहे थे । वाराणसी (बनारस) पहुँचकर उसे जो गौड वंश में उत्पन्न एवं यशस्वी राजा रुद्रवर्मा की राजधानी थी, उन लोगों ने चारों ओर से घेर लिया । राजा रुद्रवर्मा ने अपने पचास सहस्र सैनिकों समेत रणस्थल में आकर युद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु, एक प्रहर के भीतर ही उनपर विजय प्राप्तकर सोलह वर्ष का कर उनसे प्राप्त किया, जो एक कोटि (करोड़) की संख्या में था । उसे जयचन्द्र के पास प्रेषितकर उन लोगों ने मगधाधिप विजय के राजा पर आक्रमण किया । विजय प्राप्ति पूर्वक बीस वर्ष का कर उनसे प्राप्तकर जो एक कोटि की संख्या में था, अपने राजा के पास पहुँचा दिया । पुनः वहाँ से वंग (बंगाल) देश के अधिनायक राजा कलिवर्मा के यहाँ पहुँचकर उनके एक लाख सैनिकों के साथ लक्षण (लाखन) ने घोर युद्ध आरम्भ किया । दिन-रात (चौबीस घंटा) अनवरत युद्ध करके विजय समेत उनसे बीस वर्ष का कर प्राप्तकर जो एक कोटि (करोड़) सुवर्ण मुद्राके रूप में था, प्रसन्नतापूर्वक राजा जयचन्द्र को अर्पित कर दिया ।३३-४५

---

१. विनापि सहशब्दयोगयं सहार्थे गम्यमाने तृतीया, 'वृद्धो यूना' इत्यादिनिर्देशात् ।

उष्ट्रदेशं[1] ययौ वीरः पालितं तैर्महाबलैः । धोयीकविस्तत्रनृगो लक्षसैन्यसमन्वितः ।।४६
जगन्नाथाज्ञया प्राप्तस्तैश्च सार्द्धं रणोन्मुखे । तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।।
अहोरात्रप्रमाणेन कृष्णांशेन जितो नृपः ।।४७
विंशत्यब्दकरं सर्वं कोटिस्वर्गसमन्वितम् । सम्प्राप्य प्रेषयामास कान्यकुब्जाधिपाय वै ।।४८
पुण्ड्रदेशं ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः । नृपं नागपतिं नाम पञ्चायुतबलैर्युतम् ।।
दिनमात्रेण तं जित्वा कोटिमुद्रां गृहीतवान् ।।४९
महेन्द्रगिरिमागत्य नत्वा तं भार्गवं मुनिम् । ततो निवृत्य ते सर्वे नेत्रपालपुरं ययुः ।।५०
योगसिंहस्तदागत्य कृष्णांशं प्रति भार्गव[2] । कोटिमुद्रां ददौ तस्मै सप्तरात्रमवासयत् ।।५१
वीरसिंहपुरं जग्मुस्ते वीरा मदवत्तराः । रुरुधुर्नगरीं सर्वां हिमतुङ्गोपरिस्थिताम् ।।
पालितं गोरखाख्येन योगिना भक्तकारणात् ।।५२
भूपानुजः प्रवीरश्च सैन्यायुतसमन्वितः । कृतवान्दारुणं युद्धं लक्षणस्यैव सेनया ।।५३
प्रत्यहं बलवाञ्छूरो हत्वा शूरसहस्रकम् । सायंकाले गृहं प्राप्य योगिनं तमपूजयत् ।।५४
पूजनात्स प्रसन्नात्मा सैन्यमुज्जीव्य भूपतेः । दत्त्वा गजबलं तेभ्यः पुनर्योगं करोति वै ।।५५
सार्द्धमासो गतस्तत्र युद्धचतां बलशालिनाम् । तदा ते तु निरुत्साहं देवसिंहं तमब्रुवन् ।।५६

वहाँ से आगे बढ़कर उष्ट्रदेशाधिपति राजा धोयी कवि की एक लाख सेना से मुठभेड़ किया । उनके भी एक लाख सैनिक थे जो जगन्नाथ की आज्ञा प्राप्तकर रणभेरी बजाते हुए युद्ध के लिए सन्नद्ध थे । दोनों सेनाओं का रोमाञ्चकारी एवं भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । उदयसिंह ने दिन-रात के भीतर ही उस राजा को भी जीत लिया । एक करोड़ की संख्या में उन सुवर्ण मुद्राओं को, जो बीस वर्ष के कर के रूप में था उस राजा से प्राप्तकर कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्र के पास भेज दिया । पुनः लक्षण (लाखन) वीर ने पुण्ड्र देश की यात्रा की । वहाँ नागपति नामक राजा के साथ जिनके यहाँ पचास सहस्र सैनिक सदैव सुसज्जित रहा करते थे, युद्ध कर सूर्यास्त के पहले उनसे विजय प्राप्ति पूर्वक एक कोटि मुद्रा ग्रहण किया । पश्चात् महेन्द्र पर्वत पर जाकर भार्गव मुनि के नमस्कार पूर्वक राजा योगसिंह नेत्रपाल के पुर में पहुँचे । उन्होंने उदयसिंह को एक कोटि मुद्रा प्रदान पूर्वक सात दिन तक अपने यहाँ निवास कराया । पुनः उन मदोन्मत्त वीरों ने वीरसिंह की नगरी में पहुँचकर उसे जो हिमालय की चोटी पर स्थित थी, चारों ओर से घेर लिया, जिसे योगी गोरखनाथ ने राजा के भक्त होने के नाते अत्यन्त सुरक्षित रखा था । राजा के छोटे भाई प्रवीर ने अपने दश सहस्र सैनिकों समेत लक्षण (लाखन) की सेना से घोर युद्ध आरम्भ किया । वह बलवान् वीर प्रतिदिन एक सहस्र सैनिकों को धराशायी कर सायंकाल में घर पहुँचने पर उस योगी की पूजा करता था । उसके पूजन से प्रसन्न होकर वह योगी राजा के सैनिकों को जीवित कर दिया करता था । और उन्हें हाथी के समान बल प्रदानकर वे पुनः योगनिष्ठ हो जाते । इस प्रकार उन बलशालियों का डेढ़ मास तक युद्ध होता रहा । उस समय हताश होकर सैनिकों समेत उदयसिंह ने देवसिंह से कहा—

---

१. आन्ध्रामिति केचिद्वदंति, औण्द्रमित्यन्ये, उत्कलमित्यपरे । २. शौनकसंबोधनम् ।

विजयो नः कथं भूप ब्रूहि नस्तत्त्वमग्रतः । इति श्रुत्वा स होवाच शृणु कृष्णांश मे वचः ॥५७
योगिनं गोरखं नाम पराजित्य स्वनृत्यतः । पुनर्युद्धं कुरु त्वं वै ततो जयमवाप्स्यसि ॥५८
इत्युक्तास्ते हि कृष्णाद्याः कृत्वा योगमयं वपुः । स्थापयित्वा रणे सेनां पालितां लक्षणेन वै ॥५९
प्रातःकाले ययुस्ते वै मन्दिरं तस्य योगिनः । कृष्णांशो नर्तकश्चासीद्वेणुवाद्यविशारदः ॥६०
देवसिंहो मृदङ्गाढ्यो वीणाधारी च तालनः । कांस्यधारी तदाह्लादो जगौ गीतां सनातनीम् ॥६१
तदर्थं हृदये कृत्वा गोरखस्सर्वयोगवान् । वरं वृणुत तानाह ते तच्छ्रुत्वाऽब्रुवन्वचः ॥६२
नमस्यामो वयं तुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया । देहि संजीविनीं विद्यामाह्लादाय महात्मने ॥६३
इति श्रुत्वा हृदि ध्यात्वा तानुवाच प्रसन्नधीः । विद्या सञ्जीविनी तुभ्यं वर्षमात्रं भविष्यति ॥
तत्पश्चान्निष्फलीभूयागमिष्यति मदन्तिकम् ॥६४
अद्य प्रभृति भो वीर मया त्यक्तमिदं जगत् । यत्र भर्तृहरिः शिष्यस्तत्र गत्वा शये ह्यहम् ॥६५
इत्युक्त्वान्तर्हितो योगी जग्मुस्ते रणमूर्द्धनि । जित्वा प्रवीरसिंहं च वीरसिंहं तथैव च ॥६६
हत्वा तस्यायुतं सैन्यं लुण्ठयित्वा च तद्गृहम् । कृत्वा दासमयं भूपं लक्षणः प्रययौ मुदा ॥६७
कोशलं देशमागत्य जित्वा तस्य महीपतिम् । सैन्यायुतं सूर्यधरं करयोग्यमचीकरत् ॥६८
षोडशाब्दकरं प्राप्य मुद्राकोट्ययुतं मुदा । नैमिषारण्यमागम्य तत्रोषुः स्नानतत्पराः ॥६९
होलिकाया दिने रम्ये लक्षणो बलवत्तरः । दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥७०

राजन् ! हम लोगों की विजय क्यों नहीं हो रही है, इसका कारण हमें बताने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर उन्होंने कहा उदयसिंह ! मेरी बातें सुनो ! योगी गोरखनाथ को अपने नृत्य द्वारा पराजित करके पुनः युद्ध करने से तुम्हें निश्चय विजय प्राप्ति होगी । इतना कहने पर उदयसिंह आदि वीरों ने योगी के वेष धारणकर प्रातः काल उस योगी के मन्दिर के लिए प्रस्थान किया ।४६-६०। इधर रणस्थल में सेना की रक्षा लक्षण (लाखन) कर रहे थे । वहाँ मन्दिर में पहुँचकर वंशी वाद्य में निपुण उदयसिंह नृत्य कर रहे थे, जिसमें देवसिंह मृदङ्ग, तालन वीणा और मजीरा आह्लाद (आल्हा) बजा रहे थे । तथा सनातनी गीता का गान आरम्भ था । योगनिपुण गोरखनाथ ने उसके अर्थ को हृदयङ्गम करके उन लोगों से कहा—वर की याचना करो ! इसे सुनकर उन लोगों ने कहा—हम लोग आपको नमस्कार कर रहे हैं, यदि आप प्रसन्नता पूर्ण होकर वरप्रदान करना चाहते हैं, तो श्रेष्ठ आह्लाद (आल्हा) को संजीवनी विद्या प्रदान करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर कुछ समय तक ध्यान करने के उपरांत प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—यह संजीवनी विद्या एक वर्ष तक तुम्हें फल प्रदानकर सकेगी, पश्चात् निष्फल होने पर मेरे पास लौट आयेगी । अतः वीर ! आज से मैं इस जगत का परित्याग करके शिष्य भर्तृहरि के यहाँ जाकर शयन करूँगा । इतना कहकर योगी गोरखनाथ अन्तर्हित हो गये उन वीरों ने रणस्थल में पहुँचकर प्रवीर समेत वीरसिंह पर विजय प्राप्ति पूर्वक उनकी दश सहस्र सेना और गृह में लूट कराकर राजा को अपना सेवक बनाया । तदनन्तर प्रसन्न होकर लक्षण (लाखन) ने कौशल प्रदेश में पहुँचकर वहाँ के राजा सूर्यधर को जो अपनी दश सहस्र की सेना के साथ युद्ध कर रहे थे, पराजित कर उनसे सोलह वर्ष का कर, जो एक कोटि की संख्या में था, प्राप्त करके नैमिषारण्य में स्नानार्थ प्रस्थान किया । उस समय वहाँ होली के अवसर पर बली लक्षण (लाखन) ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान-प्रदान पूर्वक महोत्सव

तदा वयं च मुनयः समाधिस्थाश्च भूपतिः । यदा स लक्षणः प्राप्तो नैमिषारण्यमुत्तमम् ।।७१
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि सन्तर्प्य द्विजदेवताः । कान्यकुब्जपुरं जग्मुश्चैत्रकृष्णाष्टमीदिने ।।७२
इति ते कथितं विप्र यथा दिग्विजयोऽभवत् । शृणु विप्र कथां रम्यां बलखानिर्यथा मृतः ।।७३
मार्गकृष्णस्य सप्तम्यां भूमिराजो महाबलः । महीपतेश्च वाक्येन सामन्तं प्राह निर्भयः ।।७४
मया श्रुतस्ते तनयः शारदावरदर्पितः । रक्तबीजत्वमापन्नस्ते मे देहि कृपां कुरु ।।७५
इत्युक्तस्स तु सामन्तस्तेन राज्ञेद सत्कृतः । चामुण्डं नाम तनयं समाहूयाब्रवीदिदम् ।।७६
पुत्र त्वं नृपतेः कार्यं सदा कुरु रणप्रिय । इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं स वै राजानमब्रवीत् ।।७७
देह्याज्ञां भूपते मह्यं शीघ्रं जयमवाप्स्यसि । इति श्रुत्वा स होवाच बलखानिर्महाबलः ।।७८
मच्छिरीषवनं छित्वा गृहीत्वा राष्ट्रमुत्तमम् । सुस्थितो निर्भयो गेहे बाहुशाली यतेन्द्रियः ।।७९
यदि त्वं बलखानिं च जित्वा मे ह्यर्पयिष्यसि । हत्वा वा तस्य सकलं राष्ट्रं त्वयि भविष्यति ।।८०
इत्युक्त्वा रक्तबीजं तं समाहूय स्वकं बलम् । सप्तलक्षं ददौ तस्मै स तत्प्राप्य मुदा ययौ ।।८१
उषित्वा त्रिदिनं मार्गे शिरीषाख्यमुपागतः । रुरोध नगरीं सर्वां बलखानेर्महात्मनः ।।८२
चामुण्डागमनं श्रुत्वा बलखानिर्महाबलः । पूजयित्वा महामायां दत्त्वा दानान्यनेकशः ।।
लक्षसैन्येन सहितः प्रययौ नगराद्बहिः ।।८३

कराया । उस समय हमलोग तथा मुनिगण समाधिस्थ थे । राजा लक्षण (लाखन) नैमिषारण्य में पहुँचकर समस्त तीर्थों के स्नान पूर्वक ब्राह्मणों एवं देवताओं को प्रसन्न किये । उपरांत चैत्र कृष्ण की अष्टमी के दिन कान्यकुब्ज (कन्नौज) के लिए प्रस्थान किया । विप्र ! इस प्रकार मैंने तुम्हें उनके दिग्विजय का वर्णन सुना दिया । विप्र ! अब उस कथा को सुना रहा हूँ, जिसमें बलखानि (मलखान) के स्वर्गवासी होने का वर्णन किया गया है, सुनो ! ६१-७३ ।।बलवान् निर्भीक पृथ्वीराज ने मार्गशीर्ष (अगहन) मास के कृष्ण सप्तमी के दिन महीपति (माहिल) द्वारा भेजे सामन्त से कहा—मैंने सुना है कि आपका पुत्र शारदा के वरदान से अत्यन्त मदोन्मत होकर रक्तबीज हो गया है । अतः उसे मुझे सौंप देने की कृपा करें । इस प्रकार कहने एवं राजा द्वारा सत्कृत होने पर उस सामन्त ने चामुण्ड नामक अपने पुत्र को बुलाकर यह कहा—'रणप्रिय ! पुत्र राजा का कार्य करने के लिए तुम सदैव तैयार रहो' पिता की ऐसी बातें सुनकर उसने राजा से कहा—'राजन् ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, आपकी शीघ्र विजय होगी । इसे सुनकर राजा ने कहा—महाबली बलखानि (मलखान) ने शिरीष नामक बन को काटकर उस मेरे उत्तम राष्ट्र को अपना लिया है । उस गृह में वह बाहुशाली एवं संयमी वीर निर्भय होकर रह रहा है । यदि तुम बलखानि (मलखान) पर विजय प्राप्तकर उसे मुझे समर्पित कर दो, अथवा उसकी हत्या कर दो, तो वह सम्पूर्ण राष्ट्र तुम्हारा हो जायेगा । इतना कहकर उन्होंने अपनी सात लाख सेना उसे प्रदान किया और उसने भी प्रसन्नता पूर्वक सैन्य समेत प्रस्थान किया । मार्ग में तीन दिन व्यतीत कर शिरीष बन में पहुँचकर उस यशस्वी बलखानि (मलखान) की नगरी को चारों ओर से घेर लिया । बलशाली बलखानि (मलखान) ने चामुण्ड का आगमन सुनकर महामाया की पूजा समेत अनेक प्रकार के दान करके अपने एक लाख सैनिकों को लेकर नगर से

तस्यानुजो महावीरस्सुखखानिर्बलैः सह । हरिणीं तां समारुह्य शत्रुसैन्यमचिक्षपत् ।।८४
बलखानिः कपोतस्थो नाशयित्वा रिपोर्बलम् । लक्षसैन्यं मुदा युक्तश्चामुण्डं प्रति चागमत् ।।८५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं रच स्वसैन्यक्षयङ्करम् । अहोरात्रप्रमाणेन निहताः क्षत्रिया रणे ।।८६
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते कृत्वा स्नानादिकाःक्रियाः । जग्मतुस्तौ रणे वीरौ धनुर्बाणविशारदौ ।।८७
रथस्थो बलखानिश्च चामुण्डो गजपृष्ठगः । चक्रतुस्तुमुलं घोरं नरविस्मयकारकम् ।।८८
बाणैर्बाणांश्च सञ्छिद्य देवीभक्तौ च तौ मुदा । अन्योऽन्यं वाहने हत्वा भूतलत्वमुपागतौ ।।
खड्गचर्मधरौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ।।८९
यावन्तो रक्तबीजाङ्गात्सञ्जाता रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषा जाता रक्तबीजपराक्रमाः ।।९०
तैश्च वीरैर्मदोन्मत्तैर्बलखानिस्समन्ततः । संरुद्धोऽभूद् भृगुश्रेष्ठ शारदां शरणं ययौ ।।९१
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखखानिस्ततोऽनुजः । आग्नेयं शरमादाय रक्तबीजानदाहयत् ।।९२
पुरा तु सुखखानिश्च हव्यैर्देवं च पावकम् । पञ्चाब्दान्पूजयामास तदा तुष्टस्स्वयं प्रभुः ।।९३
पावकीयं शरं रम्यं शत्रुसंहारकारकम् । ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा तेनासावभवज्जयी ।।९४
बलखानिस्तु बलवान्दृष्ट्वा शत्रुविनाशनम् । पराजितं च चामुण्डं बद्ध्वा गेहमुपागतम् ।।९५
कृत्वा नारीमयं वेषं स भीतो ब्रह्महत्यया । दोलामारोप्य बलवान्प्रेषयामास शत्रवे ।।९६
हतशेषं पञ्चलक्षं सैन्यं गत्वा च देहलीम् । वृत्तान्तं कथयामास यथा जातो महारणः ।।९७

बाहर रणस्थल की ओर यात्रा की। उसके छोटे भाई महाबली सुखखानि भी साथ में चल रहे थे। हरिणी नामक अश्व पर बैठकर उसने शत्रु-सैनिकों को धराशायी करना आरम्भ किया और कपोत (कबूतर) नामक अश्व पर बैठे बलखानि (मलखान) भी शत्रु की सेना का संहार कर रहे थे। पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक वे चामुण्ड (चौंढ़ा) के पास पहुँचे। उन दोनों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें दोनों दल के सैनिक शीघ्रता से नष्ट हो रहे थे। अविराम गति से दिन-रात होने वाले उस युद्ध में अनेक शूरवीर क्षत्रिय काम आये। प्रातः काल स्नान आदि क्रिया सुसम्पन्न करने के उपरांत वे दोनों धनुर्विद्या के निपुण वीर रण में पहुँच गये। बलखानि (मलखान) रथ पर और चामुण्ड (चौंढा) गजपृष्ठ पर स्थित होकर दोनों आपस में विस्मय जनक घोरयुद्ध करने लगे। दोनों देवी भक्तों ने बाण से बाण को काटकर पश्चात् एक दुसरे के वाहनों को धराशायी कर स्वयं पृथिवी पर स्थित होकर खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। रक्तबीज के अंग से रक्त के जितनी बूँदे गिरती थी, उतने रक्तबीज के समान पराक्रमी पुरुष उत्पन्न हो जाते थे।७४-९०। भृगुश्रेष्ठ ! इस प्रकार उन मदोन्मत्त वीरों के चारों ओर से घेर लेने पर बलखानि (मलखान) ने शारदा की शरण प्राप्ति की। उनके छोटे भाई वीर सुखखानि ने वहाँ पहुँचकर अपने आग्नेय बाण द्वारा रक्तबीज को दग्ध कर दिया। पहले समय में सुखखानि ने हव्य (खीर) द्वारा पाँच वर्ष तक अग्निदेव की आराधना की थी। उससे प्रसन्न होकर स्वयं पावक देव ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें अपना आग्नेय बाण प्रदान किया, जिससे शत्रु का संहार हो जाता है। उसी बाण के प्रयोग द्वारा उन्हें विजय प्राप्त हुई, इसे देखकर बलवान् बलखानि (मलखान) उस शत्रुहन्ता एवं पराजित चामुण्ड को बाँधकर अपने घर लाये और ब्रह्महत्या के भय से उनका वध न कर केवल स्त्री का वेष धारण कराकर डोला में बैठा उन्हें शत्रु (पृथ्वीराज) के पास भेज दिया। पश्चात् शेष पाँच लाख सैनिकों ने दिल्ली जाकर युद्ध का यथावत् वर्णन किया। उस समय स्त्री-वेष में चामुण्ड को देख-

नारीवेषं च चामुण्डं स दृष्ट्वा पृथिवीपतिः । क्रोधाविष्टश्च बलवान्महीपतिमुवाच ह ॥९८
कथं जयो मे भविता सुखखानौ च जीविते ? श्रुत्वा महीपतिः प्राह च्छद्मना कार्यमाकुरु ॥९९
ब्राह्मी माता तयोर्ज्ञेया शुद्धा सैव पतिव्रता । दूतीभिः कारणं ज्ञात्वा पुनर्युद्धं कुरुष्व भोः ॥१००
इति श्रुत्वा महीराजो दूतीस्ताश्छलकोविदाः । आहूय प्रेषयामास बलखानिगृहं प्रति ॥१०१
ब्राह्मण्यस्तास्तदा भूत्वा बलखानिगृहं ययुः । सपुत्रां तां प्रशस्याशु पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥१०२
तव पुत्रौ महावीरौ दिष्ट्या शत्रुक्षयङ्करौ । तयोर्मृत्युः कथं भूयाज्जीवतां शरदां शतम् ॥१०३
तदा ब्राह्मी वचः प्राह पावकीयः शरः शुभः । सुखखानेर्जीवकरो बलखानेः पदाह्वकः ॥१०४
इति ज्ञात्वा तु ता दूत्यः प्रययुर्देहलीं प्रति । कथयित्वा नृपस्याग्रे धनं प्राप्य गृहं ययुः ॥१०५
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महादेवमुमापतिम् । पार्थिवैः पूजनं चक्रे सहस्रदिवसान्मुदा ॥१०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

षड्विंशाब्दे च कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु । मुने बिन्दुसरो नाम दक्षिणस्यां दिशि स्थितम् ॥१

कर पृथ्वीराज ने क्रुद्ध होकर महीपति (माहिल) से कहा—'जब तक सुखखानि जीवित रहेगा, मेरी विजय कैसे हो सकेगी।' इसे सुनकर महीपति (माहिल) ने कहा—'छल छद्म से कार्य कीजिये।' उन दोनों वीरों की माता ब्राह्मी हैं, जिन्हें युद्ध पतिव्रता कहा गया है। उन्हीं से दूती द्वारा उनके मरण के कारण का पता लगाकर पुनः युद्धारम्भ कीजिये। इसे सुनकर पृथ्वीराज ने एक छल-कपट निपुण दूती-वृन्द को बलखानि (मलखान) के घर भेजा। उन दूतियों ने अपना ब्राह्मणी वेष बनाकर बलखानि (मलखान) के घर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर पुत्री समेत उनकी प्रशंसा करके अत्यन्त विनम्र वाणी द्वारा कहा—सौभाग्य है कि आप के दोनों पुत्र इतने बड़े वीर हैं कि पहुँचते ही शत्रु का नाश कर देते हैं, ईश्वर करें, इनकी सौ वर्ष की आयु होगी, भला, इनकी मृत्यु भी कभी हो सकती है! उसे सुनकर उस समय ब्राह्मी ने कहा—सुखखानि को प्राणदान देने वाला यह आग्नेय बाण है और बलखानि (मलखान) को प्राणदान देने वाला उनका चरण। इस मर्म को जानकर उन दूतियों ने दिल्ली पहुँचकर राजा के समक्ष सभी बातों को कहा। पश्चात् राजा से पुरस्कार रूप में धन प्राप्तकर अपने घर को प्रस्थान किया। दूती की बातों को सुनकर राजा ने उसी समय से आरम्भ कर एक सहस्र दिनों तक प्रसन्नतापूर्ण रहकर अविरत पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना की।९१-१०६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।२४।

अध्याय २५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने! उदयसिंह के छब्बीस वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर उनके द्वारा किये

तस्य तीरेऽवसद्ग्रामो योजनायामसंयुतः । नाम्ना बिन्दुगढो दुर्गो वर्णधर्मप्रवर्तकः ॥२
तस्मिन्ग्रामेऽवसद्भूपो विष्वक्सेनान्वयोद्भवः । शारदानन्दनो नाम ब्रह्मध्यानपरायणः ॥३
ब्रह्मचर्यप्रभावेण तद्वीर्य्यं शिरसि स्थितम् । अतस्स कामपालाख्यः प्रथितोऽभून्महीतले ॥४
यज्ञैः सम्पूजयामास सुरज्येष्ठं प्रजापतिम् । यज्ञांशभुक्तमात्रेण राज्ञी गर्भमुपादधौ ॥५
दशमासान्तरे जाता कन्या सर्वगुणालया । पद्मिनी नाम विख्याता सर्वशोभासमन्विता ॥६
द्वादशाब्दवयः प्राप्तौ बभूव वरवर्णिनी । पद्माकरो भूपसुतो महीराजपदानुगः ॥७
पितुराज्ञानुसारेण भूपानाहूय सत्वरम् । स्वयम्वरं भगिन्याश्च कारयामास वै मुदा ॥८
नानादेश्य ययुर्भूपा मुख्यशूरसमन्विताः । सहाह्लादैश्चतुर्वीरैर्लक्षणः पितुराज्ञया ॥९
ययौ बिन्दुगढं ग्रामं स्थितो यत्र महोत्सवः । महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा लक्षणमागतम् ॥१०
स्वसेनां स्थापयामास रक्षार्थे सर्वभूभुजाम् । एतस्मिन्नन्तरे देवी सखीभिः सह पद्मिनी ॥११
सर्वभूपान्विलोक्याशु लक्षणान्तमुपाययौ । श्यामाङ्गं च युवानं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१२
चत्वारिंशत्तथा पञ्चाशन्मानाब्दवयोवृतम् । व्यूढोरस्कं दृढस्कन्धं निर्जरं रोगवर्जितम् ॥१३
दृष्ट्वा तमात्मसदृशमाह्लादाद्यैश्च रक्षितम् । जयमालां ददौ तस्मै पद्मिनी लक्षणाय च ॥१४

चरित्रों को बता रहा हूँ, सुनो ! दक्षिण दिशा में बिन्दुसर नामक एक जलाशय (सरोवर) है, उसी के तट पर 'बिन्दुगढ़' नामक एक दुर्ग-नगर स्थित है, जो योजन भर में विस्तृत एवं वर्ण-धर्म के प्रवर्तक व्यक्तियों से सुशोभित है । उस राजधानी का अधीश्वर शारदानन्दन जो विष्वक्सेन वंश के भूषण है, ब्रह्म-ध्यान का पारायण करते हुए भी, अपनी प्रजाओं के पालन-पोषण में तत्पर रहते है । उन्होंने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से वीर्य को शिर में स्थित कर लिया था, इसीलिए इस भूतल में वे 'कामपाल' के नाम से प्रख्यात थे । एक बार उन्होंने यज्ञानुष्ठान द्वारा देवश्रेष्ठ प्रजापति (ब्रह्मा) की आराधना किया । उसमें यज्ञ का एक अंश (प्रसाद रूप में) रानी को दिया गया जिसके भक्षण करने से उनका गर्भ स्थिर रह गया । दशवें मास में 'पद्मिनी' नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जो समस्त गुणों की खानि (निधि) एवं सम्पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा थी । बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर वह उत्तम वर्ण वाली कन्या स्वयम्बर के उपयुक्त हो गई, उसे देखकर उसका भाई पद्माकर नामक राजकुमार जो पृथ्वीराज का पदानुगामी था, अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर सभी राजाओं को निमंत्रित कर अपनी भागिनी का स्वयम्बर किया । उसमें अनेक देश के भूप-वृन्द उपस्थित थे । राजा लक्षण (लाखन) भी आह्लाद (आल्हा) आदि चार वीरों समेत पिता की आज्ञा प्राप्ति पूर्वक यात्रा करके उस बिन्दुगढ़ के महोत्सव में सम्मिलित थे । बलवान् पृथ्वीराज ने वहाँ लक्षण (लाखन) को भी उपस्थित देखकर समस्त राजाओं के रक्षार्थ अपनी सेना वहाँ स्थापित कर दिया । उसी बीच राजकुमारी पद्मिनी अपनी सखियों समेत स्वयम्बर में आकर समस्त राजाओं को देखती हुई लक्षण (लाखन) के पास पहुँची, जो श्यामल वर्ण, युवा सम्पूर्ण लक्षणों से विभूषित, चालीस पचास वर्ष की अवस्था सम्पन्न, विशाल वक्षःस्थल, दृढ कन्धे, देव के समान एवं पूर्ण स्वस्थ थे। उस कन्या ने अपने अनुरूप तथा आह्लाद (आल्हा) आदि से सुरक्षित उन्हें देखकर जयमाल लक्षण (लाखन) के गले में डाल दिया। उसी समय वीर लक्षण (लाखन) ने भी उसके कोमल हाथों को पकड़-

तदा स लक्षणो वीरो गृहीत्वा पाणिमुत्तमम् । स्वरथं च समारुह्य राज्ञां मध्ये ययौ मुदा ॥१५
पृथ्वीराजस्तथा सर्वे भूमिपा बलसंयुताः । रुरुधुः सर्वतो वीरं लक्षणं बलवत्तरम् ॥१६
तालनः सिंहिनीसंस्थो गृहीत्वा परिघं मुदा । सैन्यानि योधयामास भीमसेनांशसम्भवः ॥१७
पञ्चशब्दगजारूढश्चाह्लादस्तोमरायुधः । रिपून्विदारयामास बलभद्रांशसम्भवः ॥१८
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् । भूपतीन्बहुधा छित्त्वा महायुद्धमकारयत् ॥१९
देवो मनोरथारूढो भैरवं भल्लमादधौ । हत्वा च बहुधा सैन्यं ननर्द च पुनः पुनः ॥२०
लक्षणो धनुरादाय वैष्णवास्त्राणि वै पुनः । सन्धाय च जघानाशु महीराजस्य सैन्यपान् ॥२१
यामभात्रमभूद्युद्धं तेषां तैश्च समन्वितम् । त्यक्त्वा युद्धं महीराजः सर्वभूपसमन्वितः ॥२२
ययौ स देहलीग्रामे शारदानन्दनस्तदा । संस्थाप्य मण्डपशुभं कृत्वा वैवाहिकीः क्रिया ॥
ददौ कन्यां विधानेन धनधान्यादिसंवृताम् ॥२३
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो महीपतिरुवाच तम् । पद्माकरं भूपसुतं लक्षसैन्यसमन्वितम् ॥२४
अहो मित्र महावीर कीदृशी ते मतिः स्थिता । विष्वक्सेनान्वये त्वं वै सञ्जातः क्षत्रियोत्तमः ॥२५
लक्षणो धर्मरहितो वर्णसङ्करसंयुतः । आह्लादाद्याश्च ते शूरा आभीरमातृसम्भवाः ॥
तैर्युतश्च निवासो वै सन्त्याज्यो धर्मकोविदैः ॥२६
इति पद्माकरः श्रुत्वा सर्वमायाविशारदः । स कृत्वा शाम्बरीं मायां बद्ध्वा तानेव दुर्जयान् ॥
स्वगेहे स्थापयामास कारागारे शिलामये ॥२७

कर अपने रथ पर बैठा लिया और प्रसन्न होकर राजाओं के मध्य से उसे लेकर प्रस्थान किया । १-१५। पृथ्वीराज ने समस्त अन्य राजाओं को साथ लेकर जाते हुए बलवान् लक्षण (लाखन) को चारों ओर से घेर लिया । पश्चात् सिंहिनी पर बैठे हुए तालन ने अपने परिध अस्त्र द्वारा जो भीमसेन के अंश से उत्पन्न थे, सैनिकों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया । पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित आह्लाद (आल्हा) भी जो बलभद्र के अंश से उत्पन्न थे, अपने तोमर अस्त्र से शत्रु सैनिकों को धराशायी करने लगे । उस समय बिन्दुल पर बैठे हुए उदयसिंह तो अपने खड्ग द्वारा बहुधा राजाओं के ही शिर छिन्न-भिन्न कर रहे थे । देवसिंह मनोरथ पर बैठे हुए अपने उस भीषण भाले से शत्रुओं का वध करते हुए बार-बार सिंह गर्जना कर रहे थे और लक्षण (लाखन) अपने धनुष पर वैष्णव शरों को रखकर पृथ्वीराज के सेना नायकों को धराशायी कर रहे थे । एक प्रहर तक दोनों दलों का भीषण संग्राम हुआ । पश्चात् पृथ्वीराज समस्त राजाओं समेत युद्ध का त्यागकर दिल्ली चले गये और शारदानन्दन ने शुभ मण्डप की स्थापना समेत विवाह की सभी क्रियाओं को धनधान्य के प्रदान समेत सुसम्पन्न करके कन्यादान लक्षण (लाखन) को सौंप दिया। उसी बीच महीपति (माहिल) ने आकर राजपुत्र पद्माकर से कहा, जो अपनी एक लाख सेना समेत स्थित थे—मित्र ! महावीर ! आपकी बुद्धि कैसी हो गई है । आश्चर्य है कि आप विष्वक्सेन वंश के क्षत्रिय कुल में जन्मग्रहणकर वर्णसंकर एवं धर्मच्युत लक्षण (लाखन) के साथ संबंध स्थापित किया। आह्लाद (आल्हा) आदि अहीरिन के गर्भ से उत्पन्न हैं, इसलिए इनके साथ रहने से धर्ममर्मज्ञों ने इनका परित्याग कर दिया है। इसे सुनकर पद्माकर ने जो समस्त माया करने में निपुण था, अपनी शाम्बरी माया द्वारा अजेय वीरों को बाँधकर घर में पत्थर के कारागार में डाल दिया। देवी के वरदान द्वारा

देव्याश्च वरदानेन देवसिंहस्तदा निशि । त्यक्त्वा मायां मोहमयीं कान्यकुब्जमुपाययौ ॥२८
इन्दुलाग्रे च तत्सर्वं गदित्वा तेन संयुतः । प्राप्तो बिन्दुगढं शीघ्रं दिव्यमायाविशारदः ॥२९
पद्माकरस्तु तच्छ्रुत्वा कृत्वा मायां च शाम्बरीम् । मोहनायोद्यतस्तत्र यथा मेघो रविं दिवि ॥३०
इन्दुलश्च तदा चापे सन्धाय शरमुत्तमम् । कामास्त्रेण तु तन्मायाभस्मीभूताभवत्क्षणात् ॥३१
तदा ते बोधिताः सर्वे कामास्त्रेण महाबलाः । भित्त्वा लोहमयं जालं कपाटं च तथा दृढम् ॥३२
बहिर्भूताः समाजग्मुः शत्रुसैन्यान्यनाशयन् । क्षत्रियाः पञ्चसाहस्रा मृता यमपुरं ययुः ॥३३
शारदानन्दनो भूपस्तत्रागत्य विनम्य तान् । स्वसुतां च ददौ तस्मै लक्षणाय महात्मने ॥३४
नानाविधानि भोज्यानि प्रशस्याभरणानि च । सर्वेभ्यश्च ददौ राजा सहस्रेभ्यस्तदा मुदा ॥३५
कुमारिकां स्वकीयां च बहुरोदनतत्पराम् । स मत्वा कामपालो वै स्वगेहात्तं[1] न्यवासयत् ॥
आगतो लक्षणो गेहं माघकृष्णाष्टमीदिने ॥३६
जयचन्द्रस्तु तं दृष्ट्वा लक्षणं प्रेमविह्वलः । शतग्रामान्ददौ तेभ्यस्तालनादिभ्य एव च ॥३७
दत्त्वा ततोऽन्यदानानि गोवस्त्राभरणानि च । प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च स चकार महोत्सवम् ॥३८

सूत उवाच

महीराजो वरं प्राप्तः शङ्करात्पार्थिवार्चनात् । संयोज्य फाल्गुने मासि सेनां शत्रुभयङ्कराम् ॥३९
सप्तलक्षैश्च सहितः शिरीषाख्यपुरं ययौ । नृपाज्ञया च चामुण्डो रुरोध नगरं पुनः ॥४०

देवसिंह उसी आधी रात के समय चेतना प्राप्तकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) चले गये । वहाँ पहुँचकर इन्दुल से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । उसे सुनकर इन्दुल ने देवसिंह के समेत उसी समय बिन्दुगढ़ को प्रस्थान किया । पद्माकर ने उनका आगमन सुनकर उन्हें मोहित करने के लिए दिन में सूर्य को मेघ द्वारा आवृतकर लेने की भाँति अपनी शाम्बरी माया का प्रयोग किया ।१६-३०। किन्तु इन्दुल ने उसी समय अपने धनुष पर कामबाण का संधानकर उसी द्वारा उनकी समस्त माया को भस्मकर दिया । पश्चात् कामास्त्र द्वारा चेतना प्राप्त कर उन वीरों ने अपने लोहे के बंधनों तथा किवांड़ों को तोड़कर बाहर जाकर शत्रुओं का नाश करना आरम्भ किया । पाँच सहस्र क्षत्रियों को यमपुरी भेज दिया । उपरान्त राजा शारदानन्द ने नम्रतापूर्वक वहाँ आकर यशस्वी लक्षण (लाखन) को सादर अपनी कन्या सौंप दी और भाँति-भाँति के भोजन-वस्त्र एवं आभूषणों को अन्य लोगों में सप्रेम वितरण किया । उपरांत राजा ने रुदन करती हुई उस अपनी पुत्री को लक्षण (लाखन) के साथ स्नेहपूर्ण होकर बिदा किया । माघ कृष्ण अष्टमी के दिन लक्षण (लाखन) अपने घर संकुल पहुँच गये । उनके आने पर प्रेमव्याकुल होकर राजा-जयचन्द्र ने तालनादि को सौ गाँव पुरस्कार रूप में प्रदान किया और ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, आभूषणों को प्रदानकर महान् उत्सव करने का आयोजन किया ।३१-३८

सूत जी बोले—पार्थिवपूजन द्वारा शिव जी से वरदान प्राप्तकर राजा पृथ्वीराज ने फाल्गुन मास में सात लाख सैनिकों की एक विशाल सेना लेकर शिरीप नगर को प्रस्थान किया । राजा की आज्ञा प्राप्त-

---

१. बहिरिति शेषः ।

सुखखानिस्तदा क्रुद्धो लक्षसैन्यसमन्वितः । नगराद्बहिरागत्य महावधमकारयत् ॥४१
पावकास्त्रेण बलवान्हत्वा दशसहस्रकम् । महीराजमुपागम्य वचनं प्राह निर्भयः ॥४२
अद्य त्वां च हनिष्यामि त्वं वा हन्ता रणे मम । स्वविद्यां कुरु भूप त्वं नो चेद्यास्यसि वैशसम् ॥४३
इति श्रुत्वा महीराजो रौद्रास्त्रं चाप आदधे । तदस्त्राच्च महावह्निः प्रादुर्भूतो भयङ्करः ॥४४
सुखखानिस्तदाग्नेयं सन्दधौ तस्य शान्तये । रौद्राग्निना च सशरः सुखखानिर्लयं गतः ॥४५
तदस्त्रं शिवतूणीरे गतं कार्यं विधाय तत् । बलखानिस्तु तच्छ्रुत्वा भयभीतः समागतः ॥४६
भ्रातुर्वैरमुपादाय जघान च रिपोर्बलम् । ध्यात्वा च शारदां देवीं भूमिराजमुपागमत् ॥४७
भूमिराजस्तु तं दृष्ट्वा तद्बलाधिक्यमोहितः । उवाच वचनं प्रेम्णा बलखाने शृणुष्व भोः ॥४८
क्रोशमात्रान्तरे गर्ता द्वादशैव मया कृताः । रक्षिता द्वादशशतैः शूरैर्युद्धविशारदैः ॥४९
शूराञ्जित्वा समुल्लङ्घ्य गर्तान्द्वादशसम्मितान् । ममार्द्धं सकलं राष्ट्रं गृहाण बलिसत्तम ॥५०
इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तद्राज्ञा सत्यभाषितम् । कपोतं हयमारुह्य खड्गहस्तो वनं ययौ ॥५१
दृष्ट्वा गर्तान्महावीरो हत्वा शूराञ्छतञ्छतम् । ययौ स द्वादशान्गर्तान्बाहुशाली जितेन्द्रियः ॥५२
चामुण्डस्तु तदागत्य शूरायुतसमन्वितः । रुरोध सर्वतो वीरं छद्मकारी द्विजाधमः ॥५३
बलखानिश्च महतीं सेनां तस्य जघान ह । चामुण्डं तमुपागम्य ननर्द च पुनःपुनः ॥५४

कर चामुण्ड ने पुनः क्रुद्ध होकर सुखखानि से अपनी एक लाख की सेना लेकर नगर के बाहर रणस्थल में आकर भीषण युद्ध करना आरम्भ किया। उन्होंने अपने आग्नेय अस्त्र से दशसहस्र सैनिकों के वध करने के उपरांत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे निर्भय होकर कहा—आज मैं तुम्हरा हनन करूँगा। अथवा इस रणक्षेत्र में मेरे हन्ता तुम्हीं होगे। अतः भूप ! अपनी विद्या का प्रयोग पहले कर लो, नहीं तो तुम्हें नरक की तैयारी करनी होगी। इसे सुनकर पृथ्वीराज ने अपने धनुषपर रौद्रबाण का संधान किया जिससे भीषण एवं महाअग्नि का उत्थान हुआ। उसकी शांति के लिए सुखखानि ने अपने पावक, अस्त्र का प्रयोग किया, किन्तु उस रौद्र-अग्नि द्वारा अपने अस्त्र समेत सुखखानि भस्म हो गये।३९-४५। अपना कार्य करके वह अस्त्र शिव जी के तरकस में प्रविष्ट हो गया। इस घटना को सुनकर बलखानि (मलखान) भयभीत होकर वहाँ रणस्थल में पहुँचकर भ्रातृबैर स्मरणपूर्वक शत्रुओं का नाश करने लगे। उसी अवसर पर शारदा के ध्यान पूर्वक पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँचकर उन्हें देखते हुए उनके बलाधिक्य पर मोहित हो गये। पश्चात् उन्होंने प्रेम पूर्वक बलखानि (मलखान) से कहा—मेरी एक बात सुनो ! मैंने एक कोश के भीतर बाहर गड्ढ़े बनाये हैं, युद्ध निपुण बारह सौ शूर जिसकी रक्षा में नियुक्त किये गये हैं। वीरों पर विजय प्राप्त करते हुए उन बारहों गड्ढों को पारकर लेने पर तुम्हें मैं अपना आधाराज्य सौंप दूंगा। उस बलवान् ने राजा के कहे हुए उस प्रिय वाक्य को सत्य मानकर कपोत तथा घोड़े पर बैठ हाथ में खड्ग लिए वहाँ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ के गड्ढ़ों को देखकर उस बलवान् ने सौ-सौ वीरों को धराशायी करते हुए उस संयमी एवं बाहुशाली महाबली ने बारहवें गड्ढ़े पर पहुँचकर उस चामुण्ड से जो दश सहस्र की सेना लेकर उसे घेर लिया था, युद्ध करना आरम्भ किया। बलखानि (मलखान) ने उस कपटी एवं ब्राह्मणाधम की सेना का हनन करके चामुण्ड के समीप पहुँचकर बार-बार गर्जना की। वहाँ

त्रयोदशं गुप्तगर्तं तृणैराच्छादितं मृदा । विषधौतैर्महाभल्लैस्संरुद्धं दिवरप्रभम् ।।५५
पतितः सकपोतश्च स वीरो दैवमोहितः । अन्धकारे महाघोरं गम्भीरं क्रोशमात्रकम् ।।५६
विदीर्णस्तत्र चरणस्सपद्मो वत्सजस्य वै । महाकष्टेन तद्वाजी गर्तादागत्य वै बहिः ।।
स्वपदैस्ताडयामास महीराजस्य तद्बलम् ।।५७
चामुण्डस्तु तदागत्य बलखानेश्च वै शिरः । छित्त्वा जघान तत्सैन्यं हाहाभूतं विनेश्वरम् ।।५८
गजमुक्ता च तच्छ्रुत्वा चितामारोप्य वै पतिम् । दाहयामास चाङ्गानि सा पत्या सह वै सती ।।५९
तदा ब्रह्मा स्ववध्वा च सार्द्धमागत्य तत्र वै । सुखखानि च संहृय ददाह तत्कलेवरम्[1] ।।६०
शून्यभूतं च नगरं भस्म कृत्वा स वै नृपः । जगाम देहलीं शीघ्रं महोत्साहसमन्वितः ।।६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम विक्रमाख्यानकाले पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

श्रावणे मासि सम्प्राप्ते देहलीं च महीपतिः । नागोत्सवाय प्रययौ सदैव कलहप्रियः ।।१

तेरहवाँ गड्ढा भी बनाया गया था, जो केवल तृण (फूसों) और मिट्टी से नाम मात्र को आवृत कर दिया गया था । उसके नीचे विषयुक्त भाले भी गड़े थे । दैवसंयोग से घोड़ा समेत (मलखान) उसी गढढे में गिर पड़ा, जो अंधकार पूर्ण, महाघोर, गंभीर एवं एक कोश में विस्तृत था ! वत्सपुत्र (मलखान) के चरण भाले द्वारा विदीर्ण हो गये । उस समय उनका घोड़ा अत्यन्त कष्ट से बाहर निकलकर अपने चरणों द्वारा शत्रुओं का हनन करने लगा । उसी अवसर पर चामुण्ड ने वहाँ पहुँचकर बलखानि (मलखान) के शिर के छेदन पूर्वक उनकी सेनाओं का नाश किया । उसे सुनकर गजमुक्ता (गजमोतिना) चिता लगवाकर पति के साथ सती हो गई । इस घटना को सुनकर अपनी स्त्री समेत ब्रह्मानन्द वहाँ आकर सुखखानि का दाह संस्कार किया । उपरांत पृथ्वीराज ने उस वीरशून्य राजधानी का नाशकर अपने दिल्ली में उसका महोत्सव मनाया ।४६-६१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५।

अध्याय २६

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार श्रावणमास की नागपञ्चमी के अवसर पर कलह-प्रिय महीपति

---

१. स्वं कलेवरमिति पाठस्तूत्तरग्रंथविरोधादुपेक्ष्य एव ।

दृष्ट्वा नागोत्सवं तत्र गीतनृत्यसमन्वितम् । महीराजं नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ।।२
राजन्महावतीग्रामे कीर्तिसागरमध्यगे । वामनोत्सवमत्यन्तं तं यवव्रीहिसमन्वितः ।।
पश्य त्वं तत्र गत्वा च ममैव वचनं कुरु ।।३
इति श्रुत्वा महीराजो धुन्धकारेण संयुतः । सप्तलक्षबलैर्युक्तश्चामुण्डेन समन्वितः ।।
प्राप्तः शिरीषविपिने तत्र वासमकारयत् ।।४
महीपतिस्तु नृपतिं नत्वा वै चन्द्रवंशिनम् । उवाच वचनं दुःखी धूर्तो मायाविशारदः ।।५
राजन्प्राप्तो महीराजो युद्धार्थी त्वामुपस्थितः । चन्द्रावलीं च तनयां ब्रह्मानन्दं तवात्मजम् ।।
दिव्यलिङ्गं स सम्पूज्य बलात्काराद् ग्रहीष्यति ।।६
तस्मात्त्वं स्वबलैः सार्द्धं मया सह महामते । छद्मना तं पराजित्य नगरेऽस्मिन्सुखी भव ।।७
इति श्रुत्वा दैववशो राजा परिमलो बली । चतुर्लक्षबलैस्सार्द्धं निशीथे च समागतः ।।८
शयितान्क्षत्रियाञ्छूरान्हत्वा पञ्चसहस्रकान् । शतघ्नीं रोषणीं चक्रे बहुशूरविनाशिनीम् ।।९
तदोत्थाय महीराजः कटिमाबध्य सम्भ्रमात् । वैरिणं परमं नत्वा महद्युद्धमचीकरत् ।।१०
युद्धचन्त्योः सेनयोस्तत्र मलना पुत्रगृद्धिनी । शारदामादराद्गत्वा पूजयामास भक्तितः ।।११
देविदेवि महादेवि सर्वदुःखविनाशिनि । हर मे सकलां बाधां कृष्णांशं बोधयाशु च ।।१२

(माहिल) ने दिल्ली को प्रस्थान किया । वहाँ के पञ्चमी उत्सव को जिसमें नृत्य-गान का महान समारोह होता है, देखते हुए पृथिवीराज के पास पहुँचकर नमस्कार के उपरांत विनम्र निवेदन किया — राजन् ! महावती (महोबा) नगर के कीर्तिसागर के मध्य में यवव्रीहि युक्त वामन-महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ सुसम्पन्न होता है । अतः मेरी नितान्त कामना है कि अबकी बार आप उस महोत्सव को देखने की अवश्य कृपा करें । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने धुंधकार (धांधू) और चामुण्ड (चौंढ़ा) समेत लाख सैनिकों को लेकर उस शृंशिप नामक वन में पहुंचकर वहाँ अपना सैनिक-निवास बनाया । उसी बीच महीपति (माहिल) शीघ्र चन्द्रवंशी राजा परिमल के यहाँ आकर नमस्कार के उपरांत उस मायावी धूर्त ने अपने मुख को गम्भीर बनाकर उनसे कहा—राजन् ! तुमसे युद्ध करने के लिए पृथ्वीराज यहां आये हुए हैं । दिव्यलिंग की पूजा के उपरांत ये तुम्हारी पुत्री चन्द्रावली का अपहरण बलप्रयोग द्वारा करेंगे । इसलिए महामते ! अपनी सेना के साथ तुम मेरे साथ चलकर छल-छद्म द्वारा उन्हें पराजित कर अपनी राजधानी में सुख का अनुभव करो । इसे सुनकर दैववंश राजा परिमल ने अपनी चार लाख सेना लेकर आधीरात के समय वहां जाकर शत्रु के पाँच सहस्र सैनिक के वध करने के उपरांत उन तोपों का प्रयोग करना आरम्भ किया, जिसके द्वारा एक बार में ही अनेक सैनिक धराशायी हो जाते हैं । उस समय राजा पृथ्वीराज ने सहसा उठकर कमर कसते हुए उन्हें महान् शत्रु समझकर उनसे भीषण युद्ध किया । दोनों सैनिकों के युद्ध करते समय रानी मलना ने अपने पुत्र की हित कामना से मंदिर में जाकर देवी शारदा की भक्ति समेत सादर पूजा की । और पश्चात् प्रार्थना की—महादेवि ! आप समस्त दुःख की हरण करने वाली देवी है । अतः देवि ! मेरी समस्त बाधा का अपहरण करो उदयसिंह को शीघ्र इसका ज्ञान

जप्त्वायुतमिमं मन्त्रं हुत्वा तर्पणमार्जने । कृत्वा सुष्वाप तद्वेश्मंस्तदा[1] तुष्टा स्वयं शिवा ।।१३
मलने महती बाधा क्षयं यास्यति मा शुचः ।।१४
इत्युक्त्वा शारदा देवी कृष्णांशं प्रति चागमत् । पुत्र ते जननी भूमिर्महीराजेन पीडिता ।।
क्षयं यास्यति शीघ्रं च तस्मात्त्वं तां समुद्धर ।।१५
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्स वीरो विस्मयान्वितः । देवकीं प्रति सम्प्राप्तः कथयामास कारणम् ।।१६
सा तु श्रुत्वा वचो घोरं स्वर्णवत्या समन्विता । रुरोद भृशमुद्विग्ना विलप्य बहुधा सती ।।१७
कृष्णांशस्तु तदा दुःखी देवसिंहमुवाच ह । किं कर्तव्यं मया वीर देह्याज्ञां दारुणे भये ।।१८
तच्छ्रुत्वा तेन सहितो लक्षणेन समन्वितः । ययौ दिग्विजयार्थेन व्याजेन च महावतीम् ।।१९
तालनो भीमसेनांशः सेनापतिरुदारधीः । सप्तलक्षबलैस्सार्द्धं विनाह्लादेन संययौ ।।२०
कल्पक्षेत्रमुपागम्य योगिनस्ते तदाभवन् । सेनां निवेशयामास विपिने तत्र दारुणे ।।२१
कृष्णांशस्तालनो देवो लक्षणो बलवत्तरः । गृहीत्वा लास्यवस्तूनि युद्धभूमिमुपागमन् ।।२२
सप्ताहं च तयोर्युद्धं जातं मृत्युविवर्द्धनम् । सप्तमेऽहनि ते वीरास्सम्प्राप्ता रणमूर्द्धनि ।।२३
तस्मिन्दिने महाभाग महद्युद्धमवर्तत ।।२४
दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं राजा परिमलो बली । रथस्थश्चापमादाय महीराजमुपाययौ ।।२५
यादवश्च गजारूढस्तदा चन्द्रावलीपतिः । धुन्धुकारं समाहूय धनुर्युद्धमचीकरत् ।।२६

कराओ । देवी के मंत्र की दश सहस्र आवृति जप, हवन, तर्पण और मार्जन करने के उपरांत उसी मन्दिर में उन्होंने शयन किया । स्वप्न में देवी शारदा ने उनसे यह कहकर कि 'मलने देवि ! शोक मत करो, तुम्हारी यह बड़ी बाधा शीघ्र नष्ट हो जायेगी तथा उदयसिंह के पास जाकर स्वप्न में उनसे कहा—पुत्र ! तुम्हारी जन्म-भूमि राजा के द्वारा कष्टयुक्त है इसलिए उसका उद्धार करो अन्यथा वह शीघ्र विनष्ट हो जायेगी ।१-१५। देवी की इन बातों को सुनकर चकित होकर उन्होंने जाकर देव की सभी बातें कहा । उसे सुनकर घोर तप करती हुई पतिव्रता देवकी ने स्वर्णवती (सोना) समेत मानसिक पीडा से व्यथित होती हुई अत्यन्त रुदन किया । उस समय उदयसिंह ने दुःखी होकर देवसिंह से कहा—वीर! इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये । उसे सुनकर देवसिंह ने उन्हें तथा लक्षण (लाखन) को साथ लेकर दिग्विजय के व्याज से महावती (महोबा) को प्रस्थान किया । भीम सेनांश तालन अपनी सात लाख सेनाओं का संचालन करते हुए जा रहे थे । केवल आह्लाद (आल्हा) ही उस यात्रा से वंचित थे। कल्पक्षेत्र में पहुँचकर उन लोगों ने अपना योगी का वेष बनाकर उसी घोर जंगल में सेना रखकर उदयसिंह, तालन, देवसिंह और सबल लक्षण (लाखन) ने अपने नृत्य-गान की सामग्रियाँ लेकर उस रणक्षेत्र को प्रस्थान किया। वहाँ उन दोनों सैनिकों में सात दिन तक घोर युद्ध होता रहा। उसी सातवें दिन वे वीरगण भी वहाँ पहुँच गये थे। महाभाग ! उस दिन घोर युद्ध हुआ था। राजा परिमल ने अपने सैनिकों को पराजित देखकर विपत्तियों के जाल में फँसकर रथ पर बैठे हुए पृथ्वीराज के समीप गमन किया। उस समय चन्द्रावली के पति यादव ने हाथी पर बैठे धुंधकार (धांधू) को उत्तेजित करते हुए उनसे धनुष युद्ध आरम्भ किया।१६-२६।

---

१. वेश्मनीत्यर्थः । 'ङाबुत्तरपदे'—इति लोपाभावः 'नश्छवि'—इति रुत्वम् ।

हरिनागरमारुह्य ब्रह्मानन्दो महाबलः । तारकं शत्रुमाहूय धनुर्युद्धं चकार ह ॥२७
मर्दनं राजपुत्रं च रणजिद्गजसंस्थितः । स्वशरैस्ताडयामास तत्सुतं च जघान ह ॥२८
रूपणो वै स्मरदनं हयारूढो जगाम ह । आभीरीतनयो जातो मदनो नाम वै बली ॥
नृहरं राजपुत्रं च शङ्खांशश्च जगाम ह ॥२९
तेषु सङ्ग्राममेतेषु[1] चामुण्डोऽयुतसैन्यपः । महीपतेश्च वचनं मत्वा नगरमाययौ ॥३०
ददर्श नगरीं रम्यां चतुर्वर्णसमन्विताम् । धनधान्ययुतां वीरो देवीभक्तिपरायणः ॥३१
महीपतिस्तु वै धूर्तो दुर्गद्वारि समागतः । चामुण्डेन युतः पापी राजगेहमुपाययौ ॥३२
मलना भ्रातरं दृष्ट्वा वचनं प्राह दुःखिता । भाद्रकृष्णाष्टमी चाद्य यवव्रीहि[2] गृहे स्थितम् ॥३३
न प्राप्त जल संस्थाने सुपुण्ये कीर्तिसागरे । महीराजो महापापी वामनोत्सवमागतः ॥३४
विनाह्लादं च कृष्णांशं महद्दुःखमुपागतम् । इत्युक्तस्स विहस्याह ब्राह्मणोऽयं महाबली ॥
कान्यकुब्जात्समायातः कृष्णांशेन प्रयोजितः ॥३५
देवीदत्तश्च नाम्नाऽयं स ते कार्यं करिष्यति । श्रुत्वा चन्द्रावली देवी सर्वभूषणसंयुता ॥३६
कामाग्निपीडितं विप्रं चामुण्डं च ददर्श ह । मातरं प्रति चागम्य वचनं प्राह निर्भरम् ॥३७
धूर्तोऽयं ब्राह्मणो मातर्निश्चयं मां हरिष्यति । कोऽयं वीरो न जानामि कथं यामि पतिव्रता ॥३८

एवं हरिनागर पर बैठे हुए ब्रह्मानन्द अपने शत्रु तारक (ताहर) को ललकारकर उनसे धनुर्युद्ध करने लगे। उसी प्रकार रणजित् ने अपने शत्रु राजपुत्र मर्दन को अपने बाण प्रहारों से व्याकुल करते हुए उनके पुत्र का निधन कर दिया। रूपण अश्वारूढ़ होकर युद्ध कर रहा था, अहीरिन के गर्भ से उत्पन्न गदन जो शंख के अंश से उत्पन्न था, राजपुत्र नृहरि के साथ घोर युद्ध में लीन था। इस प्रकार उन वीरों के युद्ध करते समय चामुण्ड ने महीपति (माहिल) के कथनानुसार दश सहस्र सैनिकों समेत महावती (महोवा) नगर को, जो परमरम्य, चारों वर्णों के नागरिकों से सुशोभित एवं धन-धान्य से परिपूर्ण था, देखते हुए धूर्त महीपति (माहिल) के साथ दुर्ग के अन्दर प्रवेश किया। दरवाजे पर पहुँचकर वह पापी माहिल केवल चामुण्ड को लेकर भीतर राजमहल में चला गया। उस समय भाई को देखकर मलना ने दुःखी होकर कहा—आज भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी का दिन है, इसीदिन यह यवव्रीहि जो घर में स्थित है उसे कीर्तिसागर के पुष्पजल में जाना चाहिए किन्तु न जा सका, यह पापी पृथ्वीराज भी इसी वामनोत्सव के समय आ गया है। आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह के बिना इस समय मैं अत्यन्त कष्ट का अनुभव कर रही हूँ। उनके इतना कहने पर हंसते हुए उस महाबली (माहिल) ने कहा—उदयसिंह का भेजा हुआ एक देवीदत्त नामक ब्राह्मण कन्नौज से आया है, वही तुम्हारा सभी कार्य सुसम्पन्न करायेगा।२७-३६। उसे सुनकर समस्त आभूषणों से सुसज्जित देवी चन्द्रावली ने कामपीडित उस चामुण्ड नामक ब्राह्मण को देखकर माता से आकर निर्भीक होकर कहना आरम्भ किया—मातः! यह ब्राह्मण धूर्त है, निश्चय यह मेरा अपहरण करेगा। मैं यह भी नहीं जानती हूँ कि यह कौन वीर है। इसलिए पतिव्रता होकर मैं इसके साथ कैसे

---

१. आगतेषु। २. यवाश्च व्रीहयश्चेति समाहारद्वन्द्वः।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितस्स महीपतिः । चामुण्डेन युतः प्राप्तो यत्राभूत्स महारणः ।।३९
एतस्मिन्नन्तरे ते वै ब्रह्माद्यास्तैः पराजिताः । त्यक्त्वा युद्धं गृहं प्राप्तास्त्रिलक्षबलसंयुताः ।।४०
कपाटं सुदृढं कृत्वा महाचिन्तामुपाययुः । महीराजस्तु बलवान्महीपत्यनुमोदितः ।।४१
प्रमदावनमागत्य षष्टिलक्षबलान्वितः । जुगोप तत्र बलवान्माननोत्सवहेतवे ।।४२
तालनाद्याश्च चत्वारः शिरीषाख्यपुरं ययुः । स्थलीभूतं च तं ग्रामं दृष्ट्वा ते विस्मयान्विताः ।।
प्रययुस्ते सुखभ्रष्टा ददृशुर्हि मदं मुनिम् ।।४३
प्रणम्योचुः शुचाविष्टा बलखानिर्मुने बली । क्व गतः समरश्लाघी स च कुनागरैर्युतः ।।४४
श्रुत्वाह हिमदो योगी महीराजेन नाशितः । छद्मना बलखानिश्च तस्येयं सुन्दरी चिता ।।४५
इति श्रुत्वा वचो घोरं कृष्णांशः शोकतत्परः ।।४६
विललाप भृशं तत्र हा बन्धो धर्मजांशक । त्वदृते भूतले वासो ममातीव भयङ्करः ।।४७
दर्शनं देहि मे क्षिप्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।४८
इत्युक्तः स तु तद्भ्राता बलखानिः पिशाचगः । सपत्नीकस्समायातो रोदनं कृतवान्बहु ।।
कथित्वा[1] सर्ववृत्तान्तं यथाजातं स्ववैशसम् ।।४९
दिव्यं विमानमारुह्य गतो नाकं मनोरमम् । युधिष्ठिरे तस्य कला बलखानेर्लयं गता ।।५०
तदा दुःखी स कृष्णांशः कृत्वा भ्रातुस्तिलाञ्जलिम् । महावतीं समागत्य राजगेहमुपाययौ ।।५१

(कीर्तिसागर) जा सकती हूँ । इसे सुनकर महीपति (माहिल) अत्यन्त लज्जित होकर चामुण्ड समेत उस रणस्थल में चला गया । उसी बीच पराजित होकर ब्रह्मादि अपने शेष तीन लाख सैनिकों को लेकर दुर्ग के द्वार को दृढतर बन्दकर भीतर अत्यन्त चिंतित हो रहे थे । उधर माहिल के कथनानुसार पृथ्वी राज ने छः लाख सैनिकों समेत बामनोत्सव के कारण वहां के प्रमोदवन को घेर लिया था । तालन आदि चारों वीरों ने शृंशिपपुर पहुँचकर वहाँ के नगर को केवल स्थंडिल (डीह) मात्र देखकर अत्यन्त आश्चर्य किया । वहाँ इधर-उधर घूमते उन लोगों ने मद नामक मुनि को देखकर नमस्कार पूर्वक चिंतित होकर पूछा—मुने ! रणप्रेमी बलखानि (मलखान) वीर कहाँ चला गया और नगर निवासी कहाँ गये । इसे सुनकर योगी मद ने कहा—पृथ्वीराज ने सब नष्ट कर दिया है, उसी ने छल-छद्म द्वारा बलखानि (मलखान) की हत्या की है, उसी की यह सुंदरी चिता दिखाई दे रही है । इस घोर वाणी को सुनकर उदयसिंह ने शोक-सागर में निमग्न होकर विलाप करना आरम्भ किया—हा बंधो ! धर्म पुत्र के अंश, तुम कहाँ चले गये । तुम्हारे विना इस भूतल में मेरा निवास करना अत्यन्त दुस्सह है, मुझे शीघ्र दर्शन प्रदान करो नहीं तो मैं प्राणत्याग के लिए तैयार हूँ । इस प्रकार उनके विलाप करने पर पिशाचयोनिप्राप्त बलखानि (मलखान) ने पत्नी समेत वहाँ प्रत्यक्ष होकर अत्यन्त रुदन करते हुए जिस प्रकार दुर्मृत्यु हुई थी, सभी वृत्तान्त कह सुनाया । पश्चात् दिव्य विमान पर सुशोभित होकर उस रमणीक स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया और उसकी कला युधिष्ठिर में विलीन हो गई । उपरांत उदयसिंह दुःखी होते हुए भाई को

---

१. णिलोप आर्षः ।

वेणुशब्देन कृष्णांशो ननर्त जनमोहनः । वीणाप्रवाद्यं च जगौ तालनो योगिरूपधृक् ।।५२
मृदङ्गध्वनिना देवो लक्षणः कांस्यवाद्यकः । सुस्वरं च जगौ तत्र श्रुत्वा राजा विमोहितः ।।५३
तदा तु मलना राज्ञी दृष्ट्वा तद्वामनोत्सवन् । रुदित्वा वचनं प्राह क्व गतो मे प्रियङ्करः ।।५४
कृष्णांशो बन्धुसहितस्त्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् । त्वया विरहितो देशो महीराजेन लुण्ठितः ।।५५
इत्युक्त्वा मलनां दृष्ट्वा कृष्णांशः स्नेहकातरः । वचनं प्राह नम्रात्मा देवि त्वं वचनं कुरु ।।५६
योगिनश्च वयं राज्ञि सर्वयुद्धविशारदः । तवेदं सकलं कार्यं कृत्वा यामो हि नैमिषम् ।।५७
ये यवव्रीहयश्चैव तव सद्मनि संस्थिताः । गृहीत्वा योषितस्सर्वा गच्छन्तु सागरान्तिकम् ।।
वयं तु योगसैन्येन तव रक्षां च कुर्महे ।।५८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य तत्सुता च पतिव्रता । मातरं वचनं प्राह कृष्णांशोऽयं न नर्तकः ।।५९
पुण्डरीकनिभे नेत्रे श्यामाङ्गं तस्य सुन्दरम् । कृष्णांशेन विना मातः को रक्षार्थं क्षमो भुवि ।।
दुर्जयश्च महीराजः कृष्णांशेन विनिर्जितः ।।६०
इति तद्वचनं श्रुत्वा मलना प्रेमविह्वला । यवव्रीहयो निष्कास्य योषितां स्थापिता करे ।।६१
जगुस्ता योषितस्सर्वाः कृष्णांशचरितं शुभम् । लक्षणः शीघ्रमागम्य योगिवेषान्स्वसैनिकान् ।।
सज्जीकृत्य स्थितस्तत्र तालनाद्यैः सुरक्षितः ।।६२
कीर्तिसागरमागम्य ते वीरा बलदर्पिताः । रुरुधुः सर्वतो नारीर्दोलायुतमितस्थिताः ।।६३

तिलाञ्जलि प्रदानकर महावती (महोबा) के राजमहल में पहुँच गये। वहाँ उदयसिंह ने वंशी बजाते हुए अपने नृत्य द्वारा देखने वालों को मोहित कर दिया ! उस नृत्य में योगीरूप धारणकर तालन वीणा, देवसिंह मृदङ्ग और लक्षण (लाखन) मजीरा बजा रहे थे। उस सुरीली तान को सुनकर राजा (परिमल) मोहित हो गये। उस समय रानी मलना उस वामनोत्सव को देखकर रुदन करती हुई कहने लगी—मेरा प्यारा कहाँ चला गया, भाई समेत उदयसिंह ने मुझ मन्द भागिनी को त्याग दिया है। मैं तुम्हें कहाँ पाऊँ। तुमसे शून्य जानकर इस प्रदेश को पृथ्वीराज ने लूट लिया है।३७-५५। इस प्रकार कहती हुई मलना को देख स्नेह से अधीर होकर उदयसिंह ने नम्रतापूर्वक उनसे कहा—देवि ! तुम मेरी बात स्वीकार करो ! रानी ! हम सभी योगी युद्ध करने में निपुण हैं, अतः तुम्हारे इन सभी कार्यों को सुसम्पन्न कराने के उपरांत नैमिषारण्य जाँयेगे। इसलिए तुम्हारे घर में जितने यवव्रीहि स्थित हैं, उन्हें लेकर स्त्रियाँ कीर्तिसागर के समीप चलने की तैयारी करें। हमलोग इस योगी के सेना द्वारा तुम्हारी रक्षा करेंगे। इसे सुनकर उनकी पतिव्रता पुत्री (चन्द्रावली) ने अपनी माता से कहा—यह नृत्य करने वाला उदयसिंह ही है, क्योंकि इसके दोनों नेत्र कमल के समान और अंग अत्यन्त मनोरम हैं। अतः माता! विना उदयसिंह के इस भूतल में (हम लोगों की) रक्षा के लिए कौन समर्थ हो सकता है। क्योंकि पृथ्वीराज सबके लिए दुर्जेय है, वह केवल उदयसिंह से ही पराजित हुआ है। इसे सुनकर प्रेम विभोर होकर रानी मलना ने उन यवव्रीहियों को उन सुसज्जित सुन्दरियों के हाथ में देकर डोला समेत प्रस्थान किया। चलती हुई सभी स्त्रियाँ उदयसिंह के चरित्र का वर्णन कर रही थी। उस लक्षण (लाखन) ने शीघ्रतापूर्वक अपने योगी वेषधारी सैनिकों को जो तालन आदि की अध्यक्षता में सुरक्षित होकर चल रहे थे, संचालित करते हुए कीर्तिसागर पर पहुँचकर उस दश सहस्र डोले के रक्षार्थ उसको चारों ओर से घेर

महीपतिस्तु कुलहा ज्ञात्वा कृष्णांशमागतम् । चन्द्रवंशिनमागम्य सपुत्रश्च रुरोद ह ।।६४
योगिभिस्तैर्महाराज लुण्ठिताः सर्वयोषितः । मलना संहृता तत्र तथा चन्द्रावली सुता ।।६५
महीराजस्य ते सैन्याः[1] योगिवेषास्समागताः । तारकाय सुतां प्रादान्महीराजाय मत्स्वसाम्[2] ।।६६
इति श्रुत्वा वचो घोरं ब्रह्मानन्दो महाबलः । लक्षसैन्यान्वितस्तत्र ययौ रोषसमन्वितः ।।६७
महीराजस्तु कलही सैन्यायुतमहात्मजः । रक्षितः कामसेनेन तथा रणजिता ययौ ।।६८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोर्भुवि । तालनो योगिवेषश्च ब्रह्मानन्दमुपाययौ ।।६९
लक्षणश्चाभयं शूरं देवसिंहो महीपतिम् । जित्वा बद्ध्वा च मुदितौ कामसेनस्समागतः ।।७०
लक्षणः कामसेनं च देवो रणजितं तदा । बद्ध्वा तत्र स्थितौ वीरौ शत्रुसैन्यक्षयङ्करौ ।।७१
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बद्ध्वा वै तालनं बली । लक्षणान्तमुपागम्य धनुर्युद्धमचीकरत् ।।७२
लक्षणं छिन्नधन्वानं पुनर्बद्ध्वा महाबलः । देवसिंहमुपागम्य मूर्छितं तं चकार ह ।।७३
हाहाभूते योगिसैन्ये प्रद्रुते सर्वतो दिशम् । कृष्णांशो योषितस्सर्वा वचनं प्राह नम्रधीः ।।७४
ब्रह्मानन्दोऽयमायातो मम सैन्यक्षयङ्करः । तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गच्छताशु च तं प्रति ।।७५
इत्युक्त्वा तास्समादाय ब्रह्मानन्दमुपाययौ । तयोश्चासीन्महद्युद्धं नरनारायणांशयोः ।।७६

कर स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। उस समय कलहप्रिय महीपति (माहिल) ने उदयसिंह का आगमन जानकर पुत्र समेत चन्द्रवंशी परिमल के पास पहुँचकर रुदन करते हुए उनसे कहा—महाराज! उन योगियों ने सब स्त्रियों को लूट लिया, जिसमें मलना और चन्द्रावली का भी अपहरण हुआ है। योगी के वेष में आये हुए वे सभी सैनिक पृथ्वीराज के ही थे जिन्होंने पुत्री (चन्द्रावली) तारक (ताहर) को और मेरी भगिनी (मलना) को पृथ्वीराज को सौंप दिया है। इस घोर वाणी को सुनकर महाबली ब्रह्मानन्द ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने एक लक्ष सैनिकों समेत उस स्थान को प्रस्थान किया जहाँ पृथ्वीराज अपने एक सहस्र सैनिकों के सहित उपस्थित थे। उनकी सेनाओं की रक्षा कामसेन तथा रणजित विशेष सावधानी से कर रहे थे। वहाँ की रणस्थली में दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हो रहा था, उस समय योगी के वेषधारी तालन ब्रह्मानन्द के लक्षण (लाखन) शूर प्रवर, अभयसिंह के और देवसिंह स्वयं महीपति के पास पहुँचकर सहायता करने लगे। उस बीच अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक उन्हें बाँध लेने एवं उन दोनों के प्रसन्न होने पर वहाँ कामसेन सहसा आ पहुँचा।५६-७०। उसे देखकर लक्षण (लाखन) ने कामसेन को और देवसिंह ने रणजित को पराजित कर बाँध लिया तथा वहीं अवस्थित भी रहे। उस समय बलवान् ब्रह्मा ने तालन को बाँधकर लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उनसे धनुर्युद्ध आरम्भ किया। धनुष के विनष्ट हो जाने पर लक्षण (लाखन) को भी उन्होंने बाँध लिया और देवसिंह को मूर्च्छित कर दिया। इससे योगियों की सेना में हाय-हाय मच गया और वे (सैनिक) इधर-उधर भागने लगे। ऐसा अनर्थ देखकर उदयसिंह ने नम्रता पूर्वक उन सभी स्त्रियों से कहा—'ब्रह्मानन्द यहाँ आकर मेरी सेनाओं को विनष्ट कर रहे हैं, इसलिए मेरे साथ में तुम सभी शीघ्र चलो। इतना कहकर उन्हें साथ लिए उदयसिंह ब्रह्मानन्द के पास ज्योंही पहुँचे कि दोनों (नर और नारायण) में घोर युद्ध आरम्भ हो गया। बलवान् उदयसिंह ने आकाश मार्ग से उनके रथ पर

---

१. पुंस्त्वमार्षम्। २. स्वसारमित्यर्थः।

कृष्णांशस्तु बलवान्भोमार्गेण तं प्रति । रथस्थं च समागम्य मोहयामास सोऽसिना ।।७७
तदा तु मूर्च्छिते तस्मिन्मोचयित्वा च ता मुदा । योगी सैन्यान्वितो युद्धात्पलायनपरोऽभवत् ।।७८
पराजिते योगिसैन्ये ब्रह्मानन्दो महाबलः । योषितस्ताः समादाय स्वगेहाय दधौ मनः ।।७९
महीराजस्तु सम्प्राप्तो महीपत्यनुमोदितः । रुरोध सर्वतो नारी शिवदत्तवरो बली ।।८०
नृहरश्चाभयं शूरं मर्दनश्चैव रूपणम् । मदनं वै सरदनो ब्रह्मानन्दं च तारकः ।।८१
चामुण्डः कामसेनं च धनुर्युद्धमचीकरत् । तदाभयो महावीरो धन्वन्तं नृहरं रिपुम् ।।८२
छित्त्वा धनुस्तमागत्य खड्गयुद्धमचीकरत् । नृहरः खड्गरहितोऽभवद्युद्धपराङ्मुखः ।।
तमाह वचनं क्रुद्धोऽभयो युद्धार्थमुद्यतः ।।८३
भवान्वै मातृष्वस्रीयो महीराजस्य चात्मजः ।।८४
क्षत्रियाणां परं धर्मं कथं संहर्तुमिच्छति । इति श्रुत्वा तु नृहरो गृहीत्वा परिघं रुषा ।।८५
जघान तं च शिरसि स हतः स्वर्गमाययौ । स च वै कृतवर्मांशो विलीनः कृतवर्मणि ।।८६
मदनं गोपजातं च हत्वा सरदनो बली । जयशब्दं चकारोच्चैर्पुनर्हत्वा रिपोर्बलम् ।।
उत्तरांशश्च स ज्ञेयो मदनश्चोत्तरे लयः ।।८७
रूपणश्च समागत्य मूर्छयित्वा च मर्दनम् । पुनस्सरदनं प्राप्य खड्गयुद्धं चकार ह ।।८८
ब्रह्मानन्दश्च बलवान्स बद्ध्वा तारकं रुषा । महीराजान्तमागम्य धनुर्युद्धं चकार ह ।।८९
नृहरं रणजित्प्राप्य स्वभल्लेन तदा रुषा । जघान समरश्लाघी महीराजसुतं शुभम् ।।९०

पहुँचकर तलवार द्वारा उन्हें मूर्च्छित कर दिया । पश्चात् उनके मूर्च्छित हो जाने पर उन्होंने तालन आदि को मुक्त बंधन किया । उपरांत अपनी योगी वेदधारी सेना समेत रणस्थल से प्रस्थान कर दिया । योगी सैनिकों के पराजित होने पर महाबली ब्रह्मानन्द ने उन समस्त स्त्रियों को साथ लेकर घर के लिए प्रस्थान किया । उसी बीच महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर बलवान् पृथ्वीराज ने जिन्हें शिव जी द्वारा वरदान प्राप्त था, उन स्त्रियों को चारों ओर से घेर लिया । पश्चात् युद्ध होते समय नृहर अभय के साथ, मर्दन रूपण के साथ सरदन मदन के साथ, तारक (ताहर) ब्रह्मानन्द के साथ और चामुण्ड (चौढ़ा) कामसेन के साथ धनुर्युद्ध करने लगे । अनन्तर महावीर अभय ने धनुष के टंकार करने वाले शत्रु नृहर के धनुष को भग्नकर उनसे खड्गयुद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु खड्ग के भग्न हो जाने पर युद्ध से विमुख होते नृहर को देखकर अभय ने अत्यन्त रुष्ट होकर उनसे कहा—आप पृथ्वीराज के पुत्र एवं मेरे मौसेरे भाई होकर क्षत्रिय धर्म का संहार (युद्ध से भागना, क्यों कर रहें हैं?) इसे सुनकर नृहर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर परिध अस्त्र का घातक प्रहार अभय के शिर में किया जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई, वे स्वर्ग पहुँच गये । उनका जन्म कृतवर्मा के अंश से हुआ था, इसलिए वे उन्हीं कृतवर्मा में विलीन हो गये । उसी प्रकार बली सरदन ने गोपपुत्र मदन के निधन करने के उपरांत शत्रु सेना विध्वंस करके उच्चस्वर से 'जय' शब्द की ध्वनि की । मदन का जन्म उत्तर के अंश से हुआ था, इसलिए ये उत्तर के अंश मे विलीन हो गये। उस समय रूपण ने मूर्च्छित मदन के पास पहुँचकर सरदन से खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। उधर ब्रह्मानन्द ने क्रुद्ध होकर तारक (ताहर) को बाँध लिया पश्चात् पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे धनुर्युद्ध आरम्भ किया। विजयाभिलाषी रणजित् ने अत्यन्त रुष्ट होकर अपने भल्ल अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज पुत्र उस नृहर का शिरच्छेदन कर दिया ।७१-९०।

स वै दुश्शासनांशश्च मृतस्तस्मिन्समागतः ॥९१
निहते नृहरे बन्धौ मर्दनः क्रोधतत्परः । स्वशरैस्ताडयामास सात्यकेरंशमुत्तमम् ॥९२
छित्त्वा तान्रणजिच्छूरस्स वै परिमलोद्भवः । स्वभल्लेन शिरः कायान्मर्दनस्य स चाहरत् ॥९३
मृतेऽस्मिन्मर्दने वीरे तदा सरदनो बली । ताडयामास तं वीरं स्वभल्लेनैव वक्षसि ॥९४
महत्कष्टमुपागम्य रणजिन्मलनोद्भवः । स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत वैरिणः ॥९५
त्रिबन्धो[१] निहते युद्धे तारकः क्रोधमूर्छितः । रथस्थश्च रथस्थं च ताडयामास वै शरैः ॥९६
छित्त्वा बाणं च रणजित्तथैव च रिपोर्द्धनुः । त्रिशरैस्ताडयामास कर्णांशं तारकं हृदि ॥९७
अमर्षवशमापन्नो यथा दण्डैर्भुजङ्गमः । ध्यात्वा च शङ्करं देवं विषधौतं शरं पुनः ॥९८
सन्धाय तर्जयित्वा च शत्रुकण्ठमताडयत् । तेन बाणेन रणजित्त्यक्त्वा देहं दिवं गतः ॥९९
हते तस्मिन्महावीर्ये ब्रह्मानन्दश्च दुःखितः । महीराजभयाद्ब्रह्मा पुरस्कृत्य च योषितः ॥
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते भाद्रकृष्णाष्टमीदिने ॥१००
कपाटं सुदृढं कृत्वा सैन्यैः षष्टिसहस्रकैः । सार्द्धं गेहमुपागम्य शारदां शरणं ययौ ॥१०१
महीराजस्तु बलवान्पुत्रशोकेन दुःखितः । सङ्कल्पं कृतवान्घोरं शृण्वतां सर्वभूभृताम् ॥१०२
शिरीषाख्यपुरं रम्यं यथा शून्यं मया कृतम् । तथा महावती सर्वा ब्रह्मानन्दादिभिस्सह ॥
क्षयं यास्यन्ति मद्बाणैः सर्वे ते चन्द्रवंशिनः ॥१०३

नृहर का जन्म दुःशासन के अंश से हुआ था, इसीलिए निधन होने पर उसी के अंश में विलीन हो गया। नृहर के मरणोपरांत क्रुद्ध होकर मर्दन अपने वाणों द्वारा उस सात्विक अंश (रणजित्) पर घात-प्रतिघात करना आरम्भ किया। परिमल पुत्र रणजित् ने उनके वाणों को छिन्न-भिन्नकर अपने भल्लास्त्र द्वारा मर्दन के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया। वीर मर्दन के निधन होने पर वली सरदन ने अपने भल्लास्त्र द्वारा वीर रणजित् के वक्षस्थल में प्रहार किया। मलना-पुत्र रणजित् ने उस अस्त्र द्वारा ताडित होने पर अत्यन्त कष्ट का अनुभव करते हुए अपने खड्ग द्वारा उस वैरी के शिर को छिन्न-भिन्न कर दिया। तीनों भाइयों के निधन हो जाने पर रथ-स्थायी तारक (ताहर) ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथ स्थित रणजित् पर वाणों का प्रहार किया। उसी प्रकार रणजित् ने भी शत्रु के धनुष-बाण को विनष्टकर अपने तीन बाणों द्वारा शत्रु के हृदय में भीषण प्रहार किया। पश्चात् दण्ड से आहत सर्प की भाँति अत्यन्त क्रुद्ध होकर तारक (ताहर) ने शिवजी का ध्यान करते हुए अपने विषाक्त वाण द्वारा शत्रु रणजित् का कण्ठच्छेदन कर दिया और उसी अस्त्र से आहत होकर रणजित् अपनी शरीर का त्यागकर स्वर्ग पहुँच गये। उस महापराक्रमी के निधन होने पर ब्रह्मानन्द अत्यन्त दुःखी हुए। पश्चात् उस भाद्रकृष्ण अष्टमी के दिन ब्रह्मानन्द ने शेष साठ सहस्र अपने सैनिकों से सुरक्षित उन स्त्रियों समेत अपने घर आकर पृथ्वीराज के भय से (सदर दरवाजे के) किवाड़ को दृढ़तापूर्वक बन्द कराकर शारदा की शरण प्राप्त की। बलवान् पृथ्वीराज ने भी पुत्र शोक से दुःखी होकर सभी राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार शृंशिपपुर को मैंने शून्यस्थल बना दिया, उसी भाँति ब्रह्मानन्दादि चन्द्रवंशियों समेत महावती (महोवा) नगर भी मेरे वाणों द्वारा विध्वंस कर दिया जायेगा। इतना कहकर राजा ने धुंधुकार (धांधू) को बुलाकर

---

१. समाहारे पुंस्त्वमार्षम्।

इत्युक्त्वा धुन्धुकारं वै चाह्वयामास भूपतिः । पञ्चलक्षबलैस्सार्द्धं शीघ्रमागम्यतां प्रिय ।।१०४
इति श्रुत्वा धुन्धुकारो गत्वा शीघ्रं च देहलीम् । उषित्वा सप्त दिवसान्युद्धभूमिमुपागमत् ।।१०५
तदाष्टलक्षसहितो महीराजो महाबलः । तारकेण च संयुक्तो युद्धाय समुपाययौ ।।१०६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे सर्वमङ्गले । भाद्रकृष्णदशम्यां च मलना शोककातरा ।।
जननाथकमाहूय वचनं प्राह दुःखिता ।।१
अये कच्छपदेशीय गोतमान्वयसम्भव । हरिनागरमारुह्य कान्यकुब्जं व्रजाधुना ।।२
पुत्रमाह्लादमाहूय सानुजं मत्प्रियङ्करम् । इति श्रुत्वा तु वचनं हृदि सञ्चिन्त्य वै पुनः ।।३
मलनां दुःखितां प्राह न त्वायास्यति स प्रभुः । राज्ञः परिमलस्यैव वाक्यं मत्वा सुदुःखदम् ।।४
इति श्रुत्वा तु वचनं रुरोद मलना सती । पुनर्मूर्च्छां गता भूमौ जीवनं त्यक्तुमुद्यता ।।५

कहा—प्रिय ! पाँच लाख सैनिकों को लेकर तुम भी शीघ्र यहाँ आ जाओ । इसे सुनकर धुंधुकार (धांधू) दिल्ली जाकर सात दिन के भीतर पुनः उस रणभूमि में आ गये । पश्चात् तारक (ताहर) समेत महाबली पृथ्वीराज ने अपने आठ लाख सैनिकों को साथ ले पुनः युद्ध की तैयारी की ।९१-१०६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अध्याय २७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मंगलमूर्ति उदयसिंह की सत्ताईसवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ में भादों मास के कृष्णपक्ष की दशमी के दिन रानी मलना अधिक चिंतित होने के कारण जननायक को बुलाकर दुःखी होकर उनसे कहने लगी—कच्छप देश के निवासी एवं गौतम कुलभूषण ! प्रिय, तुम इसी समय हरिनागर पर बैठकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) से छोटे भाई समेत पुत्र आह्लाद (आल्हा) को जो मेरे अत्यन्त प्यारे बच्चे हैं, शीघ्र बुलालाओ ! इसे सुनकर उन्होंने इनकी बातों पर विशेष ध्यान देकर उस दुःखी रानी मलना को नमस्कार कर वहाँ से प्रस्थान किया । किन्तु राजा परिमल की उन दुःखद बातों का स्मरण कर रानी मलना रुदन करने लगी । चेतना प्राप्त होने पर प्राण विसर्जन के लिए तैयार होकर कहने लगी—हा रामांश आह्लाद (आल्हा) और कृष्णांश सुन्दर

हा रामांश महाबाहो वत्स कृष्णांश सुन्दर । क्व गतौ सह देवक्या त्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् ।।६
तदा परिमलापुत्रो दृष्ट्वा राज्ञीं तथा गताम् । बहुधाश्वास्य बलवान्कान्यकुब्जपुरं ययौ ।।७

ऋषय ऊचुः

त्वया परिमलापुत्रस्सम्प्रोक्तो जननायकः । रोमहर्षण नो ब्रूहि सोऽयं कस्तेन किं कृतम् ।।८

सूत उवाच

इन्द्रप्रस्थपुरेवात्सीत्प्रद्योतः कथितो मया । पिता परिमलस्यैवानात्योऽनङ्गमहीपतेः ।।९
तस्य कन्या समाजाता नाम्ना परिमला मुने । दुःशलांशसमुद्भूता रम्भेव सुकुमारिका ।।१०
तद्विवाहार्थमुद्योगः कृतः पित्रा स्वयम्वरः । पुत्रः कच्छपभूपस्य स नाम्ना कमलापतिः ।।
तामुद्वाह्य विधानेन स्वगेहाय ययौ मुदा ।।११
तयोस्समागमो जातः पुत्रोऽयं जननायकः । शत्रुविद्यापरः शूरः खड्गयुद्धविशारदः ।।१२
जित्वा भूपान्बलाद्वीरः सिन्धुतीरनिवासिनः । षडशङ्करमादाय पितृराज्यमुपस्थितः ।।१३
एकदा तु महीराजः स्वसैन्यपरिवारितः। कच्छदेशमुपागम्य करार्थं समुपस्थितः ।।१४
तयोश्चासीन्महद्युद्धं जननायकभूपयोः । मासान्ते सूर्यवंशीयो महीराजेन निर्जितः ।।१५
त्यक्त्वा राष्ट्रं च सकुलः सम्प्राप्तश्च महावतीम् । परिमलस्तु तदा राजा तस्मै ग्रामं शुभं ददौ ।।१६
निवासं कृतवांस्तत्र स्वनाम्ना प्रथितं भुवि । स वै कच्छपदेशीयो ययौ परिमलाज्ञया ।।१७

प्यारे उदयसिंह ! मुझ हत भागिनी को छोड़कर देवकी को साथ लेकर तुम लोग कहाँ चले गये । उस समय परिमल पुत्र (जननायक) ने रानी को अनेक प्रकार के आश्वासन प्रदान किया और पश्चात् कन्नौज की यात्रा की ।१-७

ऋषियों ने कहा—रोमहर्षण ! आपने जननायक को परिमल का पुत्र बताया है, अतः हमें यह जानने की इच्छा है कि ये कौन है, और क्या किया है? बताने की कृपा करें ।८

सूत जी बोले—परिमल के पिता का नाम प्रद्योत था, जो दिल्ली के निवासी एवं राजा अनंग के मंत्री थे, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ । मुने ! उन्हीं की परिमला नामक पुत्री थी, जो दुःशला के अंश से उत्पन्न तथा रम्भा की भाँति कोमल वदना थी । उसके विवाहार्थ उसके पिता ने स्वयम्बर किया । उस स्वयम्बर में कच्छप प्रदेश के अधीश्वर के पुत्र कमलापति ने उसका सविधान पाणिग्रहण कर उसे लेकर सप्रेम अपने घर को प्रस्थान किया । उन्हीं दोनों के समागम से यह जननायक नामक पुत्र हुआ, जो रणकुशल शूर एवं खड्ग युद्ध में अत्यन्त निपुण है । सिन्धुतीर निवासी राजाओं पर विजय प्राप्त कर उनसे छठा अंश कर प्राप्त किया ।९-१४। एक बार राजा पृथ्वीराज ने कर ग्रहण करने के निमित्त अपनी सेनाओं समेत कच्छप देश को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उन दोनों (जननायक) और पृथ्वीराज में घोर संग्राम आरम्भ हुआ । वह सूर्यवंशीय एक मास के अन्त में पृथ्वीराज से पराजित हुआ। पश्चात् उस राष्ट्र का त्यागकर वे सपरिवार महावती (महोबा) चले आये। उस समय राजा परिमल ने उन्हें ग्राम प्रदान किया। जिसमें निवास करते हुए वे भूतल में अपने इस नाम से ख्याति प्राप्त हैं। वही कच्छप देशीय (जननायक) परिमल की आज्ञा से कन्नौज जा रहे हैं। उनके यात्रा करने के उपरांत

तदासौ च महीराजो महीपत्यनुमोदितः । चामुण्डं शीघ्रमाहूय लक्षसैन्यसमन्वितम् ॥
आदेशं कृतवान्राजा तस्य बन्धनहेतवे ॥१८
स च नेत्रवतीकूले सम्प्राप्ते लक्षसैन्यपः । रुरोध सूर्यवंशीयं जननायकमुत्तमम् ॥१९
स तदा खड्गमादाय बाहुशाली यतेन्द्रियः । तत्र शूरशतं हत्वा नभोमार्गमुपाययौ ॥२०
सेनापतेश्च मुकुटं गजस्थस्य गृहीतवान् । लज्जितः स तु चामुण्डो वचनं प्राह नम्रधीः ॥२१
भवान्वृत्तिकरो मह्यं क्षत्रियो ब्राह्मणस्य वै । देहि मे मुकुटं वीर चिरञ्जीवसुखीभव ॥२२
इति श्रुत्वा स विनयं दत्त्वा तस्मै शुभं वसु । कुठारनगरे प्राप्तो वामनेन सुरक्षितः ॥२३
दृष्ट्वा तत्र वटच्छायां श्रमेणातीव कर्षितः । सुष्वाप निर्भयो वीरस्तत्र स्थाने सुखप्रदे ॥२४
तदा तु वामनो ज्ञात्वा स्वदूतैस्तत्र कारणम् । वस्त्राण्याच्छाद्य चागम्य चाहरद्धरिनागरम् ॥२५
हृते तस्मिंश्च दिव्याश्वे प्रबुद्धो जननायकः । चिन्तामवाप्य महतीं रोदनं कृतवान्बहु ॥२६
अश्वाङ्घ्रिचिह्नमालोक्य वामनं प्राप्य निर्भयः । वचनं प्राह नम्रात्मा नृपं गौरान्वयोद्भवम् ॥२७
क्षत्रियाणां हि संहास्यो भयदो भुवि सर्वदा । स भवान्राजनीतिज्ञो देहि मेऽश्वं सुखीभव ॥२८
नो चेत्त्वां वै सनगरं कृष्णांशः क्षपयिष्यति । इति श्रुत्वा तु वचनं वामनो गौरवंशजः ॥२९
भयभीतो विनिश्चित्य प्रददौ हरिनागरम् ॥३०
प्रतोदं स्वर्णरचितं नानारत्नसमन्वितम् । लोभाच्च न ददौ राजा मृषा शपथकारकः ॥३१
तदा परिमलापुत्रः कुण्ठितः प्राह भूपतिम् । प्रतोदलोभात्ते राजन्क्षयं दुर्गो गमिष्यति ॥३२

महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर पृथ्वीराज ने चामुण्ड (चौढ़ा) को आज्ञा प्रदान की कि एक लाख सैनिकों समेत तुम जननायक को बाँध लो इसे शिरोधार्य कर सेनानायक चामुण्ड (चौढ़ा) ने वेत्रवती (बेतवा) नामक नदी के तट पर पहुँचकर सूर्यवंशीय जननायक को रोक लिया । उपरांत उस बाहुशाली एवं संयमी वीर ने अपने खड्ग द्वारा सौ वीरों के शिरच्छेदन करने के पश्चात् आकाश मार्ग से जाकर गजराज पर बैठे हुए सेनापति (चौढ़ा) के मुकुट को अपने हाथ में ले लिया । उस समय लज्जित होकर नम्रतापूर्वक चामुण्ड (चौढ़ा) ने उनसे कहा—आप क्षत्रिय जाति के हैं मेरे तथा अन्य ब्राह्मणों के वृत्तिदाता हैं। अतः वीर! मुझे मुकुट देने की कृपा करके चिरजीवी एवं सुखी रहें । इसे सुनकर सनम्र होकर उन्होंने उस शुभमुकुट को लौटा दिया । अनन्तर राजा वामन द्वारा सुरक्षित उनके कुठार नगर में पहुँचकर वहाँ एक वटवृक्ष की छाया में अतिश्रान्त होने के नाते निर्भय शयन किया । उस सुखप्रद स्थान में उस वीर के शयन करने पर वामन के अपने दूत द्वारा उनके वहाँ आगमन के कारण को जानकर अपने को छिपाते हुए साधारण वेष में आकर हरिनागर घोड़े का अपहरण कर लिया । उस दिव्य अश्व के अपहरण हो जाने पर घोड़े को न देखकर चिंतित होते हुए जननायक ने बहुत रुदन किया । पश्चात् घोड़े के चरण चिह्न देखते हुए वामन के पास पहुँचकर उनसे निर्भय होकर कहा—आप गौरवंश के भूषण हैं । किन्तु क्षत्रियों के हास्यास्पद होने की बात सदैव के लिए आपने इस भूतल में उत्पन्न कर दी है । मेरी प्रार्थना है कि आप राजनीतिज्ञ हैं, अतः अश्व मुझे लौटाकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें अन्यथा उदयसिंह इस नगर समेत तुम्हारा विनाश कर देंगे । इसे सुनकर गौरवंशीय वामन ने भयभीत होकर अपने हृदय में भली भाँति निश्चित कर हरिनागर उन्हें लौटा दिया ।१५-३०। परन्तु स्वर्ण, भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित उस प्रतोद (कोड़े) को लोभवश न लौटा सके,

इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः कान्यकुब्जं महोत्तमम् । लक्षणो हस्तिनीसंस्थो वचनं प्राह गर्वितः ।।
कस्त्वं प्राप्तो हयारूढो निर्भयः क्षत्रियोत्तमः ।।३३
स होवाच महाराज प्रेषितश्चन्द्रवंशिना । तवान्तिकं समायातः शरणागतवत्सल ।।३४
महीराजश्च बलवान्सकुलं चन्द्रवंशिनम् । हनिष्यति च रौद्रास्त्रैर्महीपत्यनुमोदितः ।।३५
अतस्त्वं स्वबलैस्सार्द्धं सहाह्लादादिभिर्युतः । गच्छ गच्छ महाराज मृतानुज्जीवयाधुना ।।३६
इत्युक्तो लक्षणस्तेन जयचन्द्रं प्रणम्य सः । सर्वं वै कथयामास महीराजो यथागतः ।।३७
जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा चाहूय जननायकम् । वचनं प्राह क्रुद्धात्मा शृणु गौतमवंशज ।।३८
राजा परिमलः क्रूरस्त्यक्त्वा मां निजभूपतिम् । प्रीतिं च कृतवांस्तेन मच्छत्रोर्देहलीपतेः ।।३९
प्रियं सम्बन्धिनं मत्वा संत्यक्तास्तेन रक्षकाः । यथा कृतं फलं तेन भोक्तव्यं च तथा भुवि ।।४०
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशः प्राह नम्रधीः । राजञ्छुद्धः परिमलो महीपत्यनुवाचकः ।।
अतो वै त्वां समुत्सृज्य भूमिराजवशं गतः ।।४१
भवान्वै सर्वधर्मज्ञस्तत्क्षमस्वापराधकम् । आज्ञां देहि महाराज निवत्स्यामस्तदन्तिकम् ।।४२
इति श्रुत्वा तु वचनं जयचन्द्रो महीमतिः । कृष्णांशः प्राह भो वीर देहि मे भुक्तिमूल्यकम् ।।
शीघ्रं व्रज त्वं सकुलो नो चेन्नो गन्तुमर्हसि ।।४३
इति श्रुत्वा विहस्याह कृष्णांशस्सर्वमोहनः । मया दिग्विजयः सर्वः कृतो भीरुभयङ्करः ।।
तद्देयं देहि मे राजन्गृहाण भुक्तिमूल्यकम् ।।४४

प्रत्युत झूठी शपथ करने लगे। उनके शपथ से कुंठित होकर परिमल पुत्र (जननायक) ने कहा—राजन् ! यह प्रतोद (कोड़े) का लोभ आपके दुर्ग का विनाश कर देगा। इतना कहकर वह वीर उत्तम कन्नौजपुरी में पहुँचा कि हस्तिनी पर बैठे हुए लक्षण (लाखन) ने अभिमान वश कहा—घोड़े पर बैठकर निर्भीक तथा उत्तम क्षत्रिय की भाँति तुम कौ हो। उन्होंने कहा—महाराज—चन्द्रवंशी (परिमल) ने मुझे भेजा है, शरणागत वत्सल ! मैं आपके ही समीप आया हूँ। महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर पृथवीराज ने रौद्र अस्त्रों द्वारा चन्द्रवंशीय कुल का विध्वंश करना निश्चिय किया है। अतः आप अपनी सेना समेत आह्लाद (आल्हा) आदि के साथ चलने की कृपा करें। महाराज ! इस मय चलकर आप उन मृतकों को प्राणदान दीजिये। एसा कहने पर लक्षण (लाखन) ने जयचन्द्र से प्रणाम पूर्वक पृथ्वीराज के महावती (महोवा) में चढ़ाई करने आदि सभी बातें कह सुनाया। इसे सुनकर जयचन्द्र ने जननायक को बुलाकर कहा—राजा परिमल अत्यन्त क्रूर है, क्योंकि मुझ अपने स्वामी का संबंध स्थगितकर उन्होंने मेरे शत्रु दिल्लीपति पृथ्वीराज से प्रेम संबंध स्थापित किया है। उन्हें ही अपना प्रिय संबंध समझकर इन रक्षकों का भी परित्याग कर दिया। इसलिए इस भूतल में जैसा करे वैसा फल भोगना पड़ता है। (इसमें मैं क्या कर सकता हूँ) इसे सुनकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह ने कहा—राजन् ! परिमल तो अतिशुद्ध है किन्तु महीपति (माहिल) की बात मानकर वे आपसे पृथक् होकर पृथ्वीराज के वश में हुए हैं। इसलिए प्रार्थना है कि आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता है, उस अपराध को क्षमा करें। महाराज की आज्ञा हो। हम लोग उन्हीं के यहाँ निवास करना चाहते हैं। इसे सुन राजा जयचन्द्र ने कहा—उदयसिंह ! मेरे यहाँ के रहने का मूल्य प्रदानकर परिवार समेत शीघ्र जा सकते हो, अन्यथा असम्भव है। इसे सुनकर हँसते हुए सर्वमोहन उदयसिंह ने कहा—मैंने जो चारों ओर भीषण दिग्विजय किया है, उसका कर देने की कृपा करें। पश्चात् आप अपना निवासकर (गृह-किराया) चुका

इत्युक्तस्स तु भूपालः कृष्णांशेन विलज्जितः । सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं महाबलम् ॥४५
तदा वै सकुलो वीरश्चाह्लादो लक्षणान्वितः । नृपस्याग्रे समास्थाय नमस्कृत्य ययौ मुदा ॥४६
कुठारनगरं प्राप्य नृपदुर्गं रुरोध ह । ज्ञात्वा स वामनो भूपः प्रतोदं च ददौ मुदा ॥४७
सैन्यायुतयुतं भूपं वामनं लक्षणो बली । पश्चात्कृत्य ययौ शीघ्रं यमुनातटमुत्तमम् ॥४८
यमुनाजलमुत्तीर्य कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् । गङ्गासिंहं च नृपतिं षष्टिसाहस्रसंयुतम् ॥
पुरस्कृत्य ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः ॥४९
नदीं वेत्रवतीं रम्यां समागम्य बलैस्सह । तत्रोषुः क्षत्रियाः शूरास्सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः ॥५०
एतस्मिन्नन्तरे वीरश्चामुण्डो लक्षसैन्यपः । शतघ्नीः स्थापयामास भैरवीः शत्रुनाशिनीः ॥५१
तयोश्चासीन्महद्युद्धं शतघ्नीरणसंस्थयोः । प्रहरान्ते च तत्सैन्यं दृष्ट्वा शूरः पराजितम् ॥५२
रक्तबीजः समागम्य गजस्थस्त्वरितो बली । स्वबाणैस्ताडयामास सैन्यं तालनपालितम् ॥५३
केचिच्छूरा हता युद्धे केचित्तत्र पराजिताः । दुद्रुवुर्भयभीताश्च चामुण्डेन च पीडिताः ॥५४
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा तालनः परिघायुधः । जघान तेन स गजं चामुण्डो भूमिनागतः ॥५५
खड्गयुद्धपरो वीरस्तालनं परिघायुधम् । पराजित्य ययौ पश्चाच्छत्रुसैन्यक्षयङ्करः ॥५६
लक्षणस्त्वरितो गत्वा स्वभल्लेन च तं रिपुम् । भुजयोस्ताडयामास तदा ते बहुधाऽभवन् ॥५७

लें । उदयसिंह के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त लज्जित होते हुए राजा ने अपेन सात लाख सैनिकों को उनके साथ जाने का आदेश दिया । वीर उदयसिंह ने अपने सभी परिवार एवं लक्षण (लाखन) को भी साथ ले राजा के सामने जाकर उन्हें प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थान किया । मार्ग में चलते हुए सर्वप्रथम कुठार नगर के दुर्ग को घेर लिया । उनका आगमन जानकर राजा वामन ने सहर्ष उस प्रतोद (कोड़े) को उन्हें प्रदान किया । बलवान् लक्षण (लाखन) ने दश सहस्र सेना समेत आये हुए उन वामन को पीछे आने के लिए आदेश प्रदान कर स्वयं यमुना नदी के उत्तम तटपर पहुँचने के लिए शीघ्र प्रस्थान किया । वहाँ यमुना जल को पारकर वीर लक्षण (लाखन) ने साठ सहस्र सैनिक समेत उपस्थित राजा गंगासिंह को आगे चलने के लिए आदेश देते हुए स्वयं वेत्रवती (वेतवा) नदी के सुरम्य तट पर पहुँचने के लिए प्रस्थान किया । सेनाओं समेत वहाँ पहुँचने पर समस्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित वे वीर क्षत्रियगण वहाँ निवास करने लगे । उसी बीच एक लक्ष सैनिकों समेत वीर चामुण्ड (चौढ़ा) ने भीषण गर्जना करने एवं शत्रुध्वंस करने वाली तोपों को वहाँ रखकर युद्ध आरम्भ कर दिया था । एक पहर तक दोनों ओर की भीषण तोपों की गोलाबारी, युद्ध होने के उपरांत, अपने शूरवीरों को पराजित होते देखकर बली रक्तबीज ने हाथी पर बैठे शीघ्र वहाँ पहुँचकर अपने वाणों द्वारा तालन के सैनिकों को आघात करना आरम्भ किया । उस आघात से आहत होने पर कुछ सैनिक स्वर्गीय हुए और कुछ इधर उधर भागने लगे, क्योंकि वे सब चामुण्ड (चौढ़ा) द्वारा अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे । अपनी सेना को भग्न होते देखकर तालन ने अपने परिध अस्त्र के प्रहार द्वारा गजसमेत चामुण्ड को भूमिपर गिरा दिया । उस समय वीर चामुण्ड (चौढ़ा) ने खड्ग युद्ध द्वारा परिध अस्त्र वाले तालन को पराजित कर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहा कि उसी समय उस शत्रु सेना (लाखन) के निहन्ता के दोनों भुजाओं में वीर लक्षण (लाखन) ने वहाँ आकर शीघ्र अपने

सहस्रं रक्तबीजाश्च खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः । तिष्ठतिष्ठेति भाषन्तः क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ।।५८
आह्लादाद्याश्च ते शूरा रक्तबीजभयातुराः । त्यक्त्वा युद्धं ययुस्सर्वे ब्रह्मानन्दं महाबलम् ।।५९
ब्रह्मानन्दस्तु तान्दृष्ट्वा गत्वा स्वपितरं प्रति । वृत्तान्तं कथयामास लक्षणागमनं मुनेः ।।६०
श्रुत्वा परिमलो राजा प्रेमविह्वलगद्गदः । आह्लादपार्श्वमागम्य रुरोद भृशमातुरः ।।६१
तदा तु देवकी देवी नृपतिं प्रेमतत्परम् । उवाच सुमुखी दीना वयं ते भक्तितत्पराः ।।६२
भवता सम्परित्यक्ता विचरामोऽन्यभूपतिम् । क्षमस्व मम दौरात्म्यं पूर्वजन्मविपाकजम् ।।६३
इति श्रुत्वा च नृपतिः परमानन्दनिर्भरः । मन्त्रिणश्चाधिकारं च रामांशाय ददौ मुदा ।।
स्वकीयं लक्षसैन्यं च तत्पतिश्चोदयः कृतः ।।६४
ततः पञ्चदिनान्ते तु महीराजस्समागतः । रुरोध नगरीं सर्वां चामुण्डबलदर्पितः ।।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं मासमात्रं भयानकम् ।।६५
प्रभाते विमले जाते कृष्णांशो लक्षसैन्यपः । चामुण्डान्तमुपागम्य सहस्रं स्वाङ्गसम्भवम् ।।
चिच्छेद च शिरस्तेषां चामुण्डानां पृथक्पृथक् ।।६६
छिन्ने शिरसि ते सर्वे लक्षवीरा बभूविरे । तदा तद्व्याकुलं सैन्यं चामुण्डैस्तैः प्रपीडितम् ।।६७
विस्मितश्चैव कृष्णांशो भयभीतस्तदा मुने । तुष्टाव शारदां देवीं सर्वमङ्गलकारिणीम् ।।६८

भल्लास्त्र द्वारा प्रहार किया । उस समय वह रक्तबीज सहस्र की संख्या में दिखाई देने लगा, जो खड्ग एवं शक्ति आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध में दुर्मदान्ध क्षत्रियों को ठहरो-ठहरो कहकर ललकार रहे थे। रक्तबीज के उन अनेक रूपों को देखकर आह्लाद (आल्हा) आदि वीरगण भयभीत होकर महाबली ब्रह्मानन्द के पास पहुँच गये। ब्रह्मानन्द ने उन्हें देखकर अपने पिता के पास जाकर उनसे लक्ष्मण (लाखन) के आगमन का वृत्तान्त कहा मुने ! उसे सुनकर राजा परिमल प्रेम—व्याकुल होकर आह्लाद (आल्हा) के पास पहुँचकर आतुरतावश गद्गद वाणी द्वारा रुदन करने लगे। उस समय कल्याणमुखी देवी देवकी ने प्रेम विभोर राजा से कहा— हम लोग आपके सम्मुख दीन एवं आपकी सेवा पूर्व की भाँति सदैव करने के लिए तैयार हैं। श्रीमान ने ही हमारा त्याग किया था अतः हमलोग अन्य राजा के आश्रित होने के लिए (इधर-उधर) विचर रहे थे। किन्तु यह सब पूर्वजन्म के पापों का दुष्परिणाम था उसे क्षमा करने की कृपा करें। उसे सुनकर राजा परमानन्द मग्न होकर आह्लाद (आल्हा) को मंत्रिपद और समस्त सेनाओं का आधिपत्य उदयसिंह को प्रदान किया।३१-६४। उसके पाँचवें दिन पृथिवीराज ने जिन्हें चामुण्ड (चौढ़े) के बल का अधिक गर्व था, वहाँ पहुँचकर उनकी नगरी को चारों ओर से घेर लिया। उन दोनों में एक मास तक भयानक युद्ध होने के उपरांत प्रातः काल के निर्मल समय में लक्ष सेनाध्यक्ष उदयसिंह ने चामुण्ड के पास पहुँचकर उनके पृथक्-पृथक् रूपों का शिरच्छेदन कर दिया, जो सहस्र की संख्या में विद्यमान थे। उनके शिरच्छेदन करने पर वे वीरगण लक्ष की संख्या में दिखाई देने लगे। उस समय उन चामुण्डों से पीड़ित होकर इनकी सेना व्याकुल हो उठी। मुने ! उस समय भयभीत होकर उदयसिंह भी मंगलकारिणी देवी शारदा जी की स्तुति करने लगे—६५-६८

कृष्णांश उवाच

नमस्ते शारदे मातर्ब्रह्मलोकनिवासिनि । त्वया ततमिदं विश्वं शब्दमात्रनिरन्तरम् ॥६९
रक्तबीजविनाशाय चामुण्डारूपधारिणी । नमस्ते दिव्यचामुण्डे पाहि मां शरणागतम् ॥७०
इति श्रुत्वा स्तवं देवी वरदा सर्वकारिणी । तस्य खड्गमुपागम्य रक्तबीजं ददाह वै ॥७१
भस्मीभूते लक्षरिपौ चामुण्डो भूमिमागतः । बबन्ध तं स कृष्णांशो ब्रह्मानन्दान्तिकं ययौ ॥७२
भूमिराजस्तु तच्छ्रुत्वा भयभीतः समागतः । तदा परिमलं भूपं दयालुं प्रेमविह्वलम् ॥
उवाच वचनं राजा क्षमस्व मम दुष्कृतम् ॥७३
महीपतेश्च वचनान्महद्भयमुपागतम् । अद्य प्रभृति भो वीर संत्यक्तः कलहः प्रियः ॥
भवांश्च मम सम्बन्धी वयं वै तव किङ्कराः ॥७४
इति श्रुत्वा परिमलो राजानमिदमब्रवीत् । रत्नभानोश्च तनयं लक्षणं नाम विश्रुतम् ॥
शरण्यं शरणं याहि विष्णुभक्तं दयापरम् ॥७५
इति श्रुत्वा भूमिराजो द्विजरूपधरो बली । साष्टाङ्गं दण्डवद् भूमौ लक्षणस्य चकार ह ॥७६
तदा तु लक्षणो वीरः कृत्वा स्नेहं नृपोपरि । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं कान्यकुब्जमुपाययौ ॥७७
फाल्गुने मासि सम्प्राप्ते सर्वे स्वं स्वं गृहं ययुः ॥७८

उदयसिंह बोले—ब्रह्मलोक की निवासिनी उस मातृ शारदा को नमस्कार है, जिसने शब्द मात्र से निर्मित इस सम्पूर्ण विश्व को विस्तृत किया है। उस चामुण्डा देवी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, जिसने रक्तबीज के हननार्थ चामुण्डा का रूप धारण किया है। (देवी) मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। इस स्तुति को सुनकर सभी कुछ करनेवाली एवं वरदहस्ता भगवती ने उदयसिंह के खड्ग में निवासकर रक्तबीज के सभी रूपों को भस्म कर दिया। उस शत्रु के लक्षरूपों के भस्म हो जाने पर केवल चामुण्ड (चौढ़ा) भूमि पर स्थित रह गया। उस समय उदयसिंह ने उसे बाँधकर ब्रह्मानन्द के पास भेज दिया। उसे सुनकर राजा पृथ्वीराज ने अत्यन्त भयभीत होकर राजा परिमल के पास जो प्रेम विभोर एवं दया की मूर्ति थे, पहुँचकर उनसे कहा—आप मेरे अपराध को क्षमा करने की कृपा करें। महीपति (माहिल) की बातों में आकर मैनें ऐसा किया था, जिसके कारण मुझे महान् भय उपस्थित हो गया है। वीर ! आज से आपका हमारा कलह समाप्त होकर प्रेम के रूप में परिणत हो गया, आप हमारे सम्बन्धी हैं और हम आपके सेवक। इसे सुनकर राजा परिमल ने उनसे कहा—रत्नभानु के पुत्र, जिनकी लक्षण (लाखन) नाम से ख्याति है, और जो शरणप्रद हैं, शरण में जाइये। वे विष्णु जी के भक्त एवं अत्यन्त दयालु हैं। इसे सुनकर वली पृथ्वीराज ने ब्राह्मण वेष धारणकर लक्षण (लाखन) के सम्मुख भूमि में उनको साष्टांग दण्डवत् किया। उस समय वीर लक्षण (लाखन) ने भी उनके ऊपर अपार स्नेह प्रकट किया, पश्चात् अपनी सात लाख सेना समेत कान्यकुब्ज (कन्नौज) के लिए प्रस्थान भी किया। अनन्तर उस फाल्गुनमास के अवसर पर सभी लोग अपने-अपने

बलखानेर्गयाश्राद्धमचीकरदविप्लुतः । चैत्रमासि सिते पक्षे सम्प्राप्य निजमन्दिरे ॥
ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

अष्टाविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । कार्तिक्यामिन्दुवारे च कृत्तिकाव्यतिपातभे ॥१
कृष्णांशोऽयुतसेनाढ्यः स्वर्णवत्या समन्वितः । विवाहमुकुटस्यैव सन्त्यागाय ययौ मुदा ॥२
पवित्रमुत्पलारण्यं वाल्मीकिमुनिसेवितम् । गङ्गाकूले ब्रह्ममयं लोहकीलकमुत्तमम् ॥३
तत्र गत्वा स शुद्धात्मा पुष्पवत्या समन्वितः । गोसहस्रं च विप्रेभ्यो ददौ स्नाने प्रसन्नधीः ॥४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता म्लेच्छजातिसमुद्भवा । शोभा नाम महारम्या वेश्या परमसुन्दरी ॥५
सा ददर्श परं रम्यं कृष्णांशं पुरुषोत्तमम् । तद्दृष्टिमोहमापन्ना व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥६
मूर्च्छितां तां समालोक्य कृष्णांशः सर्वमोहनः । स्वनिवासमुपागम्य विप्रानाहूय पृष्टवान् ॥७

घर चले गये । इन लोगों ने चैत्रमास के आरम्भ में बलखानि (मलखान) के निमित्त गयाश्राद्ध करके उसके शुक्लपक्ष में अपने घर पहुँचकर सहस्र वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराया ।६९-७९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्वपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—अपने अट्ठाईसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर उदयसिंह ने कार्तिकमास के चन्द्र दिन जिसमें कृत्तिका नक्षत्र एवं व्यतीपात योग सन्निहित थे, अपनी दश सहस्र सेना लेकर स्वर्णवती (सोना) देवी समेत विवाह-मुकुट के त्यागार्थ गंगा के तट के उस स्थान पर प्रस्थान किया जहाँ कमल का अरण्य सा दिखाई देता था । उसी पवित्र उत्पलारण्य में महर्षि बाल्मीक जी निवास करते थे। गंगा के तट पर वह स्थान ब्रह्ममय होने के नाते लोहे की भाँति कीलित कहा जाता है । वहाँ पहुँचकर शुद्धात्मा उदयसिंह ने पुष्पवती के साथ स्नान के उपरांत प्रसन्न होकर सहस्र गोदान ब्राह्मणों को प्रदान किया । उसी बीच शोभा नाम की एक परम सुन्दरी वेश्या आई, जो अत्यन्त सुरम्य और म्लेच्छ कुल में उत्पन्न थी । वह परमसुन्दर एवं पुरुषश्रेष्ठ उदयसिंह को देखते ही उनकी तीसरी आँखों के आघात से व्याकुल होकर उसी समय मूर्च्छित हो गई। उसे मूर्च्छित देखकर सर्वमोहन उदयसिंह ने अपने

अष्टादशपुराणानि केन प्रोक्तानि किं फलम् । ब्रूत मे विदुषां श्रेष्ठा वेदशास्त्रपरायणाः ॥८
इति श्रुत्वा वचो रम्यं विद्वांसः शास्त्रकोविदाः । अब्रुवन्वचनं रम्यं कृष्णांशं सर्वधर्मगम् ॥९
पराशरेण रचितं पुराणं विष्णुदैवतम् । शिवेन रचितं स्कान्दं पाद्मं ब्रह्ममुखोद्भवम् ॥१०
शुकप्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वै ब्रह्मणा कृतम् । गारुडं हरिणा प्रोक्तं षड् वै सात्त्विकसम्भवाः ॥११
मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च । वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै ॥१२
राजसाः षट् स्मृता वीर कर्मकाण्डमया भुवि । मार्कण्डेयं च वाराहं मार्कण्डेयेन निर्मितम् ॥१३
आग्नेयमङ्गिराश्चैव जनयामास चोत्तमम् । लिङ्गब्रह्माण्डके चापि तण्डिना रचिते शुभे ॥
महादेवेन लोकार्थे भविष्यं रचितं शुभम् ॥१४
तामसाः षट् स्मृताः प्राज्ञैः शक्तिधर्मपरायणाः । सर्वेषां च पुराणानां श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम् ॥१५
घोरे भुवि कलौ प्राप्ते विक्रमो नाम भूपतिः । कैलासाद्भुवमागत्य मुनीन्सर्वान्समाह्वयत् ॥१६
तदा ते मुनयस्सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । सूतं सञ्चोदयामासुस्तेषां तच्छ्रवणाय च ॥
प्रोक्तान्युपपुराणानि सूतेनाष्टादशैव च ॥१७
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशो धर्मतत्परः । श्रुत्वा भागवतं शास्त्रं सप्तेऽह्नि महोत्तमम् ॥१८
ददौ दानानि विप्रेभ्यो गोसुवर्णमयानि च । ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥१९
तदा तु भिक्षुकी भूत्वा शोभा नाम मदातुरा । मायां कृतवती प्राप्य कृष्णांशो यत्र वै स्थितः ॥२०
ध्यात्वा महामदं वीरं पैशाचं रुद्रकिङ्करम् । मायां सा जनयामास सर्वपाषाणकारिणीम् ॥२१

निवासस्थान पर पहुँचकर ब्राह्मणों को बुलवाकर उनसे प्रश्न किया—वेदशास्त्र पारायण करने वाले विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अष्टादश पुराणों के रचयिता कौन हैं, और उसके श्रवण करने से किम फल की प्राप्ति होती है । इस उत्तमवाणी को सुनकर शास्त्र निपुण विद्वानों ने समस्त धर्म के ज्ञानी उन उदयसिंह से सुन्दर वाणी द्वारा कहा—पराशर जी ने विष्णुपुराण शिवजी ने स्कन्दपुराण, ब्राह्म ने पद्मपुराण, शुकदेव ने भागवत पुराण, ब्रह्मा ने ब्रह्मपुराण, तथा विष्णु ने गरुडपुराण की रचना की है । यही छहो पुराण सात्विक कहे जाते हैं । मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, नृसिंहपुराण, वामनपुराण, शिवपुराण और वायु पुराण के रचयिता भी व्यास जी हैं । उस भूतल में ये छहोपुराण राजस् एवं कर्मकाण्डमय कहे गये हैं मार्कण्डेय और बराहपुराण की रचना मार्कण्डेय ऋषि ने की है ।१-१३। उत्तम अग्नि पुराण के रचयिता अंगिरा हैं । लिंग पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण की रचना तंडी तथा शुभ भविष्यपुराण की रचना महादेव जी ने की है । शक्तिधर्मपरायण इन छहों पुराणों को तामस् बताया गया है । समस्त पुराणों में भागवत पुराण श्रेष्ठ बताया गया है । पृथ्वी पर घोर कलि के वर्तमान होने पर राजा विक्रमादित्य ने कैलास से पृथ्वी में आगमन करके सभी मुनियो को बुलाया । उस समय नैमिषारण्य निवासी उन महर्षिगणों ने अठ्ठारह उपपुराणों की कल्पना की है । धर्मारूढ़ उदयसिंह ने इसे सुनकर भागवतपुराण का पारायण श्रवण करने के उपरांत सातवें दिन ब्राह्मणों को गो सुवर्ण के दान प्रदान करके सहस्र वैदिक ब्राह्मणों को भी भोजन कराया । उस समय मदविह्वल शोभा ने भी भिक्षुकी का रूप धारणकर उदयसिंह के पास पहुँचकर माया करना आरम्भ किया—उसने रुद्रकिंकर एवं वीर महामद पिशाच के ध्यानपूर्वक सबको पत्थर कर देने

दृष्ट्वा स्वर्णवती देवी तां मायांशोभयोद्भवाम् । छित्त्वा चाह्लाद्य वामाङ्गी स्वगेहं गन्तुमुद्यता ।।२२
सा वेश्या तु शुचाविष्टा तस्याः श्रृङ्गारमुत्तमम् । स्वर्णयन्त्रस्थितं रम्यं लक्षद्रव्योपमूल्यकम् ।।
संहृत्य मायया धूर्ता देशं बाह्लीकमाययौ ।।२३
कल्पक्षेत्रमुपागम्य नेत्रसिंहसमुद्भवा । वेश्यया मम श्रृङ्गारं हृतं ज्ञात्वा सुदुःखिता ।।२४
कृष्णांशं वचनं प्राह गच्छ गच्छ महाबल । गृहीत्वा मम श्रृङ्गारं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ।।२५
गुटिकेयं मया वीर रचिता तां मुखेन च । धूर्तमायाविनाशाय तव मङ्गलहेतवे ।।२६
इति श्रुत्वा तथा कृत्वा कृष्णांशस्सर्वमोहनः । शूकरक्षेत्रमागम्य तत्र वेश्यां ददर्श ह ।।२७
सा तु वेश्या च तं वीरं दृष्ट्वा कन्दर्पकारिणम् । रचयित्वा पुनर्मायां तदन्तिकमुपागता ।।२८
तदा सा निष्फलीभूय रुरोद करुणं बहु । रुदतीं तां समालोक्य दयालुस्स प्रसन्नधीः ।।२९
गृहीत्वा सर्वश्रृङ्गारं वचनं प्राह निर्भयः । किं रोदिषि महाभागे सत्यं कथय मा चिरम् ।।३०
साह मे सहरो नाम भ्राता प्राणसमप्रियः । नाट्यैश्च पञ्चसाहस्रैः सहितो मरणं गतः ।।३१
अतो रौमि महाभाग सम्प्राप्ता शरणं त्वयि । इत्युक्त्वा मायया धूर्ता कृत्वा शवमयान्त्यजान् ।।३२
तस्मै प्रदर्शयामास निजकार्यपरायणा । रुदित्वा च पुनस्तत्र प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता ।।३३
दयालुस्स च कृष्णांशस्तामाह करुणं वचः । कथं ते जीवयिष्यन्ति[1] शोभने कथयाशु मे ।।३४

वाली माया की रचना की । उसे देखकर देवी स्वर्णवती (सोना) ने जो आह्लाद की वामाङ्गी हैं, उसकी माया का विध्वंस करके घर के लिए प्रस्थान किया । उसी समय क्रुद्ध होकर उस वेश्या ने अपनी धूर्तमाया द्वारा स्वर्णवती (सोना) के उत्तम श्रृंगार का, जो स्वर्ण के सुरम्य यंत्र में स्थापित एवं एक लक्ष के मूल्य का था, अपहरण करके वाह्लीक देश को प्रस्थान कर दिया । कल्पक्षेत्र में पहुँचकर नेत्रसिंह की आत्मजा (सोना) ने यह जानकर कि 'उस वेश्या ने मेरे श्रृंगार का अपहरण कर लिया है, अत्यन्त दुःख प्रकट करती हुई उदयसिंह से कहा—महाबल ! जाओ-जाओ ! मेरे श्रृंगार लेकर मुझे शीघ्र मिलो वीर ! इस मेरे द्वारा रचित गुटिका को मुख में धारण करने से उसकी धूर्त माया विनष्ट हो जायेगी । आपकी मांगलिक कामना के लिए मैंने उसका निर्माण किया है ।१४-२६। इसे सुनकर सर्वमोहन उदयसिंह ने उसी भाँति गुटिका धारणकर वाराहक्षेत्र में उस वेश्या को देखा । वह वेश्या भी काम के समान सुन्दर इन्हें देखकर माया की रचना पूर्वक इनके समीप पहुँच गई । किन्तु उसकी माया के निष्फल हो जाने से वह कारुणिक रुदन करने लगी । दयामूर्ति उदयसिंह ने प्रसन्न होकर रुदन करती हुई उसे देखकर श्रृंगारवस्तु ग्रहण करने के उपरान्त उससे कहा—महाभागे ! क्यों रुदन कर रही है, सत्य कहो, विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है । उसने कहा—सहर नामक मेरे भाई का जो मेरे प्राण के समान प्रिय था, पाँच सहस्र नाट्यों के साथ निधन हो गया है। महाभाग ! इसीलिए आपकी शरण में आकर रुदन कर रही हूँ। इतना कहकर उस धूर्ता ने माया द्वारा अन्त्यजो (नीचों) के शवों का उन्हें प्रदर्शन कराया। और पश्चात् अपने कार्य को सफल करने वाली उस वेश्या ने उनके सम्मुख रुदन करती हुई अपने प्राण विसर्जन की तैयारी कर दी। दयालु उदयसिंह ने उसकी अवस्था देखकर उससे करुण वचनों द्वारा कहा—शोभने ! तुम्हारे वे भ्रातृगण किस प्रकार जीवित हो सकेंगे' मुझसे शीघ्र कहो । उसने कहा—वीर ! तुम्हारे मुख

---

१. दशगणीपाठो बहुलमिति णिच् ।

साह वीर तवास्ये तु संस्थिता गुटिका शुभा । देहि मे कृपया वीर जीवयिष्यन्ति ते तया ॥३५
इत्युक्तस्तु तया वीरो ददौ तस्यै च तद्वरम् । तदा प्रसन्ना सा धूर्ता कृत्वा शुकमयं वपुः ॥
पञ्जरस्थमुपादाय कृष्णांशं कामविह्वला ॥३६
वाह्लीकदेशमागम्य सारठ्ठनगरं शुभम् । उवास च स्वयं गेहे कृत्वा दिव्यमयं वपुः ॥३७
निशीथे समनुप्राप्ते कृत्वा तं नररूपिणम् । आलिलिङ्ग हि कामार्ता कृष्णांशं धर्मकोविदम् ॥३८
दृष्ट्वा तां स तथाभूतां कृष्णांशो जगदम्बिकाम् । तुष्टाव मनसा धीरो रात्रिसूक्तेन नम्रधीः ॥३९
तदा सा स्वेडिनी भूत्वा त्यक्त्वा कृष्णांशमुत्तमम् । पुनः शुकमयं कृत्वा चिञ्चिणीवृक्षमारुहत् ॥४०
तदा स्वर्णवती देवी बोधिता विष्णुमायया । कृत्वा श्येनीमयं रूपं तत्र गत्वा मुदान्विता ॥४१
ददर्श शुकभूतं च कृष्णांशं योगतत्परम् । एतस्मिन्नन्तरे वेश्या पुनः कृत्वा शुभं वपुः ॥
नरभूपं च कृष्णांशं वचनं प्राह नम्रधीः ॥४२
अये प्राणप्रिय स्वामिन्भज मां कामविह्वलाम् । पाहि मां रतिदानेन धर्मज्ञोऽसि भवान्सदा ॥४३
इत्युक्तस्स तु तामाह वचनं शृणु शोभने । ते आर्यवर्त्मेस्थितोऽहं वै वेदमार्गपरायणः ॥४४
विवाहितां शुभां नारीं यो भजेद् ऋतौ न हि । स पापी नरकं याति तिर्य्यग्योनिमयं स्मृतम् ॥
अतः परस्त्रिया भोगो ज्ञेयो वै निरयप्रदः ॥४५
इति श्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता । शृङ्गिणा च महाप्राज्ञ वेश्यासङ्गः कृतः पुरा ॥

में स्थित गुटिका द्वारा ही वे सब जीवनदान प्राप्त कर सकेंगे । अतः उसे मुझे देने की कृपा कीजिये । उसके इस प्रकार कहने पर उन्होंने वह गुटिका उसे दे दी । पश्चात् उस धूर्ता ने जो कामपीड़ित हो रही थी प्रसन्न होकर उन्हें शुक (तोता) बनाकर पिंजरे में रखकर अपने वाह्लीक देश के नगर को प्रस्थान किया । वहाँ अपने घर पहुँचने पर आधीरात के समय मनुष्य रूप में उनके दिव्य शरीर को पूर्ववत् बनाकर उस वेश्या ने काम-पीडित होकर उन धर्म धुरन्धर उदयसिंह का आलिंगन किया, किन्तु उसकी वैसी अवस्था देखकर धीरवीर उदयसिंह ने नम्रता पूर्वक रात्रि सूक्त द्वारा देवी जगदम्बिका की मानसिक आराधना की । उस समय वह स्वेडिनी का रूप धारणकर इमली के वृक्षपर बैठ गई और उन्हें शुक (तोते) के रूप में परिणत कर दिया । उसी बीच विष्णु माया द्वारा स्वर्णवती (सोना) को इस रहस्य का पता लगने पर उसने बाज पक्षी का रूप धारणकर वहाँ पहुँचकर योगी उदयसिंह को शुक के रूप में देखा । उस समय उस वेश्या ने उनके मनुष्य रूप को पुनः उन्हें प्रदानकर उनसे नम्रता पूर्वक कहा—।२७-४२। अये प्राणप्रिय स्वामिन् ! मैं मदन से अत्यन्त व्यथित हो रही हूँ, अतः शीघ्र मेरा आलिंगन कीजिये । आप निपुण धर्मज्ञाता हैं, इसलिए रतिदान द्वारा मेरी रक्षा कीजिये । इस प्रकार कहने पर उन्होंने उससे कहा—शोभने ! मेरी बात सुनो ! मैं आर्य धर्म में स्थित होकर वेदमार्ग का यात्री हूँ । जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री के ऋतुकाल में उसे ऋतुदान नहीं प्रदान करता है, वह पापी नरकयातना के अनुभव करने के उपरांत तिर्यक् (पक्षी) योनि में जाता है । अतः परस्त्री का उपभोग नितान्त नरकप्रद है, इसमें संदेह नहीं है । इसे सुनकर उसने कहा—महाप्राज्ञ ! ज्ञानी विश्वामित्र और शृङ्गी ऋषि ने पहले समय में वेश्या-प्रसङ्ग किया था, किन्तु किसी को नरक नहीं जाना पड़ा । अतः मुझ कामातुर का

न कोऽपि नरकं प्राप्तस्तस्मान्मां भज कामिनीम् ॥४६
पुनश्चाह स कृष्णांशः कृतं पापं तपोबलात् । ताभ्यां च मुनियुग्माभ्यामसमर्थो हि साम्प्रतम् ॥४७
अर्द्धाङ्गं पुरुषस्य स्त्री मैथुने च विशेषतः । अहमार्यश्च भवती वेश्या च बहुभोगिनी ॥४८
ऋषिशब्दश्च पूर्वास्याज्जात ऋग्जस्सनातनः । योगजश्चैव यः शब्दो दक्षिणास्याद्यजुर्भवः ॥४९
तद्धितान्तश्च यश्शब्दः पश्चिमास्याच्च सामजः । छन्दोभूताश्च ये शब्दास्सर्वे ब्राह्मणप्रियाः ॥
केवलो वर्णमात्रश्च स शब्दोऽथर्वजःस्मृतः ॥५०
पञ्चमास्याच्च ये जाताः शब्दाः संसारकारिणः । ते सर्वे प्राकृता ज्ञेयाश्चतुर्लक्षविभेदिनः ॥५१
हित्वा तान्यो हि शुद्धात्मा चतुर्वेदपरायणः । स वै भवाटवीं त्यक्त्वा पदं गच्छत्यनामयम् ॥५२
न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि । गजैरापीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ॥५३
इत्येवं स्मृतिवाक्यानि मुनिना पठितानि वै । कथं त्याज्यो मया धर्मस्वर्गलोकसुखप्रदः ॥५४
इति श्रुत्वा तु सा वेश्या म्लेच्छायाश्चांशसम्भवा । शोभना नाग रम्भोरूर्महाक्रोधमुपाययौ ॥५५
वेतसैस्ताडयित्वा तां पुनः कृत्वा शुकं स्वयम् । न ददौ भोजनं तस्मै फलाहारं शुकाय वै ॥५६
तदा स्वर्णवती देवी कृत्वा नारीमयं वपुः । मशकीकृत्य तं वीरं तत्रैवान्तर्दधे तु सा ॥५७
पुनः श्येनीवपुः कृत्वा तद्देशाद्यातुमुद्यता । पृष्ठमारोप्य मशकं मयूरनगरं ययौ ॥५८

आलिङ्गन करना स्वीकार कीजिये । इसे सुनकर उदयसिंह ने पुनः प्रत्युत्तर दिया—वे दोनों महर्षि प्रवर महान् तपस्वी थे, अपने तपोबल द्वारा उन्होंने वैसा किया था । परन्तु इस समय मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ । पुरुष का अर्द्धांग उसकी स्त्री है, विशेषकर मैथुनकर्म के लिए । इसलिए मैं आर्यपुरुष हूँ और तुम अनेकों के उपभोग करने वाली वेश्या हो, दोनों का साथ होना सर्वथा असम्भव है । क्योंकि पूर्व मुख से सर्वप्रथम ऋषि शब्द का अविर्भाव हुआ, जिससे सनातन की ख्याति हुई, उसी प्रकार दक्षिण मुख से योग यजु शब्द और पश्चिम मुख से तद्धितान्त सामज शब्द आविर्भूत हुए, इसलिए छंद भूत (वैदिक) जितने शब्द हैं, वे ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय हैं । अथर्व से केवल वर्णमात्र की उत्पत्ति हुई है एवं पंचम मुख से निकले हुए शब्द सांसारिक कहे जाते हैं, जो प्राकृत तथा चार लाख भेद पूर्ण हैं । अतः जो शुद्धात्मा एवं चतुर्वेद का पारायण करने वाला पुरुष उनके त्याग करता है, वही संसार (जन्ममरण) रूप घने जंगल को पारकर अनामय (ब्रह्म) पद-मोक्ष की प्राप्ति करता है । प्राण के कंठ तक चले आने पर भी यावनी (मुसलमानी) भाषा के उच्चारण और हाथी द्वारा कुचल जाने पर भी जैन मन्दिर में जाना नहीं चाहिए। मुनियों के कहे हुए इन स्मृति वाक्यों को भी मैंने बता दिया । इसलिए उस धर्म का त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ, जो सभी लोगों को सुख प्रदान करता है। इसे सुनकर उस म्लेच्छ वंश की वेश्या ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेतों द्वारा उन्हें अत्यन्त ताडित किया, पश्चात् शुक बनाकर भोजन भी नहीं दिया । इस दृश्य को देखने के उपरांत स्वर्णवती (सोना) देवी ने अपना स्त्री रूप धारणकर उदयसिंह को 'मसक' बनाकर वहाँ से तिरोहित होकर पुनः वाज पक्षी का रूप धारणकर अपने देश को प्रस्थान किया । मशक रूप में उदयसिंह को अपनी पीठ पर बैठाये हुए वह मयूर नगर में पहुँच गई।४३-५८। उसे देखकर मकरन्द ने पहचान

मकरन्दस्तु तां दृष्ट्वा कृष्णांशेन समन्विताम् । नेत्रपालस्य तनयां नाम्ना स्वर्णवतीं बली ।।
चरणावुपसङ्गृह्य स्वगेहे तामवासयत् ।।५९
शोभनापि च सम्बुध्य पञ्जरान्तमुपस्थिता । न ददर्श शुकं रम्यं मूर्छिता चापतद्भुवि ।।६०
किं करोमि क्व गच्छामि विना तं रमणं परम् । इत्येव बहुधालप्य मदहीनपुरं ययौ ।।६१
तत्र स्थितं च पैशाचं मायामदविशारदम् । महामदं च सम्पूज्य स्वदेहं त्यक्तुमुद्यता ।।६२
महामदस्तु सन्तुष्टो गत्वा वै शिवमन्दिरम् । मरुस्थलेश्वरं लिङ्गं तुष्टावार्षभभाषया ।।६३
तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं प्राह सेवकम् । स्वर्णवत्या हृतो वीरः कृष्णांशश्चार्यधर्मगः ।।
मया सह समागच्छ मयूरनगरं प्रति ।।६४
इत्युक्तस्तेन पैशाचो नटैः पञ्चसहस्रकैः । तया सह ययौ तूर्णं सहुरेणं समन्वितः ।।६५
इन्दुलश्च तथाह्लादो बोधितो विष्णुमायया । त्रिलक्षबलसंयुक्तो देवसिंहेन संयुतः ।।
मयूरनगरं प्राप्य मकरन्दमुपाययौ ।।६६
तदा तु शोभना वेश्या सहुरेण बलैस्सह । चकार भैरवीं मायां सर्वशत्रुभयङ्करीम् ।।६७
सर्वतश्चोत्थितो वातो महामेघसमन्वितः । पतन्ति बहुधा चोल्काः शर्करावर्षणे रताः ।।६८
दृष्ट्वा तां भैरवीं मायां तमोभूतां समन्ततः । मकरन्दश्च बलवान्रथस्थः स्वयमाययौ ।।६९

लिया कि उदयसिंह के समेत यह नेत्रसिंह की स्वर्णवती (सोना) नामक कन्या हैं, सादर उसके चरण का स्पर्श किया और अपने महल में निवास कराया । पिंजडे के पास जाकर उसे शून्य देखकर शोभना मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर रुदन करने लगी—'मैं उस रमण उदयसिंह के बिना अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ । इस प्रकार अनेक भाँति से विलाप करने के उपरांत वह मदहीनपुर चली गई । वहाँ के रहने वाले महामदनामक पिशाचकर्मी की जो अत्यन्त मायावी था, पूजा करने के उपरांत उसके सामने वह अपने प्राण विसर्जन के लिए तैयार हो गई । उसे देखकर प्रसन्न होकर वह महामद भगवान् मरुस्थल महादेव के मंदिर में पहुँचकर संस्कृत वाणी द्वारा उनकी आराधना करने लगा । उससे प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने अपने इस सेवक से कहा— आर्य धर्मावलम्बी एवं वीर उदयसिंह का अपहरण स्वर्णवती ने किया है अतः दर्शनार्थ मेरे साथ मयूर नगर चलने की तैयारी करो । उनके इस प्रकार कहने पर वह मायावी अपने पाँच सहस्र नटों समेत शोभा वेश्या, और सहुर को साथ लेकर वहाँ से चल पड़ा । विष्णु माया (देवी) जी द्वारा इस रहस्य का पता चलने पर इन्दुल (इंदल) आह्लाद (आल्हा) और देवसिंह (डेबा) ने अपने तीन लाख सैनिकों समेत मयूर नगर में पहुँचकर मकरन्द से भेंट किया । उस समय सहर समेत शोभना ने अपने दल-बल के साथ वहाँ पहुँचकर अपनी भीषण माया की, जो समस्त शत्रुओं के लिये भयावह थी । रचना करना आरम्भ किया—वहाँ उस पर बड़े-बड़े मेघों के समान चारों ओर से वायुमंडल उठने लगा, उल्का (लूक) गिरने लगे, और धूल की वर्षा होने लगी । उस भीषण माया को जिसमें चारों ओर से घना अंधेरा छाया हुआ था, देखकर बलवान् मकरन्द रथ पर बैठकर स्वयं वहाँ पहुँचे, जहां से उस माया का संचालन हो रहा था । उस महाबली ने अपने शनिभल्ल

शनिभल्लेन तां मायां भस्म कृत्वा महाबलः । गृहीत्वा सहुरं धूर्तं सबलं गेहमाप्तवान् ।।७०
तदा तु शोभना नारी काममायां चकार ह । बहुलास्संस्थिता वेश्या गीतनृत्यविशारदाः ।।७१
मोहिताः क्षत्रियाः सर्वे मुमुहुर्लास्यदर्शनात् । देवसिंहाच्च कृष्णांशादृते ते जडतां गताः ।।७२
तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा । पुनरुत्थाप्यतान्सर्वान्गृहीत्वा शोभनां पुनः ।।
मयूरध्वजमागम्य निगडैस्तान्बबन्ध ह ।।७३
महामदस्तु तज्ज्ञात्वा रुद्रध्यानपरायणः । चकार शाम्बरीं मायां नानासत्त्वविधायिनीम् ।।७४
व्याघ्राः सिंहा वराहाश्च वानरा दंशकाः नराः । सर्पा गृध्रास्तथा काका भक्षयन्ति समन्ततः ।।७५
तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा । ससर्ज स्मरजां मायां तन्मायाध्वंसिनीं रणे ।।७६
तया तार्क्ष्यास्समुत्पन्नाः शरभाश्च महाबलाः । सिंहादीन्भक्षयामासुर्जघ्नुश्चैव सहस्रशः ।।७७
हाहाभूते च तत्सैन्ये दिक्षु विद्राविते सति । शोभना चाभवद्दासी स्वर्णवत्याश्च मायिनी ।।७८
सहुरस्तैर्नटैस्सार्द्धं चाह्लादेनैव चूर्णितः । तेषां रुधिरकुंभाश्च भूमिमध्ये समारुहन् ।।७९
एवं च मुनिशार्दूल चतुर्मास्स्वभवद्रणः । वैशाखे मासि संप्राप्ते ते वीरा गेहमाययुः ।।
इति ते कथितं विप्र चान्यत्किं श्रोतुमिच्छसि ।।८०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयेऽष्टाविंशोऽध्यायः ।२८

नामक अस्त्र द्वारा उस माया को नष्ट करके उस सबल एवं धूर्त सहुर को पकड़कर अपने गृह को आगमन किया । उस समय शोभना वेश्या ने अपनी काम-माया की रचना की उसमें नृत्य-गान में अत्यन्त निपुण अनेक वेश्याओं का जमाव था, सबको लुभाने के लिए वे नृत्य-गान कर रही थीं । उस नृत्य को देखकर देवसिंह और उदयसिंह के अतिरिक्त सभी क्षत्रियगण जड़ की भाँति मोहित हो गये । उस समय स्वर्णवती (सोना) देवी ने कामाक्षी देवी का ध्यान करके उन्हें चेतना प्रदान कर खड़ा किया, पश्चात् उस शोभना को पकड़कर मयूरध्वज के पास लाकर लोहे की जंजीरों से उसे बाँध दिया । इस बात का पता लगने पर महामद ने भगवान रूद्र के ध्यान पूर्वक अपनी शाम्बरी माया का प्रसार किया—उनमें अनेक भाँति के जीव दिखाई देते थे, वाघ, सिंह सूकर, वानर, मसक, दंशक, सर्प, गीध तथा कौवे के झुण्ड चारों ओर से सिंह का भक्षण कर रहे थे । सैनिकों में हाहाकार मच गया वे इधर-उधर भागने लगे । किन्तु उस माया करने वाली शोभना को स्वर्णवती (सोना) का दासीपद स्वीकार करना पड़ा । और उन नटों समेत सहुर को आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं चूर्ण कर दिया । पश्चात् उनके रुधिर भरे घड़ों को भूमि के भीतर गड़वा दिया । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार वहाँ चौमासे भर युद्ध का क्रम चलता रहा, पश्चात् वैशाख मास के आरम्भ में वे वीरगण अपने अपने घर चले गये । विप्रवृन्द ! इस वृत्तान्त को मैंने तुम्हें सुना दिया- अब और क्या सुनने की इच्छा है ।६५-८०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

किन्नरी नाम या कन्या त्वया प्रोक्ता महामुने । कुत्र स्थाने कथं जाता तत्सर्वं कृपया वद ।।१

सूत उवाच

पुरा चैत्ररथे देशे नानाजननिषेविते । वसन्तसमये प्राप्ते क्रीडन्त्यत्र दिवौकसः ।।२
मञ्जुघोषा च स्वर्वेश्या शुकस्थाने समागता । दृष्ट्वा तं सुन्दरं बालं मोहनाय समुद्यता ।।३
गीतनृत्यादिरागांश्च कृत्वा सा कामविह्वला ! प्राञ्जलिं प्रणता बद्ध्वा पुनस्तुष्टाव तं मुनिम् ।।४
तदा शुकस्तु भगवान्पद्यं स्तुतिमयं शुभम् । श्रुत्वा प्रसन्नहृदयो वरं ब्रूहीति सोऽब्रवीत् ।।५
सा तु श्रुत्वा शुभं वाक्यं प्रोवाच श्लक्ष्णया गिरा । पतिर्मे भव हे नाथ शरणागतवत्सल ।।६
इति श्रुत्वा तु वचनं तथा कृत्वा तया सह । स रेमे मुनिशार्दूलः शुको विज्ञानकोविदः ।।७
तयोस्सकाशात्सञ्जज्ञे मुनिर्नाम सुतोऽनयोः । तपश्चकार बलवान्द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ।।८
तस्मै ददौ तदा पत्नीं स्वर्णदेवस्य वै सुताम् । कुबेरो रुद्रसहितः स मुनिस्तु मुदान्वितः ।।९
तया रेमे प्रसन्नात्मा तयोर्जाता सुतोत्तमा । किन्नरी नाम विख्याता हिमतुङ्गे समुद्भवा ।।

अध्याय २९

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—महामुने ! आपने जिस किन्नरी नामक कन्या का नाम लिया था, वह किस स्थान में किस प्रकार उत्पन्न हुई है । कृपया विस्तार पूर्वक इसका वर्णन कीजिये ।१

सूत जी बोले—पहले समय की बात है चैत्ररथ नामक प्रदेश में जहाँ अनेक भाँति के लोग निवास करते हैं, वसंत ऋतु के आने पर देवगण क्रीड़ा करते हैं । एक बार उसी समय में स्वर्ग निवासिनी मंजु-घोषा नामक वेश्या ने मुनिश्रेष्ठ शुक के स्थान में जाकर अत्यन्त सुन्दर बालक के रूप में उन्हें देखकर मोहित करने का प्रयत्न किया । मदनपीडिता उस वेश्या ने नृत्य-गान एवं अनेक प्रकार के अनुराग पूर्ण भावों के प्रदर्शित करने के उपरांत हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक सप्रेम उनकी स्तुति की । उस समय मुनि शुकदेव ने पद्यमय उसकी स्तुति सुनकर प्रसन्नचित्त से उसे वर की याचना करने के लिए कहा । उसने उस स्नेहवाणी को सुनकर प्रार्थना की कि हे नाथ, शरणागत वत्सल ! आप मेरा पति होना स्वीकार करें । उसकी प्रार्थना स्वीकार करने के उपरांत मुनिश्रेष्ठ एवं विज्ञान विशारद शुक ने उसके साथ रमण किया । उन दोनों के समागम के फलस्वरूप मुनि नामक एक पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई । उस बलवान् पुत्र ने बारह वर्ष तक अनवरत तप का अनुष्ठान किया, जिससे संतुष्ट होकर रूद्र समेत कुबेर ने स्वर्णदेव की पुत्री को उसे स्त्री रूप में प्रदान किया । हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर पर उन दोनों के समागम से किन्नरी

तपश्चकार सा देवी रूपयौवनशालिनी ॥१०
तदा प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो लोकशङ्करः। मकरन्दाय धीराय ददौ तां रुचिराननाम् ॥११
मुनिस्तु शङ्करं प्राह देवदेव नमोऽस्तुते। मत्सुतायै वरं देहि राष्ट्रवर्धनमुत्तमम् ॥१२
इति श्रुत्वा शिवः प्राह गुरुण्डान्ते च भूतले। मध्यदेशे च ते राष्ट्रं भविष्यति सुखप्रदम् ॥
त्रिंशदब्दप्रमाणेन तत्पश्चात्क्षयमेष्यति ॥१३
इति श्रुत्वा तु स मुनिर्हिमतुङ्गनिवासकः। मकरन्देन सहितस्तत्र वासमकारयत् ॥१४
इति ते कथितं विप्र पुनः शृणु कथां शुभाम्। ऊनत्रिंशाब्दकं प्राप्ते कृष्णांशे रणकारणम् ॥१५
नेत्रपालस्य नगरं नानाधातुविचित्रितम्। मत्वा न्यूनपतिर्बौद्धो रुरोध नगरं शुभम् ॥१६
सप्तलक्षयुतो राजा बौद्धसिंहो महाबलः। त्रिलक्षबलसंयुक्तैस्तैस्सार्द्धं युद्धमचीकरत् ॥१७
सप्ताहोरात्रमभवत्सेनायुद्धं भयानकम्। योगसिंहो भोगसिंहो विजयश्च महाबलः ॥१८
जघान शात्रवीं सेनां बौद्धसिंहेन पालिताम्। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः श्यामजापकदेशगाः ॥१९
बौद्धा मायाविनस्सर्वे लोकमान्यप्रपूजकाः। पुनर्जातं महद्युद्धं मासमेकं तयोस्तदा ॥२०
नेत्रापालाज्ञया सर्वे कृष्णांशाद्याः समागताः। कृष्णांशो बिन्दुलारूढो देवः स्वहयसंस्थितः ॥२१
इन्दुलश्च करालाश्वे मण्डलीको गजे स्थितः। गौतमश्च समायातो हरिनागरसंस्थितः ॥२२
तालनश्च समायातः सिंहिन्युपरि संस्थितः। धान्यपालस्तैल्यकारो युयुत्सोरंशसम्भवः ॥२३

नाम से ख्यातिप्राप्त एक कन्या रत्न की उत्पत्ति हुई। रूप-यौवन सम्पन्न होने पर वह बाला तप करने लगी। जिससे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शिव ने उस सौन्दर्य पूर्ण एवं कल्याणमुखी कन्या को धीर-गम्भीर राजा मकरन्द को सौंप दिया। उसी बीच मुनि ने शंकर जी से प्रार्थना की—देवाधिदेव आपको नमस्कार है। आप मेरी कन्या के लिए वर और मुझे एक समृद्ध राष्ट्र प्रदान करने की कृपा कीजिये। इसे सुनकर शिव जी ने कहा—पृथ्वीतल में गुरुण्डों (गोरों) के (राज्य) समाप्ति के अनन्तर मध्यप्रदेश में तुम्हारा सुखप्रद राष्ट्र होगा। किन्तु तीन सौ वर्ष के उपरांत उसका ह्रास हो जायगा। इसे सुनकर उस हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर के निवासी ने मकरन्द के साथ वहाँ निवास करना आरम्भ किया।२-१४। विप्र! इतना कहकर मैं पुनः तुम्हें एक अन्य शुभ कथा सुना रहा हूँ— उदयसिंह की उन्तीस वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर राजा नेत्रपाल के उस अनेक धातुओं द्वारा रचित चित्र-विचित्र नगर को बौद्ध ने चारों ओर से घेर लिया। कारण कि वहाँ के राजा को वह कमजोर समझता था। राजा की सात लाख सेना के साथ महाबली बौद्धसिंह ने अपनी तीन लाख सेनाओं द्वारा घोर संग्राम आरम्भ कर दिया। सात दिन तक दोनों सैनिकों का अनवरत भीषण युद्ध हुआ जिसमें योगसिंह भोगसिंह, और महाबलवान् विजय ने शत्रु बौद्धसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करते हुए उनकी सेना का विनाश कर दिया। उसी बीच श्याम और जापक आदि प्रदेशों के मायावी बौद्धगण भी आ गये, जो समस्त लोकों में मानपूर्वक पूज्य थे। उनके आगमन करने से वहाँ पुनः एक मास तक उन दोनों में भीषण युद्ध हुआ। राजा नेत्रपाल की प्रेरणा से उदयसिंह आदि वीरगण भी वहाँ पहुँच गये जिसमें उदयसिंह विन्दुल (बेंदुल) पर देवसिंह अपने घोड़े पर इन्दुल (इंदल) कराल नामक घोड़े पर मंडलीक (आल्हा) गजराज पर, गोतम हरिनागर पर और तालन अपनी सिंहिनी नामक घोड़ी पर सवार होकर वहाँ उपस्थित हुए। धान्यपाल तेली युयुतनु

लल्लसिंहश्च बलवान्कुन्तिभोजांशसंभवः । ताम्बूलपकजातीयो लक्षणानुज्ञया ययौ ॥२४
तदा तु नेत्रसिंहश्च सप्तलक्षबलैर्वृतः । पालितश्चाष्टभिर्वीरैस्तेषां नाशाय चाययौ ॥२५
भयभीताश्च ते बौद्धास्त्यक्त्वा देशं समन्ततः । चीनदेशमुपागम्य युद्धभूमिमकारयन् ॥२६
तदनुप्रययुस्ते वै हूहानदमुपस्थिताः । माघमासे तु सम्प्राप्ते पुनर्युद्धमवर्तत ॥२७
श्यामदेशोद्भवा लक्षं तथा लक्षं च जापकाः । दश लक्षाश्चीनदेश्या युद्धाय समुपस्थिताः ॥२८
कृष्णांशो लक्षसेनाढ्यो देवो लक्षसमन्वितः । नेत्रपालश्च लक्षाढ्यो योगभोगसमन्वितः ॥२९
मण्डलीकश्चेन्दुलेन लक्षसैन्यसमन्वितः । ध्यानपालो लल्लसिंहो लक्षसैन्यान्वितः स्थितः ॥३०
जननायक एवापि लक्षसैन्ययुतः स्थितः । तालनो लक्षसेनाढ्यो युद्धाय समुपागतः ॥३१
तत्र युद्धमभूद्घोरं बौद्धानामार्यकैस्सह । पक्षमात्रं मुनिश्रेष्ठ यमलोकविवर्द्धनम् ॥३२
सप्तलक्षं हता बौद्धा द्विलक्षं चार्यदेशजाः । ततस्ते भयभीताश्च त्यक्त्वा युद्धं गृहं ययुः ॥३३
कृत्वा दारुमयीं सेनां कलयन्त्रप्रभावतः । गजाश्च दशसाहस्रा सशूराः काष्ठनिर्मिताः ॥३४
एकलक्षं हयारूढा दारुपाश्च रणोन्मुखाः । सहस्रं महिषारूढास्सहस्रं कोलपृष्ठगाः ॥३५
सिंहारुढास्सहस्रं च सहस्रं हंसवाहनाः । कङ्कगोमायुगृध्राणां श्यामारूढाः पृथक्तथा ॥३६
उष्ट्राः सप्तसहस्राणि सशूराश्च रणोन्मुखाः । एवं सपादलक्षैश्च काष्ठसैन्यैश्च मानुषाः ॥३७
द्विलक्षाणि क्षयं जग्मुः कृष्णांशाद्यैः सुरक्षिताः । ततो हाहाकृतं सैन्यं चार्य्याणां च ननाश तत् ॥३८
दृष्ट्वा तत्कौतुकं रम्यं जयन्तो युद्धकोविदः । आग्नेयं शरमादाय काष्ठसैन्येषु चाक्षिपत् ॥३९

के अंश से उत्पन्न लल्लसिंह तथा लक्षण (लाखन) की आज्ञा से वह तमोली भी साथ आया था । उस समय राजा नेत्रसिंह ने अपने सात लाख सैनिकों द्वारा जो उनके आत्मीय आठ वीरों की अध्यक्षता में सुरक्षित थे, बौद्धों के विनाशार्थ प्रस्थान कर दिया किन्तु उनसे भयभीत होकर उन बौद्धों ने इस देश का त्यागकर चीन देश को प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर रणभूमि की घोषणा की । इन लोगों ने भी बौद्धों के पीछे हूला नदी के तटपर पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ माघ मास के आरम्भ में दोनों सैनिकों का पुनः युद्ध आरम्भ हुआ ।१५-२७। बौद्धसिंह के पास श्याम एवं जावा के एक लाख और चीन के दशलाख चीनी बौद्ध सैनिक आये थे । उसी प्रकार राजा नेत्रपाल के पास उदयसिंह देवसिंह, योगसिंह भोगसिंह समेत नेत्र पाल सिंह, इन्दुल (इंदल) समेत मंडलीक (आल्हा) धनपाल, लल्लसिंह, जगनायक और तालन के साथ पृथक्-पृथक एक लाख सैनिक आये थे । मुनिश्रेष्ठ ! उस स्थानपर बौद्धों और आर्यों का घोर संग्राम आरम्भ हुआ, जो निरन्तर एक पक्ष तक चलते हुए यमलोक की वृद्धि कर रहा था । उस रण भूमि में बौद्धों के सातलाख और आर्यों के दोलाख सैनिक काम आये। पश्चात् भयभीत होकर बौद्धगण अपने घर भाग गये किन्तु कलयंत्र के द्वारा उन्होंने काष्ठसेना का निर्माण कर पुनः युद्धारम्भ किया, जिसमें काष्ठ के शूरसमेत दशसहस्र गज, एक लाख अश्व, सहस्र भैंसे, सहस्र कोल, सहस्र सिंह, सहस्र हंस, कंक स्यार, गीध, और सातसहस्र ऊँट सवार समेत उस रणस्थल में युद्धोन्मुख हो रहे थे। उस प्रकार उस युद्ध में बौद्धों के सवा लाख काष्ठ सैनिकों द्वारा उदयसिंह आदि के दो लाख मनुष्य सैनिकों का संहार होते देखकर आर्यों की सेनाओं में हाहाकर मच गया।२८-३८। इस दृश्य को देखकर युद्ध निपुण इंदुल ने अपने आग्नेय वाणों द्वारा उन काष्ठ सैनिकों को उनके वाहन समेत भस्मकर उन्हें विलीन

भस्मीभूताश्च ते सर्वे तत्रैव विलयं गताः । त्रिलक्षं क्षत्रियाः शेषा जयन्तं रणकोविदम् ॥
चक्रुर्जयरवं तत्र तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥४०
तदा तु चीनजा बौद्धाः कृत्वा विंशत्सहस्रकान् । हयारूढाँल्लोहमयान्प्रेषयामासुरूर्जितान् ॥४१
योगसिंहो गजारूढो धनुर्बाणधरो बली । कण्ठेषु लोहजान्वीरांस्ताडयामास वै तदा ॥४२
मृतास्ते पञ्चसाहस्रा योगसिंहशरार्दिताः । बौद्धसिंहस्तदा शूरो दृष्ट्वा तस्य पराक्रमम् ॥
कृत्वा लोहमयं सिंहं योगसिंहमपेषयत् ॥४३
पातेन तस्य सिंहस्य स वीरो मरणं गतः । तदा तु भोगसिंहश्च हयारूढो जगाम ह ॥
स्वभल्लेन च तं सिंहं हत्वा तत्र जगर्ज वै ॥४४
तदा तु बौद्धसिंहेन शार्दूलस्तत्र चोदितः । सहयो भोगसिंहश्च तेनैव मरणं गतः ॥४५
मातुलौ मृत्युवशगौ दृष्ट्वा स्वर्णवतीसुतः । करालं हयमारुह्य बौद्धसिंहमुपाययौ ॥४६
शरमादाय वै शीघ्रं नाम्ना सम्मोहनं शुभम् । मोहयित्वा रिपुबलं बौद्धसिंहसमन्वितम् ॥४७
बद्ध्वा तान्बौद्धसिंहादीन्नृपान्दशसहस्रकम् । कलयन्त्रं च सञ्चूर्ण्य कृष्णांशांतिकमाययौ ॥४८
तदा ते हर्षितास्सर्वे प्रपेष्य नगरं ययुः । तद्वेश्म योजनायामं सर्वसम्पत्समन्वितम् ॥
लुण्ठयित्वा बलात्सर्वे नृपदुर्गमुपाययुः ॥४९
बौद्धसिंहस्तदागत्य जयन्तेन विमोचितः । सुतां स्वां पद्मजां नाम्ना जयन्ताय ददौ मुदा ॥५०
दशकोटीः सुवर्णस्य चाह्लादाय तदा धनम् । सर्वैश्च बौद्धवृन्दैश्च तत्रैव शपथः कृतः ॥५१

कर दिया । पश्चात् शेष तीन लाख क्षत्रिय सैनिकों ने रण पंडित इंदुल को अपने जय जयकार के सिंहनाद द्वारा संतुष्ट किया । उस समय चीन निवासी बौद्धों ने लोहनिर्मित बीस सहस्र वाहन समेत सैनिकों को पुनः उस युद्धस्थल में भेजा । उन्हें देखकर हाथीपर बैठे हुए योगसिंह ने अपने वाणों द्वारा उन वीरों को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया । जिसके फलस्वरूप योगसिंह के वाणों से पीड़ित होकर लोहे के उन पाँच सहस्र सैनिकों का निधन हुआ । बौद्धसिंह ने उनके इस पराक्रम को देखकर एक लोहे का सिंह बनाकर उनके पास भेजा । उस सिंह के आक्रमण करने से योगसिंह का निधन हो गया । उसे देखकर घोड़े पर वैठे हुए भोगसिंह ने अपने भल्लास्त्र द्वारा उस सिंह का वध करके भीषण गर्जना की । उसी समय बौद्ध सिंह द्वारा प्रेषित एक लोहे के वाद्य द्वारा घोड़े समेत भोगसिंह का निधन हो गया । उस समय अपने दोनो मामा को मृत्यु की गोद में शयन किये देखकर स्वर्णवती (सोना) पुत्र इन्दुल ने कराल नामक घोड़े पर बैठकर बौद्धसिंह के पास पहुँचते ही अपने संमोहन नामक वाण द्वारा सेना समेत बौद्धसिंह को एवं उनके अनुयायी दश सहस्र राजाओं को मोहित करने के उपरांत बाँधकर तथा उनके कलयंत्र को समूल नष्ट करते हुए उदयसिंह के पास पहुँचने का प्रयत्न किया । उनके पहुँचने पर हर्षित होकर उन लोगों ने प्रपेष्य नगर की यात्रा की । सम्पूर्ण सम्पत्तियों से भरे उस नगर के घरों को जिसमें वहाँ के निवासी अत्यन्त सुख का अनुभव कर रहे थे, विध्वंस एवं लूट मचाते हुए वे लोग राजा के दुर्ग पर पहुँच गये । ३९-४९। वहाँ इन्दुल द्वारा मुक्त होने पर बौद्धसिंह ने पद्मना नामक अपनी पुत्री का पाणिग्रहण इंदुल के साथ सुसम्पन्न किया । तथा आह्लाद (आल्हा) को दशकोटि सुवर्ण धन प्रदान करने के उपरांत बौद्धों ने उनके समक्ष

आर्यदेशं न यास्यामः कदाचिद्राष्ट्रहेतवे । इत्युक्त्वा तान्प्रणम्याशु सम्प्रस्थानमकारयन् ॥
त्रिलक्षैश्च युतास्ते वै नेत्रपालगृहं गताः ॥५२

ऋषय ऊचुः

इन्दुलेन कथं सूत तत्र प्राणीकृता न हि । सुप्रिया योगसिंहाद्यास्तन्नो वद विचक्षण ॥५३

सूत उवाच

आगता यमलोकाद्वै कतिचित्प्राणिनो भुवि । तदा तु दुःखितो देवो महेन्द्रान्तमुपाययौ ॥५४
देवराज नमस्तुभ्यं सर्वदेवप्रियङ्कर । जयन्तो जगतीं प्राप्य मृताञ्जीवयति स्वयम् ॥
अतो वै लोकमर्यादा विरुद्धा दृश्यते भुवि ॥५५
इति श्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रो देवमायया । वडवामृतमाहृत्य तथा वै स्वर्गगां गतिम् ॥
जयन्तस्य स्वपुत्रस्य मुमोद स सुरैः सह ॥५६
इन्दुलश्च तदा दुःखी शारदां सर्वमङ्गलाम् । पूजयित्वा विधानेन योगध्यानपरोऽभवत् ॥५७
इति ते कथितं विप्र पुनः शृणु कथां शुभाम् । नेत्रपालश्च बलवान्बहुपुत्रः शुचान्वितः ॥
दशकोटिमितं स्वर्णं तेभ्यो दत्त्वा समं समम् ॥५८
प्रस्थानं कारयामास चाष्टानां बलशालिनाम् । ते वै द्विलक्षसैन्याढ्याः स्वगेहाय ययुर्मुदा ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९

शपथ भी की— 'कि राज्य की लिप्सा से हम लोग आर्य प्रदेश में कभी भी यात्रा नहीं करेंगे।' इसके उपरांत उन्हें प्रणामकर वहाँ से प्रस्थान किया। और नेत्रपाल भी अपने तीन लाख सैनिकों समेत घर आये।५०-५२

ऋषियों ने कहा—सूत ! इन्दुल ने अत्यन्त प्रिय अपने योगसिंह आदि वीरों को क्यों जीवित नहीं किया । इसे बताने की कृपा कीजिये ।५३

सूत जी बोले—यमराज के लोक से कुछ प्राणियों ने इस पृथ्वी पर आकर (यहाँ का दृश्य देखते हुए) पुनः देवराज इन्द्र के पास पहुँचकर उनसे प्रार्थना की कि समस्त देवों के प्रिय नेता देवराज तुम्हें नमस्कार है । भगवान् ! जयंत (इंदुल) पृथ्वीपर जाकर मृतकों को स्वयं जीवनदान प्रदान कर रहा है, इसलिए लोक की मर्यादा भूतल पर उसके विरुद्ध दिखाई दे रही है । इसे सुनकर देवसम्राट इन्द्र ने अपनी देवमाया द्वारा अपने पुत्र जयन्त की स्वर्गगामिनीगति समेत उस अमृत वडवा का अपहरण कर लिया । उस समय अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए इंदुल अपने सर्वमंगला शारदा जी की सविधि पूजा करने के उपरांत ध्यान-योग करना आरम्भ किया । विप्र ! इतना कहकर मैं पुनः अन्य कथा सुना रहा हूँ । बलवान् नेत्रपाल ने पुत्र-शोक करते हुए शेष पुत्रों को दश कोटि का सुवर्ण समभाग कर विभाजित करने के उपरांत आठों बलशाली पुत्रों की शेष दो लाख सेनासमेत अपने घर को प्रस्थान किया ।५४-५९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

यदा ते चीनदेशस्थास्तदाहूतो नृपेण वै । कामपालेन भो विप्र लक्षणो नकुलांशकः ॥१
जयचन्द्र महाभाग सावधानं वचः शृणु । वैशाखशुक्लसप्तम्यां मुहूर्तोऽयं दिनागमे ॥२
अतो वै लक्षणो वीरश्चैकाकी मां समाप्नुयात् । गृहीत्वा मत्सुतां दोलां गमिष्यति तवान्तिकम् ॥३
सेनान्वितं च तं ज्ञात्वा महीराजो महाबलः । ग्रहीष्यति पराजित्य तस्माद्योग्यं वचो मम ॥४
इति तत्रत्यवचनं मत्वा राजा प्रसन्नधीः । लक्षणं हस्तिनीसंस्थं शतशूरसमन्वितम् ॥५
आहूय प्रेषयामास कामपालाय धीमते । मार्गे पञ्चदिनं वीर उषित्वा तद्गृहं ययौ ॥६
तदा पद्माकरः श्यालो ज्ञात्वा लक्षणमागतम् । भूमिराजं समाहूय तेन युद्धमचीकरत् ॥७
लक्षणो नकुलांशश्च दृष्ट्वा शत्रुमुपस्थितम् । स्वशरैस्तर्पयामास राजराजं महाबलम् ॥८
मूर्च्छयित्वा महीराजं हत्वा पञ्चशतं बली । कामपालं समागम्य नत्वा वासमकारयत् ॥९
उत्थितश्च महीराजो गत्वा पद्माकरं प्रति । वचनं प्राह कार्यार्थी शृणु मित्र वचो मम ॥१०

अध्याय ३०

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—विप्र ! जिस समय उदयसिंह आदि वीरगण चीन देश गये हुए थे, उस समय राजा कामपाल ने नकुल के अंश से उत्पन्न लक्षण (लाखन) को अपने यहाँ बुलवाया । पत्र में उसने लिखा कि—महाभाग, जयचन्द्र ! सावधान होकर मेरी बातें सुनने की कृपा कीजिये । 'वैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन द्विरागमन (गौने) का शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ है, इसलिए वीर लक्षण (लाखन) अकेले ही मेरे यहाँ आने की कृपा करें । पश्चात् मेरी कन्या के डोला को साथ लेकर सादर अपने घर चले जायें । क्योंकि सैनिकों समेत आने से बलवान् पृथ्वीराज को उनके आगमन का पता लग जाने पर वे उन्हें पराजित कर डोला ले लेंगे। अतः मेरा ही कहना सर्वोत्तम प्रतीत हो रहा है'। इसे सुनकर प्रसन्नचित्त होकर राजा जयचन्द्र ने हस्तिनी पर सुशोभित लक्षण (लाखन) को बुलाकर सौ शूरों समेत उन्हें राजा कामपाल के यहाँ भेज दिया । मार्ग में चलते हुए पाँच दिन की यात्रा समाप्तकर वे जिस दिन वहाँ उनके घर पहुँचे, उसी दिन उनके साले पद्माकर को उनके आने का पता लग गया । उसने शीघ्र पृथ्वीराज को बुलवाकर युद्धारम्भ कर दिया । नकुलांश लक्षण (लाखन) महाबली अपने शत्रु राजाधिराज पृथ्वीराज को वहाँ उपस्थित देखकर उनपर अपनी बाण वर्षा करने लगे । पश्चात् पृथ्वीराज को मूर्च्छित और पाँच सौ उनके वीरों का निधन करने के उपरांत राजा कामपाल के पास पहुँचकर उन्हें नमस्कार किया। अनन्तर राजा ने सादर उन्हें अपने भवन में ठहराया।१-९। चेतना प्राप्त होने पर कार्यशील राजा पृथ्वीराज ने पद्माकर के भवन में जाकर उनसे कहा—प्रिय मेरी एक बात सुनो ! लक्षण (लाखन) मेरा परम शत्रु है,

लक्षणो मे महाञ्छत्रुस्स च त्वद्गेहमागतः । यदि दास्यसि तं बद्ध्वा त्वां मदंङ्कं करोम्यहम् ।।११
इति श्रुत्वा स लोभात्मा दत्त्वा हालाहलं विषम् । बद्ध्वा तं लक्षणं वीरं महीराजाय चार्पयत् ।।
हत्वा ताञ्छतशूरांश्च गुप्तवार्तामकारयत् ।।१२
ज्ञात्वा तत्पद्मिनी नारी दुःखितालप्य वै भृशम् । चण्डिकां पूजयामास पतिमङ्गलहेतवे ।।१३
तदा प्रसन्ना सा देवी वरदा सर्वमङ्गला । आश्वास्य पद्मिनीं नारीं लक्षणान्तमुपाययौ ।।१४
स्वप्ने तमाह सा देवी ह्रीं फट् घेघे जपं कुरु । अस्य मन्त्रप्रभावाच्च सर्वविघ्नः प्रणश्यति ।।१५
स बुद्ध्वा लक्षणो वीरस्तं मन्त्रं च जजाप ह । आषाढे मासि सम्प्राप्ते कृष्णांशाद्या गृहं ययुः ।।१६
तालनश्च युतस्ताभ्यां[1] कान्यकुब्जमुपाययौ । न दृष्टो लक्षणो वीरो जयचन्द्रप्रियङ्करः ।।
ज्ञात्वा तत्कारणं तैश्च कृतं योगमयं वपुः ।।१७
धान्यपालः कांस्यधारी वीणाधारी च तालनः । लल्लसिंहो मृदङ्गाङ्को ययुस्ते वै महावतीम् ।।१८
सभां परिमलस्यैव गत्वा ते योगरूपिणः । चक्रुर्गानं मुदा युक्ताः सर्वे ते मोहमागताः ।।१९
प्रसन्नश्च तदा राजा मुक्तामालां स्वकण्ठगाम् । तालनाय ददौ प्रीत्या ताभ्यां स्वर्णाङ्गुलीयके ।।२०
तदा ते हर्षिताः सर्वे कृष्णांशं प्रति चाययुः । ज्ञात्वा कृष्णांश एवापि धृत्वा योगमयं वपुः ।।
ययौ बिन्दुगढं वीरस्तालनाद्यैस्समन्वितः ।।२१
हट्टमध्ये समागम्य कृत्वा रासोत्सवं शुभम् । गेहं पद्माकरस्यैव गत्वा ते ननृतुर्मुदा ।।२२
एतस्मिन्नन्तरे सर्वा योषितस्तत्र चागताः । वेणुवाद्यवृतं वीरं कृष्णांशं ददृशुर्मुहुः ।।
मोहितास्तस्य गानेन जडीभूता धनं ददुः ।।२३

और वह इस समय तुम्हारे घर में उपस्थित है । यदि उसे बाँधकर मुझे सौंप दो तो मैं तुम्हें अपना पद (प्रतिनिधि) प्रदान कर दूँगा । इस लोभ में आकर पद्माकर ने लक्षण (लाखन) को हलाहल विष देकर मूर्च्छित होने पर उन्हें बांध लिया, और पृथ्वीराज को सौंप दिया । पृथ्वीराज ने उनके साथ के सौ शूरों का निधन करके लक्षण (लाखन) को गुप्त-गृह में छिपा दिया । इस रहस्य का पता लगने पर रानी पद्मिनी दुःख का अनुभद करती हुई अत्यन्त विलाप करने के उपरांत पति की मांगलिक कामनावश चण्डिका देवी की पूजा की । उस समय वरदायिनी सर्वमंगलादेवी ने प्रसन्न होकर रानी पद्मिनी को आश्वासन प्रदान कर पुनः लक्षण (लाखन) के पास प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर स्वप्न में देवी ने उनसे कहा—'ह्रीं फट् घे घे' इस मंत्र का जप करो' । इसी मंत्र के प्रभाव से तुम्हारे सभी विघ्न नष्ट हो जायेगें ।१०-१५। चेतना जागने पर लक्षण (लाखन) ने उपरोक्त मंत्र का जप किया । आषाढ मास के आरम्भ में उदयसिंह आदि वीरगण अपने-अपने घर चले आये ! तालन समेत उदयसिंह ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) को प्रस्थान किया । वहाँ जयचन्द्र के प्रिय भतीजे लक्षण (लाखन) को न देखकर उसके कारण का पता लगाया । पश्चात् योगी के वेष धारणकर उन लोगों ने जिसमें धान्यपाल मजीरा, तालन वीणा, और लल्लसिंह मृदङ्ग को अपनाये हुए थे, महावती (महोबा) में पहुँचकर राजा परिमल के सभा भवन में नृत्य-गान आरम्भ किया उसे देखकर वहाँ के सभी सभासद अत्यन्त मोहित हो गये । प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं अपने गले की मोती की माला तालन को प्रदानकर पश्चात् उन दोनों को

तदा तु पद्मिनी नारी सर्वलक्षणसंयुता । ज्ञात्वा कृष्णांशमेवापि रुरोद चिरमातुरा ।।२४
उवाच च विलप्याशु मत्पतिर्लक्षणो बली ! महीराजेन शूरेण कारागारे बलात्कृतः ।।
अहं योषा भवान्योगी कथं कार्यं भविष्यति ।।२५
इति श्रुत्वा तु स नृपो भुजमुत्थाप्य सत्वरम् । आश्वास्य पद्मिनीं नारी ययुस्ते देहलीं प्रति ।।
राजद्वारमुपागम्य कृष्णांशस्स ननर्त ह ।।२६
महीराजस्तु बलवान्प्रसन्नस्तस्य लीलया। वाञ्छितं ब्रूहि कृष्णांश सर्वं योगिन्ददाम्यहम् ।।२७
इति श्रुत्वा भूपवचो विहस्योवाच तं प्रति । कारागारं लोहमयं नृपयोग्यं च मे नृप ।।
दर्शयाशु स्वकीयं वै भवान्भूपशिरोमणिः ।।२८
इति श्रुत्वा स नृपतिर्मोहितः कृष्णलीलया । दर्शयित्वा च वै शीघ्रं पुनस्तेभ्यो ददौ धनम् ।।२९
ततस्ते योगिनस्सर्वे सम्प्राप्य च महावतीम् । नत्वा परिमलं भूपं गदित्वा सर्वकारणम् ।।३०
स्वसेनां सज्जयामास चाह्लादश्च नृपाज्ञया । पञ्चलक्षं महावत्यां हयारूढास्समास्थिताः ।।३१
तालनस्सप्तलक्षाणि सैन्यान्याहूय चागतः । एवं द्वादशलक्षाणि क्षत्रिया रणदुर्मदाः ।।

सुवर्ण की अंगूठी प्रदान किया । उस सम्मान से वे हर्षित होकर उदयसिंह के पास पहुँचे । वीर उदयसिंह ने अपने समाज वालों को अत्यन्त निपुण जानकर अपना योगमय वेष धारण किये तालन आदि के साथ बिंदुगढ़ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस नगर के बाजार में इन्होंने सर्वप्रथम सुन्दर रास लीला दिखाई । तदुपरांत पद्माकर के भवन में जाकर अत्यन्त प्रसन्न होकर नृत्य किया । उसी बीच वहाँ सभी स्त्रियाँ भी आ गई थी जो वंशी बजाने वाले उदयसिंह को ही बार-बार देख रही थी । उनके नृत्य-गान को सुनकर उन स्त्रियों के मोहित होकर जड़ की भाँति हो जाने पर सर्वलक्षण सम्पन्न रानी पद्मिनी ने 'उदयसिंह यही हैं, ऐसा निश्चित कर उनके सामने रुदन करती हुई करुण वचनों द्वारा उनसे कहा—'बली लक्षण (लाखन) मेरे पति हैं, जिन्हें शूर पृथिवीराज ने अपने बल प्रयोग द्वारा जेल में बन्द कर दिया है । किन्तु, मैं स्त्री हूँ, और आप योगी हैं, अतः मुझे चिन्ता हो रही है कि (उनके मुक्त होने का) कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा' । इसे सुनकर उदयसिंह ने अपने दोनों हाँथों को उठाकर रानी पद्मिनी को आश्वासन प्रदान किया, पश्चात् दिल्ली को प्रस्थान भी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजदरबार में नृत्य किया । उस नृत्य की लीला से मुग्ध होकर बलवान् पृथ्वीराज ने उनसे कहा—योगिन् ! अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिये, आप क्या चाहते हैं मैं सभी कुछ देने को तैयार हूँ। राजा की ऐसी बात सुनकर हँसते हुए उदयसिंह ने कहा—नृप ! आप के यहाँ (शत्रु) राजाओं के लिए लोहे का जेल बना हुआ है, क्योंकि आप राजाधिराज हैं, ऐसा मैंने सुना है । मेरी इच्छा है आप वही मुझे दिखा देने की कृपा करें । इसे सुनकर कृष्णांश उदयसिंह की लीला से मुग्ध उस राजा ने उन्हें उसे शीघ्र दिखाया और धन भी प्रदान किया । उपरांत वे सभी योगी महावती (महोबा) चले गये। वहाँ पहुँचकर नमस्कार पूर्वक राजा परिमल से उन्होंने समस्त वृतान्त कह सुनाया।१६-३०। राजा की आज्ञा प्राप्तकर आह्लाद (आल्हा) ने अपनी महावती स्थित सेना को वहाँ चलने के लिए आदेश प्रदान किया, जो पाँच लाख की संख्या में वहाँ सदैव उपस्थित रहती थी। इस प्रकार तालन भी अपनी सात लाख सेना समेत उनके पास पहुँचे इस प्रकार बारह लाख

देहलीं च समाजग्मुस्सर्वशस्त्रसमन्विताः ॥३२
एतस्मिन्नन्तरे मन्त्री चन्द्रभट्टो विशारदः । सर्वशास्त्रार्थकुशलो वैष्णवीशक्तिपूजकः ॥३३
महीराजं समागम्य वचः प्राह शृणुष्व भोः । मया वै च रहः क्रीडा दृष्टा देवीप्रसादतः ॥३४
तत्रोदयश्च कृष्णांशः पूर्णब्रह्माणमागमत् । वचः प्राह प्रसन्नात्मा शृणु त्वं सत्त्वविग्रह ॥३५
अग्निवंशविनाशाय चाद्य यास्यामि देहलीम् । हत्वाहं कौरवांशांश्च स्थापयित्वा कलिं भुवि ॥३६
पुनस्तवान्तिकं प्राप्य रहः क्रीडां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा बिन्दुलारूढः स वीरस्त्वामुपस्थितः ॥
इत्यहं दृष्टवान्भूप कृष्णांशं योगनिद्रया ॥३७
इति तस्य वचः श्रुत्वा स भूपो विस्मयान्वितः । भयभीतः सहस्राणि शूरानाहूय सत्वरम् ॥
तेभ्यश्च लक्षणं दत्त्वा वचनं प्राह तान्प्रति ॥३८
पद्माकराय भूपाय गत्वा दत्त्वाशु लक्षणम् । ममान्तिकमुपागम्य कारणं वदताशु तत् ॥३९
इति श्रुत्वा तु ते सर्वे वह्निवंश्या महाबलाः । गत्वा तत्र तथा कृत्वा महीराजमुपागमन् ॥४०
भगदन्तश्च तेषां तु सहस्राणां च नायकः । महीराजं वचः प्राह शृणु तन्नृपभाषितम् ॥४१
पद्मिनी मे स्वसा राजन् गुप्तविद्याविशारदा । तया यज्ञपतिर्देवः सम्यगाराधितः पुरा ॥४२
दत्तस्तेन वरो रम्यो ह्यन्तर्धानमयः परः । सा तु तं लक्षणं कान्तमन्तर्धानं करिष्यति ॥
इति श्रुत्वा स नृपतिः परमानन्दमाप्तवान् ॥४३

सेना समेत जिसमें रण-दुर्धर्ष क्षत्रियगण सैनिक थे, अपने शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उन लोगों ने दिल्ली को प्रस्थान किया । उसी बीच निपुण मंत्री चन्द्रभट्ट ने जो सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं वैष्णवी शक्ति के उपासक थे, पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे कहा—'देवी जी की प्रसन्नतावश मैंने 'एकान्त क्रीडा, का दर्शन किया है, जिसमें कृष्णांश उदयसिंह पूर्ण ब्रह्म के रूप में दिखाई दे रहे थे । उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—शरीरधारी जीव ! मैं अग्निवंश के क्षत्रियों के समूल विनाशार्थ दिल्ली को प्रस्थान कर रहा हूँ । वहाँ कौरवाँश से उत्पन्न उन क्षत्रियों का विनाश करने के उपरान्त इस भुतल में कलि की स्थापना करके मैं पुनः तुम्हारे पास पहुँचकर एकान्त क्रीड़ा करूँगा । इतना कहकर उस वीर ने बिंदुल (बेंदुल) नामक अश्वपर बैठकर यहाँ आने का प्रस्थान कर दिया है । भूप ! इन बातों को मैंने योगनिद्रा देवी द्वारा उन कृष्णांश (उदयसिंह) से पूछा था । इसे सुनकर राजा पृथ्वीराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । भयभीत होकर उन्होंने एक सहस्र शूरों को बुलाकर उन्हें लक्षण (लाखन) को सौंप दिया और कहा कि—इन्हें ले जाकर राजा पद्माकर को सौंप देने के उपरांत वहाँ की सभी बातें मुझसे शीघ्र आकर कहो ! इसे सुनकर अग्निवंशीय महावली उन क्षत्रियों ने वहाँ जाकर कार्य सम्पन्न करने के उपरांत पृथ्वीराज के पास आकर निवेदन किया ।३१-४०। उन सहस्र क्षत्रिय शूरों के अधिनायक भगदन्त ने पृथिवीराज से कहा—कि वहाँ के राजा ने जो कुछ कहा है, मैं बता रहा हूँ, कृपया सावधान होकर श्रवण कीजिये । उन्होंने कहा— 'राजन् ! मेरी भगिनी पद्मिनी जो गुप्तविद्या में अत्यन्त निपुण है, पहले समय में यज्ञाधीश देव की भली-भाँति आराधना की है । उसी से उन्होंने उसे अन्तर्धान होने का सुन्दर वरदान प्रदान किया है । इससे वह अपने पति लक्षण (लाखन) को अन्तर्हित कर देगी । इसे सुनकर पृथ्वीराज को परमानन्द की प्राप्ति हुई' । उसी बीच महाबलवान् उदयसिंह आदि

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या महाबलाः । रुरुधुर्देहलीं सर्वां महीराजेन पालिताम् ॥४४
स तदा पृथिवीराजो गृहीत्वा बहुभूषणम् । सर्वेभ्यश्च ददौ प्रेम्णा वचनं प्राह नम्रधीः ॥४५
लक्षणो नाम ते राजा कारागारे न वै मम । यदि मन्नगरे चास्ति तर्हि ते रोष ईदृशः ॥४६
इत्युक्त्वा तं च कृष्णांशं दर्शयामास वै गृहम् । महादेवस्य शपथं कृतवान्भूपतिर्भयात् ॥४७
तदोदयो भूपवचः सत्यं मत्वा सुदुःखितः । स्वकीयैः सह सम्प्राप्तो ग्रामं बिन्दुगढं शुभम् ॥४८
कामपालस्तु तच्छ्रुत्वा कृष्णांशागमनं बली । बलिं बहु गृहीत्वाशु कृष्णांशं शरणं ययौ ॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा वचनं प्राह भीरुकः ॥४९
सुता मे पद्मिनी नारी लक्षणेन समन्विता । न ज्ञात्वा क्व गताऽस्माभिस्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥५०
इति तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णांशः स्वबलैस्सह । कान्यकुब्जं समागत्य जयचन्द्रमुवाच ह ॥५१
भ्रातृजस्तव भूपाल पद्मिन्या लक्षणोऽन्वितः । कामपालगृहे नास्ति निश्चितो बहुधा मया ॥५२
न जाने क्व गतो राजा मम प्राणसमो भुवि । यदि भूप न पश्यामि सत्यं प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥५३
हा रत्नभानुतनय विष्णुभक्त शुभंकर । स्वमित्रं मां परित्यज्य कां दिशं गतवान्भवान् ॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छितश्चासीत्कृष्णांशो वैष्णवप्रियः ॥५४
तदा स्वर्णवती देवी स्वदास्या शोभया सह । धृत्वा शुकमयं रूपं तत्रागत्य स्वमूर्तिगा ॥५५
तया सम्प्रेषिता शोभा म्लेच्छमायाविशारदा । जयचन्द्रमुपागम्य धृत्वा दिव्यमयं वपुः ॥५६
उवाच वचनं तत्र शृणु भूपशिरोमणे । मायाविनीं च मां विद्धि शोभनां नाम विश्रुताम् ॥५७

वीरों ने वहाँ पहुँचकर पृथिवीराज की राजधानी दिल्ली को चारों ओर से घेर लिया। उस समय पृथ्वीराज ने उन लोगों के पास पहुँचकर उन्हें अनेक भाँति के भूषण उपहार प्रदान करके नम्रता पूर्वक सप्रेम उनसे कहा—तुम्हारे राजा लक्षण (लाखन) मेरे जेल में नहीं हैं, यदि हमारे नगर में भी वे होते, तब आप को इस प्रकार का क्रोध करना उचित था। इतना कहकर उन्होंने उदयसिंह को वह (जेल) स्थान दिखा दिया। पश्चात् भयभीत होकर राजा ने महादेव की शपथ भी की। उस समय राजा की बात सत्यमान कर उदयसिंह ने दुःख का अनुभव करते हुए सैनिकों समेत बिन्दुगढ़ को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर राजा कामपाल ने उनके आगमन को सुनकर भाँति-भाँति के उपहार समेत उदयसिंह की शरण में जाकर सादर सप्रेम हाथ जोड़ते हुए करुण वाणी द्वारा उनसे कहा—मेरी पुत्री पद्मिनी लक्षण (लाखन) के साथ कहाँ चली गई, इसे हम लोग कुछ भी नहीं जानते हैं। यह मैं सत्य एवं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ। इसे सुनकर उदयसिंह ने अपने सैनिकों समेत कान्यकुब्ज (कन्नौज) आकर जयचन्द्र से कहा—आपके भतीजे लक्षण (लाखन) पद्मिनी समेत कामपाल के घर में नहीं है, यह मैंने अनेक प्रकार से वहाँ देखकर निश्चित किया है। प्राण के समान वह मेरा राजा इस पृथ्वी में न जाने कहाँ चला गया। राजन्! यदि मैं उन्हें न देखूँगा, तो मैं अवश्य प्राण-परित्याग कर दूंगा, हा रत्न भानु के पुत्र! विष्णु के कल्याणकर भक्त! मुझ अपने मित्र को छोड़कर आप कहाँ चले गये। इतना कहकर वैष्णवप्रिय उदयसिंह मूर्च्छित हो गये। उस समय देवी स्वर्णवती (सोना) ने अपनी दासी शोभा समेत शुकरूप धारण करके वहाँ पहुँचकर म्लेच्छ माया की विदुषी उस शोभना को जयचन्द्र के पास भेजा।४१-५६। उसने दिव्य रूप धारण कर जयचन्द्र के पास पहुँचकर कहा—भूपशिरोमणे! मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये। मैं शोभना नामक प्रख्यात

दम्पती तव भूपाल संहृतौ येन यत्र वै । तत्राहं च गमिष्यामि महामदसमन्विता ।।५८
आह्लादश्चेन्दुलो वीरो देवो वै तालनो बली । कृष्णांशपालितास्सर्वे यास्यामो भूपते वयम् ।।५९
इत्युक्त्वा शोभना वेश्या कृत्वा योगमयं वपुः । महामदं समारुह्य पैशाचं रुद्रकिङ्करम् ।।
प्रययौ तान्पुरस्कृत्य योगिवेषान्महाबलान् ।।६०
आह्लादो गजसंस्थो वै करालस्थ इन्दुलः । तालनः सिंहिनीसंस्थो देवसिंहो मनोरथे ।।
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो नर्तयामास तं हयम् ।।६१
कामरूपमयं देशं शतयोजनगामिनः । बलवन्तश्च सम्प्राप्ता गेहे गेहे जने जने ।।
लक्षणं शोधयामासुर्न प्राप्तास्तत्र तं नृपम् ।।६२
पुनर्मयूरनगरं शोभना तैः समन्विता । चिन्वती तं मनुष्येषु न प्राप्ता तत्र वै नृपम् ।।६३
पुनरिन्द्रगढग्रामं शोभना च जने जने । लक्षणं मृगयामास न प्राप तत्र लक्षणम् ।।६४
गत्वा बाह्लीकनगरं शोभना तैस्समन्विता । लक्षणं च नृपश्रेष्ठं नापश्यत्तत्र दुःखिता ।।६५
पुनः स्वदेशमागम्य बाह्लीकं म्लेच्छवासिनम् । मर्कटेश्वरमीशानं तत्राह वनवासिनम् ।।
पूजयित्वा च सा वेश्या गाननृत्यपराभवत् ।।६६
स देवो भूमिमध्यात्तु समागम्यमुदान्वितः । कृष्णांशं प्रणतो भूत्वाऽब्रवीन्म्लेच्छप्रपूजितः ।।६७
अहं कालाग्निरुद्रेण भूमिगर्तेसुरोपितः। असमर्थं च मां विद्धि गच्छ वीर यथासुखम् ।६८
इति श्रुत्वा च सा शोभा निराशाभूत्तदा स्वयम् ।।६९
पुनः स्वर्णवतीं प्राप्य सर्वमेवादितोऽब्रवीत् । त्रिंशदब्दैश्च कृष्णांशे चैत्रशुक्ले समागते ।।७०

मायाविनी हूँ । आपके पुत्रवधू समेत पुत्र का अपहरण जिसने किया है, वहाँ महामद समेत मैं जा रही हूँ । मेरे साथ आह्लाद (आल्हा) इंदुल देवसिंह, एवं बली तालन आदि उदयसिंह की अध्यक्षता में चलेंगे । इतना कहकर योगमय शरीर धारण करके उस रुद्र किंकर महामद नामक पिशाच के ऊपर आसीन होकर उस शोभना ने योगी वेषधारी उन महाबलवानों को आगे करती हुई वहाँ को प्रस्थान किया । उस यात्रा में आह्लाद (आल्हा) गज पर, इन्दुल कराल नामक अश्व पर, तालन सिंहनी नामक घोड़ी, देवसिंह मनोरथ पर और उदयसिंह अपने बेंन्दुल घोड़े पर बैठे हुए उसको नचाते हुए चल रहे थे । वहाँ से कामरूप देश की सौ योजन की यात्रा करके उन बलवानों ने वहाँ के प्रत्येक घरों एवं मनुष्यों से लक्षण (लाखन) का अनुसंधान किया किन्तु कहीं उसका पता न चल सका । पुनः वह शोभना प्रत्येक मनुष्यों में ढूँढती हुई वह मयूर नगर आई किन्तु वहाँ पर भी उनका पता नहीं चला । इसी प्रकार उस शोभना नामक मायाविन ने इन्द्रगढ़ और बाह्लीक नगर में जाकर वहाँ के प्रत्येक नागरिकों एवं उनके घरो में ढूँढ़ने पर भी लक्षण (लाखन) का पता न चलने से पुनः अपने वाह्लीक प्रदेश में पहुँचकर मरुस्थल निवासी मर्कटेश्वर महादेव की सविधान पूजा करके उनके सम्मुख नृत्य गान आरम्भ किया ।५७-६६। पश्चात् उस देव ने जो म्लेच्छों के पूज्य थे, भूमि के भीतर से बाहर निकलकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह से कहा—वीर ! कालाग्नि रुद्रदेव ने मुझे इसी भूमि के गड्ढे के (भीतर) बैठा दिया है, अतः आपके मनोरथ सफल करने में मै असमर्थ हूँ। कृपया यहाँ व्यर्थ कष्ट न कीजिये। इसे सुनकर वहाँ से निराश होकर शोभना ने पुनः स्वर्णवती (सोना) के पास पहुँचकर उससे समस्त वृत्तान्त कहा। उदयसिंह की तीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर चैत्र शुक्ल के नवरात्र के दिन में उस सुवर्ण वदना

तानाश्वास्य सुवर्णाङ्गी पूजयामास चण्डिकाम् । नवरात्रं गतं तस्या भोजनाच्छादनं विना ।।
निशीथान्ते तमः प्राप्ते गत्वाह जगदम्बिका ।।७१
पद्मिनी नाम या नारी मणिदेवस्य वै प्रिया । जाता सा कामपालस्य गृहे यज्ञावमानिता ।।७२
सेनापतिः कुबेरस्य मणिदेवो हि स स्मृतः । पूर्वं हि भीमसेनेन यक्षयुद्धेषु घातितः ।।७३
तदा तत्पद्मिनी नारी देवदेवमुमापतिम् । तुष्टाव च निराहारा मत्पतिं देहि शङ्कर ।।७४
शतवर्षान्ततरे देवो महादेव उवाच ताम् । कलौ विक्रमकाले हि शतद्वादशकेऽन्तिके ।।७५
नकुलांशं च सम्प्राप्य भुक्त्वा तेन महत्सुखम् । तद्वियोगेन सन्त्यज्य देहं पद्मानुवासितम् ।।
स्वपतिं च तदा प्राप्य कैलासं पुनरेष्यसि ।।७६
महावतीं पुरीं रम्यां राष्ट्रपालाय शारदा । करिष्यति तदा देवी मणिदेवस्तु त्वत्पतिः ।।७७
तया विरचितो भूमौ ग्रामरक्षार्थमुद्यतः । प्राप्तस्त्वां पद्मिनीं नारीं कैलासं पुनरेष्यति ।।७८
अतः स्वर्णवति त्वं वै कैलासं गुह्यकालयम् । गत्वाशु पद्मिनीं तत्र बोधयाशु वचः कुरु ।।७९
इति श्रुत्वा स्वर्णवती पद्मिनीं प्रति चागमत् । वृत्तान्तं कथयित्वाग्रे पद्मिनी तु दयातुरा ।।८०
कामपालं गृहं प्राप्य तत्र वासमकारयत् । स्वर्णवत्यपि सम्प्राप्ता तदा शीघ्रं महावतीम् ।।८१
तस्यां गतायां गेहे वै पद्मिन्या लिखितं शुभम् । पत्रं परिमलो राजा वर्तयामास हर्षितः ।।८२

(सोना) ने अपने अनुयायियों को आश्वासन प्रदानकर भगवती देवी चण्डिका की सविधान पूजा करना आरम्भ किया तथा नवरात्र के दिनों में भोजन और शय्या-शयन के त्याग भी । पश्चात् अन्त की रात्रि में उस घोर अँधेरी आधीरात के समय भगवती जगदम्बिका ने स्वर्णवती (सोना) से कहा—जिस पद्मिनी स्त्री को (लाखन समेत) तुम खोज रही हो, वह मणिदेव यक्ष की प्रिया है । यज्ञ में अपमानित होने पर उसने कामपाल के यहाँ जन्म ग्रहण किया है । वह मणिदेव कुबेर का सेनानायक है, युद्ध में जिसे पराजित कर भीमसेन ने हनन कर दिया था । उस समय पद्मिनी ने निराहार रहकर देवाधिदेव एवं उमापति शिव से बार-बार यही प्रार्थना किया है—हे शंकर ! मेरा पति मुझे प्रदान करो ! सौ वर्ष की आराधना करने के उपरांत महादेव ने उससे कहा—कलियुग में विक्रम काल (संवत्सर) के बारहवीं शताब्दी के अन्तिम समय के लगभग नकुलांश (लाखन) को (पति रूप में) प्राप्तकर अत्यन्त सुख का उपभोग करती हुई उससे वियोग होने पर इस सौरभ से सुवासित देह के त्यागपूर्वक अपने पति समेत पुनः तुम्हें कैलास की प्राप्ति होगी । राष्ट्रपाल के लिए उस रमणीक महावती (महोबा) नामक राजधानी के निर्माण करती हुई देवी शारदा के ही द्वारा तुम्हें पति रूप में मणिदेव की प्राप्ति होगी । इस भूतल में देवी द्वारा उत्पन्न होकर वह ग्राम रक्षार्थ नियुक्त (राजा) होगा । पश्चात् पद्मिनी नामक तुम्हें स्त्रीरूप में प्राप्तकर पुनः कैलास चला आयेगा । इसलिए स्वर्णवती (सोना) देवि ! मेरी बात स्वीकार कर यक्षों के निवासरूप उस कैलास की शीघ्र यात्रा करके वहाँ पद्मिनी को इन बातों की जानकारी कराओ । इसे सुनकर उस सुवर्णाङ्गी (सोना) ने वहाँ पहुँचकर पद्मिनी से सभी वृत्तान्त का वर्णन किया । उससे प्रभावित होकर दयावती पद्मिनी ने कामपाल के घर निवास करना स्वीकार किया । उस समय रानी (सोना) ने महावती (महोबा) में शीघ्र पहुँचकर राजा परिमल को पद्मिनी का लिखा हुआ वह पत्र दिया जिसमें उसने अपने (पिता के) घर में निवास करना आदि सभी बातें लिखी थी ।६७-८२। तथा यह भी

आगच्छ सेनया सार्द्धं कृष्णांश बलवत्तर । जित्वा पद्माकरं बन्धुं मत्पतिं मोचयाशु वै ॥
भूतले लक्षणो राजा स्थितः पद्माकरार्तिगः ॥८३
इति ज्ञात्वा च कृष्णांशो लक्षद्वादशसेनया । रुरोध नगरीं सर्वां कामपालेन रक्षिताम् ॥८४
कामपालस्तु बलवांस्त्रिलक्षबलसंयुतः । सुताज्ञया ययौ युद्धं सार्द्धं पद्माकरेण वै ॥८५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सैन्योरुभयोस्तदा । अहोरात्रप्रमाणेन भूपसेना पराजिता ॥८६
पद्मिनीं शरणं प्राप्य तदा भ्राता पिता स्थितः । तयोर्विजयमेवाशु यथाप्राप्तं चकार सा ॥
अन्तर्द्धानमयं पत्रं तयोरर्थे च सा ददौ ॥८७
तौ तत्रान्तर्हितौ भूत्वा स्वखड्गेन रिपोर्बलम् । अयुतं जघ्नतुर्मत्तौ तदा ते विस्मयं गताः ॥८८
तालनाद्या रणं त्यक्त्वा कृष्णांशं शरणं ययुः । कृष्णांशोऽपि तदा दुःखी ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् ॥८९
दिव्यदृष्टिस्ततो जातः संप्राप्य तमयुध्यत । नभोगतं कामपालं तथा पद्माकरं नृपम् ॥९०
बद्ध्वा तत्र मुदाविष्टो लक्षणं प्राप्य निर्भयः । दोलामारोप्य तां देवीं स्वगेहाय मुदा ययौ ॥९१
जयचन्द्राय भूपाय दत्त्वा वै तौ च दम्पती । लक्षणं पद्मिनीं चैव कृतकृत्यस्तदाभवत् ॥९२
जयचन्द्रोऽपि बलवान्दृष्ट्वा गेहे स्वदम्पति । ददौ दानं द्विजातिभ्यो भूपतिं सममोचयत् ॥
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे कृष्णांशो गेहमागतः ॥९३

लिखा था कि सेना समेत बलवान् उदयसिंह शीघ्र आकर भाई पद्माकर को पराजित करके मेरे पति को शीघ्र मुक्त कराइये। 'राजा लक्षण (लाखन) इस पृथ्वी पर जीवित तथा पद्माकर द्वारा पीड़ित हैं, ऐसा जानकर उदयसिंह ने अपने बारह लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर कामपाल की उस राजधानी को चारों ओर से घेर लिया। राजा कामपाल ने भी अन्य पुत्रों की आज्ञावश पद्माकर पुत्र तथा अपने तीन लाख सैनिकों समेत युद्धस्थल में पहुँचकर युद्धारम्भ कर दिया। दोनों सेनाओं में महान् एवं घोर संग्राम हुआ जो अविराम गति से दिन-रात चलता रहा। सेना के पराजित होने पर कामपाल ने पुत्र समेत पद्मिनी की शरण में पहुँचकर अपनी विजय की प्रार्थना की। उन दोनों की विजयकामना वश उसने उस अन्तर्हित करनेवाले पत्र को उन्हें अर्पित कर दिया। उस समय उन दोनों ने अन्तर्हित होकर शत्रु के दश सहस्र सैनिकों के हनन किये। इसे देखकर तालन आदि सेनाध्यक्षों को महान् आश्चर्य हुआ! फलतः रणभूमि छोड़कर वे सभी उदयसिंह की शरण पहुँचे। उसे सुनकर दुःख का अनुभव करते हुए उदयसिंह ने सर्वमयी भगवती पार्वती की आराधना करके दिव्यदृष्टि प्राप्त की, जिससे आकाश स्थित होकर युद्ध करते हुए उन दोनों को देखा। पश्चात् निर्भय होकर उन दोनों को बाँधकर लक्षण (लाखन) के पास पहुँचे और उनके समेत पद्मिनी का डोला साथ लेकर अपने घर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर राजा जयचन्द्र को दम्पती राजा लक्षण (लाखन) और उनकी रानी पद्मिनी सौंपकर अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करने लगे। बलवान् जयचन्द्र ने भी अपने घर में पुत्र तथा पुत्र-वधु को उपस्थित देखकर हर्ष निमग्न होते हुए ब्राह्मणों को दान तथा बंधन समेत जेल में पड़े हुए राजाओं को साथ ही बंधन मुक्त किया। इस प्रकार ज्येष्ठमास के आरम्भ में उदयसिंह अपने घर पहुँच गये।८३-९३। विप्र! कृष्णांश

इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । पुनस्ते कथयिष्यामि दृष्टं योगबलेन वै ।।९४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

शृणु विप्र महाभाग चन्द्रभट्टस्तदा स्वयम् । महीराजं सदःस्थं तं चन्द्रतुल्यस्समागतः ।।१
तमागतं समालोक्य स राजा शोकतत्परः । उवाच वचनं रम्यं शृणु मन्त्रिवर प्रभो ।।२
कृष्णांशाद्यैर्महाशूरैर्मद्ग्रामे भयमागतम् । कदा ते च मरिष्यन्ति कण्टका मम दारुणाः ।।३
इत्युक्तस्स तु शुद्धात्मा ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । वचनं प्राह राजानं शृणु भूपशिरोमणे ।।४
जिष्णोरंशात्समुद्भूतो ब्रह्मानन्दो महावतीम् । स कृष्णांशसखः श्रेष्ठः सर्वदा तत्प्रिये रतः ।।५
यदा च मलनापुत्रो देहं त्यक्त्वा गमिष्यति । तदा ते सर्वदेवांशा गमिष्यन्ति यतो गताः ।।६
इत्येवं वादिनं धीरममात्यं च महीपतिः । वचनं प्राह नम्रात्मा कोऽप्यर्थश्चिन्तितो मया ।।७

(उदयसिंह) के इतने चरित्र को मैंने तुम्हें सुना दिया, किन्तु योगबल द्वारा जो कुछ उनके चरित को देखा है, मैं पुनः कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।९४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अध्याय ३१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग, विप्र ! मैं कह रहा हूँ, सुनो ! एक बार जिस समय राजा पृथ्वीराज सिंहासन पर बैठे हुए थे, उसी समय वहाँ चन्द्रभट्ट का आगमन हुआ । आये हुए उन्हें देखकर चिन्तित होकर राजा ने उनसे कहा—मंत्रिप्रवर ! मेरी एक बात सुनो ! उदयसिंह आदि महाशूरों द्वारा मेरा समस्त नगर भयभीत है, अतः इन मेरे भीषण शत्रुओं की मृत्यु कब होगी? । उनके इस प्रकार कहने पर उस शुद्धात्मा भट्ट ने सर्वमयी भगवती शिवा के ध्यानपूर्वक राजा से कहा—भूप शिरोमणि ! मैं कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनने की कृपा कीजिये । महावती (महोबा) नगर के निवासी ब्रह्मानन्द विजयशील विष्णु के अंश से उत्पन्न हैं । कृष्णांश (उदयसिंह) उनके परम मित्र हैं, जो सदैव उनके प्रिय कार्य करते रहते हैं । इसलिए वह मलना-पुत्र (ब्रह्मानन्द) अपनी शरीर के त्यागपूर्वक जिस समय यहाँ से प्रस्थान करेगा, उसी समय देवांश से उत्पन्न वे सभी लोग यहाँ से चले जाँयेगे ।१-६। ऐसा कहने वाले उस धीर गम्भीर मंत्री और राजा से महीपति (माहिल) ने विनम्र होकर कहा—मैंने एक उपाय सोच-विचारकर निश्चित

एकाकिनं महाशूरं ब्रह्मानन्दं नृपोत्तमम् । समाहूय महीराजो द्विरागमनहेतवे ॥
छद्मना घातयित्वा तं कृतकृत्यो भविष्यति ॥८
इत्युक्तं नृपतिं प्राह महीराजः प्रसन्नधीः । वचनं शृणु भो मित्र गच्छ शीघ्रं महावतीम् ॥९
मलनां च समागत्य बोधयित्वा तु तां स्वयम् । ममान्तिकमुपागम्य चिरं जीव सुखी भव ॥१०
इति श्रुत्वा तु वचनं नत्वा तं च महीपतिः । रात्रौ घोरं मुनिश्रेष्ठ मलनां प्राह निर्भयः ॥११
वधूस्तव महाराज्ञि वेला नाम सुरूपिणी । संप्राप्ता यौवनवती पतियोग्या शुभानना ॥१२
कुजातिश्चैव कृष्णांशः श्रुतो राज्ञा महात्मना । अतो न प्रेषिता पुत्री तव पुत्राय धीमते ॥
अतो मद्वचनं मत्वा कुरु कार्यं तव प्रियम् ॥१३
मया सार्द्धं तव सुतो ब्रह्मानन्दो महाबलः । उर्वीयां नगरीं प्राप्य तदा मत्सैन्यसंयुतः ॥१४
महीराजमुपागम्य पत्नीं शीघ्रमवाप्स्यति । नो चेन्ममाज्ञया वेला त्यक्त्वा कान्तं मरिष्यति ॥१५
इति श्रुत्वा तु सा राज्ञी मोहिता देवमायया । राजानं समुपागम्य भ्रातुर्वचनमुत्तमम् ॥
कथयामास वै सर्वं श्रुत्वा भूपोऽब्रवीदिदम् ॥१६
महीपतिर्महाधूर्तो मद्विनाशाय चोद्यतः । तस्य वार्ता न मे रम्या कपटस्तेन निर्मितः ॥१७
इति श्रुत्वा च मलना राजानां कोपसंयुतम् । वचनं प्राह भो राजन्यथा बन्धुस्तथा ह्यहम् ॥
वचनं कुरु मे राजन्नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥१८

कर लिया है—वह यह है कि उस नृपश्रेष्ठ एवं महावली ब्रह्मानन्द को गौने के बहाने से अकेले बुलाकर छल-कपट द्वारा उनका निधन करके आप कृतकृत्य हो जाँयेगे । इस प्रकार कहते हुए उस राजा से प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने कहा—मित्र ! मेरी बात सुनो ! तुम शीघ्र महावती (महोबा) जाकर वहाँ मलना के पास पहुँचकर स्वयं उनसे भली भाँति समझाकर कहो । पश्चात् मेरे पास आकर सूचित करो जिससे तुम चिरजीवन प्राप्तकर सुख का अनुभव करो। मुनिश्रेष्ठ ! इसे सुनकर उस महीपति (माहिल) ने नमस्कार पूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया । रात्रि के समय घोर अंधेरे में वह मलना के पास पहुँचकर निर्भीक होकर कहने लगा तुम्हारी वेला नाम की महारानी बहू ने इस समय यौवन सौन्दर्य प्राप्त किया है जिससे वह कल्याणमुखी पति के योग्य हो गई है । किन्तु महाराज पृथ्वीराज ने यह सुना है कि उदयसिंह का जन्म नीच जाति में हुआ है । इसीलिए उन्होंने अपनी पुत्री तुम्हारे पुत्र के पास भेजना उचित नहीं समझा । अतः मेरी बात मानकर जैसा मैं कहूँ, करने को तैयार हो जाओ, क्योंकि उसी में तुम्हारा हित है । तुम्हारा पुत्र महाबली ब्रह्मानन्द अकेले मेरे साथ मेरी उर्वी (ऊरई) राजधानी में चलकर वहाँ मेरी सेना समेत पृथ्वीराज के पास पहुँच जायेगा ।७-१५। तो अवश्य अपनी पत्नी ले आयेगा, इसमें संदेह नहीं है । नहीं तो मेरी बात सुनकर वेला अपने पति का त्यागकर अपना प्राण विसर्जन कर देगी। इसे सुनकर दैवमाया से मोहित होकर उस रानी ने अपने पति के पास पहुँचकर अपने भाई की समस्त बातें उनसे कहा। उसे सुनकर राजा ने कहा—महीपति (माहिल) महाधूर्त है, वह सदैव हमारे विनाश करने के लिए ही प्रयत्नशील रहता है । इसलिए उसकी बात मुझे रुचती नहीं है, क्योंकि वह कपट कर रहा है । इसे सुनकर रानी मलना ने उस क्रोधित राजा से कहा—'राजन् ! जैसे भाई हैं वैसे मैं भी हूँ, आप इस कहने को मेरा ही कहना समझ-

इत्युक्तवादिनीं रात्रौ तदा परिमलो नृपः । ब्रह्मानन्दं ददौ तस्मै स सुतः मातृवत्सलः ।।१९
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य मातुलेन समन्वितः । रात्रौ च मातुलग्रामं सम्प्राप्य मुदितोऽभवत् ।।२०
प्रातःकाले च सम्प्राप्ते हरिनागरमास्थितः । एकाकी देहलीं रम्यां प्रययौ दैवमोहितः ।।२१
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते महीराजस्य मन्दिरे । अगमां दर्शयामास सुरूपां दिव्यविग्रहाम् ।।२२
अगमा च समालोक्य परं हर्षमुपाययौ । माघशुक्लस्य चाष्टम्यां ब्रह्मानन्दश्च निर्भयः ।।
श्यालानां योषितः सप्त ददर्श रुचिराननाः ।।२३
तिस्रो नार्यश्च विधवाश्चतस्रो धवसंयुताः । ब्रह्मानन्दं शब्दमयं वाक्यमूचुर्मुदान्विताः ।।२४
ब्रह्मानन्द महाभाग सावधान वचः शृणु । तव पत्नी स्वयं काली वेला कलहरूपिणी ।।
सञ्जहार धवानेव नो वयं तु सुदुःखिताः ।।२५
सापत्न्यमस्तु तत्तस्या गृहाणास्मान्मनोहर । धवान्विदेहि नो वीर पतिर्भवमुदान्वितः ।।२६
इति श्रुत्वा वचस्तासां ब्रह्मानन्दो महाबलः । उवाच मधुरं वाक्यं श्रुतिस्मृतिसमन्वितम् ।।२७
पुरा सत्ययुगे नारी चोत्तमा च पतिव्रता । त्रेतायां मध्यमा जाता निकृष्टा द्वापरे पुनः ।।२८
अधमा हि कलौ नारी परपुंसोपभोगिनी । अतस्तु कलिकाले वै विवाहो विधवास्त्रियाः ।।
देवलेन शुभः प्रोक्तश्चासितेन स्वयं स्मृतौ ।।२९
सती सत्ये तु सा प्रोक्ता त्रेतायां पतिभस्मगा ।।३०

कर उसे स्वीकार करने की कृपा करें, अन्यथा मैं प्राण त्याग दूंगी । इस प्रकार रानी के कहने पर विवश होकर उसी समय राजा ने अपना प्रिय पुत्र ब्रह्मानन्द माहिल को सौंप दिया । ब्रह्मानन्द भी माता की आज्ञा शिरोधार्यकर अपनी मामा के साथ में सानन्द उनके नगर उर्वी (उरई) में पहुँच गये । पश्चात् प्रातःकाल होने पर हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर ब्रह्मानन्द ने दैवमाया से मोहित होने के कारण अकेले ही दिल्ली को प्रस्थान किया । सायंकाल होने के समय पृथ्वीराज के भवन में पहुँचकर उन्होंने दिव्य शरीर धारिणी रानी अगमा का दर्शन किया । अगमा को भी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई । तदुपरांत उस माघ शुक्ल की अष्टमी के दिन निर्भीक ब्रह्मानन्द ने अपने सातों सालों की उन सौन्दर्यपुर्णमुखवाली रानियों का दर्शन किया, जिसमें तीन विधवाएँ और चार सधवाएँ थी । उन विधवा स्त्रियों ने उनके आगमन से प्रसन्न होकर अपने दुःख के उद्‌गार प्रकट करना आरम्भ कर दिया, उन्होंने कहा—महाभाग ! ब्रह्मानन्द ! निश्चल मन से मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । आप की वेला पत्नी ने जो स्वयं काली एवं कलह की साक्षात् प्रतिमा है, हमारे पतियों के निधन कराकर हमें अत्यन्त दुःखी बना दिया है । अतः मन के हरण करने वाले ! आपसे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि 'वीर ! हम पतिविहीन स्त्रियों के पति होने की कृपा करो । क्योंकि तुम्हीं हमारे अनुरूप हो ।' इसे सुनकर कर महाबली ब्रह्मानन्द ने उनसे मधुर एवं श्रुति स्मृति सारगर्भित वाणी द्वारा कहना आरम्भ किया—पहले सत्ययुग के समय स्त्रियाँ उत्तम पतिव्रता होती थीं । उसी प्रकार त्रेता में मध्यम, द्वापर में निकृष्ट और कलियुग में अधम स्त्रियाँ होती हैं, जो पर-पुरुष के साथ उपभोग कराती हैं । इसलिए देवल तथा असित महर्षियों ने अपनी स्मृतियों में कलि के समय विधवा-विवाह का समर्थन किया है ।१९-२९। उन्हीं लोगों का यह कहना है कि—सत्ययुग में स्त्रियाँ सती की भाँति आचरण करती थीं त्रेता में पति के साथ

सती सा मध्यमा प्रोक्ता द्वापरे विधवा सती । ब्रह्मचर्यपरा ज्ञेया कलौ नास्ति सतीव्रतम् ।।३१
अतो यूयं मया सार्द्धं भुंक्षध्वममलं सुखम् । इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तिस्रस्ता विधवाः स्त्रियः ।।३२
कृत्वा शृङ्गाररूपाणि भूषणानि च सर्वशः । ब्रह्मानन्दमुपागम्य समालिङ्गनतत्पराः ।।३३
ता दृष्ट्वा मलनापुत्रो वचनं प्राह निर्भयः ।।३४
युष्माभिः पतयो मुक्ता ये च मद्बन्धुना हताः ।।३५
युष्मानतो न गृह्णीयां सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं हास्ययुक्तं च योषितः ।।३६
महीराजान्तमागम्य रुरुदुर्भृशदुःखिताः । राजन्वेलापतिर्धूर्तो मम धर्मं जहाति वै ।।
दण्डं देहि च धूर्ताय नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।३७
इति श्रुत्वा महीराजो ब्रह्मानन्दं महाबलम् । समाहूय वचः प्राह भवान्भूपकुलाधमः ।।३८
परस्त्रियं च यो भुङ्क्ते स याति यममन्दिरम् । अद्यैव त्वं सुताकान्त कारागृहमवाप्नुयाः ।।३९
इति श्रुत्वा वचो घोरं ब्रह्मानन्दो महाबलः । सत्वरोः खड्गमुत्सृज्य महीराजमधावत ।।४०
दृष्ट्वा भयातुरो राजा चामुण्डान्तमुपाययौ । कपाटं दृढमाच्छाद्य तत्र वासमकारयत् ।।४१

ऋषय ऊचुः

तासां कथं विवाहाः स्युस्तत्त्वं नो ब्रूहि विस्तरात् । कुत्रत्यास्ताः किमंशाश्च दृष्टा योगेन वै त्वया ।।४२

भस्म हो जाती थीं । और द्वापर में विधवा रहकर सती आचरण करती हुई ब्रह्मचर्य की अन्तिम रेखा का पालन करती थीं । किन्तु कलियुग में सती-व्रत का विधान ही नहीं है । इसलिए तुम लोग मेरे सम्पर्क में रहकर सुखसागर की चरम सीमा का अनुभव अवश्य प्राप्त करो । उनकी इस श्रवण सुखद वाणी को सुनकर उन तीनों स्त्रियों ने भूषण-भूषित होती हुई अपने सौन्दर्यमय शृङ्गार की रचना करके ब्रह्मानंद के पास पहुँचकर उनसे आलिंङ्गन करने की इच्छा प्रकट की । उन्हें देखकर मलना-पुत्र ब्रह्मानन्द ने निर्भीक होकर कहा—तुम्हारे उन पतियों ने तुम लोगों का उपभोग किया है, जिन्हें रण-भूमि में हमारे भाइयों ने धराशायी कर दिया है । इसलिए तुम लोगों का ग्रहण मैं कभी नहीं कर सकता हूँ । यह सत्य ही नहीं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ । इस हास्य-युक्त एवं घोरवाणी को सुनकर वे स्त्रियाँ पृथ्वीराज के पास जाकर रुदन करती हुई कहने लगी—राजन् ! वेला का धूर्त पति हमें धर्मच्युत कर रहा है । इसलिए उस धूर्त को दण्ड दीजिये, नहीं तो हम प्राण देने के लिए तैयार हैं । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने महाबली ब्रह्मानन्द को बुलाकर कहा—आप अधम राजाओं के वंशज मालूम होते हैं, क्योंकि जो पर स्त्री का उपभोग करता है, उसे यमपुरी जाना पड़ता है । अतः पुत्रि कान्त ! मैं तुम्हें अभी जेल भेजता हूँ ! इस कठोर वाणी को सुनकर महाबली ब्रह्मानन्द म्यान से खड्ग निकालकर पृथ्वीराज की और दौड़े, किन्तु उन्हें देखते ही भयभीत होकर राजा चामुण्ड (चौंढ़ा) के पास चले गये । और उन्हें किंवाड़ को अति दृढ़ता से बन्द कराकर उसी जेल के भीतर ही रखा ।३०-४१।

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! उन स्त्रियों के विवाह किस प्रकार हुए हैं, तथा वे कहां की रहने वाली एवं किस के अंश से उत्पन्न हुई हैं । इसे योगबल द्वारा जिस प्रकार आपने देखा है, उसके रहस्य का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की कृपा कीजिये ।४२

सूत उवाच

अङ्गदेशे मुनिश्रेष्ठ मायावर्मनृपोऽभवत् । तामसीं पूजयित्वा वै शक्तिं सर्वविमोहिनीम् ॥४३
वर्मोत्तमं तया दत्तं सर्वसत्त्वभयङ्करम् । गृहीत्वा स तु भूपालः प्रथितोऽभून्महीतले ॥४४
प्रमदा नाम तत्पत्नी दश पुत्रानसूषुवत् । कौरवांशान्महाभाग दर्षान्ते नाम मे शृणु ॥४५
मत्तः प्रमत्त उन्मत्त सुमत्तो दुर्मदस्तथा । दुर्मुखो दुर्धरो बाहुः सुरथो विरथः क्रमात् ॥
तेषां स्वसानुजा चासीत्तुनाम्ना मदिरेक्षणा ॥४६
तस्या वै सुन्दरं रूपं मदाघूर्णितलोचनम् । कितवो नाम वै दैत्यो दृष्ट्वा मोहमुपागतः ॥४७
मायावर्माणमागत्य वचनं प्राह नम्रधीः । यदि त्वं मे स्वतनयां देहि कामातुराय च ॥४८
तर्हि ते सकलं कार्यं करिष्यामि न संशयः । इति श्रुत्वा तदा भूपो ददौ तस्मै स्वकन्यकाम् ॥४९
कितवो गह्वरावासी रात्रौ घोरे तमोवृते । नृपगेहमुपागम्य बुभुजे स्मरविह्वलः ॥
प्रातःकाले तु तां त्यक्त्वा कन्दरान्तमुपाययौ ॥५०
वर्षदेवमते जाते ततो राजा मदातुरः । पुरोहितं समाहूय लक्षद्रव्यसमन्वितम् ॥
महीराजाय सम्प्रेष्य तारकं स समावृणोत् ॥५१
महीराजस्तु बलवाँल्लक्षषोडशसैन्यपः । संयुतः शतभूपालैर्मासान्ते समुपागमत् ॥५२
कृष्णांशे पञ्चदशके सम्प्राप्ते व्रततत्परे । तारकश्च विवाहाय बहुभूपाऽगमानयत् ॥५३

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! अङ्गदेश का मायावर्मा नामक राजा था । उसने सबको मोहित करने वाली तामसी शक्ति की उपासना की । उससे उसे एक उत्तम वर्म (कवच) की प्राप्ति हुई, जो समस्त प्राणियों के लिए भयप्रद था । उसे अपनाकर उस राजा ने इस पृथ्वी पर पर्यटन किया । पश्चात् प्रमदा नाम की उनकी पत्नी ने दश पुत्रों को जन्म दिया, जो एक-एक वर्ष के उपरांत कौरवों के अंश से उत्पन्न थे । महाभाग ! मैं उनके नाम भी बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये । मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, सुमत्त, दुर्मद, दुर्मुख, दुर्धर, बाहु, सुरथ, और विरथ और एक छोटी बहिन भी उत्पन्न हुई जिसका नाम मदिरेक्षणा था । उस कन्या के सौन्दर्यपूर्ण रूप एवं मदभरे नेत्रों को देखकर कितव नामक दैत्य अत्यन्त मोहित हो गया । पश्चात् उसने मायावर्मा के पास जाकर उनसे विनम्र प्रार्थना की—यदि तुम अपनी पुत्री मुझ कामपीड़ित को सौंप दो, तो मैं तुम्हारे सभी कार्य सुसम्पन्न कर दिया करूँगा, इसमें संदेह नहीं । इसे सुनकर राजा ने अपनी कन्या उसे सौंप दी । तदुपरांत गुफा निवासी कितव दैत्य कामपीड़ित होकर रात्रि के घोर अंधेरे के समय राजा के घर आकर नित्य उस कन्या का उपभोग करने लगा । प्रातः काल होने पर वह अपनी कन्दरा में चला जाता था । इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर राजा ने अपने पुरोहित द्वारा एक लक्ष द्रव्य प्रदानकर पृथ्वीराज के पुत्र तारक (ताहर) का वरण करा दिया। बलवान् पृथ्वीराज के पुत्र ने भी अपनी सोलह लाख सेना समेत सौ राजाओं को साथ लिए हुए एक मास की यात्रा कर वहाँ अपने पहुँच जाने की सूचना दी । उस समय उदयसिंह की पन्द्रहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस तारक (ताहर) के विवाह के उपलक्ष में वहाँ अनेक राजाओं का समाज एकत्रित हुआ था।४२-५३।

मायावर्मा च तं दृष्ट्वा तारकं भूपसंयुतम् । वचनं प्राह बलवान्राजराज वचः शृणु ॥५४
कितवो नाम मेधावी दैत्यवंशयशस्करः । तेन मे पीडिता बाला रात्रौ घोरतमोवृते ॥५५
हता भूपकुमाराश्च मत्सुतार्थं समागताः । भक्षितास्तेन दैत्येन संयुक्तस्ते यमालयम् ॥५६
तेषां च बहुधा द्रव्यं लुण्ठयित्वा मदातुरः । मत्सुतायै ददौ सर्वं तस्मात्त्वं दितिजं जहि ॥५७
इति श्रुत्वा महीराजस्सर्वसैन्यसमन्वितः । कितवं च समाहूय महद्युद्धमचीकरत् ॥५८
कितवस्तु मायावी जित्वा सर्वान्महाबलान् । तारकं च समाहृत्य गुहायां समुपागमत् ॥५९
तारकश्च तदा दुःखी ध्यात्वा शङ्करमुत्तमम् । पाषाणभूतो ह्यगमन्महादेवप्रसादतः ॥६०
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता महावतीनिवासिनः । क्षत्रिया दशसाहस्राः कृष्णांशाद्यैश्च पालिताः ॥६१
महीराजस्तु तान्दृष्ट्वा बलखानिं महाबलम् । उवाच वचनं प्रेम्णा पुत्रशोकेन दुःखितः ॥६२
तारकः कितवेनैव संहृतो दितिजेन वै । यदि त्वं मे सुतं देहि कोटिस्वर्णं ददामि तत् ॥६३
इति श्रुत्वा तु ते धीराः कृष्णांशो देवसिंहकः । वत्सजौ च तथागम्य कितवं रुरुधुर्बलात् ॥६४
अहोरात्रमभूद्युद्धं तेषां तेन समन्वितम् । कितवस्तु रुषाविष्टः कृष्णांशं देवसिंहकम् ॥
बलखानिं मोहयित्वा जगर्ज च पुनः पुनः ॥६५
सुखखानिस्तदा शूरः कितवं बलवत्तरम् । स्वखड्गेन शिरस्तस्य छित्वा राजानमागमत् ॥६६

उस समय मायावर्मा ने तारक (ताहर) समेत बैठे हुए राजा पृथ्वीराज से कहा—बलवान् राजाधिराज ! मेरी विनम्र प्रार्थना सुनने की कृपा करें । दैत्यवंश का ख्यातिप्राप्त एवं मेधावी एक कितव नामक दैत्य है, जो घोर अंधेरी रात्रि में मेरी पुत्री को पीड़ित करता रहता है । उस मेरी पुत्री के पाणिग्रहण करने के लिए अनेक राजकुमार आये थे किन्तु इस दैत्य ने उन्हें भक्षण करके यमपुरी भेज दिया और उनके अनेक प्रकार के धनों को लूटकर मेरी पुत्री को अर्पित किया है । इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप उस दिति-पुत्र (दैत्य) का हनन अवश्य करें । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने सेनासमेत रणस्थल में पहुँचकर वहाँ कितव को बुलाकर उससे घोर युद्ध किया । उपरांत वह मायावी कितव दैत्य सभी बलवानों को पराजित कर तारक (ताहर) का अपहरण करते हुए अपनी गुफा में चला गया । उस समय दुःखी होकर तारक (ताहर) ने शंकर का ध्यान किया जिससे प्रसन्न होकर महादेव ने उसको पाषाण की मूर्ति बना दिया ।५४-६०। उसी समय महावती (महोबा) निवासी क्षत्रियगण वहाँ पहुँच गये, जो दशसहस्र की संख्या एवं उदयसिंह आदि की अध्यक्षता में चल रहे थे । पृथ्वीराज ने उन्हें देखकर पुत्रशोक से संतप्त होते हुए महाबली उस बलखानि (मलखान) से कहा—उस दिति पुत्र कितव ने तारक (ताहर) का अपहरण कर लिया है, यदि तुम मेरे उस पुत्र को ला दो, तो मैं तुम्हें एक कोटि सुवर्णमुद्रा प्रदान करूँगा । इसे सुनकर उदयसिंह ने देवसिंह, तथा दोनों वत्सपुत्र (मलखान और सुखखानि) इन सबने मिलाकर उस कितव को बलात् चारों ओर से घेर लिया । उन लोगों का उस दैत्य के साथ दिन-रात अनवरत युद्ध हुआ । पश्चात् अत्यन्त क्रुद्ध होकर कितव ने उदयसिंह, देवसिंह, और मलखान को मोहितकर सिंहनाद करना आरम्भ किया । उसी बीच बलवान् सुखखानि ने अपने खड्ग द्वारा उस राक्षस के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया और उसे पृथ्वीराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया । उस समय वे तीनों भी

अयस्ते सुखिनो भूत्वा सुखखानिं प्रशस्य च । महीराजाय च ददौ तारकं कैतवं शिरः ।।६७
तदा भूपसुता देवी सुखखानिं समावृणोत् । महीपतिस्तदागत्य तत्सुतां मदिरेक्षणाम् ।।६८
सम्बोध्य विविधैर्वाक्यैर्भूमिराजान्तमागमत् । तारकस्य तया सार्द्धं विवाहो मुदितोऽभवत् ।।६९
कोटिस्वर्णं नृपात्प्राप्य बलखानिर्महाबलः । प्रययौ बन्धुभिस्सार्द्धं शिरीषाख्यपुरं शुभम् ।।७०

सूत उवाच

गुर्जरे नृपतिश्चासीन्मूलवर्मा महाबलः । प्रभावती तस्य सुता दशपुत्रानुजाभवत् ।।७१
बलश्च प्रबलश्चैव सुबलः बलवान्बली[1] । सुमुलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयङ्करः ।।७२
करभो नाम वै यक्षो लल्लराजस्य सेवकः । प्रभावतीं समालोक्य मुमोह मदविह्वलः ।।
पञ्चवर्षान्तरे जाते तेन भुक्ता कुमारिका ।।७३
मूलवर्मा महीराजं समाहूय ससैन्यकम् । वचनं प्राह नम्रात्मा राजराजवचः कुरु ।।७४
प्रभावतीं शुभां कन्यां नृहराय ददाम्यहम् । इत्युक्त्वा नृहरं पुत्र समाहूय स्वमन्दिरे ।।
ददौ वेदविधानेन सुतां च नृहराय वै ।।७५
पक्षमात्रान्तरे यक्षः करभस्तत्र चागतः । दम्पती पीडयामास जित्वा सर्वमहीपतीन् ।।७६
महीराजस्तदा दुःखी वत्सजौ बलवत्तरौ । समाहूय कथित्वाग्रे रुरोद बलवान्बली[2] ।।७७

आनन्दमग्न होते हुए सुखखानि की प्रशंसा कर रहे थे । जिस समय उन्होंने तारक (ताहर) समेत कितव के शिर को पृथ्वीराज के सम्मुख उपस्थित किया, उस समय वह राजपुत्री सुखखानि के साथ अपना वरण करना चाहती थी, किन्तु महीपति (माहिल) ने वहाँ आकर उस मदिरेक्षणा को अनेक भाँति से समझा बुझाकर पृथ्वीराज के पास उपस्थित किया । अनन्तर तारक (ताहर) के साथ उसका विवाह संस्कार सम्पन्न कराया और मलखान को एक कोटि सुवर्ण की प्राप्ति हुई । जिससे वे अपने भाइयों समेत अपनी शिरीष नगरी को लौट आये ।६१-७०

सूत जी बोले—गुजरात प्रदेश में मूलवर्मा नामक महाबली राजा रहता था । उसकी प्रभावती नामक छोटी कन्या एवं दश पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके क्रमशः बल, प्रबल, सुबल, बलवान्, बली, सुमूल, महामूल, दुर्ग, शीम, एवं भयंकर नाम बताये गये हैं । करभ नामक एक यक्ष ने जो लल्लराज का सेवक था । उस प्रभावती कुमारी को देखकर अत्यन्त मोहित हो गया । उस मदन-पीडित यक्ष ने पाँच वर्ष के भीतर ही उस कुमारी के साथ उपभोग करना आरम्भ कर दिया । मूलवर्मा को इसका पता लगने पर उन्होंने पृथ्वीराज को बुलाकर उनसे विनम्र प्रार्थना की । राजाधिराज ! मैं आपके पुत्र नृहर के साथ अपनी प्रभावती नामक पुत्री का पाणिग्रहण करना चाहता हूँ । इतना कहकर उन्होंने पुत्र नृहर को अपने महल में बुलाकर अपनी पुत्री का सविधान पाणिग्रहण उनके साथ सुसम्पन्न कराया । एक पक्ष दिन व्यतीत होने के उपरांत उस दैत्य ने वहाँ आकर राजाओं को पराजित करके उन दम्पत्ति (स्त्री-पुरुष) को पीड़ित करना आरम्भ किया । उस समय अत्यन्त दुःखी होकर पृथ्वीराज ने वत्सराज के उन दोनों पुत्रों बलखानि और सुखखानि को बुलवाकर रुदन करते हुए उनके सम्मुख अपना करुण दुःख प्रकट किया।७१-७७।

---

१. सेनावान् । २. दैहिकसामर्थ्यवान् ।

दयालू वत्सजौ वीरौ करभान्तमुपेयतुः । करभस्तौ समालोक्य तत्रैवान्तर्धिमागतम् ।।
नागपाशेन तौ बद्ध्वा पीडयामास दम्पती ।।७८
इति श्रुत्वा स कृष्णांशः करभं यक्षकिङ्करम् । बद्ध्वा योगबलेनैव मोचयामास दम्पती ।।७९
भ्रातरौ तौ समागम्य नागपाशं तु चासिना । छित्त्वा मुमोद बलवान्कोटिस्वर्णं गृहीतवान् ।।
भूमिराजः प्रसन्नात्मा देहलीं मुदितोऽगमत् ।।८०

सूत उवाच

काश्मीरे च नृपश्चासीत्कैकयो नाम विश्रुतः । दश पुत्राश्च तस्यैव कन्या च मदनावली ।।८१
कामः प्रकामः सङ्कामो निष्कामो निरपत्रपः । जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाञ्जयः ।।८२
स भूपो भूमिराजं च समाहूय वचोऽब्रवीत् । पुत्रस्ते वै सरदनो मत्कन्यां प्राप्तुमर्हति ।।८३
गन्धर्वस्सुकलो नाम मत्कन्यां च शुभाननाम् । ज्योत्स्नायां[1] निशि संहृत्य तया सार्द्धं हि दीव्यति ।।८४
पूर्णिमायां च सम्प्राप्तः स वै चित्ररथप्रियः । वैशाखस्यासिते पक्षे चाष्टमी चाद्य मङ्गला ।।
वधं कुरु नृपश्रेष्ठ देहलीं गन्तुमर्हसि ।।८५
इति श्रुत्वा महीराजो लक्षसैन्यसमन्वितः । गृहीत्वा दम्पती शीघ्रं देहलीनगरं ययौ ।।८६
वैशाख्यां सुखजातायां सुकलो नाम वीर्यवान् । गन्धर्वो दश साहस्रै रुरोध नगरं रुषा ।।८७

दयानिधान ये दोनों पुत्र करभ के पास पहुँच गये । किन्तु उस यक्ष ने उन्हें देखते ही अन्तर्हित होकर नाग-पाश से इन दोनों को बांधकर पुनः उन स्त्री-पुरुष को पीड़ित करना आरम्भ किया । इसे सुनकर उदयसिंह उस करभ के पास पहुँचे और अपने योगबल द्वारा उसे बाँधकर उस दम्पती को दुःख से मुक्त किया । पश्चात् भाई के पास पहुँचकर अपनी तलवार से उनके नागपाश को काट दिया । तदुपरांत पृथ्वीराज से कोटि सुवर्ण की मुद्रा का ग्रहण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक वे लोग अपने घर चले गये और पृथ्वीराज ने भी हर्षित होकर पुत्र ,पुत्र-वधू और सेना समेत दिल्ली को प्रस्थान किया ।७८-८०।

सूत जी बोले—काश्मीर प्रदेश का कैकय नामक राजा था । उसके दश पुत्र तथा मदनावती नामक एक छोटी कन्या थी । काम, प्रकाम, संकाम, निष्काम, निरपत्रप, जय, विजय, जयन्त, जयवान् और जय क्रमशः यही नाम उन पुत्रों के बताये गये हैं । उस राजा ने पृथ्वीराज को बुलवाकर उनसे प्रार्थना की—कि आपके सरदन नामक पुत्र को मैं अपनी कन्या सौंप देना चाहता हूँ । किन्तु सुकल नामक गन्धर्व रात्रि के समय चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाशित होने पर उस कल्याणमुखी मेरी कन्या का अपहरण करके उसके साथ क्रीड़ा करता है । चैत्र की पूर्णिमा के दिन वह गन्धर्व यहाँ आया था नृपश्रेष्ठ ! आज वैशाख कृष्ण पक्ष की मंगला अष्टमी है, मैं चाहता हूँ कि आप उसका वध करके ही दिल्ली प्रस्थान करने का विचार करें । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने एक लाख सैनिकों द्वारा पुत्र तथा पुत्र-वधू को सुरक्षित रखते हुए दिल्ली की यात्रा की । वैशाख मास की पूर्णिमा के व्यतीत हो जाने पर उस सुकल नामक गन्धर्व ने क्रुद्ध होकर अपने दश सहस्र गन्धर्वों द्वारा दिल्ली नगर को चारों ओर से घेर लिया । उस समय नगर से किसी

---

१. मत्वर्थीयोच् । तद्वत्यां लक्षणा वा ।

नगराच्च बहिर्जाता ये शूरा मदविह्वलाः । हत्वा तान्सुकलः शीघ्रं राज्ञे दुःखं चकार ह ।।८८
भयभीतो महीराजो ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । सुष्वाप निशि शुद्धात्मा तुष्टाभूज्जगदम्बिका ।।८९
कृष्णांशादीन्बोधयित्वा तैश्च सार्धं समागमत् । तेषां चासीन्महद्युद्धं गन्धर्वेण तदाह्निकम् ।।९०
बलखानिश्च बलवाञ्छतगन्धर्वमुत्तमम् । त्रिदिनान्ते च संहृत्य सुखखानिस्तथैव च ।।९१
सुकलश्च तदा क्रुद्धो गान्धर्वीं च ससर्ज ह । बहुधा ते हि गन्धर्वास्तैश्च सार्द्धं समारुधन् ।।९२
भयभीतास्तदा सर्वे रामांशं शरणं ययुः । आह्लादश्च प्रसन्नात्मा शारदां सर्वमङ्गलाम् ।।९३
दिवासूक्तेन तुष्टाव तदा प्रादुरभूच्छिवा । गन्धर्वान्मोहयित्वाशु द्रावयामास शारदा ।।९४
पराजिते च गन्धर्वे कृष्णांशो जनमोहनः । महीराजमुपागम्य कोटिस्वर्णं गृहीतवान् ।।९५
षोडशाब्दे च कृष्णांशे सम्प्राप्ते देविपूजके । मार्गमासं तु सम्प्राप्ते मर्दनश्च विवाहितः ।।९६

सूत उवाच

पुण्ड्रदेशे महाराजो नागवर्मा महाबलः । बभूव तक्षकपरो धर्मवाञ्जगतीतले ।।९७
पत्नी नागवती तस्य तक्षकस्य सुता शुभा । पितुः शापेन सञ्जाता कलिङ्गाधिपतेः सुता ।।९८
दशैव तनयाश्चासन्कन्या तस्य शुभानना । सुवेला नाम विख्याता रूपयौवनशालिनी ।।९९

भी मदान्ध योद्धा के बाहर होने पर उसे वह सुकल गन्धर्व भक्षण कर लेता था । इस प्रकार उसने अल्प-काल में ही पृथ्वीराज को अत्यन्त कष्ट प्रदान किया । शुद्धात्मा पृथ्वीराज ने भी उससे भयभीत होकर सर्वमयी भगवती शिवा के ध्यान पूर्वक ही शयन किया । उनके ध्यान करने से अत्यन्त प्रसन्न होकर जगदम्बिका ने उदयसिंह आदि को इसका ज्ञान कराती हुई उन्हें साथ ले वहाँ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उन लोगों का उस गन्धर्व के साथ दिन भर घोर संग्राम होता रहा ।८१-९०। उस युद्ध में बलवान् बलखानि (मलखान) ने तीन दिन के भीतर सौ गन्धर्वों का हनन किया और सुखखानि ने भी वैसा ही किया । पश्चात् सुकल गन्धर्व ने अपनी गान्धर्वी माया की रचना की, जिसमें उस माया-जाल के सैनिकों द्वारा उन गन्धर्वों ने महोबा के वीरों को घेर लिया । उस समय वे वीरगण उससे भयभीत होकर आल्हा की शरण में पहुँचे ! प्रसन्नचित्त आह्लाद (आल्हा) ने उसी समय देवी सूक्त द्वारा सर्वमंगला शारदा जी की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर भगवती ने उन्हें दर्शन दिया और गन्धर्वों को मोहितकर शारदा जी ने उन्हें वहाँ से भागने के लिए विवश किया । गन्धर्वों के पराजित होने पर सर्वमोहन उदयसिंह ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे एक कोटि सुवर्ण मुद्रा की प्राप्ति की । देवी जी के उपासक उन उदयसिंह की सोलहवें वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष (अगहन) के मास में पृथ्वीराज के पुत्र मर्दन का पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न हुआ, जिसकी कथा इस प्रकार है—९१-९६

सूत जी बोले—पुंड्रदेश के अधीश्वर महाबली नागवर्मा महाराज इस जगतीतल में परम धार्मिक एवं तक्षक की उपासना में सदैव संलग्न रहते थे । उनकी पत्नी का नाम नागवती था, जो तक्षक की पुत्री थी, जिसने पिता के शाप द्वारा कलिंगाधीश्वर के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया था । उनके दशपुत्र तथा सुवेला नाम की एक कल्याणमुखी एवं रूपयौवन सम्पन्न एक कन्या थी । उस राजा ने-

पुरोहितं समाहूय महीराजाय प्रैषयत् । स गत्वा कथयित्वाग्रे मर्दनो वरितो मया ।।१००
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा त्रिलक्षबलसंयुतः । मङ्गलं कारयामास गत्वा नागपुरे शुभे ।।१०१
सुवेला पितरं प्राह देहि मे नागभूषणम् । विवाहं हि करिष्यामि नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।१०२
इति श्रुत्वा नागवर्मा महीराजान्तमाययौ । सुवेलाया अभिप्रायं वर्णयामास विस्तरात् ।।१०३
इत्युक्तः स महीराजो विस्मितोभूत्सुदुःखितः । प्रेषयामास वै पत्रं यत्राह्लादादयः स्थिताः ।।१०४
इति ज्ञात्वा तदाऽऽह्लादः शूरपञ्चशतावृतः । कृष्णांशवत्सजैस्सार्द्धं दिनान्ते च समागतम् ।।१०५
शतयोजनगामिन्यो वाजिन्यश्च द्वियामके । सहस्रयोजनं वीर्यं तासां चैव दिने निशि ।।१०६
कलांशादुद्भवा अश्वा वाजिनां च हरेः स्वयम् । रत्नाश्वस्य कलांशश्च कपोतो हरिणीभवः ।।१०७
गायत्रो योभवद्वाजी कालचक्रप्रवर्तकः । तत्कलांशात्समुद्भूतो रविदत्तः पपीहकः ।।
हरिणी नाम तच्छक्तिः कलांशाद्भूमिमागता ।।१०८
सुखखानिः पपीहस्थो बलखानिः कपोतगः । आह्लादश्च करालस्थो बिन्दुलस्थो हरेः कला ।।१०९
गत्वा ते तु महीराजं नत्वा तुङ्गासनां ययुः । प्रसन्नः स महीराजो वचनं प्राह नम्रधीः ।।११०
मम पुत्राश्च युष्माभिस्त्रयः शूरा विवाहिताः । तथैव मर्दनं वीरं समुद्वाह्य सुखी भव ।।१११
इति श्रुत्वा स आह्लादो गत्वा भूतलमुत्तमम् । रसातलं च विख्यातं नागिनीं प्राह निर्भयः ।।११२

अपने पुरोहित द्वारा पृथ्वीराज से कहला दिया कि मैंने मर्दन नामक आपके पुत्र का वरण कर लिया है। उसे सुनकर पृथ्वीराज ने अपने तीन लाख सैनिकों समेत उस नागपुर में जाकर मांगलिक विधान सुसम्पन्न किया। उस समय सुवेला ने अपने पिता से कहा—आप नागभूषण मुझे प्रदान करने की कृपा कीजिये, उसके मिलने पर ही मैं विवाह करूँगी, अन्यथा प्राणपरित्याग कर दूंगी। इसे सुनकर नागवर्मा ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे सुवेला के समस्त अभिप्राय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इसे सुनकर पृथ्वीराज को महान् आश्चर्य एवं उसके साथ अत्यन्त दुःख का भी अनुभव हुआ। पश्चात् उन्होंने आह्लाद (आल्हा) आदि के पास पत्र भेजकर प्रार्थना की। उसे स्वीकार कर आह्लाद (आल्हा) ने उदयसिंह तथा बलखानि (मलखान) और सुखखानि समेत एक दिन के भीतर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया। उन लोगों ने उन घोड़ों पर बैठकर यात्रा की, जो दोपहर में सौ योजन का मार्ग समाप्त करते थे। इस प्रकार उनके पराक्रमी घोड़ों ने सहस्र योजन के उस मार्ग को उस दिन-रात में समाप्तकर वहाँ पहुँचने की सूचना दी। उन घोड़ों का जन्म इन्द्र के घोड़ों द्वारा हुआ है—इलाश्व की अंशकला से हरिणी द्वारा कपोत, कालचक्र के आवर्तक उस गायत्र नामक अश्व के अंश से उत्पन्न एवं सूर्यप्रदत्त पपीहा, तथा हरिणी की शक्ति-अंश से उस हरिणी का जन्म होना बताया गया है। इस प्रकार पपीहा नामक अश्व पर सुखखानि, कपोत पर बलखानि (मलखान), कराल पर आह्लाद (आल्हा) और बेंदुल पर उदयसिंह सवार होकर जा रहे थे। वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उन्हें सादर नमस्कार किया। उन्हें देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए पृथ्वीराज ने सादर विनम्र होकर कहा—जिस प्रकार आप लोगों ने मेरे तीन पुत्रों के विवाह संस्कार सुसम्पन्न कराये हैं, उसी भाँति वीर मर्दन को भी विवाहित करके सुख का अनुभव करें।९७-१११। इसे सुनकर आल्हा (आह्लाद) ने उस प्रख्यात रसातललोक में जाकर

सुप्तो हि तव भर्ता च पुण्डरीकः शुभाननः । बोधयाशु महाराज्ञि नागानां नो दयां कुरु ।।११३
इत्युक्ता साह तं वीरं पुण्डरीकश्च मत्पतिः । रुषाविष्टश्च बलवान्दाहयेच्च वपुस्तव ।।११४
इति श्रुत्वा विहस्याह तव भर्तुर्न नो भयम् । इत्येदं वचनं कृत्वा पद्भ्यां पुच्छमताडयत् ।।११५
प्रबुद्धश्च तदा राजा नागानां च महाबलः । ज्वालामालां स्वदेहाच्च जनयामास वीर्यवान् ।।११६
दृष्ट्वा तद्विषमुज्ज्वालं स ध्यात्वा सर्वमङ्गलाम् । शमयामास बलवान्देवीपूजनतत्परः ।।११७
पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा नागभूषणमुत्तमम् । आह्लादाय ददौ शीघ्रं सर्वशृङ्गारसंयुतम् ।।११८
आह्लादस्तु हयारूढो महीराजाय दत्तवान् । विवाहं कारयामास वैवाहिकविधानतः ।।
कोटिस्वर्णं नृपात्प्राप्तं गृहीत्वा शीघ्रमाययौ ।।११९
हयविद्यासनारूढास्ते हया गेहमागताः । ज्ञेयाः पञ्चशतं सर्वे सशूरा गृहमाययुः ।।१२०

सूत उवाच

मद्रदेशेषु यश्चासीन्मद्रकेशो महाबलः । पञ्चाब्दं पूजयामास स्वर्गवैद्यौ सुरोत्तमौ ।।१२१
तयोश्च वरदानेन दश पुत्रा बभूविरे । सुता कान्तिमती जाता रूपयौवनशालिनी ।।१२२
स महीराजमाहूय त्रिलक्षबलसंयुतम् । ददौ कन्यां विधानेन मद्रेशः सूर्यवर्मणे ।।१२३
नवोढां तु तदा पत्नीं सूयवर्मा गृहीतवान् । स्वगेहाय ययौ शीघ्रं महीराजो बलैस्सह ।।१२४

निर्भय होकर नागिनी से कहा—महारानी ! तुम्हारे पति महोदय पुण्डरीक जी शयन कर रहे हैं, मेरे आगमन की उन्हें शीघ्र सूचना दो, इस समय नागों पर दया मत करो । इसे सुनकर उसने कहा—मेरे पति पुण्डरीक जागने पर अपने वीरों समेत क्रुद्ध होकर तुम्हारे शरीर को दग्ध कर देंगे । उन्होंने हँसते हुए कहा—मुझे तुम्हारे पति का भय नहीं है । ऐसा कहते हुए उन्होंने स्वयं अपने चरणों द्वारा उनकी पूंछ में प्रहार किया । नागों के महाबली राजा उसी समय नाग बनकर अपनी शरीर से विष-ज्वालाओं की मालाएँ उत्पन्न करने लगे । उनके विष की उस ज्वाला को देखकर भगवती सर्वमंगला के ध्यान पूर्वक उस बलवान् एवं देवी उपासक ने उसे शान्त कर दिया । उस समय पुण्डरीक ने प्रसन्न होकर समस्त शृङ्गार समेत वह नागभूषण आल्हा को अर्पित किया । पश्चात् घोड़े पर बैठकर आल्हा ने पृथ्वीराज के पास पहुँच- कर वह शृंगार-भूषण उन्हें सौंप दिया । तदुपरांत सविधान उनके विवाह संस्कार को सुसम्पन्न कराकर पृथ्वीराज से कोटिसुवर्ण की प्राप्तिपूर्वक अपने घर चले आये । अश्व विद्या में निपुण वे घोड़े भी शीघ्रातिशीघ्र उन्हें घर पहुँचा दिया और उनके साथ के पाँच सौ शूरवीर भी अपने घर आ गये ।११२-१२०

सूत जी बोले—मद्रदेश में महाबली मद्रकेश नामक राजा राज्य करता था । उसने पाँच वर्ष तक देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमार की उपासना की । उन्होंने उनकी आराधना से प्रसन्न होकर राजा को दशपुत्र और एक कन्या प्रदान की जिसका नाम कान्तिमती था उस कन्या के रूप यौवन सम्पन्न होने पर मुद्राधीश्वर ने तीन लाख सैनिक समेत राजा पृथ्वीराज को बुलाकर उनके पुत्र सूर्यवर्मा के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण सुसम्पन्न किया । अपनी नवोढा नवविवाहिता पत्नी समेत सूर्यवर्मा ने पृथ्वीराज के

कर्बुरो नाम मायावी विभीषणसुतो बली। राक्षसस्तत्र सम्प्राप्तो दृष्ट्वा कान्तिमतीं शुभाम् ।।१२५
मद्रकेशस्य तनयां दिव्यशोभासमन्विताम् । जहारपश्यतां तेषां सह्याद्रिगिरिमाययौ ।।१२६
महीराजस्तदा दुःखी दिललाप भृशं मुहुः । देहलीगेहमागम्य दूतमाहूय सत्वरम् ।।१२७
कृष्णांशं प्रेषयामास स गत्वा समवर्णयत् । ज्ञात्वा ते तु हयारूढाः शूराः पञ्चशतावृताः ।।१२८
सह्याद्रिगिरिमागम्य कृष्णांशः कर्वुरं प्रति । निर्भयो वचनं प्राह शृणु राक्षससत्तम ।।१२९
विभीषणो भक्तराजस्तस्य त्वं दयितः सुतः । तस्मात्त्वया न कर्तव्यं पापं वंश विनाशनम् ।।
रावणेन पुरा सीता संहृता विदितं तव ।।१३०
इति श्रुत्वा स होवाच पुरेयं दयिता प्रिया । मम गन्धर्वतनया मुनिशापान्महीं गता ।।१३१
अतोऽहं तद्वियोगेन त्यक्त्वा लङ्कां महापुरीम् । मद्रकेशमहं प्राप्य मद्रकेशभयादहम् ।।
न जहार प्रियां रम्यां तत्रोषित्वा दिनं बहु ।।१३२
अद्य मे वशगा साभून्नाम्ना कान्तिमती शुभा । जित्वा मां च गृहाणाशु समर्थाश्च वयं सदा ।।१३३
इति श्रुत्वा स कृष्णांशः खड्गयुद्धमचीकरत् । सप्तरात्रेण तं जित्वा लब्ध्वा कान्तिमतीं शुभाम् ।।
तदा च देहलीं प्राप्य महीराजान्तमाययौ ।।१३४
कोटिस्वर्णं ददौ राजा कृष्णांशाय महात्मने । स वीरो बन्धुभिः सार्धं प्रमदावनमाययौ ।।१३५

साथ अपने नगर को प्रस्थान किया । उसी बीच कर्बुर नामक मायावी राक्षस ने जिसे वली एवं विभीषण का पुत्र बताया गया है, वहाँ आकर उस कल्याणमुखी कान्तिमती को देखा । पश्चात् उसने उन लोगों के देखते ही दिव्य सौन्दर्य पूर्ण उस मद्रकेश की पुत्री का अपहरणकर सह्याद्रि नामक पर्वत को प्रस्थान किया । उस समय दुःखी होकर पृथ्वीराज बार-बार विलाप कर रहे थे । किसी प्रकार से दिल्ली आकर उन्होंने अपने एक दूत को उदयसिंह के पास भेजा । दूत ने वहाँ जाकर उदयसिंह आदि लोगों से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । पश्चात् उन लोगों ने अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर पाँच सौ शूर सामन्तों समेत सहस्राद्रिगिरि की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उदयसिंह ने निर्भीक होकर उस कर्वुर नामक राक्षस से कहा—श्रेष्ठ राक्षस ! मेरी एक बात सुनो ! भक्तराज विभीषण के तुम प्रिय पुत्र हो । इसीलिए तुम्हें इस प्रकार के वंश-विनाशी पाप न करना चाहिए, क्योंकि पहले समय में रावण ने जानकी जी का अपहरण किया था, जो तुमसे छिपा नहीं है । इसे सुनकर उसने कहा—यह मेरी पहले की प्रेयसी पत्नी है, जो गन्धर्व कुल में उत्पन्न हुई थी । इस समय मुनि के शापवश इस भूतल में इसने जन्म ग्रहण किया है । इसीलिए मैं इसके वियोग व्यथा से पीड़ित होने पर लंका त्यागकर मद्रदेश में ही रह रहा था किन्तु वहाँ बहुत दिन से रहते हुए भी मैं राजा मद्रकेश के भयवश इस अपनी प्रेयसी का अपहरण नहीं कर सका । आज बहुत दिनों पर यह कान्तिमती मुझे मिली है । यदि इसे प्राप्त करने की आपकी इच्छा ही है, तो मुझे जीतकर ले सकते हैं, और हम लोग तो सदैव समर्थ हैं ही । इतना सुनकर उदयसिंह ने उसके साथ खड्ग युद्ध आरम्भ किया । सात दिन के पश्चात् उन्होंने उसे पराजितकर उस शुभ कान्तिमती की प्राप्ति पूर्वक दिल्ली आकर पृथ्वीराज को उसे सौंप दिया । उस समय प्रसन्न होकर राजा ने एक कोटि सुवर्ण उस वीर उदयसिंह को अर्पित किया। अनन्तर उस वीर ने अपने भाइयों समेत प्रमदावन को प्रस्थान किया।१२१-१३५

सूत उवाच

पट्टनाख्यपुरे राजा नाम्ना पूर्णामलो बली । वसूनाराधयामास पञ्चवर्षान्तरे मुदा ।।
तदा प्रसन्नास्ते देवा ददुस्तस्मै वरं शुभम् ।।१३६
वरदानाच्च सञ्जाता दश पुत्रा महीपतेः । विद्युन्माला सुता जाता रूपयौवनशालिनी ।।१३७
तद्विवाहार्थमाहूय महीराजं महाबलम् । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं तत्पुत्राय सुतां ददौ ।।१३८
महीराजसुतो भीमः पत्नीं प्राप्य मनोरमाम् । गेहमागम्य तैः सार्धं देहलीं हर्षमाप्तवान् ।।१३९
तदा पैशाचदेशस्थः सहोदश्च महीपतिः । म्लेच्छैश्च दशसाहस्रैर्विद्युन्मालार्थमुद्यतः ।।१४०
बलिदैत्याज्ञया प्राप्तः कुरुक्षेत्रं शुभस्थलम् । भित्त्वा मूर्तीः सुराणां गोरक्तैस्तीर्थजलं कृतम् ।।१४१
पत्रमालिख्य बलवान्महीराजाय धर्मिणे । स्वदूतः प्रेषितस्तेन श्रुत्वा भूपोऽब्रवीदिदम् ।।१४२
भवान्म्लेच्छपती राजा विद्युन्मालार्थमुद्यतः । मां शब्दवेधिनं विद्धि चौर्यदेशधुरन्धरम् ।।१४३
इत्युक्त्वा स त्रिलक्षैश्च कुरुक्षेत्रमुपागतः । तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं भयानकम् ।।१४४
निशीथे समनुप्राप्ते ज्येष्ठे मासि तमोमये । पातालाद्बलिरागत्य दैत्यायुतसमन्वितः ।।१४५
नृपसैन्यं जघानाशु भक्षयित्वा पुनः पुनः । भयभीतस्तदा राजा शारदां शरणं ययौ ।।१४६
एतस्मिन्नन्तरे देवाः कृष्णांशाद्या महाबलाः । क्षणमात्रेण सम्प्राप्तास्तदा पदचरा मुने ।।१४७

सूत जी बोले—पटना नगर का अधीश्वर वली पूर्णामल था, जिसने प्रसन्नतापूर्ण रहकर पाँच वर्ष तक अनवरत वशुओं की आराधना की । उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन देवों ने उन्हें शुभ वरदान प्रदान किया, जिसके द्वारा राजा के दश पुत्र और विद्वन्माला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । कन्या के रूप- यौवन सम्पन्न होने पर राजा ने पृथ्वीराज को अपने यहाँ सादर निमंत्रित किया । सात लाख सैनिकों समेत उस पुत्र के साथ पृथ्वीराज के वहाँ आने पर उन्होंने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार उनके पुत्र के साथ सुसम्पन्न किया । तत्पश्चात् पृथ्वीराज के पुत्र भीमसेन ने उस मनोरम पत्नी की प्राप्ति पूर्वक उन लोगों समेत दिल्ली आकर अपने रंगमहल में हर्षपूर्ण दिनों को व्यतीत करना आरम्भ किया। उसी बीच पिशाच देश का निवासी राजा सहोद अपने दश सहस्र म्लेच्छ सैनिकों द्वारा विद्वन्माला की प्राप्ति के लिए तैयारी करने लगा । उसने बलि दैत्य की आज्ञा प्राप्तकर उस शुभस्थल कुरुक्षेत्र में पहुँचकर डेरा डाल दिया, जहाँ उसने सर्वप्रथम देवताओं की मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर गौओं के रक्तों से तीर्थजल की अभिवृद्धि की थी । उस बलवान् ने पत्र लिखकर अपने दूत द्वारा उसे धार्मिक राजा पृथ्वीराज के पास भेज दिया । उसे सुनकर उसके प्रत्युत्तर में राजा ने यह कहा—आप म्लेच्छाधीश्वर होकर विद्वन्मालार्थ यहाँ आये हुए हैं, तो मुझे भी चौर्यदेश का धुरन्धर शब्दवेधी जान लेना । इतना कहकर वे अपनी तीन लाख सेना समेत उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँच गये । वहाँ उन दोनों का भीषण संग्राम आरम्भ हुआ जो दिन-रात चलता रहा । ज्येष्ठ मास की उस अँधेरी रात्रि की आधीरात के समय बलि दैत्य ने पाताल से आकर अपने दशसहस्र सैनिकों समेत पृथ्वीराज के सैनिकों को मार-मार कर भक्षण करना आरम्भ किया । उस समय भयभीत होकर राजा शारदा की शरण में पहुँचे । उसी बीच उदयसिंह आदि वीरगण भी वहाँ पहुँच गये । मुने ! भगवती की कृपावश वे सब वहाँ क्षणमात्र में पहुँच गये थे । एक सहस्र

हत्वा दैत्यसहस्राणि बलिदैत्यमुपाययुः । देशजौ वत्सजौ वीरौ देवसिंहस्तथैव च ॥
स्वखड्गैस्तर्पयामास दैत्यराजं महाबलम् ॥१४८
तदा प्रसन्नो बलवान्दैत्यराजो बलिः स्वयम् । वरं वृणुत तानाह ते तु श्रुत्वाब्रुवन्वचः ॥१४९
आर्यदेशं च ते दैत्या नागच्छन्तु त्वया सह । म्लेच्छदेशं सदा प्राप्य भक्षध्वं म्लेच्छधर्मगान् ॥१५०
इति श्रुत्वा वचो घोरं विप्रियं च बलिः स्वयम् । कृष्णांशमुदयं गत्वा तुष्टाव परया गिरा ॥१५१
तदा प्रसन्नः कृष्णांशो वचनं प्राह निर्भयः । यावदहं भूमिवासी तावत्त्वं गेहमावस ॥
तत्पश्चाद्भूमिनागत्य यथायोग्यं कुरुष्व भोः ॥१५२
इति तद्वचनं श्रुत्वा सहोदो नीलसंयुतः । पैशाचं देशनगमत्पुनः प्राप्तो रसातलम् ॥१५३
भूमिराजः प्रसन्नात्मा कोटिस्वर्णं ददौ तदा । गजारूढाश्च ते पञ्च संययुश्च महावतीम् ॥१५४

सूत उवाच

वर्द्धनो भूमिराजस्य सुतः सर्वेभ्य उत्तमः । पञ्चमाब्दवया भूत्वा श्रीदं तुष्टाव भक्तितः ॥
वर्षान्तरे च भगवान्ददौ सर्वं शुभं निधिम् ॥१५५
तत्सर्वनिधिभावेन नृपकोशः समन्ततः । पूर्णो बभूव कनकैः राजराजप्रभावतः ॥१५६
किन्नरी नाम या कन्या मङ्कणस्य प्रकीर्तिता । कुबेरश्च ददौ तस्मै वर्द्धनाय प्रियाय च ॥
इति ते कथितं सर्वं विवाहचरितं मुने ॥१५७

दैत्यों के निधन करने के उपरांत ये वलि के सम्मुख पहुँचकर उनके ऊपर वत्सराज के दोनों पुत्रों और देव-सिंह ने अपने-अपने खड्ग द्वारा प्रहार करना आरम्भ किया । उनके युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर दैत्य- राज बलि ने इन लोगों से अभिलषित वर की याचना करने के लिए कहा । उसे सुनकर इन लोगों ने कहा—आप प्रसन्न हैं, तो अपने दैत्यों समेत आप इस आर्यप्रदेश में कभी भी न आने का वचन दें किन्तु म्लेच्छ देश में ही जाकर उन्हीं म्लेच्छों का ही भक्षण करते रहें । इस घोर एवं अप्रिय वाणी को सुनकर राजा बलि ने स्वयं उदयसिंह के पास जाकर उनके महत्त्व का स्मरण करते हुए विनम्र प्रार्थना की । पश्चात् प्रसन्न होकर उदयसिंह ने कहा—जब तक मैं इस लोक में रह रहा हुँ, तब तक तुम अपने घर में ही निवास करो । अनन्तर इस लोक में आकर यथायोग्य व्यवहार करने की चेष्टा करना । इसे सुनकर सहोदधी नील समेत पिशाच देश जाकर रसातल चला गया और पृथ्वीराज ने भी प्रसन्नतापूर्ण होकर इन लोगों को एक कोटि सुवर्ण मुद्रा प्रदान किया । पश्चात् गजराज पर बैठकर वे पाँचों अपनी महावती (महोबा) नगरी पहुँच गये ।१३६-१५४

सूत जी बोले—पृथ्वीराज के वर्द्धन नामक पुत्र ने जो सभी पुत्रों में श्रेष्ठ थे, पाँच वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मीपति की आराधना आरम्भ की थी । उनकी उस निश्चल भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने वर्ष के भीतर ही सम्पूर्ण निधि उन्हें सौंप दी, जिससे गन्धर्वराज के प्रभाव से पृथ्वीराज का कोष सम्पूर्ण निधि से परिपूर्ण हो गया । पश्चात् हर्षमग्न होकर कुबेर ने मंकण की किन्नरी नामक कन्या भी उस पुत्र को सौंप दी । इस प्रकार मुने ! पृथ्वीराज के पुत्रों के विवाह चरित का वर्णन कर दिया गया । तदुपरांत

धुन्धुकारो महाशूरो लक्षसैन्यसमन्वितः । ब्रह्मानन्दमुपागम्य युद्धार्थाय तमाह्वयत् ॥१५८
एकत्रिंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । एकाकी मलनापुत्रो दृष्ट्वा सैन्यमुपस्थितम् ॥
ब्रह्मास्त्रं चापआधाय चार्धसैन्यमदाहयत् ॥१५९
पञ्चायुताश्च ते शूरा भयभीता दिशो गताः । धुन्धुकारो रणं त्यक्त्वा भूमिराजमुपागमत् ॥१६०
महीराजस्तदा दुःखी भयभीतः समन्ततः । महीपतिं समाहूय चन्द्रभट्टं च सोऽब्रवीत् ॥१६१
कथं जयो मे भविता तत्सर्वं मन्त्रयाशु वै । महीपतिस्तदा प्राह शृणु भूपशिरोमणे ॥१६२
कृत्वा नारीमयं वेषं चामुण्डं बलशालिनम् । वेलां मत्वा च तद्दोलां ब्रह्मानन्दाय चार्पय ॥१६३
चत्वारस्ते सुताः शूरा धुन्धुकारेण संयुताः । छद्मना च स्वशस्त्रैश्च घातयेयुस्तमूर्जिताः ॥१६४
इति श्रुत्वा महीराजो ब्रह्मानन्दाय हर्षितः । तथा कृत्वा ददौ दोलां पञ्चशूरैश्च पालिताम् ॥१६५
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते माघशुक्लाष्टमीदिने । वेलावेशश्च चामुण्डो ब्रह्मानन्दमुपाययौ ॥१६६
छद्मना च त्रिशूलं च बलात्कृत्वा रिपूदरे । रुरोद बलवाञ्छूरस्ते तु शूराः समागताः ॥१६७
तारको हृदि तं बाणैः सूर्यवर्मा च तोमरैः । भीमश्च गदया चात्र वर्द्धनश्च तदासिना ॥
धुन्धुकारश्च भल्लेन जघान रिपुमूर्द्धनि ॥१६८
मूर्छितः पतितो भूमौ ब्रह्मानन्दो महाबलः । महद्व्रणयुतस्तत्र स्वखड्गं च समाददत् ॥१६९
भीमस्य च शिरः कायाद्वर्द्धनस्य तथैव च । छित्त्वा तथैव भूमध्ये सूर्यवर्माणमागतः ॥१७०

महावली धुंधुकार (धांधु) ने अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ आकर युद्ध के लिए ब्रह्मानन्द को ललकारा। उस समय बलवान् उदयसिंह की इकतीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस सेना को देखकर मलनापुत्र ब्रह्मानन्द ने अकेले ही अपने ब्रह्मास्त्र वाण द्वारा उनकी आधी सेना दग्ध कर दिया। शेष पचास सहस्र सैनिक भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये। अनन्तर धुंधुकार (धांधू) भी रणस्थल छोड़कर पृथ्वीराज के पास चला गया। उसे सुनकर राजा पृथ्वीराज ने दुःखी एवं भयभीत होकर महीपति (माहिल) और चन्द्रभट्ट को बुलाकर उनसे कहा—'किस प्रकार मेरी विजय होगी' इसका शीघ्रातिशीघ्र विचार कर निश्चय कीजिये। उस समय महीपति (माहिल) ने कहा—भूप शिरोमणे! मैं अपनी सम्मति प्रदान कर रहा हूँ, सुनने की कृपा कीजिये। बलशाली चामुण्ड (चौढ़ा) को स्त्री का वेष बनाकर उसे वेला मानकर उसका डोला ब्रह्मानन्द को सौंप दिया जाय और धुंधुकार (धांधु) के साथ आपके चारों पुत्र भी वहाँ उपस्थित रहकर कपट करते हुए अपने-अपने अस्त्रों द्वारा उन पर आघात करें। इसे सुनकर हर्षित होकर पृथ्वीराज ने माघशुक्लाष्टमी के सायंकाल के समय उसी भाँति बनाकर पाँचों शूरों से सुरक्षित उस डोले को ब्रह्मानन्द के पास भेजवा दिया। वेलारूपधारी चामुण्ड (चौढ़ा) ने ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर कपट करके बलात् उनकी छाती में त्रिशूल का प्रहार किया, जिससे व्यथित होकर उस बलवान् ने रुदन करना आरम्भ किया। उसी बीच उन पाँचों शूरों ने भी वहाँ पहुँचकर तारक (ताहर) ने उनके हृदय में वाण, सूर्यवर्मा ने तोमर, भीम ने गदा, बर्द्धन ने तलवार और धुंधुकार (धांधु) ने भाले का प्रहार शत्रु के शिर पर साथ ही साथ किया।१५५-१६८। उन आघातों से मूर्च्छित होकर महाबली ब्रह्मानन्द पृथ्वी पर गिर पड़े, किन्तु उनकी शरीर में उतने बड़े ब्रण के हो जाने पर भी वहाँ उन्होंने अपने खड्ग ग्रहणकर भीम और वर्द्धन के शिर को उनके धड़ से छिन्न-भिन्न करते हुए सूर्यवर्मा के पास पहुँचकर

तारको धुन्धुकारश्च चामुण्डश्च तथैव च । ब्रह्मानन्दं तदा त्यक्त्वा महीराजान्तमाययौ ॥१७१
हतेषु तेषु पुत्रेषु महीराजो भयातुरः । वेलापार्श्वमुपागम्य रुरोद बहुदुःखितः ॥१७२
इति श्रुत्वा तदा वेला दोलामारुह्य सत्वरम् । ब्रह्मानन्दं ययौ शीघ्रं मूर्च्छितं तं ददर्श ह ॥१७३
कनिष्ठामृतभावेन वेलाया बलवांस्तदा । उत्थाय रुदतीं नारीं ददर्श रुचिरान्विताम् ॥१७४
का त्वं कस्य सुता रम्या रङ्ग्रामे मामुपस्थिता । जलं देहि महासुभ्रूर्वचनं कुरु सुप्रियम् ॥१७५
इति श्रुत्वा तदा वेला जलं दत्त्वा शुचान्विता । वचनं प्राह वै रात्रौ शृणु त्वं मलनासुत ॥१७६
वेला नाम महीभर्तुः सुताहं त्वामुपस्थिता । मत्पतिश्च भवान्धीरश्छद्मना वञ्चकैर्हतः ॥
जीवनं कुरु राजेन्द्र भुङ्क्ष्व भोगान्मया सह ॥१७७
इत्युक्तः स तु तामाह कलिकाले समागते । जीवनान्मरणं श्रेष्ठं तस्मान्मद्वचनं कुरु ॥१७८
हरिनागरमारुह्य मया सार्द्धं शुभानने । गत्वा तीर्थानि रम्याणि सन्त्यजामि कलेवरम् ॥१७९
इत्युक्त्वा तौ समारुह्य पूर्वं च कपिलान्तिकम् । गत्वा स्नात्वा च विधिवत्ततोऽग्रे जग्मतुर्मुदा ॥१८०
पृथक्पृथक्स्थिताथानि स्नात्वा दत्त्वा च जग्मतुः । दक्षिणे सेतुबन्धान्ते पश्चिमे द्वारिकामनु ॥१८१
उत्तरे बदरीस्थाने स्नात्वा तीर्थानि जग्मतुः । गन्धमादनमागत्य ब्रह्मानन्दो महाबलः ॥१८२

उन्हें भी धराशायी कर दिया। उस समय तारक (ताहर) धुंधुकार (धांधु) और चामुण्ड (चौंढ़ा) ब्रह्मानन्द को छोड़कर पृथ्वीराज के पास चले गये। तीनों पुत्रों के हनन होने पर भयभीत होकर पृथ्वीराज ने वेला के पास पहुँच अत्यन्त कारुणिक रुदन किया। इसे सुनकर उसी समय वेला ने डोला पर बैठकर अतिशीघ्र ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर उन्हें उसी मूर्च्छित अवस्था में देखा। पश्चात् वह मृतक अपने छोटे भाइयों को उठाकर रुदन करने लगी। उस समय ब्रह्मानन्द की आँख खुल गई, रुदन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर उससे उन्होंने पूँछा इस युद्ध में तुम मेरे पास आई हो, तो बताओ तुम किसकी पुत्री एवं किसकी प्रिया हो! महासुभ्रु! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो, तो मुझे जलपिलाने की कृपा करो। उस सदाचारिणी वेला ने उन्हें उसी समय जलपान कराकर उसी रात्रि उनसे कहा—मलना-पुत्र! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, उसे सुनने की कृपा कीजिये। मैं पृथ्वीराज की वेला नाम की कन्या हूँ, आप मेरे वीर पति हैं, इसीलिए मैं आपके पास आई हूँ। राजेन्द्र! यद्यपि उन वंचकों ने कपटपूर्ण आघात करके आपका हनन कर दिया है, तथापि मेरी प्रार्थना है कि आप अपना जीवन सुरक्षित कर मेरे साथ अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने की कृपा करें। इसे सुनकर उन्होंने उससे कहा—इस कलि काल के समय में जीवित रहने से मरना ही श्रेष्ठ है, इसलिए मेरी बात स्वीकार करो—शुभानने! मेरे साथ हरिनागर पर बैठकर चलो मैं तीर्थों में पहुँच अपने शरीर का त्याग करना चाहता हूँ।१६९-१७९। इतना कहकर उन दोनों ने उसी घोड़े पर बैठकर सर्वप्रथम पूर्व दिशा में स्थित कपिलमुनि के आश्रम (गंगा सागर) में पहुँचकर सविधान स्नान-दान दिया। पश्चात् प्रसन्न होकर वे लोग उसके आगे भी पहुँचे। सभी तीर्थों में पहुँचकर पृथक्-पृथक् स्नान-दान सविधान सुसम्पन्न करके वे परम सन्तुष्ट होते थे। इस प्रकार पूर्व में कपिलाश्रम दक्षिण में सेतुबन्ध, पश्चिम में द्वारिका, और उत्तर में बदरिकाश्रम में स्नान-दान सुसम्पन्न करने के उपरांत गंधमादन पर्वतपर पहुँचकर महाबली ब्रह्मानन्द ने वेला से कहा—

बेलामुवाच वचनं भाद्रशुक्लाष्टमीदिने । देहं त्यजामि भो राज्ञि तारकं जहि भूतले ।।१८३
इति श्रुत्वा तु सा प्राह स्वामिन्मद्वचनं कुरु । कुरुक्षेत्रं मया सार्द्धं भवान्वै गन्तुमर्हति ।।१८४
स्थित्वा तत्र समस्वान्तो भजत्वं सर्वमङ्गलम् । अहं महावतीं प्राप्य पुनर्वै देहलीं प्रति ।।१८५
तारकं च तथा हत्वा त्वत्समीपं व्रजाम्यहम् । इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ।।१८६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।३१

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

द्वात्रिंशाब्दे च कृष्णांशे सम्प्राप्ते योगरूपिणी । वेला नाम शुभा नारी हरिनागरसंस्थिता ।।
महावतीं समागम्य सभायां तत्र चाविशत् ।।१
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या महाबलाः । नत्वा परिमलं भूपं वेला वचनमब्रवीत् ।।२
महीपतिं प्रियं मत्वा कृष्णांशं नृपदुष्प्रियम् । त्वया मे घातितो भर्ता ब्रह्मानन्दो महाबलः ।।३

'रानी ! आज भाद्रशुक्ल की अष्टमी के इस शुभ अवसर पर मैं अपने शरीर का त्याग करना चाहता हूँ, तुम पृथ्वी में रहकर तारक (ताहर) का वध अवश्य करना'। इसे सुनकर उसने विनम्र प्रार्थना की—स्वामिन् ! मेरी एक बात स्वीकार करने की कृपा करें। आप मेरे साथ कुरुक्षेत्र चलकर वहाँ रहकर ही अपने मंगल की कामना करते रहें और मैं वहाँ से महावती (महोवा) जाकर वहाँ से पुनः दिल्ली लौटने पर तारक (ताहर) का वध करके आपके पास आ जाऊँगी। इसे सुनकर उन्होंने वेला की बात स्वीकार कर कुरुक्षेत्र पहुँचकर ब्रह्मा का ध्यान करना आरम्भ किया।१८०-१८६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।३१।

अध्याय ३२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—(उपरोक्त घटना के समय) उदयसिंह की बत्तीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस समय रानी बेला ने योगरूप धारणकर हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर महावती (महोबा) नगर को प्रस्थान किया। वहाँ राजा परिमल के राजदरबार में पहुँचकर जिस समय उसने नमस्कार पूर्वक कहना आरम्भ किया। उसी समय उदयसिंह आदि वीरगण भी उस सभा में उपस्थित हुए थे। उसने कहा—आपने महीपति (माहिल) को अपना प्रिय हितैषी, और उदयसिंह को राजद्रोही समझ लिया है। उसी के परिणामस्वरूप आपने पृथ्वीराज के उन धूर्त एवं महाबली तारक आदि पुत्रों द्वारा मेरे पति देव महाबलवान ब्रह्मानंद का हनन कराया है—धुंधुकार (धांधू) चामुण्ड (चौढ़ा) को

महीराजसुतैर्धूर्तैस्तारकाद्यैर्महाबलैः । नारीवेषं च चामुण्डो धुन्धुकारेण कारितः ॥४
स्वामिनं प्रति चागम्य ते जग्मुश्छद्मना प्रियम् । कुरुक्षेत्रं स्थितः स्वामी महत्या मूर्छयान्वितः ॥
तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गन्तुमर्हथ तं प्रति ॥५
इति घोरतमं वाक्यं श्रुत्वा सर्वे शुचान्विताः । धिग्भूपतिं च मलनां ताभ्यां नो घातितः सखा ॥६
इत्युक्त्वोच्चैश्च रुरुदुः कृष्णांशाद्या महाबलाः । पत्राणि प्रेषयामासुः स्वकीयान्भूपतीन्प्रति ॥७
क्रोधयुक्ता तदा वेला लिखित्वा पत्रमुल्बणम् । महीराजाय सम्प्रेष्य मलनागेहमागमत् ॥८
तत्पत्रं च महीराजो वाचयित्वा विधानतः । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं तन्निशम्य विशाम्पतिः ॥९
चिन्ताकलेवरं प्राप्य सुखनिद्रां व्यनाशयत् । आहूय भूपतीन्सर्वान्घोरयुद्धोन्मुखोऽभवत् ॥१०
चतुर्विंशतिलक्षैश्च शूरैर्भूपसमन्वितैः । कुरुक्षेत्रं ययौ शीघ्रं धृतराष्ट्रांशसम्भवः ॥११
तथा परिमलो भूपो लक्षषोडशसैन्यपः । द्रुपदांशो ययौ शीघ्रं वेलया स्वकुलैः सह ॥१२
स्यमन्तपञ्चके तीर्थे शिबिराणि चकार ह । ब्रह्मानन्दः स्थितो यत्र समाधिध्यानतत्परः ॥१३
गङ्गाकूले च ते सर्वे कौरवांशा महाबलाः । शिबिराणि विचित्राणि चक्रुस्तेविजयैषिणः ॥१४
कृत्वा ते कार्तिकीस्नानं दत्त्वा दानान्यनेकशः । मार्गकृष्णद्वितीयायां युद्धभूमिमुपाययुः ॥१५
विष्वक्सेनीयभूपालो लहरस्तत्र चागतः । कौरवांशाश्च तत्पुत्राः षोडशैव महाबलाः ॥
पूर्वजन्मनि यन्नाम तन्नाम्ना प्रथिता इह ॥१६

स्त्री का वेष बनाकर मेरे स्वामी के पास ले गया। वहीं सब लोगों ने मिलकर कपट द्वारा मेरे सौभाग्य का नाश किया है। इस समय मूर्च्छित अवस्था में पतिदेव कुरुक्षेत्र के स्थल में पड़े हुए हैं, अतः तुम लोग मेरे साथ शीघ्रातिशीघ्र वहाँ चलने की तैयारी करो।' इस अत्यन्त कठोरवाणी को सुनकर उदयसिंह आदि महावली वीरगण राजा परिमल और उनकी रानी मलना को धिक्कारते हुए 'तुम्ही दोनों ने मेरे मित्र का अपघात कराया है' ऐसा कहकर उच्चस्वर से रुदन करने लगे। पश्चात् पुत्रों को चारों ओर भेजकर ससैन्य राजाओं को दिल्ली चलने के लिए बुलवाना आरम्भ किया। उसी समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेला भी उल्वण (विष) की भाँति तीक्ष्ण एक पत्र पृथ्वीराज के यहाँ भेजकर स्वयं मलना रानी के महल में चली गई। विशांपते ! राजा पृथ्वीराज उस पत्र को अत्यन्त सावधानी से सुनकर उसके कारण को जानकर अत्यन्त चिंतित रहने लगे उनकी सुख की नींद एकदम नष्ट हो गई। वे भी अपने आश्रित राजाओं को बुलाकर युद्ध की तैयारी करने लगे।१-१०। दुर्योधनांश पृथ्वीराज ने राजाओं समेत अपनी चौबीस लाख सेना लेकर कुरुक्षेत्र के लिए शीघ्र प्रस्थान कर दिया। राजा परिमल भी उदयसिंह आदि सेनाध्यक्ष समेत सोलह लाख सैनिक और वेला आदि सभी परिवार को लेकर वहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर सामन्त पञ्चक नामक तीर्थ में, जहाँ स्थित होकर ब्रह्मानन्द समाधि लगाये हुए थे, अपने शिविरों को बनवाया और गंगा के तट पर विजयाभिलाषी एवं महाबली उन कौरवांश दिल्ली वालों ने अपना शिविर बनाना आरम्भ किया। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा में स्नान एवं भाँति-भाँति के दान समर्पितकर मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्ण द्वितीया के दिन वह भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ जिसमें विष्वक्सेन वंश के राजा लहर अपने सोलह पुत्रों समेत आये थे, जो कौरवों के अंश से उत्पन्न एवं महाबली थे। उनके पूर्व जन्म के ही नाम

दुस्सहो दुश्शलश्चैव जलसन्धः समः सहः । विन्दस्तथानुविन्दश्च सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ॥१७
दुर्मर्षणश्च दुष्कर्णः सोमकीर्तिरनूदरः । शलः सत्वो विवित्सुश्च क्रमाज्ज्ञेया महाबलाः ॥१८
तोमरान्वयभूपालो बाह्लीकपतिरागतः । त्रिलक्षैश्च तथा सैन्यैः सप्तपुत्रैश्च भूपतिः ॥१९
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुश्चित्रः शरासनः । सुलोचनः सवर्णश्च पूर्वजन्मनि कौरवाः ॥२०
तेषामंशाः क्रमाज्जाता अभिनन्दनदेहजाः । महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकौ ॥
सुनन्दश्च सुरानन्दः प्रनन्दः कौरवांशकः ॥२१
नृपः परिहरवंशीयो मायावर्मा महाबली । लक्षसैन्ययुतः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥२२
दुर्मदो दुर्विगाहश्च नन्दश्च विकटाननः । चित्रवर्मा सुवर्मा च सुदुर्मोचन एव च ॥२३
ऊर्णनाभः सुनाभश्च चोपनन्दश्च कौरवाः । तेषामंशः क्रमाज्जाताः सुता अङ्गपतेः स्मृताः ॥२४
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः सुमत्तो दुर्मदस्तथा । दुर्मुखो दुर्द्धरो वायुः सुरथो विरथः क्रमात् ॥२५
शुक्लवंशीयभूपालो मूलवर्मा समागतः । लक्षसैन्यैश्च बलवान्दशपुत्रसमन्वितः ॥२६
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः । चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा ॥२७
दृढवर्मा दृढक्षत्रः पूर्वजन्मनि कौरवाः । तेषामंशा महीं जाता गृहे ते मूलवर्मणः ॥२८
बलश्च प्रबलश्चैव सुबलो बलवान्बली । सुमूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयङ्करः ॥२९
कैकयश्चन्द्रवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः । दशपुत्रान्वितः प्राप्तः कुरुक्षेत्रे महारणे ॥३०
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्द्धनः । उग्रायुधो दण्डधरो दृढसन्धो महीधरः ॥३१
जरासन्धः सत्यसन्धः पूर्वजन्मनि कौरवाः । तेषामंशाः समुद्भूताः कैकयस्य गृहे शुभे ॥३२
कामः प्रकामः सङ्कामो निष्कामो निरपत्रपः । जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाञ्जयः ॥३३

इसी जन्म में भी पड़े हुए थे—दुस्सह, दुश्शल, जलसंध, समःसह, विंद, अनुविंद, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुष्कर्ण, सोमकीर्ति, अनूदर, शल, सत्व, और विवित्सु क्रमशः उन महाबलवानों के नाम थे। बाह्लीक-पति तोमर वंश का कुलभूषण राजा था, अपनी तीन लाख सेना और महानन्द,नन्द, परानन्द, उपनन्द, सुनंद, सुरानंद तथा प्रनन्द नामक सात पुत्रों को साथ लेकर आये थे, जो पूर्वजन्म में चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, सुलोचन एवं सुवर्ण नामक कौरवों के अंश से क्रमशः उत्पन्न हुए थे। ११-२१। अंगदेश का परिहरवंशीय महाबली राजा मायावर्मा दस लाख सेना और दुर्मद, दुर्विगाह, नंद, विकटानन, चित्रवर्मा, सुवर्मा, सुदुमेचिन, उर्णनाभ, सुनाभ, तथा उपनंद नामक कौरवांशों से क्रमशः उत्पन्न मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, सुमत्त, दुर्मद, दुर्मुख, दुर्द्धर, वायु, सुरथ, एवं विरथ नामक दशपुत्रों समेत आये थे। शुक्लवंशीय राजा मूल-वर्मा अपने एक लाख सैनिक तथा बल, प्रबल, सुबल, बलवान्, बली, सुमूल, महामूल, दुर्ग, भीम, और भयंकर नामक दशपुत्रों को साथ लेकर आये थे, जो पूर्वजन्म में अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांग, चित्रकुण्डल, चित्रायुध, निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढवर्मा और दृढक्षत्र नामक कौरवों के अंश से क्रमशः उत्पन्न थे। चंद्रवंशी राजा कैकय एक लाख सेना और अपने दशपुत्रों समेत उस कुरुक्षेत्र के भीषण रणस्थल में पहुँचे थे। काम, प्रकाम, सकाम, निष्काम, निरपत्रप, जय, विजय, जयन्त, जयवान् और जय यही क्रम से उन पुत्रों के नाम थे, जो पूर्व जन्म के भीम वेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, दंडधर, दृढसंग, महीधर, जरासंध तथा सत्यसंघ नामक कौरवों के अंश से क्रमशः उत्पन्न थे। उसी प्रकार पुंड्र देश का

नागवंशीयभूपालो नागवर्मा समागतः । लक्षसेनान्वितः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥३४
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना कौरवा भुवि । पुण्ड्रदेशपतेः पुत्रा जाता दश शिवाज्ञया ॥३५
उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्परायणः । अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ॥३६
दृढहस्तः सुहस्तश्च सुतास्ते नागवर्मणः ॥३७
मद्रकेशः समायातस्तोमरान्वयसम्भवः । लक्षसैन्यैर्युतो राजा दशपुत्रसमन्वितः ॥३८
वातवेगः सुवर्चाश्च नागदन्तोग्रयाजकः । आदिकेतुश्च वक्शी च कवची क्राथ एव च ॥३९
कुण्डश्च कुण्डधारश्च कौरवाः पूर्वजन्मनि । तन्नाम्ना भुवि वै जाता मद्रकेशस्य मन्दिरे ॥४०
नृपः शार्दूलवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः । पूर्णामलो मागधेशो दशपुत्रान्वितो ययौ ॥४१
वीरबाहुर्भीरथश्चोग्रश्चैव धनुर्धरः । रौद्रकर्मा दृढरथोऽलोलुपश्चाभयस्तथा ॥४२
अनाधृष्टः कुण्डभेदी कौरवाः पूर्वजन्मनि । पूर्णामलस्य वै गेहे तन्नाम्ना भुवि सम्भवः[1] ॥४३
मङ्कणः किन्नरो नाम रूपदेशे महीपतिः । चीनदेशात्परे पारे रूपदेशः स्मृतो बुधैः ॥
नरः किन्नरजातीयो वसति प्रियदर्शनः ॥४४
मङ्कणश्च तदा प्राप्तः किन्नरायुतसंयुतः । अष्टपुत्रान्वितः प्राप्तो यत्र सर्वनृपाः स्थिताः ॥४५
विरावी प्रथमश्चैव प्रमाथी दीर्घरोमकः । दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोराः कनकध्वजः ॥४६
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना[2] तन्नाम्ना किन्नरा भुवि । विरजोंशश्च यो जातो मङ्कणो नाम किन्नरः ॥४७
नेत्रसिंहः समायातो लक्षसैन्यसमन्वितः । शल्यांशः स तु विज्ञेयः शार्दूलान्वयसम्भवः ॥४८

नागवंशीय राजा नागपाल अपनी एक लाख सेना और दश पुत्रों समेत आये थे, जो पूर्व जन्म के उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्परायण, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त तथा सुहस्त नामक कौरवों के अंश से उत्पन्न तथा इस जन्म में भी इसी नाम से ख्यात थे। तोमर कुलावतंस राजा मद्रकेश अपने एक लाख सैनिकों एवं दशपुत्रों समेत वहाँ आये थे जो पूर्व जन्म के वातवेग, सुवर्चा, नागदंत, अग्रयाजक, आदि केतु, वक्शी, कवची, क्राथ, कुण्डल और कुंडधीर नामक कौरवों से क्रमशः उत्पन्न होकर इसी ग्राम से पुनः इस भूतल पर प्रख्यात थे। मगधाधीश्वर शार्दूल वंशीय पूर्णमल अपने एक लाख सैनिकों और अपने दश पुत्रों समेत वहाँ उपस्थित थे जो वीरबाहु, भीमस्थ, उग्र, धनुर्धर, रौद्रकर्मा, दृढरथ, अलोलुप, अभय, अनाधृष्ट और कुण्डभेदी नामक कौरवों के अंश से उत्पन्न तथा इसी नाम से पुनः प्रख्यात थे। रूपदेश का अधीश्वर मंकण नामक किन्नर वहाँ आये थे। चीन देश के उस पार रुपदेश का निर्देश विद्वानों ने किया है, जहाँ अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण किन्नर जाति के लोग निवास करते हैं। २२-४४। उस रणभूमि के राज समाजमें मंकण भी उस समय दश किन्नर और अपने आठ पुत्रों समेत पहुँचे हुए थे, जो विरावी प्रथम, प्रमाथी, दीर्घरोमक, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरा तथा कनकध्वज नामक किन्नरों द्वारा उत्पन्न होकर भूतल में भी इसी नाम से ख्यातिप्राप्त कर चुके थे। विरज के अंश से मंकण नामक किंन्नर की उत्पत्ति कही गई है। अपने एक लाख सैनिकों समेत राजा नेत्रसिंह वहाँ आये थे, जो शल्य के अंश से

---

१. तेषामिति शेषः। २. यन्नाम्ना पूर्वजन्मनि ख्यातास्तन्नाम्नैहिकजन्मन्यपीत्यर्थः।

तदा गजपती राजा लक्षसैन्यसमन्वितः । सम्प्राप्तः शकुनेरंशस्त्यक्त्वा गेहे स्वपुत्रकान् ।।४९
मयूरध्वज एवापि लक्षसैन्यसमन्वितः । मकरन्दं गृहे त्यक्त्वा विराटांशः समागतः ।।५०
वीरसेनः समायातः कामसेनसमन्वितः । लक्षसेनान्वितस्तत्र चोग्रसेनांशसम्भवः ।।५१
लक्षणश्च समायातः सप्तलक्षबलैर्युतः । सन्त्यज्य पद्मिनीं नारीं महाकष्टेन भूपतिः ।।५२
तालनो धान्यपालश्च लल्लसिंहस्तथैव च । भीमस्यांशो युयुत्सोश्च कुन्तिभोजस्य वै क्रमात् ।।५३
आह्लादश्च[१] समायातः कृष्णांशेन समन्वितः । जयन्तेन च वै वीरो लक्षसैन्यान्वितो बली ।।५४
जगन्नायक एवापि शूरायुतसमन्वितः । सम्प्राप्तो भगदत्तांशो गौतमान्वयसम्भवः ।।५५
अन्ये च क्षुद्रभूपाश्च सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् । कुरुक्षेत्रं परं स्थानं संययुर्मदविह्वलाः ।।५६
मूलवर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः । नृपं परिमलं प्राप्य संयुक्तो[२] देहलीपतेः ।।५७
कैकयो लक्षसेनाढ्यः सपुत्रो नृपतिः स्वयम् । नृपं परिमलं प्राप्य स युद्धार्थमुपस्थितः ।।५८
नेत्रसिंहश्च नृपतिः स वीरो लक्षसैन्यपः । मयूरध्वज एवापि लक्षपः शशिवंशिनम् ।।५९
वीरसेनश्च लक्षाढ्यः सपुत्रश्चान्द्रिपक्षगः । लक्षणः सप्तलक्षाढ्यो युद्धार्थं समुपस्थितः ।।६०
आह्लादो[३] लक्षसैन्याढ्यः पक्षगश्चन्द्रवंशिनः । द्विलक्षसंयुतो राजा चन्द्र[४]वंशो रणोन्मुखः ।।
एवं षोडशलक्षाढ्यः स्थितः परिमलो[५] रणे ।।६१

शार्दूल वंश में उत्पन्न हुए थे । शकुनि वंश राजा गजपति भी घर में पुत्रों को सौंपकर एक लाख सेना समेत वहाँ आये थे । विराटांश मयूरध्वज मकरंद को घर सौंपकर एक लाख सैनिक लिए वहाँ आये थे । उसी प्रकार उग्रसेनांश से उत्पन्न वीरसेन कामसेन समेत एक लाख सेना लेकर वहाँ पहुँचे थे । अत्यन्त कष्ट से पद्मिनी को छोड़कर राजा लक्षण (लाखन) सात लाख सेना समेत वहाँ आये थे । भीम, युयुत्स, और कुन्तिभोज के अंश से क्रमशः उत्पन्न तालन धान्यपाल, एवं लल्लसिंह, उदयसिंह और इन्दुल समेत एक लाख सेना लेकर आह्लाद (आल्हा) भगदत्त के अंश से उत्पन्न एवं गौतम कुलभूषण जगनायक अपनी दश सहस्र सेना लेकर वहाँ आ गये थे ।४५-५५। इसी प्रकार छोटे-छोटे अन्य सहस्रों राजगण मदान्ध होकर पृथक्-पृथक् सेनाओं समेत उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचे थे । पुत्र तथा अपनी एक लाख सेना लेकर मूलवर्मा ने राजा परिमल के पास पहुँचकर अपने आगमन की सूचना दी । उसी प्रकार राजा कैकय पुत्र तथा एक लाख सेना लेकर आये थे । वीर राजा नेत्रसिंह, मयूरध्वज, और वीरसेन पुत्रों समेत अपने एक-एक लाख सैनिकों समेत तथा सात लाख सेना लेकर लक्षण (लाखन) एक लाख सेना समेत आह्लाद (आल्हा) चन्द्रवंशी राजा परिमल की सहायतार्थ वहाँ उपस्थित थे । राजा परिमल की भी स्वयं तीन लाख सेना थी । इस प्रकार राजा परिमल ने अपनी कुल सोलह लाख सेना से उस युद्धभूमि में संग्राम की

---

१. महीराजपक्षपातिराजागमनवृत्तान्तमुक्त्वेदानीं परिमलपक्षपातिभूपागमनवृत्तान्तं वर्णयन्नाह —आह्लादश्चेति । २. युद्धायेति शेषः । ३. 'आह्लादश्च समायातः' इति चतुष्पञ्चाशत्सङ्ख्यापूरकपद्ये वर्णयित्वापि पुनरिह तद्वर्णनं तत्पक्षपातिषु तस्य प्राधान्यद्योतनायेतिबोध्यम् । ४. अर्द्धेन परिमलं वर्णयति, तस्यैव चन्द्रवंश इति विशेषणम्—नोह्लादस्य, तस्यान्यवंशजातत्वात् । ५. 'द्विलक्षसंयुतत्वमुक्त्वापि पुनः 'षोडशलक्षाढ्यः' इति कथनं स्वीयपूर्वोक्तपरकीयसैन्यभयवर्णनद्योतनाय ।

लहरो[1] भूपतिश्रेष्ठो लक्षपः पुत्रसंयुतः । महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६२
अभिनन्दन एवापि सपुत्रो लक्षसैन्यपः । मायावर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ॥६३
नागवर्मा समायातः सपुत्रो लक्षसैन्यपः । मद्रकेशः सपुत्रश्च लक्षसैन्यो रणोन्मुखः ॥६४
पूर्णामलः सपुत्रश्च लक्षपश्चैव पक्षगः । मङ्कणः किन्नरो नाम सपुत्रस्तत्र संस्थितः ॥६५
गजराजः समायातो महीराजं हि लक्षपः । धुन्धुकारः समायातः पञ्चलक्षपतिः स्वयम् ॥६६
पुत्रः कृष्णकुमारस्य भगदत्तः समागतः । त्रिलक्षदलसंयुक्तो महीराजं महीपतिम् ॥६७
दलवाहनपुत्रश्च देशगोपालसंस्थितः । अङ्गदस्तत्र सम्प्राप्तः सायुतो देवकीप्रियः ॥
महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६८
कलिङ्गश्च नृपः प्राप्तस्त्रिकोणश्च तथैव च । श्रीपतिश्च तथा राजा श्रीतारश्च तथा गतः ॥६९
मुकुन्दश्च सुकेतुश्च सहिलो गुहिलस्तथा । इन्दुवारश्च बलवाञ्जयन्तश्च तथाविधः ॥
सर्वे दशसहस्राढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७०
महीराजस्य पक्षे तु सहस्रं क्षुद्रभूमिपाः । ते तु साहससेनाढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७१
तेषां मध्ये च वै भूपान्द्विशतान्देहलीं प्रति । ससैन्यान्प्रेषयामास राज्यरक्षणहेतवे ॥
एवं स देहलीराजश्चतुर्विंशतिलक्षपः ॥७२
युद्धमष्टादशाहानि सञ्जातं सर्वसंक्षयम् । शृणु युद्धकथां रम्यां भृगवर्य सुविस्तरात् ॥७३
मार्गकृष्णद्वितीयायां महीराजो महाबलः । आहूय लहरं भूपं वचनं प्राह निर्भयः ॥७४
भवान्सपुत्रः सेनाढ्यो धुन्धुकारेण रक्षितः । चामुण्डेन युतो युद्धे गन्तुमर्हति सत्तम ॥

तैयारी किया था । उसी प्रकार राजा पृथ्वीराज के समीप उनकी सहायतार्थ नृपश्रेष्ठ, लहर, मायावर्मा, नागवर्मा, मद्रकेश, पूर्णामल अपने अपने पुत्रों और एक-एक लाख सैनिकों समेत वहाँ आये थे । पुत्र तथा दशसहस्र सेना समेत मंकण नामक किन्नर, एकलाख सेना समेत गजराज, पाँच लाख सेना समेत धुंधुकार (धांधू) और कृष्ण कुमार का पुत्र भगदत्त, अपनी तीन लाख सेना लेकर पृथ्वीराज के पास आया था । दलवाहन पुत्र एवं देशगोपाल देश निवासी अंगद, जो देवकी का अत्यन्त प्रिय था, तथा कलिंग, त्रिकोण, श्रीपति, श्रीतार, मुकुंद, सुकेतु, सहिल, गुहिल, इन्दुवार, और बलवान् जयन्त वहाँ उपस्थित थे जिनकी दशदश सहस्र की सेना थी, पृथ्वीराज के सहायक छोटे-छोटे एक सहस्र राजगण, अपनी एक एक सहस्र सेना समेत वहाँ उपस्थित थे । इन्हीं सैनिकों से दो सौ राजाओं को उनके सेना समेत उन्होंने अपने राष्ट्र के रक्षार्थ दिल्ली में भेज दिया था । इस प्रकार दिल्लीश्वर राजा पृथ्वीराज अपनी चौबीस लाख सेना लेकर उस रणस्थल में युद्धार्थ उपस्थित हुए थे, जो भीषण युद्ध अट्ठारह दिन में समस्त क्षत्रियों के नाश-पूर्वक समाप्त हुआ था । भृगुवर्य ! मैं तुम्हें अब विस्तारपूर्वक उस युद्ध-कथा को सुना रहा हूँ, मन लगाकर सुनो ! मार्ग कृष्ण द्वितीया के दिन महाबली पृथ्वीराज ने निर्भीक होकर राजा लहर को बुलाकर उनसे कहा—सत्तम ! पुत्र समेत आप चामुण्ड (चौंढ़ा) के साथ धुंधुकार (धांधू) से सुरक्षित होकर रणभूमि में

---

१. इदानीं लहरादीनां महीराजपक्षपातिनां भूपानां सैन्यपरिमाणं कथयति। तेषामागमनं तु पूर्वं वर्णितमेव।

इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं कुरुक्षेत्रे महारणे ॥७५
तदा परिमलो राजा मयूरध्वजमेव हि । समाहूय वचः प्राह श्रृणु पार्थिवसत्तम ॥७६
कृष्णांशेन जयन्तेन देवसिंहेन रक्षितः । स भवाल्लँक्षसैन्याढचो गन्तुमर्हति वै रणे ॥७७
इति श्रुत्वा तु वचनं मयूरध्वज एव हि । लक्षसैन्यान्वितः प्राप्तो लहरं नृपतिं प्रति ॥७८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयो रणे । सेना तु लक्षवीरस्य तत्र युद्धे प्रकीर्तिता ॥७९
एको रथो गजास्तत्र ज्ञेयाः पञ्चशतं रणे । हयाश्च पञ्चसाहस्रा पत्तयस्तद्गुणा दश ॥
एते सैन्ये नरा ज्ञेया सैन्यपांश्च श्रृणुष्व भोः ॥८०
दशानां पत्त्रराणां च पतिर्नाम्ना स पत्तिपः । पञ्चानां च हयानां च पतिर्नाम्ना स गुल्मपः ॥८१
पञ्चानां च गजानां च पतिर्नाम्ना गजाधिपः । एतैः सार्द्धं रथी ज्ञेयो रणेऽस्मिन्दारुणे कलौ ॥८२
उष्ट्रारूढाः स्मृता दूताश्चत्वारिंशच्च तद्बले । शतघ्न्यस्तत्र साहस्रास्तेषां मध्ये पृथक्पृथक् ॥
षट्त्रिंशद्वै पदचरास्तेषां कर्माणि मे श्रृणु ॥८३
दशगोलकदातारो दशतत्पुष्टिकारकाः । दश चार्द्रकरास्ता वै त्रयस्ते वह्निदायिनः[1] ॥
त्रयो दृष्टिकरा ज्ञेयास्त्रियामेषु पृथक्पृथक् ॥८४
शेषाः शूद्रास्तु सेनानां शूरकृत्यपरायणाः । एवं च लक्षवीराणां सेना तत्र प्रकीर्तिता ॥८५

जाने की तैयारी कीजिये । इसे सुनकर ही उन लोगों के साथ शीघ्र उस रणस्थल में पहुँच गये ।५६-७५। उस समय राजा परिमल ने मयूरध्वज को बुलाकर कहा—नृपश्रेष्ठ ! उदयसिंह, जयन्त (इन्दुल), और देवसिंह द्वारा सुरक्षित होकर आप अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ युद्ध भूमि मे पहुँच जाँय । इसे सुनकर मयूरध्वज ने एक लाख सेना लेकर वहाँ रणभूमि में पहुँचकर राजा लहर के साथ घोर संग्राम आरम्भ किया । उस रणभूमि में दोनों सेनाओं का अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ । उस युद्ध में उपस्थित एक लाख सेना का विवरण इस भाँति कहा गया है—एक रथ, पाँच सौ हाथी, पाँच सहस्र घोड़े, और उसके दश गुने पैदल की सेना थी । अब उस सेना में सैनिकों के विवरण के उपरांत मैं तुम्हें उनके सेनाध्यक्षों का विवरण बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! । दश पैदल सैनिकों का एक स्वामी था, जिसे पत्तिप कहा गया है । उसी प्रकार पाँच अश्वारोही सैनिकों के स्वामी को 'गुल्मप' और पाँच गजराजों के अधिनायक को 'गजाधिप' बताया गया है । कलि के उस भीषण युद्ध में इन्हीं लोगों से युक्त एक रथी रहता था । उन सेनाओं में ऊँट (सांडियों) पर बैठे हुए चालीस सैनिक दूत का काम कर रहे थे । उन सेनाओं में पृथक्-पथक् एक सहस्र तोपें थीं, जिनमें छत्तीस पैदल सैनिक काम कर रहे थे । उनके विवरण बता रहा हूँ, सुनो ! दश सैनिक गोला देने के लिए नियुक्त थे । उसी प्रकार दश सैनिक उन गोलों के मारने के लिए, दश आर्द्र (गीला) करने के लिए और तीन उसमें अग्नि (पलीता) जलाने वाले एवं वहाँ निरीक्षण के लिए नियुक्त थे । इस प्रकार उस तीन प्रहर के युद्ध में उनका विवरण बता दिया गया। जिनमें शेष शूद्रगण उन सैनिकों के साथ रहकर युद्ध में शूरों की सहायता कर रहे थे। इस प्रकार वहाँ की एक लाख सैनिकों की सेना का

---

१. शतघ्नीरित्यर्थः, प्रतीति शेषः ।

तत्रासीत्तुमुलं युद्धं धर्मेण च समन्ततः । प्रातःकालात्समारभ्य मध्याह्नं सैन्ययोर्द्वयोः ॥८६
तत्पश्चाद्याममात्रेण सैन्यपा युद्धमागताः । तत्पश्चाच्च महाशूरा धुन्धुकारादयो बलाः[1] ॥८७
याममात्रं च युद्धाय संस्थिता रणमूर्धनि । चामुण्डेन च कृष्णांशो धुन्धुकारेण चेन्दुलः ॥८८
भगदत्तेन वै देवः कृतवान्युद्धमुत्तमम् । सायङ्काले तु सम्प्राप्ते सर्वे शूराः क्षयं[2] गताः ॥८९
कृष्णांशस्तत्र चामुण्डं जित्वा तु लहरात्मजान् । षोडशैव जघानाशु घटीमात्रेण वीर्यवान् ॥
दध्मौ शङ्खं प्रसन्नात्मा लक्षणान्तमुपाययौ ॥९०
चामुण्डो धुन्धुकारश्च भगदत्तो युतः शतैः । महीराजमुपागम्य सुषुपुर्निशि निर्भयाः ॥९१
इन्दुलो देवसिंहश्च सहस्रैः संयुतौ मुदा । गत्वा परिमलं भूपं रात्रौ सुषुपतुस्तदा ॥९२
प्रातःकाले तु संप्राप्ते तृतीयायां भयङ्करे । महीराजस्तदाहूय नृपं गजपतिं बली ॥९३
वचनं प्राह भो राजँस्त्वं त्रिवीरैः सुरक्षितः । स्वकीयैर्लक्षसैन्यैश्च गन्तुमर्हसि वै रणे ॥९४
तदा परिमलो भूपो नेत्रसिंहं महीपतिम् । युद्धायाज्ञापयामास कृष्णांशाद्यैः सुरक्षितम् ॥९५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोः क्रमात् । हया हयैः क्षयं जग्मुर्गजाश्चैव तथा गजैः ॥
पच्चराः पच्चरैः सार्द्धं शतघ्न्यश्च शतघ्निभिः ॥९६
अपराह्णे मुनिश्रेष्ठ नेत्रसिंहो महाबलः । महागजं गजपतिं गत्वा युद्धमचीकरत् ॥९७

विशेष विवरण बताया गया है, जो उस रणक्षेत्र में धार्मिक युद्ध कर रहे थे । प्रातः काल से आरम्भ कर मध्याह्न तक दोनों सैनिकों का भीषणयुद्ध होकर बन्द सा हो जाता था । तत्पश्चात् एक प्रहर के लिए सैन्यपति लोग वहाँ युद्धार्थ उपस्थित होते थे ! इस प्रकार मयूरध्वज और लहर के उस रणभूमि में सैनिकों से युद्ध करने के उपरांत वली एवं महाशूर धुंधुकार (धांधू) आदि वीरगण वहाँ एक प्रहर के युद्धार्थ उपस्थित हुए । चामुण्ड (चौंढ़ा) के साथ उदयसिंह, धुन्धुकार (धांधु) के साथ इन्दुल, और भगदत्त के साथ देवसिंह ने भीषण युद्ध किया, जिसमें सायंकाल होने पर इतर सैनिकों का निधन हो गया । इस युद्ध में उदयसिंह ने एक घड़ी समय के भीतर राजा लहर के उन सोलहों पुत्रों को धराशायी कर अपने विजय शंख को बजाते हुए राजा लक्षण (लाखन) के पास प्रस्थान किया । चामुण्ड (चौंढ़ा) धुंधुकार (धांधू) और भगदत्त ने शेष अपने सौ सैनिकों समेत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर रात्रि में निर्भय होकर शयन किया । इधर इन्दुल और देवसिंह ने भी अपने शेष सहस्रों सैनिकों को लेकर राजा परिमल के पास पहुँचकर वहाँ आनन्द की नींद में रात्रि व्यतीत किया । तृतीया के दिन प्रातः काल के समय राजा पृथ्वीराज ने वली राजा गजपति को बुलाकर कहा—तीनों वीरों से सुरक्षित होकर आप अपने लक्ष सैनिकों समेत उस रणस्थल में पहुँचने की तैयारी करें। उस समय राजा परिमल ने भी नेत्रसिंह को बुलाकर कहा—उदयसिंह आदिवीरों की अध्यक्षता में आप युद्धार्थ शीघ्र प्रस्थान कीजिये।७६-९५। उस दिन वहाँ रणस्थल में उन दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हुआ, जिसमें क्रमशः घोड़े, घोड़े के साथ हाथी, हाथी के साथ पैदल, पैदल के साथ और बन्दूकधारी, बन्दूक वालों से एवं तोप वाले तोपों के साथ तन्मयता में युद्ध कर उन्हें धराशायी कर रहे थे। मुनिश्रेष्ठ ! उस युद्ध में अपराह्ण के समय राजा नेत्रसिंह ने उस भीषण-

---

१. बलिन् इत्यर्थः । २. निवासम् ।

परस्परं च विरथौ सञ्छिन्नधनुषौ तदा । खड्गहस्तौ महीं प्राप्य चक्रतू रणमुल्बणम् ॥
अन्योन्येन वधं कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥९८
इन्दुलस्तं तु चामुण्डं देवो वै धुन्धुकं तथा । कृष्णांशो भगदत्तं च जित्वा राजानमाययुः ॥९९
शेषैः पञ्चशतैः शूरैस्तैः सार्द्धं लक्षणं प्रति। पराजिताश्च ते सर्वे सहस्रैः सहिता ययुः ॥१००
प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते महीराजो महाबलः । मायावर्माणमाहूय वचनं प्राह निर्भयः ॥१०१
भवान्दशसुतैर्वीरैर्लक्षसैन्यैश्च संयुतः । सर्वशत्रुविनाशाय गन्तुमर्हति सत्तम ॥
इति श्रुत्वा स नृपतिर्वाद्यान्संवाद्य चाययौ ॥१०२
दृष्ट्वा परिमलो भूपो मायावर्माणमागतम् । जगन्नायकमाहूय वचनं प्राह निर्भयः ॥१०३
भवान्दशसहस्रैश्च सार्द्धं तैस्त्रिभिरन्वितः । गन्तुमर्हति युद्धाय शीघ्रं मद्विजयं कुरु ॥१०४
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं सेनयोरुभयोर्महत् । युद्धं चासीन्मुनिश्रेष्ठ याममात्रं भयानकम् ॥१०५
हतास्ते दशसाहस्राः कृष्णांशाद्यैः सुरक्षिताः । शङ्खान्दध्मुश्च ते सर्वे चाङ्गदेशनिवासिनः ॥१०६
एतस्मिन्नन्तरे धीराः कृष्णांशाद्यस्तुरीयकाः[1] । याममात्रेण सञ्जघ्नुर्लक्षसैन्यं रिपोस्तदा ॥१०७
अपराह्णे महाराजो मायावर्मा सुतैः सह । कृष्णांशं देवसिंहं च सम्प्राप्तो जगनायकम् ॥१०८

अथाङ्गभूपं दशपुत्रयुक्तं कृष्णांश एवाशु जगाम शीघ्रम् ।
हयस्थितो वीरवरः प्रमाथी कलैकजातो मधुसूदनस्य ॥१०९

काय गजपति के साथ युद्धारम्भ किया । युद्ध में उन दोनों ने पहले विरथ होकर एक दूसरे के धनुष -वाण काटते हुए अपने-अपने खड्ग द्वारा महाविषम युद्ध किया । पश्चात् अपने रण-कौशल से एक दूसरे के वध करके वे दोनों स्वर्गीय हो गये । इधर इन्दल ने चामुण्ड (चौंढा) देवसिंह ने धुंधुकार (धांधु) और उदयसिंह ने भगदत्त को पराजित कर राजा के पास प्रस्थान किया, जिसमें उनलोगों के साथ शेष पाँच सौ शूर सैनिक जा रहे थे । पराजित होने पर भगदत्त आदि के पास भी सहस्रों सैनिक थे । तीसरे दिन प्रातः काल में राजा पृथ्वीराज ने मायावर्मा को बुलाकर कहा—सत्तम ! अपने वीर दश पुत्रों समेत एक लाख सैनिकों को साथ लेकर शत्रुओं के विनाशार्थ रणस्थल में शीघ्र पहुँच जाइये । इसे सुनकर उस राजा ने बाजे गाजे के साथ वहाँ पहुँचकर अपने आगमन की सूचना दी । उसे देखकर राजा परिमल ने भी निर्भीक होकर जगन्नायक से कहा—आप अपनी दश सहस्र सेना लेकर इन तीनों वीरों के साथ रणभूमि की तैयारी कीजिये । वहाँ जाकर शीघ्र मेरी विजय करना । इसे सुनकर वे ससैन्य वहाँ पहुँच गये । मुनिश्रेष्ठ ! उन दोनों सेनाओं में एक प्रहर तक भीषण युद्ध हुआ । किन्तु उदयसिंह आदि से सुरक्षित होने पर भी वे दशसहस्र सैनिक वहाँ रणस्थल में धराशायी हो गये । पश्चात् उन पुंग देश के सैनिकों ने अपनी-अपनी शंखध्वनि करते हुए विजय की सूचना दी । उसी समय उदयसिंह आदिवीरों ने वहाँ पहुँचकर एक प्रहर के भीतर शत्रु के उन लक्ष सैनिकों के निधन कर दिये । अपराह्ण में अपने पुत्रों समेत मायावर्मा तथा उदयसिंह और देवसिंह समेत जगनायक वहाँ रणस्थल में पहुँच गये पुत्रों समेत अङ्गाधीश्वर मायावर्मा के साथ उदयसिंह का युद्ध आरम्भ हुआ, जो वीरवर घोड़े पर बैठा हुआ, शत्रु सेनाओं का मंथन करने वाला एवं भगवान् मधुसूदन की कला से उत्पन्न था । पश्चात् अङ्गाधीश्वर ने अपने तीन वाणों द्वारा उदयसिंह

---

१. चत्वार इत्यर्थः ।

नतोऽङ्गभूपस्त्रिभिरेव बाणैरताडयन्मूर्ध्नि च पार्श्वयोर्वै।
अमर्षमाणो बलवान्महीपतिदण्डैर्हतः काल इवाशु सर्पः ॥११०
हयं समुड्डीय स पुष्करान्तं ततोऽभ्यगात्तं नृपतिं रथस्थम्।
हयस्य पातैर्विरथीचकार स एव भूपोऽसिमुपाददानः ॥१११
स्वेनासिना बिन्दुलमङ्गशल्यं कृत्वा स कृष्णांशमुवाच वाक्यम्।
कल्लोलमायात्तव नाशनाय त्वयाजिता भूपतयःप्रधानाः ॥११२
तदैव कीर्तिर्भविता ममाशु हत्वा भवन्तं च सुखी भवानि।
इत्युक्तवन्तं नृपतिं महान्तं स्वेनासिना तस्य शिरो जहार ॥११३
हतेऽङ्गभूपे दश तस्य पुत्रास्तमेव जग्मुर्युधि कौरवांशाः।
तानागतानिन्दुल एव पञ्च जघान बाणैस्तु तदा समन्युः ॥११४
उभौ च देवस्तु जघान तत्र भल्लेन सिद्धेन नृपात्मजौ च।
ज्येष्ठं सुतं गौतम एव हत्वा द्वौ यौ स कृष्णांश उपाजघान ॥११५
शङ्खान्प्रदध्मूरुचिराननास्ते प्रदोषकाले शिबिराणि जग्मुः।
श्रमान्वितास्ते सुषुपुर्निशायां प्रातः समुत्थाय स्वकर्म कृत्वा ॥११६
गत्वा सभायां नृपतिं प्रणम्य वाक्यं समूचुः शृणु चन्द्रवंशिन्।
अद्यैव सेनापतिरस्ति को वै चाज्ञापयास्मान्नृप तस्य गुप्त्यै ॥११७
श्रुत्वाह भूपोऽद्य तु वीरसेनः सकामसेनः स्वबलैः समेतः।
रणं करिष्यत्यचिरेण वीरास्तस्मात्सुरक्षध्वमरिभ्य एव ॥११८

के शिर एवं दोनों पार्श्वभाग में आघात किया। उस समय दण्ड से आहत काल साँप की भाँति अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस बलवान् ने अपने घोड़े को आकाश में उड़ाकर उनके रथ के ऊपर पहुँचते ही अपने घोड़े के चरणपात द्वारा उन्हें विरथ कर दिया। अनन्तर उस राजा ने अपनी तलवार द्वारा उस बेंदुल घोड़े के ऊपर अंगों में प्रहार करके उदयसिंह से कहा—तुमने अनेक बड़े-बड़े राजाओं पर विजय अवश्य प्राप्त की है, किन्तु तुम्हारी इस चञ्चल माया का नाश करके ही मैं सुखी हो सकूँगा और मेरी कीर्ति भी तभी दिग्दिगन्तों में विस्तृत हो सकेगी। ऐसा कहते हुए उस राजा के मस्तक को उदयसिंह ने अपनी तलवार से छिन्न-भिन्न कर दिया। अंगाधीश्वर के निधन होने पर उनके दश-पुत्रों ने उन्हें घेरकर आघात करना चाहा, पर बीच में इन्दुल ने अपने बाणों द्वारा उनके पाँच पुत्रों को धराशायी कर दिया। दो पुत्रों को देवसिंह ने अपने भाले द्वारा हनन किया और बड़े पुत्र को जगनायक एवं शेष दो पुत्रों को स्वयं उदयसिंह ने स्वर्गीय बनाया। पश्चात् उस प्रदोष के समय शंखों की रुचिरध्वनि करते हुए उन लोगों ने अपने शिविरों को प्रस्थान किया। श्रान्त होने के नाते रात में सुखनींद शयन करने के उपरांत प्रातः काल अपने नित्य-कर्म करके राजा के पास सभा में पहुँचकर उन लोगों ने कहा—चन्द्रवंशिन्! आज सेनापति कौन बनाया जायगा। यह हमें बताने की कृपा करें।९६-११७। उसे सुनकर राजा ने कहा—कामसेन समेत अपने सैनिकों को साथ लेकर वीरसेन आज रणस्थल में पहुँचेंगे। इसलिए तुम लोग उनकी रक्षा करने में

स वीरसेनो नृपतिं प्रणम्य लक्षैः स्वसैन्यैर्युधि सञ्जगाम ।
तदा महीराजनृपः प्रतापी स नागवर्माणमुवाच तापी ।।११९
रणाय गच्छाशु सुतैः समेतो लक्षैः स्वसैन्यैरुत भूपवर्य ।
हत्वा रिपुं घोरतमं हि वीरं पतिं महान्तं युधि वीरसेनम् ।।१२०
इत्युक्तवन्तं नृपतिं प्रणम्य मुवादयामास तदा हि वीरः ।
तयोर्बभूवाशु रणो महान्वै सुसेनयोः सङ्कुलयुद्धकर्त्रोः ।।१२१
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे विमानमारुह्य ययुश्च नाकम् ।
हतेषु सर्वेषु च नागवर्मा सुतेषु वै यादवभूपमाह ।।१२२
भवान्विसैन्यश्च तथैव चाहं भवान्सपुत्रश्च तथाहमेव ।
संस्मृत्य धर्मं कुरु युद्धमाशु ततो रथस्थः सुधनुर्गृहीत्वा ।।१२३
बाणैश्च बाणान्भुवि तौ च छित्त्वा बभूवस्तुस्तौ विरथौ नृपाग्र्यौ ।
खड्गेन खड्गं च तथैव छित्त्वा विमानमारुह्य गतौ हि नाकम् ।।१२४
स कामसेनः स्वरिपोश्च पुत्राञ्जघान बाणैश्च तदाष्टसङ्ख्यान् ।
ज्येष्ठौ तदा कोपसमन्वितौ तं गृहीतखड्गौ च समीयतुश्च ।।१२५
रिपोः शिरो जह्रतुरुग्रवेगौ सकामसेनश्च कबन्ध एव ।
हत्वा रिपू तौ च तदा मिलित्वा स्वर्गं ययुस्ते च विमानरूढाः ।।१२६
हतेषु सर्वेषु तदा त्रयस्ते चामुण्डकाद्या जगनायकं ते ।
रुद्ध्वः समेताः स्वशरैः कठोरैर्जघ्नुस्तमश्वं हरिनागरं च ।।१२७

सावधान रहना । जिस समय वीरसेन ने राजा परिमल के नमस्कार पूर्वक अपने सैनिकों समेत उस रणस्थल में प्रस्थान किया, उस प्रतापी राजा पृथ्वीराज ने नागवर्मा को बुलाकर कहा—नृपश्रेष्ठ ! अपने पुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत आप उस रणभूमि में शीघ्र पहुँचकर अत्यन्त घोर शत्रु उस वीरसेन को पराजित कर विजय प्राप्त कीजिये । इसे सुनकर उस राजा ने उन्हें प्रणामपूर्वक रणभूमि की तैयारी किया । वहाँ पहुँच दोनों सैनिकों का घोर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें तीन पहर के भीतर सभी सैनिक धराशायी होने के नाते सुन्दर विमान द्वारा स्वर्ग पहुँच गये । सभी सैनिकों के निधन हो जाने पर नागवर्मा ने यादववंशी वीरसेन से कहा—आपके समान मैं भी विरथ होकर इस रणभूमि में पुत्रों समेत उपस्थित हूँ, अतः समानता के नाते धर्म के स्मरण पूर्वक युद्ध करने की कृपा कीजिये । इसके पश्चात् दोनों वीरों ने धनुष-बाण लेकर एक दूसरे के ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया । धनुष बाण को छिन्न-भिन्न करने के उपरांत खड्ग युद्ध द्वारा उन दोनो राजाओं ने एक दूसरे को धराशायी करते हुए सुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्ग की यात्रा की ।११८-१२६। पश्चात् कामसेन ने शत्रु के उन आठ पुत्रों का अपने वाणों द्वारा निधन किया। तदनन्तर उन पुत्रों के बड़े एवं मध्यम भाइयों ने वहाँ पहुँचकर अपने खड्ग द्वारा कामसेन के शिर को उनके शरीर से पृथक् कर दिया । शिर के भूमि में गिर जाने पर कामसेन के कबंध ने उन दोनों अपने शत्रुओं का हनन किया । इस प्रकार वे सब आपस में मिलकर सुन्दर विमान पर सुखासीन होते हुए स्वर्ग चले गये । उन सभी लोगों के निधन हो जाने पर चामुण्ड (चौढ़ा) आदि उन तीनों वीरों ने जगनायक को चारों ओर से घेर अपने कठोर वाणों द्वारा उन्हें तथा उनके घोड़े हरिनागर को पीड़ित करना आरम्भ किया ।

स दिव्यवाजी च तदा स्वपक्षौ प्रसार्य्य खेनाशुरिपुं जगाम।
स धुन्धुकारस्य गजं विहत्य चामुण्डकस्यैव गजं विमर्द्य ॥१२८
रथं च भूमौ भगदत्तकस्य विचूर्ण्य शीघ्रं च नभो जगाम।
प्रवाद्य शङ्खं जगनायकश्च कृष्णांशमागम्य कथां चकार ॥१२९
निशामुषित्वा जगनायकाद्याः प्रातः समुत्थाय रणं प्रजग्मुः।
तदा महीराज उताशुकारी स किन्नरेशं कणकं सपुत्रम् ॥१३०
उवाच राजञ्छृणु किन्नराणां महाबलास्ते रिपवो ममैते।
विनाशयाशु प्रबलारिघातान्देवैर्न सार्द्धं युधि वै मनुष्याः[1] ॥१३१
इत्युक्तवान्मङ्कणभूपतिस्तु ययौ सपुत्रोऽयुतसैन्यपश्च।
तमागतं तत्र विलोक्य राजा वीरान्स्वकीयांश्च समादिदेश ॥१३२
मनोरथस्थो जगनायकश्च स तालनो वै वडवां विगृह्य।
करालसंस्थश्च तदा जयन्तो विगृह्य चापं तरसा जगाम ॥१३३
पपीहकस्थश्च स रूपणो वै जगाम कृष्णांशसमन्वितश्च।
स लल्लसिंहो गजमत्तसंस्थः स धान्यपालो हयमारुरोह ॥१३४
समन्ततः किन्नरसैन्यघोरं विनाशयामासुरुपांशुखड्गैः।
विनश्यमाने त्रिसहस्रसैन्ये स किन्नरेशस्तरसा जगाम ॥१३५
ध्यात्वा कुबेरं च गृहीतचापो नभोगतस्तत्र बभूव सूक्ष्मः ॥१३६

तदुपरांत उस दिव्य अश्व ने अपने पंख फैलाकर ऊपर नभ में जाकर पुनः लौटकर धुंधुकार (धांधू) और चामुण्ड (चौंढ़ा) के गज का मर्दन करते हुए भगदत्त के रथ को चकनाचूर कर दिया और स्वयं आकाश में उड़ गया। उस समय जगनायक ने अपने विजय शंख की ध्वनि करते हुए उदयसिंह के पास आकर उनसे समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया। रात्रि के व्यतीत हो जाने पर प्रातः काल नित्यकर्म करने के उपरांत जगनायक आदि वीरों ने रणस्थल में प्रस्थान किया। उस समय पृथ्वीराज ने किन्नरेश मंकण को बुलाकर कहा—राजन्! मेरे उन प्रबल शत्रुओं के विनाशार्थ आप रणक्षेत्र में पहुँचने की शीघ्रता करें। आज देवताओं के साथ मनुष्यों का युद्ध होगा यद्यपि ऐसा कभी हुआ नहीं है। उनके इतना कहने पर अपने पुत्रों एवं किन्नर सैनिकों समेत राजा मंकण युद्धस्थल में पहुँच गये। वहाँ उन्हें आये हुए देखकर राजा परिमल ने अपने वीरों को आदेश दिया। मनोरथ पर बैठकर जगनायक, सिंहनी घोड़ी पर तालन, कराल अश्व पर जयन्त (इन्दुल) जो धनुष लेकर शीघ्रता से गमन कर रहे थे, पपीहा पर रूपन, उदयसिंह, हाँथी पर लल्लसिंह और घोड़े पर बैठे हुए धान्यपाल रणोन्मुख होकर अपने सैनिकों समेत धावा बोलते हुए जा रहे थे। इन लोगों ने वहाँ पहुँचकर उन किन्नर सैनिकों को चारों ओर से घेरकर उन्हें आहत करना आरम्भ किया। अपने तीन सहस्र सैनिकों के विनष्ट हो जाने पर किन्नरेश मंकण ने आकाश में अन्तर्हित होकर कुबेर के ध्यानपूर्वक अपने कठोर वाणों द्वारा शत्रु सैनिकों को मर्माहत

---

१. समर्था इति शेषः।

अदृश्यमानः स्वशरैः कठोरैर्विनद्य सर्वान्हि ननर्द घोरम् ।
विलप्यमाने च समस्तशूरे जयन्त एवाशु जगाम शत्रुम् ।।१३७
ध्यात्वा महेन्द्रं कणकं च बद्ध्वा कृष्णांशमागम्य पदौ ननाम ।
तदा तु ते शत्रुसहस्रसैन्ये निशम्य बद्धं कणकं निजेन्द्रम् ।।१३८
विनर्द्य घोरं रुरुधुश्च सर्वान्मायाविनो गुह्यकमस्त्रमूहुः ।
दिनेषु सप्तेषु[1] तथा निशासु बभूव युद्धं च समन्ततस्तैः ।।१३९
श्रमान्विताः सप्त महाप्रवीरा हतेषु सर्वेषु सुषुपुश्च वै यदा[2]।
तदा कुबेरं कणकश्च ध्यात्वा लब्ध्वा वरं बन्धनमाशु छित्त्वा ।।१४०
सुप्तान्समुत्थाय च सप्त शूरान्निशीथकाले स चकार युद्धम् ।
जित्वा च तान्षट् स वरप्रभावात्तदेन्दुलेनैव रणं चकार ।।१४१
गृहीतखड्गौ रणघोरमत्तौ हत्वा ततो वै भुवि चेरतुश्च ।
प्रजग्मतुर्नाकमुपान्तदेवौ संस्तूयमानौ सुरसत्तमैश्च ।।१४२
ततः प्रभाते विमले विजाते रुरोद रामांश उताललाप ।
पादैः कलापैः परिपीड्यमानः कुलान्वितः सर्वयुतो मुनीन्द्र ।।१४३
स पञ्चशब्दं गजमारुरोह त्रिलक्षसैन्यैस्तरसा जगाम ।
तदा महीराज उताह शृण्वनाच्छध्वमद्यैव मया समेताः ।।१४४

करना आरम्भ किया उसकी घोर गर्जना एवं कठोर प्रहार से त्रस्त होकर वे सब विलाप करने लगे। उसी समय शूरप्रवर इंदुल वहाँ शत्रु के सम्मुख पहुँच गया।१२७-१३६। उसने महेन्द्र के ध्यानपूर्वक मंकण को बाँध लिया और उदयसिंह के पास पहुँचकर उनकी चरणवन्दना की। उस समय उन किन्नर सैनिकों ने अपने स्वामी मंकण को बँधा हुआ जानकर अपने गुह्यक अस्त्रों का प्रयोग किया, जिससे सात दिन तक लगातार रात-दिन युद्ध होता रहा। उस युद्ध में सैनिकों के निधन होने के उपरांत श्रान्त होकर उन सातों वीरों के शयन करने पर मंकण ने कुबेर का ध्यान करके उनके द्वारा वरदान की प्राप्तिपूर्वक अपने बंधनों को काट दिया। और उसी आधीरात के समय उन शयन किये हुए वीरों को जगाकर उनसे युद्ध करना आरम्भ किया। उन प्रभावशाली छे वीरो को पराजित करने के उपरांत मंकण ने इन्दुल के साथ खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया। मदोन्मत्त होकर उन दोनों ने एक दूसरे के ऊपर अचूक खड्ग प्रहार किया, जिससे निधन होने पर वे दोनों श्रेष्ठ देवों से स्तुत होते हुए स्वर्ग चले गये। मुनीन्द्र ! प्रातः काल के समय इन्दुल के मृत्यु समाचार मिलने पर सपरिवार आल्हा ने रुदन किया पश्चात् तीन लाख सैनिकों समेत अपने पंचशब्द नामक गजराज पर बैठकर रण की ओर वेग से प्रस्थान किया। उधर पृथ्वीराज ने भी अपने शूर-सामन्तों को 'मेरे साथ रण में चलने की तैयारी करो' यह आदेश देकर अपने पाँच लाख शूरवीरों

---

१. अदन्तत्वमार्षम्। २. छन्दोवैषम्यमार्षम्।

स्वपञ्चलक्षैः प्रबलैश्च शूरैः सार्द्धं रुरोधाशु रिपोश्च सेनाम् ।
तयोर्बभूवाशु रणः प्रघोरो विनर्दतोर्युद्धनिमित्तनाशु ॥१४५
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे द्वयोश्च पक्षा बलशालिनश्च ।
तदा महीराज उताययौ वै समण्डलीकश्च धनुर्विगृह्य ॥१४६
स धुन्धुकारश्च तदा जगाम रथस्थितं लक्षणमुग्रवीरम् ।
तदोदयो वै भगदत्तमेव चामुण्डकं भीष्मकराजसूनुः ॥१४७
स पञ्चशब्दं गजमास्थितो दै गतः स एवाशु जगाम भूपम् ।
धनुर्विगृह्याशुगमुल्बणं च नृपस्थितश्चाथ भयङ्करं च ॥१४८
गजं प्रमत्तं शिवदत्तमुग्रमाह्लादहन्तारमुवाच वाक्यम् ।
अये प्रमत्ताग्रगजेन्द्रशूर जयं च मे देहि शिवप्रदत्त ॥१४९
स मण्डलीको रणदुर्मदश्च रामांश आह्लाद इति प्रसिद्धः ।
तस्माच्च मां रक्ष जवेन हस्तिन्महाबल।त्काल रसात्त्व वीरात् ॥१५०
इत्येवमुक्तो नृपति स हस्ती वचस्तमाहाशु शृणुष्व राजन् ।
यावदहं वै तनु जीवधारो तावद्भवाञ्छत्रुभयङ्करश्च ॥१५१
इत्युक्तवन्तं च गजं प्रमत्तं स पञ्चशब्दश्च तदा स्वदन्तैः ।
मुखं चतुर्भिश्च विदार्य शत्रोर्ननर्द घोरं स महेन्द्रदत्तः ॥१५२
स रुद्रदत्तश्च गजः प्रमत्तो रुषान्वधावत्तरसा गजेन्द्रम् ।
रिपुं स्वपद्भ्यां च चखान कुम्भैः स्वतुण्डदण्डेन तुदं[1] प्रकुर्वन् ॥१५३

समेत वहाँ पहुँचकर शत्रु की सेना को चारों ओर से घेर लिया । वे दोनों सैनिक उस रणस्थल में सिंहनाद की गर्जना करके आपस में युद्ध कर रहे थे जिसमें तीन प्रहर के भीतर उस युद्ध में दोनों ओर के शूर वीरगण आहत हो गये । उस समय पृथ्वीराज और मण्डलीक आह्लाद (आल्हा) का अपने-अपने धनुष बाण समेत उस युद्धभूमि में आगमन हुआ । उस युद्ध में उग्रवीर राजा लक्षण (लाखन) से धुंधुकार (धांधू) का, उदयसिंह से भगदत्त का और देवसिंह से चामुण्ड (चौंढ़ा) का युद्धारम्भ हुआ । पञ्चशब्द नामक गजराज पर बैठकर भयंकर नामक गजपर बैठकर पृथ्वीराज ने उसी बीच शिवप्रदत्त उस मत्त गजेन्द्र से कहा—शिवप्रदत्त मत्तगजेन्द्र ! रणविजय मेरी ही हो और रण दुर्मदान्ध एवं मण्डलीक नामक उस प्रख्यात आह्लाद (आल्हा) शत्रु से मेरी रक्षा करो । हस्तिन् ! वह महाबली मेरा कालरूप है । इस प्रकार उनके कहने पर उस हाथी ने उनसे कहा—राजन् ! मेरी एक बात अवश्य स्वीकार करो—जब तक मैं इस शरीर को धारण किये रहूँगा, तब तक आप शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष रहेंगे । इस प्रकार कहने वाले उस शत्रु के हाथी के मुख को महेन्द्रप्रदत्त उस पंचशब्द नामक गजराज ने अपने चारों दाँतों द्वारा विदीर्ण कर दिया । पश्चात् मदोन्मत्त उस रुद्रप्रदत्त गजराज ने वेग से दौड़कर अपने शत्रु गजेन्द्र के ऊपर अपने सुण्ड-दण्ड से प्रहार करते हुए कुम्भस्थल एवं चरणों में पीड़ितकर उसे मूर्च्छित कर

---

१. घवञर्थे कः ।

अवाप मूर्च्छां च स पञ्चशब्दस्तदाशु भूपं प्रति मण्डलीकः।
स्वतोमरेणाङ्गव्रणं प्रदाय खड्गेन हत्वा गजराजमुग्रम् ॥
जगामपद्भ्यां स रिपुप्रमाथी यत्र स्थितश्चेन्दुल उग्रधन्वा ॥१५४
उत्थाप्य पुत्रं च विलप्यमानः पत्नीं स्वकीयां प्रति चाजगाम।
तदा प्रमत्तौ च गजौ सुमूर्च्छां त्यक्त्वा पुनश्चक्रतुरेव युद्धम् ॥१५५
स लक्षणः खड्गवरेण बाणान्रिपोश्च छित्त्वा निजवैष्णवास्त्रम्।
दधार चापे च सुमन्त्रयित्वा सधुन्धुकारं च गजं ददाह ॥१५६
हते च तस्मिन्निजमुख्यबन्धौ सभूमिराजश्च गृहीतचापः।
शरेण रौद्रेण च लक्षणं तं जघान तत्रादिभयङ्करस्थः ॥१५७
स मूर्छितः शुक्लकुलेषु सूर्यस्तदोदयो वै भगदत्तमेव।
सुमूर्च्छयित्वा च जगाम शीघ्रं यत्र स्थितो लक्षण एकवीरः १५८
भयान्वितस्तं च विलोक्य राजा जवेन दुद्राव च रक्तबीजम्।
तदा सुदेवं च स रक्तबीजो जित्वा तु कृष्णांशयुतं जगाम ॥१५९
बाणेन शीघ्रं स च मूर्च्छयित्वा पुनश्च देवं च स मूर्च्छयित्वा।
तद्बन्धनायोद्यत आशुकारी स लक्षणस्तत्र तदा जगाम ॥१६०
प्रधाय चापे च स वैष्णवास्त्रं प्रचोदयामास च रक्तबीजे।
तदा स सामन्तसुतो बलीयान्रणं विहायाशु विलोक्य सन्ध्याम् ॥
भयान्वितः स्वैश्च युतो ययौ वै यत्र स्थिता भूपतयः सकोपाः ।१६१

दिया। पंचशब्द नामक अपने गजेन्द्र के मूर्च्छित हो जाने पर आह्लाद (आल्हा) ने अपने तोमर अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज के शरीर में महान् व्रण (घाव) करने के अनन्तर उनके गजराज पर खड्ग का आघात किया। पश्चात् शत्रुहन्ता आल्हा पैदल ही वहाँ चले गये, जहाँ रणस्थल में इन्दुल नामक उनका उग्र धनुर्धर पुत्र पड़ा हुआ था।१३७-१५४। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसे उठाकर विलाप किया। तदन्तर उसे लेकर वे अपनी रोती कलपती स्त्री के पास पहुँचे। इधर उन मतवाले गजराजों ने चेतना प्राप्त होने पर पुनः युद्ध करना आरम्भ किया। उस समय वीर लक्षण (लाखन) उत्तम खड्ग द्वारा शत्रु के वाणों को काटकर पुनः धनुष पर वैष्णवास्त्र बाण के समंत्रक प्रयोग द्वारा धुंधुकार (धांधू) समेत उसके गज को भी दग्ध कर दिया। अपने निजी एवं मुख्य बंधु के निधन हो जाने पर पृथ्वीराज ने अपने आदि भयंकर नामक गज पर बैठकर अपने रौद्र बाण द्वारा लक्षण (लाखन) पर प्रहार किया। उस चन्द्रवंशी सूर्य के मूर्च्छित हो जाने पर उदयसिंह ने भगदत्त को मूर्च्छित कर अकेले पड़े हुए लक्षण (लाखन) के पास शीघ्र पहुँचने का प्रयत्न किया। राज पृथ्वीराज उन्हें वहाँ आते हुए देखकर भयभीत होकर तेजी से भागते हुए रक्तबीज के पास चले गये। उस समय रक्तबीज ने देवसिंह को पराजित कर उदयसिंह के पास पहुँचकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। और चेतना प्राप्तकर देवसिंह के वहाँ पहुँचने पर उन्हें भी। उसे देखकर रणकुशल लक्षण (लाखन) ने उसके बंधन में वहाँ पहुँचकर धनुष पर अपने वैष्णवास्त्र का अनुंसधान कर रक्तबीज को ललकारा। उस समय सामन्त पुत्र रक्तबीज (भयभीत होकर) संध्या समय देखते हुए रण से पलायन कर राजाओं के बीच में छिप गया। जो अत्यन्त क्रुद्ध होकर वहाँ स्थित थे। शत्रु को भागते हुए

विलोक्य शत्रुं च स रत्नभानोः सुतो ययौ वै शिबिराणि युक्तः ।
निशम्य भूपः स च चन्द्रवंशी जयं स्वकीयं सुषुपुस्तु ते वै ॥
प्रातश्च काले स च चन्द्रवंशी विलोक्य शुक्लान्वयमाह भूपम् ॥१६२

अये गुर्जरदेशीय मूलवर्मन्सुतैः सह ! लक्षसैन्यान्वितो भूत्वा गन्तुमर्हतु वै भवान् ॥१६३
इत्युक्तः स तु भूपालो युद्धभूमिमुपाययौ । महीराजाज्ञया प्राप्तो नाम्ना पूर्णमलो बली ॥१६४
दशपुत्रान्वितो युद्धे सैन्यलक्षेण संयुतः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं यामद्वयमुपस्थितम् ॥१६५
हतेषु तेषु सर्वेषु तौ नृपौ ससुतैर्बलौ । अन्योऽन्येन रणं कृत्वा यमलोकमुपागतौ ॥१६६
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते विमले रवौ । कैकयो लक्षसेनाढ्यो दशपुत्रसमन्वितः ॥
लक्षणानुज्ञया प्राप्तस्तस्मिन्युधि भयानके ॥१६७
मद्रकेशस्तदा राजा दशपुत्रसमन्वितः । लक्षसैन्यान्वितस्तत्र यत्र युद्धं समन्वभूत् ॥
परस्परं हताः सर्वे दिनान्ते क्षत्रियारणे ॥१६८
पुनः प्रभाते विमले भगदत्तो महाबली । त्रिलक्षबलसंयुक्तो जगर्ज रणमूर्द्धनि ॥१६९
दृष्ट्वा तं लक्षणो वीरस्त्रिलक्षबलसंयुतः । चकार तुमुलं घोरसेनया च स्वकीयया ॥१७०
अपराह्णे हताः सर्वे सैनिका नृपयोस्तदा । भगदत्तः स्वयं क्रुद्धो रथस्थो लक्षणं ययौ ॥१७१
लक्षणो रथमारुह्य स्वपितुः शत्रुजं नृपम् । त्रिभिर्वाणैश्च सन्तोद्य भल्लेन समताडयत् ॥१७२

देखकर रत्न भानु पुत्र लक्षण (लाखन) भी अपने शिविर में चले गये उस समय चन्द्रवंशी राजा परिमल ने अपनी विजय सुनकर हर्षित होते हुए उन लोगों के साथ शयन किया । प्रातःकाल नित्यकर्म समाप्ति के अनन्तर चन्द्रवंशी राजा परिमल ने चन्द्रवंशी एक राजा से कहा- अये गुजरात देश के अधीश्वर मूलवर्मन् ! अपने पुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत आप रणभूमि के लिए प्रस्थान कीजिये । इस प्रकार कहने पर उस राजा ने रणक्षेत्र के लिए शीघ्र प्रस्थान किया । इधर राजा पृथ्वीराज की आज्ञा पाकर बलवान् राजा पूर्णमल भी अपने दशपुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँच गये । दोपहर तक उन दोनों सैनिकों का घोर युद्ध हुआ, जिसमें उन दोनों के सैनिक धराशायी हो गये । सैनिकों के निधन हो जाने पर पुत्रों समेत उन दोनों नरेशों ने एक दूसरे के प्रहार द्वारा प्राण परित्याग कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया । मार्गशीर्ष (अगहन) मास में कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातः काल निर्मल सूर्य के उदय होने पर पुत्रों समेत एवं एक लाख सैनिकों को लेकर राजा कैकय रण में उपस्थित हो गये । उस समय राजा मद्रकेश ने भी दश पुत्रों और एक लाख की सेना लेकर युद्धार्थ वहाँ प्रस्थान किया । उस रणस्थल में दोनों सैनिकों तथा राजाओं का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । संध्या समय तक वे क्षत्रीगण एक दूसरे को आहतकर स्वर्गीय हो गये । उसके दूसरे दिन प्रातः काल के समय महाबली राजा भगदत्त अपनी तीन लाख सेना लेकर रणभूमि में पहुँचे । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) भी अपने तीन लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर घोर संग्राम करने लगे ।१५५-१७०। अपराह्ण समय तक दोनों राजाओं की सेना आपस में लड़कर समाप्त हो गई। पश्चात् रथपर बैठे भगदत्त लक्षण (लाखन) के सम्मुख पहुँचे। लक्षण (लाखन) ने भी अपने पैतृक शत्रुपुत्र को देखकर तीनों वाणों एवं भाले का साथ ही प्रहार किया । उस

भगदत्तस्तदा क्रुद्धो विरथं तं चकार ह । क्रुद्धवन्तं रिपुं घोरं लक्षणः खड्गपाणिकः ।।
हत्वा हयांस्तथा सूतं भगदत्तमुपाययौ ।।१७३
मर्दयित्वा च तच्चर्म च्छित्त्वा वर्म तदुद्भवम् । त्रिधा चकार बलवान्भगदत्तं रिपोस्सुतम् ।।१७४
सन्ध्याकाले हते तस्मिल्लँक्षणस्त्वरयान्वितः। एकाकी शिबिरं प्राप्तो हस्तिन्युपरि संस्थितः ।।१७५
भगदत्ते हते तस्मिन्स राजा क्रोधमूर्छितः । स्वकीयान्सर्वभूपांश्च चामुण्डेन समन्वितान् ।।
प्रेषयामास युद्धाय मार्गे च प्रतिपद्दिने ।।१७६
अङ्गदश्च कलिङ्गश्च त्रिकोणः श्रीपतिस्तथा । श्रीतारश्च मुकुन्दश्च स्हिलो गुहिलस्तथा ।।१७७
सुकेतुर्नव भूपास्ते नवायुतबलैर्युताः । वाद्यानि वादयामासुस्तस्मिन्युद्धमहोत्सवे ।।१७८
दृष्ट्वा ताँल्लक्षणो वीरो राजभिश्च स्वकीयकैः । सार्द्धं जगाम युद्धाय तथा व्यूह्यायुधद्रिपून् ।।१७९
रुद्रवर्मा च नृपतिः शूरैर्दशसहस्रकैः । अङ्गदं वैरिणं मत्वा तेन सार्द्धमयुध्यत् ।।१८०
कालीवर्माऽयुतैस्सार्धं कलिङ्गं प्रत्ययुध्यत । वीरसिंहोऽयुतैस्सार्द्धं त्रिकोणं प्रत्ययुध्यत ।।१८१
ततोऽनुजः प्रवीरश्च श्रीपतिं सोऽयुतैस्सह । नृपः सूर्यो धरो वीरोऽयुताढ्यो बलवान्रणे ।
श्रीतारं नृपमासाद्य महद्युद्धमचीकरत् ।।१८२
वामनोऽयुतसंयुक्तो मुकुन्दं प्रति सोऽगमत् । गङ्गासिंहश्च बलवान्महिलं प्रति सायुतः ।।१८३
लल्लसिंहोऽयुतैस्सार्द्धं गुहिलं प्रति सोऽगमत् । त्रिशतानि ततो भूपाः सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् ।।१८४
क्षुद्रभूपाः क्षुद्रभूपांस्त्रिशतानि समाययुः । अन्योऽन्येन हताः सर्वे कृत्वा युद्धं भयानकम् ।।१८५

समय क्रुद्ध होकर भगदत्त ने उन्हें रथहीन कर दिया । उस क्रुद्ध एवं घोर शत्रु को देखकर लक्षण (लाखन) ने अपने खड्ग द्वारा उनके घोड़े और सारथी के निधन करने के उपरांत उन भगदत्त का सामना किया । उस बलवान् ने उसी खड्ग द्वारा शत्रुपुत्र भगदत्त के कवच और चर्म (ढाल) को छिन्न-भिन्न करते हुए उनकी शरीर में तीन खंड कर दिया । संध्या समय उस शत्रु के हनन हो जाने पर लक्षण (लाखन) हाथी पर बैठे हुए अपने शिविर में अकेले ही पहुँचे । भगदत्त के स्वर्गीय होने पर राजा पृथ्वीराज ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर चामुण्ड के साथ सभी राजाओं को रणस्थल में भेजा । मार्गशीर्ष के शुक्ल प्रतिपदा के दिन उस रणस्थल में उपस्थित राजवृन्दों का घोर युद्धारम्भ हुआ, जिसमें पृथ्वीराज की ओर से राजा अंगद कलिंग, त्रिकोण, श्रीपति, श्रीतार, मुंकुद, सहिल गुहिल, सुकेतु, और नब्बे सहस्र सैनिकों समेत वे नव राज गण वहाँ उपस्थित होकर उस युद्ध महोत्सव के उपलक्ष में अनेक भाँति के वाद्य बजवा रहे थे । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) ने भी अपने राजाओं समेत वहाँ रणभूमि में पहुँचकर व्यूह रचना द्वारा शत्रुओं को घेर लिया । उस युद्ध में राजा रुद्रवर्मा अपने दशसहस्र शूरवीरों समेत एवं शत्रु अंगद राजा के साथ युद्ध कर रहे थे । उसी प्रकार दशसहस्र सैनिकों समेत कालीवर्मा कलिंग के साथ, दशसहस्र सेना समेत वीरसिंह त्रिकोण के साथ, उतने ही सैनिक लेकर उनके छोटे भाई प्रवीर श्रीपति के साथ और वीर एवं बली राजा सूर्यधर दश सहस्र सेना लेकर राजा श्रीतार के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे । मुकुंद के साथ वामन, माहिल के साथ बलवान् गंगासिंह, और गुहिल के साथ लल्लसिंह अपने-अपने दश सहस्र सैनिकों समेत वहाँ युद्ध में मग्न थे । उनमें अन्य तीन सौ छोटे राजगण थे, जो वहाँ एक दूसरे से भयानक युद्ध करके सर्वप्रथम विनष्ट हो गये ।१७१-१८५। उन नृपों के निधन देखकर चामुण्ड (चौंढ़ा) ने लक्षण (लाखन) के

चामुण्डस्तु तदा दृष्ट्वा का मृतकान्सर्वभूपतीन् । लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥१८६
लक्षणो रक्तबीजं तं ज्ञात्वा ब्राह्मणसंमतम् । वैष्णवास्त्रं तदा तस्मै न ददौ तेन पीडितः ॥१८७
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते लक्षणो हस्तिनीस्थितः । एकाकी शिबिरं प्राप्तश्चामुण्डं नृपमाययौ ॥१८८
द्वितीयायां प्रभाते च कृष्णांशो देवसंयुतः । शूरैर्दशसहस्रैश्च युद्धभूमिमुपाययौ ॥१८९
तारकश्च स चामुण्डो द्विलक्षबलसंयुतः । द्विशतैश्च तथा भूपैः सार्द्धं युद्धमुपस्थितौ ॥१९०
पुरस्कृत्य नृपान्सर्वान्ससैन्यौ बलवत्तरौ । तेषामनुस्थितौ युद्धे तत्र जातो महारणः ॥१९१
यामममात्रेण तौ वीरौ हत्वा सर्वमहीपतीन् । लक्षसैन्यांस्तथा हत्वा संस्थितौ श्रमकर्षितौ ॥१९२
चामुण्डस्तारको धूर्तः सम्प्राप्तौ छिद्रदर्शिनौ । ताभ्यां श्रमान्विताभ्यां च चक्रतुस्तौ समं रणम् ॥१९३
तेषां त्रियाममात्रेण सम्बभूव महान्रणः । सायङ्काले तु सम्प्राप्ते कृष्णांशश्च निरायुधः ॥
तलप्रहारेण रिपुं मूर्च्छयामास वीर्यवान् ॥१९४
एतस्मिन्नन्तरे वीरस्तारको देवसिंहकम् । हयं मनोरथं हत्वाशङ्खशब्दमथाकरोत् ॥१९५
तच्छब्दात्स च चामुण्डस्त्यक्त्वा मूर्च्छां महाबलः । कृष्णांशस्य शिरः कायादपहृत्य च वेगवान् ॥
तयोर्गृहीत्वा शिरसी महीराजमुपाययौ ॥१९६
महीराजस्तु ते दृष्ट्वा परमानन्दनिर्भरः । दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥१९७
लक्षणस्य तदा सैन्ये हाहाशब्दो महानभूत् । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां ज्ञात्वा तौ च हतौ नृपः ॥

पास पहुँचकर उनसे महान् युद्ध किया । उसके द्वारा पीडित होने पर भी लक्षण (लाखन) ने उसे ब्राह्मण समझकर उसके ऊपर अपने वैष्णवास्त्र का प्रयोग नहीं किया । संध्या समय लक्षण (लाखन) हथिनी पर बैठे अकेले ही शिविर में पहुँचे और चामुण्ड (चौंढ़ा) राजा पृथ्वीराज के पास । द्वितीया के दिन प्रातःकाल देवसिंह समेत उदयसिंह दशसहस्र सेना लेकर उस रण में पहुँचे । उस तारक (ताहर) और चामुण्ड (चौंढ़ा) भी अपने दो लाख सैनिकों तथा दो सौ राजाओं को लेकर वहाँ पहुँच गये । अन्य राजाओं को आगे कर सेना समेत दोनों ओर के प्रधान वीरों ने उनके पीछे रहकर उस दिन भीषण संग्राम किया, जिसमें उदयसिंह और देवसिंह ने एक प्रहर के भीतर उन समस्त राजाओं के विनाश पूर्वक उनके एक लाख सैनिकों का भी निधन कर दिया, पश्चात् श्रान्त होने के नाते वे वहाँ विश्राम करने लगे । छिद्रान्वेषी एवं धूर्त तारक (ताहर) ने चामुण्ड (चौंढ़ा) को साथ लेकर उन श्रान्त (थके हुए) वीरों से युद्ध ठान दिया । तीन प्रहर तक दोनों दलों का घमासान युद्ध हुआ । संध्या होने पर उदयसिंह के पास कोई अस्त्र न रह गया, किन्तु उस अवस्था में भी उस पराक्रमशाली ने अपने हाथ के चपेट से शत्रु को मूर्च्छित कर दिया । उसी बीच तारक (ताहर) ने देवसिंह समेत उनके घोड़े मनोरथ के भी निधन करके अपनी शंख-ध्वनि किया । उसे सुनकर महाबली चामुण्ड (चौंढ़ा) की मूर्च्छा नष्ट हो गई । उसने अत्यन्त वेग से उदयसिंह का शिर उनकी शरीर से पृथक् कर दिया । पश्चात् उन दोनों वीरों के शिर लेकर वे दोनों पृथ्वीराज के पास पहुँच गये, जिसे देखकर उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हुई । अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों को यथेच्छ दान देकर महान् उत्सव कराया । उन दोनों वीरों के निधन को सुनकर लक्षण (लाखन) की

ब्रह्मानन्दस्तदा मूर्च्छां त्यक्त्वा वेलामुवाच ह ॥१९८

प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता । मम वेषं शुभं कृत्वा तारकं जहि मा चिरम् ॥१९९

इति श्रुत्वा तु सा वेला रामांशेन समन्विता । सहस्रशूरसहिता युद्धभूमिमुपाययौ ॥२००

श्रुत्वा स लक्षणो वीरस्तालनेन समन्वितः । सैन्यैश्च दशसाहस्रैर्महीराजमुपाययौ ॥२०१

तृतीयायां प्रभाते च तारको बलवत्तरः । ब्रह्मानन्दं च तं मत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥२०२

रक्तबीजश्च चामुण्डो रामांशो बलवत्तरः । चकार दारुणं युद्धं तस्मिन्घोरसमागमे ॥२०३

यामभात्रेण रामांशो हत्वा तस्य महागजम् । तच्छस्त्राणि तथा छित्त्वा मल्लयुद्धमचीकरत् ॥२०४

त्रियाममात्रेण तदा सायङ्काले समागते । ममन्थ भ्रातृहन्तारं स च वीरो ममार ह ॥२०५

तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम् । छित्त्वास्त्राणि स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत् ॥२०६

चितां कृत्वा विधानेन सा देवी द्रुपदात्मजा । ब्रह्मानन्दं नमस्कृत्य तच्चितायां समारुहत् ॥२०७

तेन सार्द्धं च सा शुद्धा श्वशुरस्याज्ञया मुदा । सप्तजन्मकथां कृत्वा स्वपतेस्तु ददाह वै ॥२०८

तच्चितायां च भर्तारमिन्दुलं बलवत्तरम् । संस्थाप्य दाहयामास तेन सार्द्धं कलेवरम् ॥२०९

रात्रौ परिमलो राजा लक्षणेन समन्वितः । महीराजमुपागम्य महद्युद्धमकारयत् ॥२१०

सपादलक्षाश्च तदा हतशेषा महाबलाः । त्रिलक्षैर्हतशेषैश्च सार्द्धं योद्धुमुपस्थिताः ॥२११

धान्यपालः शतं भूपाँल्लक्षणश्च तथा शतम् । तालनश्च शतं भूपान्हत्वा राजानमाययौ ॥२१२

महीराजस्तदा दुःखी ध्यात्वा रुद्रं महेश्वरम् । निशीथे समनुप्राप्ते हतशेषैस्समागतः ॥

सेना में हाहाकार मच गया । उस कोलाहल को सुनकर ब्रह्मानन्द की मूर्च्छा नष्ट हो गई । उन्होंने वेला से कहा—प्रिये ! हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर तुम शीघ्र रण में पहुँचो । मेरा ही वेष धारणकर तुम तारक (ताहर) का शीघ्र हनन करो विलम्ब मत करो । इसे सुनकर आह्लाद के साथ वेला सहस्र वीरों समेत रणस्थल में पहुँच गई । उसे सुनकर वीर लक्षण (लाखन) भी तालन एवं दश सहस्र सैनिकों समेत पृथ्वीराज के पास पहुँच गये । तृतीया के दिन प्रातः काल बलवान् तारक (ताहर) ने उस (वेला) को ब्रह्मानन्द मानकर उसके साथ घोर युद्ध किया । रक्तबीज चामुण्ड (चौंढ़ा) का भी रामांश आल्हा के साथ भीषण युद्ध हुआ । एक प्रहर के भीतर आल्हा ने उसके गज को मार उनके समस्त अस्त्रों को नष्टकर दिया पश्चात् दोनों का मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ । तीन प्रहर तक उस युद्ध के होने पर संध्या समय वीर आल्हा ने अपने भ्रातृहन्ता चौंढ़ा का मंथन करते हुए निधन किया ।१८६-२०५। उस समय वेला ने भी महाबलवान् उस तारक (ताहर) शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करने के उपरांत अपने खड्ग द्वारा उनके शिर को धड़ से पृथक् कर दिया । पश्चात् उस द्रुपदात्मजा देवी ने अपने श्वसुर की आज्ञा प्राप्तकर सविधान चिता लगाकर ब्रह्मानन्द के नमस्कार पूर्वक उनके साथ चिता पर बैठ गई, और पतिसमेत अपने सात जन्म की कथा कहकर पति के साथ भस्म हो गई । उसी चिता में इन्दुल की स्त्री ने भी अपने पति के शव को देखकर उनके साथ अपने कलेवर को भस्म कर दिया । उसी रात्रि के समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा परिमल ने लक्षण (लाखन) समेत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे घोर युद्ध किया । उस समय उनके पास सवालाख सैनिक शेष थे और परिमल राजा की ओर तीन लाख धान्यपाल लक्षण (लाखन) और तालन ने सौ-सौ राजाओं के निधन करके पृथ्वीराज ने पास प्रस्थान किया । उसी समय राजा पृथ्वीराज दुःखी होकर

एकाकी गजमारुह्य ययौ चादिभयङ्करम् ॥२१३
रुद्रदत्तेन बाणेन हत्वा परिमलं नृपम् । धान्यपालं तथा हत्वा तालनं बलवत्तरम् ॥
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धमचीकरत् ॥२१४
महीराजस्य रौद्रास्त्रैस्सैन्यास्सर्वे क्षयं गताः । लक्षणं प्रति रौद्रास्त्रं महीराजः समादधे ॥२१५
तदा तु लक्षणो वीरो वैष्णवास्त्रं समादधे । तेनास्त्रेण क्षयं जातो महीराजस्य सायकः ॥
तेनास्त्रतेजसा राजा महासन्तापमाप्तवान् ॥२१६
ध्यात्वा रुद्रं महादेवं त्यक्त्वा विद्यां च वैष्णवीम् । स्वभल्लेन शिरः कायादपाहरत भूमिपः ॥२१७
हस्तिनी च तदा रुष्टा गजमादिभयङ्करम् । गत्वा युद्धं मुहूर्तेन कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥२१८
उषःकाले च सम्प्राप्ते मलना पतिमुत्तमम् । तच्चितायां समारोप्य ददाह स्वं कलेवरम् ॥२१९
तदा तु देवकी शुद्धं लक्षणं बलवत्तरम् । तालनादींस्तथा हुत्वा ददाह स्वं कलेवरम् ॥२२०
प्रभाते विमले जाते चतुर्थे भौमवासरे । तथा हुत्वा स्वर्णवतीं कृत्वा तेषां तिलाञ्जलिम् ॥
ध्यात्वा सर्वमयीं देवीं स्थिरीभूय स्वयं स्थितः ॥२२१
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कलिर्भार्यासमन्वितः । वाञ्छितं फलमागम्य तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥२२२

कलिरुवाच

नम आह्लाद महते सर्वानन्दप्रदायिने । योगेश्वराय शुद्धाय महावतीनिवासिने ॥२२३
रामांशस्त्वं महाबाहो मम पालनतत्परः । कलैकया समागम्य भुवो भारस्त्वयाहृतः ॥२२४

उस आधीरात के समय महेश्वर भगवान् शंकर के ध्यानपूर्वक शेष सैनिकों के साथ अकेले हाँथी पर बैठकर युद्ध करने लगे । उन्होंने रुद्रप्रदत्त बाण द्वारा परिमल धान्यपाल एवं तालन के निधन करने के उपरांत लक्षण (लाखन) के समीप प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने घोर युद्ध किया, जिससे उनके रौद्रास्त्र द्वारा सभी राजवृन्द नष्ट हो गये । पश्चात् पृथ्वीराज ने लक्षण (लाखन) पर प्रहार करने के लिए रौद्रसर का अनुसंधान किया और लक्षण (लाखन) ने अपने वैष्णवास्त्र का । उन अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज का वह अस्त्र नष्ट हो गया । तथा उसके तेज से राजा अत्यन्त सन्तप्त हुए । तदुपरांत पृथ्वीराज ने महादेव रुद्र के ध्यानपूर्वक अपने भल्लास्त्र द्वारा उनके शिर धड़ से पृथक् कर दिया । उस समय लाखन की हथिनी क्रुद्ध होकर गज आदि भयंकर को एक मुहूर्त में पराजित करती हुई स्वयं स्वर्ग चली गई । तदनन्तर उषा काल में रानी मलना ने अपने पति के साथ चिता पर अपनी शरीर भस्म कर दिया । उसी समय देवकी ने भी शुद्ध एवं लक्षण (लाखन) तथा तालन आदि के कलेवर को उसी चिता में डालकर स्वयं अपनी शरीर को भस्म कर दिया । चौथे दिन मंगलवार में प्रातः काल आल्हा मृतक अपनी पत्नी स्वर्णवती (सोना) के शव को उसी चिता में डालकर तथा उन लोगों के लिए तिलाञ्जलि देने के उपरांत सर्वमयी देवी के ध्यानपूर्वक उसी स्थान स्थिर होकर बैठ गये । उसी बीच अपनी भार्या समेत कलि ने वहाँ आकर अपने मनोरथ के सिद्ध्यर्थ नम्रवाणी द्वारा उनकी स्तुति करना आरम्भ किया ।२०६-२२२

कलि ने कहा—सम्पूर्ण आनन्द को देने वाले एवं महान् उस आह्लाद (आल्हा) को नमस्कार है, जो योगेश्वर तथा विशुद्ध होकर महावती (महोवा) में निवास कर रहा है । महाबाहो ! आप राम के

राजानः पावकीयाश्च तपोबलसमन्विताः । हत्वा तान्पञ्चसाहस्रान्क्षुद्रभूपाननेकशः ॥
योगमध्ये समासीनो नमस्तस्मै महात्मने ॥२२५
तेषां सैन्याः षष्टिलक्षाः क्रमाद्वीर त्वया हताः । वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥२२६
इति श्रुत्वा स आह्लादो वचनं प्राह निर्भयः । मम कीर्तिस्त्वया देव कर्तव्या च जने जने ॥२२७
पुनस्ते कार्यमतुलं करिष्यामि शृणुष्व भोः । महीराजश्च धर्मात्मा शिवभक्तिपरायणः ॥
तस्य नेत्रे मया शुद्धे कर्तव्ये नीलरूपके ॥२२८
तव प्रियः सदा नीलस्तथैव च मम प्रियः । देवानां दुःखदो देव दैत्यानां हर्षवर्द्धनः ॥२२९
इत्युक्त्वा स तु रामांशो गजमारुह्य वेगतः । महीराजमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥२३०
रुद्रदत्तो गजस्तूर्णं पञ्चशब्दमुपस्थितः । पद्मदन्तान्समारुह्य युयुधाते परस्परम् ॥२३१
अन्योऽन्येन तथा हत्वा गजौ स्वर्गमुपेयतुः ॥२३२
तदा भयातुरो राजा त्यक्त्वा युद्धं भयङ्करम् । स तु दुद्राव वेगेन रामांशोऽनुययौ ततः ॥२३३
केशेषु च महीराजं गृहीत्वा तरसा बली । कलिदत्तं महानीलं नेत्रयोस्तेन तत्कृतम् ॥२३४
तदाप्रभृति वै शम्भुरशुद्धं नृपतिं प्रियम् । मत्वा त्यक्त्वा ययौ स्थाने कैलासे गुह्यकालये ॥२३५
आह्लादः कलिना सार्द्धं कदलीवनमुत्तमम् । गत्वा योगं चकाराशु पर्वते गन्धमादने ॥२३६

अंश से अवतरित और मेरे पालन करने में कटिबद्ध हैं। तपोबल प्रधान उन पाँच सहस्र अग्निवंशीय तथा अनेक क्षुद्र राजाओं के हनन द्वारा आपने इस भूतल के भार का अपहरण किया है और अनन्तर आसानासीन होकर योगध्यान में तन्मय हो रहें हैं, अतः आप ऐसे महानुभाव को सादर नमस्कार कर रहा हूँ। महाभाग ! आपने अपनी अद्भुत वीरता प्रकट कर उनकी साठ लाख सेना का भी विध्वंस किया है, इसलिए मनइच्छित वर की याचना कीजिये। इसे सुनकर आह्लाद ने निर्भय होकर कहा—देव ! आप मेरी कीर्ति प्रत्येक व्यक्तियों में ख्यात करने की कृपा करें। आपके समस्त कार्यों को मैं पुनः सुसम्पन्न करने की चेष्ट करूँगा। मेरी और एक बात सुनने की कृपा कीजिये। देव ! राजा पृथ्वीराज धर्मात्मा एवं शिव शक्ति का उपासक है, इसलिए उसके दोनों नेत्र शुद्ध नीलवर्णका बना देना चाहता हूँ, क्योंकि वह आपको प्रिय है और मुझे जो देवों को दुःख तथा दैत्यों की हर्ष-वृद्धि करता है। इतना कहकर रामांश आह्लाद ने अपने गजेन्द्र पर बैठकर पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए अत्यन्त वेग से प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर पृथ्वीराज से संग्राम आरम्भ किया उसी समय रुद्रप्रदत्त गज ने पंचशब्द गजेन्द्र के पद्म दाँतों पर अपने दोनों चरणों के भार रखते हुए उससे महान युद्ध किया। पश्चात् आह्लाद द्वारा एक दूसरे का निधन करते हुए वे दोनों स्वर्ग चले गये। उस समय भयभीत होकर राजा पृथ्वीराज रण छोड़कर अत्यन्त वेग से भाग निकले, किन्तु आल्हा ने भी उनके पीछे तेजी से दौड़कर उन्हें पकड़ लिया और कलिप्रदत्त उस नील द्वारा उनके दोनों नेत्रों को बलात् नीलवर्ण के समान काला कर दिया। उसी समय शिवजी ने अशुद्ध समझकर उन्हें छोड़ दिया और गुह्यकों के निवास-स्थान उस कैलास पर निवासार्थ प्रस्थान किया। आह्लाद ने भी कलि के साथ गन्धमादन पर्वत के उस कदली वन में जाकर अपनी योग समाधि लगाई। उन्हें योगाभ्यास में मग्न देखकर हर्ष विभोर होकर कलि ने बलि के यहाँ

तथा भूतं च रामांशं कलिर्दृष्ट्वा मुदान्वितः । बलिपार्श्वमुपागम्य वर्णयामास सर्वशः ।।२३७
स वै बलिर्दैत्यराजोऽयुतैः सह विनिर्गतः । गौरदेशमुपागम्य सहोड्डीनमुवाच ह ।।२३८
गच्छ वीर बलैस्सार्द्धं निशायां रक्षितो मया । हत्वा भूपं महीराजं विद्युन्मालां गृहाण भोः ।।२३९
इति श्रुत्वा वचस्तस्य षोडशाब्दान्तरे गते । सपादलक्षैश्च बलैः कुरुक्षेत्रमुपाययौ ।।२४०
महीराजसुताञ्जित्वा समाहूय महावतीम् । महीपतिं प्रेषयित्वा लुण्ठयित्वा च तद्वसु ।।२४१
लिङ्गार्थं कृतवान्यत्नं स नृपः कीर्तिसागरे । न प्राप्तस्तन्नृपस्तं वै स्वगेहाय तदा ययौ ।।२४२
लक्षचण्डीं कारयित्वा परमानन्दमाप्तवान् । जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा पुत्रशोकसमन्वितः ।।२४३
निराहारो यतिर्भूत्वा मृतः स्वर्गपुरं ययौ । सहोड्डीनेन स नृपः कृत्वा युद्धं भयङ्करम् ।।२४४
सप्ताहोरात्रमात्रेण म्लेच्छराजवशं गतः । मारितो बहुयत्नेन महीराजो न वै मृतः ।।२४५
तदा म्लेच्छस्सहोड्डीनो निर्बन्धनमथाकरोत् । ज्योतिरूपस्थितं तत्र चन्द्रभट्टो नृपाज्ञया ।।
क्षुरप्रेण च बाणेन हत्वा वह्नौ ददाह वै ।।२४६
विद्युन्माला स च म्लेच्छो गृहीत्वा च धनं बहु । तत्रास्थाप्य स्वदासं च कुतुकोड्डीनमागतः ।।२४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२

।। इति तृतीयखण्डं समाप्तम् ।।

जाकर उनसे समस्त वृतान्त का वर्णन किया । उस समय दैत्यराज बलि ने अपने दश सहस्र सैनिकों समेत और देश में जाकर सहोड्डीन (सहाबुद्दीन) से कहा—वीर ! मैं तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा, इसी रात में अपनी सेना समेत चलो और पृथ्वीराज को पराजित कर विद्वन्माला का ग्रहण करो ! इसे सुनकर उसने अपने सवा लाख सैनिकों समेत कुरुक्षेत्र को प्रस्थान किया । सोलह दिन की यात्रा करके वहाँ पहुँचने पर युद्ध में पृथ्वीराज के अन्य पुत्रो पर विजय प्राप्ति पूर्वक महावती (महोबा) चला गया । वहाँ महीपति (माहिल) के द्वारा वहाँ के धन-रत्नों को लूट लिया । कीर्तिसागर में लिङ्गार्थ राजा ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हो सके विवश होकर अपने घर लौटने पर उन्होंने लक्षचण्डी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करके परम आनन्द की प्राप्ति की । उसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने पुत्रशोक से आहत होकर यती के वेश में निराहार रहना आरम्भ किया, जिससे अल्पकाल में ही उन्हें स्वर्ग को प्रस्थान करना पड़ा । राजा पृथ्वीराज सहोड्डीन (सहाबुद्दीन) के साथ भयंकर युद्ध करते हुए सातवें दिन पकड़ लिये गये । उस म्लेच्छराज ने उनके मारने के लिए अनेक यत्न किया, किन्तु वे मर न सके । उस समय विवश होकर सहोड्डीन (सहाबुद्दीन) ने उन्हें बन्धन मुक्त कर दिया । उसी बीच राजा पृथ्वीराज की आज्ञा से चन्द्रभट्ट ने जिस समय वहाँ एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न हुई, अपने तीक्ष्ण वाण द्वारा उनका निधन कर उनका अग्नि संस्कार कर दिया । पश्चात् उस म्लेच्छराज ने असंख्य धनराशि समेत विद्वन्माला का अपहरण करके कुतुकोड्डीन (कुतुबुद्दीन) नामक अपने एक सेवक को वहाँ नियुक्तकर स्वयं अपने प्रदेश को प्रस्थान किया ।२२३-२४७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

चतुर्थखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

वेदव्यास उवाच

एवं द्वापरसन्ध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम्। सूर्यचन्द्रान्वयाख्यानं तन्मया कथितं तव ॥१
विशालायां पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम्। कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ॥२
तन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम्। पुनर्विक्रमभूपेन भविष्यति समाह्वयः ॥३
नैमिषारण्यमासाद्य श्रावयिष्यति वै कथाम्। पुनरुक्तानि यान्येव पुराणाष्टादशानि वै ॥४
तानि चोपपुराणानि भविष्यन्ति कलौ युगे। तेषां चोपपुराणानां द्वादशाध्यायमुत्तमम् ॥५
सारभूतश्च कथित इतिहाससमुच्चयः। यस्ते मया च कथितो हृषीकोत्तम ते मुदा ॥६
विक्रमाख्यानकालान्तेऽवतारः कलया हरेः। स च शक्त्यावतारो हि राधाकृष्णस्य भूतले ॥७
तत्कथां भगवान्सूतो नैमिषारण्यमास्थितः। अष्टाशीतिसहस्राणि श्रावयिष्यति वै मुनीन् ॥८
यत्तन्मया च कथितं हृषीकोत्तम ते मुदा। पुनस्ते शौनकाद्याश्च कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥९
सूतपार्श्वं गमिष्यन्ति नैमिषारण्यवासिनः। तत्पृष्टेनैव सूतेन यदुक्तं तच्छृणुष्व भोः ॥१०

चतुर्थ खण्ड

अध्याय १

प्रमरवंश का वर्णन

वेद व्यास जी बोले—द्वापर के अन्तिम सन्धिकाल में सूतजी ने सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं के वंश वृत्तान्त का जिस प्रकार वर्णन किया था, मैंने तुम्हें सुना दिया। विशाला नगरी में जाकर वैताल निर्मित जिस इतिहाससमुच्चय का वर्णन पुनः सूतजी जिस प्रकार करेंगे पुण्यप्रद उस इतिहास को भी मैंने सुना दिया है। राजा विक्रमाजीत द्वारा पुनः निमंत्रित होने पर नैमिषारण्य क्षेत्र में सूतजी जिन अष्टादश पुराणों एवं उपपुराणों की कथा सुनायेंगे वही कलियुग में भी प्रचलित होंगे। उन उपपुराणों के सारभूत इतिहासों का वर्णन बारह अध्याय में किया गया है, उसे तथा विक्रमकाल के अन्त में इस पृथ्वी पर भगवान् का जो आंशिक अवतार होगा, वह राधाकृष्ण का शक्त्यावतार कहा जायेगा। भगवान् सूत नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचकर अट्ठासी सहस्र महर्षियों को उनकी कथा का वर्णन करेंगे, उस पुण्यप्रद कथा को मैंने सुना दिया। नैमिषारण्य निवासी वे शौनकादि ऋषिगण स्नान आदि क्रियाओं से निवृत्त होने के उपरांत सूत के पास जायेंगे और वहाँ जाकर उन सबके पूछने पर सूत जी जो कुछ उत्तर देंगे, उसे कह रहा हूँ, सुनो !।१-१०

ऋषय ऊचुः

श्रुतं कृष्णस्य चरितं भगवन्भवतोदितम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि राज्ञां तेषां क्रमात्कुलम् ।।११
चतुर्णां वह्निजातानां परं कौतूहलं हि नः । स हरिस्त्रियुगी प्रोक्तः कथं जातः कलौ युगे ।।१२

सूत उवाच

कथयामि मुनिश्रेष्ठा युष्माकं प्रश्नमुत्तमम् । अग्निवंशनृपाणां च चरित्रं शृणु विस्तरात् ।।१३
प्रमरश्च महीपालो दक्षिणां दिशमास्थितः । अम्बया रचितां दिव्यां प्रमराय पुरीं शुभाम् ।।१४
निवासं कृतवान्राजा सामवेदपरो बली । षड्वर्षाणि कृतं राज्यं तस्माज्जातो महामरः ।।१५
त्रिवर्षं च कृतं राज्यं देवापिस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं देवदूतस्ततोऽभवत् ।।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शृणु तत्कारणं मुने ।।१६
अशोके निहते तस्मिन्बौद्धभूपे महाबले । कलिर्भास्करमाराध्य तपसा ध्यानतत्परः ।।१७
पञ्चवर्षान्तरे सूर्यस्तस्मै च कलये मुदा ।। शकाख्यं नाम पुरुषं ददौ तद्भक्तितोषितः ।।१८
तदा प्रसन्नः स कलिः शकाय च महात्मने । तैत्तिरं नगरं प्रेम्णा ददौ हर्षितमानसः ।।१९
तत्र गोपान्दस्युगणान्वशीकृत्य महाबली । आर्यदेशविनाशाय कृत्वोद्योगं पुनः पुनः ।।
हतवान्भूपतीन्बाणैस्तस्मात्ते स्वल्पजीविनः ।।२०

ऋषियों ने कहा—आपके मुख से उदीयमान उस भगवान् कृष्ण के चरित्रों को हम लोगों ने भली-भाँति सुन लिया है । अब इस समय उन अग्निवंशीय चारों राजाओं के वंश-वृत्तान्त, हम लोग सुनना चाहतें हैं तथा भगवान त्रियुगी बताये जाते है अर्थात् (तीनों ही युगों में अवतरित होते हैं) पुनः कलियुग में उनका अवतरित होना कैसे बताया गया है ? ११-१२

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आपका प्रश्न अत्यन्त उत्तम है, मैं इसका उत्तर अवश्य दूंगा और अग्निवंशीय राजाओं के चरित्र का सविस्तार वर्णन भी करूँगा ।राजा अमर एक दिव्य एवं शुभ नगरी में निवास करता था, जिसका निर्माण भगवती अम्बिका द्वारा हुआ था। उस सामवेदी एवं बली राजा के ६ वर्ष राज्य करने पर उनके महामर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके तीन वर्ष राज्य करने पर देवापि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया है । मुने ! उनके देवदूत नामक पुत्र हुआ । उसने भी अपने पिता के समान समय तक राज्य किया है, इसके कारण को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! महाबली एवं बौद्ध धर्मावलम्बी राजा अशोक के स्वर्गीय होने के उपरांत कलि ने तप द्वारा भगवान् भास्कर की उपासना की । पाँचवे वर्ष सूर्य ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर शक नामक एक पुरुष कलि को प्रदान किया । उस समय हर्षमग्न होकर कलि ने महात्मा शक के लिए तैत्तिर नामक नगर प्रदान किया । उस महाबली ने वहाँ रहकर गोप एवं दस्युगणों को अपने अधीन करके आर्यदेश के विनाशार्थ बार-बार प्रयत्न किया, जिससे उसके वाणों द्वारा राजाओं का घोर विनाश हो गया । इसीलिए वे अल्पायु कहे जाते हैं । १३-२०। देवदूत के पुत्र बलीराजा गन्धर्वसेन पचास वर्ष तक सिंहासनासीन रहने के पश्चात् तप करने चले गये। भगवान् शिवजी के प्रसन्न

गन्धर्वसेनश्च नृपो देवदूतात्मजो बली । शताद्धाब्दं पदं कृत्वा तपसे पुनरागतः ॥२१
शिवाज्ञया च नृपतिर्विक्रमस्तनयस्ततः । शतवर्षं कृतं राज्यं देवभक्तस्ततोऽभवत् ॥
दशवर्षं कृतं राज्यं शकैर्दुष्टैर्लयं गतः ॥२२
शालिवाहन एवापि देवभक्तस्य चात्मजः । जित्वा शकान्स षष्टयब्दं राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२३
शालिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं कृत्वा शतार्द्धकम् । स्वर्गलोकं ततः प्राप्तस्तत्सुतः शालिवर्द्धनः ॥२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शकहन्ता ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुहोत्रस्तनयोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हविर्होत्रस्ततोऽभवत् पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमिन्द्रपालस्ततोऽभवत् ॥२६
पुरीमिन्द्रावतीं कृत्वा तत्र राज्यमकारयत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माल्यवान्नाम तत्सुतः॥
पुरीं माल्यवतीं कृत्वा पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७
अनावृष्टिस्ततश्चासीन्महती चतुरब्दिका । ततः क्षुधातुरो राजाश्वविष्ठाधान्यगर्हितम् ॥२८
संस्कृत्य मन्दिरे राजा शालग्रामाय चार्पयत् । तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं नभसेरितम् ॥२९
कृत्वा ददौ वरं तस्मै शृणु तन्मुनिसत्तम । कुले यावन्नृपा भाव्यास्तव भूपतिसत्तम ॥
अनावृष्टिर्न भविता तावत्ते राष्ट्र उत्तमे ॥३०
सुतो माल्यवतश्चासीच्छम्भुदत्तो हरप्रियः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भौमराजस्ततोऽभवत् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सराजस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भोजराजस्ततोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शम्भुदत्तस्ततोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं भोजराजपितुस्समम् ॥३३
शम्भुदत्तस्य तनयो बिन्दुपालस्ततोऽभवत् । बिन्दुखण्डं च राष्ट्रं वै कृत्वा स सुखितोऽभवत् ॥
तेन राज्यं पितुस्तुल्यं कृतं वेदविदा मुने ॥३४

होने पर विक्रम नामक पुत्र उनके उत्पन्न हुआ । उनके सौ वर्ष राज्योपभोग करने पर देवभक्त नामक पुत्र हुआ । जो दश वर्ष तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित रहकर पश्चात् शकों द्वारा विनष्ट हो गया । उस देवभक्त के शालिवाहन नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसने शकों पर विजयप्राप्ति पूर्वक साठ वर्ष तक राज्य करने के उपरांत स्वर्ग को प्रस्थान किया । उनके शालिहोत्र नामक पुत्र हुआ जो पचास वर्ष तक राज्य कर स्वर्गीय हो गया । उनके शालिवर्द्धन, शालिवर्द्धन के शकहन्ता, शकहन्ता के सुहोत्र, सुहोत्र के हविर्होत्र, हविर्होत्र के इन्द्रपाल हुए, जिसने इन्द्रावती नामक नगरी का निर्माण कराकर राज्य किया । उनके माल्यवान् नामक पुत्र हुए, जिसने माल्यवती नामक पुरी का निर्माण कराया था । इस राजा के राजकाल में चार वर्ष तक लगातार अनावृष्टि हो रही थी । उस समय क्षुधा से व्यथित होकर इस राजा ने विष्टा (मल) में उत्पन्न धान्य से बनाये गये भोजन पदार्थ मन्दिर में ले जाकर भगवान् शालग्राम को अर्पित किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा वरप्रदान किया । मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! भूपश्रेष्ठ ! इस भूतल में तुम्हारे वंश के राजा जब तक सिंहासनासीन होकर प्रतिष्ठित रहेंगे, तब तक तुम्हारे इस उत्तमराष्ट्र में अनावृष्टि कभी नहीं होगी। पुनः उनके भगवान् शिव का प्रिय शभुंदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।२१-३३। उसके भौमराज,भौमराज के वत्सराज, वत्सराज के भोजराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उपरोक्त इन सभी राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक ही राज्य का उपभोग किया है। भोजराज

बिन्दुपालस्य तनयो राजापालस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो महीनरः ।।३५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमवर्मा नृपोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कामवर्मा सुतोऽभवत् ।।३६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूमिपालस्ततोऽभवत् । भूसरस्तेन खनितं पुरं तत्र शुभं कृतम् ।।३७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रङ्गपालस्ततोऽभवत् । भूमिपालस्तु नृपतिर्जित्वा भूपाननेकशः ।।३८
वीरसिंहस्ततो नाम्ना विख्यातोऽभून्महीतले । स्वराज्ये रङ्गपालं स चाभिषिच्य वनं ययौ ।।
तपः कृत्वा दिवं यातो देवदेवप्रसादतः ।।३९
कल्पसिंहस्ततो जातो रङ्गपालान्नृपोत्तमात् । अनपत्यो हि नृपतिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।४०
एकदा जाह्नवीतोये स्नानार्थं मुदितो ययौ । दानं दत्त्वा द्विजातिभ्यः कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् ।।४१
पुण्यभूमिं समालोक्य शून्यभूतां स्थलीमपि । नगरं कारयामास तत्र स्थाने मुदान्वितः ।।४२
कलापनगरं नाम्ना प्रसिद्धमभवद्भुवि । तत्र राज्यं कृतं तेन गङ्गासिंहस्ततोऽभवत् ।।४३
नवत्यब्दवपुर्भूत्वा सोऽनपत्यो रणं गतः । त्यक्त्वा प्राणान्कुरुक्षेत्रे स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।।
समाप्तिमगमद्विप्र प्रमरस्य कुलं शुभम् ।।४४
तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनन्तरम् । तन्नारीष्वमितो विप्र बभूव वर्णसङ्करः ।।४५

के शम्भुदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता से दश वर्ष कम समय तक राज्य किया । शम्भुदत्त के पुत्र विन्दुपाल हुए, जिसने विंदुखण्ड नामक राष्ट्र का निर्माण कर अपने पिता के समानकाल तक सुखी जीवन व्यतीत किया । मुने ! विन्दुपाल के राजपाल, राजपाल के महीनर, महीनर के सोमवर्मा, सोमवर्मा के कामवर्मा, कामवर्मा के भूमिपाल नामक पुत्र हुआ, जिसने पृथ्वी में एक सरोवर खनकर उसमें एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया । उसके रंगपाल नामक पुत्र हुआ । भूमिपाल ने अनेक राजाओं पर विजय प्राप्ति की । इससे इस महीतल में वीरसिंह के नाम से उनकी ख्याति हुई । उसने अपने पदपर अपने पुत्र रंगपाल का अभिषेककर स्वयं वन को प्रस्थान किया । वहाँ भगवान् देवाधिदेव की प्रसन्नता से स्वर्ग लोक की प्राप्ति की । उस नृपश्रेष्ठ रंगपाल के कल्पसिंह नामक पुत्र हुआ । इन सभी राजाओं का राजकाल उनके पिता के समान ही बताया गया है । कल्पसिंह ने संतानहीन ही रहकर अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया है । एक बार प्रसन्न होकर उस राजा ने गंगा स्नानार्थ प्रस्थान किया । वहाँ स्नान एवं ब्राह्मणों को दान प्रदान करके वह कल्पक्षेत्र चला गया । उस पवित्रभूमि को शून्य देखकर वहाँ एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया, इस पृथ्वी में जो कलाप नगर से प्रख्यात हुआ । वहाँ राज्य करते समय उसके गंगासिंह नामक पुत्र हुआ, जो सन्तानहीन रहकर नब्बे वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् कुरुक्षेत्र में जाकर उसने घोर संग्राम करके प्राणविसर्जनकर स्वर्ग की प्राप्ति की। विप्र ! इस प्रकार प्रमर का शुभ कुल समाप्त हो गया।३४-४४। उसके अनन्तर उनके कुल में शेष क्षत्रियों ने उनकी स्त्रियों से सम्पर्क स्थापित किया, जिससे वर्णसंकरों की उत्पत्ति हुई। विप्र ! वे वर्णसंकर इस पृथ्वी पर वैश्यों की वृत्ति का

वैश्यवृत्तिकराः सर्वे म्लेच्छतुल्या महीतले । इति ते कथितं विप्र कुलं दक्षिणभूपतेः ।।४६

इति श्रीभविष्य महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहासमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

सूत उवाच

वयहानिर्महीपालो मध्यदेशे स्वकं पदम् । गृहीत्वा ब्रह्मरचितमजमेरमवासयत् ।।१
अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता । तया च नगरं रम्यमजमेरमजं स्मृतम् ।।२
दशवर्षं कृतं राज्यं तोमरस्तत्सुतोऽभवत् ।पार्थिवैः पूजयामास वर्षमात्रं महेश्वरम् ।।३
इन्द्रप्रस्थं ददौ तस्मै प्रसन्नो नगरं शिवः । तदन्वये च ये जातास्तोमराः क्षत्रियाः स्मृताः ।।४
तोमरावरजश्चैव चयहानिसुतः शुभः । नाम्ना सामलदेवश्च प्रश्रितोऽभून्महीतले ।।५
सप्तवर्षं कृतं राज्यं महादेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमजयश्च ततोभवत् ।।६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् । शताद्धाब्दं कृतं राज्यं ततोबिन्दुसुरोऽभवत् ।।७

अनुसरण करते हुए म्लेच्छों के साथ रहकर अपने जीवन व्यतीत किये । विप्र ! इस प्रकार दक्षिणी राजाओं की वंश परम्परा बता दी गई ।४५-४६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में प्रमरवंश वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

प्रमरवंश का वर्णन

सूतजी बोले—मध्यप्रदेश का निवासी राजा वयहानि ने अपने सिंहासनारूढ़ होने पर ब्रह्म निर्मित उस अजमेर को अपनी राजधानी बनाया । अजन्मा और उस ब्रह्म निर्मित उस अजमेर को अपनी राजधानी बनाया । अजन्मा और उसकी माँ (लक्ष्मी) ने, जिन्हें रमा का भी सहयोग प्राप्त था वहाँ आकर उस नगर का निर्माण कराया था । इसीलिए उसका नाम 'अजमेर' हुआ है । दशवर्ष राज्य-भार संभालने के उपरांत उनके तोमर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने एक वर्ष तक पार्थिव-पूजन द्वारा भगवान् महेश्वर की आराधना की । उस आराधना से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) नामक नगर प्रदान किया । उसी समय से उनके कुल में उत्पन्न होने वाले क्षत्री तोमरवंशी कहे जाने लगे। चयहानि के पुत्र जो तोमर के छोटे भाई का पुत्र था, इस भूतल में उसकी सामलदेव नाम से ख्याति हुई। सात वर्ष राज्य के उपभोग करने पर उनके महादेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। महादेव के अजय और अजय के वीरसिंह नामक पुत्र हुआ, जिसने शताब्दी के आधे समय (पचास वर्ष) तक राज्य किया

पितुरर्द्धं कृतं राज्यं मध्यदेशे महात्मना । तस्माच्च मिथुनं जातं वीरा वीरविहात्तकः ॥८
विक्रमाय ददौ वीरां पिता वेदविधानतः । स्वपुत्राय स्वकं राज्यं मध्यदेशान्तरं मुदा ॥९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माणिक्यस्तत्सुतोऽभवत् । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं महासिंहस्ततोऽभवत् ॥१०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चन्द्रगुप्तस्ततोऽभवत् । पितुरर्द्धं कृतं राज्यं तत्सुतश्च प्रतापवान् ॥११
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मोहनस्तत्सुतोऽभवत् । त्रिंशदब्दं कृतं राज्यं श्वेतरायस्ततोऽभवत् ॥१२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नागवाहस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं लोहधारऽस्ततोऽभवत् ॥१३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विबुधस्तत्सुतोऽभवत् ॥१४
शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं चन्द्ररायस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो हरिहरोऽभवत् ॥१५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसन्तस्तस्य चात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाङ्गस्तनयोऽभवत् ॥१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रमथस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमङ्गरायस्ततोऽभवत् ॥१७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विशालस्तस्य चात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शार्ङ्गदेवस्ततोऽभवत् ॥१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मन्त्रदेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जयसिंहस्ततोऽभवत् ॥१९
आर्यदेशाश्च सकला जितास्तेन महात्मना । तद्धनैः कारयामास यज्ञं बहुफलप्रदम् ॥२०
ततश्चानन्द देवो हि जातःपुत्रः शुभाननः । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं जयसिंहेन धीमता ॥२१
तत्सुतेन पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महीतले । सोमेश्वरस्तस्य सुतो महाशूरो बभूव ह ॥२२
अनङ्गपालस्य सुतो ज्येष्ठां वै कीर्तिमालिनीम् । तामुद्वाह्य विधानेन तस्यां पुत्रानजीजनत् ॥२३

और शेष राजगण अपने पिता के समान काल तक । उस महात्मा राजा विंदुसुर ने, जो वीर- सिंह का पुत्र था, मध्य प्रदेश में अपने पिता के राजकाल के आधे समय तक सिंहासनासीन रहकर 'वीरा और वीर' नामक एक कन्या एवं पुत्र को जुड़वा उत्पन्न किया । कन्या के पिता ने वेदविधान द्वारा उसका पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराया । पश्चात् हर्षमग्न होकर अपने पदपर अपने पुत्र को प्रतिष्ठित किया । पुनः राजा वीर के माणिक्य पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया तनन्तर उसके महासिंह तथा महासिंह के चन्द्रगुप्त हुए, जिसने पिता के आधे समय तक राज्य किया और शेष उपरोक्त सभी राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक । चन्द्रगुप्त के प्रताप, एवं प्रताप के मोहन हुए जिसने तीस वर्ष तक राज्य किया तथा शेष राजाओं ने अपने पैत्रिक राजकाल के समान काल तक । अनन्तर उसके श्वेतराय हुए । श्वेतराय के नागवाहन, नागवाहन के लोहधार, लोहधार के वीरसिंह और वीरसिंह के विवुध नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया और शेष लोगों ने अपने पिता के समान काल तक । पुनः विबुध के चन्द्रराय, चन्द्रराय के हरिहर, हरिहर के वसंत; वसंत के बलांग, बलांग के प्रमथ, प्रमथ के अंगराय, अंगराय के विशाल, विशाल के शार्ङ्गदेव, शार्ङ्गदेव के मंत्रदेव और मंत्रदेव के जयसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने पचास वर्ष तक सिंहासनासीन रहकर सम्पूर्ण आर्य प्रदेशों पर विजय प्राप्तकर उसके धनों द्वारा अत्यन्त फलयुद्ध एक महान् यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न कराया ।१-२० पश्चात् उनके आनन्ददेव नामक पुत्र रत्न हुआ, और आनन्ददेव के महापराक्रमी सोमेश्वर नामक पुत्र हुआ जिसने अनंगपाल की ज्येष्ठपुत्री कीर्ति-मालिनी के साथ पाणिग्रहण करके तीन पुत्रों को उत्पन्न किया । ज्येष्ठ पुत्र का धुंधुकार (धांधू) नाम था,

धुन्धुकारश्च वै ज्येष्ठो मथुराराष्ट्रसंस्थितः । मध्यः कुमाराख्यसुतः पितुः पदसमास्थितः ।।२४
महीराजस्तु बलवांस्तृतीयो देहलोपतिः । सहोद्दीनस्य नृपतेर्वशमाप्य मृतिं गतः ।।२५
चपहानेश्च स कुलं छाययित्वा दिवं ययौ । तस्य वंशे तु राजन्यास्तेषां पत्न्यः पिशाचकैः ।।२६
म्लेच्छैश्च भुक्तवत्यस्ता बभूवुर्वर्णसङ्कराः । न वै आर्या न वै म्लेच्छा जट्टा जात्या च मेहनाः ।।२७
मेहना म्लेच्छजातीया जट्टा आर्यनयाः स्मृताः । क्वाचित्क्वाचिच्च ये शेषाः क्षत्रियाश्चपहानिजाः ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

सूत उवाच

शुक्लवंशं प्रवक्ष्यामि शृणु विप्रवरादितः । यदा कृष्णः स्वयं ब्रह्म त्यक्त्वा भूमिं स्वकं पदम् ।।१
दिव्यं वृन्दावनं रम्यं प्रययौ भूतले तदा । कलेरागमनं ज्ञात्वा म्लेच्छपा द्वीपमध्यगे ।।२
स्थिता द्वीपेषु वै नाना मनुजा वेदतत्पराः । कलिनामित्रधर्मेण दूषितास्ते बभूविरे ।।३
अष्टषष्टिसहस्राणां वर्षाणां मुनिसत्तम । अद्य प्रभृति वै जातः कालः कलिसमागमे ।।४

जो मथुराराज्य का अधीश्वर था । मध्यम पुत्र का नाम कुमार था, अपने पिता के पदपर ही प्रतिष्ठित था और कनिष्ट पुत्र का नाम पृथ्वीराज था, जिसने दिल्ली सिंहासन पर प्रतिष्ठित होकर राजा सहोद्दीन (सहाबुद्दीन) के अधीन होने पर अपना प्राणविसर्जन किया । उसी ने चयहानि वंश का समूलनाश कराया था । उनके वंश में शेष राजाओं की पत्नियों के उपभोग उन म्लेच्छों ने किया, जिससे वर्णसंकरों की उत्पत्ति हुई । चयहानि वंश के कुछ क्षत्रिय गणों की, जो इधर-उधर रह रहे थे उस समय की प्रचलित म्लेच्छ, जट्टा (जाट) और मेहन जातियों में गणना नहीं की जा सकती थी, क्योंकि वे सभी में सम्मिलित थे । उस समय मेहन को म्लेच्छ और जट्ट (जाट) को आर्य कहा जाता था ।२१-२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
प्रमर वंश वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

प्रमरवंश का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रवर ! मैं शुक्लवंश का आरम्भ से वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! जिस समय भगवान् कृष्ण ने वृन्दावन नामक अपने दिव्यस्थान को त्यागकर दिव्यलोक की यात्रा की, उस समय कलि के आगमन एवं म्लेच्छ राजाओं की अधीनता न स्वीकारकर जो वैदिकधर्म के अनुयायी मनुष्यगण द्वीपों में जा-जाकर निवास कर रहे थे, उन्हें भी म्लेच्छ धर्मानुयायी कलि ने उनके धर्मों से वंचित कर दूषित कर दिया। मुनिसत्तम ! अड़सठ सहस्रवर्ष आज कलि के आगमन में बीत चुका।१-४।

षष्टिवर्षसहस्राणि द्वीपराज्यमचीकरत् । स कलिर्म्लेच्छया सार्धं सूर्यपूजनतत्परः ।।५
तत्पश्चाद्भारते वर्षे म्लेच्छया कलिरायर्यौ । दृष्ट्वा तद्भारतं वर्षं लोकपालैश्च पालितम् ।।६
भयभीतस्त्वराविष्टो गन्धर्वाणां यशस्करः । स कलिः सूर्यमाराध्य समाधिस्थो बभूव ह ।।७
ततो वर्षशताब्दान्ते सन्तुष्टो रविरागतः । सोंऽशुभिर्लोकमातप्य महावृष्टिमकारयत् ।।८
चतुर्वर्षसहस्राणि चतुर्दशशतानि च । व्यतीतानि मुनिश्रेष्ठ चाद्य प्रभृति संलपे ।।९
सम्पन्नं भारतं वर्षं तदा जातं समन्ततः । न्यूहाख्यो यवनो नाम तेन वै पूरितं जगत् ।।१०
सहस्राब्दकलौ प्राप्ते महेन्द्रो देवराट् स्वयम् । काश्यपं प्रेषयामास ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ।।११
आर्यावती देवशक्तिस्तत्करं चाग्रहीन्मुदा । दशपुत्रान्समुत्पाद्य स द्विजो मिश्रमागमत् ।।१२
मिश्रदेशोद्भवान्म्लेच्छान्वशीकृत्यायुतं मुदा । स्वदेशं पुनरागत्य शिष्यांस्तान्स चकार ह ।।१३
नष्टायां सप्तपुर्यां च ब्रह्मावर्ते महोत्तमम् । सरस्वतीदृषद्वत्योर्मध्यगं तत्र चावसत् ।।१४
स्वपुत्रं शुक्लमाहूय द्विजश्रेष्ठं तपोधनम् । आज्ञाप्य रैवतं शृङ्गं तपसे तु पुनः स्वयम् ।।१५
नवपुत्रांस्तथा शिष्यान्मनुधर्मं सनातनम् । श्रावयामास धर्मात्मा स राजा मनुधर्मगः ।।१६
शुक्लोऽपि रैवतं प्राप्य सच्चिदानन्दविग्रहम् । वासुदेवं जगन्नाथं तपसा समतोषयत् ।।१७
तदा प्रसन्नोभगवान्द्वारकानायको बली । करे गृहीत्वा तं विप्रं समुद्रान्तमुपाययौ ।।१८
द्वारकां दर्शयामास दिव्यशोभासमन्विताम् । व्यतीते द्विसहस्राब्दे किञ्चिज्जाते भृगूत्तम ।।१९
अग्निद्वारेण प्रययौ स शुक्लोऽर्वुदपर्वते । जित्वा बौद्धान्द्विजैः सार्धं त्रिभिरन्यैश्च बन्धुभिः ।।२०

साठ सहस्र वर्ष तक उसने द्वीपों में राज्य किया । पश्चात् म्लेच्छ के साथ सूर्य की आराधना की । तदुपरांत भारत वर्ष में म्लेच्छ समेत उसका आगमन हुआ । लोकपालों द्वारा सुरक्षित इस भारत वर्ष को देखकर वह अत्यन्त भयभीत हुआ, किन्तु गंधर्वों के यशस्वी उस कलि ने सूर्य की आराधना पूर्वक शीघ्र ही समाधि लगाना आरम्भ किया सौ वर्ष के उपरांत उसकी आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य ने अपनी किरणों द्वारा इस लोक को संतप्त करके महावृष्टि की । मुनिश्रेष्ठ ! इस घटना को हुए आज चार सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके । पश्चात् भारतवर्ष सभी प्रकार से सम्पन्न हुआ, क्योंकि उस समय संसार की पूर्ति न्यूह नामक यवन ने किया था । कलि के एक सहस्त्र वर्ष व्यतीत होने पर देवसम्राट महेन्द्र ने स्वयं इस महोत्तम ब्रह्मावर्त प्रदेश में काश्यप को भेजा । उन्होंने आर्यवर्ती नामक देवशक्ति का पाणिग्रहण करके उससे दश पुत्रों की उत्पत्ति के उपरांत मिस्र देश को प्रस्थान किया ।५-१२। वहाँ के दश सहस्र म्लेच्छों को अपने अधीनकर अपने देश लौटने पर उन्हें शिष्य बनाया । पश्चात् सातों पुजारियों के नष्ट हो जाने पर पवित्र ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में, जो सरस्वती और हयद्वती के मध्य में स्थित है, उन्हें निवास करने के लिए आज्ञाप्रदान किया । अनन्तर अपने पुत्र शुक्ल को जो ब्राह्मणश्रेष्ठ एवं महान् तपस्वी था, रैवत पर्वत के शिखरपर तप करने के लिए आदेश देकर शेष नव पुत्रों और शिष्यों को मनुधर्म का अनुयायी बनाकर उस धर्मात्मा राजा ने सनातन मनुधर्म का उपदेश दिया । शुक्ल ने भी रैवतपर्वत पर पहुँचकर सत्, चित् और आनन्द रूप वाले उस जननाथ वासुदेव को अपने तप द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट किया, जिससे प्रसन्न होकर बली एवं द्वारकाधीश्वर भगवान् ने उस ब्राह्मण का हाथ पकड़कर समुद्र के भीतर प्रस्थान किया । वहाँ दिव्य शोभा सम्पन्न उस द्वारका का दर्शन कराया । भृगूत्तम ! दो सहस्र वर्ष बीतने पर वह शुक्ल अग्निमार्ग से अर्वुद पर्वतपर पहुँच गया । वहाँ अपने तीन

द्वारकां कारयामास हरेश्च कृपया हि सः । तत्रोष्य मुदितो राजा कृष्णध्यानपरोऽभवत् ।।२१
पश्चिमे भारते वर्षे दशाब्दं कृतवान्पदम् । नारायणस्य कृपया विष्वक्सेनः सुतोऽभवत् ।।२२
विंशदब्दं कृतं राज्यं जयसेनस्ततोऽभवत् । त्रिंशदब्दं कृतं राज्यं विसेनस्तस्य चात्मजः ।।२३
शतार्धाब्दकृतं राज्यं मिथुनं तस्य चाभवत् । प्रमोदो मोदसिंहश्च विक्रमाय निजां सुताम् ।।२४
विसेनश्च ददौ प्रीत्या राष्ट्रं पुत्राय चोत्तमम् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सिन्धुवर्मा सुतोऽभवत् ।।२५
सिन्धुकूले कृतं राज्यं त्यक्त्वा तत्पैतृकं पदम् । सिन्धुदेशस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोभून्महीतले ।।२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राज्ञा वै सिन्धुवर्मणा । सिन्धुद्वीपस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।२७
श्रीपतिस्तस्य तनयो गौतमान्वयसम्भवाम् । काच्छपीं महिषीं प्राप्य कच्छदेशमुपाययौ ।।२८
पुलिन्दान्यवनाञ्जित्वा तत्र देशमकारयत् । देशो वै श्रीपतिर्नाम्ना सिन्धुकूले बभूव ह ।।२९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भुजवर्मा ततोऽभवत् । जित्वा स शबरान्भिल्लांस्तत्र राष्ट्रमकारयत् ।।३०
भुजदेशस्ततो जातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रणवर्मा सुतोऽभवत् ।।३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चित्रवर्मा सुतोऽभवत् । कृत्वा स चित्रनगरीं वनमध्ये नृपोत्तमः ।।३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मवर्मा सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कृष्णवर्मा सुतोऽभवत् ।।३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुदयस्तत्सुतोऽभवत् । कृत्वोदयपुरं रम्यं वनमध्ये नृपोत्तमः ।।३४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वाप्यकर्मा सुतोऽभवत् । वापीकूपतडागानि नानाहर्म्याणि तेन वै ।।३५

भाइयों और ब्राह्मणों के साथ बौद्धों को जीतकर भगवान् की कृपावश द्वारका नगर स्थापित किया। पश्चात् वहाँ रहते हुए उन्होंने भगवान् कृष्ण का ध्यान करना प्रारम्भ किया। १३-२१। पश्चिमीय भारत में अधीश्वर के पदपर दश वर्ष तक प्रतिष्ठित रहने के उपरांत भगवान् की कृपा से उनके विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बीस वर्ष राज्य करने पर उसके जयसेन हुए जिसके तीस वर्ष तक राज्य करने के उपरांत विसेन नामक पुत्र हुआ। पचास वर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न हुए। जिनका प्रमोद और मोदसिंह नाम था। राजा विसेन ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराकर अपना उत्तमराज्य अपने पुत्र को सौंप दिया। अपने पिता के समानकाल तक राज्य करने पर सिंधुवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अपने पिता के राज्य का त्यागकर सिंधुतट पर अपना दूसरा राष्ट्र स्थापित किया। उसी समय से इस भूतल में वह सिंधुदेश के नाम से प्रख्यात हुआ। पुनः उस सिंधुधर्मी राजा के सिंधुद्वीप और सिंधुद्वीप के पति हुए, जिसने गौतमकुल में उत्पन्न उस काच्छपी नामक कन्या को रानी बनाकर उसी द्वारा कच्छदेश की प्राप्ति की। वहाँ पुलिन्दों और यवनों पर विजय प्राप्ति पूर्वक देश का निर्माण किया, जो सिंधुतट पर पति के नाम से ख्यातिप्राप्त है। पश्चात् उनके भुजवर्मा हुए, जिन्होंने शवर-भिल्लों को पराजित कर वहाँ राष्ट्र स्थापित किया। इसी से पृथ्वी में भुजदेश के नाम से उनकी ख्याति हुई है। भुजवर्मा के रणवर्मा, रणवर्मा के चित्रवर्मा हुए। इन्होंने वन के भीतर चित्रनगरी का निर्माण कराया है। चित्रवर्मा के धर्मवर्मा, धर्मवर्मा के कृष्णवर्मा, कृष्णवर्मा के उदय हुए, जिन्होंने वन के मध्य में उदयपुर नामक नगर को स्थापित किया। पुनः उदय के वाप्यवर्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने वावली, कूप एवं सरोवर आदि और अनेक महलों के निर्माण पूर्वक

धर्मार्थे कारयामास धर्मात्मा स च वै पुरम् । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो बलदो नाम भूपतिः ।।३६
लक्षसैन्ययुतो वीरो महामदमते स्थितः । तेन सार्धमभूद्युद्धं राज्ञो वै वाप्यकर्मणः ।।३७
जित्वा पैशाचकान्म्लेच्छान्कृष्णोत्सवमकारयत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गुहिलस्तत्सुतोऽभवत् ।।३८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालभोजः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राष्ट्रपालस्ततोऽभवत् ।।३९
स त्यक्त्वा पैतृकं स्थानं वैष्णवीं शक्तिमागमत् । तपसाराधयामास शारदां सर्वमङ्गलाम् ।।४०
प्रसन्ना सा तदा देवी कारयामास वै पुरीम् । महावतीं महारम्यां मणिदेवेन रक्षिताम् ।।४१
तत्रोष्य नृपतिर्धीमान्दशाब्दं राज्यमाप्तवान्। तस्योभौ तनयौ जातौ विजयः प्रजयस्तथा ।।४२।
प्रजयः पितरौ त्यक्त्वा गङ्गाकूलमुपाययौ । द्वादशाब्दं च तपसा पूजयामास शारदाम् ।।४३
कन्यामूर्तिमयी देवी वेणुवादनतत्परा । हयमारुह्य संप्राप्ता विहस्याह महीपतिम् ।।४४
किन्निमित्तं भूपसुतं त्वया चाराधिता शिवा । तत्फलं त्वं हि तपसा मत्तः शीघ्रमवाप्स्यसि ।।४५
इति श्रुत्वा स होवाच कुमारि मधुरस्वरे । नवीनं नगरं मह्यं कुरु देवि नमोस्तु ते ।।४६
इति श्रुत्वा तु सा देवी ददौ तस्मै हयं शुभम् । पुरो भूत्वा वाद्यकारी दक्षिणां दिशमागता ।।४७
स भूपो हयमारुह्य नेत्र आच्छाद्य चाययौ । पुनः स भूपतिः पश्चात्पश्चिमां दिशमागता ।।४८
ततोऽनुप्रययौ पूर्वमर्कणो यत्र पक्षिराट् । भयभीतो नृपस्तेन समुन्मील्य स चक्षुषी ।।४९

धर्मार्थ एक नगर का निर्माण कराया ।२२-३५। उसी बीच वलद नामक राजा ने मदान्ध होकर अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ से आकर इस राजा से युद्ध आरम्भ किया । राजा वाप्यवर्मा ने उस म्लेच्छ राजा को पराजित कर भगवान् कृष्ण का महान् उत्सव कराया । पश्चात् उनके गुहिल नामक पुत्र हुआ । गुहिल के कालभोज, कालभोज के राष्ट्रपाल उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने पिता के पद का त्यागकर वैष्णवी शक्ति उस सर्वमङ्गला शारदा की तप द्वारा आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर देवी जी ने महावती नामक अत्यन्त सुंदर पुरी का निर्माण किया, जो सदैव मणिदेव से सुरक्षित रहती थी । उपरोक्त ये सभी राजगण ने अपने-अपने पिता के समानकाल तक ही राज्य किये थे । उस बुद्धिमान् राजा राष्ट्रपाल के उस पुरी में दश वर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके विजय और अजय नामक दो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए, जिसमें अजय ने अपने पिता के पद का त्यागकर बारह वर्ष तक शारदा देवी की उपासना की । देवी ने कन्यारूप धारणकर वेणुवादन करती हुई घोड़े पर बैठकर उस राजा के सम्मुख जाकर कहा—राजपुत्र ! किसलिए तुमने पार्वती की आराधना की है ? कहो ! मैं वह फल प्रदान करने के लिए तैयार हूँ । इसे सुनकर उसने कहा—मधुर भाषण करने वाली कुमारी देवि! मेरे लिए एक नवीन नगर का निर्माण करो मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इसे सुनकर देवी जी ने उस शुभ घोड़े को उन्हें प्रदानकर आगे-आगे दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया । राजा भी उस घोड़े पर बैठकर अपने दोनों नेत्र को ढाँपे हुए उनके पीछे-पीछे जा रहा था । पश्चात् वह राजा पश्चिम दिशा की ओर आया ।३६-४८। वहाँ से पुनः पूर्व दिशा की ओर गया, जहाँ मर्कण नामक पक्षी रहता था । वहाँ पहुँचने पर भयभीत होकर

दर्दर्श नगरं रम्यं कन्याया रचितं शुभम् । उत्तरे तस्य वै गङ्गा दक्षिणेनास पाण्डुरा ।।५०
पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कणः । कुब्जभूतमभूद्ग्रामं कान्यकुब्ज इति स्मृतः ।।५१
दशवर्षं च तेनैव जयपालेन वै पदम् । कृतं तस्य सुतो जातो वेणुवाद्याच्च वेणुकः ।।५२
स वेणुश्च महीपालो देवीदत्तां मनोहराम् । पत्नीं कन्यावतीं नाम्ना समुद्वाह्य रराज ह ।।५३
तस्यां सप्त सुता जाता मातृणां मङ्गलाः कलाः । शीतला पार्वती कन्या तथा पुष्पवती स्मृता ।।५४
गोवर्धनी च सिन्दूरा काली नाम्ना प्रकीर्तिता । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।।५५
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डाः क्रमतोऽभवन् । एकदा भूपतेः पत्नी तंतुना मृत्तिकाघटन् ।।५६
कूपे कृतवती प्रेम्णा यथा पूर्वं तथाद्य सा । ददर्श बहुला नारीर्नानाभूषणभूषिताः ।।५७
स्वयमेकैव वसना मनोग्लानिमुपाययौ । तदैव स घटो भूमौ न प्राप्तः सप्रवृत्तिकाम् ।।५८
दृष्ट्वा कन्यावती देवी घटहीना गृहं ययौ । तदा तु सप्त कन्याश्च शिलाभूता गृहे स्थिताः ।।५९
श्रुत्वा वेणुस्तदागत्य भर्त्सयित्वा स्वकां प्रियाम् । ब्रह्मचर्यव्रतं त्यक्त्वा रमयामास योषितम् ।।६०
नृपाद्वै वीरवत्यां च यशोविग्रह आत्मजः । बभूव बलवान्धर्मी चार्यदेशपतिः स्वयम् ।।६१
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले । महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।६२
चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् । कृतं तस्मात्सुतो जातो मन्दपालो महीपतिः ।।६३

राजा ने अपने नेत्रों को खोला, तो उस स्थान पर उस कन्या द्वारा रचित एक रमणीक नगर सामने दिखाई दिया, जिसके उत्तर की ओर गंगा, दक्षिण की ओर पाण्डुरा, पश्चिम की ओर ईश और पूर्व की ओर वही मर्कण नामक पक्षी रहता था । वह नगर कुब्ज (ऊँची-नीची भूमि होने के नाते कुब्ज) था, इसीलिए उसका नाम 'कान्यकुब्ज' हुआ । उस नगर के राजसिंहासन पर दश वर्ष तक आसीन रहने पर उनके वेणु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो वेणुवादन में अधिक रुचि रखता था । राजा वेणु ने देविप्रदत्त एक अत्यन्त मनोरम कन्यावती नामक कन्या के साथ पाणिग्रहण करके उसे अपनी सहधर्मिणी बनाया । उनकी उस स्त्री से सात कन्यायें उत्पन्न हुईं, जो माताओं की मांगलिक कला के रूप में थीं । शीतला, पार्वती, कन्या, पुष्पवती, गोवर्धनी, सिंदूरा और काली उन कन्याओं के नाम थे, जो क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा के नाम से प्रख्यात हुईं । एक बार उस राजा की पत्नी ने नित्य की भाँति उस दिन भी सूत की रस्सी सं मिट्टी के घड़े को फाँसकर जल लेने के लिए कूएँ में लटकाया । उसी समय वहाँ और भी स्त्रियों का आगमन हुआ, जो सुन्दर वस्त्र एवं अनेक प्रकार के भूषणों से विभूषित थीं । उन्हें उस प्रकार सुसज्जित और अपने केवल एक ही वस्त्र को देखकर उसके मन में इतनी अधिक ग्लानि उत्पन्न हुई कि वह घड़े को कूएँ से बाहर न निकाल सकी । उन स्त्रियों को आपस में आलाप-संलाप में तन्मय देखकर देवी कन्यावती बिना घड़े के अपने घर चली आई । घर पहुँचने पर उसने अपनी कन्याओं को शिला के रूप में स्थित देखा ।४९-५९। उसे सुनकर राजा वेणु अपने घर आये और अपनी पत्नी की अत्यन्त भर्त्सना की । पश्चात् ब्रह्मचर्य का त्यागकर अपनी पत्नी के साथ रमण किया, जिससे उस वीर रानी के गर्भ से मूर्तिमान यश के रूप में एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो बलवान, धर्मी एवं आर्यदेश का अधीश्वर हुआ । उस राजा ने इस भूतल पर बीस वर्ष तक राज्य का उपभोग किया। पश्चात् उसके महीचन्द्र नामक पुत्र हुए। पुनः महीचन्द्र के चन्द्रदेव और चन्द्रदेव के

तस्य भूपस्य समये सर्वे भूपाः समन्ततः । त्यक्त्वा तं मन्दपालं च तद्दत्ते संस्थिता गृहे ॥६४
पितुरर्द्धं कृतं राज्यं कुम्भपालस्ततोऽभवत् । राजनीया च नगरी पिशाचविषये स्थिता ॥६५
तत्पतिश्च महामोदो म्लेच्छपैशाचधर्मगः । स जित्वा बहुधा देशाँल्लुण्ठयित्वा धनं बहु ॥६६
म्लेच्छधर्मकरः प्राप्तः कुम्भपालो यतः स्थितः । कुम्भपालस्तु तं दृष्ट्वा कलिना निर्मिता नृप ॥६७
महामोदं समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् । तदा म्लेच्छपतिः शूरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ॥६८
राजनीयां च नगरीं प्राप्तवान्मूर्तिखण्डकम् । विंशदब्दकृतं राज्यं कुम्भपालेन धीमता ॥६९
तत्पुत्रो देवपालश्चानङ्गभूपस्य कन्यकाम् । समुद्वाह्य विधानेन चन्द्रकान्ति तया सह ॥७०
कान्यकुब्जगृहं प्राप्य जित्वा भूपाननेकशः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्योभौ तनयौ स्मृतौ ॥७१
जयचन्द्रोरत्नभानुर्दिशं पूर्वां तथोत्तराम् । आर्यदेशस्य वै जित्वा वैष्णवो राज्यमाप्तवान् ॥७२
रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः । कुरुक्षेत्रे रणं प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिवं गतः ॥७३
समाप्तिमगमद्वंशो वैश्यपालस्य धीमतः । कुम्भपालस्य शौक्लस्य वैश्यानां रक्षकस्य च ॥७४
विष्वक्सेनान्वयेजाता विष्वक्सेना नृपाः स्मृताः । विसेनस्य कुले जाता विसेनाः क्षत्रियाः स्मृता ॥७५
गुहिलस्य कुले जाता गौहिलाः क्षत्रिया हि ते । राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपाः स्मृताः ॥७६
वैश्यपालस्य वै वंशे कुम्भपालस्य धीमतः । वैश्यपालाश्च राजन्यो बभूवुर्बहुधा हि ते ॥७७

मन्दपाल उत्पन्न हुए, जिसके राजकाल में सभी राजाओं ने मन्दपाल के त्यागपूर्वक उसके दिये हुए गृहों में निवास किया था । इसने अपने पिता के आधे समय तक राज्यभार को संभाला था और उपरोक्त अन्य राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक । राजा मन्दपाल के कुम्भपाल हुआ, जिसने महामोद को अपनी बुद्धिमानी से लौटा दिया । एकबार पिशाचों के बीच में स्थित राजनीय नगरी के अधीश्वर महामोद नामक म्लेच्छ ने अनेक देशों को पराजितकर उसके धनों को लूटते हुए राजा कुम्भपाल की राजधानी के समीप आगमन किया । नृप! राजा कुम्भपाल ने कलिमूर्ति उस महामोद नामक म्लेच्छ को देखकर विचार किया, पश्चात् उस बुद्धि-कुशल राजा ने वहाँ जाकर उसे सहर्ष प्रणाम किया, जिससे प्रसन्न होकर उस वीर एवं मूर्तिध्वंसी म्लेच्छराज ने इन्हें बहुत-सा धन देकर अपनी राजनीया नामक नगरी को प्रस्थान किया। बीस वर्ष तक राज्य करने पर राजा कुम्भपाल के देवपाल नामक पुत्र हुआ, जिसने अनंगराज की चन्द्रकीर्ति नामक कन्या के साथ सविधान पाणिग्रहण करके उसके समेत कान्यकुब्ज (कन्नौज) आकर अत्यन्त सुखीजीवन व्यतीत किया। वहाँ रहकर अनेक राजाओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक उन्होंने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया।६०-७१। पश्चात् उनके जयचन्द्र और रत्नभानु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने उत्तर और पूर्व के आर्य प्रदेशों को जीतकर वैष्णव राज्य की प्राप्ति की । रत्नभानु के पुत्र ख्यातिप्राप्त लक्षण (लाखन) हुए, जिन्होंने कुरुक्षेत्र के रणस्थल में घोर संग्राम करते हुए प्राण विसर्जनकर स्वर्ग की प्राप्ति की । इस प्रकार बुद्धिमान वैश्यपाल और वैश्यों के रक्षक शुक्लवंशीय कुम्भपाल के राष्ट्र-वंश का वृत्तान्त समाप्त हुआ । विष्वक्सेन के वंशज राजालोग विष्वक्सेन विसेन कुल में उत्पन्न क्षत्रिय विसेन, गुहिल कुल में उत्पन्न क्षत्रियगण गौहिल और राष्ट्रपाल वंश के क्षत्रिय राजगण राष्ट्रपाल कहे गये हैं । वैश्यपाल एवं बुद्धिमान् कुम्भपाल के वंशज नृपगण अनेक भाँति के भेद उत्पन्न करने के नाते

लक्षणे मरणं प्राप्ते शुक्लवंशधुरन्धुरे । सर्वे ते क्षत्रिया मुख्याः कुरुक्षेत्रे लयं गताः ॥७८
शेषास्तु क्षुद्रभूपाला वर्णसङ्करसम्भवाः । म्लेच्छैश्च दूषिता जाता म्लेच्छराज्ये भयानके ॥७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य भृणु त्वं वै वंशं परिहरस्य च । जित्वा बौद्धान्परिहरोऽथर्ववेदापरायणः ॥१
शक्तिं सर्वमयीं नित्यां ध्यात्वा प्रेमपरोऽभवत् । प्रसन्ना सा तदा देवी सार्धयोजनमागतम् ॥२
नगरं चित्रकूटाद्रौ चकार कलिनिर्जरम् । कलिर्यत्र भवेद्बद्धो नगरेऽस्मिन्सुरप्रिये ॥३
अतः कलिञ्जरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले । द्वादशाब्दं कृतं राज्यं तेन पूर्वप्रदेशके ॥४
गौरवर्मा तस्य सुतः कृतं राज्यं पितुः समम् । स्वानुजं घोरवर्माणं तत्रास्थाप्य मुदान्वितः ॥५
गौडदेशं समागम्य तत्र राज्यमकारयत् । सुपर्णो नाम नृपतिस्ततोऽभूद्गौरवर्मणः ॥६

अनेक भाँति के बताये गये हैं । चन्द्रवंश के धुरंधर राजा लक्षण (लाखन) के स्वर्गीय होने पर उस कुरुक्षेत्र के स्थल में अधिकांश मुख्य क्षत्रियों का नाश हो गया था । उस समय छोटे ही राजागण शेष थे, जिनकी स्त्रियों से बलात् रमण करके उन म्लेच्छों ने उस भीषण म्लेच्छराज के समय में वर्णसंकरों की उत्पत्ति की ।७२-७९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन में
प्रमरवंश वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य ! मैं परिहार वंश का वर्णन करता हूँ, सुनो ! अथर्ववेद के पारायण करने वाले उस राजा परिहर ने बौद्धों पर विजय प्राप्ति करने के उपरांत सर्वशक्तिमयी भगवती की आराधना सप्रेम प्रारम्भ की । उससे प्रसन्न होकर देवी जी ने चित्रकूट पर्वत के समीप डेढ़ योजन का विस्तृत कलिनिर्जर (कलींजर) नामक एक नगर का निर्माण किया । उस देवप्रिय नगर में कलि बाँध दिया गया है । इससे वहाँ इसके अस्तित्व न रहने पर पृथ्वी में उसकी ख्याति 'कलिंजर' के नाम से हुई । वह सुरम्य नगर,जो पूर्वी प्रदेश में बसा हुआ है, बारह वर्ष तक उसके राजा के राज करने पर गौरवर्मा नाम पुत्र उनके उत्पन्न हुआ । उसने अपने छोटे भाई घोरवर्मा को अपने पिता के सिंहासनपर प्रतिष्ठित कर स्वयं गौड़देश में जाकर वहां राज्य स्थापन किया। वहाँ राजा गौरवर्मा

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रूपणस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कारवर्मा सुतोऽभवत् ।।७
शको नाम ततो राजा महालक्ष्मीं[1] सनातनीम् । त्रिवर्षान्ते च सा देवी कामाक्षीरूपधारिणी ।।८
स्वभक्तपालना चैव तत्र वासमकारयत् । शताद्धाब्दं कृतं राज्यं तेन वै कामवर्मणा ।।९
मिथुनं जनयामास भोगो भोगवती हि सा । विक्रमायैव नृपतिः सुतां भोगवतीं ददौ ।।१०
स्वराज्यं च स्वपुत्राय प्रददौ भोगवर्मणे । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालिवर्मा सुतोऽभवत् ।।११
महोत्सवं महाकाल्याः कृतवान्स च भूपतिः । तस्मै प्रसन्ना वरदा काली भूत्वा स्वयं स्थिता ।।१२
कलिका बहुपुष्पाणां सा चकार स्वहर्षतः । ताभिर्भवं च नगरं सञ्जातं च मनोहरम् ।।१३
कलिकाता पुरी नाम्ना प्रसिद्धाभून्महीतले । कौशिकस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।१४
कात्यायनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्य पुत्रो हेमवतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।१५
शिववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।।१६
रुद्रवर्मा च तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुः समम् । भोजवर्मा च तत्पुत्रस्त्यक्त्वा वै पैतृकं पदम् ।।१७
भोजराष्ट्रं वनोद्देशे कारयामास वीर्यवान् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गववर्मा नृपोऽभवत् ।।१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विन्ध्यवर्मा नृपोऽभवत् । स्वानुजाय स्वकं राज्यं दत्त्वा वङ्गमुपाययौ ।।१९
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखसेनस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाकस्तस्य चात्मजः ।।२०
दशवर्षं कृतं राज्यं लक्ष्मणस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माधवस्तत्सुतोऽभवत् ।।२१

ने सुपर्ण नाम के पुत्र को उत्पन्न किया ।१-६। पश्चात् सुपर्ण के रूपण और रूपण के कारवर्मा हुए, जिन्होंने अपना शक नाम परिवर्तन करके सनातनी महालक्ष्मी की उपासना की । तीन वर्ष तक आराधना करने के उपरांत कामाक्षी रूपधारिणी देवी ने अपने भक्त के पालनार्थ वहीं निवास किया । पचास वर्ष तक राज्योपभोग करने पर कामवर्मा के भोगवती एवं भोग नामक कन्या और पुत्र का एक जुड़वाँ उत्पन्न हुआ । राजा ने अपनी भोगवती पुत्री का पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराकर अपना राज्य अपने उस पुत्र भोगवर्मा को प्रदान किया । अनन्तर उस भोगवर्मा के कलिवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने महाकाली का महान् उत्सव किया। वरदायिनी भगवती ने उसके ऊपर प्रसन्न होकर कालीरूप में वहाँ अपनी स्थिति की तथा हर्षातिरेक होने से वहाँ असंख्य पुष्पों में कलियाँ निकल आईं। पुनः उन्हीं द्वारा एक मनोहर नगर का निर्माण हुआ, जो कलिकाता (कलकत्ता) नाम से इस भूतल पर प्रख्यात हुआ। पश्चात् उस राजा के कौशिक नामक पुत्र हुआ और कौशिक के कात्यायन, कात्यायन के हैमवत, हैमवत के शिववर्मा, शिववर्मा के भववर्मा, भववर्मा के रुद्रवर्मा, रुद्रवर्मा के भोजवर्मा हुए, जिस पराक्रमी ने वन के भीतर भोजराष्ट्र स्थापित किया। भोजवर्मा के गववर्मा, गववर्मा के विंध्यवर्मा हुए, जो अपना राज्य अपने छोटे भाई को सौंपकर स्वयं वंगदेश चले गये थे।७-१९। पुनः उनके सुखसेन तथा सुखसेन के बलाक नामक पुत्र हुआ, जिसने केवल दश वर्ष तक राज्य किया और शेष उपरोक्त राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक।

---

१. सिषेवे इति शेषः ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं केशवस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सूरसेनस्ततोऽभवत् ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो नारायणोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शान्तिवर्मा सुतोऽभवत् ॥२३
गङ्गाकूले शान्तिपुरं रचितं तेन धीमता । निवासं कृतवान्भूपः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२४
नदीवर्मा तस्य सुतो गङ्गादत्तवरो बली । चकार नगरीं रम्यां नदीहां गौडराष्ट्रगाम् ॥२५
गङ्गया च तदाहूतोऽभिज्ञो विद्याधरः स्वयम् । तेनैव रक्षिता चासीत्पुरी वेदपरायणा ॥२६
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महात्मना । गङ्गावंशस्ततो जातो विश्रुतोऽभून्महीतले ॥२७
शार्ङ्गदेवस्तस्य सुतो बलवान्हरिपूजकः । गौडदेशमुपागम्य हरिध्यानपरोऽभवत् ॥२८
दशवर्षं कृतं राज्यं गङ्गादेवस्तु तत्सुतः । विंशद्वर्षं कृतं राज्यं चानङ्गस्तस्य भूपतिः ॥२९
तनयो बलवांश्चासीद्गौडदेशमहीपतिः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो राजेश्वरोऽभवत् ॥३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नृसिंहस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभवत् ॥३१
राष्ट्रदेशमुपागम्य जित्वा तस्य नृपं बली । महीवतीं पुरीं रम्यामध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो महीपतिः ॥३३
जयचन्द्राज्ञया भूप उर्वीमायामिति स्मृताम् । नगरीं कारयामास तत्र वासमकारयत् ॥३४
कुरुक्षेत्रे हताः सर्वे क्षत्रियाश्चन्द्रवंशिनः । तदा महीपती राजा महावत्यधिपोऽभवत् ॥३५
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं सहोद्दीनेन वै ततः । कुरुक्षेत्रे मृतिं प्राप्ताः सुयोधनकलांशकाः ॥३६
घोरवर्मा तु नृपतिः सुतः परिहरस्य वै । कलिञ्जरे कृतं राज्यं शार्दूलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७

बलाक के लक्ष्मण, लक्ष्मण के माधव, माधव के केशव, केशव के सुरसेन, सुरसेन के नारायण, नारायण के शांतिवर्मा हुए, जिसने गंगातट पर शांतिपुर का निर्माण किया। शांतिवर्मा के नदीवर्मा और नदीवर्मा के गंगादत्त हुए, जिस बली ने गौडराष्ट्र में 'नदीहा' नामक नगरी का निर्माण किया। राजा गंगादत्त ने विद्याधर की आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्नकर उसके द्वारा अपनी उस धार्मिक नगरी की सुरक्षा की। उस महात्मा राजा के बीस वर्ष तक उस राज्यपद को प्रतिष्ठित करने के उपरांत उसी से गगावंश की ख्याति इस भूतल में हुई। उपरोक्त शेष राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। २०-२७ गंगादत्त के बलवान् एवं विष्णुभक्त शार्ङ्गदेव नामक पुत्र हुआ, जो गौडदेश में आकर सदैव भगवान् का ध्यान ही करता था। दशवर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके गंगादेव नामक पुत्र हुआ, जिसने बीस वर्ष तक उस पद को सुशोभित किया। पश्चात् उनके अनंग नामक पुत्र हुआ, जो बली एवं गौडदेश का अधीश्वर था। राजा अनंग के राजेश्वर, राजेश्वर के नृसिंह, और नृसिंह के कलिवर्मा नामक पुत्र हुआ, जिसने राष्ट्रदेश के अधीश्वर को पराजित कर रमणीक महावती (महोवा) नगरी में अपना सुखी-जीवन व्यतीत किया। तदनन्तर उनके घृतिवर्मा तथा घृतिवर्मा के महीपति (माहिल) नामक पुत्र हुआ, जिसने राजा जयचन्द्र की आज्ञा से 'उर्वी' 'माया' (उरइ) नामक नगरी का निर्माण कराकर वहाँ निवास किया। कुरुक्षेत्र के रणस्थल में चन्द्रवंशी आदि सभी राजाओं के विनष्ट हो जाने पर माहिल महोवा का राजा हुआ। बीस वर्ष राज्य करने के उपरांत उसी कुरुक्षेत्र में सहोद्दीन (सहाबुद्दीन) द्वारा उस सुयोधनांश की अब मृत्यु हो गई। शेष अन्य राजगणों ने उत्तरोत्तर अपने-अपने पिता के समान काल तक राज्य किया था। परिहर पुत्र घोरवर्मा के कलिंजर में राज्य करते हुए शार्दूल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके वंश में उत्पन्न क्षत्रियगण शार्दूलीय (वघेल) वंशीय कहे जाते

तदन्वये च ये भूपाः शार्दूलीयाः प्रकीर्तिताः । भूपानां बहुधः राष्ट्रं शार्दूलान्वयसम्भवम् ।।३८
बभूव सर्वतो भूमौ महामायाप्रसादतः । इति ते कथितं विप्र पावकीयमहीभुजाम् ।।३९
कुलं सकलपापघ्नं यथैव शशिसूर्ययोः । पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा जातः हरिः स्वयम् ।।४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

मध्याह्नकाले सम्प्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । चाक्षुषान्तरमेवापि महावायुर्बभूव ह ।।१
तत्प्रभावेन हेमाद्रिः कम्पमानः पुनः पुनः । यथा वृक्षस्तथैवासौ तत्कम्पादेव मण्डलः ।।२
नभसो भूतले प्राप्तस्तदा भूमिः प्रकम्पिता । बभूव मुनिशार्दूल सर्वलोकविनाशिनी ।।३
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च जलभूता बभूविरे । लोकालोकस्तदा शेषोऽभवत्सोत्तरपर्वतः ।।४
शेषा भूमिर्लयं प्राप्ता मुने मन्वन्तरे लये । सहस्राब्दान्तरे भूमिर्बभूव जलमध्यगा ।।५
तदा स भगवान्विष्णुर्भवेन विधिना सह । शैशुमारं शुभं चक्रं चकार नभसि स्थितम् ।।६
गृहीत्वा सकलास्तारा ग्रहान्सर्वान्यथाविधि । स्थापयामास भगवान्यथायोग्यं पितामहः ।।७

हैं। उस शार्दूल (बघेल) वंश राजाओं का पृथ्वी में चारों ओर महामाया के प्रसाद से विस्तृत अनेक प्रकार का राष्ट्र हुआ। विप्र ! इस प्रकार अग्निवंशीय राजाओं के सूर्य-चन्द्रवंश के समान पवित्रकुल का वर्णन कर दिया गया। पुनः अब मैं जिस प्रकार भगवान् अवतरित हुए वह कथा सुनाऊंगा।२८-४०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त।४।

अध्याय ५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के मध्यान्ह काल के समय महावायु का प्रकोप प्रारम्भ हुआ जिससे प्रभावित होकर हिमालय वृक्ष की भाँति बार-बार काँपने लगा। उसके कम्पित होने पर वह वायुमंडल आकाश से पृथ्वी पर आया, जिससे पृथ्वी में भूचाल होने लगा। मुनिशार्दूल ! उस भूचाल से समस्त लोकों का विनाश हो गया सातों द्वीप और समुद्र सभी जलमय हो गये। उस समय केवल उत्तर की ओर स्थित लोकालोक पर्वत ही शेष रहा। मुने ! शेष भूमि के लय होने पर, जबकि मन्वन्तर काल का भी विलयन हो गया, उसके सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त पृथ्वी भी जलमध्य में विलीन हो गई।१-६। उस समय शिव और ब्रह्मा समेत भगवान विष्णु ने उस शैमुमार शुभ चक्र को आकाश में स्थापित किया। पुनः उन्होंने उन ज्योतिष्चक्रों (ज्योतिर्गणो) द्वारा पृथ्वी का शोषण करना आरम्भ किया, जिससे वह पृथ्वी दश सहस्र

पुनर्वै ज्योतिषां चक्रैः शोषिता सकला मही । स्थलीभूयायुताब्दान्ते दृश्यमाना बभूव ह ।।८
तदा स भगवान्ब्रह्मा मुखात्सोमं चकार ह । द्विजराजं महाप्राज्ञं सर्ववेदविशारदम् ।।९
भुजाभ्यां भगवान्ब्रह्मा क्षत्रराजं महाबलम् । सूर्यं च जनयामास राजनीतिपरायणम् ।।१०
ऊरुभ्यां वैश्यराजं च समुद्रं सरितां पतिम् । रत्नाकरं च कृतवान्परमेष्ठी पितामहः ।।११
पद्भ्यां च जनयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् । दक्षं नाम कलाभिज्ञं शूद्रराजं सुकृत्यकम् ।।१२
सोमाद्वै ब्राह्मणा जाताः सूर्याद्राजन्यवंशजाः । समुद्रात्सकला वैश्या दक्षाच्छूद्रा बभूविरे ।।१३
सूर्यमण्डलतो जातो मनुर्वैवस्वतः स्वयम् । तस्य राज्यमभूत्सर्वं प्राणिनां लोकवासिनाम् ।।१४
दिव्यानां च युगानां च तज्ज्ञेयं चैकसप्ततिः । तदा स भगवान्विष्णुर्विश्वरूपाऽवतारकः ।।१५
विष्णुः पूर्वार्द्धतो जातः परार्द्धाद्वामनः स्वयम् । बालः सत्ययुगे देवो विश्वरूपः सनातनः ।।१६
चतुश्शतानि वर्षाणि परमायुर्नृणां तदा । त्रेतायां यौवनं प्राप्तः पूर्वार्द्धात्सम्भवो हरेः ।।१७
वर्षाणां त्रिशतानां च नृणामायुः प्रकीर्तितम् । द्वापरे वार्द्धिको देवो नृणामायुः शतद्वयम् ।।१८
कलौ तु मरणं प्राप्तो विश्वरूपो हरिः नरो । नृणामायुः शताब्दं च केषाञ्चिद्धर्मशालिनाम् ।।१९
परार्द्धाद्वामनो देवो महेन्द्रावरजो हरिः । चतुर्भुजो महाश्यामो गरुडोपरि संस्थितः ।।२०
विश्वरूपहितार्थाय त्रियुगी सम्बभूव ह । वामनार्द्धाच्च त्रियुगी जातो नारायणः स्वयम् ।।२१
श्वेतरूपो हरिः सत्ये हंसाख्यो भगवान्स्वयम् । त्रेतायां रक्तरूपश्च यज्ञाख्यो भगवान्स्वयम् ।।

वर्ष के निरन्तर प्रयत्न करने पर स्थल के रूप में दिखाई देने लगी । उस समय भगवान् ब्रह्मा ने अपने मुख द्वारा सोम को उत्पन्न किया, जिन्हें द्विजराज, महाबुद्धिमान एवं सर्ववेद विशारद कहा जाता है । पुनः भगवान् ब्रह्मा ने अपनी भुजाओं द्वारा क्षत्रराज सूर्य को उत्पन्न किया, जो महाबली एवं राजनीति के विशेषज्ञ हैं । उसी प्रकार ऊरू ने वैश्यराजसमुद्र को उत्पन्न किया, जिन्हें सरिताओं का पति और रत्नाकर कहा गया है तथा परम बुद्धिमान-पितामह जी ने चरणों से विश्वकर्मा दक्ष को उत्पन्न किया, जो कलाओं के विशेषज्ञ, शूद्रराज एवं सुकृत्यकर्मा कहे जाते हैं । पश्चात् द्विजराज सोम द्वारा ब्राह्मण, सूर्य द्वारा क्षत्रियगण, समुद्र द्वारा समस्त वैश्य और सूर्यमण्डल द्वारा वैवस्वतमनु उत्पन्न हुए, जिनका समस्त जीवलोक में एकच्छत्र राज्य स्थित है । दिव्य युगों के एकहत्तर बार व्यतीत होने पर भगवान् विष्णु विश्वरूप से अवतरित होते हैं । समस्त युगकाल के पूर्वार्द्ध में विष्णु और उत्तरार्द्ध में स्वयं वामन अवतरित होते हैं । सत्ययुग में विश्वरूप सनातन भगवान् का बाल्यरूप प्रकट होता है । उस समय मनुष्यों की आयु चार सौ वर्ष की होती हैं, पूर्वार्द्ध में उत्पन्न भगवान् विष्णु त्रेतायुग में युवा होते हैं, उस समय मनुष्यों की आयु तीन सौ वर्ष की कही गई है और द्वापर में उस (विष्णु) देव की वृद्धावस्था होती है उस समय मनुष्यों की आयु दो सौ वर्ष की होती है तथा कलियुग में विश्वरूप और सनातन विष्णु का स्वयं मरण हो जाता हैं । इस युग में कुछ धार्मिक मनुष्यों की आयु सौ वर्ष की होती है ।७-१९। परार्द्धकाल में अवतरित होकर वामन के रूप में भगवान् जो इन्द्र के अनुज कहे जाते हैं, चार भुजाएँ, श्यामल वर्ण, धारणकर गरुड़पर स्थित होकर विश्वरूप के हितार्थ त्रियुगी होते हैं । उन त्रियुगी वामनार्द्ध के द्वारा स्वयं नारायण उत्पन्न होते है, सत्ययुग में स्वयं भगवान् श्वेतरूप धारणकर हंसनाम से प्रख्यात होते हैं । उसी प्रकार त्रेता में

द्वापरे पीतरूपश्च स्वर्णगर्भो हरिः स्वयम् ॥२२
कलिकाले तु सम्प्राप्ते सन्ध्यायां द्वापरे युगे । कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला ॥
एकभूता च देवक्यां जातो विष्णुस्तदा स्वयम् ॥२३
वसुदेवगृहे रम्ये मथुरायां च देवताः । ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुर्देवं परं ब्रह्म सनातनम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभं वचः । देवानां च हितार्थाय दैत्यानां निधनाय च ॥
अहं कलौ च बहुधा भवामि सुरसत्तमाः ॥२५
दिव्यं वृन्दावनं रम्यं सूक्ष्मं भूतलसंस्थितम् । तत्राहं च रहः क्रीडां करिष्यामि कलौ युगे ॥२६
सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीभूताः समन्ततः । रंस्यन्ते हि मया सार्द्धं त्यक्त्वा भूमण्डलं तदा ॥२७
राधया प्रार्थितोऽहं वै यदा कलियुगान्तके । समाप्य च रहः क्रीडां कल्की च भवितास्म्यहम् ॥२८
युगान्तप्रलयं कृत्वा पुनर्भूत्वा द्विधातनुः । सत्यधर्मं करिष्यामि सत्ये प्राप्ते सुरोत्तमाः ॥२९
इति श्रुत्वा तु ते देवास्तत्रैवान्तर्लयं गताः । एवं युगे युगे क्रीडा हरेरद्भुतकर्मणः ॥३०
ये तु वै विष्णुभक्ताश्च ते हि जानन्ति विश्वगम् । यथैव नृपतेर्दासाः स्वराज्ञः कार्यगौरवम् ॥
जानन्ति नापरे विप्र तथा दासा हरेः स्वयम् ॥३१
विष्णुवाञ्छानुसारेण विष्णुमाया सनातनी । रचित्वा विविधाँल्लोकान्महाकाली बभूव ह ॥३२
कृत्वा कालमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । पश्चात्तु भक्षयित्वा तान्महागौरी भविष्यति ॥३३

यज्ञ नामक रक्तवर्ण एवं द्वापर में हिरण्यगर्भ नामक पीत वर्ण के अवतरित होते हैं । द्वापर के संध्या समय में कलिकाल के आगमन होने पर विष्णु की समस्तकला और वामन की एक कला एक होकर मथुरा निवासी वसुदेव के घर देवकी के गर्भ से भगवान् विष्णु के रूप में आविर्भूत हुई । उस समय समस्त ब्रह्मा आदि देवगणों ने उस सनातन ब्रह्म की स्तुति की । अनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् ने देवों के हितार्थ और दैत्यों के विनाशार्थ अनेक रूप में प्रकट होऊँगा और इस पृथ्वी में सूक्ष्मरूप में स्थित उस दिव्य वृन्दावन में एकान्त क्रीडा भी करूँगा यह कहा । उस समय घोर कलि जानकर भूमण्डल के त्यागपूर्वक समस्त वेद गोपी के रूप में वहाँ प्रकट होकर मेरे साथ रमण करेंगे । पुनः कलि के अंत में राधिका जी के प्रार्थना करने पर मैं उस एकान्त क्रीडा को समाप्त करके कल्की अवतार लूँगा । सुरसत्तम वृन्द । पुनः युगान्त प्रलय करने के उपरांत मैं उस समय युग के आरम्भ में अपनी शरीर को दो रूप में विभक्तकर सत्यधर्म करूँगा । इसे सुनकर वे देवगण भी उसी में विलीन हो गये ।२०-३१ इसी प्रकार उस अद्भुत कर्मा भगवान् की प्रत्येक युगों में क्रीडा होती रहती है, किन्तु विष्णुभक्त ही उस ब्रह्माण्डनायक को जानता है अन्य नहीं। विप्र ! जिस प्रकार राजा के कार्यगौरव को उसका सेवक ही जान सकता है अन्य नहीं। उसी प्रकार भगवान् के चरित्रों को उनके दास के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता है। विष्णु की सनातनी माया उनकी इच्छानुसार अनेक भाँति के लोकों की रचना करके महाकाली का स्वरूप धारणकर लेती है, जिससे कालमय एवं चराचर इस सम्पूर्ण जगत् का भक्षणकर लेती है और तदनन्तर वही महागौरी के रूप में

नमस्तस्यै महाकाल्यै विष्णुमाये नमोनमः । महागौरि नमस्तुभ्यमस्मान्पाहि भयान्वितान् ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

ऋषिरुवाच

महीराजान्मुनिश्रेष्ठ के राजानो बभूविरे । तन्नो वद महाभाग सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥१

सूत उवाच

पैशाचः कुतुकोद्दीनो देहलीराज्यमास्थितः । वलीगढं महारम्यं यादवै रक्षितं पुरम् ॥
ययौ तत्र स पैशाचः शूरायुतसमन्वितः ॥२
वीरसेनस्य वै पौत्रं भूपसेनं नृपोत्तमम् । स जित्वा कुतुकोद्दीनो देहलीग्रामसंस्थितः ॥३
एतस्मिन्नन्तरे भूपा नानादेश्याः समागताः । जित्वा स कुतुकोद्दीनः स्वदेशात्तैर्निराकृतः ॥४
सहोद्दीनस्तु तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य देहलीम् । जित्वा भूपान्दैत्यवरो मूर्तिखण्डमथाकरोत् ॥५
तत्पश्चाद्बहुधा म्लेच्छा इहागत्य समन्ततः । पञ्चषट्सप्तवर्षाणि कृत्वा राज्यं लयं गताः ॥६
अद्यप्रभृति देशेऽस्मिञ्छतवर्षान्तरे हि ते । भूत्वा चाल्पायुषो मन्दा देवतीर्थविनाशकाः ॥७

परिवर्तित हो जाती है। अतः विष्णु की उस माया को नमस्कार है और महाकाली को बार-बार नमस्कार है, तथा महागौरी को नमस्कार है, वे हम भयभीतों की रक्षा करें।३२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय
इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक पाँचवां अध्याय समाप्त।५।

अध्याय ६

प्रमरवंश का वर्णन

ऋषि बोले—मुनिश्रेष्ठ ! (पृथ्वीराज) के पश्चात् कौन-कौन राजा हुए ! महाभाग ! इसे हमें बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।१

सूत बोले—दश सहस्र यवन सेनाओं को लेकर वहाँ पहुँचने पर उसने राजा वीरसेन के पौत्र नृपश्रेष्ठ भूपसेन को पराजित कर पुनः दिल्ली लौटकर सुखीजीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। किन्तु उसी बीच अनेक प्रान्तों के राजाओं ने वहाँ पहुँचकर उससे घोर संग्राम करके उस कुतुकोद्दीन (कुतुबुद्दीन) को अपने इस भारत प्रदेश से बाहर किया। उसे सुनकर सहोद्दीन (सहाबुद्दीन) पुनः दिल्ली आकर उन राजाओं पर विजय प्राप्तिपूर्वक मूर्तियों के तोड़ने-फोड़ने का कार्य करता रहा। उसके अनन्तर अनेक म्लेच्छ वंश के लोगों ने यहाँ भारत में आकर पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया। पश्चात् उनका विलय हो गया। मुनिश्रेष्ठ ! इसीलिए आज से सौ वर्ष के भीतर ही देवमूर्तियों तथा तीर्थों के

म्लेच्छभूपा मुनिश्रेष्ठास्तस्माद्यूयं मया सह । गन्तुमर्हथ वै शीघ्रं विशालां नगरीं शुभाम् ।।८
इति श्रुत्वा तु वचनं दुःखात्सन्त्यज्य नैमिषम् । ययुः सर्वे विशालायां हिमाद्रौ गिरिसत्तमे ।।९
तत्र सर्वे समाधिस्था ध्यात्वा सर्वमयं हरिम् । शतवर्षान्तरे सर्वे ध्यानाद्ब्रह्मगृहं ययुः ।।१०

व्यास उवाच

इत्येवं सकलं भाव्यं योगाभ्यासवशाद्द्रुतम् । वर्णितं च मया तुभ्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।११

मनुरुवाच

भगवन्वेदतत्त्वज्ञ सर्वलोकशिवङ्कर । अहं मायाभवो जातो भवान्वेदभवो भुवि ।।१२
अविद्यया च सकलं मम ज्ञानं समाहृतम् । अतोऽहं विविधा योनीर्गृहीत्वा लोकमागतः ।।१३
परं ब्रह्मैव कृपया दृष्ट्वा मां मन्दभागिनम् । व्यासरूपं स्वयं कृत्वा समुद्धर्तुमुपागतः ।।१४
नमस्तस्मै मुनीन्द्राय वेदव्यासाय साक्षिणे । अविद्यामोहभावेभ्यो रक्षणाय नमोनमः ।।१५
पुनरन्यच्च मे ब्रूहि सूताद्यैः किं कृतं मुने । तत्सर्वं कृपया स्वामिन्वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ।।१६

व्यास उवाच

ब्रह्माण्डे ये स्थिता लोकास्ते सर्वेऽस्मिन्कलेवरे । अहङ्कारो हि जीवात्मा सर्वः स्यात्कोटिहीनकः ।।१७
पुराणोऽणोरणीयांश्च षोडशात्मा सनातनः । इन्द्रियाणि मनश्चैव पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।।१८

विनाशक वे प्रथम यवन भूपगण अल्पायु होकर विनष्ट होते रहेंगे । अतः तुम लोग मेरे साथ उस विशाला नामक श्रेष्ठपुरी चलने के लिए तैयारी करो । इसे सुनकर दुःख प्रकट करते हुए किसी प्रकार नैमिषारण्य तीर्थ का त्यागकर वे मुनिवृन्द पर्वतश्रेष्ट उस हिमालय पर स्थित विशाला पुरी के लिए प्रस्थित हो गये । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने समाधिस्थ होकर भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया ।पश्चात् वैसे ही ध्यान करते हुए वे ऋषि ब्रह्मलोक पहुँच गये ।२-१०

व्यासजी बोले—योग के अभ्यास वश जानी गई इन बातों को मैंने सुना दिया । अब इसके अतिरिक्त क्या सुनना चाहते हो ! ११

मनु ने कहा—भगवन् ! आप वेद के मर्मज्ञ और समस्त लोकों के कल्याणप्रद हैं तथा इस भूतल में माया द्वारा उत्पन्न और आप वेद द्वारा । इसीलिए अविद्या द्वारा मेरा समस्तज्ञान, अपहृत हो जाने के नाते मैं अनेकों योनियों में भ्रमण करता हुआ इस लोक में आया हूँ । उस परब्रह्म की यह असीम कृपा थी, जो मुझ ऐसे मन्दभागी को देखकर मेरे उद्धारार्थ व्यासरूप धारण कर यहाँ दर्शन दिया । अतः उस मुनीन्द्र वेदव्यास को नमस्कार है, जो कर्म का साक्षी रूप है और अविद्याजनित भाव-बन्धनों से मुक्त करने वाले उस ब्रह्मरूप को बार-बार नमस्कार है । मुने । तदुपरांत सूतादिक मुनियों ने क्या किया । स्वामिन् ! मुझे उन सभी को पुनः बताने की कृपा कीजिये ।१२-१६।

व्यासजी बोले—ब्रह्माण्ड में स्थित सभी लोकों के और इस शरीर में अहंकार ही जीवात्मा कहलाता है, जो अत्यन्त हीन होता है। पुराण (प्राचीन), अणु (सूक्ष्म) और सूक्ष्मतर आदि भेद से वह सनातन परात्मा ही आत्मा कहलाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रवण, नेत्र, नासिका, जिह्वा, एवं त्वक्), पाँच

ज्ञेयो जीवः शरीरेऽस्मिन्स ईशगुणबन्धितः । ईशो ह्यष्टादशात्मा वै शङ्करो जीवशङ्करः ॥१९
बुद्धिर्मनश्च विषया इन्द्रियाणि तथैव च । अहंकारस्सचेशो वै महादेवः सनातनः ॥२०
जीवो नारायणस्साक्षाच्छङ्करेण विमोहितः । स बद्धस्त्रिगुणैः पाशैरेकश्च बहुधाऽभवत् ॥२१
कालात्मा भगवानीशो महाकल्पस्वरूपकः । शिवकल्पो ब्रह्मकल्पो विष्णुकल्पस्तृतीयकः ॥
ईशनेत्राणि तान्येव बन्धकल्पश्चतुर्थकः ॥२२
वायुकल्पो वह्निकल्पो ब्रह्माण्डो लिङ्गकल्पकः । ईशवक्त्राणि पञ्चैव तत्त्वज्ञैः कथितानि वै ॥२३
भविष्यकल्पश्च तथा तथा गरुडकल्पकः । कल्पो भागवतश्चैव मार्कण्डेयश्च कल्पकः ॥२४
वामनश्च नृसिंहश्च वराहो मत्स्यकूर्मकौ । ज्ञानात्मनो महेशस्य ज्ञेया दश भुजा बुधैः ॥२५
अष्टादशदिनेष्वेव ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कल्पाश्चाष्टादशास्सर्वे बुधैर्ज्ञेया विलोमतः ॥२६
कूर्मकल्पश्च तत्राद्यो मत्स्यकल्पो द्वितीयकः । तृतीयः श्वेतवाराहः कल्पो ज्ञेयः पुरातनैः ॥२७
द्विधा च भगवान्ब्रह्मा सूक्ष्मः स्थूलोऽगुणो गुणी । सगुणः स विराण्नाम्ना विष्णुनाभिसमुद्भवः ॥२८
निर्गुणोऽव्ययरूपश्चाव्यक्तजन्मा स्वभूः स्वयम् । ब्रह्मणः सगुणस्यैव शतायुः कालनिर्मितम् ॥२९
ऊनविंशत्सहस्राणि लक्षैको मानुषाब्दकैः । एभिर्वर्षैर्दिनं ज्ञेयं विराजो ब्रह्मणः स्वयम् ॥३०
निर्गुणोऽव्यक्तजन्मा च कालात्सर्वेश्वरः परः । अव्यक्तं प्रकृतिर्ज्ञेया द्वादशाङ्गानि वै ततः ॥३१
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरव्यक्तस्य स्मृतानि वै । अव्यक्ताच्च परं ब्रह्म सूक्ष्मज्योतिस्तदव्ययम् ॥३२

कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ) और मन संयुक्त इस शरीर में रहने वाला जीव ही ज्ञेय (जानने के योग्य) है, जो इस शरीर का अधिष्ठाता होकर (तीनों) गुणों (सत्व, रज्, और तम्) द्वारा बँधा हुआ है । वह परात्मा अष्टादशात्मा और जीव का कल्याणकर्त्ता शंकर कहा जाता है ।बुद्धि मन और इन्द्रियाँ यही इसके विषय हैं । जीवात्मा अहंकार ही ईश महादेव एवं सनातन कहा जाता है । किन्तु वही जीवात्मा होने पर, जो साक्षात् ब्रह्म रूप है, शंकर द्वारा विमोहित होने पर तीनों गुणरूपी पाश से आवद्ध होता है और वही एक से अनेक भी, जो काल, भगवान्, ईश एवं महाकल्प रूपधारी कहा जाता है । १७-२२। शिवकल्प, ब्रह्मकल्प और विष्णुकल्प, यही तीनों कल्प उस ईश के नेत्र हैं और वही ईश का नेत्र चौथा बन्धकल्प कहा गया है । वायुकल्प, वह्निकल्प, ब्रह्माण्ड और लिंगकल्प को ईश का पाँचों मुख उन तत्वज्ञों ने बताया है । भविष्य कल्प, गरुडकल्प, भागवतकल्प और मार्कण्डेयकल्प तथा वामन, नृसिंह, वाराह, मत्स्य और कूर्म (कच्छप) उस ज्ञानात्मा महेश्वर की दस भुजाएँ हैं । उस अव्यक्त ब्रह्म के ये अट्ठारहकल्प अट्ठारह दिन में निर्मित होते हैं, जिनकी गणना के लिए विद्वानों ने विलोमतः बताया है । पहला कूर्मकल्प, दूसरा मत्स्य कल्प और तीसरे श्वेत वाराहकल्प को जानने के लिए पुरातन महर्षियों ने सर्वप्रथम प्रयत्न किया है । भगवान् ब्रह्मा ने अपने को दो रूपों में निभक्तकर सूक्ष्म, स्थूल, निर्गुण, गुणी, सगुण और विराट रूप में अपनी ख्याति की है, जिनका भगवान् विष्णु की नाभि से प्रकट होना बताया जाता है । उन्हीं निर्गुण, व्ययरूप, अव्यक्तजन्मा एवं स्वयंभू (अपने द्वारा उत्पन्न होने वाले) कहे जाने वाले सगुण ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु होती है । मनुष्यों के अस्सी सहस्र वर्षों का उस विराट् ब्रह्मा का एक दिन होता है । निर्गुण एवं अव्यक्त जन्मा वह सर्वेश्वर काल से भी महान् है । उस परमेश्वर की अव्यक्त प्रकृति और बारह अंग बताये गये हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय मन एवं बुद्धि यही उस अव्यक्त के अंग हैं। अव्यक्त से वह

यदा व्यक्ते स्वयं प्राप्तोऽव्यक्तजन्मा हि संस्मृतः । शतवर्षसमाधिस्थो यस्तिष्ठेच्च निरन्तरम् ॥३३
सूक्ष्मो मनोऽनिलो भूत्वा गच्छेद्वै ब्रह्मणः पदम् । सत्यलोकमिति ज्ञेयं योगगम्यं सनातनम् ॥३४
तत्र स्थाने तु मुनयो गताः सर्वे समाधिना। तत्रोषित्वा च लक्षाब्दं भूर्लोकात्क्षणमात्रकम् ॥३५
सच्चिदानन्दघनकं ततः प्राप्ताः कलेवरे । नेत्राणि च समुन्मील्य सम्प्राप्ते द्वितयाह्निके ॥३६
ददृशुर्मनुजान्सर्वान्पशुतुल्यान्हि सूक्ष्मकान् । षष्टब्दायुर्युतान्घोरान्सार्द्धकिष्कुद्वयोन्नतान् ॥३७
क्वचित्क्वचित्स्थिता वर्णा वर्णसङ्करसन्निभाः । सर्वे म्लेच्छाश्च पाषण्डा बहुरूपमतो स्थिताः ॥३८
तीर्थानि सकला वेदास्त्यक्त्वा भूमण्डलम् तदा । गोप्यो भूत्वा च हरिणा सार्द्धं चक्रुर्महोत्सवम् ॥३९
पाषण्डा बहुजातीया नानामार्गप्रदर्शकाः ।कलिना निर्मितान्वर्णान्वञ्चयित्वा स्थिता भुवि ॥४०
इति दृष्ट्वा तु मुनयो रोमहर्षणमन्तिके । गत्वा तत्र भविष्यन्ति ततः प्राञ्जलयो हि ते ॥४१
तैश्च तत्र स्तुतः सूतो योगनिद्रां सनातनीम् । कथयिष्यति सन्त्यज्य कल्पाख्यानं मुनीन्प्रति ॥
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथा सूतेन वर्णितम् ॥४२

सूत उवाच

कल्पाख्यानं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं योगनिद्रया । तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा लक्षाब्दान्ते यथाभवत् ॥४३
मुकुलान्वयसम्भूतो म्लेच्छभूपः पिशाचकः । नाम्ना तिमिरलिङ्गश्च मध्यदेशमुपाययौ ॥४४

परब्रह्म आविर्भूत होता है, जिसकी सूक्ष्म ज्योति अव्यय कही जाती है । उसके अव्यक्त अवस्था में स्वयं प्राप्त होने पर उसे अव्यक्तजन्मा कहा जाता है, जो सगुण अवस्था में प्राप्त होकर निरन्तर सौ वर्ष तक समाधिस्थ रहता है । यह सूक्ष्ममन वायु के रूप में सतत प्रयत्न करते हुए ब्रह्मा के जिस स्थान की प्राप्ति करता है, वही सनातन एवं योग द्वारा जानने योग्य सत्यलोक बताया गया है ।२३-३५। उस स्थान पर पहुँचकर महर्षिगण समाधिस्थ होकर एक लक्ष वर्ष तक रहने के उपरान्त क्षणमात्र में भूलोक से सच्चिदानन्द धन की उस शरीर में प्रविष्ट हो गये । पश्चात् दूसरे दिन के आरम्भ में आँखें खोलने पर उन लोगों ने सभी मनुष्यों को पशुतुल्य सूक्ष्म रूप में देखा, जो साठ वर्ष की आयु, घोर एवं दो बित्ते के ऊँचे थे । कहीं-कहीं पर तो वर्णशंकर के अनुसार जातियाँ दिखायी देती थीं, किन्तु वे सभी लोग पाखंडी, म्लेच्छ तथा अनेक रूपधारी थे। उस समय सभी तीर्थ और चारों वेद पृथ्वी परित्यागकर गोपी के रूप में भगवान् के साथ उस महोत्सव में सम्मिलित हो गये थे । इस भूतल में कलि ने सभी मनुष्यों को पाखण्डी, अनेक जातियाँ, एवं अनेक पंथ के प्रदर्शक बनाकर उन्हें अपने धर्मकर्म से वंचितकर स्वयं दृढ़ स्थिति कर लिया, ऐसा देखकर महर्षिवृन्द रोमहर्षण (सूतजी) के पास पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। तथा वहाँ पहुँचकर मन ही मन हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम भी । इस प्रकार उन महर्षियों द्वारा स्तुत होने पर सूतजी अपनी उस सनातनी योगनिद्रा का त्यागकर उन्हें कल्प के आख्यान सुनायेंगे । इन्द्रियश्रेष्ठ ! सूत द्वारा वर्णित किये जाने वाले आख्यान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ३६-४२

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! उस एक लाख वर्ष के उपरान्त जो कुछ हुआ है, मैंने अपनी योगनिद्रा द्वारा उसका पूर्णज्ञान कर लिया है, अतः उस कल्प के आख्यान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । म्लेच्छों में तिमिर लिङ्ग (तैमूर) नामक राजा हुआ, जो मुकुल (मुगल) वंश में उत्पन्न एवं

आर्यान्म्लेच्छांस्तदा भूपाञ्जित्वा कालस्यरूपकः । देहलीनगरीमध्ये महावधमकारयत् ॥४५
आहूय सकलान्विप्रानार्यदेशनिवासिनः । उवाच वचनं धीमान्यूयं मूर्तिप्रपूजकाः ॥४६
निर्मिता येन या मूर्तिस्तस्य पुत्रीसमा स्मृता । तस्याः किं पूजनं शुद्धं शालग्रामशिलामयम् ॥
विष्णुदेवश्च युष्माभिः प्रोक्तः स तु न वै हरिः ॥४७
अतो वः सकला वेदाः शास्त्राणि विविधानि च । वृथाकृतानि मुनिभिर्लोकवञ्चनहेतवे ॥
इत्युक्त्वा तान्बलाद्गृह्य ज्वलदग्नौ समाक्षिपत् ॥४८
शालग्रामशिलाः सर्वा बलात्तेषां सुपूज्यकाः । गृहीत्वा चोष्ट्रपृष्ठेषु समारोप्य गृहं ययौ ॥४९
तैत्तिरं देशमागम्य दुर्गं तत्र चकार सः । शालग्रामशिलानां च स्वासनारोहणं कृतम् ॥५०
तदा तु सकलाः देवा दुःखिता वासवं प्रभुम् । समूचुर्बहुधालप्य देवदेवं शचीपतिम् ॥५१
वयं तु भगवन्सर्वे शालग्रामशिलास्थिताः । त्यक्त्वा मूर्तीश्च सकलाः कृष्णांशेन प्रबोधिताः ॥
शालग्रामशिलामध्ये वसामो मुदिता वयम् ॥५२
शिलास्सर्वाश्च नो देव शालदेशसमुद्भवाः । ताश्च वै म्लेच्छराजेन स्वपदारोहणीकृताः ॥५३
इति श्रुत्वा तु वचनं देवानां भगवान्स्वराट् । ज्ञात्वा वलिकृतं सर्वं देवपूजानिराकृतम् ॥५४
चुकोप भगवानिन्द्रो दैत्यान्प्रत्यभ्रवाहनः । गृहीत्वा वज्रमतुलं स्वायुधं दैत्यनाशनम् ॥
तैत्तिरे प्रेषयामास देशे म्लेच्छनिवासके ॥५५

पिशाच धर्मी था। उस कालरूपी तिमिरलिंग (तैमूर) ने मध्यदेश में जाकर आर्यों तथा म्लेच्छराजों पर विजय प्राप्त करते हुए दिल्ली नगर में पहुँचकर भीषण वध करना आरम्भ किया। आर्य देश निवासी सभी ब्राह्मणों को बुलाकर उसने लोगों से कहा—आप लोग मूर्ति के पुजारी हैं तथा जिस व्यक्ति द्वारा उस मूर्ति का निर्माण हुआ वह उसके पुत्र के समान है। इसलिए उस मूर्ति का पूजन करना उचित हो सकता है ? क्योंकि शिलामय शालिग्राम को तुम लोगों ने विष्णुदेव बताया है, अतः वे शालिग्राम निर्मित होने के नाते विष्णु नहीं हो सकते हैं। इसलिए मेरा कहना है कि तुम्हारे मुनियों ने तुम्हारे वेदों एवं शास्त्रों को लोगों को ठगने के लिए व्यर्थ बनाया है।४३-५०। इतना कहकर उन ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रज्जलित अग्नि में डलवा दिया। अनन्तर शालग्राम शिला और उसके पुजारियों को बलात् पकड़कर ऊँटों पर उन्हें बैठाकर साथ में लिए अपने घर गया। वहाँ पहुँचकर उस तैत्तिर देश में एक दुर्ग (किले) का निर्माण कराकर रहने लगा और शालिग्राम को अपनी शय्या का आरोहण (पावदान) बनाया। उस समय समस्त देवों ने दुःखी होकर अपने स्वामी इन्द्र के पास पहुँचकर उन देवनायक एवं शचीपति से सभी वृत्तान्त का वर्णन किया। भगवन् ! भगवान् कृष्णांश के द्वारा प्रबोधित होने पर हमलोग सभी मूर्तियों को त्यागकर शालिग्राम शिलाओं के मध्य में सहर्ष निवास करते हैं तथा देव ! वे शिलाएँ शालदेश में उत्पन्न होती हैं। किन्तु उस म्लेच्छराज ने उन शिलाओं को अपने पैर का आरोहण (पावदान) बना लिया है। इसे सुनकर देवसम्राट् भगवान् इन्द्र के समस्त देव-पूजन को बलि द्वारा तिरस्कृत करना जानकर दैत्यों के ऊपर महान् क्रोध किया। मेघवाहन इन्द्र ने अपने उस दैत्यनाशक एवं अतुल वज्रायुध को ग्रहणकर उन्हें म्लेच्छों के निवासभूत तैत्तिर प्रदेश में भेजा। वहाँ उनके शब्दों से वह सम्पूर्ण देश कई

तस्य शब्देन सकला देशाश्च बहुभिन्नकाः । स म्लेच्छो मरणं प्राप्तस्तदा सर्वसभाजनैः ।।५६
शालग्रामशिलाः सर्वा गृहीत्वा विबुधास्तदा । गण्डक्यां च समाक्षिप्य स्वर्गलोकमुपाययुः ।।५७
महेन्द्रस्तु सुरैः सार्द्धं देवपूज्यमुवाच ह । महीतले कलौ प्राप्ते भगवन्दानवोत्तमाः ।।५८
वेदधर्मं समुल्लङ्घ्य मम नाशनतत्पराः । अतो मां रक्ष भगवन्देवैः सार्द्धं कलौयुगे ।।५९

जीव उवाच

महेन्द्र तव या पत्नी शची नाम्ना महोत्तमा । ददौ तस्यै वरं विष्णुर्भवितास्मि सुतः कलौ ।।६०
त्वदाज्ञया च सा देवी पुरीं शान्तिमयीं शुभाम् । गौडदेशे च गङ्गायाः कूले लोकनिवासिनीम् ।।६१
प्रत्यागत्य द्विजो भूत्वा कार्यसिद्धिं करिष्यति । भवान्वै ब्राह्मणो भूत्वा देवकार्यं प्रसाधय ।।६२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं रुद्रैरेकादशैः सह । अष्टभिर्वसुभिः सार्धमश्विभ्यां स च वासवः ।।६३
तीर्थराजमुपागम्य प्रयागं च रविप्रियम् । माघे तु मकरे सूर्ये सूर्यदेवमतोषयत् ।।६४
बृहस्पतिस्तदागत्य सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । इन्द्रादीन्कथयामास द्वादशाध्यायमापठन् ।।६५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

भागों में छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया और वह म्लेच्छराज अपने कुल समेत विनष्ट हो गया। पश्चात् देवों ने उस शालग्राम शिला को लेकर उस गंडकी में डालकर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर महेन्द्र देव ने देवों समेत गुरु वृहस्पति के पास पहुँचकर उनसे कहा—भगवन्! पृथ्वी पर कलि के आने पर दानवगण वेदधर्म का उल्लंघन करके मेरे नाश के लिए तुल जायेंगे। अतः भगवन्! कलियुग में देवों समेत मेरी रक्षा करना।५१-५९

वृहस्पति ने कहा—महेन्द्र! विष्णु ने तुम्हारी शची नाम की श्रेष्ठ पत्नी को वरदान दिया है कि 'कलि के समय मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा।' तुम्हारी आज्ञा प्राप्तकर वह देवी उस शान्तिमयी एवं शुभपुरी में, जो गौड़देश में गङ्गा के तट पर स्थित है, ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होकर कार्यसिद्धि करेगी अतः आप भी ब्राह्मण होकर देवकार्य के सफल होने की चेष्टा कीजिये। इस प्रकार गुरु की बात सुनकर इन्द्र ने एकादश रुद्र, आठ वसु और अश्विनी कुमार के साथ माघ में मकर के अवसर पर सूर्यप्रिय तीर्थराज प्रयाग में जाकर सूर्यदेव की उपासना की। उस समय वृहस्पति ने भी वहाँ पहुँचकर वारह अध्याय में निर्मित सूर्य माहात्म्य उन इन्द्रादि देवों को सुनाया।६०-६५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय
इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

रामानन्दनिम्बार्कसमुत्पत्तिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

बृहस्पतिस्तु भगवान्मुनिर्देवान्समास्थितान् । किं प्रोवाच च माहात्म्यं मण्डलस्थस्य वै रवेः ॥१
तत्सर्वं कृपया ब्रह्मन्ब्रूहि नस्तत्समुत्सुकान् । इति श्रुत्वा वचस्तेषां सूतो वचनमब्रवीत् ॥२
बृहस्पतिं समासीनं जीवरूपं गुणालयम् । प्रयागस्थो महेन्द्रश्च सुरैः सार्द्धमुवाच ह ॥३
कथयस्व महाभाग सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुतेन रविः साक्षात्प्रसन्नोऽद्य भवेत्प्रभुः ॥४

बृहस्पतिरुवाच

धातृशर्मा द्विजः कश्चिदपत्यार्थे प्रजापतिम् । तपसा तोषयामास बर्हिष्मतिपुरे स्थितः ॥५
पञ्चमाब्दे तु भगवान्सन्तुष्टश्च प्रजापतिः । सुतं कन्यां पुनः पुत्रं त्रीण्यपत्यानि सन्ददौ ॥६
वर्षान्तरे जनयित्वा ह्यपत्यं स द्विजोत्तमः । धातृशर्मा परं हर्षमाप्तवान्पुत्रलालनैः ॥७
विवाहाश्च कथं तेषां भवितव्या महोत्तमाः । इति चिन्तान्वितो विप्रो गन्धर्वेशं तु तुम्बुरुम् ॥८
हवनैस्तोषयामास वर्षमात्रविधानतः । तुम्बुरुश्च तदागत्य तं चकार मनोरथम् ॥९
प्रसन्नस्तु तदा विप्रो वधूर्जामातरं मुदा । दृष्ट्वा तेषां विहारं च पुनश्चिन्तां चकार ह ॥१०

अध्याय ७

रामानन्द तथा निम्बार्क के उत्पत्ति का वर्णन

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! भगवान् बृहस्पति ने वहाँ एकत्र स्थित देववृन्दों से मण्डलस्थ सूर्यदेव के किस माहात्म्य का वर्णन किया है । उसे जानने के लिए हमलोग अत्यन्त समुत्सुक हैं अतः उसे सुनाने की कृपा कीजिये । उन लोगों की ऐसी बात सुनकर सूतजी बोले कि—जीवरूप एवं गुणनिधि बृहस्पति को वहाँ प्रयाग में शोभन आसन पर आसीन देखकर देवों समेत महेन्द्र ने उनसे कहा—महाभाग ! सूर्य के उस माहात्म्य का वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर साक्षात् सूर्य भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हों । १-४

बृहस्पति बोले—बर्हिष्मती नामक पुरी के रहने वाले किसी धातृशर्मा नामक ब्राह्मण ने संतानार्थ प्रजापति की तप द्वारा आराधना की । पाँचवें वर्ष प्रसन्न होकर भगवान् प्रजापति ने दो पुत्र और एक कन्या उस ब्राह्मण को प्रदान किया । वह ब्राह्मण श्रेष्ठ को वर्ष के भीतर ही उन तीनों संतान की प्राप्ति हो गई, जिससे वह धातृशर्मा अत्यन्त हर्षित होकर उन संतानों का लालन-पालन करने लगा । पश्चात् इनका उत्तम विवाह सम्बन्ध किस प्रकार सुसम्पन्न हो, ऐसी चिन्ता करते हुए उस ब्राह्मण ने एक वर्ष हवन द्वारा तुम्बुरु नामक गन्धर्व नायक की उपासना की । उपरान्त प्रसन्न होकर उस गंधर्व ने उनके उस मनोरथ को सफल किया। अपने पुत्र तथा उनकी बहुओं को देखकर उस ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। किन्तु उनके उपभोग साधनों के लिए पुनः चिन्तित होने लगा—मैं निर्धन हूँ तथा साठ वर्ष की मेरी आयु

भूषणानि च वासांसि धनानि विविधानि च । तेषां कथं भविष्यन्ति निर्धनानां ममाशुच ।।११
षष्टिवर्षमयो भूत्वा चन्दनाद्यैर्धनाधिपम् । विधिवत्पूजयामास वर्षमात्रं तु तत्परः ।।१२
तदा प्रसन्नो भगवान्ददौ तस्मै धनं बहु । विद्यां यक्षमयीं रम्यां पञ्चस्वर्णप्रदां मुदा ।।१३
सहस्रजापी सम्पूज्य हवनं तद्दशांशकम् । तर्पणं मार्जनं चैव कृत्वा वाञ्छामवाप्तवान् ।।१४
इत्येवं वर्तमानस्य गतः कालो महान्स्वयम् । मृत्योरागमनं तस्य जातं रोगसमन्वितम् ।।१५
पीडितस्तु रुजा विप्रः शङ्करं लोकशङ्करम् । स्तुतिभिः श्रुतिरूपाभिस्तुष्टाव बलवर्जितः ।।
मासमात्रेण भगवान्ददौ ज्ञानं स्वयं हरः ।।१६
धातृशर्मा तु तत्प्राप्य भास्करं मोहनाशनम् । सूर्यवारव्रतैस्तत्र तोषयामास नम्रधीः ।।१७
पञ्चाब्दे भगवान्सूर्यो भक्तिभावेन वत्सलः । चैत्र्यां तमाह वचनं वरं ब्रूहि पुनः पुनः ।।१८
धातृशर्मा तु तच्छ्रुत्वा भास्करं मोहनाशनम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा तुष्टाव परया गिरा ।।१९

धातृशर्मोवाच

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च मनसोऽस्य तनौ प्रिया । रात्रिरूपा प्रवृत्तिश्च निवृत्तिर्दिनरूपिणी ।।
भवतस्तेजसा जाते लोकबन्धनहेतवे ।।२०
अव्यक्ते तु स्थितं तेजो भवतो दिव्यसूक्ष्मकम् । त्रिधाभूतं तु विश्वाय तस्मै तेजात्मने नमः ।।२१
राजसी या स्मृता बुद्धिस्तत्पतिर्भगवान्विधिः । भवतस्तेजसा जातस्तस्मै ते विधये नमः ।।२२

भी हो चुकी है, इसलिए इनके लिए भाँति-भाँति के भूषण और वस्त्रों की प्राप्ति कैसे हो सकेगी । इस प्रकार चिन्तित होकर उसने एक वर्ष तक चन्दनादि सामग्री द्वारा कुबेर की विधिवत् अर्चना की ।१-१२। उस समय प्रसन्न होकर कुबेर ने उन्हें अत्यन्त धन समेत पाँच सुवर्ण मुद्रा प्रदान करने वाली यक्ष विद्या प्रदान की । (मंत्र की) सहस्र संख्या के जप करने वाले उस ब्राह्मण ने उनकी पूजापूर्वक उसका दशांश हवन, तर्पण और मार्जन करके अपना मनोरथ सफल किया । इस प्रकार उसके सुखी-जीवन का एक महान् समय व्यतीत हुआ । पश्चात् मरण के दिन सन्निकट होने पर वह रोगी हो गया । रोग से पीड़ित होने पर उस ब्राह्मण ने वैदिक स्तुति द्वारा लोक के कल्याणमूर्ति श्रीशंकर की उपासना की । एक मास के उपरान्त भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उसे ज्ञान प्रदान किया, जिससे उस विनम्र धातृशर्मा ने रविवार-व्रतों द्वारा मोहनाशक भगवान् भास्कर को प्रसन्न करना आरम्भ किया । पाँच वर्ष के उपरान्त भक्तवत्सल भगवान् सूर्य ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर चैत्र पूर्णिमा के दिन मन इच्छित वरदान के लिए उसे प्रेरित किया । उसे सुनकर धातृशर्मा ने मोहनाशक भगवान् भास्कर जी की विनम्र एवं उत्तम वाणी द्वारा स्तुति करना प्रारम्भ किया ।५-१९

धातृशर्मा ने कहा—इस शरीर में रहने वाले मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो प्रियायें हैं, जिसमें प्रवृत्ति रात्रिरूप एवं निवृत्ति दिनरूप वाली कही जाती है । सांसारिक बंधनों की कारण भूत ये प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप परिस्थितियाँ आपके उस तेज द्वारा ही उत्पन्न होती हैं जो आपका तेज दिव्य एवं सूक्ष्म रूप से अव्यक्त में स्थित हैं और विश्व के लिए वही तीन भागों में विभक्त होता है, अतः उस तेजरूप वाले आत्मा को बार-बार नमस्कार है ।२०-२२। राजस् बुद्धि, जिसके पति भगवान् ब्रह्मा हैं, आपके तेज द्वारा

सात्त्विकी या तनौ बुद्धिस्तत्पतिर्भगवान्हरिः। भवता निर्मितस्सत्त्वात्तस्मै ते हरये नमः ।।२३
तामसी मोहना बुद्धिस्तत्पतिश्च स्वयं शिवः । तमोभूतेन भवता जातस्तस्मै नमो नमः ।।
देहि मे भगवन्मोक्षं संज्ञाकान्त नमोनमः ।।२४

बृहस्पतिरुवाच

इत्येवं संस्तुतस्तेन भगवान्धातृशर्मणा । महेन्द्रवचनं प्राह तं द्विजं ज्ञानकोविदम् ।।२५
मोक्षश्चतुर्विधो विप्र सालोक्यं तपसोद्भवम् । सामीप्यं भक्तितो जातं सारूप्यं ध्यानसम्भवम् ।।२६
सायुज्यं ज्ञानतो ज्ञेयं तेषां स्वामी परः पुमान् । सगुणो विगुणो ज्ञेय आनन्दो मोक्षिणां क्रमात् ।।२७
देवानां चैव देहेषु ये मोक्षाः पुनरागताः । यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्विष्णोः परमं पदम् ।।२८
यत्प्रसन्नेन विप्रेन्द्र सायुज्यं मे भवेत्तव । मनुमात्रश्च यः कालस्तावत्ते मोक्ष आस्थितः ।।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तेन मोक्षीकृतो द्विजः ।।२९

सूत उवाच

इत्युक्तवन्तं वागीशं चैत्रमासे दिवाकरः । स्वरूपं दर्शयामास देवदेवः सनातनः ।।३०
शृणुध्वं सकला देवा यन्निमिताः समागताः । वङ्गीये स्वांशमुत्पाद्य देवकार्यं करोम्यहम् ।।३१
इत्युक्त्वा स्वमुखात्तेजः समुत्पाद्य दिवाकरः । स्वभक्तायै सुकन्यायै द्विजपत्न्यै ददौ हि तत् ।।३२

ही उत्पन्न हैं, अतः उस विधिरूप ब्रह्मा को बार-बार नमस्कार है । शरीर में स्थिति उस सात्त्विकी बुद्धि का जन्म जिसके अधीश्वर भगवान् विष्णु कहे गये हैं, आपके द्वारा ही हुआ है, इसलिए उस हरिरूप आपको नमस्कार है । इसी प्रकार मोहात्मक तामसी बुद्धि भी, जिसके अध्यक्ष स्वयं शिवजी हैं, तमोरूप आपसे ही उत्पन्न हुई है, अतः उस रूपधारी आपको नमस्कार है । भगवन्, संज्ञाकान्त ! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ, आप मुझे मोक्ष-प्रदान करने की कृपा करें ।२३-२४

बृहस्पति जी बोले—महेन्द्र ! धातृशर्मा ब्राह्मण के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् सूर्य ने उस ज्ञान-निपुण द्विजश्रेष्ठ से कहा—विप्र ! मोक्ष चार प्रकार का होता है सालोक्य की प्राप्ति तप द्वारा सामीप्य भक्ति द्वारा, सारूप्य ध्यान द्वारा और सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान द्वारा होती है तथा इन सभी प्रकार के मोक्ष के अधिपति वही परमात्मा है और क्रमशः उत्तरोत्तर मोक्षों के आनन्द दुगुने बताये गये हैं । देवों की शरीर में वही मोक्ष आकर पुनः स्थित हैं इसलिए जहाँ पहुँचने पर पुनः वहाँ से निवृत्ति (लौटना) नहीं होता है वही विष्णु का परमपद कहा गया है विप्रेन्द्र ! जिसकी प्रसन्नतावश मेरे सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति तुम्हें हुई है । यह तुम्हारा मोक्ष इस मनु की स्थिति काल तक स्थित रहेगा । इतना कहकर सूर्यदेव अन्तर्हित हो गये और उस ब्राह्मण को मोक्ष की प्राप्ति हुई ।२५-२९

सूत जी बोले—इस प्रकार (उनके माहात्म्य) वर्णन करने पर चैत्रमास की उस पूर्णिमा के समय सूर्य ने उन बृहस्पति को अपने स्वरूप का दर्शन प्रदान किया । पश्चात् उन सनातन एवं देवाधिदेव सूर्य ने कहा—देववृन्द ! जिस कार्य के लिए आपलोग यहाँ एकत्रित हुए हैं, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनिये । काश्मीर नगर में मैं अपने अंश से उत्पन्न देव-कार्य को सफल करूँगा । इतना कहकर सूर्य ने अपने मुख द्वारा तेज निकालकर अपने भक्त उन दोनों ब्राह्मण-पत्नियों को समर्पित कर दिया । उस धातृशर्मा ब्राह्मण का जो

धातृशर्मा द्विजो यो वै सूर्ये मोक्षमुपागतः । स वै तत्तेजसा जातः काव्यकारस्य मन्दिरे ।।३३
ईश्वरो नाम विख्यातः पुरीशद्वान्त आत्मवान् । जित्वा विप्रान्वेदपरान्महतीं कीर्तिमाप्तवान् ।।३४
इति ते कथितं विप्र यथा जीवनभाषितम् । पुनः शृणु कथां रम्यां देवेभ्यो जीवनिर्मिताम् ।।३५

बृहस्पतिरुवाच

मायावत्यां द्विजः कश्चिन्मित्रशर्मेति विश्रुतः । काव्यविद्यापरो नित्यं रसिकः कामिनीप्रियः ।।३६
कुम्भराशिं मयि प्राप्ते गङ्गाद्वारे महोत्सवः । बभूव बहुलैर्भूपैः कारितस्तीर्थतत्परैः ।।३७
तत्रोत्सवे नरा नार्यो बहुभूषणभूषिताः । समाययुर्दर्शनार्थे परमानन्दनिर्भराः ।।३८
मित्रशर्मा तु सम्प्राप्य कामसेनस्य वै सुताम् । काव्यकेलिकलायुक्तां द्वादशाब्दमयीं शुभाम् ।।३९
दाक्षिणात्यस्य भूपस्य तनयां मधुराननाम् । दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं तद्वशित्वमुपागतः ।।४०
सा तु तं चित्रिणी नाम्ना मित्रशर्माणमुत्तमम् । दृष्ट्वा तु मूर्च्छिता चासीद्विप्रमूर्तिर्हृदि स्थिता ।।४१
स्वगेहं पुनरागत्य चित्रिणी भास्करं प्रभुम् । प्रत्यहं पूजयामास बहुमानपुरस्सरा ।।४२
मित्रशर्मा तु तत्स्थाने गङ्गाकूले मनोहरे । प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा वैशाखे जलमध्यगः ।।४३
स्तोत्रमादित्यहृदयमजपत्सूर्यतत्परः । प्रत्यहं द्वादशावर्तैस्तोषयामास भास्करम् ।।४४
मासान्ते भगवान्सूर्यो ददौ तस्मै हि तं वरम् । स तु लब्धवरो विप्रः स्वगेहं पुनरागतः ।।४५

सूर्य में सायुज्य मोक्ष की प्राप्तिकर सुखानुभव कर रहा था, सूर्य के तेज द्वारा काव्यकार के घर पुनः जन्म हुआ जो केशव नाम से प्रख्यात एवं समस्त शास्त्रों में निपुण था । उसने वेद के पारगामी ब्राह्मणों पर विजय प्राप्तिपूर्वक अत्यन्त महान् यश की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार मैंने वृहस्पति के कहे हुए उस समस्त माहात्म्य को सुना दिया, किन्तु देवों के लिए बृहस्पति द्वारा कही हुई उस कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ३०-३५

बृहस्पति जी बोले—मायावती पुरी में मित्रशर्मा नामक कोई ब्राह्मण रहता था, जो नित्य काव्य रचना में तन्मय, रसिक एवं कामिनी प्रेमी था । कुम्भ राशि पर मेरे स्थित होने पर उस समय हरिद्वार में एक महान् उत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें अनेक देशों के आये हुए उस तीर्थ के निवासी अनेक राजगण सम्मिलित थे । उस उत्सव के दर्शनार्थ वहाँ परमानन्द प्रेमी एवं भूषणों से सुसज्जित पुरुष तथा स्त्रियों का एक महान् समाज उपस्थित हुआ । मित्रशर्मा भी उस उत्सव में पहुँचकर दक्षिण प्रदेश के निवासी राजा कामसेन की पुत्री को, जो काव्यक्रीड़ा में निपुण बारह वर्ष की आयु, शुभमूर्ति, सौन्दर्यपूर्णमुख तथा मृग-बच्चों के समान विशाल नेत्रवाली थी, देखकर अत्यन्त अधीर हो गया । वह चित्रिणी नामक कन्या भी मित्रशर्मा को देखते ही उस ब्राह्मण-मूर्ति को हृदय में स्थापित करती हुई मूर्च्छित हो गई । पश्चात् अपने घर आकर वह चित्रिणी कन्या सादर सम्मानपूर्वक भगवान् भास्कर की आराधना करने लगी । मित्रशर्मा ने भी वहीं रमणीक गंगा-तट पर रहकर वैशाखमास के प्रारम्भ से प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर आदित्यहृदय स्तोत्र का पाठ करना आरम्भ किया । प्रतिदिन उस स्तोत्र के बारह बार पाठ करके वह ब्राह्मण भगवान् भास्करदेव को प्रसन्न कर रहा था । मास के अन्त में भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान किया । पश्चात् वर प्राप्तकर वह ब्राह्मण अपने घर आया । चित्रिणी को भी

चित्रिणी तु वरं प्राप्ता वाञ्छितं लोकभास्करात् । पुनस्तौ पितरौ स्वप्ने भास्करेण प्रबोधितौ ।।४६
मित्रशर्माणमाहूय वरयामासतुः सुताम् । स्वान्ते निवासयामास कामसेनश्च दम्पती ।।४७
तौ तु चक्रं मुदाविष्टौ प्रत्यहं सूर्यदैवतम् । ताम्रपात्रे च तद्यन्त्रं लेखयित्वा विधानतः ।।४८
ईजतू रक्तकुसुमैर्व्रतं कृत्वा रविप्रियम् ।।४९
शताब्दवपुषौ चोभौ निर्जरौ श्रमवर्जितौ । आरोग्यौ मरणं प्राप्य सामीप्यं च रवेर्गतौ ।।५०
इति श्रुत्वा रवेर्गाथां वैशाख्यां देवराट् स्वयम् । प्रत्यक्षं भास्करं देवं ददर्श सहितं सुरैः ।।५१
भक्तिनम्रान्सुरान्दृष्ट्वा भगवांस्तिमिरापहः । उवाच वचनं रम्यं देवकार्यपरं शुभम् ।।
ममांशात्तनयो भूमौ भविष्यति सुरोत्तम ।।५२

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स्वस्य बिम्बस्य तेजोराशिं समन्ततः । समुत्पाद्य कृतः काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत् ।।५३
देवलस्य च विप्रस्य कान्यकुब्जस्य वै सुतः । बाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनामपरायणः ।।
पित्रा मात्रा परित्यक्तो राघवं शरणं गतः ।।५४
तदा तु भगवान्साक्षाच्चतुर्दशकलो हरिः । सीतापतिस्तद्धृदये निवासं कृतवान्मुदा ।।५५
इति ते कथितं विप्रमित्रदेवांशतो यथा । रामानन्दस्तु बलवान्हरिभक्तेश्च सम्भवः ।।५६

भगवान् भास्कर द्वारा उसके मनोऽनुरूप वर की प्राप्ति हुई । सूर्यदेव ने दोनों के माता-पिता को स्वप्न द्वारा एक दूसरे का ज्ञान कराया । अनन्तर राजा कामसेन ने मित्रशर्मा को बुलाकर उसके साथ चित्रिणी का विवाह संस्कार सुसम्पन्न कराकर उन दोनों को अपने यहाँ रख लिया । वहाँ, आनन्दमग्न रहकर उन दोनों ने सूर्यदेव की आराधना आरम्भ की—ताँबे के पत्रपर उनका मंत्र लिखवाकर प्रतिदिन रक्तपुष्पों द्वारा उसकी पूजा और सूर्यप्रिय उस रविवार व्रत द्वारा उन्हें प्रसन्न करना प्रारम्भ किया । इससे वे दोनों देवों की भाँति सदैव युवा ही रहकर आरोग्य एवं सुखी-जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में मरण के अवसर पर शरीर परित्यागकर सामीप्य मोक्ष द्वारा सूर्य के यहाँ पहुँच गये । वैशाख मास के सूर्य के इस माहात्म्य को सुनकर महेन्द्र देव ने देवों समेत भास्कर देव का प्रत्यक्ष दर्शन किया । अत्यन्त भक्ति से विनम्र उन देवों को देखकर अन्धकारनाशक भगवान् सूर्य ने उन लोगों से कहा—सुरोत्तम ! देवकार्य के सिद्ध्यर्थ भूतल में मेरा अंश उत्पन्न होगा ।३६-५२

सूतजी बोले—इतना कह सूर्य ने अपने विम्ब मण्डल से तेजराशि निकालकर काशी में डाल दिया, जिससे रामानन्द की उत्पत्ति हुई । किसी कान्यकुब्ज ब्राह्मण एवं मन्दिर के पुजारी के घर रामानन्द का जन्म हुआ, जो बाल्यकाल से ही ज्ञानी तथा रामनाम के अत्यन्त प्रेमी थे । पिता-माता के त्याग करने पर वे भगवान् की शरण में चले गये । सीतापति भगवान् ने, जो चौदह कलाओं से युक्त एवं विष्णु के रूप में स्थित हैं, प्रसन्न होकर साक्षात् उनके हृदय में निवास किया । विप्र ! इस प्रकार मैंने सूर्यदेव के अंश की, जो रामानन्द के रूप में परिणत होकर भगवान् का महान् भक्त हुआ, कथा तुम्हें सुना दिया ।५३-५६

बृहस्पतिरुवाच

शृणु शक्र कथां रम्यां ज्येष्ठमासस्य वै रवेः । अर्यमा नाम वै विप्रः पुरा सत्ययुगे ह्यभूत् ।।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मशास्त्रपरायणः ।।५७
तस्य पत्नी पितृमती श्राद्धयज्ञस्य भूपतेः । तनया च महासाध्वी सप्त पुत्रानकल्मषान् ।।
अर्यम्णो जनयामास धर्मशास्त्रपरायणान् ।।५८
एकदा स द्विजो धीमान्विचार्य्य बहुधा हृदि । धनार्थी भास्करं देवं तुष्टाव बहुपूजनैः ।।५९
प्रभाते श्वेतकुसुमैश्चन्दनादिभिरर्चनैः । मध्याह्ने रक्तकुसुमैः पीतपुष्पैः पितृप्रसौ[1] ।।६०
मासमात्रं तु विधिना पूजयामास भास्करम् । ज्येष्ठे वै भगवान्सूर्यो ददौ तस्मै मणिं शुभम् ।।६१
तन्मणेश्च प्रभावेण प्रस्थमात्रं च काञ्चनम् । प्रत्यहं जनयामास तेन धर्मः समर्जितः ।।६२
वापीकूपतडागान्हि तथा हर्म्याणि भूतले । कारयामास धर्मार्थी सूर्यदेवप्रसादतः ।।६३
सहस्राब्दवपुर्भूत्वा निर्जरो निरुपद्रवः । त्यक्त्वा कलेवरं रम्यं सूर्यलोकमुपाययौ ।।
उषित्वा तत्र लक्षाब्दं सूर्यरूपो बभूव ह ।।६४
इत्येवं भास्करस्यैव माहात्म्यं कथितं मया । तस्माच्छक्र सुरैः सार्द्धं भज मण्डलगं रविम् ।।६५
इति श्रुत्वा तु ते देवाः पद्यैः सूर्यकथामयैः । तोषयाञ्चक्रिरे प्रेम्णा ज्येष्ठमासि रविस्त्वसौ ।।
प्रत्यक्षमभवत्तत्र देवानाह प्रसन्नधीः ।।६६
सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्जप्तो जनिष्यति ।६७

बृहस्पति ने कहा—इन्द्र ! सूर्य की ज्येष्ठ मास की एक रम्य कथा तुम्हें सुना रहा हूँ। पहले सत्ययुग में अर्यमा नामक एक ब्राह्मण हुआ, जो वेद, वेदाङ्ग का मर्मज्ञ और धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् था। श्राद्धयज्ञ नामक राजा की पितृमती नामक कन्या उसकी पत्नी थी। उस अर्यमा ब्राह्मण ने उस पत्नी द्वारा सात पुत्र और एक पतिप्राणा पुत्री उत्पन्न किया। उसके वे पुत्र धर्मशास्त्र के निपुण विद्वान् थे। एक बार उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने हृदय में भलीभाँति विचारकर धन के लिए अनेक पूजनों द्वारा भास्कर देव की उपासना की। प्रातःकाल में श्वेतपुष्प एवं चन्दनादि, मध्याह्न में रक्तपुष्प और सायंकाल में पीतपुष्पों द्वारा उनकी आराधना प्रारम्भ की। विधानपूर्वक एक मास तक उनकी पूजा करने के उपरान्त ज्येष्ठमास के अन्त में भगवान् सूर्य ने उसे एक शुभमणि प्रदान किया, जिससे उस मणि के प्रभाव से एक सेर सुवर्ण प्रतिदिन उन्हें मिलने लगा। उसके द्वारा उन्होंने अत्यन्त धर्म किया—पृथ्वी में अनेक स्थानों पर बावली, कुएँ, तालाब और सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कराया। पश्चात् सूर्यदेव के प्रसन्नतावश इन कार्यों के सुसम्पन्न होने के उपरान्त उस धार्मिक ने एक सहस्र वर्ष तक तरुण एवं आरोग्य जीवन व्यतीत किया। अनन्तर अपनी शरीर को त्यागकर रमणीक सूर्यलोक की प्राप्ति पूर्वक वहाँ एक लाख वर्ष तक रह पुनः सूर्यरूप की प्राप्ति की। इस प्रकार सूर्य का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुना दिया।

---

१. ह्रस्व आर्षः।

निम्बादित्य इति ख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यति।

सूत उवाच

शृणुष्व चरितं तस्य निम्बार्कस्य महात्मनः ॥६८
यमाह भगवान्कृष्णः कुरु कार्यं ममाज्ञया। मेरोश्च दक्षिणे पार्श्वे नर्मदायास्तटे शुभे ॥६९
देशे तैलङ्गके रम्ये देवर्षिवरसेविते। तत्रावतीर्य सद्धर्मान्नारदाद्देवदर्शनात् ॥७०
लब्ध्वा भूमौ वर्तयस्व नष्टप्रायान्ममाज्ञया। माथुरे नैमिषारण्ये द्वारवत्यां ममाश्रमे ॥७१
सुदर्शनाश्रमादौ च स्थितिः कार्या त्वयानघ। ओमित्यादेशमादाय भगवाञ्छ्रीसुदर्शनः ॥७२
भक्ताभीष्टप्रदः साक्षादवतीर्णो महीतले। देशे तैलङ्गके पुण्ये द्विजवर्यो महामनाः ॥७३
सुदर्शनाश्रमे पुण्ये भृगुवंशसमुद्भवः। नाम्नाऽऽरुण इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥७४
ऋषिरूपधरश्चासीज्जयन्त्या भार्यया सह। समाहितं तेन तेजो विष्णुचक्रसमुद्भवम् ॥७५
दधार मनसा देवी जयन्ती पतिदेवता। तेजसा शुशुभे तेन चन्द्रेणेव दिशामला ॥७६
अथ सर्वगुणोपेते काले परमशोभने। कार्त्तिकस्य सिते पक्षे पूर्णिमायां वृषे विधौ ॥७७
कृत्तिकाभे महारम्ये उच्चस्थे ग्रहपञ्चके। सूर्यावसानसमये मेषलग्ने निशामुखे ॥७८
जयन्त्यां जयरूपिण्यां जजान जगदीश्वरः। येन सर्वमिदं विश्वं वेदधर्मे नियोजितम् ॥७९
विरिञ्चिरेकदा तस्मिन्निम्बार्कस्याश्रमे शुभे। समागत्याह भो ब्रह्मन्प्राप्तोऽहं क्षुधयान्वितः ॥८०
यावत्सूर्यः स्थितो व्योम्नि तावन्मां भोजय द्विज। इति श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा ददौ तस्मै च भोजनम् ॥८१
तदा तु भगवान्सूर्यो ह्यस्ताचलमुपागतः। मुनिना ऋषिणा तेन निम्बवृक्षे तदा शुभे ॥८२
स्थापितं तेजसा स्वेन तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम्। तत्तेजः सूर्यसङ्काशं दृष्ट्वा वेधाः स्मयान्वितः ॥८३
भिक्षुवेषधरं बालं मुनिं सूर्यमिवापरम्। ननाम दण्डवद्भूमौ तपसा तस्य तोषितः ॥८४

इसलिए इन्द्र! देवों समेत तुम मण्डलस्थ सूर्य की उपासना करो। इसे सुनकर देवों ने सूर्यदेव की पद्यात्मक कथाओं द्वारा उनकी आराधना आरम्भ की। उससे प्रसन्न होकर ज्येष्ठ मास में सूर्य ने वहाँ प्रकट होकर देवों से कहा—देवगण! भयानक कलि के समय में कृष्णसप्तसुदर्शन निम्बादित्य के रूप में उत्पन्न होकर ख्यातिपूर्वक देवों का कार्य सफल करेगा, तथा धर्म की ग्लानि को हरेगा।५७-६८

सूत जी बोले—उस महात्मा निम्बार्क के चरित्र को सुनिये। जिसको भगवान् विष्णु ने कहा था कि मेरी आज्ञा से कार्य करोगे। मेरु के दक्षिण तरफ नर्मदा के शुभ तट पर, देवर्षियों द्वारा सेवित तेलंगक देश में अवतार लेकर देवताओं के दर्शन एवं नारद से सद्धर्मों को लेकर निर्लिप्तभाव से मेरी आज्ञा से भूमि पर निवास करो। नैमिषारण्य, हरिद्वार आदि मेरे आश्रम एवं सुदर्शनाश्रम में आवास बनाओ। सूर्य जब तक आकाश में ठहरे हुए हैं, उसी के भीतर ही हमें भोजन करा दो, इसे सुनकर उसने स्वीकार किया और भोजन तैयार कराकर उन्हें भोजन के लिए बैठाया तो सूर्यास्त हो गया किन्तु उसने सूर्य को पुनः आवाहित किया, जिससे निम्बवृक्ष के समान सूर्य का दर्शन उन वैष्णवों को हो गया। उस

उवाच वचनं रम्यं साधु साध्विति पूजयन् । निम्बादित्य इति ख्यातो वसुधायां भविष्यसि ॥८५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये रामानन्दनिम्बार्कसमुत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजि-दीक्षितवराहमिहिराचार्योत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

पुरा त्रेतायुगे शक्र शक्रशर्मा द्विजो ह्यभूत् । अयोध्यायां महाभागो देवपूजनतत्परः ॥१
अश्विनौ च तथा रुद्रान्वसून्सूर्यान्पृथक्पृथक् । यजुर्वेदमयैर्मन्त्रैरर्चयित्वा प्रसन्नधीः ॥
हव्यैश्च तर्पयामास देवाँस्तान्प्रत्यहं द्विजः ॥२
तद्भावतस्त्रयस्त्रिंशद्देवाः क्षुद्रगणैर्युताः । ददुर्मनोरथं तस्मै दुर्लभं सुलभीकृतम् ॥३
दशवर्षसहस्राणि निर्जरो निरुपद्रवः । पश्चात्कलेवरं त्यक्त्वा पश्चात्सूर्यो बभूव सः ॥४
लक्षाब्दं मण्डले तस्मिन्नधिकारः कृतस्ततः । ब्रह्मलोकं ययौ विप्रः सर्वदेवप्रसादतः ॥५
अष्टवर्षसहस्राणि दिव्यानि पदमुत्तमम् । विलोक्य मण्डले प्राप्तं तं सूर्यं जपपूजनैः ॥६

समय उन वैष्णवों ने साधु-साधु कहकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की । उसी दिन से वह बालक निम्बादित्य के नाम से इस भूतल में प्रख्यात हुआ ।६९-८५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रामानन्द और निम्बार्क का उत्पत्ति वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजिदीक्षित वराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—इन्द्र ! पहले त्रेतायुग में आयोध्यापुरी में शक्र शर्मा नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त पुण्य एवं देवोपासना में तत्पर रहता था । प्रसन्नचित्त होकर वह ब्राह्मण अश्विनीकुमार, एकादश रुद्र, आठ वसु और सूर्यदेव की यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् अर्चना करने के उपरान्त हव्य (घी और दुग्ध के बने) पदार्थों द्वारा उन्हें नित्य तृप्त करता रहता था । उसके उस प्रेम से प्रसन्न होकर क्षुद्र देवों समेत उन तैंतीस देवों ने उसके दुर्लभ मनोरथ को सुलभ बनाया—दश सहस्र वर्ष तक तरुण एवं आरोग्य रहकर सुखी-जीवन व्यतीत किया । पश्चात् शरीर परित्यागकर सूर्य में लीन हो गया । वहाँ उनके मण्डल में एक लाख वर्ष तक रहकर सभी देवों के प्रसाद से वह ब्रह्मलोक पहुँच गया । वहाँ दिव्य आठ सहस्र वर्ष तक स्थित रहा, जहाँ उसके मण्डल में स्वयं सूर्यदेव रहते थे । इसे सुनकर देवों

इति श्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रः सुरसं युतः । आषाढे भास्करं देवं पूजयामास नम्रधीः ।।७
आषाढपूर्णिमायां च स देवो जगतीतले ! प्रत्यक्षमगमत्तत्र सुरानाह शृणुष्व तत् ।।८
वृन्दावने महारम्ये जनयिष्ये कलौ भये । स द्विजः सूर्यरूपश्च देवकार्यं करिष्यति ।।९
माधवस्य द्विजस्यैव तनयः स भविष्यति । मधुर्नाम महाभागो वेदमार्गपरायणः ।।१०

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो देवकार्यार्थमुद्यतः । स्वाङ्गात्तु तेज उत्पाद्य वृन्दावनमपेषयत् ।।११
विमुखान्मधुरालापैर्वशीकृत्य समन्ततः । तेभ्यश्च वैष्णवीं शक्तिं प्रददौ भुक्तिमुक्तिदाम् ।।
मध्वाचार्य इति ख्यातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।१२

जीव उवाच

द्वापरे च द्विजश्रेष्ठो मेघशर्मा बभूव ह । ज्ञानवान्मतिमान्धर्मी वेदमार्गपरायणः ।।१३
कृषिकृत्यपरो नित्यं तद्धनैश्च दशांशकैः । प्रत्यहं सकलान्देवानर्चयामास भक्तिमान् ।।१४
एकदा पञ्चवर्षाब्धे शान्तनौ च महीपतौ ! सम्प्राप्ते तस्य वै देशे ह्यनावृष्टिर्बभूव ह ।।१५
क्रोशमात्रं हि तत्क्षेत्रं पर्जन्येनैव सेचितम् । धान्यानां द्रोणमानश्च भावोऽभूदेकमुद्रया ।।१६
मेघशर्मा तदा तत्र धनधान्ययुतोऽभवत् । अन्ये तु पीडिता लोका राजानं शरणं ययुः ।।१७
तदा तु दुःखितो राजा मेघशर्माणमाह्वयत् । द्विजश्रेष्ठ नमस्तुभ्यं गुरुर्भव मम प्रियः ।।१८

समेत सुरेश ने विनम्र होकर आषाढ़ मास में भास्कर की उपासना की । उस आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन इस भूतल पर प्रकट होकर सूर्य ने उन देवों से कहा—भीषण कलि के समय में अत्यन्त रमणीक उस वृन्दावन में उत्पन्न होकर वह सूर्यरूप ब्राह्मण देवकार्य की सिद्धि करेगा । माधव नामक ब्राह्मण के घर उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होकर वह बालक मधु नाम से प्रख्यात, महायोग्य एवं वैदिक धर्म का प्रचारक होगा ।१-१०

सूत जी बोले—इतना कहकर सूर्यदेव ने देव-कार्य के लिए तैयार होकर अपने शरीर से तेज निकालकर वृन्दावन में भेज दिया । वहाँ उत्पन्न होकर उस बालक ने अपने विरोधियों को अपने वशीभूत कर उन्हें भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी वैष्णवी शक्ति (मंत्र) प्रदान किया (अपना शिष्य बनाया) । उसी दिन से इस भूमण्डल में उनकी 'मध्याचार्य' के नाम से प्रख्याति हुई ।११-१२

बृहस्पति ने कहा——द्वापर युग में मेघशर्मा नामक एक ब्राह्मण हुआ, जो ज्ञानवान्, मतिमान्, धार्मिक एवं वेद-धर्म का प्रचारक था । वह भक्तिमान् कृषि (खेती) के द्वारा जो कुछ उपार्जित करता था, उसके दशांश आय से नित्य देवों की अर्चना करता रहा । एक बार राजा शान्तनु के राजकाल में उनके राज्य में अनावृष्टि हुई । केवल मेघशर्मा के क्षेत्रों (खेतों) में, जो एक कोश का विस्तृत था, मेघवृष्टि करते थे । उस समय (दूकानों पर) एक मुद्रा प्रदान करने पर एकद्रोण अन्न मिलता था । मेघशर्मा ही धनधान्यपूर्ण थे, और अन्य प्रजागण उस अनावृष्टि से अत्यन्त पीड़ित होकर राजा शान्तनु की शरण में पहुँचे । उनके दुःख से दुःखी होकर राजा ने मेघशर्मा को बुलवाकर कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आपको नमस्कार

अनावृष्टिर्यथा न स्यात्तथा विप्र समादिश ॥१९
इत्येवं वादिनं भूपं मेघशर्मा वचोऽब्रवीत् । श्रावणे मासि सम्प्राप्ते विप्रान्वेदपरायणान् ॥२०
द्वादशैव समाहूय लक्षमात्रं रवेः स्वयम् । जापयित्वा सुमनसा पूर्णिमायां तु तद्व्रती ॥
सूर्यमन्त्राहुतीर्वह्नौ तद्दशांशं हि तद्द्विजैः ॥२१
कारयित्वा विधानेन कृतकृत्यः सुखीभव । इति श्रुत्वा तथा कृत्वा भोजयामास वेदगान् ॥२२
प्रसन्नस्तु तदा सूर्यः पर्जन्यात्मा समन्ततः । भूमिमाच्छाद्य स दिशं प्रभुर्वृष्टिमकारयत् ॥२३
शान्तनुस्तु तदा राजा सूर्यव्रतपरायणः । तद्व्रतेन महापुण्यो बभूव नृपसत्तमः ॥२४
यं यं करेण स्पृशति वृद्धो भवति वै युवा । सूर्यदेवप्रभावेन मेघशर्मा तथा ह्यभूत् ॥२५
स वै पञ्चशतायुश्च निर्जरो निरुपद्रवः । त्यक्त्वा प्राणान्रविर्भूत्वा सूर्यलोकमुपागमत् ॥
लक्षाब्दं भुवमासाद्य ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥२६
इत्येवं वादिनं जीवं पर्जन्यो भगवान्रविः । स्वरूपं दर्शयामास प्रयागं प्रति चागतः ॥२७
सुरानाह प्रसन्नात्मा म्लेच्छराज्ये कलौ युगे । वृन्दावने समागम्य देवकार्यं करोम्यहम् ॥२८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो गत्वा वृन्दावनं शुभम् । श्रीधरो नाम विख्यातः पुत्रोभूद्वेदशर्मणः ॥२९
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं समालोक्य विशारदः । चकार विदुषामर्थे प्रदीप्तं श्रीधरः शुभम् ॥

है । आप मेरे गुरु होने की कृपा करें । तथा विप्र ! जिससे राज्य में अनावृष्टि न हो, उसके लिए आज्ञा प्रदान करें । राजा के इस प्रकार कहने पर मेघशर्मा ने उनसे कहा—श्रावण मास के आरम्भ होने पर बारह वेद के निष्णात विद्वानों को बुलाकर सूर्य के मंत्र का एक लक्ष जप कराइये । पश्चात् पूर्णिमा के दिन व्रती रहकर ब्राह्मणों द्वारा उस मंत्र की दशांश आहुति प्रज्वलितकर अग्नि में डलवाकर तथा सविधान तर्पण-मार्जन सुसम्पन्न होने पर कृतकृत्य होते हुए सुख का अनुभव कीजिये । इसे स्वीकार कर राजा ने जप के उपरान्त वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराया । उसी समय प्रसन्न होकर सूर्य ने मेघ रूप से पृथिवी को चारो ओर से आच्छादितकर अत्यन्त वृष्टि की । उसी समय में राजा शान्तनु सूर्यव्रत का पारायण करते हुए उस व्रत के प्रभाव से नृपश्रेष्ठ एवं अत्यन्त पुण्यात्मा प्रख्यात हुए । वे अपने हाथों से जिसका स्पर्श कर लेते थे वृद्ध होने पर भी युवा हो जाता था । सूर्यदेव के प्रभाव से मेघशर्मा भी इसी भाँति के थे । इस प्रकार मेघशर्मा ने पाँच सौ वर्ष का तरुण और आरोग्य जीवन व्यतीत कर अन्त में देहावसान के समय सूर्य रूप होकर सूर्यलोक की प्राप्ति की । एक लाख वर्ष वहाँ रहकर वह पश्चात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति करेगा । इस प्रकार उपदेश देने वाले बृहस्पति को प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने प्रयाग में प्रकट होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया और उन देवों से कहा भी—म्लेच्छराज कलियुग के समय मैं वृन्दावन में अवतरित होकर देवकार्य करने का निश्चय कर रहा हूँ ।१३-२८

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् सूर्य ने उस वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर वेदशर्मा के घर उत्पन्न होकर 'श्रीधर' नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । उस निपुण विद्वान् ने श्रीमद्भगवत्पुराण को अत्यन्त रहस्यमय समझकर विद्वानों के हितार्थ उसकी एक अत्यन्त सुन्दर टीका

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं पुराणोपरि तत्कृतम् ॥३०

जीव उवाच

पुरा कलौ युगे प्राप्ते प्रांशुशर्मा द्विजोऽभवत् । वेदशास्त्रपरो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥३१
सत्यवादी महासाधुः स्तेयहिंसादिवर्जितः । भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पुत्रदारप्रपोषकः ॥३२
एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतस्तस्य भूपते । मायाकृत्यकरो धूर्तः कलिस्तत्राक्षिगोचरः ॥३३
बभूव वाटिकां कृत्वा कलिर्दानमनोहराम् । तमुवाच द्विजो भूत्वा प्रांशुशर्मन्वचः शृणु ॥३४
ममेयं वाटिका रम्या तत्र गच्छ सुखी भव । इति विप्रवचः श्रुत्वा वाटिकां तां समागतः ॥३५
कलिस्तु वाटिकामध्ये गत्वा रम्यफलानि च । त्रोटयित्वा ददौ तस्मै भोजनार्थं महाखलः ॥३६
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रांशुशर्माणमब्रवीत् । भुंक्ष्व विप्र मया सार्द्धं कलिन्दस्य फलं शुभम् ॥३७
इत्युक्तः स तु तं प्राह विहस्य मधुरस्वरम् । वृक्षे विभीतके चैव कलिन्दस्य फले तथा ॥
कलिः प्राप्तः स्मृतः प्राज्ञैस्तस्माद् गृह्णाम्यहं न हि ॥३८
यदि दत्तं फलं भक्त्या त्वयाद्य द्विजसेविना । शालग्रामाय वै दत्त्वा प्रसादं तद्भजाम्यहम् ॥
शालग्रामः स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ॥३९
दर्शनात्तस्य चाभक्ष्यो भक्ष्यो भवति निश्चितः । इति श्रुत्वा कलिस्तत्र लज्जितोऽभून्निराशकः ॥
द्विजस्तु तत्फलं गृह्य भूमिग्राममुपाययौ ॥४०
नृपतिस्तत्र चागत्य द्विजमाह प्रसन्नधीः । किं गृहीतं त्वया विप्र दर्शयाशु प्रियं कुरु ॥४१

की, जो श्रीमद्भागवत पुराण पर 'श्रीधरी' के नाम से विद्वानों द्वारा अत्यन्त सम्मानित हे ।२९-३०

बृहस्पति बोले—पहले कलियुग के आरम्भ समय में प्रांशु शर्मा नामक एक ब्राह्मण था, जो नित्य वेद एवं शास्त्रों का अध्ययन करने वाला, देवता तथा अतिथि के पूजक, सत्यवक्ता, महासाधु और चोरी, हिंसादि दोषों से रहित थे । वह सदैव भिक्षाटन द्वारा अपने पुत्र तथा पत्नी का पालन करता था । भूपते ! एक बार भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में उसे मायावी एवं धूर्त कलि दिखाई दिया । उसने एक सौन्दर्यपूर्ण वाटिका का निर्माणकर ब्राह्मण के वेष में उससे कहा—प्रांशुशर्मन् ! मेरी एक बात सुनो ! यह मेरी सुन्दर वाटिका है, आप इसमें चलने की कृपा करें । ब्राह्मण की यह बात सुनकर प्रांशुशर्मा उस वाटिका में जाकर विश्राम करने लगे । पश्चात् उस दुष्ट कलि ने उस वाटिका के सुन्दर एवं मधुर फल तोड़कर भोजनार्थ उन्हें अर्पित किया और हाथ जोड़कर प्रांशुशर्मा से कहा—विप्र ! मेरे साथ इस कलिंदफल के भक्षण करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर ब्राह्मण ने हँसकर मधुरवाणी से कहा—विद्वानों ने वहेड़ा नामक वृक्ष और कलिंदफल में कलि की स्थिति रहती है, इसलिए मैं इसका ग्रहण नहीं कर सकता । अथवा यदि आपने ब्राह्मण सेवा के निमित्त इसे अर्पित किया है, तो मैं इसे शालग्राम भगवान् को समर्पितकर उनके प्रसादरूप में इसका भक्षण करूँगा, क्योंकि शालग्राम स्वयं ब्रह्मरूप हैं, जो सच्चिदानन्द रूप कहते जाते हैं । तथा उनके दर्शन से अभक्ष्य भी भक्ष्य हो जाता है । इसे सुनकर कलि अत्यन्त लज्जित और निराश हो गया ।३१-३९। ब्राह्मण ने उस फल को लेकर भूमिग्राम को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर राजा ने वहाँ आकर ब्राह्मण से पूँछा विप्र ! आप क्या लिए हैं, मेरी उसे देखने की इच्छा है । इसे

इति श्रुत्वा प्रांशुशर्मा तत्फलं वत्समुण्डवत् । गृहीत्वा प्रददौ राज्ञे विस्मितो द्विजसत्तमः ।।४२
तदा तु स कलिर्भूपस्तं विप्रं ताड्य वेतसैः । कारागारे लोहमये कृतवान्त्यायमित्रकः ।।४३
प्रातःकाले रवौ प्राप्ते प्रांशुशर्मा सुदुःखितः । तुष्टाव भास्करं देवं स्तोत्रैर्ऋग्वेदसम्भवैः ।।४४
तदा प्रसन्नो भगवान्रविः साक्षात्सनातनः । विप्रस्य कर्णयोर्वाक्यमुवाच नभसेरितम् ।।४५
शृणु विप्र महाभाग कालरूपो हरिः स्वयम् । चतुर्युगं तेन कृतं विश्वपालादिहेतवे ।।४६
कलिर्विश्वसमूहानां मृत्यवे रचितस्तथा । अतो घोरे कलौ प्राप्ते विष्णुमायाविनिर्मितम् ।।
कलिञ्जरं च नगरं त्वमोष्य मुदितो भव ।।४७
इत्युक्त्वा रक्षणं कृत्वा तस्य विप्रस्य भास्करः । कलिञ्जरे च नगरे प्रेषयामास तं द्विजम् ।।४८
सपादशतवर्षं च द्विजस्तत्र वसन्रविम् । आराध्य पुत्रपत्नीको रविलोकमुपाययौ ।।४९
स वै भाद्रपदे मासि सूर्यो भूत्वायुताब्दकम् । पश्चाद्ब्रह्मपुरं प्राप्य परमानन्दमाप्तवान् ।।
इति ते कथितं विप्र यथा जीवस्तमब्रवीत् ।।५०
आगत्य भास्करो देवः पूर्णिमायां तु भाद्रके । अष्टाविंशे कलौ प्राप्ते स्वयं जातः कलिञ्जरे ।।५१
शिवदत्तस्य तनयो विष्णुशर्मेति विश्रुतः । वेदशास्त्रकलाभिज्ञो वैष्णवो देवपूजकः ।।५२
चतुर्वर्णान्नरान्विप्र समाहूय हरेर्गृहे ! वचनं प्राह धर्मात्मा विष्णुः सर्वेश्वरो हरिः ।।५३
शृणु तत्कारणं शिष्य विश्वकारण कारकः । भगवान्सच्चिदानन्दश्चतुर्विंशतितत्त्ववान् ।।
देवान्ससर्ज लोकार्थे तस्मात्सर्वेश्वरोऽभवत् ।।५४

सुनकर प्रांशुशर्मा ने वत्स-मुण्ड की भाँति उस फल को लेकर राजा को अर्पित किया । उस समय उसे देखकर ब्राह्मण को अत्यन्त आश्चर्य भी हुआ । उस समय उस कलि राजा ने वेत की छड़ी से ब्राह्मण को ताड़ित कर लोहे की शृंखला से हाथ-पैर बाँधकर जेल में डाल दिया । प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर दुःखी प्रांशुशर्मा ने ऋग्वेद के मंत्रों द्वारा भगवान् सूर्य की आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर सनातन एवं भगवान् सूर्य ने साक्षात् उस ब्राह्मण के कानों में आकाशवाणी की—विप्र ! महाभाग ! भगवान् विष्णु स्वयं काल (समय) रूप हैं । उन्होंने इस विश्व के पालनार्थ चार युगों का निर्माण किया है, जिनमें कलि समस्त विश्व के विनाशार्थ उत्पन्न किया गया है । अतः इस घोर कलि के समय तुम विष्णु की माया द्वारा रचित कलिंजर नामक पुरी में रहकर अपना सुखी-जीवन व्यतीत करो। भास्कर ने इस प्रकार कहकर उस ब्राह्मण को सुरक्षित रखते हुए कलिंजर नगर भेज दिया। उस ब्राह्मण ने वहाँ रहकर सवा सौ वर्ष अपनी पत्नी एवं पुत्र समेत सुखी जीवन व्यतीत कर सूर्यलोक की प्राप्ति की । उस भादों के मास में सूर्य होकर दश सहस्र वर्ष तक स्थित रहकर पश्चात् ब्रह्मलोक पहुँचकर परमानन्द की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार बृहस्पति की कही हुई समस्त कथा मैंने तुम्हें सुना दी है । उस भादों मास की पूर्णिमा के दिन अट्ठाइसवें कलियुग के समय कलिंजर नगर में आकर स्वयं भास्कर देव ने शिवदत्त के घर जन्म ग्रहण किया । 'विष्णु शर्मा' के नाम से उनकी ख्याति हुई । वे वेद एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा विष्णुदेव के उपासक थे ।४०-५२। उन्होंने भगवान् के मन्दिर में चारों वर्णों के मनुष्यों को बुलाकर कहा—धर्मात्मा विष्णु ही सबके ईश्वर हैं । शिष्य ! मैं उस कारण को बता रहा हूँ, जिससे वे विश्व-निर्माण के कारण के भी कर्त्ता हो गये हैं । सुनो ! भगवान् सच्चिदानन्द घन चौबीस तत्वों में परिणत होकर लोकों के हितार्थ देवों की उत्पत्ति करते हैं । अतः

पूर्वं हि सकलान्देवान्पूजयित्वा नरः शुचिः । पश्चाच्च पूजयेद्विष्णुं यथा भृत्या नृपं पुनः ।।५५
इति श्रुत्वा ते सर्वे प्रशस्य बहुधा हि तम् । विष्णुस्वामीति तं नाम्ना कथां चक्रुश्च हर्षिताः ।।५६
इति ते कथितं विप्र विष्णुस्वामी यथाभवत् । पुनः शृणु कथां रम्यां बृहस्पतिमुखेरिताम् ।।५७

जीव उवाच

पुरा चैत्ररथे देशे भगशर्मा द्विजोऽभवत् । स्वर्वेश्यामञ्जुघोषायां मुनिमेधाविना भुवि ।।५८
पितृमातृपरित्यक्तः स बालः श्रद्धयान्वितः । सूर्यमाराधयामास तपसा शतवार्षिकम् ।।५९
सूर्यमण्डलमध्यस्था सावित्री नाम देवता । सर्वसूर्यस्य जननी कन्या तन्मण्डलस्य वै ।।६०
प्रसन्ना तपसा तस्य प्रादुर्भूता सनातनी । आश्विने मासि राजानं द्विजं चक्रे च मण्डले ।।६१
लक्षवर्षसहस्राणि मासि मासि तथाश्विने । प्रकाशं कृतान्विप्रः पूजितो लोकवासिभिः ।।६२
त्वं सूर्यं भज देवेन्द्र स ते कार्यं करिष्यति । इति श्रुत्वाश्विने मासि स रविर्देवपूजनात् ।।६३
प्रत्यक्षमगमत्तत्र वचः प्राह सुरान्प्रति । कान्यकुब्जे शुभे देशे वाणीभूषण इत्यहम् ।।
भवामि सत्यदेवस्य विप्रस्य तनयः शुभः ।।६४

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो जातः कान्यपुरे शुभे । जित्वा पाखण्डिनो विप्रान्मांसभक्षणतत्परान् ।।
छन्दोग्रन्थं स्वनाम्ना वै कृतवान्देवतप्रियः ।।६५

वे सबके अधीश्वर कहे जाते हैं और इसीलिए जिस प्रकार सेवक की प्रथम पूजा होकर फिर राजा की पूजा होती है, उसी प्रकार समस्त देवों की पहले पूजा करके पश्चात् विष्णु की पूजा सबको करनी चाहिए। इसे सुनकर वहाँ के लोगों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और 'विष्णुस्वामी' के नाम से उनको ख्याति करते हुए अत्यन्त हर्ष की प्राप्ति की। विप्र ! इस प्रकार मैंने विष्णुस्वामी की उत्पत्ति की कथा तुम्हें सुना दिया। किन्तु बृहस्पति द्वारा कही गई एक सुन्दर कथा का वर्णन पुनः कर रहा हूँ, सुनो ! ।५३-५७

बृहस्पति बोले—पहले समय में चैत्ररथ नामक प्रदेश में मेधावी मुनि द्वारा मंजु घोषा नामक अप्सरा के गर्भ से 'भगशर्मा' नामक एक ब्राह्मण बालक उत्पन्न हुआ। माता-पिता के परित्याग कर देने पर वह बालक श्रद्धालु होकर तप द्वारा सूर्य की उपासना करने लगा। सौ वर्ष तक आराधना करने के उपरान्त सूर्यमण्डल के मध्यभाग में रहने वाली सावित्री नामक देवी ने, जो सम्पूर्ण सूर्य की जननी एवं उनके मण्डल की कन्या हैं, प्रसन्न पूर्ण प्रकट होकर उस ब्राह्मण को कुआर मास के मण्डल का राजा बनाया। उस लोक के निवासियों द्वारा पूजित होकर उस ब्राह्मण ने प्रत्येक आश्विन (कुआर) मास में एक लाख सहस्र वर्ष तक सूर्य रूप में लोक को आकाश प्रदान किया। अतः देवेन्द्र ! उन्हीं सूर्य की आराधना करो वे तुम्हारे कार्य सफल करेंगे। इसे सुनकर उन्होंने आश्विनमास के सूर्य की आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर सूर्य ने वहाँ आविर्भूत होकर देवों से कहा—मैं कान्यकुब्ज प्रदेश में सत्यदेव नामक ब्राह्मण के घर 'वाणीभूषण' के नाम से उनके पुत्र रूप में अवतरित हूँगा।५८-६४

सूत जी बोले——इतना कहकर भगवान् सूर्य ने उस कान्यकुब्ज प्रदेश में उत्पन्न होकर उन पाखण्डी ब्राह्मणों पर विजय प्राप्ति की, जो अत्यन्त मांसभक्षी थे। देवप्रिय सूर्य ने अपने नाम के आधार पर छन्द

मत्स्यमांसाशना विप्रा मृगमेषाजकाशनाः । एकीभूय समागम्य चक्रुः शास्त्रार्थमुल्बणम् ॥६६
कलिनाऽधर्ममित्रेण रक्षितास्ते द्विजातयः । तं द्विजं च पराजित्य मस्त्यकेतुं च तद्गृहे ॥६७
बलाच्च स्तम्भनं चक्रुस्तदा विष्णुप्रियो द्विजः । वैष्णवीं शक्तिमागम्य स्वमुखान्मीनखादितान् ॥६८
सञ्जीव्य दर्शयामास ते दृष्ट्वा विस्मितास्तदा । शिष्यभूताश्च ते तस्य वैष्णवं मतमागमन् ॥६९

जीव उवाच

कदाचित्सरयूतीरे देवयाजी द्विजोऽभवत् । सर्वदेवपरो नित्यं वेदपाठपरायणः ॥७०
तत्सुतस्तु मृतिं प्राप्तो जन्ममात्रे हि दारुणे । तदा तु स द्विजः श्रुत्वा सूर्यदेवमतोषयत् ॥७१
जिजीव तत्प्रसादेन विवस्वान्नाम चाभवत् । षोडशाब्दवपुर्भूत्वा सर्वविद्याविशारदः ॥७२
अपत्यवान्धर्मपरः सूर्यव्रतपरायणः । शिवरात्रिदिने प्राप्ते तत्पत्नी भूषणप्रिया ॥७३
सुशीला नाम विख्याता पतिसेवार्थमागता । स व्रती रुद्रदेवस्य दृष्ट्वा तां मधुराननाम् ॥७४
बलाद्गृहीत्वा तु निशि बुभुजे स्मरविह्वलः । मैथुनस्यैव दोषेण तस्य कुष्ठो महानभूत् ॥७५
लिङ्गेन्द्रियं च पतितं गुदभ्रष्टो महाङ्गरुक् । केनचिदुपदेशेन रविवारस्य वै व्रतम् ॥७६
स चक्रे द्वादशं प्रेम्णा निराहारो यतेन्द्रियः । तेन व्रतप्रभावेण सर्वपीडा लयं गताः ॥७७
तदा श्रद्धा रवौ प्राप्ता प्रत्यहं स द्विजोत्तमः । आदित्यहृदयं जप्त्वा कामरूपो द्विजोऽभवत् ॥७८

ग्रंथ की रचना की । उस समय मत्स्य, मांस, मृग, भेंड़ और बकरी आदि के मांस भोजी उन ब्राह्मणों ने एकत्रित होकर उनसे घोर शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया । और अधर्ममित्र कलि द्वारा सुरक्षित रहकर उन ब्राह्मणों ने इन्हें पराजित कर उनके घर में बलात् मत्स्यकेतु (मछली का झंडा) स्थापित कराया । उस समय विष्णुप्रिय उस ब्राह्मण ने वैष्णवी शक्ति का आवाहन कर भक्षण की गई मछली को अपने मुख से जीवित निकालकर उन लोगों को दिखाया, जिससे वे सब आश्चर्य चकित हो गये । पश्चात् वैष्णवमत को प्रधान मानकर वे सब उनके शिष्य हो गये ।६५-६९

बृहस्पति बोले——सरयू नदी के तट पर देवयाजी नामक कोई ब्राह्मण रहता था, जो समस्त देवों का भक्त एवं वेदपाठी था । उसका पुत्र दारुण जन्मग्रहण के समय ही मृतक हो गया । उसे सुनकर उस ब्राह्मण ने उसी समय सूर्यदेव को प्रसन्न किया, जिससे उनके प्रसाद से वह जीवित होकर विवस्वान् नाम से प्रख्यात हुआ । सोलह वर्ष की अवस्था तक उसने समस्त विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, जो पुत्रवान्, धार्मिक एवं सूर्यव्रत परायण था । एक बार शिवरात्रि के दिन आभूषणों से सुसज्जित सुशीला नामक उसकी पत्नी पतिसेवार्थ उनके समीप आई । शिव के व्रत रहने वाले उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी के मुख सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कामपीड़ित होने पर उस रात्रि के समय बलात् उसे पकड़कर उसका उपभोग किया जिससे उस मैथुन करने के दोष से उसे महान कुष्ठ हो गया—उसका लिंगेन्द्रिय गिर गया, गुदाभ्रष्ट हो गई और समस्त शरीर उस असाध्य रोग से अत्यन्त पीड़ित हो गई । किसी के उपदेश देने पर उसने निराहार एवं संयमपूर्वक बारह रविवार व्रत का अनुष्ठान किया, जिससे उस व्रत के प्रभाव से उसकी समस्त पीड़ा नष्ट हो गई ।७०-७७। उस समय से सूर्य में उसकी अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई जिससे उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने आदित्य हृदय स्तोत्र का प्रतिदिन जप-पाठ करके सौन्दर्यपूर्ण रूप की प्राप्त की । जो पहले

नारीभिर्भर्त्सितः पूर्वं सोऽथ कामिनीयाचितः । ब्रह्मचर्यव्रतं कृत्वा ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥७९
शतायुर्ब्राह्मणो भूत्वा ज्ञानवान्रोगवर्जितः । त्यक्त्वा प्राणान्रविर्भूत्वा सूर्यमण्डलमध्यगात् ॥८०
कार्तिके मासि लक्षाब्दं प्रकाशं कृतवान्नभः । तं च सूर्यं महेन्द्रस्त्वं पूजयाशु सुरैः सह ॥८१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महेन्द्रस्तु मासमात्रं हि भास्करम् । पूजयित्वा विधानेन पूर्णिमायां ददर्श ह ॥८२
उवाच शक्रं स रविर्देवकार्यं करोम्यहम् । भट्टैर्विद्यामयैर्धूर्तैः सूत्रपाठश्च खण्डितः ॥८३
धातुपाठोन्यपठितो भ्रंशार्थः स्वरवर्णकः । जित्वा तान्भट्टपाषण्डान्वेदमुद्धारयामि भोः ॥८४
इत्युक्त्वा स गतः काश्यां गेहे वै वेदशर्मणः । दीक्षितान्वयभूतस्य नाम्ना कार्यगुणोऽभवत् ॥८५
द्वादशाब्दवपुर्भूत्वा सर्वशास्त्रविशारदः । शिवमाराधयामास विश्वनाथं शिवाप्रियम् ॥८६
त्रिवर्षान्ते च भगवांस्तस्मै ज्ञानं महद्ददौ । तस्य ज्ञानप्रभावेण व्यक्तमव्यक्तमुत्तमम् ॥८७
ज्ञातं कार्यगुणेनैव दीक्षितेन तदा हृदि । अव्यक्ते तु यदा बुद्धिः सा विद्या द्वादशाङ्गिनी ॥८८
व्यक्तेऽहंकारभूते च बुद्धिर्ज्ञेया बुधैरजा । अविद्या नाम विख्याता षोडशाङ्गस्वरूपिणी ॥८९
अव्यक्तं तु परं ब्रह्म व्यक्तं शब्दमयं स्मृतम् । अहङ्कारो लोककरो हि व्यक्तोऽष्टदशाङ्गकः ॥९०
वृषरूपधरो मुख्यो नन्दियानः स्मृतो बुधैः । शृङ्गाणि तस्य चत्वारि त्रिपादो द्विशिरा वृषः ॥९१

स्त्रियों द्वारा निन्दित एवं त्याज्य था स्त्रियाँ अब इस रूप में उससे याचना करने लगी । किन्तु उसने अपने ब्रह्मचर्य व्रत को अखण्डित रखकर अनवरत ब्रह्मा का ध्यान एवं उपासना किया । इस प्रकार उस ब्राह्मण ने सौ वर्ष की आयु तक ज्ञानवान् एवं रोगहीन रहकर अपने सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरान्त शरीर त्यागकर सूर्य मण्डल के मध्य में सूर्यरूप से स्थित रहकर प्रत्येक कार्तिक मास में एक लाख वर्ष तक आकाश को प्रकाशित किया । अतः महेन्द्र ! देवों समेत तुम उसी सूर्य की आराधना करो ।७८-८१

सूतजी बोले——इसे सुनकर महेन्द्रदेव ने एक मास तक सविधान भास्कर देव की उपासना की । पूर्णिमा के दिन सूर्य ने प्रसन्न होकर स्वयं दर्शन देकर उनसे कहा—तुम्हारा कार्य करने के लिए मैं तैयार हूँ । उन धूर्त एवं पाखण्डी भट्ट पण्डितों को, जिन्होंने सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अन्य पाठ को खण्डितकर स्वरवर्ण के अर्थों को भी नष्ट कर दिया है, पराजित कर मैं वेदों का उद्धार करने जा रहा हूँ । इतना कहकर सूर्य ने काशी में जाकर वेदशर्मा दीक्षित के घर अवतरित होकर 'दीक्षित' के नाम से ख्याति प्राप्त की । बारह वर्ष की आयु तक उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुणता प्राप्तकर पार्वतीप्रिय भगवान् विश्वनाथ देव की आराधना आरम्भ की । तीन वर्ष के अनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् विश्वनाथ ने उन्हें महाज्ञानी बनाया, जिससे उनके हृदय में व्यक्त और अव्यक्त का पूर्ण ज्ञान उदय हो गया । अव्यक्त में बुद्धि के स्थिर होने पर उसे द्वादशाङ्ग कहा गया है, और अहंकारभूत व्यक्त में स्थिरबुद्धि को विद्वानों ने अजन्मा कहा है । उसी प्रकार अविद्या को भी षोडशाङ्ग रूप वाली बताया गया है। अव्यक्त परब्रह्म का नाम है तथा व्यक्त, शब्द (नाद) मय का। वह व्यक्त, जो अहंकार रूप एवं लोकस्रष्टा है, अट्ठारह प्रकार का होता है। विद्वानों ने वृष रूपधारी उस मुख्य नन्दी यान (वाहन) के विषय में बताया है कि उसकी चार सीगें तीन

सप्तहस्तास्त्रिधा बद्धो नित्यशुद्धो मुखे स्थितः । सुबन्तश्च तिङन्तश्च कृदन्तश्चाव्ययस्तथा ॥९२
द्वौ द्वौ शृङ्गौ च शिरसोर्नन्दियानस्य वै स्मृतौ । भूतं भव्यं भवच्चैव त्रयः पादा हि तस्य वै ॥९३
रूढिश्च योगरूढिश्च शब्दौ तस्य शिरोद्वयम् । कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं विभागतः ॥९४
सम्बन्धश्चाधिकारश्च भुजास्तस्य वृषस्य वै । वाक्यं स्वरान्वितं ज्ञेयं विभक्त्यन्तं पदं स्मृतम् ॥९५
ताभ्यां बद्धश्च स वृषो नन्दियानाय ते नमः । तस्योपरि स्थितं नित्यमव्यक्तं लिङ्गरूपि यत् ॥९६
जातश्च वृषलिङ्गाभ्यां सोऽहङ्कारो हरिः स्वयम् । नारायणः षोडशात्मा बहुमूर्तिरमूर्तिकः ॥९७
इति ज्ञानं हृदि प्राप्य तदा सिद्धान्तकौमुदीम् । जित्वा भट्टांश्च कारागु भट्टोजिः प्रश्रुतोऽभवत् ॥९८

जीव उवाच

पुरा काञ्चीपुरे रम्ये गणको ब्राह्मणोत्तमः । पुरोधाः सत्यदत्तस्य राज्ञो वेदपरस्य वै ॥९९
एकदा गणको धीमान्सत्यदत्तमुवाच ह । मुहूर्तोऽभिजिदाख्योयं पुष्यनक्षत्रसंयुतः ॥
हाटं कुरु महाराज साम्प्रतं बहुवृत्तिदम् ॥१००
इति श्रुत्वा तथा कृत्वा डिण्डिमध्वनिना पुरे । नरानाज्ञापयामास तच्छृणुष्व सुरोत्तम ॥१०१
अक्रीतं यस्य वै वस्तु हाटेऽस्मिन्वैश्यकोविदैः । मया क्रीतं च तज्ज्ञेयं सत्यमेतद्वचो मम ॥१०२
इति श्रुत्वा शूद्रजनाश्चक्रुर्नानाविधं वसु । वैश्यैस्सर्वं तदा क्रीतं महान्हाटो हि सोऽभवत् ॥१०३

चरण, दो शिर, सात हाथ हैं तथा दो प्रकार से आबद्ध होकर वह नित्य शुद्धात्मा मुख में स्थित है। उस वृष के शिर में 'सुवन्त, तिङन्त, कृदन्त और अव्यय रूप चार सीगें, भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् रूप तीनों चरण, रूढ़ि-योगरूढ़ि दो शिर, कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण रूप सात भुजाएँ एवं स्वरयुक्त वाक्य तथा विभक्त्यन्त पद, इन दोनों से आबद्ध है अतः नन्दियान रूपप्राय को नमस्कार है। उस वृष के ऊपर अव्यक्त लिङ्गधारी वह ब्रह्म नित्य स्थित रहता है। इस प्रकार उस वृष और लिङ्ग द्वारा अहंकार उत्पन्न होता है, जो स्वयं हरि, षोडशात्मा नारायण, अनेक रूप एवं एक रूप रहता है। इस प्रकार इस विशाल ज्ञान को अपने हृदय में स्थितकर दीक्षित ने धूर्त भट्टों को पराजित कर सिद्धान्त कौमुदी का निर्माण किया, जिससे 'भट्टोजिः (भट्टोजिदीक्षित) के नाम से उनकी अत्यन्त ख्याति हुई।८२-१०४

बृहस्पति बोले——पहले कांचीपुरी में 'गणक' नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वैदिक धर्मानुयायी राजा सत्यदेव का पुरोहित था। एक बार उस धीमान् गणक ब्राह्मण ने राजा सत्यदेव से कहा—महाराज ! पुष्यनक्षत्र युक्त यह अभिजित नामक मुहूर्त उपस्थित हो रहा है। आप इसमें बाजार लगवाना आरम्भ करें तो, इससे अधिक धन का लाभ होगा ! इसे सुनकर राजा ने अपने नगर में डिंडिम (डुग्गी) की ध्वनि द्वारा सभी लोगों को एकत्र किया। सुरोत्तम ! उपस्थित लोगों से राजा ने जो कुछ कहा, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! उसने उन्हें आज्ञा प्रदान किया कि इस बाजार में जिस वस्तु का क्रेता (खरीददार) कोई निपुण वैश्य न हो सकेगा, उसे मैं अवश्य क्रय (खरीद) कर लूँगा। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। इसे सुनकर शूद्रों ने भी भाँति-भाँति की वस्तुएँ बनाकर उस विशाल बाजार में बिक्रयार्थ

एकदा लोहकारश्च दारिद्र्यं लोहरूपिणम् । कृत्वा हाटमुपागम्य शतमुद्रामयाचत ।।१०४
अक्रीतं पुरुषं राजा ज्ञात्वा लोहदरिद्रकम् । क्रीतं तं शतमुद्राभिर्गृहीत्वा गेहमागमत् ।।
कोशागारे तदा राज्ञा स्थापितोभूद्दरिद्रकः ।।१०५
निशीथे तम उद्भूते कर्म धर्मश्च ना तथा । भूपगेहात्समागत्य पश्यतस्तस्य निर्गताः ।।१०६
तत्पश्चात्सत्यपुरुषो राजानमिदमब्रवीत् । दरिद्रो यत्र भूपाल तत्र कर्मपरो न हि ।।
कर्मणा रहितो धर्मो भूतले न स्थिरो भवेत् ।।१०७
धर्मेण रहिता लक्ष्मीर्न शोभेत कदाचन । अहं लक्ष्म्या विहीनश्च न तिष्ठामि कदाचन ।।१०८
इत्युक्त्वा गन्तुमिच्छन्तं गृहीत्वा करयोर्नृपः । नम्रीभूतो वचः प्राह शृणु सत्यं मम प्रियम् ।।१०९
न त्याज्यो हि मया देव भवान्किङ्गन्तुमर्हति । इति श्रुत्वा तु वचनं सत्यदेवो गृहेऽगमत् ।।११०
तत्पश्चाच्च स्वयं लक्ष्मीस्तद्गेहे गन्तुमुद्यता । तामाह भूपतिर्धीरो देवि त्वं चञ्चला सदा ।।१११
अचला भव भो मातस्तर्हि मन्मन्दिरं व्रज । इति श्रुत्वा वरं दत्त्वा नृपगेहं ययौ तदा ।।११२
पुरोधसं तं गणकं समाहूय नृपोत्तमः । लक्षस्वर्णं ददौ तस्मै कथित्वा सर्वकारणम् ।।११३
पुत्रजन्मनि काले तु सम्प्राप्तं तेन वै धनम् । व्ययं कृत्वा धनं सर्वं पोषयामास बालकम् ।।११४
पूषा नाम ततो जातो मार्गशीर्षे शुभे दिने । स तु सूर्यं समाराध्य ज्योतिःशास्त्रपरः सुतः ।।११५

लाना आरम्भ किया । एक बार एक लोहार ने लोहे की दरिद्र की मूर्ति बनाकर उस बाजार में विक्रयार्थ उपस्थित किया और सौ रुपया उसका निर्धारित मूल्य बताया । राजा ने देखा कि उस दरिद्र की मूर्ति को कोई क्रय (खरीद) नहीं कर रहा है, तो सौ रूपया देकर स्वयं सबका क्रय कर अपने घर के कोशागार में उसे स्थापित की । उसी दिन आधी रात के अंधेरे समय में राजा के भवन से कर्म, धर्म, और लक्ष्मी उनके देखते-देखते सामने से होकर निकल गये । पश्चात् सत्यपुरुष ने भी राजा से कहा—राजन् ! जिसके गृह में दरिद्र निवास करता है, वह मनुष्य कर्तव्य-पालन नहीं कर सकता । कर्त्तव्यहीन होने पर उसका धर्म भी इस पृथ्वी पर स्थित नहीं रह सकता । धर्मरहित होने पर उसके घर लक्ष्मी भी कभी सुशोभित नहीं हो सकती हैं और लक्ष्मीविहीन होकर मैं कभी नहीं रहता हूँ । इतना कहकर सत्य वहाँ से चलना चाहता था कि राजा ने उन्हें रोककर विनम्र वाणी द्वारा उनसे कहा—सत्य ! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें । देव ! आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, अतः आपका त्याग मैं कभी नहीं कर सकता । क्या अब भी आप जाना चाहेंगे । इसे सुनकर सत्यदेव उनके घर लौट गये, पश्चात् लक्ष्मी भी राजा के यहाँ लौटने के लिए उत्सुक हुईं । उन्हें उद्यत देखकर राजा ने कहा—देवि ! तुम सदैव चंचल रही हो, किन्तु मातः । अब मेरे महल में चलकर अपनी अचल स्थिति करें । इसे सुनकर लक्ष्मी ने उन्हें वरदान प्रदान किया और उनके घर अचल निवास भी । अनन्तर उस नृपश्रेष्ठ ने अपने गणक पुरोहित को बुलाकर समस्त वृत्तान्त निवेदनपूर्वक उन्हें एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रदान किया । उस समय पुरोहित के घर पुत्र-जन्म हुआ था । गणक ने उस धन से उसी बालक का सुचारु रूप से पोषण किया । मार्गशीर्ष के शुभ दिन में जन्म ग्रहण करने के नाते उसका नाम पूषा हुआ जिसने सूर्य की आराधना द्वारा ज्योतिषशास्त्र में अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की । तदुपरान्त

सूर्ये तु मोक्षमगमद्देवदेवप्रसादतः । तस्मात्त्वं मार्गमासे वै रविं देवेन्द्र पूजय ॥११६

सूत उवाच

देवेन्द्रपूजनात्सूर्यस्समागम्य तदा स्वयम् । पूषा नाम वचो देवानुवाच मधुरस्वरम् ॥११७
उज्जयिन्यामहं देवा याम्ये रुद्रपशोर्गृहे । नाम्ना च मिहिराचार्यो ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तकः ॥११८
इत्युक्त्वा भगवान्पूषा पुत्रो जातो द्विजस्य वै । मूलगण्डान्तविषयेऽभिजिद्योगे शुभङ्करे ॥११९
जातमात्रं च तं पुत्रं पिता काष्ठकटाहके । धृत्वा क्षिप्त्वा नदीमध्ये निशीथे समवाहयत् ॥१२०
समुद्रमगमत्पुत्रो राक्षसीभिश्च रक्षितः । लङ्कामागम्य तत्रैव ज्योतिःशास्त्रमधीतवान् ॥१२१
जातकं फलितं चैव मूकप्रश्नं तथादितः । पठित्वा राक्षसेन्द्रं च विभीषणमुपागतम् ॥१२२
भक्तराज नमस्तुभ्यं बिभीषण हरिप्रिय । आहृतो राक्षसीभिश्च त्वामहं शरणं गतः ॥१२३
इति श्रुत्वा च स नृपो वैष्णवं द्विजमुत्तमम् । मत्वा सम्प्रेषयामास यत्र तज्जन्मभूमिका ॥१२४
म्लेच्छैर्विनाशितं यत्तु वेदाङ्गं ज्योतिषां गतिः । पुनरुद्धारितं तेन त्रिधाभूतं सनातनम् ॥१२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजिदीक्षितवराहमिहिराचार्योत्पत्तिवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ।८

शरीर त्यागने पर वह देवाधिदेव सूर्य के प्रसाद से उन्हीं में लीन हो गया । अतः देवेन्द्र ! तुम उसी मार्ग (अगहन) मास के सूर्य की अर्चना करो ।।१०५-११६

सूतजी बोले——इन्द्र के पूजन करने पर उस समय पूषा नामक सूर्य ने वहाँ उपस्थित होकर देवों से मधुर वाणी द्वारा कहा—उज्जयिनी पुरी में रुद्रपशु के गृह में उत्पन्न होकर मैं ज्योतिष्शास्त्र प्रवर्तक एवं मिहिराचार्य के नाम से ख्याति प्राप्त करूँगा । इतना कहकर भगवान् पूषा ने उस ब्राह्मण के घर बालक रूप में जन्म ग्रहण किया । मूल गण्डान्त नक्षत्र तथा शुभदायक, अभिजित योग में उत्पन्न होने के नाते उस बालक को उसके माता-पिता ने काष्ठ की सन्दूक में उसे बन्दकर आधी रात के समय नदी में डाल दिया । नदी द्वारा वह बालक समुद्र में पहुँच गया, वहाँ राक्षसियों द्वारा सुरक्षित रहकर समुद्र से लंका में पहुँचा । वहाँ रहकर उसने ज्योतिष्शास्त्र का विशेषाध्ययन किया, जिससे जातकफलित और मूकप्रश्न आदि की विशेष निपुणता उन्हें प्राप्त हुई । पश्चात् राक्षसेन्द्र विभीषण के पास पहुँचकर उन्होंने कहा—भक्तराज, एवं हरिप्रिय विभीषण ! तुम्हें नमस्कार है । राक्षसियों द्वारा मेरा अपहरण हुआ है अतः मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ । इसे सुनकर उस राजा ने उस वैष्णव ब्राह्मणश्रेष्ठ को उनकी जन्मभूमि में पहुँचा दिया । वहाँ पहुँचकर उसने म्लेच्छों द्वारा विनष्ट उस वेदाङ्ग ज्योतिष्शास्त्र का, जो सनातन एवं तीन भागों में विभक्त है, पुनः उद्धार किया ।११७-१२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, भट्टोजीदीक्षित और वाराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

धन्वन्तरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवस्सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । प्रयागे तु पुनर्देवानुवाच वचसां पतिः ।।१
प्रतिष्ठानपुरे रम्ये सूर्यो जातो हराज्ञया । पुरा त्रेतायुगान्ते च तच्छृणुष्व सुरोत्तम ।।२
त्रेतान्ते सिंहलद्वीपे परीक्षितनृपोऽभवत् । वेदधर्मपरो नित्यं देवतातिथिपूजकः ।।३
कन्या भानुमती तस्य सूर्यव्रतपरायणा । भक्तिभावेन सविता प्रत्यहं तद्गृहे स्वयम् ।।४
तया कृतं शुभं भक्ष्यं मध्याह्ने भुक्तवान्प्रभुः । रविवारे कदाचित्सा नलिनी सागरं प्रति ।।५
स्नानार्थमागता कन्या तदा नारद आगतः । दृष्ट्वा मनोरमां बालामेकाकीं जलमध्यगाम् ।।६
गृहीत्वा वसनं तस्या वचनं प्राह निर्भयः । पाणिं गृहाण मे सुभ्रूस्त्वद्दृष्ट्या वशमागतः ।।७
इत्युक्तवन्तं तु मुनिं कुमारी नम्रकन्धरा । उवाच शृणु देवर्षे कन्याहं त्वं सुतप्रदः ।।८
भवान्देवाङ्गनाभिश्च प्रार्थितः स्वर्गमण्डले । क्व च वै मेनका रम्भा क्वाहं मनुजयोनिजा ।।९
नवद्वारेषु देहेस्मिन्दुर्गन्धाः संस्थिताः सदा । नैव देवाङ्गनाङ्गे वै तस्मात्तुभ्यं नमोनमः ।।१०
इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितो नारदस्तदा । महादेवमुपागम्य चोक्तवान्सर्वकारणम् ।।११

अध्याय ९

धन्वंतरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पति का वर्णन

सूतजी बोले—प्रयागतीर्थ में भगवान् बृहस्पति ने देवों को सूर्य का उत्तम माहात्म्य सुनाकर पुनः कहना आरम्भ किया। सुरोत्तम ! पहले त्रेतायुग के अन्त समय में भगवान् शंकर की आज्ञा से सूर्य ने प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) में जन्म ग्रहण किया था। मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! त्रेतायुग के अन्त समय में सिंहलद्वीप का राजा परीक्षित था, जो वेद-धर्म का अनुयायी और देवों तथा अतिथियों की नित्य पूजा करता था। उसकी भानुमती नामक कन्या सूर्यव्रत का परायण करती थी। उसके भक्तिभाव से प्रसन्न होकर सूर्यदेव प्रतिदिन उसके घर स्वयं आकर मध्याह्न समय उसके द्वारा समर्पित भक्ष्य पदार्थ का भोजन करते थे। एक बार रविवार के दिन उस कमलाङ्गी कुमारी ने सागर में स्नानार्थ प्रस्थान किया। उसके वहाँ पहुँचने पर नारद जी वहाँ आये। जल के मध्य स्नान करती हुई उस मनोरमा कुमारी को अकेली देखकर नारद ने उसके वस्त्र पकड़कर निर्भीक होकर कहा—शुभ्रे ! मैं तुम्हारे कटाक्ष-पात से अधीर हो गया हूँ, अतः मेरा हाथ ग्रहण करो ! ऐसा कहने पर उस कुमारी ने शिर झुकाकर उस मुनि से कहा—देवर्षे ! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें—मैं कुमारी हूँ और आप पुत्र प्रदाता हैं तथा आकाश मण्डल में स्थित होकर देवाङ्गनाएँ आपकी प्रार्थना करती हैं। इसलिए कहाँ वह मेनका और कहाँ मानुषी मैं। क्योंकि मनुष्यों के नवद्वारों वाली इस देह में सदैव दुर्गन्ध ही स्थित रहती है और देवस्त्रियों के अंगों में नहीं। इसलिए मेरी उनकी समता अत्यन्त दुर्लभ है।१-१०। इतना सुनकर नारद अत्यन्त लज्जित हुए। पश्चात्

कुष्ठीभूतं मुनिं दृष्ट्वा शङ्करो लोकशङ्करः । तुष्टाव भास्करं देवं तदा प्रादुरभूत्प्रभुः ॥१२
नारदस्य शुभं देहं कृत्वा शिवमुवाच ह । आज्ञां देहि महादेव तवाशां पूरयाम्यहम् ॥१३
इत्युक्तं तं शिवः प्राह द्विजो भूत्वा भवान्भुवि । गृहाण नृपतेः कन्यां रविणा तु तथा कृतम् ॥१४
सविता भानुमत्या च सार्द्धं कृत्वा तपोन्वहम् । सूर्यलोकं पुनः प्रा तस्स पौषे च प्रकाशकृत् ॥
तं भजाशु महेन्द्र त्वं देवकार्यं प्रसाधय ॥१५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं महेन्द्रश्च सुरैस्सह । सवितारं पौषमासे तुष्टाव शुभपूजनैः ॥१६
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभं वचः । अहं काश्यां भवाम्यद्य नाम्ना धन्वन्तरिः स्वयम् ॥१७
रोगैश्च पीडितांल्लोकान्कलिना निर्मितैर्भुवि । शमयिष्यामि तत्रोष्य देवकार्यं भविष्यति ॥१८
इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यः काशीनगरमागतः । कल्पदत्तस्य विप्रस्य पुत्रो भूत्वा महीतले ॥१९
सुश्रुतं राजपुत्रं च विप्रवृद्धसमन्वितम् । शिष्यं कृत्वा प्रसन्नात्मा कल्पवेदमचीकरत् ॥२०
रोगैश्च क्षयितं देहं कात्पमेतत्स्मृतं बुधैः । तस्य ज्ञान च तन्त्रेऽस्मिन्कल्पवेदोद्यतः स्मृतः ॥२१
धन्वन्तरिस्स भगवान्प्रसिद्धोऽभूत्कलौ युगे । यस्य दर्शनमात्रेण रोगा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥२२
सुश्रुतः कल्पवेदं तं धन्वन्तरिविनिर्मितम् । पठित्वा च शताध्यायं सौऽश्रुतं तन्त्रमाकरोत् ॥२३

महादेव जी के पास जाकर समस्त वृतान्त का वर्णन किया । लोक-कल्याणकर्त्ता शिवजी ने उन्हें कुष्ठरोग से ग्रस्त देखकर भास्करदेव की आराधना की । उस समय सूर्यदेव ने साक्षात् प्रकट होकर नारद के शरीर को नीरोग करते हुए शिवजी से कहा—महादेव ! आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं आपकी आशा पूरी कर दूँ ।१-१३। उनके इस प्रकार कहने पर शिव जी ने कहा—आप ब्राह्मण के वेष धारणकर उस कन्या का ग्रहण करें । पश्चात् सूर्य ने वैसा ही किया । सविता (सूर्य) ने उस भानुमती के साथ पाणिग्रहण करने के उपरान्त तप करना आरम्भ किया, जिससे सूर्यलोक की पुनः प्राप्ति की । वही प्रत्येक पौष में प्रकाश प्रदान करते हैं । अतः महेन्द्र ! उन्हीं सूर्य की आराधना द्वारा देवकार्य शीघ्र सफल करो ।१४-१५

सूत जी बोले—गुरु की ऐसी बात सुनकर सुरेश ने देवों के साथ शुभपूजन द्वारा पौष मास के उस सूर्य की आराधना आरम्भ की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने शुभ वाणी द्वारा देवों से कहा—मैं काशीपुरी में धन्वन्तरि के नाम से उत्पन्न हूँगा । वहाँ रहकर कलि द्वारा उत्पन्न रोगों से पीड़ित प्राणियों को नीरोग करूँगा, जिससे देवकार्य स्वयं सिद्ध हो जायेगा । इतना कहकर भगवान् सूर्य काशीपुरी में आकर कल्पदत्त ब्राह्मण के घर पुत्ररूप में उत्पन्न हुए और प्रसन्न होकर उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण समेत उस सुश्रुत राजपुत्र को शिष्य बनाकर कल्पवेद की रचना की, जिससे रोगद्वारा नष्ट देह (कायाकल्प) नवीन हो जाती है । उस कल्पवेद का समस्त ज्ञान इस तंत्र में निहित हैं । उस समय वे सूर्य उस रूप में धन्वन्तरि के नाम से इस भूतल में प्रख्यात हुए, जिसके दर्शनमात्र से उसी समय रोग नष्ट हो जाते हैं । सुश्रुत ने धन्वन्तरि द्वारा रचित उस कल्पवेद के सौ अध्याय का अध्ययन करके 'अश्रुततंत्र' की रचना की ।१६-२३

बृहस्पतिरुवाच

पुरा पम्पापुरे रम्ये हेली नाम्ना द्विजोऽभवत् । चतुष्षष्टिकलाभिज्ञो रविपूजनतत्परः ॥२४
त्यक्त्वा प्रतिग्रहं वृत्तिं कारुवृत्तिं गृहीतवान् । कृत्वा वस्त्रकलं लौहं तथा चित्रकलं पुनः ॥२५
धातुमूर्तिकलं चैव सर्वकारुकलं तथा । पञ्चसहस्रमुद्राभिराक्रीणन्कारुकोऽभवत् ॥२६
कलएको मासमात्रे काले तेनैव निर्मितः । तद्धनेन रविं देवं यज्ञैर्माघे हि सोऽर्चयत् ॥
विश्वकर्मा रविः साक्षान्माघमासे प्रकाशकः ॥२७
हेलिनो बहुलैर्यज्ञैस्सन्तुष्टः प्रत्यहं प्रभुः । पम्पासरोवरे रम्ये निर्मितः स्तम्भ उत्तमः ॥२८
ज्योतीरूपो महारम्यस्तत्र प्राप्तो रविः स्वयम् । मध्याह्ने हेलिना दत्तं भोजनं दैवतप्रियम् ॥२९
भुक्त्वा स प्रत्यहं स्वामी मासिमासि दिवाकरः । त्रैलोक्यं भावयाञ्चक्रे सर्वदेवमयो हरिः ॥३०
सहस्रायुर्द्विजो भूत्वा त्यक्त्वा प्राणान्रविः स्वयम् । भूत्वा मण्डलमध्यास्य माघमासमतोषयत् ॥
तं सूर्यं भज देवेन्द्र स ते कार्यं करिष्यति ॥३१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वासवो दैवतैस्सह । सूर्यमाराधयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् ॥३२
तदा प्रसन्नो भगवांस्त्वष्टा तुष्टिकरो जनान्[1] । सुरानाह वचो रम्यं शृणुध्वं सुरसत्तमाः ॥३३

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में रम्य पम्पापुर में एक हली नामक ब्राह्मण रहता था, जो चौंसठ कलाओं में निपुण और नित्यसूर्य का उपासक था। प्रतिग्रह (दान) वृत्ति का त्यागकर उसने कलावृत्ति स्वीकार की। वस्त्रकला, लोह-कला, चित्रकला एवं धातुओं की मूर्तिकला को अपनाकर वह समस्त कलाओं का कार्य करता था, जिससे उसे पाँच सहस्र मुदा की प्राप्ति हुई। एक मास के भीतर ही उसने एक फल का निर्माण किया। उस धन से उसने माघ मास में यज्ञानुष्ठान द्वारा सूर्यदेव को प्रसन्न किया, जिससे विश्वकर्मा के नाम से सूर्यदेव प्रत्येक माघमास में प्रकाश करते रहते हैं। उस हली ब्राह्मण ने अनेक यज्ञों द्वारा सूर्य को अत्यन्त प्रसन्न किया, जिससे पम्पासरोवर में उसके द्वारा निर्मित स्तम्भ के स्थापित होने पर सूर्य वहाँ अन्यन्त सुरम्य ज्योतिरूप में स्वयं उस स्तम्भ पर मध्याह्न समय पहुँचकर उसके दिये हुए भक्ष्य का ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मास के उस देवप्रिय भक्ष्यपदार्थ को ग्रहणकर सूर्यदेव सर्वदेवमय होकर वहाँ त्रैलोक्य की कल्याण भावना करते रहते हैं। पश्चात् सहस्र वर्ष की आयु के उपरान्त उस ब्राह्मण ने प्राण परित्यागकर सूर्य के रूप में मण्डल के मध्य पहुँचकर माघ मास में सूर्य को सन्तुष्ट किया। अतः देवेन्द्र ! तुम उसी सूर्य की आराधना करो, वही तुम्हारा कार्य सिद्ध करेंगे।२४-३१

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर देवों समेत इन्द्र ने उस विश्वकर्मा सूर्य की आराधना की। उस समय प्रसन्न होकर त्वष्टा रूप सूर्य ने भी उन देवों को प्रसन्न किया। उन्होंने देवताओं से मधुर वाणीद्वारा कहा—सुरोत्तमवृन्द ! मेरी बात सुनो ! वंगदेश के विल्व नामक

---

१. जनानामित्यर्थः ।

बिल्वग्रामे वङ्गदेशे सम्भवामि निरुक्तकृत् । जयदेव इति ख्यातः कवीनां हि शिरोमणिः ॥३४
इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो वङ्गदेशमुपाययौ । गेहे कन्दुकिनो जातो ब्राह्मणस्य महीतले ॥३५
स पञ्चाब्दवपुर्भूत्वा पितृमातृपरायणः । द्वादशाब्दं महासेवा तत्र तेन तयोः कृता ॥३६
मृतिमन्तौ च पितरौ प्रेतकृत्येन तर्पितौ । जयदेवेन तौ नाकं गयाश्राद्धे हि जग्मतुः ॥३७
जयदेवस्तदा विप्रो भूत्वा वैराग्यवान्भुवि । तत्रस्थाने महारण्ये वने वासमकारयत् ॥३८
त्रिविंशाब्दे ततः प्राप्ते केनचिन्मधुराननना । ब्राह्मणेन शुभा कन्या जगन्नाथाय चार्पिता ॥३९
अर्चावसाने भगवाननिरुद्धस्सनातनः । दारुब्रह्ममयः साक्षादाह तं स्वेन वै वचः ॥४०
शृणु त्वं भोः सत्यव्रत जयदेवो वपुर्मम । पद्मावतीं सुतां तस्मै निवेदय ममाज्ञया ॥४१
इत्युक्तस्स द्विजस्तूर्णं दृष्ट्वा वैरागरूपिणम् । तत्र स्थाप्य निजां कन्यां स्वगेहाय मुदा ययौ ॥४२
सा तु पद्मावती कन्या मत्वा तं सुन्दरं पतिम् । तत्सेवां सा मुदा युक्ता चकार बहुवार्षिकम् ॥४३
निरुक्तं वैदिकं चाङ्गं कृतवान्स समाधिना । वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ॥
षोडशादौ विकारश्च वर्णनाशः पृषोदरे ॥४४
वर्णविकारनाशाभ्यां धातोरतिशयेन यः । योगस्तदुच्यते प्राज्ञैर्मयूरभ्रमरादिषु ॥४५
एवं पञ्चविधान्येवं निरुक्तानि स्मृतानि वै । शूद्रैश्च नागवंशीयैर्भ्रंशितानि कलौ युगे ॥४६

ग्राम में मैं निरुक्तकार के रूप में उत्पन्न होकर जयदेव नामक कवि शिरोमणि हूँगा । इतना कहकर भगवान् सूर्य ने वंग प्रदेश में पहुँचकर कन्दुकी ब्राह्मण के घर जन्म ग्रहण किया । पाँच वर्ष की अवस्था से उन्होंने अपने माता-पिता की अनवरत सेवा बारह वर्ष तक की । पश्चात् उन दोनों के निधन हो जाने पर उन्होंने उनकी अन्त्येष्टिक्रिया द्वारा भी उन्हें सन्तुष्ट किया और गया जी में श्राद्ध करके स्वर्ग का निवासी बनाया । तदनन्तर यज्ञोपवीत होने पर जयदेव ने वैराग्य धारणकर उसी स्थान के एक महारण्य में निवास करना आरम्भ किया । उस समय उनकी तेईस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । किसी ब्राह्मण ने अपनी शुभ-कन्या जगन्नाथ जी को अर्पित किया, पश्चात् पूजा करने के उपरान्त सनातन अनिरुद्ध भगवान् ने, जो ब्रह्ममय काष्ठरूप में स्थित थे, साक्षात् अपनी वाणी द्वारा उस ब्राह्मण से कहा—सत्यदेव ! मेरी बात सुनो ! जयदेव की शरीर मेरी ही शरीर है, अतः मेरी आज्ञा से तुम अपनी इस पद्मावती को उन्हें समर्पित करो । इतना कहने पर उस ब्राह्मण ने शीघ्र वहाँ जाकर उन वैरागी जयदेव के पास अपनी पुत्री को छोड़कर हर्षमग्न होकर अपने घर को प्रस्थान किया । उस पद्मावती कन्या ने भी उन्हें अपना सुन्दर पति समझकर उनकी बहुत वर्षों तक सेवा की । जयदेव जी ने समाधिस्थ होकर वैदिक अंगभूत निरुक्त की कल्पना की, जो गवेन्द्र पद की सिद्धि में गो + इन्द्र अवस्था में ओ के प्रस्थान पर 'अव' आदेश रूप वर्णागम 'सिंह' में हसिं की अवस्था में सिं का प्रथम आना, वर्ण विपर्यय (उलटफेर) षोडश में षष + दश अवस्था में ष के स्थान पर उकार और द के स्थान पर ड़ रूप वर्ण विकार, एवं पृषतोदर में पृष उदर में त का लोप रूप वर्णनाश के क्रम से वर्ण विकार वर्णनाश और मयूर तथा भ्रमर पदों की सिद्धि में धातु के अतिशयित्व रूप योग विद्वानों द्वारा बताया गया है । इस प्रकार पाँच प्रकार के निरुक्त की रचना उनके द्वारा की गई है ।३२-४६। कलियुग में नागवंशीय शूद्रों द्वारा भ्रष्ट की गई उस प्राकृत भाषा के उन कलिप्रिय एवं मूर्खों

जित्वा प्राकृतभाषायाः कर्तृमूढान्कलिप्रियान् । शुद्धं हि पाणिनिः शास्त्रं चकार सुरहेतवे ॥४७
एकदा तु कलिर्धूर्तो हृदिस्थश्चौरकर्मणाम् । नृपदत्तं द्विजस्यैव लुण्ठयित्वा धनं बहु ॥४८
पद्मावतीं सतीं मत्वा त्यक्त्वा तद्वै गतो गृहम् । हस्तौ पादौ द्विजस्यैव कलिश्चौरैः समाच्छिनत् ॥४९
तदा तु दुःखिता देवी गर्तमध्ये स्थितं पतिम् । निष्कास्य बहुधालप्यापीड्य हस्तेन चाहरत् ॥५०
एकस्मिन्दिवसे राजा मृगयार्थमुपागतः । अहस्तपादं च मुनिं जयदेवं ददर्श ह ॥
स पृष्टस्तेन तत्रैव कृतं केन तवेदृशम् ॥५१
स होवाच महाराज हस्तपादविहीनकः । कर्मणाहमिह प्राप्तो न केनापि कृतं खलु ॥५२
इति श्रुत्वा धर्मपालो नृपतिस्तं द्विजोत्तमम् । सपत्नीकं च शिबिकामारोप्य स्वगृहं ययौ ॥५३
तस्य दीक्षां नृपः प्राप्य धर्मशालामकारयत् । कदाचिद्वैष्णवा भूता ते चौराः कलिनिर्मिताः ॥
धर्मपालगृहं प्राप्य राजानमिदमब्रुवन् ॥५४
वयं हि शास्त्रनिपुणास्तव गेहमुपागताः । अस्माभिर्निर्मितं भोज्यं स्वयं विष्णुः शिलामयः ॥
सम्भुक्ते प्रत्यहं प्रीत्या तत्पश्य नृपसत्तम ॥५५
इत्युक्त्वा कलिभक्तास्ते विष्णुरूपं चतुर्भुजम् । नृपाय दर्शयामासुर्भुक्तवन्तं स्वमायया ॥५६
विस्मितो धर्मपालश्च जयदेवमुवाच ह । गुरो मद्भवने प्राप्ता वैष्णवा विष्णुतत्पराः ॥
अदीदृशन्हरिं साक्षात्तस्मात्त्वं शीघ्रमाव्रज ॥५७

को पराजित कर इन्होंने देवों के निमित्त पाणिनि शास्त्र की रचना की । एक बार धूर्त कलि ने चोरों के हृदय में स्थित होकर उन चोरों द्वारा इन जयदेव ब्राह्मण के धनों को, जिसे राजा ने प्रदान किया था, लुटवाकर पद्मावती को सती समझकर छोड़ दिया किन्तु इनके हाथ-पाँव भी कटा लिए । उससे दुःखी होकर उनकी पत्नी ने गड्ढे में गिरे हुए अपने पति को करुण क्रन्दन करती हुई किसी भाँति हाथ के सहारे उस गड्ढे से निकाला । उसी समय राजा शिकार के लिए जा रहे थे, मार्ग में जयदेव को कर-चरणहीन देखकर उन्होंने उनसे पूछा—किसने आपकी यह दशा की है । उन्होंने कहा—महाराज ! मैं अपने कर्म द्वारा ही इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ, इसमें किसी अन्य का अपराध नहीं है । इसे सुनकर राजा धर्मपाल ने पत्नी समेत उन्हें पालकी पर बैठाकर अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा ने उनसे दीक्षा ग्रहण की, पश्चात् एक धर्मशाला का निर्माण कराया । एक बार कलिनिर्मित उन चोरों ने वैष्णव के रूप में राजा धर्मपाल के गृह आकर उनसे कहा—हम लोग शास्त्र के निपुण विद्वान् हैं, किन्तु इस समय तुम्हारे यहाँ आये हैं । नृपसत्तम ! हम लोगों के बनाये हुए भोज्य पदार्थ को शालग्राम शिलामय विष्णु भगवान् स्वयं सप्रेम भक्षण करते हैं, उसे आज आप भी देखिये मैं दिखाऊँगा । इतना कहकर उन कलिभक्त वैष्णवों ने अपनी माया द्वारा भोजन करते हुए भगवान विष्णु का दर्शन राजा को करा दिया, जिससे आश्चर्य चकित होकर धर्मपाल ने जयदेव से कहा—गुरो ! मेरे घर में विष्णुभक्त वैष्णव लोग आये हुए हैं, जो भगवान् का साक्षात् दर्शन करा रहे हैं, अतः आप भी वहाँ शीघ्र चलने की कृपा करें।४७-५७। इसे सुनकर जयदेव वहाँ पहुँचे किन्तु राजा को उस समय महान् आश्चर्य हुआ, जब उन

इति श्रुत्वा द्विजः प्राप्तो विस्मितोऽभूत्तथा नृपः । तदा तु तं हि पाखण्डा भूपमूचुर्विहस्य ते ।।५८
असौ विप्रश्च नृपते गौडदेशे निवासिनः । सूदो भक्ष्यकरस्तस्मै कदाचिद्धनलोभतः ।।५९
गरलं मिश्रितं भक्ष्ये तेन[1] पाखण्डरूपिणा । ज्ञात्वा राजा तु तं विप्रं शूलमध्ये ह्यरोपयत् ।।६०
एतस्मिन्नन्तरे राजन्वयं तत्र समागताः । आगस्कृतं द्विजं मत्वा दत्त्वा ज्ञानान्यनेकशः ।।
शूलात्तं हि समुतार्य हस्तौ पादौ नृपोऽच्छिनत् ।।६१
अस्माकं शिष्यभूतो हि राजास्माभिः प्रबोधितः । इत्युक्तमात्रे वचने दुःखिताभूच्च दारिता ।।६२
चौरांस्तान्सा हि पाताले चकार सुररक्षितान् । जयदेवस्तथा भूतान्दृष्ट्वा चोरान्रुरोद ह ।।६३
क्रन्दमाने द्विजे तस्मिन्हस्ताङ्घ्री[2] प्रकृतिं गतौ । विस्मितं नृपतिं तत्र सर्वं हेतुमवर्णयत् ।।६४
श्रुत्वा राजा प्रसन्नात्मा जयदेवमुखोद्भवम् । गीतगोविन्दमेवाशु पठित्वा मोक्षमागमत् ।।६५
इति ते कथितं विप्र जयदेवो यथाभवत् । कृष्णचैतन्यचरितं यथा जातं शृणुष्व तत् ।।६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्यायि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये धन्वन्तरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

पाखण्डियों ने हँसते हुए जयदेव को देखकर राजा से कहना आरम्भ किया—यह ब्राह्मण गौड़ देश निवासी राजा के यहाँ पाचक (रसोइया) था। एक बार इस पाखण्डी ने धन के लोभ से मुझे विषमिश्रित भोजन कराया, जिसके विदित हो जाने पर राजा ने इसे शूली पर चढ़ाना चाहा, उसी समय हम लोगों ने वहाँ पहुँचकर इस ब्राह्मण को अपराधी समझते हुए भी राजा को अनेक भाँति से ज्ञान प्रदान किया, तथापि राजा ने शूली से हटाकर इसके हाथ-पैर कटवा लिये, क्योंकि राजा हम लोगों का शिष्य था, इसलिए हम लोगों ने ऐसा ही बताया था। इतना कहने पर उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ हृदयविदीर्ण-सा प्रतीत होने लगा। पश्चात् राजा ने उस चोरों को पाताल में ठहराया, जो सुरनायक की रक्षा कर रहे थे। उसे देखकर जयदेव ने रुदन किया। उनके करुणक्रन्दन करने पर उनके हाथ-पैर पूर्व की भाँति स्वस्थ हो गये। इसे देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ, उस समय जयदेव ने उनसे सभी कारणों का वर्णन किया। उसे सुनकर राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पश्चात् उस राजा ने जयदेव के मुख से निकले उस गीत गोविन्द के गायन-भजन द्वारा मोक्ष प्राप्त की।, विप्र ! इस प्रकार मैंने जयदेव की उत्पत्ति कथा सुना दी। अब कृष्ण चैतन्य की कथा कह रहा हूँ, सुनो ।५८-६६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में धन्वन्तरि, सुश्रुत और जयदेव की उत्पत्ति वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

---

१. दत्तमिति शेषः । २. जातित्वादेकवचनान्तहस्तपादयोर्द्वन्द्वः ।

अथ दशमोऽध्यायः

कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्तिवर्णनम्

जीव उवाच

विष्णुशर्मा पुरा कश्चिद्विप्रोभूद्वेदपारगः । सर्वदेवमयं विष्णुं पूजयित्वा प्रसन्नधीः ॥१
अन्यैस्सुरैश्च सम्पूज्यो बभूव हरिपूजनात् । भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पत्नीमान्पुत्रवर्जितः ॥२
कदाचित्तस्य गेहे वै यती कश्चित्समागतः । द्विजपत्नीं तदैकाकीं[1] भक्तिनम्रां दरिद्रिणीम् ॥
दृष्ट्वोवाच महाभागः स स्पर्शाद्वचो[2] दयापरः ॥३
अनेन स्पर्शमणिना लोहधातुश्च काञ्चनम् । भवेत्तस्मान्महासाध्वि त्रिदिनान्तं गृहाण तम् ॥४
स्नात्वा तावत्सरय्वां चायास्यामि तेऽन्तिकं मुदा । इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो ब्राह्मणी बहु काञ्चनम् ॥
कृत्वा लक्ष्मीं समाप्यासोद्विष्णुशर्मा तदागमत् ॥५
बहुस्वर्णयुतां पत्नीं दृष्ट्वोवाच हरिप्रियः । गच्छ नारि मदाघूर्णे यत्र वै रसिको जनः ॥६
अहं विष्णुपरो दीनश्चौरभीतः सदैव हि । मधुमत्तां कथं त्वां वै गृहीतुं भुवि च क्षमः ॥७
इति श्रुत्वा वचो घोरं पतिभीता पतिव्रता । सस्वर्णं स्पर्शकं तस्मै दत्त्वा सेवापराऽभवत् ॥८

अध्याय १०

कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—पहले कोई विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण था, जो वेद का मर्मज्ञ तथा प्रसन्नचित्त होकर नित्य सर्वदेवमय विष्णु की आराधना करता था। भगवान् की उपासना करने के कारण समस्त देवों के पूज्य होने पर भी वह ब्राह्मण भिक्षा याचन द्वारा ही अपनी जीविका निर्वाह करता था। घर में केवल पत्नी ही थी पुत्र आदि अन्य कोई नहीं। एक बार उस ब्राह्मण के घर एक कोई संन्यासी आया। उसने उस ब्राह्मण-पत्नी को भक्ति विनम्र एवं अत्यन्त दरिद्र-पीड़ित देखकर कहा—यह पारस पत्थर अत्यन्त पुण्यात्मा एवं अत्यन्त दयालु है क्योंकि इसके स्पर्शमात्र से लोहा भी सुवर्ण हो जाता है अतः साध्वि ! इसे तुम तीन दिन तक अपने पास रखकर मन इच्छित सुवर्ण बना लो। तब तक मैं सरयू-स्नान करके आ जाऊँगा। इतना कहकर वह ब्राह्मण स्नानार्थ चला गया और वह ब्राह्मणी मनोनुरूप मात्रा में सुवर्ण बनाकर लक्ष्मी की भलीभाँति प्राप्ति की। उसी समय विष्णुशर्मा भी भिक्षा लेकर घर आये। उन्होंने अत्यन्त सुवर्णयुक्त अपनी पत्नी को देखकर कहा—मतवाली कामिनि ! तुम अब किसी रसिक प्रेमी के यहाँ जाकर रहो, क्योंकि मैं विष्णु का उपासक, दीन एवं चोरों आदि से भयभीत होने वाला ब्राह्मण हूँ, तुम सौन्दर्यपूर्ण मदोन्मत्त हो रही हो इसलिए मैं तुम्हारा ग्रहण कैसे कर सकता हूँ। इस दारुण वचन को सुनकर पति से भयभीत होकर उस पतिव्रता ने समस्त सुवर्ण समेत उस पारस को पति के समक्ष रख दिया

---

१. आर्षोयम्। २. पारस इति भाषायाम्।

द्विजोऽपि घर्घरामध्ये तद्द्रव्यं बलतोऽक्षिपत् । त्रिदिनान्ते च स यतिस्तत्रागत्य मुदान्वितः ।।
उवाच ब्राह्मणीं दीनां स्वर्णं किं न कृतं त्वया ।।९
साह भो सत्पतिश्शुद्धो गृहीत्वा स्पर्शकं रुषा । घर्घरे च निचिक्षेप ततोहं वह्निपाकिनी ।।
निर्लोहो वर्तते विप्रस्ततः प्रभृति हे गुरो ।।१०
इति श्रुत्वा तु वचनं तस्य यतिर्विस्मयान्वितः । स्थित्वा दिनान्ते तं विप्रमुवाच बहु भर्त्सयन् ।।११
दरिद्रो भिक्षुकश्चासि भवान्दैवेन मोहितः । देहि मे स्पर्शकं शीघ्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।१२
इत्युक्तवन्तं यतिनं विष्णुशर्मा तदाब्रवीत् । गच्छ त्वं घर्घराकूले तत्र वै स्पर्शकस्तव ।।१३
इत्युक्त्वा यतिना सार्द्धं गृहीत्वा कण्टकान्बहून् । यतिने दर्शयामास स्पर्शकानिव कण्टकान् ।।१४
तदा तु स यती विप्रं नत्वा प्रोवाच नम्रधीः । मया वै द्वादशाब्दान्तं सम्यगाराधितः शिवः ।।
ततः प्राप्तं शुभं रत्नं तत्तुत्वद्दर्शनेन दै ।।१५
स्पर्शको बहुधा प्राप्तो मया लोभात्मना द्विजः । इत्याभाष्य शुभं ज्ञानं प्राप्तो मोक्षमवाप्तवान् ।।१६
विष्णुशर्मा सहस्राब्धमुषित्वा जगतीतले । सूर्यमाराध्य विधिवद्विष्णोर्मोक्षमवाप्तवान् ।।१७
स द्विजो वैष्णवं तेजो धृत्वा वै मासि फाल्गुने । त्रैलोक्यमतपत्स्वामी देवकार्यपरायणः ।।१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवः पुनः प्राह शचीपतिम् । फाल्गुने मासि तं सूर्यं समाराध्य सुखी भव ।।१९

और उनकी सेवा करने लगी ।१-८। वह ब्राह्मण भी उस सुवर्ण और पारस को ले जाकर घाघरा नदी में डाल दिया । पश्चात् तीन दिन के अन्त में उस संन्यासी ने वहाँ आकर उस दीन ब्राह्मणी से कहा—क्या तुमने उस पारस से सुवर्ण नहीं बनाया । उसने कहा—मेरे पतिदेव अत्यन्त विशुद्धात्मा हैं, उन्होंने सुवर्ण समेत पारस को घाघरा नदी में डाल दिया । क्योंकि जब तक पारस घर में था मुझे भोजन बनाने की वे आज्ञा नहीं दे रहे थे । गुरो ! इस समय हम लोगों के पास वह पारस नहीं है । इसे सुनकर उस संन्यासी को महान् आश्चर्य हुआ । पश्चात् उस ब्राह्मण के आने पर उसे भर्त्सित करने लगा—आप दैवमोहित होकर ही दरिद्र एवं भिक्षुक बने हुए हैं । यदि आपको उसकी आवश्यकता नहीं है तो मुझे मेरा पारस लौटाने की कृपा कीजिये अन्यथा मैं प्राण परित्याग कर रहा हूँ । ऐसा कहने पर उस यति से विष्णुशर्मा ने कहा—घाघरा के तट पर चले जाओ तुम्हारा पारस उसी स्थान रखा हुआ है । इतना कहकर उस यति के साथ वहाँ जाकर अनेक कटंकों को लेकर पारस की भाँति उसे ही दिखा दिया । उस समय उस यति ने नमस्कार पूर्वक विनम्र होकर उस ब्राह्मण से कहा—मैंने बारह वर्ष तक शिव की आराधना करके उस शुभ-रत्न पारस की प्राप्ति की थी किन्तु आपके दर्शन मात्र से ही यहाँ मुझ लोभी को अनेक पारस की प्राप्ति हो गई । इतना कहकर उस यति ने शुभ ज्ञान प्राप्तिपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति की और विष्णुशर्मा ने इस पृथिवी तल पर एक सहस्र वर्ष रहकर सूर्य की विविध आराधना द्वारा विष्णु में मोक्ष प्राप्त किया । वही ब्राह्मण वैष्णव तेज धारणकर प्रत्येक फाल्गुन मास में तीनों लोकों को प्रकाशित किया जिससे देवकार्य की सिद्धि हुई ।९-१८

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् बृहस्पति ने पुनः शचीपति इन्द्र से कहा—फाल्गुन मास के

इत्युक्तो गुरुणा देवो ध्यात्वा सर्वमयं हरिम् । पूजनैर्बहुधाकारैर्देवदेवमपूजयत् ॥२०
तदा प्रसन्नो भगवान्समभूत्सूर्यमण्डलात् । चतुर्भुजो हि रक्ताङ्गो यथा यक्षस्तथैव सः ॥
पश्यतां सर्वदेवानां शक्रदेहमुपागमत् ॥२१
तत्तेजसा तदा शक्रः स्वान्तर्लीय स्वकं वपुः । अयोनिस्स द्विजो भूत्वा शची देवी तथैव सा ॥२२
तदा तौ मिथुनीभूतौ वैष्णवाग्निप्रपीडितौ । रमेते वर्षपर्यन्तं गङ्गाकूले महावने ॥२३
अधाद्गर्भं तदा देवी शची तु द्विजरूपिणी । भाद्रशुक्ले गुरौ वारे द्वादश्यां ब्राह्ममण्डले ॥२४
प्रादुरासीत्स्वयं विष्णुर्धृत्वा सर्वकलां हरिः । चतुर्भुजश्च रक्ताङ्गो रविकुम्भसमप्रभः ॥२५
तदा रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवा मरुद्गणाः । साध्याश्च भास्कराः सिद्धास्तुष्टुवुस्तं सनातनम् ॥२६

देवा ऊचुः

कुलिशध्वजपद्मगदाङ्कुशाभं चरणं तव नाथ महाभरणम् ।
रमणं मुनिभिर्विधिशंभुयुतं प्रणमाम वयं भवभीतिहरम् ॥२७
दरचक्रगदाम्बुजमानधरः सुरशत्रुकठोरशरीरहरः ।
सचराचरलोकभरश्चपलः खलनाशकरस्सुरकार्यकरः ॥२८
नमस्ते शचीनन्दनानन्दकारिन्महापापसन्तापदुर्लापहारिन् ।
सुरारीन्निहत्याशु लोकाधिधारिन्स्वभक्त्याघजाताङ्गकोटिप्रहारिन् ॥२९

उस सूर्य की आराधना करके सुख का अनुभव करो। गुरु बृहस्पति के ऐसा कहने पर इन्द्र ने सर्व देवमय विष्णु के ध्यानपूर्वक उन देवाधिदेव की अनेक भाँति अर्चना की। उस समय प्रसन्न होकर भगवान् ने सूर्य मण्डल से प्रकट होकर चार भुजाएँ एवं रक्तवर्ण यज्ञेश की भाँति प्रकट होकर सभी देवों के समक्ष शक्र (इन्द्र) के शरीर में प्रवेश किया। उस समय इन्द्र ने अपनी पूर्व शरीर को अपने में ही विलीनकर अयोनिज ब्राह्मण का वेश धारण किया और उसी भाँति उनकी पत्नी इन्द्राणी भी। पश्चात् उन दोनों ने वैष्णव अग्नि से पीड़ित होकर उस गंगातट के महारण्य में एक वर्ष तक रमण किया। ब्राह्मणी रूप धारिणी इन्द्राणी ने उस गर्भ को धारण किया। भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी बृहस्पति के दिन उस ब्रह्म मण्डल समय में स्वयं विष्णु भगवान् उस गर्भ द्वारा अवतरित हुए, जो सम्पूर्ण कलाओं को धारण किये, चार भुजाओं वाले, रक्तवर्ण, और कुम्भराशि स्थित (फाल्गुन मास के) सूर्य के समान प्रभापूर्ण थे। उस समय रुद्रगण, वसुगण, विश्वदेव, मरुद्गण, साध्य, भास्कर एवं सिद्धगण वहाँ उपस्थित होकर उन सनातन देव की स्तुति करने लगे।१९-२६

देवों ने कहा—नाथ! शिव समेत आपको हम लोग प्रणाम कर रहे हैं, वज्र, ध्वजा, पद्म, गदा एवं अंकुश लक्षणों से विभूषित चरण ही आपका आभूषण है। आप, मुनियों के साथ रमण करने वाले एवं संसार भय का नाश करने वाले हैं। आप दर (शंख) चक्र, गदा और कमल धारण करने वाले, देव-शत्रुओं की कठोर शरीर के नाशक, तथा चर-अचर रूप ब्रह्माण्ड लोक के पोषक हैं, एवं आपकी चपलता शत्रु के विनाशपूर्वक देव-कार्य को सिद्ध करती है। मैं शची नन्दन को नमस्कार करता हूँ, जो आनन्द प्रदाता, और महान् पाप, सन्ताप एवं कठोर भाषण के अपहर्त्ता हैं। आप देव-शत्रुओं को शीघ्र विनष्ट

त्वया हंसरूपेण सत्यं प्रपाल्यं त्वया यज्ञरूपेण वेदः प्ररक्ष्यः ।
स वै यज्ञरूपो भवाँल्लोकधारी शचीनन्दनः शक्रशर्मप्रसक्तः ॥३०
अनर्पितचरोऽचिरात्करुणयावतीर्णः कलौ समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ।
हरेः पुनरसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः सदा स्फुरतु नो हृदयकन्दरे शचीनन्दनः ॥३१
विसर्जति नरान्भवान्करुणया प्रपाल्य क्षितौ निदेष्यनुमुद्भवः परात्परं स्वकीयं पदम् ।
कलौ दितिजसम्भवाधिव्यथाब्धिसुरमग्नान्समुद्धर महाप्रभो कृष्णचैतन्य शचीसुत ॥३२
माधुर्य्यैर्मधुभिस्सुगन्धवदनः स्वर्णाम्बुजानां वनं कारुण्यामृतनिर्झरैरुपचितः सत्प्रेमहेमाचलः ।
भक्ताम्भोधरधारिणी विजयिनी निष्कम्पसप्तावली देवो नः कुलदैवतं विजयते चैतन्यकृष्णो हरिः ॥३३
देवारातिजनैरधर्मजनितैस्सम्पीडितेयं मही सङ्कुच्याशु कलौ कलेवरमिदं बीजाय हा वर्तते ।
त्वन्नाम्नैव सुरारयो विदलिताः पातालगाः पीडिता म्लेच्छा धर्मपराः सुरेशनमनास्तस्मै नमो व्यापिने ॥३४

सूत उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यज्ञेशं च शचीपतिम् । बृहस्पतिमुपागम्य देवा वचनमब्रुवन् ॥३५
वयं रुद्रा महाभाग इमे च वसवोऽश्विनौ । केन केनांशकेनैव जनिष्यामो महीतले ॥
तत्सर्वं कृपया देव वक्तुमर्हति नो भवान् ॥३६

कर लोक की शान्ति स्थापना पूर्वक लोक के सेवक और कोटि पापियों के उद्धारक हैं । आपने हंसरूप धारणकर सत्य के पालन-पूर्वक यज्ञरूप धारणकर वेद की रक्षा की है । उसी यज्ञरूप से लोक-पालक आप इन्द्र द्वारा इस समय शची नन्दन (पुत्र) होकर अवतरित हुए हैं । हम लोगों की हृदयरूपी गुफाओं में शचीनन्दन की स्फूर्ति सदैव होती रहे, जो प्राणी द्वारा अनर्पित करुणावश अवतरित, समुन्नत एवं पूर्ण प्रकाशित इस महिमण्डल में कलि के समय अपनी भक्ति प्रदान करते हुए शंकर की असुन्दर प्रभा पटल से विभूषित है । महाप्रभो, कृष्णचैतन्य एवं शची सुत ! आप ही इस भूमण्डल में मनुष्यों को उत्पन्नकर करुणावश उनका पालन-पोषण करते हैं, तथा सर्वोत्तम अपने उस परमपद को उन्हें प्रदान करने के लिए अवतरित भी हुए हैं ।, इसलिए इस घोर कलि के समय दिति-पुत्र (दैत्यों) से पीड़ित हम देवों की रक्षा कीजिये । हमारे कुलदेव भगवान् चैतन्य कृष्ण की सदैव विजय होती रहे, जो सुगंधित सुन्दर पदार्थों की सुरभि से सुरभित अंग, सुवर्ण कमल के वन, तथा प्रेम के इस प्रकार के हिमालय हैं, जो करुणामृत के झरनों से विभूषित और भक्त रूपी मेघों को धारण करने वाली विजयिनी एवं निष्कम्प सप्तावली देवी से युक्त है । हम लोग सुरेश वन्दित एवं (समस्त) व्यापक (उस देव) को नमस्कार कर रहे हैं, जो इस घोर कलि के समय अधार्मिक देवशत्रुओं से पीड़ित पृथिवी को पल्लवित करने के लिए अपने शरीर को संकुचित कर बीज रूप में पुनः अवतरित हैं, और जिसके नाम ही सुनकर सुरारिगण पददलित होकर पाताल पहुँच जाते हैं एवं अधर्मपरायण म्लेच्छगण सदैव पीड़ित होते हैं ।२७-३४

सूत जी बोले—इस प्रकार उस शचीपति यज्ञेश पुरुष की आराधना करने के उपरान्त देवों ने बृहस्पति के पास जाकर उनसे कहा—महाभाग ! हम लोग रुद्रगण, वसुगण और अश्विनी कुमार भूतल में जाकर किन-किन अंशों द्वारा जन्म ग्रहण करें । देव ! कृपाकर हमें यह सब बतायें ।३५-३६

बृहस्पतिरुवाच

अहं वः कथयिष्यामि शृणुध्वं सुरसत्तमाः । पुरा पूर्वभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधमः ॥
धनुर्वाणधरो नित्यं मार्गे विप्रविहिंसकः ॥३७
हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषां यज्ञोपवीतकम् । गृहीत्वा हेलया दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृतः ॥३८
ब्राह्मणस्य च यद्द्रव्यं सुधोपममनुत्तमम् । मधुरं क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं स्मृतम् ॥३९
शूद्रस्य वस्तु रुधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधमः । स जघान त्रिवर्णांश्च ब्राह्मणान्बहुलान्खलः ॥४०
द्विजनाशात्सुरास्सर्वे भयभीतास्सनन्ततः । परमेष्ठिनमागम्य कथांश्चक्रुश्च कारणम् ॥४१
श्रुत्वा च दुःखितो ब्रह्मा सप्तर्षीन्प्राह लोकगान् । उद्देशं कुरु तत्रैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम ॥४२
इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वशिष्ठादिभिरन्वितः । तत्र गत्वा स्थितास्सर्वे मृगव्याधस्य वै वने ॥४३
मृगव्याधस्तु तान्दृष्ट्वा धनुर्बाणधरो बली । उवाच वचनं घोरं हनिष्येऽहं च वोऽद्य वै ॥४४
मरीचाद्या विहस्याहुः किमर्थं हन्तुमुद्यतः । कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महाबल ॥४५
इत्युक्तस्तान्द्विजः प्राह कुलार्थं चात्मनो हिते । हन्मि युष्मान्धनैर्युक्तान्ब्राह्मणाँश्च विशेषतः ॥४६
श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं धनुर्धर । विप्रहत्याकृतं पापं भुञ्जीयात्को विचारय ॥४७
इति श्रुत्वा तु घोरात्मा तेषां दृष्ट्या सुनिर्मलः । गत्वा वंशजनानाह भूरि पापं मयार्जितम् ॥४८
तत्पापकं भवद्भिश्च ग्रहणीयं धनं यथा । ते तु श्रुत्वा द्विजं प्राहुर्न वयं पापभोगिनः ॥४९

बृहस्पति बोले—देवसत्तमवृन्द ! मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो, पहले समय में मृगों का शिकार करने वाला मृगव्याध नामक एक प्रथम ब्राह्मण था । वह सदैव धनुपबाण लिए मार्ग में आने-जाने वाले ब्राह्मण यात्रियों की हिंसा करता था । उस महामूर्ख ब्राह्मण ने ब्राह्मणों का वध करके कौतुकवश उनके यज्ञोपवीत का भी संचय किया। इस प्रकार वह दुष्ट अत्यन्त निन्दनीय कर्म करता था और यह भी जानता था कि ब्राह्मण के द्रव्य उत्तम अमृत, क्षत्रिय के द्रव्य मधुर, वैश्य के द्रव्य अन्न एवं शूद्र के (द्रव्य) रुधिर के समान है, इसीलिए उस प्रथम ने तीनों वर्णों तथा विशेषकर अधिक ब्राह्मणों की ही हिंसा की थी। उस खल द्वारा ब्राह्मणों के नाश होने पर भयभीत होकर देवों ने ब्रह्मा के पास पहुँचकर समस्त कारणों को सुनाया, जिसे सुनकर ब्रह्मा को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने लोकगामी सातों ऋषियों से कहा—द्विजोत्तम ! आप लोग उसी के उद्देश्य से वहाँ जाकर उसका उद्धार करें । इसे सुनकर वशिष्ठादि ऋषियों समेत मरीचि वहाँ जाकर उसी मृगव्याध के वन में उसके मार्ग पर खड़े हो गये। उन्हें वहाँ उपस्थित देखकर धनुषबाणधारी उस बलवान् मृगव्याध ने कड़ककर कहा—आज मैं तुम लोगों का वध करूँगा । मरीचि आदि ऋषियों ने हँसते हुए उससे कहा—महाबल ! हम लोगों के बध करने का यह प्रयत्न तुम अपने व्यक्तिगतस्वार्थ अथवा कुटुम्ब के लिए कर रहे हो । इतना कहने पर उस ब्राह्मण ने कहा—अपने और कुटुम्ब के लिए भी मैं तुम लोगों का वध अवश्य करूँगा, इसलिए कि विशेषकर मैं धनी ब्राह्मणों का ही वध करता हूँ । उसे सुनकर महर्षियों ने कहा—धनुर्धर ! आवो, हम लोग तैयार हैं, किन्तु एक बात यह बताओं कि इस ब्रह्महत्या का पापभागी कौन होगा ! यह सुनकर वह भीषणमूर्ति ब्राह्मण, जो उन लोगों की दृष्टि से निर्मल हो रहा था, घर जाकर अपने परिवारों से कहने लगा कि—मैंने अत्यन्त पापकर्म

**साक्षीयं भूमिरचला साक्षी सूर्योऽयमुत्तमः । इति श्रुत्वा मृगव्याधो मुनीनाह कृताञ्जलिः ॥५०
यथा पापं क्षयं याति तथा माञ्ज्ञातुमर्हथ[1] । इत्युक्तास्तेन ते प्राहुः शृणु त्वं मन्त्रमुत्तमम् ॥५१
राम नाम हि तज्ज्ञेयं सर्वाघौघविनाशनम् । यावत्त्वत्पार्श्वमायामस्तावत्त्वं जप चोत्तमम् ॥५२
इत्युक्त्वा ते गता विप्रास्तीर्थात्तीर्थान्तरं प्रति । मरामरामरेत्येवं सहस्राब्धं जजाप ह ॥५३
जपप्रभावादभवद्वनमुत्पलसङ्कुलम् । तत्स्थानमुत्पलारण्यं प्रसिद्धमभवद्भुवि ॥५४
ततः सप्तर्षयः प्राप्ता वल्मीकात्तं निराकृतम् । दृष्ट्वा शुद्धं तदा विप्रमूचुस्ते विस्मयान्विताः ॥५५
वल्मीकान्निस्सृतो यस्मात्तस्माद्वल्मीकिरुत्तमम् । तव नाम भवेद्विप्र त्रिकालज्ञ महामते ॥५६
एवमुक्त्वा ययुर्लोकं स तु रामायणं मुनिः । कल्पाष्टादशयुक्तं हि शतकोटिप्रविस्तरम् ॥५७
चकार निर्मलं पद्यैः सर्वाघौघविनाशनम् । तत्पश्चात्स शिवो भूत्वा तत्र वासमकारयत् ॥५८
अद्यापि संस्थितः स्वामी मृगव्याधः सनातनः । शृणुध्वं च सुराः सर्वे तच्चरित्रं हरप्रियम् ॥५९
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे । ब्रह्मागत्योत्पलारण्य तत्र यज्ञं चकार ह ॥६०
तदा सरस्वती देवी नदी भूत्वा समागता । तद्दर्शनात्स्वयं ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं शुभम् ॥६१**

किया है ।३७-४९। अतः आप लोग धन की भाँति इसके भी भाग (हिस्से) ग्रहण कीजिये । उसे सुनकर घर वालों ने कहा—हमलोग पाप के भागी नहीं होंगे । यह अचला भूमि और देवश्रेष्ठ सूर्य इसके साक्षी हैं । यह सुनकर उस मृगव्याध ने हाथ जोड़कर उन महर्षियों से कहा—मेरे पापों को नष्ट करने के लिए आप लोग कोई उपाय बताने की कृपा करें । इस प्रकार नम्रतापूर्वक उसके कहने पर महर्षियों ने कहा—मैं तुम्हें एक उत्तम मंत्र बता रहा हूँ, सुनो ! सम्पूर्ण पापों के विनाशक एवं परमोतम इस 'रामनाम' का जप तब तक तुम करो, जब तक हमलोग तुम्हारे पास पुनः लौटकर न आयें । ऐसा कहकर उन ऋषियों ने एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की यात्रा करना आरम्भ किया और इधर उस मृगव्याध ने 'मरा, मरा, मरा' मंत्र का जो तीसरे शब्द के उच्चारण में शुद्ध राम रूप हो जाता है, एक सहस्र वर्ष तक जप किया । उस मंत्र-जप के प्रभाव से वहाँ उत्पल (कमल) वृन्द का एक वन उत्पन्न हुआ, जिससे वह स्थान इस भूतल में 'उत्पलारण्य' के नाम से प्रख्यात हुआ । तदनन्तर सातों ऋषियों ने जप करने वाले उस ब्राह्मण को वहाँ आकर बल्मीक से पृथक् कर उन्हें शुद्ध रूप में देखकर कहा—विप्र, त्रिकालज्ञ एवं महामते ! बल्मीक से निकलने के नाते 'वाल्मीकि' इस उत्तम नाम से तुम्हारी प्रख्याति होगी ।५०-५६। इतना कहकर उन ऋषियों ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया । पश्चात् उस वाल्मीकि मुनि ने अष्टादश कल्पयुक्त एवं शतकोटि के विस्तृत रामायण की रचना की, जो निर्मल पद्यरूप में निर्मित होकर समस्त पापों का विनाशक है । अनन्तर शिव होकर उस मुनि ने वहाँ निवास किया और वह मृगव्याध एवं सनातन स्वामी आज भी वहाँ स्थित है। देववृन्द ! शिवप्रिय उनके चरित्र को मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! सत्ययुग के प्रारम्भ में जबकि वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान रहे हैं, ब्रह्मा ने उस 'उत्पलारण्य' में जाकर एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस समय सरस्वती ने वहाँ नदी रूप में पदार्पण किया, जिन्हें देखकर

---

१. 'त्वामौ द्विती'—इति मादेशे सवर्णदीर्घः ।

बाहुभ्यां क्षत्रियं चैव चोरुभ्यां वैश्यमुत्तमम् । पद्भ्यां शूद्रं शुभाचारं जनयामास वीर्यवान् ॥६२
द्विजराजस्तथा सोमश्चन्द्रमा नामतो द्विजः । लोके सर्वातपः सूर्यः कश्यं वीर्यं हि पाति यः ॥६३
कश्यपो हि द्वितीयोऽसौ मरीचिस्तु ततोऽभवत् । रत्नानामाकरो यो वै स हि रत्नाकरः स्मृतः ॥६४
लोकान्धरति यो द्रव्यैः स तु धर्मो हि नामतः । गम्भीरश्चास्ति सदृशः कोशो यस्य सरित्पतिः ॥६५
लोकान्दक्षति यः कृत्यैः स तु दक्षः प्रजापतिः । ब्राह्मणोऽङ्गाच्च ते जातास्तस्माद्वै ब्राह्मणाः स्मृताः ॥६६
वर्णधर्मेण ते सर्वे वर्णात्मानश्च वै क्रमात् । दक्षस्य मनसो जाताः कन्याः पञ्चशतं ततः ॥
विष्णुमायाप्रभावेन कलाभूताः स्थिता भुवि ॥६७
तदा तु भगवान्ब्रह्मा सोमायाश्विनिमण्डलम् । सप्तविंशद्गणं श्रेष्ठं ददौ लोकविवृद्धये ॥६८
कश्यपायादितिगणं क्षत्ररूपं त्रयोदशम् । धर्माय कीर्तिप्रभृतीर्ददौ स च महामुनिः ॥६९
नानाविधानि सृष्टानि चासन्वैवस्वतेऽन्तरे । तेषां पतिस्त्वयं दक्षोऽभूद्विधेराज्ञया भुवि ॥७०
तत्र वासं स्वयं दक्षः कृतवान्यज्ञतत्परः । सर्वे देवगणा दक्षं नमस्कृत्य चरन्ति हि ॥७१
भूतनाथो महादेवो न ननाम कदाचन । तदा क्रुद्धः स्वयं दक्षः शिवभागं न दत्तवान् ॥७२
मृगव्याधः शिवः क्रुद्धो वीरभद्रो बभूव ह । त्रिशिराश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपदस्तत्र चागतः ॥७३

ब्रह्मा ने अपने मुख द्वारा ब्राह्मण, भुजाओं द्वारा क्षत्रिय, उरु द्वारा वैश्य और अपने चरण द्वारा शुभाचार के अनुगामी शूद्रों को उत्पन्न किया। उस पराक्रमी (ब्रह्मा) ने ब्राह्मण नाम से द्विजराज सोम को उत्पन्न किया, जिन्हें द्विजश्रेष्ठ चन्द्रमा कहा जाता है, क्षत्रिय नाम से सूर्य को उत्पन्न किया, जो सभी के लिए आतप रूप होकर लोक में कश्य-वीर्य (पराक्रम) की रक्षा करते हैं। इसलिए उन्हें कश्यप भी कहा जाता है और उसके अनन्तर मरीचि भी। रत्नों के आकर (निधि) होने के नाते उसे (समुद्र को) रत्नाकर कहा गया है और द्रव्यों द्वारा लोकों के पोषण करने से धर्म तथा अगाध एवं असाधारण कोश होने के नाते सरित्पति भी। अपने कार्यों द्वारा जो लोक को कार्यकुशल बनाये उसे दक्ष प्रजापति कहा जाता है। ब्रह्मा के अंगों द्वारा उत्पन्न होने के नाते ये सभी ब्रह्म कहे गये हैं।५७-६६। जो वर्णधर्म के अनुसार क्रमशः वर्णो को अपनाये हुए हैं। पश्चात् दक्ष प्रजापति के मन द्वारा पाँच सौ कन्यायें उत्पन्न हुईं जो भगवान् विष्णु की माया से प्रभावित होकर इस भूतल में कलामूर्ति होकर स्थित हैं। उस समय भगवान् ब्रह्मा ने लोक के अत्यन्त वृद्ध्यर्थ सोम (चन्द्रमा) को अश्विनी आदि नक्षत्र मण्डल रूप में सत्ताईस, कश्यप (ऋषि) को क्षत्री रूप अदिति और धर्म को कीर्ति आदि कन्याएँ प्रदान किया। उस महामुनि के इस प्रकार वितरण करने पर उस वैवस्वत मन्वन्तर के समय लोकों में अनेक भाँति की सृष्टियाँ हुईं। पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा से लोक-समृद्ध इस भूतल के अध्यक्ष दक्षप्रजापति ही निश्चित किये गये, जिससे वहाँ निवास करते हुए दक्ष ने एक विशाल यज्ञानुष्ठान का आयोजन किया। उनके उस यज्ञ महोत्सव में सभी देवगण पहुँचकर उन्हें नमस्कार पूर्वक यथेच्छ विचरण कर रहे थे, किन्तु भूतनाथ महादेव ने उन्हें किसी भाँति नमस्कार नहीं किया जिससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्ष ने उन्हें शिव-भाग देना अस्वीकार कर दिया। उस समय मृगव्याध शिव ने उस अपमान को सहन न कर वीरभद्र का रूप धारण किया—तीन नेत्र, तीन शिर और तीन चरण-धारण कर उनके आगमन करने से देव, मुनि एवं पितृगण अत्यन्त पीड़ित होने लगे और

तेनैव पीडिता देवा मुनयः पितरोऽभवन् । तदा वै यज्ञपुरुषो भयभीतः समन्ततः ॥७४
मृगभूतो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा व्याधः शिवोऽभवत् । रुद्रव्याधेन स मृगो विभिन्नाङ्गो बभूव ह ॥७५
तदा तु भगवान्ब्रह्मा तुष्टाव मधुरस्वरैः । सन्तुष्टश्च मृगव्याधो यज्ञं पूर्णमकारयत् ॥७६
तुलाराशिस्थिते भानौ तं रुद्रं चन्द्रमण्डले । स्थापयित्वा स्वयं ब्रह्मा सप्तविंशद्दिनात्मके ॥
प्रययौ सप्तलोकं वै स रुद्रश्चन्द्ररूपवान् ॥७७
इति श्रुत्वा वीरभद्रो रुद्रः संहृष्टमानसः । स्वांशं देहात्समुत्पाद्य द्विजगेहमचोदयत् ॥७८
विप्रभैरवदत्तस्य गेहं गत्वा स वै शिवः । तत्पुत्रोऽभूत्कलौ घोरे शङ्करो नाम विश्रुतः ॥७९
स बालश्च गुणी वेत्ता ब्रह्मचारी बभूव ह । कृत्वा शङ्करभाष्यं च शैवमार्गमदर्शयत् ॥८०
त्रिपुण्ड्रश्चाक्षमाला च मन्त्रः पञ्चाक्षरः शुभः । शैवानां मङ्गलकरः शङ्कराचार्यनिर्मितः ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०

अथैकादशोऽध्यायः

आनन्दगिरिवनशर्मपुरीशर्म-उत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

पुरा तु नैमिषारण्ये विप्रश्चाजगरोऽभवत् । वेदान्तशास्त्रनिपुणो ज्ञानवाञ्छम्भुपूजकः ॥१

यज्ञपुरुष के भयभीत होकर मृगरूप धारणकर चारों ओर भागने पर शिव ने व्याधरूप धारण किया। अनन्तर उस व्याधरूपी रुद्र द्वारा मृगरूपधारी यज्ञपुरुष का अंग छिन्न-भिन्न हो गया। उसी समय भगवान् ब्रह्मा ने मधुरवाणी द्वारा उनकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उस मृगव्याध ने उनके यज्ञ को पूर्ण तथा सुसम्पन्न किया। तदुपरांत ब्रह्मा ने तुलाराशि पर सूर्य के स्थित होने पर सत्ताईस नक्षत्रों के अधिपति उस चन्द्रमा के मण्डल में स्वयं रुद्र को प्रतिष्ठितकर अपने लोक को प्रस्थान किया और चन्द्र रूप में रुद्र ने सातों लोकों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इसे सुनकर वीरभद्र ने अत्यन्त हर्षमग्न होकर अपनी देह से अपने अंश को निकालकर उस भैरवदत्त नायक ब्राह्मण के घर भेज दिया, जो उनके यहाँ उनके पुत्र रूप में अवतरित होकर उस घोर कलि के समय शंकराचार्य के नाम से भूतल में प्रख्यात हुआ। उस गुणी, वेत्ता एवं ब्रह्मचारी बालक ने शांकरभाष्य की रचनाकर उस शैवमार्ग का प्रदर्शन किया, जो त्रिपुण्ड्र चन्दन, रुद्राक्षमाला एवं पंचाक्षर (ओं शिवाय नमः) मंत्र के रूप में शैवों के लिए अत्यन्त मांगलिक है।६७-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्य और शंकराचार्य की उत्पत्ति वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त।१०।

अध्याय ११

आनन्दगिरि, वनशर्मा और पुरीशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में नैमिषारण्य स्थान में एक ब्राह्मण अजगर की योनि प्राप्तकर

द्वादशाब्दान्तरे रुद्रस्तुष्टोऽभूत्पार्थिवार्चनात् । तदागत्य ददौ ज्ञानं जीवन्मोक्षत्वमागतः ॥२
सङ्कर्षणं समाराध्य तज्ज्ञानेन द्विजोत्तमः । तुष्टाव पुष्कलाभिश्च स्तुतिभिः परमेश्वरम् ॥३

अजगर उवाच

सदैव्यं प्रधानं परं ज्योतिरूपं निराकारमव्यक्तमानन्दनित्यम् ।
त्रिधा तत्तु जातं त्रिलिङ्गैक्यभिन्नं पुमान्सत्त्वरूपो रजोरूपनारी ॥
तयोर्यत्तु शेषं तमोरूपमेव ततश्शेषनाम्ने नमस्तेनमस्ते ॥४
रजश्चाविभूतो गुणस्तैव माया तथा मध्यभूतो नरस्सत्त्वरूपम् ।
तथैवान्तभूतो नपुंस्कं तमोवत्सदैवाद्य नागेश तुभ्यं नमस्ते ॥५
नराधाररूपो भवान्कालकर्ता नराकर्षणस्त्वं हि सङ्कर्षणश्च ।
रमन्ते मुनीशास्त्वयि ब्रह्मधाम्नि नमस्तेनमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥
नराङ्गेषु चाधारभूता शिवा या स्मृता योगनिद्रा हि शक्तिस्त्वदीया ॥६

जीव उवाच

एवं हि संस्तुतो देवो द्विजं चाजगरं प्रभुः । सायुज्यं कृतवान्स्वाङ्गे रुद्रः सर्पो हि सोऽभवत् ॥७
फणासहस्रसहितो गौराङ्गो गौरविग्रहः । क्षीराब्धौ मन्दिरं यस्य बभूव च गुणाकरम् ॥८
तं सर्पाख्यं महारुद्रं प्रत्यागत्यात्मभूः स्वयम् । कर्कराशिस्थिते सूर्ये चन्द्रे भगणमण्डले ॥९
तं रुद्रं स्थापयामास चन्द्रमाः स तु चाभवत् । इति श्रुत्वा शेषनागो रुद्रः श्रीगुरुभाषितम् ॥१०

रह रहा था, जो वेदान्तशास्त्र में निपुण, ज्ञानी और शिव का नित्य उपासक था । बारह वर्ष के उपरान्त उसकी पार्थिव-अर्चना से प्रसन्न होकर रुद्र ने वहाँ आकर उसे जीवन्मोक्ष होने का ज्ञान प्रदान किया, जिससे उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने उन संकर्षण (शिव) के समीप पहुँचकर विशुद्ध स्तुतियों द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की । १-३

अजगर ने कहा—उस दिव्य, प्रधान परं ज्योतिरूप निराकार, अव्यक्त एवं नित्यानन्द को जो तीन रूप में होकर पुनः तीनों लिंगों (पुमान्, स्त्री और नपुंसक) से भिन्न है, वही सत्व रूप से पुरुष और रजरूप से स्त्री होता है और उन दोनों के शेष तमोगुण से भिन्न है । बार-बार नमस्कार है । नररूप होकर आप कालकर्त्ता, नरों के आकर्षण करने के नाते संकर्षण कहे गये हैं । आप के ही ब्रह्मतेज में मुनिवृन्द रमण करते हैं और उस नररूप होने में आपकी शक्ति ही उस अंग की आधार है, जो शिवा एवं योगनिद्रा के नाम से जगत् में प्रथित है । अतः आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । ४-६

बृहस्पति ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर शिवदेव ने उस अजगर ब्राह्मण को अपने अंग में सायुज्य मोक्ष प्रदान करने के हेतु सर्परूप धारण किया, जो सहस्र फण, गौरवर्ण की शरीर, क्षीरसागर निवासी एवं गुणनिधि था । पश्चात् ब्रह्मा ने उस सर्प रूप शिव के पास आकर उन्हें कर्कराशिस्थित सूर्य के समय नक्षत्र मण्डल के अधिनायक चन्द्र में स्थापित किया, जिससे शिव ने चन्द्ररूप होकर अपने मुख से तेज निकालकर विंध्यपर्वत के निवासी देवदत्त ब्राह्मण के घर भेज दिया, जो वहाँ उत्पन्न होकर

वचनं स प्रसन्नात्मा तेज उत्पाद्य वै मुखात् । विन्ध्याद्रौ जनयामास देवदत्तद्विजालये ।।११
गिरिशर्मा स वै विप्रो विजित्य विदुषां गणान् । काशीपुरीं समायातः शिष्योऽभूच्छङ्करस्य वै ।।१२
इति ते कथितं विप्र यथा रुद्रो बभूव ह । पुनः शृणु कथां विप्र यथा जीवेन भाषिताम् ।।१३

जीव उवाच

प्रयागे च पुरा ह्यासीद्ब्राह्मणो हरिसेवकः । दारिद्र्यार्तो मन्दभाग्यो नैर्ऋतो नाम विश्रुतः ।।१४
महाकष्टेन तस्यैव भिक्षा प्राप्ता दिनान्तके । नैर्ऋतः पुत्रपत्नीको दारिद्र्यार्तो दिनेदिने ।।१५
एकदा नारदो योगी सम्प्राप्तो वैष्णवप्रियः । पूजितस्तेन विप्रेण विष्णुलोकमुपाययौ ।।१६
दृष्ट्वा नारायणं देवं नमस्कृत्य पुनःपुनः । वचनं प्राह नम्रात्मा सदैव भगवत्प्रियः ।।१७
भगवन्ये सुराः सर्वे सदा त्वत्पूजने रताः । तेषां भक्ताश्च ये भूमौ धनधान्यसमन्विताः[1] ।।१८
त्वद्भक्ताश्च मया दृष्टा दारिद्र्यार्ताः सदा भुवि । किमर्थं ब्रूहि मे स्वामिञ्जनार्दन नमोऽस्तु ते ।।१९
इत्युक्तो नारदेनैव भगवान्भक्तवत्सलः । तमाह वचनं रम्यं तच्छृणु त्वं सुरोत्तम ।।२०
मद्भक्तो भगवान्ब्रह्मा दृष्ट्वा नारायणप्रियान् । जनांश्च स्ववशीकृत्य लोककार्यं करोति हि ।।२१
धर्मोऽधर्मस्तेन कृतो धर्मो वेदमयः स्मृतः । सप्त लोकाश्च धर्मस्य निर्मितास्तेन धीमता ।।२२

'गिरिशर्मा' के नाम से प्रख्यात हुआ । उस ब्राह्मण ने विद्वानों को पराजित कर काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उसने शंकराचार्य की सेवा (शिष्य रूप से) करना स्वीकार किया, जिससे आनन्दगिरि नाम से वह विख्यात हुआ । विप्र ! इस प्रकार मैंने रुद्रावतार की कथा सुना दी, किन्तु बृहस्पति की कही हुई कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ७-१३।

बृहस्पति जी बोले—पहले प्रयाग में नैर्ऋत नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो भगवद्भक्त, मंदभागी-दरिद्र था । वह नैर्ऋत ब्राह्मण संध्या समय तक किसी भाँति भिक्षा की प्राप्तिकर अपने पुत्र और पत्नी का पालन कर रहा था । इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रतिदिन दरिद्र्य से अत्यन्त पीड़ित उस ब्राह्मण के घर एकबार वैष्णव-प्रिय नारद जी का आगमन हुआ । ब्राह्मण ने यथाशक्ति उनकी पूजा की । पश्चात् वे विष्णुलोक चले गये । वहाँ पहुँचकर नारायण देव को बार-बार दण्डवत् प्रणाम करके सदैव भगवत्प्रिय नारद ने विनम्र होकर उनसे कहा—भगवन् ! आपकी पूजा में निरन्तर संलग्न देवों के जितने भक्त होते हैं, सभी धन-धान्य से पूर्ण रहते हैं, किन्तु भूतल में मैंने आपके भक्तों को भी देखा है, जो दरिद्रता से अत्यन्त पीड़ित रहते हैं, स्वामिन्, जनार्दन मैं इसमें कुछ निश्चय नहीं कर पाता हूँ कि इस विभेद का क्या कारण है, अतः मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ, इसके भेद बताने की कृपा करें ।१४-१९। इस प्रकार नारद जी के कहने पर भक्तवत्सल भगवान् ने उनसे सुन्दर वाणी में कहा—सुरोत्तम ! मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मेरे भक्त भगवान् ब्रह्मा नारायण प्रिय मनुष्यों को देखकर उन्हें अपने अधीनकर लोक का कार्य करते रहते हैं । उन्होंने धर्म और अधर्म का निर्माण किया जिसमें धर्म वेदमय कहा गया है । उस

---

१. सन्तीति शेषः ।

भूर्भुवः स्वो महश्चैव जनश्चैव तपस्तथा । सत्यं तथैव क्रमतो नृणां द्विगुणदं सुखम् ॥२३
अधर्मो वेदरहितो भुवि शब्दान्यकर्तृकः । ये शब्दाश्च महावाण्या दूषितास्ते हि लोकगाः ॥२४
वेदेतर पापमया दैत्यवृद्धिकराः सदा । अधर्मः स तु विज्ञेयः सप्तलोकाश्च तस्य वै ॥२५
भूमिगर्तेषु विधिना निर्मिताः सुखदायकाः : अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम् ॥
महातलं रसा चैव पातालं चान्यधर्मजम् ॥२६
अन्यधर्मा ह्यधर्मश्च देवास्त्वन्दे हि तेऽसुराः । धर्मपक्षाः सुरा ज्ञेया असुराश्चान्यधर्मजाः ॥२७
तयोर्विहीनो यो धर्मो देवैर्दैत्यैश्च दूषितः । विधर्मः स तु विज्ञेयस्तत्र लोका व्यथाकुलाः ॥२८
तामिस्रमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकश्च रौरवम् । महारौरवमेवापि तथामूर्तिरयस्तथा ॥२९
इक्षुयन्त्रं शाल्मलं च ह्यसिपत्रवनं तथा । ज्ञेयमित्येव रचितं विधिना चैकविंशतिः ॥३०
ब्रह्माण्डोऽयं लोकमयः परं तस्माच्च तत्पदम् । मद्भक्ता भूतले ये वै ते गच्छन्ति परं पदम् ॥३१
देवभक्ताश्च ये लोकाः सप्त लोकान्व्रजन्ति ते । ये तु वै तामसा लोका दैत्यपूजनतत्पराः ॥
ते गच्छन्ति महीलोकानतलादिमयाँस्तथा ॥३२
पातालाद्योजनं लक्षमधोलोकः प्रकीर्तितः । विधर्मतत्परा लोकास्ते गच्छन्ति ह्यधोगतिम् ॥
अतो वै विधिना भ्रष्टा मद्भक्ताश्च दरिद्रगाः ॥३३
ये मद्भक्ताः सुरान्पूर्वं पूजयित्वा भजन्ति माम् । लक्ष्मीवन्तश्च ते ज्ञेया भुक्तिमुक्तिपरायणाः ॥३४
प्रयागे नैर्ऋतो विप्रस्त्यक्त्वा देवान्मम प्रियान् । भजत्यनन्यभावेन तस्मात्स हि दरिद्रवान् ॥३५

बुद्धिमान् ने धर्म के सात लोकों का निर्माण किया, जो भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक एवं सत्यलोक के नाम से निर्मित होकर मनुष्यों को उत्तरोत्तर क्रमशः दुगुने सुख प्रदान करने की चेष्टा करता है। उसी प्रकार वेदरहित को अधर्म कहा गया है, जो भूतल में प्रतिकूल शब्दों की रचना करता है, महावाणी द्वारा दूषित उन शब्दों को अपनाने पर प्राणियों को उसी प्रकार के लोकों की प्राप्ति होती है। वेदरहित होने के नाते वह अधर्म पापमय दैत्यों की सदैव वृद्धि करता रहता है। उस अधर्म के भी सातलोक विदित हैं, जो भूमि के गर्त (नीचे भाग) में ब्रह्मा द्वारा निर्मित होकर वहाँ के प्राणियों के लिए सुखावह होते हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल उनके नामकरण हैं। इनमें देवगण धर्म और असुरगण अधर्म को अपनाते हैं, अतः धर्मपक्ष के देव एवं अधर्मपक्ष के दैत्य बताये जाते हैं किन्तु इन देवों और दैत्यों से हीन एवं दूषित जो अन्य मार्ग है, उसे विधर्म कहा गया है उसमें रहने वाले प्राणी सदैव व्यथित रहते हैं—तामिस्र, अंधतामिस्र, कुम्भीपाक, रौरव, महारौरव, मूर्तिरय, ऊखयंत्र (कोल्हू) शाल्मल (फांसी देने के लिए सेमर का वृक्ष), असि (तलवार के समान) पत्र वाला वन आदि इक्कीस स्थानों की ब्रह्मा ने रचना की है। इस प्रकार इस समस्त को लोकमय ब्रह्माण्ड कहते हैं, जिससे मेरा परमपद अत्यन्त समुन्नत है। भूमण्डल के रहने वाले मेरे भक्त ही उस परमपद की प्राप्ति करते हैं, किन्तु देवों के भक्तगण उन्हीं स्वर्ग आदि सातलोकों की उसी भाँति दैत्यों के उपासक तामसी पुरुष पृथ्वी के नीचे स्थित उन पातालादि लोकों की प्राप्ति करते हैं।२०-३२। पाताल से अधोलोक एक लक्ष योजन की दूरी पर स्थित है, जिसमें विधर्मी प्राणियों की यात्रा होती है। इसलिए मेरे भक्त ब्रह्मा द्वारा उस (समस्त पदों) से भ्रष्ट होकर दरिद्र होते हैं किन्तु जो मेरा भक्त देवों की पूजापूर्वक मेरी उपासना करता है वह लक्ष्मीयुक्त एवं भुक्ति-मुक्ति परायण होता है और प्रयागनिवासी वह नैर्ऋत ब्राह्मण

देवैर्दत्तं हि यद्द्रव्यं भोक्तव्यं सर्वदा जनैः । मया दत्तं हि यद्वस्तु ब्रह्माण्डे नास्ति नारद ॥
अतो मदाज्ञया विप्र देहि तस्मै वरं शुभम् ॥३६
इत्युक्तो नारदो योगी हरिणा विश्वकारिणा । द्विजपत्नी स्थिता गेहे तत्र प्राप्य वचोऽब्रवीत् ॥३७
वरं वरय हे साध्वि त्वया यद्वाञ्छितं हृदि । साह देहि वरं स्वामिन्भूपराज्ञी भवाम्यहम् ॥३८
इत्युक्त्वा वचनं तत्र दिव्यरूपा बभूव सा । आगतस्तत्र नृपतिर्गृहीत्वा गेहमाययौ ॥३९
सायङ्काले तु सम्प्राप्ते द्विजस्तत्र समागतः । नारदस्तं वचः प्राह शृणु विप्र हरिप्रिय ॥४०
वरदानाच्च ते पत्नी भूपराज्ञी हि वर्तते । त्वया किं वाञ्छितं वस्तु मत्तः प्राप्य सुखी भव ॥४१
इति श्रुत्वा दैववशो वचः प्राह रुषान्वितः । क्रोष्ट्री भवेच्च मत्पत्नी देहि विप्र वरं मम ॥४२
इत्युक्त्वावचनात्क्रोष्ट्री सा बभूव द्विजप्रिया । एकस्मिन्नन्तरे प्राप्तस्तत्पुत्रो गुरुपूजकः ॥४३
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं नारदं स वचोऽब्रवीत् । मम माता यथा स्वामिंस्तथा शीघ्रं वराद्भवेत् ॥४४
एतत्त्रिभिर्वरैः प्राप्तं दैवमायाविमोहितैः । तदा तु नारदो दुःखी नैर्ऋतं प्राह वै वचः ॥४५
ब्रह्माण्डोऽयं देवमयो भवस्तस्य महेश्वरः । अतो भवं भजाशु त्वं स ते कार्यं करिष्यति ॥४६
इत्युक्तवचनो विप्रो भवं तं पार्थिवार्चनैः । तुष्टाव परया भक्त्या वर्षमात्रं हि नैर्ऋतः ॥४७
तदा प्रसन्नो भगवान्महेशो भक्तवत्सलः । कुबेरसदृशं दिव्यं ददौ तस्मै महद्धनम् ॥४८
तद्धनेन स वै विप्रो धर्मकार्यं चकार ह । प्रसिद्धोऽभून्महीपृष्ठे नाम्ना पुण्यजनो धनैः ॥४९

मेरे प्रिय देवों के त्यागपूर्वक केवल अनन्यभाव से मेरी ही उपासना करता है इसीलिए दरिद्र है । नारद ! देवों के दिये हुए द्रव्यों का उपभोग सर्वदा सभी मनुष्य किया करते हैं, किन्तु मैं जो वस्तु अपने भक्त को प्रदान करता हूँ, वह ब्रह्माण्ड में है ही नहीं । इसलिए मेरी आज्ञा से उसे शुभात्मक वरदान प्रदान करो । विश्व रचयिता भगवान् के इस भाँति कहने पर नारद ने उसके घर जाकर उसकी पत्नी से कहा— पतिव्रते ! तुम अपने अभिलषित वर की याचना करो ।' इसे सुनकर उसने कहा—स्वामिन् ! मेरी राजरानी होने की इच्छा है । इतना कहते ही वह एक दिव्य रूप में परिणत हो गई और उस समय राजा आकर उसे अपने घर ले गया । सायंकाल होने पर ब्राह्मण देव के घर आने पर नारद जी ने उनसे कहा— भगवत्प्रिय, ब्राह्मणदेव ! मैं कुछ कह रहा हूँ, सुनिये ! वरदान प्राप्तकर आपकी पत्नी राजरानी हो गई है, अब आप भी मुझसे अपनी मन-इच्छित वस्तु प्राप्तकर सुख का अनुभव करें । इसे सुनकर उस ब्राह्मण ने दैववश क्रुद्ध होकर कहा—विप्र ! मुझे यही वरदान देने की कृपा कीजिये कि मेरी पत्नी गीदड़ी हो जाये ।' इतना कहने पर वह ब्राह्मण पत्नी गीदड़ी हो गई । उसी समय उस ब्राह्मण के गुरुभक्त पुत्र ने वहाँ आकर उन कारणों को सुनकर नारद जी से कहा—स्वामिन् ! मेरी माता पूर्व की भाँति हो जायें । इस प्रकार वे तीनों दैवमाया से मोहित होने के कारण वरदान प्राप्त करने पर भी अपने मनोरथों से वंचित ही रहे । उस समय दुःखी होकर नारद ने नैर्ऋत से कहा—विप्र ! देवमय होने के नाते इस समस्त ब्रह्माण्ड के अधीश्वर महेश्वर जी हैं, अतः तुम उनकी उपासना करो, वे तुम्हारा कार्य शीघ्र सफल करेंगे। इस प्रकार कहने पर उस ब्राह्मण नैर्ऋत ने पार्थिव पूजन द्वारा भगवान् शंकर की आराधना की । एक वर्ष के उपरान्त प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् महेश जी ने कुबेर के समान दिव्य एवं अगाध धन उसे प्रदान किया। उस धन द्वारा ब्राह्मण ने अनेकों धर्म-कार्य सुसम्पन्न किया जिससे इस भूतल में उसकी द्रव्यजन

शिवभक्तिप्रभावेण प्राप्य द्रव्यमकण्टकम् । सहस्राब्दवपुर्भूत्वा त्यक्त्वा प्राणान्दिवं ययौ ।।५०
वृषराशिस्थिते सूर्ये राजा चन्द्रस्य सोमवत् । नैर्ऋतो नाम विख्यातो रुद्रः सर्वजनप्रियः ।।५१
इति श्रुत्वा नैर्ऋतस्तु भृगुवर्य गुरूदितम् । स्वांशाद्भूतलमागम्य गिरिनालगिरौ वने ।।५२
योगिनः सिद्धसाङ्ख्यस्य पुत्रोऽभूद्वनवासिनः । वनशर्मेति विख्यातो वेदशास्त्रपरायणः ।।५३
द्वादशाब्दवपुर्भूत्वा जित्वा विद्वज्जनान्बहून् । काशीमागम्य तत्त्वार्थी शङ्कराचार्यमुत्तमम् ।।
प्रणम्य तस्य शिष्योऽभूद्वनशर्मा विशारदः ।।५४

बृहस्पतिरुवाच

वसुशर्मा द्विजः कश्चिन्माहिष्मत्यां पुराभवत् । शिवव्रतपरो नित्यं पुत्रार्थी पार्थिवार्चकः ।।५५
चतुर्विंशतिवर्षाणि पूजतस्तस्य धीमतः । व्यतीतानि सुरास्तत्र न प्रसन्नोऽभवच्छिवः ।।५६
तदा तु दुःखितो विप्रो वह्निं प्रज्वाल्य भैरवम् । जुहाव स्वाङ्गमांसानि मुखतश्चरणान्तकम् ।।५७
न प्रसन्नोभवद्रुद्रस्तदा विप्रः शुचान्वितः । गृहीत्वा चोत्तमं मेषं संस्कारं कृतवाञ्छुचिः ।।
तेन मेषेण सहितो ज्वलदग्नौ समाययौ ।।५८
प्रसन्नो भगवान्रुद्रस्तत्रागत्य गणैर्युतः । स्वरूपं दर्शयामास शुद्धस्फटिकसुन्दरम् ।।
वरं ब्रूहि वचः प्राह वसुशर्माणमुत्तमम् ।।५९
तच्छ्रुत्वा स प्रसन्नात्मा नत्वा पार्वतिवल्लभम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा वचनं प्राह शङ्करम् ।।६०

(देवमूर्ति कुबेर) के नाम से अत्यन्त ख्याति हुई । इस भाँति शिवजी की भक्ति के प्रभाव से निष्कटंक द्रव्य की प्राप्तिपूर्वक एक सहस्र वर्ष तक दिव्य जीवन व्यतीत करने के उपरान्त उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई । वृषराशि पर सूर्य के स्थित होने पर चन्द्रराज सोम की भाँति वह नैर्ऋत ब्राह्मण भी सर्वजनप्रिय और रुद्र की भाँति प्रख्यात हुआ । भृगुवर्य ! वृहस्पति के इस प्रकार देवों से कहने पर उस नैर्ऋत ने अपने अंश द्वारा गिरिनाल पर्वत के वन में रहने वाले सिद्धसांख्य योगी के यहाँ पुत्ररूप में जन्म-ग्रहण किया । वेदशास्त्र के पारायण में निरत रहकर उन्होंने 'वनशर्मा' के नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । बारह वर्ष की अवस्था में अनेकों विद्वानों को पराजितकर वनशर्मा ने काशी आकर तत्त्वज्ञानार्थ योगी शिरोमणि शंकराचार्य की शिष्य-सेवा स्वीकार की ।३३-५४

वृहस्पति जी बोले—पहले समय में माहिष्मती नामक पुरी में वसुशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था । उसने पुत्रप्राप्ति के लिए पार्थिव पूजन एवं व्रत विधान द्वारा भगवान् आशुतोष की उपासना आरम्भ की । देववृन्द ! चौबीस वर्ष तक उसने अनवरत आराधना की, किन्तु शिव जी की प्रसन्नता उसके ऊपर न हुई । पश्चात् दुःखी होकर उस ब्राह्मण ने प्रज्वलित अग्नि की भीषण ज्वाला में मुख से चरण तक की अपनी देह के मांस को आहुतिरूप में हवन कर दिया, परन्तु रुद्रदेव तब भी न प्रसन्न हुए । उस समय शोक-पीड़ित होकर उस ब्राह्मण ने पवित्र होकर एक उत्तम भेड़ का संस्कार करके उसके समेत उसी अग्नि में प्रवेश किया कि उसी समय भगवान् रुद्रदेव ने अपने गणों समेत वहाँ आकर शुद्ध स्फटिक के समान अपने सुन्दर स्वरूप का दर्शन उसे दिया। तदुपरांत उन्होंने वसुशर्मा से कहा—यथेच्छ वर की याचना करो। उसे सुनकर प्रसन्नता से गद्‌गद होकर उन पार्वतीप्रिय के नमस्कार पूर्वक उसने विनम्र होकर

देहि मे तनयं स्वामिञ्छरणागतवत्सल । इत्युक्तश्शङ्करस्तेन विहस्योवाच तं द्विजम् ।।६१
पुत्रदाता स्वयं ब्रह्मा भाग्यकर्त्ता परात्परः । तुभ्यं च शतजन्मान्तं तेन पुत्रो न निर्मितः ।।
तस्मादहं सुतं स्वांशात्तव विप्र ददामि भोः ।।६२
इत्युक्त्वा स्वमुखात्तेजो निराकृत्य महेश्वरः । तत्पत्न्यां जनयामास सकाशाद्द्विसुवर्मगः ।।६३
दशमासान्तरे जातः सुपुत्रो मधुराननः । अजस्येव पदश्चैको द्वितीयो नरवत्ततः ।।
अजैकपाद इति स प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।६४
चतुश्शताब्दवपुषि प्राप्ते तस्मिन्सुते प्रिये । सम्प्राप्तो भगवान्मृत्युस्तदा रोगगणैर्युतः ।।६५
तस्य तैरभवद्युद्धमजैकचरणस्य वै ।।६६
वर्षमात्रेण तान्सर्वाञ्जित्वा मल्लरणोत्कटः । मृत्युञ्जयः स वै नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।६७
दुःखितो भगवान्मृत्युस्तेन विप्रेण निर्जितः । परमेष्ठिनमागम्य कथयामास कारणम् ।।६८
तदा तु भगवान्ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्युतः । कुम्भगेद्युमणौ देवे चन्द्रमण्डलगं नृपम् ।।
तं द्विजं च चकाराशु रुद्ररूपं भयावहम् ।।६९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महादेवः स विप्रश्च तदाजपाद् । पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तः कलिशुद्धिकरः प्रभुः ।।
पुरीशर्मेति विख्यातो यतिदत्तस्य वै सुतः ।।७०
षोडशाब्दवपुर्भूत्वा जित्वा वेद परायणान् । शङ्कराचार्यमागम्य तस्य शिष्यो बभूव ह ।।

शंकर जी से कहा—स्वामिन्, शरणागत वत्सल ! मुझे पुत्र देने की कृपा कीजिये !' इतना कहने पर शिव जी ने हँसते हुए कहा—पुत्रदाता तो स्वयं ब्रह्मा जी हैं, जो परमोत्तम एवं भाग्यविधाता हैं । उन्होंने सौ जन्म तक तुम्हें पुत्र नहीं दिया है । अतः विप्र ! मैं अपने अंश से तुम्हें पुत्र दे रहा हूँ । इतना कहकर भगवान् महेश्वर जी ने अपने मुख से तेज निकालकर उनकी पत्नी को प्रदान किया, जो दो भागों में विभक्त होकर दशवें मास में प्रथम बकरे के समान चरण वाला और दूसरा मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ तथा इस भूतल में 'अजैकपाद' के नाम से उसकी अत्यन्त ख्याति भी हुई । चार सौ वर्ष के सुखीजीवन व्यतीत करने के उपरान्त मृत्युदेव अपने रोगगणों समेत उस पुत्र के समक्ष उपस्थित हुए, किन्तु उसी समय दोनों का भीषण युद्ध आरम्भ हो गया । पश्चात् उस उत्कट योद्धा ने उस संग्राम में वर्ष के भीतर ही उन सबको पराजित कर पृथिवी मण्डल में 'मृत्युञ्जय' के नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । अनन्तर मृत्युदेव ने दुःखी होकर उस ब्राह्मण द्वारा पराजित होने पर ब्रह्मा के पास जाकर उनसे सभी वृत्तान्त का वर्णन किया, जिससे भगवान् ब्रह्मा ने निखिल देवों समेत वहाँ आकर कुम्भ-राशि पर सूर्य के स्थित होने पर उस भीषण रुद्ररूप ब्राह्मण को चन्द्रमण्डल में राजपद पर प्रतिष्ठित किया ।५५-६९

सूत जी बोले—इसे सुनकर ब्राह्मण रूपधारी उस 'अजपाद' महादेव ने, जो कलि के शुद्धि-निर्माता एवं प्रभु हैं, माहिष्मती पुरी में जाकर यतिदत्त के पुत्र पुरीशर्मा के नाम से ख्यातिप्राप्त करते हुए सोलह वर्ष की अवस्था में वेदनिष्णात विद्वानों को पराजित करने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा

इति ते कथितं विप्र यथा मृत्युञ्जयोभवत् ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये आनन्दगिरिवनशर्मपुरीशर्मउत्पत्तिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

भारतीशगोरक्षनाथक्षेत्रशर्मढुण्ढिराजोपपत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः शृणु कथां रम्यां प्रयागे जीवभाषिताम् । हिर्बुर्नाम पुरा चासीद्दानवो लोककण्टकः ।।१
निकुम्भान्वयसम्भूतः शक्रतुल्यपराक्रमः । सहस्राब्दं तपः कृत्वा तापयामास वै सुरान् ।।२
तदा लोकपतिर्ब्रह्मा लोकरक्षार्थमुद्यतः । वरं ब्रूहीति वचनमुवाच दनुजेश्वरम् ।।३
नमस्कृत्य विधातारं वचनं प्राह नम्रधीः । यदि देयो वरः स्वामिंस्त्वया विश्वकृता विभो ।।४
मरणं न च मे भूयात्त्वत्कृतैश्च चराचरैः । इत्युक्तस्स तथेत्युक्त्वा ब्रह्मलोकमुपाययौ ।।५
दानवस्स तु रौद्रात्मा जित्वा स्वर्गनिवासिनः । आहूय दानवान्दैत्यान्विवरेभ्यः प्रसन्नधीः ।।६
स्वर्गे निवासयामास ते देवा भूतलीकृताः । लक्षाब्दं च सुरास्सर्वे बुभुजुः परमापदः ।।७
एकदा नारदो धीमान्दृष्ट्वा देवांस्तथागतान् । वचनं प्राह योगात्मा भजध्वं लोकशङ्करम् ।।८

स्वीकार किये । विप्र ! इस प्रकार मैंने मृत्युञ्जय की उत्पत्ति कथा तुम्हें सुना दिया ।७०-७१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में आनन्दगिरि, वनशर्मा और पुरीशर्मा की उत्पत्ति वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११

अध्याय १२

भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्रशर्मा और ढुण्ढिराज की उत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—बृहस्पति की कही हुई कथा मैं पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! पहले हिर्बु नामक एक दानव हुआ था, जो प्राणीमात्र के लिए कंटक की भाँति सदैव दुःखदायी रहता था । निकुम्भ दैत्य के कुल में उत्पन्न होकर उसने इन्द्र के समान पराक्रमी होने पर भी एक सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की, जिससे उसके तेज द्वारा देवों को अत्यन्त पीड़ा होने लगी । उस समय लोकनियन्ता ब्रह्मा ने लोक के रक्षार्थ उसके समीप पहुँचकर उस दानवेश्वर से वर-याचना करने के लिए कहा—उसने विधाता को नमस्कार करके विनम्र होकर कहा—स्वामिन् ! विश्वस्रष्टा होकर आप मुझे यदि कृपया वर प्रदान करने के लिए उत्सुक है, तो आपकी सृष्टि में चर-अचर किसी प्राणी द्वारा कभी मेरी मृत्यु न हो ।' वर प्रदानकर ब्रह्मा के ब्रह्मलोक चले जाने पर दुरात्मा दैत्य ने स्वर्ग निवासी देवों को पराजितकर पाताल से दैत्यों को बुलाकर वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया और देवों ने भूतल निवास करना आरम्भ किया । एक लाख वर्ष तक देवों का इस प्रकार परम दुरुपयोग करने के उपरान्त एक बार योगिराज नारद ने देवों की दुरावस्था देखकर उनसे कहा—लोकशंकर भगवान् शिव की आराधना करो, क्योंकि वे ही महादेव एवं ब्रह्माण्ड के

स देवश्च महादेवो ब्रह्माण्डेशो विपत्तिहा । इति श्रुत्वा तु वचनं ते देवा विस्मयान्विताः ॥९
पार्थिवैः पूजयामासुर्देवदेवमुमापतिम् । गतैकादशवर्षाश्च तेषां पूजनकारिणाम् ॥१०
तदा प्रसन्नो भगवान्महेशो लोकशङ्करः । ज्योतिर्लिङ्गमयो भूत्वा लोकाँस्त्रीन्समदाहयत् ॥११
ये तु वै देवभक्ताश्च शेषाश्चासन्महाभये । अन्ये तु दानवैस्सार्द्धं भस्मीभूता बभूविरे ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विष्णुना सह हर्षितः । तुष्टाव स महारुद्रं स्तोत्रैस्सामसमुद्भवैः ॥१३
मिथुनस्थे दिवानाथे शशिमण्डलभूपतिम् । हिर्बुध्नं च महारुद्रं चकार सुरहेतवे ॥१४
इति श्रुत्वा स हिर्बुध्नो देवकार्यार्थमुद्यतः । हिमालये गिरौ रम्ये पुत्रोऽभूत्साद्यकर्मणः ॥१५
यतिरूपः कलाभिज्ञो भारतीश इति श्रुतः । स जित्वा विदुषां वृन्दान्काशीनगरमागतः ॥
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्योऽभूत्तेन निर्जितः ॥१६

बृहस्पतिरुवाच

मयपुत्रः स्मृतो मायी तपोघोरं चकार ह ॥१७
पदैकेन स्थितः सूर्य्ये सहस्राब्दं प्रयत्नतः । सः लोकाँस्तापयामास तपसा लोकवासिनः ॥१८
तदा प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी पितामहः । त्रयो ग्रामास्तत्प्रियार्थे क्रमाद्वै तेन निर्मिताः ॥१९
सौवर्णं स्वर्गसदृशं पुरं षोडशयोजनम् । तदधो योजनान्ते च राजतं च भुवर्मयम् ॥२०
तदधो योजनान्ते च भूर्लोकमिव चायसम् । एवं पुरनिवासिन्यो दैत्यानां योषितो मुदा ॥२१

अधिनायक दुःखभंजन है । इसे सुनकर विस्मित होते हुए देवों ने पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना आरम्भ की । ग्यारह वर्ष के अनन्तर उन पूजन करने वाले देवों के ऊपर प्रसन्न होकर लोक के कल्याणमूर्ति भगवान् शिव ने ज्योतिर्लिङ्ग रूप धारणकर तीनों लोकों को भस्म कर दिया । ९-११। उस समय केवल देवभक्त ही शेष रह गये और अन्य लोग उन्हीं दानवों के साथ उस भीषण अग्नि की ज्वाला में भस्म हो गये । उसी समय ब्रह्मा ने हर्षमग्न होकर विष्णु समेत वहाँ आकर सामवेद की स्तुति द्वारा उन महारुद्र को प्रसन्न किया, पश्चात् देवों के हितार्थ मिथुन राशि पर सूर्य के स्थित होने पर उन हिर्बुघ्न महारुद्र को चन्द्रमण्डल के राजपद पर विभूषित किया । इसे सुनकर हिर्बुघ्नदेव ने देवों के कार्य सफल करने के लिए हिमालय पर्वत निवासी साद्यकर्मा के घर पुत्र-रूप में जन्म ग्रहण किया, जो यतिरूप एवं कला के पूर्ण ज्ञाता होकर 'भारतीश के नाम से प्रख्यात हुए । उन्होंने अनेक विद्वानों को पराजित कर काशी यात्रा की । वहाँ पहुँचकर शंकराचार्य से पराजित होने पर उन्होंने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । १२-१६

बृहस्पति जी बोले—मयपुत्र मायी ने एक चरण से स्थित होकर एक सहस्र वर्ष तक सूर्य की ओर दृष्टि लगाये कठिन तपस्या की। जिस समय उसके तेज द्वारा लोक एवं लोक निवासी प्राणियों को अत्यन्त सन्ताप होने लगा। उस समय भगवान् पितामह ब्रह्मा प्रसन्न होकर उसके प्रसन्नार्थ तीन ग्रामों (लोकों) के निर्माण पूर्वक क्रमशः तीनों उसे प्रदान किये । १७-१९। जिसमें स्वर्ग के समान सोलह योजन का विस्तृत सुवर्ण निर्मित महल वाला पहला, उसके एक योजन के नीचे भुवर्लोक की भाँति रजत (चाँदी) निर्मित दूसरा और उसके एक योजन के नीचे भूलोक की भाँति विस्तृत लोहे द्वारा रचित तीसरा लोक था। इस प्रकार ब्रह्मा

शतकोटिमिता दैत्या धर्मात्मानो निवासिनः । गृहीत्वा यज्ञभागं च देवतुल्या बभूविरे ॥२२
तदा निर्बलिनो देवाः क्षुधया पीडिताः प्रभुम् । भगवन्तं महाविष्णुं तुष्टुवुः परया गिरा ॥२३
चतुर्युगसमूहानां वर्षाणां भगवन्प्रभो । अधिकारविहीनाश्च वर्तन्ते स्वर्गमण्डले ॥२४
तामसान्तरमेवापि षोडशैव चतुर्युगम् । व्यतीतानि महाविष्णो मायिनां दुःखभुञ्जताम् ॥२५
इति श्रुत्वा वचस्तेषां भगवान्मधुसूदनः । दृष्ट्वा संस्कृतवार्तायां दैत्यान्धर्मपरायणान् ॥२६
बौद्धरूपस्स्वयं जातः कलौ प्राप्ते भयानके । अजिनस्य द्विजस्यैव सुतो भूत्वा जनार्दनः ॥२७
वेदधर्मपरान्विप्रान्मोहयामास वीर्यवान् । निर्वेदाः कर्मरहितास्त्रिवर्णास्तामसान्तरे ॥२८
षोडशे च कलौ प्राप्ते बभूवुर्यज्ञवर्जिताः । तदा दैत्या रुषाविष्टास्सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥२९
मनुजान्पीडयामासुर्निर्यज्ञान्वेदवर्जितान् । क्षयं जग्मुर्नरास्सर्वे कल्पान्ते दैत्यभक्षिताः ॥३०
पुनस्सत्ययुगे प्राप्ते कैलासे गुह्यकालये । देवैश्चाराधितः शम्भुस्सर्वलोकशिवङ्करः ॥३१
ज्योतिर्लिङ्गं वपुः कृत्वा तत्र तस्थौ भयङ्करः । एतस्मिन्नन्तरे देवाः प्रसन्नास्तामसान्तरे ॥३२
भूमेस्सारं गृहीत्वा ते रथं कृत्वा विधानतः । चन्द्रभास्करयोस्साराच्चक्रे कृत्वा तथैव च ॥३३
सुमेरोश्च तथा सारात्केतुं कृत्वा रथस्य वै । ददौ शिवाय महते यानं स्यन्दनरूपि तत् ॥३४
तदा ब्रह्मा स्वयं प्राप्य बभूव रथसारथिः । वेदाश्च वाजिनश्चासन्देवदेवस्य वै रथे ॥३५

द्वारा रचित उन पुरों में दैत्यों की स्त्रियाँ तथा सौ कोटि धार्मिक दैत्यगण प्रसन्नतापूर्ण निवास कर रहे थे। वहाँ रहकर दैत्यों ने देवों के यज्ञ-भाग को भी ग्रहण करना आरम्भ किया जिससे क्षुधा से पीड़ित होकर देवों ने अपने स्वामी भगवान् विष्णु की उत्तम स्तुतियों द्वारा आराधना की—भगवन्, प्रभो! हम लोगों को अधिकारहीन होकर रहते हुए चारों युगों के सभी वर्ष व्यतीत हो गये। महाविष्णो! यहाँ इस कलि के समय भूमण्डल में भी दुःखों के भोग करते सोलह बार चारों युग व्यतीत हो गये।२०-२५। इस प्रकार उन लोगों के आर्तनाद सुनकर भगवान् मधुसूदन ने उन धार्मिक दैत्यों को संस्कृत भाषा में निपुणता प्राप्त करते हुए देखकर उस भीषण कलि के समय स्वयं बौद्ध रूप धारण किया, जो पहले अजिन ब्राह्मण के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। जनार्दन भगवान् ने उन वेदधर्म परायण दैत्यों को अपनी माया से मोहितकर उन्हें सुखी एवं कर्मरहित किया। इस प्रकार उस कलि में इनके सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के समय तक इनसे प्रभावित होकर तीनों वर्णों के मनुष्य यज्ञ करना छोड़ दिये। उस समय त्रिपुरवासी दैत्यों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेदाध्ययन एवं यज्ञानुष्ठान से रहित उन मनुष्यों को देखकर पीड़ित करना आरम्भ किया जिससे उस कल्पान्त के समय दैत्यों द्वारा भक्षित होकर सभी मनुष्य नष्ट हो गये। पुनः सत्ययुग के प्रारम्भ में कैलास में जाकर देवों ने लोक शंकर शिव की उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने अपनी ज्योतिर्लिङ्ग की शरीर धारण किया। उस समय देवों ने प्रसन्न होकर पृथिवी के सार को निकालकर एक विचित्र रथ का निर्माण किया, जिसमें चन्द्र-सूर्य के सार से चक्र, सुमेर पर्वत के सार से उस रथ का केतु (धुरा) निर्मित था। इस प्रकार उन लोगों ने उस विचित्र रथ का निर्माण कर जिस समय उसे महाशिव जी को अर्पित किया उसी समय ब्रह्मा ने वहाँ आकर सारथी पद को अपनाया और वेदों ने उनके वाहन (अश्व) का रूप धारण किया। देवाधिदेव शंकर जी के उस रथपर प्रतिष्ठित होने पर उनके

लोकालोकगिरेः सारो धनुश्चासीन्महात्मनः । घोरं चाजगवं नाम प्रसिद्धमभवद्धनुः ।।३६
राज्यं चकार भगवांस्तद्धनुः कठिनं महत् । भग्नीभूतमभूच्चापं देवदेवस्य वै रुषा ।।३७
विस्मितो भगवान्विष्णुस्सारं स्वर्गस्य वै तदा । गृहीत्वाशु धनुर्दिव्यं पिनाकं स चकार ह ।।३८
सज्यं जातं च रुद्रेण पुष्टिभूतं महद्धनुः । तदा ब्रह्मर्षयस्तुष्टास्तुष्टुवुर्मनसा हरम् ।।३९
पिनाकीति च तन्नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महेश्वरः । गुणश्चास्य वै शेषः शक्रो बाणस्तदाभवत् ।।४०
शरपक्षौ वह्निवायू शल्यं विष्णुसनातनः । तेन बाणेन दैत्यानां कोटिसंख्या मृता च खे ।।४१
त्रिपुरं दाहयामास नायिना पालितं शिवः । भस्मीभूते पुरे घोरे तदालोकपतिर्विधिः ।।४२
पिनाकिनं महारुद्रं मीनराशिस्थिते रवौ । शशिनो मण्डलस्यैव राजानं स चकार तम् ।।
स्वाधिकारांस्तदा देव अवापुस्तामसान्तरे ।।४३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा पिनाकी च स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् ।।४४
समुत्पाद्य हरद्वारे हिमसानौ चकार ह । मच्छन्दो नाम तत्रैव योगी शम्भुपरायणः ।।४५
गोरखस्य गुरुर्यो वै तन्मुखे तेज आविशत् । रम्भा नाम्नैव तत्रैव स्वर्वेश्या कामरूपिणी ।।४६
मच्छन्दं च वशीकृत्य बुभुजे स्मरविह्वला । तयोस्सकाशाद्वै जातस्स पुत्रो रुचिराननः ।।४७
नाथशर्मेति विख्यातो विद्वाञ्छ्रेष्ठतरोऽभवत् । स जित्वा पण्डितान्भूमौ पुरीं काशीं समागतः ।।
शङ्कराचार्यविजितस्तस्य शिष्यो बभूव ह ।।४८

लिए लोकालोक पर्वत का सारभूत एक धनुष बनाया गया, जो भीषण धनुष 'अजगव' के नाम से विख्यात हुआ। उस धनुष को भगवान् सत्यदेव ने अत्यन्त कठोर बनाया था, किन्तु देवाधिदेव भगवान् शंकर द्वारा उसे भग्न होते देखकर आश्चर्यचकित होकर भगवान् विष्णु से उस समय स्वर्गलोक के सार द्वारा एक दिव्य धनुष का निर्माण किया। जिस समय भगवान् रुद्र द्वारा उस अत्यन्त पुष्ट एवं विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाई गयी उस समय हर्षातिरेक से मग्न होकर देव ब्रह्मर्षियों ने उनकी आराधना की और भगवान् महेश्वर उसी समय से 'पिनाकी' के नाम से प्रख्यात हो गये। उस धनुष की प्रत्यञ्चा शेष और बाण इन्द्र हुए थे तथा अग्नि और वायु उस बाण के पक्ष एवं शल्य स्वयं सनातन विष्णु भगवान् हुए। भगवान् शंकर ने उस बाण द्वारा आकाश में करोड़ों दैत्यों के विनाशपूर्वक उस त्रिपुर का भस्मावशेष किया। तीनों पुरों के भस्म हो जाने पर लोकनायक ब्रह्मा ने महारुद्र उन पिनाकी देव को मीनराशिस्थ सूर्य के समय चन्द्रमण्डल का राजपद प्रदान किया। पश्चात् देवगणों ने भी अपने-अपने अधिकारों को प्राप्त किया।२६-४३

सूत जी बोले—इसे सुनकर पिनाकी देव ने मुख द्वारा अपने अंश को निकालकर हिमालय पर्वत के समीप हरिद्वार में भेजा जो वहाँ मच्छन्द नामक योगी की ख्याति प्राप्तकर भगवान् शंकर का अनन्य उपासक हुआ। वही गोरखनाथ का गुरु वर्ण भी था जिसके मुख में वह तेज आविष्ट हुआ था। रम्भा नामक देवाङ्गना ने जो यथेच्छ रूप धारण किया करती हैं कामपीड़ित होने पर योगी मच्छन्द द्वारा अपनी कामपिपासा शान्ति की। पश्चात् उन दोनों के रमण करने पर एक मधुरमूर्ति बालक की उत्पत्ति हुई, जो 'नाथ शर्मा' (गोरखनाथ) के नाम से प्रख्यात होते हुए अत्यन्त गम्भीर विद्वान् हुआ। उसने अनेक धुरन्धर पण्डितों को पराजित कर काशीपुरी की यात्रा की। वहाँ पहुँचने पर योगिराज शंकराचार्य से पराजित होने पर उनकी शिष्य-सेवा स्वीकार की।४४-४८

बृहस्पतिरुवाच

चाक्षुषान्तरसम्प्राप्ते द्वादशे द्वापरे युगे ।।४९
क्षत्रियैस्तालजङ्घीयैर्ब्राह्मणा भृगुवंशजाः । विनाशिताः कुरुक्षेत्रे गृहीत्वा तद्धनं बहु ।।५०
बभुजुर्बलवन्तस्ते दैत्यपक्षा महाधमाः । कस्यचित्तु मुनेः पत्नी गुर्विणी च भयान्विता ।।५१
हिमतुङ्गे समागम्य तद् गर्भं मुनिसम्भवम् । शतवर्षं ददौ देवी तपसा ज्ञानरूपिणी ।।५२
मातुरूरू सुतो भित्त्वा ततो जातो महीतले । तेजसा तस्य पुत्रस्य भस्मीभूतमभूज्जगत् ।।५३
तदा तु सकला देवाः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् । वज्रस्थितश्च वैतालास्समाजग्मुर्भयातुराः ।।५४
पितृभिर्दैवतैर्बालस्समाज्ञातो हिमाचले । लोकनाशकरं तेजो जलमध्ये स चाक्षिपत् ।।५५
जलदेवी च वडवा भूत्वा तत्तेज उत्तमम् । पीत्वा ववाम तत्रैव पीडिता रौद्रतेजसा ।।५६
तदागत्य स्वयं ब्रह्मा त्रिकुटो यत्र वै गिरिः । तदधः सागरे घोरे स्थापयामास लोकपः ।।५७
मेषगे द्युमणौ प्राप्ते शशिमण्डलगं प्रभुम् । तं रुद्रं स चकाराशु परमेष्ठी पितामहः ।।५८
ऊरुजातात्स्मृतो वोर्वो दहनो लोकदाहतः । वडवामुखतो जातो वाडवो नाम स प्रभुः ।।५९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु दहनो गुरुवाक्यं मनोहरम् । स्वमुखात्तेज उत्पाद्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ।।६०

बृहस्पति बोले—द्वापर युग में चाक्षुष मन्वन्तर के समय तालजंघीय क्षत्रियों द्वारा कुरुक्षेत्र के स्थान में भृगुवंशीय ब्राह्मणों के विनष्ट हो जाने पर उनके धनों का अपहरण कर उन नीच दैत्यों ने उसका उपभोग किया । उसी समय किसी मुनि की पत्नी ने उस गर्भिणी अवस्था में अत्यन्त भयभीत होकर हिमालय के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ पहुँचकर ज्ञानरूपिणी उस मुनिपत्नी के सौ वर्ष तक उस गर्भ को धारण करने के उपरान्त उरु के भेदनपूर्वक एक तेजस्वी बालक ने उस गर्भ से जन्म ग्रहण किया । इस भूमण्डल पर जिस समय उस शिशु ने पदार्पण किया उसी समय उसके तेज द्वारा सम्पूर्ण संसार भस्म हो गया । पश्चात् देवों ने भयभीत होकर ब्रह्मा को आगे कर वज्रस्थित वैताल समेत वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ पहुँचने पर पितरों एवं देवों की आज्ञा को स्वीकार कर उसने उस लोक-नाशक तेज को जल के मध्य में डाल दिया । उस समय जल-देवी ने बडवा (घोड़ी) रूप धारणकर उस तेज का पान किया किन्तु उस रुद्र तेज से पीड़ित होने पर उसने उसका वमन कर दिया । उस समय स्वयं ब्रह्मा ने वहाँ जाकर त्रिकूट पर्वत के नीचे घोर सागर में उसकी स्थापना की । सूर्य के मेषराशिस्थ होने पर पितामह ब्रह्मा ने उस रुद्र रूप को चन्द्रमण्डल के स्वामी पद से विभूषित किया । उरु से उत्पन्न होने के 'वोर्वो' लोक करने से 'दहन' और वडवा के मुख से उत्पन्न होने के नाते उसका 'वाडव' नाम हुआ ।४९-५९

सूतजी बोले—उस दहन (तेजस्वी) ने बृहस्पति की ऐसी सुन्दर वाणी सुनकर अपने मुख से तेज निकालकर कुरुक्षेत्र में भेजा, जो सारस्वत ब्राह्मण के घर पुत्ररूप में उत्पन्न होकर 'क्षेत्रशर्मा, के नाम से

सारस्वतस्य विप्रस्य गृहे जातस्स वै शिवः । क्षेत्रशर्मेति विख्यातो विद्वच्छ्रेष्ठो बभूव ह ।।६१
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्यो भूत्वा पराजितः । ब्रह्मचर्यव्रती काश्यां तस्थौ शम्भुपरायणः ।।६२

बृहस्पतिरुवाच

एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावर जङ्गमे । शताब्दे ब्राह्मणः प्राप्तेऽव्यक्तजन्मनि लोकगे ।।६३
अव्यक्तं प्रकृतिर्माया पीत्वा सर्वजलं मुदा । महाकाली स्वयं मूर्तिरन्धकारस्वरूपिणी ।।६४
एका बभूव तत्रैव प्राकृते कल्पदारुणे । चतुर्युगानां कोटीनां त्रयाणां दारुणे लये ।।६५
षष्टिलक्षयुतानां च कालस्तत्र व्यतीतवान् । तदा सा प्रकृतिर्देवी नित्यशुद्धा सनातनी ।।६६
स्वेच्छया च स्वरूपं स्वं महागौरमनुत्तमम् । पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं च दधौ शिवा ।।६७
भालनेत्रेण सा माता सूक्ष्मतेजो ददर्श ह । शून्यभूतं परं नित्यमविकारि निरञ्जनम् ।।६८
तदा दिक्षु गतं ब्रह्म स्वभुजैः प्रकृतिः पुरा । ग्रहीतुमिच्छती तत्र न समर्था बभूव वै ।।६९
विस्मिता प्रकृतिर्माता पञ्चवक्त्रैः सनातनम् । तुष्टाव परया भक्त्या चिरकालात्परात्परम् ।।७०
धातुशब्दैः प्राङ्मुखजैः प्रत्ययैर्याम्यवक्त्रजैः । सुविभक्तिमयैः शब्दैर्मुखपश्चिमजैः स्थिरा ।।७१
तिङ्विभक्तिमयैर्नित्या मुखोत्तरमयैर्मुदा । नभोवक्त्रमयैः शब्दैर्वर्णमात्रैर्निरञ्जनम् ।।७२
सच्चिदानन्दघनकं पूर्णब्रह्म सनातनम् । तुतोष तत्तु सर्वज्ञं पञ्चवक्त्रेषु चागमत् ।।७३
पुरुषत्वमभूद्ब्रह्म स्वयम्भूर्नाम चाभवत् । अव्यक्तात्प्रकृतेर्जातोऽव्यक्तजन्मा हि स स्मृतः ।।७४

विख्यात एवं श्रेष्ठ विद्वान् हुआ। उसने काशी पहुँचकर शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार करने के उपरान्त ब्रह्मचर्यव्रती रहकर विश्वनाथ जी की सेवा का पारायण किया।६०-६२

बृहस्पति जी बोले—स्थावर जंगमरूप जगत् के उस प्रलयकालीन एकार्णव में विलीन होने पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सौ वर्ष के उपरान्त प्रकृति माया ने उस आसव जल रूप अव्यक्त का पानकर स्वयं मूर्तिमती होकर अंधकार स्वरूपिणी महाकाली का रूप धारण किया। उस भीषण प्राकृतकल्प के समय एकाकिनी उत्पन्न होकर साठ लाख कोटि चारों युग के समय को व्यतीत किया। पश्चात् उस प्रकृति देवी ने, जिसे शुद्ध एवं सनातनी कहा जाता है, स्वेच्छया अपने स्वरूप को अत्यन्त गौरवर्ण बनाया। उस शिवा ने उस स्वरूप में पाँच मुख, दश भुजाएँ और तीन नेत्र धारण किया और उस माता के भालनेत्र द्वारा सूक्ष्म तेज का दर्शन किया, जो शून्य पर नित्य, अविकारि एवं निरंजन है। उसे देखकर प्रकृति देवी ने अपनी भुजाओं द्वारा उस दिग्दिगन्त व्यापक ब्रह्म को ग्रहण करने की इच्छा की किन्तु समर्थ न हो सकी। पश्चात् विस्मित होकर प्रकृतिमाता ने उस सनातन एवं परात्पर देव की अपने पाँचों मुखों द्वारा चिरकाल तक भक्तिपूर्वक आराधना की पूर्वमुख से धातु, दक्षिण मुख से प्रत्यय, पश्चिम मुख से सुप विभक्तिमय, उत्तरमुख से तिङ् विभक्तिमय और आकाशीय मुख से वर्णमात्र शब्दों द्वारा उस निरञ्जन की उपासना की जो सच्चिदानन्द, घन, पूर्ण एवं सनातन ब्रह्म है। तदनन्तर प्रसन्न होकर उस सर्वज्ञ ने उनके पाँचों मुखों में प्रविष्ट होकर पुरुष रूप धारण किया,जो स्वयम्भू के नाम से विश्व विख्यात हुआ और अव्यक्त प्रकृति से उत्पन्न होने के नाते वह अव्यक्तजन्मा भी कहा गया है।६३-७४। पश्चात् उसी पुरुष के लिए वरदात्री एवं

तस्य हेतोः स्वयं देवी वरदा लोकरूपिणी । महालक्ष्मीश्च पूर्वार्द्धाज्जाता षोडशलोकिनी ।।७५
अष्टादशभुजास्तस्या लोकरक्षणतत्पराः । दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं स्वयंभूर्विस्मयान्वितः ।।७६
प्रविश्य बहुधा भूत्वा नान्तं तस्या जगाम ह । बृहत्वाद्बहुरूपत्वाद्ब्रह्मा नामेति विश्रुतः ।।७७
श्रमितो भगवान्ब्रह्मा सत्यलोकमुपस्थितः । मुखेभ्य उद्भवैर्देवो वेदैस्तुष्टाव शङ्करम् ।।७८
चिरं कालं तदङ्गाद्वै नदीनदसमुद्भवः । एकार्णवं तदा जातं शेते तत्र स्वयं प्रभुः ।।७९
सहस्रयुगपर्यंतमुषित्वाऽव्यक्तभूः स्वयम् । सत्यलोकमुपागम्य पुनः सृष्टिं चकार ह ।।८०
अनन्ताः सृष्टयश्चासन्गणरूपाः पृथक्पृथक् । ताभिर्व्यक्तमभूत्सर्वं महालक्ष्मीमयं जगत् ।।८१
दृष्ट्वा बहुत्वं सृष्टीनां महालक्ष्मीः सनातनी । विस्मिताभूच्च सर्वेशं भगवन्तमुपाययौ ।।८२
नत्वोवाच वचो रम्यं कृष्णमव्यक्तमङ्गलम् । भगवन्नित्यशुद्धात्मन्नराश्चासन्महत्तराः ।।८३
कथं तेषां च गणना कर्तव्या च मया सदा । इति श्रुत्वा वचस्तस्या द्विधाभूतश्च सोऽव्ययः ।।८४
पूर्वार्द्धात्स तु रक्ताङ्गः परार्द्धाद्गौररूपवान् । चतुर्भुजस्स रक्ताङ्गो गौरवर्णश्चतुर्भुजः ।।८५
सर्वसृष्टिगणानां च स ईशो भगवान्भवः । गणेशो नाम विख्यातश्चेश्वरस्स तु विश्रुतः ।।८६
परश्चतुर्भुजो यो वै योगिध्येयो निरञ्जनः । एकदा विधितो जातः शिवः पार्वतिवल्लभः ।।८७
गणेशं पूजयामास सहस्राब्दं प्रयत्नतः । तदा प्रसन्नो भगवान्गणेशः शर्वपूजकः ।।८८

लोकरूपिणी देवी ने स्वयं अपने पूर्वार्द्ध भाग से महालक्ष्मी का रूप धारण किया, और उस सोलह लोकनायिका ने अपने अठ्ठारह भुजाओं द्वारा लोक की रक्षा की । उस अद्भुत रूप को देखकर स्वयम्भू को महान् आश्चर्य हुआ । अनन्तर उन्होंने उस रूप में प्रविष्ट होकर अनेक रूपों से उसका पता लगाया किन्तु उसका पार न पा सके । उसी समय से बृहत् (वज्र) और बहुत्व (अनेक) होने के नाते 'ब्रह्मा' नाम से उसकी ख्याति हुई । तदुपरान्त श्रान्त होकर भगवान् ब्रह्मा ने सत्यलोक पहुँचकर अपने मुखों से उत्पन्न वेदों द्वारा भगवान् शंकर को प्रसन्न किया । चिरकाल के उपरान्त उनके अंगों द्वारा नदी एवं नदों द्वारा (प्रलयकालीन जल बढ़कर) एकार्णव (एक समुद्र) हो गया जिससे उसी में शयन करते हुए स्वयम्भू ब्रह्मा ने सहस्र युग व्यतीतकर सत्यलोक पहुँचकर पुनः सृष्टि करना आरम्भ किया । उस प्रमत्त सृष्टि द्वारा जो गणरूप में पृथक्-पृथक् स्थित थे, सम्पूर्ण विश्व महालक्ष्मीमय दिखाई देने लगा । उस समय सनातनी महालक्ष्मी ने सृष्टि की अधिकता एवं अनेकता देखकर आश्चर्यचकित होकर सर्वेश भगवान् के समीप जाकर नम्रतापूर्वक उन अव्यक्त एवं मांगलिक कृष्ण भगवान् से कहा—भगवन्, नित्यशुद्धात्मन् ! नरों की महत्तर सृष्टि हो गई है, मैं सदा उनकी गणना किस प्रकार करूँगी । इसे सुनकर उस अव्यय ने अपने को दो भागों में विभक्तकर पूर्वार्द्ध से रक्तवर्ण और चार भुजाएँ तथा उत्तरार्द्ध से गौरवर्ण और चार-भुजाएँ धारण किया, जिसमें रक्तवर्ण एवं चार भुजाओं वाले रूप ने समस्त सृष्टिगणों के ईश का स्थान ग्रहण किया, जो भगवान् भव गणेश के नाम से विश्वविख्यात हुए और उनका दूसरा गौरवर्ण का स्वरूप जो निरंजनस्वरूप है योगियों का परमध्येय हुआ । एक बार ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न शिव ने पार्वती समेत व्रती होकर भगवान् गणेश की एक सहस्र वर्ष तक सप्रयत्न आराधना की। उस समय शिव जी की पूजा

वरं वरय तं प्राह पार्वतीसहितं हरम् । प्रसन्नात्मा भवः साक्षात्तुष्टाव च विनम्रधीः ॥८९

शिव उवाच

नमो विष्णुस्वरूपाय गणेशाय परात्मने । चतुर्भुजाय रक्ताय यज्ञपूर्णकराय च ॥९०
विघ्नहन्त्रे जगद्भर्त्रे सर्वानन्दप्रदायिने । सिद्धीनां पतये तुभ्यं निधीनां पतये नमः ॥९१
प्रसन्नो भव देवेश पुत्रो भव मम प्रियः । इति श्रुत्वादिशून्यस्तु गणेशो भक्तवत्सलः ॥९२
पार्वत्याः सर्वदेहात्तु तेजोभूतात्समुद्भवः । तदा कैलासशिखरे सर्वे देवास्सवासवाः ॥९३
मङ्गलार्थमुपाजग्मुर्देवदेवस्य मन्दिरे । महोत्सवश्च तत्रासीत्सर्वलोकसुखावहः ॥९४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सूर्यपुत्रः शनिः स्वयम् । क्रूरदृष्टिः समायातः कालात्मा देवमण्डपे ॥९५
तस्य दर्शनमात्रेण स बालो विशिरा ह्यभूत् । हाहाकारो महाँश्चासीत्कैलासे गुह्यकालये ॥९६
तच्छिरश्चन्द्रलोके वै तुलासंस्थे दिवाकरे । सप्तविंशद्दिनान्येव प्रकाशयति भूतले ॥९७
निन्दितो दैवतैस्तत्र शनिर्जनभयङ्करः । गजस्य मस्तकं छित्त्वा दन्तैकं रागरूपि यत् ॥९८
तच्छिशोः कन्धरे रक्तेऽरोपयत्सूर्यसम्भवः । गजयोन्या स्तुतो ब्रह्मा कर्कटस्य तदा शिरः ॥९९
समारोप्य तु तद्योनिः कर्कटो विशिरीकृतः । एवं गजाननो जातो गणेशश्चेश्वरः स्वयम् ॥१००

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गणेशस्तु गुरोर्वचनमुत्तमम् । स्वमुखात्स्कन्धमुत्पाद्य काश्यां जातः स चेश्वरः ॥१०१

से प्रसन्न होकर भगवान् गणेश ने उनसे कहा—वरदान की याचना कीजिये । उन्होंने प्रसन्न होकर नम्रतापूर्वक उनकी स्तुति किया ।७५-८९

शिव जी बोले—उस विष्णुस्वरूप को नमस्कार है, जो गणेश, परात्मा, एवं यज्ञ की मूर्ति के लिए रक्तवर्ण एवं चार भुजाओं को धारण किये हैं । विघ्नहर्त्ता, जगत् के भर्ता समस्त आनन्दप्रदाता एवं सिद्धि-ऋद्धि के अधीश्वर को नमस्कार है । देवेश ! 'आप प्रसन्नतया मेरा पुत्र होना स्वीकार करें ।' इसे सुनकर भक्तवत्सल एवं आदिशून्य भगवान् गणेश ने तेजरूप में पार्वती के समस्त अंगों से निकलकर बालक रूप धारण किया । उस समय उस कैलास के शिखर पर देवाधिदेव शंकर के घर उस पुत्र-जन्म के मांगलिक महोत्सव के उपलक्ष में समस्त इन्द्रादि देव उपस्थित हुए । जो महोत्सव प्राणीमात्र के लिए अत्यन्त सुखावह था । उसी बीच सूर्य पुत्र शनि का भी वहाँ आगमन हुआ, जो क्रूरदृष्टि एवं कालात्मा कहे जाते हैं । उनके देखते ही उस शिशु का शिर विलीन हो गया, ऐसा देखकर उस कैलास पर हाहाकार मच गया । तुला राशि पर स्थित सूर्य के समय चन्द्रलोक में स्थित होकर वही शिर इस भूमण्डल पर सत्ताईस दिन तक प्रकाश करता रहता है । उस समय वहाँ देवगणों से निन्दित होने पर उस जनभयङ्कर शनि ने गज का मस्तक काटकर उस बालक के मस्तक स्थान पर रख दिया । पश्चात् ब्रह्मा ने उस गज के मस्तक स्थान पर कर्कट (केकड़ा) का शिर रखकर उस केकड़ा को मस्तकहीन किया । इस प्रकार गजानन की उत्पत्ति बता दी गई, जो गणेश एवं स्वयं ईश्वर कहे जाते हैं ।९०-१००

सूतजी बोले—इसे सुनकर गणेश जी ने मुख द्वारा अपने स्कन्ध को निकालकर काशी में दैवज्ञ

दैवज्ञस्य द्विजस्यैव पुत्रो भूत्वा शुभाननः । ढुण्ढिराजस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।।१०२
जातकाभरणं नाम ज्योतिःशास्त्रं फलात्मकम् । कृत्वा स वेदरक्षार्थं शङ्कराचार्यमागमत् ।।१०३
शिष्यो भूत्वा प्रसन्नात्मा गुरुसेवापरोऽभवत् । इति ते कथितं विप्र ढुण्ढिराजो यथाभवत् ।।१०४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये भारतीशगोरखनाथक्षेत्रशर्मढुण्ढिराजसमुत्पत्तिवर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अघोरपथभैरवहनुमज्जन्मरुद्रमाहात्म्यबालशर्मसमुत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

षोडशाब्दे च सम्प्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । स उषित्वा च कमले स्थितः सृष्ट्यर्थमुद्यतः ।।१
एतस्मिन्नन्तरे वक्त्रात्समुद्भूता च शारदा । दिव्याङ्गं सुन्दरं तस्या दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः ।।२
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मरपीडितः । रतिं देहि मदाघूर्णे रक्ष मां कामविह्वलम् ।।३
इति श्रुत्वा तु सा माता रुषा प्राह पितामहम् । पञ्चवक्त्रोऽयमशुभो न योग्यस्तव कन्धरे ।।४
चतुर्वक्त्रो वेदमयो योग्यस्सर्वेश्वरे त्वयि । इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ब्रह्मा क्रोधान्वितोऽभवत् ।।५
तस्य कोपाग्निना तोयं शुष्कभूतमभूद्भुवि । शान्तिभूते च तत्कोपे रुद्रो जातो भयङ्करः ।।६

ब्राह्मण के यहाँ पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, जिस कल्याणमुख बालक की इस भूतल में ढुण्ढिराज के नाम से अत्यन्त ख्याति हुई है । उन्होंने जातकाभरण नामक ज्योतिःशास्त्र के फलित ग्रन्थ का, समस्त देवों के रक्षार्थ निर्माण करने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार की । विप्र ! इस प्रकार मैंने ढुण्ढिराज की उत्पत्ति कथा तुम्हें सुना दी ।१०१-१०४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्राशर्मा और ढुण्ढिराज की उत्पत्तिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त। १२।

अध्याय १३

अघोरपंथिभैरव हनुमज्जन्म, रुद्रमाहात्म्य और बालशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा ने सोलह वर्ष तक कमल में स्थित रहने के उपरान्त पुनः सृष्टि करने का प्रयत्न किया । उसी समय उनके मुख द्वारा शारदा देवी का आविर्भाव हुआ, जिसके दिव्य सौन्दर्यपूर्ण अंगों को देखकर ब्रह्मा ने कामपीड़ित होकर बलात् उसे पकड़कर अपनी अधीरता प्रकट की थी—उन्होंने कहा—मदोन्मत्ते ! रतिदान द्वारा मेरी कामपीड़ा-शान्तिपूर्वक रक्षा करो । इसे सुनकर उस माता ने क्रुद्ध होकर पितामह ब्रह्मा से कहा—यह तुम्हारा पाँचवा मुख अशुभ होने के नाते तुम्हारे कन्धे पर रहने योग्य नहीं है । तुम सर्वेश्वर हो, अतः वेदमय यह चार ही मुख तुम्हारे कन्धे पर रहने योग्य हैं । इतना कहकर वह माता अन्तर्हित हो गयी, जिससे ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये । उनके उस

भैरवो नाम विख्यातः कालात्मा सप्तवाहनः। स्वनखैश्च नृसिंहाभैः क्षिप्त्वा तत्पञ्चमं शिरः ॥७
जगर्ज बलवान्रुद्रः शङ्करो लोकशङ्करः। भयभीतस्तदा ब्रह्मा भैरवं शरणं ययौ ॥८
नाथ नः पापभूतानां धियो योऽसौ प्रचोदयात्। इति श्रुत्वा स भगवान्भैरवो लोकविश्रुतः ॥९
ब्रह्मभूतमहं स्वामिन्वरेण्यं त्वामुपागतः। सवितुस्तद्वरेण्यं यद्भर्गो देवस्य धीमहि ॥१०
गाढमुच्चै रुरोदाशु आत्पेतुश्चाश्रुबिन्दवः। ततो वृक्षास्समुद्भूता रुद्राक्षाणां पृथक्पृथक् ॥११
शिवो ब्रह्मवधाद्भीतस्तत्कपालं गृहीतवान्। कपाली नाम विख्यातं भैरवस्य तदा ह्यभूत् ॥१२
सर्वलोकेषु पूतानि यानि चायतनानि च। तानि तान्येव गत्वाशु शुद्धो नाभूच्छिवशङ्करः ॥१३
एकदा तेषु वृक्षेषु संस्थितो भगवान्हरः। तदा ब्रह्मवधे दोषं त्यक्त्वा दूरमुपागतः ॥१४
ततः प्रभृति वै शम्भुर्धृत्वा रुद्राक्षमुत्तमम्। पुरीं काशीं समायातः कपालस्तेन मोचितः ॥१५
कपालमोचनं नाम तीर्थं जातमघापहम्। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवसमन्वितः ॥१६
समागत्य महादेवं तुष्टाव स्तुतिजैस्तवैः। मकरस्थे दिनानाथे शशिनश्चेश्वरं शुभम् ॥
कपालिनं महारुद्रं चकार भगवान्विधिः ॥१७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं कपाली भैरवः शिवः। स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य काश्यां जातो ह्ययोनिजः ॥१८

क्रोधाग्नि द्वारा पृथिवी के समस्त जल सूख गये, पश्चात् क्रोध के शान्त होने पर भयंकर रुद्र का आविर्भाव हुआ, जो भैरव, कालात्मा एवं सप्तवाहन के नाम से प्रख्यात हैं। उन्होंने अपने नृसिंह के समान नखों द्वारा उनके उस पाँचवें मुख का छेदन कर दिया। पश्चात् लोककल्याणकर्ता भगवान् शंकर ने उस रुद्र देष में भीषण गर्जना की जिससे भयभीत होकर ब्रह्मा भैरव की शरण में गये। उन्होंने कहा—नाथ! मुझ पापात्मा की मद्‌बुद्धि की यह प्रेरणा करें। इसे सुनकर लोकप्रख्यात भगवान् भैरव ने कहा—स्वामिन्! ब्रह्मरूप मैं भी आप वरेण्य (तेजस्वी) के समीप उपस्थित हूँ, जो सविता देव का तेज एवं वरेण्य रूप है। पश्चात् उन्होंने अत्यन्त प्रगाढ़ रुदन किया जिससे आकाश से अश्रुबिन्दुओं का अविरल पतन हुआ। उसी से रुद्राक्ष के पृथक्-पृथक् वृक्ष उत्पन्न हुए।१-११। शिवजी ने ब्रह्म-वध से भयभीत होकर उनके कपाल को ग्रहण किया, जिससे उन भैरव की कपाली नाम से प्रख्याति हुई। उस समय शिवजी ने सभी लोकों के पवित्र स्थानों एवं मन्दिरों में यात्रा की, किन्तु उस ब्रह्महत्या से मुक्त न हो सके। एक बार भगवान् हर ने भ्रमण करते हुए उन रुद्राक्ष के वृक्षों के आश्रित रहना आरम्भ किया, वहाँ ब्रह्महत्या उन्हें मुक्तकर दूर चली गई। उसी समय से शिव ने उस परमोत्तम रुद्राक्ष को धारण किया और पश्चात् काशी आकर उस कपाल का मोचन किया, जिससे उस स्थान की अघविनाशक कपालमोचन नामक तीर्थपद से विस्तृत ख्याति हुई। उसी बीच समस्त देवों समेत ब्रह्मा ने वहाँ आकर स्तुतियों द्वारा महादेव की आराधना की। तदुपरांत ब्रह्मा ने मकर राशिस्थ सूर्य के समय उन कपाली महादेव को चन्द्रमण्डल का अधिनायक बनाया।१२-१७

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर उन कपाली भैरवशिव ने अपने मुख द्वारा अपने अंश

कपालमोचनात्कुण्डात्समागम्य महीतले । यतिरूपो वेदनिधिर्भैरवो नाम विश्रुतः ।।
अघोरं कठिनं मार्गं स्वशिष्यान्समचोदय ।।१९
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्योभूत्वा स भैरवः । डमरं नाम वै तन्त्रं मन्त्रभूतं चकार ह ।।
कीलिता ये तु वै मन्त्रास्तेन चोत्कीलितीकृताः ।।२०

बृहस्पतिरुवाच

मन्दोदरी मयसुता त्रिपुराधिपतेः स्वसा । त्रिपुरे तु तदा नष्टे महाविष्णुं सनातनम् ।।
भक्त्या तुष्टाव सा देवी प्रत्यहं गुप्तभाविनी ।।२१
भक्तिभावात्ततो योगं हरौ प्राप्य महोत्तमम् । विन्ध्याद्रिकन्धरे घोरे तत्रैवान्तरधीयत ।।२२
चतुर्युगं च द्विशतं तस्या जातं समाधितः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते द्वादशे चैव कृतयुगे ।।२३
पुलस्त्यो ब्रह्मणः पुत्रो विश्रवा रोषतोऽभवत् । शताब्दं च तपस्तप्त्वा विश्रवा नाम यो मुनिः ।।२४
सुमालिनोऽथ दैत्यस्य सुतां वै कैकसीं मुदा । समुद्वाह्य विधानेन पुलस्त्यस्स च विश्रवाः ।।२५
कदलीविपिने रम्ये गन्धमादनपर्वते । स रेमे च तया सार्द्धं विश्रवा भगवानृषिः ।।२६
रावणः कुम्भकर्णश्च तयोर्जातो हि राक्षसौ । रावणो मातृभक्तश्च पितृभक्तस्ततोऽनुजः ।।२७
सहस्राब्दं तपो घोरं चक्रतुस्तौ वरार्थिनौ । तदा प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी पितामहः ।।२८
ददौ ताभ्यां वरं रम्यमजेयं देवदानवैः । तौ तु लब्धवरौ क्रुद्धौ पुष्पकं यानमुत्तमम् ।।
गृहीत्वा च बलाद्वीरौ युयुधाते परस्परम् ।।२९

को निकालकर काशी में अयोनिज जन्म ग्रहण किया, जो कपालमोचन नामक कुण्ड से भूतल पर आकर 'वेदनिधि' संन्यासी के नाम से विश्व-विख्यात हुए। उन्होंने अपने शिष्यों को उस कठिन अघोरमंत्र के उपदेश देने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार की। उन्होंने एक यंत्र-मंत्रात्मक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें कीलित मंत्रों का उत्कीलन-विधान बताया गया है।१८-२०

बृहस्पति ने कहा—मयदानव की पुत्री मन्दोदरी ने, जो त्रिपुराधीश्वर की भगिनी थी, त्रिपुर के नष्ट हो जाने के उपरान्त सनातन विष्णु भगवान् की भक्तिपर्वूक, अनवरत आराधना की। इस प्रकार उसके गुप्तभाव से प्रतिदिन सप्रेम आराधित होने के नाते भगवान् ने प्रसन्नतया उसे योग प्रदान किया, जिससे वह विंध्यपर्वत के उस घोर शिखर पर उनमें तन्मय होकर समाधि द्वारा अदृश्य हो गई। पश्चात् चारों युगों के दो सौ बार व्यतीत होने पर वैवस्वत मन्वन्तर के बारहवें कृतयुग के समय ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य ऋषि के क्रोध द्वारा विश्रवा की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर सौ वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त पुलस्त्य पुत्र विश्रवा ने सुमाली दैत्य की कैकसी नामक कन्या के साथ पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न कर गन्धमादन पर्वत के उस कदली वन के रमणीक स्थान में उसके साथ रमण किया। उससे राक्षस रावण और कुम्भकर्ण की उत्पत्ति हुई। रावण मातृभक्त और कुम्भकर्ण अपने पिता का परमभक्त था। उन दोनों ने वरदान प्राप्ति के निमित्त एक सहस्र वर्ष तक घोर तप किया, उससे प्रसन्न होकर भगवान् पितामह ब्रह्मा ने वहाँ जाकर उन्हें देव-दानवों द्वारा अजेय होने का वरदान प्रदान किया। पश्चात् उन दोनों ने बलप्रयोग द्वारा पुष्पक यान का अपहरण करके देवों के साथ घोर युद्ध किया। उस युद्ध में सुखप्रद

ताभ्यां विनिर्जिता देवास्त्यक्त्वा स्वर्गं सुखप्रदम् । पार्थिवैः पूजयामासुः शिवं कैलाससंस्थिताः ।।३०
एकादशाब्दमाराध्य ते देवा गिरिजापतिम् । शङ्कराच्च वरं प्राप्ता निर्भयाश्च तदाभवन् ।।३१
शिवोऽपि च स्वपूर्वार्द्धाज्जातो वै मानसोत्तरे । गिरौ यत्र स्थिता देवी गौतमस्य तनूद्भवा ।।
अञ्जना नाम विख्याता कीशकेसरिभोगिनी ।।३२
रौद्रं तेजस्तदा घोरं मुखे केसरिणो ययौ । स्मरातुरः कपीन्द्रस्तु बुभुजे तां शुभाननाम् ।।३३
एतस्मिन्नन्तरे वायुः कपीन्द्रस्य तनौ गतः । वाञ्छितामञ्जनां शुभ्रां रमयामास वै बलात् ।।३४
द्वादशाब्दमतो जातं दम्पत्योर्मैथुनस्थयोः । तदनु भ्रूणमासाद्य वर्षमात्रं हि साऽदधत् ।।३५
पुत्रो जातस्स रागात्मा स रुद्रो वानराननः । कुरूपाच्च ततो मात्रा प्रक्षिप्तोऽभूद्गिरेरधः ।।३६
बलादागत्य बलवान्दृष्ट्वा सूर्यमुपस्थितम् । विलिख्य भगवान्रुद्रो देवस्तत्र समागतः ।।३७
वज्रसन्ताडितो वापि न तत्याज तदा रविम् । भयभीतस्तदा प्रान्शुस्सूर्यं त्राहीति जल्पितः ।।३८
श्रुत्वा तदार्तवचनं रावणो लोकरावणः । पुच्छे गृहीत्वा तं कीशं मुष्टियुद्धमचीकरत् ।।३९
तदा तु केसरिसुतो रविं त्यक्त्वा रुषान्वितः। वर्षमात्रं महाघोरं मल्लयुद्धं चकार ह ।।४०
श्रमितो रावणस्तत्र भयभीतस्समन्ततः । पलायनपरो भूतः कीशरुद्रेण ताडितः ।।४१
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्रवा भगवानृषिः । स्तोत्रैर्वेदमयैर्देवं तुष्टाव परया गिरा ।।४२

स्वर्ग के त्यागपूर्वक पराजित होकर देवों ने कैलासपर्वत पर रहकर गिरिजापति भगवान् शंकर की पार्थिवार्चन द्वारा ग्यारह वर्ष तक आराधना की। अनन्तर शंकर द्वारा वरदान प्राप्तकर निर्भीकता प्राप्त की और उधर भगवान् शिव भी अपने पूर्वार्ध भाग द्वारा मानसरोवर के उत्तरीय पर्वत पर स्थित गौतम ऋषि की पुत्री के गर्भ द्वारा अवतरित हुए जो अंजना के नाम से विख्यात एवं केसरी वानरेन्द्र की सहधर्मिणी थी, उस रौद्र तेज के उनके मुख द्वारा प्रविष्ट होने के नाते काम विह्वल होकर वानरेन्द्र केसरी ने उस कल्याणमुखी के साथ सम्भोग किया।२१-३३। उसी समय केसरी के शरीर में प्रविष्ट होकर वायु ने भी बलात् उस अंजना के साथ रमण किया। इस प्रकार रमण करते हुए उस दम्पती के बारह वर्ष व्यतीत हो गये पश्चात् उस सुन्दरी के एक वर्ष तक गर्भ धारण करने के उपरान्त भगवान् रुद्र ने वानर रूप से रक्तवर्ण के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, किन्तु कुरूप होने के नाते माता द्वारा पर्वत के नीचे भाग में डाल देने पर भी उस बलवान् पुत्र ने बलात् पर्वत के ऊपर आकर वहाँ उपस्थित सूर्य को पकड़ लिया। भगवान् रुद्रदेव के द्वारा सूर्य के पीड़ित होने पर देवेन्द्र ने वहाँ आकर उन पर अपने वज्र का प्रहार किया, किन्तु उस पर भी उन्होंने सूर्य का त्याग नहीं किया। अनन्तर भयभीत होकर देवों ने 'सूर्यं त्राहि' (सूर्य की रक्षा करो) की ध्वनि उच्च स्वर से की। उसे सुनकर लोक दुःखदायी रावण ने उस वानर की पूँछ पकड़कर मुष्टि युद्ध करना आरम्भ किया। उस समय केसरी पुत्र ने क्रुद्ध होकर सूर्य के त्यागपूर्वक उस राक्षस से एक वर्ष तक महाघोर मल्लयुद्ध किया। पश्चात् उस वानर रूपधारी रुद्र से पीड़ित होने पर श्रान्त एवं भयभीत रावण ने चारों ओर भागना आरम्भ किया। उसी समय भगवान् विश्रवा ऋषि ने वहाँ आकर वैदिक स्तोत्रों द्वारा उनकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् रुद्र ने

प्रसन्नस्तु तदा रुद्रो रावणं लोकरावणम् । त्यक्त्वा पम्पासरस्तीरे निवासं कृतवान्बली ॥
स्थाणुभूतः स्थितस्तत्र स्थाणुर्नाम ततोऽभवत् ॥४३
निघ्नन्तं च सुरान्मुख्यान्रावणं लोकरावणम् ॥४४
निहन्ति मुष्टिभिर्यो न हनुमानिति विश्रुतः ॥४५
तपसा तस्य कीशस्य प्रसन्नो भगवान्विधिः ।नम्रधीर्वचनं प्राह शृणु रुद्र तपोनिधे ॥४६
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाष्टाविंशत्तमे युगे । त्रेतायाः पूर्वचरणे रामस्साक्षाद्भविष्यति ॥
तस्य भक्ति च सम्प्राप्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥४७
इति चोक्त्वा ददौ तस्मै चन्द्रं भाद्रप्रकाशकम् । रावणाय प्रियां रम्यां ददौ मन्दोदरीं विधिः ॥४८
नैर्ऋतस्यैव दिक्पालस्स बभूव च रावणः । अल्पायुर्मरणं प्राप्तो रामेण हरिरूपिणा ॥४९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स हनुमानयोनिः कदलीवने । देहभूतो महीं प्राप्तो बालशर्मेति विश्रुतः ॥५०
पुरीं काशीं समायातो यत्र वै मणिकर्णिका । रामपक्षे बालशर्मा शिवपक्षे तु शङ्करः ॥५१
मासमात्रं च शास्त्रार्थस्तयोश्चासीन्महोत्तमः। शङ्कराचार्ययतिना बालशर्मा पराजितः ॥५२
शिष्यो भूत्वा च तत्रैव गुरुसेवापरोऽभवत् । यश्चकार तन्त्रमन्त्रं सर्व जातिकथामयम् ॥५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये अघोरपथभैरवहनुमज्जन्मरुद्रमाहात्म्यबालशर्मसमुत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः । १३

उस लोकापकारी रावण के त्यागपूर्वक पम्पा सरोवर के निकट अपना निवास स्थान बनाया वहाँ स्थाणु की भाँति स्थित रहने के नाते उनकी 'स्थाणु' के नाम से प्रख्याति हुई । मुख्य देवों और लोक विद्वेषी रावण को मुष्टि द्वारा प्रताड़ित करने पर भी उन लोगों की मुष्टियों द्वारा हनन न होने के कारण उस वानर रूपधारी रुद्र की 'हनुमान' नाम से ख्याति हुई । पश्चात् उनके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वहाँ आकर नम्रतापूर्वक कहा—तपोनिधे रुद्र ! मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । वैवस्वत मन्वतर के समय अट्ठाइसवें त्रेतायुग के प्रथम चरण में साक्षात् भगवान् राम अवतार धारण करेंगे, उस समय उनकी भक्ति की प्राप्तिपूर्वक आप कृतकृत्य होंगे । इतना कहकर उन्हें भाद्रमासकालीन चन्द्र का अधिनायक बनाया और रावण को उस अनुपम रमणी मन्दोदरी को प्रदान किया । वह रावण नैर्ऋत्य दिशा का अधीश्वर होते हुए भी भगवान् राम द्वारा हनन होने के नाते अल्पायु ही हुआ । ३४-४९

सूत जी बोले—इसे सुनकर अयोनिज हनुमान ने देहधारणकर इस भूतल में 'बालशर्मा' के नाम से विख्याति प्राप्त की । पश्चात् काशी में मणिकर्णिका नामक घाट स्थान पर रामपक्ष की ओर से बालशर्मा और शिवपक्ष की ओर से शंकराचार्य का एक मास तक शास्त्रार्थ हुआ, अनन्तर शंकराचार्य द्वारा पराजित होने पर बालशर्मा ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की और उसी गुरुसेवा के साथ सर्वजाति की कथा एक तंत्र-मंत्र के ग्रन्थ का निर्माण भी किया ।५०-५३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में अघोरपंथिभैरव हनुमज्जन्म, रुद्रमाहात्म्य और बालशर्मा की उत्पत्ति वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

रुद्रमाहात्म्यवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

इदं दृश्यं यदा नासीत्सदसदात्मकं च यत् । तदाक्षरमयं तेजो व्याप्तरूपमचिन्त्यकम् ॥१
न च स्थूलं न च सूक्ष्मं शीतं नोष्णं च तत्परम् । आदिमध्यान्तरहितं मनागाकारवर्जितम् ॥२
योगिदृश्यं परं नित्यं शून्यभूतं परात्परम् । एका वै प्रकृतिर्माया रेखा या तदधः स्मृता ॥३
महत्तत्वमयी ज्ञेया तदधश्चोर्ध्वरेखिकाः । रजस्सत्वतमोभूता ओमित्येदमुलक्षणम् ॥४
तत्सद्ब्रह्म परं ज्ञेयं यत्र प्राप्य पुनर्भवः । कियता चैव कालेन तस्येच्छा समपद्यत ॥५
अहङ्कारस्ततो जातस्ततस्तन्मात्रिकाः पराः । पञ्चभूतान्यतोऽप्यासञ्ज्ञानविज्ञानकान्यतः ॥६
द्वाविंशज्जडभूतांश्च दृष्ट्वा स्वेच्छामयो विभुः । द्वन्द्वभूतश्च सगुणो बुद्धिर्जीवस्समागतः ॥७
पूर्वार्द्धात्सगुणः सोसौ निर्गुणश्च परार्द्धतः । ताभ्यां गृहीतं तत्सर्वं चैतन्यमभवत्ततः ॥८
सविराडितिसंज्ञो वै जीवो जातस्सनातनः । विराडो नाभितो जातं पद्मं तच्छतयोजनम् ॥९
पद्माच्च कुसुमं जातं योजनायाममुत्तमम् । तत्पद्मकुसुमाज्जातो विरञ्चिः कमलासनः ॥१०
द्विभुजस्स चतुर्वक्त्रो द्विपादो भगवान्विधिः । ज्ञेयः सप्तवितत्यङ्गो महाचिन्तामवाप्तवान् ॥११

अध्याय १४

रुद्रमाहात्म्य का वर्णन

बृहस्पति बोले—जिस समय यह सदसदात्मक दृश्य (स्थूल प्रपञ्च-जगत्) महाप्रलय में विलीन हो जाने के कारण दिखाई नहीं देता है, उस समय केवल अक्षर (अविनाशी) तेज वर्तमान रहता है, जो व्याप्त एवं अचिन्त्य (मन, वाणी द्वारा अगोचर) है। वह तेज, स्थूल, सूक्ष्म, शीत (ठंडा) और उष्ण (गरम) नहीं है तथा आदि, मध्य एवं अन्तरहित होते हुए उसका कोई आकार भी नहीं है। उस पर, नित्य, शून्यभूत एवं परात्पर तेज के नीचे जिसका दर्शन केवल योगियों को होता है, एक वही प्रकृति माया रेखा की रहती है। पुनः उसके नीचे उर्ध्वरेखा की भाँति महत्तत्वमयी रज, सत्व और तम की स्थित रहती है। इन सबका आधार भूत 'ओंकार' ही तत्सत् रूप परब्रह्म है, जिसकी प्राप्ति हो जाने पर पुनः जन्म नहीं होता है। इस प्रकार उस महाप्रलय के अगाध पयोधि में विहार करते हुए बहुत दिनों के उपरांत उस पर ब्रह्म की पुनः इच्छा उत्पन्न होती है, जिससे उसके साथ ही अहंकार तथा अहंकार से पंचतन्मात्र और उससे ज्ञान-विज्ञान रूप पंचभूत (आकाशादि) की उत्पत्ति हुई। उस बाईस तत्त्वों से युक्त जडभूत प्रकृति कार्य (ब्रह्माण्ड) को देखकर स्वेच्छामय विभु ने दो भागों में विभक्त होकर सगुण के द्वारा बुद्धि और जीव का निर्माण किया। इन्हीं दोनों द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चेतना प्राप्त होती है जिससे उस सनातन जीव की 'विराड्' संज्ञा होती है। उसी विराड् के नाभि द्वारा सौ योजन का विस्तृत कमल एवं उस कमल से एक योजन का विस्तृत पुष्प उत्पन्न होता है।१-९। और उसी कमलपुष्प द्वारा कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है, जो दो भुजाएँ, चारमुख और दो चरणों से सुसज्जित रहते हैं सत्ताईस अंगों से विभूषित भगवान् ब्रह्मा को अपने जन्म ग्रहण करने के उपरान्त घोर चिंता उत्पन्न होती है कि—मैं कौन हूँ, किसके द्वारा

कोऽहं कस्मात्कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इत्यधिचिन्तय तं हृदि देवं शब्दमहत्त्वमयेन स आह ॥ १२

तपश्चैव तु कर्तव्यं संशयस्यापनुत्तये । तदाकर्ण्य विधिस्साक्षात्तपस्तेपे महत्तरम् ॥ १३
सहस्राब्दं प्रयत्नेन ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् । चतुर्भुजं योगगम्यं निर्गुणं गुणविस्तरम् ॥ १४
समाधिनिष्ठो भगवान्बभूव कमलासनः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्बालो भूत्वा चतुर्भुजः ॥ १५
श्यामाङ्गो बलदानस्त्री दिव्यभूषणभूषितः । ब्रह्मणोऽङ्के हरिस्तस्थौ यथा बालः पितुः स्वयम् ॥ १६
तदा प्रबुद्धश्च विधिस्तं दृष्ट्वा मोहमागतः । वत्सवत्सेति वचनं विधिः प्राह प्रसन्नधीः ॥ १७
विहस्याह तदा विष्णुरहं ब्रह्मन्पिता तव । तयोर्विवदतोरेवं रुद्रो जातस्तमोमयः ॥ १८
ज्योतिर्लिङ्गश्च भयदो योजनानन्तविस्तरः । हंसरूपं तदा ब्रह्मा वराहो भगवान्प्रभु ॥ १९
शताब्दं तौ प्रयत्नेन जातौ चोर्ध्वमधः क्रमात् । लज्जितौ पुनरागत्य तदा तुष्टुवतुर्मुदा ॥ २०
ताभ्यां स्तुतो हरः साक्षाद्भवो नाम्ना समागतः । कैलासनिलयं कृत्वा समाधिस्थो बभूव ह ॥ २१
जातं पञ्चयुगं तत्र दिव्यं रुद्रस्य योगिनः । एतस्मिन्नन्तरे घोरो दानवस्तारकासुरः ॥ २२
सहस्राब्दं तपः कृत्वा ब्रह्मणो वरमाप्तवान् । भववीर्योद्भवः पुत्रः स ते मृत्युं करिष्यति ॥ २३
इति मत्वा सुराञ्जित्वा महेन्द्रश्च तदाभवत् । ते सुराश्चैव कैलासं गत्वा रुद्रं प्रतुष्टुवुः ॥ २४
वरं ब्रूहीति वचनं सुरान्प्राह तदा शिवः । ते तु श्रुत्वा प्रणम्योचुर्वचनं नम्रकन्धराः ॥ २५

कहाँ से उत्पन्न हुआ, और मेरी माता एवं पिता कौन हैं? इस प्रकार की चिंता करते हुए उनके हृदय में एक महान्-ध्वनि द्वारा परब्रह्म ने कहा—अपने संशय के नाशार्थ तुम्हें तप करना परमावश्यक है ! इसे सुनकर विधि ने एक सहस्र वर्ष तक भगवान् सनातन विष्णु की घोर आराधना की, जो चार भुजाओ से युक्त योगगम्य, निर्गुण एवं विस्तृत गुणरूप हैं। भगवान् कमलासन (ब्रह्मा) के समाधिस्थ होने पर विष्णु बालक का रूप धारणकर, जो श्यामल वर्ण, बलवान् एवं अस्त्रादिसमेत भूषणों से भूषित था, पिता की गोद में बच्चे की भाँति ब्रह्मा उस बालक के अंङ्क में स्थित हो गये ।१०-१६। उस समय प्रबुद्ध होने पर ब्रह्मा ने उस बालक को देखकर मोह-मुग्ध होते हुए 'वत्स, वत्स' कहना आरम्भ किया । उसे सुनकर प्रसन्नतापूर्ण भगवान् ने हँसकर उनसे कहा—ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारा पिता विष्णु हूँ। किन्तु ब्रह्मा इसे स्वीकार नहीं कर रहे थे । उन दोनों के इस प्रकार विवाद करने के समय ही तमोमय रुद्र का आविर्भाव हुआ, जो ज्योतिर्लिंग रूप, भयदायक एवं अनन्त योजन विस्तृत थे । उस समय ब्रह्मा ने हंसरूप और भगवान् विष्णु ने वाराह रूप धारणकर ऊपर-नीचे क्रम से सौ वर्ष तक उसकी सीमा का पता लगाने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसका पता न लगने पर लज्जित होते हुए दोनों ने उसकी आराधना की । उन दोनों की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव ने भवनाम से वहाँ साक्षात् प्रकट होकर पश्चात् कैलास को अपना आवास स्थान बनाकर समाधि लगाया । वहाँ रुद्रयोगी के समाधिस्थ होने पर दिव्य पाँच युगों के बीत जाने के उपरान्त दानव श्रेष्ठ तारकासुर ने एक सहस्र वर्ष तक घोर तप करके ब्रह्मा द्वारा वरदान प्राप्त किया । उस समय ब्रह्मा ने उससे यह भी कहा था कि—(शिव) के वीर्य द्वारा उत्पन्न पुत्र से तुम्हारी मृत्यु होगी । इसे सुनकर उसने देवों पर विजय प्राप्ति पूर्वक देवेन्द्र का पद अपना लिया । अनन्तर उन देवों ने कैलास जाकर भगवान् रुद्र की आराधना थी। प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें वर याचना के लिए कहा। इसे सुनकर विनीत भाव से प्रणाम पूर्वक

भगवन्ब्रह्मणा दत्तो वरो वै तारकाय च । शिववीर्योद्भवः पुत्र स ते मृत्युर्भविष्यति ॥
अतोऽस्मान्रक्ष भगवन्विवाहं कुरु शङ्कर ॥२६
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं दक्षश्चासीत्प्रजापतिः । षष्टिकन्यास्ततो जातास्तासां मध्ये सती वरा ॥२७
वर्षमात्रं भवन्तं सा पार्थिवैः समपूजयत् । तस्यै त्वया वरो दत्तः सा बभूव तव प्रिया ॥२८
तत्पित्रा या कृता निन्दा भवतोऽज्ञानचक्षुषा । तस्य दोषात्सती देवी तत्याज स्वं कलेवरम् ॥२९
सतीतेजस्तदा दिव्यं हिमाद्रौ घोरमागमत् । पीडितस्तेन गिरिराड् बभूव स्मरविह्वलः ॥३०
पित्रीश्वरं स तुष्टाव कामव्याकुलचेतनः । अर्यमा तु तदा तुष्टो ददौ तस्मै सुता निजाम् ॥
मेनां मनोहरां शुद्धां स दृष्ट्वा हर्षितोऽभवत् ॥३१
नररूपं शुभं कृत्वा देवतुल्यं च तत्प्रियम् । स रेमे च तया सार्द्धं चिरं कालं महावने ॥३२
गर्भो जातस्तदा रम्यो नववर्षान्तमुत्तमः । कन्या जाता तदा सुभ्रूर्गौरी गौरमयी सती ॥३३
जातमात्रा च सा कन्या बभूव नवहायिनी । तुष्टाव शङ्करं देवं भवन्तं तपसा चिरम् ॥३४
शताब्दं च जले मग्नाशताब्दवह्निसंस्थिता । शताब्दे च स्थिता वायौ शताब्दं नभसि स्थिता ॥३५
शताब्दं च स्थिता चन्द्रे शताब्दं रविमण्डले । शताब्दं गर्भभूम्यां च स्थिता सा गिरिजा सती ॥३६
शताब्दं च महत्तत्वे गत्वा योगबलेन सा । भवन्तं शङ्करं शुद्धं तत्र दृष्ट्वा स्थिताद्य वै ॥३७
त्रिशताब्दमतो जातं तस्मात्त्वं पार्वतीं शिवाम्[1] । वरं देहि प्रसन्नात्मा महादेव नमोऽस्तु ते ॥३८

देवों ने उनसे कहा—भगवन् ! ब्रह्मा ने तारकासुर को वरदान दिया है कि—शिव के वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी ।अतः भगवान् ! शंकर ! हम लोगों के रक्षार्थ आप विवाह अवश्य करें । पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर के समय में दक्ष नामक प्रजापति हुए थे । उनकी साठ कन्याओं में सती कन्या सर्वश्रेष्ठ थी जिसने पार्थिव पूजन द्वारा एक वर्ष तक आपकी आराधना की । उससे प्रसन्न होकर, आपने वरदान प्रदान पूर्वक उसे अपनी सहधर्मिणी बनाया था किन्तु अज्ञानी उनके पिता दक्ष ने आपकी निंदा की जिस दोष के कारण सती ने अपनी शरीर का परित्याग कर दिया । पश्चात् सती का वह दिव्य तेज हिमालय पर्वत पर गया, उससे पीड़ित होकर गिरिराज कामचेष्टा करने लगे । काम से अत्यन्त पीड़ित होने पर उन्होंने पितरों के अधीश्वर अर्यमा की आराधना की । प्रसन्न होकर अर्यमा ने उन्हें मैना नामक अपनी सुन्दरी कन्या प्रदान किया, जो मनोहर एवं अत्यन्त विशुद्ध थी । उसे देखकर इन्होंने हर्षित होकर देवतुल्य एवं प्रिय मनुष्य का रूप धारण कर उसके साथ उस महावन में चिरकाल तक रमण किया ।१७-३३। तदुपरांत उनके गर्भ द्वारा नववर्ष की एक परमाद्भुत कन्या की उत्पत्ति हुई । जो सुभ्रू, गौरमयी एवं सती गौरी थी । उत्पन्न होते ही वह नववर्ष की हो गई और भगवान् शंकर देव की तप द्वारा चिरकाल तक उसने आराधना की—सौ वर्ष जल में, सौ वर्ष अग्नि से आवेष्टित (पंचाग्नि), सौ वर्ष तक वायु द्वारा और सौ वर्ष तक आकाश में स्थित, सौ वर्ष चन्द्र मण्डल, सौ वर्ष सूर्य मण्डल, सौ वर्ष भूगर्भ (गुफा), और सौ वर्ष तक योगबल द्वारा महत्तत्त्व में स्थित रहकर— आप का शुद्ध दर्शन किया। इसीलिए आज तीन सौ वर्ष हो रहे हैं वह उसी स्थान स्थित है। अतः महादेव ! आप प्रसन्न होकर उस पार्वती शिवा को वर प्रदान करें। महादेव आपको नमस्कार कर रहा हूँ। इस

---

१. सम्प्रदाने द्वितीयार्षी ।

इति श्रुत्वा वचो रम्यं शङ्करो लोकशङ्करः । देवानाह तदा वाक्यमयोग्यं वचनं हि वः ॥३९
मत्तो ज्येष्ठाश्च ये रुद्राः कुमारव्रतधारिणः । मृगव्याधादयो मुख्या दशज्योतिस्समुद्भवाः ॥४०
अहं तेषामवरजो भवो नामैव योगराट् । मायारूपां शुभां नारीं कथं गृह्णामि लोकदाम् ॥४१
नारी भगवती साक्षात्तया सर्वमिदं ततम् । मातृरूपा तु सा ज्ञेया योगिनां लोकवासिनाम् ॥४२
अहं योगी कथं नारीं मातरं वारितुं क्षमः । तस्मादहं भवदर्थे स्ववीर्यमाददाम्यहम् ॥४३
तद्वीर्यं भगवान्वह्निः प्राप्य कार्यं करिष्यति । इत्युक्त्वा वह्नये देवो ददौ वीर्यमनुत्तमम् ॥
स्वयं तत्र समाधिस्थो बभूव भगवान्हरः ॥४४
तदा शक्रादयो देवा वह्निना सह निर्ययुः । सत्यलोकं समागत्याब्रुवन्सर्वं प्रजापतिम् ॥४५
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं स्वयम्भूश्चतुराननः । नमस्कृत्य परं ब्रह्म कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥४६
ध्यानमार्गेण भगवान्गत्वा ब्रह्मा परं पदम् । हेतुं तद्वर्णयामास यथा शङ्करभाषितम् ॥४७
श्रुत्वा विहस्य भगवान्स्वमुखात्तेज उत्तमम् । समुत्पाद्य ततो जातः पुरुषो रुचिराननः ॥४८
ब्रह्माण्डस्य च्छविर्यां वै स्थिता तस्य कलेवरे । प्रद्युम्नो नाम विख्यातं तस्य जातं महात्मनः ॥४९
तेन सार्द्धं तदा ब्रह्मा सम्प्राप्य स्वं कलेवरम् । ददौ तेभ्यस्स पुरुषं प्रद्युम्नं शम्बरार्तिदम् ॥५०
तेजसा तस्य देवस्य नरा नार्यस्समन्ततः । एकीभूतास्त्रिलोकेषु बभूवुः स्मरपीडिताः ॥५१
स्थावराः सौम्यभूता वै ते तु कामाग्निपीडिताः । सरिद्भिश्च लताभिश्च मिलितास्सम्बभूविरे ॥५२

सुन्दर वाणी को सुनकर लोकशंकर शिवजी ने देवों से कहा—'ब्रह्मा का कहना उचित नहीं है।' क्योंकि मुझसे ज्येष्ठ रूद्रगण, जो कुमारावस्था में ही व्रत धारण किये हैं, ज्योति से उत्पन्न होकर मृग।व्याघ आदि के रूप में रह रहे हैं। मैं उनसे कनिष्ठ (छोटा) योगीश्वर भव के नाम से ख्यात हूँ। माया रूप शुभ स्त्री का ग्रहण करना, जो लोक सर्जन कर्त्री है, मेरे लिए अनुचित है। क्योंकि साक्षात् भगवती नारी हैं, जिसने इस ब्रह्माण्ड का विस्तार किया है। अतः लोक निवासी योगियों की वह मातृरूप है। मैं योगी होकर उस मातृरूप नारी का ग्रहण कैसे कर सकता हूँ। इसलिए आप लोगों के कार्य के लिए मैं स्वयं अपने वीर्य को निकालकर अग्निदेव को दे दूँगा, उसके द्वारा वे आपका कार्य करेंगे। इतना कहकर शिवजी ने अपना वीर्य अग्नि को देकर पुनः उसी स्थान पर समाधि लगाया। पश्चात् इन्द्रादि देवों ने अग्निसमेत वहां से निकलकर सत्यलोक की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने प्रजापति ब्रह्मा से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया। उसे सुनकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने परब्रह्म कृष्ण का नमस्कार पूर्वक ध्यान किया। ब्रह्मा ने ध्यान मार्ग से परमपद पर पहुँचकर शंकरजी की कही हुई सम्पूर्ण बातें भगवान् को सुनाया, जिसे सुनकर हँसते हुए भगवान् ने अपने मुख द्वारा उत्तम तेज बाहर निकाला, जो अत्यन्त सुन्दर पुरुष हुआ और ब्रह्माण्ड की सभी छवि उसकी शरीर में झलक रही थी। उस पुरुष का 'प्रद्युम्न' विश्वविख्यात नाम हुआ, जिसके साथ ब्रह्मा ने अपने कलेवर में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने उस शम्बरासुर को पीड़ित करने वाले प्रद्युम्न नामक पुरुष को सभी लोगों को सौंप दिया।३४-५०। जिसके तेज से कामपीड़ित होकर तीनों लोक के स्त्री-पुरुष गण एक होकर अत्यन्त कामातुर होने लगे। यहाँ तक कि सौम्य वृक्षगणों ने भी नदियों, एवं लताओं से मिलकर कामाग्नि की शांति की इच्छा प्रकट की। उस समय ब्रह्माण्ड नायक कालरूप शिव ने,

ब्रह्माण्डेशः शिवः साक्षाद्रुद्रः कालाग्निसन्निभः । [1]त्रिनेत्रात्तेज उत्पाद्य शमयामास तद्व्यथाम् ।।५३
तदा क्रुद्धः स कृष्णाङ्गो गृहीत्वा कौसुमं धनुः । दिव्यान्पञ्च शरान्घोरान्महादेवाय बन्धवे ।।५४
उच्चाटनेन बाणेन गन्ताभूल्लोकशङ्करः । वशीकरणबाणेन नारीवश्यः शिवोऽभवत् ।।५५
स्तम्भनेन महादेवः शिवापार्श्वे स्थिरोऽभवत् । आकर्षणेन भगवाञ्छिवाकर्षणतत्परः ।।
मारणेनैव बाणेन मूर्छितोऽभून्महेश्वरः ।।५६
एतस्मिन्नन्तरे देवी महत्तत्वे स्थिता शिवा । मूर्छितं शिवमालोक्य तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ।।५७
तदोत्थाय महादेवो विललाप भृशं मुहुः । हा प्रिये चन्द्रवदने हा शिवे च घटस्तनि ।।५८
हा उमे सुन्दराभे च पाहि मां स्मरविह्वलम् । दर्शनं देहि रम्भोरु दासभूतोऽस्मि साम्प्रतम् ।।५९
एवं विलपमानं तं गिरिजा योगिनी स्वयम् । समागत्य वचः प्राह नत्वा तं शङ्करः प्रियम् ।।६०
कन्याहं भगवन्देव मातृपित्रानुसारिणी । तयोस्सकाशाद्भगवन्मम पाणिं गृहाण भोः ।।६१
तथेति मत्वा स शिवः प्रद्युम्नशरपीडितः । सप्तर्षीन्प्रेषयामास ते तु गत्वा हिमाचलम् ।।
सम्बोध्य च विवाहस्य विधिं चक्रुर्मुदान्विताः ।।६२
ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवास्तेषां स्वामी महेश्वरः । विवाहे तस्य सम्प्राप्ते सर्वे देवास्समाययुः ।।६३
अनन्तांश्च गणांश्चैव सुरान्दृष्ट्वा हिमाचलः । गिरिजां शरणं प्राप्य तस्थौ पर्वतराट् स्वयम् ।।६४

जो साक्षात् रुद्रदेव हैं, अपने त्रिनेत्र से तेज प्रकटकर उस पीड़ा की शान्ति किया । उस समय कृष्णांग प्रद्युम्न ने क्रुद्ध होकर महादेवजी के लिए अपने कुसुम धनुषपर उन घोर दिव्य पाँचो वाणों का अनुसन्धान किया, जिससे उच्चाटन वाण द्वारा लोक रक्षक शिव ने गमन किया, वशीकरण वाण द्वारा स्त्री के अधीन, स्तम्भन वाण द्वारा पार्वती के समीप स्थित, आकर्षण वाण द्वारा शिवा के आकर्षणार्थ उद्यत होकर और मारण वाण द्वारा मूर्च्छा प्राप्त की । उसी बीच महत्तत्त्व में स्थित पार्वती ने शिव को मूर्च्छित देखकर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गईं । पश्चात् शिव ने उठकर बार-बार विलाप करना आरम्भ किया—हा प्रिये, चन्द्रवदने, हा कलशस्तनी शिवे ! हा सौन्दर्य पूर्णे ! मुझ कामपीड़ित की रक्षा करो । रम्भे ! मुझे दर्शन दो, इस समय मैं तुम्हारा सेवक हूँ । इस प्रकार विलाप करने वाले शिव के समीप पहुँचकर योगिनी गिरिजा ने नमस्कार पूर्वक कहा—देव ! माता-पिता के अनुसार चलनेवाली मैं कन्या हूँ । भगवन्! उन दोनों के अनुमोदन द्वारा मेरा पाणिग्रहण करें ।। प्रद्युम्न के शर से पीड़ित होने पर शिव ने पार्वती की बात स्वीकार पूर्वक सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजा । सप्तर्षियों ने वहाँ जाकर हिमाचल को विशेष जानकारी कराते हुए विवाह के लिए स्वीकृति प्राप्त की । सहर्ष उनके विवाह में सभी देवगणों ने यात्रा की । क्योंकि ब्रह्माण्डनायक के विवाह में उन्हें सम्मिलित होना परमावश्यक था। हिमालय विवाह के अवसर पर शिव के साथ अनन्त देवगणों को देखकर विचलित हो उठे। अन्त में पर्वतराज गिरिजा की शरण में जाकर समस्त वृतान्त

---

१. तृतीयनेत्रादित्यार्थः ।

तदा तु पार्वती देवी निधीन्सिद्धीः समन्ततः । चकार कोटिशस्तत्र बहुरूपा सनातनी ।।६५
दृष्ट्वा तद्विस्मिता देवा ब्रह्मणा सह हर्षिताः । तुष्टुवुः पार्वतीं देवीं नारीरत्नं सनातनीम् ।।६६

देवा ऊचुः

उ वितर्के च मा लक्ष्मीर्बहुरूपा विदृश्यते । उमा तस्माच्च ते नाम नमस्तस्यै नमो नमः ।।६७
कतिचिदयनान्येव ब्रह्माण्डेऽस्मिञ्छिवे तव ! कात्यायनी हि विज्ञेया नमस्तस्यै नमो नमः ।।६८
गौरवर्णाच्च वै गौरी श्यामवर्णाच्च कालिका । रक्तवर्णाद्धैमवती नमस्तस्यै नमो नमः ।।६९
भवस्य दयिता त्वं वै भवानी रुद्रसंयुता । दुर्गा त्वं योगि दुष्प्राप्या नमस्तस्यै नमोनमः ।।७०
नान्तं जग्मुर्वयं[1] ते वै चण्डिका नाम विश्रुता । अम्बा त्वं मातृभूता नो नमस्तस्यै नमोनमः ।।७१
इति श्रुत्वा स्तवं तेषां वरदा सर्वमङ्गला । देवानुवाच मुदिता दैत्यभीतिं हरामि वः ।।७२
स्तोत्रेणानेन सम्प्रीता भवामि जगतीतले ।।७३
इत्युक्त्वा शम्भुसहिता कैलासं गुह्यकालयम् । गुहायां मिथुनीभूय सहस्राब्दं मुमोद वै ।।७४
एतस्मिन्नन्तरे देवा भीरुका लोकनाशनात् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तुष्टुवुर्गिरिजापतिम् ।।७५
लज्जितौ तौ तदा तत्र पश्चात्तापं हि चक्रतुः । महान्क्रोधस्तयोश्चासीत्तेन वै दुद्रुवुः सुराः ।।७६
प्रद्युम्नो बलवाँस्तत्र सन्तस्थे गौरिवाचलः । रुद्रकोपाग्निना दग्धो बभूव बलवत्तरः ।।७७

कहा । उसे सुनकर पार्वती देवी ने, जो बहुरूपा एवं सनातनी है, चारो ओर ऋद्धियों और सिद्धियों की करोड़ों मूर्तियों को उत्पन्नकर सभी को सेवा कार्य में नियुक्त किया । ब्रह्मा समेत देवों ने उसे देख अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए नारीरत्न एवं सनातनी उस पार्वती देवी की आराधना की ।५१-६६

देवों ने कहा—आपके उमा नामक शब्द में उ का अर्थ वितर्क और मा का लक्ष्मी अर्थ है । इसीलिए आपका बहुरूप दिखाई देता है । हम लोग उमा नामक आपको बार-बार नमस्कार कर रहे हैं । शिवे ! इस ब्रह्माण्ड में आपके कतिचित् (अनेकों) स्थान हैं अतः कात्यायनी रूप आपको नमस्कार करता हूँ । गौर, श्यामल रूप के नाते काली और सद्वर्ण होने के नाते हैमवती को नमस्कार है । भव (शिव) की दयिता होने के नाते रुद्र समेत रहने वाली भवानी तथा योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य होने के नाते तुम्हें दुर्गा को नमस्कार कर रहा हूँ । आपके प्रख्यात रूप का पार हमलोग न पा सके । अतः चण्डिका और मातृरूप होने के नाते अम्बारूप आपको नमस्कार है । देवों की ऐसी स्तुति को सुनकर वरदायिनी सर्वमंगलादेवी ने देवों से कहा—मैं तुम्हारे दैत्य भय को दूर करूँगी । क्योंकि त्रिलोक से प्रसन्न होने के नाते मैं भूतल पर प्रकट हूँगी । इतना कहने के उपरांत पार्वती शिव के साथ कैलास पहुँचकर उसकी गुफा में सहस्र वर्ष तक आनन्द प्राप्त कीं । उसी बीच देवगणों ने लोक नाश होने के भय से भयभीत हो ब्रह्मा को आगे कर शिव की आराधना किया । उस समय लज्जित होकर उन दोनों ने अत्यन्त पश्चाताप करते हुए पीछे अत्यन्त क्रोध भी किया, जिससे भयभीत होकर देवों ने वहाँ से पलायन किया किन्तु बलवान् प्रद्युम्न निश्चल वृषभ की भाँति उसी स्थान पर स्थित रहने के नाते उस प्रचण्ड रुद्र

---

१. जग्मिमेत्यर्थः ।

प्रद्युम्नः स्थलरूपं च त्यक्त्वा भस्ममयं तदा । सूक्ष्मदेहमुपागम्य विश्रुतोऽभूदनङ्गकः ॥
यथा पूर्वं तथैवासीत्कायं कृत्वा स्मरो विभुः ॥७८
स्थूलरूपा रतिर्देवी शताब्दं शङ्करं परम् । ध्यानेनाराधयामास गिरिजावल्लभं व्रतैः ॥
तदा ददौ वरं देवस्तस्यै रत्यै सनातनः ॥७९
रतिदेवि शृणु त्वं वै लोकानां हृत्सु जायसे । यौवने वयसि प्राप्ते नृणां देहैः पतिं स्वकम् ॥
भजिष्यसि मदर्धेन प्रद्युम्नं कृष्णसम्भवम् ॥८०
स्वारोचिषान्तरः कालो वर्तते चाऽद्यसुप्रियः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतमे युगे ॥
द्वापरान्ते च भगवान् कृष्णः साक्षाज्जनिष्यति ॥८१
तदा तस्य सुतं देवं प्रद्युम्नं मेरुमूर्द्धनि । भजिष्यसि सुखं रम्ये विपिने नन्दने चिरम् ॥८२
अन्येषु द्वापरान्तेषु स्वर्णगर्भो हि तत्पतिः । जन्मवान्वर्तते भूमौ यथा कृष्णस्तथैव सः ॥८३
मध्याह्ने चैव सन्ध्यायां ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कल्पेकल्पे हरिस्साक्षात्करोति जनमङ्गलम् ॥८४
इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् । राजा बभूव रुद्राणी गिरिजावल्लभो भवः ॥८५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा भवः साक्षात्स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् । समुत्पाद्य तदा भूमौ गोदावर्यां बभूव ह ॥८६
आचार्यशर्मणो गेहे पुत्रो जातो भवांशकः । रामानुजस्स वै नाम्नानुजोऽभूद्रामशर्मणः ॥८७
एकदा रामशर्मा वै पतञ्जलिमते स्थितः । तीर्थात्तीर्थान्तरं प्राप्तः पुरीं काशीं शिवप्रियाम् ॥८८
शङ्कराचार्यमागम्य शतशिष्यसमन्वितः । शास्त्रार्थं कृतवान्रम्यं कृष्णपक्षो हरिप्रियः ॥८९

कोपाग्नि में दग्ध को गये। भस्ममय उस स्थूल रूप के परित्याग पूर्वक सूक्ष्म देह की प्राप्ति की, जिससे उन्हें 'अनङ्ग' कहा गया है। अंगहीन होने पर भी कामदेव पूर्व की भाँति ही शक्तिशाली है। पश्चात् रति ने भगवान् शंकर की जो गिरिजावल्लभ कहे जाते हैं। एक वर्ष तक आराधना की। उससे प्रसन्न होकर सनातन शिव ने रति को वर प्रदान किया कि—रति देवि ! मैं कह रहा हूँ, सुनो ! मनुष्यों के हृदय में तुम्हारी उपस्थिति होगी युवावस्था प्राप्त मनुष्यों के देह द्वारा अपने उस पति के उपभोग प्राप्त करोगी जो मेरी अर्चना एवं कृष्ण द्वारा उत्पन्न प्रद्युम्न नामक है। इस स्वरोचिष मन्वन्तर काल के बीत जाने के उपरांत वैवस्वतमन्वन्तर के समय जो अट्ठाईसवें द्वापर का अन्त भाग कहलायेगा, साक्षात् भगवान् का अवतार होगा। उस समय उनके पुत्र रूप में उत्पन्न प्रद्युम्न के साथ मेरुपर्वत के उस नन्दन वन में चिरकाल तक रमण सुख तुम्हें प्राप्त होगा। अन्य द्वापरान्त युगों में वह सुवर्ण गर्भित होकर भूमि में भगवान् कृष्ण की भाँति वर्तमान रहेगा। इस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म के मध्यान्ह और संध्या समय प्रत्येक कल्पों में भगवान् विष्णु साक्षात् प्रकट होकर जन मांगलिक क्रिया करते हैं। इतना कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्हित हो गये। पश्चात् रुद्र गिरिजावल्लभ भवराज पद से प्रतिष्ठित हुए। ६७-८५

सूतजी बोले—इसे सुनकर साक्षात् भव ने अपने मुख से अपने अंश को निकालकर गोदावरी नदी में डाल दिया, जो आचार्य शर्मा के गृह में पुत्र रूप से उत्पन्न होकर रामशर्मा के अनुज होने के नाते 'रामानुज' नाम से प्रख्यात हुआ। एक बार रामशर्मा ने पतञ्जलि मतावलम्बी होकर तीर्थों में भ्रमण करते हुए शिवप्रिय काशी की यात्रा की। वहाँ शंकराचार्य के पास जाकर अपने सौ शिष्यों समेत उन हरिप्रिय रामशर्मा द्वारा पराजित होने पर

शङ्कराचार्यविजितो लज्जितो निशि भीरुकः । स्वगेहं पुनरायातः शाङ्करैर्वा शरैर्हतः ।।९०
रामानुजस्तु तच्छ्रुत्वा सर्वशास्त्रविशारदः । भ्रातृशिष्यैश्च सहितः पुरीं काशीं समाययौ ।।९१
वादो वेदान्तशास्त्रे च तयोश्चासीन्महात्मनोः । शङ्करः शिवपक्षश्च कृष्णपक्षस्स वै द्विजः ।।९२
मासमात्रेण वेदान्ते दर्शितस्तेन वै हरिः । वासुदेवस्स वै नाम सच्चिदानन्दविग्रहः ।।९३
वासुदेवस्स वै ज्ञेयो वसुष्वंशेन दीव्यति । वसुदेवस्स वै ब्रह्मा तस्य सारो हि यः स्मृतः ।।९४
वासुदेवो हरिस्साक्षाच्छिवपूज्यः सनातनः । शङ्करो लज्जितस्तत्र भाष्यशास्त्रे समागतः ।।९५
पक्षमात्रं शिवैस्सूत्रैर्वर्णयामास वै शिवम् । रामानुजेन तत्रैव भाष्ये सन्दर्शितो हरिः ।।९६
गोविन्दो नाम विख्यातो वैय्याकरणदेवता । गां परां विन्दते यस्माद्गोविन्दो नाम वै हरिः ।।९७
गिरीशस्तु न गोविन्दो गिरीणामीश्वरो हि सः । गोपालस्तु न वै रुद्रो गवारूढः प्रकीर्तितः ।।९८
ज्ञेयः पशुपतिः शम्भुर्गोपतिर्नैव विश्रुतः । लज्जितः शङ्कराचार्यो मीमांसाशास्त्रमागतः ।।९९
तयोर्दशदिनं शास्त्रे विवादस्सुमहानभूत् । यस्तु वै यज्ञपुरुषो रामानुजमतप्रियः ।।१००
विच्छिन्नः शङ्करेणैव मृगभूतः पराजितः । आचारप्रभवो धर्मो यज्ञदेवेन निर्मितः ।।१०१
भ्रष्टाचारस्तदा जातो यज्ञे दक्षप्रजापतेः । इति रामानुजः श्रुत्वा वचनं प्राह नम्रधीः ।।१०२
कर्मणे जनितो यज्ञो विश्वपालनहेतवे । कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।।१०३
अक्षरोऽयं शिवः साक्षाच्छब्दब्रह्मणि संस्थितः । पुराणपुरुषो यज्ञो ज्ञेयोऽक्षरकरो भुवि ।।
अक्षरात्स तु वै श्रेष्ठः परमात्मा सनातनः ।।१०४

लज्जित एवं उन शांकर वर्णों से पीड़ित होते हुए वे अपने घर लौट आये । उनके वृत्तान्त सुनकर समस्त शास्त्र निपुण रामानुज ने अपने भाई के शिष्यों समेत काशीपुरी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर उन दोनों ने वेदान्त शास्त्र का विषय लेकर शंकराचार्य ने शिव और रामानुज ने कृष्ण पक्ष का समर्थन करना आरम्भ किया । इस प्रकार एक मास तक वेदान्त की चर्चा करते रहने पर रामानुज ने भगवान् विष्णु का दर्शन कराया, जो सच्चिदानन्द एवं वासुदेव कहे जाते हैं । इसलिए वसुदेव ब्रह्मा हुए और उनके सारभूत वासुदेव हुए । जो शिवपूज्य, सनातन एवं साक्षात् विष्णु कहे जाते हैं । पश्चात् लज्जित होकर शिव ने भाष्य में प्रवेश किया जिससे शिव सूत्रों द्वारा एक पक्ष तक शिव पक्ष की स्थापना की वसुओं में अपने अंश द्वारा प्रकाशित रहने वाले को वसुदेव कहा गया है। किन्तु रामानुज ने उस भाष्य में भी भगवान् का दर्शन कराया, जो गोविन्द के नाम से वैयाकरण देव प्रख्यात हैं । जिस नाम के सामर्थ्य से परावाणी की प्राप्ति हो सके उसे गोविन्द कहा गया है इसलिए यह भगवान् का नामान्तर ही बताया जाता है । और गिरीश गोविन्द नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे पर्वतेश्वर हैं। रुद्र वृषवाहन के नाते गोपाल भी नहीं कहे जा सकते। यद्यपि शिवजी पशुपति कहे जाते हैं किन्तु गोपति नाम से उनकी ख्याति नहीं है। इससे लज्जित होकर शंकराचार्य ने मीमांसा शास्त्र का अवलम्बन किया। उस शास्त्र में भी दोनों का दस दिन तक महान् विवाद हुआ। उसमें रामानुज ने यज्ञ पुरुष का समर्थन किया ।८६-१००। किन्तु शंकराचार्य ने उसका इस प्रकार खण्डन किया कि यद्यपि आचार से उत्पन्न धर्म की व्यवस्था यज्ञ देव ने ही की है, तथापि दक्ष प्रजापति के यज्ञ में वह आचार भ्रष्ट हो गया था, इसे सुनकर रामानुज ने विनम्र होकर कहा—'विश्वपालन रूप कर्म के सुसम्पन्न करने के लिए यज्ञ की उत्पत्ति की गई और वह कर्म अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न है, और वही अक्षर शिव रूप है जो साक्षात् शब्द ब्रह्म में अवस्थित है। उसी अक्षर कर्ता को पुराण पुरुष, यज्ञ कहा जाता है। अतः उस अक्षर से सनातन परमात्मा

अक्षरेण न वै तृप्तातृप्तोऽभूद्यज्ञकर्मणि । नाम्ना स यज्ञपुरुषो वेदे लोके हि विश्रुतः ।।१०५
प्रपौत्रस्य तदा वृद्धिं दृष्ट्वा स्पर्द्धातुरः शिवः । मृगभूतश्च रुद्रोऽसौ दिव्यबाणैरतर्पयत् ।।१०६
समर्थो यज्ञपुरुषो ज्ञात्वा गुरुमयं शिवम् । पलायनपरो भूतो धर्मस्तेन महान्कृतः ।।१०७
लज्जितः शङ्कराचार्यो न्यायशास्त्रे समागतः । भवतीति भवो ज्ञेयो मृडतीति स वै मृडः ।।१०८
लोकान्भरति यो देवः स कर्ता भर्ग एव हि । हरतीति हरो ज्ञेयः स रुद्रः पापरावणः ।।१०९
स्वयं कर्ता स्वयं भर्त्ता स्वयं हर्ता शिवः स्वयम् । शिवाद्विष्णुर्महीं धातो विष्णोर्ब्रह्मा च पद्मभूः ।।११०
इति श्रुत्वा तु वचनं प्राह रामानुजस्तदा । धन्योऽयं भगवाञ्छम्भुर्यस्यायं महिमा परः ।।१११
सत्यं सत्यं ममाज्ञेयं कर्ता कारयिता शिवः । रामनाम परं नित्यं कथं शम्भुर्जपेद्धरिम् ।।११२
अनन्ता सृष्टयः सर्वा उद्भूता यस्य तेजसा । अनन्तः शेषतः शेषार[1]मन्ते योगिनो हि तम् ।।११३
स च वै मत्प्रभोर्धाम सच्चिदानन्दविग्रहः । इति श्रुत्वा तदा वाक्यं लज्जितः शङ्करोऽभवत् ।।११४
योगशास्त्रे परो देवः कृष्णस्तेनैव दर्शितः । कालात्मा भगवान्कृष्णो योगेशो योगतत्परः ।।११५
साङ्ख्यशास्त्रे च कपिलस्तस्मै तेनैव दर्शितः । कं वीर्यं पाति यो वै स कपिस्तं चैव लाति यः ।।
कपिलस्स तु विज्ञेयः कपी रुद्रः प्रकीर्तितः ।।११६

श्रेष्ठ है । यज्ञकर्म में वह कर्त्ता अक्षर द्वारा तृप्त न होने पर लोक और वेद में यज्ञपुरुष नाम से प्रख्यात हुआ । उस समय शिव ने अपने प्रपौत्र की वृद्धि देखकर स्पर्द्धा की—यज्ञभूत रुद्र ने अपने दिव्य वाणों द्वारा उसकी तृप्ति की, किन्तु समर्थ यज्ञपुरुष ने शिव को गुरुमय समझकर वहाँ से पलायन किया । इस प्रकार उसने महान् धर्म सुसम्पन्न किया । इसे सुनकर शंकराचार्य ने लज्जित होकर न्याय शास्त्र का अवलम्बन किया । कहा—भवतीति (उत्पन्न) और मृडतीति (संतुष्ट) होने के नाते उन्हें भव एवं मृड कहा गया है । लोकों के भरण करने वाला ही देव कर्ता और भर्ग (तेज) रूप है । उसी प्रकार हरती रति (हरण) करने के नाते उन पापनाशक रुद्र को हर कहा जाता है । इस प्रकार साक्षात् शिव ही स्वयं कर्ता, स्वयं भर्ता एवं स्वयं हर्ता कहे जाते हैं । उसी शिव द्वारा इस भूतल पर विष्णु, और विष्णु द्वारा कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । इसे सुनकर रामानुज ने कहा—भगवान् शंकर धन्य हैं जिनकी इस प्रकार महान् महिमा है, यह सत्य एवं ध्रुवसत्य है कि कर्ता कारयिता शिव ही हैं, किन्तु मुझे एक महान संशय है कि महामहिम सम्पन्न शिव नित्य राम नाम पर आधृत रहकर हरि का जप क्यों करते हैं ? जिसके तेज द्वारा अनन्त सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं और शेष से भी अनन्त है एवं उसी में योगीगण रमण करते हैं और वही सच्चिदानन्द विग्रहधारी मेरे प्रभु का धाम है । इसे सुनकर लज्जित होते हुए शंकराचार्य ने योगशास्त्र की चर्चा प्रारम्भ की । उसमें भी उन्होंने भगवान् कृष्ण की ही उपासना सिद्ध की । जो कालात्मा, भगवान् कृष्ण, योगनायक एवं योगारूढ़ हैं । पश्चात् सांख्य शास्त्र को अपनाने पर रामानुज ने कपिल भगवान् की प्रधानता सिद्ध की—क (वीर्य) को पान करनेवाला कपि कहा गया है, उसे ले आने वाले को कपिल । इस प्रकार कपि रुद्र की संज्ञा हुई और कपिल भगवान् विष्णु की जो सर्वज्ञ एवं

---

१. अन्तर्भवितव्यर्थः ।

कपिलो भगवान्विष्णुः सर्वज्ञः सर्वरूपवान् । तदा तु शङ्कराचार्यो लज्जितो नम्रकन्धरः ।।११७
शुक्लाम्बरधरो भूत्वा गोविन्दो नाम निर्मलम् । जजाप हृदि शुद्धात्मा शिष्यो रामानुजस्य वै ।।११८
इति ते रुद्रमाहात्म्यं प्रसङ्गेनापि वर्णितम् । धनवान्पुत्रवान्वाग्मी भवेद्यः शृणुयादिदम् ।।११९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
रुद्रमाहात्म्यवर्णनोत्तररामानुजोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

वसुमाहात्म्ये त्रिलोचनवैश्योत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्य महाभाग शृणु त्वं जीववर्णितम् । पवित्रं वसुमाहात्म्यं सर्ववस्तुसुखप्रदम् ।।१

बृहस्पतिरुवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे । इल्वला तामसी शक्तिः प्रिया विश्रवसो मुनेः ।।
शिवमाराधयामास सती सा पार्थिवार्चनैः ।।२
एतस्मिन्नन्तरे जातो दीक्षितान्वयसम्भवः । यक्षशर्मा महाधूर्तो यक्षिणीपूजने रतः ।।३
तस्य मित्रस्नुषा सुभ्रू रमिता तेन पापिना । तेन दोषेण विप्रोऽसौ कुष्ठभूतस्तदाभवत् ।।४

सर्वरूपवान् है । इसे सुनकर शंकराचार्य ने नम्रतापूर्ण रामानुज के शिष्य होकर शुक्लवस्त्र धारणकर अपने हृदय में निर्मल गोविन्द का नाम स्मरण करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार मैंने इस रुद्र महात्म्य का वर्णन प्रसंगवश सुना दिया, जिसे सुनकर मनुष्य धन, पुत्र एवं सत्यवाणी से विभूषित होता है ।१०१-११९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रुद्रमाहात्म्य
और रामानुजोत्पत्ति वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४

अध्याय १५

वसुमाहात्म्य में त्रिलोचनवैश्योत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य एवं महाभाग ! बृहस्पति द्वारा कथित उस वसुमाहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ, जो पवित्र एवं सर्व वस्तुओं को सुख प्रदान करता है, सुनो ! १

बृहस्पति जी बोले—सतयुग के आदि काल में वैवस्वत मन्वन्तर के समय विश्रवा मुनि की उस तामसी प्रिया एवं इल्वला सती शक्ति ने पार्थिव पूजन द्वारा शिव की आराधना की । उसी समय दीक्षित कुल में उत्पन्न महाधूर्त यक्षशर्मा ने यक्षिणी की आराधना करके उसे प्रसन्न किया । पश्चात् उस पापी ने अपने मित्र की पुत्रवधू के साथ भी रमण किया, जिससे उसे कुष्ठ का रोग उत्पन्न हो गया । उस ब्राह्मण

कुष्ठभूतं द्विजं त्यक्त्वा यक्षिणी मन्त्रवत्सला । शिवलोकं ययौ देवी कैलासं गुह्यकालयम् ॥५
क्षुधातुरो यक्षशर्मा शिवरात्रे महोत्तमे । दर्शितं पूजनं तेन योषिद्भ्यश्चोपदेशतः ॥६
प्रभाते समनुप्राप्ते पारणां कृतवान्द्विजः । मरणं प्राप्तवान्कुष्ठी तत्रैव शिवमन्दिरे ॥७
तेन पुण्यप्रभावेन राजासीत्करणाटके । राजराज इति ख्यातो मण्डलीको नृपोऽभवत् ॥८
शिवार्चनं मङ्गलदं गेहे गेहे दिने दिने । ब्राह्मणैः कारयामास राजराजो महाबलः ॥९
शताब्दं भूतले राज्यं कृतं तेन महात्मना । राज्याधिकारं श्रेष्ठस्य सुतस्य प्रददौ नृपः ॥
ततः काशीपुरीं प्राप्य शिवं तुष्टाव पूजनैः ॥१०
त्रिवर्षान्ते महादेवो ज्योतिर्लिङ्गो बभूव ह । राजराजेश्वरो नाम प्रसिद्धोऽभूच्छिवः स्वयम् ॥११
स नृपः पावितस्तेन त्यक्त्वा प्राणाँस्तदा स्वयम् । इल्वलागर्भमागम्य पुत्रोऽभूच्छुभलक्षणः ॥१२
जातः कुत्सितवेलायां रात्रौ घोरतमोवृते । कुबेर इति तन्नाम प्रसिद्धमभवद्भुवि ॥१३
तपसा तोषयामास स बालः परमेष्ठिनम् । तस्मै ब्रह्मा तदागत्य लङ्कां नाम पुरीं शुभाम् ॥
सुवर्णरचितां रम्यां कारयित्वा ददौ प्रभुः ॥१४
तिस्रः कोटयः स्मृता यक्षा लोककार्यपरायणाः । तेषां स्वामी स वै चासीद्यक्षराडिति विश्रुतः ॥१५
किन्नरा बहुरूपाश्च तदादेशनिवासिनः । बलिभिः पूजयामासुः किन्नरेशस्तदा स्वयम् ॥१६
गुह्यका नरभावस्था दिव्यमूल्यप्रकारिणः । तेषां स्वामी स वै चासीत्कुबेरो भगवान्स्वयम् ॥१७

को कुष्ठ का रोगी देखकर उस यक्षिणी ने उसे त्यागकर गुह्यकाल कैलास की यात्रा की । एक समय शिव-रात्र व्रत के दिन भूख से पीड़ित होने पर यक्षशर्मा को भोजन नहीं दिया, किन्तु उपदेश देकर उसे शिवार्चन का दर्शन करने के लिए विवश किया । प्रातः होने पर उस ब्राह्मण ने पारण किया । तदुपरांत उसी मंदिर में उसका निधन हो गया । उस पुण्य के प्रभाव से वह करणाटक देश का राजा हुआ, जो राजराज के नाम से प्रख्यात मण्डलीक राजा कहा जाता था । उस महाबली राजराज ने अपने राज्य में प्रत्येक प्रजाओं के यहाँ प्रतिदिन ब्राह्मणों द्वारा उस मांगलिक शिवार्चन की व्यवस्था सुसम्पन्न कराना आरम्भ किया । उस पुण्य प्रभाव से सौ वर्ष तक सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरांत उस महात्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य भी सौंपकर स्वयं काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर शिवपूजन करना आरम्भ किया । तीन वर्षों के उपरांत महादेव जी ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो राज राजेश्वर के नाम से प्रख्यात हुए । उनके द्वारा पूतात्मा होकर उस राजा ने इल्वला के गर्भ में पहुँचकर शुभ लक्षणों से विभूषित पुत्र का जन्म ग्रहण किया । अंधेरी रात की कुत्सित (निंदित) वेला में उत्पन्न होने के नाते उस पुत्र का कुबेर नाम से इस भूमण्ड में प्रख्याति हुई । उसने अपने तपश्चर्या द्वारा पितामह ब्रह्मा को प्रसन्न किया तत्पश्चात् ब्रह्मा ने सुवर्ण रचित लंका नामक पुरी उसे प्रदान किया । लोककार्य सुसम्पन्न करने के लिए तीन कोटि यक्षों की उत्पत्ति की गई है । और उनके स्वामी कुबेर 'यक्षराट् के नाम से विख्यात हैं ।२-१५। बहुरूपी किन्नरगण जो उनके आदेश पालक हैं, उन्हें बलि प्रदान द्वारा प्रसन्न रखते हैं। नरभाव से दिव्य एवं सुसज्जित केशपाश धारण करने वाले उन गुह्यकों के स्वामी भगवान् कुबेर स्वयंभू ही हैं। उन्होंने लोक कल्याणार्थ

गिरिभ्यो बहुरत्नानि गृहीत्वा लोकहेतवे । रक्षोभिः प्रेषयामास गेहे गेहे जने जने ।।१८
धर्मकार्यकरा ये तु नरा वेदपरायणाः । तेषां कोशाश्च तेनैव पूरिता नरधर्मिणा ।।१९
ये तु लोभपरा धूर्ता नराः सञ्चयकारिणः । तेषां राजा स भगवान्द्रव्यदो राक्षसेश्वरः ।।२०
शवभूता नरा ये वै दाहिता वह्निकर्मणि ।अग्निद्वारेण तन्मांसं भुञ्जते राक्षसाः सदा ।।२१
आभिर्विभूतिभिर्युक्तं दृष्ट्वा तं रावणो बली । जित्वा निष्कास्य लङ्कायां स्वयं राजा बभूव ह ।।२२
कुबेरो दुःखितस्तत्र शङ्करः दुःखनाशनम् । शरण्यं शरणं प्राप्तस्तदा तु भगवान्हरः ।।
तेन मैत्री कृता रम्या कुबेरेण समं दधौ ।।२३
अलकावती नाम पुरी रचिता विश्वकर्मणा । स तां मङ्गलदामाप्य कुबेरो हर्षमाप्तवान् ।।२४
इति श्रुत्वा तदनुजो रावणो लोकरावणः । कैलासं गिरिमागम्य नलकूबरभोगिनीम् ।।२५
दृष्ट्वा पुलस्त्यतनयः पस्पर्श मधुराननाम् । तदा पतिव्रता देवी सुप्रभा प्राह तं रुषा ।।२६
स्नुषेव तव पापात्मन्वर्तेऽहं लोकरावण । कुष्ठो भवेत्तव तनौ तेन दोषेण दारुणः ।।२७
त्वया हृतं विमानं यज्ज्येष्ठबन्धोश्च पुष्पकम् । निष्फलत्वमवाप्नोतु यथा चौरैर्हृतं धनम् ।।२८
इति शापान्वितो वीरस्तथाभूतः सुदुःखितः । शिवमाराधयामास कैलासे पार्थिवार्चनैः ।।२९
द्वादशाब्दमतो जातं पूजनं तस्य कुर्वतः । स रुद्रो न प्रसन्नोऽभूत्तदा दुःखी स रावणः ।।३०
जुहाव वह्नौ क्रमतः शिरांसि पुरुषादनः । स्थूलदेहं च सकलं स रुद्राय तदार्पयत् ।।३१

पर्वतों से रत्नों के संग्रहकर प्रत्येक घरों एवं मनुष्यों के लिए राक्षस द्वारा भेज दिया है। जितने वेदमार्गानुयायी धार्मिक लोग होते हैं उनके कोशों की पूर्ति इन्हीं धर्ममूर्ति कुबेर द्वारा होती है। इसी भाँति लोभी धूर्त धनिकों के राजा जो उन्हें द्रव्य प्रदान करते है, भगवान् राक्षसेश्वर होते हैं, जिनके राक्षस गण अग्नि में जलाये गये शवों के मांस उसी अग्नि द्वारा भक्षण करते हैं। इन विभूतियों से सुसम्पन्न इन्हें देखकर बलवान् रावण ने लंका से हटकर स्वयं राजसिंहासन अपना लिया। उस समय दुःखी होकर कुबेर ने दुःखनाशक एवं शरण्य भगवान् शंकर की शरण प्राप्त की। भगवान् शिव ने कुबेर के साथ मैत्री करके विश्वकर्मा द्वारा अलकावती पुरी की रचनाकर उन्हें उसका अधीश्वर बनाया। वह पुरी सज्जनों को सदैव मंगल प्रदान करती रहती है। भगवान् कुबेर ने उसमें रहकर अत्यन्त हर्षित जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। इसे सुनकर उनके अनुज लोकविदारक रावण ने कैलास जाकर नलकूबर की प्रेयसी को देखा। पुलस्त्य वंशज रावण ने अधीर होकर उस सुन्दरी का उपभोग बलात् किया, जिससे क्रुद्ध होकर उस पतिव्रता सुप्रभा देवी ने उनसे कहा। लोक दुःखदायी रावण ! पापिन् ! मैं तुम्हारी पुत्र-वधू की भाँति हूँ। इस पाप से तुम्हें भीषण कुष्ठ का रोग हो जायेगा और अपने ज्येष्ठ भाई कुबेर के विमान का जो तुमने अपहरण कर लिया है, चोरों के यहाँ से चुराये गये धन की भाँति तुम्हारे घर से निवृत्त होकर वहीं चला जायेगा। इस प्रकार शाप से अभिमूत होने के कारण दुःखी होकर रावण ने उसी कैलास पर रहकर पार्थिव पूजन द्वारा शिव की आराधना की। बारह वर्ष तक पूजन करने पर भी भगवान् रुद्र के न प्रसन्न होने पर रावण ने।१६-३०। अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए प्रज्वलित अग्नि में अपने शिर का हवन करना आरम्भ किया उसने अपनी स्थूल देह का समस्त भाग रुद्र के लिए अर्पित

भस्मभूतस्तदा रक्षो न मृतो ब्रह्मणो वरात् । पावकादुद्भवं चान्यं देहं प्राप्य मनोहरम् ।।३२
शिवाय वायुरूपाय ददौ स्वाङ्गं पुनर्बली । पिशाचैर्वायुरूपैश्च भक्षितः स च रावणः ।।३३
न ममार वराद्धोरो वायोर्जातं कलेवरम् । गृहीत्वा स च रुद्राय नभोभूताय चार्पयत् ।।३४
तदा मातृगणैर्घोरैर्भक्षितोऽभूत्स रावणः । ब्रह्मणो वरदानेन न पञ्चत्वमवाप्तवान् ।।३५
नभसश्चोद्भवं देहं शून्यभूतं स रावणः । पुनः प्राप्य शिवायैव सोऽहं भूताय चार्पयत् ।।३६
तदा प्रसन्नो भगवान्रुद्रोऽहङ्कारदेवता । कुबेरस्य यथा मित्रं रावणस्य तथाभवत् ।।३७
एकैकेनैव शिरसा कोटिकोटिशिरोऽभवत् । वज्रभूतोऽभवद्देहो देवदेवप्रसादतः ।।
एवं स रावणो घोरो बभूव वरदर्पितः ।।३८
देवदैत्यमनुष्याणां पन्नगानां च योषितः । नवोढा रमितास्चासन्ब्रह्माण्डे तेन रक्षसा ।।३९
पतिव्रतामतो रम्यो वेदधर्मः सनातनः । भग्नीभूतोऽभवत्सर्वः सर्वलोकेषु रक्षसा ।।४०
क्षुत्तृड्भ्यां वर्जितो नित्यं शङ्करेणैव तर्पितः । अन्ये सुरा विना यज्ञैः क्षुधिताः सम्बभूविरे ।।४१
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य क्षीराब्धौ प्राप्य दुःखिताः । एकीभूय सुरास्सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ।।४२
तदा प्रसन्नो भगवान्सगुणो निर्गुणो हरिः । उवाच सकलान्देवान्भक्तिनम्रान्यतेन्द्रियान् ।।४३
कल्पाख्ये श्वेतवाराहे नेदृशः कोऽपि दानवः । बभूव च यथैवासौ रावणो लोकरावणः ।।४४
पुरा मार्कण्डकल्पे च निशुम्भः शुम्भ एव हि । यथा जातौ तथा घोरौ कुम्भकर्णश्च रावणः ।।४५

कर दिया । केवल भस्मावशेष रह गया, किन्तु ब्रह्मा के वरदान द्वारा उसकी मृत्यु न हुई । उस समय अग्निकुंड से निकली हुई अन्य मनोहर शरीर की प्राप्तिकर उस बली ने अपने अंग को पुनः उन वायु रूप शिव के लिए अर्पित किया । उस समय वायुरूपधारी पिशाचों ने रावण की उस शरीर का भक्षण कर लिया था, किन्तु वरदान के प्रभाव द्वारा वह जीवित ही रहा । उस वायु द्वारा आधी देह को आकाश रूप रुद्र के पुनः अर्पित किया । उस समय भी घोर मातृगणों द्वारा उसके भक्षित होने पर भी वरदान प्राप्ति के नाते उसकी मृत्यु न हो सकी । पश्चात् आकाश जन्य उस शून्यभूत देह की प्राप्तिकर रावण ने पुनः उसे अहं भूतरूप शिव को समर्पित कर दिया । उस समय अहंकार देव भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर कुबेर की भाँति रावण से भी मैत्री स्थापित की । तदुपरांत उसे एक शिर के बदले में कोटि-कोटि शिरों की प्राप्ति पूर्वक देवाधिदेव की प्रसन्नतावश उसकी वज्र की भाँति कठोर देह हो गई । इस प्रकार उस रावण ने भीषण वरदान द्वारा गर्वित होकर देव, दैत्य, मनुष्य एवं पन्नगों की नवोढा रमणियों के साथ इस ब्रह्माण्ड में घूमते हुए रमण करना आरम्भ किया । उस राक्षस ने सम्पूर्ण लोकों के वैदिक एवं सनातनी पतिव्रता धर्म को निर्मूल कर दिया । शिव द्वारा तृप्त होने के नाते उसे भूख प्यास नहीं लगती थी । उस समय यज्ञानुष्ठान स्थगित हो जाने के नाते देवगण क्षुधा पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी रहने लगे । तदुपरांत दुःखी देवों ने ब्रह्मा को आगे कर क्षीरसागर में जाकर एक साथ परमेश्वर की आराधना आरम्भ की। उस समय प्रसन्न होकर सगुण निर्गुण भगवान् ने संयमी एवं भक्ति नम्र समस्त देवों से कहा—इस श्वेतवाराह नामक कल्प में इस लोक दुःखदायी रावण की भाँति अन्य कोई दानव उत्पन्न नहीं हुआ । पहले मार्कण्डेय कल्प में उत्पन्न शुम्भ निशुम्भ की भाँति ऐसे कुम्भ कर्ण और रावण भीषण हैं ।३१-४५।

रावणा बहवश्चासन्नीदृशो नैव रावणः । अहं ब्रह्मा तथा रुद्रो यतो जातास्सनातनाः ॥
सा तु वै प्रकृतिर्माया कोटिविश्वविधायिनी ॥४६
देवसङ्कटघोरेषु समर्थो देवराट् स्वयम् । शक्रविघ्ने समुद्भूते समर्थो भगवान्हरः ॥४७
रुद्राणां सङ्कटे घोरे समर्थोऽहं सदा भुवि । मयि सङ्कटसम्प्राप्ते समर्थो भगवान्हरः ॥४८
ब्रह्मणः परमे दुःखे समर्था प्रकृतिः परा । मधुकैटभौ पुरा जातौ दानवौ लोकविश्रुतौ ॥४९
ताभ्यां दुःखमयो ब्रह्मा तुष्टाव जगदम्बिकाम् । तदा तस्या बलेनाहं जघान मधुकैटभौ ॥५०
अतो मदाज्ञया सर्वे विष्णुमायां सनातनीम् । शरण्यां शरणं प्राप्य कुर्वतां जगतो हितम् ॥५१
इति श्रुत्वा तु ते देवास्तुष्टुवुः प्रकृतिं पराम् । प्रसन्ना च तदा देवी ब्रह्मज्योतिर्मयी शिवा ॥५२
द्विधाभूता महीं प्राप्ता सीतारामौ परापरौ । त्रिलिङ्गजननी सीता तया तदपरं द्विधा ॥
कृतं तौ च द्विधा जातौ शब्दार्थौ रामलक्ष्मणौ ॥५३
शब्दमात्रसमूहानां स्वामी रामस्सनातनः । अर्थमात्रसमूहानामीशः क्लीबस्स लक्ष्मणः ॥५४
यस्य वज्रमयं वीर्यं ब्रह्मचर्यं दृढं तथा । स क्लीबश्च ततोऽन्ये वै क्लीबभूता हि वानराः ॥५५
परा तु प्रकृतिस्सीता तयोर्मङ्गलदायिनी । भूमिमध्यात्समुद्भूता ह्ययोनिर्योनिकारिणी ॥५६
सहस्रं रामरामेति जपितं येन धीमता । सीतानाम्ना च तस्यैव फलं ज्ञेयं च तत्समम् ॥५७
योनिभूतौ च तौ देवौ राधेयस्य गृहं गतौ । इदं दृश्यं यदा नासीत्तामसी प्रकृतिस्तदा ॥
अक्षराशेषभूता च स्वयं जाता त्रिधेच्छया ॥५८

रावण भी अनेक हो चुके हैं किन्तु इस रावण के समान वे नहीं थे। जिस प्रकृति द्वारा मैं ब्रह्मा, तथा सनातन रुद्र उत्पन्न हुए हैं, वह माया प्रकृति कोटि विश्व की रचना एवं धारण करने की शक्ति है। और देवों के घोर संकट उपस्थित होने पर उसके निवारण के लिए स्वयं देवराट् समर्थ हैं, शक्र विघ्न के उपस्थित होने पर भगवान् शिव, और रुद्र के भीषण संकट उपस्थित होने पर मैं उसे निवारण के लिए सदैव समर्थ रहता हूँ। उसी प्रकार मेरे संकट के वारणार्थ भगवान् हरि समर्थ हैं और ब्रह्मा के अत्यन्त संकट ग्रस्त होने पर परा प्रकृत्ति निवारण करती है। पहले समय में लोक विख्यात मधु और कैटभ दानव के उत्पन्न होने पर उनसे दुःखी होकर ब्रह्मा ने जगदम्बिका की आराधना की। उस समय अम्बिका द्वारा बल प्राप्तकर मैंने मधु कैटभ का संहार किया था। इसलिए मेरी आज्ञा से सबलोग उस विष्णु माया की जो शरण प्रदान करती है, शरण में पहुँचकर उसकी आराधना करो। उसे सुनकर देवों ने पराप्रकृति की आराधना आरम्भ की। उस समय प्रसन्न होकर उस ब्रह्म ज्योतिर्मयी शिवा ने द्विधा (दो भोगों में विभक्त) होकर सीताराम के रूप में जो पर अपर कहलाते हैं, अवतार धारण किया। त्रिलिंग उनकी सीता ने अपने अपर रूप को दो भागों में विभक्तकर उसके द्वारा शब्द और अर्थात्मक राम लक्ष्मण की उत्पत्ति की जिसमें शब्द मात्र संमूह के स्वामी राम और अर्थ मात्र समूह के ईश क्लीब लक्ष्मण हुए। जिसका वीर्य वज्रमय और ब्रह्मचर्य दृढ था। उसी प्रकार अन्य वानर गण भी क्लीब ही थे। उन दोनों की मंगलदायिनी सीता, जो परा प्रकृति रूप है, भूमि के मध्य से अयोनिज रूप में उत्पन्न हुई।४६-५६। जिस बुद्धिमान् ने राम राम का सहस्र जप किया है, उसका फल सीता नाम के समान ही उसे प्राप्त होता है। इस दृश्य के

पूर्वं शेषस्स वै रामो मध्ये क्लीबस्य लक्ष्मणः । अपरौ पूर्वतो जातौ पुंक्लीबौ च परेश्वरौ ।।
परो भागस्तु सा देवी योगनिद्रा सनातनी ।।५९
अन्यकल्पेषु हे देवाः क्षीरशायी हरिः स्वयम् । रामो ज्ञेयस्तथा शेषो रुद्ररूपस्स लक्ष्मणः ।।६०
सीता भगवती लक्ष्मीर्जाता जनकनन्दिनी । सुदर्शनश्च भरतो हरेः शङ्खस्ततोऽनुजः ।।६१
कल्पाख्ये श्वेतवाराहे रामो जातः परात्परः । प्रद्युम्नो भरतो ज्ञेयोऽनिरुद्धः शत्रुहा प्रभुः ।।
तैश्च सर्वे विदलिता राक्षसा रावणादयः ।।६२
कीर्ति स्वकीयां लोकेषु संस्थाप्य पावनीं प्रभुः । पुष्पकं च कुबेराय विमानं च तदा ददौ ।।
रुद्रसङ्ख्या सहस्राब्दं राज्यं कृत्वा परं ययौ ।।६३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कुबेरस्तु प्रथमो वसुदेवता । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य वैश्ययोनौ बभूव ह ।।६४
धरदत्तस्य वैश्यस्य पुत्रो भूत्वा महीतले । त्रिलोचनस्स वै नाम मथुरायां बभूव ह ।।६५
सर्वद्रव्यव्ययं कृत्वा नानातीर्थेषु हर्षितः । पुरीं काशीं समागम्य रामानन्दं च वैष्णवम् ।।
नत्वा तद्वश्यमभजच्छिष्यो भूत्वा त्रिलोचनः ।।६६
स्वगेहं पुनरागत्य स वैश्यश्चाज्ञया गुरोः । रामभक्तिपरश्चासीत्साधुसेवापरायणः ।।६७
तदा तु भगवान्रामो दासभूतश्च तद्गृहे । स्थितस्त्रयोदशे मासि सर्ववाञ्छितदायकः ।।६८
मणिरत्नहिरण्यानि वासांसि विविधानि च । नाना व्यञ्जनयोग्यानि ब्राह्मणेभ्यः स्वयं ददौ ।।६९

अभाव काल में तामसी प्रकृति, जो अक्षर (अविनाशिनी) एवं अशेष (सम्पूर्ण) रूप है, स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर पूर्व भाग द्वारा राम मध्य से लक्ष्मण और पूर्व भाग से क्लीब (अलिंग और नपुंसक) रूप दो और की उत्पत्ति हुई है। देववृन्द ! अन्य तीसरे भाग से सनातनी योगनिद्रा देवी प्रकट होकर अवस्थित हैं। अन्य कल्पों में क्षीरशायी स्वयं भगवान् राम और रुद्र लक्ष्मण एवं लक्ष्मी जनक- नन्दिनी भगवती सीता के रूप में प्रकट होती हैं। उसी प्रकार उनके अस्त्र सुदर्शन भरत एवं शंख शत्रुघ्न रूप धारण करते हैं। श्वेत वाराह कल्प में परात्पर ब्रह्म राम, प्रद्युम्न लक्ष्मण और अनिरूद्ध भरत के रूप में प्रकट होकर रावणादि राक्षसों के विनाश करते हैं। वह स्वयं प्रभु राम रूप में जो अवतरित रहते हैं, ब्रह्माण्ड में अपनी पावन कीर्ति की स्थापना पूर्वक पुष्पक विमान कुबेर को लौटा देते हैं। पश्चात् एकादश सहस्र वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत परमपद की प्राप्ति करते हैं।५७-६३

सूत जी बोले—इसे सुनकर प्रथम वसुदेवता कुबेर ने मुख द्वारा अपने अंश को निकालकर धरदत्त वैश्य के घर भेजा जो वहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होकर इस भूमण्डल पर प्रख्यात हुआ। उसकी पुरी का नाम 'मथुरा' और उसका नाम त्रिलोचन था। उसने अपने समस्त द्रव्य को व्यय करते हुए तीर्थों में भ्रमण करते काशी की यात्रा की। वहाँ पहुँचने पर 'रामानन्द वैष्णव' के अधीन होकर उनकी शिष्य सेना स्वीकार की। पश्चात् अपने घर जाकर त्रिलोचन ने गुरु की आज्ञा से राम भक्ति में तत्पर रहकर साधु सेवा करना आरम्भ किया। उस उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर राम ने तेरहवें मास दास रूप में उसके घर रहकर उसकी इच्छापूर्ति समेत मणि रत्न, सुवर्ण भाँति-भाँति के वस्त्र तथा अनेक भाँति के व्यंजन

वैष्णवेभ्यो यतिभ्यश्च मनोवाञ्छितदायकः । ततस्त्रिलोचनं प्राह भगवान्रावणार्तिहा ।।७०
अहं रामो न वै दासस्तव भक्तिविमोहितः । निवासं कृतवान्गेहे तव प्रियहिते रतः ।।७१
अद्यप्रभृति भो वैश्य वसामि हृदये तव । इत्युक्त्वान्तर्हितो देवः स वैश्यो हर्षमागतः ।।७२
त्यक्त्वा कलत्रं पुत्रं च प्राप्य वैराग्यमुत्कटम् । उषित्वा सरयूतीरे रामध्यानपरोभवत् ।।७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये वसुमाहात्म्ये त्रिलोचनवैश्योत्पत्तिवर्णन नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

रङ्कणवैश्योत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं ध्रुववंशसमुद्भवः । राजाप्राचीनबर्हिश्च बभूव मखकारकः ।।१
नारदस्योपदेशेन त्यक्त्वा हिंसामयं मखम् । ज्ञानवान् वैष्णवो भूत्वा दशपुत्रानजीजनत् ।।२
प्रचेतानाम तेषां वै जातं ते चैकरूपिणः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य जलमध्ये तपोऽर्थिनः ।।
रत्नाकरस्य सिन्धोश्च मग्नभूता बभूविरे ।।३
तेषां तु तपसा तुष्टः स्वयम्भूश्चतुराननः । सप्ताब्धिषु स तान्सप्त सुतान्संस्थाप्य लोकराट् ।।४

ब्राह्मणों को स्वयं प्रदान कर उन्हें तृप्त करना आरम्भ किया । उस समय वैष्णवों एवं योगियों को उनके मनवांछित पदार्थ दिये जाते थे । इस प्रकार अनेक वर्षों की सेवा करने के उपरांत रावण विनाशी भगवान् ने एक दिन त्रिलोचन वैश्य से कहा—मैं राम हूँ, तुम्हारा मनुष्य सेवक नहीं । तुम्हारी भक्ति से मोहित होकर तुम्हारे घर रहकर तुम्हारा प्रिय एवं हितसाधन किया करता था, किन्तु अब आज ही मैं इस सेवक रूप में रहकर तुम्हारे हृदय में निवास करूँगा । इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और उस वैश्य ने जाकर वैराग्य उत्पन्न होने के नाते हर्षमग्न होकर अपनी स्त्री एवं पुत्र के परित्याग पूर्वक सरयू के तट पर भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया ।६४-७३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में त्रिलोचन वैश्य की उत्पत्ति वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

रंकणवैश्योत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—स्वायम्भुव मन्वन्तर काल में ध्रुववंशज राजा प्राचीन बर्हि ने यज्ञानुष्ठान करना आरम्भ किया । नारद के उपदेश से हिंसामय यज्ञों के त्यागपूर्वक उन्होंने ज्ञानी वैष्णव के रूप में रहते हुए दश पुत्रों को उत्पन्न किया । उन समान रूप वाले पुत्रों का प्रचेता नामकरण किया गया, जो पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर समुद्र के मध्य तप करने की इच्छा प्रकटकर समुद्र के भीतर रहना प्रारम्भ किये । उनके तप से प्रसन्न होकर लोकराट् एवं स्वयंभू चतुरानन ने सातों समुद्रों में क्रमशः

रत्नाकरेऽष्टमं पुत्रं नवमं मानसोत्तरे । दशमं मेरुशाखायां मुतं कृत्वा मुमोद ह ॥५
आपो वहति यो लोके स आपव इति स्मृतः । द्वितीयो वरुणो नाम यादसां पतिरप्पतिः ॥६
ददौ पाशं तदा ब्रह्मा दैत्यबन्धनहेतवे । पाशी नाम ततो जातं वरुणस्य महात्मनः ॥७
स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणः शक्तिपूजकः । आपवो नाम विख्यातो वारुणीपानतत्परः ॥८
भद्रकाल्याः प्रियो भक्तो नित्यं पूजनतत्परः । नानारक्तमयैः पुष्पैर्गुण्ठितां रक्तमालिकाम् ॥९
रक्तचन्दनसंयुक्तां गृहीत्वा मन्त्रसंयुतः । भद्रकाल्यै निवेद्याशु नवार्णवपरोऽभवत् ॥१०
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैर्ऋतुजैः फलैः । पूजयित्वा महालक्ष्मीं भद्रकालीं सनातनीम् ॥११
तिलैः शर्करया युक्तं मधुना च हविः स्वयम् । वह्निद्वारेण संहुत्य तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥१२
चरित्रं मध्यमं देव्या विष्णुदेवेन निर्मितम् । नवार्णवेन तेनैव प्रत्यहं जाप्यतत्परः ॥१३
एवं वर्षत्रयं जातं तस्य पूजां प्रकुर्वतः । प्रसन्नाभूत्तदा देवी वरदा सर्वमङ्गला ॥
वरं ब्रूहीति वचनं तमाह द्विजसत्तमम् ॥१४
इति वाक्यं प्रियं श्रुत्वा द्विज आपव नम्रधीः । तुष्टाव दण्डवद्भूत्वा भद्रकालीं सनातनीम् ॥१५

आपव उवाच

विष्णुकल्पे पुरा चासीद्दानवो महिषासुरः । कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथैर्वाजिगजैर्युतः ॥१६
त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा महेन्द्रस्स तदाभवत् । स्वारोचिषान्तरः कालो गतो राज्यं प्रकुर्वतः ॥१७

उनके सात पुत्रों को अधिनायक पद पर प्रतिष्ठित करके आठवें पुत्र को रत्नाकर में, नवें को मानस के उत्तर प्रदेश और दशवें को मेरु की शाखा में प्रतिष्ठित करके प्रसन्नता प्रकट की । लोक में आप (जल) प्रवाहित होने के नाते 'आपव' प्रथम पुत्र का और यादवगण के स्वामी होने के नाते 'वरुण' दूसरे पुत्र का नामकरण हुआ । उस समय ब्रह्मा ने वहाँ जाकर दैत्यों के बन्धनार्थ उन्हें 'पाश' प्रदान किया, उसी दिन से वरुण माहात्म्य का 'पाशीत्रय' हुआ । पूर्व जन्म में उसने ब्रह्म शक्ति की उपासना की थी, आपव नाम से प्रख्यात वह वारुणी (मदिरा) पान में निरत रहता था । भद्रकाली का प्रिय भक्त होने के नाते वह अनेक भाँति के रक्तवर्ण के पुष्प एवं उसी भाँति के पुष्पों की माला और रक्तचन्दन द्वारा समंत्रक भद्रकाली की नित्य पूजन करता था और पूजनोपरांत नवार्ण मंत्र के जप भी । इस प्रकार धूपदीप, नैवेद्य, ताम्बूल और ऋतु फलों द्वारा सनातनी एवं भद्रकाली रूप महालक्ष्मी की भक्तिपूर्वक आराधना करने के उपरांत तिल शक्कर, शहद, युक्त हवि की आहुति-प्रदान कर नित्य भगवती जगदम्बिका को प्रसन्न करता था । विष्णु देव निर्मित मध्यम चरित्र के पाठ और नवार्ण मंत्र के जप सविधान सुसम्पन्न करना उस ब्राह्मण का नित्य नियम था । इस भाँति तीन वर्ष पूजन करने के उपरांत सर्वमंगला भगवती देवी ने प्रसन्न होकर उससे वर याचना के लिए कहा । इस प्रिय वाणी को सुनकर ब्राह्मण श्रेष्ठ आपव ने विनम्र होकर दण्डवत् करते हुए सनातनी भद्रकाली देवी की आराधना आरम्भ की ।१-१५।

आपव ने कहा—विष्णु कल्प में पहले महिषासुर नामक दानव रहता था, जिसके कोटि-कोटि सहस्र रथ, घोड़े एवं गजराज थे । उस समय उसने तीनों लोक को अपने अधीन करके स्वयं देवेन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित होकर उसका शासन आरम्भ किया । इस प्रकार उसके राज्य करते हुए स्वारोचिष मन्वन्तर

ततस्स भगवान्विष्णुस्सर्वदेवसमन्वितः । समुत्पाद्य मुखात्तेजो ज्वालामाली बभूव ह ॥१८
ज्योतिर्लिङ्गात्तदा देवी भवती स्वेच्छया भुवि । सम्भूय महिषं हन्त्री तस्यै देव्यै नमोनमः ॥१९
रुद्रकल्पे पुरा चासीद्रुद्रच्छम्भुमुखाद्दिवि । रावणश्च सहस्रास्यो जातो ब्रह्माण्डरावणः ॥२०
राक्षसो बलवान्घोरो लोकालोकगिरेरधः । न्यवसद्देवदैत्यानां मनुष्याणां च भक्षकः ॥
षष्ठे मन्वन्तरे तेन ब्रह्माण्डं राज्यसात्कृतम् ॥२१
ततो वैवस्वते प्राप्ते त्रेताष्टाविंशके प्रभुः । स जातो राघवगृहे रामस्सङ्कर्षणः स्वयम् ॥२२
षोडशाब्दवपुर्भूत्वा स गतो जनकालये । धनुश्चाजगवं घोरं प्रभग्नं तेन धीमता ॥२३
तदा ब्रह्मादयो देवा ज्ञात्वा रामं सनातनम् । सहस्रवदनस्यैव वर्णयामास कारणम् ॥२४
तच्छ्रुत्वा हंसयानं च समारुह्य स सीतया । लोकालोकगिरौ प्राप्य घोरयुद्धमचीकरत् ॥२५
हंसयानपताकायां संस्थितो हनुमान्कपिः । वेदाश्च वाजिनस्तत्र नेता ब्रह्मा सनातनः ॥२६
दिव्यवर्षमभूद्घोरः सङ्ग्रामस्तेन रक्षसा । रावणस्स तदा क्रुद्धो द्विसहस्रैश्च बाहुभिः ॥२७
अपरौ मूर्छयित्वा तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । जगर्ज बलवान्घोरस्स च ब्रह्माण्डरावणः ॥२८
ब्राह्मणा संस्तुता माता भवती ब्रह्मरूपिणी । सीता शान्तिमयी नित्या तया ब्रह्माण्डरावणः ॥
विनाशितो नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२९
ब्रह्मकल्पे पुरा चासीत्तालजं घान्वयोद्भवः । मुरो नाम महादैत्यो ब्रह्मणो बलदर्पितः ॥३०

का काल व्यतीत हो गया । पश्चात् समस्त देवों के साथ विष्णु अपने मुख द्वारा तेज निकालकर माला की भाँति ज्वालाओं से आच्छादित हो गये । उस समय भगवती देवी ने अपनी इच्छा से ज्योतिर्लिंग द्वारा प्रकट होकर उस महिषासुर का वध किया था, उन्हें मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । पहले रुद्र कल्प में रुद्र शिव जी के मुख द्वारा सहस्र मुख वाला एक राक्षस उत्पन्न हुआ जिसका ब्रह्माण्ड रावण नाम था । वह बलवान् एवं घोर राक्षस लोक पर्वत के नीचे अपना वासस्थान बनाकर देव, दैत्य एवं मनुष्यों के भक्षण करता था । इस प्रकार उसने छठें मन्वन्तर काल तक समस्त ब्रह्माण्ड को अपने अधीन रखकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था । तदनन्तर वैवस्वत् मन्वन्तर काल के अट्ठाईसवें त्रेतायुग में राघव के घर स्वयं संकर्षण राम ने अवतरित होकर सोलह वर्ष की अवस्था में जनकपुर जाकर 'अजगव' नामक धनुष का भंजन किया । उस समय ब्रह्मादिक देवों ने वहाँ आकर उन्हें सनातन राम समझते हुए कहा—सहस्र वदन रावण ने लोक को अत्यन्त पीड़ित किया है । उसे सुनकर सीता समेत हंसयान पर बैठकर लोकालोक पर्वत पर जाकर उन्होंने उस राक्षस से घोर युद्ध किया । उस समय उनके हंसयान में पताका के उपर हनुमान् जी अवस्थित रहते थे, वेद घोड़ों के रूप में और उसके नेता स्वयं ब्रह्मा थे । दिव्य वर्ष तक घोर युद्ध करने के उपरांत उस राक्षस ने क्रुद्ध होकर अपनी दो सहस्र भुजाओं द्वारा राम लक्ष्मण को मूर्च्छित कर भीषण गर्जना किया । उस समय ब्रह्मा ने ब्रह्मरूपिणी, आप माता जी की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर सनातनी एवं शान्तिमयी सीता रूप आपने उस ब्रह्माण्ड रावण का विनाश किया था। प्रातः आपको बार-बार नमस्कार है।१६-२९। पहले ब्रह्मकल्प में लालजंघ के कुल में मुर नामक एक दैत्य उत्पन्न हुआ था, जो ब्रह्मा द्वारा वर प्राप्तकर अत्यन्त मदान्ध हो गया था। उसने देवेन्द्र समेत समस्त

ब्रह्माण्डेशं महारुद्रं महेन्द्रादिसमन्वितम् । स बभूव पराजित्याधिकारी रौद्र आसने ॥३१
देवैस्सार्द्धं महादेवो माधवं क्षीरशायिनम् । गत्वा निवेदयामास स विष्णुः क्रोधसंयुतः ॥३२
जगाम गरुडारूढो यत्र दैत्यो मुरः स्थितः । तेन सार्द्धमभूद्युद्धं तस्य देवस्य दारुणम् ॥३३
सहस्राब्दमतो जातं दृष्ट्वा ब्रह्मा भयान्वितः । परां तु प्रकृतिं नित्यां तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ॥३४
प्रसन्ना सा तदा देवी कुमारी सप्तहायिनी । चतुर्भुजास्त्रसहिता भूत्वा दैत्यमुवाच ह ॥३५
पराजितोऽयं भगवान्दैत्यराजेन वै त्वया । विजया नाम मे रम्या कैश्चिन्नाहं पराजिता ॥३६
उन्मीलिनी विञ्जुली च त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी । जया जयन्ती विजया वर्षेवर्षे क्रमादहम् ॥३७
एकादशशुभाचारा विष्णवस्तनया मम । एकादशीति विख्याता वेदमध्ये सदा ह्यहम् ॥३८
अतो मां बलवाञ्जित्वा विजयां विष्णुमातरम् । पाणिं ग्रहाण मे रम्यं सर्वपूज्यो भवान्भवेत् ॥३९
इति श्रुत्वा मुरो दैत्यस्तस्या रूपेण मोहितः । युयुधे स तया सार्द्धं क्षणार्द्धेन लयङ्गतः ॥४०
तं मुरं निहतं दृष्ट्वानुजस्तन्नरकासुरः । दैत्यमायां महाघोरां चकार सुरनाशिनीम् ॥४१
एकादशी स्वयं माता हुङ्कारेणैव तं तदा । नरकेण समं हत्वा जगर्ज जगदम्बिका ॥४२
तयोस्तेजो महाघोरमन्नमध्येषु चागमत् । दुष्टभूतमभूदन्नं नृणां रोगभयप्रदम् ॥४३
दृष्ट्वा चैकादशी नाम्ना रविशुक्रावुवाच ह । कुरुतां शुद्धमेवान्तर्भवन्तौ लोकविश्रुतौ ॥४४

देवों एवं ब्रह्माण्ड नायक महादेव को पराजितकर उस रौद्र आसन का अधिकार प्राप्त कर लिया था। पश्चात् देवों समेत महादेव ने क्षीरशायी भगवान् के पास जाकर उनसे समस्त वृतान्त का वर्णन किया। उसे सुनकर विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गरुण पर बैठकर क्रूर दैत्य के यहाँ युद्धार्थ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उन दोनों का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ।३०-३३। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर भयभीत होकर ब्रह्मा ने अपनी विनम्र वाणी द्वारा परा प्रकृति की उपासना की। उससे प्रसन्न होकर देवी ने सात वर्ष की कुमारी का रूपधारण कर जो चार भुजाओं में अस्त्र लिए सुसज्जित थी, मुर दैत्य से कहा—दैत्यराज! यह भगवान् तुमसे पराजित हो चुके हैं। मैं अभी तक युद्ध में किसी से पराजित नहीं हुई हूँ, अतः मेरा विजया नाम है। प्रत्येक वर्ष में क्रमशः उन्मीलिनी, विंजुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्द्धिनी, जया, जयंती, और विजया के नाम में परिवर्तित हुआ करती हूँ। शुभाचार को अपनाने वाले विष्णव आदि एकादश (ग्यारह) मेरे पुत्र हैं, इसलिए एकादशी नाम से मैं वेदमध्य में सदैव निवास करती हूँ। अतः तू बलवान् होकर युद्ध में विजय प्राप्ति पूर्वक विजया नामक मुझ विष्णु माता का पाणिग्रहण कर सर्वपूज्य बनो। इसे सुनकर मुर दैत्य ने उस रूप पर मोहित होकर देवी के साथ युद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु एक क्षण के आधे समय तक भी युद्ध में न ठहर सका देवी ने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पश्चात् मुर दैत्य के निधन होने पर उसके अनुज नरकासुर ने देव विनाशिनी एक महाभीषण माया की रचना की, पर जगन्माता एकादशी देवी ने अपने हुंकार द्वारा नरकासुर समेत उस माया का विनाशकर भीषण गर्जना की। उस समय उन दोनों दैत्यों का तेज अन्न के मध्य में व्याप्त हो गया। जिससे अन्न के दूषित होने के नाते मनुष्यों के अनेक रोग उत्पन्न होने लगे। उसे देखकर देवी जी ने सूर्य और शुक्र से कहा—आप लोग लोक प्रख्यात हैं अतः अन्न का अन्तःस्थल शुद्ध करो। पश्चात् वे दोनों उनकी आज्ञा का पालनकर देव

तदाज्ञया तथा कृत्वा देव पूज्यौ बभूवतुः । एवं मातस्त्वया सर्वं कृतं तस्यै नमो नमः ॥४५
इति श्रुत्वा भद्रकाली स्तोत्रं दिव्यं कथामयम् । आपवं प्राह सा देवी ब्राह्मणं वेदकोविदम् ॥४६
प्रलये च तदा प्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे । एकार्णवे पुरा त्वं वै मत्प्रसादात्सुखी भव ॥४७
स्तोत्रेणानेन सुप्रीता वरदाहं सदा नरान्[१] । इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी स विप्रो वरुणोऽभवत् ॥४८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भगवान्द्वितियो[२] वसुः । वरुणः स्वमुखात्तेजो जनयामास भूतले ॥४९
देहल्यां स तु वै जातो धर्मभक्तस्य वै गृहे । विधवा तस्य या कन्या गर्भं धत्ते हरेः स्वयम् ॥५०
इति ज्ञात्वा धर्मभक्तो मुमुदे सुतजन्मनि । नामदेव इति ख्यातः साङ्ख्ययोगपरायणः ॥५१
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णुमयं जगत् । ज्ञात्वा दृष्ट्वा गतः काश्यां रामानन्दं हरिप्रियम् ॥५२
नत्वा तच्छिष्यतां प्राप्य तत्र वासमकारयत् । सिकन्दरो म्लेच्छपतिर्देहलीराज्यमास्थितः ॥५३
नामदेवं समाहूय सम्परीक्ष्य तदा सुखी । अर्धकोटिमितं द्रव्यं ददौ तस्मै कलिप्रियः ॥५४
नामदेवस्तु तद्द्रव्यैर्गङ्गारोहणमुत्तमम् । कारयामास वै काश्यां शुभ्रं सर्वं शिलामयम् ॥५५
दशविप्रान्पञ्च नृपान्पञ्च वैश्याञ्छतं गवाम् । पुनरुज्जीवयामास शवभूतान्स योगवान् ॥५६

पूज्य हुए । इस प्रकार माता आपने सब कुछ सुसम्पन्न किया है । अतः आपको बार-बार नमस्कार है । इस भाँति दिव्य कथामय उस स्तोत्र को सुनकर भद्रकाली देवी ने उस वेद निपुण आपव नामक ब्राह्मण से कहा—स्थावर जंगमरूप इस जगत् के प्रलय होने पर उस एकार्णव के समय भी तुम मेरे प्रसाद से सुखी जीवन व्यतीत करो और इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर मैं मनुष्यों को सदैव वर प्रदान करती रहूँगी । इतना कहकर देवी अन्तर्हित हो गई और वह विप्र वरुण के रूप में परिवर्तित हो गया ।३४-४८

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर भगवान् वरुण ने जो दूसरे वसु कहलाते है अपने मुख द्वारा तेज निकालकर भूतल में प्रक्षिप्त किया । जो दिल्ली नगर में धर्मभक्त के घर उनकी विधवा कन्या के गर्भ में प्रविष्ट हुआ । कन्या के गर्भ में भगवान् स्वयं अपना अंश स्थापितकर पुत्र रूप में अवतरित होंगे. यह जानकर धर्मभक्त को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । पुत्र के उत्पन्न होने पर उन्होंने उसका 'नामदेव' नामकरण किया, जो सांख्ययोग का निपुण विद्वान् था । उसने निपुण ज्ञान प्राप्तकर आब्रह्मस्तम्ब पर्वत पर्यन्त इस जगत् को विष्णुमय समझकर काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर हरिप्रिय रामानन्द की शिष्य सेवा नमस्कार पूर्वक स्वीकार कर वहाँ निवास करने लगा । उस समय दिल्ली अधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित होकर सिकन्दर ने नामदेव को बुलवाकर उनकी परीक्षा की । उससे प्रसन्न होकर उस कलिप्रिय म्लेच्छ ने उन्हें अर्धकोटि द्रव्य प्रदान किया । उस द्रव्य द्वारा नामदेव ने काशी में गंगा में स्नानार्थ पत्थर की उत्तम शिलामय सीढ़ियाँ बनवाई । उस योगी ने अपने योगबल द्वारा दश ब्राह्मण, पाँच राजाओं एवं पाँच वैश्यों और सौ गौओं को पुनः जीवनदान प्रदान किया । ४९-५६

---

१. नरेभ्यः इत्यर्थः । २. ह्रस्व आर्षः ।

बृहस्पतिरुवाच

विश्वानरः पुरा ह्यासीद्ब्राह्मणो वेदकोविदः । अनपत्यो विधातारं तुष्टाव बहुपूजनैः ॥५७
वर्षमात्रेण भगवान्परमेष्ठी प्रजापतिः । समागत्य वचः प्राह वरं ब्रूहि द्विजोत्तम ॥५८
इति श्रुत्वा स होवाच भगवँस्ते नमो नमः । प्रकृतेश्च परः पुत्रो भूयान्मम वरात्तव ॥५९
इति श्रुत्वा तदा ब्रह्मा विस्मितः प्राह तं द्विजम् । एका वै प्रकृतिर्माया त्रिलिङ्गजननी स्वयम् ॥६०
तया दृश्यं जगत्सर्वं समुत्पादित मात्मना । प्रकृतेश्च परो यो वै परमात्मा स चाव्ययः ॥६१
अबुद्धिर्बोधनिरतो ह्यश्रुतिश्च शृणोति वै । अदेहः स स्पृशत्येतदचक्षुः पश्यति स्वयम् ॥६२
अजिह्वोऽन्नं स गृह्णाति स जिघ्रति न सा विना । अमुखो वेदवक्ता च कर्मकारः करं विना ॥६३
अपदो गच्छति ह्येतदलिङ्गो नारिभोगवान् । अगुह्यो हि करोत्येतां सतत्त्वां गुह्यभूतिनीम् ॥६४
शब्दब्रह्म स्पर्शमयं रूपब्रह्म रसात्मकम् । गन्धब्रह्म परं ज्ञेयं तस्मै तद्ब्रह्मणे नमः ॥६५
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादि उभावपि । विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥६६
एकार्थौ तौ च शब्दैकौ रूपैकौ नित्यविग्रहौ । आदिमध्यान्तरहितौ नित्यशुद्धौ सनातनौ ॥६७
पुंस्त्रीनपुंस्कजननो ज्ञेया सा प्रकृतिः परा । पुरुषश्च कविः सूक्ष्मः कूटस्थो ज्ञानवान्परः ॥६८
अजन्मा जन्म चाप्नोति मया जातः स जन्मवान् । कथं स पुरुषो नित्यस्तव पुत्रो भविष्यति ॥६९
अतो विश्वानर मुने मायाभूतो हरिः स्वयम् । तव पुत्रत्वमाप्नोति वरान्मम जनार्दनः ॥७०

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में विश्वानर नामक एक वेद निपुण ब्राह्मण था। उसने सन्तान-हीन होने के नाते पितामह ब्रह्मा की अनेक भाँति की पूजा आरम्भ की। एक वर्ष के व्यतीत होने पर उस पूजन से प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ आकर उस ब्राह्मण से वर याचना करने के लिए कहा। उसे सुनकर उसने कहा—भगवन्! तुम्हें नमस्कार है, आप मुझे यही वरदान दें कि—प्रकृति से परे रहने वाला वह परब्रह्म मेरे पुत्र के रूप में अवतरित हो इसे सुनकर विस्मय प्रकट करते हुए ब्रह्मा ने उस ब्राह्मण से कहा—एक उसी माया प्रकृति ने जो स्वयं त्रिलिंग जननी है, अपने द्वारा इस समस्त दृश्य जगत् की उत्पत्ति की है। और उस प्रकृति से परे रहने वाला परमात्मा, जो अधम कहलाता है, बुद्धिहीन होने पर भी बोद्धा, विना काल के श्रवण, विनादेह के स्पर्श, एवं विना नेत्र के देखता है तथा विना जिह्वा के अन्न का ग्रहण, बिना नासा के गन्ध ग्रहण, बिना मुख के वेदवेक्ता, कर निना सर्व कर्मकर्ता, बिना पैर के चलना और बिना लिंग के नारि भोग करता है उसी भाँति बिना गुह्येन्द्रिय के प्रकृति को गुह्य युक्त करता है। वही ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक हैं, अतः उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ।५७-६५। इस भाँति प्रकृति और पुरुष वे दोनों अनादि और प्रकृति से उत्पन्न सभी गुण विकारी कहे जाते हैं। इसलिए वे दोनों एकार्थ, एक शब्द, एक रूप, एवं नित्य शरीरात्मक हैं, जो आदि, मध्य, अन्तरहित, नित्य, शुद्ध, सनातन हैं। उसमें पुं (पुल्लिग) स्त्रीलिंग और नपुंसक की जननी वह परा प्रकृति है, एवं वह पुरुष कवि, सूक्ष्म, कूटस्थ, ज्ञानवान् और पर होने के नाते अजन्मा है। यद्यपि वह उपरोक्त गुण सम्पन्न होने पर भी मेरे द्वारा जन्म ग्रहण करता है, तथापि वह तुम्हारा पुत्र कैसे हो सकेगा। इसलिए विश्वानर! माया विशिष्ट भगवान् जिन्हें जनार्दन कहा गया है, मेरे वर द्वारा तुम्हारे यहाँ पुत्र रूप में अवतरित होंगे।

इत्युक्त्वान्र्दधे देवः पावकस्तद्वरादभूत् । अष्टानां च वसूनां च पावको हि पतिस्त्वयम् ।।७१
वैश्वानर इति ख्यातोऽभवत्स्वाहापतिः प्रभुः । स तु पूर्वभवे देवः पुरा कल्पेऽनलोऽभवत् ।।७२
नैषधो ब्राह्मणो धीमान्यथा राजा नलस्तथा । सङ्कटायां गते भूपे दमयन्ती पतिव्रता ।।७३
स्वपितुर्गेहमासाद्यान्वेषयामास भूपतिम् । तदा नलो द्विजं प्राप्तो दमयन्तीपतिः प्रभुः ।।७४
दृष्ट्वा तं मोहमापन्ना दमयन्ती शुभानना । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ।।७५
नायं नलस्तव पतिर्ब्राह्मणोऽयं सुमोहितः । अनलो नाम विख्यातो देववाक्यात्स चाभवत् ।।७६
महासरस्वतीं देवीं तुष्टाव स तु मोहितः । तस्य पुण्यप्रभावेन विश्वानरसुतोऽभवत् ।।७७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं पावको भगवान्प्रभुः । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य सञ्जातस्तु ततो वसुः ।।७८
रङ्कणो नाम विख्यातो लक्ष्मीदत्तस्य वै सुतः । नगरे काञ्चनपुरे वैश्यजातिसमुद्भवः ।।७९
यङ्कणा नाम तत्पत्नी बभूव च पतिव्रता । सर्वद्रव्यव्ययं कृत्वा धर्मकार्येषु दम्पती ।।८०
काष्ठमानीय विक्रीय बुभुजाते परस्परम् । रामानन्दस्तस्य गुरू रङ्कणस्य महात्मनः ।।८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये वसुमाहात्म्ये रङ्कण वैश्योत्पत्तिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६

इतना कहकर ब्रह्मा के अन्तर्हित हो जाने पर पावक उत्पन्न हुए जो आठों वसुओं के अधीश्वर हैं । उन स्वाहापति पावक की वैश्वांनर नाम से प्रख्याति हुई । वे पहले कल्प में अनल नाम से ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, जो निषध देश में राजानल के समय रहा करते थे । जिस समय राजा नल संकट में पड़कर जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय पतिव्रता दमयन्ती अपने पिता के घर रहकर राजा नल का अन्वेषण कर रही थी । उस समय अनल ब्राह्मण को देखकर दमयन्ती ने मोहित होकर उन्हें अपना पति निश्चित किया था किन्तु उसी बीच आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारे पति नल नहीं अनल हैं । इसने ब्रह्मा की उपासना से यह रूप प्राप्तकर अनल नाम से ख्याति प्राप्त की है और उसने मोहित होकर देवी सरस्वती की भी उपासना की है, जिससे विश्वानर के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ है ।६६-७७

सूत जी बोले—बृहस्पति की इन बातों को सुनकर भगवान् पावक ने मुख द्वारा अपना तेज निकालकर भूतल पर भेज दिया, जो कांचनपुर नगरी के प्रतिष्ठित एवं वैश्य शिरोमणि लक्ष्मीदत्त के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ, जो रंकण नाम से प्रख्यात था । उसकी पतिव्रता पत्नी का नाम पंकणा था । वे दम्पती (दोनों) अपने सम्पूर्ण द्रव्यों को धार्मिक कार्यों में व्यय करने के उपरांत लकड़ी बेंच-बेंचकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे जो अपने गुरु रामानन्द से वैसी ही शिक्षा ग्रहण किये थे ।७८-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रंकण वैश्योत्पत्ति वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कबीरनरसमुत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

दितिपुत्रौ महाघोरौ विष्णुना प्रभविष्णुना । संहतौ तु दितिर्ज्ञात्वा कश्यपं समपूजयत् ।।१
द्वादशाब्दान्तरे स्वामी कश्यपो भगवानृषिः । उवाच पत्नीं स हि तां वरं ब्रूहि वरानने ।।
सा तु श्रुत्वा नमस्कृत्य वचनं प्राह हर्षिता ।।२
अदितिर्मम या देवी सपत्नी पुत्रसंयुता । द्वादशतनयास्तस्या मम द्वौ तनयौ स्मृतौ ।।३
तदवर्यसुते नैव विष्णुना सुरपालिना । विनाशितौ सुतौ घोरौ ततोऽहं भृशदुःखिता ।।४
देहि मे तनयं स्वामिन्द्वादशादित्यनाशनम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं दितिं प्राह सुदुःखितः ।।५
ब्रह्मणा निर्मितौ लोके धर्माधर्मौ परापरौ । धर्मपक्षास्तु ये लोके नरास्ते ब्रह्मणः प्रियाः ।।६
अधर्मपक्षास्तु नरा वैरिणस्तस्य धीमतः । अधर्मपक्षौ तनयौ तस्मान्मृत्युमुपागतौ ।।७
अतो धर्मप्रिये शुद्धं कुरु तस्मान्महाबलः । भविष्यति सुतो धीमाँश्चिरञ्जीवि तव प्रियः ।।८
इति श्रुत्वा दितिर्देवी कश्यपाद्गर्भमुत्तमम् । सम्प्राप्य सा शुभाचारा बभूव व्रतधारिणी ।।९
तस्या गर्भगते पुत्रे महेन्द्रश्च भयान्वितः । दासभूतः स्थितो गेहे स दितेराज्ञया गुरोः ।।१०

अध्याय १७

कबीरनरसमुत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न भगवान् विष्णु द्वारा उन दोनों भीषण पुत्रों के निधन होने पर दिति ने अपने पति काश्यप ऋषि को प्रसन्न करना आरम्भ किया । बारह वर्ष के उपरांत उसके स्वामी भगवान् कश्यप ने प्रसन्न होकर अपनी उस पत्नी से कहा—सुन्दरि ! वर की याचना करो । उसे सुनकर उसने हर्षित होकर नमस्कार पूर्वक कहा—मेरी सपत्नी (सौत) अदिति देवी के बारह पुत्र हैं और मेरे दो पुत्र थे । किन्तु उनके छोटे भाई विष्णु ने जो सदैव सुरों की ही रक्षा करते हैं, मेरे उन दोनों पुत्रों का निधन कर दिया, इसीलिए मैं अत्यन्त दुःखी हूँ । स्वामिन् ! मुझे एक ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो बारह आदित्यों का विनाशक हो, इस घोर वाणी से दुःखी होकर कश्यप ने उस पत्नी से कहा, ब्रह्मा ने लोक में धर्म और अधर्म की सृष्टि की हैं, उसमें लोक में धर्मानुयायी मनुष्य ब्रह्मा को प्रिय होते हैं और अधर्मानुयायी मनुष्य शत्रु । अतः अधर्म के अनुयायी होने के नाते तुम्हारे दोनों पुत्रों का निधन हुआ है । धर्मप्रिये ! इस पर मेरा यह कहना है कि पहले अपने मन की शुद्धि पूर्वक धर्माचरण करो ।, इससे तुम्हें एक बलवान् पुत्र की प्राप्ति होगी, जो धीमान्, चिरजीवी एवं प्रिय होगा । इसे सुनकर दिति ने कश्यप द्वारा गर्भ धारण करने के उपरांत व्रत धारणकर शुभाचरण द्वारा काल यापन का नियम किया । उसके गर्भ में पुत्र की अवस्थिति समझकर इन्द्र ने भयभीत होकर दिति के घर सेवक की भाँति रहकर गुरु की भाँति उसकी

सप्तमासि स्थिते गर्भे शक्रमायाविमोहिता । अशुचिश्च दितिर्देवी सुष्वाप निजमन्दिरे ।।११
अङ्गुष्ठमात्रो भगवान्महेन्द्रो वज्रसंयुतः । कुक्षिमध्ये समागम्य चक्रे गर्भं स सप्तधा ।।१२
जीवद्भूतानतिबलान्दृष्ट्वा सप्त महारिपून् । एकैकः सप्तधा तेन महेन्द्रेण तदा कृतः ।।१३
नम्रीभूतश्च तान्दृष्ट्वा महेन्द्रस्तैः समन्वितः । योनिद्वारेण चागम्य प्रणनाम तदा दितिम् ।।१४
प्रसन्ना सा दितिर्देवान्महेन्द्राय च तान्ददौ । मरुद्गणाश्च ते सर्वे विख्याताः शक्रसेवकाः ।।१५
स तु पूर्वभवे जातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः । इलो नाम स वेदज्ञो यथेलो नृपतिस्तदा ।।१६
एकदा बलवान्राजा मनुपुत्रः इलः स्वयम् । एकाकी हयमारुह्य मेरोर्विपिनमाययौ ।।१७
मेरोरधः स्थितः खण्डः स्वर्णगर्भो हरिप्रियः । निवासं कृतवाँस्तत्र कृत्वा राष्ट्रं महोत्तमम् ।।१८
इलेनावृतमेवापि कृतं तत्र स्थले सुराः । इलावृतमिति ख्यातः खण्डोऽभूद्विबुधप्रियः ।।१९
भारते ये स्थिता लोका इलावृतमुपागताः । मेरुर्गिरिर्वृक्षनयो विधात्रा निर्मितो हि सः ।।२०
आरोहणं नरैस्तस्मिन्कृतं स्वर्णमयं शुभम् । तमारुह्य क्रमाल्लोकः स्वर्गलोकमुपागतः ।।२१
तान्दृष्ट्वा मनुजान्प्राप्तान्सदेहान्स्वर्गमण्डपे । विस्मिताश्च सुरास्सर्वे महेशं शरणं ययुः ।।२२
ज्ञात्वा स भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्करः । इलावृतवने रम्ये स रेमे च तया सह ।।२३
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वैवस्वतसुतो महान् । इलो नाम महाप्राज्ञो मृगयार्थी सदाशिवम् ।।२४
नग्नभूतं समालोक्य नेत्रे सन्मील्य संस्थितः । लज्जितां गिरिजां दृष्ट्वा शशाप भगवान्हरः ।।२५

सेवा करना आरम्भ किया । गर्भ के सात मास के होने के उपरांत इन्द्र की माया से मोहित दिति देवी ने अपने घर में अपवित्रता पूर्ण शयन किया । उस समय भगवान् इन्द्र ने अंगुष्ठ के समान छोटा रूप धारण कर वज्रसमेत दिति के कुक्षि में प्रविष्ट होकर उस गर्भ का सात खण्ड कर दिया । उन महाबली सातो शत्रुओं को जीवित देखकर एक-एक का सात सात खण्ड किया । पश्चात् दिनम्र होकर महेन्द्र ने उन सबको साथ लिए योनि द्वार से बाहर निकालकर दिति को प्रणाम किया । उस समय प्रसन्न होकर दिति ने अपने उन सभी पुत्रों को सुरेन्द्र को सौंप दिया, जिससे वे सभी इन्द्र सेवक के रूप में रहकर 'मरुद्गण' के नाम से प्रख्यात हुए ।१-१५। वह गर्भस्थजीव पहले समय में राजा इल की भाँति 'इल' नामक प्रख्यात ब्राह्मण था । एक बार मनुपुत्र बलवान् राजा इल ने अश्वारूढ होकर एकाकी मेरुपर्वत के घोर जंगल में यात्रा की । उस राजा ने वहाँ पहुँचने पर मेरु के नीचे उस खण्ड प्रदेश को, जो स्वर्ण गर्भित एवं हरिप्रिय था, उत्तम राष्ट्र के रूप में परिणतकर वहाँ निवास पूर्वक अपना आधिपत्य स्थापित किया । इल के अधित्य स्थापित होने पर देवगण भी वहाँ रहने लगे । इसलिए उस देवप्रिय खण्ड की 'इलावृत' प्रदेश से प्रख्याति हुई । पश्चात् भारत के सभी जनवर्ग इलावृत प्रदेश में पहुँच गये । ब्रह्मा ने मेरुपर्वत का निर्माण वृक्ष की भाँति किया । जिसमें आरोहण करने के लिए मनुष्यों ने स्वर्णमयी सीढ़ियों की रचना की है । उस पर चढ़कर सभी लोग क्रमशः स्वर्ग लोक पहुँचने लगे । उस समय देवों ने उस स्वर्ग मण्डल में मनुष्यों को सदेह पहुँचते हुए देखकर आश्चर्य-चकित होकर महेश जी के यहाँ जाकर उनसे सब वृत्तान्त कहा—उसे सुनकर भगवान् शंकर ने भवानी पार्वती को साथ लेकर उसी वन में जाकर रमण करना आरम्भ किया। उसी बीच वैवस्वत पुत्र इल ने मृगया (शिकार) के लिए भ्रमण करते हुए उस वन में यात्रा की वहाँ पहुँचने पर उस राजा ने सदाशिव भगवान् को नग्न देखकर नेत्र मूँदकर वहीं खड़ा हो गया। उस समय गिरिजा को लज्जित होते देखकर भगवान् शिव ने यह शाप

अस्मिन्खण्डे सदा नार्यो भविष्यन्ति च मां विना। इत्युक्त्वा वचनं तस्मिन्नार्यस्सर्वा बभूविरे ॥२६
इला बभूव नृपतेः कन्या जनमनोहरा । बहुकालं मेरुशृङ्गे महत्तपमचीकरत् ॥२७
इलासमाधिभूतायाः सप्तविंशच्चतुर्युगम् । जातं तत इला कन्या त्रेतामध्ये तु चन्द्रजम् ॥
बुधं देवं पतिं कृत्वा चन्द्रवंशमजीजनत् ॥२८
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्यदेलावृतमागतः । तस्य राज्ञी मदवती नाम्ना तुष्ट्वा पार्वतीम् ॥२९
तदा प्राप्त इलो विप्रस्तस्या रूपेण मोहितः । पस्पर्श तां मदवतीं राज्ञीं कामविमोहितः ॥३०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी । इलो नायं द्विजश्चायं तव रूपविमोहितः ॥३१
अनिलो नाम तत्रैव विख्यातोऽभूद्द्विजस्य वै । कामाग्निपीडितो विप्रस्स तुष्टाव च पावकम् ॥३२
छित्वाछित्वा शिरो रम्यं तस्मै जातं पुनः पुनः । दत्त्वा तुष्टाव तं देवं प्रसन्नोऽभूद्धनञ्जयः ॥३३
प्राह त्वमूनपञ्चाशद्विभेदाञ्जनयिष्यसि । तथाहं मित्रवान्भूत्वा तत्सङ्ख्यस्तव कामदः ॥३४
यथा कुबेरो भगवान्षड्विंशद्वरुणप्रियः । तथाहमूनपञ्चाशद्विभेदस्तव वै सखा ॥३५
इत्युक्ते वचने तस्मिन्दितिकुक्षौ द्विजोत्तमः । वायुर्नाम स वै जातः पावकस्य प्रियस्सखा ॥३६

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वैश्यजात्यां समुद्भवः । धान्यपालस्य वै गेहे मूलगण्डान्तजः सुतः ॥
पितृमातृपरित्यक्तः काश्यां विन्ध्यवने तदा ॥३७

प्रदान किया कि—इस खण्ड प्रदेश में जो कोई आयेगा, मेरे अतिरिक्त वे सभी स्त्री हो जायेगें। उनके इस प्रकार कहने पर वहाँ सभी लोग स्त्री के रूप में परिणत हो गये। राजा इल भी एक परम सुन्दरी कन्या के रूप में परिणत हो गया। उस इला कन्या ने वहां उस मेरे शृंग पर रहकर समाधिस्थ होकर महान् तप करना आरम्भ किया। सत्ताईस बार चारों युगों के व्यतीत होने के उपरांत इस इला ने इन्द्र पुत्र बुध देव को अपना पति स्वीकारकर चन्द्रवंश की उत्पत्ति की। जिस समय अयोध्या नरेश इल ने इलावृत में अपना आधिपत्य स्थापित किया उस समय उसकी रानी मदमती ने सुरा द्वारा पार्वती देवी को प्रसन्न किया। उसी समय इला नामक ब्राह्मण ने जो राजा के समान सौन्दर्य पूर्ण था, रानी के रूप पर मोहित होकर कामपीड़ा से अधीर होते हुए उस रानी मदमती का स्पर्श किया।१६-३०। उस समय आकाश-वाणी हुई। यह राजा इल नहीं अपितु इल नामक ब्राह्मण है, जो तुम्हारे रूप पर आसक्त हैं, वहाँ अनिल नाम से उस ब्राह्मण की ख्याति हुई। पश्चात् कामव्यथित होकर उस ब्राह्मण ने पावकदेव की आराधना की—बार-बार उस अपने शिर को आहुति रूप में उन्हें अर्पित किया, जो सौन्दर्य पूर्ण पुनः पुनः उत्पन्न हो रहा था। उससे प्रसन्न होकर धनंजय ने कहा—तुम अपने को उनचास रूपों में उत्पन्न करोगे, और मैं तुम सबका यथेच्छ सहायक रहूंगा। जिस प्रकार भगवान् कुबेर उन छब्बीस वरुणों के प्रिय सहायक हैं। उसी भाँति मैं तुम उनचासों का प्रिय रहूँगा। इतना कहने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने दिति के कुक्षि में जाकर वायु नाम से उत्पत्ति की, जो पावक का प्रिय सखा था।३१-३६

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर वह काशीपुरी के वैश्य कुल में धनपाल के घर मूल गण्डान्त के समय पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिससे उसके माता-पिता ने विंध्याटवी में लाकर परित्याग

अलिको नाम वै म्लेच्छस्तत्र स्थाने समागतः ॥३८
अनपत्यो वस्त्रकारी सुतं प्राप्य गृहं ययौ । कबीर इति विख्यातः स पुत्रो मधुराननः ॥३९
स सप्ताब्दवपुर्भूत्वा गोदुग्धपानतत्परः । रामानन्दं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत् ॥४०
स्वहस्तेनैव संस्कृत्य भोजनं हरयेऽर्पयत् । तत्प्रियार्थं हरिस्साक्षात्सर्वकामप्रदोऽभवत् ॥४१

बृहस्पतिरुवाच

उत्तानपादतनयो ध्रुवोऽभूत्क्षत्रियः पुरा । पितृमातृपरित्यक्तः स बालः पञ्चहायनः ॥४२
गोवर्द्धनगिरौ प्राप्य नारदस्योपदेशतः । स चक्रे भगवद्ध्यानं मासान्षट् च महाव्रती ॥४३
तदा प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्नारायणः प्रभुः । खमण्डले पदं तस्मै ददौ प्रीत्या नभोमयम् ॥४४
दृष्ट्वा तद्वदनं रम्यं मायाशक्त्या दिशो दश । स्वामिनं च ध्रुवं मत्वा भक्तिनम्रा बभूविरे ॥४५
ध्रुवोऽपि भगवान्साक्षात्सर्वपूज्यो बभूव ह । दिक्पतिः स तु विज्ञेयो भगणानां पतिः स्वयम् ॥४६
नभः पतिः कालकरः शिशुमारपतिस्स वै । पञ्चतत्त्वा[1] हि वै माया प्रकृतिस्तत्पतिः स्वयम् ॥४७
तस्माद्धरायां सम्भूतो भौमो नाम महाग्रहः । जलदेव्यास्ततो जातः शुक्रो नाम महाग्रहः ॥४८
वह्निदेव्यां ततो जातश्चाहं तत्र महाग्रहः । वासुदेव्यां ध्रुवाज्जातः केतुर्नाम महाग्रहः ॥४९
ग्रहभूतः स्थितस्तत्र नभोदेव्यां तदुद्भवः । राहुर्नाम तथा घोरो महाग्रह उपग्रहः ॥५०

किया । उसी समय अलिक नामक एक म्लेच्छ वहाँ आ गया । सन्तानहीन होने के नाते उस जुलाहे ने उस शिशु को लेकर अपने घर को प्रस्थान किया । पश्चात् वह सुन्दर बालक 'कबीर' के नाम से प्रख्यात हुआ । सात वर्ष की अवस्था तक वह बालक गोदुग्ध का पान ही कर रहा था । और उसी समय से रामानन्द को अपना गुरु मानकर उसने राम का ध्यान भी करना आरम्भ किया । वह अपने हाथ से स्वयं भोजन बनाकर भगवान् को अर्पित करता था । और भगवान् ने भी साक्षात् प्रकट होकर उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति की ।३७-४१

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में राजा उत्तानपाद के प्रिय पुत्र राजा ध्रुव हुए थे, जो पाँच वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता द्वारा परित्यक्त किये गये थे । पश्चात् उन्होंने नारद जी के उपदेश से गोवर्द्धन पर्वत की यात्रा की । उस समय महाव्रती ने वहाँ पहुँचकर छे मास तक भगवान का ध्यान किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु नारायण स्वामी ने आकाशमण्डल के पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया । उनके सुन्दर बदन को देखकर माया शक्ति जो दश दिशाओं में पूर्ण व्याप्त है, ध्रुव को अपना स्वामी स्वीकार कर भक्तिपूर्वक अपनी विनम्र अवस्थिति की। अनन्तर भगवान् ध्रुव भी साक्षात् सर्व पूज्य हुए। तथा वे दिशाओं, नक्षत्रों, एवं आकाश के भी पति वहीं हैं वे कालकर्त्ता, शिशुमार पति तथा पाँच तत्वों वाली उस प्रकृति माया के भी पति हैं । उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भ से महाग्रह भौम, जल देवी के गर्भ से महाग्रह शुक्र, अग्नि की स्त्री के गर्भ से महाग्रह मैं (गुरु), वासुदेवी के गर्भ से महाग्रह केतु, और नभो देवी के गर्भ से महाग्रह राहु, जो घोर एवं उपग्रह भी कहा जाता है। उन्हीं ध्रुव द्वारा उत्पन्न हुए हैं।४२-५०।

---

१. पञ्चतत्त्वा माया प्रकृतिस्तत्पतिस्स स्वयमित्यर्थः ।

पूर्वस्यां दिशि वै तस्माज्जातश्चैरावतो गजः। आग्नेय्यां दिशि वै तस्मात्पुण्डरीको गजोऽभवत् ।।५१
वामनः कुमुदश्चैव पुष्पदन्तः क्रमाद्गजाः । सार्वभौमः सुप्रतीको नभोदिक्षु तु तत्सुताः ।।५२
अभ्रमुः कपिला चैव पिङ्गलाख्या इमाः क्रमात्। ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चाङ्गना चाञ्जनावती ।।५३
भूमिदिक्षु करिण्यश्च जातास्तस्मात्तु तत्प्रियाः। भगिनी च तथा माता सुता चैव स्नुषा तथा ।।५४
पशुयोन्युद्भवानां च नृणां ता योषितस्सदा। देवयोन्युद्भवानां च नृणां पत्नी स्मृता स्वसा ।।५५
मनुवंशोद्भवानां च नृणां चान्योद्भवाः स्त्रियः। इति धर्मो विधात्रोक्तो मया प्रोक्तः सुरा हि वः ।।५६
द्विधा ध्रुवस्स विज्ञेयो भूमेरुद्ध्र्वमधस्तथा । सद्गुणः स दिवारूपो रात्रिरूपस्तमोगुणः ।।५७
अधो ध्रुवे सदा रात्रिर्नरकास्तत्र वै स्थिताः। ऊर्ध्वे ध्रुवे दिवा नित्यं तपोमध्ये निशा दिवा ।।५८
महो जनस्तपस्सत्यं तेषु नित्यं दिनं स्मृतम् । रौरवश्चान्धकूपश्च तामिस्रं च तमोमयम् ।।
तेषु नित्यं स्मृता रात्रिः कल्पमानं च कोविदैः ।।५९
स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणो माधवप्रियः । षष्टचब्दं सर्वतीर्थेषु प्रातःस्नानं चकार ह ।।६०
तीर्थ पुण्यात्स वै विप्रो माधवो माधवप्रियः । सुनीत्यां गर्भवासाच्च ध्रुवो भूत्वा रराज ह ।।
षट्त्रिंशच्च सहस्राब्दं राज्यं कृत्वा ध्रुवोऽभवत् ।।६१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं स ध्रुवः पञ्चमो वसुः । गुर्जरे देश आगम्य वैश्यजात्यां समुद्भवः ।।

उनके द्वारा पूर्व दिशा में ऐरावत नामक गज, अग्नि दिशा में पुण्डरीक नामक गज, और वामन, कुमुद एवं पुष्पदन्त नामक गजेन्द्रों की उत्पत्ति हुई सार्वभौम एवं सुप्रतीक नामक उन गजेन्द्रों के पुत्र उन्हीं द्वारा उत्पन्न हुए जो आकाश दिशाओं के अधिपति हैं एवं अभ्रभु, कपिला, पिंगला, ताम्रकर्णी, शुभ्रदन्ती, अंगना, अंजनावती आदि उनकी पत्नियाँ भी उन्हीं द्वारा उत्पन्न हुईं, जो पृथिवी की दिशाओं में रहती हैं। उसी प्रकार उनकी भगिनी, माता, पुत्री, पुत्रवधू आदि भी। जो पशुयोनि में उत्पन्न नरपशुओं की सदैव स्त्रियाँ हो रही हैं। देवयोनि में उत्पन्न नरों की स्वसा उनकी स्वसा (भगिनी) ही पत्नी और मनुवंश में उत्पन्न पुरुषों की पत्नियाँ अन्य द्वारा उत्पन्न स्त्रियाँ हुई हैं। देववृन्द ! इस धर्म की व्याख्या ब्रह्मा ने स्वयं की थी, मैंने तुम्हें सुना दिया। वह ध्रुव दो भागों में विभक्त होकर भूमि के ऊपर एवं नीचे लोकों में अवस्थित हैं, जो सतोगुण रूप से दिवारूप और तमोगुण रूप से रात्रिरूप है। तथा पृथिवी के नीचे रात्रिरूप में सदैव अवस्थित हैं, जहाँ नारकीयों की स्थिति होती है। पृथिवी के ऊपर ध्रुव की अवस्थिति होने से ऊपर के लोकों में सदैव दिवस, मध्य के तपलोक में रात्रि दिवस दोनों, तथा महर्लोक, जनलोक के तपलोक और सत्यलोक में दिन रहता है। उसी भाँति पण्डितों ने रौरव, अंधकूप, और तमोमय तामिस्र में सदैव रात्रि ही रहती है। पूर्व जन्म में वे माधव नामक ब्राह्मण थे, जो अत्यन्त भगवत्प्रिय थे। उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था तक सभी तीर्थों में भ्रमणकर प्रातः स्नान किया था। जिस पुण्य के प्रभाव से वे भगवान् के अत्यन्त प्रिय हुए। पश्चात् रानी सुनीति के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर ध्रुव नाम से राजपद पर प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज का उपभोग करके उन्होंने अटल ध्रुव का पद प्राप्त किया।५१-६१

सूत जी बोले—इस प्रकार बृहस्पति की वाणी सुनकर पाँचवें वसु ध्रुव ने अपने तेज को निकाल

नरश्रीर्नाम विख्यातो गुणवैश्यस्य वै सुतः ॥६२
कुसीदगुणगुप्तश्च नरश्रीः पुत्रवत्सलः । त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्गं स वैश्यतनयो ध्रुवः ॥६३
प्रत्यहं स हरेः क्रीडां वृन्दावनमहोत्तमे । शिवप्रसादात्प्रत्यक्षां दृष्ट्वा हर्षमवाप्तवान् ॥६४
यस्य पुत्रविवाहे च भगवान्भक्तवत्सलः । यादवैस्सह सम्प्राप्तस्तस्य वाञ्छितदायकः ॥६५
पुरीं काशीं समागम्य नरश्रीर्भक्तराट् स्वयम् । रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्विष्णुधर्मविशारदः ॥६६

बृहस्पतिरुवाच

कदाचिद्भगवानत्रिर्गङ्गाकूलेऽनसूयया । सार्द्धं तपो महत्कुर्वन्ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥६७
तदा ब्रह्मा हरिश्शम्भुः स्वस्ववाहनमास्थिता । वरं ब्रूहीति वचनं तमाहुस्ते सनातनाः ॥६८
इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयम्भूतनयो मुनिः । नैव किञ्चिद्वचः प्राह संस्थितः परमात्मनि ॥६९
तस्य भाव समालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः । अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०
लिङ्गहस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धनः । ब्रह्मा कामब्रह्मलोपः स्थितस्तस्या वशं गतः ॥
रतिं देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥७१
पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषां वचोऽशुभम् । नैव किञ्चिद्वचः प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ॥७२
मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदा । मैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्मायाविमोहिताः ॥७३

कर फेंका। उसी द्वारा गुजरात देश निवासी गुण वैश्य नामक वैश्यशिरोमणि के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुए, नर श्री नाम से प्रख्यात हुए। रुपये के व्याज द्वारा जीवन-यापन करने वाले गुणगुप्त वैश्य अपने पुत्र को बहुत प्यार करता था, किन्तु वैश्यपुत्र ध्रुव ने अल्पकाल में ही अपना प्राण परित्याग कर स्वर्ग की यात्रा की। शिव जी की प्रसन्नता से वे उस उत्तम वृन्दावन में भगवान् की रासक्रीडा का दर्शन प्रत्यक्ष किया करते थे, जो उन्हें अत्यन्त हर्षातिरेक से प्राप्त हुआ था। उस भक्तराट् के पुत्र के विवाह में भक्त-वत्सल भगवान् कृष्ण ने अपने यादवगणों समेत आकर उनका मनोरथ पूरा किया। पश्चात् विष्णुधर्म प्रिय नरश्री ने काशीपुरी में जाकर रामानन्द की शिष्य सेवा स्वीकार की।६२-६६

बृहस्पति जी बोले—एकबार भगवान् अत्रि ऋषि ने अपनी अनसूया नामक पत्नी समेत गंगा के तट पर ब्रह्मध्यान में निमग्न होकर महान् तप करना आरम्भ किया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव जी ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने ब्रह्मपुत्र अत्रि से वरयाचना करने के लिए कहा। किन्तु अत्रि इन लोगों की बात पर कुछ ध्यान न देकर पूर्व की भाँति ब्रह्मध्यान में मग्न ही रहे। उनके भाव को जानकर उन तीनों देवों ने उनकी पत्नी अनसूया के पास जाकर उनसे कहना आरम्भ किया। उस समय अनसूया के वशीभूत होकर रूद्र हाथ से लिंग ग्रहण किये थे, विष्णु उसमें रस वृद्धि कर रहे थे और ब्रह्मा अपनी कामवासना नष्ट करने पर तुले थे। वे लोग उससे बार-बार यही कह रहे थे कि—मदभरे नेत्रों से कटाक्षपात करने वाली प्रिये! मुझे रति दान प्रदान करो, अन्यथा तुम्हारे सामने मेरा प्राण निकल रहा है। उस समय पतिव्रता अनसूया ने उन लोगों की उस अशुभ वाणी को सुनकर भी उनके कोपभय से भयभीत होने के नाते उन लोगों से कुछ नहीं कहा। किन्तु अत्यन्त मोहित उन बलवान् देवों ने जो माया विमुग्ध थे, बलात् उसे पकड़कर मैथुनार्थ प्रयत्न किया।६७-७३।

तदा क्रुद्धा सती सा वै ताञ्छशाप मुनिप्रिया । मम पुत्रा भविष्यन्ति यूयं कामविमोहिताः ।।७४
महादेवस्य वै लिङ्गं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः । चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैस्सदा ।।
भविष्यन्ति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ।।७५
इति श्रुत्वा वचो घोरं नमस्कृत्य मुनिप्रियाम् । तुष्टुवुर्भक्तिनम्राश्च देवपाठैश्च ऋङ्मयैः ।।७६
अनसूया तदा प्राह भवन्तो मम पुत्रकाः । भूत्वा शापं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिमवाप्स्यथ ।।७७
इत्युक्ते वचने ब्रह्मा चन्द्रमाश्च तदा ह्यभूत् । दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद्दुर्वासा भगवान्हरः ।।
तत्पापपरिहारार्थं योगवन्तो बभूविरे ।।७८
एतस्मिन्नन्तरे देवी प्रकृतिस्सर्वधर्मिणी । विधिं विष्णुं हरं चान्यं चक्रे सा गुणरूपिणी ।।७९
मन्वन्तरमतो जातं तेषां योगं प्रकुर्वताम् । हृषिताश्च त्रयो देवास्समागम्य च तान्प्रति ।।८०
उवाच वचनं रम्यं तेषां मङ्गलहेतवे । चन्द्रमाश्च भवेत्सोमो वसुः षष्ठः सुरप्रियः ।।८१
रुद्रांशश्चैव दुर्वासाः प्रत्यूषः सप्तमो वसुः । दत्तात्रेयमयो योगी प्रभासश्चाष्टमो वसुः ।।
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य वसवस्ते त्रयोऽभवन् ।।८२

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसवो हर्षितास्त्रयः । स्वांशेन भूतलं जग्मुः कलिशुद्धाय दारुणे ।।
दाक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्यां समुद्भवः ।।८३
पीपा नाम सुतः सोमः सुदेवस्य तदा ह्यभूत् । कृतं राज्यपदं तेन यथा भूपेन तत्पुरे ।।८४

उस समय क्रुद्ध होकर उस सती मुनिपत्नी ने उन्हें शाप दिया कि—काम मोहित होने के नाते तुम लोग मेरे पुत्र होगे । सुरश्रेष्ठ ! महादेव का लिंग, ब्रह्मा का शिर और विष्णु के चरण की पूजा मनुष्यों द्वारा सदैव जो होती है, यह एक उत्तम उपहास की बात होगी । इस घोर वाणी को सुनकर नमस्कार पूर्वक उन देवो ने भक्ति नम्र होकर वेद ऋचाओं के पाठ द्वारा उस मुनिपत्नी की आराधना की । पश्चात् अनसूया ने कहा—आप लोग मेरे पुत्र होकर शापमुक्ति पूर्वक ही प्रसन्नचित्त हो सकेंगे । ऋषि पत्नी के इस प्रकार कहने पर उस पाप के परित्यागार्थ ब्रह्मा ने चन्द्रमा, विष्णु ने दत्तात्रेय, और रूद्र ने दुर्वासा के रूप में परिणत होकर योग करना आरम्भ किया । उसी बीच समस्त धर्मधारिणी प्रकृति देवी ने जिसे गुणात्मक (सत्, रज एवं तम रूपा) कहा गया है, अन्य ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का निर्माणकर अपना कार्य सुसम्पादन करना आरम्भ किया था । इस प्रकार योग करते हुए उपरोक्त ऋषियों का वह मन्वन्तर काल समाप्त हो गया । पश्चात् हर्षित होकर उन तीनों देवों ने उन योगियों के पास जाकर उनके कल्याणार्थ मांगलिक वाणी द्वारा उन सब से कहा—सोम नामक देव विप्र छठाँ बसु चन्द्रमा, प्रत्यूष नामक सातवाँ वसु रुद्रांश दुर्वासा, और प्रभास नामक आठवाँ वसु, योगिश्रेष्ठ दत्तात्रेय होंगे । इस भाँति उन दोनों की बातें सुनकर वे तीनों योगी वसु हो गये ।७४-८२

सूत जी बोले—बृहस्पति जी इस बात को सुनकर हर्षपूर्ण उन तीनों वसुओं ने कलि शुद्धार्थ इस भूतल में अपने अंश का प्रेषण किया, जो दक्षिण देश के वैश्यशिरोमणि राजकुल में सुदेव के गृह उत्पन्न होकर पीपा नामक पुत्र हुआ । अपने पिता के समान ही पीपा ने यथावसर राजपद पर प्रतिष्ठित होकर

रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्द्वारकां स समागतः । हरेर्मुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ।।
वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ।।८५
प्रत्यूषश्चैव पाञ्चाले वैश्यजात्यां समुद्भवः । मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ।।।८६
रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः । स वै म्लेच्छान्वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गमदर्शयत् ।।८७
प्रभासो वै शान्तिपुरे ब्रह्मजात्यां समुद्भवः । शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्द इति स्मृतः ।।
इति ते वसुमाहात्म्यं मया शौनक वर्णितम् ।।८८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये वसुमाहात्म्ये कबीरनरश्रीपीपानानकनित्यानन्दसमुत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

सधनरैदाससमुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तान्सुरान्देवो भगवान्बृहतां पतिः । अश्विनौ च समालोक्य तयोर्गाथामवर्णयत् ।।१
वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं विश्वकर्मा विचित्रकृत् । चित्रगुप्तश्रियं दृष्ट्वा चित्रलेखाविनिर्मिताम् ।।
स्पर्द्धाभूतो महामायां तुष्टाव बहुपूजनैः ।।२

राज्य का उपभोग किया था । पश्चात् रामानन्द के शिष्य होकर उन्होंने द्वारका की यात्रा की । वहाँ रहकर उन्होंने भगवान् कृष्ण द्वारा प्रेततत्वनाशिनी सुवर्ण की मुद्राओं को प्राप्तकर वैष्णवों में वितरण करने का नियम किया था । उसी भाँति प्रत्यूष ने भी पांचाल (पंजाब) प्रदेश में वैश्य श्रेष्ठ मार्गपाल के घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया । जिनकी नानक नाम से ख्याति हुई । रामानन्द के शिष्य होकर नानक ने म्लेच्छों (यवनों) को अपने अधीनकर उन्हें सूक्ष्म मार्ग का दिग्दर्शन कराया और प्रभास ने शांतिपुर में ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्लदत्त के घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया । उनकी ख्याति नित्यानंद नाम से हुई थी । इस प्रकार शौनक ! मैंने तुम्हें वसु माहात्म्य का वर्णन सुना दिया ।८३-८८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय के वसुमाहात्म्य में कबीर, नर श्री पीपा नानक और नित्यानन्द की उत्पत्ति का वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

सधनरैदाससमुत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—भगवान् बृहस्पति ने देवों से इस प्रकार की बातें कहकर पुनः अश्विनी कुमार की गाथा का वर्णन करना आरम्भ किया । वैवस्वत मन्वतर काल के पूर्व समय में विचित्र कारीगरी करने वाले विश्वकर्मा ने चित्रलेखा द्वारा निर्माण की हुई उस चित्रगुप्त को भी देखकर ईर्ष्या प्रकट करते हुए अनेक भाँति के पूजनों द्वारा महामाया का पूजन करना आरम्भ किया । पश्चात् प्रसन्न होकर उस

प्रसन्ना सा तदा देवी चित्रायां तस्य योषितिः । स्वांशाज्जाता स्मृता संज्ञा सर्वज्ञानकरी स्वयम् ॥३
षोडशाब्दे वयः प्राप्ते संज्ञायास्तत्पिता सुखी । विवाहार्थी सुरान्सर्वानाह्वयन्मेरुमूर्द्धनि ॥४
यक्षाधीशाश्च षड्विंशत्कुबेराद्यास्समागताः । यादसां पतयः प्राप्ता दश तत्रैव कामुकाः ॥५
पावका ऊनपञ्चाशद्वायवश्च तथा स्मृताः । ध्रुवौ द्वौ च स्वयं प्राप्तौ सोमास्तत्रैव षोडश ॥६
त्रयोदश च प्रत्यूषाः प्राप्ता विश्वरक्षकाः । षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं प्रभासा दिनरक्षकाः ॥७
भवाद्याश्च तदा रुद्राः शशिमण्डलरक्षकाः । आदित्याश्च स्थितास्सर्वे संज्ञायाश्च स्वयंवरे ॥८
दानवा विप्रचित्त्याद्याश्चतुराशीतिरायगुः । प्रह्लादाद्यास्तदा दैत्या वासुक्याद्याश्च पन्नगाः ॥९
शेषाद्याश्च तदा नागास्ताक्ष्याद्या गरुडाः स्मृताः । सर्वे स्वयंवरे प्राप्ता महान्कोलाहलो ह्यभूत् ॥१०
एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकन्यासमन्विता । संज्ञा देवान्प्रति तदा प्रत्यक्षमभवद्दिवि ॥११
तां समालोक्य बलवान्बलिः काममविमोहितः । करे गृहीत्वा प्रययौ पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥१२
तदा क्रोधातुरा देवा रुरुधुर्दैत्यसत्तमम् । शस्त्रास्त्रैस्तर्पयित्वा तं महद्युद्धमकारयन् ॥१३
दानवाश्च तदा दैत्या नानावाहनसंस्थिताः । देवैः सार्द्धं महद्युद्धं तुमुलं चक्रिरे मुदा ॥१४
दानवैश्च हता देवाः सुरैर्दैत्या विनाशिताः । शवभूतैरिलावर्तेऽभूदगम्या वसुन्धरा ॥१५
पक्षमात्रमभूद्युद्धं दिव्यं दानवदेवयोः । पाञ्चजन्यस्तथा धाता हयग्रीवश्च मित्रकः ॥१६
अघासुरोऽर्यमा चैव बलः शक्रस्तथैव च । बकासुरश्च वरुणः शकटः प्रांशुरेव च ॥१७
वत्सासुरो भगश्चैव विवस्वांश्च बलिः स्वयम् । प्रलम्बश्च तथा पूषा गर्दभः सविता युधि ॥१८

माहामाया ने जो सम्पूर्ण ज्ञानों की प्रदात्री है, उनकी चित्रा नामक पत्नी में अपने अंश द्वारा संज्ञा नाम से जन्म ग्रहण किया। संज्ञा की सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उसके सुखी पिता ने मेरुशिखर पर स्वयम्बर का आयोजन किया, जिसमें सभी देवों का आवाहन किया गया। उस स्वयम्बर में छब्बीस यक्षों समेत उनके अधीश्वर कुबेर, यादों गणों समेत उनके अध्यक्ष वरुण, पावकगण, उनचास वायुगण दोनों ध्रुव सोलह सोमगण, विश्वरक्षक तेरह प्रत्यूषगण, दिनरक्षक तीन सौ साठ प्रभास गण, चन्द्रमण्डलरक्षक भवादि रुद्रगण, , तथा सभी आदित्य उपस्थित थे। उसी प्रकार चौरासी विप्रचिति आदि दानव, प्रह्लाद आदि दैत्य, वासुकी आदि पन्नग, शेष आदि नाग और ताक्ष्य आदि गरुणगण भी उपस्थित थे। उस समय उस स्वयम्बर में महान् कोलाहल हो रहा था। उसी बीच देवकन्याओं के साथ वह संज्ञा देवी देवों के सामने आकाश में दिखाई पडी। उसे देखकर काममोहित होकर बलवान् बलि ने हाथ से पकड़कर उन सभी के देखते ही उन्हें लेकर चल दिया। उस समय देवों ने क्रुद्ध होकर उस दैत्यश्रेष्ठ को रोकने की चेष्टा की। अपने शस्त्रास्त्रों के घात-प्रतिघात द्वारा उससे महान् युद्ध आरम्भ किया। दानवों और दैत्यों ने अनेक भाँति के अपने-अपने वाहनों पर बैठकर उन देवों के साथ भीषण युद्ध किया।१-१४। जिससे दानवों ने देवों का और देवों ने दैत्यों का विनाश किया। देव-दानवों का वह दिव्य युद्ध एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक हुआ, जिसमें उस इलावृत की भूमि शवमय दिखाई देती थी। उस युद्ध में पाञ्चजन्य-धाता, हयग्रीवमित्रक, अघासुर अर्यमा, बल-इन्द्र, वकासुर-वरुण, शकट-प्रांशु, वत्सासुरभग विवस्वान्-बलि, प्रलम्ब-पूजा, गर्दभ-सविता,

विश्वकर्मा मयश्चैव कालनेमिर्हरिः स्वयम् । काञ्छमाणौ च विजयं ययुधाते परस्परम् ॥
पराजिताश्च ते दैत्या युद्धं त्यक्त्वा प्रदुद्रुवुः ॥१९
विवस्वांश्च तदा संज्ञां गृहीत्वा रथसंस्थिताम् । विश्वकर्माणमागम्य ददौ तस्मै प्रसन्नधीः ॥२०
विवस्वन्तं सुरश्रेष्ठं दृष्ट्वा संज्ञा वचोऽब्रवीत् । मत्पतिश्च भवान्देवो भवेत्कार्यकरस्सदा ॥२१
त्वया जिताहं भगवन्बलेर्विप्रियकारिणः । भ्रातृजाग्रहणे दोषो न भवेत्स कदाचन ॥२२
वीरभुक्ता सदा नारी स्त्रीरत्नं मुनिभिः स्मृतम् । चतुर्द्धा प्रकृतिर्देवी गुणभिन्ना गुणैकिका ॥
एका सा प्रकृतिर्माता गुणसाम्यात्सनातनी ॥२३
सत्त्वभूता च भगिनी रजोभूता च गेहिनी । तमोभूता च सा कन्या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥२४
बहवः पुरुषा ये वै निर्गुणाश्चैकरूपिणः । चैतन्याऽज्ञानवन्तश्च लोके प्रकृतिसम्भवाः ॥२५
अलोके पापजास्सर्वे देवब्रह्मसमुद्भवाः । या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम् ॥
कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत् ॥२६
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम् । भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादितिसम्भवः । विवस्वान्भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत् ॥२८
सुताः कन्यास्तयोर्जाता मनुर्वैवस्वतस्तथा । यमश्च यमुना चैव दिव्यतेजोभिरन्विताः ॥२९
तदा संज्ञा सती साक्षात्तेजोभूतं पतिं स्वकम् । ज्ञात्वा छायां समुत्पाद्य तपसे वनमागता ॥३०

विश्वकर्मा मय, और कालनेमि विष्णु आपस में एक दूसरे को पराजित करने की इच्छा से युद्ध कर रहे थे। पश्चात् उस युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने पलायन किया। उस समय विवस्वान् ने संज्ञा को रथ पर बैठाकर ले जाकर विश्वकर्मा को सौंप दिया। उस समय देवश्रेष्ठ विवस्वान् को प्रसन्न देखकर संज्ञा ने उनसे कहा—आप मेरे पति होकर मेरा कार्य सदैव किया करें। क्योंकि भगवन्! तुम्हीं ने उस वली बलि को पराजित कर विजय रूप में मुझे प्राप्त किया है। भाई की पुत्री (भतीजी) का ग्रहण करने में कोई दोष भी न होगा, क्योंकि मुनियों ने यह स्वीकार किया है कि नारी सदैव वीरभोग्या हैं और विशेषकर स्त्रीरत्न-गुणयुक्ता प्रकृति देवी अपने को गुण भेद द्वारा चार रूपों विभक्त करती है— एक भाग से वह सनातनी प्रकृति माता, सतोगुण रूप से भगिनी, रजोगुण रूप से गृहिणी, और तमोगुण रूप से कन्या होती है, अतः उस देवी को नमस्कार है। तथा एकरूपी उस निर्गुण को अनेक पुरुष रूपों में विभक्त किया है, जो चैतन्य, अज्ञानी एवं प्रकृति द्वारा उत्पन्न कहे जाते हैं। अलोक निवासी सभी लोग पापकर्म द्वारा ब्रह्मादि देवों से उत्पन्न हैं। और उसे ही ज्ञानमयी नारी पुरुष रूप में वरण करती है। अतः उस स्त्री के पुत्र, पिता, भ्राता और पति कौन हो सकते हैं? क्योंकि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री, विष्णु ने अपनी माता, एवं भगवान् शंभु ने अपनी भगिनी का (स्त्रीरूप) ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की है। अदितिपुत्र विवस्वान् ने इस वेदमयी वाणी को सुनकर उस भ्रातृपुत्री संज्ञा का ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की।१५-२८। पश्चात् उन दोनों के द्वारा कन्या सुत यम और यमुना वैवस्वत तेजपूर्ण जन्म हुआ। उस समय संज्ञा ने अपने पति को तेजपुञ्ज जानकर अपनी प्रतिनिधि छाया को वहाँ रखकर स्वयं तप करने के लिए प्रस्थान किया। अनन्तर

सावर्णिश्चमनुस्तस्यां शनिश्च तपती तथा । छायायां च समुद्भूताः क्रूरदृष्ट्या विवस्वतः ॥३१
पुत्रभेदेन तां नारीं मत्वा मायां रुषान्वितः । चकार भस्मभूतां तां विवस्वान्भगवान्रविः ॥३२
तदा शनिश्च सावर्णिर्विवस्वन्तं रूषान्वितम् । ज्ञात्वा च क्रोधताम्राक्षौ युयुधाते परस्परम् ॥३३
कियता चैव कालेन भग्नभूतौ विवस्वता । हिमाचले गिरौ प्राप्य तेपतुः परमं तपः ॥३४
त्रिवर्षान्ते च सा देवी महाकाली समागता । अर्चितं च वरं ताभ्यां ददौ तद्भक्तिवत्सला ॥३५
पुनस्तौ च समागम्य युयुधाते विवस्वता । विवस्वान्भयभीतश्च त्यक्त्वा युद्धं पराभवत् ॥३६
तत्र स्थिता प्रिया संज्ञा वडवारूपधारिणी । कुरुखण्डे महारम्ये तपन्ती तप उल्बणम् ॥३७
गत्वा ददर्श भगवान्संज्ञां सम्बोधकारिणीम् । कामातुरो हयो भूत्वा तत्र रेमे तया सह ॥३८
पञ्चवर्षान्तरे संज्ञा गर्भं तस्माद्दधौ स्वयम् । तनयौ च समुद्भूतौ दिव्यरूपपराक्रमौ ॥३९
पितुर्दुःखं समालोक्य जग्मतू रविमण्डलम् । जित्वा बन्धू दुराचारौ क्रूरदृष्ट्या तदा स्वयम् ॥४०
बद्ध्वा तौ स्वपितुः पार्श्वं सम्प्राप्तौ वडवासुतौ । दृष्ट्वा विवस्वान्भगवान्वैरिणौ समुपागतौ ॥४१
सम्पीडच ताडयामास लोहदण्डैर्भयानकैः । पङ्गुभूतौ पुनस्त्यक्त्वा छायापुत्रौ दिवाकरः ॥४२
आश्विनेयौ समालोक्य वचनं प्राह तौ मुदा । जीव ईशो यथा मित्रे नरनारायणौ यथा ॥
एकनाम्ना युवां प्रीतौ नासत्यौ च भविष्यथः ॥४३
सोमशक्तिरिडादेवी ज्येष्ठपत्नी भविष्यति । पिङ्गला सूर्यशक्तिश्च लघुपत्नी भविष्यति ॥४४

विवस्वान् ने सावर्णि मनु शनि और तपती को अपनी क्रूरदृष्टि द्वारा छाया के गर्भ से उत्पन्न किया। किन्तु पुत्रभेद से उसे नारी समझने पर भी क्रुद्ध होकर भगवान् विवस्वान् ने उस माया को भस्मकर दिया। पश्चात् शनि और सावर्णि ने विवस्वान् को क्रुद्ध होते देखकर आपस में युद्ध किया। कुछ काल के उपरांत विवस्वान् द्वारा भीत होकर उन दोनों ने हिमालय पर्वत पर जाकर तप करना आरम्भ किया। तीन वर्ष के उपरांत भक्तवत्सला महाकाली देवी ने उन दोनों को वर प्रदान किया। वे दोनों पुनः आकर विवस्वान् से युद्ध करने लगे, किन्तु भयभीत होकर विवस्वान् ने उस युद्ध से पलायन कर उस रमणीक कुरु प्रदेश की यात्रा की, जहाँ उनकी संज्ञा नामक प्रिय बडवा (घोड़ी) का रूप धारणकर महाभीषण तप कर रही थी। भगवान् विवस्वान् ने वहाँ पहुँचकर उस अपनी संज्ञा पत्नी को देखकर कामपीड़ित होते हुए अश्वरूप धारण पूर्वक उसके साथ रमण किया। पाँच वर्ष तक रमण करने के उपरांत संज्ञा ने गर्भ धारण किया, जिससे दिव्य रूप एवं पराक्रम पूर्ण दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। उन दोनों पुत्रों ने अपने पिता को दुःखी देखकर रविमण्डल में पहुँचकर उन दोनों दुराचारी बन्धुओं को विजयपूर्वक बाँधकर अपने पिता के सामने उपस्थित किया। उन दोनों बडवापुत्रों द्वारा उपस्थित अपने शत्रुओं को देखकर भगवान् विवस्वान् ने भयानक लोहदंड से उन्हें इस भाँति प्रताडित किया जिससे वे दोनों छायापुत्र पंगु हो गये।२९-४२। पश्चात् दिवाकर ने बडवा पुत्रों की ओर देखकर हर्षित होकर कहा—जिस प्रकार जीव, ईश (परमात्मा) और नर-नारायण एक रूप रंग एवं अभिन्न मित्र हैं, उसी प्रकार 'नासत्य' इस एक नाम से प्रख्यात होकर तुम दोनों प्रसन्न रहोगे। सोम की शक्ति इड़ादेवी ज्येष्ठ की और सूर्य की शक्ति पिंगला कनिष्ठ पुत्र की पत्नी होगी। इसलिए प्रथम पुत्र की इडापति और दूसरे की पिंगलापति

इडापतिस्स वै नाम द्वितीयः पिङ्गलापतिः । द्वादशस्स नृणां राशेः क्रूरदृष्टिः शनैश्चरः ।।
तस्य शान्तिकरो ज्येष्ठो भविष्यति महीतले ।।४५
द्वितीयश्च नृणां राशेः सावर्णिर्भ्रमकारकः । तस्य शान्तिकरो भूमौ भविता पिङ्गलापतिः ।।४६
जन्मराशिस्थिता देवी तपन्ती तापकारिणी । इडा च पिङ्गला तस्याः शान्तिकर्त्र्यौ भविष्यतः ।।४७
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुरवैद्यो बभूवतुः । सावर्णिश्च शनी राहुः केतुः स्वर्गप्रतापनः ।।
तेषां तु परिहारार्थौ दस्त्रौ चाश्विनिसम्भवौ ।।४८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रसन्नौ सुरसत्तमौ । स्वांशान्महीतले जातौ शूद्रयोन्यां रवेस्सुतौ ।।४९
चाण्डालस्य गृहे जातश्छागहन्तुरिडापतिः । सधनो नाम विख्यातः पितृमातृपरायणः ।।५०
शालिग्रामशिलातुल्यं छागमांसं विचिक्रिये । कबीरं समुपागम्य शिष्यो भूत्वा रराज वै ।।५१
स तु सत्यनिधिः पूर्वं ब्रह्मणस्तप आस्थितः । भयभीतां च गां तत्र चाण्डालाय ह्यदर्शयत् ।।
राजगेहे करस्तस्मात्सधनस्य लयं गतः ।।५२
चर्मकारगृहे जातो द्वितीयः पिङ्गलापतिः । मानदा सस्य तनयो रैदास इति विश्रुतः ।।५३
पुरीं काशीं समागम्य कबीरं रामतत्परम् । जित्वा मतविवादेन शङ्कराचार्यमागतः ।।५४
तयोर्विवादो ह्यभवदहोरात्रं मतान्तरे । पराजितस्स रैदासो नत्वा तं द्विजसत्तमम् ।।

के नाम से ख्याति होगी । मनुष्यों की बारहवीं राशि के स्थान में प्राप्त क्रूरदृष्टि शनि की शांति इस भूतल में ज्येष्ठ पुत्र द्वारा होगी और उसी भाँति दूसरे स्थान में प्राप्त सावर्णि (शनि) राहु और केतु भ्रमण कारक होते हैं, उसकी शांति पिंगलापति करेंगे । उसी प्रकार जन्म राशि-स्थान में रहकर तपंती देवी ताप करने वाली होगी । उसकी शांति दुर्गा और पिंगला द्वारा होगी । इसे सुनकर अश्विनी कुमार वैद्य और सावर्णि शनि, राहु और केतु हुए, जो स्वर्ग में ताप प्रदान करते रहते हैं । उन्ही के वारणार्थ अश्विनी कुमारों का जन्म है ।४३-४८

सूत जी बोले—गुरु की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होकर उन दोनों देव श्रेष्ठों ने अपने अंश द्वारा इस भूतल में शूद्र कुल में जन्म ग्रहण किया । उनमें प्रथम पुत्र इडापति ने बकरे का वध करके चाण्डाल के घर उत्पन्न होकर 'सघन' नाम से प्रख्याति प्राप्त की, जो माता-पिता का परमभक्त था । उसने शालग्रामशिला के समान छाग (बकरे) का मांस विक्रय किया था । पश्चात् कबीर के पास पहुँचकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । यह पूर्व जन्म में सत्यनिधि नामक तपस्वी ब्राह्मण था । एक बार एक भयभीत गौ इसने चाण्डाल को सौंप दी, जिससे इसे राजघर से कर की प्राप्ति हुई । अनन्तर धन समेत स्वयं विनष्ट हो गया था । दूसरे पुत्र पिंगलापति ने मानदास चर्मकार के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होकर रैदास के नाम से प्रख्याति की । उसने काशीपुरी में राम परायण कबीरदास को अपने मत-विवाद द्वारा पराजित किया था । पश्चात् शंकराचार्य के सामने भी उन दोनों का एक रात-दिन विवाद हुआ, जिसमें

रामानन्दमुपागम्य तस्य शिष्यत्वमागतः ॥५५
इति ते कथितं विप्र सुरांशाश्च यथाभवन् । कलिशुद्धिकरी लीला येषां मार्गप्रदर्शिनाम् ॥५६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये अश्विनीकुमारावतारे सधनरैदाससमुत्पत्तिवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ।१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

विष्णुस्वामीमध्वाचार्यवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवो देवमाहात्म्यमुत्तमम् । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य ब्रह्मयोनौ बभूव ह ॥१
इष्टिका नगरी रम्या गुरुदत्तस्य वै सुतः । रोपणो नाम विख्यातो ब्रह्ममार्गप्रदर्शकः ॥२
सूत्रग्रन्थमयीं मालां तिलकं जलनिर्मितम् । वासुदेवेति तन्मन्त्रे कलौ कृत्वाजनेजने ॥३
कृष्णचैतन्यमागम्य कम्बलं च तदाज्ञया । गृहीत्वा स्वपुरीं प्राप्य कृष्णध्यानपरोभवत् ॥४
अतः परं शृणु मुने चरित्रं च हरेर्मुदा । यच्छ्रुत्वा च कलौ घोरे जनो नैव भयं व्रजेत् ॥५
पञ्चाब्दे कृष्णचैतन्ये यज्ञांशे यज्ञकारिणि । वङ्गदेशभवो विप्र ईश्वरः शारदाप्रियः ॥६
प्राप्तः शान्तिपुरे ग्रामे वाग्देवीवरदर्पितः । सतां दिग्विजयं कृत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ॥७

रैदास ने पराजित होकर रामानन्द की शिष्य-सेवा स्वीकार की। विप्र ! इस प्रकार मैंने उन देवांशों की उत्पत्ति सुना दी, जिन मार्गप्रदर्शकों की लीला कलि को शुद्ध करती है।४९-५६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में अश्विनी कुमार, सधन, रैदास की उत्पत्ति वर्णन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त।१८।

अध्याय १९

विष्णुस्वामी मध्वाचार्य का वर्णन

सूत जी बोले—इस प्रकार देवों के माहात्म्य वर्णन करने के उपरांत भगवान् वृहस्पति ने मुख द्वारा अपना अंश निकालकर ब्रह्मयोनि में उत्पन्न होने के लिए प्रेषण किया, जो इष्टिका नामक रमणीक पुरी के निवासी गुरुदत्त के यहाँ पुत्ररूप से उत्पन्न होकर रोपण नाम से ख्याति प्राप्त की। ब्रह्ममार्ग के प्रदर्शक उस रोपण ने गाँठयुक्त सूत्र की माला, जल का तिलक और वासुदेव नामक मंत्र का अनेक मनुष्यों में प्रसार किया था। पश्चात् कृष्ण चैतन्य के पास पहुँचकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कम्बल धारण किये। अपनी पुरी में जाकर कृष्ण का ध्यान करना आरम्भ किया। मुने ! इसके उपरांत मैं भगवत्चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! जिसके श्रवण करने से मनुष्यों को कलिभय नहीं होता है। कृष्ण चैतन्य की पाँच वर्ष की अवस्था में, जो यज्ञांश एवं यज्ञकर्ता कहे जाते हैं, एक केशव नामक ब्राह्मण आया, जो काश्मीर नगर का रहने वाला एवं शारदा प्रिय था। उस शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् ने शास्त्रार्थ द्वारा दिग्विजय करते हुए वाग् देवी द्वारा प्राप्त वरदान से मदान्ध होकर शान्तिपुर की यात्रा की।१-७। वह ब्राह्मण

गङ्गाकूले स्तवं दिव्यं रचित्दा[1] सोऽपठद्द्विजः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्ञांशस्समुपागतः ।।
उवाच वचनं रम्यमीश्वरं स्तुतिकारिणम् ।।८
सुकृतं पूर्तमर्णं च श्रुतीनां सारमेव हि ! इत्युक्तं भवता स्तोत्रे दूषणं भूषणं वद ।।९
तथाह चेश्वरो धीमान्दूषणं नैव दृश्यते । इत्युक्त्वा प्राह भगवान्भूषणं नैव दृश्यते ।।१०
सुकृतं च स्मृतं धर्मः पूर्तं चैतन्यमुच्यते । अर्णं वीर्यमिति ज्ञेयं श्रुतिसारमतस्त्रयम् ।।
गङ्गाजले दूषणोऽयं भूषणोऽयं कलेवरे ११
इति श्रुत्वा स वै भिक्षुर्विस्मितोऽभून्न्न गीः प्रियः । लज्जितं स्वजनं दृष्ट्वा शारदा सर्वमङ्गला ।।
विहस्येश्वरमित्याह कृष्णश्चैतन्यसंज्ञकः ।।१२
इति श्रुत्वा तु तच्छिष्यः कृष्णमन्त्रउपासकः । बभूव वैष्णवश्रेष्ठः कृष्णचैतन्यसेवकः ।।१३

सूत उवाच

श्रीधरो नाम विख्यातो ब्राह्मणः शिवपूजकः । पत्तने नगरे रम्ये तस्य सप्ताहमुत्तमम् ।।१४
राज्ञा भागवतं तत्र कारितं सधनं बहु । गृहीत्वा श्रीधरो विप्रो जगाम श्वशुरालये ।।१५
तत्रोष्य मासमात्रं च स्वपत्न्या सह वै द्विजः । स्वगेहमगमन्मार्गे चौराः सप्त तु तं प्रति ।
शपथं रामदेवस्य कृत्वा सार्द्धमुपाययुः ।।१६

वहाँ पहुँचकर गंगा के तट पर अपने बताये हुए स्तोत्र से उनकी आराधना कर रहा था । उसी बीच यज्ञांशदेव ने वहाँ आकर उस स्तुति करने वाले केशव नामक ब्राह्मण से रम्य वाणी द्वारा कहा—सुकृत, पूर्त और अर्ण यही तीन श्रुतियों के सार बताये गये हैं, जो आपके इस स्तोत्र में दूषणरूप हैं तथा इसमें भूषण कौन हैं, कहने की कृपा कीजिये ? इसे सुनकर केशव ने कहा—इसमें कोई दोष नहीं दिखाई देता है, इतना कहने पर यज्ञांश भगवान् ने कहा—तो इसमें कोई भूषण भी नहीं दिखाई देता है । क्योंकि सुकृत धर्म, पूर्त चैतन्य और अर्ण बीज को कहते है, इसीलिए ये तीनों श्रुतियों के तत्त्व कहे गये हैं । जिस प्रकार गंगाजल में जो दूषणरूप है, वही इस देह में भूषणरूप होता है । इसे सुनकर सरस्वती प्रिय उस ब्राह्मण ने आश्चर्यचकित नेत्र से उन्हें देखने लगा । उस समय सर्वमंगला शारदा ने अपने भक्त को लज्जित होते देखकर मन्दहासपूर्वक केशव से कहा—स्वयं भगवान् यह यज्ञांश रूप हैं । यह सुनकर उस ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करके कृष्ण मंत्र की उपासना आरम्भ की, जो पश्चात् कृष्ण चैतन्य का वैष्णवश्रेष्ठ सेवक हुआ ।८-१३

सूत जी बोले—श्रीधर नामक एक प्रख्यात ब्राह्मण था, जो सदैव शिव जी की उपासना करता था । पत्तनाधीश्वर ने एक बार श्रीधर ब्राह्मण को सादर बुलवाकर अपने यहाँ उनके द्वारा भागवत का सप्ताह पारायण कराया, जिसमें उन्हें बहुत सा धन प्राप्त हुआ । उसे लेकर श्रीधर ने अपने श्वसुर के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर एक मास के उपरांत पत्नी समेत अपने घर की यात्रा की । यात्रा के समय मार्ग में सातों चोरगण भगवान् राम के शपथ द्वारा अपनी सज्जनता का परिचय देकर उनके साथ चल रहे

---

१. रचयित्वा ।

समाप्ते विपिने रम्ये हत्वा ते श्रीधरं द्विजम् । गोरथं सधनं तत्र सभार्यं जगृहुस्तदा ॥१७
एतस्मिन्नन्तरे रामः सच्चिदानन्दविग्रहः । सप्त तांश्च शरैर्हत्वा पुनरुज्जीव्य तं द्विजम् ॥१८
प्रेषयामास भगवांस्तदा वृन्दावने प्रभुः । तदा प्रभृति वै विप्रः श्रीधरो वैष्णवोऽभवत् ॥१९
सप्ताब्दे चैव यज्ञांशे गत्वा शान्तिपुरीं शुभाम् । ब्रह्मज्ञानमुपागम्य यज्ञांशाच्छिष्यतां गतः ॥
टीका भागवतस्यैव कृता तेन महात्मना ॥२०

सूत उवाच

रामशर्मा स्थितः काश्यां शङ्करार्चनतत्परः । शिवरात्रे द्विजो धीमानविमुक्तेश्वरस्थले ॥
एकाकी जागरन्ध्यानी जप्त्वा पञ्चाक्षरं शुभम् ॥२१
तदा प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो लोकशङ्करः । वरं ब्रूहीति वचनं तमाह द्विजसत्तमम् ॥२२
रामशर्मा शिवं नत्वा वचनं प्राह नम्रधीः । भवान्यस्य समाधिस्थो ध्याने यस्य परो भवान् ॥२३
स देवो हृदये मह्यं वसेत्तव वरात्प्रभो । इत्युक्तवचने तस्मिन्विहस्याह महेश्वरः ॥२४
एका वै प्रकृतिर्माया त्रिधा ब्रह्मस्वरूपिणी । शून्यभूताव्ययस्यैव पुरुषस्यार्द्धतैजसम् ॥
गृहीत्वा लोकजननीं पुंक्लीबौ सुषुवे सुतौ ॥२५
पुमान्नारायणः साक्षाद्गौरश्चाष्टभुजैर्युतः । त्रिधा बभूव भगवान्स्वेच्छया विश्वरक्षकः ॥२६
अर्धतेजास्स वै विष्णुर्वनमाली चतुर्भुजः । क्षीरशायी स आदित्यः स्वयं सद्गुणदेवता ॥२७

थे, किन्तु जंगल प्रदेश के समाप्त होने पर उन चोरों का जो उन श्रीधर ब्राह्मण के निधन पूर्वक गोरथ (बहल) समेत धन और स्त्री लेकर उपस्थित होना चाहते थे कि उसी समय सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् राम ने अपने वाणों द्वारा उन चोरों के निधन करने के उपरांत श्रीधर को जीवन-प्रदान कर उनके घर भेज दिया। भगवान् के उस चरित्र का स्मरण कर श्रीधर ने उसी समय से वृन्दावन में जाकर वैष्णव के देष में रहते हुए उस शुभ शान्तिपुर की भी यात्रा की। उस यज्ञांशदेव की सात वर्ष की अवस्था थी। वहाँ पहुँचने पर ऊन्होंने यज्ञांशदेव द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति पूर्वक उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की और वहीं रहकर भागवत पुराण की टीका की रचना की।१४-२०

सूत जी बोले—एक बार रामशर्मा काशीपुरी में शिवरात्रि के दिन भगवान् शिव की अर्चना कर रहे थे। उस समय उस विमुक्तेश्वर स्थान में वही एकाकी ब्राह्मण शिव जी के पंचाक्षर मंत्र के जप पूर्वक ध्यान कर रहा था। उसे ध्यानमग्न देखकर लोक के कल्याणकारी भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से वरयाचना के लिए कहा। उस समय रामशर्मा ने नमस्कार पूर्वक विनम्र वाणी द्वारा शिव जी से कहा—आप जिसके लिए समाधिनिष्ठ होते हैं, और जिसके ध्यान में अत्यन्त तल्लीन रहते हैं। प्रभो! वह देव आपके वरदान द्वारा मेरे हृदय में निवास करे। ब्राह्मण के ऐसा कहने पर हँसते हुए महेश्वर जी ने कहा—उसी एक प्रकृति-माया ने जो ब्रह्मस्वरूपिणी एवं लोक की जननी है शून्य भूत उस अव्यय पुरुष के आधे तेज के ग्रहण पूर्वक स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर पुमान् (नर) और क्लीब (नपुंसक) दो पुत्रों की उत्पत्ति की। वह पुमान् (पुरुष) साक्षात् नारायण भगवान् हैं, जो गौरवर्ण एवं आठ भुजाओं से युक्त हैं। उस विश्व के त्राता भगवान् ने स्वेच्छया। तीन भागों में विभक्त होकर आधे तेज द्वारा विष्णु, वनमाली, चतुर्भुज, क्षीरशायी, एवं आदित्य के रूपों में प्रकट होकर पुनः आधे तेज द्वारा नर-

अर्धतेजा द्विधा सैव नरनारायणावृषी । जिष्णुर्विष्णुः स वै ज्ञेयो पर्वते गन्धमादने ।।२८
क्लीबः संङ्कर्षणः साक्षाद्ब्रह्मरूपं त्रिधाभवत् । पूर्वार्द्धाद्गौरशेषश्च परार्धाद्रामलक्ष्मणौ ।।२९
गौरशेषो द्वापरान्ते बलभद्रः स वै स्वयम् । रामलक्ष्मणयोर्ध्यानं बलभद्रस्य पूजनम् ।।
सदा मया च कर्तव्यं तत्प्राप्य त्वं सुखी भव ।।३०
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो रामानन्दस्य चाभवत् । कृष्णचैतन्यमागम्य द्वादशाब्दवयोवृतम् ।।३१
शिष्यो भूत्वा स्थितस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः । कृतं तदाज्ञया तेनाध्यात्मरामायणं शुभम् ।।३२

सूत उवाच

जीवानन्दस्स वै विप्रो रूपानन्दसमन्वितः । श्रुत्वा चैतन्यचरितं पुरीं शान्तिमयीं गतः ।।३३
चैतन्ये षोडशाब्दे च नत्वा तं तौ समास्थितौ । ऊचतुः कृष्णचैतन्यं भवता किं मतं स्मृतम् ।।३४
विहस्याह स चैतन्यः शाक्तोऽहं शक्तिपूजकः । शैवोऽहं वै द्विजौ[1] नित्यं लोकार्थे शङ्करव्रती ।।
वैष्णवोऽहं ध्यानपरो देवदेवस्य भक्तिमान् ।।३५
अहं भक्तिमदं पीत्वा पापपुंसो बलिं शुभम् । शक्त्यै समर्प्य होमान्ते ज्ञानाग्नौ यज्ञतत्परः ।।३६
इति श्रुत्वा द्विजौ तौ तु तस्य शिष्यत्वमागतौ । आचारमार्गमागम्य सर्वपूज्यौ बभूवतुः ।।३७
तदाज्ञयाषट्सन्दर्भं जीवानन्दश्चकार वै । उवास तत्र मतिमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ।।३८

नारायण ऋषि के रूप में अवतरित हुआ है। जो गंधमादन पर्वत पर जिष्णु विष्णु रूप से प्रथित है। साक्षात् ब्रह्मरूप संकर्षण ने जो तीन भागों में विभक्त होकर पूर्वार्द्ध भाग से गौरवर्ण के शेष और अपरार्द्ध से रामलक्ष्मण का रूप धारण करता है। वही गौर शेष द्वापर के अन्तिम समय में स्वयं बलभद्र होता है। इसलिए राम लक्ष्मण ध्यान और बलभद्र का पूजन मैं सदैव करता हूँ, उसकी प्राप्ति करके तुम सुखी होगे। इतना कहकर शंकर जी अन्तर्हित हो गये और वह देव रामानन्द के यहाँ उत्पन्न होकर बारह वर्ष की अवस्था प्राप्तकर कृष्ण चैतन्य के घर जाकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करके कृष्ण चैतन्य के पुजारी हुए। पश्चात् कृष्ण चैतन्य की आज्ञा प्राप्तकर उन्होंने अध्यात्म रामायण की रचना की।२१-३२

सूत जी बोले—इस भाँति यज्ञांशदेव के चरित को सुनकर निम्बादित्य ब्राह्मण ने रामानुज समेत शान्तिपुरी की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर वे दोनों यज्ञांशदेव को नमस्कार करके उनके पास बैठ गये और कृष्ण चैतन्य से प्रश्न किया कि—आप किस मत के अनुयायी हैं? उस समय यज्ञेश देव की सोलह वर्ष की अवस्था थी। उन्होंने हँसकर कहा—ब्राह्मण देव! मैं शाक्तमत को स्वीकार कर शक्ति की उपासना करता हूँ, लोक के कल्याणार्थ शंकर के व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए शैव, और देवाधिदेव का भक्ति पूर्वक ध्यान करने वाला वैष्णव भी हूँ। मैं भक्तिरूपी मद का पानकर पापपुरुष की बलि उस शक्ति देवी को समर्पित करते हुए ज्ञानरूप अग्नि की ज्वाला में हवन करके यज्ञ की पूर्ति करता हूँ। इसे सुनकर वे दोनों उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक आचार मार्ग अपनाकर सर्वपूज्य हुए। वहाँ रहकर मतिमान् रामानुज मुनि आचार-भाष्य की रचना करके कृष्ण चैतन्य की ही उपासना करते रहे।

---

१. इदमुभयोत्सम्बोधनम्।

रूपानन्दो गुरोराज्ञां पुरस्कृत्य महामुनिः । कृष्णखण्डं पुराणाङ्गं चक्रे दशसहस्रकम् ।।
तत्रोष्य गुरुसेवाढ्यो राधाकृष्ण प्रपूजकः ।।३९

सूत उवाच

विष्णुस्वामी स वै विप्रो गतः शान्तिपुरीं शुभाम् । यज्ञांश ऊनविंशाब्दे नत्वा तं प्राह स द्विजः ।।४०
को देवः सर्वदेवानां पूज्यो ब्रह्माण्डगोचरे । इति श्रुत्वा स भगवानुवाच द्विजसत्तमम् ।।४१
सर्वपूज्यो महादेवो भक्तानुग्रहकारकः । विष्ण्वीश्वरश्च रुद्रेशो ब्रह्मेशो भगवान्हरः ।।४२
विना तत्पूजकेनैव पदार्था निष्फला हि ते । ये तु वै विष्णुभक्ताश्च शङ्करार्चनतत्पराः ।।४३
शिवप्रसादात्सुलभा वैष्णवी भक्तिरुत्तमा । वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम् ।।४४
कर्मभूम्यां समागम्य न पूजयति नारकः । विष्णुस्वामीति तच्छ्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुणैः ।।४५
कृष्णमन्त्रमुपासित्वा[1] स बभूव शिवार्चकः ।।४६
वैष्णवी संहिता तेन निर्मिता च तदाज्ञया । तत्रोष्य विष्णुभक्तश्च कृष्णचैतन्यपूजकः ।।४७

सूत उवाच

मध्वाचार्यः कृष्णपरो ज्ञात्वा यज्ञांशमुत्तमम् । गत्वा शान्तिपुरीं रम्यां नत्वा तं प्राह स द्विजः ।।४८
कृष्णोऽयं भगवान्साक्षात्तदन्ये विश्वकारकाः । देवा धात्रादयो ज्ञेयास्तर्हि तत्पूजनेन किम् ।।४९

महामुनि निम्बादित्य ने भी गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर दशसहस्रात्मक कृष्णखण्ड की रचना की, जो पुराण का अंग कहा गया है । पश्चात् राधा कृष्ण की उपासना पूर्वक गुरु की सेवा में तत्पर रहकर जीवन व्यतीत किया ।३३-३९

सूत जी बोले—विप्रवर विष्णु स्वामी ने भी उस शुभ शान्तिपुरी जाकर नमस्कार पूर्वक यज्ञांशदेव से कहा—इस निखिल ब्रह्माण्ड में समस्त देवों का पूजक कौन देव है? उस समय यज्ञांशदेव की उन्नीस वर्ष की अवस्था थी । उसे सुनकर भगवान् यज्ञांशदेव ने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से कहा—सर्वपूज्य भगवान् महादेव हैं, वही भक्तों के ऊपर कृपा किया करते हैं । भगवान् शिव ही विष्णु, रुद्र एवं ब्रह्म के ईश्वर हैं। अतः विना शिव की पूजा किये सभी पदार्थ निष्फल हो जाते हैं । जो विष्णुभक्त नित्य शिव की अर्चना करता है, उसे शिव जी की प्रसन्नता द्वारा भगवान् विष्णु की उत्तम भक्ति सुलभ हो जाती है । जो पुरुष इस कर्म भूमि में उत्पन्न होकर वैष्णव होते हुए लोक शंकर भगवान् शंकर की पूजा नहीं करता है, वह नारकीय है । इसे सुनकर विष्णु स्वामी ने उनके गुणों पर मुग्ध होकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । कृष्ण मंत्र की आराधना पूर्वक शिव जी की अर्चना कर जीवन व्यतीत किया । वहाँ रहकर उस विष्णु भक्त एवं कृष्ण चैतन्य के सेवक ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वैष्णवी संहिता की रचना की ।४०-४७

सूत जी बोले—भगवान् कृष्ण के उपासक मध्वाचार्य ने देवश्रेष्ठ यज्ञांश को अवतरित सुनकर शान्तिपुरी को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस ब्राह्मण ने नमस्कार पूर्वक यज्ञांशदेव से कहा—साक्षात् यह कृष्ण ही सब के भगवान् एवं आराध्य देव हैं और अन्य ब्रह्मादि देवता केवल विश्व स्रष्टा

---

१. ल्यबभाव आर्षः ।

शक्तिमार्गपरा विप्रा वृथा हिंसामयैर्मखैः । अश्वमेधादिभिर्देवान्पूजयन्ति महीतले ।५०
इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशश्च शचीसुतः । न कृष्णो भगवान्साक्षात्तामसोऽयं च शक्तिजः ॥५१
चौरोऽयं सर्वभोगी च हिंसको मांसभक्षकः । परस्त्रियं भजेद्यो वै स गच्छेद्यममन्दिरम् ॥५२
चौरो यमालयं गच्छेज्जीवहन्ता विशेषतः । एभिश्च लक्षणैर्हीनो भगवान्प्रकृतेः परः ॥५३
यस्य बुद्धिः स वै ब्रह्माऽहङ्कारो यस्य वै शिवः । शब्दमात्रा गणेशश्च स्पर्शमात्रा यमः स्वयम् ॥५४
रूपमात्रा कुमारो वै रसमात्रा च यक्षराट् । गन्धमात्रा विश्वकर्मा श्रवणं भगवाञ्छनिः ॥५५
यस्य त्वक्स बुधो ज्ञेयश्चक्षुस्सूर्यः सनातनः । यज्जिह्वा भगवाञ्छुक्रो घ्राणस्तस्याश्विनीसुतौ ॥५६
यन्मुखं भगवाञ्जीवो यस्य हस्तस्तु देवराट् । कृष्णोऽयं तस्य चरणौ लिङ्गं दक्षः प्रजापतिः ॥
गुदं तद्भगवान्मृत्युस्तस्मै भगवते नमः ॥५७
हिंसायज्ञैश्च भगवान्स च तृप्तिमवाप्नुयात् । स च यज्ञपशुर्वह्नौ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
तस्य मोक्षप्रभावेन महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥५८
विधिहीनो नरः पापी हिंसायज्ञं करोति यः । अन्धतामिस्रनरकं तद्दोषेण वसेच्चिरम् ॥५९
महत्पुण्यं महत्पापं हिंसायज्ञेषु वर्तते । अतस्तु भगवान्कृष्णो हिंसायज्ञं कलौ युगे ॥६०
समाप्य कार्तिके मासि प्रतिपच्छुक्लपक्षके । अन्नकूटमयं यज्ञं स्थापयामास भूतले ॥६१
देवराजस्तदा क्रुद्धो ह्यनुजं प्रति दुःखितः । वज्रं संप्लावयामास तदा कृष्णः सनातनीम् ॥

आदि हैं अतः इनके पूजन से कोई लाभ नहीं । शक्ति मार्ग अपना कर जो ब्राह्मण हिंसापूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा देवों की आराधना करते हैं, उनका वह करना व्यर्थ है ।' इसे सुनकर इन्द्राणी पुत्र यज्ञांशदेव ने हँसकर कहा—कृष्ण साक्षात् भगवान् नहीं अपितु तामसी शक्ति द्वारा उत्पन्न होने के नाते तामस है ये चोर, सर्वभोगी, हिंसक, और मांसभोजी भी हैं क्योंकि परस्त्री का उपभोग करने वाले चोर और विशेषकर जीवहिंसक को यमपुरी जाना पड़ता है । भगवान् इन लक्षणों से हीन एवं प्रकृति से भी परे हैं । उसकी बुद्धि अहंकार शिव, शब्दमात्रा गणेश, स्पर्शमात्रा यम, रूपमात्रा कुमार, रसमात्रा कुबेर, गंध-मात्रा विश्वकर्मा, श्रवण शनि, त्वक् बुध एवं नेत्र सनातन सूर्य, जिह्वा शुक्र, घ्राण (नासा) अश्विनी कुमार, मुख वृहस्पति, हाथ देवेन्द्र, हैं । यह कृष्ण उसी देव के चरण, लिंग दक्ष प्रजापति, तथा गुदा मृत्यु हैं, उस भगवान् को नमस्कार है । वह भगवान् हिंसापूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से ही प्रसन्न होता है और वह पशु, जो आहुति द्वारा अग्नि में प्रविष्ट होता है परमपद की प्राप्ति करता है । उसके मोक्ष हो जाने पर कर्ता को अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । जो पापी पुरुष हिंसायज्ञ की पूर्ति सविधान नहीं करता है, उसी दोष के कारण वह अंध तामिस्र नामक नरक में चिरकाल तक निवास करता है । इसलिए हिंसायज्ञ के अनुष्ठान में अत्यन्त पुण्य और अत्यन्त पाप की भी प्राप्ति होती है । अतः भगवान् कृष्ण ने इस कलि के समय हिंसायज्ञ का निषेध कर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन इस भूतल पर अन्नकूट यज्ञ की स्थापना की है।४८-६१। उस समय देवराज ने क्रुद्ध होकर अपने अनुज के लिए दुःख

प्रकृतिं स च तुष्टाव लोकमङ्गलहेतवे ।।६२
तदा सा प्रकृतिर्माता स्वपूर्वार्द्दिव्यविग्रहम् । राधारूपं महत्कृत्वा हृदि कृष्णस्य चागता ।।६३
तच्छक्त्या भगवान्कृष्णो धृत्वा गोवर्धनं गिरिम् । नाम्ना गिरिधरो देवः सर्वपूज्यो बभूव ह ।।६४
राधाकृष्णस्स भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः । अतः कृष्णो न भगवान्राधाकृष्णः परः प्रभुः ।।६५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मध्वाचार्यो हरिप्रियः । शिष्यो भूत्वा स्थितस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः ।।६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्ययज्ञांशशिष्यबलभद्रविष्णुस्वामिमध्वाचार्यादिवृत्तान्तवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।१९

अथ विंशोऽध्यायः

जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

भट्टोजिस्स च शुद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य वचोऽब्रवीत् ।।१
महादेवो गुरुः स वै शिव आत्मा शरीरिणाम् । विष्णुर्ब्रह्मा च तद्दासौ तर्हि तत्पूजनेन किम् ।।२
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विंशदब्दवयोवृतः । विहस्याह स भट्टोजिं नायं शम्भुर्महेश्वरः ।।३
समर्थो भगवाञ्छम्भुः कर्ता किन्न शरीरिणाम् । न भर्ता च विना विष्णुं संहर्तायं सदा शिवः ।।४

प्रकट करते हुए वह व्रज को डुबा देने की आयोजना की थी । किन्तु कृष्ण ने उसी समय लोक के कल्याणार्थ सनातनी प्रकृति देवी की आराधना की । प्रसन्न होकर प्रकृति माता ने अपने पूर्वार्द्ध देह से महत्त्वपूर्ण राधा का रूप धारणकर कृष्ण के हृदय में निवास किया । उसी शक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया था, जिससे उस देव का गिरिधर नाम हुआ और वह स्वयं सर्वपूज्य हुए । वहीं राधा कृष्ण भगवान् एवं सनातन पूर्ण ब्रह्म हैं । इसलिए कृष्ण नहीं प्रत्युत राधाकृष्ण भगवान् कहे जाते हैं, जो सबसे पर एवं स्वामी हैं । इसे सुनकर कृष्णप्रिय मध्वाचार्य ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करते हुए उन कृष्ण चैतन्य की सदैव आराधना की ।६२-६६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्य यज्ञांश शिष्य बलभद्र विष्णुस्वामी और मध्वाचार्य के वृत्तान्त वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

जगन्नाथ माहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार शुद्धात्मा एवं शिव भक्ति में निमग्न रहने वाले भट्टोजि ने कृष्ण चैतन्य के यहाँ जाकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—समस्त प्राणियों के गुरु महादेव हैं और शिव ही उनकी आत्मा भी । तदितर ब्रह्मा विष्णु देव उनके दास हैं अतः उन दोनों के पूजन से क्या लाभ होता है । उस यज्ञांश-देव की बीसवें वर्ष की अवस्था प्रारम्भ थी, उन्होंने हँसकर भट्टोजि से कहा—यह शम्भु महेश्वर नहीं हैं और विना विष्णु के सदाशिव शम्भु प्राणियों के कर्ता, भर्ता, एवं संहर्ता होने की क्षमता नहीं रख सकते

एकमूर्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । शाक्तमार्गेण भगवान्ब्रह्मा मोक्षप्रदायकः ॥५
विष्णुर्वैष्णवमार्गेण जीवानां मोक्षदायकः । शम्भुर्वै शैवमार्गेण मोक्षदाता शरीरिणाम् ॥६
शाक्तः सदाश्रमो गेही यज्ञभुक्पितृदेवगः । वानप्रस्थाश्रमी यो वै वैष्णवः कन्दमूलभुक् ॥७
यत्याश्रमः सदा रौद्रो निर्गुणः शुद्धविग्रहः । ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषामनुगामी महाश्रमः ॥८
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः । तृतीयाङ्गं च वेदानां व्याचख्यौ पाणिनिकृतम् ॥९
तदाज्ञया च सिद्धान्तकौमुद्यास्स चकार ह । तत्रोष्य दीक्षितो धीमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ॥१०

सूत उवाच

वराहमिहिरो धीमान्स च सूर्यपरायणः । द्वाविंशाब्दे च यज्ञांशं तमागत्य वचोऽब्रवीत् ॥११
सूर्योऽयं भगवान्साक्षात्त्रयो देवा यतोऽभवन् । प्रातर्ब्रह्मा च मध्याह्ने विष्णुः सायं सदाशिवः ॥१२
अतो रवेः शुभा पूजा त्रिदेवयजनेन किम् । इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह शुभं वचः ॥१३
द्विधा बभूव प्रकृतिरपरा च परा तथा । नाममात्रा तथा पुष्पमात्रा तन्मात्रिका तथा ॥१४
शब्दमात्रा स्पर्शमात्रा रूपमात्रा रसा तथा । गंधमात्रा तथा ज्ञेया परा प्रकृतिरष्टधा ॥१५
अपरायां जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी । भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ॥
अहङ्कार इति ज्ञेया प्रकृतिश्चापराष्टधा ॥१६

हैं। क्योंकि एक ही मूर्ति के तीन विभागों में विभक्त होने के नाते उसी द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का जनन होता है। इसलिए शाक्तमार्ग अपनाकर भगवान् ब्रह्मा, वैष्णव मार्ग के अनुयायी होकर विष्णु और शैवमार्ग द्वारा शिव प्राणियों को मोक्षप्रदान करते हैं। शाक्त ही गृहस्थाश्रम हैं, जिसमें पितर एवं देव यज्ञ के भोक्ता होते हैं। उसी भाँति वैष्णव को वानप्रस्थाश्रम कहा गया है, जिसमें कन्दमूल के भक्षण द्वारा जीवन व्यतीत होता है, सन्यास आश्रम सदैव रौद्ररूप, निर्गुण एवं शुद्ध शरीर रहा है। इस प्रकार प्राणियों के ब्रह्मचर्याश्रम के अनुयायी महेश्वर हैं, जो अति श्रमसाध्य हैं। ये उनकी बातें सुनकर ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की। पश्चात् उनकी आज्ञा से पाणिनि व्याकरण की जो वेदों का तीसरा अंग है, उन्होंने व्याख्या की, जो सिद्धान्त कौमुदी के नाम से प्रथित है। भट्टोजिदीक्षित ने वहाँ रहकर ही अपनी जीवन लीला भी समाप्त की।१-१०

सूत जी बोले—वराह मिहिराचार्य ने, जो अति धीमान् एवं सूर्य के उपासक थे, यज्ञांशदेव के यहाँ पहुँचने का प्रयत्न किये। उस समय यज्ञांशदेव की बाईस वर्ष की अवस्था थी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञांशदेव से कहा—सूर्य ही साक्षात् भगवान् हैं, क्योंकि अन्य तीन प्रधान देवों की उत्पत्ति उन्हीं द्वारा हुई है। सूर्य प्रातःकाल ब्रह्मा, मध्याह्न में विष्णु, और संध्यासमय शिव रूप हैं, अतः सूर्य की ही शुभ पूजा करनी चाहिए, तीनों देवों के पूजन से कोई लाभ नहीं है। इसे सुनकर यज्ञांश देव ने शुभ वाणी द्वारा हास पूर्वक उनसे कहा। प्रकृति देवी ने परा और अपरा नाम से दो रूपों में प्रकट होकर इस ब्रह्माण्ड की रचना की है। नाममात्रा, पुष्पमात्रा, तन्मात्रा, शब्दमात्रा, स्पर्शमात्रा रूपमात्रा, समात्रा, और गंधमात्रा के नाम से परा प्रकृति आठ भागों में विभक्त हैं। उसी प्रकार अपरा प्रकृति भी, जो जीवभूत, नित्यशुद्ध एवं जगन्मयी है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार

विष्णुर्ब्रह्मा महादेवो गणेशो यमराड् गुहः । कुबेरो विश्वकर्मा च परा प्रकृतिदेवता ।।१७
सुमेरुर्वरुणो वह्निर्वायुश्चैव ध्रुवस्तथा । सोमो रविस्तथा शेषोऽपरा प्रकृतिदेवता ।।१८
अतः सोमपती रुद्रो रविः स्वामी विधिः स्वयम् । शेषस्वामी हरिः साक्षान्नमस्तेभ्यो नमो नमः ।।१९
इति श्रुत्वा तदा विप्रः शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः । तदाज्ञया चतुर्थाङ्गं ज्योतिःशास्त्रं चकार ह ।।२०
वराहसंहिता नाम बृहज्जातकमेव हि । क्षुद्रतन्त्रांस्तथान्यान्वै कृत्वा तत्र स चावसत् ।।२१

सूत उवाच

वाणीभूषण एवापि शिवभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य वचः प्राह विनम्रधीः ।।२२
विष्णुमाया जगद्धात्री सैका प्रकृतिरुत्कृता । तया जातमिदं विश्वं विश्वाद्देवसमुद्भवः ।।२३
विश्वेदेवस्स पुरुषःशक्तिजो बहुधाभवत् । ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव देवाः प्रकृतिसम्भवाः ।।
अतो भगवती पूज्या तर्हि तत्पूजनेन किम् ।।२४
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह द्विजोत्तमम् । न वै भगवती श्रेष्ठा जडरूपा गुणात्मिका ।।२५
एका सा प्रकृतिर्माया रचितुं जगतां क्षमा । पुरुषस्य सहायेन योषितेव नरस्य च ।।२६
देवीभागवते शास्त्रे प्रसिद्धेयं कथा द्विज । कदाचित्प्रकृतिर्देवी स्वेच्छयेदं जगत्खलु ।।२७
निर्मितं जड़भूतं तद्बहुधा बोधितं तया । न चैतन्यमभूद्विप्रा विस्मिता प्रकृतिस्तदा ।।२८
शून्यभूतं च पुरुषं चैतन्यं समतोषयत् । प्रविष्टो भगवान्देवीमायाजनितगोलके ।।२९

रूप आठ भागों में विभक्त हैं। विष्णु ब्रह्मा, महादेव, गणेश, यमराज, गुह, कुबेर एवं विश्वकर्मा, परा प्रकृति के देवता हैं। सुमेरु, वरुण, अग्नि, वायु, ध्रुव, सोम, रवि और शेष अपरा प्रकृति के देव हैं। अतः सोमपति रुद्र ही रवि, ब्रह्मा स्वामी, और शेष स्वामी, साक्षात् हरि हैं। उन्हें बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार उनकी बातें सुनकर उस मिहिराचार्य ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक वेद के चौथे अंग ज्योतिः शास्त्र का निर्माण किया, जो बाराह संहिता एवं वृहज्जातक नाम से प्रख्यात है। वहाँ रहकर उन्होंने क्षुद्र तंत्रो एवं अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है।११-२१

सूत जी बोले—शिव जी की भक्ति में निमग्न रहने वाले वाणीभूषण ने भी कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नम्रता पूर्वक उनसे कहा—विष्णु की माया ही जग को धारण करती है, इसलिए वही एक प्रकृति सर्वोत्कृष्ट है। उसी ने इस विश्व की रचना की है, विश्व से देवगण और विश्वेदेव पुरुष की शक्ति द्वारा अखिल की उत्पत्ति हुई है। अतः ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव की उत्पत्ति प्रकृति द्वारा कही गई है। इस भगवती की ही उपासना करनी चाहिए अन्य किसी देव की नहीं इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने हँसकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—जडरूप एवं गुणमयी होने के नाते भगवती श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती है क्योंकि प्रकृति अकेले जगत् की रचना करने में पुरुष की सहायता विना स्त्री की भाँति कभी भी समर्थ नहीं है। विप्र ! देवी भागवत में यह कथा प्रसिद्ध है कि—एक बार प्रकृति देवी ने स्वेच्छया इस जगत् की रचना की, किन्तु विप्र ! अनेक बार बोधित करने पर भी उस जड़ जगत् में चैतन्यता न आई। उसे देखकर प्रकृति को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसी समय उसने शून्यभूत पुरुष की जो चैतन्य रूप है, उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने देवी द्वारा रचित उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया।२२-२९। समस्त

**स्वप्नवद्वा स्वयं जातश्चैतन्यमभवज्जगत् । अतः श्रेष्ठः स भगवान्पुरुषो निर्गुणः परः ।।३०
प्रकृत्यां स्वेच्छया जातो लिङ्गरूपस्तदाऽभवत् । पुँल्लिङ्गप्रकृतौ जातः पुँल्लिङ्गोऽयं सनातनः ।।३१
स्त्रील्लिङ्गप्रकृतौ जातः स्त्रील्लिङ्गोऽयं सनातनः । नपुंस्कप्रकृतौ जातः क्लीबरूपः स वै प्रभुः ।।३२
अव्ययप्रकृतौ जातौ निर्गुणोऽयमधोक्षजः । नमस्तस्मै भगवते शून्यरूपाय साक्षिणे ।।३३
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः । त्रिविंशाब्दे च यज्ञांशे तत्र वासमकारयत् ।।३४
छन्दोग्रन्थं तु वेदाङ्गं स्वनाम्ना तेन निर्मितम् । राधाकृष्णपरं नाम जप्त्वा हर्षमवाप्तवान् ।।३५**

सूत उवाच

**धन्वन्तरिर्द्विजो नाम ब्रह्मभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वा वचनमब्रवीत् ।।३६
भवांस्तु पुरुषः श्रेष्ठो नित्यशुद्धस्सनातनः । जड़भूता च तन्माया समर्थो भगवान्स्वयम् ।।३७
नित्योऽव्यक्तः परः सूक्ष्मस्तस्मात्प्रकृतिरुद्भवः । अतः पूज्यस्स भगवान्प्रकृत्याः पूजनेन किम् ।।३८
इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशस्सर्वशास्त्रगः । नायं श्रेष्ठस्य पुरुषो न क्षमः प्रकृतिं विना ।।३९
पुराणे चैव वाराहे प्रसिद्धेयं कथा शुभा । कदाचित्पुरुषो नित्यो नाममात्रः स्वकेच्छया ।।
बभूव बहुधा तत्र यथा प्रेतस्तथा स्वयम् ।।४०
असमर्थो विरचितुं जगन्ति पुरुषः परः । तुष्टाव प्रकृतिं देवीं चिरकालं सनातनीम् ।।४१**

जगत, उसी समय स्वप्न की भाँति उद्‌बुद्ध होकर चैतन्य हो गया । अतः वही भगवान् श्रेष्ठ है, जो पुरुष, निर्गुण एवं पर है । स्वेच्छया प्रकृति में उत्पन्न होने के नाते वह लिंगरूप हुआ, जिससे पुल्लिग प्रकृति में उत्पन्न होने के कारण सनातन पुल्लिग, स्त्रीलिंग की प्रकृति में उत्पन्न होकर सनातन स्त्रीलिंग, नपुंसक प्रकृति में उत्पन्न होकर नपुंसक रूप कहा गया है । अव्यय प्रकृति में उत्पन्न होकर वह निर्गुण अधोक्षज (इन्द्रियजेता) कहलाता है । इसलिए, उस शून्यरूप, एवं साक्षीभूत भगवान् को नमस्कार है । इसे सुनकर उस ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा सुसम्पन्न करने के लिए उनके यहाँ निवास करना प्रारम्भ किया । उस समय यज्ञांश देव की तेईस वर्ष की अवस्था थी । वाणीभूषण ने वहाँ रहकर वेदाङ्ग छन्द ग्रन्थ की अपने नाम से रचना की । इस प्रकार राधाकृष्ण के उत्तम नाम जप करते हुए उन्होंने सहर्ष का जीवन व्यतीत किया ।३०-३५

सूत जी बोले—ब्रह्मभक्ति में तन्मय रहने वाले धन्वन्तरि नामक ब्राह्मण ने कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—आप पुरुषश्रेष्ठ, नित्यशुद्ध, एवं सनातन हैं और आपकी माया जड़रूप हैं । नित्य, अव्यक्त, पर, एवं सूक्ष्म होने के नाते स्वयं भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि प्रकृति उन्ही से उत्पन्न हुई है । इसलिए सर्वश्रेष्ठ भगवान् की ही पूजा करनी चाहिए प्रकृति की नहीं । इसे सुनकर समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ यज्ञांश देव ने हँसकर कहा—केवल पुरुष सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रकृति के बिना वह सर्वदा असमर्थ है । वराह पुराण में इस विषय की एक प्रसिद्ध कथा है कि—एक बार उस नित्य पुरुष ने जो केवल नाम मात्र हैं, स्वेच्छया प्रेत की भाँति अनेक रूप धारण किया किन्तु वह नित्य पुरुष जगत् की रचना करने में असमर्थ ही रहा । पश्चात् उसने सनातनी प्रकृति देवी की चिरकाल

तदा देवी च तं प्राप्य महत्तत्वं चकार ह । सोऽहङ्कारश्च महतो जातस्तन्मात्रिकास्ततः ।।४२
महाभूतान्यतोऽप्यासंस्तैः सञ्जातमिदं जगत् ।।४३
अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृतिः परा । प्रकृतेः पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्यां नमो नमः ।।४४
इति धन्वन्तरिः श्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः । तत्रोष्य चैव वेदाङ्गं कल्पवेदं चकार ह ।।
सुश्रुतादपरे चापि शिष्या धन्वन्तरेः स्मृतः ।।४५

सूत उवाच

जयदेवस्स वै विप्रो बौद्धमार्गपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य पञ्चविंशवयोवृतम् ।।
नत्वोवाच वचो रम्यं स च श्रेष्ठ उषापतिः : ।।४६
यस्य नाभेरभूत्पद्मं ब्रह्मणा सह निर्गतम् । अतस्स ब्रह्मसूर्नाम सामवेदेषु गीयते ।।४७
विश्वो नारायणस्साक्षाद्यस्य केतौ समास्थितः । विश्व केतुरतो नाम न निरुद्धोऽनिरुद्धकः ।।४८
ब्रह्मवेला च तत्पत्नी नित्या चोषा महोत्तमा । स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चावतारकः ।।४९
इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशस्तं द्विजोत्तमम् । वेदो नारायणः साक्षात्पूजनीयो नरैः सदा ।।५०
ततः कालस्ततः कर्म ततो धर्मः प्रवर्तते । धर्मात्मकामः समुद्भूतः कामपत्नी रतिः स्वयम् ।।५१
रत्यां कामात्समुद्भूतोऽनिरुद्धो नामदेवता । उषा सा तस्य भगिनी तेन सार्द्धं समुद्भवा ।।५२
कालो नाम स वै कृष्णो राधा तस्य सहोदरा । कर्मरूपः स वै ब्रह्मा नियतिस्तत्सहोदरा ।।५३
धर्मरूपो महादेवः श्रद्धा तस्य सहोदरा । अनिरुद्धः कथं चेशो भवतोक्तः सनातनः ।।५४

तक उपासना की ।३६-४१। उससे प्रसन्न होकर देवी ने उसके पास जाकर सहयोग प्रदान पूर्वक महत्तत्त्व की रचना की । पुनः उस महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार द्वारा तन्मात्रा एवं तन्मात्र से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई । उसी आकाशादि भूतों द्वारा इस विश्व की रचना हुई है । अतः उन सनातन पुरुष और प्रकृति में पुरुष से प्रकृति ही श्रेष्ठ है और प्रकृति से पुरुष ! इसलिए उन दोनों को नमस्कार है । इसे सुनकर धन्वन्तरि ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार कर वहाँ रहते हुए वेदाङ्ग कल्पवेद की रचना की । धन्वन्तरि के सुश्रुत के अतिरिक्त दो शिष्य और थे ।४२-४५

सूत जी बोले—बौद्ध मतावलम्बी जयदेव नामक ब्राह्मण ने पच्चीस वर्ष की आयु से कृष्णचैतन्य के पास जाकर नमस्कार पूर्वक सुन्दर वांणी द्वारा उनसे कहा—उषापति ही सर्वश्रेष्ठ देव हैं क्योंकि जिसकी नाभि द्वारा ब्रह्मासमेत पद्म की उत्पत्ति हुई अतः सामवेद में उसे ब्रह्मा का जन्मभू कहा गया है । साक्षात् विश्व नारायण जिसकी केतु (पताका) में स्थित रहते हैं, उसे विश्वकेतु एवं निरुद्ध नहीं अनिरूद्ध कहा जाता है । ब्रह्मवेला उसकी पत्नी है, जो नित्या, एवं सर्वश्रेष्ठ उषा कही गयी है । अतः लोक कल्याणार्थ वही उषापति यथावसर अवतरित होता है । इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने हासपूर्वक उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—वेद ही साक्षात् नारायणस्वरूप है, मनुष्यों को सदैव उसकी पूजा करनी चाहिए । क्योंकि वेद से काल, काल से कर्म, कर्म से धर्म, और धर्म से काम और काम से पत्नी रति की उत्पत्ति हुई है । उसी काम-रति के संयोग से अनिरुद्ध नामक देवता की उत्पत्ति हुई है और उनकी भगिनी उषा ने भी उसी के साथ जन्म ग्रहण किया है ।४३-५२। काल नाम कृष्ण का है, और राधा उनकी सहोदरा (भगिनी) है । कर्म रूप ब्रह्मा हैं, नियति उनकी सहोदरा है । उसी प्रकार धर्म रूप महादेव हैं और श्रद्धा उनकी सहोदरा हैं । इसलिए आप के कहे हुए अनिरूद्ध सनातन ईश कैसे कहे जा सकते हैं । इस निखिल ब्रह्माण्ड में स्थूल,

त्रिधा सृष्टिश्च ब्रह्माण्डे स्थूला सूक्ष्मा च कारणा। स्थूलसृष्टचै समुद्भूतो देवो नारायणः स्वयम् ।।५५
नारायणी च तच्छक्तिस्तयोर्जलसमुद्भवः । जलाज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि समास्थितौ ।।५६
सुप्ते नारायणे देवे नाभेः पङ्कजमुत्तमम् । अनन्तयोजनायामसमुद्भूच्च ततो विधिः ।।५७
विधेः स्थूलमयी सृष्टिर्देवतिर्य्यङ्नरादिका । सूक्ष्मसृष्ट्चै समुद्भूतः सोऽनिरुद्ध उषापतिः ।।५८
ततो वीर्यमयं तोयं जातं ब्रह्माण्डमस्तके । वीर्याज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि स चास्थितः ।।५९
तस्य नाभेस्समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामहः । सूक्ष्मसृष्टिस्ततो जाता यथा स्वप्नेऽपि दृश्यते ।।६०
हेतुसृष्टचै समुद्भूतो वेदा नारायणः स्वयम् । वेदात्कालस्ततः कर्म ततो धर्मादयः स्मृताः ।।६१
त्वद्गुरुश्च जगन्नाथ उड्रदेशनिवासकः । मया तत्रैव गन्तव्यं सशिष्येणाद्य भो द्विजाः ।।६२
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णचैतन्यकिङ्कराः । स्वान्स्वाञ्छिष्यान्समाहूय तत्पश्चात्प्रययुश्च ते ।।६३
शाङ्करा द्वादशगणा रामानुजमुपाययुः । नामदेवादयस्तत्र गणास्सप्त समागताः ।।६४
रामानन्दं नमस्कृत्य संस्थितास्तस्य सेवकाः । रोपणश्च तदागत्य स्वशिष्यैर्बहुभिर्वृतः ।।६५
कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य स्थितः स्वयम् । जगन्नाथपुरीं ते वै प्रययुर्भक्तितत्पराः ।।६६
निधयः सिद्धयस्तत्र तेषां सेवार्थमागताः । सर्वे च दशसाहस्रा वैष्णवाः शैवशाक्तकैः ।।६७
यज्ञांशं च पुरस्कृत्य जगन्नाथपुरीं ययुः । अर्चावतारो भगवाननिरुद्ध उषापतिः ।।६८

सूक्ष्म, एवं कारण के भेद से तीन प्रकार की सृष्टि हुई है जिसमें स्थूल सृष्टि के कर्ता स्वयं नारायण देव हैं, और नारायणी उनकी शक्ति है। उन दोनों से जल की उत्पत्ति हुई एवं उस जल से शेष की उत्पत्ति हुई है, जिस पर वे (नारायण और उनकी नारायणी शक्ति) दोनों सहर्ष सुशोभित हैं। नारायण देव के शयन करने पर उनकी नाभि द्वारा कमल की उत्पत्ति हुई, जो अनन्त योजन तक विस्तृत है। पुनः उसी से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। और ब्रह्मा ने देव पशु पक्षी एवं मनुष्यों आदि की स्थूल सृष्टि की रचना की है। सूक्ष्म सृष्टि के लिए उषापति अनिरूद्ध का जन्म हुआ। पश्चात् ब्रह्माण्ड के मस्तक में उन्हीं द्वारा वीर्यमय जल का आविर्भाव हुआ और उसी से शेष की उत्पत्ति हुई जिस पर वे स्थित हैं। उनकी नाभि द्वारा लोक पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई जिनके द्वारा स्वप्न दर्शन की भाँति सूक्ष्म सृष्टि का सर्जन हुआ। उसी प्रकार कारण सृष्टि के लिए स्वयं वेद नारायण का आविर्भाव हुआ। पश्चात् वेद द्वारा काल, काल से कर्म, और कर्म द्वारा धर्मादि की उत्पत्ति हुई है। विप्रवृन्द! तुम्हारे गुरूवर जगन्नाथ जी उड़ (उड़िया) देश के निवासी हैं, मैं भी शिष्यों समेत वहाँ के लिए आज ही प्रस्थान करना चाहता हूँ। इसे सुनकर उनके अनुयायी शिष्यगणों ने भी अपने-अपने शिष्यों को बुलाकर उनके समेत जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान किया। बारह शांकर मतानुयायी समेत रामानुज, नामदेव आदि सात गणों समेत रामानन्द, जो दूर से आकर नमस्कार करके उनके समीप स्थित थे, और अनेक शिष्यों समेत रोपण में कृष्ण चैतन्य के पास पहुँच कर नमस्कार करके उनकी सेवा में तत्पर रहते हुए।५३-६५। जगन्नाथ पुरी की यात्रा किये। उस उनसब की सेवा वहाँ आकर ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ कर रही थीं। उस जनसमूह में शैवों एवं शाक्तों समेत दशसहस्र वैष्णव उपस्थित थे, जो यज्ञांश देव को सम्मान पूर्वक आगे कर जगन्नाथ पुरी की यात्रा कर रहे थे। वहाँ पहुँचने पर उस समय अर्चावतार भगवान् उषापति अनिरुद्ध ने यज्ञांशदेव का आगमन जानकर

तदागमनमालोक्य द्विजरूपधरो मुनिः । जगन्नाथः स्वयं प्राप्तो यत्र यज्ञांशकादयः ॥६९
यज्ञांशस्तं समालोक्य नत्वा वचनमब्रवीत् । किं मतं भवता ज्ञातं कलौ प्राप्ते भयानके ॥७०
तत्सर्वं कृपया ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । इति श्रुत्वा तु वचनं जगन्नाथो हरिः स्वयम् ॥
उवाच वचनं रम्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥७१
मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः । संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥७२
शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम् । यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् ॥७३
दुःखितो भगवानिन्द्रः श्वेतद्वीपमुपागतः । स्तुत्या मां बोधयामास देवमङ्गलहेतवे ॥७४
प्रबुद्धं मां वचः प्राह शृणु देव दयानिधे । शूद्रसंस्कृतमन्नं च खादितुं न द्विजोऽर्हति ॥७५
तथा च शूद्रजनितैर्यज्ञैस्तृप्तिं न चाप्नुयाम् । काश्यपे स्वर्गते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति ॥७६
मम शत्रुर्बलिर्दैत्यः कलिपक्षमुपागतः । निस्तेजाश्च यथाऽहं स्यां तथा वै कर्तुमुद्यतः ॥७७
मिश्रदेशोद्भवे म्लेच्छे सांस्कृती तेन संस्कृता । भाषा देवविनाशाय दैत्यानां वर्द्धनाय च ॥७८
आर्य्येषु प्राकृती भाषा दूषिता तेन वै कृता । अतो मां रक्ष भगवन्भवन्तं शरणागतम् ॥७९
इति श्रुत्वा तदाहं वै देवराजमुवाच ह । भवन्तो द्वादशादित्या गन्तुमर्हन्ति भूतले ॥८०
अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौ युगे । प्रवीणो निपुणोऽभिज्ञः कुशलश्च कृती सुखी ॥८१

ब्राह्मण वेष धारण किया और और जहाँगण समेत वे ठहरे थे, उस स्थान पर जगन्नाथ देव स्वयं चले गये। यज्ञांशदेव ने उन्हें देखकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—इस भयानक कलि के समय आप का कौन सिद्धान्त है, विस्तार पूर्वक उसे बताने की कृपा कीजिये। मैं उसे तत्त्वसमेत जानना चाहता हूँ। इसे सुनकर जगन्नाथ देव ने जो स्वयं विष्णु रूप हैं, लोक के कल्याणार्थ सुन्दर वाणी द्वारा कहना आरम्भ किये—मिश्र देश के निवासी म्लेच्छ लोगों ने जो काश्यप द्वारा शासित एवं शूद्र वर्ण द्वारा जिनके संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण बनकर शिखाभसूत्र के धारण पूर्वक वेदाध्ययन के उपरांत यज्ञानुष्ठान द्वारा देवाधि देव इन्द्र की पूजा की। उससे दुःख प्रकट करते हुए वे श्वेतद्वीप चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देवों के कल्याणार्थ मेरी आराधना स्तुति द्वारा की। पश्चात् मेरे प्रबुद्ध होने पर उन्होंने कहा—देव, दयानिधे! मेरा दुःख सुनने की कृपा करें—शूद्र के बनाये हुए अन्न का भोजन ब्राह्मण कैसे कर सकता है, उसी प्रकार शूद्रों के यज्ञानुष्ठान द्वारा मैं कैसे तृप्त हो सकता हूँ। काश्यप के स्वर्गीय हो जाने पर मगध राज के शासन काल में मेरे शत्रु बलि दैत्य ने कलि के पक्ष का समर्थन किया है। वह मुझे निस्तेज बनाने के लिए प्रयत्नशील है। उसी ने मिश्रदेश के निवासी उन म्लेच्छों की भाषा को देवों के विनाश पूर्वक दैत्यों के वलवर्द्धनार्थ संस्कृत का रूप दिया है। और आर्यों में दूषित प्राकृत भाषा का प्रचार किया है।६६-७८। अतः भगवन्! मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ, आप मेरी रक्षा करें। इसे सुनकर मैंने देवराज इन्द्र से कहा—आप बारहों आदित्यों से भूतल में जन्म ग्रहण करने के लिए कहिये। मैं भी इस घोर कलि के समय लोक के कल्याणार्थ वहाँ अवतार धारण करूँगा। प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, कुशल, कृती, सुखी, निष्णात, शिक्षित, सर्वज्ञ, सुनत, प्रबुद्ध, और बुद्ध के रूप में क्रमशः इन धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, मेघ,

निष्णातः शिक्षितश्चैव सर्वज्ञः सुगतस्तथा। प्रबुद्धश्च तथा बुद्ध आदित्याः क्रमतो भवाः[१] ।।८२
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो मेघः प्रांशुर्भगस्तथा। विवस्वांश्च तथा पूषा सविता त्वाष्ट्रविष्णुकौ ।।
कीकटे देश आगत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात् ।।८३
वेदनिन्दां पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन्। तेभ्यो वेदान्समादाय मुनिभ्यः प्रददुस्सुराः ।।८४
वेदनिन्दाप्रभावेण ते सुराः कुष्ठिनोऽभवन्। विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुवुर्बौद्धरूपिणम् ।।८५
हरिर्योगबलेनैव तेषां कुष्ठमनाशयत्। तद्दोषान्नग्नभूतश्च बौद्धस्स तेजसाऽभवत् ।।८६
पूर्वार्द्धान्नेमिनाथश्च परार्द्धाद्बौद्ध एव च। बौद्धराज्यविनाशाय दारुपाषाणरूपवान् ।।८७
अहं सिन्धुतटे जातो लोकमङ्गलहेतवे। इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिः स्वर्गलोकादुपागतः ।।
मन्दिरं रचितं तेन तत्राहं समुपागतः ।।८८
अत्र स्थितश्च यज्ञांशप्रसादमहिमा महान्। सर्ववाञ्छितदं लोके स्थापयामास मोक्षदम् ।।८९
वर्णधर्मश्च नैवात्र वेदधर्मस्तथा न हि। व्रतं चात्र न यज्ञांशमण्डले योजनान्तरे ।।९०
येनोक्ता यावनी भाषा येन बौद्धो विलोकितः। तस्य प्राप्तं महत्पापं स्थितोऽहं तदघापहः ।।
मां विलोक्य नरः शुद्धः कलिकाले भविष्यति ।।९१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यचरित्रे जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

प्रांशु, भर्ग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वाष्ट्र, और विष्णु नामक आदित्य देवों ने कीकट देश में जन्म ग्रहण किया। इन लोगों ने वेद की निन्दापूर्वक बौद्ध शास्त्र की रचना की। उन लोगों से वेदों को लेकर मुनियों को प्रदान किया। इसीलिए इस वेद की निन्दा करने के कारण वे सभी देव गण, जो इस भूमण्डल पर आकर उत्पन्न हुए थे, कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर उन बौद्ध रूपी विष्णु देव के पास पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगे। जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने अपने योगबल द्वारा उनके कुष्ठरोग का नाश किया। किन्तु उस दोष के कारण तेजस्वी होते हुए बौद्ध नग्न रहने लगे। पूर्वार्द्ध भाग से नेमिनाथ और उत्तरार्द्ध भाग से बौद्ध का अविर्भाव हुआ। उस बौद्धराज्य के विनाशार्थ एवं लोक के कल्याणार्थ मैं सिंधु तट पर स्वर्ग से आये हुए राजा इन्द्रद्युम्न, द्वारा रचित उस मन्दिर में दारु-पाषाण (काष्ठ-पत्थर) का रूप धारण कर रहता हूँ। इस स्थल में यज्ञांश देव के ठहरने से इसकी महिमा बढ़ गई है जिन्होंने लोक में सभी मनोरथों को सिद्ध एवं मोक्षदायक धर्म की स्थापना की है। इस स्थल की महिमा बढ़ जाने के कारण इस एक योजन के मण्डल में वर्णधर्म ,वेदधर्म और व्रत-पारायण की विशेष व्यवस्था मोक्ष के लिए नहीं की गई है, क्योंकि वह यहाँ अत्यन्त सुलभ है। जिसने यवनों की भाषा का व्यवहार और बौद्धदर्शन किया या करते रहते हैं, उनके उस महान् पाप के विध्वंस के लिए मैं यहाँ रहता हूँ। क्योंकि कलियुग में मनुष्य मेरे दर्शन करने से शुद्ध हो जायेंगे।७९-९१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में जगन्नाथ माहात्म्य वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।२०।

---

१. पचाद्यच्। भवेयुरित्यर्थः।

अथैकविंशोऽध्यायः

कृष्णचैतन्यवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य जगन्नाथस्य धीमतः । कृष्णचैतन्य एवापि तमुवाच प्रसन्नधीः ॥१
भगवन्प्राणिनां श्रेयो यदुक्तं भवता मुने । विस्तरात्तत्कथां ब्रूहि यथा बौद्धसमुद्भवः ॥२

जगन्नाथ उवाच

सहस्राब्दे कलौ प्राप्ते कर्मभूम्यां च भारते । कण्वो नाम मुनिश्रेष्ठस्सम्प्राप्तः कश्यपात्मजः ॥३
आर्यावती देवकन्या कण्वस्य दयिता प्रिया । शक्राज्ञया च सम्प्राप्तौ दम्पती शारदातटे ॥४
सरस्वतीं नदीरूपां कुरुक्षेत्रनिवासिनीम् । चतुर्वेदमयैः स्तोत्रैः कण्वस्तुष्टाव नम्रधीः ॥५
वर्षमात्रान्तरे देवी प्रसन्ना समुपागता । आर्यसृष्टिसमृद्धौ सा ददौ तस्मै वरं शुभम् ॥६
दशपुत्रास्तयोर्जाता आर्यबुद्धिकरा हि ते । उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिश्रकौ ॥७
अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्ड एव च । चतुर्वेदीति कथिता यथा नाम तथा गुणाः ॥८
ते वै सरस्वतीं देवीं तुष्टुवुर्नम्रकन्धराः । द्वादशाब्दवयोभ्यश्च तेभ्यो देवी स्वशक्तितः ॥
कृत्वा कन्यां ददौ माता शारदा भक्तिवत्सला ॥९

अध्याय २१

कृष्णचैतन्य का वर्णन

सूत जी बोले—धीमान् जगन्नाथ की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होकर कृष्णचैतन्य ने कहा—भगवन्! प्राणियों के कल्याणार्थ आप ने जो कुछ कहा है, उसे और मुने! बौद्ध की उत्पत्ति आप विस्तार पूर्वक कहने की कृपा करें।१-२

जगन्नाथ जी बोले—कलि के सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर इस कर्मभूमि भारत में कश्यप पुत्र कण्व मुनि का आगमन हुआ। देवकन्या आर्यावती कण्व की प्रिया स्त्री थी। उसे साथ लेकर इन्द्र की आज्ञापूर्वक शारदा के तट पर वे दोनों दम्पत्ति पहुँचे। वहीं जाकर कण्व ने नम्रतापूर्वक चारों वेदों के स्तोत्रों द्वारा कुरुक्षेत्र निवासिनी सरस्वती देवी की आराधना की, जो वहाँ महीरूप में रह रही है। उससे प्रसन्न होकर सरस्वती देवी ने वर्ष के भीतर ही आर्यसृष्टि के समृद्ध्यर्थ उन्हें शुभ वरदान प्रदान किया। पश्चात् उन दोनों स्त्री-पुरुष द्वारा आर्यबुद्धि वाले दशपुत्रों की उत्पत्ति हुई। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय और चतुर्वेदी उनके नाम एवं उसी के अनुसार गुण हुए। बारह वर्ष की अवस्था में उन पुत्रों ने नम्र होकर सरस्वती देवी की आराधना की उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सला शारदा माता ने अपनी शक्ति द्वारा कन्याएँ उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया, जो

उपाध्यायी दीक्षिता च पाठकी शुक्लिका क्रमात् । मिश्राणी च तथा ज्ञेया षष्ठी सा चाग्निहोत्रिणी ।।१०
द्विवेदिनी तथा ज्ञेया चाष्टमी च त्रिवेदिनी । पाण्डायनी च नवमी दशमी तुर्यवेदिनी ।।११
तासां च स्वपतिभ्यो वै सुताःषोडश षोडश । ते तु गोत्रकरा ज्ञेयास्तेषां नामानि मे शृणु ।।१२
कश्यपश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः । जमदग्निर्वशिष्ठश्च वत्सो गौतम एव च ।।१३
पराशरस्तथा गर्गोऽत्रिर्भृगुश्चांङ्गिरास्तथा । शृंङ्गी कात्यायनश्चैव याज्ञवल्क्यः क्रमात्सुताः ।।
इति नाम्ना सुतास्सर्व ज्ञेयाः षोडश षोडश ।।१४
सरस्वत्याज्ञया कण्वो निश्रदेशमुपाययौ । म्लेच्छान्संस्कृतमभाष्य तदा दशसहस्रकान् ।।
वशीकृत्य स्वयम्प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ।।१५
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् । पञ्चवर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती ।।
सपत्नीकांश्च तान्म्लेच्छाञ्छूद्रवर्णाय चाकरोत् ।।१६
कारुवृत्तिकरास्सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः । द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ।।१७
तन्मध्ये चाचार्यपृथुर्नाम्ना कश्यपसेवकः । तपसा स च तुष्टाव द्वादशाब्दं महामुनिम् ।।१८
तदा प्रसन्नो भगवान्कण्वो देववराद्वरः । तेषां चकार राजानं राजपुत्रपुरं ददौ ।।१९
राजन्या नाम तत्पत्नी मागधं सुषुवे तदा । तस्मै कण्वो ददौ ग्रामं पूर्वस्यां दिशि मागधम् ।।२०
स्वर्गलोकं पुनः प्राप्तः स मुनिः कश्यपात्मजः । स्वर्गते काश्यपे विप्रे ते म्लेच्छाः शूद्रवर्णकाः ।।२१
यज्ञैस्समर्चयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् । दुःखितो भगवानिन्द्रस्सबन्धुर्जगतीतले ।।२२

उपाध्यायी, दीक्षिता, पाठकी शुक्लानी, मिश्राणी, अग्निहोत्राणी, द्विवेदिनी, त्रिवेदिनी, पाण्डायनी, और चतुर्वेदिनी नाम से प्रख्यात हुई ।३-१०। इन कन्याओं ने अपने उन उपरोक्त पति की सेवाकर सोलह-सोलह पुत्रों को उत्पन्न किया, जो गोत्रवंश के प्रचारक हुए । कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ, वत्स, गौतम, पराशर, गर्ग, अत्रि, भृगु, अंगिरा, शृङ्गी, कात्यायन, एवं याज्ञवल्क्य क्रमशः उन पुत्रों के नामकरण हुए। तदुपरांत सरस्वती की आज्ञा से कण्व मिश्रदेश चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दशसहस्र म्लेच्छों को संस्कृत भाषा द्वारा अपने वशीभूत कर पुनः उन लोगों समेत सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवर्त प्रदेश में आगमन किया। यहाँ आने पर उन लोगों ने सरस्वती देवी की तप द्वारा आराधना की । पाँच वर्ष के उपरांत उनकी आराधना से प्रसन्न होकर सरस्वती देवी ने वहाँ प्रकट होकर पत्नी समेत उन म्लेच्छों को शूद्र वर्ण बनाया । अनन्तर बहुपुत्र वाले उन म्लेच्छों ने कार (शिल्प) वृत्ति अपनाकर अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ किये, उनमें दो सहस्र म्लेच्छ वैश्य हो गये थे, जिनमें सर्वश्रेष्ठ आचार्य पृथु ने जो कश्यप का सेवक था, बारह वर्ष तप द्वारा उन महामुनि की आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् कण्व ने वरदान प्रदान पूर्वक उन्हें राजा बनाकर राजपुत्र नामक पुर सौंप दिया । पश्चात् राजन्या नामक उनकी रानी ने मागध नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसे कण्व ने पूर्व दिशा के मागध नामक ग्राम को सौंप दिया था ।११-२०। तदुपरांत कश्यपपुत्र कण्व मुनि स्वर्ग चले गये । उनके स्वर्ग यात्रा करने पर शूद्र वर्ण वाले उन म्लेच्छों ने यज्ञानुष्ठान द्वारा शचीपति इन्द्र की आराधना की। उससे दुःखी होकर भगवान् इन्द्र ने अपने बंधुओं समेत इस भूतल पर ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहणकर वेदों के अपहरण करने के लिए

वेदानाहर्तुमिच्छन्तो ब्रह्मयोनौ बभूविरे । जिनो नाम द्विजः कश्चित्तत्पत्नी जयनी स्मृता ।।२३
कश्यपाददितेरंशाज्जातौ तौ कीकटस्थले । तयोस्सकाशात्सञ्जाता आदित्या लोकहेतवे ।।२४
कर्मनाशानदीतीरे पुरी बोधगया स्मृता । तत्रोष्य बौद्धशास्त्राढ्याश्चक्रुः शास्त्रार्थमुत्तमम् ।।२५
वेदाञ्छुद्रेभ्य आहृत्य विशालां प्रययुः पुरीम् । समाधिस्थान्मुनीन्सर्वान्समुत्थाप्य ददुः स्वयम् ।।२६
गतास्सर्वे सुरास्स्वर्गे ततः प्रभृतिभूतले । म्लेच्छा बभूविरे बौद्धास्तदन्ये वेदतत्पराः ।।२७
सरस्वत्याः प्रभावेण त आर्या बहवोऽभवन् । तैश्च देवपितृभ्यश्च हव्यं कव्यं समर्पितम् ।।२८
तृप्तिमन्तः सुराश्चासंस्त आर्याणां सहस्रकाः । सप्तविंशच्छते भूमौ कलौ सवंत्सरे गते ।।२९
बलिना प्रेषितो भूमौ मयः प्राप्तो महासुरः । शाक्यसिंहगुरुर्गेयो बहुमायाप्रवर्तकः ।।३०
स नाम्ना गौतमाचार्यो दैत्यपक्षविवर्द्धकः । सर्वतीर्थेषु तेनैव यन्त्राणि स्थापितानि वै ।।३१
तेषामधो गता ये तु बौद्धाश्चासन्समन्ततः । शिखासूत्रविहीनाश्च बभूवुर्वर्णसङ्कराः ।।३२
दश कोटचः स्मृता आर्या बभूवुर्बौद्धमार्गिणः । पञ्चलक्षास्तदा शेषाः प्रययुर्गिरिमूर्द्धनि ।।३३
चतुर्वेदप्रभावेण राजन्या वह्निवंशजाः । चत्वारिंशभवा योधास्तैश्च बौद्धास्समुज्झिताः ।।३४
आर्यांस्तांस्ते तु संस्कृत्य विन्ध्याद्रेर्दक्षिणे कृतान् । तत्रैव स्थापयामासुर्वर्णरूपान्समन्ततः ।।
आर्यावर्तः पुण्यभूमिस्तत्रस्थाः पञ्चलक्षकाः ।।३५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य यज्ञांशो भगवान्हरिः ।।३६

प्रयत्न करना आरम्भ किया । उनका नाम 'जिन' था तथा उनकी पत्नी का नाम 'जयिनी' । इस कीकट नामक प्रदेश में कश्यप और अदिति के संयोग से इन दोनों की उत्पत्ति हुई थी और लोक के मंगलार्थ आदित्यों की भी । कर्मनाशा नदी के तटपर बोधगया नामक स्थान में रहकर उन लोगों ने उन बौद्ध निपुण विद्वानों से शास्त्रार्थ किया । उन लोगों ने उन शूद्रों से वेदों का अपहरण कर विशाला में पहुँचकर वहाँ के समाधिनिष्ठ मुनियों को जागृतकर सौंप दिया । पश्चात् सभी देवगण इस भूतल से प्रस्थान कर स्वर्ग चले गये । पश्चात् वे म्लेच्छ तथा उनके अनुयायी वेदपाठी लोग बौद्ध हुए । सरस्वती जी के प्रभाव से वे ही बहुसंख्यक आर्य हुए जिन्होंने देवों एवं पितरों के उद्देश्य से हव्य, कव्य का समर्पण किया, और उससे देवों की अत्यन्त तृप्ति हुई । इस भूतलपर कलि के सत्ताईस सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरांत बलि दैत्य की प्रेरणावश मायावी मय दानव आया, जो अत्यन्त मायावी एवं शाक्यसिंह का गुरु था । उसकी प्रख्याति गौतम के नाम से हुई जो सदैव दैत्यपक्षों के वर्धनार्थ प्रयत्न करता रहा । उसी ने समस्त तीर्थों में जाकर यंत्रों की स्थापना की थी । उसके नीचे जो कोई बौद्ध पहुँच गये वे सभी शिखा-सूत्रहीन होकर वर्ण संकर हो गये । उन आर्यों की दश कोटि संख्या थी, जो बौद्ध पथ गामी थे । शेष पाँच लाख आर्य उनके ऊपर पर्वत-शिखरों पर पहुँचे । चारों वेद के प्रभाव से अग्निवंश के चालीस राजपुत्र क्षत्रिय-गणों ने जो महान् योद्धा थे, अपने यहाँ से बौद्धों को निकाल दिया । उन्होंने उन आर्यों को विन्ध्यपर्वत के दक्षिण प्रदेश में संस्कार पूर्वक निवास कराया, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था को अत्यन्त दृढ़ किया । उस आर्यावर्त नामक पुण्य प्रदेश में पाँच लाख आर्य रह रहे थे ।२१-३५

सूत जी बोले—इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने जो साक्षात् नारायण रूप हैं, जगन्नाथ जी के शिष्य होकर

जगन्नाथस्य शिष्योभूद्वेदमार्गपरायणः । शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्दो द्विजोत्तमः ।।३७
जगन्नाथपदं नत्वा शिष्यो भूत्वा रराज ह । तदा प्रसन्नो भगवाननिरुद्ध उषापतिः ।।३८
अभिषेकन्तयोर्भाले महत्तत्वे चकार ह । महत्त्वपदवी जाता तदा प्रभृतिभूतले ।।३९
गुरुबन्धू प्रसन्नौ तौ स्वशिष्यान्प्रोचतुर्मुदा । जगन्नाथस्य वदनं पद्मनाभेरुषापतेः ।।
दृष्ट्वा यश्चात्र सम्प्राप्य स वै स्वर्गमवाप्नुयात् ।।४०
प्रसादं यश्च भुञ्जीयात्तस्य[1] देवस्य सादरम् । कोटिजन्म भवेद्विप्रो वेदपात्रो महाधनी ।।४१
मार्कण्डेय वटे कृष्णं दृष्ट्वा स्नात्वा महोदधौ । इन्द्रद्युम्नसरस्येव पुनर्जन्म न विन्दते ।।४२
इमां गाथां भृणोद्यो[2] वै श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । यत्पुरीगमने पुण्यं फलं तच्छीघ्रमाप्नुयात् ।।४३
इति यज्ञांवचनं श्रुत्वा ह्यवतारकः । वैष्णवैश्च तथेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।४४
एतस्मिन्नन्तरे विप्र कलिना प्रार्थितो बलिः । मयदैत्यं समाहूय वचनं प्राह दुःखितः ।।४५
सुकन्दरो म्लेच्छपतिः सदा मद्वर्द्धने रतः । सहायं तस्य दैत्येन्द्र कुरु शीघ्रं ममाज्ञया ।।४६
इति श्रुत्वा बलेर्वाक्यं शतदैत्यसमन्वितः । कर्मभूम्यां मयः प्राप्तः कलविद्याविशारदः ।।४७
म्लेच्छजातीन्नरान्दुष्टान्रेखागणितमुत्तमम् । एकविंशतिमध्यायं कलवेदमशिक्षयत् ।।४८
तदा कलान्विता म्लेच्छाः कलाविद्याविशारदाः । यन्त्राणि कारयामासुः सप्तस्वेव पुरीषु च ।।४९
तदधो ये गतालोकास्ते सर्वे म्लेच्छतां गताः । महत्कोलाहलं जातमार्याणां शोककारिणाम् ।।५०

वेदमार्ग का विस्तार करना आरम्भ किया । शुक्लदत्त के पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्यानन्द ने नमस्कार पूर्वक जगन्नाथ की शिष्य सेवा स्वीकार की । उस समय प्रसन्न होकर उषापति भगवान् अनिरुद्ध ने उन दोनों के मस्तक में महत्त्वपूर्ण अभिषेक (तिलक) किया । उसी समय से पृथ्वी पर महत्त्व पदवी की ख्याति हुई । गुरु एवं उनके बंधु ने प्रसन्न होकर अपने शिष्यों से कहा—उषापति, एवं पद्मनाभ भगवान् जगन्नाथ के बदन का दर्शन करने से लोग स्वर्ग की प्राप्ति करेंगे और जो मनुष्य सादर उनके प्रसाद का भक्षण करेगा वह कोटि जन्म तक वेदपाठी एवं महाधनवान् ब्राह्मण होता रहेगा । मार्कण्डेय वटवृक्ष के नीचे कृष्णदर्शन और समुद्रस्नान के उपरांत इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान करने वाले प्राणी का पुनर्जन्म नहीं होगा । श्रद्धाभक्ति पूर्वक इस कथा का श्रवण करने वाला जगन्नाथ पुरी की यात्रा का फल प्राप्त करेगा । इस प्रकार अवतारित होने वाले वैष्णवों ने यज्ञांश की बातें सुनकर अन्तर्हित होकर स्वर्ग को प्रस्थान किया । विप्र ! उसी बीच कलि की प्रार्थना करने पर वलि दैत्य ने दुःख प्रकट करते हुए मय दानव से कहा—सुकन्दर (सिकन्दर) नामक म्लेच्छ को, जो मेरी वृद्धि के लिए सदैव अटूट परिश्रम करता है, शीघ्र मेरा सहाय बना दीजिये । बलि की इस बात को सुनकर वह विद्या निपुण मय दैत्य अपने सौ दैत्यगणों समेत इस कर्मभूमि भूतल पर आगमन किया । यहाँ आकर उसने म्लेच्छ जाति के दुष्टों को रेखागणित के उस समय इक्कीस अध्यायों का अध्ययन कराया ।३६-४८। पश्चात् कलापूर्ण होने पर उन कलाविद्या विशारद म्लेच्छों ने सातों पुरियों में यंत्रों की स्थापना की जिससे म्लेच्छों की अधिक वृद्धि हुई । उन यंत्रों के नीचे जो पहुँच जाते थे,

---

१. प्रयागोऽयमार्षः । २. शृणुयात् ।

श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्णचैतन्यसेवकाः । दिव्यमन्त्रं गुरोश्चैव पठित्वा प्रययुः पुरीम् ॥५१
रामानन्दस्य शिष्यो वै चायोध्यायामुपागतः । कृत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयत् ॥५२
भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत् । कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता ॥५३
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन्रामानन्दप्रभावतः । संयोगिनश्च ते ज्ञेया रामानन्दमते स्थिताः ॥५४
आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे । निम्बादित्यो गतो धीमान्सशिष्यः काञ्चिकां पुरीम् ॥
म्लेच्छयन्त्रं राजमार्गे स्थितं तत्र ददर्श ह ॥५५
विलोमं स्वगुरोर्मन्त्रं कृत्वा तत्र स चावसत् । वंशपत्रसमा रेखा ललाटे कण्ठमालिका ॥५६
गोपीवल्लभमन्त्रो हि मुखे तेषां रराज ह । तदधो ये गता लोका वैष्णवाश्च बभूविरे ॥५७
म्लेच्छाः संयोगिनो ज्ञेया आर्यास्तन्मार्गवैष्णवाः । विष्णुस्वामी हरिद्वारे जगाम स्वगणैर्वृतः ॥५८
तत्र स्थितं महायन्त्रं विलोमं तच्चकार ह । तदधो ये गता लोका आसन्सर्वे च वैष्णवाः ॥५९
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विरेखाभं तन्मध्ये बिन्दुरुत्तमः । ललाटे च स्थितस्तेषां कण्ठे तुलसिगोलकम् ॥६०
मुखे माधवमन्त्रश्च बभूव हितदायकः । मथुरायां समायातो मध्वाचार्यो हरिप्रियः ॥६१
राजमार्गे स्थितं यन्त्रं विलोमं स चकार ह । तदधो ये गता लोका वैष्णवास्तस्य पक्षगाः ॥६२
करवीरपत्रसदृशं ललाटे तिलकं शुभम् । स्थितम् नासार्द्धभागान्ते कण्ठे तुलसि मालिका ॥
राधाकृष्णशुभं नाम मुखे तेषां बभूव ह ॥६३

वे सभी म्लेच्छ हो जाते थे । इसे सुनकर आर्यवृन्दों में एक महान् शोकपूर्ण कोलाहल उत्पन्न हुआ । उसे सुनकर कृष्णचैतन्य के सेवक उन वैष्णवों ने अपने गुरु के दिव्य मंत्र के पाठपूर्वक उन पुरियों की यात्रा की । रामानन्द के दोनों शिष्यों ने अयोध्या में पहुँचकर उस मंत्र के विलोम पाठ द्वारा उन वैष्णवों के आकार में परिवर्तन किया—भाल में त्रिशूल का चिह्न (तिलक) जो श्वेत एवं रक्त वर्ण का होता है, कंठ में तुलसी की माला धारण किये । उनकी जिह्वा राममयी हो गई । रामानन्द के प्रभाव से अयोध्या के म्लेच्छ संयोगी वैष्णव रूप में परिवर्तित हो गये, जो गृहस्थाश्रम में रहते हुए उनके मत का अवलम्बन किये थे । इस प्रकार अयोध्या में वे आर्य मुख्य वैष्णव हुए । बुद्धिमान् निम्बादित्य ने अपने शिष्यों समेत काञ्चीपुरी की यात्रा की । उन्होंने राजमार्ग में उस म्लेच्छयंत्र को देखा । पश्चात् अपने गुरु मंत्र के विलोम पाठ द्वारा प्रचार करना आरम्भ किया । उनके उपदेश द्वारा वहाँ की जनता के ललाट में वांस के पत्ते के समान एक रेखा, कंठ में माला और मुख से सदैव गोपीवल्लभ का मंत्रोचारण होने लगा । उनकी छाया में जो कोई पहुँचे सभी वैष्णव हुए । म्लेच्छ संयोगी और आर्य शुद्धवैष्णव हुए । विष्णु स्वामी ने अपने शिष्यगणों समेत हरिद्वार की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर अपने विलोम मंत्र द्वारा वहाँ के यंत्र को शुद्ध किया । उसके नीचे पहुँचने वाले वैष्णव हो जाते थे । उनके वेष में मस्तक में ऊर्ध्व पुंड्र की दो रेखा थी जिसके मध्य में एक उत्तम विन्दु रहता था । कंठ में तुलसी की गोलमाला और मुख से माधव मंत्र का सदैव उच्चारण होता था । मथुरा में हरिप्रिय मध्वाचार्य की यात्रा हुई ।४९-६१। उन्होने राजमार्ग में यंत्र को देखकर उसे विलोम किया जिससे उसके नीचे पहुँचने वाले सभी वैष्णव हो जाते थे। वहाँ के वैष्णव वेश में भाल में करवीर पत्र के समान शुभ तिलक भी , जो नासा के आधे भाग तक स्थित रहती है, कंठ में तुलसी की माला और मुख से सदैव राधाकृष्ण का परमोत्तम नामोच्चारण होता था। शैवमतावलम्बी

शङ्कराचार्य एवापि शैवमार्गपरायणः । रामानुजाज्ञया प्राप्तः पुरीं काशीं गणैर्युतः ।।६४
कृत्वा विलोमं तद्यन्त्रं शैवाश्च तदधोऽभवन् । त्रिपुण्ड्रं च स्थितं भाले कण्ठे रुद्राक्षमालिका ।।
गोविन्दमन्त्रश्च मुखे तेषां तत्र बभूव ह ।।६५
तोतादर्यां च सम्प्राप्तस्तदा रामानुजः सुखी । ऊर्ध्वरेखाद्वयोर्मध्ये सूक्ष्मरेखा च पीतिका ।।
ललाटे तु तथा कण्ठे माला तुलसिका शुभा ।।६६
उज्जयिन्यां च सम्प्राप्तो वराहमिहिरो गुणी । तद्यन्त्रं निष्फलं कृत्वा नराञ्छैवाँश्चकार ह ।।६७
चिताभस्मस्थितं भाले कण्ठे रुद्राक्षमालिका । शिवेति मङ्गलं नाम तेषां तत्र बभूव ह ।।६८
कान्यकुब्जे स्वयं प्राप्तो वाणीभूषण एव हि । अर्द्धचन्द्राकृतिं पुण्ड्रं रक्तचन्दनमालिका ।।
देव्याश्च निर्मलं नाम तेषां तत्र बभूव ह ।।६९
धन्वन्तरिः प्रयागे च गत्वा तद्यन्त्रमुत्तमम् । विलोमं कृतवाँस्तत्र तदधो ये गता नराः ।।७०
अर्द्धपुण्ड्रं स्मृतं रक्तं सबिन्दु च ललाटके । रक्तचन्दनजा माला कण्ठे तेषां बभूव ह ।।७१
भट्टोजिः स गतो धीमानुत्पलारण्यमुत्तमम् । त्रिपुण्ड्रं च तथा रक्तं कण्ठे रुद्राक्षमालिका ।।
विश्वनाथेतितन्मन्त्रं तेषां तत्र बभूव ह ।।७२
रोपणश्चेष्टिकां प्राप्तस्तद्यन्त्रं चैव निष्फलम् । कृत्वा जने जने तत्र ब्रह्म मार्गम् ददर्श ह ।।७३
जयदेवः स्वयं प्राप्तो द्वारकां विष्णुभक्तिमान् । तद्यन्त्रं निष्फलं यातं तदधो ये गता नराः ।।७४
रक्तरेखा स्थिता भाले चैका कण्ठे तु मालिका । पद्माक्षा मन्त्रगोविन्दस्तत्र तेषां बभूव ह ।।

शंकराचार्य ने रामानुज की आज्ञा से अपने गणों समेत काशीपुरी की यात्रा की ।६२-६४। वहाँ पहुँच-कर उन्होंने उस यंत्र को विलोमकर शैवों का प्रचार किया । उसके नीचे आने वाले सभी शैव हुए । उनके मस्तक में त्रिपुंड्र कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, और मुख से सदैव गोविंद नाम का उच्चारण हो रहा था । तोतादरी में सुखी रामानुज ने प्रस्थान किया । उनके वेष में मस्तक में उर्ध्व दोनों रेखा के मध्य पीत वर्ण की एक सूक्ष्मरेखा रहती थी । कण्ठ में तुलसी की माला रहती है । गुणी वराहमिहिराचार्य ने उज्जयिनी में जाकर उस यंत्र को विफल करके वहाँ की जनता में शैव मत का प्रचार किया । उस वेष में भाल में चिताभस्म, कण्ठ मे रुद्राक्ष की माला और मुख में मांगलिक शिव, नाम का उच्चारण सदैव होता है । वाणी भूषण ने स्वयं कान्यकुब्ज (कन्नौज) में जाकर शाक्तमत का प्रचार किया, जिस वेष में अर्धचन्द्राकार पुंड्र रक्तचन्दन की माला, और मुख से देवी के निर्मल नाम का उच्चारण होता रहता है धन्वतरि ने प्रयाग में पहुँच कर उस यंत्र के विलोम पूर्वक वहाँ की एकत्रित जनता में भाल में रक्तवर्ण के विन्दु समेत अर्द्ध पुंड्र एवं कण्ठ में रक्तचन्दन की माला धारण करने का प्रचार किया। बुद्धिमान् भट्टोजि ने उत्पलारण्य में जाकर वहाँ की जनता में रक्तचन्दन के त्रिपुण्ड्र, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला और विश्वनाथ जी के परमोत्तम नाम यंत्र के जप करने का प्रचार किया । रोपण ने इष्टिका में जाकर उस यंत्र को विफल करके वहाँ की जनता में ब्रह्ममार्ग का प्रचार किया । उसी भाँति सर्वश्रेष्ठ विष्णु भक्त जयदेव जी ने द्वारका में जाकर उस यंत्र को निष्फल करके वहाँ की जनता के मस्तक में रक्तवर्ण की रेखा, कण्ठ में पद्माक्ष की माला तथा गोविन्द नाम का उच्चारण करने का प्रचार किया । इस प्रकार उन वैष्णव, शैव, एवं

एवं ते वैष्णवाः शैवाः शाक्तका बहुधाऽभवन् ॥७५
निर्गुणाः शाक्तका ज्ञेयाः सगुणा वैष्णवाः स्मृताः । निर्गुणाः सगुणा ये तु शैवा ज्ञेया बुधैस्तदा ॥७६
समाधिस्थास्त्रयस्त्रिंशद्देवाः पुण्या बभूविरे । नित्यानन्दः शान्तिपुरे नदीहापत्तने हरिः ॥७७
कबीरो मागधे देशे रैदासस्तु कलिञ्जरे । सधनो नैमिषारण्ये समाधिस्थो बभूव ह ॥७८
अद्यापि संस्थितो विप्र वैष्णवानां गणो महान् । यज्ञभागमहावृद्धिः सञ्जाता मेरुमूर्द्धनि ॥७९
इति ते कथितं विप्र यज्ञांशचरितं शुभम् । यच्छ्रुत्वा च नरा नार्यो महत्पुण्यमवाप्नुयुः ॥
मयाद्या निष्फला दैत्या बलिपार्श्वमुपागताः ॥८०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यचरित्रं नामैकविंशोऽध्यायः ।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

गुरुण्डमौनराज्यवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा बलिर्दैत्यो देवानां विजयं महत् । रोषणं नाम दैत्येन्द्रं समाहूय वचोऽब्रवीत् ॥१
सुतस्तिमिरलिङ्गस्य सरुषो नाम विश्रुतः । त्वं हि तत्र समागम्य दैत्यकार्यं महत्कुरु ॥२

शाक्त गणों की अत्यन्त अभिवृद्धि हुई । विद्वानों ने शाक्त को निर्गुण, वैष्णव को सगुण और निर्गुण सगुण मिश्रित को शैव बताया है । तदनन्तर तैंतीस देवों ने समाधिस्थ होकर इस भूमि को अत्यन्त पावन किया । शान्तिपुर में नित्यानन्द नदीहा में हरि, मागधप्रदेश में कबीर, कलिंजर में रैदास, और नैमिषारण्य में सधन ने समाधिस्थ होकर उन-उन प्रदेशों को परमपवित्र किया है । विप्र ! उसी से आज भी वैष्णवों का महानगण इस भूतल पर स्थित रहकर मेरुमूर्धा स्थान में यज्ञों की महान् अभिवृद्धि का रहा है । विप्र ! इस प्रकार मैंने यज्ञांशदेव का शुभ चरित तुम्हें सुना दिया, जिसके सुनने से स्त्री एवं पुरुषों को अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । पश्चात् मय आदि दैत्यों ने पलायन कर बलि दैत्यराज के पास पहुँचकर उनसे निवेदन किया ।६५-८०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्यचरित्र वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—दैत्यराज बलि ने देवों के इस प्रकार की महान् विजय को सुनकर रोपण नामक दैत्येन्द्र को बुलाकर उससे कहा—तिमिरलिंग के सरुष नामक पुत्र को साथ लेकर उसी स्थान पर दैत्यों के उस महान् कार्य को पूरा करो । इसे सुनकर उस दैत्य ने दिल्ली प्रदेश में निवासपूर्वक अपने हृदय में

इति श्रुत्वा स वै दैत्यो हृदि विप्राप्तरोषणः । ननाश वेदमार्गस्थान्देहलीदेशमास्थितः ॥३
पञ्चवर्षं कृतं राज्यं तत्सुतो बाबरोभवत् । विंशदब्दं कृतं राज्यं होमायुस्तत्सुतोऽभवत् ॥४
होमायुषा मदान्धेन देवताश्च निराकृताः । ते सुराः कृष्णचैतन्यं नदीहोपवने स्थितम् ॥५
दुष्टुवुर्बहुधा तत्र श्रुत्वा क्रुद्धो हरिः स्वयम् । स्वतेजसा च तद्राज्यं विघ्नभूतं चकार ह ॥६
तत्सैन्यजनितैर्लोकैर्होमायुश्च निराकृतः । महाराष्ट्रैस्तदा तत्र शेषशाकः समास्थितः ॥७
देहलीनगरे रम्ये म्लेच्छो राज्यं चकार ह । धर्मकार्यं कृतं तेन तद्राज्यं पञ्चहायनम् ॥८
ब्रह्मचारी मुकुन्दश्च शङ्कराचार्यगोत्रजः । प्रयागे च तपः कुर्वविंशच्छिष्यैर्युतस्थितः ॥९
बाबरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवताः । भ्रंशिता स तदा ज्ञात्वा वह्नौ देहं जुहाव वै ॥१०
तस्य शिष्या गता वह्नौ म्लेच्छनाशनहेतुना । गोदुग्धे च स्थितं रोमं पीत्वा स पयसा मुनिः ॥११
मुकुन्दस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनौ बभूव ह । होमायुषश्च काश्मीरे संस्थितस्यैव पुत्रकः ॥१२
जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचा शरीरिणी । अकस्माच्च वरो जातः पुत्रोऽयं सर्वभाग्यवान् ॥१३
पैशाचे दारुणे मार्गे न भूतो न भविष्यति । अतः सोऽकबरो नाम होमायुस्तनयस्तव ॥१४
श्रीधरः श्रीपतिः शम्भुर्वरेण्यश्च मधुव्रती । विमलो देववान्सोमो वर्द्धनो वर्तको रुचिः ॥१५
मान्धाता मानकारी च केशवो माधवो मधुः । देवापिः सोमपाः शूरो मदनो यस्य शिष्यकाः ॥१६

अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेदमार्ग के अनुयायियों का विनाश करना आरम्भ किया । पाँच वर्ष तक राज्योपभोग करने के उपरांत उसके 'बाबर' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने बीस वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उसके होमायु (हुमायूँ) नामक पुत्र हुआ । उस होमायु ने मदान्ध होकर देवताओं को अपमानितकर देश से निकालना आरम्भ किया, जिससे दुःखी होकर देवों ने नदीहा के उपवन में पहुँचकर भगवान् कृष्णचैतन्य की अनेक भाँति से आराधना की जिसे सुनकर स्वयं विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तेज द्वारा उस राज्य में महान् विघ्न उत्पन्न किया—वहाँ की जनता ने जो सैनिकों के पद पर काम कर रही थी, होमायु (हुमायूँ) को पराजित कर निकाल दिया । उस समय महाराष्ट्रों की सहायता से शेषशाक ने दिल्ली में पहुँचकर उस म्लेच्छराज्य को अपने अधीन किया । उन्होंने उस पद पर पाँच वर्ष तक रहकर धार्मिक कार्यों की अत्यन्त वृद्धि की । उसी समय ब्रह्मचारी मुकुन्द ने जो शंकराचार्य के गोत्र में उत्पन्न होकर अपने बीस शिष्यों समेत प्रयाग में तप कर रहे थे, धूर्त म्लेच्छराज बाबर द्वारा देवों का भ्रष्ट होना सुनकर प्रदीप्त अग्नि में अपनी देह को भस्म कर दिया । उनके शिष्यगणों ने भी इस म्लेच्छ के नाशार्थ अपने को उसी अग्नि में भस्मावशेष किया । एकबार उन मुनि मुकुन्द ने गोदुग्ध के साथ लोम का भी पानकर लिया था । उसी दोष के कारण उन्हें म्लेच्छ के यहाँ उत्पन्न होना पड़ा । उस समय होमायु (हुमायुँ) काश्मीर में रह रहा था । उसी के यहाँ पुत्ररूप में ब्रह्मचारी मुकुन्द ने जन्म ग्रहण किया । पुत्र के उत्पन्न होने के समय आकाशवाणी हुई—'यह पुत्र अकस्मात् वर (सर्वश्रेष्ठ) और सर्वभाग्यवान् होगा ।' इस भाँति का पुत्र उस भीषण पिशाचों के यहाँ न हुआ और न होगा । इसलिए इस होमायु (हूमायूँ) पुत्र का 'अकबर' नाम होगा ।१-१४। जिस तपस्वी के श्रीधर, श्रीपति, शम्भु, वरेण्य, मधुव्रती, विमल, देववान्, सोम, वर्द्धन, वर्तक रुचि, मांधाता, मानकारी, केशव, माधव, मधु, देवाधि, सोमपा, शूर,

स मुकुन्दो द्विजः श्रीमान्दैवात्त्वद्गेहमागतः । इत्याकाशवचः श्रुत्वा होमायुश्च प्रसन्नधीः ।।१७
ददौ दानं क्षुधार्तेभ्यः प्रेम्णा पुत्रमपालयत् । दशाब्दे तनये जाते देहलीदेशमागतः ।।१८
शेषशाङ्कं पराजित्य स च राजा बभूव ह । अब्दं तेन कृतं राज्यं तत्पुत्रश्च नृपोऽभवत् ।।१९
सम्प्राप्तेऽकबरे राज्यं सप्तशिष्याश्च तत्प्रियाः । पूर्वजन्मनि ये मुख्यास्ते प्राप्ता भूपतिं प्रति ।।२०
केशवो गानसेनश्च वैजवाक्स तु माधवः । म्लेच्छास्ते च स्मृतास्तत्र हरिदासो मधुस्तथा ।।२१
मध्वाचार्यकुले जातो वैष्णवः सर्वरागवित् । पूर्वजन्मनि देवापिः स च वीरबलोऽभवत् ।।२२
ब्राह्मणः पार्थिवमात्यो वै वाग्देवीवरदर्पितः । सोमपा मानसिंहश्च गौतमान्वयसम्भवः ।।२३
सेनापतिश्च नृपतेरार्यभूपशिरोमणेः । सूरश्चैव द्विजो जातो दक्षिणश्चैव पण्डितः ।।२४
बिल्वमङ्गल एवापि नाम्ना तन्नृपतेः सखा । नायिकाभेदनिपुणो वेश्यानां स च पारगः ।।२५
मदनो ब्राह्मणो जातः पौर्वात्यः स च नर्तकः । चन्दलो नाम विख्यातो रहः क्रीडाविशारदः ।।२६
अन्यदेशे गताः शिष्यास्तेषां पूर्वास्त्रयोदश । अनपस्य सुतो जातः श्रीधरः शत्रुवेदितः ।।२७
विख्यातस्तुलसीशर्मा पुराणनिपुणः कविः । नारीशिक्षां समादाय राघवानन्दमागतः ।।२८
शिष्यो भूत्वा स्थितः काश्यां रामानन्दमते स्थितः । श्रीपतिः स बभूवान्धो मध्वाचार्यमते स्थितः ।।२९
सूरदास इति ज्ञेयः कृष्णलीलाकरः कविः । शम्भुर्वै चन्द्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रियः ।।३०

और मदन शिष्य हैं, वही श्रीमान् मुकुन्द ब्राह्मण दैवात् तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर होमायु (हुमायूँ) ने अत्यन्त प्रसन्न होकर क्षुधापीड़ितों को दान देकर अत्यन्त प्रेम से उस पुत्र का लालन-पालन किया। पुत्र की दश वर्ष की अवस्था में उसने दिल्ली आकर शेषशाक को पराजित कर पुनः राजपद को अपने अधीन किया। उसके एक वर्ष राज्य करने के उपरांत अकबर ने उस पद को अलंकृत किया। अकबर के राजपद पर प्रतिष्ठित होने पर पूर्वजन्म के उनके सप्त शिष्यों ने उस राजदरबार में आकर अपने-अपने गुणों के अनुसार उन पदों को सुशोभित किया—केशव, गानसेन, वैजवाक् एवं माधव ने म्लेच्छ के यहाँ जन्म ग्रहण किया था, हरिदास तथा मधु मध्वाचार्य के कुल में उत्पन्न होकर सर्वरागवेत्ता वैष्णव हुए। पूर्वजन्म के देवाधि वीरवल हुए जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर वाग्देवी से वरदान प्राप्तकर ख्यातिप्राप्त आमात्य हुआ था। सोमपा, एवं मानसिंह गौतम कुल में उत्पन्न होकर आर्यश्रेष्ठ राजा के सेनापति हुए। सूर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर कुशल पण्डित हुए जो उस राजा के परम मित्र एवं विल्वमंगल नाम से प्रख्यात थे। उन्हें नायिका भेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान था और उसी प्रकार वेश्याओं का भी। मदन पूर्वदेश निवासी ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहणकर कुशल नर्तक हुए जो एकान्त क्रीड़ा में निपुण होकर चन्दन नाम से प्रथित थे। उनके शेष तेरह शिष्यों ने अन्य देशों में जाकर जन्म ग्रहण किया—शत्रु मर्मज्ञ श्रीधर ने अनघ के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न होकर तुलसी शर्मा के नाम से ख्याति प्राप्त की, जो पुराण के निपुण कवि थे। उन्होंने नारी द्वारा शिक्षा प्राप्तकर काशी में राघवानन्द के पास आकर।१५-२८। उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक रामानन्द मत का अवलम्बन किया। श्रीपति अन्धे होकर मध्वाचार्य का मत अपनाये जो सूरदास के नाम से प्रख्यात होकर कृष्णलीला के परमोत्तम कवि थे। हरिप्रिय शम्भु ने चन्द्रभट्ट के कुल में जन्म ग्रहणकर रामानन्द का मार्ग अपनाया। वे भक्तों की

रामानन्दमते संस्थो भक्तकीर्तिपरायणः । वरेण्यः सोग्रभुङ्नामा रामानन्दमते स्थितः ।।३१
ज्ञानध्यानपरो नित्यं भाषाछन्दकरः कविः । मधुव्रती स वै जातो कीलको नाम विश्रुतः ।।३२
रामलीलाकरो धीमान्रामानन्दमते स्थितः । विमलश्च स वै जातः स नाम्नैव दिवाकरः ।।३३
सीतालीलाकरो धीमान्रामानन्दमते स्थितः । देववान्केषवो जातो विष्णुस्वामिमते स्थितः ।।३४
कविप्रियादिरचनां कृत्वा प्रेतत्वमागतः । रामज्योत्स्नामयं ग्रन्थं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।।३५
सोमो जातः स वै व्यासो निम्बादित्यमते स्थितः । रहः क्रीडामयं ग्रन्थं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।।३६
वर्द्धनश्च स वै जातो नाम्ना चरणदासकः । ज्ञानमालामयं कृत्वा ग्रन्थं रैदासमार्गगः ।।३७
वर्तकः स च वै जातो रोपणस्य मते स्थितः । रत्नभानुरिति ज्ञेयो भाषाकर्ता च जैमिनेः ।।३८
रुचिश्च रोचनो जातो मध्वाचार्यमते स्थितः । नानागानमयीं लीलां कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।।३९
मान्धाता भूपतिर्नाम कायस्थः स बभूव ह । मध्वाचार्यो भागवतं चक्रे भाषामयं शुभम् ।।४०
मानकारो नारिभावान्नारीदेहमुपागतः । मीरानामेति विख्याता भूपतेस्तनया शुभा ।।४१
मा शोभा च तनौ यस्या गतिर्गजसमाकिल । सा मीरा च बुधैः प्रोक्ता मध्वाचार्यमते स्थिता ।।४२
एवं ते कथितं विप्र भाषाग्रन्थप्रकारणम् । प्रबन्धं मङ्गलकरं कलिकाले भयङ्करे ।।४३
स भूपोऽकबरो नाम कृत्वा राज्यमकण्टकम् । शतार्द्धेन च शिष्यैश्च वैकुण्ठभवनं ययौ ।।४४
सलोमा तनयस्तस्य कृतं राज्यं पितुः समम् । खुर्दकस्तनयस्तस्य दशाब्दं च कृतं पदम् ।।४५

कीर्ति को सदैव तन्मय होकर गाया करते थे । वरेण्य ह्र सोग्रभुक् नाम से प्रथित होकर रामानन्द का मत स्वीकार किया । जो ज्ञानी ध्यानी होते हुए भाषा छन्द के निपुण कवि हुए थे । मधु का कीलक नाम से ख्याति हुई, जो रामलीला करने वाले एवं रामानन्द के मतावलम्बी थे विमल दिवाकर नाम से प्रख्यात होकर सीता जी की लीला करते हुए रामानन्द के परमभक्त हुए । देवबाबू ने केशव नाम से प्रथित होकर विष्णु स्वामी का मत अपनाया जिन्होंने कविप्रिया की रचना की । किंतु उन्हें प्रेतयोनि में ही जाना पड़ा । उन्होंने राम ज्योत्स्नामय ग्रंथ की भी रचना की है । सोम ने व्यास के नाम से उत्पन्न होकर निम्बादित्य का मार्ग ग्रहण किया, जिन्होंने एकान्त क्रीड़ा के विवेचनात्मक ग्रन्थ का निर्माण किया । वर्द्धन ने ज्ञानमाला नामक ग्रन्थ की रचना कर रैदास का मत अपनाया । वर्तक ने रोपण का मत ग्रहण किया । रुचि ने रोचन नाम से प्रथित होकर मध्वाचार्य का मत अपनाया । उन्होंने अनेक भाँति के गान लीला की रचनाकर पश्चात् स्वर्ग को प्रस्थान किया । मांधाता कायस्थ कुल में उत्पन्न होकर राजपद से विभूषित हुए । मध्वाचार्य ने भाषा में शुभ भागवत की रचना की । मानकार ने नारीभाव की प्रधानता वश नारीदेह धारण किया, जो राजा की 'मीरा' नामक प्रख्यात पुत्री थी । विद्वानों ने जिसकी शरीर में मा (लक्ष्मी) की भाँति सौन्दर्य और गज की भाँति गति हो, उसे मीरा कहा है । वह मीरा मध्वाचार्य की अनुयायिनी थी ।२९-४२। विप्र ! इस प्रकार भाषाग्रन्थ का प्रकरण मैंने कहकर समाप्त किया, जो प्रबन्ध रूप एवं भीषण कलि समय अत्यन्त मांगलिक है । उस अकबर नामक राजा ने अकंटक राज्य का सुखोपभोग करके अपने पचास शिष्यों समेत वैकुण्ठ भवन की यात्रा की। उसके सलोमा (सलीम) जहाँगीर नामक पुत्र ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया और खुर्दक (खुर्रम) सलीम का पुत्र था,

चत्वारस्तनयास्तस्य नवरङ्गो हि मध्यमः । पितरं च तथा भ्रातृञ्जित्वा राज्यमचीकरत् ।।४६
पूर्वजन्मनि दैत्योऽयमन्धको नाम विश्रुतः । कर्मभूम्यां तदंशेन दैत्यराजाज्ञया ययौ ।।४७
तेनैव बहुधा मूर्तीर्भ्रंशिताश्च समन्ततः । दृष्ट्वा देवास्तदागत्य कृष्णचैतन्यमब्रुवन् ।।४८
भगवन्दैत्यराजांशः स जातश्च महीपतिः । भ्रंशयित्वा सुरान्वेदान्दैत्यपक्षं विवर्द्धते ।।४९
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो नदीहोपवने स्थितः । शशाप तं दुराचारं यथा वंशक्षयो भवेत् ।।५०
राज्यमेकोनपञ्चाशत्कृतं तेन दुरात्मना । सेवाजयो नाम नृपो देवपक्षविवर्द्धनः ।।५१
महाराष्ट्रद्विजस्तस्य युद्धविद्याविशारदः । हत्वा तं च दुराचारं तत्पुत्राय च तत्पदम् ।।५२
दत्वा ययौ दाक्षिणात्ये देशे देवविवर्द्धनः । अलोमा नामतनयः पञ्चाब्दं तत्पदं कृतम् ।।५३
तत्पश्चान्मरणं प्राप्तो विद्रधेन रुजा मुने । विक्रमस्य गते राज्ये सप्तत्युत्तरकं शतम् ।।५४
ज्ञेयं सप्त दशं विप्र यदालोमा मृतिं गतः । तालनस्य कुले जातो म्लेच्छः फलरुषो बली ।।५५
मुकुलस्य कुलं हत्वा स्वयं राज्यं चकार ह । दशाब्दं च कृतं राज्यं तेन भूपेन भूतले ।।५६
शत्रुभिर्मरणं प्राप्तो दैत्यलोकमुपागमत् । महामदस्तत्तनयो विंशत्यब्दं कृतं पदम् ।।५७
तद्राष्ट्रे नादरो नाम दैत्यो देश उपागमत् । हत्वार्यांश्च सुराञ्जित्वा देशं खुरजमाययौ ।।५८
महामत्स्यो हि मदस्य तनयस्तत्पितुः पदम् । गृहीत्वा पञ्चवर्षान्तं स च राज्यं चकार ह ।।५९
महाराष्ट्रैर्हतो दुष्टस्तालनान्वयसम्भवः । देहलीनगरे राज्यं दशाब्दं माधवेन वै ।।६०

जिसने दश वर्ष तक राज्य किया । उसके चार पुत्रों में नवरंग (औरङ्गजेब) मध्यम पुत्र था जिसने अपने पिता और भ्राताओं पर विजय प्राप्तकर राज्यपद अपने अधीन किया । पूर्वजन्म में वह अन्धक नामक दैत्य था । दैत्यराज बलि की आज्ञा से उसने इस कर्मभूमि भारत में जन्म ग्रहण किया, जिसके द्वारा अनेकों देवमूर्तियाँ भ्रष्ट की गई थीं । उसे देखकर देवों ने कृष्णचैतन्य से कहा—भगवन् ! वह दैत्यराज के अंश से उत्पन्न होकर राजपद की प्रतिष्ठा के उपरांत देवों एवं वेदों को नष्ट-भ्रष्टकर दैत्यपक्षों को बढ़ा रहा है । इसे सुनकर नदीहा के उपवन में स्थित यज्ञांश ने उस दुराचारी के वंशनाशार्थ शाप प्रदान किया । उस दुष्ट के उनचास वर्ष राज्य करने के उपरांत सेवाजय (शिवा जी) नामक राजा ने, जो देवपक्ष के अभिवर्द्धक थे, और महाराष्ट्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर युद्ध विद्या की निपुणता प्राप्त की थी । उस दुराचारी का निधन कर उसका पद उसके पुत्र को सौंपकर दक्षिणदेश की यात्रा की । मुने ! उसके आलोमा नामक उस पुत्र ने पाँच वर्ष तक राज्य करने के उपरांत विद्रध (भगन्दर) नामक रोग से पीड़ित होकर शरीर का त्याग किया । विक्रमराज्य के सत्रह सौ सत्तर वर्ष उस समय आलोमा के शरीर त्याग के समय व्यतीत हुआ था । तालन कुल में उत्पन्न बली फल रुष म्लेच्छ ने मुकुल (मुगल) की कुल की समाप्तिकर स्वयं राज्यपद को अपने अधीन किया । इस भूमण्डल पर दश वर्ष तक राज्य करने के उपरांत।४३-५६। शत्रुओं द्वारा मृतक होकर उसने दैत्यलोक की यात्रा की । उसके पुत्र महामद ने बीस वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उसके राज्य में नादर (नादिर शाह) नाम का दैत्य ने आर्यों एवं देवों पर विजय प्राप्तिपूर्वक खुरजा प्रदेश में आगमन किया । उसके पुत्र महामत्स्य ने अपने पिता के पद को अपने अधीन कर पाँच वर्ष तक राज्य किया । तदनन्तर महाराष्ट्रों द्वारा तालनवंशीय उस दुष्ट के निधन होने पर दिल्ली

कृतं तत्र तदा म्लेच्छ आलोमा राज्यमाप्तवान् । तद्राष्ट्रे बहवो जाता राजानो निजदेशजाः ।।६१
ग्रामपा बहवो भूपा देशे देशे बभूविरे । मण्डलीकपदं तत्राक्षयं जातं महीतले ।।६२
त्रिंशदब्दमतो जातं ग्रामे ग्रामे नृपे नृपे । तदा तु सकला देवाः कृष्णचैतन्यमाययुः ।।६३
यज्ञांशश्च हरिः साक्षाज्ज्ञात्वा दुःखं महीतले । मुहूर्तं ध्यानमागम्य देवान्वचनमब्रवीत् ।।६४
पुरा तु राघवो धीमाञ्जित्वा रावणराक्षसम् । कपीनुज्जीवयामास सुधावर्षैस्समन्ततः ।।६५
विकटो वृजिलो जालो वरलीनो हि सिंहलः । जवस्सुमात्रश्च तथा नाम्ना ते क्षुद्रवानराः ।।६६
रामचन्द्रं वचः प्राहुर्देहि नो वाञ्छितं प्रभो । रामो दाशरथिः श्रीमाञ्ज्ञात्वा तेषां मनोरथम् ।।६७
देवाङ्गनोद्भवाः कन्या रावणाल्लोकरावणात् । दत्त्वा तेभ्यो हरिस्साक्षाद्वचनं प्राह हर्षितः ।।६८
भवन्नाम्ना च ये द्वीपा जालन्धरविनिर्मिताः । तेषु राज्ञो भविष्यन्ति भवन्तो हितकारिणः ।।६९
नन्दिन्या गोश्च रुण्डाद्वै जाता म्लेच्छा भयानकाः । गुरुण्डा जातयस्तेषां तास्तु तेषु सदा स्थिताः ।।७०
जित्वा तांश्च गुरुण्डान्वै कुरुध्वं राज्यमुत्तमम् । इति श्रुत्वा हरिं नत्वा द्वीपेषु प्रययुर्मुदा ।।७१
विकटान्वयसम्भूता गुरुण्डा वानराननाः । वाणिज्यार्थमिहायाता गौरुण्डा बौद्धमार्गिणः ।।७२
ईशपुत्रमते संस्थास्तेषां हृदयमुत्तमम् । सत्यव्रतं कामजितमक्रोधं सूर्यतत्परम् ।।७३
यूयं तत्रोष्य कार्यं च नृणां कुरुत मा चिरम् । इति श्रुत्वा तु ते देवाः कुर्युरार्चिक्रमादरात् ।।७४

सिंहासनासीन होकर माधव ने दश वर्ष तक राज्य किया। उन्होंने आलोमा के समस्त राज्यपर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। उस राज्य में अपने देश के अनेक लोग राजा थे और अनेक ग्रामपति भी अनेक देशों में राज्यपद पर रहकर राज्य कर रहे थे उस समय मण्डलीक पद के नष्ट होने पर प्रत्येक गाँवों के अधिपति राजा कहे जाते थे। इस प्रकार उन राजाओं के उस पद पर तीस वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत समस्त देवों ने कृष्णचैतन्य के पास जाकर उनसे कहा। जिसे सुनकर साक्षात् विष्णु रूप यज्ञांश-देव ने पृथिवी तल पर लोगों को दुःखी देखकर एक मुहूर्त ध्यान करने के उपरांत देवों से कहा—पहले समय में धीमान् राघव ने रावण राक्षस को पराजित कर चारों ओर अमृत वर्षा करके बानरों को जीवित किया था। उस समय वहाँ उपस्थित होकर विकट, वृजिल, जाल, वरलीन, सिंहल, जव, और सुमात्रा नामक वानरों ने रामचन्द्र जी से कहा—प्रभो! मनइच्छित वरदान देने की कृपा कीजिये। उसे सुनकर भगवान् दाशरथी श्रीमान् राम ने उन लोगों के मनोरथ को जानकर लोक रावण रावण द्वारा देवाङ्गनाओं के गर्भ से उत्पन्न कन्याएँ उन्हें प्रदान किया तथा तदनन्तर हर्षित होकर कहा—जालंधर के बनाये हुए जो द्वीप आप लोगों के नाम से प्रथित हैं, उन्हीं के राजाओं के यहाँ उत्पन्न होकर आप लोग उनके हितैषी बने। नन्दिनी नामक गौ के देह से भीषण म्लेच्छों की उत्पत्ति हुई थी। उन्ही की गुरुण्ड जाति हुई, जो उनमें से सदैव स्थित रहती है।५७-७०। उन गुरुण्डों को जीत कर तुम लोग उस राज्य को अपनाओं। इसे सुनकर उन वानरों ने भगवान् राम के नमस्कार पूर्वक अपने उन द्वीपों को प्रस्थान किया। विकट नामक वानर कुल में उत्पन्न उन गुरुण्डों ने जिनके मुख वानरों की भाँति होते हैं, और बौद्ध मत के अनुयायी हैं, व्यापार के उद्देश्य से वहाँ आगमन किया। किन्तु उनके हृदय में ईशामत की ओर अत्यन्त विनम्रता हैं। वे सत्यव्रती, कामजीतने वाले, एवं क्रोधहीन होते हैं और सूर्य की ही आराधना करते हैं। आप देवगण वहाँ जाकर मनुष्यों के हित साधन में शीघ्रता करें। इसे सुनकर उन देवों ने सादर अर्चना करके उस कलकत्ता नगर

नगर्य्यां कलिकातायां स्थापयामासुरुद्यताः । विकटे पश्चिमे द्वीपे तत्पत्नी विकटावती ॥७५
अष्टकौशलमार्गेण राजमन्त्रं चकार ह । तत्पतिस्तु पुलोमार्चिः कलिकातां पुरीं स्थितः ॥७६
विक्रमस्य गते राज्ये शतमष्टादशं कलौ । चत्वारिंशं तथाब्दं च तदा राजा बभूव ह ॥७७
तदन्वये सप्तनृपा गुरुण्डाश्च बभूविरे । चतुष्षष्टिमितं वर्षं राज्यं कृत्वा क्षयं गताः ॥७८
गुरुण्डे चाष्टमे भूपे प्राप्ते न्यायेन शासति । कलिपक्षो बलिर्दैत्यो मुरं नाम महासुरम् ॥७९
आरुह्य प्रेषयामास देवदेशे महोत्तमे । स मुरो वार्डिलं भूपं वशीकृत्य हृदि स्थितः ॥८०
आर्यधर्मविनाशाय तस्य बुद्धिं चकार ह । मूर्तिसंस्थास्तदा देवा गत्वा यज्ञांशयोगिनम् ॥८१
नमस्कृत्याब्रुवन्सर्वे यथा प्राप्तो मुरोऽसुरः । ज्ञात्वा शशाप कृष्णांशो गुरुण्डान्बौद्धमार्गिणः ॥८२
क्षयं यास्यन्ति ते सर्वे ये मुरस्य वशं गताः । इत्युक्ते वचने तस्मिन्गुरुण्डाः कालनोदिताः ॥८३
स्वसैन्यैश्च क्षयं जग्मुर्वर्षमात्रान्तरे खलाः । सर्वे त्रिंशत्सहस्राश्च प्रययुर्यममन्दिरे ॥८४
वाग्दण्डैस्स च भूपालो वार्डिलो नाशमाप्तवान् । गुरुण्डो नवमः प्राप्तो मेकलो नाम वीर्यवान् ॥८५
न्यायेन कृतवान्राज्यं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः । आर्यदेशे च तद्राज्यं बभूव न्यायशासति ॥८६
लार्डलो नाम विख्यातो गुरुण्डो दशमोहितः । द्वात्रिंशाब्दं च तद्राज्यं कृतं तेनैव धर्मिणा ॥८७
लार्डले स्वर्गते प्राप्ते मकरन्दकुलोद्भवाः । आर्याः प्राप्तास्तदा मौना हिमतुङ्गनिवासिनः ॥८८
बभ्रूवर्णाः सूक्ष्मनसो वर्तुला दीर्घमस्तकाः । एवं लक्षाश्च सम्प्राप्ता देहल्यां बौद्धमार्गिणः ॥८९

में राजधानी स्थापित किया । विकट नामक पश्चिम द्वीप के राजा की पत्नी का विकटावती नाम था । जिसने आठ प्रकार के कुशल मार्गों द्वारा वहाँ का शासन संचालित किया उसके पति पुलोमार्चि कलकत्ता में रह रहे थे । उस समय विक्रम काल के अठ्ठारह सौ चालीस वर्ष के व्यतीत हो जाने पर राजा हुए थे । उस गुरुण्ड (गोरे अंग्रेज) कुल में सात राजा हुए । गुरुण्ड जाति के आठवें राजा के शासनाधिकार के समय कलिपक्ष के समर्थक दैत्यराज बलि ने मुर नामक महासुर को बुलाकर उस मुर दैत्य ने वाडिल नामक राजा को अपने वशीभूत कर उनके हृदय पर अधिकार किया—उसकी बुद्धि को इस भाँति भ्रष्ट किया कि वह आर्यधर्मों के विनाशपूर्वक देव मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने लगा । उस समय मूर्ति स्थित देवों-ने यज्ञांशदेव के पास जाकर नमस्कार पूर्वक मुर राक्षस का पूर्ण वृत्तान्त सुनाया । उसे सुनकर यज्ञांशदेव ने उन बौद्धमार्गानुयायी गुरुण्डों को शाप दिया—मुरराक्षस के अधीन रहने वाले सभी गुरुण्ड नष्ट हो जाँयेगे । उनके इस प्रकार शाप देने पर अपनी सेनाओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो गये । उस समय उनकी संख्या तीस सहस्र की थी, वे सबके सब मृतक होकर यमराज के यहाँ चले गये ।७१-८४। उस वागदंड द्वारा वार्डिल राजा का भी नाश हुआ । अनन्तर 'मेकल' नामक नवें गुरुण्ड राजा ने जो महान् शक्तिशाली था, अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक न्याय द्वारा बारह वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस समय आर्यों के प्रदेश में न्यायप्रिय शासनाधिकार सर्वत्र विस्तृत हो रहा था । तदुपरांत लार्डल नामक दशवें गुरुण्ड राजा ने भी उस प्रकार धर्मपूर्वक बत्तीस वर्ष तक राज्य किया । लार्डल राजा के स्वर्गीय होने पर मकरन्द वंश के मौन आर्यों ने, जो हिमलाय के शिखर निवासी एवं वभ्रु वर्ण, सूक्ष्मनासा, गोल एवं विस्तृत मस्तक वाले होते हैं, एक लाख की संख्या में दिल्ली पहुँचकर उनमें श्रेष्ठ 'अर्जिक' ने उस सिंहासन पद को विभूषित किया ।

आर्जिको नाम वै राजा तेषां तत्र बभूव ह । तस्य पुत्रो देवकर्णो गङ्गोत्रगिरिमूर्द्धनि ।।९०
द्वादशाब्दं तपो घोरं तेपे राज्यविवृद्धये । तदा भगवती गङ्गा तपसा तस्य धीमतः ।।९१
स्वरूपं स्वेच्छया प्राप्य ब्रह्मलोकं जगाम ह । कुबेरश्च तदागत्य दत्त्वा तस्मै महत्पदम् ।।९२
आर्याणां मण्डलीकं च तत्रैवान्तरधीयत । मण्डलीको देवकर्णो बभूव जनपालकः ।।९३
षष्टयब्दं च कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले । तदन्वयेऽष्ट भूपाश्च बभूवुर्देवपूजकाः ।।९४
द्विशताब्दं पदं कृत्वा स्वर्गलोकमुपाययुः । एकादशश्च यो मौनः पन्नगारिरिति श्रुतः ।।९५
चत्वारिंशच्च वर्षाणि राज्यं कृत्वा प्रयत्नतः। स्वर्गलोकं गतो राजा पन्नगैर्मरणं गतः ।।९६
एवं च मौर्यजातोयैः कृतं राज्यं महीतले ।।९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये गुरुण्डमौनराज्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

वैक्रमे राज्यविगते चतुष्षष्ट्युत्तरं मुने । द्वाविंशदब्दशतकं भूतनन्दिस्तदा नृपः ।।१

गंगोत्री पर्वत के निवासी उसके पुत्र देवकर्ण ने उस राज्य को विस्तृत करने की इच्छा से बारह वर्ष तक घोर तप किया, जिसके प्रभाव से भगवती गंगा ने अपने स्वरूप की प्राप्तिकर स्वेच्छया ब्रह्मलोक की यात्रा की। पश्चात् कुबेर ने उस राजपुत्र के पास जाकर उसे 'आर्यमण्डलीक' नामक महान् पद प्रदान किया। उसी दिन से राजा देवकर्ण की मण्डलीक नाम से ख्याति हुई। इस भूमण्डल पर उस राजा ने साठ वर्ष तक राज्य किया। उनके वंशज आठ राजाओं ने क्रमशः उस राजपद को दो सौ वर्ष तक अलंकृत कर पश्चात् स्वर्ग की यात्रा की। उसने ग्यारहवें पन्नगारि नामक मौन राजा के प्रयत्न पूर्वक चालीस वर्ष तक राज्य करने के उपरांत पन्नगों द्वारा मृतक होकर स्वर्ग की यात्रा की। इस प्रकार इन मौन जातीयों का इस भूमण्डल पर राज्य करने का वर्णन कर दिया गया।८५-९७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में गुरुण्ड एवं मौन राज्य का वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।२२।

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! बाईस सौ चौंसठ वर्ष विक्रम काल के व्यतीत होने पर भूत नन्दि नामक

कुबेरयक्षकान्मौनान्धनधान्यसमन्वितान् । सार्द्धलक्षान्कलैर्घोरैर्जित्वा तान्युद्धकारिणः ॥२
किल्किलायां स्वयं राज्यं नागवंशैश्चकार ह । आग्नेय्यां दिशि विख्याता पुण्डरीकेण निर्मिता ॥३
पुरी किलकिला नाम तत्र राजा बभूव ह । पुण्डरीकादयो नागास्तस्मिन्राज्यं प्रशासति ॥४
गेहे गेहे जनैस्सर्वैः पूजनीया बभूविरे । स्वाहा स्वधा वषट्कारो देवपूजा महीतले ॥५
त्यक्त्वा देवानुपागम्य संस्थिता मेरुमूर्द्धनि । शक्राज्ञया कुबेरस्तु शूकधान्यं समन्ततः ॥६
यक्षैः षडंशानादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः । मणिस्वर्णादिवस्तूनि मौनराज्येषु यानि वै ॥७
दत्तानि तानि कोशेषु पुनर्देयश्चकार ह । मण्डलीकं पदं तेन सत्कृतं भूतनन्दिना ॥८
शतार्द्धं तु ततो राजा शिशुनन्दिर्बभूव ह । नागपूजां पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य सुरान्भुवि ॥९
चकार राज्यं विंशाब्दं यशोनन्दिस्ततोऽनुजः । भ्रात्रासनं स्वयं प्राप्तो नागपूजापरायणः ॥१०
पञ्चविंशतिवर्षाणि स च राज्यमचीकरत् । ततस्तत्तनयो राजा स बभूव प्रवीरकः ॥११
एकादशाब्दं तद्राज्यं कर्मभूम्यां प्रकीर्तितम् । कदाचित्स च बाह्लीके सेनया सार्द्धमागतः ॥१२
तत्र तैरभवद्युद्धं पैशाचैर्म्लेच्छदारुणैः । मासमात्रान्तरे म्लेच्छा लक्षसंख्या मृतिं गताः ॥१३
तथा षष्टिसहस्राश्च नागभक्ता लयं गताः । बादलो नाम तद्राजा रोमजस्थो महाबलः ॥१४
यशोनन्दिनमाहूय ददौ जालवतीं सुताम् । गृहीत्वा म्लेच्छराजस्य सुतां गेहमुपागतः ॥१५

राजा ने उस समय उन धन-धान्य पूर्ण मौन वंशजों को, जिन्हें कुबेर के यक्ष कहा जाता है, और डेढ़ लाख की संख्या में उपस्थित थे, उन्हें पराजित कर शासन-सूत्र को अपने अधीन किया। उस समय किल्किला में नाग वंश वाले राज्यपद पर प्रतिष्ठित थे जो आग्नेय दिशा में पुण्डरीक द्वारा निर्मित होकर प्रख्यात पुरी थी। पुण्डरीक आदि नाग वहाँ पर राजा हुए। उनके राज्य करते हुए घर-घर में सभी पूजनीय होने लगे थे। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार एवं देव की पूजा प्रारम्भ हो गयी थी। देवताओं को छोड़कर लोग मेरुपर्वत के शिखर पर स्थापित होने लगे थे। शक्र की आज्ञा से कुबेर तो चारों तरफ से शूक धान्य यक्षों द्वारा ग्रहणकर षडंश को देवताओं को दे दिये। यौनराज्य में जो मणि एवं स्वर्णादि की वस्तुएँ थीं सबको कोशों में दे दिया। मण्डलीक के पद की सृष्टि कर मूतनन्दि द्वारा उसका सत्कार किया गया। उन्होंने पचासवर्ष तक राज्य किया। इसके बाद शिशुनन्दि नाम के राजा हुए। उन्होंने नागों की पूजा करके देवताओं का तिरस्कार करके बीस वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद उनके छोटे भाई नाग की पूजा करने वाले यशोनन्दि ने राज्य किया। उन्होंने पचीसवर्ष तक राज्य किया। इसके बाद प्रवीरक नाम का उनका पुत्र राजा हुआ। वह ग्यारहवर्ष तक इस कर्मभूमि में राज्य किया। एक बार बाह्लीक प्रदेश में सेना समेत आकर उस राजा ने उन पिशाच म्लेच्छों के साथ घोर युद्ध किया, जिससे एक लाख म्लेच्छों का निधन हुआ। और साठ सहस्र नाग भक्तों की भी मृत्यु हुई। उन्हीं दिनों रोम देश के राजा बादल ने जो अत्यन्त पराक्रमी था।१-१४। यशोनन्दिन् को बुलाकर उन्हें अपनी जालमती नामक पुत्री सौंप दी। अनन्तर म्लेच्छराज की उस पुत्री को लेकर वे अपने घर लौट आये। कुछ समय के उपरान्त दोनों के

गर्भो जातस्ततस्तस्यां बभूव तनयो बली । बाह्लीको नाम विख्यातो नागपूजनतत्परः ।।१६
तदन्वये नृपः जाता बाह्लीकाश्च त्रयोदश । चतुश्शतानि वर्षाणि कृत्वा राज्यं मृतिं गताः ।।१७
अयोमुखे च बाह्लीके राज्यमत्र प्रशासति । तदा पितृगणाःसर्वे कृष्णचैतन्यमाययुः ।।१८
नत्वोचुर्वचनं तत्र भगवञ्छृणु मे वचः । वयं पितृगणा भूपैर्नागवंश्यैर्निराकृताः ।।१९
श्राद्धतर्पणकर्माणि तैर्वयं वर्द्धितास्सदा । पितृवृद्धात्सोमवृद्धिस्ततो देवाश्च वर्द्धनाः ।।२०
देववृद्धाल्लोकवृद्धिस्तस्माद्ब्रह्मा प्रजापतिः । ब्रह्मवृद्धात्परं हर्षं गेहे गेहे जने जने ।।२१
अतोऽस्मान्रक्ष भगवन्प्रजाः पाहि सनातनीः । इति श्रुत्वा वचस्तेषां यज्ञांशो भगवान्हरिः ।।२२
पुष्यमित्रं धर्मपरमार्यवंशदिवर्द्धनम् ।।२३
जातमात्रः स वै बालः षोडशार्द्धवयोऽभवत् । अयोनिर्योनिभूतांस्तानयोमुख पुरस्सरान् ।।२४
जित्वा देशान्निराकृत्य स्वयं राज्यं गृहीतवान् । यक्षा शिवांशतो जातो विक्रमो नाम भूपतिः ।।२५
शकान्गन्धर्वपक्षीयाञ्जित्वा पूज्यो बभूव ह । नागपक्षांस्तथा भूपान्गोलकास्यान्भयङ्करान् ।।२६
पुष्यमित्रस्तदा जित्वा सर्वपूज्योऽभवद्भुवि । सप्तविंशच्छतं वर्षं द्विसप्तत्युत्तरं तथा ।।२७
राज्यं विक्रमतो जातं समाप्तिमगमत्तदा । पुष्यमित्रे राज्यपदं प्राप्ते समभवत्तदा ।।२८
शतवर्षं राज्यपदं तेन धर्मात्मना धृतम् । अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।।२९

संयोग द्वारा एक बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो बाह्लीक नाम से प्रख्यात एवं नाग देवों का उपासक था। उसके वंश में उत्पन्न होकर तेरह बाह्लीक राजाओं ने क्रमशः चार सौ वर्ष तक राज्य करने के अनन्तर अपनी देह का परित्याग किया। अधोमुख नामक बाह्लीक के शासनाधिकार के समय पितरगणों ने कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा— भगवन्! आप हम लोगों की कुछ प्रार्थना सुनने की कृपा करें— नाग वंशीय राजाओं ने हम लोगों को निकाल दिया है। श्राद्ध और तर्पणरूप कर्मों द्वारा हम लोगों की सदैव वृद्धि होती रही है। क्योंकि पितरों की वृद्धि द्वारा सोमवृद्धि सोमवृद्धि से देवों की वृद्धि, देववृद्धि द्वारा लोक की वृद्धि, और उसके द्वारा प्रजापति ब्रह्मा की वृद्धि होती है एवं ब्रह्मा की वृद्धि से अनेक घरों के प्रत्येक प्राणी सुखी-जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिए भगवन्! हम सनातनी प्रजाओं की रक्षा कीजिये। इसे सुनकर विष्णुरूप भगवान् यज्ञांशदेव ने आर्यवंश के वृद्ध्यर्थ धर्ममूर्ति पुष्यमित्र के यहाँ पुत्ररूप में जन्मग्रहण किया। उत्पन्न होते ही वह बालक आठ वर्ष के बालक की भाँति दिखाई देने लगा। उस अयानिज बालक ने योनिद्वारा उत्पन्न उन अयोमुख नामक आदि बाह्लीक राजाओं को पराजित करके देश से निकाल दिया और स्वयं उस राज्य का शासनाधिकार अपनाया। जिस प्रकार शिवांश से उत्पन्न होकर राजा विक्रमादित्य ने गन्धर्व पक्ष के समर्थक शकों को पराजितकर दिया था और स्वयं सर्वपूज्य हुए, उसी भाँति उस समय राजा पुष्यमित्र ने भीषण एवं गोल मुख वाले उन नागवंशीय राजाओं को पराजित किया और स्वयं सर्वपूज्य हुए। राजा पुष्यमित्र के राज्यपद प्राप्ति के समय विक्रम काल का सत्ताईस सौ बहत्तर वर्ष व्यतीत हो चुका था।१५-२८। उस धर्ममूर्ति ने सौ वर्ष तक राज्यपद को सुशोभित किया था। उसी राजा ने अपने राजकाल के समय अयोध्या, मथुरा, माया

पुरी द्वारवती तेन राज्ञा च पुनरुद्धृताः । कुरुसूकरपद्मानि क्षेत्राणि विविधानि च ।।३०
नैमिषोत्पलवृन्दानां वनक्षेत्राणि भूतले । नानातीर्थानि तेनैव स्थापितानि समन्ततः ।।३१
तदा कलिः स गन्धर्वो देवतापितृदूषकः । ब्राह्मणं वपुरास्थाय पुष्यमित्रमुपागमत् ।।३२
नत्वोवाच प्रियं वाक्यं शृणु भूप दयापर । आर्यदेशे पितृगणाः पूजार्हाः श्राद्धतर्पणैः ।।३३
अज्ञानमिति तज्ज्ञेयं भुवि यत्पितृपूजनम् । मृता ये तु नरा भूमौ पूर्वकर्मवशानुगाः ।।३४
भवन्ति देहवन्तस्ते चतुराशीतिलक्षधा । छद्मना मयदेवेन पितृपूजा विनिर्मिता ।।३५
वृथा श्रमं वृथा कर्म नृणां च पितृपूजनम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं विहस्याह महीपतिः ।।३६
भवान्मूर्खो महामूढो न जानीष परं फलम् । भुवर्लोके न ये दृष्टाः शून्यभूताश्च भास्वराः ।।३७
ये तु ते वै पितृगणाः पिण्डरूपविमानगाः । सत्पुत्रैश्च विधानेन पिण्डदानं च यत्कृतम् ।।३८
तद्विमानं नभोजातं सर्वानन्दप्रदायकम् । अब्दमात्रं स्थितिस्तेषां पिण्डपायसरूपिणाम् ।।३९
गीताष्टादशकाध्यायैः सप्तशत्याश्चरित्रकैः । पावितं यत्तु वै पिण्डं त्रिशताब्दं च तत्स्थितिः ।।४०
श्राद्धतर्पणहीना ये दृश्यन्ते मानवा भुवि । ते सर्वे नारका ज्ञेयाः कुलमेकोत्तरं शतम् ।।४१
श्राद्धकर्म महान्धर्मः श्राद्धोऽयं सर्वकारणम् । इति श्रुत्वा स गन्धर्वः कलीराजोऽन्न देहिनाम् ।।४२
नत्वोवाच नृपश्रेष्ठं प्रसन्नवदनो हि सः । सदा भव ममाशु त्वं तवाहं नृप किङ्करः ।।४३

(हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारकापुरी नामक तीर्थ स्थानों का पुनरुद्धार किया था। उन्होंने ही इस भूमण्डल पर चारों ओर कुरु, सूकर (वाराह) पद्म नामक विविध क्षेत्र नैमिषारण्य उत्पलारण्य एवं वृन्दावन और अनेक तीर्थों की स्थापना की थी। उस समय देवता तथा पितरों के निंदक कलि ने गन्धर्वसमेत ब्राह्मणवेष धारणकर राजा पुष्यमित्र के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—दयालु राजन्! कुछ मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये—आर्य प्रदेशों में श्राद्ध- तर्पण द्वारा पितरों की पूजा का जो एक महान् क्रम चला आ रहा है, मैं उसे उचित नहीं समझता। क्योंकि इस पृथ्वी पर पितरों की पूजा करना अज्ञानता प्रकट करना है, इसलिए कि इस कर्मक्षेत्र में जिस मनुष्य की परलोक यात्रा होती है, वे वहाँ जाकर चौरासी लाख योनियों की शरीर क्रमशः प्राप्त करते रहते हैं। अतः देवों ने इस पित्तृ-पूजा का क्रमेण पूर्ण प्रचार किया। क्योंकि पितृ-पूजन के निमित्त किये गये मनुष्यों- के श्रम एवं कर्म व्यर्थ हैं।' इसे सुनकर राजा ने हंसकर कहा—आप मूर्ख ही नहीं महामूढ़ हैं, इसलिए उस उत्तम फल की प्राप्ति आप नहीं जान सकते हैं। भूवर्लोक में शून्य-भूत एवं भास्वर रूप जो दिखाई पड़ते हैं, वे पिंडरूप विमान पर सुशोभित पितृगण हैं। सत्पुत्रों द्वारा सविधान दिये गये पिंड दान आकाश में पहुँचकर सभी प्रकार के आनन्दप्रदायक विमानरूप हो जाते हैं। पश्चात् वे विमान जो पायस पिंड द्वारा निर्मित होते हैं पूरे वर्ष तक वहाँ स्थित रहते हैं। गीता के अठारह अध्याय और सप्तशती (दुर्गाजी) के चरित्र पाठ द्वारा पवित्र किये गये पिंडदान विमानरूप में वहाँ तीन सौ वर्ष स्थित रहते हैं। इस पृथ्वी तल पर जो मनुष्य श्राद्धतर्पण कर्म से वञ्चित होते हैं, उनके वंश के एक सौ एक पीढ़ी के लोग नारकीय होते हैं। अतः श्राद्ध कर्म महान् धर्म हैं, क्योंकि वही समस्त का कारण है। इसे सुनकर गन्धर्वसमेत राजा कलि ने प्रसन्न होकर नमस्कार पूर्वक।२९-४२। नृप श्रेष्ठ राजा पुष्पमित्र से कहा—नृप! मैं आप का सेवक हूँ, मेरी इच्छा है कि आप मेरे मित्र हों। इससे आपका कलिमित्र पुष्य-

**कलिमित्रः पुष्यमित्रो भवान्भुवि भवेत्सदा । यथा विक्रमराजस्य वैतालस्य च वै सखा ॥४४
सर्वकार्यकरोऽहं वै तथा तव न संशयः । इत्युक्त्वा च नृपं धीरं समादाय स वै कलिः ॥४५
सप्तद्वीपांस्तथा खण्डान्नभोमार्गाननेकशः । स्वपृष्ठस्थाय राज्ञ च दर्शयामास वीर्यवान् ॥४६
आर्यधर्मं कलौ स्थाप्य नष्टभूतं स वै नृपः । त्यक्त्वा प्राणांश्च यज्ञांशे तेजस्तस्य समागमत् ॥४७
आन्ध्रदेशोद्भवो राजा सुगदो नाम वीर्यवान् । विना भूपं च तं देशं दृष्ट्वा राज्यमचीकरत् ॥४८
विंशदब्दं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् । तदन्वये षष्टिनृपा बभूवुर्बहुमार्गिणः ॥४९
पुष्यमित्रगते राज्ये दशोत्तरशतत्रयम् । तस्मिन्काले लयं जग्मुश्चान्ध्रदेशनिवासिनः ॥५०
शतार्द्धाब्दं ततो भूमिर्विना राज्ञा बभूव ह । तदा क्षुद्रा नरा लुब्धा लुण्ठिताश्चौरदारुणैः ॥५१
दारिद्रमगमन्घोरं विना स्वर्णं च भूरभूत् । पुनर्देवश्च भगवान्प्रार्थितस्तानुवाच ह ॥५२
देशे कौशलके जातः सूर्य्यांशाच्च महीपतिः । राक्षसारिरिति ख्यातो देवमार्गपरायणः ॥५३
ममाज्ञया स वै राजा भविष्यति महीतले । इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्देवलोकानुपागमत् ॥५४
राक्षसारिमयोध्यायां स्थापयामासुरेव तम् । आन्ध्रराष्ट्रे च यद्द्रव्यं राक्षसैश्च समाहृतम् ॥५५
तद्द्रव्यं राक्षसाञ्जित्वा ग्रामे ग्रामे चकार सः । तारधातोरष्टमूल्यं सुवर्णं भुवि तत्कृतम् ॥५६
आरधतोः शतं मूल्यं राजतं तेन वै कृतम् । ताम्रधातोः पञ्चमूल्यमारधातोश्च तत्कृतम् ॥५७**

मित्र नाम इस भूमण्डल में सदैव स्थापित रहेगा । जिस प्रकार राजा विक्रमादित्य के मित्र वैताल उनके सभी कार्य सुसम्पन्न करते थे, उसी में मैं आपकी सेवा पूर्वक समस्त कार्यों को पूरा करूँगा, इतना कहकर उस पराक्रमी कलि ने उस धीर गम्भीर राजा को अपनी पीठ पर बैठाकर आकाश के मार्गों द्वारा उन्हें सातों द्वीपों नव खण्डों के दर्शन कराया । राजा पुष्पमित्र ने कलि के समय सभी प्रदेश में नष्ट प्राय उस आर्य- धर्म का पुनः विस्तृत प्रचार किया । पश्चात् शरीर परित्याग करने पर उनका तेज यज्ञांश में विलीन हुआ । उस समय आंध्र देशीय एवं पराक्रम शाली राजा सुगद ने राज्य के न रहने पर उस राज्य को अपने अधीन कर उसका उपभोग किया । इस कर्मभूमि क्षेत्र में बीस वर्ष तक राज्य पद सुशोभित करने के उपरांत उनकी परलोक यात्रा हुई । अनन्तर उनके वंश के साठ राजाओं ने जो अनेक मार्गावलम्बी थे, क्रमशः उस सिंहासन को सुशोभित किये । पुष्यमित्र राज्य के च्युत होने के तीन सौ दश वर्ष व्यतीत होने पर उसी समय आंध्र देश निवासी राजा का भी विनाश हुआ था । पश्चात् पचास वर्ष तक यह पृथिवी विना राजा की ही रही । उस समय चोर डाकुओं ने छोटे-छोटे मनुष्यों को लूटकर अत्यन्त दुःखी बना दिया था, उससे घोर दरिद्र का आगमन हुआ—पृथ्वी सुवर्ण हीन हो गई । उसे देखकर देवों ने पुनः भगवान् से प्रार्थना की । प्रसन्न होकर भगवान् ने उन देवों से कहा—कौशल देश में सूर्यांश द्वारा 'राक्षसारि' नामक राजा है, जो अत्यन्त देवों का अनुयायी है मेरी आज्ञा से वही नदीतल का राजा होगा । इतना कहकर विष्णु ने अन्तर्हित होकर देवलोक की यात्रा की । अनन्तर उस राक्षसारि को अयोध्या के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया । उस राजा ने आंध्रप्रदेश में राक्षसों द्वारा अपहृत किये गये द्रव्यों को पराजित राक्षसों से प्राप्तकर प्रत्येक ग्रामों में मोतियों का आठ सुवर्ण मूल्य निर्धारित किया ।४३-५६। उसी प्रकार पीतल का सौ मुद्रा चाँदी, ताँबें का पाँच पीतल, नागधातु का पाँच ताँबे का मूल्य निश्चित

नागधातोः दशमूल्यं भुवि तेनैव निर्मितम् । ताम्रं पवित्रमधिकं नागो वङ्गस्तथोत्तमः ।।५८
लौहधातोः शतं मूल्यं वङ्गोऽसौ तेन सत्कृतः । शतार्द्धाब्दं मही भुक्त्वा सूर्यलोकमुपाययौ ।।५९
तदन्वये षष्टिनृपा जाता वेदपरायणाः । पुष्यमित्रगते राज्ये चाब्दे सप्तशते गते ।।६०
कौशलान्वयसम्भूता भूपाः स्वर्गमुपाययुः । शतार्द्धाब्दं ततो भूमिर्मण्डलीकं नृपं विना ।।६१
क्षुद्रभूपांश्च बुभुजे देशे देशे च भार्गवः । ततो वैदरदेशीयो नाम्ना भूपो विशारदः ।।६२
आर्यदेशमुपागम्य लक्षसैन्यसमन्वितः । क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य मण्डलीको बभूव ह ।।६३
नानाकलैश्च कर्माणि विचित्राणि महीतले । ग्रामे ग्रामे नराश्चक्रुर्वर्णसङ्करकारकाः ।।६४
ब्रह्मक्षत्रमयो वर्णो नाममात्रेण दृश्यते । वैश्यप्राया नरा आर्याः शूद्रप्रायाश्च कारिणः ।।६५
तद्राष्ट्रे मनुजाश्चासन्नाममात्रं सुरार्चकाः । षष्टिवर्षं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् ।।६६
ततो नृपा महीं प्राप्ताः षट्सङ्ख्यास्तु तदन्वयाः । पुष्यमित्रगते राष्ट्रे शतषोडशहायनी ।।६७
वैदरा निधनं जग्मुः कलिकाले भयानके । चतुश्शतानि वर्षाणि क्षुद्ररूपा च भूरभूत् ।।६८
ततश्चान्नैषधे राष्ट्रे कालमाली नृपोऽभवत् । क्षुद्रभूपान्वशीकृत्यस्वयं राजा बभूव वै ।।६९
यमाभूयः भुवि त्वष्ट्रा नगरी यमुनातटे । निर्मिता योजनायातु कालकालेति विश्रुता ।।७०
तत्रार्यदेश भूपानां पूज्यो राजा स चाभवत् । देवान्पितृंस्तिरस्कृत्य प्रेतपूजां जने जने ।।७१

किया । पश्चात् उसी क्रम से नागवंश का भी । और लोहे का सौ वंश मूल्य स्थापित किया । इस भाँति उसने पचास वर्ष तक राज्य पद सुशोभित करनेके उपरांत सूर्यलोक की यात्रा की । अनन्तर उनके कुल के साठ राजाओं ने क्रमशः उस राजपद को सुशोभित करते रहे । पुष्पमित्र के राज्य काल के सात सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर कौशलवंशीय राजाओं ने स्वर्गारोहण किया, जिससे पचास वर्ष तक यह पृथ्वी मण्डलीक राजा से वञ्चित रही । भार्गव ! उस समय छोटे-छोटे राजा पृथ्वी पर राज कर रहे थे । उसी बीच वैदर देश के राजा ने आर्यदेश में पहुँचकर अपने लाख सैनिकों द्वारा उन छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीनकर मण्डलीक पद को अपनाया । उस राजा ने इस भूमण्डल पर अनेक भाँति के कलापूर्ण एवं विचित्र कार्यों के सुसम्पन्न होने के लिए प्रत्येक ग्रामों में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया, जो वर्णसंकर के प्रचारक थे । उस राज काल में ब्राह्मण-क्षत्रियवर्ण नाममात्र का रह गया था । आर्य मनुष्य वैश्य और शूद्र राजगीर हो गये थे । उसके राज्य में मनुष्य नाममात्र के देवपूजक थे । इस प्रकार उसने इस कर्म भूमि प्रदेश में साठ वर्ष तक उस सिंहासन को अपनाया था । पश्चात् उसके वंश के क्रमशः छे राजाओं ने उस पद को अपनाकर राज्य किया । पुष्यमित्र राजा के सोलह सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर उस भीषण कलिकाल के समय दूर राजाओं का समूल विनाश हो गया । पुनः छोटे-छोटे राजाओं ने पृथक्-पृथक् अपना आधिपत्य स्थापित किया । चार सौ वर्ष के उपरांत नैषध राज्य के प्रदेश में कालमाली नामक राजा ने राजसिंहासन को सुशोभित किया । उसने अनेक छोटे राजाओं को अपने अधीन करने के उपरांत उस नगर में अपनी राजधानी स्थापित की, जो यमुना नदी के तट पर त्वष्ट्रा द्वारा एक योजन में विस्तृत एवं 'काल-काला' नाम से प्रख्यात थी ।५७-७०। आर्य राजाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित करके उसने देवों तथा पितरों के अपमान पूर्वक प्रत्येक जनों में प्रेत-पूजा का प्रचार किया । इस प्रकार

कालमाली च कृतवान्देशनैषधसंस्थितः । द्वात्रिंशद्वर्षराज्यं तद्बभूव जनपीडनम् ।।७२
तदन्वये षष्टिनृपाः बभूवुः प्रेतपूजकाः । शताब्दांतमभूद्राज्यं तेषां नैषधदेशिनाम् ।।७३
सहस्राब्दं तु तत्पश्चात्क्षुद्रभूपा मही ह्यभूत् । सुरार्चनं वेदमार्गः श्रुतमात्रश्च दृश्यते ।।७४
पुष्यमित्रगते राज्ये चैकत्रिंशच्छते कलौ । द्वात्रिंशदुत्तरे चैव तदा देवाश्च दुःखिताः ।।७५
कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वोचुर्वचनं प्रियम् । भगवन्कलिकालेऽद्य वर्णाश्चत्वारिभूतले[१] ।।७६
भ्रष्टाचाराः प्रेतमयाः शतार्द्धाब्दप्रजीविनः । देवान्पितॄंस्तिरस्कृत्य पिशाचान्पूजयन्ति वै ।।७७
ग्रामे ग्रामे च कुस्थानि पूजितानि नरैर्भुवि । दृश्यन्तेऽस्माभिरद्यैव दुःखिताश्च नरा भृशम् ।।७८
भूतप्रेतपिशाचाश्च डाकिनीशाकिनीगणाः । स्वपूजाभिर्मदान्धाश्च निन्दयन्ति सुरान्पितॄन् ।।७९
अतोऽस्मान्दुर्बलान्विद्धि सबलान्भूतनायकान् । कृपया पाहि नः स्वामिञ्छरणागतवत्सल ।।८०
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो नदीहोपवने स्थितः । नम्रभूतान्सुरान्प्राह मागधे तु महीपतिः ।।८१
पुरञ्जयो ब्रह्मपरस्तस्य पत्नी पुरञ्जनी । मदाज्ञया तयोः पुत्रो भविष्यति महाबलः ।।८२
विश्वस्फूर्जिरिति ख्यातो ब्रह्ममार्गपरो गुणी । इत्युक्तवचने तस्मिन्गर्भं धत्ते पुरञ्जनी ।।८३
दशमासान्तरे जातो विश्वस्फूर्जिर्महाबलः । जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ।।८४
पुष्यमित्रो यथा चासीद्वर्णधर्मप्रवर्तकः । तथायं बालको जातो ब्रह्ममार्गपरो बली ।।८५
करिष्यति परो वर्णान्कलिन्दयदुमद्रकान् । प्रजाश्च ब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ।।८६

उस कालमाली राजा ने प्रजाओं को पीड़ित करते हुए बत्तीस वर्ष तक राज्य किया । तदनन्तर उसके वंशज साठ राजाओं ने जो नैषध देश के निवासी थे, क्रमशः सौ वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक पुनः पूर्व की भाँति छोटे-छोटे राजाओं ने पृथक्-पृथक् शासन सूत्र ग्रहण किया । उस समय देवों-की पूजा, वैदिकधर्म केवल नाममात्र सुनाई पड़ता था । पुष्यमित्र के राज्यकाल के इकतीस सौ वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत बत्तीसवें के अन्त समय में देवों ने दुःख प्रकट करते हुए कृष्णचैतन्य के पास जाकर नमस्कार पूर्वक प्रियवाणी द्वारा उनसे कहा—भगवन् भूमण्डल में इस समय चारों वर्ण भ्रष्ट हो गये हैं, जो प्रेतमय जीवन व्यतीत करते हुए पचास वर्ष तक ही जीवित रहते हैं । वे लोग पृथ्वी में चारों ओर देवों एवं पितरों के अपमानपूर्वक पिशाचों की ही पूजा करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक ग्रामों में मनुष्यों द्वारा वही निन्दित पूजन चल रहा है । उसी लिए वे अत्यन्त दुःखी भी है यह हम लोगों ने भली भाँति देखा है, और भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी एवं शाकिनीगण अपनी पूजा से मदान्ध होकर देवों और पितरों की निन्दा करते हैं । अतः स्वामिन् शरणागत वत्सल ! कृपाकर हमारी रक्षा कीजिये, क्योंकि वे सब सबल और हम लोग सभी निर्बल हैं । इसे सुनकर नदीहा के उपवन में स्थित यज्ञांशदेव ने विनयविनम्र देवों से कहा—मगध देश के राजा पुरंजय और उसकी पत्नी पुरञ्जनी ब्रह्म की उपासना कर रहे हैं, मेरी आज्ञावश उनके संयोग से एक महाबली पुत्र की उत्पत्ति होगी, जो 'विश्व स्फूर्जि' के नाम से प्रख्यात, ब्रह्ममार्गपरायण एवं गुणी होगा । इसके अनन्तर पुरञ्जनी ने गर्भ धारण किया, जिससे दशवें मास में महाबली विश्वस्फूर्जि नामक राजकुमार का जन्म हुआ ।७१-८४। उस राजकुमार के जन्म ग्रहण करने के समय आकाश वाणी हुई—वर्णधर्म के प्रवर्तक राजा पुष्यमित्र की भाँति यह बली बालक भी वर्णधर्म कें प्रचार पूर्वक ब्रह्ममार्ग का अनुगामी होगा। यदुवंशियों, तथा भद्रदेश निवासियों में वर्णव्यवस्था

वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्याः स वै पुरम् । इत्याकाशवचः श्रुत्वा स नृपस्तु पुरञ्जयः ॥८७
ददौ दानं क्षुधार्तेभ्योऽतिथिभ्यस्सपरिच्छदः । अष्टौ वर्षसहस्राणि चाष्टवर्षशतानि च ॥८८
कर्मभूम्यां कलौ प्राप्ते व्यतीतानि तदा मुने । विश्वस्फूर्जिर्नृपश्चासीन्महाबुद्धो महाबलः ॥८९
क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य सर्ववर्णान्नरांस्तदा । स्थापयामास वै ब्रह्मे वर्णे ब्रह्मपरायणे ॥९०
क्षत्रविट्च्छूद्रका वर्णाः पिशाचा वर्णसङ्कराः । गुरुण्डाद्यास्तथा म्लेच्छा ब्राह्मणास्ते बभूविरे ॥९१
सन्ध्यातर्पणदेवानां पूजादिविविधाः क्रियाः । चक्रुस्ते वेदविधिना तुल्यभोजनशीलिनः ॥९२
षष्टिवर्षं कृतं राज्यं तेन सम्यक्कृता मुने । तदन्वये नृपाश्चासन्सहस्रा भुवि विश्रुताः ॥९३
अयुताब्दान्तरे जाता ब्रह्ममार्गपरायणाः । तैश्च दत्तानि भागानि यज्ञमध्ये विधानतः ॥९४
दैत्येभ्यश्च सुरेभ्यश्च तुल्यरूपाणि चागमन् । विस्मिताश्च सुरास्सर्वे यज्ञांशं शरणं ययुः ॥९५
तदुक्तं कारणं ज्ञात्वा शक्रपुत्र उवाच तान् । वेदो नारायणः साक्षाद्विवेकी हंसरूपवान् ॥९६
नृणां च गुणभेदेन वर्णभेदं चकार ह । सद्गुणो ब्राह्मणो वर्णः क्षत्रियस्तु रजोगुणः ॥९७
तमोगुणस्तथा वैश्यो गुणसाम्यात्तु शूद्रकः । तृप्तिं यान्ति पितुर्वृन्दा ब्राह्मणैः क्षत्रियैः सुराः ॥९८
वैश्यैश्च यक्षरक्षांसि शूद्रैर्दैत्याश्च दानवाः । एकवर्णे च चत्वारो वर्णाः कायस्थ एव सः ॥९९
भूतप्रेतपिशाचाद्याः कायस्थैस्तर्पितास्सदा । ब्रह्मवर्णे तु वर्णाश्चस्थिताश्चत्वारि साम्प्रतम् ॥१००

की स्थापना करते हुए कलि के दमन करने वाला यह राजपुत्र उन दुष्ट बुद्धिवाली प्रजाओं को वैदिक मार्ग के अनुयायी करने के उपरांत दुष्ट राजाओं के विनाश पूर्वक पद्मवतीपुरी की स्थापना करेगा। इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर राजा पुरञ्जय ने क्षुधा पीडितों अतिथियों को वस्त्रादि समेत दान प्रदान किया। मुने! उस समय कलि के आगमन का आठ सहस्र आठ सौ वर्ष व्यतीत हो चुका था। उस अवसर पर महाबलवान् एवं महाप्रबुद्ध राजा विश्वस्फूर्जि ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीनकर सभी वर्ण के मनुष्यों को ब्राह्मण वर्णों में सम्मिलित किया—क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर पिशाच, गुरुण्ड और म्लेच्छ सभी ब्राह्मण हो गये। उन तुल्य भोजियों ने वैदिक विधान द्वारा संध्या, तर्पण एवं देवों की विविध भाँति की पूजाओं को सुसम्पन्न करते हुए अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत किया। मुने! इस प्रकार साठ वर्ष तक राज्य के सुखोपभोग करने के उपरांत उनके कुल सहस्र राजाओं ने क्रमशः जो इस महिमण्डल में अत्यन्त प्रख्यात थे, दशसहस्र वर्ष तक राज्य किया। उन ब्रह्ममार्गावलम्बि राजाओं द्वारा यज्ञानुष्ठान में दिये गये भाग को दैत्य और देवगण समान रूप में ग्रहण करते थे। उसे देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ। पश्चात् उन देवों ने यज्ञांशदेव की शरण जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। उसका कारण जानकर शक्रपुत्र (यज्ञांशदेव) ने कहा—वेद साक्षात् नारायण भगवान् हैं। उन्होंने विवेकी हंस- रूप धारण करके मनुष्यों में गुणभेद के अनुसार वर्णभेद की व्यवस्था स्थापित की है—सतोगुण वाले ब्राह्मण, रजोगुण वाले क्षत्रिय, तमोगुण वाले वैश्य, और तीनों गुणों के समान वाले शूद्र कहे गये हैं, जिनमें ब्राह्मणों क्षत्रियों द्वारा पितरवृन्द और देवगण, वैश्यों द्वारा यक्ष राक्षस।८५-९८। और शूद्रों द्वारा दैत्य-दानवगण तृप्त होते हैं। एक वर्ण में चारों वर्णों के धर्म की समानता हो जाने से वह वर्ण कायस्थ कहलाया जो सदैव भूत-प्रेत और पिशाचों को तृप्त करते रहते हैं। इसलिए इस समय ब्रह्म,

ब्रह्मशङ्करवर्णोऽयं तेभ्यः पूर्वं हि दानवाः । अर्द्धतृप्ता भविष्यन्ति तत्पश्चात्स्वर्गवासिनः ।।१०१
अतोऽहं च कलौ घोरे युष्मदर्थे महीतले । सौराष्टनृपतेर्गेहं स्वांशाद्यास्यामि भोः सुराः ।।१०२
इत्युक्त्वा स च यज्ञांशः सोमनाथः कलैकया । नाम्ना बभूव तद्गेहे सौराष्ट्रनगरीस्थितः ।।१०३
जित्वा भूपान्स्वयं राज्यं चकाराब्धितटे मुदा । क्षत्रवर्णमयी भूमिस्तदा जाता कलौ युगे ।।१०४
सोमनाथः स वै यज्ञैः सुरान्सर्वानतर्पयत् । शताब्दं च कृतं राज्यं तेन देवप्रसादतः ।।१०५
तस्य राज्यमयं संवदभवल्लोकविश्रुतम् । तदन्वये सार्द्धशतं भूपाश्चासन्सुरप्रियाः ।।१०६
अयुताब्दान्तरे किञ्चिदधिके च सुखप्रदाः । कर्मभूम्यां कलौ प्राप्ते हायना अयुतत्रयम् ।।१०७
व्यतीतं च ततो दैत्या दुःखिताः कलिमब्रुवन् । पुरास्समाभिः शताब्दं च तपसा वै महेश्वरः ।।१०८
तुष्टीकृतस्तदास्मभ्यं भवान्दत्तो हितेन वै । अर्धभागं वज्रमयमर्धभागं च कोमलम् ।।१०९
तवाङ्गं सुन्दरं देव कलेऽस्मान्रक्ष दुःखितान् । इति श्रुत्वा च स कलिर्दैत्यपक्षविवर्द्धनः ।।११०
स्वांशाज्जन्म कलौ प्राप्य गुर्जरे देशदारुणे । आभीरी सिंहिका नाम सिंहमांसाशना खला ।।१११
तस्या योनौ समागम्य राहुर्नाम स चाभवत् । यथा राहुर्नभोमार्गे दारुणो हि विधुन्तुदः ।।११२
तथा राहुः कलेरंशो भुवि जातः सुरन्तुदः । जातमात्रे सुते तस्मिन्भूमिकम्पो महानभूत् ।।११३
विपरीता ग्रहाः सर्वे जनयन्ति महद्भयम् । तद्भयात्सकला देवास्त्यक्त्वा मूर्तीः समन्ततः ।।११४

वर्ण में चार वर्ण हुए हैं । ये सभी ब्रह्म शंकर वर्ण के हैं । इन सब द्वारा दिये गये यज्ञ-भागों से सबभसे पहले दानव अर्धतृप्त होते हैं, फिर स्वर्गीय देवलोग । अतः देववृन्द ! इस भीषण कलि के समय तुम लोगों के हित के लिए मैं भूमण्डल में सौराष्ट्र राजा के यहाँ अपने अंश से अवतरित होने जा रहा हूँ । इतना कहकर यज्ञांशदेव ने अपनी एक कला द्वारा सौराष्ट्र नगरी के अधीश्वर के यहाँ अवतरित होकर सोमनाथ नाम से प्रख्याति प्राप्त की । उन्होंने सभी राजाओं को पराजित कर समुद्र तट पर अपनी राजधानी स्थापित की । उस समय कलियुग में पृथ्वी पर क्षत्रिय वर्ण की अधिकता दिखाई देने लगी । सोमनाथ ने अनेक यज्ञानुष्ठानों की सुसम्पन्नता द्वारा सदैव देवों को तृप्त किया । इस प्रकार उन्होंने देवों के प्रसाद से सौ वर्ष तक उस राजसिंहासन को सुशोभित किया । और उनके राज्यकाल में ही उनके नाम पर संवत् आरम्भ हुआ । पश्चात् उनके कुल के डेढ़ सौ राजाओं ने देवप्रिय होकर दश सहस्र वर्ष तक क्रमशः राज्याधिकार पूर्वक सुखी जीवन व्यतीत किया । इस कर्मभूमि भारत प्रदेश में कलि के तीस सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर दुःखी होकर दैत्यों ने कलि से कहा—पहले हम लोगों ने सौ वर्ष तक महेश्वर की आराधना की थी, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसके फलस्वरूप हमें आपको दिया, और आप की शरीर में आधा भाग वज्र की भाँति कठोर और आधे भाग को कोमल बनाया । अतः कलि महाराज ! आप हमारी रक्षा करें । इस समय हमलोग अत्यन्त दुःखी हैं । इसे सुनकर दैत्यपक्ष के समर्थक उस कलि ने अपने अंश से उस दारुण गुर्जर (गुजरात) प्रदेश में सिंहिका नामक आभीरी (अहीरिन) के गर्भ से जो सिंहमांस भक्षण करती थी, जन्म ग्रहण किया । उसका नाम 'राहु' हुआ जिस प्रकार आकाशमार्ग में स्थित होकर राहु चन्द्रमा को पीड़ित करने के नाते विधुंतद् कहलाता है ।९९-११२। उसी प्रकार यह राहु भी कलि अश द्वारा भूतल पर जन्म ग्रहण करने के नाते सुरन्तुद् (देवों को दुःख देने वाला) कहा जाने लगा । उसके जन्म ग्रहण करने के समय महान् भूकम्प हुआ, सभी देवगण प्रतिकूल होकर भयंकर भय की

महेन्द्रं शरणं जग्मुः सुमेरुगिरिमूर्द्धनि । तदर्थे भगवाञ्छक्रस्तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥११५
कन्यामूर्तिमयी देवी सुरान्प्राह शिवङ्करी । मभाङ्गदर्शनाद्देवाः क्षुत्तृड्भ्यां च विना सदा ॥११६
भवध्वं च ततो यूयं मद्विलोकनतत्पराः । इति श्रुत्वा तु ते देवा हर्षिताः सम्बभूविरे ॥११७
आभीरीतनयो राहुः कृत्वा राज्यं शतं समाः । त्यक्त्वा प्राणान्कलौ लीनो बभूव मुनिसत्तम ॥११८
तदन्वये सार्द्धशतमयुताब्दान्तरेभवत् । महामदमतं घोरं चिरकालाद्विनाशितम् ॥११९
तैः पुनश्चोद्धृतं भूमौ सर्वे म्लेच्छा बभूविरे । न वेदाश्च न देवाश्च न वर्णाश्च कलौ युगे ॥१२०
दृश्यन्ते न च मर्यादा कलिकाले तदन्वये । द्विजशेषाः सहस्राश्च पुनरर्बुदमूर्द्धनि ॥१२१
द्वादशाब्दं प्रयत्नेन देवानाराधितुं क्षमाः । अर्बुदाच्च समुद्भूतोराजन्यः खड्गचर्मधृक् ॥१२२
जित्वा म्लेच्छान्दुराधर्षान्नाम्ना चार्वबली ह्यभूत् । पञ्चयोजनमाना स भूमिरात्मादिवृद्धये ॥१२३
निर्मिता तेन शुद्धेन नाम्ना चार्वपुरी स्मृता । शनैः शनैरार्यकुलं पुनस्तत्र ववर्द्ध ह ॥१२४
शतार्द्धाब्दं प्रयत्नेन तेन राज्यं महत्कृतम् । तदन्वये सार्द्धशतं नृपाश्चासंस्तदामुने ॥१२५
अयुताब्दान्तरे वीरा म्लेच्छमित्राश्च सङ्कराः । म्लेच्छकन्योद्वहा घोरा नाममात्रार्य्यमार्गगाः ॥१२६
तदा मलयदेशस्थैर्म्लेच्छैर्लक्षप्रमाणकैः । आर्वुदार्यैः समं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥१२७

सूचना देने लगे । उस समय समस्त देवों ने अपनी मूर्ति का निवास त्यागकर सुमेरु पर्वत के लिए शिखर पर महेन्द्रदेव की शरण प्राप्त की । इसे सुनकर इन्द्र ने भगवती जगदम्बा की आराधना की । तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक कन्यारूप में प्रकट होकर कल्याणकारिणी भगवती ने देवों से कहा—देववृन्द ! मेरे अंग दर्शन के फलस्वरूप तुम्हें क्षुधा एवं पिपासा का नष्ट नहीं होगा, इसी भाँति सदैव यहाँ स्थित रहकर तुम लोग मेरा दर्शन करते रहो । इसे सुनकर देवों ने सहर्ष उसे स्वीकार कर किया । मुनिसत्तम ! वह आभीरी (अहीरिन) का पुत्र राहु सौ वर्ष तक राज्य करके अपने प्राण के परित्याग पूर्वक कलि में विलीन हो गया । पश्चात् उसके वंश में डेढ़ सौ राजाओं ने दश सहस्र वर्ष तक महामद (मुहम्मद) के मृतकों जो घोर एवं चिरकाल में विनष्ट हो गये, अपनाकर राज्य का उपभोग किया । उन्होंने अपने उस मत का पुनः विस्तृत प्रचार आरम्भ किया, जिससे पृथ्वी के सभी लोग म्लेच्छ होने लगे । उस भीषण कलि में उन राजाओं के राजकाल के समय वेद, देव, एवं वर्ण की व्यवस्था का प्रायः लोप हो चला था, और मर्यादा तो एकदम विलीन हो गई थी । उस समय शेष सहस्र ब्राह्मणों ने अर्बुद पर्वत के शिखर पर जाकर सप्रयत्न देवों की आराधना करना आरम्भ किया, जिससे उसी अर्बुद पर्वत से खड्ग एवं चर्म अस्त्रधारी एक राजाओं का समूह उत्पन्न हुआ, जो उन दुर्धर्ष म्लेच्छो पर विजयप्राप्ति पूर्वक बलवान् 'चार्व' के नाम से ख्याति प्राप्त की । उन्होंने अपने वंश वृद्धयर्थ पाँच योजन की समतल भूमि पर अपने शुद्ध नाम की एक पुरी का निर्माण कराया । उसी स्थान पर पुनः आर्यकुल की वृद्धि धीरे-धीरे होने लगी । उन्होंने वहाँ रहकर प्रयत्न पूर्वक पचास वर्ष तक राज्य किया । मुने ! उसके अनन्तर उनके कुल के डेढ़ सौ राजाओं ने इस भूमण्डल पर राजपद को दश सहस्र वर्ष तक समलङ्कृत किया । पश्चात् दश सहस्र वर्ष के उपरांत उन वीरों ने म्लेच्छों से मैत्री स्थापितकर म्लेच्छ कन्याओं के साथ विवाह करना आरम्भ किया, जिससे नाममात्र आर्यों की उत्पत्ति हुई और उस समय आर्यमार्ग के अनुयायी नाममात्र के रह गये थे। उसी बीच मलयदेश के निवासी म्लेच्छों ने एक लाख की संख्या में एकत्र होकर आर्बुद आर्यों पर

वर्षमात्रान्तरे जित्वा मालवस्था महाबलाः । मण्डलीकपदातैश्च मुक्तमार्यैः समन्ततः ।।१२८
चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणि जगतीतले । म्लेच्छभूपाश्च शतशो बभूवुः स्वल्पजीविनः ।।१२९
पंचविंशत्सहस्राणि तेषां संख्या च भूभुजाम् । ये तु पुण्या महीपालाः पूर्वजन्मतपोद्भवाः ।।१३०
तेषां लीला च मुनिभिः पुराणेषु प्रकीर्तिता । नानासंवत्कराः सर्वे पैशाचा धर्मदूषकाः ।।१३१
नवत्यब्दसहस्राणि व्यतीतानि कलौ युगे । जाता म्लेच्छमयी भूमिरलक्ष्मीरस्तु जनेजने ।।१३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

ततस्ते सकला दैत्याः कलिना च पुरस्कृताः । कृत्वा च जलयानानि हरिखण्डमुपाययुः ।।१
मनुजा हरिखण्डे च देवतुल्या महाबलाः । अयुध्यंस्तान्महाशस्त्रैरयुताब्दप्रजीविनः ।।२
दशवर्षान्तरे सर्वे मायायुद्धैः पराजिताः । महेन्द्रं शरणं जग्मुर्हरिखण्डनिवासिनः ।।३

चढ़ाई की जिससे एक वर्ष तक रोमाञ्चकारी युद्ध होता रहा। उस भयानक युद्ध में मालवदेश के महाबली म्लेच्छों ने जो राजा के पैदल सैनिक थे, राजा को पराजित कर आर्यों को उनके देश से निकाल दिया। इस प्रकार उन म्लेच्छ भूपों ने क्रमशः इस भूमण्डल पर चालीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया, उन स्वल्पजीवी म्लेच्छ राजाओं की संख्या पच्चीस सहस्र थी। उनमें जो पुण्यात्मा राजा थे, जिन्होंने पूर्व जन्म के तप द्वारा राज्यपद की प्राप्ति की थी, उन्हीं के चरित्रों का वर्णन मुनियों ने पुराणों में किया है। वे अनेक भाँति के संवत्प्रवर्तक पैशाच धर्म (अधर्म) के विनाशक थे। पश्चात् नब्बे सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरांत कलि युग में समस्त भूमि म्लेच्छमयी हो गई जिसमें प्रत्येक प्राणी दरिद्रता से पीड़ित हो रहा था।११३-१३२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहास समुच्चय
वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।२३।

अध्याय २४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उसके पश्चात् सभी दैत्यों ने कलि को आगे कर जलयान द्वारा हरिखण्ड को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उस खण्ड के निवासी मनुष्यों ने जो देवतुल्य, महाबली, एवं दशसहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, अपने महास्त्रों द्वारा उन दैत्यों से घोर युद्ध किया। दशवर्ष के उपरांत हरिखण्ड के निवासियों ने उन मायावी दैत्यों द्वारा युद्ध में पराजित होकर सुरेन्द्र की शरण प्राप्त की।१-३। उस समय

तदा तु भगवाञ्छक्रो विश्वकर्माणमब्रवीत् । भ्रमिश्च नामयन्त्रोऽयं संस्थितः सप्तसिन्धुषु ।।४
त्वया विरचितस्तात तत्प्रभावान्नरा भुवि । अन्यखण्डे न गच्छन्ति स च यन्त्रस्तु मायिना ।।५
मयेन भ्रंशितो भ्रात्रा म्लेच्छैः सार्द्धं समन्ततः । सप्तद्वीपेषु यास्यन्ति मनुजा मम बैरिणः ।।६
अतो नः पाहि मर्यादां भूमध्ये भवता कृताम् । इति श्रुत्वा विश्वकर्मा दिव्ययन्त्रमचीकरत् ।।७
तेन यन्त्रप्रभावेन भ्रमितास्ते बभूविरे । भ्रमियन्त्रान्महावायुर्जातो म्लेच्छविनाशकः ।।८
तद्वायोरभवत्पुत्रो वात्यो वात्यासमुद्भवः । दैत्ययक्षांश्च पैशाचाञ्जित्वा ज्ञानमयो बली ।।९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रिवर्णास्तेन सत्कृताः । बलान्म्लेच्छान्वर्णमयान्कृत्वा वात्यो महाबलः ।।१०
शतार्द्धाब्दं मण्डलीकं पदं भुवि गृहीतवान् । तदन्वये सहस्राश्च नृपाश्चासन्कलौ युगे ।।११
वायुपक्षास्त्रिवर्णाढ्याः षोडशाब्दसहस्रके । वायोर्जातः स्वयं ब्रह्मा वायोर्जातः स वै हरिः ।।१२
वायोर्जातो महादेवः सर्वं वायुमयं जगत् । विना वायुं मृताः सर्वे वायुना भुवि जीविनः ।।१३
इति मत्वा तु ते लोका वायुं च समतर्पयन् । पुनस्तदा कलिर्घोरो दैत्यराजं बलिं प्रभुम् ।।१४
नत्वा निवेदयामास दुःखितोऽभूत्तदा बलिः । वामनान्तिकमागम्य कलिमित्रेण संयुतः ।।१५
नत्वोवाच स वै राजा देवदेवं जनार्दनम् । त्वया कलिः कृतो मह्यं प्रसन्नेन सुरोत्तम ।।१६

देवेन्द्र ने विश्वकर्मा से कहा—तात ! सातों समुद्रों में तुम्हारे बनाये हुए यंत्र स्थापित हैं, जिससे प्रभावित होकर मनुष्य एक खण्ड से दूसरे खण्ड की यात्रा नहीं कर सकता है, किन्तु उस मायावी मय दैत्य ने उस यंत्र को नष्ट कर दिया, जिससे म्लेच्छों के साथ मेरे शत्रु मनुष्यगण भी सातों द्वीपों में यथेच्छ विचरण कर सकेंगे ! इसलिए भूमण्डल की उस मेरी मर्यादा की जो आपके द्वारा निर्धारित हुई है, रक्षा कीजिये । इसे सुनकर विश्वकर्मा ने एक दिव्य यंत्र की रचना की, जिससे प्रभावित होकर वहाँ के सभी यात्री चक्कर काटने लगे । पुनः उस भूमियंत्र द्वारा म्लेच्छों के विनाशार्थ एक महावायु की उत्पत्ति हुई । पश्चात् उस वायु के 'वात्य' नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस बली एवं ज्ञानमय पुत्र ने दैत्य, यक्ष तथा पिशाचों को पराजित कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्य, इन तीनों वर्णों का स्थापनपूर्वक विशेष सम्मान किया । महाबलवान् वात्य ने म्लेच्छों में भी वर्ण-व्यवस्था स्थापित की । इस प्रकार इस भूमण्डल में उन्होंने मण्डलीक पद को सुशोभित करते हुए पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस कलियुग के समय उनके कुल के एक सहस्र राजाओं ने उनके अनन्तर क्रमशः जो वायु पक्ष के समर्थक और तीनों वर्णों के विस्तृत प्रचारक थे, सोलह सहस्र वर्ष तक इस पद को विभूषित किया । क्योंकि वायु द्वारा स्वयं ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और उसी भाँति विष्णु, महादेव की उत्पत्ति पूर्वक समस्त विश्व वायुमय हैं, विशेषकर भूतल में वायुहीन होने पर मृतक और वायुद्वारा जीवित होते हैं । ऐसा जानकर लोक निवासियों ने वायु को प्रसन्न करने के लिए विविध भाँति की चेष्टा की । पश्चात् घोर कलि में दैत्यराज बलि के पास जाकर नमस्कार पूर्वक उनसे समस्त वृत्तान्त का निवेदन किया । उसे सुनकर दुःख प्रकट करते हुए बलि ने कलि मित्र समेत वामन भगवान् के पास जाकर नमस्कार पूर्वक उन देवाधिदेव जनार्दन से कहा—सुरश्रेष्ठ ! आपने प्रसन्नता पूर्वक मेरे लिए कलि का निर्माण किया था ।४-१६। किन्तु कर्मक्षेत्र (भारत) में कलि के

वात्यैर्द्विजैः कर्मभूमेः कलिस्तु स निराकृतः । एकपादो व्यतीतोऽद्य किञ्चिदूनं कलेः प्रभोः ।।१७
मया सम्यक्तु वै मुक्ता भूमिर्देवेन्द्रमायया । सहस्राब्दं कलौ प्राप्ते मया भुक्तं महीतलम् ।।१८
ततः सार्द्धं सहस्राब्दं देवैर्भुक्तं सुरस्थलम् । ततः पंचशतं वर्षं किञ्चिदधिकमेव च ।।१९
मया भुक्ता कर्मभूमिः सर्वलोकस्य कारणात् । ततः सार्द्धं सहस्राब्दं देवैर्भुक्तेयमुत्तमा ।।२०
ततः सार्द्धसहस्राब्दं किञ्चिदूनं मया धृता । सार्द्धत्रिशत्सहस्राब्दं देवैर्दैत्यैस्तथा मही ।।२१
भुक्ता दैत्यैः पुनर्देवैःतथादेवैश्च दानवैः ।।२२
त्वया दत्तो हि मे देव कलिः कलिविनाशन । नाधिकारं कृतं नाथ सत्यं सत्यप्रियक्षम ।।२३
इति श्रुत्वा बलेर्वाक्यं भगवान्वामनो हरिः । स्वांशान्महीतले प्राप्तो दैत्यपक्षविवर्धनः ।।२४
कामशर्मा तदा विप्रो यमुनातटसंस्थितः । हरिं तुष्टाव मनसा द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ।।२५
तदा तु वामनः श्रीमान्वचः प्राह द्विजोत्तमम् । वरं ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ यत्ते मनसि संस्थितम् ।।
इति श्रुत्वा कामशर्मा तुष्टाव श्लक्ष्णया गिरा ।।२६

कामशर्मोवाच

नमो देवाय महते सर्वपूज्याय ते नमः ।।२७
धर्मप्रियाय धर्माय देवदैत्यकराय च । दैवाधीननृणां भर्त्रे कर्मकर्त्रे नमो नमः ।।२८

जाने पर वात्य के अनुयायी ब्राह्मणों ने उसे वहाँ से अपमान पूर्वक निकाल दिया है । प्रभो ! कलि के एक चरण व्यतीत होने में भी अभी कुछ अवशेष समय रह गया है । देवेन्द्र के समान अधिकार पूर्वक मैंने भूमि का भलीभाँति उपभोग कर लिया है । कलि के समय में भी एक सहस्र वर्ष तक मैंने पृथ्वीतल का उपभोग किया है । पश्चात् देवों ने डेढ सहस्र वर्ष तक उस देवभूमि का उपभोग किया । तदनन्तर मैंने सभी लोकों के कारणवश पाँच सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तक इस कर्मभूमि (भारत) का सुखोपभोग किया । अनन्तर देवों ने डेढ़ सहस्र वर्ष तक इस सर्वोत्तम पृथ्वी का उपभोग किया । पश्चात् उससे कुछ कम समय तक मैंने उस पर आधिपत्य स्थापित किया । उसके अनन्तर साढ़े तीन सहस्र वर्ष तक देवों और दैत्यों का भूमण्डल पर आधिपत्य रहा । इस प्रकार दैत्यों के अनन्तर देवों का और देवों के अनन्तर दैत्यों तथा दानवों का आधिपत्य होता रहा । देव ! कलिविनाशक यद्यपि आपने मुझे कलि प्रदान किया, तथापि नाथ, सत्यप्रिय अधिकार कुछ भी न दिया । इसे सुनकर भगवान् वामन विष्णु ने दैत्यपक्ष के वृद्ध्यर्थ अपने अंश द्वारा इस भूतल पर अवतरित होने का विचार किया । उस समय कामशर्मा नामक ब्राह्मण यमुना तट पर स्थित होकर अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक बारह वर्ष से भगवान् विष्णु की आराधना कर रहा था । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् वामन ने उस ब्राह्मण से कहा—द्विजश्रेष्ठ ! मन इच्छित वर की याचना करो । इसे सुनकर कामशर्मा ने नम्रतापूर्वक स्नेहमयी वाणी द्वारा भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया ।१७-२६

कामशर्मा ने कहा—देवों में महान् एवं सर्वपूज्य आपको नमस्कार है । धर्मविप्र, धर्ममूर्ति, देवों और दैत्यों के जनक, दैवाधीन होने के नाते मनुष्यों के पोषण करने वाले, एवं कामकर्ता आपको बार-बार

दैवाधीनाश्च ते देवा दैवोल्लाङ्घाश्च दानवाः । तेषां भर्त्ता क्रमाद्धर्ता तस्मै देवाय ते नमः ।।२९
पुत्रो भव हरे स्वामिन्सफलं वाञ्छितं कुरु । इति श्रुत्वा हरिः साक्षाद्वामनो बलिरक्षकः ।।३०
स्वपूर्वार्द्धाद्देवहूत्यां तत्पत्न्यां च समुद्भवः । द्विधा भूत्वा मही जातौ दिव्याङ्गौ दिव्यविग्रहौ ।।३१
भोगसिंहः केलिसिंह देवपो दैत्यपो हरिः । जित्वा वात्योद्भवान्भूपान्कल्पक्षेत्रमुपस्थितः ।।३२
रहः क्रीडावती नाम नगरी मयनिर्मिता । तत्रोष्य बलवन्तौ तौ दधतुश्च कलेर्धुरम् ।।३३
पत्नीयं सर्वधर्माणां सारभूता सनातनी । पतिव्रतायां ये जाता नरा आर्याः सुरप्रियाः ।।३४
दूषितायां नरा जातास्ते सर्वे वर्णसङ्कराः । इति सञ्चिन्त्य भगवान्कृत्वा काममयं वपुः ।।३५
दिने दिने सहस्राणि योजितो बुभुजे हरिः । ताः सर्वा गर्भमाधाय यमौ सुषुविरे मुदा ।।३६
नार्या तया सहोदर्या रेमिरे ते सहोदराः । एवं च बहुधा सृष्टिस्तेषां जाता कलौ युगे ।।३७
पूर्वजातांस्त्रिवर्णाश्च भक्षयित्वा दिनेदिने । कर्मभूम्यां ववृधिरे पक्षिगश्च यथा द्रुमे ।।३८
उभयाब्दसहस्रान्ते तैरन्नाः पूर्वमानवाः । तदा कलेश्च चरणो द्वितीयो भुवि चागमत् ।।३९
साम्प्रतं वर्तते वार्ता किन्नराणां च भूतले । द्विकिष्कुमात्राश्च नराः सार्द्धा दैत्यमयाः स्मृताः ।।४०
यथा खगाः कर्महीनाश्चत्वारिंशाब्दजीविनः । भूमिगाश्च तथा ते वै भेदं तेष्वेषु नैव भोः ।।४१

नमस्कार है । आपके देवगण दैव के अधीन रहते हैं, और दानवगण उस दैव का उल्लंघन करते हैं, क्रमशः उन सबके भर्ता और हर्तारूप आपको नमस्कार है । स्वामिन् ! हरे ! मेरी बहुत बड़ी इच्छा है कि आप मेरे पुत्र हों । कृपाकर इसकी पूर्ति कीजिये । इसे सुनकर साक्षात् विष्णु ने, जो वामन रूप से बलि कीरक्षा करते हैं, अपने पूर्वार्द्धभाग द्वारा देवहूति के यहाँ और पुनः उस ब्राह्मण की पत्नी में अवतरित होने के लिए इस भूतल में दो भागों में विभक्त होकर दिव्यांश और दिव्य शरीर धारण किया । भोगसिंह और केलिसिंह के नाम से उनकी ख्याति हुई, जो देवरक्षक और दैत्यरक्षक थे । उन्होंने वायुकुल के राजाओं पर विजय प्राप्तकर कल्पक्षेत्र में निवास स्थान बनाया ।२७-३२। वहाँ रहः क्रीडावती नामक एक नगरी का निर्माण मयदैत्य ने किया था, उसी में उन दोनों बलवानों ने रहकर उसमें अपनी राजधानी स्थापित की । वहाँ रहकर उन दोनों से कलि की अत्यन्त वृद्धि की । यह सारभूत सनातनी एवं समस्त धर्मों की पत्नी है, किन्तु उस पतिव्रता के साथ जिन देवप्रिय आर्यों ने गमन किया वे सभी दूषित होकर वर्णसंकर धर्म के प्रवर्तक हो गये । ऐसा समझकर भगवान् ने काममय शरीर धारण एक एक दिन में सहस्रों स्त्रियों का उपभोग करना आरम्भ किया, जिससे प्रसन्न होकर वे सभी स्त्रियाँ गर्भ धारणकर सन्तानों को उत्पन्न कीं । उन प्रत्येक स्त्रियों के गर्भ द्वारा पुत्र-पुत्री का एक जुड़वाँ उत्पन्न हुआ, जो सृष्टि करने की अवस्था प्राप्त होने पर पति-पत्नी के रूप में रमणकर कलिसृष्टि की वृद्धि किया । इस प्रकार उस कलियुग में अनेक भाँति की सृष्टि हुई । उन लोगों ने पूर्व के तीनों वर्णों के प्रतिदिन भक्षण करके उनके विनाश पूर्वक इस कर्म-भूमि में वृक्ष पर रहने वाले पक्षी की भाँति अपनी अत्यन्त वृद्धि की । इस समय भूतल पर कलि का दूसरा चरण आरम्भ था । उसी दो सहस्र वर्ष के उपरांत जिन पुत्रों द्वारा पूर्व के मनुष्य विशालकाय हुए थे, उन्हीं पुत्रों से जीवित होकर आज के मनुष्य इस पृथ्वी पर दो मूठे अर्थात् एक बीते के हो रहे हैं, जिनके आचरण दैत्यों की भाँति हैं । इस प्रकार की वार्ता किन्नरों में उस समय हो रही थी । जिस प्रकार कर्महीन होने के नाते पक्षीगण चालीस वर्ष का ही जीवन प्राप्त करते हैं,

दृश्यन्ते चाद्य युष्माभिर्भूतले किन्नरा नराः । द्वितीयचरणान्ते च भविष्यन्त्येवमेव हि ।।४२
न विवाहो न भूपश्च नोद्यमो न हि कर्मकृत् । भविता च तदा तेषां द्वितीयचरणान्तिके ।।४३
सपादलक्षाब्दमितमद्यप्रभृति भो द्विजाः । भोगकेल्यन्वयोद्भूता भविष्यन्ति महीतले ।।४४
अतो मया च सहिता भवन्तो मुनिसत्तमाः । कृष्णचैतन्यमागम्य गमिष्यामस्तदाज्ञया ।।४५

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तु मुनयो विशालापूर्निवासिनः । भो नमस्ते गमिष्यन्ति यज्ञांशं प्रति हर्षिताः ।।४६
नत्वा सर्वे मुनिश्रेष्ठा यज्ञांशं यज्ञरूपिणम् । वचनं च वदिष्यन्ति देह्याज्ञां भगवन्भो ।।४७
इन्द्रलोकं गमिष्यामो नाकमध्यं मनोहरम् । इति श्रुत्वा तु यज्ञांशः सर्वशिष्यसमन्वितः ।।४८
तैः सर्वैः सह स्वर्लोकं गमिष्यति सुरप्रियः । तदा कलिः समं दैत्यैर्भजिष्यति महीतलम् ।।
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छा ते हृषीकोत्तम तद्वद ।।४९

मनुरुवाच

भगवन्विस्तराद्ब्रूहि भोगकेलिचरित्रकम् । कलौ यथा भविष्यन्ति मनुजास्तत्तथा प्रभो ।।५०

व्यास उवाच

भोगसिंहे केलिसिंहे वामनांशसमुद्भवे ।।५१
जित्वा दैत्यान्नरमयान्नरान्वात्योद्भवान्भुवि । वामनांशमुपागम्य हर्षिताः सम्बभूविरे ।।५२

उसी भाँति आजकल इस मर्त्यलोक में और उनमें कोई भेद नहीं है । आज भूतल में तुम लोगों को किन्नरगण भी दिखाई दे रहे हैं । किन्तु कलि के दूसरे चरण की समाप्ति के अवसर पर ऐसा न होकर अत्यन्त प्रतिकूल दिखायी देगा—उस समय न कोई मनुष्य विवाह करेंगें, न राजा होगा, न कोई उद्यम करेगा और न तो कोई कर्म । द्विजवृन्द ! यह सब दूसरे चरण की समाप्ति के समय ही होंगे और आज से सवा लाख वर्ष तक भूतल पर दोनों भोगसिंह तथा केलिसिंह के वंशज राजपद सुशोभित करेंगे । अतः मुनिसत्तम वृन्द ! आप लोग मेरे साथ कृष्णचैतन्य के पास चलकर उके बताये हुए स्थान को चलें ।३३-४५

व्यास जी बोले—इसें सुनकर विशालापुरी के निवासी मुनिगण ने सहर्ष यज्ञांश के दर्शनार्थ यात्रा की ।वहाँ पहुँचकर श्रेष्ठ मुनिगणों ने नमस्कार पूर्वक यज्ञरूपी यज्ञांशदेव से कहा—प्रभो ! आपकी आज्ञा हो तो हम सब स्वर्ग के मध्य में सुरम्य उस इन्द्रलोक की यात्रा करें । उसे सुनकर उन सब मुनियों समेत यज्ञांशदेव स्वर्ग की यात्रा करेंगे । पश्चात् इस पृथ्वी पर चारों ओर कलि का साम्राज्य स्थापित होगा । अब उसके उपरान्त तुम हृषीकोत्तम ! अन्य कौन-सी गाथा सुनना चाहते हो ।४६-४९

मनु ने कहा—भगवन् ! भोग और केलि के चरित्र का सविस्तार वर्णन करने की कृपा कीजिये और कलि में मनुष्य किस भाँति के होंगे, वह भी बताने की कृपा कीजिये ।५०

व्यास जी बोले—वामन के अंश से उत्पन्न भोगसिंह और केलिसिंह ने वात्य के वंशज उन मनुष्यों को, जो दैत्य के आचरण वाले थे, पराजितकर सहर्ष राजपद को सुशोभित किया और उनके अनुयायी

तदा तु दुःखिता देवास्त्यक्त्वा मूर्त्तीः समन्ततः । कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वोचुर्नतकन्धराः ।।५३
भगवंस्त्वत्प्रसादेन चरणं प्रथमं कलेः । भुक्ता तथा मही स्वामिञ्जित्वा दैत्यप्रपूजकान् ।।५४
किं कर्तव्यं च यज्ञांश नमस्ते करुणाकर । इति श्रुत्वा हरिः प्राह तदा शृणुध्वं सुरसत्तमाः ।।५५
अहं स्वर्गं गमिष्यामि भवद्भिः सह हर्षितः । अतो यूयं सुराः सर्वे देववंशान्नरान्सदा ।।५६
उत्थाप्य शीघ्रमागम्य गच्छध्वं च त्रिविष्टपम् । इति सूतेन कथिते मुनीन्प्रति सुमण्डलम् ।।५७
देवा विमानमादाय तत्र यास्यन्ति भो मनः । सूतादींश्च मुनीन्सर्वान्समारुह्य सुरास्तदा ।।५८
यज्ञांशं च गमिष्यन्ति नदीहोपवने तदा । अह्लादश्च तदा योगी गोरखाद्यास्तथैव च ।।५९
शङ्कराद्याश्च रुद्रांशा नृपो भर्तृहरिस्तदा । अन्ये तु योगनिष्ठाश्च गमिष्यन्ति हितप्रदाः ।।६०
तैः सार्द्धं कृष्णचैतन्यो देवलोकं गमिष्यति । तदा तौ वामनांशौ च द्वितीयचरणे कलौ ।।६१
योगनिष्ठां समाधाय कल्पक्षेत्रे वसिष्यतः । तदैव सकला दैत्या हर्षितास्तैर्नृभिर्मुहुः ।।६२
विवरान्वर्द्धयिष्यन्ति पातालाद्यान्समन्ततः । कलेस्तृतीयचरणे सम्प्राप्ते किन्नराश्च ते ।।६३
शनैःशनैः क्षयं भूमौ गमिष्यन्ति समन्ततः । षड्विंशाब्दसहस्रे च तृतीयचरणे गते ।।६४
रुद्राज्ञया भृङ्गऋषिर्भूतपक्षो गमिष्यति । सौरभी नाम तत्पत्नी जनिष्यति महाबलान् ।।६५
कौलकल्पान्नरान्घोरान्सर्वकिन्नरभक्षकान् । षड्विंशाब्दवयस्तेषां भविष्यति तदा कलौ ।।६६
शरणं वामनांशं च गमिष्यन्ति सकिन्नराः । भोगसिंहः केलिसिंहस्तैश्च सार्द्धं महद्रणम् ।।६७

उन वामनांश को अपने स्वामी के रूप में पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय देवों ने दुःख प्रकट करते हुए सभी मूर्तियों के परित्याग पूर्वक कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक विनय विनम्र होकर उनसे कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से कलि के प्रथम चरण के समय तक हमलोगों ने दैत्यों के अधिनायकों को पराजितकर इस पृथ्वी का सुखोपभोग किया। किन्तु करुणेश यज्ञांश देव ! इस समय हम लोग क्या करें? बताने की कृपा कीजिये। हम सब आपको नमस्कार कर रहे हैं। इसे सुनकर विष्णु ने कहा—सुरोत्तम वृन्द ! मैं कह रहा हूँ सुनो ! मैं आप लोगों के साथ सहर्ष स्वर्ग चलने को प्रस्तुत हूँ, इसलिए तुम देववृन्द देववंशज मनुष्यों को लेकर शीघ्र स्वर्ग चले आवो। मनु ! इस प्रकार मुनियों से सूत जी के कहने पर देव लोग विमान लेकर सूत आदि महर्षियों के पास जाँयेगे, जिससे वे सब भी नदीहा के उपवन में स्थित कृष्णचैतन्य के समीप पहुँचकर उनके दर्शन पूर्वक स्वर्ग की यात्रा कर सकें। उन सबके साथ आह्लाद योगी गोरखनाथ आदि शंकराचार्य आदि रुद्रांश, और भर्तृहरि आदि नृपगण तथा अन्य योगनिष्ठ जनसमेत जो सदैव लोक के हितैषी थे, कृष्णचैतन्य देव के साथ देवलोक की यात्रा करेंगे। पश्चात् कलि के उस दूसरे चरण के समय वामन के अंश से उत्पन्न वे दोनों (भोग और केलिसिंह) योगी की भाँति ध्यानमग्न होकर कल्पक्षेत्र में निवास करेंगे। उस समय हर्षित होकर दैत्यगण मनुष्यों के साथ पाताल की यात्रा के लिए उसके सभी विवरों (मार्गों) को पुनः विस्तृत करेंगे। कलि के तीसरे चरण के समय वे किन्नरगण पृथ्वी में धीरे-धीरे विनष्ट हो जायें। छब्बीस सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरांत।५१-६४। रुद्र की आज्ञा से भृंग ऋषि भूतपक्ष के समर्थन पूर्वक उस कुल में जन्म ग्रहण करेंगे। अनन्तर सौरभी नामक अपनी पत्नी द्वारा महाबली एवं कोल की भाँति घोर मनुष्यों को उत्पन्न करेंगे, जिससे वे समस्त किन्नरों का भक्षण करके विनाश कर देंगे। उस कलि के समय मनुष्यों की आयु छब्बीस वर्ष की होगी। वे किन्नरगण उस समय त्रस्त होकर उन वामनांश

करिष्यति दशाब्दं च पुनस्तैश्च पराजितौ । दैत्यैः सार्द्धं च पातालं वामनांशौ गमिष्यतः ॥६८
भृङ्गसृष्टिर्महाघोरा भविष्यति तदा कलौ । मातुः स्वसुः सुतास्ते वै नराश्च पशुरूपिणः ॥६९
भुक्त्वा प्रीत्या च कामान्धा जनिष्यन्ति सुतान्बहून् । कलेस्तृतीयचरणे समाप्ते तास्तु सृष्टयः ॥७०
तिर्य्यग्योनिधरा घोराः क्षयिष्यन्ति कलौ युगे । कलेश्चतुर्थचरणे सम्प्राप्ते तु तदा नराः ॥७१
विंशदब्दवयस्काश्च मरिष्यन्ति च नारकाः । यथा जलमनुष्याश्च यथैव वनजा नराः ॥७२
कन्दमूलफलाहारा भविष्यन्ति कलौ तदा । आलोका ये तु विख्यातास्तामिस्राद्या भयानकाः ॥७३
ते सर्वे पूर्णमेष्यन्ति कर्मभूमिभवैर्नरैः । यथा सत्यस्य प्रथमे चरणे सत्यलोककः ॥७४
द्वितीये च तपोलोके जनलोकस्तृतीयकः । चतुर्थे स्वर्गलोकश्च पूरितः कर्मभूमिजैः ॥७५
त्रेतायुगाद्यचरणे भुवर्लोकं ध्रुवास्पदम् । स्वर्गलोकं यथा तैश्च मनुजैः पूरितं स्मृतम् ॥७६
द्वितीये ऋषिलोकं च तृतीये ग्रहविष्टपम् । चतुर्थे च भुवर्लोकं पूरितं कर्मजैर्नरैः ॥७७
द्वापराद्यपदे पूर्णे भवेद्द्वीपः स पुष्करः । द्वितीये शाल्मलः क्रौञ्चस्तृतीये द्वीपशेषकः ॥७८
जम्बूद्वीपश्चतुर्थे च चरणे मुनिभिः स्मृतः । कलेश्च चरणे चाद्येधश्चोर्ध्वं पूरितं जगत् ॥७९
द्वितीये सप्तपातालस्तृतीये भूतविष्टपम् । पूरितं मनुजैस्तत्र कर्मभूमिसमुद्भवैः ॥८०
तदाद्यनारकास्सर्वे पूर्णमेष्यन्ति तैर्नरैः । इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं मनो त्वया ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४

भोगसिंह और केलिसिंह की शरण में आश्रित होंगे, जिससे उन मनुष्यों के साथ उन दोनों का भीषण युद्ध होगा। किन्तु दश वर्ष के उस युद्ध में वे दोनों पराजित होकर दैत्यों समेत पाताल चले जाँयेगे। उस समय भृंग ऋषि की सृष्टि अत्यन्त घोररूप धारण करेगी—माता, भगिनी एवं पुत्री के साथ पशु के समान वे मनुष्य कामांध होकर सप्रेम रति करके उनके पुत्रों की उत्पत्ति करेंगे। पश्चात् कलि के तीसरे चरण की समाप्ति होने पर वे सभी सृष्टियाँ नष्ट हो जाँयगी, जो उस कलि के समय पक्षीयोनि धारण किये रहेंगी। कलि के चौथे चरण के प्रारम्भ में मनुष्यों की बीस वर्ष की आयु होगी। वे नगरीय मनुष्य, जल मनुष्य और वनज मनुष्यों की भाँति कन्दमूल के आहार करेंगे। उस समय तामिस्रादि नरककुण्डों की पूर्ति वेदि कर्मभूमि के निवासी मनुष्यों द्वारा होगी। जिस प्रकार सत्ययुग के प्रथम चरण में कर्म क्षेत्र (भारत) निवासी मनुष्य सत्यलोक, दूसरे चरण में तपलोक, तीसरे चरण में जनलोक, और चौथे चरण में स्वर्गलोक की पूर्ति करते हैं। त्रेतायुग के पहले चरण में ध्रुवलोक नामक भुवर्लोक तथा स्वर्गलोग की पूर्ति मनुष्यों ने की है। दूसरे चरण में ऋषिलोक, तीसरे में स्वर्ग, और चौथे चरण में भुवर्लोक और द्वापर युग के पहले चरण में पुष्करद्वीप, दूसरे चरण में शाल्मल, तीसरे चरण में क्रौंच, एवं चौथे चरण में जम्बूद्वीप को मुनियों ने पूरा किया है। उसी प्रकार कलि के पहले चरण में समस्त संसार ऊपर एवं नीचे के लोक समेत पूरा हुआ है, दूसरे चरण में सातों लोकसमेत पाताल तथा तीसरे चरण में भूतलोक की पूर्ति कर्मभूमि (भारत) निवासी मनुष्यों ने की है और इन्हीं मनुष्यों द्वारा समस्त नरक कुण्डों की पूर्ति हुई है। मनु ! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मैंने सब कुछ सुना दिया।६५-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

व्यास उवाच

चतुर्थचरणे जातैर्मनुजैरेकविंशतिः । अजीर्णभूता नरका यास्यन्ति च यमालयम् ॥१
नमस्ते धर्मराजाय नश्च तृप्तिकराय च । वचनं शृणु सर्वज्ञ नश्च जातमजीर्णकम् ॥२
यथा भजाम प्रकृतिं तथा कुरु सुरोत्तम । इति श्रुत्वा धर्मराजश्चित्रगुप्तेन संयुतः ॥३
ब्रह्माणं च गमिष्यन्ति सन्ध्यायां च कलौ युगे । चतुरश्च यमान्दृष्ट्वा परमेष्ठी पितामहः ॥४
तदीरितं स्वयं ज्ञात्वा क्षीराब्धिं प्रति यास्यति । पूजयित्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥५
साङ्ख्यशास्त्रनयैः स्तोत्रैः संस्तोष्यति परम् प्रभुम् ॥६

जय जय जय निर्गुण गुणधारिन्नगजगजीवतत्त्वशुभकारिन् ।
सारभूतसद्गुणमय तत्त्वैर्देवान्रचयति पाति गुणसत्त्वैः ॥
तस्मै नमो नमो गुणराशे देववृन्दहृदि कृष्णविकाशे ॥७
रजोभूततत्त्वेभ्य उताशु विरचति भुवि च नरान्स्वयमाशु ।
पाति हन्ति यो देव उदारस्तस्य शिरसि संस्थितजगभारः ॥

अध्याय २५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

व्यास जी बोले—कलि के चौथे चरण के आरम्भ होने पर मनुष्यों द्वारा अजीर्ण होने पर इक्कीस प्रधान नरकगण यमराज के यहाँ जाकर नमस्कार पूर्वक उनकी प्रार्थना करगें—धर्मराज को नमस्कार है, जिन्होंने मुझे अत्यन्त तृप्ति दी है, किन्तु सर्वज्ञ ! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिये—सुरोत्तम ! मुझे अब अजीर्ण का रोग हो गया है। जिस प्रकार स्वस्थ हो सकूँ, वह उपाय बताने की कृपा कीजिये इसे सुनकर धर्मराज चित्रगुप्त को साथ लेकर उस कलियुग के संध्याकाल में ब्रह्मा के पास आँयेगे। परमश्रेष्ठी, एवं पितामह ब्रह्मा ने चारों गणों समेत यमराज को देखकर उनके अभिप्राय जानने के उपरांत क्षीरसागर के निवासी विष्णु के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे सांख्यशास्त्र के स्तोत्रों द्वारा वे परब्रह्म की जो जगत् के स्वामी एवं देवों के अधिदेव हैं, आराधना करेंगे। निर्गुण एवं सगुणरूप धारण करने वाले ब्रह्म की बार-बार जय हो, जो इस चर अचरमय जगत् के जीव-तत्व का शुभ निर्माता है। जो सारभूत सतोगुण के तत्वों द्वारा देवों को उत्पन्नकर सतोगुण द्वारा उनकी रक्षा करता है, उस गुण राशि एवं देवों के हृदय में कृष्ण-रूप के विकास करने वाले को बार-बार नमस्कार है। रजोगुण तत्त्व से जगती तल के मनुष्यों की शीघ्र सृष्टिकर जो उसका पालन एवं सहार स्वयं करता है, वह अत्यन्त उदार देव हैं, क्योंकि उसी के शिर पर जगत् का समस्त भार निहित है। अतः दैत्यों के विनाश करने वाले नाथ !

पाहि नाथ नो दैत्यविनाशिन्कालजनितलीलागुणभासिन् ॥८
तेषामिति वचनं प्रभुः श्रुत्वा ह्यवनिमिदाशु । यथा जनिष्यति स प्रभुस्तच्छृणु वै मन आशु ॥९
नम्रीभूतान्सुरान्विष्णुर्नमोवाक्येन तान्प्रति । वदिष्यत वचो रम्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥१०
भोः सुराः सम्भलग्रामे कश्यपोऽयं जनिष्यति । नाम्ना विष्णुयशाः ख्यातो विष्णुकीर्तिस्तु तत्प्रिया ॥११
कृष्णलीलामयं ग्रन्थं नरांस्ताञ्छ्रावयिष्यति । तदा ते नन्दिनो भूत्वा चैकीभूय समन्ततः ॥१२
तं द्विजं विष्णुयशसं गृहीत्वा निगडैर्दृढैः । बद्ध्वा सर्वे सपत्नीकं कारागारे दृढायसे ॥१३
करिष्यन्ति महाधूर्ता नारका इव दारुणाः । विष्णुकीर्त्यां स भगवान्पूर्णो नारायणो हरिः ॥१४
जनिष्यति महाविष्णुः सर्वलोकशिवङ्करः । निशीथे तमसोद्भूते मार्गकृष्णाष्टमीदिने ॥१५
ब्रह्माण्डं मङ्गलं कुर्वन्सुराः प्रादुर्भविष्यति । ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव गणेशो वासदो गुरुः ॥१६
वह्निः पितृपतिः पक्षो वरुणः सविभीषणः । चित्रो वायुर्ध्रुवो विश्वे रविः सोमः कुजो बुधः ॥१७
गुरुः शुक्रः शनिः राहुः केतुस्तत्र गमिष्यति । पद्यैकैकेन ते देवाः स्तोष्यन्ति परमेश्वरम् ॥१८

महत्तमा मूर्तिमयी तवाजा तदास्य पूर्वाज्जनितोऽहमादौ ।
मया ततं विश्वमिदं सदैव यतो नमस्तत्पुरुषोत्तमाय ॥१९
अजस्य याम्याज्जनितोऽहमादौ विष्णुर्महाकल्पकरोऽधिकारी ।
स्वकीयनाम्ना तु मया ततं तद्विश्वं सदैवं च नमो नमस्ते ॥२०

हमारी रक्षा कीजिये । क्योंकि आप कलि के लीला गुणों से प्रकट होते रहते हैं । मन ! उन देवों की ऐसी बातें सुनकर समर्थवान् प्रभु भूतल पर जिस प्रकार शीघ्र अवतरित होंगे, मैं कह रहा हूँ सुनो ! उस समय विनय विनम्र देवों को देखकर विष्णु भगवान् नमः शब्द के उच्चारण पूर्वक देवों से कहेंगे—दैववृन्द ! संभल ग्राम में कश्यप जी जन्म ग्रहण करेंगे । उस समय उनकी विष्णुयशा नाम से प्रख्याति होगी और विष्णु कीर्ति उनकी पत्नी का नाम होगा । वे जिन मनुष्यों को कृष्ण लीलाप्रधान ग्रंथ को सुनायेंगे उस समय वहाँ की जनता एकत्र होकर नन्दी होने के नाते उस ब्राह्मण को पकड़कर लोहे की दृढ़ शृंखला से बाँध देगी और पत्नी समेत उन्हें जेल में बन्द कर देगी उससे उन महाधूर्तों को, जो नारकीयों की भाँति अत्यन्त भीषण रूप थे, अत्यन्त प्रसन्नता होगी । वहाँ उस जेल में उस ब्राह्मण पत्नी विष्णुकीर्ति के गर्भ से पूर्ण परब्रह्म अवतरित होंगे जिन्हें नारायण हरि, महाविष्णु, एवं समस्त लोकों के कल्याणार्थ कहा जाता है । मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के उस अँधेरी आधी रात के समय देवों समेत समस्त ब्रह्माण्ड के मंगलार्थ उनके अवतरित होने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, इन्द्र वृहस्पति ।१-१६। अग्नि, अर्यमा, यक्ष, विभीषण समेत वरुण, चित्र, वायु, ध्रुव, विश्वेदेव, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु देवगण वहाँ पहुँचकर एक-एक पद्य द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति करेंगे—आपकी महत्तमा मूर्ति से जिसे अज कहा गया है, इस पूर्वमुख द्वारा सर्वप्रथम मेरी उत्पत्ति हुई है । जिसके द्वारा मैंने देवसमेत इस समस्त विश्व का विस्तृत प्रसार किया है, उस पुरुषोत्तम को मैं नमस्कार करता हूँ । अर्यमा विष्णु के उस दक्षिण मुख द्वारा, जो महत्कल्प कर्ता एवं अधिकारी है, सर्वप्रथम मेरा जन्म हुआ है, मैंने अपने नाम द्वारा इस देवसमेत विश्व का अत्यधिक विस्तार किया है अतः मैं उस देव को नमस्कार करता हूँ ।

अव्यक्तपाश्चात्यमुखात्सुजन्मा शिवोऽहमादौ सुरतत्त्वकारी ।
मया महाकल्पकरस्तृतीयात्वदाज्ञया देव नमो नमस्ते ॥२१
प्रधानवक्त्रोत्तरतोऽहमादौ जातो गणेशः किल कल्पकर्ता ।
मया ततं विश्वमिदं सदैव तस्मै नमः कारुणिकोत्तमाय ॥२२
आजर्द्धवक्त्राज्जनितोऽहमादौ मरुन्महाकल्पकरो महेन्द्रः ।
मया ततं विश्वमिदं स्वकल्पे यदाज्ञया देव नमो नमस्ते ॥२३
प्रधानभालाक्षिसमुद्भवोऽहं वह्निर्महाकल्पकरो गुहाख्यः ।
विनिर्मितं विश्वमिदं मया तद्यदाज्ञया नाथ नमो नमस्ते ॥२४
अजामुखात्पूर्वगताच्च जातश्चादौ महाकल्पकरोऽहमग्निः ।
ब्रह्माण्डमेतच्च मया ततं वै ब्रह्माण्डकल्पाय नमो नमस्ते ॥२५
अजाभुजाद्दक्षिणतोऽहमादौ जातो महाकल्पककरः सधर्मः ।
मया सदेवैरचितं समग्रं लिङ्गाख्यकल्पाय नमो नमस्ते ॥२६
अजाभुजात्पश्चिमतोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः स यज्ञः ।
मया ततं विश्वमिदं समग्रं मत्स्याख्यकल्पाय नमो नमस्ते ॥२७
प्रधानबाहूत्तरतोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः प्रचेताः ।
मया ततं नाथ तवाज्ञयेदं कर्माख्यकल्पाय नमो नमस्ते ॥२८

अव्यक्त के पश्चिम मुख द्वारा मुझ शिव का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ है, मुझे सुरतत्व का कर्ता, एवं अधिकारी बनाया गया है, इसीलिए मैंने आपकी आज्ञा से तीसरे महत्वकल्प का निर्माण किया है । अतः देव ! आपको नमस्कार है । आपके प्रधान मुख द्वारा, जो उत्तर की ओर स्थित है, मुझ कल्पकर्ता गणेश का सर्वप्रथम अविर्भाव हुआ है । दैव ! मैंने देवों समेत उस समय विश्व का विस्तृत प्रसार किया है, अतः आप करुणामूर्ति को नमस्कार है । अज के आधे मुख द्वारा सर्व प्रथम मेरा जन्म हुआ, मैंने मरुत्महत्कल्प की रचना की जिससे महेन्द्र नाम से मेरी ख्याति हुई । देव ! मैंने भी उस अपने कल्प के समय देवोंसमेत विश्व का निर्माण किया है । नाथ ! आपको नमस्कार है । अग्निरूप आप के भाल में स्थित उस प्रधान नेत्र द्वारा सर्वप्रथम मेरा जन्म हुआ और गुह देव के नाम से मेरी ख्याति हुई । नाथ ! आपकी आज्ञा से मैंने महाकल्प के निर्माण पूर्वक इस विश्व का विस्तृत निर्माण किया है, आपको नमस्कार है । उस अजन्मा देव की पूर्व भुजा द्वारा सर्वप्रथम मुझ अग्नि की उत्पत्ति हुई है, मैंने अपने समय में महान् कल्प की रचना की है, और इस ब्रह्माण्ड का प्रचुर विस्तार भी । अतः ब्रह्माण्ड कल्परूप आपको नमस्कार है । अजन्मा के दक्षिण बाहु द्वारा सर्वप्रथम धर्म समेत मेरी उत्पत्ति हुई, मैंने देवों समेत इस लिंगकल्प की रचना की है, अतः लिंग कल्परूप, आपको नमस्कार है । उस अजदेव की पश्चिम भुजा द्वारा सर्वप्रथम मुझ यज्ञ की उत्पत्ति हुई, मैंने मत्स्यकल्प की रचनापूर्वक इस विश्व की रचना की है । अतः मत्स्यकल्प रूप आपको नमस्कार है । प्रधान बाहु द्वारा जो उत्तर की ओर स्थित है सर्वप्रथम मुझ अचेता की उत्पत्ति हुई है नाथ ! आपकी आज्ञा से मैंने कर्म नामक महान्कल्प की रचना पूर्वक इस विश्व

ब्रह्माण्डतमसो जातस्त्वद्दासोऽहं विभीषणः । मया ततं त्रिलोकं च नमस्ते मनुरूपिणे ॥२९
ब्रह्माण्डसद्गुणाज्जातश्चित्तोऽहं मनुकारकः । मया ततं च त्रैलोक्यं स्वायम्भुव नमोऽस्तुते ॥३०
ब्रह्माण्डरजसो जातो वायुर्मन्वन्तरं ततम् । मया स्वारोचिषं स्वामिन्नमस्ते मनुरूपिणे ॥३१
ब्रह्माण्डमनसो जातो ध्रुवोऽहं मनुकारकः । मयोत्तमं च रचितं नमस्तेऽस्तु तवाज्ञया ॥३२
ब्रह्माण्डश्रवणाज्जातो विश्वकर्माहमीश्वरः ! मया ततं रैवतं च नमो देव तवाज्ञया ॥३३
ब्रह्माण्डदेहतो जातस्सूर्योऽहं चाक्षुषप्रदः । तवाज्ञया ततं विश्वं मनुरूपाय ते नमः ॥३४
ब्रह्माण्डनेत्रतो जातः सोमोऽहं तु मया ततम् । वैवस्वतान्तरं रम्यं नमस्ते मनुरूपिणे ॥३५
ब्रह्माण्डरसनाज्जातो मोहोऽहं मनुकारकः । नमस्ते मनुरूपाय मया सावर्णिकं ततम् ॥३६
ब्रह्माण्डघ्राणतो जातो बुधोऽहं नाथ किङ्करः । निर्मितं ब्रह्मसावर्णं मया तात नमो नमः ॥३७
ब्रह्माण्डवक्त्रतो जातो जीवोऽहं मनुकारकः । मया वै दक्षसावर्णं ततं तस्मै नमो नमः ॥३८
ब्राह्माण्डकरतो जातः शुक्रोहं तव किङ्करः । निर्मितं रुद्रसावर्णं मया तुभ्यं नमो नमः ॥३९
ब्रह्माण्डपदतो जातोमन्दोऽहं नाथ तेऽनुगः । ततं वै धर्मसावर्णं प्रभातेस्मै नमो नमः ॥४०
ब्रह्माण्डलिङ्गतो जातो राहुश्चाहं तव प्रियः । मया भौमं कृतं नाथ नमस्ते मनुरूपिणे ॥४१

का प्रसार किया है, अतः कर्मकल्प नामक आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के तम द्वारा आपके दास मुझ विभीषण का जन्म हुआ है, मैंने तीनों लोकों का अत्यन्त प्रसार किया है, अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के सतोगुण से मुझ चित्त की उत्पत्ति हुई ! मैंने मनु का निर्माण किया है और तीनों लोकों का प्रसार भी । अतः स्वायम्भुवरूप आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के रजोगुण द्वारा मुझ वायु की सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई । मैंने आपकी आज्ञा से मन्वन्तर का प्रसार किया है । अतः स्वामिन् ! स्वरोचिष नामक मैं आप मनुरूप को नमस्कार करता हूँ । ब्रह्माण्ड के मानसिक कर्म द्वारा ध्रुव नामक मेरी उत्पत्ति हुई । मैंने आपकी आज्ञा द्वारा मनु निर्माण पूर्वक उस उत्तम की रचना की है। अतः आपको नमस्कार है ।१७-३२। ब्रह्माण्ड के श्रवण द्वारा मुझ ईश्वर विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई है । देव ! आपकी आज्ञा द्वारा मैंने रैवत की रचना की है । अतः आपको नमस्कार करता हूँ । ब्रह्माण्ड के देह से मुझ सूर्य की उत्पत्ति हुई है । मैंने चाक्षुष् तेज प्रदान पूर्वक इस विश्व का विस्तृत प्रसार किया है । अतः मनुरूप आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के नेत्र से मुझ सोम की उत्पत्ति हुई है । मैंने विश्वनिर्माणपूर्वक वैवस्वत की रचना की है , अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के रसना इन्द्रिय द्वारा मुझ मोह की उत्पत्ति हुई देव ! मैंने सावर्णि मनु का विस्तृत प्रसार किया है, अतः मनुरूप आपको नमस्कार है। नाथ! ब्रह्माण्ड के घ्राण (नाक) इन्द्रिय द्वारा मुझ बुध की उत्पत्ति हुई है । तात ! मैंने ब्रह्म सावर्ण्य का प्रचुर प्रसार किया है । अतः आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के मुख द्वारा मुझ जीव की उत्पत्ति हुई है । मैंने इस सावर्ण मनु के निर्माणपूर्वक अत्यन्त प्रसार किया है । अतः आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के कर द्वारा आपके दास शुक्र की उत्पत्ति हुई है । मैंने रुद्र सावर्ण की रचना की है अतः आपको नमस्कार करता हूँ । ब्रह्माण्ड के चरण से उत्पन्न होने के नाते मेरी मन्द (शनि) नाम से ख्याति हुई । नाथ मैंने गर्भ सावर्ण की प्रचुर ख्याति एवं विस्तार किया है । अतः प्रभारूप आपको नमस्कार है । उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के लिंगेन्द्रिय द्वारा आपके प्रिय राहु की उत्पत्ति हुई है । नाथ ! मैंने भौम का निर्माण किया है

ब्रह्माण्डगुह्यतो जातः केतुश्चाहं तवानुगः । भौतं मन्वतरं सृष्टं तस्मै देवाय ते नमः ।।४२

व्यास उवाच

इति तेषां स्तवान्स्वामी श्रुत्वा देवान्वदिष्यति । वरं ब्रूहीति वचनं ततं प्रति मनुः क्रमात् ।।४३
इति श्रुत्वा तु ते देवा बालरूपं हरिं स्वयम् । नमस्कृत्य वदिष्यन्ति वाञ्छितं लोकहेतवे ।।४४
भवान्ब्रूहि लोकानां कल्पे कल्पे तमुद्भवम् । तथा मन्वन्तरे चैव श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।।४५

कल्क्युवाच

अष्टादश महाकल्पाः प्रकृतेश्च तनौ स्थिताः । आद्यो ब्रह्ममहाकल्पस्तत्र ब्रह्मा परः पुमान् ।।४६
तत्पूर्वार्द्धात्समुद्भूतास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः । परार्द्धाद्भगवान्ब्रह्मा योगिध्येयो निरञ्जनः ।।४७
तस्मिन्कल्पे तु या लीला ब्रह्मपौराणिकैः स्मृता । शतकोटिप्रविस्तारो ब्रह्मपौराणिकस्य वै ।।४८
पुराणपुरुषस्यान्ते महाकल्पः स्मृतो बुधैः । ब्रह्माण्डप्रलये कल्पो युगदैवसहस्रकः ।।४९
कल्पाश्चाष्टादशख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु । कूर्मकल्पो मत्स्य कल्पः श्वेतवाराहकल्पकः ।।५०
नृसिंहकल्पश्च तथा तथा वामनकल्पकः । स्कन्दकल्पो रामकल्पः कल्पो भागवतस्तथा ।।५१
तथा मार्कण्डकल्पश्च तथा भविष्यकल्पकः । लिङ्गकल्पस्तथा ज्ञेयस्तथा ब्रह्माण्डकल्पकः ।।५२
अग्निकल्पो वायुकल्पः पद्मकल्पस्तथैव च । शिवकल्पो विष्णुकल्पो ब्रह्मकल्पस्तथा क्रमात् ।।५३
द्विसहस्रमितावर्तैरेषां कल्पो महान्स्मृतः । सहस्रयुगपर्यन्तं ब्रह्माण्डायुः प्रकीर्तितम् ।।५४
यन्नाम्ना च स्मृतः कल्पस्तस्माज्जातो विराडयम् । चतुर्दशमनूनां च मध्ये कल्पः स कालवान् ।।५५

अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । तथा ब्रह्माण्ड के गुह्येन्द्रिय द्वारा केतु की उत्पत्ति हुई है, जो आपका अनुगामी है । मैंने भूत मन्वन्तर की सर्जना की है, इसलिए उस देवरूप आपको नमस्कार है ।३३-४२

व्यास जी बोले—इस प्रकार उनकी स्तुतियों को सुनकर स्वामी विष्णुदेव उन प्रत्येक देवों से वर याचना के लिए कहेंगे । इसे सुनकर वे देवगण भगवान् के उस बालरूप के नमस्कार पूर्वक उनसे लोक के मंगलार्थ अपनी-अपनी अभिलाषा प्रकट करेंगें । आप प्रत्येक कल्प के प्राणियों की कथा और मन्वन्तरों की कथा सुनाने की कृपा करें ।४३-४५

कल्कि ने कहा—प्रकृति माया के शरीर में अट्ठारह महाकल्प सन्निहित हैं जिनमें सर्व प्रथम ब्रह्म महाकल्प नामक कल्प का सर्जन होता है । उसके अधिनायक श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्म है । उनके पूर्वार्द्ध भाग से तैंतीस देवों एवं परार्द्ध भाग से उस भगवान् ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ है, जिस निरंजन का ध्यान योगीगण सदैव किया करते हैं । इस कल्प में जो लीला होती है वह ब्रह्मपुराण में विस्तारपूर्वक स्पष्ट है, वह पुराण सैकड़ों कोटि का विस्तृत है । पुराण पुरूष के मध्य महाकल्प का स्थान विद्वानों ने बताया है । ब्रह्माण्ड प्रलय के समय दिव्य चार सहस्र वर्ष तक कल्प उसमें अन्तर्हित रहता है । वे कल्प अट्ठारह भाँति के हैं उनके नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कूर्मकल्प, मत्स्यकल्प, श्वेतवाराहकल्प, नृसिंहकल्प, वामन- कल्प, स्कन्दकल्प, रमकल्प, भगवतकल्प, मार्कण्डकल्प, भविष्यकल्प, लिंगकल्प, ब्रह्माण्डकल्प, अग्नि कल्प, वायुकल्प, पद्मकल्प, शिवकल्प, विष्णुकल्प, तथा ब्रह्मकल्प का क्रमशः निर्माण हुआ । दो सहस्र आवर्त होने के नाते ये सभी महाकल्प कहे गये हैं । उसी प्रकार एक सहस्र युग तक ब्रह्माण्ड की आयु बतायी गई है । जिस नाम द्वारा कल्प की ख्याति हुई है, उसी से इस विराट् की उत्पत्ति हुई है । चौदह

स्वायम्भुवान्तरे यद्वै जातं जातं चतुर्युगम् । तस्मिश्चतुर्युगे सर्वे नृणामायुर्हरे शृणु ।।५६
लक्षाब्दं वै सत्ययुगे त्रेतायामयुताब्दकम् । द्वापरे च सहस्राब्दं कलौ चायुश्शताब्दकम् ।।५७
स्वारोचिषेऽन्तरे देव जातं जातं चतुर्युगम् । शृणु तत्र नृणामायुस्सत्येऽशीतिसहस्रकम् ।।५८
त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे तु तदर्द्धकम् । कलौ द्विक सहस्राब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।।५९
औत्तमस्यान्तरे चैव सत्ये षष्टिसहस्रकम् । त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे तु तदर्द्धकम् ।।६०
कलौ सार्द्धसहस्राब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् । तामसान्तरके चैव षट्त्रिंशाब्दसहस्रकम् ।।६१
नृणामायुः सत्ययुगे त्रेतायां च तदर्द्धकम् । द्वापरे च तदर्द्धाब्दं कलौ वर्षसहस्रकम् ।।६२
रैवतान्तरके चैव सत्ये त्रिंशत्सहस्रकम् । त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे च तदर्द्धकम् ।।६३
कलौ चाष्टशताब्दायुर्नृणां वेदैः प्रकीर्तितम् । चाक्षुषान्तरके चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् ।।६४
त्रेतायां त्रिसहस्राब्दं द्वापरे द्विसहस्रकम् । कलौ सहस्रवर्षान्तं नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।।६५
वैवस्वतेन्तरे चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् । त्रेतायां त्रिशताब्दं च द्वापरे द्विशताब्दकम् ।।६६
कलौ शताब्दकं प्रोक्तमायुर्वेदैस्तथा नृणाम् । सावर्णिकेऽन्तरे देव नृणां विंशत्सहस्रकम् ।।६७
आयुः सत्ये तदर्द्धं तु त्रेतायां च प्रकीर्तितम् । द्वापरे च तदर्द्धाब्दं तदर्द्धाब्दं तु वै कलौ ।।६८
ब्रह्मसावर्णिके चैव सत्ये दशसहस्रकम् । त्रेतायां च तदर्द्धाब्दं द्वापरे तु तदर्द्धकम् ।।६९
कलौ चैव तदर्द्धाब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् । दक्षसावर्णिके चैव तथाब्दायुश्चतुर्युगे ।।७०

मनुष्यों के मध्य में कालवान् कल्प ही बताया गया है । जिस स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर में चारों युग क्रमशः उत्पन्न एवं व्यतीत होते रहते हैं, उन युगों में मनुष्यों की आयु बता रहा हूँ सुनो ! सत्ययुग में एक लाख, त्रेतायुग में दश सहस्र, द्वापरयुग में एक सहस्र, और कलियुग में सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । देव ! स्वारोचिष मन्वन्तर में चारों युग क्रमशः उत्पन्न एवं व्यतीत होते हैं, उनके समय मनुष्यों की आयु बता रहा हूँ, सुनो ! सत्ययुग में अस्सी सहस्र, त्रेता में चालीस, द्वापर में बीस, और कलि में दो सहस्र वर्ष मनुष्यों की आयु कही गयी है । उत्तम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में साठ सहस्र, त्रेता में तीस सहस्र, द्वापर में पन्द्रह सहस्र और कलि में डेढ़ सहस्र वर्ष मनुष्यों की आयु बतायी गयी है । तामस मन्वन्तर में सत्ययुग में छत्तीस सहस्र, त्रेता में अट्ठारह सहस्र, द्वापर में नवसहस्र और कलि में एक सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । रैवत मन्वन्तर के समय सत्ययुग में तीस सहस्र त्रेता में पन्द्रह सहस्र, द्वापर में साढ़े सात सहस्र और कलि में आठ सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । चाक्षुष मन्वन्तर में सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सहस्र, द्वापर में दो सहस्र, एवं कलि में एक सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । वैवस्वत मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सौ, द्वापर में दो सौ, और कलि में सौ वर्ष की आयु आयुर्वेद ने मनुष्य की बतायी है ।४६-६४। देव ! सावर्णि मन्वन्तर में सत्ययुग में बीस सहस्र त्रेता में दश सहस्र द्वापर में पाँच सहस्र, और कलि में ढाई सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर में सत्युग में दशसहस्र त्रेता में पाँच सहस्र, द्वापर में ढाई सहस्र, तथा कलि में सवा सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । दक्षसावर्णि मनु के समय

रुद्रसावर्णिके चैव सत्ये चाष्टसहस्रकम् । त्रेतायां तदर्द्धाब्दं द्वापरे च तदर्द्धकम् ॥७१
कलौ तदर्द्धकं ज्ञेयं नृणामायुः पुरातने । धर्मसावर्णिके चैव तथाब्दायुश्चतुर्युगे ॥७२
भौममन्वन्तरे चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् । त्रेतायां त्रिसहस्राब्दं द्वापरे च तदर्द्धकम् ॥७३
कलौ तदर्द्धकं ज्ञेयं नरायुश्चार्षसम्मतम् । भौतमन्वन्तरे चैव सत्ये तुर्यशताब्दकम् ॥७४
त्रेतायां त्रिशताब्दं च द्वापरे तु तदर्द्धकम् । तदर्द्धकं कलौ घोरे नृणामायुः प्रकीर्तितम् ॥७५
मन्वन्तरे तु यन्नाम्ना नृपाश्चासंश्चतुर्युगे । तन्नाम्ना च नृपा जातास्तेषां लीलाः पृथक्पृथक् ॥७६
एवमन्यत्र वै ज्ञेयं युगे तुर्ये मनौ मनौ । यो मनुस्तस्य वंशाश्च दिव्यैकयुगसप्ततौ ॥७७
युगान्ते कर्मभूमेश्च लयः कल्पः स वै स्मृतः । मन्वन्ते सर्वभूमेश्च प्रलयः स च कल्पकः ॥७८
पुराणपुरुषस्यैव दिनान्ते प्रलयो हि यः । मुख्यकल्पः स वै ज्ञेयः सर्वलोकविनाशकः ॥७९
षड्विंशत्कल्पसाहस्रैर्महाकल्पो हि यः स्मृतः । यदा पुराणपुरुषो मेषराशौ समास्थितः ॥८०
तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं भूपं स्वायम्भुवं गतः । यदा पुराणपुरुषो मकरे च समागतः ॥८१
स्वायम्भुवमनोर्मध्ये वाराहोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो गतः सिंहे स्वकेच्छया ॥८२
स्वारोचिषमनोरन्ते नृसिंहोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो वृषराशौ समास्थितः ॥८३
तदौत्तममनोर्मध्ये रुद्रोऽभूत्सगणो भुवि । यदा पुराणपुरुषो मीनराशौ समास्थितः ॥८४

चारों युगों में समान आयु होती रही । रुद्र सावर्णि के समय सत्ययुग में आठ सहस्र त्रेता में चार सहस्र, द्वापर में दो सहस्र, तथा कलि में एक सहस्र की आयु मनुष्यों की होती रही । धर्मसावर्णि के समय भी चारों युगों में एक वर्ष की समान आयु होती रही । भौम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सहस्र द्वापर में डेढ़ सहस्र एवं कलि मे पन्द्रह सौ वर्ष मनुष्यों की आयु होती है । उसी भाँति भौम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सौ, त्रेता में तीन सौ, द्वापर में डेढ़ सौ, एवं कलि में साढ़े सात सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । मन्वन्तरों के समय जिस नाम से राजा चारों युग में कहे गये हैं, उसी नाम के भूप उत्पन्न होते हैं जिनकी पृथक्-पृथक् लीला का वर्णन किया गया है । इसी प्रकार प्रत्येक मनु के चारों युगों में जिस मनु का अधिपत्य रहता है, उसके वंशज दिव्य एकहत्तर युग तक स्थित रहते हैं, उसके पश्चात् इस कर्मभूमि (भारत) का प्रलय हो जाता है, जिसे कल्प कहा गया है और मनु की समाप्ति के समय समस्त भूमि का प्रलय होता है, जो पुराण पुरुष के दिनान्त का प्रलय कहा गया है । उसे ही मुख्य कहा जाता है, क्योंकि उस प्रलय में समस्त लोकों का विनाश होता है । अतः छब्बीस सहस्र कल्प का एक महाकल्प बताया गया है जिस समय पुराणपुरुष मेषराशि पर स्थित होता है ।६५-८०। उस समय देवों समेत ब्रह्मा 'स्वयम्भुव' मनु होते हैं । पुनः पुराण पुरुष के मकर राशि पर स्थित होने पर स्वायम्भुव मनु के मध्यकाल में भूतल पर वह वाराह के रूप में अवतरित होता है। जिस समय पुराण पुरुष अपनी इच्छा से सिंह राशि पर स्थित होता है, उस समय स्वारोचिष् नामक मनु का काल होता है और उसके अन्त में भूतल पर नृसिंह का अवतार होता है। पुराण पुरुष के वृष राशि पर स्थित होने पर उत्तम मनु का काल आरम्भ होता है तथा उसके मध्य समय गणसमेत रुद्र अवतरित होते हैं। जिस समय पुराणपुरुष मीन (राशि) पर स्थित होता है, उस समय तामस मनु का काल होता है, उसके अन्त

तामसान्तेऽभवद्मत्स्यः स वै भुवि सनातनः । यदा पुराणपुरुषो युग्मराशौ समास्थितः ॥८५
वैवस्वतमनोर्मध्ये कृष्णोभूद्भुवि स प्रभुः । यदा पुराणपुरुषः कर्कराशौ समास्थितः ॥८६
रैवतान्तेऽभवत्कूर्मः स वै भुवि सनातनः । यदा पुराणपुरुषः कन्याराशौ समास्थितः ॥८७
चाक्षुषान्ते जामदग्न्योऽभवद्रामः स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषः प्राप्तोऽलौ च स्वकेच्छया ॥८८
वैवस्वतमनोरादौ वामनोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषस्तुलाराशौ समास्थितः ॥८९
वैवस्वतमनोर्मध्ये कल्की नाम्नाहमागतः । यदा पुराणपुरुषः कुम्भराशौ समास्थितः ॥९०
सावर्णिकादौ भविता बुद्धो नाम्ना स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो धनुराशौ समास्थितः ॥९१
वैवस्वतमनोर्मध्ये रामो दाशरथिर्भुवि । यदा पुराणपुरुषो नक्रराशौ समास्थितः ॥९२
सर्वपूज्यावतारश्च न भवेद्वै कदाचन । अस्मिंश्चतुर्युगे देवाः पुराणपुरुषस्य हि ॥९३
त्रयोऽवताराः कथितास्तथा नान्यच्चतुर्युगे । त्रेतायाः प्रथमे पादे रामो दाशरथिः प्रभुः ॥९४
द्वापरस्य तथा कृष्णः शेषेण सह वै भुवि । कलेश्शेषे तथाहं वै द्वात्रिंशाब्दसहस्रके ॥९५
अतः खण्डः पवित्रोऽयं नृणां पातकनाशनः । इमं चतुर्युगं खण्डं यः पठेच्छ्रावयेच्च यः ॥९६
जन्म प्रभृति पापानि तस्य नश्यन्ति नान्यथा । इति वः कथितं देवा महाकल्पचरित्रकम् ॥९७
द्वितीयो यो महाकल्पो विष्णुकल्पः स वै स्मृतः । तत्कथा पठिता देवा विष्णुपौराणिकैर्नरैः ॥९८

समय भूतल पर सनातन भगवान् का मत्स्यावतार होता है । पुराण पुरुष के मिथुन राशि पर स्थित होने पर उस वैवस्वत मनु के मध्यकाल में इस वसुन्धरा पर भगवान् कृष्ण का अवतार होता है । उसी प्रकार पुराण पुरुष के कर्क राशिस्थ होने पर उस रैवतअन्त मनु के समय सनातन भगवान् का कूर्मावतार होता है उस पुराण पुरुष के कन्या राशि पर स्थित होने पर उस चाक्षुष मनु का काल होता है, भूतल पर भगवान् राम का जामदग्न्यावतार और उसके वृश्चिक राशिस्थ के समय उस वैवस्वत मनु के आदि काल में भगवान् का भूमण्डल पर वामनावतार होता है । जिस समय पुराण पुरुष तुला राशि पर स्थित होता है, उस समय वैवस्वत मनु के मध्यकाल में भगवान् का कल्कि अवतार होता है । उसी भाँति पुराण पुरुष के कुम्भ राशि पर गमन करने के समय उस सावर्णि मनु के आदि काल में भूतल पर भगवान् का बुद्धावतार, धनुराशि पर स्थित होने पर वैवस्वत मनु के मध्य काल में भूतल पर भगवान् का दाशरथी (दशरथपुत्र) राम का अवतार और उसके मकर राशि पर स्थित होने के समय भगवान् का सर्वपूज्यावतार होता है, जो कभी भी नहीं होता है । देववृन्द ! इन चारों युगों में होने वाले पुराण पुरुष के तीनों अवतार को बता दिया गया त्रेता के पहले चरण में भगवान् राम का (दशरथ के यहाँ) रामावतार, द्वापर में शेष के साथ कृष्णावतार और कलियुग में बत्तीस सहस्र वर्ष शेष रहने पर कल्कि अवतार होता है । अतः यह खण्ड अत्यन्त पावन है, जिससे मनुष्यों के पातक नष्ट होते हैं । इस प्रकार इन चारों खण्डों के पाठ करने का दूसरे को सुनाने से मनुष्यों के सभी जन्मों के पाप नष्ट होते हैं ।८१-९६। देववृन्द ! इस भाँति मैनें महाकल्प के पवित्र चरित्र को तुम्हें सुना दिया । दूसरे महाकल्प को विष्णुकल्प कहा गया है, उसी की कथा विष्णुपुराण में कही गयी है, जिसे मनुष्यों ने सप्रेम हृदयङ्गम किया है । वह पुराण सैकड़ों कोटि का

शतकोटिप्रविस्तारो विष्णुपौराणिकस्य वै । तत्रैव च महाकल्पो विष्णोर्नाभिसमुद्भवः ।।९९
पूर्वार्द्धाद्भगवान्ब्रह्मा सर्वदेवसमन्वितः । परार्द्धाद्भगवान्विष्णुः पुराणपुरुषः स वै ।।१००
तृतीयो यो महाकल्पः शिवकल्पः स वै स्मृतः । शिवपूर्वार्द्धतो जातो विष्णुस्तस्माद्विधिः स्वयम् ।।१०१
शतकोटिप्रविस्तारः शिवपौराणिकैः स्मृतः । चतुर्थो यो महाकल्पः पद्मकल्पः स वै स्मृतः ।।१०२
गणेशस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने । गणेशादभवद्रुद्रो रुद्राद्विष्णुः सुरोत्तमः ।।१०३
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतः परमेष्ठी पितामहः । कल्पेकल्पे क्रमादादौ देवाश्चासन्समन्ततः ।।१०४
पञ्चमो यो महाकल्पो वायुकल्पः स वै स्मृतः । महेन्द्रस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ।।१०५
महेन्द्रादभवत्प्राप्तो महेन्द्रादिन्द्रियाणि च । इन्द्रियेभ्यश्च तद्देवास्तेषां नामानि मे शृणु ।।१०६
शनिर्बुधो रविः शुक्रो विश्वकर्मा बृहस्पतिः । इन्द्रो विष्णुस्तथा ब्रह्मा रुद्रः सोमः क्रमात्स्मृताः ।।१०७
सृष्टिकर्ता स वै ब्रह्मा लिङ्गेन्द्रियसमुद्भवः । सृष्टिपाता स वै विष्णुरवतारियदोद्भवः ।।१०८
चतुर्विंशतितत्त्वेषु कल्पेकल्पे प्रभुर्गतः । सनत्कुमारो हंसश्च वाराहो नारदस्तथा ।।१०९
नारायणौ च कपिलात्रेयौ यज्ञाश्वकण्टकौ । वृषभश्च पृथुर्मत्स्यः कूर्मो धन्वन्तरिस्तथा ।।११०
मोहिनी च नृसिंहश्च वामनो भार्गवस्तथा । रामो व्यासो बलः कृष्णो बुद्धः कल्की स्वतत्त्वगः ।।१११
गुह्यजन्मा महादेवः सृष्टिदैत्यविनाशकः । एवं जातास्त्रयो देवा महाकल्पे च पञ्चमे ।।११२
षष्ठो यस्तु महाकल्पो वाह्निकल्पः स वै स्मृतः । स्कन्दस्तत्रैव भगवान्पुराणपुरुषासने ।।११३

विस्तृत है । उसी महाकल्प में उस विष्णु भगवान् की नाभि का उत्पन्न होना बताया गया है । जो अपने पूर्वार्द्ध भाग से देव समेत भगवान् ब्रह्मा, और परार्द्ध भाग से पुराणपुरुष कहलाता है । शिवकल्प नामक तीसरे महाकल्प में शिवजी के पूर्वार्द्ध भाग से विष्णु और विष्णु द्वारा स्वयं ब्रह्मा का उत्पन्न होना बताया गया है, जो शिवपुराण के रूप में सौ कोटि का विस्तृत है । पद्मकल्प नामक चौथे महाकल्प में भगवान् गणेश पुराण पुरुष कहे गये हैं, जिससे रुद्र,रूद्र से विष्णु और उस विष्णु की नाभि से कमल समेत परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । प्रत्येक कल्प के आदि में क्रमशः देवों की भी चारों ओर से स्थिति होती है । उसी प्रकार वायुकल्प नामक पाँचवें महाकल्प में महेन्द्र भगवान् पुराणपुरुष के स्थानापन्न होते हैं । उस महेन्द्र द्वारा महेन्द्र, महेन्द्र द्वारा इन्द्रियाँ और इन्द्रियों द्वारा देवों की उत्पत्ति होती है, जिनके विषय में मैं बता रहा हूँ, सुनो ! शनि, बुध, रवि, शुक्र, विश्वकर्मा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा,रुद्र और सोम (चंद्र) नामक देवों की क्रमशः उत्पत्ति होती है । उसके लिंगेन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होने के नाते ब्रह्मा सृष्टिकर्ता का पद सुशोभित करते हैं, और चरण द्वारा उत्पन्न होकर सृष्टि का पालन करने के नाते विष्णु को अवतारी कहा गया है । प्रत्येक कल्प के चौबीस तत्त्वों में भगवान् सन्निहित रहते हैं—सनत्तकुमार, हंस, वाराह, नारद, नर, नारायण, कपिल, यज्ञाश्व, कंटक, वृषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिह, वामन, भार्गव, राम, व्यास, बल, कृष्ण, बुद्ध और भगवान् का कल्की स्वरूप अपने-अपने कल्प के तत्त्व में निहित है । इसी प्रकार गुह्येन्द्रिय द्वारा महादेव की उत्पत्ति हुई है, जो सृष्टि एवं दैत्यों के विनाशक हैं। पाँचवे महाकल्प में इस प्रकार तीनों देवों की उत्पत्ति बतायी गयी है।९७-११२। बह्निकल्प नामक छठे महाकल्प में स्कन्ददेव पुराणपुरुष कहे जातें हैं उस अव्यय पुरुष के

पुरुषाव्ययतः स्कन्दः स्कन्दस्तस्मान्महार्चिमान् । सूर्यरूपा महार्चिर्या तस्यां जातो हरिः स्वयम्॥११४
वह्निरूपा महार्चिर्या तस्यां जातः पितामहः । चन्द्ररूपा महार्चिर्या तस्यां जातः स वै हरः ॥११५
ऋषयो मुनयो वर्णा लोका जाताः पितामहात् । आदित्या विश्ववसवस्तुषिता भास्वरानिलाः॥११६
महाराजिकसाध्याश्च देवा विष्णुसमुद्भवाः । यक्षराक्षसगन्धर्वाः पिशाचाः किन्नरादयः ॥११७
दैत्याश्च दानवा भूतास्तामसा रुद्रसम्भवाः । कल्पे कल्पे समुद्भूतमेवं ब्रह्माण्डगोचरे ॥११८
सप्तमो यो महाकल्पः स वै ब्रह्माण्डकल्पकः । पावकस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ॥११९
अचिन्त्यतेजसस्तस्मात्पुरुषाद्वह्निरुद्भवः । ततो जातो महाब्धिश्च तस्माज्जातं विराण्मयम् ॥१२०
रोम्णि रोम्णि ततस्तस्य ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् । ब्रह्माण्डादभवद्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥१२१
तस्माज्जातो विभुर्विष्णुस्तस्माज्जातो हरः स्वयम् । शतकोटिप्रविस्तारो ब्रह्माण्डाख्यपुराणके॥१२२
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च दशबाहुर्भयस्य च । अष्टादशानां कल्पानां वायुर्वै वैदिकैः स्मृतः ॥१२३
महाकल्पेऽभवन्सर्वे द्विसहस्राः क्षयं गताः । अष्टमो यो महाकल्पो लिङ्गकल्पः स वै स्मृतः ॥१२४
तत्रैव भगवान्धर्मः पुराणपुरुषासने । अचिन्त्याव्यक्तरूपश्च जातो धर्मः सनातनः ॥१२५
धर्मात्कामः समुद्भूतः कामाल्लिङ्गस्त्रिधाभवत् । पुँल्लिङ्गः क्लीबलिङ्गश्च स्त्रीलिङ्गश्च सुरोत्तम॥१२६
पुँल्लिङ्गादभवद्विष्णुः स्त्रीलिङ्गाच्च महेन्दिरा । क्लीबलिङ्गात्स वै शेषस्तस्योपरि स च स्थितः॥१२७
त्रिभ्यस्तमोमयेभ्यश्च जातमेकार्णवं जगत् । सुप्ते नारायणे देवे नाभेः पङ्कजमुत्तमम् ॥१२८

स्कन्द होने से उनका स्कन्द नाम हुआ । इसलिए वे महा अर्चिमान् (पूर्णप्रकाश युक्त) कहे गये हैं। उन्हीं सूर्य रूप महार्चि से स्वयं विष्णु की वह्निरूप महार्चि द्वारा पितामह ब्रह्मा और चन्द्र रूप महार्चि द्वारा शिव की उत्पत्ति होती है । इसी भाँति पितामह (ब्रह्मा) द्वारा ऋषि, मुनि, वर्ण एवं लोकों की उत्पत्ति हुई है, विष्णु द्वारा आदित्यगण, विश्वावसु देव, तुषित, भास्वर, अनिल, और महाराजिक साध्व देवी की उत्पत्ति हुई है । और रुद्र द्वारा यक्ष राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, किन्नर, दैत्य, दानव एवं भूतगणों की उत्पत्ति हुई है । इस प्रकार प्रत्येक कल्पों में ब्रह्माण्ड के सर्जन को शुभ बताया गया है । ब्रह्माण्ड कल्प नामक सातवें महाकल्प में पुराण पुरुष के आसन पर भगवान् पावक प्रतिष्ठित होते हैं, जिस अजेय तेजस्वी पुरुष द्वारा अग्नि का जन्म हुआ । उसी अग्नि द्वारा महासागर और उसी सागर द्वारा इस विराट् की उत्पत्ति हुई, जिसके रोम रोम में कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं । उस ब्रह्माण्ड से समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा से विभु विष्णु, और उस विष्णु द्वारा स्वयं हर की उत्पत्ति हुई । इसीलिए उस ब्रह्माण्ड नामक पुराण का सैकड़ों कोटि का विस्तार हुआ है । शिव के तीन नेत्र, पाँच मुख और दश भुजाएँ हैं अठ्ठारह कल्पों के वैदिकों ने वायु नाम से ख्याति की है । इस महाकल्प में सबकी उत्पत्ति होने से दो सहस्र उसी समय नष्ट हो गये । लिंगकल्प नामक आठवें महाकल्प में भगवान् धर्म पुराणपुरुष के आसनासीन होते है, जो अचिन्त्य, अव्यक्त एवं सनातन धर्मरूप हैं । उस धर्म से काम की उत्पत्ति हुई और काम द्वारा वह लिंग तीन (पुल्लिंग स्त्रीलिंग एवं नपुसंकलिंग) भागों में विभक्त होकर पुल्लिंग द्वारा विष्णु स्त्रीलिंग द्वारा इन्दिरा (लक्ष्मी), एवं नपुंसक लिंग से उस शेष का आविर्भाव हुआ, जिस पर विष्णु शयन किये रहते हैं । पुनः इन तीनों तमोमय रूप द्वारा एक समुद्र जगत् की उत्पत्ति होती है । उसी में नारायण देव के शयन करने पर उनकी नाभि द्वारा एक उत्तम कमल की उत्पत्ति होती है।११३-१२८।

जातं तस्मात्स वै ब्रह्मा तस्माज्जातो विराडयम्। शतकोटिप्रविस्तारैर्लिङ्गपौराणिकैः कथा ।।१२९
गीता चैव विधेरग्रे तस्य सारोऽयमुत्तमः । नवमो यो महाकल्पो मत्स्यकल्पः स वै स्मृतः ।।१३०
कुबेरस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने । अव्ययाच्च समुद्भूतो धूलिवृन्दो महांस्तथा ।।१३१
रजोभूताच्च तस्माच्च कुबेरस्य समुद्भवः । कुबेराद्भुवन्मत्स्यो वेदमूर्तिश्च सद्गुणः ।।१३२
मत्स्योदरात्समुद्भूतो विष्णुर्नारायणो हरिः । विष्णोर्नाभेः समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामहः ।।१३३
ब्रह्मणश्चोद्भवं दैवं दैवाद्देवा अभूविरे । चतुर्विंशतितत्त्वानि तैर्देवैर्जनितानि वै ।।१३४
कल्पेकल्पे क्रमादेवं कल्पनामान्यकारयत् । मत्स्यकल्पे तु मत्स्यश्च महामत्स्यात्समुद्भवः ।।१३५
तन्मत्स्याद्भगवान्विष्णुस्ततो ब्रह्मण उद्भवः । कूर्मकल्पे महामत्स्यात्कूर्मो जातः स कच्छपः ।।१३६
कूर्माच्च भगवान्विष्णुस्ततो ब्रह्मा ततो विराट् । श्वेतवाराहकल्पे च वराहाद्विष्णुरुद्भवः ।।१३७
विष्णोर्नाभेश्च स ब्रह्मा ततो जातो विराडयम् । एवं सर्वे च वै कल्पा ज्ञेयाः सर्वत्र वै बुधैः ।।१३८
दशमो यो महाकल्पः कूर्मकल्पः स वै स्मृतः । अचेतास्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ।।१३९
प्रकृतेश्च परो यो वै तुरीयोऽव्यय एव च । शून्यभूतात्ततो जातः प्रचेता भगवान्स्वयम् ।।१४०
तस्माज्जातो महानब्धिस्तत्र सुष्वाप स प्रभुः । नारायण इति ख्यातः स वै जलपतिः स्वयम् ।।१४१
तदर्द्धाच्च महाकूर्मस्ततः शेषो महानभूत् । त्रिधाऽभवत्स वै शेषो भूमा शेषश्च भौमनी ।।१४२
भूमा स वै विराड् ज्ञेयः शेषोपरि स चास्थितः । भौमनी च महालक्ष्मीः सा भूम्नो हृदि संस्थिता ।।१४३

जिससे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा द्वारा यह विराट् ! इसलिए लिंग पुराण की कथा सैकड़ों कोटि की विस्तृत है । उसी का साररूप गीता ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित हुआ है । मत्स्यकल्प नामक नवें महाकल्प में भगवान् कुबेर पुराणपुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । पश्चात् उस अव्यय द्वारा एक अत्यन्त बड़ी धूल राशि उत्पन्न होती है, जिस रजोभूत धूलि द्वारा कुबेर जन्म ग्रहण करते हैं । पुनः कुबेर द्वारा वेदमूर्ति एवं सद्गुण रूप मत्स्य की उत्पत्ति होती है । उसी मत्स्य के उदर से स्वयं नारायण विष्णु देव उत्पन्न होते हैं और विष्णु की नाभि से पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा से दैव और दैव द्वारा देवों की उत्पत्ति होती है । पश्चात् उन्हीं देवों ने चौबीस तत्त्वों को उत्पन्न किया है । इस प्रकार प्रत्येक कल्प में देव प्रधान नाम द्वारा कल्पों के नाम होते हैं—मत्स्यकल्प में महामत्स्य द्वारा मत्स्य की उत्पत्ति कही गयी है । जिस मत्स्य के द्वारा भगवान् विष्णु और विष्णु द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । कूर्मकल्प में महामत्स्य द्वारा कूर्म (कच्छप) का आविर्भाव और उसी कूर्म द्वारा भगवान् विष्णु, उनसे ब्रह्मा और ब्रह्मा द्वारा विराट् उत्पन्न होते हैं । श्वेत वाराहकल्प में वराह द्वारा विष्णु उत्पन्न होते हैं । उसी विष्णु की नाभि द्वारा ब्रह्मा और उस ब्रह्मा से विराट् उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार विद्वानों को सभी कल्पों में उनकी प्रधानता एवं समस्त कथा का ज्ञान करना चाहिए । कूर्मकल्प नामक दशवें महाकल्प में भगवान् अचेता पुराण कहे गये हैं । जो प्रकृति से परे तुरीय, अव्यय एवं शून्यभूत हैं । उसी से भगवान् अचेता स्वयं उत्पन्न होते हैं और अचेता द्वारा महासागर उत्पन्न होता है जिसमें शयन करने पर भगवान् को जलपति नारायण कहा गया है । उनके अर्द्धभाग से महाकूर्म और महाशेष की उत्पत्ति होती है । वह शेष पुनः तीन रूप में विभक्त होकर भूमा, शेष और भौमनी के रूप में प्रकट होता है, उस भूमा को विराट् कहा गया है, जो भूमा

भूम्नो जातः स वै ब्रह्मा सृष्टिस्थितिविनाशकः। त्रिधामूर्तिः स वै ब्रह्मा कल्पे कल्पे क्रमादयम् ।।१४४
पटं सुषुप्तभूतं यत्पुराणपुरुषासनम् । यत्र गत्वेन्द्रियाण्येव तृप्तिं प्राप्य क्षयन्ति वै ।।१४५
अहङ्कारस्तदागत्य चैतन्यं मनसि स्थितम् । वञ्चयित्वा पुनर्लोकं करोतिस्मस्वलीलया ।।१४६
तुरीयशक्तिर्या ज्ञेया महाकाली सनातनी । महाकल्पैश्च तैःसर्वैस्तदङ्गं श्रुतिभिः स्मृतम् ।।१४७
नमस्तस्यै महाकाल्यै मम मात्रे नमो नमः । यतः पुराणपुरुषा भवन्ति च लियन्ति च ।।१४८
दशैव च महाकल्पा व्यतीता इह भोः सुराः । साम्प्रतं वर्तते यो वै महाकल्पो भविष्यकः ।।१४९
तदुत्पत्तिं शृणुध्वं भो देवाः सर्पिगणा मम । अचिन्त्यमक्षरं यत्तु तुरीयं च सदा स्थितम् ।।१५०
यद्गत्वा न निवर्तन्ते नरास्तत्रैव तत्पदम् । अनेकसृष्टिरचनाः सन्ति तस्यैव लीलया ।।१५१
तस्यान्तं न विदुर्देवाः कथं जानन्ति वै नराः । भूतो भूतो महाकल्पो दृष्टो वेदैस्तदीरितः ।।१५२
भाव्या ये तु महाकल्पा न वै जानन्ति ते सदा । त्र्यस्त्रिंशन्महाकल्पाः कैश्चिद्वेदैरुदीरिताः ।।१५३
अष्टादश महाकल्पाः पृथङ् नाम्नोपवर्णिताः । एकादश महाकल्पाः कैश्चित्प्रोक्ताः पुरातनैः ।।१५४
अतोऽहं निश्चयेनाद्य भाव्यकल्पेषु भोः सुराः । वेदानां वचनं सत्यं नान्यथा च भवेत्क्वचित् ।।१५५
तदव्ययात्समुद्भूतो राधाकृष्णः सनातनः । एकीभूतं द्वयोरङ्गं राधाकृष्णो बुधैः स्मृतः ।।१५६
सहस्रयुगपर्यन्तं यत्तेपे परमं तपः । तदा स च द्विधा जातोः राधाकृष्णः पृथक्पृथक् ।।१५७

(विराट्) के हृदय में स्थित है। उसी भूमा द्वारा सृष्टि, स्थिति एवं उसके विनाशक देवों की उत्पत्ति होती है। वही ब्रह्मा प्रत्येक कल्पों में त्रिधा विभक्त होकर तीनों रूपों को धारण करता है।१२९-१४४। पुराण पुरुष का वह आसन है, जो उसके शयन काल का स्तरण घर रूप है वहाँ पहुँचने पर इन्द्रियाँ तृप्त होकर नष्ट हो जाती है। वह अहंकार चैतन्य रुप से गन में स्थित होता है, उसे वंचितकर अपनी लीला द्वारा जो लोक-निर्माण करती है, वह सनातनी तुरीय शक्ति महाकाली है। समस्त महाकल्प एवं श्रुतियों द्वारा जिसके अंगभूत (लोक कथाओं) का वर्णन किया गया है, उस अपनी माता महाकाली को मैं नमस्कार करता हूँ। तथा उसी द्वारा पुराणपुरुष का आविर्भाव और विलय होता है। देववृन्द! दश महाकल्प व्यतीत हो चुके हैं। इस समय भविष्य महाकल्प का आरम्भ है। इसमें देवों समेत मेरा जिस प्रकार जन्म हुआ है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनो! अचिन्त्य, अविनाशी, तुरीय रूप से सदैव स्थित, तथा जिसके पद की प्राप्तिकर मनुष्यों को पुनः संसार में नहीं आना पड़ता है, वह अपनी लीला द्वारा अनेक सृष्टियों की रचना करता है। उसके अंत को देवगण नहीं जान सकते हैं तो उसके लिए मनुष्यों को क्या कहा जा सकता है। वेद तो यही कहता है कि महाकल्प हुए हैं, किन्तु भविष्य रूप में होने वाले कल्पों को वे भी नहीं जानते हैं। कुछ वेदों का यह कहना है कि तैंतीस महाकल्प होते हैं, कुछ लोग अष्टादश कल्पों को स्वीकार करते हैं, जो अपने नामानुसार पृथक्पृथक् वर्णित हैं और किसी प्राचीन वादी ने ग्यारह महाकल्प को स्वीकार किया है। देवगण! अतः मैंने निश्चय किया है—भावी कल्पों के विषय में वेदों की बातें सत्य माननी चाहिए, जो किसी प्रकार कभी अन्यथा नहीं हो सकती है और उसने बताया है कि उस अव्यय द्वारा सनातन राधाकृष्ण का आविर्भाव हुआ है, जिस दोनों के अंग एक हो जाने पर विद्वानों ने उसे राधाकृष्ण कहा है। प्रकट होने के उपरांत राधाकृष्ण ने सहस्र युग तक घोर तपस्या की। पश्चात् वह दो भागों में विभक्त होकर राधाकृष्ण के नाम से पृथक्-पृथक् अवस्थित होकर उन दोनों ने एक सहस्र युग

सहस्रयुगपर्यन्तं तेपतुस्तौ परं तपः । तयोरङ्गात्समुद्भूता ज्योत्स्ना तमनाशिनी ॥१५८
तज्योत्स्नाभिः समुद् भूतं दिव्यं वृन्दावनं शुभम् । एकविंशत्प्रकृतयो योजने योजने स्मृताः ॥१५९
दिव्यं वृन्दावनं जातं चतुराशीतिसम्मिते । क्रोशायामं महारम्यं तल्लिङ्गं शृणु मे प्रभो ॥१६०
इन्द्रियप्रकृतीनां च दशानां ग्रामतद्दश[1] । गोकुलं वार्षं नान्दं भाण्डीरं माथुरं तथा ॥१६१
वज्रं च यामुनं मान्यं श्रेयस्कं गोपिकं क्रमात् । मात्राभूतदशभ्यश्च प्रकृतिभ्यः समुद्भवम् ॥१६२
तथा दशवनं रम्यं तेषां नामानि मे शृणु । वृन्दावनं गोपवनं बहुलावनमेव च ॥१६३
मधुशृङ्गं कुञ्जवनं वनं दधिवनं तथा । रहः क्रीडावनं रम्यं वेणुपद्मवनं क्रमात् ॥१६४
मनसः प्रकृतेर्जातो गिरिर्गोवर्द्धनो महान् । दिव्यं वृन्दावनं दृष्ट्वा परमानन्दमाप सः ॥१६५
कृष्णादुद्भवन्गोपास्तिस्रः कोट्यो गुणात्मकाः । श्रीदामाद्याः सात्त्विकाश्च राजसा अर्जुनादयः॥१६६
कंसाद्यास्तामसा जाता दिव्यलीलाप्रकारिणः । राधाङ्गादुद्भवा गोप्यस्तिस्रः कोटयस्तथा क्रमात्॥१६७
ललिताद्याः सात्त्विकाश्च कुब्जाद्या राजसास्तथा । तामसाः पूतनाद्याश्च नानाहेलाचरित्रकाः ॥१६८
सहस्रयुगपर्य्यन्तं तेषां लीला बभूव ह । ततस्तौ तान्समाहृत्य तेपतुश्च पुनस्तपः ॥१६९
द्विधा जातः स वै कृष्णो राधा देवी तथा द्विधा । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१७०
पूर्वार्द्धात्स च वै जातः परार्द्धात्कृष्ण एव हि । एकशीर्षा त्रिनेत्रा च द्विपदी द्विसहस्रिका ॥१७१

तक पुनः घोर तपस्या की जिससे उन दोनों के अंग से तम नष्ट करने वाली ज्योत्स्ना का अविर्भाव हुआ। उसी ज्योत्स्ना द्वारा शुभमूर्ति वृन्दावन का निर्माण हुआ, जिसके एक-एक योजन की दूरी पर इक्कीस प्रकृति तत्त्व का सन्निहित होना बताया गया है। वह दिव्य वृन्दावन चौरासी कोश में विस्तृत है। प्रभो! उसके लिंग की व्याख्या कर रहा हूँ सुनो! ।१४५-१६०। दश प्राकृतिक इन्द्रियों द्वारा उसके दश ग्रामों का निर्माण हुआ है—गोकुल, वार्षभ, नान्द, भांडीर, माथुर, व्रज, यामुन, मान्य, श्रेयस्क, एवं गोपियों की क्रमशः उत्पत्ति हुई। दश तन्मात्रा प्रकृति द्वारा दश रमणीक वन उत्पन्न हुए हैं, उनके नाम बता रहा हूँ सुनो! वृन्दावन, गोपवन, बहुलावन, मधुवन, भृङ्गवन, दधिवन, एकान्त क्रीडावन, रम्य वेणु और पद्मवन का क्रमशः जन्म हुआ। प्रकृति के मन द्वारा महान् गोवर्द्धन पर्वत का अविर्भाव हुआ, जिसने दिव्य वृन्दावन को देखकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया है। भगवान् कृष्ण द्वारा तीन कोटि गुणी गोपों का जन्म हुआ है, जिसमें श्रीदामा आदि गोपा के जन्म सतोगुण द्वारा अर्जुन आदि के रजोगुण और कंस आदि के जन्म तमोगुण द्वारा हुए हैं, जो दिव्य लीला के विषय में उसी भाँति क्रमशः राधा जी के अंग द्वारा ललिता आदि तीन कोटि गोपियों के जन्म हुए हैं, जिसमें ललिता आदि गोपियाँ सात्त्विकी, कुब्जा आदि राजसी, और पूतना आदि गोपियाँ तामसी प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुई हैं। जो अनेक हाव-भाव के चरित्रों का चित्रण किये हैं इन लोगों ने एक सहस्र युग तक अनेक भाँति की लीला करने के उपरांत इन (राधाकृष्ण) दोनों ने अपने में उन सब के संहरण पूर्वक पुनः घोर तप किया है। कृष्ण और राधादेवी पृथक् पृथक् दो-दो भागों में विभक्त हुए। कृष्ण ने अपने पूर्वार्द्ध भाग से एक-एक पुरुष को प्रकट किया जिसके- सहस्र शिर, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण हैं तथा उत्तरार्द्ध भाग कृष्णरूप हुआ। उसी प्रकार राधा

---

१. प्रयोगोयमार्षः।

पूर्वार्धात्सा तु वै जाता राधा देवी परार्द्धतः । पुरुषः प्रकृतिश्चोभौ तेपतुः परमं तपः ।।१७२
सहस्रयुगपर्य्यन्तं दिव्ये वृन्दावने शुभे । तपसा ववृधाते तौ नाम्नानन्तो ह्यनन्तकः ।।१७३
एकीभूतौ तु तत्पश्चात्संस्थितौ मैथुनेच्छया । तदङ्गरोमकूपेषु ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् ।।१७४
कोटचर्द्धयोजनायामास्ते तु सर्वे पृथक्पृथक् । हृदि रोमसमुद्भूतो ब्रह्माण्डोऽयं च भोः सुराः ।।१७५
ब्रह्माण्डादुद्भवो ब्रह्मा पद्मपुष्पे समास्थितः । स पद्मो योजनायामो भूमिमण्डलसंस्थितः ।।१७६
यतो जातं विधेः पद्मं तद्वै पद्मसरोवरम् । प्रसिद्धं पुष्करक्षेत्र तत्पद्मसरसं सुराः ।।१७७
विस्मितः स तदा ब्रह्मा नररूपश्चतुर्मुखः । नाले नाले गतोसौ वै दिव्यं जातं शतं समाः ।।१७८
नान्तं जगाम पद्मस्य पुनर्ब्रह्मा स चागतः । मायया मोहितस्तत्र रुरोद बहुधा तदा ।।१७९
रोदनाद्रुद्र उत्पन्नः स च तत्क्षेमकारकः । किं रोदिषि महाभाग त्वदीशो हृदये तव ।।१८०
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा लोकपितामहः । समाधिभूतो हृदये चिरं तेपे स्वकेच्छया ।।१८१
दिव्यवर्षशताब्दे तु प्रादुर्भूतो हरिः स्वयम् । वचनं प्राह भगवान्मेघगम्भीरया गिरा ।।१८२
कर्मभूमिरियं ब्रह्मञ्जीवान्ता जीवकारिणी । सहस्रयोजनायां तु विश्वस्मिन्भूमिमण्डले ।।१८३
हिमाद्रिरुत्तरे तस्याः पूर्वेऽब्धिश्च महोदधिः । रत्नाकरः पश्चिमेऽब्धिर्दक्षिणे वडवाब्धिकः ।।१८४
अतः सर्वे भविष्यन्ति लोकाश्चोर्द्ध्वं तथा ह्यधः । कर्मभूमेर्मध्यभूतः पुष्करोऽयं सनातनः ।।१८५

देवी के पूर्वार्द्ध भाग द्वारा दो सहस्त्र (मूर्ति) उत्पन्न हुई, जिनके एक शिर तीन नेत्र एवं दो चरण हैं और परार्द्ध भाग राधारूप हुआ । उस शुभ एवं दिव्य वृन्दावन में उन प्रकृति-पुरुष दोनों ने सहस्र युग पर्यन्त घोर तप किया जिसके कारण उनकी इतनी वृद्धि हुई हैं कि उसका पार न मिलने से उनका अनंत नामकरण हुआ । पश्चात् वे दोनों मैथुन करने की इच्छा से एक होकर स्थित हुए । उस समय उनके अङ्ग के रोमकूपों में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए, जो पृथक्-पृथक् स्थित होकर आधे-आधे कोटि के विस्तृत थे । देवगण ! उनके हृदय रोम द्वारा इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई । अनन्तर ब्रह्माण्ड द्वारा कमलपुष्प पर स्थित ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ । वह कमलपुष्प भूमि में एक योजन के विस्तार में स्थित था ।१६१-१७६। वह ब्रह्म-कमल जिससे उत्पन्न हुआ वह पद्मसरोवर के नाम से प्रख्यात होकर पुष्कर क्षेत्र में स्थित है । उस समय चतुर्मुख धारण किये नररूप में अवस्थित ब्रह्मा ने उस कमल को देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया । तदुपरांत उसके नाल में प्रवेशकर ब्रह्मा ने दिव्य सौ वर्ष तक उसके मूल का पता लगाया किन्तु उसके अन्त का पार न प्राप्त कर सके । किन्तु माया से मोहित होकर अनेक भाँति रुदन करना आरम्भ किया, जिससे रुद्र की उत्पत्ति हुई, जो उनके कल्याण कर्ता हुए । उन्होंने कहा—महाभाग ! क्यों रुदन कर रहे हो, तुम्हारा स्वामी तो तुम्हारे हृदय में ही स्थित हैं इसे सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने अपनी इच्छा से अपने हृदय में उनके ध्यान पूर्वक समाधि लगाना प्रारम्भ किया । सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने के उपरांत विष्णु भगवान् के स्वयं आविर्भूत होकर अपनी मेघ-गम्भीर वाणी द्वारा गर्जना करते हुए ब्रह्मा से कहा—ब्रह्मन् ! यह कर्मभूमि है, जिसमें जीवगण उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं । इस विश्व के भूमण्डल में यह सहस्र योजन में विस्तृत है, जिसके उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में समुद्र, पश्चिम में रत्नाकर समुद्र और दक्षिण में बडवानल वाला समुद्र है । अतः कर्मभूमि के ऊपर नीचे लोकों की अवस्थिति होगी और मध्य में इस सनातन पुष्कर को

सत्तो वेदान्भवान्प्राप्य करिष्यति मखं शुभम् । यज्ञाद्देवा भविष्यन्ति त्रिधाभूता गुणत्रयात् ॥१८६
सिद्धा विद्याधराश्चैव चारणाः सात्त्विकास्त्रिधा । गन्धर्वयक्षरक्षांसि राजसा गिरिसंस्थिताः ॥१८७
पिशाचगुह्यका भूतास्तामसा गामिनो ह्यधः । तथा स्वधामया यज्ञास्त्रिधा पितृगणा विधे ॥१८८
भविष्यन्ति सुरै रम्या विमानसदृशाश्च खे । खेचरा गौरवर्णाश्च श्यामास्ते सात्त्विकाः स्मृताः ॥१८९
गिरिद्वीपमया रम्याः सरोरूपाश्च राजसाः । भूचरास्ते भविष्यन्ति त्रिधा पितृगणा विधे ॥१९०
बिलेतलमया ये तु नारका यातनामयाः । तामसास्ते भविष्यन्ति पितरोऽधोमहीतले ॥१९१
व्ययभूताश्च ते लोका वृद्धा मध्याः क्षयाः क्रमात् । इयं भूमिर्महाभागा सर्वदा च सनातनी ॥१९२
मेरुर्वै च नमेरुश्च द्वीपाश्चातंस्तथा न हि । इलावर्तादिखण्डाश्च सन्ति नैव क्वचित्क्वचित् ॥१९३
ये तु तारामया लोका विमानसदृशा विधे । स्वेच्छया च करिष्यन्ति रक्षिता यज्ञकर्मणा ॥१९४
यज्ञो नास्ति यदा भूमौ तदा ते भगणा विधे । विघ्नभूताश्चरिष्यन्ति नित्यवक्रातिचारिणः ॥१९५
कर्मभूमिश्च गौर्ज्ञेया श्रुतिरूपा जगन्मयी । यस्तां पाति च भो ब्रह्मन्स गोप इति विश्रुतः ॥१९६
गोपशक्तिः स वै गोपो गोपानामर्चको हरिः । कोटिकोटिसहस्राश्च सर्वे गोपा हरेः कलाः ॥१९७
तावन्तश्चैव ब्रह्माण्डा गोपनाम्ना प्रकीर्तिताः । कर्मभूमेस्तथोर्ध्वं च रविर्योजनलक्षकः ॥१९८

मुझसे वेदों की प्राप्ति करके आप लोग यज्ञानुष्ठान सुसम्पन्न करेंगे जिससे तीनों युगों के तीन भाग द्वारा देवों की उत्पत्ति होगी उस सात्त्विक गुण के तीन भागों में विभक्त होने से सिद्ध विद्याधर एवं चारण राजस् द्वारा पर्वत निवासी गन्धर्व यक्ष तथा राक्षस और अधोलोक में रहने वाले पिशाच एवं गुह्यकों की उत्पत्ति तामस गुणों द्वारा होगी । उसी प्रकार पितृगणों के लिए स्वधामय यज्ञ (पिंडदान) तीन भागों में विभक्त होकर देवों के यानों से अधिक रमणीक विमान रूप में आकाश में उनके समीप स्थित होंगे । पुनः सतोगुण द्वारा खेचरों की उत्पत्ति होगी, जो गौरवर्ण एवं श्यामल वर्ण के होते हैं । राजस् गुण द्वारा गिरि, द्वीप एवं सरोवरों की उत्पत्ति होगी और पितृगणों के समीप रहने वाले भूचर तीन भागों में विभक्त होंगे । विल (पाताल आदि) रूप, और यातनामय नरकाकुण्डों की तमोगुण द्वारा उत्पत्ति होगी जो पितरों के नीचे भूतल पर अवस्थित हैं ।१७७-१९२। क्रमशः लोकों में ऊपर के लोकों का मध्य व्यय मध्य वाले की वृद्धि और नीचे वाले लोकों का क्षय होता है । यह पवित्र भूमि सनातनी है, किन्तु इस पर स्थायी मेरु के रूप में तथा द्वीपगण, और इलार्वत आदि खंग अपने रूप में सदैव स्थित नहीं रहते हैं अर्थात् महाप्रलय होने पर विलीन हो जाते है । विमान के समान आकाश में दिखायी देने वाले तारागण यज्ञों द्वारा सुरक्षित होने पर स्वेच्छया लोक की रक्षा किया करते हैं । जिस समय भूतल पर यज्ञानुष्ठान नहीं होते उस समय वे भगण नित्य उनकी और अतिचारी होकर लोक में विघ्न उत्पन्न करते हैं । ब्रह्मन् ! श्रुति रूप एवं संसारमयी यह कर्मभूमि गौरूप है, जो इसका पालन-पोषण करता है, उसे गोप कहा जाता है । गोपशक्ति एवं गोरूप भगवान् विष्णु है, जो गोपियों की सदैव पूजा करते हैं । सहस्र कोटि के उत्पन्न सभी गोप भगवान् के कला स्वरूप है और उतने ही ब्रह्माण्ड गोप नाम से कहे गये हैं । इस कर्म-

ततश्शशी तथामानस्ततश्चोर्ध्वं भमण्डलम् । द्विलक्षयोजनगतस्ततो भौमस्तथाविधः ।।१९९
भौमाद्बुधस्तथा ज्ञेयो बुधाच्च बृहतांपतिः । गुरोः शुक्रस्तथामानः शुक्रात्सौरिस्तथागतः ।।२००
शनेराहुस्तथा ज्ञेयो राहोः केतुस्तथोर्ध्वगः । सप्तलक्षमितंज्ञेयं केतोः सप्तर्षिमण्डलम् ।।२०१
लक्षैकादशगाः सर्वे ततश्चोर्ध्वं ध्रुवास्पदम् । लक्षयोजनगं चैव ततश्चोर्ध्वं महत्पदम् ।।२०२
लक्षयोजनगं ज्ञेयं ततश्चोर्ध्वं जनास्पदम् । लक्षयोजनगं ज्ञेयं तदूर्ध्वं तपसः स्थलम् ।।२०३
एवं च कर्मभूमेश्च तपः कोटयर्धयोजनम् । कर्मभूमेरधश्चैव पातालाः सप्त चान्तराः ।।२०४
लक्षयोजनगा ज्ञेयास्ततश्चाधोगताश्च ये । नरकाश्च क्रमाज्ज्ञेया भूमेः कोटयर्द्धयोजनाः ।।२०५
कर्मभूमेरुत्तरे च खण्डान्यष्टौ ततः परम् । लवणाब्धिस्ततो द्वीपस्ततः क्षीराब्धिरेव हि ।।
ततो द्वीपस्ततः सिन्धुस्ततो द्वीपस्ततोऽब्धिकः ।।२०६
कोटयर्द्धलक्षव्यानेन योजनेन विधे स्वयम् ।।२०७
कर्मभूमेः स वै ज्ञेयो लोकालोका महाचलः । लोकालोको दक्षिणे च पश्चिमे च स वै गिरिः ।।२०८
पूर्वे च कर्मभूमेश्च लोकालोकस्तथाविधः । एतेषां समुदायानां ब्रह्माण्डोऽयं प्रकीर्तितः ।।२०९
त्वत्तो भविष्यति विधे कल्पपर्यन्तमेव हि । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ततो विष्णुस्त्रिधाभवत् ।।२१०
अद्य विष्णुः स वै कृष्ण इह विष्णुः स वै विराट् । इति विष्णुः स वै ज्ञेयः पुराणपुरुषोत्तमः ।।२११
पुराणपुरुषो ज्ञेय आदिब्रह्मा चिरायुगः । दैवे युगसहस्रे द्वऽहोरात्रं तस्य कीर्तितम् ।।२१२
विष्णोस्तु रोमकूपेषु ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् । अद्य विष्णुरहं ब्रह्मन्विग्रहा तव भूतले ।।२१३

भूमि से ऊपर एक लक्ष योजन की दूरी पर सूर्य स्थित हैं, उनसे उतनी ही दूर चन्द्रमा और उनसे ऊपर उतने दूर पर नक्षत्रों का मण्डल स्थित है। उनसे दो लक्ष योजन की दूरी पर मंगल, उनसे उतनी दूर बुध, बुध से उतनी दूरी पर बृहस्पति, बृहस्पति से उतने दूर शुक्र, शुक्र से शनि, शनि से राहु और राहु से केतु उपरोक्त दो लाख की समान दूरी पर स्थित हैं। केतु से सात लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षियों का मण्डल अवस्थित है। इस प्रकार सभी ग्यारह लाख योजन की दूरी पर स्थित हैं और उनसे एक लाख योजन की दूरी पर धुव्र का स्थान, उससे लक्ष योजन पर महात्पद महात्पद से ऊपर लक्ष योजन पर जनपद, उस से ऊपर लक्ष योजन पर तप लोक स्थित है। इस भाँति कर्मभूमि से तपलोक आधे कोटि योजन की दूरी पर है। कर्मभूमि से एक लक्षयोजन की दूरी पर नीचे पाताल आदि लोक और उससे उतनी ही दूर नीचे नरक कुण्ड अवस्थित हैं, जो भूमि से आधे कोटि योजन पर कहा गया है। कर्मभूमि के उत्तर आठ खण्डों का निर्माण हुआ है—लवण सागर उसके अनन्तर द्वीप, उसके पश्चात् क्षीरसागर है इसी भाँति द्वीप सागर और पुनः द्वीप का निर्माण किया गया है, जो आधे कोटि लक्ष योजन की दूरी पर है। कर्मभूमि के चारों ओर लोकालोक नामक पर्वत अवस्थित है। विधे ! इन्हीं सब समुदायों का यह प्रख्यात ब्रह्माण्ड नाम है जो तुम्हारे द्वारा उत्पन्न होकर कल्प पर्यन्त सुस्थित रहेंगे। १९३-२०८। ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म द्वारा विष्णु की उत्पत्ति होती है, जो विष्णु, कृष्ण, एवं विराट् रूप से प्रख्यात होते हैं। वही विष्णु पुराण पुरुष आदि ब्रह्मा के नाम से प्रख्यात हैं, जिनकी चिरायु होती है। दिव्य दो सहस्र युग का उनका दिन रात होता है। इस विष्णु के रोमकूपों में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। ब्रह्मन् ! विष्णु मैं इस भूतल पर तुम्हारे

इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा सृष्टिमचीकरत् । तेन प्रोक्तं यतो भाव्यं महाकल्पो हि स स्मृतः ।।२१४
भविष्यो नाम विख्यातो द्विसहस्रभवायुषः । पूर्वार्द्धश्च परार्द्धश्च पुराणपुरुषस्य हि ।।२१५
अष्टादशसहस्राणि कल्पाः पूर्वार्द्धके गताः । परार्द्धः साम्प्रतं ज्ञेयो जातं तस्य दिनद्वयम् ।।२१६
अद्याहं कूर्मकश्चैव वाहने मत्स्यः प्रकीर्तितः ।तृतीयः श्वेतवाराहो दिवसस्तस्य कल्पवान् ।।२१७
तथा मध्याह्नकालो हि साम्प्रतं वर्तते सुराः । भविष्याख्ये महाकल्पे कथा भाविष्यकैर्जनैः ।।२१८
कथिता ब्रह्मणश्चाग्रे शतकोटिप्रविस्तरैः । दशलक्षणसंयुक्तं शतकोटिप्रविस्तरम् ।।२१९
महापुराणं कथितं पुराणं पञ्चलक्षणम् । पद्यत्रिंशत्सहस्रं च कल्पे कल्पे प्रकीर्तितम् ।।२२०
कल्पनाम्ना पुराणं च महादेवेन निर्मितम् । अष्टादशपुराणानि निर्मितानि शिवात्मना ।।२२१
द्वापरान्ते च भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः । तान्येव जनयामास लोकमङ्गलहेतवे ।।२२२

व्यास उवाच

इति कल्किवचः श्रुत्वा ते देवा विस्मयान्विताः । नमस्कृत्य गमिष्यन्ति स्वं स्वं धाम प्रहर्षिताः ।।२२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

विघ्न के अपहरणार्थ स्थित हूँ । इतना कर विष्णु अन्तर्हित हो गये और ब्रह्मा ने सृष्टि करना आरम्भ किया । उन्होंने ही यह बताया है कि भावीकल्प भविष्यमहाकल्प के नाम से प्रख्यात होगा, जिसकी दो सहस्र वर्ष की आयु बतायी गयी है । पुराण पुरुष के पूर्वार्द्ध भाग द्वारा उत्पन्न अठारह सहस्र कल्पव्यतीत हो चुके हैं और इस समय वर्तमान परार्द्धभाग के भी दो दिन व्यतीत हो गये हैं । यहाँ कूर्म और अग्नि का मत्स्य, तथा तीसरा श्वेत वाराह नामक कल्प उसका दिवस रूप बताया गया है । सुरवृन्द ! इस समय उस भविष्य महाकल्प का मध्याह्न काल है, जिसकी कथा भावी जनों द्वारा निर्मित होकर ब्रह्मा के सम्मुख कही गयी है । वह महाकल्प सैकड़ों कोटि का विस्तृत और उन शतलक्षणों से अंकित है, जो सैकड़ों कोटि विस्तृत है, उसे ही महापुराण कहा गया है । पुराणों के पाँच लक्षण होते हैं और उसमें तीस सहस्र पद्य जो प्रत्येक कल्पों में विरचित होते हैं । कल्प नाम पुराण का है, जिसे महादेव जी ने स्वयं निर्मित किया है । इस प्रकार शिव जी ने अठारह पुराणों का निर्माण किया है, जिसे द्वापर युग के अन्तिम समय में सत्यवती पुत्र व्यास जी ने लोकों के हितार्थ उत्पन्न (दृष्टि गोचर) किया है ।

व्यास जी बोले—कल्कि देव की इस प्रकार की बातें सुनकर देवों को अत्यन्त विस्मय हुआ । अनन्तर वे नमस्कार करके अपने-अपने लोक चले जाँयेगे ।२०९-२२३

श्री भविष्य महापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

व्यास उवाच

तदा स भगवान्कल्किः पुराणपुरुषोद्भवः । दिव्यं वाजिनमारुह्य खड्गी वर्मी च चर्मधृक् ॥
म्लेच्छांस्तान्दैत्यभूतांश्च हत्वा योगं गमिष्यति ॥१
षोडशाब्दसहस्राणि तद्योगाग्निप्रतापिता । भस्मभूता कर्मभूमिर्निर्जीवा भविता तदा ॥२
ततोऽनुयोगं जनितो मेघो भूत्वा लयङ्करः । प्रलयाग्रेण सा भूमिर्जलमध्ये गमिष्यति ॥३
तदा कलियुगो घोरो बलिपार्श्वं गमिष्यति । गते कलियुगे घोरे कर्मभूमिं पुनर्हरिः ॥
कृत्वा स्थलमयीं रम्यां यज्ञैर्देवान्यजिष्यति ॥४
यज्ञभागमुपादाय देवास्ते बलसंयुताः । वैवस्वतं मनुं गत्वा कथयिष्यन्ति कारणम् ॥५
कल्किनो वदनाज्जातो ब्राह्मणो वर्ण एव हि । बाह्वोः क्षत्रं विशो जान्वोः शूद्रो वर्णस्तदङ्घ्रयोः ॥६
गौरो रक्तस्तथा पीतः श्यामस्ते ब्राह्मणादयः । देव्याः शक्तिं समादाय जनिष्यन्ति सुतान्बहून् ॥७
एकविंशत्किष्कुमिताः मनुजा धर्मरूपिणः । जातिधर्ममुपादाय यजिष्यंति सुरान्मुदा ॥८
तदा वैवस्वतो धीमान्नत्वा तं कल्किनं हरिम् । अयोध्यायां राजपदं करिष्यति तदाज्ञया ॥९

अध्याय २६

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय वर्णन

व्यास जी बोले—पुराण पुरुष द्वारा उत्पन्न कल्कि देव दिव्यअश्व पर सुशोभित होकर खड्ग, चर्म के धारण पूर्वक उन दैत्यरूप म्लेच्छों का हनन करेंगे। तदुपरांत योग समाधिनिष्ठ होकर सोलह सहस्र वर्ष तक तप करेंगे, जिससे उस योग द्वारा उत्पन्न अग्नि से यह कर्मभूमि भस्म हो जायगी। कर्मक्षेत्र के निर्जीव हो जाने पर उनके योग द्वारा प्रलयकारी मेघों की उत्पत्ति होगी, जिनके द्वारा प्रलय होने पर वह भूमि जल मध्य में विलीन हो जायगी। उस समय कलियुग बलिदैत्य के समीप चला जायगा। कलियुग के चले जाने पर भगवान् विष्णु पुनः इस कर्मभूमि (भारत भूमि) को सौन्दर्य पूर्ण स्थल बनाकर उस पर यज्ञों द्वारा देवों की पूजा करेंगे। उस यज्ञ भाग के ग्रहणपूर्वक बली होकर देवगण वैवस्वत मनु के समीप पहुँच कर उनसे समस्त कारण का वर्णन करेंगे। तदनन्तर कल्किदेव के मुख द्वारा ब्राह्मण वर्ण, भुजा द्वारा क्षत्रिय, जानु द्वारा वैश्य और चरणों द्वारा शूद्र वर्णों की उत्पत्ति होगी जो क्रमशः गौर, रक्त, पीत, एवं श्याम वर्ण के रहेंगे। वे ब्राह्मण आदि वर्ण के मनुष्य देवी शक्ति (स्त्री) को अपनाकर उनके द्वारा अनेक पुत्रों की सृष्टि करेंगे। वे मनुज धर्म वाले मनुष्य जो इक्कीस किष्कु[1] परिमाण के रहेंगे अपने-अपने जातीय धर्म के आलम्बनपूर्वक देवों की अर्चना आदि करेंगे। उस समय धीमान् वैवस्वत् मनु कल्किरूपी विष्णु के नमस्कार पूर्वक उनकी आज्ञा से अयोध्या के राजपद को विभूषित करेंगे। १-९। उनकी शिक्षा-

तच्छिक्षातो भवेत्पुत्रो यः स इक्ष्वाकुरेव हि । पितू राज्यं पुरस्कृत्य भूमौ दिव्यं शतं समाः ।।
दिव्यवर्षशतायुश्च त्यक्त्वा देहं गमिष्यति ।।१०
यदा तु भगवान्कल्की ब्रह्मसूत्रं करिष्यति । तदा वेदाश्च चत्वारो मूर्तिमन्तश्च साङ्गकाः ।।
अष्टादशपुराणैश्च तत्रायास्यन्ति हर्षिताः ।।११
स्तोष्यन्ति कल्किनं देवं पुराणपुरुषांशकम् । कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां गुरुवासरे ।।१२
यज्ञकुण्डाच्च पुरुषो भविष्यति महोत्तमः । नाम्ना सत्ययुगो ज्ञेयः सत्य मार्गप्रदर्शकः ।।१३
दृष्ट्वा तं पुरुषं रम्यं तदा ब्रह्मादयः सुराः । तां तिथिं वर्णयिष्यन्ति कर्मक्षयकरीं मनो ।।१४
अस्यां तिथौ च मनुजो धातृवृक्षतटे मुदा । योऽर्चयिष्यति यान्देवान्देवास्ते तस्य वश्यगाः ।।१५
अक्षया नवमी नाम युगादिनवमी हि सा । लोकमङ्गलदात्री च सर्वकिल्बिषनाशिनी ।।१६
धातृमूलतले चैव मालतीं तुलसीं मुदा । संस्थाप्य वेदविधिना शालग्रामं यजन्ति ये ।।
जीवन्मुक्ताश्च ते ज्ञेया पितृणां तृप्तिकारकाः ।।१७
धातृवृक्षतले गत्वा यो वै श्राद्धं करिष्यति । गयाश्राद्धसहस्रस्य लप्स्यते च फलं परम् ।।१८
यः करोति तथा होमं सहस्रमखसन्निभम् । मृतः सस्वर्गमाप्नोति सकुलः सपरिच्छदः ।।१९
इत्युक्ते वचने तेषां कल्की देवो मुदान्वितः । तथास्त्वित्येव वचनं वदिष्यति सुरान्प्रति ।।२०
इत्युक्त्वा भगवान्कल्की पश्यतां देवरूपिणाम् । तत्रैवान्तर्गतो भूत्वा सुषुप्तश्च भविष्यति ।।२१
गते तस्मिन्भगवति कर्मभूमिः सुदुःखिता । विरहाग्निमती भूत्वा बीजांस्तान्संक्षयिष्यति ।।२२

दीक्षा द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसका इक्ष्वाकु नाम होगा जो पृथ्वी पर अपने पिता के राज्य-भार का वहन करते हुए दिव्य सौ वर्ष का सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे और उसके पश्चात् आयु की समाप्ति में देह का परित्याग करेंगें । भगवान कल्कि जिस समय ब्रह्मसत्र नामक यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करेंगे उस समय उनके सेवा में चारों वेद एवं अठारहो पुराण मूर्तिमान होकर साङ्गोपाङ्ग वहाँ उपस्थित होंगे । अनन्तर कल्किदेव की जो पुराणपुरुषरूप हैं, आराधना करने पर कार्तिक शुक्ल नवमी गुरुवासर के समय उस यज्ञकुण्ड द्वारा एक महोत्तम पुरुष का आविर्भाव होगा, जो सत्ययुग के नाम से प्रख्यात एवं सत्यमार्ग के प्रदर्शक होगें । मन ! उस समय उस पुरुष को देखकर ब्रह्मादि देवगण उस तिथि को कर्मक्षय करने वाली बतायेंगे उस तिथि के दिन जो मनुष्य धातृ (आँवला) वृक्ष के नीचे प्रसन्नता पूर्वक देवों की अर्चना करेंगे, तो वे देवगण उनके वशीभूत हो जायेंगे । युग की आदि नवमी होने के नाते इसको अक्षय नवमी कहते हैं, जो लोक का मंगल करने वाली, एवं समस्त पापों को विनष्ट करती है । आँवले वृक्ष के नीचे मालती और तुलसी को स्थापितकर जो मनुष्य शालिग्राम देव की सविधान पूजा करते हैं, वे स्यवं जीवन्मुक्त होकर पितरों की तृप्ति करेंगे । आँवले वृक्ष के नीचे जो श्राद्ध करता है, उसे गयाश्राद्ध करने के फल प्राप्त होते हैं । जो उसके नीचे हवन करेंगे, उन्हें सहस्र यज्ञों के सुसम्मपन्न करने का फल प्राप्त होगा। १०-१९। और उसके नीचे मृतक प्राणी अपने साङ्ग सपरिवार समेत स्वर्ग की प्राप्ति करता है । उन देवों के इस प्रकार वर्णन करने पर कल्किदेव प्रसन्नतया उन्हें 'तथास्तु' कहकर देवों को प्रसन्न करेंगे और पश्चात् उन देवों के समक्ष कल्किदेव अन्तर्हित होकर पुनः (क्षीरसागर) में शयन करेंगे । भगवान् के चले जाने पर यह कर्मभूमि अत्यन्त दुःखी होकर उनके

तस्मिन्काले महादैत्याः पातालतलवासिनः । प्रह्लादं च पुरस्कृत्य गमिष्यन्ति सुरान्प्रति ।।२३
खरोष्ट्रगृद्ध्रमहिषकाककर्कसमास्थिताः । सिंहव्याघ्रवृकारूढाः शृगालश्येनवाहनः ।।२४
प्रासपट्टिशखड्गांश्च भुशुण्डीपरिघादिकान् । गृहीत्वा वेगवन्तस्ते गर्जिष्यन्ति पुनः पुनः ।।२५
तदा शक्रादयो देवास्त्रयस्त्रिंशद्गणा मुदा । स्वायुधानि गृहीत्वाशु करिष्यन्ति रणं महत् ।।२६
दिव्यवर्षमयं घोरं युद्धं तेषां भविष्यति । मृतान्मृतान्रणे दैत्यान्भार्गवो जीवयिष्यति ।।२७
श्रमभूतास्तथा देवास्त्यक्त्वा युद्धं समन्ततः । क्षीराब्धिं च गमिष्यन्ति यत्र साक्षाद्धरिः स्वयम् ।।२८
तेषां स्तुत्या स भगवान्देवमङ्गलहेतवे । स्वपूर्वार्द्धं स्वरूपं च करिष्यति सनातनः ।।२९
स च हंसो हरिः साक्षाच्छतसूर्यसमप्रभः । शुक्रं प्रह्लादप्रमुखान्स्तेजसा तापयिष्यति ।।३०
तदा पराजिता दैत्यास्त्यक्त्वा गां दुःखिता भृशम् । वितले च गमिष्यन्ति महादेवेन रक्षिताः ।।३१
पुनस्ते सकला देवा निर्भया निरुपद्रवाः । वैवस्वतस्य तनयं चाभिषेक्ष्यन्ति भूपदे ।।३२
दिव्यवर्षशतायुश्च स इक्ष्वाकुर्भविष्यति । वर्षाणां च प्रमाणेन नृणामायुश्चतुश्शतम् ।।३३
इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं मुने त्वया । चतुर्युगानां चरितं नृपाणां च पृथक् पृथक् ।।३४
चतुष्पादा हि धर्मस्य ज्ञानं ध्यानं शमो दमः । आत्मज्ञानं स वै ज्ञानं ध्यानमध्यात्मचिन्तनम् ।।
मनः स्थिरत्वं च शमो दमस्त्विन्द्रियनिग्रहः ।।३५
चतुर्लक्षाब्दकान्येव द्वात्रिंशच्च सहस्रकम् । तत्सङ्ख्यया हि धर्मस्य पादश्चैकः प्रकीर्तितः ।।३६

वियोगाग्नि से संतप्त होने पर बीजों को विनष्ट करेगी । उसी बीच पाताल निवासी महादैत्य- गण प्रह्लाद को आगेकर देवों से युद्ध करने के निमित्त अपने गधे, ऊँट, गीद। महिष, कौवे, केकहरा, सिंह, बाघ, भेडिया स्यार, बाज पक्षी आदि वाहनों पर बैठकर प्रास, पट्टिश, खड्ग, भुशुण्डि एवं परिघ आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर अत्यन्त वेग से वहाँ पहुँचकर बार-बार गर्जन करेंगे । उसे सुनकर इन्द्रादि देवगण अपने तैतीस गणों समेत अपने अस्त्रों को ग्रहणकर शीघ्र घोररण आरम्भ करेंगे, जो दिव्य वर्ष तक अनवरत चलता रहेगा । उस युद्ध में मृतक दैत्यों को शुक्र पुनः पुनः जीवित करेंगे । उसे देखकर श्रान्त देवगण पलायनकर क्षीरसागर पहुँचने का प्रबल प्रयास करेंगे, जहाँ साक्षात् विष्णुदेव शयन किये हैं । वहाँ पहुँचकर देवगण उनकी स्तुति करेंगे, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् उस समय लोक के कल्याणार्थ अपने पूर्वार्द्ध भाग द्वारा हंस का रूप धारण करेंगे, जो सनातन, एवं सूर्य के समान प्रखर तेज युक्त होगा । पश्चात् उस अपने तेज द्वारा शुक्र तथा प्रह्लाद आदि प्रमुख दैत्यों को संतप्त करेंगे, जिससे पराजित होकर दैत्यगण दुःख प्रकट करते हुए पृथ्वी के त्याग पूर्वक वितल लोक की यात्रा करेंगे । उस समय उनकी रक्षा महादेव जी करते रहेंगे । अनन्तर समस्त देवगण निर्भय होकर वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु का पृथ्वी के राजसिंहासन पर अभिषेक करेंगे । जो दिव्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त किये रहेंगे । मनु उस समय तदितर मनुष्यों की आयु चार सौ वर्ष की होगी । इस प्रकार मैंने तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर विस्तार पूर्वक सुना दिया, जो चारों युगों के मनुष्यों के पृथक् पृथक् चरित रूप हैं । धर्म के ज्ञान, ध्यान, श और दम ये चार चरण कहे गये हैं, जिनमें आत्मज्ञान को ज्ञान अध्यात्म चिन्तन करने को ध्यान, मन को सुस्थिर करने को शम और इन्द्रियों को वश में करने को दम कहा गया है। इस प्रकार चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष का धर्म

प्राह्णमध्याह्नसायाह्नं त्रिसन्ध्यं च भवेत्सदा । एकैकेन पदा तस्य विराजो भुवि वर्तते ।।३७
यदा धर्मो भवेद्वृद्धस्तदायुश्चैव वर्द्धते । सप्तश्लोकसहस्राणि खण्डेऽस्मिन्कथितानि हि ।।
अतश्चोत्तरखण्डं हि वर्णयामि मनो शृणु ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे तृतीयं प्रतिसर्गपर्वचतुर्युगखण्डापरपर्यायं समाप्तम् ।।३।।

का एक चरण होता है, जिसमें पूर्वार्द्ध मध्याह्न सायाह्न रूपी तीन संध्याएँ होती हैं । इस भाँति भूतल पर एक चरण से वह सदैव वर्तमान रहता है । जिस समय धर्म की वृद्धि होती है उस समय प्राणियों की आयु भी बढ़ जाती है ! मनु ! इस खण्ट में मैंने सात सहस्र श्लोकों का वर्णन तुम्हें सुना दिया । अब इसके उपरांत उत्तरखण्ड का वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।२०-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।